तीर्थंकर महावीर स्वामी के 2550 वे निर्वाण महामहोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में प्रकाशित

श्रीमद् आचार्य वट्टकेर स्वामीकृत मूल प्राकृत ग्रन्थ

मूलाचार

आचार्य वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तिकृत संस्कृत आचारवृत्ति एवं इसी के आधार पर
पं० कविश्री नन्दलालजी छावड़ा एवं पं० ऋषभदासजी निगोत्या कृत

भाषा वचनिका

संपादकद्वय

प्रो. फूलचन्द्र जैन प्रेमी
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष – जैनदर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ० श्रीमती मुन्नी जैन
प्राकृताचार्य, जैन दर्शनाचार्य, पी–एच०डी०

नवकार इंटरनेशनल

द्वितीय संस्करणः 2024 ।। मूल्यः 555 रुपये (पुनः प्रकाशन हेतु)

Published on the occasion of the 2550th Nirvana Maha Mahotsav year of Tirthankara Mahavir Swami

Original Prakrit Granth by Shrimad Acharya Vattaker Swami

Moolachar

Sanskrit code of conduct written by Acharya Vasunandi Siddhant-Chakravarti and based on this

Written by Pt. Kavishri Nandlal ji Chhavada and Pt. Rishabhdas ji Nigotya

Bhasha Vachanika

Editors

Prof. Phoolchand Jain Premi
Ex. Prof. & HOD - Jain Darshan Department
Sampoornanand Sanskrit University, Varanasi

Smt. Dr. Munni Jain
Prakritacharya, Jain Darshanacharya, Ph.D.

Navkar International

Second Edition: 2024. Price: Rs. 555 (for re-publication)

ISBN978-81-972888-5-2

नवकार इंटरनेशनल का प्रथम पुष्प

आशीर्वाद : संतशिरोमणि आचार्यश्री विद्यासागरजी मुनिराज

प्रेरणा : वात्सल्य रत्नाकर आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज

ग्रन्थ : मूलाचार-भाषा वचनिका (शौरसेनी प्राकृत भाषा का श्रमणाचार विषयक प्रमुख मूलशास्त्र)
(संस्कृत आचारवृत्ति सहित)

मूल ग्रंथ प्रणेता : आचार्य वट्टकेर स्वामी

संस्करण : द्वितीय संस्करण
वीर निर्वाण सं० 2550, सन् 2024

प्रकाशक : नवकार इंटरनेशनल
फ्लैट संख्या 401, ओहासिस होम्स, सेक्टर बीटा 2, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उ.प्र., 201306
ईमेलः prakasheffort@gmail[dot]com मोबाइल न०: 7408408851

पुण्यार्जक : डा० श्री चमन प्रकाश जैन एवं धर्मपत्नी श्रीमती मालती रानी जैन
श्री आदि प्रकाश जैन एवं धर्मपत्नी श्रीमती हेमा जैन, सुपुत्री अदिति जैन एवं अनुश्री जैन, सुपुत्र णमोकार जैन

प्राप्ति स्थान : 1) कोठी न० 1, वर्धमानपुरम, कमल के फूल वाली बिल्डिंग, थाने के पीछे, टूंडला, फिरोज़ाबाद, उ.प्र., 283204
2) फ्लैट संख्या ए401, ओहासिस होम्स, सेक्टर बीटा 2, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उ.प्र., 201306
3) अनेकान्त विद्या भवन, बी 23/45, पी–6, शारदा नगर कौलॉनी, खोजवां, वाराणसी–221010

मूल्य : 555 रुपये (पुनः प्रकाशन हेतु)

मुद्रक : जय महावीर एंटरप्राइजेज, 198/2/1, शारदा फॉर्च्यून टॉवर, रमेश मार्केट, ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली–110065

कॉपीराइट© : संपादकद्वय

ISBN978-81-972888-5-2

Navkar International Pushp No. - 01

Blessings : Sant Shiromani Acharya Shree Vidyasagarji Muniraj
Inspiration : Vatsaly Ratnakar Acharya Shree Vasunandiji Maharaj

Granth : Moolachar - Bhasha Vachanika (Main Basic Scripture Related To Shramanachar Of Shaurseni Prakrit Bhasha)
(Including Sanskrit Acharyavritti)

Originator of Original book : Acharya Vattaker Swami

Edition : Second Edition
Veer Nirvana No. 2550, Year 2024

Publisher : Navkar International
Flat No. 401, Ohasis Homes, Sector Beta 2, Greater Noida, Gautam Budh Nagar, U.P., 201306
Email: prakasheffort@gmail[dot]com Mobile No. : 7408408851

Punyaarjak : Dr. Shri Chaman Prakash Jain and his wife Smt. Malti Rani Jain
Shri Adi Prakash Jain and his wife Smt. Hema Jain, daughters Aditi Jain and Anushri Jain, and son Namokar Jain

Place of receipt : a) Kothi No. 1, Vardhmanpuram, Lotus flower building, behind police station, Tundla Frirozabad, Uttar Pradesh, 283204
b) Flat No. A401, Ohasis Homes, Sector Beta 2, Greater Noida, Gautam Budh Nagar, Uttar Pradesh, 201306
c) Anekant Vidya Bhawan, B 23/45, P-6, Sharda Nagar Colony, Khojwa, Varanasi-221010

Price : Rs. 555 (for re-publishing)

Printer : Jai Mahavir Enterprises, 198/2/1, Sharda Fortune Tower, Ramesh Market, East of Kailash, New Delhi - 110065

Copywrite© : Editors

"मूलाचार भाषा-वचनिका का द्वितीय संस्करण"

यह बहुत ही हर्ष का विषय है कि प्रस्तुत ''मूलाचार भाषा- वचनिका'', जिसकी मुनिसंघों एवं विद्वानों की ओर से पुनः प्रकाशन की काफी मांग हो रही थी, ऐसे इस बृहद् ग्रन्थ का यह द्वितीय संस्करण लगभग तीन दशक बाद पुनः प्रकाशित होकर स्वाध्यायशील पाठकों को सुलभ हो रहा है।

श्रमणाचारपरक यह आगमशास्त्र श्रमणों और आर्यिकाओं के आचार, विचार, व्यवहार, श्रमणसंघ एवं जैन सिद्धान्तों का यह एक प्रामाणिक एवं सर्वसम्मत अति महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। हजारों-हजार वर्षों से इसी के आधार पर दि. जैन मुनियों और आर्यिकाओं की चर्या का सम्पूर्ण भव्य-प्रासाद आज भी दृढ़ता के साथ स्थित है। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में मूलाचार एवं इसकी भाषा वचनिका, इनके कर्ता ग्रंथकार तथा इस पर हुए शोध कार्य आदि से सम्बन्धित अनेक विषयों की विवेचना की जा चुकी है।

प्रस्तुत बृहद्ग्रन्थ का पुनः प्रकाशन नवकार इण्टरनेशनल के पुण्यार्जन से हो रहा है। इसके पुण्यार्जक धर्म प्रभावना में सदा संलग्न रहने वाले श्रुतसेवी, विनम्रता एवं मृदु-स्वभाव के धनी, भारत सरकार के उपक्रम भारत हैवी इलेक्टिकल्स लि. के वरिष्ठ प्रबन्धक, हमारे स्नेही बन्धुवर श्री आदि प्रकाश जी जैन एवं इनके सम्पूर्ण परिवार के पुण्य की बारम्बार अनुमोदना करते हैं। दिल्ली में स्थित जय महावीर एंटरप्राइजेज के श्री आशीष जैन जी ने इस शास्त्र के प्रकाशन में बड़े ही उत्साह और धर्मभावना से जो कार्य किया है, उसके लिए हम अपनी ओर से तथा पुण्यार्जक परिवार की ओर से आभार व्यक्त करते हैं। हमें विश्वास है कि प्रथम संस्करण की तरह इसका भी सर्वत्र स्वाध्याय और बहुमान होगा। यही मंगल भावना है ।

सम्पादकद्वय
प्रो. फूलचन्द्र प्रेमी एवं श्रीमती डॉ. मुन्नी जैन
वीरशासन जयन्ती पर्व-2024

प्रकाशकीय

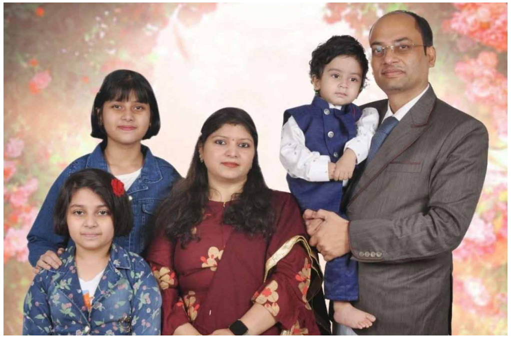

यह मेरा सौभाग्य रहा है कि भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, दादरी, नोएडा से मेरा स्थानांतरण वाराणसी हुआ। अपनी गहरी धर्मरुचि होने से, मुझे पारस प्रभु की जन्मभूमि स्थित जिनालय के समीप आवास भी मिल गया। पर्युषण पर्व पर इसी जिनालय में मुझे नित्य सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० फूलचंद जैन प्रेमी के प्रवचन सुनने का सौभाग्य भी मिला। मैंने उनकी विद्वित्ता से प्रभावित होकर एक दिन उनसे कहा कि मेरी भावना किसी प्राचीन आचार्य प्रणीत अच्छे शास्त्र के प्रकाशन की है।

मूलाचार भाषा वचनिका प्रस्तुत शास्त्र जो अनेक वर्षों से अप्राप्त था, अतः इसके प्रकाशन की मैंने इच्छा व्यक्त की। तब श्री प्रेमी जी ने इसके प्रकाशन कि सहर्ष स्वीकृति प्रदान की। मैंने इनके आवास पर पहुंचकर इस शास्त्र को अच्छी तरह देखा और इसकी महत्ता समझी और इसके प्रकाशन-पुण्यार्जन से बहुत प्रसन्नता हुई। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि सन् १९८६ में प्रथम बार यह शास्त्र अलवर के जैन मंदिर के हस्तलिखित शास्त्र भंडार में रखा हुआ था। प्राप्त जानकारी के अनुसार प्रो० प्रेमी एवं इनकी विदुषी धर्मपत्नी डा० मुन्नी पुष्पा जैन ने इस अद्भुत शास्त्र को तीन-चार दशक पूर्व संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी मुनिराज को कुण्डलपुर में दिखाया था, तब उन्होंने अब तक अज्ञात इस शास्त्र को देखकर प्रमुदित मन से इसे प्रकाश में लाने का प्रो० प्रेमी दंपत्ति को आशीर्वाद प्रदान किया था।

इस शास्त्र की अनेक अप्रकाशित हस्तलिखित पांडुलिपियों एवं प्रकाशित ग्रंथों से पाठान्तर मिलान जैसे अनेक संपादन के कार्य कठिन परिश्रम पूर्वक करते हुए यह शास्त्र प्रकाशन योग्य तैयार हुआ। यह भी उल्लेखनीय है कि ससंघ वाराणसी प्रवास के समय आचार्यश्री भरतसागर जी को जब यह शास्त्र के संपादन कार्य की पांडुलिपि दिखाई, तब उन्होंने अपनी ओर से इसके प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान की। इसके प्रकाशन में दो-तीन वर्ष लग गए। सन् 1996 में प्रथम बार अनेकांत विद्वत् परिषद् की ओर से यह महत्वपूर्ण शास्त्र प्रकाशित हुआ।

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि इस शास्त्र के प्रकाशन के बाद जब यह अनेक आचार्यों एवं आर्यिकाओं के संघों, विद्वानों एवं देश के अनेक जिनालयों के शास्त्र भण्डारों में पहुँचा, तब से अब तक अज्ञात इस शास्त्र की वाचना और स्वाध्याय आदि की परम्परा निरंतर

चलती रही है। दो-तीन वर्षों में ही इसका प्रथम संस्करण पूर्ण समाप्त हो गया था। अनेक मुनि संघों एवं विद्वानों आदि की ओर से इस शास्त्र की निरंतर मांग हो रही थी।

यह हमारा परम सौभाग्य है कि 25-30 वर्षो से अनुपलब्ध ऐसे अति महत्वपूर्ण उत्कृष्ट एवं दुर्लभ शास्त्र के पुनः प्रकाशन का हमारे परिवार को पुण्यार्जन प्राप्त हो रहा है। इसके लिए हम प्रो० प्रेमी जी दंपत्ति के आभारी हैं।

इस शास्त्र के प्रकाशन की मंगल भावना और आरम्भ से ही धर्म के प्रति अभिरुचि बढ़ाने में हमारे पूरे परिवार और हितैषी सम्बन्धीजनों का बहुमूल्य योगदान रहा है, अन्यथा मेरा कार्य क्षेत्र अलग हटकर होने से, ये अच्छे संस्कार और धार्मिक श्रद्धान मुश्किल थे।

हमारे पूज्य दादा जी स्व० श्री बृजनंदन लाल जैन जी एवं नाना जी स्व० श्री पांडेय क्षेमंकर जी अच्छी धार्मिक रुची के प्रसिद्ध श्रावक थे। टूंडला मेरी जन्मभूमि होने के कारण इन सबका मंगल सानिध्य एवं आशीर्वाद भी सदा मिलता रहता था। हमारे पूज्य पिताजी श्री डॉ० चमन प्रकाश जैन एवं वंदनीय माताश्री श्रीमती मालती रानी जैन ने निरंतर हमारा धर्मानुराग बढ़ाने में उत्कृष्ट कार्य किया एवं अच्छे संस्कारों से सिंचित किया। हमारे ज्येष्ठ भ्राता श्री आदीश्वर प्रकाश जैन जी एवं आदरणीया भाभी श्रीमती पल्लवी जैन जी द्वारा प्रदत्त निश्छल स्नेह एवं सभी अच्छे धार्मिक कार्यों हेतु निरंतर प्रोत्साहन हमारे लिए संबल का कार्य करता रहा है।

धर्मप्रेमी एवं उदारमना हमारे ससुर श्री पदम चंद जैन जी एवं सासु मां स्व० श्रीमती सुलोचना जैन जी की सुयोग्य सुपुत्री एवं मेरी धर्मपत्नी श्रीमती हेमा जैन, प्रिय पुत्र णमोकार जैन, सुपुत्रियां अदिति जैन एवं अनुश्री जैन - इन सभी का इस शास्त्र को प्रकाशित कराने में एवं अन्य धार्मिक कार्यो के प्रति उत्साहपूर्वक अनुमोदना प्रशंसनीय रहती है।

हमें पूरा विश्वास है कि सदा वंदनीय पूज्य मुनिसंघों एवं आर्यिका संघों के साथ ही सुधी विद्वत्गण एवं सुधी श्रावक-श्राविका, चतुर्विध संघ द्वारा इस पवित्र मूलशास्त्र मूलाचार भाषा वचनिका का पूर्व संस्करण की तरह इस संस्करण का भी स्वाध्याय पूर्वक स्वागत होगा, ताकि इसके प्रकाशन की सार्थकता समझकर हम भी कर्म-निर्जरा के पात्र बन सकें। इस शास्त्र के विद्वान् संपादक श्रीमान् प्रो० फूलचंद जैन प्रेमी दम्पति एवं मुद्रक श्री आशीष जैन जी को पुनः पुनः हार्दिक धन्यवाद एवं मंगलमय जीवन की शुभकामना।

भवदीय
ई० आदि प्रकाश जैन
Email Id: prakasheffort@gmail.com
Mob. No.: 7408408851

संपादकद्वय

प्रोफेसर फूलचन्द्र जैन प्रेमी

वाराणसी (राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित) माता एवं पिता-श्रीमति उद्यैतीदेवी जैन एवं सिंघई नेमिचन्द्र जैन, जन्म स्थानः दलपतपुर (सागर, म.प्र.), जन्मतिथि-12.7.1948

कार्यक्षेत्र एवं सेवाएँः एमेरिटस प्रोफेसर, तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी (TMU), मुरादाबाद, पूर्व प्रोफेसर एवं जैनदर्शन विभागाध्यक्ष, सं.सं. विश्वविद्यालय, वाराणसीय पूर्व निदेशक- भोगीलाल लहेरचन्द इंस्टिट्यूट ऑफ इन्डोलॉजी, दिल्लीः पूर्व अध्यक्ष, अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद्ः अधिष्ठाता-श्री स्याद्वाद महाविद्यालय भदैनी, वाराणसी।

प्रकाशित मौलिक ग्रन्थ- मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन (पुरस्कृत शोधप्रबन्ध), लाडनूं के जैनमंदिर का कला वैभव, प्राकृत भाषा विमर्श, श्रमण संस्कृति एवं वैदिक व्रात्य, आर्हत् जैन दर्शनः धर्म और संस्कृति, जैन साहित्य और समीक्षा।

सम्पादिक ग्रन्थ- मूलाचार भाषा वचनिका (पुरस्कृत बृहद् ग्रन्थ), प्रवचन परीक्षा, तीर्थंकर पार्श्वनाथ, आदिपुराण परिशीलन, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (द्वादश खण्ड), बीसवीं सदी के जैन मनीषियों का अवदान, आवश्यक निर्युक्ति, मथुरा का जैन सांस्कृतिक पुरा वैभव, स्याद्वाद महाविद्यालय शताब्दी स्मारिका, ऋषभ सौरभ, अभिनन्दन ग्रन्थ (अनेक)।

प्रमुख पुरस्कार/सम्मान - श्री चांदमल पाण्ड्या पुरस्कार, महावीर पुरस्कार, चम्पालाल स्मृति साहित्य पुरस्कार, विशेष पुरस्कार (उ.प्र. संस्कृत संस्थान), श्रुतसंवर्धन पुरस्कार, गोम्मटेश्वर विद्यापीठ पुरस्कार, आचार्य ज्ञानसागर पुरस्कार, अहिंसा इण्टरनेशनल एवार्ड, डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य पुरस्कार, संयोजकीय सम्मान (अ.भा. जैन विद्वत सम्मेलन, श्रवणबेलगोला), जैन आगम मनीषा सम्मान (जैन विश्वभारती, लाडनूं) विशिष्ट पुरस्कार (उ. प्र. सरकार द्वारा संस्कृत संस्थान), वर्णी अवार्ड, राष्ट्रपति पुरस्कार (उच्च शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा), महावीर पुरस्कार (पुस्तक - 'श्रमण संस्कृति एवं वैदिक व्रात्य' हेतु), श्रमण संस्कृति उन्नायक पुरस्कार, ऋषभदेव पुरस्कार।

आवासीय पता- 'अनेकान्त विद्या भवन', B-23/45, P.6, शारदा नगर कॉलोनी, खोजवाँ, वाराणसी, उ.प्र 221010 मो. 9450179254, 9670863335, ईमेल-anekantjf@gmail-com

श्रीमती डॉ० मुन्नी जैन

जन्म- 22 जून 1957, दमोह (म.प्र.)

शिक्षा– प्राकृताचार्य, जैनदर्शनाचार्य, एम. ए. (हिन्दी) पी-एच. डी., शिक्षाशास्त्री

माता-पिता- श्रीमती संतोष रानी जैन एवं श्री हुकमचन्द जैन, दमोह (म.प्र.)

धर्मपत्नी- प्रो० फूलचन्द जैन प्रेमी, पूर्व जैनदर्शन विभागाध्यक्ष, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिवार - 1. ज्येष्ठ पुत्र- प्रो. अनेकान्त कुमार जैन, जैनदर्शन विभाग श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली

2. पुत्री -: डॉ० इन्दु जैन राष्ट्र गौरव, नई दिल्ली, (राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय जैन प्रतिनिधि)

3. कनिष्ठ पुत्र - डॉ. अरिहन्त कुमार जैन, असिस्टेंट प्रोफेसर, के. जे. सौमय्या विद्याविहार युनिवर्सिटी, मुम्बई।

कार्यक्षेत्र- 1) सत्र 2011 से 2022 तक सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि. वि. वाराणसी के जैनदर्शन विभाग में अतिथि प्राध्यापिका।

2) देश के अनेक नगरों में एवं विश्वविद्यालयों आदि में आयोजित ब्राह्मी लिपि कार्यशालाओं में प्रशिक्षण दिया।

3) बीस से अधिक अखिल भारतीय संगोष्ठियों में शोधालेख प्रस्तुति।

4) अनेक पत्र-पत्रिकाओं में समसामयिक तथा अनुसंधान परक लेख प्रकाशित ।

5) आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर वार्ताएँ.

मौलिक ग्रन्थ - 1) ''हिन्दी गद्य के विकास में जैन मनीषी पं. सदासुखदास का योगदान'' - नामक मौलिक शोधग्रन्थ पाश्र्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी से 2002 में प्रकाशित. तथा कुंन्दकुन्द शिक्षण ट्रस्ट, मुम्बई से एवं जैन विद्या संस्थान, श्रीमहावीर जी से पुरस्कृत एवं सम्मानित ।

2) जैनधर्म-दर्शन एवं साहित्य विषयक शोध निबंधों का संग्रह प्रकाशन हेतु तैयार।

हस्तलिखित पाण्डलिपियों का सम्पादन ध्प्रकाशन -

1) शौरसेनी प्राकृत भाषा में आचार्य वट्टकेर (2-3 सदी) द्वारा प्रणीत मूलाचार पर ''भाषा वचनिका'' (17 वीं सदी) नामक बृहद्

ग्रन्थ का सम्पादन एवं प्रकाशन ।

2) प्राकृत, संस्कृत, पुरानी हिन्दी में लिखित लगभग दस प्राचीन हस्तलिखित लघु पाण्डुलिपियों का सम्पादन तथा अनगार वन्दना, पंचेन्द्रिय-सम्वाद, मुनिराज वंदना, बत्तीसी एवं रत्नजोग शास्त्र - ये चार लघु ग्रन्थ ''श्रमण'' शोध पत्रिका के अनेक अंकों में प्रकाशित ।

पुरस्कार/सम्मान -

1. उत्तर प्रदेश सरकार के संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा मूलाचार-भाषा वचनिका बृहद् ग्रन्थ के सम्पादन कार्य पर विशेष- पुरस्कार से सम्मानित.

2) कुन्द कुन्द शिक्षण ट्रस्ट मुम्बई से पं. सदासुखदास पर लिखित शोध-प्रबन्ध पर पुरस्कृत एवं सम्मानित ।

3) श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला में सन् 2018 में आयोजित अखिल भारतीय महिला सम्मेलन पर ब्राह्मी लिपि के प्रचार-प्रसार एवं विशेषज्ञता पर **''आदर्श महिला''** सम्मान से सम्मानित।

4) श्री दि. जैन महासमिति द्वारा 2020 में 'नारी गौरव' सम्मान ।

सम्प्रति- गार्हस्थिक दायित्वों एवं कार्यों के साथ-साथ सत्साहित्य के स्वाध्याय, अध्यापन, लेखन, हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ-सम्पादन, ब्राह्मी लिपि प्रशिक्षण तथा नई पीढ़ी को संस्कारित करने के विभिन्न कार्यों में निरन्तर संलग्न ।

सम्पर्क - अनेकान्त विद्या भवन, बी 23/45, P-6. शारदानगर कॉलोनी, खोजवाँ ,वाराणसी-221010.

मोबाइलः 8887531735 / 9450179254

मू०चा०
१

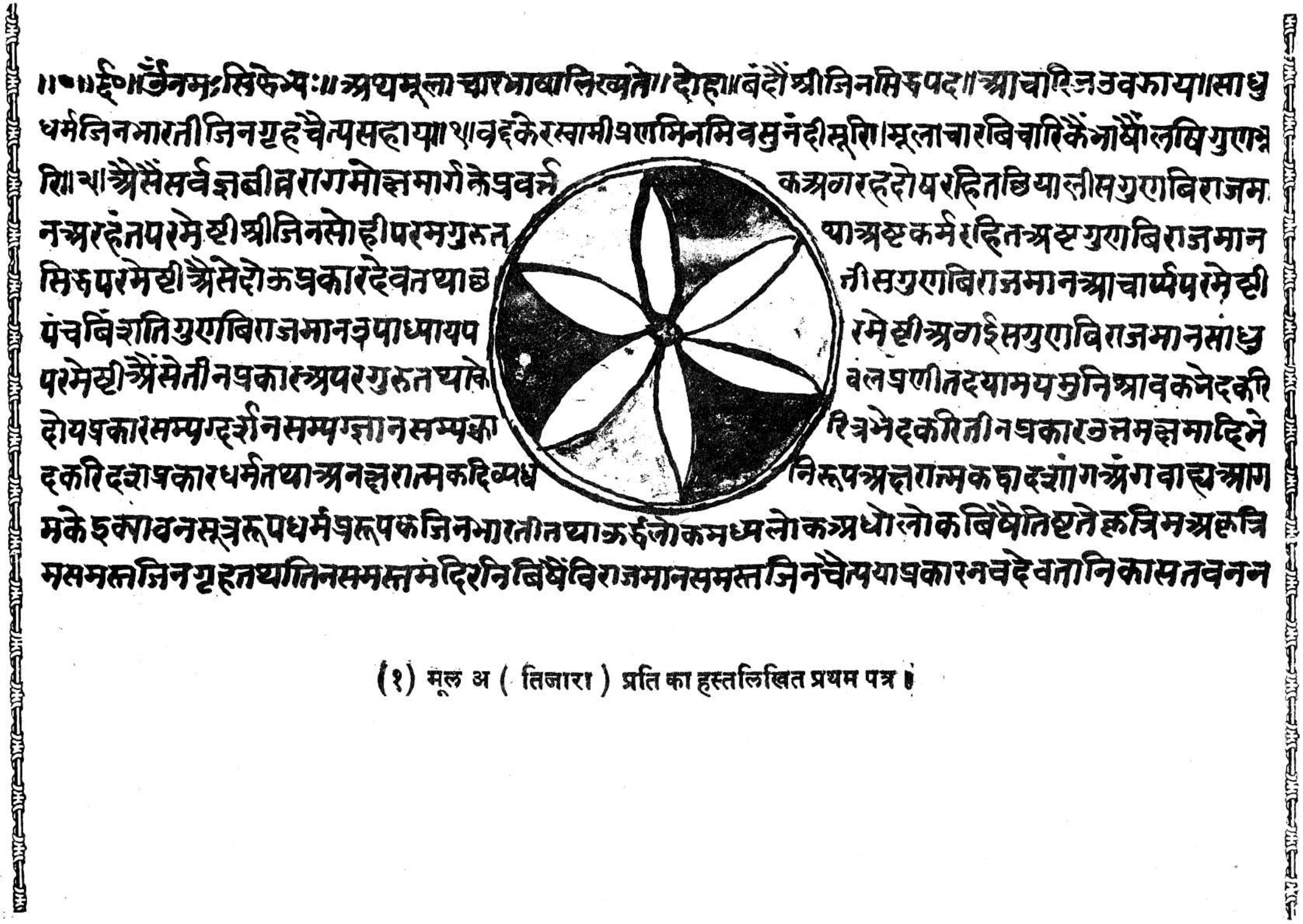
॥०॥ ई॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः॥ अथ मूलाचार भाषा लिख्यते॥ दोहा॥ बंदौं श्री जिन सिद्ध पद॥ आचारिज उवझाय॥ साधु
धर्म जिन भारती जिनगृह चैत्य सहाय॥१॥ वट्टकेर स्वामी प्रणमि नमि वसुनंदी सूरि॥ मूलाचार बिचारि कैं भाषौं लखि गुण भू
रि॥२॥ ऐसैं सर्वज्ञ वीतराग मोक्ष मार्ग के प्रवर्त्तक अठारह दोष रहित छियालीस गुण विराजमा
न अरहंत परमेष्ठी श्री जिन सो ही परम गुरु तथा अष्ट कर्म रहित अष्ट गुण विराजमान
सिद्ध परमेष्ठी ऐसे दोय प्रकार देव तथा छत्तीस गुण विराजमान आचार्य परमेष्ठी
पंचविंशति गुण विराजमान उपाध्याय परमेष्ठी अठाईस गुण विराजमान साधु
परमेष्ठी ऐसे तीन प्रकार अपर गुरु तथा केवल प्रणीत दयामय मुनि श्रावक के भेद करि
दोय प्रकार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र भेद करि तीन प्रकार उत्तम क्षमादि भे
द करि दश प्रकार धर्म तथा अनक्षरात्मक दिव्यध्वनि रूप अक्षरात्मक द्वादशांग अंग बाह्य आग
म के इक्यावन सूत्र रूप धर्म प्ररूपक जिन भारती तथा ऊर्ध्व लोक मध्य लोक अधोलोक विषै तिष्टते कृत्रिम अकृत्रि
म समस्त जिनगृह तथा तिन समस्त मंदिरनि विषैं विराजमान समस्त जिनचैत्य या प्रकार नव देवतानि कौं सतवन न

(१) मूल अ (तिजारा) प्रति का हस्तलिखित प्रथम पत्र ।

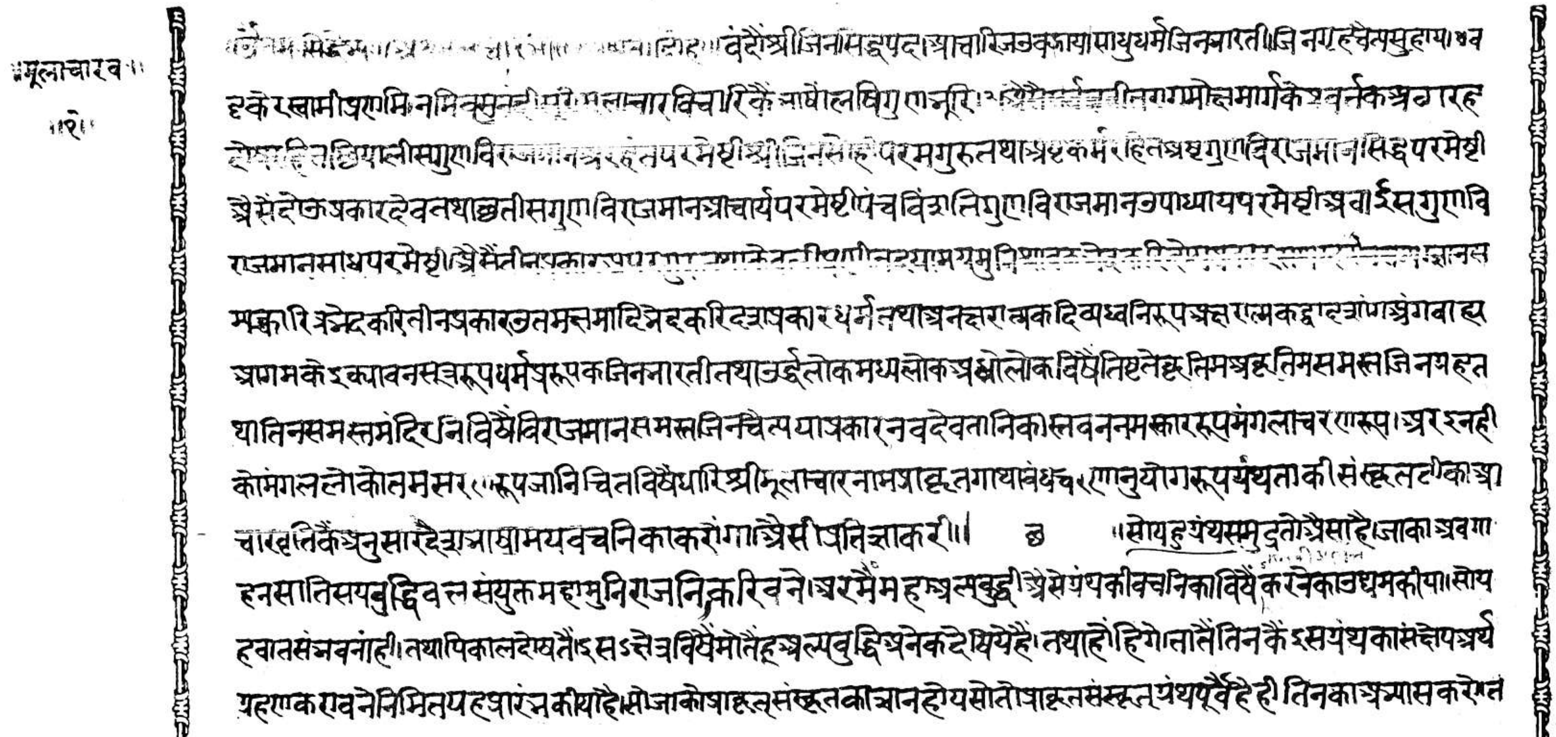

मूलाचारव॥
॥२॥

[illegible] ॥ वंदौं श्रीजिनसिद्धपद आचारिज उवझाय साधु धर्म जिनभारती जिनगृह चैत्य सुहाय ॥ अब
इहां स्वामी प्रणमि नमि [illegible] मूलाचार विचारि कैं भाषौं लखि गुणनूरि ॥ [illegible] निरग्रंथ मोक्षमार्ग के प्रवर्तक अरह
[illegible] छियालीस गुण विराजमान अरहंत परमेष्ठी श्रीजिनसिंह परमगुरु तथा अष्टकर्म रहित अष्टगुण विराजमान सिद्ध परमेष्ठी
ऐसें दोय प्रकार देव तथा छतीस गुण विराजमान आचार्य परमेष्ठी पंचविंशति गुण विराजमान उपाध्याय परमेष्ठी अठाईस गुण वि
राजमान साधु परमेष्ठी ऐसैं तीन प्रकार [illegible] ज्ञानस
म्यक् [illegible] तीन प्रकार उत्तम क्षमादि भेद करि दश प्रकार धर्म तथा अनक्षरात्मक दिव्यध्वनिरूप अक्षरात्मक द्वादशांग अंगबाह्य
आगम के इक्यावन स्वरूप धर्म प्ररूपक जिनभारती तथा ऊर्द्धलोक मध्यलोक अधोलोक विषैं तिष्ठे [illegible] समस्त जिन गृह त
था तिन समस्त मंदिरनि विषैं विराजमान समस्त जिन चैत्य या प्रकार नव देवतानि कौं स्तवन नमस्कार रूप मंगलाचरण रूप । अर इनही
कौं मंगल लोकोत्तम शरण रूप जानि चित्त विषैं धारि श्रीमूलाचार नाम प्राकृत गाथाबंध चरणानुयोग रूप ग्रंथ ताकी संस्कृत टीका आ
चारवृत्ति कैं अनुसार देशभाषामय वचनिका करौंगा ऐसैं प्रतिज्ञा करी ॥ छ ॥ सो यह ग्रंथ समुद्र तो ऐसा है जाका अवगा
हन सातिसय बुद्धि बल संयुक्त महामुनिराजनि करि बने । अर मैं महा अल्पबुद्धी ऐसे ग्रंथ की वचनिका विषैं करने का उद्यम कीया । सो य
ह बात संभवै नांही । तथापि कालदोषतैं इस क्षेत्र विषैं मो तैं हू अल्पबुद्धि अनेक देखिये हैं । तथा होहिंगे । तातैं तिन कैं इस ग्रंथ का संक्षेप अर्थ
ग्रहण करावने निमित्त यह आरंभ कीया है । सो जाकौं प्राकृत संस्कृत का ज्ञान होय सो तौ प्राकृत संस्कृत ग्रंथ पूर्वें हैं ही तिनका अभ्यास करैंगे

(२) ब (अजमेर) प्रति का हस्तलिखित प्रथम पत्र ।

प्रथम संस्करण की सम्पादकीय

मूलाचार : श्रमणाचार विषयक प्राचीन और अनुपम कृति—

मूलाचार श्रमणाचार विषयक एक प्राचीन और अनुपम कृति है। शौरसेनी प्राकृत भाषा के रचित इस बहुमूल्य ग्रन्थ के यशस्वी रचयिता आचार्य वट्टकेर हैं। दिगम्बर जैन परम्परा में आचारांग के रूप में प्रसिद्ध यह श्रमणाचार विषयक मौलिक, स्वतन्त्र, प्रामाणिक एवं प्राचीन ग्रन्थ २–३ शती के आसपास की रचना है। यद्यपि अन्य कुछ प्रमुख आचार्यों की तरह आ० वट्टकेर के विषय में भी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है; किन्तु उनकी अनमोल कृति "मूलाचार" के अध्ययन से ही आ० वट्टकेर का बहुश्रुत सम्पन्न व्यक्तित्व, उत्कृष्ट चारित्रधारी आचार्यवर्य के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है। दक्षिण भारत में बेट्टकेरी स्थान के निवासी वट्टकेर दिगम्बर परम्परा में मूलसंघ के प्रमुख आचार्य थे। इन्होंने मुनिधर्म की प्रतिष्ठित परम्परा को दीर्घकाल तक यशस्वी और उत्कृष्ट रूप में चलते रहने और मुनिदीक्षा धारण के मूल उद्देश्य की प्राप्ति हेतु मूलाचार ग्रन्थ की रचना की, जिसमें श्रमणनिर्ग्रन्थों की आचार-संहिता का सुव्यवस्थित, विस्तृत एवं सांगोपांग विवेचन किया है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा के कुछ ग्रन्थों की गाथाओं से मूलाचार की कुछ गाथाओं की समानता के आधार पर कुछ विद्वान् इसे संग्रह ग्रंथ भी कह देते हैं, किन्तु यह तथ्य है कि तीर्थंकर महावीर की निर्ग्रन्थ परम्परा जब दो भागों में विभक्त हुई, उस समय समागत 'श्रुत' दोनों ही परम्पराओं के आचार्यों को कंठस्थ था। अतः उन दोनों ने समान रूप से उसका उपयोग प्रसंगानुसार अपनी-अपनी रचनाओं में किया, इसीलिए कुछ समानताओं के आधार पर ही किसी मौलिक-ग्रन्थ को संग्रह ग्रन्थ कह देना उस सम्पूर्ण विरासत के साथ अन्याय ही कहा जायेगा। कुछ समानताओं वाले ग्रन्थ तो हमें उस परम्परा के प्राचीनतम वे स्रोत खोजने का अवसर प्रदान करते हैं जो तीर्थंकर महावीर की मूल साधना और उनके श्रमण संघ की आचार संहिता से सीधे जुड़े थे। क्योंकि अर्धमागधी आगमों में श्रमणाचार के जिन नियमों और उपनियमों को निबद्ध किया गया है तथा मूलाचार में श्रमण की जो आचार-संहिता निबद्ध है, उसकी तात्विक और आध्यात्मिक विकास की प्रेरणा में कोई विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता। अहिंसा के जिस मूल धरातल पर श्रमणाचार का महाप्रासाद अर्धमागधी आगम में निर्मित है, उसी अहिंसा के मूल धरातल पर मूलाचार में भी श्रमणाचार का विशाल भवन निर्मित है। इस दृष्टि से मूलाचार को आचारांग के आधार पर ही निर्मित माना गया है। मूलाचार के टीकाकार आ० वसुनन्दि और सकलकीर्ति के कथनों से इस बात का समर्थन भी होता है। इसीलिए आचार्य वीरसेन ने षट्खण्डागम की अपनी धवला टीका में तथा आचार्य अकलंकदेव ने तत्त्वार्थ-वार्तिक में मूलाचार को 'आचारांग' के नाम से ही, उसकी गाथाओं को उद्धृत किया है।

प्रथम मूल अंग आगम आचारांग के आधार पर इसकी रचना हुई, इसीलिए इसका नाम भी "मूलाचार" प्रसिद्ध हुआ और तदनुसार उस श्रमणसंघ के आचार का प्रतिपादक होने से उस संघ का नाम "मूलसंघ" प्रचलित हुआ जान पड़ता है।

मूलाचार के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि पाँचवें श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु के समय जो दुर्भिक्ष पड़ा था, उसके प्रभाव से श्रमणाचार में जो शिथिलता आई थी, उसे श्रमणों को अपने आचार-विचार एवं व्यवहार आदि की विशुद्धता का समग्र एवं व्यवस्थित ज्ञान कराने हेतु आचार्य वट्टकेर ने इस मूलाचार का निर्माण किया जिस व्यवस्थित रूप में श्रमणधर्म के सम्पूर्ण-आचार-विचार का निरूपण इसमें मिलता है, वैसा अन्य श्रमणाचार परक प्राचीन ग्रन्थों में देखने को नहीं मिलता।

मूलाचार में मूलगुण, बृहत्प्रत्याख्यान-संस्तरस्तव, संक्षेप-प्रत्याख्यान, संस्तर-स्तव, समाचार, पंचाचार, पिण्डशुद्धि, षडावश्यक, द्वादशानुप्रेक्षा, अनगारभावना, समयसार, शीलगुण और पर्याप्ति–ये बारह अधिकार हैं, जिनमें कुल १२५२ गाथायें हैं। ये सभी अध्याय परस्पर सम्बद्ध होकर क्रमबद्ध रूप में मुनिधर्म का उत्तरोत्तर विवेचन करते हुए भी प्रत्येक अधिकार एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का भी रूप लिये हुए हैं। यदि प्रत्येक अधिकार को अलग-अलग प्रकाशित करके इनका अध्ययन हो तो भी उसमें सम्पूर्णता ही लगती है। जैसे इसके सातवें षडावश्यक अधिकार का ही उदाहरण लें। इसका प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है और अन्त भी उपसंहारात्मक शैली में हुआ है। इसके प्रारम्भ में ही आचार्य ने प्रतिज्ञा की है कि मैं अब "आवश्यकनिर्युक्ति" का कथन कर रहा हूँ। और फिर इस पूरे अधिकार में सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग तथा प्रत्याख्यान इन छह आवश्यकों का क्रमशः भेद-प्रभेद सहित अच्छा विवेचन किया गया है। इस तरह अर्धमागधी के आवश्यकसूत्र तथा इसकी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि आदि ग्रन्थों में छह आवश्यकों का स्वरूप मूलाचार के सदृश ही है।

मूलाचार के प्रथम अधिकार में अट्ठाईस मूलगुणों का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। यहाँ कहा गया है कि श्रमणाचार रूप वृक्ष के लिए जो मूल (जड़) के समान हों, वे मूलगुण हैं। ये श्रमणधर्म की आधारशिला हैं। सम्पूर्ण मुनिधर्म इन अट्ठाईस मूलगुणों से सिद्ध होता है। इनमें न्यूनाधिकता रहने पर साधक को श्रमणधर्म से च्युत माना जाता है। मूलाचार का अन्तिम अधिकार है "पर्याप्ति"। इसमें पर्याप्ति आदि जैन सिद्धान्तों का वह विवेचन किया गया है, जो आ० वट्टकेर को, इन विषयों का ज्ञान अविच्छिन्न आचार्य-परम्परा से प्राप्त हुआ था।

इस तरह आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार के माध्यम से मात्र श्रमण परम्परा को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीयता को, वह आचार संहिता प्रदान कर महनीय योगदान किया है, जिसके कारण यह भारत देश सदा से ही गौरवान्वित रहा है।

विषय परिचय

मूलाचार में बारह अधिकार हैं। प्रत्येक अधिकार के प्रतिपाद्य विषयों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

१. **मूलगुणाधिकार :** इसमें छत्तीस गाथाएँ हैं। सर्वप्रथम मंगलाचरण पूर्वक विषय प्रतिपादन की घोषणा की गई है तथा श्रमणों के अट्ठाईस मूलगुणों का कथन किया गया है। तदनन्तर पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पंचेन्द्रिय निरोध, षडावश्यक, लोच, अचेलकत्व, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तधावन, स्थितभोजन और एकभक्त—इन अट्ठाईस मूलगुणों की सारभूत परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं। अचेलकत्व मूलगुण के अन्तर्गत शरीर ढकने के लिए वस्त्र, अजिन (चमड़ा), वल्कल, तृण, पत्ते, आभूषण आदि के धारण का निषेध करके निर्ग्रन्थ (नग्न) वेश धारण करने को अचेलकत्व कहा है। मूलगुणों के पालन से मिलने वाले मोक्षफल के कथन के बाद अधिकार की समाप्ति की गयी है।

२. **बृहत्प्रत्याख्यान-संस्तरस्तव अधिकार :** इसमें श्रमण को सभी पापों का त्यागकर मृत्यु के समय दर्शन आदि चार आराधनाओं में स्थिर रहने, क्षुधातृषा आदि परिषहों को समता भाव से सहने तथा निष्कषाय होकर प्राण त्याग करने का उपदेश है। प्रत्याख्यान विधि बताते हुए प्रत्याख्यान करने वाले के मुख से कहलाया गया है कि जो कुछ मेरी पापक्रिया है उस सबका मन, वचन, काय से त्याग करता हूँ और समताभाव रूप निर्विकल्प एवं निर्दोष सामायिक करता हूँ। सब तृष्णाओं को छोड़कर मैं समाधिभाव अंगीकार करता हूँ। सब जीवों के प्रति मेरा क्षमा-भाव है तथा सब जीव मेरे ऊपर क्षमाभाव करें। मेरा सब प्राणियों पर मैत्री भाव है, किसी से भी मेरा बैर नहीं है। इसके अतिरिक्त चार संज्ञाओं, तैंतीस आसादनाओं, श्रमण की मनोभावनाओं के वर्णन के साथ-साथ मरण के भेद यथा मरण-समय णमोकार मन्त्र के चिन्तन आदि के करने का भी प्रतिपादन किया गया है।

३. **संक्षेपप्रत्याख्यानाधिकार :** इस अधिकार में व्याघ्रादि-जन्य आकस्मिक मृत्यु के उपस्थित होने पर पाँच पापों के त्याग पूर्वक सामायिक समाधि धारण करके सर्वआहार, कषाय और ममत्व भाव के त्यागपूर्वक शरीर त्याग की प्रेरणा दी है। प्रत्याख्यान, आराधनाफल, पंडितमरण, समाधिमरण तथा जन्म एवं मृत्यु का भय आदि विषयों का वर्णन करके अन्त में दस प्रकार के मुण्डों के उल्लेखपूर्वक अधिकार की समाप्ति की गयी है।

४. **समाचाराधिकार** इसमें विविध समाचार का अच्छा विवेचन है। समाचार शब्द के चार अर्थ बताये हैं— रागद्वेष से रहित समता का भाव, अतिचाररहित मूलगुणों का अनुष्ठान, समस्त श्रमणों का समान तथा हिंसा रहित आचरण एवं सभी क्षेत्रों में हानि-लाभरहित कायोत्सर्गादि के परिणाम रूप आचरण। उच्च ज्ञान प्राप्ति के निमित्त शिष्य-श्रमण को अपने गण से दूसरे गण एवं उसके-आचार्य के पास किस विधि से जाना चाहिये इसका अच्छा वर्णन करके एकाकी एवं स्वच्छन्द विहार की सम्भाव्य हानियों का वर्णन तथा निषेध किया है। आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधर ये पाँच आधार जहाँ न हों वहाँ रहना उचित नहीं है। इसी प्रसंग में आचार्य के गुणों का भी कथन किया है। इस अधिकार का महत्त्वपूर्ण अंश परगण से स्वगण में आगन्तुक श्रमणों का किस प्रकार स्वागत उनकी परीक्षा तथा उनका सहयोग किया जाता है इन सबका बहुत ही स्पष्ट और सुन्दर चित्रण है। आर्यिकाओं का संक्षिप्त आचार, श्रमण और आर्यिकाओं के पारस्परिक सम्बन्धों तथा आर्यिका को दीक्षा, उपदेश करने वाले अनेक गुण-धर्मों से युक्त गणधर एवं उनकी विशेषताओं का वर्णन है। आर्यिकाओं के समाचार के अन्तर्गत एक दूसरे के अनुकूल रहने, अभिरक्षण का भाव रखने, लज्जा एवं मर्यादा का पालन करने तथा माया, रोष एवं वैर जैसे भावों से मुक्त रहने का विधान किया गया है।

५. **पंचाचाराधिकार :** इसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र तप और वीर्य--इन पंचाचारों का भेद-प्रभेदों द्वारा विस्तृत प्रतिपादन किया गया है। दर्शनाचार के अन्तर्गत जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन नव पदार्थों का वर्णन है। इन नव पदार्थों में जीव तत्त्व के संसारी और मुक्त ये दो-दो भेद किये गये हैं। इन संसारी जीव के पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक तथा त्रस इन छह भेदों का भेदोपभेद पूर्वक विस्तृत प्रतिपादन है। रात्रिभोजन त्याग, पाँच समिति, गुप्ति, तप, ध्यान, स्वाध्याय आदि विषयों का विस्तृत स्वरूप कथन तथा इनका पालन करने

से होने वाले लाभों का भी विवेचन है। प्रसंगवश गणधर, प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली अथवा अभिन्नदशपूर्वी द्वारा कथित ग्रन्थों को सूत्र कहा है। संग्रह, आराधना नियुक्ति, मरणविभक्ति, स्तुति, प्रत्याख्यान, आवश्यक और धर्मकथा आदि जैन सूत्र ग्रन्थों तथा ऋग्वेद, सामवेद आदि वेद शास्त्रों, कौटिल्य, आसुरक्ष, महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों एवं रक्तपट, चरक, तापस, परिव्राजक आदि के नामों का उल्लेख मिलता है।

६. **पिण्डशुद्धि-अधिकार :** इसमें तेरासी गाथाएँ हैं। श्रमणों के पिण्डैषणा (आहार) से सम्बन्धित सभी नियमों की विशद् मीमांसा की गयी है। उद्गम, उत्पादन, एषणा, संयोजन, प्रमाण, इङ्गाल, धूम और कारण इन आठ दोषों से रहित आहार शुद्धि का, आहार त्याग के कारण, आहार ग्रहण के उद्देश्य, दाता के गुण, चौदह मल, आहार ग्रहण की विधि और मात्रा तथा आहार के अन्तराय आदि आहार चर्या से सम्बन्धित सभी विषयों का विस्तृत विवेचन है।

७. **षडावश्यक-अधिकार :** इस अधिकार को आवश्यकनियुक्ति नाम से अभिहित किया गया है तथा इसका प्रारम्भ पंच नमस्कार की निरुक्ति पूर्वक हुआ है। अर्हन्त, जिन, आचार्य, साधु, उत्तम आदि शब्दों की भी निरुक्ति पूर्वक व्याख्या की गई है। अर्हन्त, पद की निरुक्ति महत्त्वपूर्ण है। सामायिक, स्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यकों का निरुक्ति एवं भेदपूर्वक विस्तृत विवेचन है। लोक, धर्म, तीर्थ, भक्ति, विनय, कृतिकर्म, अवनति, चतुर्विध आहार और आलोचना–इन सब विषयों का स्वरूप तथा भेदपूर्वक कथन, स्वाध्याय-काल, वन्दनादि कायोत्सर्ग में वर्ज्य बत्तीस दोष, आसिका, निषोधिका का विधान तथा पार्श्वस्थादि पापश्रमणों आदि का विवेचन किया गया है। इस अधिकार की ये विशेषतायें हैं कि इसमें सामायिक संयम और छेदोपस्थापना संयम के विषय में उन मतों का उल्लेख कियागया है जिनका सम्बन्ध प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं अन्तिम तीर्थंकर महावीर तथा मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के परम्परा-भेद से है। नित्य प्रतिक्रमण और नैमित्तिक प्रतिक्रमण के सम्बन्ध में भी इसी तरह के मतों का उल्लेख है।

८. **द्वादशानुप्रेक्षाधिकार :** अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि-दुर्लभ और धर्मस्वाख्यात—इन बारह अनुप्रेक्षाओं (भावनाओं) का वैराग्यवर्धक सूक्ष्म विवेचन है। इसमें बताया है : राग, द्वेष, क्रोधादि आस्रव हैं, जिनमें कर्मों का आगमन होता है। ये कुमार्गों पर ले जाने वाली अति बलवान शक्तियाँ हैं। शांति, दया, क्षमा, वैराग्य आदि जैसे-जैसे बढ़ते हैं, जीव वैसे-वैसे मोक्ष के निकट बढ़ता जाता है। चार प्रकार के संसार का स्वरूप तथा अन्त में अनुप्रेक्षाओं की भावना से कर्मक्षय और परिणामशुद्धि का विवेचन है।

९. **अनगारभावनाधिकार :** इस अधिकार में अनगार का स्वरूप तथा लिंग, व्रत, वसति, विहार, भिक्षा, ज्ञान, शरीर-संस्कारत्याग, वाक्य, तप और ध्यान इन दस शुद्धियों को अनगार के सूत्र बताये हैं। अनगार तथा उनके सत्वगुणों, अनगार के पर्यायवाची नामों का उल्लेख किया गया है। वाक्यशुद्धि के प्रसंग में स्त्री, अर्थ, भक्त, खेट, कर्वट, राज, चोर, जनपद, नगर और आकर इन कथाओं का स्वरूप तथा रूपक द्वारा प्राणि-संयम और इन्द्रियसंयम रूपी आरक्षकों द्वारा तपरूपी नगर तथा ध्यानरूपी रथ के रक्षण की बात कही गयी है। यथार्थ अनगारों का विवेचन तथा अभ्रावकाश आदि योगों का स्वरूप कथन भी किया गया है।

१०. **समयसाराधिकार** : इस अधिकार में एक सौ चौबीस गाथाएँ हैं। इसमें वैराग्य की समयसारता, चारित्राचरण आदि का कथन करते हुए श्रमण को लौकिक व्यवहार से दूर रहने को कहा है। चारित्रसंयम और तप से रहित ज्ञानादि की निरर्थकता और प्रतिलेखन तथा इसके साधनभूत पिच्छिका की विशेषताएँ आदि इस अधिकार में प्रारम्भिक प्रतिपाद्य विषय हैं। आर्यिकाओं के आवास पर श्रमणों के गमन तथा स्वाध्याय आदि कार्य करने का निषेध किया गया है। पंचेन्द्रिय विषयों एवं काष्ठादि में चित्रित स्त्रियों तक से दूर रहने के कथन प्रसंग में ही अब्रह्म के दस कारण तथा पंचसूना आदि विविध विषयों का अच्छा विवेचन है। इसी अधिकार में आचेलक्य, औद्देशिक शय्यागृहत्याग, राजपिण्डत्याग, कृतिकर्म, व्रत, ज्येष्ठ, प्रतिक्रमण, मासस्थितिकल्प एवं पर्यास्थितिकल्प—इन दस स्थितिकल्पों का नामोल्लेख है। अधिकार के अन्त में शास्त्र के सार का प्रतिपादन करते हुए चारित्र को सर्वश्रेष्ठ कहा है।

११. **शीलगुणाधिकार** : इसमें मात्र छब्बीस गाथायें हैं। इस अधिकार में तीन योग, तीन करण, चार संज्ञा, पाँच इन्द्रिय, दस काम, दस श्रमणधर्म इन्हीं सबका परस्पर गुणा करने पर शील के अठारह हजार भेदों का कथन किया गया है। इसी अधिकार में गुणों अर्थात् उत्तर गुणों के भेद-प्रभेदों की चौरासी लाख संख्या का कथन किया है।

१२. **पर्याप्त्यधिकार** : इसमें पर्याप्ति, देह, संस्थान, काय-इन्द्रिय, योनि, आयु, प्रमाण, योग, वेद, लेश्या, प्रविचार, उपपाद, उद्वर्तन, स्थान, कुल, अल्पबहुत्व और प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशबंध इत्यादि विषयक सूत्र पदों द्वारा इन विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसी अधिकार में विवेचित गति-आगति का कथन 'सारसमय' नामक ग्रन्थ में स्वयं के द्वारा कहने का उल्लेख किया है। पर यह ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है। वृत्तिकार ने इसकी पहचान व्याख्याप्रज्ञप्ति से की है। जिस विषय के कथन का उल्लेख मूलाचार में है वह विषय श्वेताम्बर परम्परा में उपलब्ध व्याख्याप्रज्ञप्ति में नहीं है। इससे लगता है कि उस समय दिगम्बर परम्परा में वट्टकेर का 'सारसमय' ग्रन्थ अवश्य उपलब्ध रहा होगा। इसके प्रमाण रूप धवलाटीका में भी इसका उल्लेख मिलता है। षट्खण्डागम के जीवट्ठाण नामक प्रथम खण्ड की गतिआगति नाम की नवमी चूलिका व्याख्याप्रज्ञप्ति से निकली है। इन सब उल्लेखों के अतिरिक्त गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणा, स्वर्ग, नरक, मनुष्य, तिर्यञ्च गतियों तथा इनके जीवों आदि का विस्तृत विवेचन इस अधिकार में किया गया है। ग्रंथकार ने इस अधिकार का नाम 'पर्याप्ति संग्रहिणी' कहा है।

मूलाचार पर उपलब्ध व्याख्या साहित्य :

मूलाचार श्रमणाचार विषयक एक प्राचीन एवं प्रामाणिक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। दिगम्बर परम्परा के तद्विषयक प्रायः सभी परवर्ती ग्रन्थ इससे प्रभावित अथवा इसके आधार पर लिखे गये दृष्टिगोचर होते हैं। मूलाचार पर अनेक टीकाएँ तो लिखी ही गईं, साथ ही इसको मूल आधार बनाकर जिन ग्रन्थों की स्वतंत्र रचना हुई उनमें अनगार धर्मामृत, आचारसार, चारित्रसार, मूलाचार प्रदीप, आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं, जिन पर मूलाचार का स्पष्ट प्रभाव है।

आचार्य वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती की मूलाचार पर 'आचारवृत्ति' नामक सर्वार्थसिद्धि टीका संस्कृत भाषा में लिखी गई उपलब्ध है। आ० वसुनन्दि का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्राकृत ग्रन्थ वसुनन्दि श्रावकाचार सुप्रसिद्ध ही है। वस्तुतः मूलाचार के

विषय को हृदयंगम करने वालों में इनका अग्रणी स्थान है। इनकी आचारवृत्ति इतनी प्रसिद्ध और सरल है कि सामान्य जन भी इसका सुगमता से अध्ययन कर लेते हैं। गूढ़ विषय को स्पष्ट करते हुए चलना और अपनी सहज एवं सरल भाषा में ग्रन्थकार के भावों को प्रकट कर देना यह वसुनन्दि की मुख्य विशेषता है।

वसुनन्दि श्रावकाचार ग्रंथ के अन्त में दी गई प्रशस्ति के आधार पर ही आचार्य वसुनन्दि के विषय में मुख्यत: जानकारी मिलती है। आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा में श्रीनन्दि नामक आचार्य हुए हैं।[1] उनके शिष्य नयनन्दि और उनके शिष्य नेमिचन्द के प्रसाद से वसुनन्दि के इस ग्रंथ की रचना की। प्रशस्ति में ग्रंथ-रचना का समय नहीं दिया। किन्तु वसुनन्दि के दादा गुरु (नयनन्दि) ने वि० सं० ११०० में सुदंसण चरिउ (सुदर्शन चरित) नामक ग्रंथ अपभ्रंश में लिखा। इस आधार पर कुछ विद्वान् आचार्य वसुनन्दि का समय १२वीं शती का पूर्वार्द्ध अथवा ११वीं का अन्तिम भाग मानते हैं। किन्तु इनके ग्रंथों की भाषा, शैली और विषय प्रतिपादन आदि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये इस काल से भी पूर्व के आचार्य थे। इनके समय-निर्धारण की दिशा में शोध की आवश्यकता है। मूलाचार की इनकी इस वृत्ति के प्रारम्भ में उल्लेख है कि आचारांग की पदसंख्या अठारह हजार प्रमाण थी, उसका संक्षेप आचार्य वट्टकेर ने किया और उस पर इन्होंने बारह हजार श्लोक प्रमाण आचारवृत्ति लिखी। इनके नाम से प्रकाश में आने वाले ग्रन्थों में मूलाचार वत्ति के अतिरिक्त आप्तमीमांसा वृत्ति, जिनशतकटीका, प्रतिष्ठासारसंग्रह उपासकाध्ययन (वसुनन्दि श्रावकाचार) आदि प्रसिद्ध हैं।

मूलाचार के एक और व्याख्याता सकलकीर्ति हैं। इन्होंने इसके आधार पर 'मूलाचार-प्रदीप' नामक संस्कृत भाषा में विस्तृत ग्रंथ लिखा[2]। इनका समय विक्रम को १५वीं शती माना जाता है। डॉ० विन्टरनिट्ज़ ने इनका स्वर्गारोहण लगभग १४६४ ई० माना है।[3] ज्ञानार्णव की प्रशस्ति के अनुसार इन्होंने अपनी लीला मात्र से शास्त्रसमुद्र को भली प्रकार बढ़ाया।[4] वैसे १९वीं शती में सकलकीर्ति नामक एक दूसरे भट्टारक विद्वान् भी हुए हैं। किन्तु १५वीं शती के उपर्युक्त भट्टारक सकलकीर्ति अद्भुत प्रतिभा के धनी और बहुशास्त्रवेत्ता थे। ज्ञानार्णव की ही प्रशस्ति के अनुसार आप भट्टारक पद पर आरूढ़ होते ही बड़ी आसानी से जैन साहित्य भंडार को श्रीवृद्धि में लग गये थे।[5] इनकी लेखनी बहुमुखी रही है, अत: इन्होंने प्राय: सभी विषयों पर ग्रंथ रचना की। संस्कृत, प्राकृत और राजस्थानी भाषा पर इनका समान अधिकार था। गुजरात और बागड़ आदि क्षेत्रों में जैनधर्म का काफी प्रचार-प्रसार भी इन्होंने किया।

आचार्य सकलकीर्ति की संस्कृत और राजस्थानी भाषा में पचास से भी अधिक रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

---

१. वसुनन्दि श्रावकाचार की प्रशस्ति, गाथा ५४०-५४४

२. प्रकाशक, आचार्य श्री विमलसागर संघ, c/o रायसाहब नेमीचन्द्र जैन, बनारसी प्रेस, जलेसर (एटा) उ० प्र०, वि० सं० २०१८

३. ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, पृ० ५९२

४. प्रशस्ति संग्रह—सं० पं० के० भुजबली शास्त्री, जैन सिद्धांत भवन आरा, १९४२, पृष्ठ ११९, १९६, १९७

५. ज्ञानार्णव, प्रशस्ति पाठ १४।

आचार्य सकलकीर्ति ने अपने मूलाचारप्रदीप में प्रायः उन सभी विषयों का विस्तृत वर्णन किया है, जिनका प्रतिपादन आचार्य वट्टकेर ने अपने मूलाचार में किया। मूलाचार के आधार पर लिखे जाने पर भी आचार्य सकलकीर्ति का तीन हजार से भी अधिक संस्कृत पद्यों से युक्त यह ग्रन्थ स्वतन्त्र कृति जैसा लगता है। इसमें कहा है कि मैं (आचार्य सकलकीर्ति) इष्ट देवों को नमन करके, शुभ और श्रेष्ठ अर्थों को जानकर मूलाचार आदि श्रेष्ठ ग्रंथों में कहे हुए आचारों में प्रवृत्ति हेतु तथा स्वयं का और मुनियों का हित करने के लिए शुद्धाचार स्वरूप का प्ररूपक मूलाचार प्रदीप नामक महाग्रन्थ की रचना करता हूँ।

मूलाचार के तीसरे व्याख्याकार आचार्य मेघचन्द्र हैं। इन्होंने इस पर कर्नाटक 'मूलाचारसद्वृत्ति' की रचना की।

चतुर्थ कर्नाटक टीका 'मुनिजन चिन्तामणि' नाम से मिलती है, इसमें मूलाचार को कुन्दकुन्दाचार्य की रचना बताया है।

एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल (कलकत्ता) से अपने पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रंथों की "लिस्ट आफ जैना एम० एस० एस०" को (ग्रन्थ क्रमांक १५२१) देखने से ज्ञात होता है कि मेधावी कवि द्वारा रचित भी एक अन्य 'मूलाचार टीका' है। वैसे १६वीं शती के मेधावी कवि द्वारा लिखित धर्मसंग्रह–श्रावकाचार प्रसिद्ध ही है। इन्हीं कवि का उक्त टीका ग्रंथ भी सम्भव है। पर इसके विषय में अन्यत्र कहीं भी अभी तक उल्लेख देखने में नहीं आया।

उपर्युक्त टीकाओं के अतिरिक्त वीरनन्दि ने मूलाचार के आधार पर 'आचारसार' ग्रन्थ की रचना की है। पं० आशाधर ने 'अनगारधर्मामृत' नामक ग्रन्थ की रचना में इसी का आधार लिया है। 'मूलाचार भाषा वचनिका' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ अभी तक मात्र शास्त्र भण्डार की शोभा बढ़ा रहा था, किन्तु यह पहली बार प्रकाशित हो सुधी पाठकों के स्वाध्याय हेतु प्रस्तुत हो रहा है। इस प्रकार अन्यान्य अनेक ग्रन्थ मूलाचार के आधार पर लिखे गये, जिनमें आज कुछ प्रकाशित हैं तो कुछ अप्रकाशित तथा अनुपलब्ध भी हैं।

मूलाचार : श्रमणों का मौलिक संविधान*

श्रमणाचार विषयक शौरसेनी प्राकृत भाषा के एक बहुमूल्य ग्रन्थ 'मूलाचार' के यशस्वी कर्ता आचार्य वट्टकेर का इस क्षेत्र में अनुपम योगदान है। यह उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति है। दिगम्बर जैन परम्परा में आचारांग के रूप में प्रसिद्ध यह श्रमणाचार विषयक मौलिक, स्वतंत्र प्रामाणिक एवं प्राचीन ग्रन्थ द्वितीय-तृतीय शती के आसपास की रचना है। यद्यपि अन्य कुछ प्रमुख आचार्यों की तरह आचार्य वट्टकेर के विषय में भी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है, किन्तु उनकी एकमात्र अनमोल कृति मूलाचार के अध्ययन से ही आ.वट्टकेर का बहुश्रुत सम्पन्न एवं उत्कृष्ट चारित्रधारी आचार्यवर्य के रूप में उनका व्यक्तित्व हमारे समक्ष उपस्थित होता है।

मूलाचार तथा कुन्दकुन्द साहित्य की कुछ गाथायें समान मिलने और मूलाचार की वसुनन्दिकृत आचारवृत्ति की कुछ अर्वाचीन पाण्डुलिपियों में आचार्य कुन्दकुन्द का नामोल्लेख होने के आधार पर मूलाचार को भी कुछ विद्वानों ने आचार्य कुन्दकुन्द की कृति सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, किन्तु इन दोनों में अनेकों असमानता के कारण ऐसा है नहीं।

आचार्य कुन्दकुन्द वृत्तिकार तथा एलाचार्य के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। इन आधारों पर भी वट्टकेर और कुन्दकुन्द को कुछ विद्वानों ने इन दोनों को एक ही आचार्य सिद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु यह भी खींचतान ही है। अत: मूलाचार को आ. कुन्दकुन्द कृत नहीं माना जा सकता है।

प्रथम मूल-अंग-आगम आचारांग के आधार पर इसकी रचना हुई और इसीलिए इसका नाम भी मूलाचार प्रसिद्ध हुआ और तदनुसार उस श्रमणसंघ के आचार का प्रतिपादक होने से उनके संघ का नाम 'मूलसंघ' प्रचलित हुआ जान पड़ता है। यह मूलसंघ दिगम्बर जैन परम्परा का सर्वाधिक प्राचीन प्रमुख संघ है। इसकी परम्परा यहाँ आज भी प्रमुखता से प्रचलित है और इसी से

---

* इस विषयक विस्तृत जानकारी के लिए देखें–इस लेख के लेखक डॉ. फूलचन्द्र जैन प्रेमी द्वारा लिखित एवं ई. सन् १९८७ में पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी-५, द्वारा प्रकाशित अनेक पुरस्कारों से पुरस्कृत एवं चर्चित शोध प्रबंध **''मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन''** का प्रथम–प्रास्ताविक अध्याय। इसी शोध प्रबन्ध पर सन् १९७६ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (बी०एच०यू०) से इसके लेखक को पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई है।

आचार्य कुन्दकुन्द की ''अन्वय'' परम्परा ''कुन्दकुन्दान्वय' भी जुड़ी हुई है।

मूलाचार के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि पाँचवें श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु के समय जो दुर्भिक्ष पड़ा था। उसके प्रभाव से श्रमणाचार में जो कहीं-कहीं कुछ-कुछ शिथिलता आ रही थी, उसे देखकर श्रमणों को अपने आचार-विचार एवं व्यवहार आदि की विशुद्धता का समग्र एवं व्यवस्थित ज्ञान कराने हेतु आचार्य वट्टकेर ने इस मूलाचार का निर्माण किया। जिस व्यवस्थित रूप में श्रमणधर्म के सम्पूर्ण-आचार-विचार का निरूपण इस मूलाचार में मिलता है, वैसा अन्य श्रमणाचार-परक प्राचीन ग्रन्थों में देखने को नहीं मिलता।

षड् आवश्यक अधिकार के कथन के आधार पर ''आवश्यक निर्युक्ति'' नाम से हमने सम्पादित और अनूदित करके स्वतंत्रग्रन्थ के रूप में इसे सन् २००९ में जिन फाउण्डेशन, दिल्ली से प्रकाशित कराया है। इसमें छहों आवश्यकों का सुव्यवस्थित परिपूर्ण विवेचन है। यह ग्रन्थ परमपूज्य आचार्यश्री वर्धमान सागर जी की प्रेरणा से प्रो० फूलचन्द प्रेमी के सम्पादकत्व एवं प्रो० अनेकान्त कुमार के सह-सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। इस तरह अर्धमागधी भाषा में उपलब्ध 'आवश्यकसूत्र' तथा इनकी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि आदि बृहद् ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित ग्रन्थों में छह आवश्यकों का स्वरूप मूलाचार के सदृश ही है।

मूलाचार के प्रथम अधिकार में अट्ठाईस मूलगुणों का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। यहाँ कहा गया है कि श्रमणाचार रूप वृक्ष के लिए जो मूल (जड़) के समान हों, वे मूलगुण हैं। ये श्रमणधर्म की आधारशिला हैं। सम्पूर्ण मुनिधर्म इन अट्ठाईस मूलगुणों से सिद्ध होता है। इनमें न्यूनाधिकता रहने पर साधक को श्रमणधर्म से च्युत माना गया जाता है। इनमें साथ ही अन्य सभी अधिकारों के नामानुसार आचारगत उत्तरगुणों आदि उन सभी विषयों का सांगोपाग विवेचन है, जो मुनिधर्म की संयम-साधना में निरन्तर आगे बढ़ने के लिए आवश्यक हैं। मूलाचार का अन्तिम अधिकार है पर्याप्ति। इसमें पर्याप्ति आदि करणानुयोग के उन जैन सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है, जो आचार्य वट्टकेर को यह ज्ञान अविच्छिन्न आचार्य परम्परा से प्राप्त हुआ था। इस तरह आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार के माध्यम से सम्पूर्ण श्रमणों का सुव्यवस्थित संविधान प्रस्तुत किया है।

मूलाचार पर शोध कार्य

मूलाचार पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से दो-तीन वर्ष में शोधकार्य पूरा करने के साथ ही मुझे लाडनूं (राजस्थान) में आचार्यश्री तुलसी जी की प्रेरणा से उस समय कुछ ही वर्ष पूर्व स्थापित **जैन विश्व भारती** में प्राकृत एवं जैनविद्या विभाग में प्राध्यापक पद पर मेरी नियुक्ति सन् १९७६ के मध्य हो गयी। यहाँ लगभग चार वर्षों में (सन् १९७९ तक) कड़े श्रमपूर्वक बहुत कुछ पढ़ने-पढ़ाने, लिखने एवं अपने ज्ञानवर्द्धन के अपूर्व लाभ प्राप्त हुए। एक विशेष उपलब्धि यह हुई कि यहाँ मुझे एक तरफ अर्धमागधी आगम साहित्य के अनेक आगम ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापन और स्वाध्याय के दुर्लभ अवसर प्राप्त हुए, वहीं दिगम्बर परम्परा के शौरसेनी आगम ग्रन्थों के अध्यापन-अध्ययन का भी प्रभूत लाभ प्राप्त हुआ।

यहाँ मैंने यह भी सीखा और अनुभव किया कि भले ही हमारी परम्परा विशेष के प्रति गहरी आस्था हो, किन्तु जैन विद्या के व्यापक अध्ययन और ज्ञान के लिए बिना किसी आग्रह-दुराग्रह के, दोनों परम्पराओं के आगम एवं आगमेतर शास्त्रों का गहन अध्ययन अति आवश्यक है, अन्यथा हम बहुत बड़े लाभ से वंचित रह जाते हैं।

जैन विश्व भारती लाडनूं (राज०) में अध्यापन काल में मैंने जो अर्द्धमागधी आगमों का अध्ययन किया, उसका भरपूर उपयोग मैंने अपने **प्रकाशित शोधप्रबन्ध ''मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन''** (प्रका०–पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, सन् १९८७) में किया है। इस पर सन् १९७६ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. उपाधि प्राप्ति के बाद, इसके प्रकाशन के पूर्व लगभग आठ-दस वर्षों तक के समय का मैंने अहर्निश लगातार पूरे मनोयोग से मात्र इसी शोध-प्रबन्ध को अधिकाधिक परिपूर्ण करने एवं संजोने में सदुपयोग किया।

मुझे अपने सम्पूर्ण श्रम की सार्थकता का अनुभव तब और अधिक हुआ, जब देश के अनेक प्रतिष्ठित सभी परम्परा के पूज्य संतों और विद्वानों ने मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन नामक मेरे शोध-प्रबन्ध की भूरि-भूरि सराहना की और बहुत सम्मानित-पुरस्कृत किया। दिगम्बर (महावीर पुरस्कार एवं शास्त्री पुरस्कार) तथा श्वेताम्बर (साधुमार्गी संघ बीकानेर (राज०) द्वारा चम्पालाल साहित्य पुरस्कार)–इस तरह तीन पुरस्कारों से एक साथ यह शोध-प्रबन्ध पुरस्कृत हुआ।

मुझे यह भी देख-सुनकर प्रसन्नता होती है कि जहाँ यह परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी ने इसकी ससंघ वाचना की अनेक उत्कृष्ट आचार्यों एवं सन्तों, विद्वानों द्वारा प्रशंसित हुआ, वहीं इस विषय पर शोध कार्य करने वाले अनेक शोधार्थियों और लेखक विद्वानों के लिए यह शोध-प्रबन्ध एकमात्र ऐसा आधारभूत आदर्श ग्रन्थ बन गया है कि इसके आधार पर इस विषयक अनेक शोध-प्रबन्ध तैयार हो चुके और हो रहे हैं। साथ ही सभी सुधी स्वाध्यायी पाठकों की दृष्टि में यह अपने विषय का एक परिपूर्ण शोध एवं सन्दर्भ ग्रन्थ की विशेषताओं से युक्त है।

इसमें सन्दर्भित प्राकृत, संस्कृत आदि मूल ग्रन्थों की गाथाओं, श्लोकों तथा अन्यान्य गद्य-पद्यों को ग्रन्थ प्रकाशन हेतु प्रूफ पढ़ते समय भी सभी का सावधानी पूर्वक मूलग्रन्थों से मिलान किया गया है। जिसमें दिगम्बर एवं श्वेताम्बर परम्परा के श्रमणाचार-परक आगम ग्रन्थों का तुलनात्मक विषय-विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए यह अनेक विश्वविद्यालयों के सम्बद्ध विषय के पाठयक्रमों में सहायक पाठयग्रन्थ के रूप में सम्मिलित करके एम.ए., आचार्य तथा अन्य कक्षाओं के छात्रों को उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

इस तरह मुझे पूर्वोक्त शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन के समय भी इसके षड्आवश्यक अधिकार को स्वतन्त्र **आवश्यक निर्युक्ति** के रूप में प्रकाशित करने की भावना और दृढ़ बनी रही जो समयानुसार पूर्ण हुई। इसके बाद मूलाचार पर ही एक बार पुन: कई वर्षों तक कार्य करने का सौभाग्य हमें तब मिला, जब हमें पं. नन्दलाल जी छावड़ा (पं. जयचन्द जी छावड़ा के ज्येष्ठ सुपुत्र) द्वारा लिखित ''**मूलाचार भाषावचनिका**'' की हस्तलिखित दुर्लभ पाण्डुलिपि की उपलब्धि देहरा-तिजारा (राजस्थान) अतिशय क्षेत्र के पुराने बड़े जैन मन्दिर से हुई। इसकी दूसरी प्रति की छाया-प्रति (जीरॉक्स) अजमेर के महापूत मंदिर जी के शास्त्र भण्डार से प्राप्त हुई।

इस बृहद् ग्रन्थ के सम्पादन का कार्य मैंने अपनी सहधार्मिणी श्रीमती डॉ. मुन्नी पुष्पा जैन के सहयोग से लगभग चार-पाँच वर्षों में पूरा किया। बड़े आकार में लगभग १००० पृष्ठों में यह बृहद्ग्रन्थ सन् १९९६ में अनेकान्त विद्वत्परिषद् से प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ उ०प्र० संस्कृत संस्थान, लखनऊ से विशेष पुरस्कार से सम्मानित है।

मूलाचार भाषा वचनिका के सम्पादन-प्रकाशन का इतिवृत्त-

आचार्य कुन्दकुन्द तथा आचार्य पूज्यपाद आदि अनेक महान् आचार्यों के क्रमश: प्राकृत एवं संस्कृत भाषा के अनेक ग्रन्थों की पं० जयचंद ची छावड़ा कृत भाषा वचनिकाओं का अध्ययन करते समय उन ग्रन्थों की अन्त्य प्रशस्ति या अन्य किसी न किसी प्रसंग में पं० छावड़ा जी अपने सुयोग्य विद्वान् पुत्र पं० नन्दलालजी का गौरव के साथ उल्लेख अवश्य करते थे, किन्तु न तो इनकी किसी कृति का उल्लेख मिलता था, और न विशेष परिचय ही, फिर भी सन् १९९० ई० वर्ष का वह दिन बड़ा ही शुभ कहा जायेगा, जबकि हम सपरिवार राजस्थान और बुंदेलखण्ड के तीर्थों की वन्दनार्थ यात्रा के क्रम में अतिशय क्षेत्र तिजारा पहुंचे।

संयोग से श्रुतपंचमी का वह शुभ दिन था। अत: तिजारा (राजस्थान) नगर के मध्य में स्थित प्राचीन दि. जैन मंदिर, जिसकी प्रतिष्ठा जयपुर के ही स्वनामधन्य **पं. सदासुखदास** जी के सानिध्य में हुई थी, इसमें जिनवाणी पूजन का विशेष कार्यक्रम था। मैं भी सपरिवार श्रुतपंचमी पर शास्त्रों की पूजन हेतु यहां पहुंचा। इस मंदिर की बड़ी वेदी पर बीचों बीच काफी संख्या में हस्तलिखित शास्त्र विराजमान थे, जिनकी पूजन हो रही थी। अचानक मेरी दृष्टि बीच में रखे एक बड़े शास्त्र पर गयी, जो वेस्टन में लिपटा हुआ था, जिसमें ऊपर ''मूलाचार'' लिखा था। चूंकि यह ग्रंथ दिगम्बर जैन मुनियों के आचार धर्म का प्रतिपादक आचार्य वट्टकेर कृत प्रमुख प्राचीन ग्रन्थ है, जिस पर शोधकार्य करने पर मुझे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने **''मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन''** नामक विशाल शोधग्रन्थ पर पी-एच.डी. की शोध उपाधि सन् १९७७ में प्रदान की थी। अत: इस ग्रन्थ को देखने-समझने और पढ़ने की इच्छा होना स्वाभाविक है।

हमने जब इस हस्तलिखित मूलाचार भाषा वचनिका शास्त्र के कुछ पृष्ठों को पढ़ा और अन्त्य प्रशस्ति देखी तो आश्चर्य में पड़ गया, क्योंकि जिन विद्वान् की प्रशंसा मात्र सुनते-पढ़ते थे, उन पं. नंदनाल जी छावड़ा द्वारा मूलाचार जैसे शौरसेनी प्राकृत भाषा के महान् ग्रन्थ और इसकी आ० वसुनन्दि स्वामी द्वारा लिखित संस्कृत टीका–**''आचारवृत्ति''** के आधार पर यह वचनिका पुरानी हिन्दी के रूप में जानी मानी बोली जयपुर की **ढूंढारी भाषा** में लिखी हुई थी। लगातार

दो-तीन घंटे तक यत्र-तत्र के उपयोगी अंश इस शास्त्र के पढ़ने पर मेरी इच्छा अब तक अज्ञात एवं अप्रकाशित इस दुर्लभ महान् शास्त्र के संपादन और प्रकाशन की हुई।

अब हम दोनों ने इन दोनों प्रतियों के साथ ही आचार्य वट्टकेर कृत प्राकृत भाषा के मूलाचार पर आचार्य वसुनन्दि की संस्कृत आचारवृत्ति की मेरे पास सुरक्षित मूल हस्तलिखित प्रति की जीराक्स प्रति थी, उसके आधार पर मिलान करके इसका सम्पादन कार्य दीर्घ श्रम और समय पूर्वक सम्पन्न किया।

इस हेतु इस बृहद् हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रतिलिपि करने में हम अपनी धर्मपत्नी डॉ० मुन्नी जैन के कठिन श्रम की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने नियम बद्ध होकर कई महीनों तक लगातार छह-छह घण्टे बैठकर बारह रजिस्टरों में इसकी प्रतिलिपि कर दी।

इसी बीच परमपूज्य आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज का शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखरजी की ओर यात्राक्रम में ससंघ बनारस आगमन हुआ। उस समय संघस्थ पूज्य उपाध्याय श्री भरतसागर जी को यह शास्त्र और लम्बे समय से चल रहा सम्पादन आदि कार्य दिखाया तो उन्होंने इसे भा० अनेकान्त विद्वत् परिषद् से प्रकाशित कराने का आश्वासन दिया और १९९६ में परमपूज्य उपाध्यायश्री भरतसागर जी महाराज एवं पूज्यनीया विदुषी आर्यिका स्याद्वादमती माताजी के शुभाशीष से दीर्घ परिश्रम के बाद इसका प्रकाशन पूर्ण हुआ।

इधर उत्तरप्रदेश सरकार की ओर से संचालित उ. प्र. संस्कृत अकादमी, लखनऊ ने इसके श्रेष्ठ संपादन कार्य पर सन् १९९८ में इस ग्रन्थ पर विशेष पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र से राजभवन में आयोजित पुरस्कार समारोह में मा० राज्यपाल महोदय ने मुझे और श्रीमती मुन्नी जैन को सम्मानित किया।

इस प्रकार एक श्रेष्ठ विद्वान् पं० नन्दलालजी की अद्यावधि अप्रकाशित एक महान् कृति पहली बार जब सामने आयी तो सभी प्राय: मुनिसंघों, विद्वानों और समाज के स्वाध्याय प्रेमी श्रावकों ने इस शास्त्र का बहुमान से स्वागत किया। इसी माध्यम से पं० नन्दलाल जी के महान् व्यक्तित्व और कृतित्व से भी पहली बार पाठकों का परिचय हुआ। यद्यपि

प्राचीन आचार्यों और विद्वानों ने ग्रन्थों का लेखन तो किया किन्तु आत्मश्लाघा के भय से अपने जीवन के विषय में क्रमबद्ध और विस्तार से किसी ने नहीं लिखा। यत्र-तत्र के कुछ ही उल्लेखों आदि के आधार पर ही उनका यथा प्राप्त परिचय लिखा जा सका है।

प्रस्तुत निबन्ध श्रीमती डॉ० मुन्नीपुष्पा जैन द्वारा लिखित गौरवपूर्ण पुरस्कार से पुरस्कृत **''हिन्दी गद्य के विकास में जैन मनीषी पं. सदासुखदास का योगदान''** नामक शोधप्रबन्ध के आधार से लिखा गया है, जो कि पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, करौंदी वाराणसी-५ से सन्-२००२ में प्रकाशित हुआ है।

मूलाचार—भाषा वचनिका के कर्ता
पं० नन्दलाल जी छावड़ा का साहित्यिक अवदान

जैन काशी के नाम से प्रसिद्ध जयपुर नगरी (राजस्थान) प्रारम्भ से ही जैन शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन, लेखन एवं आध्यात्मिक शैली के रूप में प्रसिद्ध रही है। यहाँ जयपुर शैली के पं० टोडरमलजी, पं. जयचन्दजी छावड़ा, पं० सदासुखजी कासलीवाल जैसे अनेक विद्वान् हुए हैं, जो जैनविद्या और उसकी विशाल परम्परा की रक्षा और अभिवृद्धि के लिए आजीवन संघर्ष करते रहे। जयपुर की विद्वत्परम्परा की एक यह भी विशेषता रही है कि गुरु-शिष्य परम्परा से तो विद्वान् तैयार होते ही थे, साथ ही विद्वान् अपने पुत्रों को भी जैन शास्त्रों का अध्ययन कराके विद्वान् बनाने में महान् गौरव का अनुभव करते थे और अपने जीवन की सार्थकता मानते थे।

इसी विद्वत्परम्परा में प्राय: अब तक अज्ञात किन्तु अब एक यशस्वी विद्वान् के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके पं. कवि श्री नन्दलाल जी छावड़ा का नाम गौरव के साथ लिया जाने लगा है। पं० नंदलाल जी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि अनेक भाषाओं एवं प्राचीन जैन शास्त्रों के मर्मज्ञ प्रसिद्ध विद्वान् पं. जयचंद जी छावड़ा (जन्म वि. सं. १७६५, मृत्यु वि. सं. १८८१) के सुयोग्य विद्वान् सुपुत्र थे। इन्होंने आचार्य वट्टकेर स्वामी कृत शौरसेनी प्राकृत भाषा के मूलाचार

नामक श्रमणाचार विषयक महाग्रन्थ पर आचार्य वसुनन्दि प्रणीत संस्कृत टीका आचारवृत्ति के आधार पर भाषा वचनिका लिखकर अपने को अमर कर लिया।

यद्यपि पं० नन्दलाल जी का इसके अन्तर्गत विशेष साहित्य अभी सामने नहीं आया है, पर हो सकता है एक दो अन्य कृतियां और भी हों, किन्तु कुछ उल्लेखों से स्पष्ट है कि आप अपने पिता पं० जयचन्दजी छावड़ा के लेखन कार्य में विशेष सहयोग करते रहे और यही कारण है कि थोड़े समय में ही पं. जयचन्दजी अनेक प्राकृत-संस्कृत भाषा के प्राचीन, जटिल और कठिन बड़े ग्रन्थों की टीकायें लिख सके। इस तरह आत्मख्याति से दूर पं० नन्दलाल जी ने पठन-पाठन, शास्त्रार्थ, व्याख्यान, प्रवचन, स्वाध्याय आदि स्व-पर कल्याण के कार्यों में ही अपने को अधिक व्यस्त रखा।

जो भी हो यह स्पष्ट है कि पं. नन्दलाल जी जयपुर की विद्वत्परम्परा एवं शैली के एक विद्वत्रत्न थे, किन्तु अब तक उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अज्ञात रहना कम आश्चर्यकारी नहीं है। सम्भवत: यदि हम लोगों द्वारा इनका मूलाचार भाषा वचनिका जैसा विशाल ग्रन्थ सम्पादित होकर प्रकाशित न होता तो प्रस्तुत महान् विद्वान् का व्यक्तित्व और कृतित्व अब तक अज्ञात ही रहता। एक जिनवाणी सेवक पिता के समक्ष ही उसका बेटा भी उसी परम्परा का महान् विद्वान् बन जाये, तो उस पिता के लिए इससे बढ़कर खुशी और जीवन की सार्थकता क्या हो सकती है?

व्यक्तित्व और कृतित्त्व-

सर्वार्थसिद्धि, समयसार, अष्टपाहुड, प्रमेयरत्नमाला, ज्ञानार्णव जैसे संस्कृत-प्राकृत भाषा के लगभग पन्द्रह श्रेष्ठ ग्रन्थों पर ढूँढारी (पुरानी हिन्दी) जैसी सरल भाषा में भाषा वचनिकाओं के कर्ता जयपुर के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्दजी छावड़ा के सुपुत्र और श्री मोतीराम जी छावड़ा फागई (जयपुर) ग्राम निवासी के सुपौत्र पं० नन्दलाल जी छावड़ा की निश्चित जन्मतिथि का उल्लेख तो नहीं मिलता, किन्तु पं. जयचन्दजी की जन्मतिथि वि० सं० १७६५ के आधार पर तथा पं. जयचन्द जी के १-पं० नन्दलाल जी, २-दीवान सदासुख जी छावड़ा (दीवानकाल वि० सं० १८५७ से १८६७) तथा एवं ३-दीवान कृपाराम जी छावड़ा (दीवानकाल वि०सं० १८६६ से १८७५ तक)-इन तीन सुपुत्रों के नामोल्लेख

(खण्डेलवाल जैन समाज का बृहद् इतिहास-डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल, पृष्ट २१४) के आधार पर पं. नन्दलाल जी का जन्म वि. सं. १८०० के आसपास में सम्भव है। क्योंकि ये अपने सभी भाईयों में ज्येष्ठ थे। यह भी एक पिता की जीवन की बहुत बड़ी साधना और सार्थकता है कि वह अपनी पूरी सन्तति को यशस्वी बनाये।

पं० नन्दलालजी के पिता पं. जयचंद जी छावड़ा ने अपने सभी पुत्रों को स्वयं पढ़ा-लिखाकर बहुत ही सुयोग्य बनाया। अत: आप ही अपने पुत्रों के पिता भी थे और गुरू भी थे। अपने ज्येष्ठ पुत्र का विद्या के प्रति विशेष अनुराग होने से पं० जयचन्द जी छावड़ा ने उन्हें प्रारम्भ से ही अपने साथ रखकर निरंतर जैन शास्त्रों का विद्वान् गहन अभ्यास कराके इनमें पारंगत किया।

तत्कालीन विद्वान् पं० सदासुखदास जी कासलीवाल, पं० मन्नालाल जी सांगाका तथा पं. नन्दलालजी और अन्यान्य अनेक विद्वानों की यह समस्त शिष्य मंडली एक साथ बैठकर शास्त्रों का अध्ययन-स्वाध्याय करती थी। अपने पुत्र पं० नन्दलाल जी की प्रतिभा को देखकर आपको बड़ी प्रसन्नता होती थी।

पं. जयचन्द जी छावड़ा ने शास्त्र-लेखन का कार्य अपनी पचास वर्ष की उम्र के आसपास दीर्घ अनुभव के बाद किया। इसीलिए इनके लेखन में प्रौढ़ता की स्पष्ट झलक सर्वत्र देखने को मिलती है। साथ ही एक कारण यह भी है कि इनके पुत्र पं. नन्दलाल का भी इनके लेखन में भरपूर सहयोग रहता था। ऐसे सुयोग्य विद्वान् पुत्र पर गौरवयुक्त होना स्वाभाविक है। तभी तो उन्होंने बड़े गर्व के साथ आचार्य (सातवीं शती के) पूज्यपादकृत सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ की वचनिका में लिखा है-

लिखी यहै जयचन्द नै सोधी सुत नन्दलाल।
बुधलखि भूलि जु शुद्धकरी बांची सिखैवो बाल।।
नन्दलाल मेरा सुत गुनी बालपने तैं विद्या सुनी।
पण्डित भयौ बड़ौ परवीन ताहू ने यह प्रेरण कीन।।

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि पं० जयचन्द जी ने पं. नन्दलालजी को बचपन से ही जैन शास्त्रों का अभ्यास कराना प्रारम्भ कर दिया था और सम्भवत: इन्हें और अन्य शिष्यों को जैसे-जैसे नये-नये विविध जैन शास्त्र इन सबको वे पढ़ाते जाते थे, वैसे-वैसे पढ़ाने के निमित्त सरल ढूँढारी भाषा में उन-उन शास्त्रों की वचनिकाएं भी लिखते जाते थे। क्योंकि जैन विद्या के अच्छे अभ्यास हेतु क्रमश: जिन ग्रन्थों का अध्ययन अत्यावश्यक होता है, पं० जयचन्द जी ने भी उन्हीं-उन्हीं शास्त्रों की उसी क्रम से वचनिकायें भी लिखीं। पूर्वोक्त उल्लेख से यह भी स्पष्ट है कि इन शास्त्रों के लेखन में पं. नन्दलाल जी की प्रमुख प्रेरणा और भूमिका रहती थी।

पं. नन्दलाल एवं पं. ऋषभदास निगोत्या कृत मूलाचार भाषा वचनिका की आगे उल्लिखित अन्त्य प्रशस्ति के अनेक वे उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं, जिनमें पं. जयचन्द जी की बहुशास्त्रज्ञता आदि के साथ ही **पिता-पुत्र में गाय-बिछड़े के समान प्रेम** और इसी भाव से अपने पुत्र को ज्ञानवान बनाने की बात कही गयी है। पं. नन्दलाल जी के मित्र और शिष्य दोनों की तरह पं. ऋषभदास जी निगोत्या द्वारा मूलाचार भाषा वचनिका की अन्त्य प्रशस्ति में ये पद्य अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पं. जयचन्द जी द्वारा अपने पुत्र तथा शिष्यों को जैनधर्म के अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों के साथ ही न्याय, छंद, अलंकार, व्याकरण, साहित्य आदि विषयों के ग्रंथों का विशेष अभ्यास कराने की बात कही गयी है।

जयपुर के तत्कालीन दीवान अमरचंद जी के उल्लेख के बिना यह निबंध अधूरा ही रहेगा। क्योंकि पं. जयचन्द जी, पं. नन्दलाल जी, पं. ऋषभदास जी निगोत्या, पं. सदासुखदास जी आदि विद्वानों ने दीवान अमरचंद जी के आत्मीयता पूर्ण सहयोग, धर्म-वात्सल्य, संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धान और समर्पण के इन गुणों से युक्त दीवानजी का बड़े ही कृतज्ञ भाव से अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है। मूलाचार वचनिका की अन्त्य प्रशस्ति के ये पद्य इस प्रकार हैं-

देश ढुढाहार जैपुर नाम, नगरबसै अतिसुख को धाम।
धीर-वीर-गंभीर-उदार, नृप जयसिंह सुगुण आधार।।

राजकरै सबकौं सुखदाय, प्रजा रही अतिसुख मैं छाय।
तिनकैं अमरचंद दीवाण जिनधरमी मरमी गुणवान।।
ते श्रुतिरुचि हिरदैं बहुधरै, पढ़न-पढ़ावन उद्यम करैं।
बड़ी सहैली मैं अभिराम, जाति छावड़ा जयचंद्र नाम।।
तिनकी मति निरपक्ष विशाल, जिनमत ग्रंथ लखैं गुणमाल।
विषयभोगसूं रहै उदास, जिन आगम को करै अभ्यास।।
न्यायछंद-व्याकरण अरु अलंकार साहित्य।
मतकूं नीकैं जानिकै कहैं-वैन जै सत्य।।
न्याय अध्यातम ग्रंथ की कथनी करी रसाल।
टीका भाषा हू करी जामैं समुझै वाल।।
भक्ति ज्ञान वैराग्य श्रुत अरु बहुगुन जे सार।
तिनके कौ लौं वरणिये ग्रंथ होय विस्तार।।
तिनसम तिनकै सुत-भये, बहुग्यानी नंदलाल।
गाय-वत्स जिम प्रेमधरि, बहुत पढाए बाल।।

पं० जयचन्द जी के समय जहाँ शास्त्र-चर्चायें श्रावकों और विद्वानों के मध्य निरन्तर होती थीं, वहीं जैनधर्म के कुछ सिद्धान्तों को लेकर अन्यान्य धर्मानुयायी विद्वानों से शास्त्रार्थ भी होते थे। ऐसे प्रसंगों में जहाँ भी शास्त्रार्थ हेतु चुनौती आती थी, पं० जयचन्द जी युक्ति शास्त्र और तर्कशक्ति में प्रवीण, प्रखर वक्तृत्व शैली, गहन विद्वत्ता और प्रभावक व्यक्तित्व के धनी अपने विद्वान सुपुत्र पं० नन्दलालजी को शास्त्रार्थ हेतु भेज देते थे और वे उस शास्त्रार्थ में प्रतिपक्षी को पराजित कर जैनधर्म की सदा विजयपताका फैला देते थे। ऐसे यशस्वी विद्वान् पर समस्त जैन समाज को गौरवशाली होना स्वाभाविक है।

एक बार जैनधर्म और इसके सिद्धान्तों को जानने-समझने के लिए कुछ अंग्रेजों ने तथा कुछ अन्य मतानुयायी विद्वानों ने जैनधर्म के विषय में अनेक प्रश्न दिल्ली की जैन समाज के समक्ष समाधान हेतु रखे। किन्तु उस समय उन प्रश्नों का सटीक उत्तर देने वाला कोई विद्वान् दिल्ली में उपलब्ध नहीं था, अत: सभी की सम्मति से जयपुर के तत्कालीन विख्यात विद्वान् पं० जयचन्द जी छावड़ा के पास उन प्रश्नों को समाधान हेतु भिजवाया। इन्हें पिता-पुत्र दोनों ने मिलकर विभिन्न शास्त्रों के आधार पर इनका यथोचित ऐसा समाधान प्रस्तुत किया है कि जिन्हें पढ़कर सभी प्रश्नकर्ता अंग्रेज तथा दिल्ली की समस्त जैन समाज झूम उठी।

ऐसे थे ये दोनों विद्वान्। फिर भी बहुत आश्चर्य होता है कि इन विद्वानों को हुए बहुत लम्बा समय नहीं हुआ, किन्तु इनके द्वारा लिखित साहित्य आदि के अतिरिक्त इनके व्यक्तित्व और जीवन के विषय में कोई विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होते और न ही इनके कृतित्व आदि के आधार पर उन प्रसंगों के सूत्र इकट्ठे करने या उन्हें ढूंढने अथवा इस दिशा में अनुसंधान का कोई अब तक प्रयास नहीं किया गया, जिनके आधार पर उनका जीवन परिचय रेखांकित किया जा सके।

जैसा कि पूर्व में यह उल्लेख किया ही जा चुका है कि अभी तक पं० नन्दलाल जी की विद्वत्ता की प्रशंसा के कुछ उल्लेख ही मिलते थे, किन्तु उनकी कोई कृति नहीं। पर जब से इनके द्वारा लिखित **''मूलाचार भाषा-वचनिका''** नामक ग्रन्थ पहली बार हम दोनों के द्वारा सम्पादित होकर प्रकाश में आया है, तब से जैन साहित्य और इनके लेखक विद्वानों की इतिहास परम्परा में पं० नन्दलाल जी का भी नाम एक यशस्वी विद्वान् के रूप में जुड़ गया है।

पं० नन्दलाल जी प्रणीत मूलाचार भाषा वचनिका-

जैन परम्परा के अनेक विद्वानों की तरह पं० नन्दलाल जी ने भी अपने विषय में विशेष कुछ भी नहीं लिखा है। इनके पिता पं० जयचंद जी छावड़ा एवं इनके मित्र और शिष्य पं० ऋषभदास जी निगोत्या ने ही इनके विषय में कुछ सूचनाएं दी हैं। आपके नाम के साथ 'कवि' उपाधि का भी उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आपकी कोई न कोई पद्यमय महान् कृति भी होनी चाहिए, किन्तु अब तक उपलब्ध नहीं हुई। प्रयत्नपूर्वक आपकी एकमात्र गद्य कृति

''**मूलाचार भाषा वचनिका**'' ही प्राप्त हो सकी है। इसी ग्रन्थ के मंगलाचरण के रूप में हम इनकी कविता के उत्कृष्ट उदाहरण देख सकते हैं। वे इस प्रकार हैं–

बंदौं श्री जिनसिद्धपद आचारिज उवझाय।
साधु-धर्म जिनभारती जिनगृह चैत्य सहाय।।
वट्टकेर स्वामी प्रणमि नमि वसुनंदी सूरि।।
मूलाचार विचारिकैं भाषौं लषि गुणभूरि।।

इस मंगलाचरण में पं० नन्दलाल जी ने सर्वप्रथम पंच परमेष्ठी सहित, जैनधर्म, जिनवाणी, जिनमंदिर और चैत्य-इन नवदेवताओं की वंदना की है। तदनन्तर शौरसेनी प्राकृत भाषा के महान् ग्रन्थ मूलाचार के प्रणेता आचार्य वट्टकेर और इस ग्रन्थ पर संस्कृत भाषा में ''आचारवृत्ति'' नामक टीका के प्रणेता आचार्य वसुनन्दि स्वामी को नमन कर उद्देश्यपूर्वक मूलाचार ग्रन्थ की देशभाषा में वचनिका लिखने की प्रतिज्ञा की है।

उपर्युक्त दो पद्य पं० नन्दलाल जी के उत्कृष्ट पद्य रचना के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। इनके गद्य का वह उदाहरण भी यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा, जिसमें उन्होंने अपने अच्छे तर्कों द्वारा अनेक प्रश्नों का समाधान करते हुए मुनि-आचार विषयक ग्रन्थ गृहस्थों को क्यों पढ़ना चाहिए? तथा प्रस्तुत भाषा वचनिका लिखने का उद्देश्य क्या है–इन सबका ऐसा समाधान प्रस्तुत किया है कि किसी प्रकार की आशंका रह नहीं जाती। प्रस्तुत है उस गद्य का उदाहरण–

''इहाँ कोऊ कहै–गृहस्थनि कौ तौ व्याकरण-काव्यादिक तथा पुराणादिक पुण्य-पाप का फल वांचना सुननां जोग्य हैं, मुनिधर्म का आचार कौनं सौं वर्णे हैं? अर मुनि आचार कहाँ है? गृहस्थनि कौ मुनिधर्म के ग्रन्थ वांचनां, भाषा करनां जोग्य नांही।''

''**ताका समाधान–**जीव का हित मोक्ष है। ताके कारण संवर निर्जरा हैं। ते-गुप्ति-समिति-धर्म-अनुप्रेक्षा-परीषहजय-

चारित्र-तप रूप जो मुनिधर्म, तातैं होय हैं, अैसा निर्णय द्रव्यानुयोग-अध्यात्म, स्याद्वाद ग्रन्थनि में प्रमाण-नय-निक्षेप अनुयोगनतैं कीया है। यातैं मुख्य उपादेय तो मुनिधर्म ही है और ग्रन्थनि का सीखना-पढ़ना बहुत होय, अर इस धर्म का ज्ञान-श्रद्धान न होय तो अज्ञानी ही कहिए।

अर इस धर्म का ज्ञान-श्रद्धान होय, अर व्याकरण-काव्यादिक थोरा ही पढ्या होय तो ज्ञानी ही कहिये। अर मुनिधर्म के ज्ञान-श्रद्धान बिना सम्यक्त्व कैसे होय? अर मुनि तौ धर्मात्मा है ही, परन्तु गृहस्थ अैसे ग्रन्थ सुनैं बिना धर्म-अधर्म का भेद तथा गुरु-कुगुरु का भेद तथा जैन-अन्य लिंग का भेद तथा दिगम्बर-श्वेताम्बर का भेद तथा पात्र कुपात्र अपात्र का भेद कैसे जानै?

अर बिना जानैं, पूजना, स्तवन, नमस्कार, भक्ति, विनय, दान, वैयावृत्य रूप उपासनां कैसे करै? अर उपासन बिना गृहस्थ धर्म कहाँ? अर गुरु, अरु कुगुरु सर्वकौ समान जानैं तो मिथ्यात्व का दोष लागैं। तातै गृस्थनि कौ मुनिधर्म का स्वरूप अवश्य निर्णय करना। अर इस धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ का व्याख्यान अवश्य करनां। अैसा विचारकरि या ग्रन्थ की भाषा-वचनिका आरम्भ किया है।''

पंडित नन्दलाल जी द्वारा मूलाचार महाग्रन्थ की भाषा वचनिका में लिखित गद्य का यह उदाहरण अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण एवं परिपूर्ण तथा पर्याप्त है। मूलाचार भाषा-वचनिका की अन्त्य प्रशस्ति में पं. ऋषभदास जी निगोत्या ने लिखा है कि–

''साधुतणैं आचार कौ भाषा ग्रंथ न कोय।
तातैं मूलाचार की भाषा जो अब होय।।
तो सबही वाचै पढै समुझै मुनि आचार।।
परम दिगंबर रूप कौं जानैं सकल विचार।।
तब उद्यम भाषा तणैं करण लगे नंदलाल।।

मन्नालाल अर उदयचंद माणिकचंदरु जु वाल।।
नंदलाल तिनसौं कही भाषा लिखो बनाय।।
कहौं अरथ टीका सहित भिन्न-भिन्न समुझाय।।

इस ग्रन्थ के इन पद्यों से यह भी स्पष्ट है कि उस समय मुनि-आचार संबंधी कोई ग्रन्थ लोक प्रचलित सरल भाषा में नहीं थे। सामान्य श्रावक भी संस्कृत-प्राकृत भाषा के ग्रन्थों को समझने में कठिनाई महसूस करते थे। अतः सभी जन आसानी से इन ग्रन्थों का स्वाध्याय कर आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो सकें, इसी उद्देश्य से पं० मन्नालाल जी आदि की प्रेरणा से पं० नन्दलाल जी ने मूलाचार ग्रन्थ की भाषा-वचनिका लिखी।

किन्तु इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि पंडित नंदलालजी इसकी वचनिका पूर्ण नहीं कर सके। मात्र आरम्भिक ५१६ गाथाओं अर्थात् छठें पिण्ड शुद्धि अधिकार पूर्ण करके सप्तम षडावश्यक अधिकार की पन्द्रह गाथाओं की वचनिका पूर्ण कर पाये थे कि इनकी अचानक मृत्यु हो जाने से यह ग्रन्थ अधूरा ही रह गया, जिसकी पूर्ति अनेक मित्रों की प्रेरणा से पं० जी के मित्र और शिष्य पं० ऋषभदास जी निगोत्या ने इस मूलाचार ग्रन्थ की शेष भाषा वचनिका पूर्ण की। निगोत्या जी ने लिखा है–

चौपाई– **पूरन षट् अधिकार कराय, पंदरह गाथा अरथ लिखाय।**
सोलह अधिक पांच सै सही, सब गाथा यह संख्या लही।

दोहा– **आयुष पूरन करि गये, ते परलोक सुजान,**
विरह वचनिका मैं भयो यह कलिकाल महान्।
सब साधरमी लोक कै भयो दुःख भरपूर,
अथिर लख्यौ संसार जब भयो शोक तब दूर।।

भाषा मूलाचार की पूरन किहिं विधि होय।
शल्य बसै सबकै हृदय कारण वण्यो न कोय।
हंसराज भूपाल के वासी कारन पाय।
आये जयपुर नगर में तिनकूं धरम सुहाय।।
जाति निगोत्या जास की, ऋषभदास तसुनाम,
शोभाचंद सुत देव गुरु श्रुत रुचिकों शुभधाम।।
जयचंद अर नंदलाल की संगति करी विशेष।
तिनसूं श्रुत धारण करे तजि मिथ्यामत वेष।।

पं० ऋषभदास जी ने मूलाचार की यह अधूरी वचनिका किन-किन इष्टमित्रों की प्रेरणा से और कैसे की? इस विषय में वे मूलाचार भाषा वचनिका के अन्त में चौपाई छन्द में लिखते हैं–

संघही अमरचंद दीवान ऋषभदास पुनि दूजो जानि।
तिनसों हंसराज निति कहैं, ग्रंथ वचनिका पूरन चहैं।।
तिनकै लागि रही अधिकाय, रिषभदास तव किये उपाय।।
श्री दीवानसूं अैसैं कहीं, मुनि ढिग माणिकचंद है सही।।
अर्थ लिखन कों जो मन धरैं, ग्रंथ यहै हम पूरन करैं।।
सोधन करै सु मन्नालाल, तिनकी मति श्रुत माहि विसाल।।
तब दीवानजी मन हरषाय, तिन दोऊ सूं कही बुलाय।।
ऋषभदास कैसा मिल होय पूरन ग्रंथ करो तुम जोय।।

पं० निगोत्या जी ने इस अधूरी भाषा वचनिका को पूर्ण करके अपनी सरलता को जिस प्रकार निम्नलिखित दोहों में व्यक्त किया है, यह दर्शनीय है–

मंदमती हम पंगु ज्यों, ग्रंथ सुमेर समान।
सो पूरन कैसे करैं, उपज्यौं सोच अमान।।
वानी समरण पोत चढि, श्रुत समुद्र के पार।।
हम उतरे बिन कष्ट ही, वानी जग मैं सार।।
प्राकृत, संस्कृत ही पढै, पंडित मतिमान।।
मंदमती कै होत यह, भाषा ग्रन्थ निदान।।
सज्जन पंडित जे बड़े, तिनसौं विनती एह,।
जहाँ अर्थ नीकैं नहीं, तहाँ शुद्ध करि लेह।।
बालक हमकूं जानियो, जे श्रुत बड़े सुजान।।
हास्य त्यागिकरि सोधियो, धरम प्रीति मन आन।।
देश वचनिका रूप यह, भाषा जो हम कीन।।
मान वानि कौं त्यागि कै, धरम काज चित दीन।।
लिखत-लिखावत श्रुत विषैं, लागै दिढ उपयोग।।
अशुभ करम तासों झरै, शुभ मन वच तन योग।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैसे कसायपाहुड की जयधवला टीका आचार्य वीरसेन स्वामी और आचार्य जिनसेन स्वामी इन दोनों के कृतित्व से पूर्ण हुई, उसी प्रकार इन दो विद्वानों के सहयोग से शौरसेनी प्राकृत भाषा के मूलाचार जैसे प्राचीन एक महान् ग्रन्थ की भाषा वचनिका वि.सं. १८८८ में जयपुर में पूर्ण हुई।

इससे यह भी स्पष्ट है कि पं० जयचंद जी छावड़ा की मृत्यु (वि.सं. १८८१) के तीन-चार वर्ष बाद ही अर्थात् वि.सं. १८८५ के आसपास ही पं. नन्दलाल जी छावड़ा का भी स्वर्गवास हुआ होगा। क्योंकि इनके द्वारा अधूरी मूलाचार वचनिका को पूरा करने में कम से कम तीन वर्ष का समय तो अवश्य लगा होगा।

इस तरह पुरानी हिन्दी के रूप में प्रचलित जयपुर और इस के आसपास की लोकप्रिय बोली **'ढूंढारी'** में लिखित में प्रस्तुत मूलाचार वचनिका के प्रकाश में आ जाने से, जहाँ इस साहित्य की श्रीवृद्धि हुई, वही हिन्दी गद्य के विकास में अब तक अज्ञात और अचर्चित दो और महान् साहित्यकार विद्वान्-**पं० नन्दलाल जी छावड़ा** तथा **पं० ऋषभदास जी निगोत्या** का नाम भी अब हिन्दी और राजस्थानी साहित्य के इतिहास में जुड़ जाने से इनकी मूलाचार भाषा-वचनिका नामक महान् कृति तथा ये दोनों विद्वान् भी अमर हो गये।

❑❑

विषयानुक्रमणिका

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
भाषावचनिकाकार का मंगलाचरण		१
मूलाचार ग्रंथ की संपूर्ण संक्षिप्त विषय वस्तु का विवरण		३-७
आचारवृत्तिकार का मंगलाचरण		७-८
प्रथम मूलगुणाधिकार	**पृष्ठ १ से ४६ तक**	
मंगलाचरण (प्रथम गाथा सूत्रावतारः)	१	६
अट्ठाईस मूलगुणों के नाम	२-३	११
पाँच महाव्रतों के नाम	४	१३
अहिंसा महाव्रत	५	१५
सत्य महाव्रत	६	१७
अचौर्य महाव्रत	७	१८
ब्रह्मचर्य महाव्रत	८	१८
परिग्रहत्याग महाव्रत	९	१९
पाँच समितियों के नाम	१०	२०
ईर्या समिति	११	२१
भाषा समिति	१२	२२
एषणा समिति	१३	२२
आदाननिक्षेपण समिति	१४	२३
प्रतिष्ठापन समिति	१५	२४
पंचेन्द्रियनिरोध	१६	२५
चक्षुरिन्द्रियनिरोध	१७	२६
श्रोत्रेन्द्रियनिरोध	१८	२७
घ्राणेन्द्रियनिरोध	१९	२८
रसनेन्द्रियनिरोध	२०	२९
स्पर्शनेन्द्रियनिरोध	२१	२९
षडावश्यकों के नाम	२२	३०
समता-सामायिक का स्वरूप	२३	३१
चतुर्विंशतिस्तव	२४	३२
वन्दना	२५	३३
प्रतिक्रमण	२६	३४
प्रत्याख्यान	२७	३५
कायोत्सर्ग	२८	३६
केशलोंच का समय	२९	३७
अचेलकत्व (नाग्न्यव्रत)	३०	३८
अस्नानव्रत	३१	३९
क्षितिशयन व्रत	३२	४०
अदन्तमन व्रत	३३	४१
स्थितिभोजन व्रत	३४	४१
एकभक्त व्रत	३५	४३
मूलगुण-पालन का फल एवं उपसंहार	३६	४६
२. बृहत्प्रत्याख्यानसंस्तरस्तवाधिकार	**पृष्ठ ४७ से ८६ तक**	
मंगलाचरण व प्रतिज्ञा	१-३	४७-४९
बाह्याभ्यन्तर उपाधि का त्याग	४-५	४९-५०
सामायिक का स्वरूप और समाधि धारण की प्रतिज्ञा	६	५०
समाधिधारण करने वाले का क्षमाभाव धारण करना और उसके उपर्युक्त चिन्तन	७-१५	५१-५५
सप्त भय, आठ मद, चार संज्ञाएँ, तीन गारव, तेतीस आसादनाएँ और रागद्वेष-छोड़ने का संकल्प	१६	५५
सात भय एवं आठ मदों के नाम	१७	५६
तैंतीस पदार्थों की आसादनाएँ	१८	५७
निन्दा, गर्हा और आलोचना करने की प्रतिज्ञा	१९	५८

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
आलोचना की विधि	२०	५६
जिसके पास आलोचना की जाए ऐसे आचार्य का स्वरूप	२०-२१	५६
आलोचना के अनन्तर क्षमापन की विधि	२२	६०
मरण के तीन भेद	२३	६०
आराधना के अपात्र	२४	६१
मृत्युकाल में सम्यक्त्व की विराधना का फल	२५	६१
कान्दर्पादि देव दुर्गतियों का स्वरूप व उनका कारण	२६-२७	६२
कान्दर्प देव दुर्गति का स्वरूप और फल	२८	६३
आभियोग्य कर्म का स्वरूप	२६	६४
किल्विष भावना का स्वरूप तथा फल	३०	६४
सम्मोहभावना का स्वरूप व उसका फल	३१	६५
आसुरीय भावना का स्वरूप व उसका फल	३२	६५
बोधि की दुर्लभता किन जीवों को ?	३३	६६
बोधि की सुलभता के पात्र जीव	३४	६६
अनन्तसंसारी जीव कौन होते हैं ?	३५	६७
परीतसंसार कौन होते हैं ?	३६	६७
जिनवचन के अश्रद्धान का फल	३७	६८
बालमरणों का स्वरूप	३८	६८
क्षपक का पण्डित मरण करने का संकल्प	३६-४३	६६-७१
कामभोग से तृप्ति नहीं होती	४४	७१
परिणाम ही बन्ध का कारण है	४५-५२	७२-७५
चन्द्रकवेध्य में प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों के नाम	४६-५१	७४-७५
क्षपक को संज्ञाओं से मोहित न होने का उपदेश	५३-५५	७५-७६
सल्लेखना के समय द्वादशांग और चतुर्दश पूर्व रूप वीतराग-मार्ग में उपयोग का उपदेश	५६-५७	७७
आराधना के समय एक भी सारभूत इस लोक का ध्यान करने वाला क्षपक कल्याण करनेवाला होता है।	५८	७८
मृत्युकाल में जिनवचन ही औषध रूप है ऐसा चिंतवन करना चाहिए	५६	७६
मृत्युकाल में शरणभूत क्या है ? इसका निरूपण	६०	७६
सल्लेखना का फल	६१	८०
सल्लेखना के प्रति क्षपक के हृदय में उत्साह और उसकी हार्दिक प्रसन्नता	६२-६४	८१
सल्लेखना-काल में मृत्युभय से मुक्त होने का उपदेश	६५-६६	८२
सल्लेखना का पात्र	६७-६६	८३-८४
क्षपक की समाधि के लिए जिनेन्द्रचन्द्र से बोधि प्राप्त करने की प्रार्थना	७०-७१	८४-८६
३. संक्षेपप्रत्याख्यानाधिकार	**पृष्ठ ८७ से ६५ तक**	
मंगलाचरण	१	८७
पंचपाप के प्रत्याख्यान (त्याग) की प्रतिज्ञा	२	८८
सामायिक-व्रत का स्वरूप, परिणामशुद्धि द्विविध प्रत्याख्यान धारण करने की प्रतिज्ञा	३-४	८८-८६
जीवनपर्यन्त के लिए आहार-पान और उपधि-परिग्रह त्याग की प्रतिज्ञा	५-६	८६-६०
जिनशासन ही सब जीवों का शरण है	७-८	६०-६१
पंडितमरण की प्रशंसा करते हुए जन्म-मरणादि दुःखों से निर्भय होने का उपदेश	६	६१-६२
सर्वातिचारप्रतिक्रमण, आहारत्याग प्रतिक्रमण एवं उत्तमार्थप्रतिक्रमण का संक्षिप्त स्वरूप	१०-१३	६२-६३
दस प्रकार के मुण्डन का वर्णन	१४	६४-६५
४. सामाचाराधिकार	**पृष्ठ ६६ से १४० तक**	
मंगलाचरण और सामाचार की प्रतिज्ञा	१	६६

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
सामाचार शब्द का निरुक्त्यर्थ और उसके भेद	२-३	९७-९८
औघिक सामाचार के दस भेद और उनका स्वरूप	४-७	९९-१००
पद-विभागी सामाचार के कहने की प्रतिज्ञा और उसका स्वरूप एवं भेद	८-२३	१०१-१०९
पदविभागिक सामाचार का निरूपण—प्रथम ही योग्याध्ययन के उपरान्त गुरु से अन्य धर्म-क्षेत्रों में जाने की आज्ञा माँगता है तथा गुरु की आज्ञा प्राप्त कर चार-छह मुनियों के साथ विहार करता है।	२४-२७	१०९-११२
एकविहारी कौन हो सकता है इसका वर्णन	२८	११२
एकविहारी के अयोग्य साधु का वर्णन	२९	११२
स्वच्छन्दता से एक विहार करने वाले साधु के संभावित दोष	३०-३३	११३-११५
साधु को किस प्रकार के गुरुकुल में निवास नहीं करना चाहिए—	३४	११६
गुरु—आचार्य-गणधर का लक्षण : गुरु का लक्षण	३५-३८	११७-११९
समागत साधु के प्रति संघस्थ मुनियों का कर्त्तव्य	३९-४०	११९
शरणागत साधु की आचार्य द्वारा परीक्षा	४१-४३	१२०-१२१
परीक्षानन्तर आगन्तुक मुनि दूसरे या तीसरे दिन अपने आगमन का प्रयोजन आचार्य के पास निवेदन करे	४४	१२१-१२२
योग्य साधु को आचार्य आश्रय देते हैं और अयोग्य साधु का परिहार करते हैं	४५-४६	१२२
जो आचार्य परिहार-योग्य साधु को बिना छेदोपस्थापना के संघ में रख लेते हैं वे आचार्य भी छेद के योग्य होते हैं	४७-४८	१२३
भावशुद्धि और विनयपूर्वक ही मुनि को अध्ययन करना चाहिए। साथ ही द्रव्य-क्षेत्र-कालादि का उल्लंघन कर अध्ययन करने का कुफल	४९-५२	१२४-१२५
परगण में रहने वाले साधु को प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में इच्छाकार पूर्वक ही प्रश्न करना चाहिए। साथ ही परगण में गुरु, बाल, वृद्धादि मुनिओं की वैयावृत करनी चाहिए	५३-५४	१२६-१२७
मुनि को अपने अपराध की शुद्धि उसी संघ में करनी चाहिए, जिस संघ में वह रहता है	५५	१२७
आर्यिकाओं के आने पर मुनि को एकाकी नहीं बैठना चाहिए, इस प्रसंग को लेकर आचार्य तथा आर्यिकाओं को हितकर उपदेश	५६-६१	१२८-१३१
आर्यिकाओं का गणधर कैसा होना चाहिए	६२-६५	१३१-१३४
आर्यिकाओं की चर्यादि किस प्रकार होना चाहिए	६६-७४	१३४-१३९
उपसंहार गाथा	७५-७६	१३९-१४०
५. पंचाचाराधिकार	**पृष्ठ १४१ से २६९ तक**	
मंगलाचरण और पंचाचार कथन की प्रतिज्ञा	१-२	१४१-१४३
दर्शनाचार का वर्णन	३-५	१४३-१४५
सम्यग्दर्शन का स्वरूप	६	१४६
जीव-पदार्थ का भेदपूर्वक लक्षण	७	१४७
पृथ्वीकायिक के छत्तीस भेद	८-१२	१४८-१५०
जलकायिक, तेजसकायिक और वायुकायिक का स्वरूप	१३-१५	१५१-१५२
वनस्पतिकायिक का विस्तृत वर्णन	१६-२०	१५३-१५७
त्रसकायिक का वर्णन	२१-२२	१५७-१५८
जीवों की कुलकोटि तथा योनि आदि का वर्णन	२३-३२	१५९-१६५
अजीव पदार्थ का वर्णन करते हुए स्कंध,	३३-३४	१६६

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
स्कंधदेश, प्रदेश और परमाणु का स्वरूप		
अजीव पदार्थ के अन्तर्गत धर्म, अधर्म, आकाश, कालादि का वर्णन	३५-३६	१६७-१६६
पुण्य-जीव एवं पाप-जीव का विश्लेषण	३७-३८	१६६-१७०
अमूर्तिक जीव के साथ मूर्तिक कर्म का बन्ध कैसे होता है इसके समाधान के साथ बन्ध कारणों का निर्देश	३६-४१	१७०-१७१
संवर-पदार्थ का व्याख्यान	४२-४४	१७१-१७२
निर्जरा-पदार्थ का वर्णन	४५-४६	१७२-१७५
मोक्षपदार्थ का वर्णन	५०	१७५
नव-पदार्थ के विवेचन का समारोप करते हुए शंका, कांक्षादिक का वर्णन	५१-५४	१७५-१७७
निर्विचिकित्सांग का वर्णन	५५-५८	१७८-१८१
अमूढ़दृष्टि अंग का विस्तार से वर्णन	५६-६३	१८१-१८४
उपगूहनांग का स्वरूप	६४	१८४
स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना अंग के लक्षण	६५-६७	१८४-१८५
नैसर्गिक सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हुए दर्शनाचार के वर्णन का समारोप	६८-७०	१८६
ज्ञानाचार के वर्णन के संदर्भ में ज्ञान का स्वरूप	७१	१८६-१८७
ज्ञानाचार के कालशुद्धि आदि आठ भेद	७२	१८८
कालाचार का विस्तृत वर्णन	७३-७८	१८८-१६४
कालशुद्धि के पश्चात् द्रव्य, क्षेत्र और भावशुद्धि का विधान	७६	१६४
सूत्र का लक्षण तथा अ-काल में स्वाध्याय का निषेध	८०-८१	१६५
जिनग्रंथों का अ-काल में स्वाध्याय किया जा सकता है उनका उल्लेख	८२-८३	१६६
विनयशुद्धि और उपधान शुद्धि का स्वरूप	८४-८५	१६७-१६८
बहुमान, अनिह्नव तथा व्यंजनशुद्धि आदि का वर्णन व समारोप	८६-८६	१६८-२००
चारित्राचार के कथन की प्रतिज्ञा	६०-६१	२०१
अहिंसादि महाव्रतों का वर्णन	६२-६७	२०१-२०४
रात्रिभोजननिवृत्ति का निरूपण करते हुए चारित्राचार वर्णन का समारोप	६८-१००	२०४-२०६
प्रशस्त प्रणिधान और अप्रशस्त प्रणिधान का स्वरूप	१०१	२०६
इन्द्रियप्रणिधान का स्वरूप	१०२-१०३	२०६-२०८
ईर्या समिति का वर्णन	१०४-१०६	२०८-२११
भाषा समिति का वर्णन और उसके अन्तर्गत दस प्रकार के सत्य का वर्णन	११०-११६	२११-२१५
असत्य, उभय और अनुभयवचनों का स्वरूप	११७-१२०	२१६-२१८
एषणा (अशन) समिति का वर्णन	१२१	२१८-२२०
आदाननिक्षेपण समिति का वर्णन	१२२-१२३	२२०-२२१
उच्चारप्रस्रवण-प्रतिष्ठापन समिति का वर्णन	१२४-१२५	२२१-२२२
रात्रि में उच्चारप्रस्रवण समिति का पालन	१२६-१२८	२२२-२२४
समितियों के पालन का फल	१२६-१३३	२२४-२२५
गुप्तियों का वर्णन	१३४-१३८	२२६-२२७
अष्ट प्रवचनमातृकाओं का निर्देश	१३६	२२७
अहिंसा महाव्रतादि व्रतों की पाँच-पाँच भावनाएँ और भावनाओं का प्रयोजन बताते हुए चारित्राचार का उपसंहार	१४०-१४७	२२८-२३१
तप आचार के भेद	१४८	२३१
बाह्य तप के छह भेद और सकांक्ष व निःकांक्ष अनशन का स्वरूप	१४६-१५२	२३१-२३३
अवमौदर्य तप का वर्णन	१५३-१५४	२३४-२३५
रसपरित्याग तप का वर्णन	१५५-१५७	२३५-२३६
वृत्तिपरिसंख्यान तप का वर्णन	१५८	२३६

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
कायक्लेश तप का वर्णन	१५९	२३७
विविक्तशय्यासन तप का स्वरूप बतलाते हुए बाह्य तपों का उपसंहार	१६०-१६२	२३८
छह प्रकार के अन्तरंग तपों का नामनिर्देश	१६३	२२६
प्रायश्चित्त तप का स्वरूप, आलोचना के दस दोष तथा प्रायश्चित्त के नामान्तर	१६४-१६६	२३६-२४१
विनय तप का स्वरूप और उसके अवान्तर भेद	१६७-१८७	२४१-२५१
विनय तप की प्रशंसा करते हुए उसके गुणों का वर्णन	१८८-१९१	२५१-२५२
वैयावृत्त तप का वर्णन	१९२-१९५	२५२-२५४
स्वाध्याय तप का वर्णन	१९६	२५४
ध्यान तप का वर्णन और उसके अन्तर्गत आर्त्त, रौद्र ध्यान का स्वरूप	१९७-२००	२५५-२५७
धर्मध्यान और उसके आज्ञाविचयादिक भेदों का वर्णन	२०१-२०५	२५७-२६०
धर्मध्यान के अन्तर्गत अनित्यादि अनुप्रेक्षाओं का नामनिर्देश	२०६	२६०
शुक्ल ध्यान का स्वरूप और उसके भेद	२०७-२०८	२६१-२६२
व्युत्सर्ग तप का वर्णन तथा उसके बाह्य-आभ्यन्तर ये दो भेद	२०९-२११	२६२-२६३
बारह तपों में स्वाध्याय तप की प्रमुखता	२१२-२१३	२६३-२६४
तप आचार का उपसंहार	२१४-२१५	२६४-२६५
वीर्याचार का वर्णन	२१६	२६५
सप्तदश प्रकार के प्राणि संयम का वर्णन	२१७-२२०	२६६-२६८
इन्द्रिय संयम का स्वरूप	२२१	२६८
पंचाचार प्रकरण का उपसंहार	२२२	२६९
६. पिंडशुद्धि-अधिकार	**पृष्ठ २७० से ३१४ तक**	
मंगलाचरण तथा पिंडशुद्धि अधिकार की प्रतिज्ञा	१-२	२७०
उद्गम, उत्थान तथा एषणादि दोषों का नामनिर्देश करते हुए पिंडशुद्धि के आठ भेदों का निर्देश	२	२७१
सोहल उद्गम दोषों का नाम निर्देश	३-४	२७१-२७३
गृहस्थ के आश्रय से होने वाले अधःकर्म का स्वरूप	५	२७२
उद्देशिक दोष का स्वरूप	६-७	२७३
अध्यधि दोष का स्वरूप	८	२७४
पूति दोष का स्वरूप	९	२७५
मिश्र दोष का स्वरूप	१०	२७६
स्थापित दोष का स्वरूप	११	२७६
बाल दोष का स्वरूप	१२	२७६
प्राभृत दोष का स्वरूप एवं उसके भेद	१३-१४	२७७
प्रादुष्कर दोष का स्वरूप	१५	२७८
क्रीततर दोष का स्वरूप	१६	२७९
ऋण दोष का स्वरूप	१७	२७९
परावर्त दोष का स्वरूप	१८	२८०
अभिघट दोष का स्वरूप तथा उसके आचिह्न तथा अनाचिह्न भेदों का वर्णन	१९-२०	२८०-२८१
सर्वाभिघट दोष एवं उसके भेदों का वर्णन	२१	२८१
उद्भिन्न दोषों का वर्णन	२२	२८२
मालारोहण दोष का वर्णन	२३	२८२
आच्छेद्य दोष का वर्णन	२४	२८२
अनीशार्थ दोष का वर्णन	२५	२८३
उत्पादन दोषों का वर्णन व उसके भेद	२६-२७	२८५
धात्री दोष का स्वरूप	२८	२८६
दूत नामक दोष का स्वरूप	२९	२८७
निमित्त दोष का स्वरूप	३०	२८८
आजीव दोष का स्वरूप	३१	२८९
वनीपक दोष का स्वरूप	३२	२८९
चिकित्सा दोष का स्वरूप	३३	२९०

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
क्रोध, मान, माया व लोभ दोषों का वर्णन	३४-३५	२६०-२६१
पूर्व स्तुति दोष का स्वरूप	३६	२६१
पश्चात् स्तुति दोष का स्वरूप	३७	२६२
विद्यानामक दोष का स्वरूप	३८	२६२
मंत्रोत्पादक दोष का स्वरूप	३९-४०	२६३
चूर्ण दोष का स्वरूप	४१	२६३
मूल कर्म दोष का स्वरूप	४२	२६४
दस अशन दोषों का प्रतिपादन	४३	२६४
शंकित दोष का स्वरूप	४४	२६५
म्रक्षित दोष का स्वरूप	४५	२६६
निक्षिप्त दोष का स्वरूप	४६	२६६
पिहित दोष का स्वरूप	४७	२६७
संव्यवहार दोष का स्वरूप	४८	२६७
दायक दोष का स्वरूप	४९-५२	२६७-२९९
उन्मिश्र दोष का स्वरूप	५३	२९९
उपरिणत दोष का स्वरूप	५४	२९९
लिप्त दोष का स्वरूप	५५	३००
परित्यजन दोष का स्वरूप	५६	३००
संयोजना दोष का स्वरूप एवं दोष का वर्णन	५७	३०१
अंगार और धूम दोष का वर्णन	५८-५९	३०१
आहार ग्रहण करने के कारण	६०	३०२
आहार त्याग करने के कारण	६१-६२	३०३
मुनि कैसा आहार ग्रहण करते हैं इसका वर्णन	६३-६४	३०५
चौदह मल दोषों का वर्णन	६५	३०६
अपने उद्देश्य से बनाये हुए आहार की अशुद्धता का वर्णन	६६-६७	३०७
भाव से शुद्ध आहार का वर्णन	६८	३०८
पिण्डदोष के द्रव्य एवं भाव की अपेक्षा दो भेद	६९-७०	३०८-३०९
एषणा समिति के निर्दोष पालन करने का आदेश	७१	३०९
साधु के भोजन का परिमाण	७२	३१०
आहार के योग्य काल	७३	३१०
साधु की चर्या की विधि	७४-७५	३१०-३११
बत्तीस अन्तरायों का वर्णन	७६-८१	३११-३१४
पिण्डशुद्धि अधिकार का उपसंहार	८२	३१४
७. षडावश्यकाधिकार	**पृष्ठ ३१५ से ४०५ तक**	
मंगलाचरण और आवश्यक कर्म की प्रतिज्ञा	१-२	३१५
अरिहन्तादि पंच परमेष्ठियों का स्वरूप निर्देश तथा नमस्कार करने का प्रयोजन	३-१३	३१६-३२१
आवश्यक शब्द की निर्युक्ति तथा उसके भेद वर्णन सहित सामायिक और छेदोपस्थापना का उपदेश किन तीर्थंकरों ने दिया है ? इसका वर्णन सामायिक आवश्यक का उपसंहार	१४-३५	३२१-३३४
चतुर्विंशतिस्ववावश्यक का वर्णन व भेद	३६-३८	३३४-३३६
लोक निर्युक्ति और उसका नाम, स्थापनादि पदों द्वारा वर्णन	३९-५०	३३६-४४२
उद्योत का स्वरूप तथा उसके द्रव्य और भाव भेदों का निर्देश	५१-५५	३४२-३४४
धर्म तीर्थकर की व्याख्या करते हुए उसके द्रव्य और भाव भेद का वर्णन	५६-५९	३४४-३४५
अरहन्त शब्द की निरुक्ति तथा उनके स्तवन का वर्णन	६०-७१	३४६-३५०
चतुर्विंशतिस्तवन का उपसंहार	७२-७४	३५०-३५१
वन्दना स्तवन का प्रतिपादन तथा कृति कर्मादिक का स्वरूप	७५-१००	३५२-३६३
कृतिकर्म का विशेष निरूपण	१०१-१०३	३६३-३६५
कृतिकर्म में लगने वाले दोषों का निरूपण	१०४-१०९	३६५-३६८
साधु वन्दना किस प्रकार करता है, इसका वर्णन	११०	३६९

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
साधु वन्दना का उत्तर किस प्रकार देता है, इसका वर्णन	१११-११२	३७०
प्रतिक्रमण तथा उसके भेदों का वर्णन प्रतिक्रमण करने योग्य द्रव्य, क्षेत्र, कालादि का वर्णन	११३-११६	३७०-३७३
आलोचना का स्वरूप तथा उसके भेदों का वर्णन	११७-११६	३७३-३७४
आलोचना के पर्यायवाची शब्द	१२०	३७५
आलोचना में कालहरण का निषेध	१२१	३७५
भाव व द्रव्य प्रतिक्रमणों का वर्णन तथा उनकी आवश्यकता	१२४-१२७	३७७-३७८
आदि और अंतिम तीर्थंकरों के शिष्य प्रतिक्रमण करते हैं, बीच के तीर्थंकरों के शिष्य प्रतिक्रमण नहीं करते	१२८-१२६	३७८
प्रतिक्रमण नियुक्ति का उपसंहार तथा प्रत्याख्यान नियुक्ति का कथन	१३०-१३१	३७६
प्रत्याख्यान के दस भेद	१३६-१३७	३८२-३८३
प्रत्याख्यान करने की विधि तथा उसके अवान्तर भेदों का स्वरूप	१३८-१४५	३८४-३८६
कायोत्सर्ग नियुक्ति का वर्णन	१४६-१५०	३८६-३८८
कायोत्सर्ग के कारण तथा उसके प्रमाणादि का विवेचन	१५१-१६४	३८६-३६४
कायोत्सर्ग का फल	१६५-१६६	३६४
कायोत्सर्ग दोष	१६७-१६६	३६५-३६७
कायोत्सर्ग के भेदों का निरूपण तथा कायोत्सर्ग के समय करने योग्य ध्यान का स्वरूप	१७०-१७६	३६७-४००
कायोत्सर्ग के समय किये जाने वाले प्रशस्त मनःसंकल्प का वर्णन	१७७-१७६	४००-४०१
कायोत्सर्ग के समय होनेवाले अप्रशस्त मनःसंकल्प का वर्णन	१८०-१८२	४०१-४०२
षडावश्यकचूलिका	१८३-१८५	४०३-४०४
आसिका-निषिद्धिका का स्वरूप	१८६-१८७	४०४
षडावश्यक चूलिका का उपसंहार	१८८-१८६	४०५
८. द्वादशानुप्रेक्षाधिकार	**पृष्ठ ४०६ से ४४४ तक**	
मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	१	४०६
द्वादश अनुप्रेक्षाओं के नाम	२	४०७
अध्रुव-अनित्यानुप्रेक्षा	३-४	४०७-४०८
अशरणानुप्रेक्षा	५-७	४०८-४०६
एकत्वानुप्रेक्षा	८-६	४०६-४१०
अन्यत्वानुप्रेक्षा	१०-१२	४१०-४११
संसारानुप्रेक्षा	१३-२०	४११-४२३
लोकानुप्रेक्षा	२१-२६	४२३-४२६
अशुचि-अशुभानुप्रेक्षा	३०-३६	४२६-४२७
आस्रवानुप्रेक्षा	३७-४७	४२६-४३२
संवरानुप्रेक्षा	४८-५३	४३२
निर्जरानुप्रेक्षा	५४	४३३-४४०
धर्मानुप्रेक्षा	५४	४३०-४४०
बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा	७०-७२	४४१-४४२
अनुप्रेक्षाधिकार का उपसंहार	७३-७६	४४२-४४४
६. अनगारभावनाधिकार	**पृष्ठ ४४५ से ५०० तक**	
मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	१-२	४४५-४४६
लिंगादि दश संग्रहसूत्र	३-६	४४६-४४८
लिंगशुद्धि	७-१२	४४८-४५०
व्रतशुद्धि	१३-१८	४५१-४५२
वसतिशुद्धि	१६-३०	४५३-४५७
विहारशुद्धि	३१-४३	४५७-४६२
भिक्षाशुद्धि	४४-६१	४६२-४६८

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
ज्ञानशुद्धि	६२-६६	४६६-४७४
उज्झनशुद्धि	७०-८६	४७५-४८१
वाक्यशुद्धि	८७-६५	४८२-४८७
तपःशुद्धि	६६-१०६	४८७-४६२
ध्यानशुद्धि	१०७-१२१	४६२-४६८
अनगार भावना का प्रयोजन और उपसंहार	१२२-१२५	४६६-५००
१०. समयसाराधिकार	**पृष्ठ ५०१ से ५५५ तक**	
मङ्गलाचरण और प्रतिज्ञा	१	५०१
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप समय है—उनमें सारभूत चारित्र है तथा वैराग्य भी समय का सार है।	२-३	५०२-५०३
सम्यक्चारित्र धारण करने का उपदेश	४-५	५०३-५०४
साधुपद में चारित्र की प्रधानता है, श्रुत की नहीं	६-७	५०४-५०५
ज्ञान, तप और संयम का संयोग मोक्ष का साधक है	८-६	५०५-५०६
सम्यग्ज्ञानादि से युक्त तप और ध्यान की महिमा	१०-११	५०६-५०७
सम्यग्दर्शन का माहात्म्य	१२-१३	५०७-५०८
सम्यक्चारित्र से सुगति होती है	१४-१५	५०८-५०६
चारित्र की रक्षा के लिए पिण्डादि शुद्धियों का विधान	१६	५०६
निर्ग्रंथलिंग के भेद व स्वरूप	१७	५१०
अचेलकत्व आदि दश श्रमणकल्प	१८	५१०-५११
प्रतिलेखन-पिच्छी के गुण और उसकी आवश्यकता	१६-२३	५१२-५१४
निर्ग्रंथ लिंग से युक्त मुनि के आचरण का फल	२४	५१४
पिण्डशुद्धि आदि न करने वाले साधु का दोष निरूपण	२५-३०	५१५-५१६
अधःकर्म के दोषों का कथन	३१-४१	५१७-५१६
चारित्रहीन मुनि का बहुश्रुत-ज्ञान निरर्थक है	४२	५२०
परिणाम के निमित्त से शुद्धि होती है	४३-४५	५२०-५२१
चर्याशुद्धि का प्रयोजन	४६-४८	५२१-५२२
गुणस्थान की अपेक्षा चारित्र का माहात्म्य	४६	५२२-५२३
शोधनक्रियाओं—निर्दोष क्रियाओं के संयोग से कर्मक्षय होता है	५०-५७	५२४-५२६
क्षेत्रशुद्धि का कथन	५८-६२	५२६-५२८
संसर्ग के गुण-दोषों का वर्णन तथा किनका संसर्ग नहीं करना चाहिए	६३-६७	५२८-५३०
पाप-श्रमण का लक्षण	६८-७२	५३०-५३२
अभ्यन्तर योग के बिना बाह्य योग की निष्फलता	७३	५३२
मैं बहुत काल का दीक्षित हूँ, इसका गर्व नहीं करना चाहिए	७४	५३२-५३३
बन्ध और बन्ध के कारणों का प्रतिपादन	७५-७७	५३३-५३४
स्वाध्याय की उपादेयता	७८-८०	५३४-५३५
निद्रा-विजय और ध्यान का वर्णन	८१-६०	५३५-५३७
कषाय का अभाव चारित्र है	६१-६५	५३६-५४२
राग-द्वेष का फल और उनके कारणों से दूर रहने का निर्देश	६६-१०२	५४२-५४३
ब्रह्मचर्य के भेद	१०३-१०४	५४४
ब्रह्मचर्य के बाधक कारण	१०५-१०७	५४५
परिग्रह-त्याग का फल	१०८-१०६	५४६
नामादि निक्षेप की अपेक्षा श्रमण के भेद	११०-१११	५४६-५४७
भिक्षा-शुद्धि की अनिवार्यता	११२-११३	५४७-५४८
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और शक्ति को जानकर ध्यान-अध्ययन करने का निर्देश	११४-११५	५४८
दर्शनशुद्धि और मिथ्यात्व के कारणों का निराकरण	११६-१२०	५४६-५५२
निर्दोष आचरण के लिए प्रश्नोत्तर और समयसार अधिकार का उपसंहार	१२१-१२४	५५३-५५५
११. शीलगुणाधिकार	**पृष्ठ ५५६ से ५७७ तक**	
मंगलाचरण और प्रतिज्ञावाक्य	१	५५६
शील के भेदों की उत्पत्ति का क्रम	२	५५७
योगादिक के भेद व स्वरूप	३	५५८

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
पृथिवो आदि के भेद व स्वरूप	४	५५८
श्रमण के क्षमा आदि दश धर्म	५	५५६
शील के भेदों की उत्पत्ति के निमित्त अक्षसंचार का क्रम	६-७	५६०
गुणों की उत्पत्ति के कारणों का क्रम	८	५६२
हिंसादिक के २१ भेदों का निर्देश	६-१०	५६३
अतिक्रमण आदि चार के नामोल्लेख	११	५६४
काय के दश भेद	१२	५६४
अब्रह्म के दश कारण	१३-१४	५६५
आलोचना के दश दोष	१५	५६६
प्रायश्चित के आलोचना आदि दश भेदों का उल्लेख	१६	५६७
गुणों के उत्पन्न करने का क्रम	१७-१८	५६७
शील और गुणों के संख्या, प्रसार, अक्षसंक्रम, नष्ट और उद्दिष्ट, इन पाँच विकल्पों का निर्देश	१६	५६६
संख्या निकालने की विधि	२०	५६६
प्रस्तार बनाने की विधि	२१-२२	५७०-५७१
अक्षसंक्रम के द्वारा शील-गुणों का प्रतिपादन और उच्चारण के द्वारा भंग निकालने की विधि	२३	५७२
नष्ट निकालने की विधि और प्रकरण का समारोप	२४-२६	५७३-५७७
१२. पर्याप्त्यधिकार	**पृष्ठ ५७८ से ७५१ तक**	
मंगलाचरण और प्रतिज्ञावाक्य के साथ पर्याप्ति अधिकार में वर्णनीय पर्याप्ति आदि बीस सूत्रपदों का नामोल्लेख	१-३	५७८-५७६
पर्याप्तियों के नाम और स्वामी	४-६	५८०-५८२
पर्याप्तियों के पूर्ण होने का काल	७-८	५८२-५८३
देह सूत्र के अन्तर्गत देवों के शरीर का वर्णन	६-१३	५८४-५८६
नारकियों के वैक्रियिक देह का वर्णन। तदन्तर्गत प्रथम पृथिवी के नारकियों के शरीर की अवगाहना का निरूपण	१४	५८७
द्वितीय पृथिवी के नारकियों की अवगाहना	१५	५८८
तृतीय पृथिवी के नारकियों की अवगाहना	१६	५८६
चतुर्थ पृथिवी के नारकियों की अवगाहना	१७	५६०
पंचम पृथिवी के नारकियों की अवगाहना	१८	५६१
षष्ठ पृथिवी के नारकियों की अवगाहना	१६	५६१
सप्तम पृथिवी के नारकियों की अवगाहना	२०	५६२
भवनत्रिक देवों के शरीर की अवगाहना	२१	५६३
भोगभूमिज और कर्मभूमिज मनुष्यों के शरीर की अवगाहना	२२	५६४
वैमानिक देवों के शरीर की अवगाहना	२३-२७	५६६
एकेन्द्रियादि तिर्यंचों की अवगाहना और उनके स्वामी	२८-३०	५६७-५६८
जम्बूद्वीप की परिधि का वर्णन	३१-३२	५६८
जम्बूद्वीप को आदि लेकर प्रारम्भ के १६ द्वीपों के नाम विस्तार और प्रमाण का निरूपण	३३-३६	५६६-६०१
लवणादि समुद्र और उनके रसों का वर्णन	३७-३६	६०१-६०२
किन समुद्रों में जलचर हैं किनमें नहीं हैं ?	४०	६०३
लवण, कालोदधि और स्वयंभूरमण में जलचरों की अवगाहना का प्रमाण	४१-४५	६०३-६०६
स्थलचर, गर्भज पर्याप्तक—भोगभूमिज तिर्यंचको के शरीर-प्रमाण	४६-४७	६०६-६०७
पृथिवीकायिक आदि जीवों के शरीर की आकृति का वर्णन	४८	६०८
पंचेन्द्रिय जीवों के संस्थान का वर्णन	४६	६०६
स्पर्शनादि इन्द्रियों के आकार का वर्णन	५०	६०६
स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयक्षेत्र का वर्णन	५१	६१०-६१२
चतुरिन्द्रिय जीव की चक्षुरिन्द्रिय का विषयक्षेत्र	५२	६१२
असंज्ञिपंचेन्द्रिय के चक्षुरिन्द्रिय का विषयक्षेत्र	५३	६१२
असंज्ञिपंचेन्द्रिय के श्रोत्रेन्द्रिय का विषयक्षेत्र	५४	६१३
संज्ञिपंचेन्द्रिय की स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयक्षेत्र	५५	६१३

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
संज्ञिपंचेन्द्रिय की चक्षुरिन्द्रिय का विषयक्षेत्र तथा उसके निकालने की विधि	५६-५६	६१७
गुणयोनियों के नाम और उनके स्वामी	६०-६१	६१८-६१६
आकार-योनियों के नाम और उनसे उत्पन्न होने वाले विशिष्ट पुरुष	६२	६१६
चौरासी लाख योनियों का वर्णन	६३	६१६
एकेन्द्रियादि जीवों की आयु का वर्णन	६४-७०	६२०-६२३
भोगभूमिज मनुष्यों की आयु का वर्णन	७१-७२	६२४-६२५
देव और नारकियों की उत्कृष्ट तथा जघन्य आयु का वर्णन	७३	६२६
रत्नप्रभा आदि सात पृथिवियों के नारकियों की उत्कृष्ट आयु का निरूपण	७४	६२६-६२६
प्रथमादि पृथिवियों के नारकियों की जघन्य आयु	७५	६३०
भवनवासी और व्यन्तरों की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण	७६	६३१
ज्योतिष्क देव और वैमानिक देवों की जघन्य आयु	७७	६३१
वैमानिक देवों की उत्कृष्ट आयु का वर्णन	७८	६३२
सौधर्मादि स्वर्गों की देवियों की उत्कृष्ट आयु का कथन	७६-८०	६३६-६३७
सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रहों की उत्कृष्ट आयु	८१-८२	६३८
तिर्यंच और मनुष्यों की जघन्य आयु	८३	६३६
संख्यात प्रमाण का वर्णन	८४	६४०
उपमा प्रमाण के भेद	८५	६४३
स्वामी की अपेक्षा योगों का वर्णन	८६	६४४
स्वामी की अपेक्षा वेदों का वर्णन	८७-६२	६४५-६४८
नरकों में लेश्या का वर्णन	६३	६४८
देवों में लेश्या का वर्णन	६४-६५	६४६-६५०
तिर्यंच और मनुष्यों में लेश्या का वर्णन	६६	६५०
काम और भोग का विश्लेषण	६७-१०२	६५१-६५४
देवों में प्रवीचार का वर्णन	१०३-१०७	६५५-६५७
देवों में आहार और श्वासोच्छ्वास का काल	१०८-१०६	६५७
देव के अवधिज्ञान का विषय	११०	६५६
नारकियों के अवधिज्ञान का विषयक्षेत्र	१११	६५६
नरकों में कौन जीव कहाँ तक उत्पन्न होता है ?	११२-११३	६६०
नरकों से निकलकर कौन जीव क्या होता है ?	११४-१२२	६६१-६६४
स्थावर और विकलत्रय जीवों का कहाँ जन्म होता है ?	१२३-१२७	६६४-६६६
असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीवों में कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं और कहाँ जाते हैं ?	१२८	६६६
शलाकापुरुषों में कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?	१२६	६६७
मिथ्यादृष्टियों का उत्पाद कहाँ होता है ?	१३०-१३४	६६७-६६८
जिनलिंगधारी मिथ्यादृष्टि स्वर्गों में कहाँ तक उत्पन्न होते हैं ?	१३५	६६६
नवग्रैवेयक के आगे उत्पन्न होने वाले जीवों का निर्देश	१३६	६६६
देवगति से आकर कौन जीव कहाँ उत्पन्न होते हैं ?	१३७	६७०
कौन देव शलाकापुरुष नहीं होते हैं ?	१३८-१४०	६७०-६७१
कौन जीव कहाँ से आकर नियमपूर्वक मोक्ष प्राप्त करते हैं ?	१४१-१४२	६७१
निर्वाण प्राप्त करनेवाले जीव कौन हैं और निर्वाण में कैसे सुख का अनुभव करते हैं ?	१४३-१४५	६७१-६७३
स्थानाधिकार के अन्तर्गत मार्गणा तथा जीवसमास आदि का वर्णन	१४६-१४७	६७३-६७४
एकेन्द्रियादि के भेदों का वर्णन	१४८	६७४
दस प्राणों के नाम तथा उनके स्वामी	१५०-१५१	६७५-६७६
जीवसमासों का वर्णन	१५२-१५३	६७७
चौदह गुणस्थानों के नाम	१५४-१५५	६७७-६८०
चौदह मार्गणाओं के नाम	१५६-१५७	६८०-६८२
किस गति में कितने जीवसमास होते हैं ?	१५८	६८३
मार्गणाओं में गुणस्थानों का वर्णन	१५६	६८७

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
एकेन्द्रियादि जीवों के क्षेत्र और द्रव्य-प्रमाण का निरूपण	१६०	६८६
एकेन्द्रियों में बादर और सूक्ष्म का निरूपण	१६१	६६१
नित्यनिगोद का लक्षण	१६२	६६२
एकनिगोद के शरीर में कितने जीव रहते हैं ?	१६३	६६२
एकेन्द्रियादि जीवों के प्रमाण का वर्णन	१६४-१६५	६६३
कुलकोटियों का निरूपण	१६६-१६६	६६५
मार्गणाओं में अल्पबहुत्व का वर्णन	१७०-१८१	६६६-७००
बन्ध के कारणों का निर्देश	१८२-१८३	७००-७०१
बन्ध के भेदों का कथन	१८४	७०२
मूलप्रकृतियों तथा उत्तरप्रकृतियों के भेद	१८५-१८६	७०३-७०४
ज्ञानावरण के पाँच भेदों का निरूपण	१८७	७०४-७०६
दर्शनावरण कर्म के ६ भेदों का वर्णन	१८८	७१०
वेदनीय और मोहनीय के उत्तरभेदों का कथन	१८६-१६०	७११-७१२
सोलह कषायों का प्रतिपादन	१६१	७१३

विषय	गाथा संख्या	पृष्ठ
नौ नोकषायों का निरूपण	१६२	७१४
आयु और नाम कर्म के भेदों का कथन	१६३-१६६	७१५-६२३
गोत्र और अन्तराय कर्म के भेदों का वर्णन	१६७	७२४
गुणस्थानों की अपेक्षा प्रकृतिबन्ध के स्वामी	१६८-१६६	७२५-७२८
ज्ञानावरणादि कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण	२००-२०१	७२८-७२६
ज्ञानावरणादि कर्मों की जघन्य स्थिति का कथन	२०२	७३१
अनुभागबन्ध का निरूपण	२०३	७३३
प्रदेशबन्ध का प्रतिपादन	२०४	७३५
उपशमना और क्षपणा विधि का वर्णन	२०५-२०६	७३६-७३७
वृत्तिकार द्वारा टीका का समारोप		
परिशिष्ट		**७४२ से ७५१ तक**
भाषा-वचनिकाकार द्वारा समारोप		७४२
भाषा वचनिकाकार द्वारा प्रशस्ति		७४२-७४४
१. प्रशस्ति		
२. गाथानुक्रमणिका		

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

आचार्य वट्टकेरस्वामी कृत मूलप्राकृतगाथासूत्र

आचार्य वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ति कृत संस्कृत-आचारवृत्ति सहित

पं० कविश्री नन्दलालजी छावड़ा एवं पं० श्री ऋषभदासजी कृत

मूलाचार भाषा वचनिका

अथ मूलाचार भाषा लिख्यते

दोहा—बंदौं श्रीजिनसिद्धपद आचारिज उवझाय। साधुधर्म जिनभारती जिनगृहचैत्य सहाय[1] ॥ १ ॥
वट्टकेरस्वामी प्रणमि नमि वसुनंदी सूरि। मूलाचार विचारिकैं भाषौं लषि गुणभूरि ॥ २ ॥

अैसैं सर्वज्ञ वीतराग मोक्षमार्ग के प्रवर्त्तक अठारह दोष रहित, छियालीस गुण विराजमान अरहंत परमेष्ठी, श्रीजिनसोही परमगुरु तथा अष्टकर्मरहित अष्टगुण विराजमान सिद्धपरमेष्ठी—अैसें दोऊ प्रकार देव तथा छत्तीस गुण विराजमान आचार्य परमेष्ठी, पंचविंशतिगुण विराजमान उपाध्याय परमेष्ठी, अठाईस गुण विराजमान साधु परमेष्ठी—अैसें तीन प्रकार अपर गुरु तथा केवलि-प्रणीत दयामय मुनि-श्रावक भेद करि दोय प्रकार, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र भेदकरि तीन प्रकार, उत्तमक्षमादि भेद-करि दशप्रकार धर्म तथा अनक्षरात्मक दिव्यध्वनि रूप, अक्षरात्मक—द्वादशांग, अंग-बाह्य आगम के इक्यावन सूत्ररूप धर्म-प्ररूपक जिनभारती तथा ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोकविषैं तिष्ठते कृत्रिम-अकृत्रिम समस्त जिनगृह तथा तिन समस्त मंदिरनि विषैं विराजमान समस्त जिनचैत्य या प्रकार नवदेवतानि का स्तवन नमस्कार रूप मंगलाचरणकरि अर इनही को मंगल लोकोत्तम शरणरूप जानि चित्त विषैं धारि श्रीमूलाचार नाम प्राकृतगाथाबंध चरणानुयोग रूप ग्रन्थ ताकी संस्कृत टीका आचारवृत्ति कैं अनुसार देशभाषामय वचनिका करोंगा—अैसी प्रतिज्ञा करी।

सो यहु ग्रन्थ समुद्रता अैसा है जाका अवगाहन सातिशय बुद्धिबल संयुक्त महामुनिराजनिकरि बनै, अर मैं महा-अल्प-बुद्धि अैसे ग्रन्थ की वचनिका विषैं ज्ञानकी प्रवृत्ति करने का उद्यम किया सो यह बात संभवै नांही। तथापि कालदोषतैं इस क्षेत्र-विषै मोतैंहू अल्पबुद्धि अनेक देखिये हैं तथा होंहिगे, तातैं तिनकैं इस ग्रन्थ का संक्षेप अर्थ ग्रहण करावनैं निमित्त यह प्रारम्भ किया

१. ब प्रति-सुहाय

है। सो जाको प्राकृत-संस्कृत का ज्ञान होय सो तो प्राकृत-संस्कृत ग्रन्थ पूर्वं हैं ही, तिनका अभ्यास करो। तथा इस वचनिका तैं संक्षेप अर्थ समझि पीछैं संस्कृत-प्राकृत को स्पष्ट करि निर्णय करो। अर तिनिकों प्राकृत-संस्कृत का बल नांही ते इस वचनिका तैं संक्षेप अर्थ समझि पीछैं संस्कृत-प्राकृतका स्पष्ट करि निर्णय करो। अर जिनिकों प्राकृत-संस्कृत का बस नांही, ते इस वचनिकातैं संक्षेप अर्थ समझि श्रद्धान करो। श्रद्धान है सो हित का कारण है।

इहाँ कोउ पूछैं तुम अल्पबुद्धि हो, ऐसे महान् ग्रन्थ विषैं कोऊ अर्थ चूकि करि कहो तौ हम श्रद्धान कैसें करें ? ताका समाधान—जो महान बुद्धि है तैं तो प्राकृत संस्कृत का अर्थ अभ्यास करैंगे हो। अर अल्पबुद्धि हैं तिनिकों जैसें मुखतैं व्याख्यान करि सुनाइये हैं तैसें अर्थ पुस्तक विषैं लिखि दिया है। मुखतैं व्याख्यान करनैं मैं तो वर्त्तमान निकट स्थानवर्ती ही कोई से जीवनिकैं अर्थ का ग्रहण होय। अर पुस्तकविषैं लिखने तैं घनें काल पर्यंत अनेक देशनि विषैं तिष्ठते जो धर्मबुद्धि वांचै-पढैं तिन सर्व ही कैं अर्थग्रहण होयगा। अर इहां **मूलगाथा वट्टकेर स्वामी कृत** है, ते लिखियेगी। अर तिनिका अर्थ **वसुनंदि सिद्धान्तचक्रवर्ती** आचारवृत्ति नामा टीका विषैं किया है सो लिखियेगा तथा कहीं विशेष कथन **वीरनंदि सिद्धान्तचक्रवर्तीकृत आचारसार** तथा **चामुण्डरायकृत चारित्रसार** तथा **आचार्य सकलकीर्तिकृत मूलाचारप्रदीपक** नाम ग्रन्थ इनितैं लिखियेगा सो मैं तो मेरी बुद्धि अनुसार बहुत निर्णय करि लिखूँगा, तथापि बुद्धि की मंदता तैं कहीं चूकूं तो बहुत ज्ञानीनितैं मूलग्रंथनि कै अनुसार सकलि निर्णय-करि श्रद्धान कीजियो। इस ग्रन्थ में मुनिधर्म का निर्णय है। आगम विषैं प्रथम आचारांग है यातैं याका अभ्यास अवश्य कीया चाहियै, जातैं जीव का हित मोक्ष, अर मोक्ष का कारण ज्ञान-श्रद्धानपूर्वक सकलसंयम ताही का यामैं विशेष निर्णय कीया है। तातैं हे ! भव्य जीव हों और संसार के सकल कार्य छोडि तथा अन्य लौकिक ग्रन्थनिका अभ्यास छोडि तथा ख्याति-लाभ पूजादिक का अभिप्राय छोडि, इस ग्रन्थ का निरन्तर अभ्यास करो। आप वांचो, अन्यको बचावौ, पढौ-पढावो, सभा में व्याख्यान करो। प्रश्न-उत्तर करि अर्थ का निर्णय करो, बार-बार चिन्तवन करो, संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहित मुनिधर्म को जानिकरि शंकादि दोष रहित श्रद्धान करो, जातैं सम्यक्त्व दृढ़ होय। देव-गुरु-धर्म का श्रद्धान बिना सम्यक्त्व दृढ़ होय नांही।

अर इस बात विषै हुंडावसर्पिणी के दोषतैं तथा पंचम काल के दोषतैं अनेक मत चले हैं। तिनमें देव-गुरु-धर्म का स्वरूप अपनी इच्छा कैं अनुसार अनेक प्रकार थापे हैं। **जैनमत में हू श्वेताम्बरादि सम्प्रदाय** वाले देव-गुरु-धर्म का स्वरूप अन्यथा कहै हैं। तातैं ऐसे ग्रन्थ का अभ्यास कीया बिना अनादिनिधन केवली-श्रुतकेवली भाषित जैसा महाविदेह क्षेत्रनि विषैं निरन्तर प्रवर्तै तथा इस क्षेत्र में चतुर्थ काल विषैं प्रवर्त्या ऐसा **दिगम्बर-धर्म** रूप साक्षात् मोक्षमार्ग का निर्णय होय नांही।

इहां कोऊ कहै—गृहस्थनि कौ तौ व्याकरण-काव्यादिक तथा पुराणादिक पुण्य-पाप का फल वांचना सुननां जोग्य हैं, मुनिधर्म का आचार कौन सौं वर्णं हैं ? अर मुनि आचार कहाँ है ? गृहस्थनि कौं मुनिधर्म के ग्रन्थ वांचना, भाषा करनां योग्य नांही। ताका समाधान—जीव का हित मोक्ष है ताके कारण संवर निर्जरा हैं। ते गुप्ति-समिति-धर्म-अनुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्र-तप रूप जो मुनिधर्म तातैं होय हैं ऐसा निर्णय द्रव्यानुयोग, अध्यात्म, स्याद्वाद ग्रन्थनि में प्रमाण-नय-निक्षेप अनुयोगनतैं कीया है। यातैं मुख्य उपादेय तौ मुनिधर्म ही है और ग्रन्थनि का सीखना-पढ़ना बहुत होय अर इस धर्म का ज्ञान-श्रद्धान न होय तो अज्ञानी ही कहिये। अर इस धर्म का ज्ञान-श्रद्धान होय, अर व्याकरण-काव्यादिक थोरा ही पढ्या होय तो ज्ञानी ही कहिये। अर मुनिधर्म

के ज्ञान-श्रद्धान बिना सम्यक्त्व कैसें होय ? अर मुनि तौ धर्मात्मा है ही, परन्तु गृहस्थ अैसे ग्रन्थ सुनैं बिना धर्म-अधर्म का भेद तथा गुरु-कुगुरु का भेद तथा जैन लिंग-अन्य लिंग का भेद तथा दिगम्बर-श्वेतांबरादि का भेद तथा पात्र-कुपात्र-अपात्र का भेद कैसे जानैं ? अर बिना जानैं पूजा, स्तवन, नमस्कार, भक्ति, विनय, दान, वैयावृत्य रूप उपासनां कैसें करे ? अर उपासना बिना गृहस्थ धर्म कहाँ ? अर गुरु, अर कुगुरु सर्वकौ समान जानैं तो मिथ्यात्व का दोष लागैं। तातैं गृहस्थनि कौ मुनिधर्म का स्वरूप अवश्य निर्णय करनां। अर इस धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ का व्याख्यान अवश्य करनां। अैसा विचार करि या ग्रन्थकी भाषा-वचनिका आरम्भ किया है।

यहु ग्रंथ प्राचीन है। दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्य सिद्धान्तचक्रवर्ती[1] हुवे, तिनकै प्रमाणभूत जानि इस ग्रन्थ का अभ्यास एकाग्र चित्तकरि निरन्तर करनां।

अधिकार-गाथा-सूत्र-क्रम से सम्पूर्ण ग्रन्थ की पीठिका रूप संक्षिप्त विषयवस्तु

आगैं इस ग्रन्थ की पोठिका का वर्णन करिये हैं। या ग्रन्थ विषैं बारह महा-अधिकार हैं। तिनमैं गाथासूत्र बारह सौ तीयालीस (१२४३) हैं।

तहाँ **पहला मूलगुणाधिकार है। तामैं** गाथा **छैतीस** (३६) हैं। तिनमैं प्रथम गाथा विषैं **मंगलाचरण** करि मूलगुण कहनैं की प्रतिज्ञा करी है। पीछै दोय गाथा विषैं अठाईस मूलगुणनि के भेद कहै हैं। पीछैं एक गाथा विषैं पंचमहाव्रतनि के नाम कहै हैं। पीछैं पंच गाथानि करि पंच महाव्रतनि का स्वरूप कह्या है। पीछैं एक गाथा विषैं पंचसमिति के नाम कहै हैं। पीछै पंच गाथा विषै पंच समितिनि का स्वरूप कह्या है। पोछै एक गाथा विषैं पंच इन्द्रियनिरोध के नाम कहै हैं। पीछै पंच गाथा विषैं षट् आवश्यकनिके नाम कहे हैं। पीछै छह गाथा विषैं षडावश्यकनि का स्वरूप कह्या है। पीछै सात गाथानि करि लौंचादि सप्त-मूलगुणनि का स्वरूप कह्या है। पोछै एक गाथाविषैं मूलगुर्णान का फल वर्णन करि अधिकार समाप्त किया।

पींछैं **दूसरा प्रत्याख्यान-संस्तरस्तव नाम** अधिकार है। तामैं गाथा **इकहत्तरि** हैं। तहां गाथा दोय विषैं मंगलाचरण करि प्रत्याख्यान तथा संस्तर के स्वरूप कहनैं की प्रतिज्ञा करो। पीछैं गाथा तीन करि सामायिक का संक्षेप स्वरूप कहि पीछैं गाथा सात करि सामायिक का विशेष स्वरूप कह्या है। पीछैं गाथा तोन करि दोषनिका त्याग कीया है। पीछैं गाथा तीन करि प्रमादनि का त्याग का वर्णन कीया हैं। अैसै गाथा अठारह पर्यन्त आत्मसंस्कार काल का वर्णन करि पीछैं सन्यास-आलोचना का वर्णन गाथा तीन विषैं करि, गाथा एक विषैं क्षमण का वर्णन कीया हैं। पीछै गाथा सोलह में मरणभेद का तथा मरणविराधनतैं देवदुर्गति होने का तथा बोधिदुर्लभ होने का तथा बालमरण का स्वरूप वर्णन कीया है। पीछै गाथा सोलह में मरण भेद का तथा मरणविराधने तै देव दुर्गति होनें का तथा बोधिदुर्लभ होने का तथा बालमरण का स्वरूप वर्णन किया है। पोछै अैसैं सुनि क्षपक चिंतवन करै तथा आचार्य उपदेश देय दृढ़ करैं ताका वर्णन सोलह गाथा में कीया है। पीछै आठ गाथानि विषैं क्षपक दृढ़ होय जिनवचन का शरण लेय अत्यन्त दृढ परिणाम करै ताका वर्णन है। पीछै गाथा तीन विषैं मरण का भय निराकरण कीया है। पीछै छह गाथानि विषै सन्यासमरण का फल वर्णन करि अंतमंगल करि दूसरा अधिकार समाप्त कीया।

१. आचार्य वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती

आगै उपसर्गादि होतैं **संक्षेप प्रत्याख्यान** कैं अर्थि **तीसरा अधिकार** है, तामैं गाथा **चौदह** है। तामैं संक्षेप सन्यास-मरण का वर्णन कीया है।

आगैं **समाचार नामा चौथा अधिकार** है। ता विषैं गाथा **छिहत्तरि** है। तहां गाथा तीन विषैं मंगलाचरण करि समाचार का संक्षेप स्वरूप कहि औधिक, पदविभागिक—दोय प्रकार भेद वर्णन किया है। पीछैं गाथा चारि विषैं औघिक समाचार **दस** प्रकार तिनका संक्षेप स्वरूप कहि गाथा दोय विषैं पदविभागी का संक्षेप स्वरूप कह्या है। पीछैं गाथा चौदह मैं औधिक समाचार कहे थे तिनका विशेष स्वरूप निर्णय कीया है। पीछैं गाथा **बियालीस** विषैं पदविभागीक समाचारका निरूपण है। तहाँ कोई मुनिराज आपके गुरु पास सर्व श्रुत सीख आचार्यनिकी आग्या लेय परगण विहार करै तहां अन्य संघ के आचार्य के पासि जाय परस्पर परीक्षा करै उन पासि सूत्रार्थ सीखै अर उनके अनुकूल जैसैं रहै तैसै प्रवर्तैं ताका विशेष वर्णन है। पीछै गाथा दस करि **आर्यानि** का समाचार वर्णन कीया। पीछै गाथा एक में उपसंहार करि समाचार नामा चौथा अधिकार समाप्त कीया।

आगैं **पंचाचार नामा पाँचवाँ अधिकार** है, तामैं गाथा **दोय सैं बाईस** (२२२) हैं। तहां गाथा दोय विषै मंगलाचरण करि पंचाचार कहनैं की प्रतिज्ञा करी। पीछैं गाथा दोय विषैं अष्ट प्रकार दर्शनशुद्धि का वर्णन है। पीछैं गाथा दोय में सम्यक्त्व का स्वरूप वर्णन है। पीछै गाथा छह विषै **जीवतत्त्व** का भेद कहि पृथिवीकाय का वर्णन है। पीछैं गाथा तीन विषैं जलकाय, अग्नि-काय, पवनकाय का वर्णन है। पीछै गाथा पांच विषै वनस्पतिकाय का वर्णन है। पीछै गाथा दोय विषैं त्रसकाय का वर्णन है। पीछे गाथा नव विषैं जीवनि के कुल का तथा जोनि का तथा मार्गणा का तथा जीव के लक्षण का वर्णन है। पीछै गाथा पांच विषैं अजीव तत्त्व का वर्णन है। पीछे गाथा चौदह विषै पुण्य-पाप पदार्थ का तथा आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष पदार्थ का वर्णन है। पीछैं गाथा अठारह विषे सम्यग्दर्शन के शंकादिक आठ दोषनि का वर्णन करि दर्शनाचार का वर्णन समाप्त कीया। इहां पर्यंत गाथा अडसठि भई हैं। पीछैं गाथा इकईस विषैं ज्ञानाचार का वर्णन कीया है। तहां काल शुद्धितादि अष्ट प्रकार शुद्धिता का सविशेष वर्णन कीया है। इहां पर्यंत गाथा सूत्र निवासी (८९) भये।

आगैं चारित्राचार का वर्णन है। तहां गाथा आठ विषैं पंचमहाव्रतनिका वर्णन है। पीछैं गाथा दोय विषै रात्रिभोजन के त्याग का वर्णन है। पीछैं गाथा च्यार विषैं प्रणिधान जो परिणामता का वर्णन है। पीछैं गाथा छह विषैं समितिन के नाम-पूर्वक ईर्या समितिनिका वर्णन है। पीछे गाथा ग्यारा विषैं भाषा समिति का वर्णन है। पीछैं गाथा पांच विषैं समिति की महिमा का वर्णन है। पीछैं गाथा पाँच विषैं तीन गुप्तिनि का वर्णन कीया। पीछैं एक गाथा विषैं अष्टप्रवचनमातृका कहि सात गाथानि विषैं पाँच महाव्रतनिकी भावना वर्णन करि चारित्राचार का वर्णन समाप्त कीया। इहां पर्यंत गाथा एक सौ छीयालीस भई। पीछैं तप-आचार का वर्णन कीया हैं तहां गाथा तीन में तप के नाम कहे हैं। पीछैं गाथा चार विषैं अनशन तप का वर्णन है। पीछैं गाथा दोय विषैं अवमौदर्य तप का वर्णन है। पीछैं गाथा तीन विषैं रसपरित्याग का वर्णन है। पीछे गाथा एक में वृत्तपरिसंख्यान का वर्णन है। पीछैं गाथा एक विषैं कायक्लेश का वर्णन हैं। पीछैं गाथा एक विषैं विविक्त-शय्यासन का वर्णन हैं। पीछैं गाथा तीन विषैं बाह्य तप का वर्णन समाप्त करि आभ्यंतर तपनिके नाम कहे हैं।

पीछैं गाथा तीन विषैं प्रायश्चित तप का वर्णन है। पीछैं गाथा पचीस विषैं विनय का वर्णन हैं, तहां गाथा दोय विषैं विनय

के **पंच प्रकार** कहि दर्शन विनय का वर्णन कीया हैं। पीछै गाथा दोय विषैं ग्यान विनय का वर्णन कीया है। पीछै गाथा एक विषैं चारित्र विनय का वर्णन कीया है। पीछैं गाथा दोय विषैं तप विनय का वर्णन कीया है। पीछैं गाथा बारह विषैं उपचार विनय का सविशेष वर्णन कीया है। पीछै गाथा पंच विषैं विनय का महात्म्य वर्णन कीया। पीछैं गाथा च्यारि विषैं वैयावृत्य का वर्णन कीया है। पीछे गाथा एक विषैं स्वाध्याय का वर्णन कीया है। पीछैं गाथा बारह विषैं आर्त, रौद्र तथा धर्मध्यान, शुक्लध्यान का वर्णन कीया है। पीछे गाथा तीन विषैं व्युत्सर्ग का वर्णन कीया है। पीछे गाथा च्यारि विषै तप की महिमा करि तप आचार का वर्णन समाप्त कीया है। पीछै गाथा सात विषैं वीर्याचार का वर्णन करि पंचाचार नामा पांचवा अधिकार समाप्त कीया है।

आगैं **पिंडशुद्धि नामा छठा अधिकार है।** तहां गाथासूत्र **बीयासी** हैं तिन विषैं प्रथम पंच गाथा विषैं मंगलाचरनपूर्वक अष्ट प्रकार पिंडशुद्धि के नाम कहे हैं तथा **अधःकर्म** का वर्णन कीया है। तथा सोलह उद्गमदोषनि के नाम कहे हैं। पीछे गाथा बीस विषैं सोलह उद्गमदोषनि का प्रत्येक स्वरूप तथा भेद-भेदनि के स्वरूप का विशेष वर्णन कीया है। पीछे गाथा दोय विषैं सोलह उत्पादन दोषनिके नाम कहे हैं। पीछे गाथा पंदरा विषैं सोलह उत्पादनदोषनि का प्रत्येक स्वरूप तथा भेदनि का स्वरूप वर्णन कीया है। पीछे गाथा एक विषैं दस असन दोषन के नाम कहे हैं। पीछे तेरह गाथा विषैं दस प्रकार अशन दोषनि का स्वरूप तथा इनके भेद तथा भेदनि का स्वरूप वर्णन कीया हैं। पीछे एक गाथा विषैं संयोजना दोष तथा प्रमाणदोष का वर्णन कीया है। पीछे एक गाथा विषैं अंगारक दोष तथा धूमदोष का वर्णन कीया है। पीछे च्यार गाथा विषैं आहार लेने के तथा आहार छोड़ने का वर्णन कीया है। पीछे गाथा दोय विषैं भोजन की शुद्धता का वर्णन कीया है। पीछे गाथा एक विषैं चौदहमलनि के नाम कहे हैं। पीछे गाथा दश विषैं प्रासुक आहार का तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धता का वर्णन करि एषणा समिति की विशुद्धता का वर्णन कीया है। पीछे गाथा छह विषैं बत्तीस भोजन के मुख्य अंतराय तथा अन्य अनेक अंतराय तिनिका वर्णन कीया है। पीछे गाथा एक विषैं अन्त मंगल करि छठा अधिकार समाप्त कीया है। इहां पर्यंत गाथा सूत्र **पाँच सौ एक** भए हैं।

आगैं **षडावश्यक नामां सातवां अधिकार है।** ता विषै गाथासूत्र **एक सौ निवासी** (१८९) हैं। तहाँ प्रथम गाथा-चौदह विषैं मंगलाचरण करि आवश्यक का स्वरूप कहनै की प्रतिज्ञा करी हैं तथापि पंचपरमेष्ठी का स्वरूप कहि इनके नमस्कार रूप पंच णमोकार मंत्र की महिमा वर्णन कीया है। आगैं गाथा एक विषैं छह आवश्यकनिके नाम कहे हैं। पीछे गाथा बीस विषैं सामायिक निर्युक्ति का वर्णन कीया है। तहां नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भेदकरि सविशेष वर्णन कीया है। पीछे गाथा दोय विषैं चतुर्विंशति-स्तवन का छह प्रकार निक्षेप कह्या है। पीछे गाथा पैंतीस मैं 'लोगुज्जोए धम्मे—इत्यादि गाथा रूप स्तवन पाठ का विशेषण प्रति अर्थ करि सविशेषण वर्णन कीया है। पीछे गाथा दोय विषैं वंदना निर्युक्ति के छह निक्षेप कहे हैं। पीछे गाथा सत्ताईस विषैं कृतिकर्म, चितिकर्म, पूजाकर्म, विनयकर्म का वर्णन है। तहाँ विनयकर्म विषैं लोकानुवृत्ति विनय, अर्थ-निमित्त-विनय, कामतंत्रविनय, भयविनय, अर मोक्षविनय—अैसे पंचभेद वर्णन करि मोक्षविनय के पंच प्रकार दर्शन, ज्ञान, चारित्र तपविनय आगैं उपचारक विनय इनका विशेष वर्णन कीया है तथा वंदनीय-अवंदनीय का भेद वर्णन कीया है। तथा कितने स्थानक विषैं वंदना करणी ताका वर्णन कीया है। पीछे गाथा छह विषैं वंदना के बत्तीस दोषनिका वर्णन कीया है। पीछे गाथा दोय विषैं वंदना निर्युक्ति की समाप्ति का वर्णन किया। पीछे गाथा दोय विषैं प्रतिक्रमण निर्युक्ति के छह निक्षेप कहे हैं। पीछे

गाथा अठारह विषैं **प्रतिक्रमण** का स्वरूप **भेद-भेदनिका** स्वरूप तथा आलोचना के स्वरूप विधान का वर्णन कीया है। पीछे **गाथा** दोय प्रत्याख्यान निर्युक्ति के छह **निक्षेप** कहें हैं। पीछे गाथा चौदह विषैं **प्रत्याख्यान के दश** भेदनिका वर्णन करि च्यारि प्रकार प्रत्याख्यान की शुद्धता का वर्णन कीया है। पीछै गाथा दोय विषैं कायोत्सर्ग निर्युक्ति के छह निक्षेपनि के वर्णन कीया है। पीछै गाथा पैंतीस विषैं कायोत्सर्ग का सविशेष वर्णन हैं। पीछे गाथा सात विषैं आवश्यक को महिमा तथा आशिका-निषेधिका का स्वरूप कहि षडावश्यक निर्युक्ति नामा सातवां अधिकार संपूर्ण कीया।

आगैं **द्वादशानुप्रेक्षिक नाम आठवाँ अधिकार** है। ता विषैं गाथा **छिहत्तर** हैं। तिन विषैं गाथा दोय विषैं मंगलाचरण पूर्वक बारह अनुप्रेक्षानि के नाम कहे हैं। पीछै गाथा दोय विषैं अनित्यानुप्रेक्षा का वर्णन है पीछे गाथा तीन विषैं अशरणानुप्रेक्षा का वर्णन है पीछै आठ गाथानि में बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा का वर्णन हैं पीछे गाथा च्यारि में अनुप्रेक्षा का महिमा वर्णन करि द्वादशानुप्रेक्षा नामा आठवाँ अधिकार सम्पूर्ण कीया है।

आगैं **अनगार भावना नामा नवमाँ अधिकार है।** ता विषैं गाथासूत्र **एक सौ पच्चीस** हैं तहां प्रथम गाथा तीन विषैं मंगलाचरण पूर्वक अनगार भावना कहने की प्रतिज्ञा करि लिंगशुद्धि आदि दस प्रकार शुद्धि के नाम कहें हैं तथा इनकी महिमा करी है। पीछै गाथा छह विषैं **लिंग शुद्धि** का वर्णन कीया है। पीछै गाथा अठारह विषैं भिक्षा शुद्धि का वर्णन है। पीछै गाथा आठ विषैं ग्यानशुद्धि का वर्णन है। पीछै गाथा सतरह विषैं उज्झनशुद्धि का वर्णन है। पीछे गाथा नव विषैं वाक्यशुद्धि का वर्णन है। पीछै ग्यारह गाथानि विषैं तपशुद्धि का वर्णन करि पीछै बारह गाथानि में ध्यानशुद्धि का वर्णन कीया है। पीछै गाथा सात में अनगार भावना की महिमा वर्णन करी हैं। **ऐसे** अनगार भावना नाम नवमां अधिकार समाप्त भया।

आगैं **समयसार नाम दशमा अधिकार है।** ता विषैं गाथा **एक सौ तेईस हैं।** तहाँ मंगलाचरण करि समयसार नाम चारित्र का कह्या है तथा वैराग्य का नाम समयसार कहना तथा चारित्र रहित ज्ञान निरर्थक कह्या है, संयम रहित लिंग निरर्थक कह्या, सम्यक्त्व रहित तप निरर्थक कहा है। तथा ध्यान का महात्म्य का वर्णन कीया है तथा आचेलक्य, लोच, व्युत्सृष्ट-शरीरता, प्रतिलेखन—ऐसे चार प्रकार लिंगकल्प का वर्णन कीया है। बहुरि जे पिंड शुद्धि, उपधि शुद्धि अर शय्या शुद्धि नांही करे हैं तिनिका **निषेध** कीया है। जो अधःकर्मकरि **भोजन** करै हैं ताका अत्यंत निषेध कीया है। ताकूं मुनि-श्रावक रूप उभय धर्म तैं रहित कह्या। बहुरि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव **शुद्धि** का वर्णन है तथा कुत्सिताचार्य के संसर्ग का गति का निषेध कीया है तथा जो संघ कूं छोड़ि स्वेच्छाचारी होय, शिक्ष्या नांही मानै है, ताकूं **पापश्रमण** कह्या है। तथा पूर्वै शिष्य नहीं होय करि आचार्यपणां करणों कूं भ्रमता फिरैं है ताकूं पापश्रमण कह्या है। पीछै स्वाध्याय का महात्म्य वर्णन कीया है। पीछै ध्यान का विस्तार वर्णन कीया हैं। पीछै जीव के द्रव्य, गुण, पर्याय वर्णन कीया है। पीछै कषाय का निषेध वर्णन कीया है। पीछै जिह्वा, उपस्थ का निषेध वर्णन कीया है। पीछै ब्रह्मचर्य के भेद वर्णन कीया है। पीछै भावलिंग का वर्णन कीया है। इत्यादि बहुत प्रकार वर्णन करि समयसार नाम दसमां अधिकार पूर्ण कीया।

आगैं **शीलगुणप्रस्तार नामा ग्यारहवां अधिकार** हैं। ता विषैं गाथासूत्र **पचीस** हैं। तिन विषैं प्रथम गाथा में मंगलाचरण करि शीलगुण कहने की प्रतिज्ञाकरी पीछै गाथा पाँच विषैं अठारह हजार शील के भेद वर्णन कीये हैं। पीछै गाथा ग्यारह विषैं चौरासी लाख उत्तरगुणनि के भेद वर्णन कीया है। पीछे गाथा सात विषैं शीलगुणनिके संख्या, प्रस्तार, अक्ष-संक्रम, नष्ट, उद्दिष्ट—

अैसे पंच विकल्प वर्णन कीये हैं। पीछै एक गाथा विषैं शीलगुण का फल वर्णन कीया है। अैसे शीलगुण प्रस्तार नाम ग्यारवां अधिकार समाप्त कीया।

आगैं **पर्याप्ति नामा बारहवाँ अधिकार** है। ता विषैं गाथासूत्र **दोय सैं च्यारि** (२०४) है। तहां गाथा तीन विषैं मंगलाचरण करि बीस सूत्रपदनि कै वर्णन कीये है। पीछे गाथा पांच विषैं पर्याप्ति सूत्र का वर्णन कीया है। पीछे गाथा गुणतालीस विषैं देह सूत्र का वर्णन कीया है। तामैं गाथा पाँच विषैं देवदेह का वर्णन कीया है। पीछै गाथा सात विषैं नारकदेह का वर्णन कीया है। पीछै गाथा दस विषैं देवनिका तथा मनुष्य-तिर्यंचिनिका शरीर का उत्सेध वर्णन कीया है। पीछै गाथा नव विषैं द्वीप समुद्रनिका वर्णन है। पीछै गाथा आठ विषैं मछादिक जीवनि की जघन्य-उत्कृष्ट अवगाहना का वर्णन हैं अैसे देहसूत्र का व्याख्यान समाप्त कीया।

पीछैं गाथा दोय विषैं काय संस्थान का वर्णन हैं। पीछै गाथा आठ विषैं इंद्रिय संस्थान का तथा इंद्रियनि के विषय का वर्णन है। पीछै गाथा छह विषैं योनि स्वरूप का वर्णन है। पीछे गाथा बीस विषैं च्यारु गति संबंधी जीवनिकी आयु का वर्णन है। पीछै गाथा दोय विषैं संख्या प्रमाण का वर्णन है। पीछे गाथा एक विषैं योग का वर्णन हैं। पीछे गाथा छह विषैं वेद का वर्णन है। पीछे गाथा च्यार विषैं लेश्या का वर्णन है। पीछे गाथा पंदरा विषैं प्रतिचार सूत्र विषैं पांचूं इंद्रियनिका प्रतिचार वर्णन कीया है। पीछे गाथा चौतीस विषैं उपपाद-उद्वर्तन जो जीवनिकी गति-अगति ताका वर्णन कीया है। पीछै गाथा बीस विषैं स्थानाधिकार का वर्णन है। तहां गाथा आठ विषैं जीवसमासनिका वर्णन है। गाथा दोय विषैं गुणस्थाननिका वर्णन हैं। पीछै गाथा दस विषैं मार्गणा स्थाननिका वर्णन है। अैसें स्थान सूत्र समाप्त कीया।

पीछैं गाथा च्यारि विषैं जीवनि के कुलनिका वर्णन कीया। पीछै गाथा बारह विषैं च्यारूं गति संबंधी जीवनिका अल्पबहुत्व का वर्णन कीया है। पीछै सोलह गाथा विषैं बंध का, हेतु का वर्णनकरि च्यारि प्रकार भेद कहि प्रकृतिबंध का विशेष वर्णन कीया है। पीछै गाथा तीन विषैं स्थितिबंध का वर्णन कीया है। पीछै गाथा एक विषैं अनुभागबंध का वर्णन कीया है। पीछै गाथा एक विषैं प्रदेशबंध का वर्णन कीया है। पीछै गाथा दोय विषैं आठूकर्म क्षपाय करि अष्टगुण विराजमान परमात्मा भगवान् मोक्षपद प्राप्त होय ताका वर्णन रूप अंत मंगलाचरण करि ग्रन्थ समाप्त कीया हैं।

अैसे यह प्राकृत भाषामय आचार्य श्रीवट्टकेर स्वामि विरचित मूलाचार नामा महान् ग्रंथ ताकी पीठिका का संक्षेप वर्णन कीया है। विशेष कथन आगैं होहीगा। इहां गाथानिकी सूचनिका मात्र दिखाया है।

श्रीवसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तिविरचितया आचारवृत्त्या सहितः

प्रथमो मूलगुणाधिकारः

श्रीमच्छुद्धेद्धबोधं सकलगुणनिधिं निष्ठिताशेषकार्यं,
वक्तारं सत्प्रवृत्तेर्निहतमतिमलं शक्रसंवंदिताङ्घ्रिम्।
भर्तारं मुक्तिबध्वा विमलसुखगतेः कारिकायाः समन्ता-
दाचारस्यात्तनीतेः परमजिनकृतेर्नौम्यहं वृत्तिहेतोः॥ १॥

श्रुतस्कन्धाधारभूतमष्टादशपदसहस्रपरिमाणं, मूलगुणप्रत्याख्यान-संस्तर-स्तवाराधना-समयाचार [समाचार] पंचाचार-पिंडशुद्धिषडावश्यक-द्वादशानुप्रेक्षानगारभावना-समयसार-शीलगुणप्रस्तार-पर्याप्त्याद्यधिकारनिबद्धमहार्थगभीरं लक्षणसिद्धपदवाक्यवर्णोपचितं, घातिकर्मक्षयोत्पन्नकेवलज्ञानप्रबुद्धाशेषगुणपर्यायखचितषड्द्रव्यनवपदार्थजिनवरोपदिष्टं, द्वादशविधतपोनुष्ठानोत्पन्नानेकप्रकारर्द्धिसमन्वितगणधरदेवरचितं, मूलगुणोत्तरगुणस्वरूपविकल्पोपायसाधनसहायफलनिरूपणप्रवणमाचाराङ्गमाचार्य[1]-पारम्पर्यप्रवर्तमानमल्पबलमेधायुःशिष्यनिमित्तं द्वादशाधिकारैरुपसंहर्तुकामः स्वस्य श्रोतॄणां च प्रारब्धकार्यप्रत्यूहनिराकारणक्षमं शुभपरिणामं विदधच्छ्रीवट्टकेराचार्यः प्रथमतरं तावन्मूलगुणाधिकारप्रतिपादनार्थं मंगलपूर्विकां प्रतिज्ञां विधत्ते मूलगुणेस्वित्यादि—

आगैं आचार्यश्री वसुनंदि सिद्धान्तचक्रवर्ती इस मूलाचार-नाम ग्रंथ की आचारवृत्ति नाम टीका का प्रारम्भ कर्ता संता श्रीमच्छुद्धेद्धबोधं—इत्यादि स्रग्धराछंद रूप काव्यकरि मंगलाचरण कीया, ताका व्याख्यान लिखिए हैं—

अहं कहिये मैं आचार्य वसुनंदि सो परम जिनेश्वरदेवकरि कीया उपदेश्या जो नीतिगर्भित आचारशास्त्र ताकि वृत्ति कहिए टीका करने निमित्त समीचीन प्रवृत्ति साक्षात् मोक्षमार्ग रूप मुनिधर्म ताके वक्ता अरहंतदेव ताकौं नमस्कार करूँ हूँ। कैसा है अरहंतदेव ? क्रमकरण-व्यवधानरहिततारूप लक्ष्मीकरियुक्त रागद्वेषमोहमलरहित शुद्ध सर्वपदार्थनिकूं युगपत् प्रकाशमान करता देदीप्यमान है ज्ञान जाका अैसा, बहुरि कैसा है ? समस्तगुणनिका निधान है, बहुरि कैसे हैं ? परिपूर्ण कीये हैं समस्त कार्य जानैं अैसा हैं, । बहुरि कैसा है ? दूरि कीया है सेवकजनको बुद्धि का रागादिक मैल जानैं अैसा है, बहुरि कैसा है ? समस्त देवनि विषैं प्रधान जे इंद्र तिनकरिकैं भक्तितैं वंदित हैं चरण जाके, अैसे हैं। बहुरि कैसे हैं ? समस्तपणैं निर्मलसुखकी प्राप्ति करनेंवारी जो मुक्तिरूप स्त्री ताके भर्तार अैसे हैं।

आगे मूलग्रंथका प्रथम गाथासूत्रकी सूचनिका कहै हैं। श्रुतस्कंध जो द्वादशांग ताका आधारभूत बहुरि अठारह हजारपदरूप है परिमाण जाका बहुरि १. मूलगुण २. प्रत्याख्यान संस्तरस्तव ३. आराधना ४. समयाचार ५. पंचाचार ६. पिंडशुद्धि ७. षडावश्यक ८. द्वादशानुप्रेक्षा ९. अनगारभावना १०. समयसार ११. शीलगुणप्रस्तार और १२. पर्याप्ति–इत्यादिक अधिकारनिकरि निबद्ध जो महान् अर्थ ताकरि गंभीर बहुरि लक्षणसिद्ध जे पद-वाक्य-वर्ण तिनकरि उपचित कहिये परिपूर्ण अैसा, बहुरि घातिया कर्मनिके क्षयतैं उत्पन्न भया जो केवलज्ञान ताकरि जानैं हैं समस्त गुण-पर्याययुक्त षट्द्रव्य-नवपदार्थ जिननैं—अैसे जे जिनवर तिनकरि उपदेश्या अैसा। बहुरि मूलगुण, उत्तरगुण के–१. स्वरूप २. विकल्प ३. उपाय, ४. साधन ५. सहाय और ६. फल के निरूपण विषैं समर्थ अैसा जो आचारांग आचार्यनिकी परंपरातैं प्रवर्तमान, ताको अल्प है बल, बुद्धि, आयु जिनिका अैसे शिष्यनिकैं निमित्त पूर्वोक्त बारह अधिकारनिकरि संक्षेप करनैं का है अभिलाष जाकैं अैसा श्रीवट्टकेर नामा आचार्य सो आपके तथा श्रोतानिकैं प्रारंभरूप कीया जो कार्य ताविषैं विघ्न निराकरण करने को समर्थ अैसा शुभपरिणाम जो है ताहि करता संता प्रथम ही मूलगुण नाम प्रथम अधिकारके प्रतिपादनकैं अर्थि मंगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञा करे हैं—

---

१. क 'आचार'।

अथ प्रथमगाथासूत्रावतारः

मूलगुणेसु विसुद्धे वंदित्ता सव्वसंजदे सिरसा ।
इहपरलोगहिदत्थे मूलगुणे कित्तइस्सामि ॥ १ ॥

मंगलनिमित्तहेतुपरिमाणनामकर्तॄन् धात्वादिभिः प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धांश्च व्याख्याय पश्चादर्थः कथ्यते । **मूलगुणेसु**—मूलानि च तानि गुणाश्च ते मूलगुणाः । मूलशब्दोऽनेकार्थे यद्यपि वर्तते तथापि प्रधानार्थे वर्तमानः परिगृह्यते । तथा गुणशब्दोऽप्यनेकार्थे यद्यपि वर्तते तथाप्याचरणविशेषे वर्तमानः परिगृह्यते । मूलगुणाः प्रधानानुष्ठानानि उत्तरगुणाधारभूतानि तेषु मूलगुणेषु विषयभूतेषु कारणभूतेषु वा सत्सु ये । **विसुद्धे**—विशुद्धाः निर्मलाः संयतास्तान् मूलगुणेषु विशुद्धान् । **वंदित्ता**—वन्दित्वा मनोवाक्कायक्रियाभिः प्रणम्य, **सव्वसंजदे**—अयं सर्वशब्दो निरवशेषार्थवाचकः परिगृहीतो बह्वनुग्रहकारित्वात्तेन प्रमत्तसंयताद्ययोगिपर्यन्ता भूतपूर्वगतया सिद्धाश्च परिगृह्यन्ते, सम्यक् यताः पापक्रियाभ्यो निवृत्ताः सर्वे च ते संयताश्च सर्वसंयतास्तान् सर्वसंयतान् प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगकेवल्ययोगकेवलिसंयतान् सप्ताद्यष्टपर्यन्तषण्णवमध्यसंख्यया समेतान् सिद्धांश्चानन्तान् । **सिरसा**—शिरसा मस्तकेन मूर्ध्ना । **इहपरलोगहिदत्थे**—इहशब्दः प्रत्यक्षवचनः, परशब्द उपरतेन्द्रियजन्मवचनः, लोकशब्दः सुरेश्वरादिवचनः । इह च परश्चेहपरौ तौ च तौ लोकौ च इहपरलोकौ ताभ्यां तयोर्वा हितं सुखैश्वर्यपूजासत्कारचित्तनिवृत्तिफलादिकं तदेवार्थः प्रयोजनं फलं येषां ते इहपरलोकहितार्थास्तान् इहलोकपरलोकसुखैश्वर्यादिनिमित्तान् ।

अर्थ—मूलगुणनि विषैं विशुद्ध अैसे जे सर्व संयमी तिन्हैं मस्तक नमाय वंदना करि इहलोक परलोक का हित है प्रयोजन जिनिका अैसे जे मूलगुण तिनहिं कहूँगा ॥ १ ॥

टीका—१. मंगल, २. निमित्त, ३. हेतु, ४. परिमाण, ५. नाम, ६. कर्त्ता इनि छहौंनिकों तथा धातु आदिक करै प्रयोजन अभिधेय संबंधकौं प्रथम व्याख्यानकरि पीछैं अर्थ कहिये अैसा सम्प्रदाय है, तातैं प्रथम मंगलाचरण करै हैं। मूल जै गुण ते मूलगुण कहिये। मूल शब्दके अनेक अर्थ हैं तथापि इहां 'प्रधान' अर्थ लेना। गुण शब्द के अनेक अर्थ हैं तथापि इहां 'आचरण' विशेष अर्थ लेना। तातैं मूलगुणशब्दका प्रधान अनुष्ठान कहिये आचरण विशेष उत्तरगुण का आधारभूत अैसा अर्थ जानना। सो तिन मूलगुणनि विषैं तथा मूलगुणनिकौं कारणरूप होतैं जे विशुद्ध कहिये निर्मल भये अैसे सर्व संयमी तिनिकौं मन, वचन, काय की क्रियाकरि वंदना करिकैं। इहां सर्वशब्द का बहुत उपकारके कर्तापनैंतैं निरवशेष अर्थ लेनां। तातैं प्रमत्तसंयत गुणस्थानतैं लेय अयोगिकेवलि गुणस्थानपर्यंत तौ संयमी हैं ही तथा भूतपूर्व गतिकरि सिद्धहू संयमी कहिये। वहुरि सं कहिये भलैप्रकार यत कहिये पापक्रियातैं निवृतभये ते संयत कहिये। सर्व जे संयत ते सर्वसंयत कहिये, ते प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय, उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवलि, अयोगिकेवली—अैसे नवगुणस्थाननि विषैं तिष्ठते जे तीन घाटि नवकोटिप्रमाण ८९९९९९९७—संयमी तथा अनन्त सिद्धपरमेष्ठो अैसा अर्थ सर्वसंयत शब्दका जाननां।

इहलोक कहिये इन्द्रियप्रत्यक्ष जो लोक तथा परलोक कहिये इन्द्रियनिकैं अगोचर इन्द्रादि भवरूप अन्यजन्म तिनिकैं अर्थि तथा तिनि विषैं जो हित कहिये सुख, ऐश्वर्य, पूजा, सत्कार, चित्त की प्रसन्नता सो है प्रयोजन जिनिका, तहां इहलोक विषैं

इहलोके पूजां सर्वजनमान्यतां गुरुतां सर्वजनमैत्रीभावादिकं च लभते मूलगुणानाचरन्, परलोके च सुरैश्वर्यं तीर्थंकरत्वं चक्रवर्तिबलदेवादिकत्वं सर्वजनकान्ततादिकं च मूलगुणानाचरन लभत इति। **मूलगुणे**—मूलगुणान् सर्वोत्तरगुणाधारतां गतानाचरणविशेषान्। **कित्तइस्सामि**—कीर्तयिष्यामि व्याख्यास्यामि। अत्र संयतशब्दस्य चत्वारोऽर्था नाम स्थापना द्रव्यं भाव इति। तत्र जातिद्रव्यगुणक्रियानिरपेक्षं संज्ञाकर्म नामसंयतः। संयतस्य गुणान् बुद्ध्याध्यारोप्याकृतिवति अनाकृतिवति च वस्तुनि स एवायमिति स्थापिता मूर्तिः स्थापनासंयतः। संयतस्वरूपप्रकाशनपरिज्ञानपरिणतिसामर्थ्याध्यासितोऽनुपयुक्त आत्मा आगमद्रव्यसंयतः। नोआगमद्रव्यं त्रिविधः। ज्ञायकशरीरसंयतः संयतप्राभृतज्ञस्य शरीरं भूतं भवन् भावि वा। भविष्यत्संयतत्वपर्यायो जीवो भाविसंयतः। तद्व्यतिरिक्तमसम्भवि कर्म नोकर्म, तयोः संयतत्वस्य कारणत्वाभावात्। संयतगुणव्यावर्णनपरप्राभृतज्ञ उपयुक्तः सम्यगाचरणसमन्वित आगमभावसंयतस्तेनेह प्रयोजनं, कुतः मूलगुणेषु विशुद्धानिति विशेषणादिति। मूलगुणादिस्वरूपावगमनं प्रयोजनम्। ननु[1] पुरुषार्थो हि प्रयोजनं न च मूलगुणादिस्वरूपावगमनं[2], पुरुषार्थस्य धर्मार्थकाममोक्षरूपत्वात्, यद्येवं सुष्ठु मूलगुणस्वरूपावगमनं प्रयोजनं यतस्तेनैव ते धर्मादयो लभ्यन्ते इति। मूलगुणैः शुद्धस्वरूपं साध्यं साधनमिदं[3] मूलगुणशास्त्रं, साध्यसाधनरूपसम्बन्धोऽपि शास्त्रप्रयोजनयोरतएव वाक्याल्लभते, अभिधेयभूता मूलगुणाः तस्माद् ग्राह्यमिदं शास्त्रं प्रयोजनादित्रय[4]समन्वितत्वादिति। सर्वसंयतान् शिरसाभिवन्द्य

तौ मूलगुणनिकौं आचरणकरनैं वाला जीव पूजा, सर्वजन-मान्यता, गुरुता, सर्वजन-मित्रता इत्यादिक फल पावै। तथा परलोक विषैं इन्द्र-पदवी, तीर्थंकर-पदवी, चक्रवर्ती, बलदेवादि-पद तथा सर्व-जननि विषैं सुन्दरता इत्यादि फल पावै।

ऐसें मूलगुण जे सर्वउत्तरगुणनि के आधारभूत आचरण-विशेष तिनहिं कहौंगा। इहाँ संयतशब्द के नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव-भेदकरि च्यारि अर्थ हैं। तहां जाति, द्रव्य, गुण, क्रिया की अपेक्षारहित इच्छातैं संज्ञा करिये सो नाम-संयत कहिये। संयत के गुणनितैं साकार-निराकार वस्तु विषैं बुद्धिकरि सो ही यहै हैं। ऐसें स्थापित करी मूर्ति सो स्थापना कहिये। आगम नोआगमभेदतैं द्रव्यसंयत दोयप्रकार हैं। तहां संयत के स्वरूप प्रकासनें करि ज्ञानरूप परिणति की सामर्थ सहित उपयोग रहित जो आत्मा सो आगम द्रव्यसंयत कहिये।

बहुरि ज्ञायकशरीर, भावी, तद्व्यतिरिक्त भेदनितै नोआगम द्रव्यसंयत तीन प्रकार हैं। तहां संयतप्राभृत के जाननेवाला जो आत्मा ताका भूत-भविष्यत-वर्तमान जो शरीर सो ज्ञायक शरीर कहिये। बहुरि होनहार हैं संयत-पर्याय जाकै ऐसा जो प्राभृत ताका जानने वाला उपयोग सहित भलै प्रकार आचरण संयुक्त सो आगम भावसंयत कहिये। सो इहा 'मूलगुणेषु विशुद्धान्' ऐसा विशेषण कह्या। तातैं आगमभावसंयतकरि प्रयोजन जानना। बहुरि इस शास्त्र के प्रयोजन अभिधेय संबंध दिखावैं हैं। तहां मूलगुणादिकनि के स्वरूप का ज्ञान होना तौं इहां प्रयोजन हैं। इहां कोउ कहे कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप च्यारि पुरुषार्थ हैं सो प्रयोजन हैं। मूलगुणादिकनि का स्वरूप जानना ही तौ प्रयोजन नांही? ताका समाधान—जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ हू मूलगुणादिकनिक स्वरूप जानेंतैं होय हैं। तातै मुख्य प्रयोजन मूलगुणादिकनि का स्वरूप जानना ही भलै प्रकार हैं। मूलगुणनिकरि शुद्धस्वरूप साध्य हैं। यह मूल-प्रतिपादक शास्त्र साधन है। तातैं शास्त्र प्रयोजन कैं साध्य-साधन रूप संबंध इसही वाक्य तैं जाननां। अभिधेयभूत इहां मूलगुण हैं। तातैं प्रयोजन, संबंध, अभिधेय—इनि तीनों सहित यह ग्रन्थ सो ज्ञानवंतनि-

---

१. क न तु। २. क नं स्वरूपार्थस्तस्य। ३. क मिदं शास्त्रं। ४. क संबंधित्वा।

मूलगुणान् इहपरलोकहितार्थान् कीर्तियिष्यामीति पदघटना। अथवा मूलगुणसंयतानामयं नमस्कारो मूलगुणान् सुविशुद्धान् संयतांश्च[1] वन्दित्वा मूलगुणान् कीर्तयिष्यामि, चशब्दोऽनुक्तोऽपि द्रष्टव्यः। यथा पृथिव्यप्तेजोवायुराकाशमित्यत्र।

मूलगुणकथनप्रतिज्ञां निर्वहन्नाचार्यः संग्रहसूत्रगाथाद्वयमाह—

पंच य[2] महव्वयाइं समिदीओ पंच जिणवरुद्दिट्ठा।
पंचेंविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो॥ २॥
अच्चेलक्कमण्हाणं खिदिसयणमदंतघंसणं चेव।
ठिदि[3]भोयणेयभत्तं मूलगुणा अट्ठवीसा दु॥ ३॥

पंच य—पंचसंख्यावचनमेतत्। चशब्द एवकारार्थः पंचैव न षट्। **महव्वयाइं**—महान्ति च तानि व्रतानि महाव्रतानि, महान् शब्दो महत्त्वे प्राधान्ये वर्तते, व्रतशब्दोऽपि सावद्यनिवृत्तौ मोक्षावाप्तिनिमित्ताचरणे वर्तते, महद्भिरनुष्ठितत्वात्। स्वत एव वा मोक्षप्रापकत्वेन महान्ति व्रतानि महाव्रतानि प्राणासंयमनिवृत्तिकारणानि। **समिदीओ**—समितयः सम्यगयनानि समितयः सम्यक्श्रुतनिरूपितक्रमेण गमनादिषु प्रवृत्तयः समितयः व्रतवृत्तय इत्यर्थः। **जिणवरुद्दिट्ठा**—कर्मारातीन् जयन्तीति जिनास्तेषां वराः श्रेष्ठास्तैरुपदिष्टाः प्रतिपदिता जिनवरोपदिष्टाः। एतेन

करि ग्रहण करने योग्य हैं। इस गाथा का अन्वय अैसे—जो सर्वसंयंतनिको मस्तक करि प्रणाम करि इहलोक-परलोक के हितार्थ जे मूलगुण तिनहि कहूँगा। अथवा सुविशुद्ध कहिये निर्दोष जे मूलगुण तिनहिं तथा सर्व-संयत तिनहिं मस्तक करि नमस्कारकरि इहलोक-परलोक के हितार्थ जे मूलगुण तिनहि कहौंगा। अैसा हू अर्थ जाननां।

इहां कोऊ पूछै जो मूलगुणनिकों तथा सर्वसंयतिनकौं जुदा-जुदा नमस्कार किया। अर पुनरर्थ का प्रतिपादक 'च' शब्द गाथा विषैं नांही सो कैसैं ही कीया ? ताका समाधान—जो इहां बिनां कह्याहू च शब्द जांनि लेनां। जैसैं पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इस प्रकरण विषैं ग्रहण करिये हैं।

आगैं मूलगुण कहने की प्रतिज्ञा करी ताकूं निर्वाह करता संता जो आचार्य सो संग्रहसूत्र रूप दोय गाथा कहै हैं—

अर्थ—पंच महाव्रत जिनवर करि उपदेशो हुई पंच समिति, पांचूं हो इंद्रियनि के रोध, छह आवश्यक, लोच, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदंतघर्षण, स्थितभोजन, एकभक्त—ए अट्ठाईस हो मूलगुण हैं। ऊन नांही, अधिक नांही॥ २, ३॥

टीका—महाशब्द का प्रधान अर्थ है। व्रतशब्द का सावद्यनिवृत्ति मोक्ष की प्राप्ति कै निमित्त आचरण अैसा अर्थ है। महापुरुष इनकूं आचरण करै है। तथापि ये स्वतै ही मोक्ष प्राप्ति के करनहारे हैं। तातैं महाव्रत कहिये तातैं प्राण संयम-की निवृत्ति के कारण हैं ते ए पंच ही हैं अैसा 'च' शब्द का अर्थ जाननां तथा 'समिति' शब्द का अर्थ कहै हैं—'सम' कहिये सम्यक् शास्त्रोक्त क्रम करि, 'इति' कहिए अयन-गमनादिक कै विषैं प्रवृत्ति ते समिति कहिए। ए व्रतनि की रक्षा करनें वारी हैं। ते कर्मरूप शत्रुकौं

१. "क" तांश्च। २. "अ" प्रति में पंच महव्वयाइं ऐसा पाठ है। ३. "अ" प्रति में ठिदि, "ब" प्रति में ठिद पाठ है।

स्वमनीषिकाचर्चिता इमाः सर्वमूलगुणाभिधा न भवन्ति । आप्तवचनानुसारितया प्रामाण्यमासां समितीनां व्याख्यातं भवति । कियन्त्यस्ताः पंचैव नाधिकाः । **पंचेंविदियरोहा**—इन्द्र आत्मा तस्य लिङ्गमिन्द्रियं, अथवा इन्द्रो नामकर्म तेन सृष्टमिन्द्रियं, तद् द्विविधं द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं च, चक्षुरिन्द्रियाद्यावरणक्षयोपशमजनितशक्तिर्भावेन्द्रियं तदुपकरणं द्रव्येन्द्रियं यतो **'लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियं, निर्वृत्युपकरणे द्रव्येंद्रियं'** चेति रोधा अप्रवृत्तयः इन्द्रियाणां श्रोत्रादीनां रोधा इन्द्रियरोधाः सम्यक्ध्यानप्रवेशप्रवृत्तयः कियन्तस्ते पंचैव । **छप्पि य**—षडपि च षडेव न सप्त नापि पंच । **आवासया**—आवश्यकर्तव्यानि आवश्यकानि निश्चयक्रियाः सर्वकर्मनिर्मूलनसमर्थनियमाः । **लोचो**—लोचः हस्ताभ्यां मस्तककूर्चगतवालोत्पाटः । आचेलकं—चेलं वस्त्रं, उपलक्षणमात्रमेतत्, तेन सर्वपरिग्रहः श्रामण्यायोग्यः चेलशब्देनोच्यते, न विद्यते चेलं यस्यासावचेलकः अचेलकस्य भावोऽचेलकत्वं वस्त्राभरणादिपरित्यागः । **अण्हाणं**—अस्नानं जलसेकोद्वर्तनाभ्यङ्गादिवर्जनम् । **खिदिसयणं**—क्षितौ पृथिव्यां तृणफलकपाषाणादौ शयनं स्वपनं क्षितिशयनं [1]स्थाण्डिल्यशायित्वम् । **अदंतघंसणं चेव**—दन्तानां घर्षणं मलापनयनं दन्तघर्षणं न दन्तघर्षणं अदन्तघर्षणं ताम्बूलदन्तकाष्ठादिवर्जनम् । चशब्दः समुच्चयार्थः । एवकारोऽवधारणार्थः । अदन्तघर्षणमेव च । **ठिदिभोयणं**—स्थितस्योर्ध्वतनोः[2]चतुरंगुलपादान्तरस्य भोजनम् ।

जीतैं ते 'जिन' तिनि मैं 'वर' कहिए श्रेष्ठ ते जिनवर, तिनकरि उपदेशी हैं ये सर्व ही मूलगुणनिकी संज्ञा अपनी बुद्धि तैं कल्पित ऐसी नांही हैं । आप्त के वचन का अनुसार तैं कहि है, तातैं प्रमाणता माननी, सो ए समिति पांच ही हैं ।

इंद्रियरोध का अर्थ कहैं हैं—'इंद्र' कहिए आतमा ताका जो लिंग सो इंद्रिय कहिए अथवा इन्द्र कहिए नामकर्म ता करि रची होय सो इंद्रिय कहिए । सो इंद्रिय दो प्रकार हैं—एक द्रव्येन्द्रिय, एक भावेन्द्रिय । तहां चक्षु-इन्द्रियादिक जो आवरण-कर्म ताके क्षयोपशम तैं उपजी जो शक्ति-लब्धि, उपयोग रूप करि दो प्रकार, सो भावेन्द्रिय कहिए, ताका उपकरण निवृत्ति, उपकरण रूप भेद-करि दोय प्रकार सो द्रव्येन्द्रिय कहिए । ते इन्द्रिय श्रोतादिक पांच तिनका रोध कहिये विषय विषैं प्रवृत्ति का रोकनां भलै प्रकार ध्यान कै विषैं प्रवेश करनां ते ए इन्द्रियरोध पांच ही हैं । आवश्यक का अर्थ कहै हैं—अवश्य करवैं योग्य ते आवश्यक कहिये, ये निश्चय क्रिया हैं । समस्त कर्मनि के निर्मूल करनैं विषैं समर्थ नियम हैं ते ए आवश्यक छह ही हैं, सात नांही हैं, पांच नांही हैं । **लोच का अर्थ कहै हैं**—दोउ हाथनितैं मस्तक दाढ़ी-मूछ विषैं ऊगे जे बाल तिनका उपाडनां सो **लोच कहिये । आचेलक्य का अर्थ कहैं हैं**—चेल नाम वस्त्र का है सो यह उपलक्षण-मात्र है, तातैं मुनिपद अयोग्य सर्वपरिग्रह का नाम चेल हैं जाके चेल नहीं सो **अचेलक कहिये** । अचेलक का भाव सो आचेलक्य कहिए—वस्त्र आभरण आदिक का परित्याग सो आचेलक्य कहिये । **अस्नान का अर्थ कहैं** है—जलकरि न्हानां, सींचना, उवटना, मर्दन—इत्यादिक का वर्जन सो अस्नान कहिए ।

क्षितिशयन का अर्थ कहै हैं—पृथिवी विषैं तथा तिणां, फलक, पाषाण आदि विषैं सोवना सो **क्षितिशयन** कहिए । **अदतघर्षण का अर्थ** कहैं हैं—दांतनि का घर्षण कहिये—मल का दूर करनां सो दंतघर्षण कहिए, तांबूल दांतन—इत्यादिक करि दंतघर्षण नांही[3] सो अदंतघर्षण कहियै । 'च' शब्द का समुच्चय[4] अर्थ है । ए 'च' शब्द का नियम अर्थ है । नियमकरि दंतघर्षण नांही करैं हैं—ऐसा मूलगुण का समुच्चय कीया है ।

---

१. क °र्द्धज्ञोः । २. अस्य स्थाने जानोरिरिति पाठः । ३. "अ" प्रति में नहि है । ४. "ब" प्रति में समुचय है ।

एयभत्तं—एकं च तदभक्तं चैकभक्तं, एकवेलाहारग्रहणम् । **मूलगुणा**—मूलगुणा उत्तरगुणाधारभूताः । **अट्ठवीसा** दु—अष्टाविंशतिः तु शब्दोऽवधारणार्थः, अष्टभिरधिका विंशतिरष्टाविंशतिरष्टाविंशतिरेव मूलगुणा नोनाः नाप्यधिका इति ।

द्रव्यार्थिकशिष्यानुग्रहाय संग्रहेण संख्यापूर्वकान् मूलगुणान् प्रतिपाद्य पर्यायार्थिकशिष्यावबोधनार्थं विभागेन वार्तिकद्वारेण तानेव प्रतिपादयन्नाह—

हिंसाविरदी सच्चं अदत्त परिवज्जणं च बंभं च ।
संगविमुत्ती य तहा महव्वया पंच पण्णत्ता ।। ४ ।।

त्रिविधा चास्य शास्त्रस्याचाराख्यस्य प्रवृत्तिः, उद्देशो, लक्षणं, परीक्षा इति । तत्र नामधेयेन मूलगुणाभिधानमुद्देशः । उद्दिष्टानां तत्त्वव्यवस्थापको धर्मो लक्षणम् । लक्षितानां यथालक्षणमुपपद्यते नेति, प्रमाणैरर्थविधारणं परीक्षा तत्रोद्देशार्थमिदं सूत्रम् । उत्तरं पुनर्लक्षणम्, परीक्षा पुनरुत्तरत्र, एवं त्रिविधा व्याख्या । अथवा संग्रहविभागविस्तरस्वरूपेण त्रिविधा व्याख्या । अथवा सूत्रवृत्तिवार्तिकस्वरूपेण त्रिविधा । अथवा सूत्र-प्रतिसूत्र-विभाषासूत्रस्वरूपेण त्रिविधेति । एवं सर्वत्राभिसम्बन्धः कर्तव्य इति । **हिंसाविरदी**—प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं, प्रमादः

स्थितभोजन शब्द का अर्थ कहै हैं—'स्थित' कहिये खड़ा ऊभे हैं। जानू कहिये गोडा जाके च्यार अगुल-परिणाम है पगनि मैं अंतर जाकै अैसे मुनिराज कूं भोजन करनां सो स्थित भोजन है। **एकभक्त**[1] का अर्थ कहै है—एक बार जो भोजन सों एकभक्त कहिये, एक वेला आहार ग्रहण का नाम सो एकभक्त जाननां।

अैसे उत्तरगुणनि के आधारभूत जे मूलगुण ते आठकरि अधिक बीस अैसें अठाईस ही हैं। 'तु' शब्द का नियम अर्थ जांननां। मूलगुण अट्ठाईस तैं हीण (कम) तथा अधिक नांही हैं।

आगैं द्रव्यार्थिक नयावलंबी शिष्य का अनुग्रह के अर्थि संग्रह-नय करि संख्यापूर्वक मूलगुणनि का प्रतिपादन करि पर्यायार्थिक नयावलंबी शिष्य के समझावनैं के अर्थविभाग करि वार्तिक द्वारै तिनही मूलगुणनिका प्रतिपादन करता संता-आचार्य गाथा सूत्र कहै हैं—

अर्थ—हिंसाविरति, सत्य, अदत्तपरिवर्जन, ब्रह्मचर्य तथा संगविमुक्ति कहिए परिग्रहत्याग—अैसें महाव्रत पांच कहे हैं ।।४।।

टीका—या आचारशास्त्र की प्रवृत्ति तीन प्रकार है—१. उद्देश्य, २. लक्षण, ३. परीक्षा। १. तहां नाममात्र मूलगुणनि का कहनां सो उद्देश्य कहिये। २. नामकरि उद्देश्य कहिये तिनका स्वरूप का सूचक धर्म सो लक्षण कहिये। लक्षण कीये ते इहां पाइए हैं कि नांही अैसैं प्रमाणकरि अर्थ का निश्चय करनां **सो परीक्षा** कहिये। तहां उद्देश्य कैं अर्थ इहां सूत्र कह्या है। उत्तरसूत्र है ते लक्षण कै अर्थि है, पीछैं उत्तरसूत्र हैं ते परीक्षा कैं अर्थि है—अैसैं तीन प्रकार व्याख्यान है। अथवा प्रथम संग्रह, पीछै विभाग, पीछै विस्तार—अैसैं तीन प्रकार व्याख्यान हैं अथवा सूत्र, वृत्ति, वार्तिक—अैसैं तीन प्रकार व्याख्यान हैं। अथवा सूत्र, प्रतिसूत्र, विभाषासूत्र—अैसे तीन प्रकार व्याख्यान हैं। अैसा सर्वस्थाननी विषैं संबंध करनां।

१. "अ" प्रति में मुच्त शब्द है।

सकषायत्वं, तद्वानात्मपरिणामः प्रमत्तः, प्रमत्तस्य योगः प्रमत्तयोगस्तस्मात्प्रमत्तयोगाद्दशप्राणानां वियोगकरणं हिंसेति, तस्या विरतिः परिहारः हिंसाविरतिः सर्वजीवविषया दया । **सच्चं**—सत्यं असदभिधानत्यागः "**असदभिधानमनृतं**" सच्छब्दः प्रशंसावाची न सदसत् अप्रशस्तमिति यावत असतोऽर्थस्याभिधानमसदभिधानं, अनृतं—ऋतं सत्यं न ऋतं अनृतं किंपुनस्तदप्रशस्तं प्राणिपीडाकरं यद्वचन तदप्रशस्तं विद्यमानार्थविषयमविद्यमानार्थविषयं वा तस्यासदभिधानस्य त्यागः सत्यं । **अदत्तपरिवज्जणं**—अदत्तपरिवर्जनं अदत्तस्य परिवर्जनं अदत्तपरिवर्जनं, "**अदत्तादानं स्तेयं**"—आदानं ग्रहणं अदत्तस्य पतितविस्मृत-स्थापितानुज्ञातादिकस्य ग्रहणं अदत्तादानं तस्य परित्यागोऽदत्तपरिवर्जनम् । चशब्दः समुच्चयार्थः । **बंभं च**—ब्रह्मचर्यं च, ब्रह्मेत्युच्यते जीवस्तस्यात्मवतः पराङ्गसम्भोगनिवृत्तवृत्तेश्चर्या ब्रह्मचर्यमित्युच्यते मैथुनपरित्यागः । स्त्रीपुंसोश्चारित्रमोहोदये सति रागपरिणामाविष्टयोः परस्परस्पर्शनं प्रतीच्छा मिथुनः, मिथुनस्य कर्म मैथुनं तस्य परित्यागो ब्रह्मचर्यमिति । **संगविमुत्ती य**—संगस्य परिग्रहस्य बाह्याभ्यन्तरलक्षणस्य विमुक्तिः परित्यागः संगविमुक्तिः श्रामण्यायोग्यसर्ववस्तुपरित्यागः परिग्रहासक्त्यभावः । **तहा**—तथा तेनैवागमोक्तेन प्रकारेण । **महव्वयाइं**—महाव्रतानि सर्वसावद्यपरिहारकारणानि पंच न षट् । **पण्णत्ता**—प्रज्ञप्तानि प्रतिपादितानि कैर्जिनेन्द्रैरिति शेषः । महद्भिरनुष्ठितत्वात् स्वत एव वा महान्ति व्रतानि महाव्रतानि पंचैवेति ।।

आगैं हिंसाविरति का अर्थ कहै हैं—कषाय सहित भाव सो प्रमाद कहिए प्रमाद सहित आत्मा का परिणाम सो प्रमत्त कहिये प्रमत्त का योग तैं दस प्राणनिका वियोग करनां सो हिंसा कहियैं । हिंसा की विरति कहिए परिहार सो हिंसा-विरति कहिये सर्व जीवनिकैं विषैं दयाभाव सो **हिंसा-विरति महाव्रतनाम प्रथम मूलगुण** जाननां ।

आगैं सत्य का अर्थ कहे हैं—सत् ऐसा शब्द का प्रशंसा अर्थ है । सत् नहीं सो असत् कहिये अप्रशस्त अर्थ का नाम असत् है असत् अर्थ जाका जो **अभिधान** कहिये कहनां सो असत्य कहिये, जाका अर्थ विद्यमान नांहीं ऐसा वचन हैं तथा जाका अर्थ विद्यमान है तथापि प्राणीनिकूं पीडा करनें वाला वचन है सो असत् वचन कहिए । याही का नाम अनृत कहिये, नृत नाम सत्य का है । अनृत नाम असत्य का है असत् वचन का त्याग सो **सत्यमहाव्रत नामा दूसरा मूलगुण** कहिये ।

अदत्त परिवर्जन का अर्थ कहे है—पड्या हुआ तथा पैलेका भूल्या हुआ तथा पैलें का स्थाप्या हुआ तथा पैलेका दीया नांही सो अदत्त कहिये ताका ग्रहण सो स्तेय कहिये ताका परित्याग सो **अदत्तपरिवर्जन महाव्रत** नाम तीसरा मूलगुण कहिए । 'च' शब्द का समुच्चय अर्थ जाननां ।

ब्रह्म शब्द का अर्थ कहै हैं—ब्रह्म नाम ब्रह्मचर्य का है । पैलें का अंग का संभोग विषैं छोड़ी हैं वृत्ति जानैं ऐसे जीव का नाम ब्रह्म है, ताकी चर्या सो ब्रह्मचर्य कहिये तथा स्त्री-पुरुष कैं चारित्रमोह का उदय को होतैं सन्तैं राग परिणामकरि गहिल होय परस्पर स्पर्शन प्रति इच्छा सो मिथुन कहिये । मिथुन का कार्य सो मैथुन कहिये, ताका परित्याग सो **ब्रह्मचर्य महाव्रत नामा** चौथा मूलगुण कहिए ।

संगविमुक्ति का अर्थ कहै हैं—बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह का नाम संग है, ताकी विमुक्ति कहिये परित्याग, मुनिपदवो अयोग्य सर्ववस्तु का परित्याग परिग्रह के आसक्त ताका अभाव सो **संगविमुक्ति** नामा पांचवां मूलगुण जाननां । ए सर्व महाव्रत सावद्य के परिहार के कारण महाव्रत आगमोक्त प्रकारकरि जिनेन्द्रभगवान् नैं महाव्रत पांच ही कहै हैं । महापुरखनि नैं आचरण कीये, तथा स्वतैं मोक्ष के प्राप्त करनवाले तातैं महाव्रत कहिए ।

जीवस्थानस्वरूपं [1]बन्धस्थानपरित्यागं च प्रतिपादयन् हिंसाविरतेर्लक्षणं प्रपञ्चयन्नाह—

कार्येदियगुणमग्गण कुलाउजोणीसु सव्व जीवाणं ।
णाऊण य ठाणादिसु हिंसादि विवज्जणमहिंसा ॥ ५ ॥

काय—कायाः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसाः तात्स्थ्यात् साहचर्याद्वा पृथिवीकायिकादयः काया इत्युच्यन्ते, आधारनिर्देशो वा, एवमन्यत्रापि योज्यम् । **इंदिय**—इन्द्रियाणि पञ्च स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि । एकं स्पर्शनमिन्द्रियं येषां ते एकेन्द्रियाः । द्वे स्पर्शनरसने इन्द्रिये येषां ते द्वीन्द्रियाः । त्रीणि स्पर्शनरसनघ्राणानीन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः । चत्वारि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षूंषीन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः । पञ्च स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रियाः । **गुण**—गुणस्थानानि—मिथ्यादृष्टिः, सासादनसम्यग्दृष्टिः, सम्यग्मिथ्यादृष्टिः, असंयतसम्यग्दृष्टिः, संयतासंयतः, प्रमत्तसंयतः, अप्रमत्तसंयतः, अपूर्वकरणः उपशमकः क्षपकः, अनिवृत्तिकरणः उपशमकः क्षपकः, सूक्ष्मसाम्परायः उपशमकः क्षपकः, उपशान्तकषायः, क्षीणकषायः, सयोगकेवली, अयोगकेवली चेति चतुर्दशगुणस्थानानि । एतेषां स्वरूपं पर्याप्त्यधिकारे व्याख्यास्यामः, इति नेह प्रपञ्चः कृतः । **मग्गण**—मार्गणा यासु यकाभिर्वा जीवा मृग्यन्ते ताश्चतुर्दश मार्गणाः, गतीन्द्रियकाययोगवेदकषायज्ञानसंयम-

---

आगैं जीवस्थानकनि का स्वरूप बंध-स्थान का परित्याग प्रतिपादन करता सन्ता हिंसा-विरति का लक्षण विस्तारता सन्ता आचार्य सूत्र कहै हैं—

अर्थ—काय, इंद्रिय, गुणस्थान, मार्गणा-स्थान, कुल, आयु, योनि—इन विषैं सर्व जीवनिकूं जानिकरि कायोत्सर्गादिक क्रिया-विशेष विषैं हिंसादिक का परिहार सो अहिंसा-व्रत कहिये ॥ ५ ॥

टीका—काय शब्द का अर्थ कहै हैं—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, त्रस-रूप जे शरीरी ते काय कहिए। तिनि मैं तिष्ठै हैं यातैं तथा तिनकी लार रहै है यातैं पृथ्वीकायिक आदि जीव हैं तेहू काय संज्ञाकरि कहिये हैं तथा इहां आधार निर्देश कीया है, काय के विषैं जीव है ते जाननें। अैसैं अन्यत्र हू जोरि लेना। इंद्रिय शब्द का अर्थ कहैं हैं—इंद्रिय पांच हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु श्रोत्र। तहां एक स्पर्शन ही है इंद्रिय जिनकैं ते एकेन्द्रिय जीव हैं। तथा दोय स्पर्श, रसन है इन्द्रिय जिनिकैं ते द्वीन्द्रिय जीव हैं तथा स्पर्श, रसन, घ्राण—अैसैं तीन हैं इन्द्रिय जिनकैं ते त्रीन्द्रिय जीव हैं तथा स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु—अैसे च्यार हैं—इन्द्रिय जिनकैं तें चतुरिंदिय जीव हैं तथा स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र—अैसे पांच हैं इंद्रिय जिनकैं तें पंचैंद्रिय कहिये।

गुण शब्द का अर्थ कहैं हैं—गुण कहिये गुणस्थान, ते चौदह हैं—१. मिथ्यादृष्टि, २. सासादन-सम्यग्दृष्टि, ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ४. असंयत सम्यग्दृष्टि, ५. संयतासंयत, ६. प्रमत्तसंयत, ७. अप्रमत्तसंयत, ८. अपूर्वकरण—उपशम श्रेणी वाला तथा क्षपक श्रेणी वाला, ९. अनिवृत्तिकरण—उपशम श्रेणी वाला तथा क्षपक श्रेणी वाला, १०. सूक्ष्मसांपराय—उपशम श्रेणी तथा क्षपक श्रेणी वाला, ११. उपशांत कषाय, १२. क्षीणकषाय, १३. सयोग केवली, १४. अयोग केवली। इनका स्वरूप आगैं बारंबार वा **पर्याप्ति नामा अधिकार** विषैं व्याख्यान करैंगैं, यातैं इहां विस्तार रूप नांही कीया है।

मार्गणा शब्द का अर्थ कहै हैं—जिन विषैं तथा जिनकरि जीव देखिये हैं ते चौदह मार्गणा हैं—१. गति, २. इन्द्रिय,

दर्शनलेश्याभव्यसम्यक्त्वसंज्ञ्याहाराः। एतासामपि स्वरूपं तत्रैव व्याख्यास्यामः। जीवस्थानानि चैकेन्द्रियबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्त-द्वीन्द्रियपर्याप्तापर्याप्त-त्रीन्द्रियपर्याप्तापर्याप्त-चतुरिन्द्रियपर्याप्तापर्याप्त-पंचेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः। **कुल**—कुलानि जातिभेदाः, वटपलाशशंखशुक्तिमत्कुण-पिपीलिकाभ्रमरपतङ्गमत्स्यमनुष्यादयः, सीमन्तकादिनारकभेदाः, भवनादिदेवविशेषाश्च। **आऊ**—आयुः देहधारणं, नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिस्थिति-कारणानि। **जोणि**—योनयः जीवोत्पत्तिस्थानानि, सचित्ताचित्तमिश्रशीतोष्णमिश्रसंवृतविवृतमिश्राणि। एतेषां संख्याविशेषमुत्तरत्र व्याख्यास्यामः। कायाश्चेन्द्रियाणि च गुणस्थानानि च मार्गणाश्च कुलानि चायुश्च योनयश्च कायेन्द्रियगुणमार्गणाकुलायुर्योनयस्तासु तान् वा। **सव्वजीवाणं**—सर्वे च ते जीवाश्च सर्वजीवाः। सर्वशब्दः कात्स्न्र्यवचनः जीवाः द्रव्यप्राणभावप्राणधारणसमर्थाः, तेषां सर्वजीवानाम्। **णाऊण**—ज्ञात्वा स्वरूपमवबुध्य। **ठाणादिसु**—स्थानं कायोत्सर्गः स आदिर्येषां ते स्थानादयस्तेषु स्थानादिषु, स्थानासनशयनगमनभोजनोद्वर्तनाकुंचनप्रसारणादिक्रियाविशेषेषु। **हिंसा**—प्राणव्यपरोपणं आदिर्येषां ते हिंसादयस्तेषां विवर्जनं हिंसादिविवर्जनं वधपरितापमर्दनादिपरिहरणमहिंसा। एतदहिंसाव्रतं कायेन्द्रियगुण-मार्गणाकुलायुर्योनिविषयेषु स्थितानां जीवानां कार्योत्सर्गादिषु प्रदेशेषु प्रयत्नवतो हिंसादिवर्जनं यत्तदहिंसाव्रतं स्यात्। अथवा कायेन्द्रियादीन् ज्ञात्वा

---

३. काय, ४. योग, ५. वेद, ६. कषाय, ७. ज्ञान, ८. संयम, ९. दर्शन, १०. लेश्या, ११. भव्य, १२. सम्यक्त्व, १३. संज्ञी, १४. आहार। इनका भी स्वरूप तहां पर्याप्ति अधिकार विषैं ही व्याख्यान करैंगें।

जीवस्थान कहिये हैं—एकेन्द्रिय विषैं वादर पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त, अपर्याप्त—अैसें च्यारि, द्वींद्रियविषैं पर्याप्त, अपर्याप्त—अैसें दोय, तेंइन्द्रिय विषैं पर्याप्त, अपर्याप्त—अैसे दोय, चोइन्द्रिय विषैं पर्याप्त, अपर्याप्त—अैसे दोय, पंचेंद्रिय विषैं संज्ञी पर्याप्त, अपर्याप्त, असंज्ञो पर्याप्त, अपर्याप्त—अैसें च्यारि या प्रकार जीवस्थान चौदह कहै हैं।

कुल शब्द का अर्थ कहैं हैं—कुल नाम जाति भेद का है। जैसे वट, पलास—इत्यादिक एकेन्द्रिय के, शङ्ख, सूक्ति (सीप) इत्यादिक द्विन्द्रिय के, मत्, कुर्णा, पिपीलिका इत्यादिक—तैइंद्रिय कैं, भ्रमर, पतंग इत्यादिक चौइंद्रिय के, मत्स्य, मनुष्यादिक, सीमन्तकादिक—नरकभेद, भवनादिक—देवनि विशेष—ए पंचेन्द्रिय के कुलभेद जानने।

आयु का अर्थ कहे हैं—आयु नाम देह धारण का हैं सो ही नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देवगति इनिकी स्थिति का कारण हैं।

योनि शब्द का अर्थ कहैं हैं—योनि कहिये जीवन के उपजनैं के स्थान सचित्त, अचित्त, मिश्ररूप तथा शीत, उष्ण, मिश्र-रूप तथा संवृत्त, विवृत मिश्र—अैसें नव योनि हैं। इनकी विशेष संख्या आगानैं व्याख्यान करैंगें। इहां काय, इंद्रिय, गुणस्थान, मार्गणा, कुल, आयु, योनि—इनका द्वन्द समास करना। इन विषैं सर्व जीवनिकूं जानिकरि तथा सर्वजीवनिके कायादिक जानकरि हिंसा का परिहार करनां, द्रव्यप्राण, भावप्राण धारणैं विषैं समर्थ ते जीव कहिए। समस्त जे जीव ते सर्व जीव कहिए। तिन सर्व जीवनिका स्वरूप जानिकरि हिंसा का परिहार करना।

अवस्थानादिषु—याका अर्थ कहिये हैं। स्थान नाम कायोत्सर्ग का है, सो है आदि जिनकै अैसे स्थान—आसन, शयन, गमन, भोजन, उद्वर्तन, आकुञ्चन, प्रसारण[1]—इत्यादिक जे क्रिया विशेष हैं, तिन विषैं हिंसा कहिए प्राण का व्यपरोपण, 'आदि' शब्दकरि वध, परिताप, मर्दन इत्यादिक दुःखदायी क्रिया का परिहार सो अहिंसा व्रत कहिये तथा संक्षेप काय, इन्द्रिय, गुणस्थान, मार्गणा, स्थान, कुल, आयु, योनि—इनिकैं विषैं तिष्ठतैं जे जीव तिनका कायोत्सर्गादिक प्रदेशनि विषैं जतनाचारीकैं हिंसादिक का

स्थानादिषु क्रियासु जीवानां हिंसादिविवर्जनमहिंसा । कायादिस्वरूपेण स्थितानां जीवानां हिंसादिपरिहरणमहिंसेति भावः ।।

द्वितीयस्य व्रतस्य स्वरूपमाह—

रागादीहिं असच्चं चत्ता परतावसच्चवयणुत्ति ।
सुत्तत्थाणविकहणे अयधावयणुज्झणं सच्चं ।। ६ ।।

रागादीहिं—रागः स्नेहः स आदिर्येषां ते रागादयस्तै रागादिभिः रागद्वेषमोहादिभिः पैशून्येर्ष्यादिभिश्च । **असच्चं**—असत्यं मृषाभिधानम् । **चत्ता**—त्यक्त्वा परिहृत्य । **परतावसच्चवयणुत्ति**—परतापसत्यवचनोक्ति परतापसत्यवचनमिति वा । परान् प्राणिनः तपति पीडयति परतापं, परतापं च तत्सत्यवचनं च परतापसत्यवचनम् । येन सत्येनापि वचनेन परेषां परितापादयो भवन्ति तत्सत्यमपि त्यक्त्वा । **अयधावयणुज्झणं**—न यथा अयथा तच्च तद्वचनं चायथावचनं अपरमार्थवचनं । द्रव्यक्षेत्रकालभावाद्यनपेक्षं सर्वथास्त्येवेत्येवमादिकं तस्य सर्वस्य उज्झनं परिहरणमयथावचनोज्झनं सदाचाराचार्यान्यथार्थकथने दोषाभावो वा सत्यमिति सम्बन्धः । **सुत्तत्थाणविकहणे**—सूत्रं द्वादशाङ्गचतुर्दशपूर्वाणि, अर्थो जीवादयः पदार्थास्तयोर्विकथनं प्रतिपादनं तस्मिन् सूत्रार्थविकथने, सूत्रस्य अर्थस्य च विकथने अयथावचनस्योत्सर्गोऽन्यथा न प्रतिपादनम् । सदाचारस्याचार्यस्य स्खलने दोषाभावो वा । **सच्चं**—सत्यमिति । रागादिभिरसत्यमभिधानमभिप्रायं च त्यक्त्वा, परितापकरं सत्यमपि त्यक्त्वा सूत्रार्थान्यथाकथनं च त्यक्त्वा आचार्यादीनां वचनस्खलने दोषं वा त्यक्त्वा यद्वचनं तत्सत्यव्रतमिति ।

वर्जना सो अहिंसा व्रत कहिये । अथवा काय इंद्रियादिकनकूं जानि स्थानादिक क्रिया के विषैं जीवन की हिंसादिक का त्याग सो अहिंसा कहिए तथा कायादिक स्वरूपकरि तिष्ठते जीवन की हिंसादिक का परिहार सो अहिंसा कहिये । ऐसा भाव जाननां ।

आगैं दूजा व्रत का स्वरूप कहै हैं—

अर्थ—रागादिक करि असत्यवचनकूं छोड़ि पर कूं संताप करै—ऐसा सत्यवचनकूं छोरि सूत्र-अर्थ के कहनें विषैं अथवा वचन का छोड़ना सो सत्यमहाव्रत कहिये ।। ६ ।।

टीका—रागादिक का अर्थ कहै हैं—राग नाम स्नेह का है, सो है आदि जिनकैं ऐसे राग-द्वेष, मोह इत्यादिक तथा पैशून्य, ईर्षा—इत्यादिक करि असत्यवचन नांही कहै तथा परप्राणोनकूं तपावैं, पीडै—ऐसा सत्यवचन कहूं नांही कहैं । यथा नांही सो अयथा कहिए—ऐसा अयथा वचन कहिये । अपरमार्थ वचन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादिक की अपेक्षा बिनां हूं सर्वथा सत् रूप ही है, सर्वथा असत् रूप हो है इत्यादिक सर्व एकांतपक्ष का छोड़ना सो अयथा वचन का त्याग कहिये । अथवा समोचोन है आचार जिनका ऐसे आचार्य कोई नय विवक्षातैं तथा स्खलनें तैं अन्यथा अर्थ कहै तौहू द्वेष न कहनां सो सत्य कहिये । तथा सूत्र कहिये द्वादशांग, चतुर्दश पूर्व, अर्थ कहिये, जीवादिक पदार्थ इनका विकथन कहिये प्रतिपादन ताकैं विषैं अयथा वचन कूं छोरौ, अन्यथा प्रतिपादन नांही करै तथा समोचीन है आचार जिनका ऐसे आचार्य सूत्र का अर्थ कहनें विषैं स्खलित होय तौहूं आपकै दोष भाव नाहीं सो सत्यमहाव्रत कहिये । तथा संक्षेप—रागादिक करि असत्य बोलनां तथा अभिप्राय छोरिकरि तथा परजीवकै ताप करनैं

तृतीयव्रतस्वरूपनिरूपणायाह—

गामादिसु पडिदाइं अप्पप्पहुदिं परेण संगहिदं ।
णादाणं परदव्वं अदत्तपरिवज्जणं तं तु ।। ७ ।।

गामादिसु—ग्रामो वृत्तिपरिक्षिप्तजननिवासः स आदिर्येषां ते ग्रामादयस्तेषु ग्रामादिषु ग्रामखेटकर्वटमटंवनगरोद्यानपथिशैलाटव्यादिषु। **पडिदाइं**—पतितमादिर्येषां तानि पतितादीनि पतितनष्टविस्मृतस्थापितादीनि। **अप्पप्पहुदिं**—अल्पं स्तोकं प्रभृतिरादिर्येषां तान्यल्पप्रभृतीनि स्तोक-बहुसूक्ष्मस्थूलादीनि। **परेण**—अन्येन। **संगहिदाइं**—संगृहीतानि चात्मवशकृतानि च क्षेत्रवास्तुधनधान्यपुस्तकोपकरणच्छात्रादीनि तेषां सर्वेषां। **णादाणं**—नादानं न ग्रहणं आत्मीयकरणविवर्जनम्। **परदव्वं**—परद्रव्याणां। **अदत्तपरिवज्जणं**—अदत्तस्यापरित्यक्तस्यानभ्युपगतस्य च परिवर्जनं परिहरणं अदत्तपरिवर्जनं, अदत्तग्रहणेऽभिलाषाभावः। **तं तु**—तदेतत्। परद्रव्याणां ग्रामादिषु पतितादीनामल्पबह्वादीनां परेण संगृहीतानां च यदेतन्नादानमग्रहणं तददत्तपरिवर्जनं व्रतमिति। अथवा परद्रव्यं परेण संगृहीतं च ग्रामादिषु पतितादिकं चाल्पादिकं च नादानं नादेयं आत्मीयं न कर्तव्यमिति योऽयमभिप्रायस्तददत्तपरिवर्जनं नामेति ।।

चतुर्थव्रतस्वरूपनिरूपणायाह—

मादुसुदाभगिणीव य दट्ठूणित्थित्तियं च पडिरूवं ।
इत्थिकहादिणियत्ती तिलोयपुज्जं हवे बंभं ।। ८ ।।

वाला ऐसा सत्यवचन हूँ छोरिकरि सूत्र अर्थ का अयथा कथन कौं छोरिकरि तथा आचार्यादिकनि का वचन स्खलित होतैं दोष भावकूं छोरिकरि जो वचन बोलना सो **"सत्यमहाव्रत"** कहिये।

आगै तीसरे व्रत का स्वरूप निरूपणकैं अर्थि कहै है—

अर्थ—ग्रामादिक के विषैं पड्या गया, भूल्या, धरा इत्यादिक रूप अल्प, बहु, सूक्ष्म, स्थूल वस्तु तथा पैलेनैं संग्रह किया परद्रव्यता का नांही ग्रहण करना सो अदत्तपरिवर्जन महाव्रत है ।। ७ ।।

टीका—कांटेनिकी वाडिकरि बेढ्या जो मनुष्यनिका निवास सो ग्राम कहियें। 'आदि' शब्द तैं खेट, कवर्ट मंटंब, नगर, उद्यान, पथ, शैल, अटवी इत्यादिक लेनैं—इन विषैं पतित कहिए पड्याहुवा, वा नष्ट कहिये किसी का जाता रह्या, विस्मृत कहिए कोउ धरिकरि भूल गया, स्थापित कहिये किसी नैं धर्या इत्यादिक अनेक प्रकार, अल्प-प्रभृति कहिए, थोरा बहुत, स्थूल सूक्ष्म वस्तु तथा पैलेनैं संग्रह कीये आपकै बसि कीये जे क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, पुस्तक, उपकरण, शिष्य—इत्यादिक समस्त परद्रव्य का ग्रहण नांही करनां। अदत्त कहिये। पैलेनैं दीया नांहीं तथा देने का मन नांही ताका परिवर्जन सो अदत्तपरिवर्जन कहिये। अदत्त का ग्रहण विषैं अभिलाष का अभाव तथा संक्षेप—परद्रव्य, ग्रामादिक कैं विषैं पड्या इत्यादिक अल्प, बहुतनैं आदि-दे तथा पैलेनैं संग्रह कीये ताका ग्रहण नांही करनां सो अदत्तपरिवर्जन व्रत कहिये अथवा परद्रव्य तथा पैलेनैं संग्रह कीया सो ग्रामादिक कैं विषैं पड्या इत्यादिक अल्पादिक ताकूं अपनां न करना ऐसा जो अभिप्राय सो अदत्तपरिवर्जन नाम महाव्रत कहिये।

मादु—माता जननी । **सुदा**—सुता दुहिता । **भगिणीव य**—भगिनी स्वसा । इवौपम्ये द्रष्टव्य इवशब्द उपमार्थः चशब्दः समुच्चयार्थः । **दट्ठूण**—दृष्ट्वा सम्यक् ज्ञात्वा । **इत्थित्तियं**—स्त्रीणां त्रिकं वृद्धबालयौवनभेदात् । **पडिरूवं च**—प्रतिरूपं च । चित्रलेपभेदादिषु स्थितं प्रतिबिंबं देवमनुष्यतिरश्चां च रूपं । **इत्थिकहादिणियत्ती**—स्त्रीकथा आदिर्येषां ते स्त्रीकथादयस्तेभ्यो निवृत्तिः परिहारः स्त्रीकथादिनिवृत्तिः वनिताकोमलालाप-मृदुस्पर्श-रूपालोकन-नृत्यगीतहासकटाक्षनिरीक्षणाद्यनुरागत्यागः । अथवा स्त्रीभक्तराजचौरकथानां परित्यागः रागादिभावेन तत्र प्रबन्धाभावः । **तिलोयपुज्जं**—त्रिभिर्लोकैः पूज्यं त्रिलोकपूज्यं देवभावनमनुष्यैरर्चनीयम् । हवे—भवेत् । **बंभं**—ब्रह्मचर्यम् । देवमनुष्यतिरश्चां वृद्धबालयौवनस्वरूपं स्त्रीत्रिकं दृष्ट्वा यथासंख्येन माता सुता भगिनीव चिन्तनीयम् । तेषां प्रतिरूपाणि च तथैव चिन्तनीयानि । स्त्रीकथादिकं च वर्जनीयम् । अनेन प्रकारेण सर्वपूज्यं ब्रह्मचर्यं नवप्रकारमेकाशीतिभेद द्वाषष्ट्यधिकं शतं चेति ॥

पंचमव्रतस्वरूपपरीक्षार्थमुत्तरसूत्रमाह—

जीवणिबद्धाऽबद्धा परिग्गहा जीवसंभवा चेव ।
तेसिं सक्कच्चागो इयरम्हि य णिम्ममोऽसंगो ॥ ९ ॥

आगैं चतुर्थ व्रत का स्वरूप के निरूपण कैं अर्थि गाथा कहे हैं—

अर्थ—वृद्धा, बाला, यौवनवती स्त्रीनिकूं तथा तिनके प्रतिरूप कूं देखिकरि माता, पुत्री, बहण समान तिनकों जानिकरि स्त्रीकथादिक की निवृत्ति सो तीन लोक पूज्य ब्रह्मचर्य कहिए ॥ ८ ॥

टीका—स्त्रीत्रिक का अर्थ वृद्धा, बाला, यौवनवती—तीन प्रकार स्त्री जाननी । तहां वृद्धा स्त्री कौ माता, समान जानैं, बाला स्त्री कौ पुत्री समान जानें, यौवनवती कौ बहण समान जानैं। इहां 'इव' शब्द का अर्थ उपमां जाननां । 'च' शब्द का अर्थ समुच्चय जाननां तथा इनके प्रतिरूप चित्रभेद, लेपभेद—इत्यादिक विषैं तिष्टते प्रतिबिंब तिनकौं देखि तथा देव, मनुष्य, तिर्यंचनिके रूपन कौं देखि ऐसें ही जानैं । बहुरि स्त्रीकथादिक का परिहार करै । स्त्री का कोमल आलाप विषैं तथा कोमल स्पर्श विषैं तथा रूप के आलोकन विषैं बहुरि नृत्य, गीत, हास्य, कटाक्ष निरीक्षण इत्यादिक विषैं अनुराग का छोडनां अथवा स्त्री संबंधी, भोजन संबंधी, राज संबंधी, चोर संबंधी कथा का परित्याग करनां, रागादिक भावनि करि कथा का प्रबंधन करनां—सो यह देव, भवनवासी, मनुष्य तीन्यूं लोककरि पूज्य ब्रह्मचर्य नाम चौथा महाव्रत है। तथा संक्षेप—देव, मनुष्य तिर्यंचनिकी वृद्धा, बाला, यौवनवती स्त्री कूं देखि तथा तिनके प्रतिरूपनि देखि माता, बहन, पुत्री समान जानैं स्त्रीकथादिक करै नाहीं, ऐसे सर्वपूज्य नव प्रकार तथा इक्यासी प्रकार तथा एकसौ बासठि प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत जाननां ।

आगैं पंचमव्रत का स्वरूप की परीक्षा कैं अर्थि उत्तर सूत्र कहै हैं—

अर्थ—जीव-निबद्ध अन्तरंग परिग्रह तथा चेतन परिग्रह तथा अबद्ध अचेतन परिग्रह तथा जीव-संभव मुक्ताफलादिक ताका शक्ति प्रगटकरि त्याग करना । अर इतर जे संयम, ज्ञान, शौंच के उपकरण तिनकैं विषैं ममत्व रहितपणा सो असंगव्रत कहिये ॥ ९ ॥

जीवणिबद्धा—जीवेषु प्राणिषु निबद्धाः प्रतिबद्धा जीवनिबद्धाः प्राण्याश्रिता मिथ्यात्व-वेद राग-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-क्रोध-मान-माया-लोभादयः दासीदासगोऽश्वादयो वा । **अबद्धा**—अप्रतिबद्धा अनाश्रिता जीवपृथग्भूताः क्षेत्रवास्तुधनधान्यादयः । **परिग्गहा**—परिग्रहाः समन्तत आदानरूपा मूर्च्छा । **जीवसम्भवा**—जीवेभ्यः सम्भवो येषां ते जीवसम्भवा जीवोद्‌भवा मुक्ताफलशङ्खशुक्तिचर्मदन्तकम्बलादयः क्रोधादयो वा श्रामण्यायोग्याः । **चेव**—चैव । **तेसिं**—तेषां सर्वेषां पूर्वोक्तानां । **सक्कच्चागो**—शक्त्या त्यागः सर्वात्मस्वरूपेणानभिलाषः सर्वथापरिहारः । अथवा तेषां सङ्गानां परिग्रहाणां त्यागः पाठान्तरम् । **इयरम्हि य**—इतरेषु च संयमज्ञानशौचोपकरणेषु । **णिम्ममो**—निर्मम ममत्वरहितत्वं निःसंगत्वम् । **असंगो**—असङ्गव्रतत्वम् । किमुक्तं भवति—जीवाश्रिता ये परिग्रहा ये चानाश्रिताः क्षेत्रादयः जीवसम्भवाश्च ये तेषां सर्वेषां मनोवाक्कायैः सर्वथा त्यागः इतरेषु च संयमाद्युपकरणेषु च असङ्गमतिमूर्च्छारहितत्वमित्येतदसङ्गव्रतमिति ॥

पञ्चमहाव्रतानां स्वरूपं भेदं च निरूप्य पञ्चसमितीनां भेदं स्वरूपं च निरूपयन्नाह—

इरिया भासा एसण णिक्खेवादाणमेव समिदीओ ।
पदिठावणिया य तहा उच्चारादीण पंचविहा ॥ १० ॥

इरिया—ईर्या गमनागमनादिकं । **भाषा**—भाषा वचनं सत्यमृषा-सत्यमृषाऽसत्यमृषाप्रवृत्तिकारणम् । **एसणा**—एषणा चतुर्विधाहारग्रहणवृत्तिः । **णिक्खेवादाणं**—निक्षेपो ग्रहीतस्य संस्थापनं आदानं स्थितस्य ग्रहणं निक्षेपादाने एवकारोऽवधारणार्थः । **समिदीओ**—समितयः

टीका—जीव कहिये प्राणी तिनकै विषैं निबद्ध कहिए आश्रित देह, मिथ्यात्व, वेद, राग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ—इत्यादिक तथा दासीदास, बैल, घोड़े—इत्यादिक ते जीव निबद्ध कहिए, ये जीव तैं पृथग्भूत क्षेत्र, वास्तु, धन-धान्य—इत्यादिक अबद्ध परिग्रह—इनका सर्वप्रकार ग्रहण करनें रूप मूर्छा सो परिग्रह है। तथा जीवनतै हैं संभव कहिए उत्पत्ति जिनकी अैसे मोती, शंख, सीप, चरम, दांत, कंवल—इत्यादिक तथा क्रौधादिक मुनि पदवी अयोग्य तिन सबनिका शक्तिप्रगटकरि त्याग करनां, सर्वात्मस्वरूपकरि अभिलाष नांही करना, सर्वथा परिहार करनां। इतर कहिए संयम के, ज्ञान के, शौच के उपकरण तिनकैं विषैं ममत्व रहितपणा सो असङ्ग महाव्रत कहिए। तथा संक्षेप—जीवाश्रित परिग्रह, अनाश्रित क्षेत्रादिक तथा जीवसंभव इन सबनिका मन, वचन, कायकरि सर्वथा त्याग करनां, संयमादिक के उपकरण विषैं मूर्छा रहितपणां सो असंगव्रत है।

अैसे पंचमहाव्रतनिका स्वरूप तथा भेद निरूपणकरि—आगैं पंचसमितिनिका भेद तथा स्वरूप निरूपण करता सन्ता कहै हैं—

अर्थ—ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, निक्षेपादान कहिए आदाननिक्षेपणा समिति अर उच्चारादि कहिए मूत्र-पुरीषादिक, तिनकी प्रतिष्ठापना कहिए खेपना सो प्रतिष्ठापना समिति—अैसे पंचप्रकार समिति जाननी ॥ १० ॥

टीका—ईर्या नाम—गमन-आगमनादिक का है। भाषा नाम—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय—वचन का है। एषणा नाम च्यारि प्रकार आहार ग्रहण की प्रवृत्ति का है। निक्षेप नाम ग्रहणकरी वस्तु धरनें का है। आदान नाम—धरीवस्तु ग्रहण

सम्यक्प्रवृत्तयः । समितिशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते, ईर्यायाः समितिः ईर्यासमितिः सम्यगवलोकनं समाहितचित्तस्य प्रयत्नेन गमनागमनादिकम् । भाषायाः समितिः भाषासमितिः श्रुतधर्माविरोधेन पूर्वापरविवेकसहितमनिष्ठुरादिवचनम् । एषणायाः समितिरेषणासमितिः लोकजुगुप्सादिपरिहीन-विशुद्धपिण्डग्रहणम् । निक्षेपादानयोः समितिर्निक्षेपादानसमितिश्चक्षुःपिच्छकप्रतिलेखनपूर्वकसयत्नग्रहणनिक्षेपादिः । **पदिठावणिया य**—प्रतिष्ठापनिका च, अत्रापि समितिशब्दः सम्बन्धनीयः, प्रतिष्ठापनासमितिर्जन्तुविवर्जितप्रदेशे सम्यगवलोक्य मलाद्युत्सर्गः । **तहा**—तथैव । **उच्चारादीण**—उच्चारादीनां मूत्रपुरीषादीनां प्रतिष्ठापना सम्यक्परित्यागो यः सा प्रतिष्ठापनासमितिः । **पञ्चविहा एव**—पंचप्रकारा एव समितयो भवन्तीत्यर्थः ।

सामान्येन पंचसमितीनां स्वरूपं निरूप्य विशेषार्थमुत्तरमाह—

फासुगमग्गेण दिवा जुंगतरप्पेहिणा सकज्जेण ।
जंतूणि परिहरंतेणिरियासमिदि हवे गमणं ।। ११ ।।

फासुगमग्गेण—प्रगता असवो जीवा यस्मिन्नसौ प्रासुकः प्रासुकश्चासौ मार्गश्च प्रासुकमार्गो निरवद्यः पंथास्तेन प्रासुकमार्गेण, गजखरोष्ट्रगोमहिषीजनसमुदायोपमर्दितेन वर्त्मना । **दिवा**—दिवसे सूरोद्गमे प्रवृत्तचक्षुःप्रचारे । **जुगन्तरप्पेहिणा**—युगान्तरं चतुर्हस्तप्रमाणं प्रेक्षते पश्यतीति युगान्तरप्रेक्षी तेन **युगान्तरप्रेक्षिणा** सम्यगवहितचित्तेन पदनिक्षेपप्रदेशमवलोकमानेन । **सकज्जेण**—कार्यं प्रयोजनं शास्त्रश्रवणतीर्थयात्रागुरुप्रेक्षणादिकं सह कार्येण वर्तते इति सकार्यस्तेन सकार्येण सप्रयोजनेन धर्मकार्यमन्तरेण न गन्तव्यमित्यर्थः । **जन्तूणि**—जन्तून् जीवान् एकेन्द्रिय-

---

करनें का है । निक्षेप अर आदान ताका नाम आदान निक्षेपण है । 'एव' अैसे शब्द का नियम रूप अर्थ है । भलै प्रकार प्रवृत्ति का नाम समिति है । समिति शब्द का एक-एक पद प्रतिसंबंध करनां । ईर्या की समिति सो ईर्या समिति कहिए नीकैं मार्गादिक देखि चित्त समाधान करि गमन-आगमनादिक करनां सो ईर्य्या समिति है । भाषा की समिति सो भाषा समिति कहिये । आगम तथा धर्म का अविरोध करि पूर्वापर विवेक सहित निष्ठुरतादि दोष रहित बोलनां सो भाषा समिति कहिए । एषणा की समिति सो एषणा समिति कहिये । लोक, जुगुप्सा आदि करि रहित विशुद्ध आहार का ग्रहण करनां सो एषणा समिति कहिये । नेत्रनि तैं देखि पीछी तैं प्रतिलेखनकरि यत्न सहित ग्रहण-निक्षेपण करनां सो आदाननिक्षेपण समिति कहिए । याकौं निक्षेपादान समिति भी कहिए । जंतु वर्जित प्रदेश विषैं नीकैं देखिकरि मूत्र-पुरोष आदि देहकैं मलका यत्नाचारकरि छोड़नां सो प्रतिष्ठापना समिति कहिए ।

अैसे पंचप्रकार समितिनिका निरूपणकरि विशेष कथन के अर्थि सूत्र कहे हैं—

अर्थ—प्रासुक मार्गकरि दिन विषैं च्यारि हाथ प्रमाण देखिकरि कार्य सहित प्राणीनकूं न विराधता संता संयमी गमन करै सो ईर्या समिति कहो ।। ११ ।।

टीका—'प्र' कहिए प्रगट नांही विद्यमान है, 'अशु' कहिए जीव जामैं अैसा जो मार्ग सो प्राशुक मार्ग कहिए । हाथी, घोड़ा, ऊँट, बलध, भैंसि, मनुष्य-समुदाय—इनिकरि मरदल्या, निर्दोष प्राशुकमार्गकरि गमन करैं, सो दिवा कहिये-सूर्य का उदय भये नेत्रनिका प्रचार भये गमन करैं । युगांतर कहिए च्यारि हाथ प्रमाण देखि करि नीकैं सावधान चित्त होय अपने चरण धरनैं का प्रदेशनिकैं देखिकरि गमन करैं तथा शास्त्रश्रवण, तीर्थजात्रा, गुरुदर्शन इत्यादि कार्यरूप प्रयोजन करि गमन करैं । धर्म कार्य

प्रभृतीन् । **परिहरंतेण**—परिहरता अविराधयता । **इरियासमिदी**—ईर्यासमितिः । **हवे**—भवेत् । **गमणं**—गमनम् । सकार्येण युगान्तरप्रेक्षिणा संयतेन दिवसे प्रासुकमार्गेण यद्गमनं क्रियते सेर्यासमितिर्भवतीत्यर्थः । अथवा संयतस्य जन्तून् परिहरतो तद्गमनं सेर्यासमितिः ॥

भाषासमितेः स्वरूपनिरूपणायोत्तरसूत्रमाह—

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदाप्पपसंसविकहादी ।
वज्जित्ता सपरहियं भासासमिदी हवे कहणं ॥ १२ ॥

पेसुण्ण—पिशुनस्य भावः पैशुन्यं निर्दोषस्य दोषोद्भावनम् । **हास**—हसनं हासः हास्यकर्मोदयवशादधर्मार्थंहर्षः । **कक्कस**—कर्कशः श्रवणनिष्ठुरं कामयुद्धार्थप्रवर्तकं वचनम् । **परणिन्दा**—परेषां निन्दा जुगुप्सा परनिन्दा । परेषां तथ्यानामतथ्यानां वा दोषाणामुद्भावनं प्रति समीहा अन्यगुणासहनम् । **अप्पपसंसा**—आत्मनः प्रशंसा स्तवः आत्मप्रशंसा स्वगुणाविष्करणाभिप्रायः । **विकहादो**—विकथा आदिर्येषां ते विकथादयः स्त्रीकथा, भक्तकथा, चौरकथा, राजकथादयः । एतेषां पैशुन्यादीनां द्वन्द्वसमासः । **वज्जित्ता**—वर्जयित्वा परिहृत्य । **सपरहियं**—स्वश्च परश्च स्वपरौ ताभ्यां हितं स्वपरहितं, आत्मनोऽन्यस्य च सुखकरं कर्मबन्धकारणविमुक्तम् । **भासासमिदी**—भाषासमितिः । **हवे**—भवेत् । **कहणं**—कथनम् । पैशुन्यहासकर्कशपरनिन्दात्मप्रशंसाविकथादीन् वर्जयित्वा स्वपरहितं यदेतत् कथनं भाषासमितिर्भवतीत्यर्थः ॥

एषणासमितिस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

छादालदोससुद्धं कारणजुत्तं विसुद्धणवकोडी ।
सीदादीसमभुत्ती परिसुद्धा एसणासमिदी ॥ १३ ॥

बिना गमन नाही करैं । तथा एकेंद्रिय आदि जीवनिकी विराधना न करता संता गमन करै तथा संक्षेप कार्य सहित च्यारि हाथ प्रमाण देखि दिनकै विषैं प्राशुक मार्गकरि संयमी गमन करै सो ईर्या समिति कहिए । अथवा प्राणनिकौं न विराधता संता संयमो का गमन सो ईर्य्या समिति कहिए ।

आगैं निरूपणकैं अर्थि सूत्र कहै हैं—

अर्थ—पैशून्य, हास, कर्कश, परनिंदा, आत्मप्रशंसा, विकथा इत्यादिक वचन वर्ज्यकरि अपनां परका हितकारी वचन कहना सो भाषा समिति है ॥ १२ ॥

टीका—पिशुन जो दुष्ट पुरुष ताका निर्दोषकौं दोष लगावनां रूप जो भाव सो पैशून्य कहिए । हास्य कर्म के उदय के वशतैं धर्म प्रयोजन बिना हर्ष करि हसनां सो हास्य कहिए । काननिकौं सुणतैं कठोर लागैं, कामविकार वा संग्रामादिक का करावनैं वाला वचन सौ कर्कश कहिए । पैले का सांचा तथा झूंठ दोष प्रगट करनैं की वांछा, पैलेका गुण का न सहना सो परनिंदा कहिए । आपका गुण प्रगट करनै का अभिप्राय सो आत्मप्रशंसा कहिए । संयम विरुद्ध कथा, स्त्रीकथा, चोरकथा, राजकथा इत्यादिक विकथा कहिए इनिकौ आदि देकरि जे वचन तिनकौं वर्ज्यकरि अपने पराये हितकारी सुखकारी कर्मबन्ध को कारण नांही—अैसे वचन बोलनां सो भाषा समिति कहिए ।

छादालदोससुद्धं—षड्भिरधिका चत्वारिंशत् षट्चत्वारिंशत् षट्चत्वारिंशतश्च [षट्चत्वारिंशच्च] ते दोषाश्च षट्चत्वारिंशद्दोषाः तैः शुद्धं निर्मलं षट्चत्वारिंशद्दोषशुद्धं उद्गमोत्पादनैषणादिकलङ्करहितम् । **कारणजुत्तं**--कारणैर्निमित्तैर्युक्तं सहितं कारणयुक्तं असातोदयजातबुभुक्षाप्रतीकारार्थं वैयावृत्यादिनिमित्तं च । **विसुद्धणवकोडी**--नव च ताः कोटयश्च विकल्पाश्च नवकोटयः विशुद्धा निर्गता नवकोटयो यस्माद्विशुद्धनवकोटि मनोवचनकायकृतकारितानुमतिरहितम् । **सीदादि**--शीतमादिर्यस्य तच्छीतादि शीतोष्णलवणसरसविरसरूक्षादिकम् । **समभुत्ती**--समा सदृशी भुक्तिर्भोजनं समभुक्तिः । शीतादौ समभुक्तिः शीतादिसमभुक्तिः शीतोष्णादिषु भक्ष्येषु रागद्वेषरहितत्वम् । **परिसुद्धा**--समन्ततो निर्मला । **एसणासमिदी**--एषणासमितिः । षट्चत्वारिंशद्दोषरहितं यदेतत् पिण्डग्रहणं सकारणं मनोवचनकायकृतकारितानुमतिरहितं च शीदादौ समभुक्तिश्च, अनेन न्यायेनाचरतो निर्मलैषणासमितिर्भवतीत्यर्थः ।

आदाननिक्षेपसमितिस्वरूपं निरूपयन्नाह--

णाणुवहि संजमुवहिं सउचुवहिं अण्णमप्पमुवहिं ।
पयदं गहणिक्खेवो समिदी आदाणणिक्खेवा ।। १४ ।।

णाणुवहि--ज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्योपधिरुपकरणं ज्ञानोपधिर्ज्ञाननिमित्तं पुस्तकादि । **संजमुवहि**-- संयमस्य पापक्रियानिवृत्तिलक्षणस्योपधि[1]-

---

आगैं एषणा समिति का स्वरूप प्रतिपादन करता संता कहे हैं—

अर्थ—छियालीस दोषनि करि रहित कारण सहित नव कोटि करि विशुद्ध शीतोष्णादिक समभाव करि भोजन करनां सो निर्मल एषणा समिति कहिए ।। १३ ।।

टीका—सोलह उद्गम दोष, सोलह उत्पादन दोष, दस एषणा दोष, संयोजना दोष, प्रमाण दोष, अंगारदोष, धूमदोष—अैसे छियालीस दोषनिकरि रहित अरु असाता वेदनीय के उदय-करि उपजी जो क्षुधा ताके मेटनैं कै अर्थि तथा वैयावृत्यादि धर्म निमित्त अैसे कारण युक्त, बहुरि मनकरि कीया नांही, कराया नांही, अनुमोद्या नांही वचनकरि कीया नांही, कराया, अनुमोद्या नांही अैसे नव जो कोटि कहिए विकल्प-तिनितैं रहित सो नवकोटि विशुद्ध कहिए । तथा शीला, ताता, सलोंना, अलोंना, सरस, नीरस, लूखा इत्यादिक भोजन विषैं रागद्वेष रहित समभाव करि भोजन करना—अैसे आचरन करता संयमी कै निर्मल एषणा समिति होय है ।

आगैं आदाननिक्षेपण समिति का स्वरूप निरूपण करना संता कहै हैं—

अर्थ—ज्ञान का उपकरण, संयम का उपकरण, शौच का उपकरण अन्य संस्तरादि उपकरण का यत्नपूर्वक उठावनां, धरनां सो आदाननिक्षेपण समिति कहिए ।। १४ ।।

टीका—ज्ञान कहिए श्रुतज्ञान ताके निमित्त पुस्तकादि उपकरण सो ज्ञानोपधि कहिए । पापक्रिया को निवृत्ति है लक्षण

---

१. क धिः कारणं ।

रुपकरणं संयमोपधिः प्राणिदयानिमित्तं पिच्छिकादिः। **सउचुर्वाहि**--शौचस्य पुरीषादिमलापहरणस्योपधि[1]रुपकरणं शौचोपधिर्मूत्रपुरीषादिप्रक्षालन-निमित्तं कुण्डिकादिद्रव्यम्। ज्ञानोपधिश्च संयमोपधिश्च शौचोपधिश्च ज्ञानोपधिसंयमोपधिशौचोपधयस्तेषां ज्ञानाद्युपधीनाम्। **अण्णमवि**--अन्यस्यापि संस्तरादिकस्य। **उवहिं वा**--उपधेर्वा उपकरणस्य संस्तरादिनिमित्तस्य उपकरणस्य प्राकृतलक्षणबलादत्र षष्ठीविभक्तिर्द्रष्टव्या। **पयदं**—प्रयत्नेनोपयोगं कृत्वा। **गहणिक्खेवो**—ग्रहणं ग्रहः निक्षेपणं निक्षेपः, ग्रहश्च निक्षेपश्च ग्रहनिक्षेपौ। **समिदी**—समितिः। **आदाणणिक्खेवा**—आदाननिक्षेपौ। ज्ञानोपधिसंयमोपधिशौचोपधीनामन्यस्य चोपधेर्यत्नेन यौ ग्रहणनिक्षेपौ प्रतिलेखनपूर्वकौ सा आदाननिक्षेपा समितिर्भवतीत्यर्थः।

पंचमसमितिस्वरूपनिरूपणायाह—

एगंते अच्चित्ते दूरे गूढे विसालमविरोहे।
उच्चारादिच्चाओ पदिठावणिया हवे समिदी ॥ १५ ॥

एगन्ते—एकान्ते विजने यत्रासंयतजनप्रचारो नास्ति। **अच्चित्ते**—हरितकायत्रसकायादिविविक्ते दग्धे—दग्धसमे स्थण्डिले। **दूरे**—ग्रामादिकाद्विप्रकृष्टे प्रदेशे। **गूढे**—संवृते जनानामचक्षुर्विषये। **विसालं**—विशाले विस्तीर्णे विलादिविरहिते। **अविरोहे**—अविरोधे यत्र लोकापवादो नास्ति। **उच्चारादि**—उच्चारो मलं आदिर्यस्य स उच्चारादिस्तस्य उच्चारादेः मूत्रपुरीषादेः। **चाओ**—त्यागः। **पदिठावणिया**—प्रतिष्ठापनिका। **हवे**—समितिः। **समिदि**—एकान्तचित्तदूरगूढविशालाविरोधेषु प्रदेशेषु यत्नेन कायमलादेर्यस्त्यागः सा उच्चारप्रस्रवणप्रतिष्ठापनिका समितिर्भवतीत्यर्थः।

जाका ऐसा जो संयम ताका उपकरण, प्राणिनिकी दया के निमित्त पोछी आदिक सो संयमोपधि कहिए। मूत्रपुरीषादि देह का मलका प्रक्षालन रूप जो शौच ताका उपकरण कमंडलु आदि शौचोपधि कहिए। अन्य संस्तर आदिक का निमित्त जो उपकरण सो अन्योपधि कहिए। तिनका यत्नाचार तैं उपयोग लगाय पीछी तैं प्रतिलेखन पूर्वक उठावनां-धरना सो आदाननिक्षेपणां समिति कहिए।

आगैं प्रतिष्ठापना समिति के स्वरूप के निरूपण कैं अर्थि कहै हैं—

अर्थ—एकान्त, अचित्त, दूर, गूढ, विशाल, अविरोध—ऐसे प्रदेश विषै मूत्रपुरीषादिक देह के मलका यत्नाचार करि छोड़नां सो प्रतिष्ठापना समिति कहिए ॥ १५ ॥

टीका—जहां असंयमीजन का प्रचार नांही ऐसा स्थान सो एकान्त कहिए। हरितकाय, त्रसकाय इत्यादिक करि जुदा दग्ध रूप तथा दग्ध समान **टीवा (ढीवा)** ऐसा स्थान जो अचित्त कहिए। ग्राम, नगरादिक तैं बहुत दूरा ऐसा प्रदेश सो दूर कहिए। मनुष्यनिकैं नेत्र गोचर नांही ऐसा छिप्या हुवा प्रदेश सो गूढ कहिए। विस्तीर्ण चौड़ा बिल, छिद्र इत्यादिक रहित प्रदेश सो विशाल कहिए। जहां लोक निंदै नांही, विरोध करै नांही, ऐसा प्रदेश सो अविरोध कहिए। ऐसे छह विशेषण सहित प्रदेश कै विषैं मूत्र-पुरीष आदि देह के मलका क्षेपनां सो प्रतिष्ठापनां समिति कहिए।

१. क धिः कारणं।

इन्द्रियनिरोधव्रतस्वरूपनिरूपणायोत्तरविभागसूत्रमाह—

चक्खु सोदं घाणं जिब्भा फासं च इंदिया पंच ।
सगसगविसएहिंतो णिरोहियव्वा सया मुणिणा ॥ १६ ॥

चक्खु—चक्षुः । **सोदं**—श्रोत्रम् । **घाणं**—घ्राणम् । **जिब्भा**—जिह्वा । **फासं**—स्पर्शः । च समुच्चयार्थः । **इंदिया**—इन्द्रियाणि मतिज्ञानावरणक्षयोपशमशक्तयः । इन्द्रियं द्विविधं द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं चेति । तत्र द्रव्येन्द्रियं द्विविधं निर्वृत्तिरूपकरणं च । कर्मणा निर्वर्त्यते इति निर्वृत्तिः, सा च द्विविधा बाह्याभ्यन्तरा चेति उत्सेधाङ्गुलासंख्येयभागप्रतिमानां शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनस्पर्शनेन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानां वृत्तिराभ्यन्तरा निर्वृत्तिः । तेषु आत्मप्रदेशेषु इन्द्रियव्यपदेशभाग् यः प्रतिनियतसंस्थाननामकर्मोदयापादितावस्थाविशेषः पुद्गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृत्तिः । येन निर्वृत्तेरुपकारः क्रियते तदुपकरणं । तदपि द्विविधं आभ्यन्तरबाह्यभेदेन । तत्राभ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलं । बाह्यमक्षिपत्रपक्ष्मद्वयादि । एवं श्रोत्रेन्द्रियघ्राणेन्द्रियरसनेन्द्रियस्पर्शनेन्द्रियाणां वक्तव्यं बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वैविध्यम् । भावेन्द्रियमपि द्विविधं लब्ध्युपयोगभेदेन । लम्भनं लब्धिः । का पुनरसौ ज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमविशेषः । यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिं प्रति व्याप्रियते सा लब्धिः । तन्निमित्त आत्मनः परिणाम उपयोगः कारणधर्मस्य कार्ये दर्शनात् । वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमांगोपांगनामलाभावष्टम्भबलादात्मना

आगैं इन्द्रियनिरोध व्रत के स्वरूपका निरूपण कै अर्थि उत्तर विभाग सूत्र कहै हैं—

अर्थ—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, स्पर्श—ए पाँच इन्द्रिय हैं। ते अपनें अपनें विषयनि तैं सदा काल मुनिकरि निरोध करना ॥ १६ ॥

टीका—चक्षुः कहिए नेत्र, श्रोत्र कहिए–कर्ण, घ्राण कहिए–नासिका, जिह्वा कहिए–जीभ, स्पर्श कहिए स्पर्शन—अैसे पाँच इंद्रिय हैं। ते मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम शक्ति रूप जाननी। 'चकार' हैं सो समुच्चय कै अर्थि है। इन्द्रिय दोय प्रकार है—द्रव्यैंद्रिय, भावैंद्रिय। तहां द्रव्यैंद्रिय दो प्रकार हैं—निवृत्ति, उपकरण। कर्मकरि निर्वर्तते कहिए रचिये सो निर्वृत्ति जाननी। सो निर्वृत्ति दोय प्रकार—एक वाह्य निर्वृति, एक आभ्यंतर निर्वृति। तहाँ उत्सेधांगुल कै असंख्यातवैं भाग प्रमाण प्रतिनियतचक्षुः श्रोत-घ्राण-रसन-स्पर्शन इंद्रियनिका आकारकरि अवस्थितभये जे शुद्ध आत्मप्रदेश तिनिकी ज्यो वृत्ति सो आभ्यंतर निवृत्ति कहिए। तिनि आत्मप्रदेशनिकै विषैं इन्द्रिय नाम का धरनहार प्रतिनियत है आकार जाका अर नामकर्म के उदयकरि पायो है अवस्था विशेष जानें अैसा पुद्गल का प्रचय सो बाह्यनिवृत्ति कहिए। जाकरि निवृत्ति का उपकार करिये सो उपकरण कहिए। सो अभ्यन्तर-बाह्य के भेदकरि दोय प्रकार जाननां। तहां नेत्रनि विषैं काला, धौला मण्डल सो अभ्यन्तर उपकरण कहिये। इसकै वारै डोला, वांफणी (भौंह आदि) इत्यादि सो बाह्य उपकरण कहिए। अैसे ही श्रोत्रइन्द्रिय, घ्राणइन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय, स्पर्शनइन्द्रियनिके बाह्य, आभ्यन्तर के भेदकरि दोय प्रकार उपकरण जाननां। बहुरि भावैन्द्रिय हूँ लब्धि, उपयोग भेदकरि दोय प्रकार हैं। तहाँ ज्ञानावर्ण कर्म के क्षयोपशम का विशेष विधानतैं आत्मा द्रव्यैन्द्रिय निर्वृत्ति प्रतिव्यापार करै सो लब्धि कहिए। अर सो लब्धि है निमित्त ताकूँ आत्मा का परिणाम सो उपयोग कहिए। जातैं कारण का धर्म कार्य विषैं देखिए हैं। अब निरुक्ति करिए हैं—वीर्यान्तराय का

स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्शनम्, रस्यतेऽनेनेति रसनम्, घ्रायतेऽनेनेति घ्राणम्, चष्टेऽर्थान् पश्यत्यनेनेति चक्षुः, श्रूयतेऽनेनेति **श्रोत्रम्**। स्वातन्त्र्यविवक्षा च दृश्यते कर्तृकरणयोरभेदात्। इदं मे चक्षुः सुष्ठु पश्यति। अयं मे कर्णः सुष्ठु **श्रृणोति**। स्पृशतीति स्पर्शनम्। रसतीति रसनम्। जिघ्रतीति घ्राणम्। चष्टे इति चक्षुः। श्रृणोतीति श्रोत्रमिति। एवमिन्द्रियाणि पंच। तद्विषयाश्च पंच। वर्ण्यंत इति वर्णः। शब्द्यते इति शब्दः। गन्ध्यत इति गन्धः। रस्यत इति रसः। स्पृश्यत इति स्पर्शः इति। **पंच**—संख्यावचनमेतत्। **सगसगविसएहिंतो**—स्वकीयेभ्यः स्वकीयेभ्यो विषयेभ्यो रूपशब्दगन्धरसस्पर्शेभ्यः स्वभेदभिन्नेभ्यो मनोहरामनोहररूपेभ्यः। **णिरोहियव्वा**—निरोधयितव्यानि—सम्यक् ध्याने प्रवेशयितव्यानि। **सया**—सदा सर्वकालम्। **मुणिणा**—मुनिना संयमप्रियेण। स्वकीयेभ्यः स्वकीयेभ्यो विषयेभ्यो रूपशब्दगन्धरसस्पर्शेभ्यश्चक्षुरादीनां निरोधनानि मुनेर्यानि तानि पंचइन्द्रियनिरोधनानि पंच मूलगुणा भवन्तीत्यर्थः। अथवा ये पंचनिरोधा इंद्रियाणां क्रियन्ते मुनिना स्वविषयेभ्यस्ते पंचेंद्रिय-निरोधाः पंचमूलगुणा भवन्तीत्यर्थः।

प्रथमस्य चक्षुर्निरोधव्रतस्य स्वरूपनिरूपणार्थमाह—

सच्चित्ताचित्ताणं किरियासंठाणवण्णभेएसु।
रागादिसंगहरणं चक्खुणिरोहो हवे मुणिणो ॥ १७ ॥

सच्चित्ताचित्ताणं—सहचित्तेन सामान्यज्ञानदर्शनोपयोगनिमित्तचैतन्येन वर्तन्त इति सचित्तानि सजीवरूपाणि देवमनुष्यादियोषिद्रूपाणि,

---

क्षयोपशम—मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम, आंगोपांग नामकर्म का लाभ का अवष्टंभ के बलतैं आत्मा स्पर्शै जाकरि सो स्पर्शन कहिए, अर स्वादे जाकरि सो रसन कहिए, सूघैं जाकरि सो घ्राण कहिए, देखै जाकरि सो नेत्र कहिए, सुणैं जाकरि सो श्रोत्र कहिये। तथा कर्ता-करण के अभेदतैं स्वतन्त्रपणै की विवक्षा हूँ देखिए है—यह मेरा नेत्र नीके देखैहैं। यह मेरा कान सुणै है। अैसे स्पर्शे सो स्पर्शन कहिए स्वादै सो रसन कहिए, सूघे सो घ्राण कहिए, देखै सो चक्षु कहिए। सुणै सो श्रोत्र कहिए[1] अैसे इन्द्रिय पाँच है। अर इनिकैं विषय हूँ पाँच है। देखिए सो वर्ण कहिए, सुनिये सो शब्द कहिए। सूघिए सो गन्ध कहिए। स्वादिए सो रस कहिए[1] स्पर्शए सो स्पर्श कहिए—अैसें अपनें-अपनें मनोहर-अमनोहर रूप इंद्रियनिके विषय जे रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श हैं। ते अपने-अपने भेदनितैं भिन्न-भिन्न रूप अनेक प्रकार हैं। तिनिका संयम ही हैं प्रिय जाकूँ अैसे मुनिराज कौं सर्वकाल निरोध करना, ते पञ्चइंद्रिए निरोध मूलगुण कहिए।

तहाँ **प्रथम चक्षुःनिरोध** के स्वरूप का निरूपण के अर्थि कहै है—

अर्थ—सजीव-अजीव पदार्थनिकी क्रिया, संस्थान, वर्ण—इनके भेदनि विषैं रागादिक आशक्तता का निराकरण सो मुनि कै चक्षुःनिरोध कहिए ॥ १७ ॥

टीका—चित्त कहिए—सामान्य ज्ञान, दर्शन रूप उपयोग का निमित्त चैतन्य ताकरि सहित वर्तेते जीव रूप देव, मनु-

१. ब प्रति में तथा कर्ता-करण के अभेदतैं·········से लेकर यहां तक का विषय नहीं है।

न चित्तानि अचित्तानि सचित्तद्रव्यप्रतिविम्बानि, अजीवद्रव्याणि च । सचित्तानि, चाचित्तानि च सचित्ताचित्तानि, तेषां सचित्ताचित्तानाम् । **किरियासंठाणवण्णभेएसु**—क्रिया गीतविलासनृत्यचंक्रमणात्मिका, संस्थानं समचतुरस्रन्यग्रोधाद्यात्मकं वैशाखबन्धपुटाद्यात्मकं च, वर्णाः गौरश्यामादयः । क्रिया च संस्थानं च वर्णाश्च क्रियासंस्थानवर्णाः, तेषां भेदा विकल्पाः क्रियासंस्थानसवर्णभेदास्तेषु क्रियासंस्थानवर्णभेदेषु, नृत्यगीतकटाक्षनिरीक्षणसमचतुरस्राकारगौरश्यामादिविकल्पेषु, शोभनाशोभनेषु । **रागादिसंगहरणं**—राग-आदिर्येषां ते रागादयः रागादयश्च ते सङ्गाश्च रागादिसङ्गाः सङ्गाश्चासक्तयस्तेषां हरणं निराकरणं रागादिसङ्गहरणं रागद्वेषाद्यनभिलाषः । **चक्खुणिरोहो**—चक्षुषोर्निरोधश्चक्षुर्निरोधः चक्षुरिन्द्रियाप्रसरः । **हवे**—भवेत् । **मुणिणो**—मुनेरिन्द्रियसंयमनायकस्य । स्त्रीपुरुषाणां स्वरूपलेपकर्मादिव्यवस्थितानां ये क्रियासंस्थानवर्णभेदास्तद्विषये यदेतत् रागादिनिराकारणं तच्चक्षुर्निरोधव्रतं मुनेर्भवतीत्यर्थः ।

श्रोत्रेन्द्रियनिरोधव्रतस्वरूपनिरूपणायाह—

सड्जादिजीवसद्दे वीणादिअजीवसंभवे सद्दे ।
रागादीण णिमित्ते तदकरणं सोदरोधो दु ॥ १८ ॥

सड्जादिजीवसद्दे—षड्जः स्वरविशेषः स आदिर्येषां ते षड्जादयः जीवस्य शब्दा जीवशब्दाः षड्जादयश्च जीवशब्दाश्च षड्जादिजीवशब्दाः षड्जर्षभगान्धारमध्यमधैवतपंचमनिषादभेदा उरःकण्ठशिरः[1]स्थानभेदभिन्नाः, आरोह्यवरोहिस्थायिसंचारिवर्णयुक्ता मन्द्रतारादिसमन्विताः, अन्ये च दुःस्वरशब्दा रासभादिसमुत्था ग्राह्याः । **वीणादिअजीवसंभवा**—वीणा आदिर्येषां ते वीणादयो वीणादयश्च ते अजीवाश्च वीणा-

---

ष्यादिक स्त्रीरूप ते सचित्त कहिए । अर जे सचित्त नांही, सचित्तनि के प्रतिबिम्ब हैं, अजीव द्रव्य हैं ते अचित्त कहिये । तिन सचित्त-अचित्त पदार्थनिके गीत, विलास, नृत्य, कटाक्ष, निरीक्षण, चक्रमण आदिक क्रियाभेद अर समचतुरस्रन्यग्रौध परिमण्डल इत्यादिक रूप तथा वैशाख बन्धपुट इत्यादिक रूप संस्थानभेद अर गौर-श्याम इत्यादिक वर्ण भेद, शोभन-अशोभन अनेक प्रकार तिन विषैं राग-द्वेषादिक का तथा अशक्तता का निराकरण सो मुनिकै इन्द्रियसंयमकैं अर्थि चक्षु इन्द्रिय का संकोचन रूप चक्षुनिरोध व्रत है । तथा संक्षेप—स्त्री-पुरुषनिके स्वरूपविषैं तथा लेप कर्मादिक विषै तिष्ठते जे क्रिया संस्थान वर्णनिके भेद तिनि विषैं रागादिकका निराकरण सो मुनि कैं चक्षुनिरोध व्रत कहिए हैं ।

आगैं **श्रोत्रिंद्रिय निरोध व्रत** के स्वरूप का निरूपण कै अर्थि कहे हैं—

अर्थ—षड्जादिक जीव शब्द, अर वीणा आदिक तैं भये अजीव शब्द, रागादिकनिके निमित्त तिनका नांही करणां, नांही सुणणां सो श्रोत्रनिरोध कहिए ॥ १८ ॥

टीका—षड्जादि कहिए षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत, पंचम, निषाद—अैसें सप्तस्वर, उर, कण्ठ, शिरः—अैसे तीन स्थान रूप तीन ग्रामनिकरि भिन्न रूप आरोही, अवरोही, स्थायी, संचारी वर्णकरि युक्त मंद्रतार इत्यादिक क्रियाकरि सहित तथा दुःस्वर शब्द रासभ—इत्यादिक के जीव शब्द जाननें । तथा वीणादिक कहिए वीणा, त्रसरी, रावणहत्था—

---

१. क रस्थभे ।

द्यजीवास्तेभ्यः संभवन्तीति वीणाद्यजीवसम्भवा वीणा-त्रिशरी-रावणहस्तालावनि-मृदङ्ग-भेरी-पटहाद्युद्भवाः। **सद्दे**—शब्दाः। **रागादीण**—राग आदिर्येषां ते रागादयस्तेषां रागादीनां रागद्वेषादीनाम्। **णिमित्ते**—निमित्तानि हेतवो रागादिकारणभूताः। **तदकरणं**—तेषां षड्जादीनामकरणमश्रवणं च तदकरणं स्वतो न कर्तव्या नापि तेऽन्यैः क्रियमाणा रागाद्याविष्टचेतसा श्रोतव्या इति। **सोदरोधो दु**—श्रोत्रस्य श्रोत्रेन्द्रियस्य रोधः श्रोत्ररोधः। दु विशेषार्थः। रागादिहेतवो ये षड्जादयो जीवशब्दा वीणाद्यजीवसम्भवाश्च, तेषां यदश्रवणं आत्मना अकरणं च तच्छ्रोत्रव्रतं मुनेर्भवतीत्यर्थः। अथवा षड्जादिजीवशब्दविषये वीणाद्यजीवसम्भवे शब्दविषये च रागादीनां यन्निमित्तं तस्याकरणमिति।

तृतीयस्य घ्राणेन्द्रियनिरोधव्रतस्य स्वरूपनिरूपणार्थमाह—

पयडीवासणगंधे जीवाजीवप्पगे सुहे असुहे।
रागद्देसाकरणं घाणणिरोहो मुणिवरस्स॥ १९॥

पयडीवासणगंधे—प्रकृतिः स्वभावः, वासना अन्यद्रव्यकृतसंस्कारः, प्रकृतिश्च वासना च प्रकृतिवासने ताभ्यां गन्धः सौरभ्यादिगुणः प्रकृतिवासनागन्धस्तस्मिन् स्वस्वभावान्यद्रव्यसंस्कारकृते सौरभ्यादिगुणे। **जीवाजीवप्पगे**—जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा चेतनालक्षणो जीवः सुखदुःखयोः कर्ता, न जीवोऽजीवस्तद्विपरीतः, जीवश्चाजीवश्च जीवाजीवौ तौ प्रगच्छतीति जीवाजीवप्रगः जीवाजीवस्वरूपः तस्मिन् जीवाजीवस्वरूपे कस्तूरीयक्षकर्दमचन्दनादिसुगन्धद्रव्ये। **सुहे**—सुखे स्वात्मप्रदेशाह्लादनरूपे। **असुहे**—असुखे स्वप्रदेशपीडाहेतौ सुखदुःखयोर्निमित्ते। **रागद्देसाकरणं**—रागश्च द्वेषश्च रागद्वेषौ तयोरकरणं अनभिलाषः[1] रागद्वेषाकरणमनुरागजुगुप्सानभिलाषः। **घाणणिरोहो**—घ्राणेन्द्रियनिरोधः घ्राणेन्द्रियाप्रसरः। **मुणिवरस्स**—मुनीनां वरः श्रेष्ठो मुनिवरः यतिकुञ्जरस्तस्य। जीवगते अजीवगते च प्रकृतिगन्धे वासनागन्धे च सुखरूपेऽसुखरूपे च यदेतद्रागद्वेषयोरकरणं मुनिवरस्य तत् घ्राणेन्द्रियनिरोधव्रतं भवतीत्यर्थः।

आलावनि, मृदङ्ग, भेरी, पटह—इत्यादिक अजीवनितैं उपजैं शब्द सो अजीव शब्द कहिए। ते ये शब्द कहिये ते ये शब्द रागद्वेषादिक के कारणभूत हैं। तिनितैं इनकूं नांही करना, गावना नांही, बजावनां नांहीं, अर पैले गाते होय बजाते रागादि अभिप्राय करि सुननैं नांही सो श्रोत्रैंद्रिय-निरोधव्रत कहिए।

आगैं तीसरा घ्राणैंद्रिय निरोधनामा व्रत का स्वरूप निरूपण कैं अर्थि कहै हैं—

अर्थ—स्वतः सुगन्ध रूप तथा अन्य द्रव्य के संस्कार तैं सुगन्ध रूप जो जीवाजीव स्वरूप सुख-दुःख का कारणभूत गन्ध ताकै विषैं रागदोष नांही करणां सो मुनिवर कै घ्राणनिरोध व्रत कहिए॥ १९॥

टीका—प्रकृति कहिए स्वभाव ही तैं सुगन्ध रूप अैसे सुगन्ध द्रव्य तथा वासना कहि अन्य सुगन्ध द्रव्य के संस्कार तै सुगन्ध रूप कीये अैसे सुगन्ध द्रव्य जीवस्वरूप तथा अजीव स्वरूप कस्तूरी, यक्ष-कर्दम, चंदन-आदिक आत्मा के प्रदेशनिकूं आह्लाद करनेवारे सुख रूप तथा आत्मा के प्रदेशनि विषैं पीडा के कारण दुःखरूप तिनि विषैं रागद्वेष न करनां, अभिलाषा नांही करना, अनुराग नांही करणां, जुगुप्सा नांही करणां--सो घ्राणेन्दिय का संकोचने रूप मुनिन विषैं वर कहिए प्रधान जे मुनिराज तिनकैं घ्राणेन्दियनिरोधव्रत जाननां।

---

१. क षः अननुरागजु।

चतुर्थरसनेन्द्रियनिरोधव्रतस्वरूपनिरूपणार्थमाह—

असणादिचदुवियप्पे पंचरसे फासुगम्हि णिरवज्जे ।
इट्ठाणिट्ठाहारे दत्ते जिब्भाजओ[1]ऽगिद्धी ॥ २० ॥

असणादिचदुवियप्पे—अशनमादिर्येषां तेऽशनादयो भोजनादयः चत्वारश्च ते विकल्पाश्च चतुर्विकल्पाः अशनादयश्चतुर्विकल्पा यस्मिन्नसौ अशनादिचतुर्विकल्पस्तस्मिन्नशनपानखाद्यस्वाद्यभेदे भक्तदुग्धलड्डुकैलादिस्वभेदभिन्ने । **पंचरसे**—पंचरसा यस्मिन्नसौ पंचरसस्तस्मिन् पंचरसे तिक्तकटुकषायाम्लमधुरभेदभिन्ने । लवणस्य मधुररसेऽन्तर्भावः । **फासुए**—प्रासुके जीवसम्मूर्च्छनादिरहिते । **णिरवज्जे**—अवद्याद्दोषान्निर्गतो निरवद्यस्तस्मिन् निरवद्ये पापागमविरहिते कुत्सादिदोषमुक्ते च । **इट्ठाणिट्ठ**—इष्टोऽभिप्रेतो मनोह्लादकः, अनिष्टोऽनभिप्रेतः मनोदुखदः, इष्टश्च अनिष्टश्चेष्टानिष्टस्तस्मिन्निष्टानिष्टे । **आहारे**—आहारो बुभुक्षाद्युपशामकं द्रव्यं तस्मिन्नाहारे । **दत्ते**—प्राप्ते दातृजनोपनीते । **जिब्भाजओ**—जिह्वाया जयो जिह्वाजयो रसनेन्द्रियात्मवशीकरणम् । **अगिद्धी**—अगृद्धिरनाकांक्षा । आहारे अशनादिचतुष्प्रकारे पंचरससमन्विते प्रासुके निरवद्ये च प्राप्ते[2] सति येयमगृद्धिस्तज्जिह्वाजयव्रतं भवतीत्यर्थः ।

स्पर्शनेन्द्रियनिरोधव्रतस्य स्वरूपं प्रतिपादयन्नुत्तरसूत्रमाह—

जीवाजीवसमुत्थे कक्कडमउगादिअट्ठभेदजुदे ।
फासे[3] सुहे य असुहे फासणिरोहो[4] असंमोहो ॥ २१ ॥

आगैं **चौथा रसनेंद्रिय निरोध व्रत** के स्वरूप का निरूपण कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य—च्यारि प्रकार इष्ट-अनिष्ट आहार, त्यक्त (तिक्त), कटुक, कषाय, आम्ल, मधुर—पंचरस रूप, प्रासुक, निर्दोष, दीयें संतै आकांक्षा रहित भाव सो जिह्वाजयव्रत कहिये ॥ २० ॥

टीका—भात इत्यादिक सो अशन कहिए, दूध इत्यादिक सो पान कहिए, मोदक इत्यादिक खाद्य कहिए, इलायची इत्यादिक स्वाद्य कहिए—अैसे च्यारि प्रकार आहार कहिए। बहुरि पांच हैं रस जामैं ऐसा तहां तीखा सो त्यक्त कहिए, कड़वा सो कटुक कहिए, कषायला सो कषाय कहिए, खाटा सो आम्ल कहिए, मीठा सो मधुर कहिए। लवण रस को मधुर रस विषै अंतर्भाव जाननां। जीव संमूर्छनादि रहित सो प्रासुक कहिए। अवद्य कहिए दोष ताकरि रहित पाप का आगमकरि रहित अर कुत्सादिक दोष रहित निरवद्य कहिए। अपने अभिप्राय कैं अनुकूल मन कूं आल्हाद का करनेवाला सो इष्ट कहिए। बहुरि अपनैं अभिप्राय कै अनुकूल नांही अर मनकूं दुखदाई सो अनिष्ट कहिए। अैसा जो क्षुधा, तृषादिक का उपशम करनैं वाला द्रव्यरूप आहारदाता जननैं दीया ताकै[5] विषैं आकांक्षा रहित भाव सो जिह्वाजयव्रत कहिए।

आगैं **स्पर्शनैंद्रियनिरोधव्रत** का स्वरूप कूं प्रतिपादन करता संता उत्तरसूत्र कहै हैं—

अर्थ—जीव, अजीव विषैं उत्पन्न हुवा जो कठोर, नरम आदि अष्ट प्रकार सुख का कारण तथा दुःख का कारण अैसा जो स्पर्श ता विषैं मूर्छितपनां नाहीं करना सो स्पर्शनिरोधव्रत कहिए ॥ २१ ॥

---

१. अ, ब प्रति में 'जऊ'। २. क प्राप्तेऽप्रा। ३. क फस्से। ४. क फस्स। ५. अनुकूल नांही अर''''से लेकर यहाँ तक ब प्रति में नहीं है।

जीवाजीवसमुत्थे—जीवश्च अजीवश्च जीवाजीवौ तयोः जीवाजीवयोः समुत्तिष्ठते सम्भवतीति जीवाजीवसमुत्थस्तस्मिश्चेतनाचेतन-सम्भवे । **कक्कडमऊगादि अट्ठभेदजुदे**—कर्कशः कठिनः, मृदुः कोमलं कर्कशश्च मृदुश्च कर्कशमृदू तावादिर्येषां ते कर्कशमृद्वादयः अष्टौ च ते भेदाश्चाष्टभेदाः कर्कशमृद्वादयश्च ते अष्टभेदाश्च कर्कशमृद्वाद्यष्टभेदास्तैर्युक्तः कर्कशमृद्वाद्यष्टभेदयुक्तस्तस्मिन् कर्कशमृदुशीतोष्णस्निग्धरूक्षगुरु-लघुगुणविकल्पसमन्विते वनितातूलिकाद्याधारभूते । **फासे**—स्पर्शे । **सुहे**—सुखे सुखहेतौ । **असुहे य**—असुखे[1] च दुःखहेतौ । **फासणिरोहो**—स्पर्श-निरोधः स्पर्शनेन्द्रियजयः । **असंमोहो**—न सम्मोहः असम्मोहोऽनाह्लाद इत्यर्थः । जीवाजीवसमुद्भवे कर्कशमृद्वाद्यष्टभेदयुक्ते सुखासुखस्वरूपनिमित्ते स्पर्शविषये योऽयमसम्मोहोऽनभिलाषः स्पर्शनेन्द्रियनिरोधव्रतं भवतीत्यर्थः ।

पंचेन्द्रियनिरोधव्रतानां स्वरूपं निरूप्य षडावश्यकव्रतानां स्वरूपं नामनिर्देशं च निरूपयन्नाह—

समदा थवो[2] य वंदण पाडिक्कमणं तहेव णादव्वं ।
पच्चक्खाण विसग्गो करणीयावासया छप्पि ।। २२ ।।

समदा—समस्य भावः समता रागद्वेषादिरहितत्वं[3] त्रिकाऽपंचनमस्कारकरणं वा । **थवो**—स्तवः चतुर्विंशतितीर्थङ्करस्तुतिः । **वंदणा**—वन्दना एकतीर्थकृत्प्रतिबद्धा दर्शनवन्दनादिपंचगुरुभक्तिपर्यन्ता वा । **पडिक्कमणं**—प्रतिक्रमणं प्रतिगच्छति पूर्वसंयमं येन तत् प्रतिक्रमणं स्वकृताद-शुभयोगात्प्रतिनिवृत्तिः दैवसिकादयः सप्तकृतापराधशोधनानि । **तहेव**—तथैव तेनैव प्रकारेणागमाविरोधेनैव । **णादव्वं**—ज्ञातव्यं सम्यगवबोद्धव्यम् । **पच्चक्खाणं**—प्रत्याख्यानमयोग्यद्रव्यपरिहारः तपोनिमित्तं योग्यद्रव्यस्य वा परिहारः । **विसग्गो**—व्युत्सर्गः, देहे ममत्वनिरासः जिनगुणचिन्तायुक्तः

टीका—जीव कहिए चेतन स्त्री इत्यादिक संबंधी अर अजीव कहिए अचेतन सेज इत्यादिक सम्बन्धी कर्कस कहिए कठोर, मृदु कहिए कोमल, सीत कहिए सीला, उष्ण कहिए ताता, स्निग्ध कहिए चिकणां, रूक्ष कहिए लूखा, गुरु कहिए भारी, लघु कहिए हलका—इत्यादिक स्पर्शगुण के आठ भेदनिकरि युक्त सुख का कारण तथा दुःख का कारण स्पर्श होतैं संतैं मूर्छितपनां नांही, आह्लाद, अभिलाष, हर्ष-विषाद नांही सो स्पर्शेन्द्रियनिरोधव्रत कहिए ।

आगैं पंचेंद्रियनिरोधव्रत का स्वरूप कहि षडावश्यक व्रत का स्वरूप नाम निर्देश कूं निरूपण करता संता कहै हैं—

अर्थ—सामायिक, चतुर्विंशति-स्तव, वंदना, प्रमिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग—अैसें छह आवश्यक नित्य करनैं ॥२२॥

टीका—सम कहिए राग-द्वेषादिक रहित पुरुष ताका भाव सो **समता** अथवा तीन्यूं काल विषैं पंचनमस्कार का करना अैसे सामायिक जाननां । वहुरि चतुर्विंशति तीर्थंकरनिकी स्तुति सो स्तव कहिए । बहुरि एक तीर्थंकर सम्बन्धी तथा दर्शन, वंदनादि पंचगुरु भक्ति पर्यंत सो वंदना कहिए । वहुरि पूर्वसंयम जाकरि शुद्ध प्रवर्त्या जाय अपने कीए जे अशुभयोग तातैं निर्वृत्थ होनां की ए अपराध का सोधन रूप दैवसिकादि सात प्रकार **प्रतिक्रमण** जाननां । वहुरि अयोग्य द्रव्य का परिहार तथा तप के निमित्त योग्य द्रव्य का हू परिहार सो **प्रत्याख्यान** कहिए । वहुरि देह कैं विषै ममत्व छोड़ना, अरहंत के गुण चिंतवन करनां सो

१. क असुखहेतौ । २. ब प्रति में "थउ" । ३. क त्वं क्रियाकलापं च ।

कायोत्सर्गः । **करणीया**—करणीया अनुष्ठेयाः । **आवसया**—आवश्यका आवश्यकानि वा, न वशोऽवशः अवशस्य कर्मावश्यकाः निश्चयक्रियाः । **छप्पि**—षडपि न पंच नापि सप्त । समतास्तववन्दनाप्रतिक्रमणानि तथैव प्रत्याख्यानकायोत्सर्गौ, एवं षडावश्यका निश्चयक्रिया यास्ता नित्यं षडपि कर्तव्याः ।

मूलगुणा इति कृत्वेति सामान्यस्वरूपं प्रतिपाद्य विशेषार्थं प्रतिपादयन्नाह—

जीविदमरणे लाभालाभे संजोयविप्पओगे य ।
बं[1]धुरिसुहदुक्खादिसु समदा सामाइयं णाम ॥ २३ ॥

जीविदमरणे—जीवितमौदारिकवैक्रियिकादिदेहधारणं, मरणं मृत्युः प्राणिप्राणवियोगलक्षणं, जीवितं च मरणं च जीवितमरणे तयोर्जीवितमरणयोः । **लाभालाभे**—लाभोऽभिलषितप्राप्तिः, अलाभोऽभिलषितस्याप्राप्तिः लाभश्चालाभश्च लाभालाभौ तयोर्लाभालाभयोराहारोपकरणादिषु प्राप्त्यप्राप्त्योः । **संजोयविप्पओगे य**—संयोग इष्टादिसन्निकर्षः, विप्रयोग इष्टवियोगः संयोगश्च विप्रयोगश्च संयोगविप्रयोगौ तयोः संयोगविप्रयोगयोः, इष्टानिष्टसन्निकर्षासन्निकर्षयोः । [2] **बन्धुरिसुखदुक्खादिसु**—बन्धुश्च अरिश्च सुखं च दुःखं च बन्ध्वरिसुखदुःखानि तान्यादीनि येषां ते बन्ध्वरिसुखदुःखादयस्तेषु स्वजनमित्रशत्रुसुखदुःखक्षुत्पिपासाशीतोष्णादिषु । **समदा**—समता चारित्रानुविद्धसमपरिणामः । **सामाइयं णाम**—सामायिकं नाम भवति । जीवितमरणलाभालाभसंयोगविप्रयोगबन्ध्वरिसुखदुःखादिषु यदेतत्समत्वं समानपरिणामः त्रिकालदेववन्दनाकरणं च तत्सामायिकं व्रतं भवतीत्यर्थः ॥

कायोत्सर्ग कहिए । याही का नाम व्युत्सर्ग कहिए । अैसे आवश्यक छह हैं, पांच नांही, सात नांही है । जो किसी के वश कहिए आधीन नांही, स्वाधीन होय सो अवश कहिए, अवश का जो कर्म सो आवश्यक कहिए । ए निश्चयक्रिया हैं । ते नित्यनियमकरि करनी—ये **मूलगुण** हैं ।

आगैं **षडावश्यक का सामान्य स्वरूप प्रति**पादनकरि विशेष अर्थ कूं प्रतिपादन करता संता कहै हैं—

अर्थ—जीवन-मरण विषैं लाभ-अलाभ विषैं, संयोग-वियोग विषैं, बंधु-शत्रु विषैं, सुख-दुख इत्यादिक विषैं समभाव, राग-द्वेष नांही सो सामायिक कहिए ॥ २३ ॥

टीका—औदारिक, वैक्रियिक आदि देह का धारना सो जीवित[3] कहिए । प्राणी के प्राण का वियोग सो मरण कहिए । अैसें जीवित-मरण विषैं, बहुरि वांछित वस्तु को प्राप्ति सो लाभ कहिए, वांछित वस्तु की अप्राप्ति सो अलाभ कहिए—अैसे आहार-उपकरणादिक की प्राप्ति-अप्राप्ति रूप लाभ अलाभ कै विषै । बहुरि इष्ट का तथा अनिष्ट का संयोगादि विषैं तथा वियाग विषैं । बहुरि बंधु कहिए स्वजन, मित्रादिक, अरि कहिए शत्रु दुष्टादिक—इनि विषैं, बहुरि सुखदुःख विषैं । आदि शब्दतैं क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण—इत्यादिक बाधा विषैं जो समता कहिए चारित्र कैं अनुकूल राग-द्वेष रहित समान परिणाम तथा त्रिकाल कहिए पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न विषैं देववंदनाका करना सो सामायिकव्रत कहिए ।

१. क बंध्वरि । २. क बंध्वरि° । ३. अ प्रति में जीव ।

चतुर्विंशतिस्तवस्वरूपं निरूपयन्नाह—

उसहादिजिणवराणं णामणिरुत्तिं गुणाणुकित्तिं च ।
काऊण अच्चिदूण य तिसुद्धिपणमो थवो णेओ ।। २४ ।।

उसहादिजिणवराणं—ऋषभः प्रथमतीर्थंकर आदिर्येषांते ऋषभादयस्ते च ते जिनवराश्च ऋषभादिजिनवरास्तेषामृषभादिजिनवराणां वृषभादिवर्धमानपर्यन्तानां चतुर्विंशतितीर्थंकराणां । **णामणिरुत्तिं**—नाम्नामभिधानानां निरुक्तिर्नामनिरुक्तिस्तां नामनिरुक्तिं प्रकृतिप्रत्ययकालकारकादिभिर्निश्चयेन अनुगतार्थकथनं ऋषभाजितसम्भवाभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभसुपार्श्वचन्द्रप्रभपुष्पदन्तशीतलश्रेयोवासुपूज्यविमलानन्तधर्मशान्तिकुन्थ्वरमल्लिमुनिसुव्रतनम्यरिष्टनेमिपार्श्ववर्धमानाः नामकीर्तनमेतत् । **गुणाणुकित्तिं च**—गुणानामसाधारणधर्माणामनुकीर्तिरनुख्यापनं गुणानुकीर्तिस्तां गुणानुकीर्तिं च निर्दोषाप्तलक्षणस्तुतिम् लोकस्योद्योतकरा धर्मतीर्थकराः सुरासुरमनुष्येन्द्रस्तुताः दृष्टपरमार्थतत्त्वस्वरूपाः विमुक्तघातिकठिनकर्माणः, इत्येवमादिगुणानुकीर्तनं । **काऊण**—कृत्वा गुणग्रहणपूर्वकं नामग्रहणं प्रकृत्य । **अच्चिदूण य**—[1]अर्चयित्वा च गन्धपुष्पधूपदीपादिभिः प्रासुकैरानीतैर्दिव्यरूपैश्च दिव्यैर्निराकृतमलपटलसुगन्धैश्चतुर्विंशतितीर्थंकरपदयुगलानामर्चनं कृत्वान्यस्याश्रुतत्वात्तेषामेव ग्रहणम् । **तिसुद्धिपणमो**—तिस्रश्च ताः शुद्धयश्च त्रिशुद्धयस्ताभिः त्रिशुद्धिभिः प्रणामः त्रिशुद्धिप्रणामः मनोवाक्कायशुद्धिभिः स्तुतेः करणं । **थवो**—स्तवः, चतुर्विंशतितीर्थंकरस्तुतिः, नामैकदेशेऽपि शब्दस्य प्रवर्तनात् यथा सत्यभामा भामा, भीमो भीमसेनः । एवं चतुर्विंशतिस्तवः स्तवः । **णेयो**—ज्ञातव्यः । ऋषभादिजिनवराणां नामनिरुक्तिं गुणानुकीर्तनं च कृत्वा योऽयं मनोवचनकायशुद्ध्या प्रणामः स चतुर्विंशतिस्तव इत्यर्थः ।

आगै **चतुर्विंशतिस्तव का स्वरूप** निरूपण करतां संता कहै हैं—

अर्थ—वृषभादि चउबीस तीर्थंकरनि के **नाम की** निरुक्ति, गुण का अनुकीर्तन करि, पूजि करि, मन, वचन, काय की शुद्धता करि स्तुति करनां सो चतुर्विंशति स्तव जाननां ।। २४ ।।

टीका—वृषभ कहिए प्रथम तीर्थंकर सो हैं आदि जिनकै, अैसे वर्धमान पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकर तिनके नाम की निरुक्ति कहिए प्रवृत्ति, प्रत्यय, काल, कारक इत्यादिक करि नाम कैं अनुसार अर्थ का कहनां, जैसे—नाम कीर्तन अैसे हैं—ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांस, वासपूज्य, विमल, अनंत, धर्म्म, शांति, कुंथु, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, वर्धमान—अैसे ये नाम हैं। तिनिमैं प्रकृति कहिए धातु कहां हैं ? प्रत्यय कौन सा है ? कौन से काल मैं आया हैं ? कारक कैसा है ? तथा प्रकृति का अर्थ कहां है ? प्रत्यय का अर्थ कहां है ? —अैसे भिन्न-भिन्न अर्थ कहि नाम कूं सार्थक करनां—सो नाम निरुक्ति कहिए। बहुरि गुण जे तीर्थंकरनि के असाधारण धर्मनिका अनुकीर्तन करनां, प्रगट करनां निर्दोष आप्त का लक्षण कहना—तीर्थंकरदेव कैसे हैं ? लोक के प्रकास-करन वारे हैं, धर्मतीर्थ के करनहारे हैं । इन्द्र, धरणेन्द्रकरि स्तवन करिवे योग्य हैं । देख्या है परमार्थकरि तत्त्वका स्वरूप जिनिनैं—अैसे हैं । घातिया रूप जे कठिन कर्म तिनतैं रहित भए हैं । इत्यादिक गुणनिका अनुकीर्तन करना सो गुणानुकीर्तन कहिए, अैसे गुणानुकीर्तनकरि तथा चतुर्विंशति तीर्थंकर पदयुगलनिका पूजनकरि मन, वचन, काय की शुद्धताकरि स्तुति का करनां सो चतुर्विंशति स्तव कहिए ।

१. क अर्चित्वा ।

वन्दनास्वरूपं निरूपयन्नाह—

अरहंतसिद्धपडिमातवसुदगुणगुरुगुरूण रादीणं ।
किदियम्मेणिदरेण य तियरणसंकोचणं पणमो ।। २५ ।।

अरहंतसिद्धपडिमा—अर्हन्तश्च सिद्धाश्चार्हत्सिद्धास्तेषामर्हत्सिद्धानां प्रतिमा अर्हत्सिद्धप्रतिमा अर्हत्सिद्धप्रतिबिम्बानि स्वरूपेण चार्हन्तः घातिकर्मक्षयादर्हन्तः, अष्टविधकर्मक्षयात्सिद्धाः । अथवा गतिवचनस्थानभेदात्तयोर्भेदः, अष्टमहाप्रातिहार्यसमन्विता अर्हत्प्रतिमा, तद्रहिता सिद्धप्रतिमा । अथवा कृत्रिमा यास्ता अर्हत्प्रतिमाः, अकृत्रिमाः सिद्धप्रतिमाः । **तवसुदगुणगुरुगुरूण**—तपति दहति शरीरेन्द्रियाणि तपो द्वादशप्रकारमनशनादिकं, श्रुतमंगपूर्वादिरूपं मतिपूर्वकं, गुणा व्याकरणतर्कादिज्ञानविशेषाः, तपश्च श्रुतं च गुणाश्च तपःश्रुतगुणास्तैर्गुरवो महान्तस्तपःश्रुतगुणगुरवः, गुरुश्च येन दीक्षा दत्ता, तेषां, द्वादशविधतपोधिकानां, श्रुताधिकानां, गुणाधिकानां, स्वगुरोः, अर्हत्सिद्धप्रतिमानां च । **रादीणं**—रात्र्यधिकानां दीक्षया महतां च । **किदियम्मेण**—क्रियाकर्मणा कायोत्सर्गादिकेन सिद्धभक्तिश्रुतभक्तिगुरुभक्तिपूर्वकेण । **इदरेण**—इतरेण श्रुतभक्त्यादिक्रियापूर्वकमन्तरेण शिरःप्रणामेन मुंडवंदनया । **तियरणसंकोचणं**—त्रयश्च ते करणाश्च त्रिकरणा मनोवाक्कायक्रियाः तेषां संकोचनं मनोवाक्काय-

---

नाम का एकदेश विषैं नामका व्यवहार है । जैंसे सत्यभामा का नाम कूं भामा भी कहिए । भीमसेन का नाम भीम भी कहिए । अैंसें चतुर्विंशतिस्तव कौ 'स्तव' भी कहिए—अैसा जाननां ।

आगैं **वंदना स्वरूप**कौं निरूपण करता संता कहै हैं—

अर्थ—अरहंत प्रतिमा, सिद्धप्रतिमा, तपोगुरु, श्रुतगुरु, गुणगुरु, दीक्षागुरु, दीक्षाधिक तिनिकूं कृतिकर्मकरि तथा शिरःप्रणाम मात्र करि मन-वचन-काय शुद्धकरि स्तवन करना सो वंदना नाम मूलगुण है ॥ २५ ॥

टीका—घातिकर्म के क्षयतैं अरहंत कहिए । अष्टकर्म के क्षयतैं सिद्ध कहिए अथवा गति, वचन, स्थान—भेदतैं तिनिका भेद जाननां तिनिका प्रतिमा सो अर्हंत-सिद्ध प्रतिमा कहिए । आठ महाप्रातिहार्य सहित होय ते अर्हंत प्रतिमा कहिए । तिनि रहित होय सो सिद्ध प्रतिमा कहिए अथवा जे कर्तृम होय ते अर्हंत प्रतिमा कहिए । अकर्तृम होय ते सिद्ध प्रतिमा कहिए ।

अैंसें भी आचार्यनिकी विवक्षा है[1]—बहुरि शरीर इंद्रियानिकौं तपै, दहै सो अनशनादिक बारह प्रकार तप कहिए । तपकरि अधिक जे हौंहि तैं तपोगुरु कहिए । बहुरि श्रुत कहिए अंग, पूर्वादि रूप मतिपूर्वक आगमज्ञान ताकरि अधिक हौंहि ते श्रुतगुरु कहिए । बहुरि व्याकरण, तर्क—इत्यादिक परिज्ञान के विशेषते गुण कहिए गुणनिकरि अधिक हौंहि ते गुणगुरु कहिए तथा जानैं आपकौं दीक्षा दई होय अैसा स्वगुरु सो गुरु कहिए । बहुरि दीक्षाकरि बड़ैं हौंहि, घणैं काल के दीक्षित होय ते रात्र्याधिक[2] कहिए । तिनिकौं कृतिकर्म कहिए कायोत्सर्गादिक, सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, गुरुभक्तिपूर्वक क्रियाकर्मकरि, बहुरि श्रुतभक्ति आदि क्रिया बिना

१. ब प्रति में यह पंक्ति नहीं है ।
२. 'अ' प्रति में 'दीक्षाधिक' ।

शुद्धक्रियं मनःशुद्ध्या वाक्शुद्ध्या कायशुद्ध्या इत्यर्थः। **पणमो**—प्रणामः स्तवनम्। अर्हत्सिद्धप्रतिमानां, तपोगुरूणां श्रुतगुरूणां गुणगुरूणां दीक्षागुरूणां दीक्षया महत्तराणां कृतकर्मणेतरेण च त्रिकरणसंकोचनं यथा भवति तथा योऽयं प्रणामः क्रियते सा वन्दना नाम मूलगुण इति।

अथ किं प्रतिक्रमणमित्याशंकायामाह—

दव्वे खेत्ते[1] काले भावे य कयावराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचकायेण पडिक्कमणं ॥ २६ ॥

दव्वे—द्रव्ये आहारशरीरादिविषये। **खेत्ते**—क्षेत्रे वसतिकाशयनासनगमनादिमार्गविषये। **काले**—पूर्वाह्णापराह्णदिवसरात्रिपक्षमाससंवत्सरातीतानागतवर्तमानादिकालविषये। **भावे**—परिणामे चित्तव्यापारविषये। **कयावराहसोहणयं**—कृतश्चासावपराधश्च कृतापराधस्तस्य शोधनं कृतापराधशोधनं द्रव्यादिद्वारेण व्रतविषयोत्पन्नदोषनिर्हरणं। **णिंदणगरहणजुत्तो**—निन्दनमात्मदोषाविष्करणं, आचार्यादिषु आलोचनापूर्वकं दोषाविष्करणं गर्हणं, निन्दनं च गर्हणं च निन्दनगर्हणे ताभ्यां युक्तो निन्दनगर्हणयुक्तस्तस्य निन्दनगर्हणयुक्तस्यात्मप्रकाशपरप्रकाशसहितस्य। **मणवचकाएण**—मनश्च वचश्च कायश्च मनोवचःकायं तेन मनोवचःकायेन शुभमनोवचःकायक्रियादिभिः। **पडिक्कमणं**—प्रतिक्रमणं स्वकृतादशुभयोगात्प्रतिनिवृत्तिः, अशुभपरिणामपूर्वककृतदोषपरित्यागः। निन्दनगर्हणयुक्तस्य मनोवाक्कायक्रियाभिर्द्रव्यक्षेत्रकालभावविषये तैर्वा कृतस्यापराधस्य व्रतविषयस्य शोधनं यत्तत् प्रतिक्रमणमिति।

मस्तक नमावनैं रूप मुंड वंदना ताकरि, वहुरि मन, वचन, काय की शुद्धता करि प्रणाम कहिये स्तवन करना सो वंदना नामा मूलगुण कहिए।

आगैं प्रतिक्रमण कहा ऐसी आशंका होतैं कहे हैं—

अर्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषैं व्रत संबंधी कीया अपराध का शोधन, निंदा, गर्हा युक्त मुनिराज कै मन, वचन, काय करि होंहि सो प्रतिक्रमण कहिये ॥ २६ ॥

टीका—द्रव्य कहिये—आहार, शरीर इत्यादिक विषैं, क्षेत्र कहिये—वसतिका, शयन, आसन, गमन इत्यादिक तथा मार्ग विषैं, काल कहिये—पूर्वाह्न, अपराह्न, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर, अतीत, अनागत, वर्तमान—इत्यादिक विषैं, भाव कहिये—परणाम चित्त का व्यापार विषैं, कीया जो, अपराध कहियै व्रत के विषैं दोष ताका शोधना, निंदन कहिये अपनैं दोष का आपही प्रगट करनां, गर्हण कहिये आचार्यादिकनकै समीप आलोचना पूर्वक अपनैं दोषनिका प्रकट करनां ऐसें निंदां गर्हा करिकैं युक्त जो मुनिराज ताकै शुभ मन-वचन-काय क्रियादिक करि अपनैं कीये अशुभ योंगतैं [2]निवृत्त होना, अशुभ परित्याग[3] करना प्रतिक्रमण कहिये।

---

१. क खित्ते।
२. ब प्रति में निवृत्ति।
३. ब प्रति में परिणामपूर्वक किये दोषनिका परित्याग करना।

प्रत्याख्यानस्वरूपनिरूपणार्थमाह—

णामादीणं छण्हं अजोगपरिवज्जणं तियरणेण[1] ।
पच्चक्खाणं णेयं अणागयं चागमे काले ॥ २७ ॥

णामादीणं—जातिद्रव्यगुणक्रियानिरपेक्षं संज्ञाकरणं नामाभिधानं तदादिर्येषां ते नामादयस्तेषां **नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावानाम्** । **छण्हं**—षण्णाम् । **अजोगपरिवज्जणं**—न योग्या अयोग्यास्तेषां नामादीनामयोग्यानां पापागमहेतूनां परिवर्जनं परित्यागः । **तियरणेण**—त्रिकरणैः शुभमनोवाक्कायक्रियाभिः अशुभाभिधानं कस्यचिन्न करोमि, न कारयामि, नानुमन्ये, तथा वचनेन न वच्मि, नापि काथयामि, नाप्यनुमन्ये, तथा मनसा न चिन्तयामि, नाप्यन्यं भावयामि, नानुमन्ये । एवं अशुभस्थापनामेनां कायेन न करोमि, न कारयामि, नानुमन्ये, तथा वाचा न भणामि, न भाणयामि, नानुमन्ये, तथा मनसा न चिंतयामि, नाप्यन्यं भावयामि नानुमन्ये । तथा सावद्यं द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं च न सेवे, न सेवयामि, सेवन्तं, [सेवमानं] नानुमन्ये । तथा वचसा त्वं सेवस्वेति न भणामि, न भाणयामि, नापि चिन्तयामीति । **पच्चक्खाणं**—प्रत्याख्यानं परिहरणं अयोग्यग्रहणपरित्यागः । **णेयं**—ज्ञातव्यम् । **अणागयं च**—अनागतं चानुपस्थितं च । अथवा अनागते दूरेणागते काले । **आगमे काले**—आगते उपस्थिते । अथवा आगमिष्यति सन्निकृष्टे काले मुहूर्तदिवसादिके । नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावानां षण्णां अनागतानां त्रिकरणैर्यदेतत्

आगैं **प्रत्याख्यान के स्वरूप** का निरूपणकै अर्थि कहे हैं—

अर्थ—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—इन छहन मैं अयोग्य का मन, वचन, कायकरि आगामी काल विषैं अनागत त्याग करनां सो प्रत्याख्यान कहिये ॥ २७ ॥

टीका—जाति, द्रव्य, गुण क्रिया इनकी अपेक्षा बिना किसी पदार्थ की संज्ञा करनां सो नाम है । पाप के आगमकारण अयोग्य नामका शुभ मनो, वचन, काय की क्रियाकरि परित्याग करनां, किसी का अशुभ नाम नांही करौं, न करांऊ, नांही करते की अनुमोदना करूं नांहीं, अैसें हो किसी ही की अशुभस्थापना कायकरि करूं नांही, कराऊं नांही, करने की अनुमोदना करूं नांही[2] तथा वचनकरि किसी का अशुभ नाम नांहो कहना, नांही कहाऊं, कहते की अनुमोदना नांही करौं, तथा मनकरि किसी का अशुभ नाम चित्तू नांही तथा अन्यकरि चिंतवाऊं नांही, चिंतते की अनुमोदना करौं नांहो । अैसी ही किसी ही की अशुभ स्थापना कायकरि करूं नांही, कराऊं नांही, करते की अनुमोदना करूं नांही तथा वचनकरि कहूं नांही, कहाऊं नांही, अनुमोदना करूं नांही तथा मनकरि चिंतऊं नांही, अन्यकरि चिंतवाऊं नांही, सेवते की अनुमोदनां करूं नांही । तथा सावद्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से सेऊं नांही पैलेकूं सेवन कराउं नांही, सेवते की अनुमोदनां करूं नांहो तथा सावद्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावतू सेवूं[3] अैसा वचनकरि कहूं नांही, कहाऊं नांहो, अैसा चिंतवन कराऊं नांही—अैसें अयोग्य ग्रहण का परित्याग सो प्रत्याख्यान जाननां ।

अनागत कहिए[4] भविष्यकाल संबंधी त्याग, बहुरि आगमकाल कहिए आवता समीप रूप मुहुर्त दिवसादिक संबंधी

---

१. अ, ब प्रति में तिकरणेण । २. ब प्रति में अैसें ही किसी ही की'''से लेकर तथा—
३. पैलें कूं सेवन से लेकर—यहाँ तक पाठ अधिक है । ४. ब प्रति में कहिए शब्द नहीं है ।

परिवर्जनं आगते चोपस्थिते च [1]यदेतद्दोषपरिवर्जनं तत्प्रत्याख्यानं ज्ञातव्यमिति । अथवा दूरे भविष्यति काले आगमिष्यति चासन्ने वर्तमाने तेषां षण्णामपि अयोग्यानां वर्जनं प्रत्याख्यानम् । अथवा अनागते काले अयोग्यपरिवर्जनं नामादिषट्प्रकारं यदेतदागतं मनोवचनकायैः तत्प्रत्याख्यानं ज्ञातव्यमिति । अथ प्रतिक्रमणप्रत्याख्यानयोः को विशेष इति चेन्नैष दोषः, अतीतकालदोषनिर्हरणं प्रतिक्रमणम् । अनागते वर्तमाने च काले द्रव्यादिदोषपरिहरणं प्रत्याख्यानमनयोर्भेदः । [2]तपोऽर्थं निरवद्यस्यापि द्रव्यादेः परित्यागः प्रत्याख्यानं, प्रतिक्रमणं पुनर्दोषाणां निर्हरणायैवेति ॥

कायोत्सर्गस्वरूपनिरूपणार्थमाह—

देवस्सियणियमादिसु जहुत्तमाणेण [3]उत्तकालम्हि ।
जिणगुर्णचिंतणजुत्तो काउस्सग्गो[4] तणुविसग्गो ॥ २८ ॥

देवस्सियणियमादिसु—दिवसे भवो दैवसिकः स आदिर्येषां ते दैवसिकादयस्तेषु दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकादिषु नियमेषु निश्चयक्रियासु । **जहुत्तमाणेण**—उक्तमनतिक्रम्य यथोक्तं, यथोक्तं च तन्मानं च यथोक्तमानं तेन अर्हत्प्रणीतेन[5] कालप्रमाणेन पंचविंशतिसप्तविंशत्यष्टोत्तरशताद्युच्छ्वासपरिमाणेन । **उत्तकालम्हि**—उक्तः प्रतिपादितः कालः समय उक्तकालस्तस्मिन्नुक्तकाले आत्मीयात्मीयवेलायां । यो यस्मिन् काले कायोत्सर्ग उक्तः स तस्मिन् कर्तव्यः । **जिणगुर्णचितणजुत्तो**—जिनस्य गुणा जिनगुणास्तेषां चिन्तनं स्मरणं तेन युक्तो जिनगुर्णचिंतनयुक्तः, दयाक्षमासम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रशुक्लध्यानधर्मध्यानानन्तज्ञानादिचतुष्टयादिगुणभावनासहितः । **काउस्सग्गो**[6]—कायोत्सर्गः । **तणुविसग्गो**—तनोः

त्याग तथा वर्तमान संबंधी त्याग सो प्रत्याख्यान जाननां । इहां कोउ पूछैं प्रतिक्रमण में प्रत्याख्यान में विशेष कहां ? ताका समाधान—अतीत काल के दोष का शोधनां सो प्रतिक्रमण कहिए, बहुरि अनागत काल विषै तथा वर्तमान काल विषैं द्रव्यादिक संबंधी दोष का परिहार सो प्रत्याख्यान कहिए अैसे इनिका भेद जाननां तथा तप के अर्थि निर्दोष द्रव्यादिक का भी परित्याग करिए सो प्रत्याख्यान है । बहुरि प्रतिक्रमण है सो दोषनिका निराकरण कै अर्थि ही है ।

आगे **कायोत्सर्ग के स्वरूप** का निरूपण कै अर्थि कहैं हैं—

अर्थ—दैवसिक आदि क्रिया विषैं यथोक्त प्रमाणकरि कहै काल विषै, अर्हंत का गुण चिंतवन सहित देह के विषै ममत्व का छोड़नां सो कायोत्सर्ग जाननां ॥ २८ ॥

टीका—दिवस विषैं होय सो दैवसिक कहिए । रात्रि विषैं होय सो रात्रिक कहिए, पक्ष विषैं होय सो पाक्षिक कहिए, च्यारि महीने हुए होय सो चातुर्मासिक कहिए, संवत्सर भये होय सो सांवत्सरिक कहिए । इनिकूं आदि देकरि जे नियम कहिए, निश्चय किया तिन विषैं अर्हंत भाषित पचीस उच्छ्वास, सत्ताइस उच्छ्वास, एक सौ आठ उच्छ्वास इत्यादि परिमाणकरि कह्या

---

१. क यदेप्तेषां प^0 । २. क तदर्थं ।
३. अ, ब प्रति में 'वुत्त' । ४. काऊ द० । ५. क ^0प्रणीत का^0 । ६. काऊ द ।

शरीरस्य विसर्गस्तनुविसर्गो देहे ममत्वस्य[1] परित्यागः। दैवसिकादिषु नियमेषु यथोक्तकाले योऽयं यथोक्तमानेन जिनगुणचिन्तनयुक्तस्तनुविसर्गः स कायोत्सर्ग इति ॥

लोच-उक्तः स कथं क्रियते इत्यत आह—

वियतियचउक्कमासे लोचो उक्कस्समज्झिमजहण्णो।
सपडिक्कमणे दिवसे उववासेणेव [2]कायव्वो ॥ २९ ॥

वियतियचउक्कमासे—द्वौ च त्रयश्च चत्वारश्च द्वित्रिचत्वारस्ते च ते मासाश्च द्वित्रिचतुर्मासास्तेषु द्वित्रिचतुर्मासेषु, मासशब्दः प्रत्येकं अभिसम्बध्यते द्वयोर्मासयोः, त्रिषु मासेषु चतुर्षु मासेषु वा सम्पूर्णेषु असंपूर्णेषु वा। द्वयोर्मासयोरतिक्रान्तयोः सतोर्वा। त्रिषु मासेषु अतिक्रान्तेष्वनतिक्रान्तेषु सत्सु वा। चतुर्षु मासेषु पूर्णेष्वपूर्णेषु वा नाधिकेषु इत्याध्याहारः कार्यः सर्वसूत्राणां सोपस्कारत्वादिति। **लोचो**—लोचः बालोत्पाटनं हस्तेन मस्तककेशश्मश्रूणामपनयनं जीवसम्मूर्च्छनादिपरिहारार्थं रागादिनिराकरणार्थं स्ववीर्यप्रकटनार्थं सर्वोत्कृष्टतपश्चरणार्थं लिंगादिगुणज्ञापनार्थं चेति। **उक्कस्स**—उत्कृष्टः, अत्यर्थमाचरणार्थाभिप्रायः। **मज्झिम**—मध्यमः अजघन्योत्कृष्ट। **जहण्ण**—जघन्यः मन्दाचरणाभिप्रायः। **सपडिक्कमणे**—सप्रतिक्रमणे सह प्रतिक्रमणेन वर्तते इति सप्रतिक्रमणस्तस्मिन्सप्रतिक्रमणे। **दिवसे**—अहोरात्रमाध्ये। **उववासेण**—उपवासेन अशनादिपरित्यागयुक्तेन। एवकारोऽवधारणार्थः। **कायव्वो**—कर्तव्यः निर्वर्तनीयः। लोचस्य नियुक्तिर्नोक्ता सर्वस्य प्रसिद्धो यतः। सप्रतिक्रमणे दिवसे पाक्षिकचातुर्मासिकादौ उपवासेनैव द्वयोर्मासयोर्यत् केशश्मश्रूत्पाटनं स उत्कृष्टो लोचः। त्रिसु मासेषु मध्यमः, चतुर्षु मासेषु जघन्यः। अथवा विधानमेतत्, एतेषु कालविशेषेषु एवंविशिष्टो लोचः कर्तव्यः। एवकारेणोपवासे लोचोऽवधार्यते न दिवसः, तेन प्रतिक्रमणरहितेऽपि दिवसे लोचस्य सम्भवः। अथवा सप्रतिक्रमणे दिवसे इत्यनेन किमुक्तं भवति लोचं कृत्वा प्रतिक्रमणं कर्तव्यमिति। [3]लुंचधातुरपनयने वर्तते तच्चापनयनं क्षुरादिनापि सम्भवति तत्किमर्थमुत्पाटनं मस्तके केशानां श्मश्रूणां चेति चेन्नैष दोषः, दैन्यवृत्तियाचनपरिग्रहपरिभवादिदोषपरित्यागादिति ॥

जो अपनैं-अपनैं काल तिनि विषैं कायोत्सर्ग करनां। जिनगुण कहिए दया, क्षमा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, शुक्लध्यान, धर्मध्यान, अनंतज्ञानादि चतुष्टय इत्यादिक गुणनिको भावनां सहित देहकै विषैं ममत्व का परित्याग करिए सो कायोत्सर्ग कहिए।

आगे **केशनिका लौंच** कह्या सो कैसे करिए, सो कहै हैं—

अर्थ—दोय महीनां भये लौंच करिए सो उत्कृष्ट कहिए, तीन महोने भए करिये सो मध्यम कहिये, च्यारि महीना भये करिये सो जघन्य कहिए, प्रतिक्रमण सहित, दिन विषै, उपवास करि सहित हो करिए सो [4]लौंचनामा मूलगुण जाननां ॥ २९ ॥

टीका—दोय महीना वितीत भयैं संतैं अथवा तीन महीना पूरण भये तथा पहलै ही अथवा च्यारि महीनां पूरण भए तथा पहलैं ही लौंच करना च्यारि महीनां उपरांति केश नहीं राखिए—अैसा अर्थ जाननां। लौंच नाम अपने हाथकरि मस्तक, डाढ़ी, मूँछ के केश उपाडने का है। सो यहु लौंच संमूर्छनादिक जीवनिकी हिंसा का परिहार रूप संयम कैं अर्थि बहुरि राग का निराकरण रूप वैराग्यभाव कै अर्थि बहुरि अपनें वीर्य का प्रगट करनें रूप परीषहजय के अर्थि बहुरि सर्वोत्कृष्ट तपश्चरण रूप अदीनभाव कै अर्थि, बहुरि मुनिलिंग आदि गुण रूप जो निर्ग्रंथपणां ताके जनावनैं कैं अर्थि इत्यादिक गुणनिकै करिए हैं।

---

१. क °त्वप°। २. अ प्रति में कायच्चो। ३. लुचृद०। ४. ब प्रति में लोच।

अचेलकत्वस्वरूपप्रतिपादनायोत्तरसूत्रमाह—

वत्थाजिणवक्केण य अहवा पत्ताइणा[1] असंवरणं ।
णिब्भूसण णिग्गंथं अच्चेलक्कं जगदि पूज्जं ।। ३० ।।

वत्थाजिणवक्केण—वस्त्रं पटचीवरकम्बलादिकं, अजिनं चर्म मृगव्याघ्रादिसमुद्भवं, वल्कं[2] वृक्षादित्वक्, वस्त्रं चाजिनं च वल्कं च वस्त्राजिनवल्कानि तैर्वस्त्राजिनवल्कैः पटचीवरचर्मवल्कलैरपि । **अहवा**—अथवा । **पत्ताइणा**—पत्रमादिर्येषां तानि पत्रादीनि तैः पत्रादिभिः पत्रबालतृणादिभिरसंवरणमनावरणमनाच्छादनं । **णिब्भूसणं**—भूषणानि कटककेयूरहारमुकुटाद्याभरणमंडनविलेपनधूपनादीनि तेभ्यो निर्गतं निर्भूषणं सर्वरागांगविकाराभावः । **णिग्गंथं**—ग्रन्थेभ्यः संयमविनाशकद्रव्येभ्यो निर्गतं निर्ग्रंथं बाह्याभ्यन्तरपरिग्राहाभावः । **अच्चेलक्कं**—अचेलकत्वं चेलं वस्त्रं तस्य मनोवाक्कायैः संवरणार्थमग्रहणं । **जगदिपूज्जं**—जगति पूज्यं महापुरुषाभिप्रेतवंदनीयम् । वस्त्राजिनवल्कलैः पत्रादिभिर्वा यदसंवरणं निर्ग्रंथं निर्भूषणं च तदचेलकत्वं व्रतं जगति पूज्यं भवतीत्यर्थः । अथ को दोषः इति चेन्न[3] हिंसार्जनप्रक्षालनयाचनादिदोषप्रसंगात्, ध्यानादिविघ्नाच्चेति ।।

भावार्थ—मुनिनिकै काकिनी मात्र का संग्रह नांही जाकरि क्षौर करावे । बहुरि हिंसा का कारण जानि शस्त्र राखै नांही, जातै क्षौर होय । बहुरि मुनिनिकै दोनवृत्ति नांही है यातैं किसी सैं दीनताकरि क्षौर करावैं । सो यहु लौंच प्रतिक्रमण सहित दिन, जिस दिन विषैं पाक्षिक, चातुर्मासिकादिक प्रतिक्रमण करिए तिस दिन विषै करिए तथा जिस दिन विषैं लौंच करिए, जिस दिन उपवास नियमकरि करिए । प्रतिक्रमण रहित दिन विषै भी लौंचका निषेध नांही । लौंच कीये पीछैं प्रतिक्रमण करनां ।

आगैं **अचेलकपणां के स्वरूप** का प्रतिपादन कै अर्थि उत्तरसूत्र कहै हैं—

अर्थ—वस्त्र, अजिन, वकल (वल्कल) अथवा पत्रादिक—इनिकरि शरीरका आच्छादन नांही करनां तथा निर्भूषण, निर्ग्रन्थ—अैसा अचेलकव्रत है सो जगत विषै पूजनीक है ।। ३० ।।

टीका—वस्त्र कहिए कपास के पटादिक तथा पाट के चीवरादिक तथा रोम के कंवलादिक—अैसें तीन प्रकार । बहुरि अजिन कहिए चर्म्म—मृग, व्याघ्रादिकतैं उपजैं मृगछालादिक । बहुरि वल्कल कहिए वृक्षादिक की छालितैं भए सिण, टाट इत्यादिक अथवा पत्रादिक कहिए पान, तृणा इत्यादिकनिकरि शरीर का आछादन नांही करनां । बहुरि भूषण कहिए कड़े, केयूर, हार, मुकुट इत्यादिक अनेक प्रकार, आभरण—मंडन, विलेपन इत्यादिक करि रहित सर्व राग के कारण जे अंगविकार तिनिका अभाव सो निर्भूषण कहिए । बहुरि ग्रंथ कहिए संयम के विनाशक द्रव्य तिनकरि रहितपणां तथा बाह्य-आभ्यंतर परिग्रह का अभाव सो निर्ग्रंथ कहिए । अैसे चेल कहिए वस्त्रादिक तिनका मन, वचन, कायकरि संवरण कैं अर्थि ग्रहण न करनां—यह जगत् कै विषैं महापुरुषनिकरि मान्य वंदनें योग्य आचेलक्य व्रत है ।

इहां कोउ कहै वस्त्रादिक होय तो कहा दोष ? ताका समाधान—हिंसा का उपार्जनरूप दोष, प्रक्षालनरूप दोष, याचनादिक

१. अ, ब दोनों प्रतियों में 'पत्तादिणा' । २. क वक्कं । ३. क चेत्तन्न ।

अस्नानव्रतस्य स्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

ण्हाणादिवज्जणेण य विलित्तजल्लमलसेदसव्वंगं ।
अण्हाणं घोरगुणं संजमदुगपालयं मुणिणो ॥ ३१ ॥

ण्हाणादिवज्जणेण य—स्नानं जलावगाहनं आदिर्येषां ते स्नानादयः स्नानोद्वर्तनाञ्जनजलसेकताम्बूललेपनादयस्तेषां वर्जनं परित्यागः स्नानादिवर्जनं तेन स्नानादिवर्जनेन जलप्रक्षालनसेचनादिक्रियाकृतांगोपांगसुखपरित्यागेन । **विलित्तजल्लमलसेदसव्वंगं**—जल्लं सर्वांगप्रच्छादकं मलं अंगैकदेशप्रच्छादकं स्वेदः प्रस्वेदो रोमकूपोद्गतजलं, जल्लं च मलं च स्वेदश्च जल्लमलस्वेदास्तैः विलिप्तं सर्वांगं[1] विलिप्तजल्लमलस्वेदसर्वांगं । विलिप्तशब्दस्य पूर्वनिपातः । अथवा जल्लमलाभ्यां स्वेदो यस्मिन् जल्लमलस्वेदं, सर्वं च तदंगं च सर्वांगं सर्वशरीरं विलिप्तं च तज्जल्लमलस्वेदं च सर्वांगं च तद्विलिप्तजल्लमलस्वेदसर्वांगम् । अथवा विलिप्ताः [2]सूपचिता जल्लमलस्वेदा यस्मिन् सर्वांगे तद्विलिप्तजल्लमलस्वेदं तच्च तत् सर्वांगं च । **अण्हाणं**—अस्नानं जलावगाहनाद्यभावः । **घोरगुणो**—महागुणः प्रकृष्टव्रतं, अथवा घोराः प्रकृष्टा गुणा यस्मिन् तद् घोरगुणम् । **संजमदुगपालयं**—संयमः कषायेन्द्रियनिग्रहः संयमस्य द्विकं द्वयं संयमद्विकं तस्य पालकं संयमद्विकपालकं इन्द्रियसंयमप्राणसंयमरक्षकम् । **मुणिणो**—मुनेः चारित्राभिमानिनो मुनेः । स्नानादिवर्जनेन विलिप्तजल्लमलस्वेदसर्वांगं महाव्रतपूतं यत्तदस्नानव्रतं घोरगुणं संयमद्वयपालकं भवतीत्यर्थः । नात्राशु-

---

दोष का प्रसंग होय तथा ध्यानादिक विषै विघ्न होय । **भावार्थ**—वस्त्रादिक दूर ही रहो । मुनिराज कोपीन मात्र हू राखै तौ अनेक दोषनिका कारण है । तातैं अचेल व्रत ही मूलगुण है ।

आगैं अस्नानव्रत का स्वरूप कौं प्रतिपादन करता संता कहै हैं—

अर्थ—स्नानादिकका वर्जनकरिकैं जल्ल, मल्ल स्वेदकरि (पसीने से) विलिप्त हैं सर्ब अंग जामैं अैसा दोन्यूं प्रकार संजमकर रक्षक मुनिराज कै महागुण रूप अस्नान व्रत है ॥ ३१ ॥

टीका—स्नान कहिये जलकरि न्हावनां, आदि शब्दकरि उद्वर्तन कहिए उवटनां, अंजन कहिए—कज्जलकरि नेत्र का संस्कार, जलसेक कहिये अंग बिषैं जल का छिरकनां । तांबूल कहिए—नागर-वेलपत्र, लेपन कहिए चंदनादिक का विलेपन इत्यादिक क्रिया का अंग-उपांग संबंधी सुख का परित्यागकरि वर्जन करनां सो स्नानादि वर्जन कहिये ।

बहुरि सर्वअंग उपरि होय सो जल्ल कहिये । अंग के एकदेश उपरि होय सो मल कहिये । रोमकूपतैं नोसरया[3] जल रूप पसेव (पसीना) सो स्वेद कहिए । अैसें जल्ल, मल, स्वेदकरि विलिप्त हैं सर्व अंग जामैं अथवा जल्ल-मलकरि हैं स्वेद जामैं अथवा विलिप्त कहिए अतिशयकरि संचयरूप हुए हैं जल्ल-मल-स्वेद जामैं अैसा भया है सर्व अंग जिस अस्नानव्रत मैं । बहुरि घोर कहिये महान् आश्चर्यकारो है गुण जामैं अैसा । बहुरि कषायनिका निग्रह रूप प्राणसंयम तथा इंद्रियनि का निग्रह रूप इंद्रियसंयम—अैसें दोनूं संयम का रक्षक यह अस्नान व्रत है ।

इहां कोउ कहे स्नानादिक का वर्जन तैं मुनिराज कैं अशुचिपणां आवैं है, ताका समाधान—मुनिराज व्रतनिकरि सदा-

---

१. क °गं स वि····सर्वांगः । २. वृद्धिगताः । ३. अ प्रति में *नीसरवा* ।

चित्वं स्यात् स्नानादिवर्जनेन मुनेः व्रतैः शुचित्वं यतः । यदि पुनर्व्रतरहिता जलावगाहनादिना शुचयः स्युस्तदा मत्स्यमकरदुश्चरित्रासंयताः सर्वेऽपि शुचयो भवेयुः । न चैवं, तस्मात् व्रतनियमसंयमैर्यः शुचिः स शुचिरेव । जलादिकं तु बहु कश्मलं नानासूक्ष्मजन्तुप्रकीर्णं सर्वसावद्यमूलं न तत्संयतैर्यत्र तत्र प्राप्तकालमपि सेवनीयमिति ॥

क्षितिशयनव्रतस्य स्वरूपं प्रपंचयन्नाह—

फासुयभूम्मिपएसे अप्पमसंथारिदम्हि [1]पच्छण्णे ।
दंडं धणुव्व सेज्जं खिदिसयणं एयपासेण ॥ ३२ ॥

फासुयभूमिपएसे—प्रगता असवः प्राणा यस्मिन्नसौ प्रासुको जीववधादिहेतुरहितः भूमेः प्रदेशो भूमिप्रदेशः प्रासुकश्चासौ भूमिप्रदेशश्च प्रासुकभूमिप्रदेशस्तस्मिन् जीवहिंसामर्दनकलहसंक्लेशादिविमुक्तभूमिप्रदेशे । **अप्पमसंथारिदम्हि**—अल्पमपि स्तोकमपि असंस्तरितं अप्रक्षिप्तं यस्मिन् सोऽल्पासंस्तरितस्तस्मिन्नल्पासंस्तरिते अथवा अल्पवति संस्तरिते येन बहुसंयमविघातो न भवति तस्मिन् तृणमये काष्ठमये शिलामये भूमिप्रदेशे च संस्तरे गृहस्थयोग्यप्रच्छादनविरहिते आत्मना वा संस्तरिते नान्येन । अथवा आत्मानं मिमीत इति आत्ममं आत्मप्रमाणं संस्तरितं चारित्रयोग्यं तृणादिकं यस्मिन् स आत्ममसंस्तरितप्रदेशस्तस्मिन् । **पच्छण्णे**—प्रच्छन्ने गुप्तैकप्रदेशे [2]स्त्रीपशुषंढकविवर्जिते असंयतजनप्रचारविवर्जिते । **दण्डं**—दण्ड इव शयनं दण्ड इत्युच्यते । **धणु**—धनुरिव शयनं धनुरित्युच्यते । शय्याशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । दण्डेन शय्या धनुषा शय्या । अधोमुखे-

---

शुचि हैं। जो व्रतरहित जल अवगाहनादिक ही तैं शुचिपणां होय तो माछली, मगर-मच्छ, दुराचारी, असंयमी सारे शुचि ठहरैं ? अैसे हैं नांही, तातैं जो व्रत, नियम, संयमकरि शुचि है सो ही महापुरुष शुचि है, जलादि कहै ते तौ बहुत दोषनि सहित है। नाना प्रकार सूक्ष्म जीवकरि भरै है सर्व सावद्य योग पाप के मूल हैं। तातै संयमीजनन कौं जहां-तहां अवसर पाईकैं भी सेवनें योग्य नांही, अस्नान व्रत ही पालनांयोग्य है।

आगैं क्षितिशयनव्रत के स्वरूपकौं विस्तारता संता कहै हैं—

अर्थ—प्रासुक भूमिप्रदेश विषैं जहां अल्पहू संस्तर नांही तहां प्रछन्न एक पसवाडा (करवट) करि दंडवत् तथा धनुषवत् सोवनां सो क्षितिशयन मूलगुण कहिए ॥ ३२ ॥

जहां प्राणी नांही जीव वधादिक का कारण नांही, जीव–हिंसा, मर्दन, कलह, संक्लेश इत्यादिक रहित प्रासुक भूमिप्रदेशे, जहां थोराहू संस्तर नांही अैसा शुद्धभूमि-प्रदेश अथवा जाकरि बहुत संयम का विघात न होय—अैसा अल्पमात्र तृणमय तथा काष्ठमय तथा शिलामय संस्तर गृहस्थयोग्य प्रछादन रहित होय अथवा चारित्र का विरोधरहित, आपकरि कीया होय, अन्यकरि कीया नांही, अपने प्रमाण होय, वधता न होय—अैसा तथा प्रछन्न कहिए—गुप्त—स्त्री-नपुंसक-तिर्यंच वर्जित होय, असंयमी जनका जहां प्रचार नांही—अैसा होय, तहां दंड की नांई अथवा धनुष की नांई, एक पसवाडाकरि सोवनां । अधोमुख नांही सोवनां

---

१. अ, प्रति में पच्छत्ते, ब, प्रति में—पच्छसे । २. क °शुपंडक° ।

नोत्तानेन शय्या न कर्तव्या दोषदर्शनात् । **खिदिसयणं**—क्षितौ शयनं क्षितिशयनं । विवर्जितपल्यंकादिकं । **एयपासेण**—एकपार्श्वेन शरीरैकदेशेन । प्रासुकभूमिप्रदेशे चारित्राविरोधेनाल्पसंस्तरितेऽसंस्तरिते आत्मप्रमाणेनात्मनैव वा संस्तरिते प्रच्छन्ने दण्डेन धनुषा एकपार्श्वेन मुनेर्या शय्या शयनं तत् क्षितिशयनव्रतमित्यर्थः । किमर्थमेतदिति चेत् इन्द्रियसुखपरिहार्थं तपोभावनार्थं शरीरादिनिस्पृहत्वाद्यर्थं चेति ।।

अदन्तमनव्रतस्य स्वरूपं निरूपयन्नाह—

अंगुलिणहावलेहणिकलीहिं[1] पासाणछल्लियादीहिं ।
दंतमलासोहणयं संजमगुत्ती अदंतमणं ।। ३३ ।।

अंगुलि—अंगुलिः हस्ताग्रावयवः । **णह**—नखः कररुहः । **अवलेहणि**—अवलिख्यते मलं निराक्रियतेऽनया सा अवलेखनी दन्तकाष्ठं । **कलीहिं**[2]—कलिस्तृणविशेषः, अत्र बहुवचनं द्रष्टव्यं प्राकृतलक्षणबलात् । अंगुलिनखावलेखनीयस्तैः । **पासाणं**—पाषाणं । **छल्लि**—त्वक् वल्कलावयवः । पाषाणं च त्वक् च पाषाणत्वचं तदादिर्येषां ते पाषाणत्वचादयस्तैः पाषाणत्वचादिभिश्च । आदिशब्देन खर्परखण्डतन्दुलवर्तिकादयो गृह्यन्ते । **संजमगुत्ती**—संयमगुप्तिः । **दंतमलासोहणयं**—दन्तानां मलं तस्याशोधनमनिराकरणं दन्तमलाशोधनं । **संजमगुत्ती**—संयमस्य गुप्तिः संयमगुप्तिः संयमरक्षा इन्द्रियसंयमरक्षणनिमित्तम् । [3]**समुदायार्थः**—अंगुलिनखावलेखनीकलिभिः पाषाणत्वचादिभिश्च यदेतद्दन्तमलाशोधनं संयमगुप्तिनिमित्तं तददन्तमनव्रतं भवतीत्यर्थः । किमर्थं वीतरागख्यापनार्थं सर्वज्ञाज्ञानुपालननिमित्तं चेति ।।

स्थितिभोजनस्य स्वरूपं निरूपयन्नाह—

अंजलिपुडेण ठिच्चा कुड्डाइ[4] विवज्जणेण समपायं[5] ।
[6]पडिसुद्धे भूमितिए असणं ठिदिभोयणं णाम ।। ३४ ।।

तथा उर्ध्व मुख नांही सोवनां । जातैं ऐसे सोवने मैं दोष देखिए हैं । बहुरि पिलंग (पलंग) इत्यादिक विषैं नांही सोवै हैं—अैसा क्षितिशयन नामा मूलगुण है, सो इंद्रियसुख के परिहारकै अर्थि, तप की भावना कैं अर्थि, शरीरादिक तैं निस्पृहता इत्यादि कै अर्थि जानना ।

आगे अदंतमनव्रत के स्वरूपकूं निरूपण करता संता कहै हैं—

अर्थ—अंगुलि, नख, दांतन, कलि, पाषाण छालि—इत्यादिक करि दांतनिक के मलका शोधनां नाही सो यह संयम की रक्षा रूप अदंतमनव्रत है ।

टीका—अंगुलि कहिए—हाथ का अगाडी का अवयव, नख कहिए—नौंह, अवलेखनि कहिए दांतण, कलि कहिए—तृण विशेष । बहुरि पाषाण कहिए—तीक्ष्ण काकरया (कंकड़), छल्लि कहिए—वृक्ष की छालि, वकल—आदि शब्दकरि खर्पर-खंड चावलवर्त्तिकादिक—इनिकरिकैं दंतमल का शोधन नांही करैं, इंद्रियसंयम को रक्षा के निमित्त वीतरागता के प्रगट करने कैं अर्थि, सर्वज्ञ की आज्ञा के पालनैं कै निमित्त अदंतमन मूलगुण व्रत कह्या है ।

१. अ, ब प्रति में कलिव । २. क कलि च । ३. क समु° । ४. अ, ब प्रति में कुड्डादि । ५. क पादं° । ६. क परिसु° ।

अंजलिपुडेण—अञ्जलिरेव पुटं अञ्जलिपुटं तेन अञ्जलिपुटेन पाणिपात्रेण स्वहस्तपात्रेण[1]। **ठिच्चा**—स्थित्वा ऊर्ध्वधः[2] स्वरूपेण नोपविष्टेन नापि सुप्तेन न तिर्यग्व्यवस्थितेन भोजनं कार्यमित्यर्थः। ऊर्ध्वजंघः संस्थाय। **कुड्डाइविवज्जणेण**—कुड्यमादिर्येषां ते कुड्यादयस्तेषां विवर्जनं परिहरणं कुड्यादिविवर्जनं तेन कुड्यादिविवर्जनेन भित्तिविभागस्तंभादीननाश्रित्य। **समपायं**—समौ पादौ यस्य क्रियाविशेषस्य तत्समपादं चतुरंगुलप्रमाणं पादयोरन्तरं कृत्वा स्थातव्यमित्यर्थः। **परिसुद्धे**—परिशुद्धे जीवबधादिविरहिते। **भूमितिए**—भूमित्रिके भूमेस्त्रिकं भूमित्रिकं तस्मिन् स्वपादप्रदेशोत्सृष्टपतनपरिवेषकप्रदेशे। **असणं**—असनं आहारग्रहणम्। **ठिदिभोयणं**—स्थितस्य भोजनं स्थितिभोजनं नामसंज्ञकं भवति। परिशुद्धे भूमित्रिके कुड्यादिविवर्जनेनाञ्जलिपुटेन समपादं यथाभवति तथा स्थित्वा यदेतदशनं क्रियते तत्स्थितिभोजनं नाम व्रतं भवतीति। समपादाञ्जलिपुटाभ्यां न सर्वः एकभक्तकालः त्रिमुहूर्तमात्रोऽपि विशिष्यते किन्तु भोजनं मुनेर्विशिष्यते तेन त्रिमुहूर्तकालमध्ये यदा यदा भुङ्क्ते तदा तदा समपादं कृत्वा अञ्जलिपुटेन भुञ्जीत। यदि पुनर्भोजनक्रियायां प्रारब्धायां समपादौ न विशिष्यते हस्तप्रक्षालने कृतेऽपि तदानीं जानूपरिव्यतिक्रमो योऽयमन्तरायः पठितः स न स्यात्। नाभेरधो निर्गमनं योऽन्तरायः सोऽपि न स्यात्। अतो ज्ञायते त्रिमुहूर्तमध्ये एकत्र भोजनक्रियां प्रारभ्य केनचित् कारणान्तरेण हस्तौ प्रक्षाल्य मौनेनान्यत्र गच्छेत् भोजनाय यदि पुनः सोऽन्तरायो भुञ्जानस्यैकत्र भवतीति मन्यते जानूपरिव्यतिक्रमविशेषणमनर्थकं स्यात्।

आगे स्थितिभोजन व्रत के स्वरूप कूं निरूपण करता संता कहै हैं—

अर्थ—पाणिपात्रकरि भीति इत्यादिक का आश्रय विना समपाद खड़ारहिकरि तीनूं भूमि की शुद्धता होतैं भोजन लेनां सो स्थितिभोजन नाम मूलगुण कहिए।

टीका—हाथनि की अंजुलि सो ही भया पुट सो अंजुलि पुट कहिए। अपनां हाथ रूप भाजन पाणिपात्र में खड़ा रहिकरि भोजन लेना, बैठिकरि तथा सोयकरि तथा तिरछा होयकरि भोजन नांही लेनां, ऊर्ध्व जंघा खडा रहि भीति, कूंणा, स्तम्भ—इत्यादि का आश्रय बिना च्यारि आंगुल का अंतर सूं बराबरि पगकरि खड़ारहि अपनैं चरणनि का प्रदेशनिकीं भूमि तथा औठि (उच्छिष्ट) पड़नैं की भूमि तथा जिमावनैं वाले का प्रदेश की भूमि—अैसें तोनूं भूमि जोव-वधादिक रहित शुद्ध होतैं संतैं आहारग्रहण करनां—इह स्थितिभोजन नाम व्रत है।

इहां समपादखड़ा रहनां, अंजुलिपुट करनां—अैसा विशेषण तीन मुहुर्त मात्र सर्व एकभक्त काल का नांही है, तो कैंसे हैं? तीन मुहुर्तकाल में जेती बार भोजन करनें लागैं तेती बार समपाद, अंजुलिपुट राखैं। जो सर्व भोजन के काल का विशेषण करिए तौ हस्तप्रक्षालन कोएं पीछैं जानु परिव्यतिक्रम नामा अंतराय कह्या है तथा नाभेरधोनिर्गमन अंतराय कह्या, सो नांही ठहरै यातैं जानिए हैं तीन मुहुर्त में एक ठिकाणैं भोजनक्रिया का प्रारंभकरि कोई करणांतरकरि हाथ प्रक्षाल, मौनकरि अन्यस्थान जाय भोजन करैं। भोजन करतें अंतराय का जानुपरिव्यतिक्रम विशेषण अनर्थ कहैं। भोजन करतैं तो समपाद तैं किंचित चलतैं हू अंतराय होय है। बहुरि नाभेरधो—निर्गमन अंतराय भोजन करतैं संभवै हो नांही। बहुरि पादकरि किंचित ग्रहण करना—इत्यादि अंतराय तो भोजन करतैं संभवै हो नांहो। बहुरि हाथकरि किंचित् ग्रहण करना—यह अंतराय का विशेषण भोजन करतैं संभवै नांही।

---

१. क °त भाजनेन। २. क °र्ध्वजंघस्व°।

एवं विशेषणमुपादीयेत समपादयोर्मनागपि चलितयोरन्तरायः स्यात् नाभेरधो निर्गमनं दूरत एव न[1] सम्भवतीति अन्तरायपरिहारार्थमनर्थकं ग्रहणं स्यात् तथा पादेन किञ्चित् ग्रहणमित्येवमादीन्यन्तरायख्यापकानि सूत्राण्यनर्थकानि स्युः। तथाञ्जलिपुटं यदि न भिद्यते करेण किञ्चिद् ग्रहणमन्तरायस्य विशेषणमनर्थकं स्यात्। गृह्णातु वा मा वा अञ्जलिपुटभेदेन अन्तरायः स्यादित्येवमुच्यते। तथा जान्वधः परामर्शः सोऽप्यन्तरायस्य विशेषणं न स्यात्। एवमन्येऽपि अन्तरायाः न स्युरिति। न चैतेऽन्तरायाः सिद्धभक्तावकृतायां गृह्यन्ते सर्वदैव भोजनाभावः स्यात्। न चैवं, यस्मात्सिद्धभक्तिं यावन्न[2] करोति तानदुपविश्य पुनरुत्थाय भुङ्क्ते। मांसादीन् दृष्ट्वा च रोदनादिश्रवणेन च उच्चारादींश्च कृत्वा भुङ्क्ते न च तत्र काकादिपिंडहरणं[3] सम्भवति। अथ किमर्थं स्थितिभोजनमनुष्ठीयते चेन्नेष दोषः यावद्धस्तपादौ मम संवहतस्तावदाहारग्रहणं योग्यं नान्यथेति ज्ञापनार्थं। मिथस्तस्य हस्ताभ्यां भोजनं उपविष्टः सन् भाजनेनान्यहस्तेन वा न भुञ्जेऽहमिति प्रतिज्ञार्थं च, अन्यच्च स्वकरतलं शुद्धं भवति अन्तराये सति बहोर्विसर्जनं च न भवति अन्यथा पात्रीं सर्वाहारपूर्णां त्यजेत् तत्र च दोषः स्यात्। इन्द्रियसंयमप्राणसंयमप्रतिपालनार्थं च स्थितिभोजनमुक्तमिति॥

एकभक्तस्य स्वरूपं निरूपयन्नाह—

उदयत्थमणे काले णालीतियवज्जियम्हि मज्झम्हि।
एकम्हि दुअ तिए वा मुहुत्तकालेयभत्तं तु॥ ३५॥

जातैं अंजलिपुट का भेद भया तहां ही अंतराय हुवा। वहुरि जानुअधःपरामर्श—इह अंतराय का विशेषण नांही ठहरै। अैसें अन्य हू अंतराय नांही ठहरै।

इहां कोउ कहैं यह अंतराय सिद्धभक्ति कीए पहली कहे हैं, ताका समाधान—अैसे कहें तौ सदा ही भोजन का अभाव ठहरैं है। जानैं सिद्धभक्ति न करैं जेतैं तो बैठते भी हैं, उठते भी हैं, मांसादिक भी देखिले, रोदनादिक सुणिले, मल क्षेपनकरि आवैं अंतराय नांही। बहुरि सिद्धभक्ति कोये पहली अंतराय कहिए तौ काकादि पिंडहरण तहां नांही संभवै है। इहां कोउ पूछै—खड़े भोजन का अनुष्ठान किसै अर्थि करिए हैं? ताका समाधान—जेतै मेरे हाथ पाव चलै हैं—ते तैं आहार ग्रहण करना योग्य है—हाथपाव चलै नांही तब आहार करनां योग्य नांही—अैसा जनावनैं कै अर्थि तथा बैठ्या हुआ अन्य पात्रकरि तथा अन्य के हाथकरि मैं भोजन नांही करुं—अैसी प्रतिज्ञा के अर्थि तथा और कारण हैं। अपनां हस्ततल शुद्ध है; तातैं पाणिपात्र ही भोजन कह्या है। यामैं अंतराय होतैं हूँ हाथ का ग्रास ही छोड़ना होय है। बहुत छोड़ना नांही होय है। जो अन्य पात्र में भोजन होता तौ अंतराय होतैं सर्वआहार पूरण पात्र छोडनां पडता। नातै बड़ा दोष आवता। यातै इंद्रियसंयम, प्राणसंयम प्रतिपालनैं कैं अर्थि स्थितिभोजन नाम मूलगुण कह्या।

आगै एकभक्त का स्वरूप निरूपण करता संता कहे हैं—

अर्थ—तीन घड़ी दिन चढै पीछै तथा तीन घड़ी दिन पिछला रहैं, पहली मध्यकाल कै विषैं, एक मुहूर्त काल विषै तथा दोय मुहूर्त काल विषैं तथा तीन मुहूर्त काल विषैं एक बार भोजन करनां सो एकभक्त नामा मूलगुण कहिए।

१-२. न नास्ति क प्रतौ। ३. क °डग्रहणं°।

उदयत्थमणे—उदयश्चास्तमनं च उदयास्तमने तयोः सवितुरुदयास्तमनयोः। **काले**—कालयोः, अथवा उदयास्तमनकालौ द्वितीयान्तौ द्रष्टव्यौ। **णालीतियवज्जियम्हि**—नाड्या घटिकायास्त्रिकं नाडीत्रिकं तेन नाडीत्रिकेण वर्जितं नाडीत्रिकवर्जितं तस्मिन् घटिकात्रिवर्जिते। **मज्झम्हि**—मध्ये। **एक्कम्हि**—एकस्मिन्। **दुअ**—द्वयोः। **तिए वा**—त्रिषु वा। **मुहुत्तकाले**—मुहूर्तकाले। **एयभत्तं तु**—एकभक्तं तु। उदयकालं नाडीत्रिकप्रमाणं वर्जयित्वा। अस्तमनकालं च नाडीत्रिकप्रमाणं वर्जयित्वा शेषकालमध्ये एकस्मिन् मुहूर्ते द्वयोर्मुहूर्तयोस्त्रिषु था मुहूर्तेषु यदेतदशनं तदेकभक्तसंज्ञकं व्रतमिति पूर्वगाथासूत्रादशनमनुवर्तते तेन सम्बन्ध इति। अथवा नाडीत्रिकप्रमाणे उदयास्तमनकाले च वर्जिते मध्यकाले त्रिषु मुहूर्तेषु भोजनक्रियाया या निष्पत्तिस्तदेकभक्तमिति। अथवा अहोरात्रमध्ये द्वे भक्तवेले तत्र एकस्यां भक्तवेलायां आहारग्रहणमेकभक्तमिति। एकशब्दः संख्यावचनः भक्तशब्दोऽपि कालवचन इति। एकभक्तैकस्थानयोः को विशेष इति चेन्न पादविक्षेपाविक्षेपकृतत्वाद्विशेषस्य, एकस्मिन् स्थाने त्रिमुहूर्तमध्ये पादविक्षेपमकृत्वा भोजनमेकस्थानं, त्रिमुहूर्तकालमध्ये एकक्षेत्रावधारणरहिते भोजनमेकभक्तमिति। अन्यथा मूलगुणोत्तरगुणयोरविशेषः स्यात् न चैवं प्रायश्चित्तेन विरोधः स्यात्। तथा चोक्तं प्रायश्चित्तग्रन्थेन, 'एकस्थानमुत्तरगुणः एकभक्तं तु मूलगुण' इति। तत्किमर्थमिति [1]चेन्न इन्द्रियजयनिमित्तं, आकांक्षानिवृत्त्यर्थं, महापुरुषाचरणार्थं चेति। किमर्थं महाव्रतानां भेद इति चेन्न, छेदोपस्थापन-शुद्धिसंयमाश्रयणात्। नापि महाव्रतसमितीनामभेदः सचेष्टाचेष्टाचरणविशेषाश्रयणात्। नाप्यात्मदुःखार्थमेतत्, अन्यथार्थत्वात् भिषक्क्रियावदिति। अथ तपसां गुप्तीनां च क्वान्तर्भाव इति प्रश्ने उत्तरमाह—अनशनं नाम अशनत्यागः स च त्रिप्रकारः। मनसा च न भुंजे न भोजयामि, भोजने व्यापृतस्य

टीका—सूर्य का उदयकाल तथा सूर्य का अस्त काल विषै पहली पिछली तीन-तीन घड़ी छोड़िकरि मध्यकाल विषै एक मुहूर्त काल विषै तथा दोय मुहूर्त काल विषै तथा तीन मुहूर्त काल विषैं जो एक बार भोजन सो एकभक्त मूलगुण कहिए।

एक दिन विषैं दोय भोजन बेला है। तहां येक वेला आहार ग्रहण करनां सो एकभक्त कहिए। यहां कोउ पूछे एकभक्त में एक स्थान में विशेष कहा, ताका समाधान—जो पादविक्षेप रहित एक स्थान विषैं भोजन करिए सो एकस्थान कहिए। कारण विशेषतैं जामैं पादविक्षेप करिए सो एकभक्त कहिए। जातैं एकस्थान तौ उत्तरगुण है, एकभक्त मूलगुण है।[2] ऐसे प्रायश्चित ग्रंथ मैं कह्या है। इहां एकभक्तनामा मूलगुण इंद्रियनिके जीतिवे अर्थि, आकांक्षा की निवृत्ति कै अर्थि, महाव्रत का आचरणकैं अर्थि कह्या हैं। इहां कोउ पूछै महाव्रतनि के भेद किसी अर्थि वर्णन कीए? ताका समाधान—छेदोपस्थापना को शुद्धता रूप संयम का आश्रयतैं भेदवर्णन कीए सामायिक संयम का आश्रयतैं भेद नाहीं। सर्व सावद्ययोग का त्यागरूप एक ही महाव्रत है। इहां कोउ कहैं महाव्रतनि कै अर समितिनिकैं भेद कहां? ताका समाधान—चेष्टा सहित आचरण प्रवृत्ति रूप है, यातैं समिति कहिए हैं—अर चेष्टा रहित आचरण निवृत्ति रूप सो महाव्रत कहिए। बहुरि यह महाव्रतादिरूप आचरण है सो आतमा कैं दुःख कैं अर्थि नांही है, अन्य प्रयोजन के कारणपनैंतैं जैसें रोग की निवृत्ति कै अर्थि कडवो वौषधि, लंघन, पथ्यभोजन आदिक करिए सो आरोग्यता आदिक सुख ही कै अर्थि है।

बाह्य तप के छह भेद—इहां कोई पूछै—अंतरंग बहिरंग तपनि का बहुरि गुप्तिनि का अंतर्भाव कहां कोया? ताका उत्तर—प्रथम तौ भोजन का त्याग रूप अनशननामा तप है। सो तीन प्रकार है—मनकरि भोजन करु नांही, अन्य कूं कराऊं

१. क चेत् इ। २. ब प्रति में एकभक्त मूलगुण कहिए हैं—ऐसा पाठ है।

नानुमति करोमि भुञ्जे भुङ्क्ष्व वचसा न भणामीति चतुर्विधाहारस्याभिसन्धिपूर्वकं कायेनादानं न करोमि हस्तसंज्ञया प्रवर्तनं न करोमि नानुमतिसूचनं कायेन करोमि इत्येवं मनोवाक्कायक्रियाणां कर्मोपादानकारणानां त्यागोऽनशनं नाम। तथा योगत्रयेण तृप्तिकारिण्या भुजिक्रियाया दर्पवाहिन्या निराकृतिरवमोदर्यं। तथा आहारसंज्ञाया जयः गृहादिगणनान्यायेन वृत्तिपरिसंख्यानं। तथा मनोवाक्कायक्रियाभीरसगोचरगार्द्धत्यजनं रसपरित्यागः। काये सुखाभिलाषत्यजनं कायक्लेशः। चित्तव्याकुलतापराजयो विविक्तशयनासनम्। स्वकृतापराधगूहनत्यजनं आलोचना। स्वकृतादशुभयोगात्प्रतिनिवृत्तिः प्रतिक्रमणं। तदुभयोज्झनमुभयम्। येन यत्र वा अशुभयोगोऽभूत् तन्निराक्रिया[1] ततोऽपगमनं विवेकः। देहे ममत्वनिरासः कायोत्सर्गः। तपोऽनशनादिकम्। असंयमजुगुप्सार्थं प्रव्रज्याहापनं छेदः। पुनश्चारित्रादानं मूलं। कालप्रमाणेन चतुर्वर्ण्यश्रमणसंघाद्बहिष्करणं परिहारः। विपरीतं गतस्य मनसः निवर्तनं श्रद्धानं, दर्शनज्ञानचारित्रतपसामतीचारो[2] अशुभक्रियास्तासामपोहनं विनयः। चारित्रस्य कारणानुमननं वैयावृत्यम्।

नांही, भोजन में व्यापार करै ताकी अनुमोदना करुं नांही। वचनकरि मैं भोजन करुंगा, तूं भोजन करि, भोजन कीया सो भला काम कीया—अैसा कहौं नांही। बहुरि अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप च्यारि प्रकार आहार का अभिप्रायपूर्वक कायकरि ग्रहण करुं नांही, हाथनिकी चेष्टाकरि प्रवर्तन करुं नांही, काय अंगुली आदि करि अनुमोदनां करुं नांही—अैसे कर्माश्रव की कारण जे[1] मन-वचन-काय की क्रिया ताका त्याग—याका नाम अनशन है। तथा तृप्ति की करणहारी, मदादिक की वधावनहारी जो भोजनक्रिया ताका मन, वचन, कायकरि निराकरण करनां, अल्पभोजन लेनां सो अवमोदर्य तप कहिए।

तथा आहार की वांछा का जीतनां, घर इत्यादिक की गणना करि वृत्ति का नियम करणां सो वृत्ति-परिसंख्यान कहिए। तथा मन, वचन, काय की क्रियाकरि रसनि कै विषै आकांक्षा का छोडनां सो रसपरित्याग कहिए। तथा काय के सुख का अभिलाष छोडनां सो कायक्लेश कहिए। तथा चित्त की व्याकुलता का जीतनां सो विविक्त-शय्याशन कहिए। **आभ्यन्तर तप के भेदोपभेदों का कथन**—प्रथम प्रायश्चित तप के भेदों का तथा अपनां कीया अपराध का छिपावन न करनां सो आलोचना प्रायश्चित कहिए। तथा अपनां कीया अशुभ योगतैं निवृत होनां सो प्रतिक्रमण कहिए। तथा आलोचना, प्रतिक्रमण दोऊ करणां सो तदुभय कहिए। तथा जा कारणकरि अशुभ योग हुवा ताका निराकरण अथवा जहां अशुभयोग हुवा तहां तैं जुदा होनां सो विवेक कहिए। तथा देह कैं विषैं ममत्व का निराकरण सो कायोत्सर्ग प्रायश्चित कहिए तथा अनशनादिक करणां सो तपनाम प्रायश्चित्त कहिए। असंयम की ग्लानि कै अर्थि दीक्षा का छेदन करनां सो छेद नाम प्रायश्चित्त कहिए बहुरि समस्त दीक्षा छेदि बहुरि संयम का अंगीकार करनां सो मूलनामा प्रायश्चित कहिए।

तथा काल की मर्यादा करि च्यारि प्रकार के मुनिसंघतैं बारैं काढनां (साधु को संघ से बाहर करना) परिहार नामा प्रायश्चित कहिये। तथा विपरीत भाव कूं प्राप्त हुवा जो मन ताका छोडनां सो श्रद्धांन नामा प्रायश्चित कहिए। अैसे प्रायश्चित तप के भेद जानने।

तथा दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप—इनिके अतीचार अशुभक्रिया तिनका निराकरण करनां सो विनय नामा तप कहिए। तथा चारित्र के कारण जे आचार्यादिक तिनिकी अनुमोदनां करनां, तिनिकां दुःख दूरि करनां सो वैयावृत्य नामा तप कहिए। तथा

---

१. क °क्रियते ततोपयोगमनं। २. क °चारामणमशु°। ३. दोनों प्रतियों में वौसधि शब्द हैं, परन्तु औषधि होना चाहिए।

अंगपूर्वाणां सम्यक् पठनं **स्वाध्यायः**। शुभविषये एकाग्रचिन्तानिरोधनं ध्यानम्। सावद्ययोगेभ्य आत्मनो गोपनं गुप्तिः। सा च मनोवाक्काय-क्रियाभेदात्त्रिप्रकारा। एतेषां सर्वेषां तपसां गुप्तीनां च नित्ययुक्तानां च मूलगुणेष्वेवान्तर्भावः। कादाचित्कानां चोत्तरगुणेष्वन्तर्भाव इति, तथा सम्यक्त्वज्ञानचारित्राणामपि मूलगुणेष्वन्तर्भावस्तैर्विना तेषामभावादिति।

मूलगुणफलप्रतिपादनार्थोपसंहारगाथामाह—

एवं विहाणजुत्ते मूलगुणे पालिऊण तिविहेण।
होऊण जगदि पुज्जो अक्खयसोक्खं लहइ मोक्खं ॥ ३६ ॥

एवं—अनेन प्रकारेण। **विहाणजुत्ते**—विधानयुक्तान् पूर्वोक्तकमभेदभिन्नान् सम्यक्त्वाद्यनुष्ठानपूर्वकान्। **मूलगुणे**—मूलगुणान् पूर्वोक्तलक्षणान्। **पालिऊण**—पालयित्वा सम्यगनुष्ठाय आचार्य। **तिविहेण**—त्रिविधेन मनसा वचसा कायेन वा। **होऊण**—भूत्वा। **जगदिपुज्जो**—जगति लोके पूज्योऽर्चनीयः। **अक्खयसोक्खं**—अक्षयसौख्यं व्याघातरहितं। **लभइ**—लभते प्राप्नोति। **मोक्खं**—मोक्षं अष्टविधकर्मापायोत्पन्नजीव-स्वभावम्॥

इत्याचारवृत्तौ वसुनंदिविरचितायां प्रथमः परिच्छेदः॥ १ ॥

अंग-पूर्व का सम्यक् पढ़ना सो स्वाध्याय नामा तप कहिए। तथा शुभ विषै एकाग्रचिंता का निरोध सो ध्यान नामा तप कहिये—अैसे बारह प्रकार तप जाननां।

बहुरि सावद्य योगतैं आत्मा की रक्षा करनां सो मन, वचन, काय के भेदतैं तीन प्रकार गुप्ति है। अैसे ये सर्व तप तथा गुप्ति कहे। तिनिमैं जो नित्य युक्त युक्त होहि तिनिका तौ मूलगुणनि विषैं ही अंतर्भाव जाननां। बहुरि जो कदाचित् युक्त होहि तिनिका उत्तरगुणनि विषैं अन्तर्भाव जाननां। तथा सम्यक्त्व-ज्ञान-चारित्र का भी मूलगुणनि विषैं अन्तर्भाव जाननां। जातैं सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र बिनां मूलगुणनिका अभाव है।

आगे मूलगुणनिका फल का प्रतिपादन कैं उपसंहार रूप गाथा कहै हैं—

अर्थ—अैसे विधान करि युक्त मूलगुणनिकौं मन, वचन, कायकरि पालि जगत् कैं विषैं पूज्य होय अक्षय है सुख जा विषैं अैसा मोक्ष हैं; ताहि पावै हैं ॥ ३६ ॥

टीका—एवं कहिए या प्रकार विधान करिकैं युक्त पूर्वे कह्या जो अनुक्रम अर भेद, तिनकरि भिन्न-भिन्न सम्यक्त्वादिक का आचरणपूर्वे कहे हैं लक्षण जिनके—अैसे मूलगुण तिनकूं पालि मन, वचन, कायकरि निर्दोष अनुष्ठान आचरणकरि जगत् कै विषैं पूज्य होय व्याघातरहित अक्षय है सुख जहां अैसा अष्ट प्रकार कर्म के नाशकरि उत्पन्न भया जीव का स्वभाव सो हैं लक्षण जाका अैसा जो मोक्ष ताहि पावैं हैं।

अैसे आचार्य श्री वट्टकेर स्वामिविरचित मूलाचारनाम प्राकृत ग्रंथ की वसुनंदि सिद्धान्तचक्रवर्ति विरचित आचारवृत्ति नाम संस्कृत टीका कैं अनुसार इह देशभाषामय वचनिका विषैं अठाईस मूलगुणनिका हैं वर्णन जामैं अैसा **प्रथम अधिकार समाप्तभया।**[1]

इहां पर्यंत गाथा सूत्र छत्तीस (३६) भए।

२. बृहत्प्रत्याख्यानसंस्तरस्तवाधिकारः

प्रत्याख्यान[1] संस्तरस्तवप्रतिपत्तृभ्यां[2] सहाभेदं कृत्वात्मनः ग्रंथकर्ता प्रत्याख्यानसंस्तरस्तवनामधेयद्वितीयाधिकारार्थमाह। अथवा षट्काला यतीनां भवन्ति तत्रात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थकालास्त्रयः आराधनायां कथ्यते। शेषा दीक्षाशिक्षागणपोषणकाला आचारे, तत्राद्येषु त्रिषु कालेषु यद्युपस्थितं मरणं तत्रैवंभूतं परिणामं विदधेऽहमित्यत आह—

सव्वदुक्खप्पहोणाणं सिद्धाणं अरहदो णमो।
सद्दहे जिणपण्णत्तं पच्चक्खामि य पावयं॥ १॥

सव्वदुक्खप्पहीणाणं—सर्वाणि च तानि दुःखानि च सर्वदुःखानि समस्तद्वन्द्वानि तैः प्रहीणा रहिताः। अथवा सर्वाणि दुःखानि प्रहीणानि येषां ते सर्वदुःखप्रहीणास्तेभ्यः। **सिद्धाणं**—सिद्धेभ्यः सम्यक्त्वाद्यष्टगुणैश्वर्येभ्यः। **अरहदो**—अर्हद्भ्यश्च नवकेवललब्धिप्राप्तेभ्यश्च चशब्दोनुक्तोऽपि द्रष्टव्यः। **णमो**—नमो नमोऽस्ति तेभ्यः। **सद्दहे**—श्रद्दधे रुचिं कुर्वे। **जिणपण्णत्तं**—कर्मारातीन् जयन्तीति जिनः तैः प्रज्ञप्तं कथितं जिनप्रज्ञप्तं जिनकथितं। **पच्चक्खामि**—प्रत्याख्यामि परिहरे। **पावयं**—पापकं दुःखनिमित्तम्। सर्वद्वंद्वरहितेभ्यः सिद्धेभ्योऽर्हद्भ्यो नमोस्तु। सर्वज्ञपूर्वक आगमो यतोऽतस्तन्नमस्कारानन्तरमागमश्रद्धानं श्रद्दधे जिनप्रज्ञप्तमित्युक्तं सम्यक्त्वपूर्वकं च, यतः आचरणमतः प्रत्याख्यामि सर्वपापकमि-

---

२. बृहत्प्रत्याख्यान संस्तरस्तवाधिकारः

आगैं प्रत्याख्यानसस्तरस्तव नामा दूसरा अधिकार का प्रारम्भ करिए हैं। यद्यपि प्रत्याख्यान अर संस्तरस्तव दोय अधिकार हैं, तथापि इनिके करनैं वाला आत्मा एक है। तातैं ग्रंथकर्ता अभेदकरि एक अधिकार कीया है अथवा मुनिराजनिके छहकाल होय हैं, तहां—(१) आत्मसंस्कार काल, (२) सल्लेखनाकाल, (३) उत्तमार्थकाल—अैसे तीन काल तौ आराधना विषैं वर्णन करिए है। अवशेष (४) दीक्षाकाल, (५) शिक्षाकाल, (६) गणपोषणकाल—अैसे तीनकाल आचार विषै वर्णन करिए हैं। तहाँ आदि के तीन कालानि विषैं जो मरण आप प्राप्त होय तौ तहाँ मैं अैसे परिणाम करूं हूं, अैसा कहै हैं—

अर्थ—सर्व दुःखतैं रहित जे सिद्धपरमेष्ठी तथा अर्हत्परमेष्ठी तिनिकूं नमस्कार होहु। मैं जिनभगवानकरि कह्या आगम का श्रद्धान करूं हूँ। बहुरि पाप का त्याग करूं हूँ॥ १॥

टीका—सर्वदुःख तिनिकरि प्रहोन कहिये रहित अथवा सर्वदुःख भए है प्रहोण जिनके अैसे सम्यक्त्व कूं आदि देय अष्टगुणनि के ईश्वर सिद्धपरमेष्ठी तिनिकै अर्थि। बहुरि नवकेवललब्धि कौं प्राप्त भए—अैसे अरहंत परमेष्ठी तिनकै अर्थि नमस्कार होहु। इहाँ गाथा विषैं च शब्द नांही कह्या तोहूँ जानि लेनां। कर्म्म रूपो शत्रुकौं जोतैं ते जिन कहिए। तिनिकरि कह्या जो आगम ताको श्रद्धा करुं हूँ। बहुरि दुख का निमित्त जो पाप ताका प्रत्याख्यान करुं हूँ, परिहार करुं हूँ। इहाँ आगम सर्वज्ञपूर्व कहैं। यातैं आगम श्रद्धान करनें पहलो सर्वज्ञ कौं नमस्कार कीया। ताकै अनन्तर जिन प्रणीत आगम का श्रद्धान कीया। बहुरि आचरण सम्यक्त्वपूर्वक है। यातैं आगम श्रद्धान कहि पीछैं सर्व पाप का प्रत्याख्यान कह्या अथवा नमो अैसा शब्द क्त्वा प्रत्ययान्त

त्युक्तं । अथवा क्त्वान्तोऽयं नमःशब्दः प्राकृतं लोपबलेन सिद्धः । सिद्धानर्हंतश्च नमस्कृत्वा जिनोक्तं श्रद्दधे पापं च प्रत्याख्यामीत्यर्थः । अथवा [1]मिङन्तोऽयं नमःशब्दः तेनैवं सम्बन्धः कर्तव्यः—सर्वदुःखप्रहीणान् सिद्धान् अर्हतश्च नमस्यामि जिनागमं च श्रद्दधे । पापं च प्रत्याख्यामीत्येकक्षणे[2]ऽनेकक्रिया एकस्य कर्तुः संभवंति इत्यनेकान्तद्योतनार्थमनेन न्यायेन सूत्रकारस्य कथनमिति ॥

भक्तिप्रकर्षार्थं पुनरपि नमस्कारमाह—

णमोत्थु धुदपावाणं सिद्धाणं च महेसिणं ।
संथारं पडिवज्जामि जहा केवलिदेसियं ॥ २ ॥

अथवा प्रत्याख्यानसंस्तरस्तवौ द्वावधिकारौ, द्वे शास्त्रे वा तृहीत्वा एकोऽयं अधिकारः कृतः, कुतो ज्ञायते नमस्कारद्वितयकरणादिति । **णमोत्थु**—नमोऽस्तु । **च धुदपावाणं**—धुतं विहतं पापं कर्म यैस्ते धुतपापस्तेभ्यः । **सिद्धाणं** च—सिद्धभ्यश्च । **महेसिणं**—महर्षिभ्यश्च केवलर्द्धिप्राप्तेभ्यः । [3]**संथरं**—संस्तरं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपोमयं भूमिपाषाणफलकतृणमयं वा । **पडिवज्जामि**—प्रपद्ये अभ्युपगच्छामि । **जहा**—यथा । **केवलिदेसियं**—केवलिभिर्दृष्टः केवलिदृष्टस्तं केवलज्ञानिभिः प्रतिपादितमित्यर्थः । धुतपापेभ्यः सिद्धेभ्यो महर्षिभ्यश्च नमोऽस्तु । केवलिदृष्टं संस्तरं प्रतिपद्येऽहं इति पूर्ववत्सम्बन्धः कर्तव्यः । सिद्धानां नमस्कारो मंगलादिनिमित्तं महर्षीणां च तदनुष्ठितत्वाच्चेति ।

है । प्राकृत विषैं लोप के बलकरि अैसा भी सिद्ध हो है । यातैं अैसा अर्थ भया—सिद्धन कौं, बहुरि अरहन्तनिकौं नमस्कारकरि जिनोक्त का श्रद्धान करौ हूँ । पाप का प्रत्यख्यान करुं हूँ अथवा णमो अैसा शब्द मिङन्त है । जैनेन्द्रव्याकरण के अभिप्रायकार मिङन्त कह्या है । पाणिनीय व्याकरणवाले मिङन्त कौ तिङन्त कहै हैं । यातैं अैसा सम्बन्ध करना—सर्वदुःखतैं रहित जे सिद्ध, बहुरि अरहृत तिनिकौं 'नमस्यामि'—नमस्कार करुं हूं । बहुरि जिन आगम का श्रद्धान करौं हूँ । पाप का प्रत्याख्यान करुं हूँ—अैसे एक क्षण विषै अनेक क्रिया एक कर्ता कै संभवै है अैसा अनेकान्त का द्योतन कैं अर्थि इस न्यायकरि सूत्रकारनैं कथन कोया है ।

आगैं भक्ति का प्रकर्ष कैं अर्थि बहुरि नमस्कार करै है प्राकृत अनुष्टुप श्लोक में—

अर्थ—हन्या है पापकर्म जिननैं, अैसे सिद्धनिके अर्थि बहुरि महर्षि कहिए केवलज्ञानीनि कैं अर्थि नमस्कार होहु । मैं जैसे केवलि भगवान देख्या तैसा संस्तर कौं प्राप्त होता हूँ ॥ २ ॥

टीका—इहाँ दूसरा नमस्कार करने तैं अैसा जानिए हैं । प्रत्याख्यान अर संस्तरस्तव—ये दोय अधिकार हैं, दोय शास्त्र हैं । तिनिकैं ग्रहणकरि एक अधिकार कीया है । तातैं पहले सूत्र विषैं तौ प्रत्याख्यान कहने को प्रतिज्ञा सूचै हैं । दूसरे सूत्र में संस्तरस्तव कहने की प्रतिज्ञा सूचै है—सो ही कहिये हैं । धुत कहिये—हनैं हैं पापकर्म जिननैं, अैसे सिद्ध परमेष्ठी । बहुरि महर्षि कहिए केवलऋद्धि कौं प्राप्त भये अैसे अरहंत परमेष्ठी, तिनकैं अर्थि नमस्कार होहु । मैं सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपमयी अभ्यंतर संस्तर अथवा भूमि, पाषाण, फलक, तृणमयी बाह्य संस्तर । जैसे केवलज्ञानीननैं प्रतिपादन कीया तैसे प्राप्त होता हूँ ।[4] इहाँ सिद्धनिकौं नमस्कार मंगलादिक के निमित्त पहले कीया, पीछैं संस्तर के अनुष्ठान करने वाला महाऋषीश्वर तिनकौं नमस्कार कीया अैसा जाननां ।

---

१. क. तिङन्तो, २. क. नैका क्रिया, ३. क. संथारं, ४. ब प्रति में ''प्राप्त हूं'' ।

प्रतिज्ञानिर्वहणार्थमाह—

जं किंचि मे दुच्चरियं सव्वं तिविहेण वोसरे ।
सामाइयं च तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं ।। ३ ।।

जं किंचि—यत्किंचित् । **मे**—मम । **दुच्चरियं**—दुश्चरितं पापक्रियाः । **सव्वं**—सर्वं निरवशेषं । **तिविहेण**—त्रिविधेन मनोवचनकायैः । **वोसर**—व्युत्सृजामि परिहरामि । **सामाइयं च**—सामायिकं [1]समन्वीभावं च । **तिविहं**—त्रिप्रकारं मनोवचनकायगतं कृतकारितानुमतं वा । **करेमि**—कुर्वेऽहम् । **सव्वं**—सर्वं सकलम् । **णिरायारं**—आकारान्निर्गतं निराकारं निर्विकल्पम् । समस्ताचरणं निर्दोषं यत्स्तोकमपि दुश्चरितं तत्सर्वं व्युत्सृजामि त्रिविधेन, सामायिकं च सर्वं निरतिचारं निर्विकल्पं च यथा भवति तथा करोमीत्यर्थः, दुश्चरित्रकारणं यत् तत्सर्वं त्रिप्रकारैः मनोवाक्कायैः परिहरामीति ।

उत्तरसूत्रमाह—

बज्झब्भंतरमुवहिं सरीराइं च सभोयणं ।
मणसा वचि[2] कायेण सव्वं तिविहेण वोसरे ।। ४ ।।

बज्झं—बाह्यं क्षेत्रादिकम् । **अब्भंतरं**—अभ्यन्तरमन्तरंगं मिथ्यात्वादि । **उवहिं**—उपधिं परिग्रहम् । **सरीराइं च**—शरीरमादिर्यस्य तच्छरीरादिकम् । **सभोयणं**—सह भोजनेन वर्तत इति सभोजनं आहारेण सह । **मसणा वचि काएण**—मनोवाक्कायैः । **सव्वं**—सर्वम् ।

आगैं जो कथन को प्रतिज्ञाकरी ताका निर्वाह कैं अर्थि कहै हैं—

अर्थ—जो कोउ मेरी पाप-क्रिया है, तिनि सवनिका मनो, वचन, कायकरि त्याग करौ हूँ । बहुरि तीन प्रकार सर्वनिर्विकल्प सामायिक हैं, ताहि करौं हूँ ।। ३ ।।

टीका—जो कोउ मेरा दुश्चरित पापक्रिया समस्त है—तिसका त्रिविध मनो-वचन-कायकरि त्याग करूं हूँ, परिहार करौं हूँ । बहुरि सामायिक कहिये समताभाव ताहि त्रिविध कहिये मन, वचन, कायकरि तीन प्रकार अथवा कृत-कारित-अनुमोदनाकरि तीन प्रकार, निराकार कहिये आकार रहित, निर्विकल्प समस्त अतोचार रहित निर्दोष ताहि करौ हौं ।

आगैं दुश्चरित्र का कारण जो है, ताहि सर्व कूं मन-वचन-काय तोन्यों प्रकारकरि परिहार करौ हूँ । असे उत्तरसूत्र कहैं हैं—

अर्थ—बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह, बहुरि भोजन सहित शरीरादिक तिस सर्वका मन-वचन-कायकरि, कृत-कारित अनुमोदनाकार परित्याग करुं हूँ ।। ४ ।।

टीका—बाह्य परिग्रह—क्षेत्रादिक, आभ्यंतर परिग्रह—मिथ्यात्वादिक, बहुरि भोजन कहिए आहार तिसकरि सहित

---

१. क. समत्वभावं च । २. अ, ब प्रतिमें 'वचिया' ।

तिविहेण—त्रिप्रकारैः कृतकारितानुमतैः । **वोसरे**—व्युत्सृजामि । बाह्यं शरीरादि सभोजनं परिग्रहं, अन्तरंगं च मिथ्यात्वादिकं सर्वं त्रिप्रकारैर्मनोवाक्कायैः परिहरामीत्यर्थः ।

सव्वं पाणारंभं पच्चक्खामि अलीयवयणं च ।
सव्वमदत्तादाणं मेहूण परिग्गहं चेव ॥ ५ ॥

सव्वं पाणारंभं—सर्वं प्राणारम्भं जीववधपरिणामम् । **पच्चक्खामि**—प्रत्याख्यामि दयां कुर्वेऽहम् । **अलीयवयणं च**—व्यलीकवचनं च । **सव्वं**—सर्वम् । **अदत्तादाणं**—अदत्तस्यादानं ग्रहणमदत्तादानम् । **मेहूण**—मैथुनं स्त्रीपुरुषाभिलाषम् । **परिग्गहं चेव**—परिग्रहं चैव बाह्याभ्यन्तरलक्षणं । सर्वं हिंसाऽसत्यस्तेयाब्रह्ममूर्च्छास्वरूपं परित्यजामीत्यर्थः ।

सामायिकं करोमीत्युक्तं तत्किं स्वरूपमित्यतः प्राह—

सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि ।
आसा[1] वोसरित्ताणं समाहिं पडिवज्जए ॥ ६ ॥

सम्मं—समता सदृशत्वम् । **मे**—मम । **सव्वभूदेसु**—सर्वाणि च तानि भूतानि च सर्वभूतानि तेषु शत्रुमित्रादिषु प्राणिषु । **वेरं**—वैरं शत्रुभावः । **मज्झं**—मम । **ण केण वि**—न केनापि । **आसा**[1]—आशाः तृष्णाः । **वोसरित्ता**—व्युत्सृज्य परित्यज्य । **अणं**—इमम् । **समाहिं**—समाधि

सरीरादिक तिस सर्वका मन-वचन-कायकरि, कृत-कारित अनुमोदनांकरि तीन प्रकार परित्याग करुं हूँ।

अर्थ—सर्वहिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म, मूर्छा-स्वरूप जे पाप हैं, तिनिका परित्याग करुं हूँ ॥ ५ ॥

टीका—सर्व प्राणारंभ कहिए—जोवघात का परिणाम ताका प्रत्याख्यान करुं हूँ। दयाभाव कूं अंगोकार करुं हूँ। बहुरि सर्व व्यलोक वचन कहिए झूंठवचन ताका प्रत्याख्यान करुं हूं। बहुरि सर्व अदत्त का आदान कहिये-ग्रहण ताका प्रत्याख्यान करुं हूँ। बहुरि मैथुन कहिए—स्त्रो पुरुष का अभिलाष रूप अब्रह्म ताका प्रत्याख्यान करुं हूँ। बहुरि बाह्य-आभ्यंतर समस्त परिग्रह ताका प्रत्याख्यान करूं हूं।

भावार्थ—हिंसा, असत्य, स्तेय, मैथुन, परिग्रहस्वरूप पंच पाप हैं तिनैं त्यजूं हूं।

आगैं पूर्वे कह्या था—मैं सामायिक करूंगा, ताका स्वरूप कहां ? ऐसे प्रश्न होतैं सूत्र कहै हैं—

अर्थ—मेरे सर्व प्राणिनि विषैं समता-भाव है। किसी सूं मेरे वैर नांहो। आशा जो तृष्णा ताहि छोड़िकरि समाधि कूं अंगोकार करूं हूं ॥ ६ ॥

टीका—साम्यं कहिये समभाव, सर्वभूत कहिए-प्राणो तिनि विषै शत्रु-मित्रादिक हैं तिनि विषैं मेरे सदृशपना है। मेरे

---

१. क. आसाए।

समाधानं **पडिवज्जामि (पडिवज्जए)**—[1]प्रतिपद्येऽहम् । वैरं मम न केनापि सह यतः समता मे सर्वभूतेषु अतः आशा व्युत्सृज्य समाधिं[2] प्रतिपद्येऽहमिति ।

कथं वैरं भवतो नास्तीत्यत आह—

खमामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
[3]मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि ॥७॥

खमामि—क्षमेऽहं क्रोधादिकं [4]त्यक्त्वा मैत्रीभावं करोमि । **सव्वजीवाणं**—सर्वे च ते जीवाश्च सर्वेजीवास्तान् शुभाशुभपरिणामहेतून् । **सव्वे जीवा**—सर्वे जीवाः समस्तप्राणिनः । **खमंतु**—क्षमन्तां सुष्ठूपशमभावं कुर्वन्तु । **मे**—मम । [5]**मित्ती**—मैत्री मित्रत्वं । **सव्वभूदेसु**—सव्वभूतेषु । **वेरं**—वैरं । **मज्झ**—मम । **ण केण वि**—न केनापि । सर्वजीवान् क्षमेऽहं, सर्वे जीवा मे क्षमन्तां, एवं परिणामं यतः करोमि ततो वैरं मे न केनाऽपि, मैत्री सर्वभूतेष्विति ।

न केवलं वैरं त्यजामि, वैरनिमित्तं च यत् तत्सर्वं त्यजामीत्यतः प्राह—

रायबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं [6]रदिमरदिं च वोसरे ॥८॥

रायबंधं—रागस्य रागेण वा बन्धो रागबन्धः स्नेहानुबन्धस्तम् । **पदोसं च**—प्रद्वेषमप्रीतिं च । **हरिसं**—हर्षं लाभादिना आनन्दम् ।

किसी सूं बैरभाव नांही यातैं सर्व्व आशा तृष्णा छोड़िकरि समाधिभाव है, ताहि अंगीकार करूंगा ।

इहाँ कोउ कहैं तुमारै वैरभाव कैसे नांही ? ऐसे प्रश्न होते संतैं कहै हैं—

अर्थ—मैं सर्व जीवन प्रति क्षमाभाव करूं हूं । बहुरि सर्व जोव मेरे ऊपरि क्षमा करौ, मेरे सर्व जीवनि विषैं मैत्री भाव है । मेरे किसी ही जीवकरि वैरभाव नांही है ॥ ७ ॥

टीका—मैं क्रोधाधिकभाव छोड़ि शुभ-अशुभ परिणाम के कारण जे सर्व जीव तिनि प्रति क्षमाभाव करुं हूँ । बहुरि सर्व जीव हैं, ते मेरे ऊपरि क्षमाभाव करौ । मेरे ऊपरि अतिशय करि उपशमभाव करौ । मेरे सर्वप्राणिनि विषै मैत्रीभाव है । मेरे किसी सूं वैरभाव नांही ।

आगैं ऐसैं कहे है कि मैं केवल बैर ही नांही तजू हूं, जो जो बैर का निमित्त कारण है तिनि सबही कूं छोड़ू[7] हूँ ।

अर्थ—राग, बंध, प्रद्वेष, वहुरि हर्ष, दीनभाव, उत्साह, भय, शोक, रति, अरति-वेर के कारण भाव हैं तिनिका परित्याग करुं हूं ॥ ८ ॥

टीका—राग का बंधाण अथवा राग करि बंधाण ऐसा स्नेहानुबंधाण सो रागबंध कहिए । बहुरि अप्रीति रूप जो भाव

१–२. क. प्रपद्ये । ३, ५. क. मेत्ती । ४. क. मुक्त्वा । ६. क. रइं अरइं । ७. ब छोड़ूंगा ।

दीणभावयं—दीनभावं याञ्चादिना करुणाभिलाषदैन्यं च । **उस्सुगत्तं**—उत्सुकत्वं सरागमनसाऽन्यचिंतनं । **भयं**—भीतिम् । **सोयं**—शोकं इष्टवियोगवशादनुशोचनम् । **रइं**—रतिमभिप्रेतप्राप्तिम् । **अरइं** अरतिं अभिप्रेताऽप्राप्तिं । **वोसरे**—व्युत्सृजामि। रागानुबन्धद्वेषहर्षदीनभावमुत्सुकत्वभयशोकरत्यरतिं च त्यजामीत्यर्थः ।

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो ।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे ॥९॥

ममत्तिं—ममत्वं । **परिवज्जामि**—परिवर्जामि परिहरेऽहं । **णिम्ममत्तिं**—निर्ममत्वमसंगत्वं । **उवट्ठिदो**—उपस्थितः । यदि सर्वं भवता त्यज्यते किमालम्बनं भविष्यतीत्यत आह—**आलंबणं च**—आलम्बनं चाश्रयः **मे**—मम । **आदा**—आत्मा । **अवसेसाइं**—अवशेषाणि अधिकानि । **वोसरे**—व्युत्सृजामि । किं बहुनोक्तेनानन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यरत्नत्रयादिकं मुक्त्वान्यत्सर्वं त्यजामीत्यर्थः ।

आत्मा च भवता किमिति कृत्वा न परित्यज्यते इत्यत आह—

आदा हु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोए ॥१०॥

आदा—आत्मा । **हु**—स्फुटं । **मज्झ**—मम । **णाणे**—ज्ञाने । **आदा**—आत्मा । **मे**—मम । **दंसणे**—दर्शने तत्त्वार्थश्रद्धाने आलोके

ताकूं प्रद्वेष कहिए । बहुरि लाभादिक करि आनंद रूप जो भाव सो हर्ष कहिए, बहुरि याचनादिककरि करुणा का कारण बचन-अभिलाष सो दीनभाव कहिए ॥ बहुरि राग सहित मनकरि अन्य कार्य का चिंतवन करनां सो उत्सुकत्व कहिए । बहुरि भयरूप भाव अर इष्ट वियोग के वशतैं निरंतर शोच का करनां सो शोकभाव, वहुरि अभिप्रेत वस्तु की प्राप्ति होतैं रतिभाव, बहुरि अभिप्रेत वस्तु की अप्राप्ति होतैं अरतिभाव—ए सर्व वैरभाव के निमित्तकारण हैं । तिनि सर्व का परित्याग करूं हूं । बहुरि कहैं हैं—

अर्थ—मैं ममत्व का परिहार करुं हूं । बहुरि निर्ममत्व भाव कूं प्राप्त भया हूं, मेरै आत्मा ही का अवलंबन है । अवशेष सर्व भावनिका त्याग करुं हूं ॥ ९ ॥

टीका—मैं ममत्वभाव का परिहार करुं हूं, निर्ममत्व कहिए परिग्रह-रहित भाव ताकूं प्राप्त भया हूं । इहां कोउ कहै है जो तुम सर्व भावनि का त्याग करौ हो, तो तुम्हारे आलंबन काहे का है ? ताका समाधान—मेरे आत्मा ही का आलंबन है, याही का आश्रय है, अवशेष सर्व का त्याग है, बहुत कहनैं करि कहाँ ? अनंतज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य-रत्नत्रयादिक-इनि बिना अन्य सर्व का त्याग है ।

आगे कोउ कहै—जो तुमनैं सर्वका त्याग कीया तो आत्मा हू का त्याग क्यों नहीं कीया ? ऐसा प्रश्न होतैं कहै हैं—

अर्थ—मेरा आत्मा ज्ञान विषै है । मेरा आत्मा दर्शन विषै है, बहुरि चारित्र विषै है, बहुरि मेरा आत्मा प्रत्याख्यान विषें है । मेरा आत्मा संवर विषै है, बहुरि योग विषै है, यातैं याका त्याग कैसे करिए ? । १० ॥

टीका—मेरा आत्मा प्रगटपणें ज्ञान विषें है बहुरि मेरा आत्मा प्रत्याख्यान विषै है । बहुरि मेरा आत्मा आश्रव का निरोध

८ । **चरित्ते य**--चारित्रे च पापक्रियानिवृत्तौ । **आदा**—आत्मा । **पच्चक्खाणे**—प्रत्याख्याने । **आदा**—आत्मा । **मे**—मम । **संवरे**—आस्रवनिरोधे । **जोए**--जोगे शुभव्यापारे ॥

एओ य मरइ जीवो एओ य उववज्जइ ।
एयस्स जाइमरणं एओ सिज्झइ णीरओ ॥११॥

एओ य--एकश्चासहायश्च **मरइ**--म्रियते शरीरत्यागं करोति । **जीवो**--जीवः चेतनालक्षणः । **एओ ज**--एकश्च । **उववज्जइ**--उत्पद्यते । **एयस्स**--एकस्य । **जाइ**--जातिः **मरणं**--मृत्युः । **एओ**--एकः । **सिज्झइ**--सिद्धयति मुक्तो भवति । **णीरओ**--नीरजाः कर्मरहितः ।

एओ मे सस्सओ अप्पा णाणदंसणलक्खणो ।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥१२॥

एओ--एकः । मे--मम । **सस्सओ**--शाश्वतो नित्यः । **अप्पा**--आत्मा । **णाणदंसणलक्खणो**--ज्ञानं च दर्शनं च ज्ञान दर्शनं ते एव लक्षणं यस्यासौ ज्ञानदर्शनलक्षणः । **सेसा मे**--शेषाः शरीरादिका मम । **बाहिरा**--बाह्या अनात्मीयाः । **भावा**--पदार्थाः । **सव्वे** --सर्वे समस्ताः । **संजोगलक्खणा**-- **संयोगलक्षणाः** अनात्मनीनस्यात्मभावः संयोगः, संयोग एव लक्षणं येषां ते संयोगलक्षणा विनश्वरा इत्यर्थः । ज्ञानदर्शनचारित्रप्रत्याख्यानसंवरयोगेषु ममात्मैव, यतो म्रियते उत्पद्यते च एक एव, यतः एकस्य जातिमरणे[1], यतः एकश्च नीरजाः सन् सिद्धिं याति, यतः शेषाश्च सर्वे भावाः संयोगलक्षणा बाह्या यतः, अत एवात्मा ज्ञानदर्शनलक्षणः नित्यो ममेति ।

जो संवर ता विषै है । बहुरि मेरा आत्मा योग कहिए—शुभ व्यापार ता विषै है । आगे फेरि कहै हैं—

अर्थ—जीव अकेला मरै है, जीव अकेला उपजै है, एक हो कै जन्म-मरण होय है, एक ही कर्म रहित हुआ सिद्ध होय है ॥ ११ ॥

टीका—जीव अकेला कहिए सहाय रहित मरे है, शरोर का त्याग करै है । बहुरि यह जीव चेतना है लक्षण जाका अैसा अकेला ही उपजै है । जन्म-मरण अकेला हो कैं होय है । जब कर्म्म रज रहित होय है तब अकेला सिद्ध होय है ।

भावार्थ—जीव सर्वकाल असहाय है, अकेला है, सर्व अवस्था मैं एक है । बहुरि कहै हैं—

अर्थ—ज्ञानदर्शन है लक्षण जाका, अैसा एक मेरा आत्मा है, सो शाश्वत है । अवशेष मोतैं बाह्य सर्वभाव हैं, ते संयोग लक्षणा कहिए विनश्वर हैं ॥ १२ ॥

टीका—ज्ञानदर्शन है लक्षण जाका, अैसा एक मेरा आत्मा है सो शाश्वता कहिये नित्य हैं, अवशेष मोतैं बाह्य सर्वभाव हैं । अवशेष शरीरादिक मेरे बाह्य सर्व पदार्थ हैं । तै संयोग लक्षण हैं । अन्य पदार्थ का आत्मा कै संबंध रूप संयोग सो ही है लक्षण जिनका अैसे विनश्वर है । ज्ञान-दर्शन-चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर, योग—इनि विषै मेरा आत्मा हो है, जातैं अकेला हो मरै है, अकेला ही उपजै है, अकेला ही कै जन्ममरण है । बहुरि अकेला ही कर्मरज रहित हुवा संता मोक्ष कौं प्राप्त होय है । जातैं अवशेष

१. क. स्य च जातिः मरणं ।

अथ किमित कृत्वा संयोगलक्षणो भावः परिह्रियते इति चेदत आह—

संजोयमूलं जीवेण पत्तं दुक्खपरंपरं ।

तम्हा संजोयसंबंधं सव्वं तिविहेण वोसरे ॥१३॥

संजोयमूलं—संयोगनिमित्तं । **जीवेण**—जीवेन । **पत्तं**—प्राप्तं, लब्धं । **दुक्खपरंपरं**—दुःखानां परम्परा दुःखपरम्परा क्लेशनैरन्तर्यम् । **तम्हा**—तस्मात् । **संजोयसंबंधं**—संयोगसम्बन्धम् । **सव्वं**—सर्वम् । **तिविहेण**—त्रिविधेन मनोवचनकार्यैः । **वोसरे**—व्युत्सृजामि । संयोगहेतोर्जीवेन यतो दुःखपरम्परा प्राप्ता, तस्मात् संयोगसम्बन्धं सर्वं त्रिविधेन व्युत्सृजामीत्यर्थः ।

पुनरपि दुश्चरित्रस्य परिहारार्थमाह—

मूलगुणउत्तरगुणे जो मे णाराहिओ पमाएण[1] ।

तमहं सव्वं णिंदे पडिक्कमे आगमिस्साणं ॥१४॥

मूलगुणउत्तरगुणे—मूलगुणाः प्रधानगुणाः, उत्तरगुणा अभ्रावकाशादयो मूलगुणदीपकास्तेषु मध्ये । **जो मे**—यः कश्चिन्मया । **णाराहिओ**—नाराधितो नानुष्ठितः । **पमाएण**—प्रमादेन केनचित्कारणान्तरेण [2]सालसभावात् । **तमहं**—तच्छब्दः पूर्वप्रक्रान्तपरामर्शी, तदहं मूलगुणाद्यनाराधनम् । **सव्वं**—सर्वम् । **णिंदे**—निन्दामि आत्मानं जुगुप्से । **पडिक्कमे**—प्रतिक्रमामि निर्हरे न केवलमतीतवर्तमानकाले [3]**आगमिस्साणं**—आगमिष्यति च काले । ये गुणास्तेषां मध्ये यो नाराधितो गुणस्तमहं सर्वं निन्दयामि प्रतिक्रमामि चेति ।

सर्वभाव हैं, ते संयोग संबंध रूप बाह्य हैं, अनित्य हैं । अर मेरा आत्मा-ज्ञान-दर्शन है लक्षण जाका सो ही नित्य है ।

आगै कहै है कि संयोग लक्षण भाव का परिहार काहैं कौं कीजिये ? अैसा प्रश्न होतै कहै हैं—

अर्थ—संयोग के निमित्ततैं दुःख को परम्परा कौं जीव प्राप्त हुवा तातैं सर्व संयोग संबंध कौं मन, वचन, कायकरि छोड़ हूं ॥ १३ ॥

टीका—जीव नैं संयोग के निमित्तकरि दुःख की परम्परा निरन्तर क्लेश पाये तातैं सर्व संयोग संबंध हैं, ताहि मन, वचन, कायकरि तीन प्रकार छोड़ूं हूं ।

बहुरि फेरि भी दुश्चरित्र के परिहार कैं अर्थि सूत्र कहैं हैं—

अर्थ—मूलगुण-उत्तरगुण विषै प्रमाद करि जो मैं आराधन कीया नांही तिस सर्व दोषनिको निंदा करौ हूं, प्रतिक्रमण करुं हूं, आगामी काल विषै जो गुण आराधनैं में नांही आवै—अैसे दोषनि की निंदा करुं हूं ॥ १४ ॥

टीका—मूलगुण कहिये प्रधानगुण, उत्तरगुण कहिये अभ्रावकाश योग कौं आदि देकरि मूलगुणनिके उद्योत करनहारे विशेष गुण तिन विषैं जो कोई गुण प्रमाद करिकै आलस्यभाव करिकै तथा कोई कारणांतर करिकै मैंने आराध्या नांही तिस सर्वदोष कूं निंदौ हूं । मेरे आत्मा की निंदा करौ हूं, प्रतिक्रमण करौ हूं, केवल अतोत, वर्तमान काल हो का दोष का परिहार नांहो करौ हूं, आगामी काल विषैं तिनगुणनिमैं आराधनै में नांही आवैं तिस सर्व दोषनिकी निंदा करौ हूं ।

---

१. अ, ब प्रति में—णाराधिवो पम ादेण । २. क. नालस । ३. क. आगमेसाणं ।

तथा—

अस्संजमण्णाणं मिच्छत्तं सव्वमेव य मर्मात्त ।
जीवेसु अजीवेसु य तं णिंदे तं च गरिहामि ॥ १५ ॥

अस्संजमं—असंयमं पापकारणम् । **अण्णाणं**—अज्ञानं अश्रद्धानपूर्वकवस्तुपरिच्छेदनम् । **मिच्छत्तं**—मिथ्यात्वमतत्त्वार्थश्रद्धानम् । **सव्वमेव य**—सर्वमेव च । **मर्मात्त**—ममत्त्वमनात्मोये आत्मीयभावम् । **जीवेसु अजीवेसु य**—जीवाजीवविषयं च । **तं णिंदे**—तं निन्दामि । **तं च**—तच्च । **गरिहामि**—गर्हेऽहं परस्य प्रकटयामि । मूलोत्तरगुणेषु मध्ये यन्नाराधितं प्रमादतोऽतीतानागतकाले तत्सर्वे निन्दामि प्रतिक्रमामि च । असंयमाज्ञानमिथ्यात्वादि[1] जीवाजीवविषयं ममत्वं च सर्वं गर्हे निन्दामि चेति प्रमाददोषेण दोषास्त्यज्यन्ते ।

प्रमादाः पुनः किं न परिह्रियन्त इति चेन्न तानपि परिहरामीत्यत आह—

सत्त भए अट्ठ मए सण्णा चत्तारि गारवे तिण्णि ।
तेत्तीसाच्चासणाओ रायद्दोसं च गरिहामि ॥ १६ ॥

सत्तभए—सप्तभयानि । **अट्ठमए**—अष्टौ मदानि । **सण्णा चत्तारि**—संज्ञाश्चतस्रः आहारभयमैथुनपरिग्रहाभिलाषान् । **गारवे**—गौरवाणि ऋद्धिरससातविषयगर्वान् । **तिण्णि**—त्रीणि । **तेत्तीसाच्चासणाओ**—त्रिभिरधिका त्रिंशत् त्रयस्त्रिशत् पदार्थैः सह सम्बन्धः । त्रयस्त्रिंशतां

बहुरि कहे हैं—

अर्थ—असंयम, अज्ञान, मिथ्यात्व, जीव-अजीव पदार्थ विषै सर्व ममत्व अैसे भावन की निंदा करौ हूं, बहुरि गर्हा करौ हूं ॥ १५ ॥

टोका—पाप का कारण—असंयम भाव बहुरि श्रद्धान रहित वस्तु का जानना, अैसा अज्ञानभाव, बहुरि तत्त्वार्थ का अश्रद्धान रूप मिथ्यात्वभाव । बहुरि जोवाजोव कहिये चेतन-अचेतन पदार्थ विषैं ममत्व कहिये अपने नांही, अैसे परभाव तिन विषैं आत्मीय भाव—इन सब भावन की निंदा करुं हूँ तथा गर्हा करौं हूं, पहले कौं प्रगट जणाउ हूं । इहां अैसा जाननां—मूलगुण-उत्तरगुण विषै जो गुण आराध्या नांही प्रमाद थकी अतोत काल विषैं तथा अनागत काल विषैं तिस सर्व दोषनि को निंदा करुं हूं । बहुरि प्रतिक्रमण करौ हूं । असंजम, अज्ञान, मिथ्यात्व, चेतन-अचेतन परिग्रह विषैं ममत्व तिस सर्वदोषनि को निंदा, गर्हा करौं हूं । अैसे प्रमाद दोषतैं जे दोष लागै हैं तिनका परित्याग कीया ।

इहां कोउ कहे है प्रमाद दोषतैं, जे दोष लागै है, तिनका परिहार कीया । बहुरि प्रमादनिका परिहार क्यौं नहीं कीया ? अैसे प्रश्न हौंते तिनका भी परिहार करुं हूं, अैसे कहै है—

अर्थ—सात भय, आठमद, बहुरि आहार, भय, मैथुन, परिग्रह—इनि का अभिलाष रूप च्यारि संज्ञा, बहुरि रिद्धि का गर्वरूप रिद्धिगौरव, रस का गर्वरूप रसगौरव, सात कहिए सुख ताका गर्व सातगौरव—ऐसे तोन गौरव, बहुरि तैतोस पदार्थनिकी

१. क. त्वानि ।

पदार्थानां, **अच्चासणा**—आसादनाः परिभवास्तास्त्रयस्त्रिंशदासादनाः, अथवा तन्निमित्तत्वात् ताच्छब्द्यन्ते । **रायद्दोसं च**—रागद्वेषौ च, आत्मनीनानात्मनीनवस्तुप्रीत्यप्रीती । **गरिहामि**—गर्हे नाचरामीत्यर्थः । सप्तभयाष्टमदसंज्ञागारवाणि त्रयस्त्रिंशत्पदार्थासादनं च रागद्वेषौ च त्यजामीत्यर्थः ।

अथ कानि सप्तभयानि के चाष्टौ मदा इति पृष्टे तत आह—

इहपरलोयत्ताणं अगुत्तिमरणं च वेयणाकम्हिभया[1] ।
विण्णाणिस्सरियाणा कुलबलतवरूवजाइ मया ।। १७ ।।

इहपरलोयं—इह च परश्च इहपरौ तौ लोकौ चेहपरलोकौ । **अत्ताणं**—अत्राणमपालनं, इहलोकभयं, परलोकभयं, अत्राणभयं । **अगुत्ति**—अगुप्तिः प्राकाराद्यभावः । **मरणं च**—मृत्युश्च । **वेयणा**—वेदना पीडा । **अकम्हिभया**—आकस्मिकं घनादिगर्जोद्भवम् । भयशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । इहलोकभयं, परलोकभयं, अत्राणभयं, अगुप्तिभयं, मरणभयं, वेदनाभयं चेति । **विण्णाण**—विज्ञानं अक्षरगन्धर्वादिविषयम् । **इस्सरिय**—ऐश्वर्यं द्रव्यादिसम्पद् । **आणा**—आज्ञा वचनानुल्लंघनम् । **कुलं**—शुद्ध पैतृकाम्नायः इक्ष्वाक्वाद्युत्पत्तिर्वा । **बलं**—शरीराहारादिप्रभवा शक्तिः । **तव**—तपः कायसन्तापः । **रूव**—रूपं समचतुरस्रसंस्थानगौरादिवर्णकान्तियौवनोद्भवरमणीयता । **जाइ**—जातिः मातृकसन्तानशुद्धिः । एतैरेतेषां वा, **मया**—मदा गर्वाः । मदशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । विज्ञानमदः, ऐश्वर्यमदः, आज्ञामदः, कुलमदः, बलमदः, जातिमदः, तपोमदः, रूपमद इति संज्ञा[2]भेदैः सुगमत्वान्न विस्तरः[3] ।

आसादनां कहिए परिभवते तैतीस आसादना कहिए । बहुरि अपनी वस्तु विषैं प्रीति सो राग कहिए, अन्य वस्तु विषैं अप्रीति सो द्वेष कहिए—अैसे राग-द्वेष दोय इन सर्वभावनिका आचरण नाहीं करूँ हूँ, त्याग करौ हूँ ।। १६ ।।

इनिका नाम वा विशेष स्वरूप आचार्य आगै कहै हैं तथा प्रथम सात भय, आठमद इनिका स्वरूप कहै हैं—

अर्थ—इहलोक संबन्धी भय सो इहलोकभय कहिए । बहुरि परलोक संबंधी भय सो परलोकभय कहिए । बहुरि अत्राण कहिए—मेरा कोउ रक्षक, पालनैं वाला नांही—अैसा भय सो अत्राणभय कहिए । बहुरि अगुप्ति कहिए मेरै गुप्त रहनैं का स्थान नांही, पाट-कोट इत्यादिक आंतिरा नांही—अैसा भय सो अगुप्ति भय कहिए । बहुरि मरणैं का भय सो मरणभय कहिए, बहुरि वेदनां कहिए, शारीरादिक सम्बन्धी पोड़ा ताकां जो भय सो वेदनांभय कहिए । बहुरि आकस्मिक कहिए पहली कारण दोखैं बिनां अकस्मात् मेघगर्जनादिक तै उपज्या भय सो आकास्मक भय कहिए—अैसे सात प्रकार भय कहिए ।। १७ ।।

भावार्थ—ए सात भय हैं सो तीव्र हौंहि, जैंते सम्यक उपजै नांही तथा उपज्या होय तो छूटि जाय तथा शंकादिक अतिचार लागैं अर मंद भी होय तौ चारित्र कौ दोष लगावे यातैं इंनिका सर्वथा त्याग ही कीया ।

आगैं आठ मदनिका स्वरूप कहै—१ विज्ञान कहिए—अक्षर, गणित, काव्यादिक विद्या तथा गंधर्व्व—संगीताविद विद्या-

१. ब प्रति में कम्सि । २. क. संज्ञादेः । ३. क. विस्तरतः ।

अथ के त्रयस्त्रिंशत्पदार्था येषां त्रयस्त्रिंशदासादनानीत्यत आह—

पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाय महव्वया पंच ।
पवयणमाउपयत्था[1] तेतीसच्चासणा भणिया ।। १८ ।।

पंचेव—पंचैव । **अत्थिकाया**—अस्तिकायाः कायो निचयः परस्परप्रदेशसम्बन्धो येषां तेऽस्तिकायाः अस्तिमन्तो द्रष्टव्या जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशाः । कालस्य प्रदेशप्रचयो नास्तीत्यतोऽस्तिकायत्वं नास्ति । **छज्जीवणिकाय**—षट् च ते जीवनिकायाश्च षट्जीवनिकायाः पृथिवीकायिकादयः । **महव्वया पंच**—महाव्रतानि पंच । **पवयणमाउ**—प्रवचनमातृकाः पंचसमितयः त्रिगुप्तयश्च । **पयत्था**—पदार्थाः जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापाणि । **तेतीसच्चासणा**—त्रयस्त्रिंशदासादनाः । **भणिया**—भणिताः पंचास्तिकायादिविषयत्वात् पंचास्तिकायादय एवासादना उक्ताः, तेषां वा ये परिभवास्ता आसादना इति सम्बन्धः कर्तव्यः ।

इनिका जो गर्व सो विज्ञानमद कहिए । बहुरि ऐश्वर्य कहिए धन, कुटुंब, चेतन-अचेतन आदि बाह्य संपदा ताका अभिमान सो ऐश्वर्य मद कहिए । बहुरि आज्ञा कहिए—वचन का अनुल्लंघन, जाका बचन कोउ उलंघै नांही—ऐसा प्रभुत्व आतंक का गर्व सो आज्ञामद कहिए । बहुरि कुल कहिए शुद्ध पिता वा पितामह इत्यादिक का आम्नाय, इक्ष्वाकु आदि उत्तमवंश विषैं उपजनें का जो गर्व सो कुलमद कहिए । बहुरि बल कहिए शरीर का संहनन तथा आहार औषधादिक तिनितैं उत्पन्न भई शरीर की शक्ति ताका जो गर्व सो बल मद कहिए । बहुरि तप कहिए—काय कौं संताप देनां ताका जो अहंकार सो तप मद कहिए । बहुरि रूप कहिए—समचतुरस्र-संस्थानादिक आकार तथा गौरादिक वर्ण तथा देह की कांति तथा यौवनावस्था तैं उत्पन्न भई रमणीयता, सुन्दरता, लावण्यता ताका जो गर्व सो रूपमद कहिए । बहुरि जाति कहिए मातृपक्ष का संतान नामा इत्यादिक तिनिकी शुद्धता उत्तमता ताका जो गर्व सो जातिमद कहिये—ऐसे ये आठ मद जाननैं ।। १७ ।।

आठमद अनंतानुबंधो मान रूप होहि, ताकै तो सम्यक्त्व उपजै नांही । पहले उपज्या होय तौ जाता रहै । अर अप्रत्याख्यानावरणादिक मान रूप हौंहि, तौहूं सम्यक्त्व कौं दोष लगावै । चारित्र भाव होने दे नाहीं, तातैं इनिका त्याग ही किया ।

आगै तैतीस पदार्थनिकी आसादना का त्याग कीया तै तैतीस पदार्थ कैसे है ? ऐसा प्रश्न होतैं संतै आचार्य कहै हैं—

अर्थ—पांच अस्तिकाय, बहुरि छह जीव-निकाय, बहुरि पंचमहाव्रत, बहुरि[2] अष्टप्रवचनमातृका, बहुरि नवपदार्थ—ऐसे ये तैतीस पदार्थ हैं । तिनिका स्वरूप लिखिए हैं—अस्ति कहिए—सत् रूप पुरुष, काय कहिए—बहुप्रदेशनिकौं धरैं, परस्पर प्रदेशनिका संबंध जिनिकै पाइए ऐसे अस्तिकाय, ते पांच जाननैं—१. जीवास्तिकाय, २. पुद्गलास्तिकाय, ३. धर्मास्तिकाय, ४. अधर्मास्तिकाय, ५. आकाश अस्तिकाय । काल द्रव्यकै प्रदेशका प्रचय नांही, तातैं अस्तिकाय मैं नांही गिनिए हैं, तातैं अस्तिकाय पांच ही हैं । बहुरि छह जीवनिकाय हैं ।

तिनिके नाम १—पृथ्वीकायिक, २—अप्कायिक ३—तेजस्कायिक, ४—वायुकायिक, ५—वनस्पति कायिक । बहुरि

१. अ एवं ब प्रति में 'मादुपदत्था ।' २. ब प्रति में 'अरि' ।

आत्मसंस्कारकालं नीत्वा संन्यासालोचनार्थमाचार्यः प्राह—

णिंदामि णिंदणिज्जं गरहामि य जं च मे गरहणीयं ।
आलोचेमि य सव्वं सब्भंतरबाहिरं उवहिं ॥ १९ ॥

णिंदामि—निन्दामि आत्मन्याविष्करोमि । **णिंदणिज्जं**—निन्दनीयं आत्माविष्करणयोग्यम् । **गरहामि य**—गर्हे च आचार्यादीनामाविष्करोमि प्रकटयामि । **जं च**—यच्च । **मे**—मम । **गरहणीयं**—गर्हणीयं परप्रकाशयोग्यं । **आलोचेमि य**—आलोचयामि चापनयामि चारित्राचारालोचनापूर्वकं गर्हणं वा करोमि । **सव्वं**—सर्वं निरवशेषं । **सब्भंतरबाहिरं**—साभ्यन्तरबाह्यं । **उवहिं**—उपधिं च परिग्रहं च । यन्निदनीयं तन्निदामि, यद् गर्हणीयं तद्गर्हामि, सर्वं बाह्यभ्यन्तरं चोपधिं आलोचयामीति ।

द्वींद्रिय तै लगाय पंचेंद्रिय पर्यंत जे जीव ते ६—त्रसकायिक कहिए । ऐसें छह जीवनिकाय हैं । बहुरि पंचमहाव्रत. तिनिके नाम—१. अहिंसा महाव्रत, २. सत्य महाव्रत, ३. अस्तेय महाव्रत, ४. ब्रह्मचर्य महाव्रत, ५. परिग्रहत्यागमहाव्रत—ऐसे जाननैं।

बहुरि प्रवचनमातृका आठ हैं, तिनिके नाम—समिति पाँच—१. ईर्या समिति २. भाषासमिति ३. एषणासमिति ४. आदान-निक्षेपणा समिति ५. प्रतिष्ठापना समिति । बहुरि गुप्ति तीन—१. कायगुप्ति २. वचनगुप्ति ३. मनोगुप्ति—ऐसे इन आठनिकौं सिद्धांत विषें प्रवचनमातृका कहा है । बहुरि पदार्थ नव, तिनिके नाम—१. जोवपदार्थ, २. अजीव पदार्थ, ३. आश्रव पदार्थ, ४. बंधपदार्थ, ५. संवर पदार्थ, ६. निर्जरा पदार्थ ७. मोक्ष पदार्थ, ८. पुण्यपदार्थ, ९. पाप पदार्थ—ऐसैं ए तैतीस पदार्थ कहे तिनिकी आसादना-परिभव तिनिके भी ये ही नाम कहे, इनिका त्याग कह्या ॥ १८ ॥

भावार्थ—ए तैतीस पदार्थ संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहित जाननैं योग्य हैं तथा शंकादिक दोष रहित श्रद्धान करने योग्य है । तथा यथायोग्य आचरण करने योग्य हैं--इनिका व्यवहार प्रवर्ताया चाहिए । जो इनिका निषेध करैं, निंदा करै, अपवाद करैं, इनिका स्वरूप अन्यथा कहै, इनिमें शंकादिक उपजावैं, इनिका श्रद्धान नांही करैं, इनिका आचरण नांहीं करैं—सो इनिकी आसादना कहिए । जो कोई इनिकी आसादनां करैं है, ताकै सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होय नांही । पूर्वैं उपज्या होय तो जात रहे । जो किंचित हू आसादनां करै तो दोष लागे, तातैं इनिका त्याग किया--ऐसा अर्थ जाननां । ऐसें आत्मसंस्कार काल कौं व्यतीत[१] करि सन्यास का आलोचना कैं अर्थि आचार्य कहैं हैं--

अर्थ--जो निंदनोय है अपने ही भाव मैं प्रकट करि निंदा करिवे योग्य दोष हैं, तिनिकी निंदा करौं हौं--यह मैंने दोष कीया, ऐसे यादकरि निषेधूं हूँ । बहुरि आचार्यादिकनि कैं समोप प्रकाश करनैं योग्य मेरे दोष हैं, तिनिकी आचार्यादिकन कैं समोप गर्हा करौ हौं । बहुरि सर्व कहिए निरवशेष समस्त आभ्यंतर ममत्वभाव सहित, बाह्य उपधि कहिये—चेतन-अचेतन परिग्रह, ताहि आलोचना करौं हौं, परिहार करौ हौं ॥ १९ ॥ कैसे आलोचना करिये ? सो कहै है—

---

१. ब प्रति में वितीत ।

कथमालोचयितव्यमिति चेदत आह—

जह बालो जंप्पंतो कज्जमकज्जं च उज्जुयं भणदि ।
तह आलोचेयव्वं[1] माया मोसं च मोत्तूण ॥ २० ॥

जह—यथा । **बालो**—बालः पूर्वापरविवेकरहितः । **जंप्पंतो**—जल्पन् । **कज्जं**—कार्यं स्वप्रयोजनं । **अकज्जं च**—अकार्यं अप्रयोजनं अकर्तव्यं च । **उज्जुयं**—ऋजु अकुटिलं । **भणइ**—भणति । **तह**—तथा । **आलोचेयव्वं**—आलोचयितव्यं । **मायामोसं च**—मायां मृषां च अपह्नवासत्यं च । **मोत्तूण**—मुक्त्वा । यथा कश्चिद्बालो जल्पन् कुत्सितानुष्ठानमकुत्सितानुष्ठानं च ऋजु भणति, तथा मायां मृषां च मुक्त्वा आलोचयितव्यमिति ।

यस्यालोचना क्रियते स किंगुणविशिष्ट आचार्य इति चेदत आह—

णाणम्हि दंसणम्हि य तवे चरित्ते य चउसुवि अकंपो ।
धीरो आगमकुसलो अपरस्साई रहस्साणं ॥ २१ ॥

णाणम्हि—ज्ञाने । **दंसणम्हि य**—दर्शने च । **तवे**—तपसि । **चरित्ते य**—चरित्रे च । **चउसुवि**—चतुर्ष्वपि । **अकंपो**—अकंपोऽधृष्यः । **धीरो**—धीरो धैर्योपेतः । **आगमकुसलो**—आगमकुशलः स्वसमयपरसमयविचारदक्षः । **अपरिस्साई**—अपरिश्रावी आलोचितं न कस्यचिदपि कथयति । **रहस्साणं**—रहसि एकान्ते भवानि रहस्यानि गुह्यानुष्ठितानि । ज्ञानदर्शनतपश्चारित्रेषु चतुर्ष्वपि सम्यक्स्थितो यो रहस्यानामपरिश्रावी धीरश्चागमकुशलश्च यस्तस्य आलोचना कर्तव्या नान्यस्येति ।

अर्थ—जैसें बालक पूर्वापर विवेक रहित कहता संता कार्य, अकार्य कौं कुटिलता रहित सरल वृत्ति करि कहै है । तैंसे मायाचार कहिये—मन, वचन, काय की कुटिलता करि छिपाव करना तथा मृषा कहिए असत्य वचन—तिस दोऊं कूं छोडिकरि आलोचना करना योग्य है ॥ २० ॥ आगै जिस आचार्य पासि आलोचना कीजिये सो आचार्य कैंसैं के गुणकरि विशिष्ट होय ? ऐसे प्रश्न होतैं संतै कहैं हैं—

अर्थ—जो आचार्य ज्ञानाचार विषै अकंप होय, बहुरि दर्शनाचार विषै अकंप होय, बहुरि तप आचार विषै अकंप होय, बहुरि चारित्राचार विषै अकंप होय—ऐसे च्यारुं आराधना विषै अकंप होय, किसी का चलाया चालै नांहो—ऐसा दृढ होय, बहुरि धीर कहियै—धैर्यगुणकरि संयुक्त होय, बहुरि आगम कहियै—स्वमत के सिद्धान्त का विचार तथा परमत के शास्त्र का विचार विषै महाप्रवीण होय, बहुरि रहस्य कहिये एकांत कैं विषै भये ऐसे गुह्य आचरण आलोचन कीये, सो किसी कौं कहै नांहो—ऐसा जाका स्वभाव होय, ऐसे आचार्य पासि आलोचना करणो । इन गुणनतैं रहित होय ताकै पासि आलोचना करनी नांहो ॥ २१ ॥

१. अ, ब, प्रति में दव्वं ।

आलोचनानन्तरं क्षमणं कर्तुकामः प्राह—

रागेण य दोसेण य जं मे अकदण्हुयं पमादेण।
जो मे किंचिवि भणिओ तमहं सव्वं खमावेमि ॥२२

रागेण य—रागेण च मायालोभाभ्यां स्नेहेन वा। **दोसेण य**—द्वेषेण च क्रोधमानाभ्यां अप्रीत्या वा। **जंमे**—यन्मया। **अकदण्हुअं**—अकृतज्ञत्वं युष्माकमयोग्यमनुष्ठितं। **पमादेण**—प्रमादेन। **जो मे**—यो मया। **किंचिवि**—किंचिदपि। **भणिओ**—भणितः। **तमहं**—तं जनं अहं। **सव्वं**—सर्वं। **खमावेमि**—क्षमयामि संतोषयामि। रागद्वेषाभ्यां मनागपि यन्मया कृतमकृतज्ञत्वं योऽपि मया किंचिदपि भणितस्तमहं सर्वं मर्षयामीति।

क्षमणं कृत्वा क्षपकः संन्यासं कर्तुकामो मरणभेदान् पृच्छति कति मरणानि ? आचार्यः प्राह—

तिविहं भणंति मरणं बालाणं बालपंडियाणं च।
तइयं पंडियमरणं जं केवलिणो अणुमरंति ॥२३॥

तिविहं—त्रिविधं त्रिप्रकारम्। **भणंति**—कथयन्ति। **मरणं**—मृत्युं। **बालाणं**—बालानां असंयतसम्यग्दृष्टीनां। **बालपंडियाणं च**—बालाश्च ते पंडिताश्च बालपंडिताः। संयतासंयता एकेन्द्रियाविरतेर्बालाः द्वीन्द्रियादिबधविरताः पंडिताः। **तइयं**—तृतीयं **पंडियमरणं**—पंडितमरणं पंडितानां मरणं देहपरित्यागः देहस्यान्यथाभावो वा पंडितमरणं। **जं**—यत् येन वा। **केवलिणो**—केवलं शुद्धं ज्ञानं विद्यते येषां केवलिनः **अणुमरंति**—अनुम्रियन्ते अर्हद्भट्टारका गणधरदेवाश्च त्रिप्रकारं मरणं भणंति। प्रथमं बालजीवस्वामित्वात्, द्वितीयं बालपंडितमरणं बालपंडित-

---

आगै आलोचना कै अनंतर क्षमावना करनेंका है अभिलाषा जाके—ऐसा हुआ संता कहै है—

अर्थ—राग कहिये—माया, लोभ, तथा स्नेहकरि, द्वेष कहिये—क्रोध, मानकरि तथा अप्रीति करि जो मैं अकृतज्ञपणां करिकै—तुम्हारै अयोग्य अनुष्ठान कीया, प्रमादकरिकैं जो किंचित्मात्र भी मैंने किसी जन को कह्या, सो अब मैं सर्व-जननि तैं क्षमावणां कराऊं हूं, मैं क्षमा करुं हूं—सर्व जीवनि कौ संतुष्ट करुं हूं ॥२२॥ ऐसें क्षमाभावकरि क्षपक हैं, सो सन्यास करने का है-अभिलाष जाकैं—ऐसा आचार्यनिकूं मरण के भेद पूछै हैं, मरण के प्रकार हैं ? ऐसे पूछै। आचार्य कहै हैं—

अर्थ—अर्हंत भट्टारक बहुरि गणधरदेव—मरण तोन प्रकार कहै हैं—प्रथम-बालमरण, द्वितीय-बालपंडितमरण, तृतीय-पंडितमरण। तहां बालमरण असंयत सम्यग्दृष्टो जीव कैं होय है। तातैं[1] असंयत जीव को बाल संज्ञा है—सो याका स्वामो, तातैं मरणकूं भी बालमरण कह्या। दूसरा बालपंडितमरण सो संयतासंयत श्रावक कें होय है। एकेन्द्रिय जीव की हिंसा का त्यागनां ही तातैं बाल कहिए, वेंद्रियादिक की हिसा का त्यागी तातैं पंडित कहिए। ऐसे बालपंडित जो संयतासंयत सो याका स्वामी तातैं मरण कूं भी बालपंडितमरण कह्या है। बहुरि तोसरा पंडितमरण सो संयमोनिकै होय है। देह का परित्याग अथवा देह का अन्यथा—

१. अ प्रति में—जानैं।

स्वामित्वात्, तृतीयं पंडितमरणं येन केवलिनोऽनुम्रियन्ते । संयताश्च पंडितपंडितमरणस्यात्रैव पंडितेन्तर्भावः सामान्यसंयमस्वामित्वाभेदादिति । अन्यत्र बालबालमरणमुक्तं तदत्र किमिति कृत्वा नोक्तं तेन प्रयोजनाभावात् । ये अकुटिला ज्ञानदर्शनयुक्तास्ते एतैर्मरणैर्म्रियन्ते ।

अन्यथाभूताश्च कथमित्युत्तरसूत्रमाह—

जे पुण पणट्ठमदिया पचलियसण्णा य वक्कभावा य ।
असमाहिणा मरंते ण हु ते आराहया भणिया ॥२४॥

जे **पुण**—ये पुनः । **पचलियसण्णा य**—प्रणष्टा मतिर्येषां ते प्रणष्टमतिकाः अज्ञानिनः । **पचलियसण्णा य**—प्रचलिता उद्‌गता संज्ञा आहारभयमैथुनपरिग्रहाभिलाषा येषां ते प्रचलितसंज्ञकाः । **वक्कभावा य**—कुटिलपरिणामाश्च । **असमाहिणा**—असमाधिना आर्तरौद्रध्यानेन । **मरंते**—म्रियन्ते भवान्तरं गच्छन्ति । **ण हु**—न खलु । **आराहया**—आराधकाः कर्मक्षयकारिणः **भणिया**—भणिताः कथिताः ये प्रणष्टमतिकाः प्रचलितसंज्ञा वक्रभावाश्च ते असमाधिना म्रियन्ते स्फुटं न ते आराधका भणिता इति ।

यदि मरणकाले विपरिणामः स्यात्ततः किंस्यादिति पृष्टे आचार्यः प्राह—

मरणे विराहिए[1] देवदुग्गई[2] दुल्लहा य किर बोही ।
संसारो य अणंतो होइ पुणो आगमे काले ॥२५॥

मरणे—मृत्युकाले । **विराहिए**—विराधिते विनाशिते मरणकाले सम्यक्त्वे विराधित इत्यर्थः मरणकाले सम्यक्त्वस्य यद्विराधनं

भाव सो मरण कहिए, इस पंडितमरणकरि केवलश्रुत है ज्ञान जिनिकैं अैसे जे केवली ते देह को छोडे है । इहां पंडित-पंडितमरण का पंडितमरण के विषैं अंतर्भाव जाननां । जातैं दोउनिका स्वामी संयमी हैं, तातैं भेदन कीया ।

इहां कोउ पूछै—अन्यग्रंथनि विषैं मरण के भेद पांच कहै हैं—तहां बाल बालमरण कह्या है, सो इहां क्यौं कह्या नांही ? ताका समाधान बाल बालमरण का इहां प्रयोजन नांही, जे कुटिलता रहित ज्ञान-दर्शन संयुक्त है—तिनि के तीन मरण कहै हैं ॥ २३ ॥

आगैं जे अन्यथा-भूत अज्ञानी हैं ते कैसे मरण करै हैं ? अैसे प्रश्न होतैं उत्तरसूत्र कहै हैं—

अर्थ—बहुरि जे प्रनष्टमतिकाः कहिए विनष्ट भई है बुद्धि जिनकी—अैसे अज्ञानी हैं । बहुरि प्रचलित संज्ञका कहिये उपजी है आहार, भय, मैथुन, परिग्रह के अभिलाष रूप संज्ञा जिनकै—अैसे है । बहुरि बंकभाव कहिए कुटिल है मन, वचन, काय के परिणाम जिनिका—अैसे है, ते आर्त-रौद्र-ध्यान रूप असमाधिमरणकरि परलोक विषैं अन्य देह कूं धारैं हैं, ते आराधक कहिए—कर्म के क्षय करने वाले नांही है ॥ २४ ॥

भावार्थ—जे जीव समाधिमरण नांही करै हैं वे संसार बधावै हैं ।

आगें पूछै है—जो मरण समय विषैं विरुद्ध परिणाम होय तौ कहा होय ? अैसें प्रश्न होतैं आचार्य कहै हैं—

अर्थ—मरणे कहिए मरण कै समय, जे सम्यक्त्व की विराधना करैं हैं अथवा आर्त, रौद्र सहित मरण करैं हैं तिनिकै

---

१. अ, ब प्रतियों में विराधिदे' । २. अ प्रति में उग्गई' ।

तन्मरणस्यैव साहचर्यादिति । अथवार्तरौद्रध्यानसहितं यन्मरणं तत्तस्य विराधनमित्युक्तम् । **देवदुग्गई**—देवदुर्गतिः भवनवासिवानव्यन्तरज्योतिष्कादिषूत्पत्तिः **दुल्लहा य**—दुर्लभा दुःखेन लभ्यते इति दुर्लभा च **किर**—किल । अयं किलशब्दोऽनेकेष्वर्थेषु विद्यते, तत्र परोक्षे द्रष्टव्यः आगमे एवमुक्तमित्यर्थः **बोही**—बोधिः सम्यक्त्वं रत्नत्रयं वा । **संसारो य**—संसारश्च चतुर्गतिलक्षणः **अणंतो**—अनन्तः अर्द्धपुद्गलप्रमाणः कुतोऽस्यानन्तत्वं ? केवलज्ञानविषयत्वात् । **होइ**—भवति । **पुणो**—पुनः । **आगमे काले**—आगमिष्यति समये । मरणकाले सम्यक्त्वविराधने सति, दुर्गतिर्भवति, बोधिश्च दुर्लभा, आगमिष्यति च काले संसारश्चानन्तो भवतीति ।

अत्रैवाभिसम्बन्धे प्रश्नपूर्वकं सूत्रमाह—

का देवदुग्गईओ का बोही केण ण बुज्झए मरणं ।
केण व अणंतपारे संसारे हिंडए जीओ ॥२६॥

का देवदुग्गईओ—का देवदुर्गतयः किंविशिष्टा देवदुर्गतयः । **का बोही**—का बोधिः । **केण व**—केन च । **ण बुज्झए**—न बुध्यते । **मरणं**—मृत्युः । **केण व**—केन च कारणेन । **अणंतपारे**—अनन्तोऽपरिमाणः पारः समाप्तिर्यस्यासौ अनन्तपारस्तस्मिन् । **संसारे**—संसरणे । **हिंडए**—हिंडते गच्छति । **जीवो**—जीवः । हे भट्टारक ! का देवदुर्गतयः, का च बोधिः, केन च परिणामेन न बुध्यते मरणं, संसारे च केन कारणेन परिभ्रमति जीवः ?

क्षपकेण पृष्टः आचार्यः प्राह—

कंदप्पमाभिजोग्गं किब्विस सम्मोहमासुरत्तं च ।
ता देवदुग्गईओ मरणम्मि विराहिए होंति २७॥

द्रव्यभावयोरभेदं कृत्वा चेदमुच्यते । **कंदप्पं**—कंदर्पस्य भावः कान्दर्पमुपप्लवशीलगुणः । **आभिजोग्गं**—अभियोगस्य भावः आभियोग्यं

देव दुर्गति कहिए भवनवासी, वानव्यंतर, ज्योतिषी—इत्यादिक नीच कुल के देवता तिनि विषैं उत्पत्ति होय है । अर बोधि कहिए सम्यक्त्व अथवा रत्नत्रय ताकी प्राप्ति दुर्लभ होय हैं इहां किल शब्द हैं ताके अनेक अर्थ होय हैं। तथापि इहां परोक्ष अर्थ विषैं जाननां—आगम विषैं ऐसा कह्या हैं। बहुरि ऐसे पुरुष आगामी काल विषैं च्यारु गति का भ्रमण है लक्षण जाका—ऐसा जो संसार सो अनंत कहिए अर्द्धपुद्गल-परिणाम केवलज्ञानकै गोचर होय है ॥ २५ ॥

अब यहां इस प्रकरण विषैं प्रसन्न पूर्वक सूत्र कहै हैं—

अर्थ—क्षपक हैं सो आचार्यनि कूं पूछै है— हे भट्टारक ! देवदुर्गति कैसी है ? बोधि का स्वरूप कहा है ? मरण का स्वरूप कौन कारणकरि जान्यां नांही ? बहुरि कौन से कारणकरि अनंत-संसार विषैं जीव भ्रमै है ? ॥ २६ ॥

ऐसैं पूछै संतै आचार्य कहे हैं—

अर्थ—मरणे कहिए मृत्युकाल विषैं सम्यक्त्व का विनाश होतैं तैं कांदर्प्य, आभियोग्य, कैल्विष्कत्व, स्वमोह, असुरत्व—ये

तन्त्रमन्त्रादिभीरसादिगार्द्ध्यं । **किब्बिस**—किल्विषस्य भावः कैल्विष्यं प्रतिकूलाचरणं । **सम्मोहं**—स्वस्य मोहः स्वमोहस्तस्य भावः स्वमोहत्वं, शुनो मोह इव मोहो वेदोदयो यस्य स श्वमोहस्तस्य भावः श्वमोहत्वं सह मोहेन वा वर्तते इति तस्य भावः समोहत्वं[1] मिथ्यात्वभावनातात्पर्यम् । **आसुरत्तं च**—असुरत्वं च—असुरस्य भावः असुरत्वं रौद्रपरिणामसहिताचरणं । **ता**—एताः । **देवदुग्गईओ**—देवदुर्गतयस्तैर्गुणैस्ताः प्राप्यन्ते इतिकृत्वा तद्व्यपदेशः, कारणे कार्योपचारात् । **मरणम्मि**—मरणे मृत्युकाले सम्यक्त्वे । **विराहिए**—विराधिते परिभूते । **होंति**—भवन्ति । सम्यक्त्वे विनाशिते मरणकाले एताः कन्दर्पाभियोग्यकिल्विषस्वमोहासुरदेवदुर्गतयो भवन्तीति ।[2]

किं तत्कान्दर्पं इत्यत आह—

असत्तमुल्लावेंतो[3] पण्णावेंतो य बहुजणं कुणइं ।
कंदप्प रइसमावण्णो कंदप्पेसु[4] उववज्जइ ।। २८ ।।

असत्तं—असत्यं मिथ्या । **उल्लावेंतो**[5]—उल्लपन् जल्पन् उल्लापयित्वा, **पण्णावेंतो**—प्रज्ञापयन् प्रतिपादयन्, **बहुजणं**—बहुजनं बहून् प्राणिनः, **कुणइं**—करोति । **कंदप्पं**—कान्दर्पं, **रइसमावण्णो**—रतिं समापन्नः प्राप्तो रतिसमापन्नो रागोद्रेकसहितः । **कंदप्पेसु**—कन्दर्पकर्मयोगाद्देवा अपि कन्दर्पा नग्नाचार्यदेवास्तेषु, **उववज्जेइ**—उत्पद्यते । यो रतिसमापन्नः असत्यमुल्लपन् तदेव च बहुजनं प्रतिपादयन् कन्दर्पभावनां

पाँच देवदुर्गति हैं, ते होय हैं । इहां द्रव्यभाव का भेद नांही करि इनिका (कान्दर्प्य आदि का) स्वरूप कहिए हैं—

शील गुण विषैं उपद्रव रूप परिणाम सो कंदर्प्प कहिए, कंदर्प्प का भाव सो कांदर्प्प कहिए । बहुरि तन्त्र-मन्त्र इत्यादिक करि रसादिक की चाहि सो अभियोग कहिए, अभियोग का भाव सो आभियोग कहिए । बहुरि प्रतिकूल आचरण सो किल्विष कहिए, किल्विष का जो भाव सो कैल्विष्य कहिए । बहुरि स्व कहिए आप का मोह सो स्वमोह कहिए, ताका जो भाव सो स्वमोहत्व कहिए । तथा स्व कहिए स्वानता का मोह समान है । मोह कहिए वेद का उदय जाकैं सो स्वमोह कहिए, ताका भावत्व सो स्वमोहत्व कहिए तथा मोह करि सहित वर्तैं सो समोह कहिए । समोह का भाव सो समोहत्व कहिए । मिथ्यात्व भावना के विषै तत्परनां सो समोहत्व कहिए । बहुरि रौद्र परिणाम सहित आचरण जाकै होय सो असुर कहिए, असुर का भाव सो असुरत्व कहिए। ऐसे ए पाँच प्रकार भावनि तै पाँच प्रकार हो देवदुर्गति होय है । सो कारण कै विषैं कार्य का उपचार करि इनि भावनिही का नाम देवदुर्गति कह्या ।। २७ ।।

अब इनिका प्रत्येक स्वरूप कहै हैं । तहां प्रथम कांदर्प्य का स्वरूप कहै है—

अर्थ—जो असत्य कहिए मिथ्यावचन बोलता संता, बहुरि असत्य वचन पैले बहुत प्राणीनिकूं सिखावता संता, बहुरि

---

१. क °त्वं तस्य भावना ।
२. उत्तराध्ययनसूत्र में इन्हीं पाँच भावनाओं का विवेचन ३६वें अध्ययन की गाथा सं० २५६ से २६७ तक थोड़े से भाषायी परिवर्तन के साथ एक जैसा मिलता है ।
३. क °विंतो । ४. क °सुवव° । ५. क °विंतो ।

करोति स कन्दर्पेषूत्पद्यते इत्यर्थः । अथवा असत्यं जल्पन् तदेव च भावयन्[1] आत्मनो बहुजनं करोति योजयति असत्येन यः स कन्दर्परतिसमापन्नः कन्दर्पेषूत्पद्यत इत्यर्थः ।

अथ किमभियोगकर्मेति तेनोत्पत्तिश्च का चेदतः प्राह—

अभिजुंजइ[2] बहुभावे साहू हस्साइयं च बहुवयणं ।
अभिजोगेहिं कम्मेहिं जुत्तो वाहणेसु[3] उववज्जइ ॥ २९ ॥

अभिजुंजइ—अभिसंयुक्ते करोति, **बहुभावे**—बहुभावान् तंत्रमंत्रादिकान् । **साहू**—साधुः । **हस्साइयं च**—हास्यादिकं च हास्यकौत्कुच्यपरविस्मयनादिकं । **बहुवयणं**—बहुवचनं वाग्जालं । **अहिजोगेहिं**—अभियोगैः तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यं आभिचारकैः, **कम्मेहिं**—कर्मभिः क्रियाभिः । **जुत्तो**—युक्तस्तन्निष्ठः । **वाहणेसु**—वाहनेषु गजाश्वमेषमहिषस्वरूपेषु । **उवज्जइ**—उत्पद्यते जायते । यः साधूरसादिषु गृद्धः मंत्रतंत्रभूतिकर्मादिकमुपयुंक्ते हास्यादिकं बहुवचनं करोति स तैरभियोगैः कर्मभिर्वाहनेषु उत्पद्यत इति ।

किल्विषभावनास्वरूपं तथोत्पत्तिं च प्रतिपादयन्नाह—

तित्थयराणं पडिणीओ संघस्स य चेइयस्य सुत्तस्स ।
अविणीदो णियडिल्लो किव्विसियेसूववज्जेइ[4] ॥ ३० ॥

तित्थयराणं—तीर्थं संसारतरणोपायं कुर्वन्तीति तीर्थकराः अर्हद्भट्टारकास्तेषां । **पडिणीओ**—प्रत्यनीकः प्रतिकूलः । **संघस्स य**—संघस्य च ऋषियतिमुन्यनगाराणां ऋषिश्रावकश्राविकार्यिकाणां सम्यग्दर्शनचारित्रतपसां वा । **चेइयस्स**—चैत्यस्य सर्वज्ञप्रतिमायाः । **सुत्तस्स**—

रतिभाव कौ प्राप्त हुवा संता, रागभाव को तीव्रता सहित कंदर्प्य भावना कूं करै है । सो जीव देवनि विषैं कंदर्प्प कर्म के योगतैं कंदर्प्प कहावैं—अैसे नग्नाचार्य्य देव तिनि विषैं उपजै हैं ॥ २८ ॥

भावार्थ—इह कंदर्प्प नाम देव दुर्गति का स्वरूप जाननां । आगैं अभियोग कर्म्म कहा । बहुरि ताकरि उत्पत्ति कहां होय है ? अैसे पूछै, सूत्र कहैं हैं—

अर्थ—जो साधु रसादिक कैं विषैं असक्त होय तंत्र, मंत्र, भूत कर्म्मादिक बहुत भाव करै है, बहुरि हास्य कौत्कुच्यपनैं की आश्चर्य उपजावनैं की वार्ता इत्यादिक बहुत वचन प्रलाप बोले है । यह अभियोग कर्म्मकरि युक्त देवतानि विषैं वाहन जाति के देवता—गज कहिये हाथी, अश्व कहिए घोरा (घोड़ा), मेष कहिए मीढ़, महिष कहिए भैंसा[5] अैसा स्वरूप विषैं उपजै है ॥२९॥

भावार्थ—यह अभियोग नामा देव-दुर्गति कही ।

आगैं किल्विष भावना का स्वरूप बहुरि तातैं उत्पत्ति होय ताका स्वरूप प्रतिपादन करता संता सूत्र कहैं हैं—

अर्थ—जो साधु संसार समुद्र तै तिरणे का उपाय धर्म्म रूप ताहि करै है ते तीर्थंकर कहिए । अर्हत् भट्टारक तिनिकैं प्रतिकूल होय बहुरि संघ कहिए ऋषी, यति, मुनि, अनगार—अैसे च्यारि प्रकार अथवा ऋषि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका—

१. क °यन्नात्म° । २. क अभिभुंजइ । ३. क °णेसूव° । ४. क °वज्जइ । ५. अ प्रति में यह पाठ नहीं है ।

सूत्रस्य द्वादशाङ्गचतुर्दशपूर्वरूपस्य । **अविणीओ**—अविनीतः स्तब्धः । **णियडिल्लो**—निकृतिवान् वंचनाबहुलः प्रतारणकुशलः । **किव्विसिसूववज्जेइ**—किल्विषेषूत्पद्यते । पाटहिकादिषु जायते । तीर्थंकराणां यः प्रत्यनीकः संघस्य चैत्यस्य सूत्रस्य वा अविनीतः मायावी च यः स किल्विषकर्मभिः किल्विषिकेषु जायते इति ।

सम्मोहभावनास्वरूपं तदुत्पत्या सह निरूपयन्नाह—

उम्मग्गदेसओ मग्गणासओ मग्गविपडिवण्णो य ।
मोहेण य मोहंतो[1] संमोहेसूववज्जेदि[2] ॥ ३१ ॥

उम्मग्गदेसओ—उन्मार्गस्य मिथ्यात्वादिकस्य देशकः उपदेशकर्ता उन्मार्गदेशकः । **मग्गणासओ**—मार्गस्य सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रात्मकस्य **णासओ**—नाशको विराधको मार्गनाशकः । **मग्गविपडिवण्णो य**—मार्गस्य विप्रतिपन्नो विपरीतः स्वतीर्थप्रवर्तकः मार्गविप्रतिपन्नः । **मोहेण य**—मोहेन च मिथ्यात्वेन मायाप्रपंचेन वा । **मोहंतो**—मोहयन् विपरीतान् कुर्वन्, **संमोहेसूववज्जेदि**—स्वंमोहेषु स्वच्छन्ददेवेषत्पद्यते । य उन्मार्गदेशकः मार्गनाशकः मार्गविपतिकूलश्च मोहेन मोहयन् स[3] सम्मोहकर्मभिः स्वंमोहेषु जायते इति ।

आसुरीं भावनां तयोत्पत्तिं च प्रपंचयन्नाह—

खुद्दो कोही माणो मायी तह संकिलिट्ठो तवे चरित्ते य ।
अणुबद्धवेररोई असुरेसूववज्जदे जीवो ॥ ३२ ॥

खुद्दो—क्षुद्रः पिशुनः । **कोही**—क्रोधी । **माणी**—मानी गर्वयुक्तः । **माई**—मायावी । **तह य**—तथा च । **संकिलिट्ठो**—संक्लिष्ट

अैसैं च्यारि प्रकार अथवा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप—अैसें च्यारि प्रकार ताका विनय नांही करै, उद्धत होय बहुरि चैत्यस्य कहिए सर्वज्ञ देव की प्रतिमा, ताका विनय नांही करै उद्धत होय, बहुरि सूत्र कहिए द्वादशांग, चतुर्दश पूर्व रूप परमागम ताका अविनयी होइ बहुरि निकृतिवान् कहिये मायाचार सहित ठगणे कै विषैं प्रवीण सो किल्विष जाति के देव वादित्र बजावनैं वाले आदिक तिनि विषैं उपजै हैं । अैसे तीसरी किल्विष नामा देव-दुर्गति का स्वरूप कह्या ॥ ३० ॥

आगैं सम्मोह भावना का स्वरूप तातैं कहां उपजैं है ? अैसा निरूपण करता संता कहि है—

अर्थ—जो उन्मार्ग कहिए मिथ्यात्वादिक का उपदेश कर्ता होय बहुरि मार्ग कहिये, सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र स्वरूप मोक्षमार्ग ताकी विराधना करता होय, बहुरि मार्ग सूं विपरीत अपना मार्ग जुदा मत चलावता होय, बहुरि मिथ्यात्वकरि तथा माया प्रपंचकरि जगत् कौं मोहता संता सु मोह जे देवगति विषैं स्वछंद देव तिन विषैं उपजे हैं ॥ ३१ ॥

भावार्थ—ये चतुर्थी सम्मोह नामा देवदुर्गति का स्वरूप है ।

आगैं आसुरी भावना तथा तातैं उत्पत्ति होय ताका स्वरूप कहै है—

अर्थ—क्षुद्र कहिये दुष्ट पिशुन, क्रोधी, मानी कहिये गर्व युक्त, मायी मायाचार सहित । बहुरि तप कै विषै तथा चारित्र

---

१. क मोहितो । २. क ववज्जइ । ३. क ०स्वस० ।

संक्लेशपरायणः । **तवे**—तपसि । **चरित्ते य**—चरित्रे च । **अणुबद्धवेररोई**—अनुबद्धं वैरं रोचते अनुबद्धवैररोची कषायवहुलेषु रुचिपरः । **असुरेसूववज्जदे**—असुरेषूत्पद्यते अंबावरीषसंज्ञकभवनेषु । **जीवो**—जीवः । यः क्षुद्रः, क्रोधी, मानी, मायावी अनुबद्धवैररोची च तथा तपसि, चरित्रे च यः संक्लिष्टः सोऽसुरभावतयासुरेषूत्पद्यते इति ।

व्यतिरेकद्वारेण बोधिं प्रतिपादयन्नाह—

मिच्छादंसणरत्ता सणिदाणा किण्हलेसमोगाढा ।
इह जे मरंति जीवा तेसिं पुण दुल्लहा बोही ।। ३३ ।।

मिच्छादंसणरत्ता—मिथ्यात्वदर्शनरक्ताः अतत्त्वार्थरुचयः । **सणिदाणा**—सह निदानेनाकांक्षया वर्तंत इति सनिदानाः । **किण्हलेसं**—कृष्णलेश्यां [1]अनन्तानुबन्धिकषायानुरञ्जितयोगप्रवृत्तिम् । **ओगाढा**—आगाढा प्रविष्टा रौद्रपरिणामाः । **इह**—अस्मिन् । **जे**—ये । **मरंति**—म्रियन्ते प्राणांस्त्यजन्ति । **जीवा**—जीवाः प्राणिनः । **तेसिं**—तेषां । **पुण**—पुनः । **दुल्लहा**—दुर्लभाः । **बोही**—बोधिः सम्यक्त्वसहितशुभपरिणामः । इह ये जीवाः मिथ्यात्वदर्शनरक्ताः, सनिदानाः, कृष्णलेश्यां प्रविष्टाश्च म्रियन्ते तेषां पुनरपि, दुर्लभा बोधिः । उत्कृष्टतोऽर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्रात्सम्यक्त्वाविनाभावित्वाद्बोधेरतस्तादात्म्यं ततो बोधेरेव लक्षणं व्याख्यातमिति ।

अन्वयेनापि बोधेर्लक्षणमाह—

❀सम्मद्दसणरत्ता अणियाणा सुक्कलेसमोगाढा ।
इह जे मरंति जीवा तेसिं सुलहा हवे बोही ।। ३४ ।।

सम्मद्दंसणरत्ता—सम्यग्दर्शनरक्ताः तत्त्वरुचयः । **अणियाणा**—अनिदाना इहपरलोकानाकांक्षाः । **सुक्कलेस्सं**—शुक्ललेश्यां ।

कै विषै संक्लेश भावनिकरि सहित, बहुरि अनुबद्ध बैर-रोचि कहिए बांधी है बैर विषैं रुचि जानैं—अैसा जीव आसुरी भावनां करिकै असुर जाति के देव अंबारीष[2] नामा भवनवासी तिन विषैं उपजे है ।। ३२ ।।

भावार्थ—यह पांचवी असुर देव दुर्गति का स्वरूप कह्या है ।

आगैं व्यतिरेक द्वारकरि बोधि का प्रतिपादन करता संता कहै हैं—

अर्थ—जे जीव अतत्त्वार्थ विषैं है रुचि जिनकी अैसे मिथ्यादर्शन कै विषैं, रक्ताः सनिदानाः कहिए निदानभाव आकांक्षा ताकरि सहित । बहुरि अनंतानुबंधी कषायकरि अनुरंजित योग की प्रवृत्ति रूप कृष्णलेश्या ताकरि सहित रौद्र है परिणाम जिनके अैसे जीव मरण करै है, तिनके सम्यक्त्व सहित शुभ परिणाम रूप जो बोधि सो दुर्लभ है। उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गल-परावर्तन मात्र काल विषै प्राप्त होय हैं ।। ३३ ।। आगैं अन्वयकरि बोधि का लक्षण कहैं हैं—

अर्थ—जे जीव सम्यग्दर्शन विषैं रक्त हैं, तत्त्व विषै जिनकी रुचि है, बहुरि अनिदानाः कहिये—इहलोक-परलोक संबंधी

❀'भगवती आराधना' में भी इन भावनाओं का वर्णन गाथा सं० १८१ से १८८ तक किया गया है । १. सामान्यवचन है ।
❀ यह गाथा फलटन से प्रकाशित प्रति में नहीं है । पर यही गाथा देखिए उत्तराध्ययन ३६।२५८ । २. ब प्रति में "अंबर अबरीष" पाठ है ।

ओगाढा—आगाढा प्रविष्टाः । **इह**—अस्मिन् । **जे**—ये । **मरंति**—म्रियंते । **जीवा**—जीवाः । **तेसिं**—तेषां । **सुलहा**—सुलभा सुखेन लभ्या । **हवे**—भवेत् । **बोही**—बोधिः । इह ये जीवाः सम्यक्त्वदर्शनरक्ताः, अनिदानाः, शुक्ललेश्यां प्रविष्टाः सन्तो म्रियन्ते तेषां सुलभा बोधिरिति । यद्यपि पूर्वसूत्रेणास्यार्थस्य प्रतीतिस्तथापि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकशिष्यसंग्रहार्थः पुनरारम्भः एकान्तमतनिराकरणार्थं च ।

संसारकारणस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

जे पुण गुरुपडिणीया बहुमोहा ससबला कुसीला य ।
असमाहिणा मरंते ते होंती अणंतसंसारा ।। ३५ ।।

जे **पुण**—ये पुनः । **गुरुपडिणीया**—गुरूणां प्रत्यनीकाः प्रतिकूलाः गुरुप्रत्यनीकाः । **बहुमोहा**—मोहप्रचुराः रागद्वेषाभिहताः । **ससबला**—सह शबलेन लेपेन वर्तन्ते इति सशबलाः कुत्सिताचरणाः । **कुसीला य**—कुशीलाः कुत्सितं शीलं व्रतपरिरक्षणं येषां ते कुशीलाश्च । **असमाहिणा**—असमाधिना मिथ्यात्वसमन्वितार्त्तरौद्रपरिणामेन । **मरंते**—म्रियन्ते । **ते**—ते । **होंति**—भवन्ति ते एवं विशिष्टाः । **अणंतसंसारा**—अनन्तसंसारा अर्धपुद्गलप्रमाणसंसृतयः । ये पुनः गुरुप्रतिकूलाः, बहुमोहाः कुशीलासशबलास्तेऽसमाधिना म्रियन्ते ततश्चानन्तसंसारा भवन्तीति ।

अथ परीतसंसाराः कथं भवन्तीति चेदतः प्राह—

जिणवयणे अणुरत्ता गुरुवयणं जे करंति भावेण ।
असबल असंकिलिट्ठा ते होंति परित्तसंसारा ।। ३६ ।।

जिणवयणे—जिनस्य वचनमागमः तस्मिन्नर्हत्प्रवचने । **अणुरत्ता**—अनुरक्ताः सुष्ठु भक्ताः । **गुरुवयणं**—गुरुवचनमादेशं, **जे करंति**—

भोगादिक की आकांक्षा रहित है। बहुरि शुक्ललेश्या विषैं प्राप्त है। अैसे हुए संते इसलोक विषैं मरण करै हैं, तिनिकै बोधि कहिए सम्यक्त्व सहित शुभ परिणाम सुलभ होय हैं। यद्यपि पूर्व सूत्र में इह अर्थ आ गया था तथापि कोई शिष्य द्रव्यार्थिक नयावलंबी हैं, कोई शिष्य पर्यायार्थिक-नयावलंबी है, तिनि समस्त शिष्यनिका अनुग्रह के अर्थि फेरि वर्णन किया तथा एकांत-मत का निराकरण कैं अर्थि बहुरि वर्णन कीया ।। ३४ ।।

आगैं संसार के कारण का स्वरूप कूं निरूपण करता संता कहै हैं—

अर्थ—जे जीव गुरु कहिए आचार्यादिक तिनि तैं[1] प्रतिकूल है, बहुरि बहुमोहाः कहिए प्रचुर है मोह जिनिकै अैसे हैं। राग-द्वेषकरि पीडित हैं। बहुरि सशबलाः कहिए लेप सहित हैं, कुत्सित है आचरण जिनिका अैसे हैं। बहुरि कुशीलाः कहिए—कुत्सित है, शील कहिए—व्रत का रक्षण जिनिके अैसे भए संते, असमाधि कहिए मिथ्यात्व सहित आर्त, रौद्र, परिणाम ताकरि मरण करै है, ते जीव अनंत-संसाराः कहिए अर्द्धपुद्गल-परिवर्तन-प्रमाण दीर्घ है संसार जिनिकैं अैसे होय हैं ।। ३५ ।।

आगे अल्प है संसार जिनिकैं अैसे जीव कैसे होय है—

अर्थ—जे पुरुष जिनवचन कहिए अर्हंत भाषित प्रवचन ताकै विषैं अनुरक्त हैं, भले प्रकार भक्त हैं। बहुरि गुरुवचन

१. ब प्रति में 'तिनिकैः' पाठ है।

ये कुर्वंति, **भावेण**—भावेन भक्त्या मंत्रतंत्रशास्त्रानाकांक्षया । **असबल**—अशवला मिथ्यात्वरहिताः । **असंकिलिट्ठा**—असंक्लिष्टाः शुद्धपरिणामाः । **ते होंति**—ते भवंति । **परित्तसंसारा**—परीतः परित्यक्त; परिमितो वा संसारः चतुर्गतिगमनं येषां यैर्वा ते परीतसंसाराः परित्यक्तसंसृतयो वा । जिनप्रवचने येऽनुरक्ताः गुरुवचनं च भावेन कुर्वन्ति, अशबलाः, असंक्लिष्टाः सन्तस्ते परित्यक्तसंसारा भवन्तीति ।

यदि जिनवचनेऽनुरागो न स्यादतः किं स्यादतः प्राह—

बालमरणाणि बहुसो बहुयाणि अकामयाणि मरणाणि ।
मरिहंति ते वराया जे जिणवयणं ण जाणंति ।। ३७ ।।

बालमरणाणि—बालानामतत्त्वरुचीनां मरणानि शरीरत्यागा बालमरणानि । **बहुसो**—बहुशः बहूनि बहुप्रकाराणि वा । **बहुआणि**—बहुकानि प्रचुराणि । **अकामयाणि**—अकामकृतानि अनभिप्रेतानि । **मरणाणि**—मृत्यून् । **मरिहंति**—मरिष्यन्ति मृत्युं प्राप्स्यन्तीत्यर्थः । **ते वराया**—त एवंभूता वराका अनाथाः । **जे जिणवयणं**—ये जिनवचनं सर्वज्ञागमं । **ण जाणंति**—न जानन्ति नावबुध्यंते । ये जिनवचनं न जानन्ति ते वराका बालमरणानि बहुप्रकाराणि अकामकृतानि च बहूनि मरणानि प्राप्स्यन्तीति ।

अथ कानि तानि बालमरणानीत्यत आह—

सत्थग्गहणं विसभक्खणं च जलणं जलप्पवेसो य ।
अणयारभंडसेवी जम्मणमरणाणुबंधीणि ।। ३८ ।।

सत्थग्गहणं—शस्त्रेणात्मनो ग्रहणं मारणं शस्त्रग्रहणं । शस्त्रग्रहणादुत्पन्नं मरणमपि शस्त्रग्रहणकार्ये कारणोपचारात् । **विसभक्खणं**—

आचार्यादिकनि की आज्ञा ताहि भाव कहिए, भक्तिकरि करैं हैं, केवल मंत्र, तंत्र, शास्त्र—पठन की आकांक्षा ही कदि[1] नांही करै है । बहुरि अशवलाः कहिए—मिथ्यात्वकरि रहित हैं । बहुरि असंक्लिष्टाः कहिए—संक्लेश रहित शुद्ध है परिणाम जिनिका अैसें हैं ते जीव परीत-संसाराः कहिए—छोड्या है संसार चतुर्गतिगमन जिनिनैं । अथवा परीत कहिए—परिमित परिमाण रूप अल्प है संसार जिनिकै अैसे होय हैं ।। ३६ ।।

आगैं पूछैं है कि जिनवचन विषै अनुराग न होय तौ कहा होय ? अैसें पूछै संतै आचार्य कहै है—

अर्थ—जे जीव जिनवचन कहिये-सर्वज्ञ का आगम ताहि नांही जानैं है, ते जीव वराक कहिए अनाथ, बहुत प्रकार बालमरण कहिए मिथ्यादृष्टि, अज्ञानीनिका शरीर-त्यागरूप कुमरण करि मरण करै हैं । बहुरि अकामकृत कहिए अभिप्राय रहित अनेक प्रकार मरण पावै हैं ।। ३७ ।।

आगैं कहैं हैं ते बालमरण कैसे होय है ? सो कहे हैं—

अर्थ—शस्त्र कहिए—खड्गादिक ताकरि कैं आप (स्वयं) का ग्रहण कहिए मारणां, घात-करणां सो शस्त्रग्रहण (स्वयं

१. अ, ब, प्रति में करि'

विषस्य मारणात्मकद्रव्यस्य भक्षणमुपयुंजनं विषभक्षणं तथैव सम्बन्धः कर्तव्यः। **च**—समुच्चयार्थः। **जलणं**—ज्वलनादग्नेरुत्पन्नं ज्वलनं। **जलप्पवेसो य**—जले पानीये प्रवेशो निमज्जनं निरुच्छ्वासं जलप्रवेशश्च तस्माज्जातं स एव वा मरणं। **अणयारभण्डसेवी**—अनाचारभांडसेवी न[1] आचारोऽनाचारः पापक्रिया स एव भांडं द्रव्यं तत्सेवत इत्यनाचारभांडसेवी मरणेन सम्बन्धः। अथवा पुरुषेण सम्बन्धः अनाचारभांडसेवी तस्य। **जम्मणमरणाणुबंधीणि**—जन्म उत्पत्तिः, मरणं मृत्युस्तयोरनुबन्धः सन्तानः स येषां विद्यते तानि जन्ममरणानुबन्धीनि संसारकारणानीत्यर्थः। एतानि मरणानि जन्ममरणानुबन्धीनि अनाचारभांडसेवीनि यतोऽतो बालमरणानीति। अथवा अनाचारसेवीनि एतानि मरणानि संसारकारणानीति न सदाचारस्य।

एवं श्रुत्वा क्षपकः संवेगसिर्वेदपरायण एवं चिन्तयति—

उड्ढमधो तिरियह्मि दु कदाणि[1] बालमरणाणि बहुगाणि।
दंसणणाणसहगदो पंडियमरणं अणुमरिस्से ॥ ३९ ॥

उड्ढं—ऊर्ध्वं ऊर्ध्वलोके। **अधो**—अधसि अधोलोके नरकभवनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पे। **तिरियंहि दु**—तिर्यक्षु च एकेन्द्रियादिपंचेन्द्रिय-पर्यन्तजातिषु। **कदाणि**—कृतानि प्राप्तानि बालमरणानि। **बहुगाणि**—बहूनि। **दंसणणाणसह**—दर्शनज्ञानाभ्यां साधं, **गदो**—गतः प्राप्तः, **पंडियमरणं**—पण्डितमरणं शुद्धपरिणामचारित्रपूर्वकप्राणत्यागं। **अणुमरिस्से**—अनुमरिष्यामि संन्यासं करिष्यामि। ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्षु च बहूनि बाल-मरणानि यतो मया प्राप्तानि, अतो दर्शनज्ञानाभ्यां साधं पण्डितमरणं गतोऽहं मरिष्यामीति।

शस्त्रसे आत्मघात) कहिए तथा शस्त्रग्रहण सूं हूवा जो मरण सो भी शस्त्रग्रहण कहिए। इहाँ कार्य कै विषैं कारण का उपचार जाननां। इहां शस्त्र ग्रहण मरण का कारण है, मरण का कार्य है, मरण कूं शस्त्र ग्रहण कह्या सो कार्य विषैं कारण का उपचार कह्या। बहुरि विष कहिए—मरण का कारण वस्तु, ताका भक्षण सो विषभक्षण कहिए। विषभक्षणतैं हुवा मरण सोहू विषभक्षण कहिए। बहुरि ज्वलन कहिए अग्नि तातैं हुवा मरण सो भी ज्वलन कहिए। बहुरि जल-प्रवेश कहिए नदी, कुवा, बावड़ी आदि विषैं डूबना, जल विषैं उच्छ्वास रोकि करि मरण करना सो जल प्रवेश कहिए। बहुरि अनाचार कहिए पापक्रिया, सो ही भया भांड कहिए द्रव्य-वस्तु ताकूं सेवै सो अनाचार-भांड-सेवी कहिए। अैसे जे ये अपघातादिक रूप मरण ते आगामी जन्ममरण का संतान रूप दीर्घसंसार के कारण जानें। ए मरण समीचीन आचरण का पालनैं बाला जो साधु ताके अैसे मरण नाँही होय हैं ॥३८॥

आगैं अैसे मरण के भेद सुनि क्षपक—जो सन्यास करनैं वाला है सो संवेग, निर्वेद कै विषैं तत्पर होय अैसा चिंतवे है—

अर्थ—उर्ध्वलोक विषैं तथा अधोलोक विषैं, नरक विलनि[2] विषैं तथा व्यतंरनिके आवास विषैं तथा ज्योतिषीनिकैं बिंबनि विषैं तथा कल्पवासीनि कैं विमाननि विषैं, बहुरि तिर्यंचलोक विषैं एकैंद्रिय कूं आदि दे पंचैंद्रिय पर्यंत जीवनि की योनि विषैं मैंने बालमरण बहुत किये। अव दर्शन, ज्ञान, सहित हुवा संता पंडितमरण कहियै शुद्ध परिणाम चारित्रपूर्वक सन्यास करि प्राण-त्याग करूंगा ॥ ३९ ॥

१. अ, ब प्रति में "मदाणि"। २. ब प्रति में "विलासिनी"।

एतानि चाकामकृतानि मरणानि स्मरन् पण्डितमरणमनुमरिष्यामीत्यत आह—

उव्वेयमरणं जादीमरणं णिरएसु वेदणाओ य।
एदाणि संभरंतो पंडियमरणं अणुमरिस्से ।। ४० ।।

उव्वेयमरणं—उद्वेगमरणं इष्टवियोगानिष्टसंयोगाभ्यां त्रासेन वा मरणं। **जादीमरणं**—जातिमरणं उत्पन्नमात्रस्य मृत्युर्गर्भस्थस्य वा। **णिरएसु**—नरकेषु। **वेदणाओ य**—वेदनाश्च पीडाश्च। **एदाणि**—एतानि। **संभरंतो**—संस्मरन्। **पंडिदमरणं**—पण्डितमरणं। **अणुमरिस्से**—अनुमरिष्यामि प्राणत्यागं करिष्यामि। एतानि उद्वेगजातिमरणानि नरकेषु वेदनाश्च संस्मरन् पण्डितमरणं प्राप्तः सन् प्राणत्यागं करिष्यामि।

किमर्थं पंडितमरणं मरणेषु शुभतमं यतः—

***एक्कं पंडिदमरणं छिंददि जादीसयाणि[1] बहुगाणि।**
तं मरणं मरिदव्वं जेण मदं सुम्मदं होदि ।। ४१ ।।

एक्कं—एकं। **पंडिदमरणं**—पंडितमरणं। **छिंददि**—छिनत्ति। **जादीसयाणि**—जातिशतानि। **बहुगाणि**—बहूनि। **तं**—तत् तेन वा। **मरणं**—शरीरेन्द्रिययोर्वियोगः। **मरिदव्वं**—मर्तव्यं मरणं प्राप्तव्यं। **जेण**—येन। **मदं**—मृतं। **सुम्मदं**—सुष्ठुमृतं। **होदि**—भवति। एकं पण्डितमरणं जातिशतानि बहूनि छिनत्ति यतोऽतस्तेन मरणेन मर्तव्यं येन पुनरुत्पत्तिर्न भवति तद्वानुष्ठातव्यं येन न पुनर्जन्म। किमुक्तं भवति—पंडितमरणमनुष्ठेयमिति ।। ४१ ।।

यदि संन्यासे पीडा-क्षुधादिकोत्पद्यते ततः किं कर्तव्यमित्याह—

जइ उप्पज्जइ दुक्खं तो दट्ठव्वो सभावदो णिरये।
कदमं मए ण पत्तं संसारे संसरंतेण ।। ४२ ।।

आगैं क्षपक कहैं हैं जे अकामकृत मरण है तिनिकूं स्मरण करता संता पंडितमरण करि प्राणत्याग करूंगा—

अर्थ—उद्वेग मरण कहिए इष्ट के वियोग तैं तथा अनिष्ट के संयोग तैं तथा कोई भयतै हुवा मरण, बहुरि जाति मरण कहिए उत्पन्न भया बालक का मरण तथा गर्भ मैं तिष्ठता बालक का मरण—इनिकौं स्मरण करता संता बहुरि नरक कै विषै जे तीव्र वेदना है तिनिकूं स्मरण करता संता पंडितमरण करि प्राणत्याग करूंगा ।। ४० ।।

आगैं इहां कोई पूछै जो मरण के भेदनि विषैं पंडितमरण अतिशय करि शुभ कैसे कह्या है ? ताका उत्तर कहै हैं—

अर्थ—जातैं एकहू पंडितमरण है सो बहुत जन्म के सैकडनिकूं छेदै है। तातैं तिह पंडितमरण हो करि शरीर इंद्रिय का वियोग करणां जाकरि मरणहू प्रशंसा योग्य मरण होय ।। ४१ ।।

भावार्थ—मरण हू अैसा करिए जाकरि बहुरि जन्म धारण न होय तातैं पंडितमरण का अनुष्ठान करना।

आगैं कहै हैं जो सन्यास विषैं पीड़ा, क्षुधादिक दुख[2] उपजै हैं तहां कहां करिए ? अैसा प्रश्न होय तैं कहैं हैं—

---

* यह गाथा फलटन से प्रकाशित प्रति में नहीं है।

१. अ, ब प्रति में 'जादीसदायाणि' पाठ है।

२. ब प्रति में 'दुख' शब्द नहीं।

जइ—यदि । **उप्पज्जइ**—उत्पद्यते । **दुक्खं**—दुःखमसातं । **तो**—ततः । **दट्ठव्वो**—द्रष्टव्यो मनसा[1]लोकनीयः । **सभावदो**—स्वभावतः स्वरूपं "दृश्यतेऽन्यत्रापि" इति तस्, प्राकृतबलादक्षराधिक्यं वा । **णिरए**—नरकस्य नरके वा । **कदमं**—कियदिदं कतमत् । **मए**—मया । **ण पत्तं**—न प्राप्तं । अथवा, अणं ऋणं कृतं मया यत्तन्मयैव[2] प्राप्तं । **संसारे**—जातिजरारमणलक्षणे । **संसरंतेण**—संसरता परिभ्रमता । संन्यासकाले यदुत्पद्यते क्षुधादि दुःखं ततो नरकस्य स्वभावो द्रष्टव्यो यतः संसारे संसरता मया किमिदं न प्राप्तं यावता हि प्राप्तमेवेति चिन्तनीयमिति ॥ ४२ ॥

यथा प्राप्तं तथैव प्रतिपादयति—

संसारचक्कवालम्मि मए सव्वेवि पुग्गला बहुसो ।
आहारिदा य[3] परिणामिदा य ण य मे गदा तित्ती ॥ ४३ ॥

संसारचक्कवालम्मि—संसारचक्रवाले चतुर्गतिजन्मजरामरणावर्ते । **मए**—मया । **सव्वेवि**—सर्वेऽपि । **पुग्गला**—पुद्गला दधिखंड-गुडौदननीरादिका । **बहुसो**—बहुशः बहुवारान् अनन्तवारान् । **आहारिदा य**—आहृता गृहीता भक्षिताश्च । **परिणामिदा य**—परिणामिताश्च जीर्णाश्च खलरसस्वरूपेण गमिता इत्यर्थः । **ण य मे**—न च मम । **गदातित्ती**—गता तृप्तिः सन्तोषो न जातः, प्रत्युत आकांक्षा जाता । संसार-चक्रवाले सर्वेऽपि पुद्गला बहुशः आहृताः परिणामिताश्च मया न च मम गता तृप्तिरिति चिन्तनीयम् ।

कथं न गता तृप्तिर्यथा—

[4]तिणकट्ठेण व अग्गी लवणसमुद्दो णदीसहस्सेहिं ।
ण इमो जीवो सक्को तिप्पेदुं कामभोगेहिं ॥ ४४ ॥

तिणकट्ठेण व—तृणकाष्ठैरिव । **अग्गी**—अग्निः । **लवणसमुद्दो**—लवणसमुद्रः । **णदीसहस्सेहिं**—नदीसहस्रैश्चतुर्दशभिः सहस्रैर्द्विगुण-

---

अर्थ—जो सन्यास कैं विषैं क्षुधादिक दुःख उपजै तो नरक का स्वरूप चितवन करनां, जन्म, जरा, मरणरूप जो संसार ता विषैं भ्रमण करता जो मैं, तानैं अैसे दुख कौन से न पाए ? अैसें दुख तौ बहु पाये हैं—अैसा चितवन करनां ॥ ४२ ॥

आगै संसार विषै कैसे-कैसे दुख पाये—तिनिका प्रतिपादन करै हैं—

अर्थ—संसार चक्रवाल कहिए चतुर्गति जन्म-जरा मरण रूप आवर्त भवन[5], ता विषैं, मया कहिए मैंने सर्व पुद्गल दही, खांड, गुड़, उर्दन (आदेन-भात) जल इत्यादिक बहुतवार, अनंतवार ग्रहण कीए, भक्षण कीए, परिणमाए अर्थात् जीर्ण कीए, खल, रस स्वरूप करिकैं निर्जीण कीए तथापि मैरें तृप्ति नांही भई, संतोष नांहीं आया, अधिक-अधिक, आकांक्षा ही भई-अैसा चितवन करनां ॥ ४३ ॥

आगैं कहैं कौन दृष्टांतकरि तृप्ति नांही भई—

अर्थ—जैसे तृण-काष्ठ करि अग्नि तप्ति करनैं कौं शक्य[6] नांही, बहुरि जैसे लवण समुद्र हजारां नदीनिकरि तृप्त करनैं

---

१. क सहसा । २. क यत्तन्नैवं । ३. अ प्रति में आहारेदाय, ब प्रति में 'आहारदाय' पाठ है । ४. अ, ब प्रति में 'तण' । ५. भंवर ।
६. ब प्रति में शक्य, अ में साका है ।

द्विगुणैर्नदीनां समन्विताभिर्गंगासिंध्वादिचतुर्दशनदीभिः सागरो न पूर्णः । **ण इमो जीवो**—नायं जीवः । **सक्को**—शक्यः । **तिप्पेदुं**—तृप्तुं प्रीणयितुं । **कामभोगेहिं**—कामभोगैः, ईप्सितसुखाङ्गैराहारस्त्रीवस्त्रादिभिः । यथा अग्निः तृणकाष्ठैः, लवणसमुद्रश्च नदीसहस्रैः प्रीणयितुं न शक्यः तथा जीवोऽपि कामभोगैरिति ।। ४४ ।।

किं परिणाममात्राद्बन्धो भवति ? भवतीत्याह—

कंखिदकलुसिदभूदो कामभोगेसु मुच्छिदो संतो ।
अभुंजंतोवि य भोगे परिणामेण णिवज्झेइ[1] ।। ४५ ।।

णिबंधदि इति वा पाठान्तरम् । **कंखिद**—कांक्षितः कांक्षास्य संजाता ता करोतीति वा कांक्षितः । **कलुसिद**—कलुषितः रागद्वेषाद्युपहतः । **भूदो**—भूतः सन् । **कामभोगेसु**—कामभोगेषु । **मुच्छिदो**—मूर्च्छितः । **संतो**—सन् । **अभुंजंतो वि य**—अभुञ्जानोऽपि च असेवमानोऽपि च । **भोगे**—भोगान् सांसारिकसुखहेतून् । **परिणामेण**—परिणामेन चित्तव्यापारेण । **णिवज्झेइ**—निबध्यते कर्मणा परवशः क्रियते, कर्म वा वध्नाति । कामभोगेषु मूर्च्छितः सन् कांक्षितः कलुषीभूतश्च भोगानुभुंजानोऽपि जीवः परिणामेन कर्म बध्नाति बध्यते वा कर्मणेति ।। ४५ ।।

किमिच्छामात्रेणाभुंजानस्यापि पापं भवतीत्याह—

आहारणिमित्तं किर मच्छा गच्छंति सत्तमिं पुढविं ।
सच्चित्तो आहारो ण कप्पदि मणसावि पत्थेदुं ।। ४६ ।।

कौं शक्य नांही, तैसें वांछित सुख के कारण जै आहार, स्त्री वस्त्रादिक, काम, भोग तिनिकरि यह जोव तृप्त करनैं कौं, संतुष्ट करने को शक्य नांही ।। ४४ ।।

भावार्थ—जैसे अग्नि विषैं तृण, काष्ठ अनेक प्रकार नाषिए[2] तौ हूँ अग्नि तृप्ति नांही होय तथा लवण-समुद्र विषैं चउदह-चउदह हजार परिवार नदोनि करि सहित गंगा-सिन्धु नदी तथा द्विगुण-द्विगुण परिवार नदी सहित रोहितादि नदी निरंतर प्रवेश करैं हैं, तथापि पूर्णता नांही होय है, तैंसे यह जीव कामभोगनि करि तृप्त नांही होय है। ज्यों-यों कामभोग अधिक मिलै है, त्यों त्यों तृष्णा अधिक वधै (बढ़े) है।

आगे पूछै है कि परिणाम मात्र ही तैं बंध होय है कि नाही ? तहाँ कहे हैं— होय है[3]—

अर्थ—जाके कामभोग की आकांक्षा उत्पन्न भई, बहुरि रागद्वेषादिक कलुष भावनि करि पोड्या हुवा संता कामभोगनिकैं विषैं मूर्छित होय है, सो जोव संसार सुख का कारण जे भोग तिनिकूं न भोगता संता भो, परिणाम कहिए चित्त का व्यापार, ताही करि आप कर्मनितैं बंधैं है। परवश होय है, आप कर्मनिकौ बाधै है ।। ४५ ।।

आगै पूछैं है कि इच्छा मात्रकरिकै बिना भोग्या पाप होय है ? आचार्य कहै हैं, होय है—

---

१. अ, ब प्रतियों में "णिवज्जई" पाठ है। २. नाखिए = डालिए। ३. ब प्रति में 'होय है' यह पाठ नहीं है।

आहारणिमित्तं—आहारकारणात् । **किर**—किल आगमे कथितं नारुचिवचनमेतत् निश्चयवचनमेव । **मच्छा**—मत्स्याः । **गच्छंति**—यान्ति प्रविशन्ति । **सत्तमिं**—सप्तमीं । **पुढविं**—पृथिवीं अवधिस्थानं । **सच्चित्तो**—सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः सावद्योऽयोग्यः प्राणिघातादुत्पन्नः । **आहारो**—भोजनं । **ण कप्पदि**—न कल्पते न योग्यो भवति । **मणसावि**—मनसापि चित्तव्यापारेणापि । **पत्थेदुं**—प्रार्थयितुं याचयितुं । आहारनिमित्तं मत्स्याः शालिसिक्थादयो निश्चयेन सप्तमीं पृथिवीं गच्छंति यतोऽतो मनसापि प्रार्थयितुं सावद्याहारो न कल्पते इति ॥ ४६ ॥

यतो मनसापि सावद्याहारो न योग्योऽतो भवान् शुद्ध-परिणामं कुर्यादित्याचार्यः प्राह—

पुव्वं कदपरियम्मो[1] अणिदाणो ईहिदूण मदिबुद्धी ।
पच्छा मलिदकसाओ[2] सज्जो मरणं पडिच्छाहि ॥ ४७ ॥

पुव्वं कदपरियम्मो—पूर्वं प्रथमतरं कृतमनुष्ठितं परिकर्म तपोऽनुष्ठानं येनासौ पूर्वकृतपरिकर्मा आदावनुष्ठिततपश्चरणः । **अणिदाणो**—अनिदान इहलोकपरलोकसुखानाकांक्षः । **ईहिदूण**—ईहित्वा चेष्टित्वा उद्योगं कृत्वा । **मदिबुद्धी**—मतिबुद्धिभ्यां प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परोक्षप्रत्यक्षसम्पन्नः । **पच्छा**—पश्चात् । **मलियकसाओ**—मथितकषायः क्षमासम्पन्नः । **सज्जो**—सद्यः तत्परः कृतकृत्यो वा । **मरणं**—समाधिमृत्युं स्वाध्यायमरणं वा । **पडिच्छाहि**—प्रतीच्छानुतिष्ठ । विपरिणामान्नरकं गम्यते यतोऽतः प्रत्यक्षपरोक्षप्रमाणाभ्यामागमे निश्चयं कृत्वा पूर्वकृतपरिकर्मानिदानश्च सन् मथितकषायश्च सन् सद्यः मरणं प्रतीच्छेति ॥ ४७ ॥

अर्थ—किल कहिये आगम मैं ऐसा कह्या है—यह अरुचि वचन जो अप्रतीति[3] नांही है. निश्चय वचन ही है। जो आहार के कारण तैं तंदुलमच्छ है, ते सातवाँ नरक, जो अवधि स्थान, तहां जाये है। तातैं सचित्त सावद्य योगरूप जोव घाततैं उत्पन्न भया आहार मनसा कहिये चित्त व्यापारकरि भो, सो आहार याचनैं योग्य नांही ॥ ४६ ॥

भावार्थ—तंदुलमच्छ कै बाह्य-परिग्रह तो और कछु है नांही, आहार के कारणतैं मन का दोषकरि सातवां नरक-पर्यंत जाय है।

आगैं आचार्य क्षपककूं कहै है जो सावद्य-आहार का मनहू-करि विकल्प करणां योग्य नांही यातैं तोकं शुद्ध परिणाम करनां योग्य है—

अर्थ—हे क्षपक ! पूर्वं कहिए प्रथम हो, कृत कहिए कोया है, परिकर्म्म कहिए तपश्चरण जानैं ऐसा, बहुरि अनिदान कहिए इहलोक-परलोक सम्बन्धो सुख को आकांक्षा करि रहित हुवा ऐसा, जो तू सो, मति बुद्धि कहिए प्रत्यक्ष-परोक्षरूप ज्ञान तथा प्रत्यक्ष-अनुमानरूप ज्ञान ताकरि, उद्यम चेष्टाकरि, आगम का निश्चयकरि, पीछै मलिनकषाय कहिए तजैं हैं कषाय जानैं ऐसा क्षमा संयुक्त होय, तल्लोन होय, कृतकृत्य होय, समाधिमरण, स्वाध्याय सहित मरण है, ताहि अनुष्ठान जो आचरण ताहि करि विपरीत परिणाम करैं है, ते नरक जाय हैं। तातैं तोकूं शुद्ध परिणाम करनां ॥ ४७ ॥

१. ब प्रति में 'कद्द परियम्मो' पाठ है। २. अ, ब प्रतियों में 'कसाऊ' पाठ है।
३. अ प्रति में 'अप्रीति' पाठ है, इसका तात्पर्य है—'अश्रद्धा रूप कथन'।

१०

पुनरपि शिक्षां ददाति—

हंदि चिरभाविदावि य जे पुरुसा मरणदेसयालम्मि ।

पुव्वकदकम्मगरुयत्तणेण पच्छा परिवडंति ।। ४८ ।।

हंदि—जानीहि—सामान्यमरणं वा । **चिरभाविदावि य**—चिरभाविता अपि देशोनपूर्वकोटी कृताचरणा अपि । **जे**—यस्त्वं वा पुरुषैः सह सम्बन्धाभावात् । **पुरिसा**—पुरुषा मनुष्याः । **मरणदेसयालम्मि**—मरणकाले मरणदेशे वा अथवा मरणकाल एवानेनाभिधीयते । **पुव्वकदकम्मगरुयत्तणेण**—पूर्वस्मिन् कृतं कर्म पूर्वकृतकर्म तेन गुरुकं तस्य भावः पूर्वकृतकर्मगुरुकत्वं तेनान्यस्मिन्नर्जितपापकर्मणा । **पच्छा**—पश्चात् । **परिवडंति**—प्रतिपतन्ति रत्नत्रयात् पृथग्भवन्ति यतः ।। ४८ ।।

तह्मा चंदयवेज्झस्स कारणेण उज्जदेण पुरिसेण ।

जीवो अविरहिदगुणो कादव्वो मोक्खमग्गम्मि ।। ४९ ।।

तम्हा—तस्मात् । **चंदयवेज्झस्स**—चंद्रकवेध्यस्य । **कारणेन**—निमित्तेन । **उज्जदेण**—उद्यतेन उपर्युक्तेन । **पुरिसेण**—पुरुषेण । **जीवो**—जीवः आत्मा । **अविरहिदगुणो**—अविरहितगुणोऽविराधितपरिणामः । **कादव्वो**—कर्तव्यः । **मोक्खमग्गम्मि**—मोक्षमार्गे सम्यक्त्वज्ञानचारित्रेषु । यतश्चिरभाविता अपि पुरुषा मरणदेशकाले पूर्वकृतकर्मगुरुकत्वेन पश्चात् प्रतिपतन्ति तस्मात् यथा चन्द्रकवेध्यनिमित्तं जीवोऽविरहितगुणः क्रियते तथोद्यतेन पुरुषेणात्मा मोक्षमार्गे कर्तव्यं इत्येव जानाहि निश्चयं कुर्विति ।। ४९ ।।

चन्द्रकवेध्यनिमित्तं जीवेऽविरहितगुणे कृते किंकृतं तेन चन्द्रकवेध्यस्य कर्ताहं—

कणयलदा णागलदा विज्जुलदा तहेव कुंदलदा ।

एदा विय तेण हदा मिथिलाणयरिए महिंदयत्तेण ।। ५० ।।

सायरगो बल्लहगो कुलदत्तो वड्ढमाणगो चेव ।

दिवसेणिक्केण हदा मिहिलाए महिंददत्तेण ।। ५१ ।।

आगैं आचार्य बहुरि क्षपक कूं शिक्षा दे है—

अर्थ—हे क्षपक ! तू अैसा जांनि—जे पुरुष देशोनकोडि काल (कुछ कम एक कोटि वर्ष पूर्व) पर्यंत तपश्चरण करै हैं, चिरकाल भावनां भावै है, ते हूँ पूर्वै कीया जो पाप कर्म, ताका भार तैं मरण सम्बन्धी देश-काल विषैं पाछै पडै हैं। रत्नत्रयतैं रहित होय है, तातैं तूं सावधान होहु ।। ४८ ।। आगैं बहुरि शिक्षा दे हैं—

अर्थ—हे क्षपक ! जैसे चंद्रकबेध्य के निमित्त उद्यमी हुवा पुरुष नांही विरध्या हैं, अपनां गुण जानैं अैसा सावधान होय हैं तैसैं मोक्षमार्ग जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र ता विषैं उद्यमी हुवा जो पुरुष सो अपनां गुण नांही विराधै हैं, अैसा निश्चय करि बहुरि चंद्रकबेध्य निमित्त जोवनि उद्यमी कीये तिस चन्द्रकवेध्य का कर्ता कहा कीया सो कहैं हैं ।। ४९ ।।

मिथिलानगर्यां महेन्द्रदत्तेन एताः कनकलतानागलताविद्युल्लतास्तथा कुन्दलता चैकहेलया हताः । तथा तस्यां नगर्यां तेनैव महेन्द्रदत्तेन सागरक-वल्लभक-कुलदत्तक-वर्धमानका हतास्तस्मात् यतिना समाधिमरणे यत्नः कर्तव्यः । कथानिका चात्र व्याख्येया आगमोपदेशात् यत्नाभावे पुनर्यथा एतल्लोकानां भवति तथा यतीनामपि ॥ ५०–५१ ॥

कि[1] तत् ! इत्याह—

जहणिज्जावयरहिया णावाओ[2] वररदण[3]सुपुण्णाओ ।

पट्टणमासण्णाओ खु पमादमूला णिबुड्डंति ॥ ५२ ॥

जह—यथा । **णिज्जावयरहिया**—निर्यापकरहिताः कर्णधारविरहिताः । **णावाओ**—नावः पोतादिकाः । **वररदणसुपुण्णाओ**—श्रेष्ठरत्नसुपूर्णाः । **पट्ठणमासण्णाओ**—पत्तनमासन्ना वेलाकूलसमीपं प्राप्ताः । **खु**—स्फुटं । **पमादमूला**—प्रमादः शैथिल्यं मूलं कारणं यासां ताः प्रमादमूलाः । **णिवुड्डंति**—निमज्जन्ति विनाशमुपयांति । यथा नावः पत्तनमासन्नाः कर्णधाररहिताः वररत्नसम्पूर्णाः, प्रमादकारणात् सागरे निमज्जन्ति तथा क्षपकनावः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररत्नसम्पूर्णाः सिद्धिसमीपीभूतसन्यासपत्तनमासन्ना निर्यापकाचार्यरहिता प्रमादनिमित्तात् संसारसागरे निमज्जन्ति तस्माद्यत्नः कर्तव्य इति ॥ ५२ ॥

कथं यत्नः क्रियते यावता हि तस्मिन् कालेऽभ्रावकाशादिकं न कर्तुं शक्यते इत्याह—

बाहिरजोगविरहिओ[4] अब्भंतरजोगझाणमालीणो[5] ।

जह तम्हि देसयाले अमूढसण्णो जहसु देहं ॥ ५३ ॥

अर्थ—हे क्षपक ! जातैं महेन्द्रदत्तनैं मिथिला नगरो विषैं कनकलता, नागलता तथा विद्युल्लता, कुन्दलता—ये एक हेलाकरि हती (मार दिया) तथा तिसहो मिथुलानगरी विषैं तिसहो महेन्द्रदत्तनैं सागरक, बल्लभक, कुलदत्तक, वर्द्धमानक—एक ही दिवसकरि हते (मार डाले) ॥५०-५१॥ इनकी कथा आगमके उपदेशतैं जाननी । तातै यती कौं समाधिमरण विषै यत्न करनां, यत्न किये बिना जैसैं लौकिक-कार्य[6] बिगरैं तैसें यतीनि कै परमार्थ बिगरै, सो ही कहै हैं—

अर्थ—हे क्षपक ! जैसें श्रेष्ठ रत्ननिकरि भरी हुई समुद्र के तट, नगर समोप प्राप्त भई जिहाज (जहाज) प्रमाद के कारणतैं निर्यापक जे खेवटिया तिनितैं रहित समुद्र विषैं डूबें हैं, तैसें सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्र रत्ननिकरि परिपूर्ण सिद्धि कै समीपभूत सन्यासरूपी नगर ताकै निकट प्राप्त हुई जे क्षपक रूप जिहाज प्रमाद के वसतैं निर्यापक—जे सन्यास के साधक आचार्य, तिनितैं रहित भई, संसार-समुद्र विषै डूबै हैं । तातैं यत्न करनां ॥ ५२ ॥

इहां कोउ पूछै—यत्न कैसे करिए ? तिस काल विषै अभ्रावकाशादिक योग करनैं को तौ योग्यता है नांही, ताकूं कहे हैं—

१. क, किं तथा । २. ब प्रति में 'णिवाउ' । ३. क, 'णयु' ।
४. अ, ब प्रति में 'विरहिदो' । ५. अ, ब 'मल्लीणो' । ६. ब प्रति में 'लौकिक कनकैं व लौकिक कार्य'' पाठ है ।

बाहिरजोगविरहिदो—बाह्याश्च ते योगाश्च बाह्ययोगा अभ्रावकाशादयस्तै विरहितो हीनो बाह्ययोगविरहितः। **अब्भंतरजोगझाणमालीणो**—अभ्यन्तरयोगं अन्तरंगपरिणामं ध्यानं एकाग्रचिन्तानिरोधनं आलीनः प्रविष्टः। **जह**—यथा। **तम्हि**—तस्मिन्। **देसयाले**—देशकाले सन्यासकाले। **अमूढसण्णो**—अमूढसंज्ञः आहारादिसंज्ञारहितः। **जहसु**—जहीहि त्यज। **देहं**—शरीरं। बाह्ययोगविरहितोऽपि, अभ्यन्तरध्यानयोगप्रविष्टः सन् तस्मिन् देशकाले अमूढसंज्ञो यथा भवति तथा शरीरं जहीहि ॥ ५३ ॥

अमूढसंज्ञके शरीरत्यागे सति किं स्यात्! इत्यतः प्राह—

हंतूण रागदोसे छेत्तूण य अट्ठकम्मसंखलियं[1] ।
जम्मणमरणरहट्टं भेत्तूण भवाहि मुच्चिहसि[2] ॥ ५४ ॥

हंतूण—हत्वा। **रागदोसे**—रागद्वेषौ अनुरागाप्रीति। **छेत्तूण य**—छित्त्वा च। **अट्ठकम्मसंखलियं**—अष्टकर्मश्रृंखलाः। **जम्मणमरणरहट्टं**—जन्ममरणारहट्टं जातिमृत्युघटीयंत्रं। **भेत्तूण**—भित्वा। **भवाहि**—भवेभ्यो भवैर्वा। **मुच्चिहिसि**—मोक्ष्यसे मुञ्चसि वा। रागद्वेषौ हत्वा, अष्टकर्म श्रृंखलाश्च छित्वा जन्ममरणारहट्टं च भित्वा, भवेभ्यो मोक्ष्यसे इत्येतत्स्यादिति ॥ ५४ ॥

यद्येवं—

सव्वमिदं उवदेसं जिणदिट्ठं सद्दहामि तिविहेण[3] ।
तसथावरखेमकरं सारं णिव्वाणमग्गस्स ॥ ५५ ॥

सव्वमिदं—सर्वमिमं। **उवदेसं**—उपदेशमागमं। **जिणदिट्ठं**—जिनदृष्टं कथितं वा। **सद्दहामि**—श्रद्दधे, तस्मिन् रुचिं करोमीति। **तिविहेण**—त्रिविधेन। **तसथावरखेमकरं**—त्रसन्ति उद्विजन्तीति त्रसा द्वीन्द्रियादि[4]पंचेन्द्रियपर्यन्ताः। स्थानशीलाः स्थावराः पृथिवीकायिकादि-

---

अर्थ—हे क्षपक! बाह्य योग अभ्रावकाशादिक तिनिकरि रहित है, तौहू आभ्यंतर योग जो अंतरंग परिणाम विषै एकाग्र-चिन्ता का निरोध रूप ध्यान, तामैं लीन हुवा संता सन्यास के देश-काल विषैं अमूढ़संज्ञः कहिए—जैसे आहार, भय, मैथुन, परिग्रह—संज्ञा रहित भाव होय, तैंसे शरीर का त्याग करी ॥ ५३ ॥

आगैं अैसे शरीर के त्याग कीए संतैं कहा फल होय हैं? सो कहैं हैं।

अर्थ—रागद्वेष कहिए—प्रीति, अप्रीति तिनिकूं हणि करि आठ कर्म्मरूप जे सांकल तिनिकूं छेदिकरि जन्ममरण रूपी जो अर्हट घटीयंत्र, ताहि भेदकरि संसारतैं मुक्त होयगा, संसार कूं छोड़ेगा। इस सन्यास मरण का यह फल जानना ॥ ५४ ॥

आगैं अैसे आचार्यनिका उपदेश सुणि क्षपक विचारैं हैं—

अर्थ—क्षपक कहै हैं—जो सर्व यह उपदेश भगवान-भाषित आगम, ताहि श्रद्धान करूं हूं, रुचि करूं हूं। मन वचन, काय-करि प्रतीति करूं हूं। कैसा है यह आगम? त्रस कहिए—वेंद्रिय (द्वीन्द्रिय) आदि पंचेन्द्रिय पर्यंत जीव। बहुरि स्थावर कहिए—

१. अ, ब प्रति में 'संकलियं'। २. अ, ब प्रति में 'मुच्चिहिसि'। ३. अ, ब प्रति में तिविधेण। ४. क 'यादयः पं'।

वनस्पतिपर्यन्ताः । अथवा त्रसनामकर्मोदयात् त्रसाः स्थावरनामकर्मोदयात्स्थावराः तेषां क्षेमं दयां सुखं करोतीति त्रसस्थावरक्षेमकरस्तं सर्वजीवदयाप्रतिपादकं । **सारं**—प्रधानभूतं सारस्य कारणात्सारः । **णिव्वाणमग्गस्स**—निर्वाणमार्गस्य मोक्षवर्त्मनः । सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राणां तस्मिन् सति तेषां सद्भावान्निर्वाणमार्गस्य सारं त्रसस्थावरक्षेमकरं च सर्वमिममुपदेशं जिनदृष्टं त्रिविधेन श्रद्दधेऽहमिति ॥ ५५ ॥

तस्मिन् काले यथा द्वादशांगचतुर्दशपूर्वविषया श्रद्धा क्रियते तथा समस्तश्रुतविषया चिंता पाठश्च कर्तुं किं शक्यते ? इत्याह—

ण हि तम्हि देसयाले सक्को बारसविहो सुदक्खंधो ।
सव्वो अणुचिंतेदुं बलिणावि समत्थचित्तेण ॥ ५६ ॥

न—प्रतिषेधवचनं । **हि**—यस्मादर्थे । **तम्हि**—तस्मिन् । **देसयाले**—देशकाले । 'दिश् अतिसर्जने' दिश्यते अतिसृज्यते इति देशः शरीरं तस्य कालस्तस्मिन् शरीरपरित्यागकाले । **सक्को**—शक्यः । **बारसविहो**—द्वादशविधः द्वादशप्रकारः । **सुदक्खंधो**—श्रुतस्कन्धः श्रुतवृक्ष इत्यर्थः । **सव्वो**—सर्वं समस्तं । **अणुचिंतेदुं**—अनुचिन्तयितुं अर्थेन भावयितुं पठितुं च । **बलिणावि**—बलिनापि शरीरगतबलेनापि[1] । **समत्थचित्तेण**—समर्थचित्तेन एकचित्तेन यतिना । तस्मिन् देशकाले बलयुक्तेव समर्थचित्तेनापि द्वादशविधं श्रुतस्कन्धं न शक्यमनुचिन्तयितुम् ॥ ५६ ॥

यतस्ततः किं कर्तव्यं !

एक्कह्मि बिदियह्मि पदे संवेगो वीयरायमग्गम्मि ।
वच्चदि णरो अभिक्खं तं मरणंते ण मोत्तव्वं ॥ ५७ ॥

पृथ्वीकायिकादिक—वनस्पतिपर्यंत एकेन्द्रिय जीव । अथवा त्रस नामकर्म के उदय से भए तैं त्रस जीव तथा स्थावर नामकर्म के उदय तैं भए स्थावर जीव सर्व्व षट्कायिक जीवनिकैं क्षेम कहिए-कल्याण का करणहारा है । तथा सर्व्व जीवनि को दया का कारण है, तथा सर्व जीवनिकैं सुख का कारण है । बहुरि सर्व्ववस्तु में सारभूत जो निर्वाण मार्ग ताका यह कारण है । तातैं सारभूत हैं । याके सद्भाव के होतैं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप मोक्षमार्ग होय है, तातैं याका श्रद्धान ही सार है ॥ ५५ ॥

आगे कोउ पूछै हैं कि तिस काल विषें जैसें द्वादशांग, चतुर्दश-पूर्व का श्रद्धांन इहां करिए हैं तैंसे समस्त श्रुत का चिंतवन तथा पाठ हूं कीया जाय कि नाहीं ? तहां कहै हैं—

अर्थ—आचार्य कहै है—हे क्षपक ! तिहि देश-काल कहिए शरीर का परित्याग समय विषैं बारह प्रकार समस्त श्रुतस्कंध हैं, सो शरीर का बल सहित, बहुरि मन का बल सहित जे यती हैं तिनिकरि भी चिन्त्यवे शक्य नांही ।

भावार्थ—भावनां बनैं नांही, पढ़ना बनै नांही । इहां देश—'अैसा' शब्द दिश अति सर्जने धातु कै कर्म साधन प्रत्ययकरि कीया है सो जिसका परित्याग करिए तिसको देश कहिए । इहां शरीर का परित्याग करिए है, तातैं शरीरकूं देश कह्या है ॥।५६॥

आगै कहै हैं—जो अैसे हैं तौ कहा (क्या) करना ?

---

१. क, बलोपेतेनापि ।

एक्कह्मि—एकस्मिन् नमोऽर्हद्भ्यः इत्येतस्मिन् । **विदियह्मि**—द्वयोः पूरणं द्वितीयं नमः सिद्धेभ्य इत्येतस्मिन् । **संवेओ**—संवेगः धर्मे हर्षः । **पदे**—अर्थपदे ग्रन्थपदे प्रमाणपदे वा पंचनमस्कारपदे च । अथवा **एकम्हि बीजम्हि पदे**—एकस्मिन्नपि बीजपदे यस्मिन्निति पाठान्तरम् । **वीयरागमग्गम्मि**—वीतरागमार्गे सर्वज्ञप्रवचने । **वच्चदि**—व्रजति गच्छति प्रवर्तते । **णरो**—नरेण सर्वसंगपरित्यागिना । **अभिक्खं**—अभीक्ष्णं नैरन्तर्येण । **तं**—तत् । **मरणंते**—मरणान्ते कण्ठगतप्राणेऽन्त्यसमये वा । **ण मोत्तव्वं**—न मोक्तव्यं न परित्यजनीयं । एकपदे द्वितीयपदे वा पंचनमस्कारपदे वा वीतरागमार्गे यस्मिन् संवेगोऽभीक्ष्णं गच्छति तत्पदं मरणान्तेऽपि न मोक्तव्यं नरेण; नरो वा संवेगं यथा भवति तथा यस्मिन्पदे गच्छति प्रवर्तते तत्पदं तेन न मोक्तव्यमिति सम्बन्धः ।। ५७ ।।

किमिति कृत्वा तन्न मोक्तव्यं यतः—

एदह्मादो एक्कं हि सिलोगं मरणदेसयालह्मि ।
आराहणउवजुत्तो चिंतंतो आराधओ[1] होदि ।। ५८ ।।

एदह्मादो—एतस्मात् श्रुतस्कन्धात् पंचनमस्काराद्वा । **एक्कं हि**—एकं ह्यपि एकमपि तथ्यं । **सिलोगं**—श्लोकं । **मरणदेसयालम्हि**—मरणदेशकाले । **आराहणउवजुत्तो**—आराधनया[2] उपयुक्तः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रतपोनुष्ठानपरः । **चिंतंतो**—चिंतयन् । **आराधओ**—आराधकः रत्नत्रयस्वामी । **होइ**—भवति सम्पद्यते । एतस्मात् श्रुतात् पंचनमस्काराद्वा मरणदेशकाले एकमपि श्लोकं चिंतयन् आराधनोपयुक्तः सन् आराधको भवति यतस्ततस्त्वयेदं न मोक्तव्यमिति सम्बन्धः ।। ५८ ।।

अर्थ—आचार्य कहै हैं—हे क्षपक ! नमो अर्हद्भ्यः—ऐसा एक पद, बहुरि नमः सिद्धेभ्यः—ऐसा दूसरा पद अथवा पद तीन प्रकार—अर्थपद, ग्रंथपद, प्रमाणपद । तहां विभक्ति हैं अति मैं जाकैं ऐसा अभिधेय अर्थ का कहनैं वाला जो पद सो अर्थपद कहिए । ग्रंथ कहिए—द्वादशांग शास्त्र ताका जो पद सो ग्रंथपद कहिए । बहुरि अक्षर-मात्रा की संख्या-प्रमाण रूप काव्यादिक का पद सो प्रमाणपद कहिए । ऐसा पद तथा पंचनमस्कार पद अथवा 'एकम्हि बीजंतिन पदे'—ऐसा पाठान्तर है । याका अर्थ एक बीज पद ऐसा जातैं वीतरागमार्ग कहिए सर्वज्ञ का प्रवचन ताविषैं संवेग कहिए धर्म के विषैं हर्ष प्रवर्तैं ऐसो पद अभीक्ष्ण कहिए—निरन्तर मरणसमय कंठगत प्राण होतैं हूं नांही छोड़िए है ।। ५७ ।।

आगे कहैं हैं जो कौइ कारणकरि, सो पद नांहो छोड़िए है, सो कहै हैं-–

अर्थ—आचार्य कहै हैं—हे क्षपक ! या श्रुतस्कंधतैं अथवा पंचनमस्कार मंत्रतैं एक भो परमार्थभूत श्लोक मरण का देश-काल विषैं सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र, सम्यकतप—इनि च्यारु आराधना करि उपयुक्त हुवा संता चिंतवन करै है । "अनुभवै है, सो आराधक कहिए—रत्नत्रय का स्वामी होय है । यातैं तोकूं इस जिनवचन का आश्रय नांही छोड़नां"[3] ।। ५८ ।।

---

१. अ, ब प्रति में चिंतंतोराधओ । २. क 'नउ' । ३. इतना कथन अ प्रति में विशेष है जो ब प्रति में नहीं है ।

यदि पीडोत्पद्यते मरणकाले। किमौषधं ? इत्याह—

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं[1] अमिदभूदं।
जरमरण[2]वाहिवेयणखयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ ५९ ॥

जिणवयणं—जिनवचनं। **ओसहं**—औषधं रोगापहरं द्रव्यं। **इणं**—एतत्। **विसयसुहविरेयणं**—विषयेभ्यः सुखं विषयसुखं तस्य विरेचनं द्रावकं द्रव्यं विषयसुखविरेचनं। **अमिदभूदं**—अमृतभूतं। **जरमरणवाहिवेयण**—जरामरणव्याधिवेदनानां। बहुकालीना व्याधिः, आकस्मिका वेदना तयोर्भेदः। अथवा व्याधिभ्यो वेदना। **खयकरणं**—विनाशनिमित्तं। **सव्वदुक्खाणं**—सर्वदुःखानां। विषयसुखविरेचनं, अमृतभूतं चौषधमेतज्जिनवचनमिति सम्बन्धः ॥ ५९ ॥

किं तस्मिन्काले शरणं चेत्याह !

णाणं सरणं मे [3]दंसणं च सरणं चरियसरणं च।
तव संजमं[4] च सरणं भगवं सरणो महावीरो ॥ ६० ॥

णाणं—ज्ञानं यथावस्थितवस्तुपरिच्छेदः। **सरणं**—शरणं आश्रयः। मे—मम। **दंसणं**—दर्शनं प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तलक्षणपरिणामः। **सरणं**—शरणं संसाराद्रलणं। **चरियं**—चरित्रं ज्ञानवतः संसारकारणनिवृतिं प्रत्यागूर्णस्तोऽनुष्ठानं। **सरणं च**—सहायं च।

आगै कहें हैं—जो मरणकाल विषै पीड़ा उपजै तौं औषधि कहा ? ऐसा प्रश्न होतें कहैं हैं।

अर्थ—आचार्य कहै **हैं**—हे क्षपक ! इह जिनवचन हैं सो औषध हैं। कैसा है—इह जिनवचन रूप औषध ? विषयसुख कहिए—इंद्रियजनित सुख, ताका विरेचन कहिए द्रवीभूत करने वाला है, बहुरि अमृत स्वरूप हैं। बहुरि जरा-मरण-व्याधि वेदनां सर्व्वदुःख तिनिका क्षय करनैं वाला है। इहां बहुत काल के रोगादिक होय ते व्याधि कहिए हैं। बहुरि पहलें कारण दीखे बिना अकस्मात् पीडा होय आवै सो वेदनां कहिए। अथवा व्याधितैं भई जो वेदनां कहि सो व्याधि वेदना कहिए—ऐसा ही अर्थ जाननां।

भावार्थ—जैसैं औषध प्रथम शरीर का मल द्रवीभूतकरि सर्व दुःख वेदनां मिटाय रोगकूं तथा आकालमृत्यु कूं मेटै है, तैसे जिनवचन रूप औषध है सो विषय सुखकूं द्रवीभूतकरि सर्व जन्म-मरणादि दुःख मिटाय अजर अमर पदकूं प्राप्त करै हैं, तैसैं परमार्थभूत अमृत औषध इह ही है॥ ५९॥

आगैं तिसकाल विषै शरण कहा (कौन) है ? ऐसा प्रश्न होते कहैं हैं—

आचार्य कहै हैं—हे क्षपक ! तोकूं ऐसी भावना करनी योग्य है। मेरै यथार्थज्ञान है, सो ही शरण कहिए आश्रय हैं तथा प्रशम, संवेग, अनुकम्पा आस्तिक्य की प्रगटता सो है लक्षण जाका—ऐसा सम्यग्दर्शन है सो शरण है। संसारतैं रक्षा करणैं

---

१. अ प्रति में विबेयणं। २. अ, ब प्रतियों में 'जरामरण'। ३. क 'णं सरणं चरियं च सरणं च। तव संजमो य स'।
४. अ, ब प्रति में 'संजमो'।

सुखावबोधार्थं पुनः पुनः शरणग्रहणं । **तवं**—तपति दहति शरीरेन्द्रियाणि तपो द्वादशप्रकारं । **संजमं**—संयमः प्राणेन्द्रियसंयमनं । [**सरणं**]—शरणं । **भगवं** भगवान् ज्ञानसुखवान् । **सरणो**—शरणः । **महावीरो**—वर्धमानस्वामी । ज्ञानदर्शनचारित्रतपांसि मम शरणानि तेषामुपदेष्टा च महावीरो भगवान् शरणमिति ॥ ६० ॥

आराधनायाः किं फलं ? इत्यत आह—

आराहण उवजुत्तो कालं काऊण सुविहिओ सम्मं ।
उक्कस्सं तिण्णि भवे गंतूण य लहइ णिव्वाणं ॥ ६१ ॥

आराहणउवजुत्तो—आराधनोपयुक्तः सम्यग्दर्शनज्ञानादिषु तात्पर्यवृत्तिः । **कालं काऊण**—कालं कृत्वा । **सुविहिओ**—सुविहितः शोभनानुष्ठानः । **सम्मं**—सम्यक् । **उक्कस्सं**—उत्कृष्टेन । **तिण्णि**—त्रीन् । **भवे**—भवान् । **गन्तूण य**—गत्वा च । **लहइ**—लभते । **णिव्वाणं**—निर्वाणं । सुविहितः सम्यगाराधनोपयुक्तः कालं कृत्वा उत्कर्षेण त्रीन् भवान् प्राप्य ततो निर्वाणं लभते इति ॥ ६१ ॥

आचार्यानुशास्ति श्रुत्वा शास्त्रं ज्ञात्वा क्षपकः कारणपूर्वकं परिणामं कर्तुकामः प्राह—

समणो मेत्ति य पढमं बिदियं सव्वत्थ संजदो मेत्ति ।
सव्वं च वोस्सरामि य एदं भणिदं समासेण ॥ ६२ ॥

समणो मेत्ति य—श्रमणः समरसीभावयुक्तः, इति च । **पढमं**—प्रथमः । **विदियं**—द्वितीयः । **सव्वत्थसंजदो**—सर्वत्रसंयतः । **मेत्ति**—

वाला है। बहुरि संसार के कारण जे आश्रव, बंध तिनिको निवृत्ति करनेकूं उद्यमो भए—अैसे जे ज्ञानसहित जीव ताका आचरण सो चारित्र कहिए। अैसा चारित्र है सो हो मेरे शरण है। बहुरि शरीर तथा इन्द्रिय इनकूं तपावै सो तप कहिए। सो बाह्य आभ्यंतर बारह प्रकार तप हैं—सो ही शरण हैं। बहुरि छह प्रकार प्राण संयम छहप्रकार इन्द्रियसंयम अैसे—बारह प्रकार संयम हैं, सो ही मेरे शरण हैं। बहुरि भगवान् कहिए—अनंत ज्ञान, अनन्त सुख 'सहित, महावीर कहिए—बर्द्धमान स्वामो सो ही मेरे शरण कहिए आश्रय हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम तथा इनिका उपदेश करनैं वाला महावीर स्वामो सो ही शरण है। तथा लौकिक अन्य सर्व्व शरण तथा अन्य धर्म्म का शरण तथा अन्य देव-गुरु का शरण मेरे नांही है ॥ ६२ ॥

आगे आराधना का फल कहा ? अैसा प्रश्न होतैं कहे हैं—

अर्थ—आचार्य कहैं है—हे क्षपक ! सम्यग्दर्शन ज्ञानादिक च्यारि आराधना करि उपयुक्त हुवा अतीचार रहित है आचरण जाकै-अैसा जो मुनि है, सो भली विधितैं भलै प्रकार मरणकरि उत्कृष्ट तीन भव पायकरि निर्वाण कूं पावै है ॥ ६१ ॥

अैसे आचार्यनि का उपदेश सुणि क्षपक है सो कारणपूर्वक परिणाम करनैं का अभिलाषो हुआ कहै है—

अर्थ—क्षपक विचारै हैं जामैं प्रथम तौ श्रमण कहिए समरसी भाव करि युक्त हौ। बहुरि दूसरे सर्वभावनि विषैं संयमी

मम इति । अथवा श्रमणे मम प्रथमं मैत्र्यं । द्वितीयं च सर्वसंयतेषु । **सव्वं च**—सर्वं च । **वोस्सरामि य**—व्युत्सृजामि च । **एदं**—एतत् । **भणिदं**—भणितं । **समासेण**—समासेन संक्षेपतः । प्रथमस्तावत् समानभावोऽहं द्वितीयश्च सर्वत्र संयतोऽतः सर्वमयोग्यं व्युत्सृजामि एतद्भणितं संक्षेपतो मयेति सम्बन्धः संक्षेपालोचनमेतत् ॥ ६२ ॥

पुनरपि दृढपरिणामं दर्शयति—

लद्धं अलद्धपुव्वं जिणवयणसुभासिदं[1] अमिदभूदं ।
गहिदो सुग्गइमग्गो णाहं मरणस्स बीहेमि ॥ ६३ ॥

लद्धं—लब्धं प्राप्तं । **अलद्धपुव्वं**—अलब्धपूर्वं । **जिणवयणं**—जिनवचनं । [2]**सुभासिदं**—सुभाषितं प्रमाणनयाविरुद्धं । **अमिदभूदं**—अमृतभूतं सुखहेतुत्वात् । **गहिदो**—गृहीतः । **सुग्गदिमग्गो**—सुगतिमार्गः । **णाहं मरणस्स बीहेमि**—नाहं मरणाद्बिभेमि । अलब्धपूर्वं जिनवचनं सुभाषितं अमृतभूतं लब्धं मया सुगतिमार्गश्च गृहीतोऽतः नाहं मरणाद्बिभेमीति ॥ ६३ ॥

अतश्च—

❀धीरेण वि मरिदव्वं णिद्धीरेण वि अवस्स मरिदव्वं ।
जदि[3] दोहिं वि मरिदव्वं वरं[4] हि धीरत्तणेण मरिदव्वं ॥ ६४ ॥

धीरेण वि—धीरेणापि सत्त्वाधिकेनापि । **मरियव्वं**—मर्तव्यं प्राणत्यागः कर्तव्यः । **णिद्धीरेण वि**—निर्धैर्येणापि धैर्यरहितेनापि कातरेणापि भीतेनापि । **अवस्स**—अवश्यं निश्चयेन । **मरिदव्वं**—मर्तव्यं । **जइदोहिं वि**—यदि द्वाभ्यामपि । **मरिदव्वं**—मर्तव्यं भवान्तरं गन्तव्यं

है । यातैं सर्व अयोग्य भाव हैं तिनि समस्तनिकों छोड़ूं हूँ । ऐसा संक्षेप आलोचन कीया ॥६२॥ आगैं बहुरि दृढ़ परिणाम दिखावै है ।

अर्थ—क्षपक विचारै है—जो मैंने सुभाषित कहिए प्रमाण-नयकरि अविरुद्ध, अमृतभूत कहिए सुख का कारण, अलध्वपूर्व कहिए पूर्वैं पाया नांही ऐसा जिनवचन पाया । बहुरि सुगतिमार्ग कहिए मोक्षमार्ग सो ग्रहण कीया । अब मैं मरण सैं नांही डरुं हूँ ॥६३॥

भावार्थ—जैंते अज्ञान था, तेतैं द्रव्य-गुण पर्याय का स्वरूप यथार्थ जानैं नांही था तेतैं मरण का डर था । अब जिन वचन तैं यथार्थ स्वरूप का ग्रहण भया । मोक्षमार्ग मैं प्रवर्त्तनें लागा । तब मरण का भय कहा (क्या) ? आगैं फिर कहै है—

अर्थ—क्षपक विचारै है—जो धीर कहिए—दृढ़चित्त है । सो भी मरैगा । बहुरि जो निर्द्धैर्य कहिए—धैर्य रहित है,

---

१.–२. क. सुहासि । अ, ब प्रति में 'सुगाइ' ।

❀ फलटन से प्रकाशित मूलाचार की निम्नलिखित गाथा से प्रस्तुत गाथा की तुलना कीजिए—

वीरेण वि मरिदव्वं णिव्वीरेण वि अवस्स मरिदव्वं ।
जदि दोहिं वि हि मरिदव्वं वरं हि वीरत्तणेण मरिदव्वं ॥

३. अ, ब प्रति में 'जई' । ४. क, वरं खु धीरेण ।

११

विशेषाभावात् । **वरं**—श्रेष्ठं । हि—स्फुटं । **धीरत्तणेण**—धीरत्वेन संक्लेशरहितत्वेन । **मरिदव्वं**—मर्तव्यं । यदि द्वाभ्यामपि धैर्याधैर्योपेताभ्यां प्राणत्यागः कर्तव्यो निश्चयेन ततो विशेषाभावात् धीरत्वेन मरणं श्रेष्ठमिति ॥ ६४ ॥

क्षुधादिपीडितस्य यदि शीलविनाशे कश्चिद्विशेषो विद्यतेऽजरामरणत्वं यावता हि—

सीलेणवि मरिदव्वं णिस्सीलेणवि अवस्स मरिदव्वं ।
जइ दोहिं वि मरियव्वं वरं हु सीलत्तणेण मरियव्वं ॥ ६५ ॥

यदि द्वाभ्यामपि शीलनिःशीलाभ्यां[1] मर्तव्यं अवश्यं वरं शीलत्वेन शीलयुक्तेन मर्तव्यमिति । व्रतपरिरक्षणं शीलं यदि सुशीलनिःशीलाभ्यां निश्चयेन मर्तव्यं शीलेनैव मर्तव्यम् ॥ ६५ ॥

अत्र किं कृतो नियम ? इत्याह—

चिरउसिदबंभयारी पप्फोडेदूण सेसयं कम्मं ।
अणुपुव्वीय विसुद्धो सुद्धो सिद्धिं गदिं जादि ॥ ६६ ॥

चिरउसिद—चिरं बहुकालं उषितः स्थितः । **बंभयारी**—ब्रह्म मैथुनानभिलाषं चरति सेवत इति ब्रह्मचारी चिरोषितश्च स ब्रह्मचारी च चिरोषितब्रह्मचारी अथवा चिरोषितं ब्रह्म चरतीति । **पप्फोडेदूण**—प्रस्फोट्य निराकृत्य । **सेसयं कम्मं**—शेषं च कर्म ज्ञानावरणादि । **अणु-**

कायर है, सो भी अवश्य मरैगा । जो मरनां, अन्यगति जानां-दोउनि कै समान है । विशेष कछु है नांही, तौ धीरत्व कहिए संक्लेश रहितपणां ताकरि ही मरणा श्रेष्ठ है ।

भावार्थ—मरण विषैं जे कायरता करै हैं ते भी अवश्य मरै है । काल आए पीछै जीवते तौ रहे नांही । कायर भावनितैं पापबंध विशेष करै हैं । यातैं मरण समय कायर भाव नांही करणां ॥ ६४ ॥

आगैं कोऊ पूछै है जो क्षुधादिक करि पीडित हुवा कोई शील का विनाश करै है, व्रत की रक्षा नांही करै है, अर कोई अभंग व्रत पालैं हैं—तो यामैं विशेष कहा ? जैसे अजर-अमरपणां होय सो कहिए । तहाँ कहै है ।

अर्थ—जो शील कहिए व्रत की रक्षा करै है सो भी काल आए अवश्य मरैगा । बहुरि निःशील कहिए व्रत की रक्षा नांही करै हैं । क्षुधादिककरि पीडित हुआ व्रत का भंग करै हैं । सो भी काल आए अवश्य मरैगा । जो मरनैं मैं दोऊनि कै विशेष नांही तो शील सहित ही मरनां ।

भावार्थ—जैं क्षुदादिक की पीडातैं तथा मरण होने के भयतैं व्रत शील छोड़े हैं, तेहू काल आए अवश्य मरैंगे । व्रत, शील छोड़िनितैं पाप बांधैंगे । जीवते यौ रहैं नांही । तातैं व्रत-शील अंगीकार कीया सो छोडनां नांही ॥६५॥

आगै शील सहित हो मरनां—अैसा नियम कैंसैं कह्या ? सो कहै हैं—

अर्थ—चिरोसित ब्रह्मचारी कहिए—बहुत काल तैं सेया है ब्रह्मचर्य व्रत जानैं, अैसा मुनि है सो अवशेष रह्या जो ज्ञाना-

---

१. क °भ्यां निश्चयेन मर्तव्यं वरं° ।

पुव्वीय—आनुपूर्व्या च क्रमपरिपाट्या अथवायुःक्षयाद्गुणस्थानक्रमेण वा। **विसुद्धो**—विशुद्धः कर्मकलङ्करहितः। **सुद्धो**—शुद्धः केवलज्ञानादियुक्तः। **सिद्धिं गदिं जादि**—सिद्धिं गतिं याति मोक्षं प्राप्नोतीत्यर्थः। अभग्नब्रह्मचारी शेषकं कर्म प्रस्फोट्य, असंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरया च विशुद्धः संजातस्ततः शुद्धोभूत्वा सिद्धिं गतिं याति। अथवा अपूर्वापूर्वपरिणामसन्तत्या च विशुद्धः शुद्धः केवलोपेतः केवलज्ञानं प्राप्य परमस्थानं गच्छतीति ॥ ६६ ॥

अथ आराधनोपायः कथितः, आराधकश्च किं विशिष्टो भवतीत्याह—

णिम्ममो णिरहंकारो णिक्कसाओ जिदिंदिओ धीरो।
अणिदाणो दिट्ठिसंपण्णो मरंतो आराहओ होइ ॥ ६७ ॥

णिम्ममो—निर्ममः निर्मोहः। **णिरहंकारो**—अहङ्कारान्निर्गतः। **णिक्कसाओ**—निष्कषायः क्रोधादिरहितः। **जिदिंदिओ**—जितेन्द्रियः नियमितपंचेन्द्रियः। **धीरो**—धीरः सत्त्ववीर्यसम्पन्नः। **अणिदाणो**—अनिदानः अनाकांक्षः। **दिट्ठिसंपण्णो**—दृष्टिसम्पन्नः[1] सम्यग्दर्शनसंप्राप्तः। **मरंतो**—म्रियमाणः। **आराहओ**—आराधकः। **होइ**—भवति। निर्मोहो निर्गर्वः निक्रोधादिर्जितेन्द्रियो धीरोऽनिदानो दृष्टिसंपन्नो म्रियमाण आराधको भवतीति ॥ ६७ ॥

कुत एतदित्याह—

णिक्कसायस्स दंतस्स सूरस्स ववसाइणो।
संसारभयभीदस्स पच्चक्खाणं सुहं हवे ॥ ६८ ॥

वरणादिकर्म्म ताकूं निर्जरा करी, आनुपूर्वी कहिए क्रम परिपाटी, अपूर्व-अपूर्व विशुद्ध परिणाम का संतान अथवा आयु का क्षयतैं गुणस्थान का क्रमकरि असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा करि, विशुद्ध कहिए कर्म-कलंककरि रहित हुवा संता, शुद्धः कहिए शुद्धभाव केवलज्ञानादिक-करि युक्त हुवा संता, सिद्धि-गति कहिए—परमस्थान-मोक्ष ताकूं प्राप्त होय हैं। अैसे आराधना का उपाय कह्या ।६६ ॥

आगैं आराधक कैसा होय सो कहै हैं।

अर्थ—अैसा मरण करनें वाला आराधक कैसा होय सो कहिए हैं। निर्ममः कहिए निर्मोह होय, चेतन-अचेतन परवस्तु विषैं जाकैं ममत्व नांती होय। बहुरि निरहंकार कहिए—अहंकार-गर्वकरि रहित होय। मद-मानकषाय करि रहित होय, बहुरि निष्कषाय कहिए—क्रोधादिक कषायनिकरि रहित होय, माया शल्यरहित होय, बहुरि जितेन्द्रिय कहिए जीती है इन्द्रिय जानें विषयजनित सुखतैं उदासीन होय अतीन्द्रिय सुख में लीन होय, बहुरि धीरः कहिए सत्त्व वीर्यकरि सहित होय, शिथिल चित्त-कायर न होय। बहुरि अनिदानः कहिए भोगनि की वांछाकरि रहित होय, इस जनम मैं तो भोगनि का त्याग ही कीया, पर जन्म विषैं हूं भोगनि की वांछा नांही करैं। बहुरि दृष्टिसंपन्नः कहिए सम्यग्दर्शन कूं भलै प्रकार प्राप्त हुवा होय—अैसे विशेषणकरि संयुक्त होय सो आराधक होय ॥ ६७ ॥ आगै इसही का समर्थन कहै हैं—

---

१. क दृष्टि सम्यग्दर्शनसम्पन्नः संप्राप्तः।

णिक्कसायस्स—निष्कषायस्य कषायरहितस्य । **दंतस्स**—दान्तस्य दान्तेन्द्रियस्य । **सूरस्स**—शूरस्याकातरस्य । **ववसाइणो**—व्यवसायो विद्यतेऽस्येति व्यवसायी तस्य चारित्रानुष्ठानपरस्य । **संसारभयभीदस्स**—संसारभयभीतस्य संसाराद्भयं तस्माद्भीतस्त्रस्तः संसारभयभीतः तस्य ज्ञातचतुर्गतिदुःखस्वरूपस्य । **पच्चक्खाणं**—प्रत्याख्यानं आराधना । **सुहं**—सुखं सुखनिमित्तं । **हवे**—भवेत् । यतो निष्कषायस्य, दान्तस्य, शूरस्य, व्यवसायिनः, संसारभयभीतस्य, प्रत्याख्यानं सुखनिमित्तं भवेत्ततः तथाभूतो म्रियमाण आराधको भवतीति सम्बन्धः ॥ ६८ ॥

उपसंहारद्वारेणाराधनाफलमाह—

एदं पच्चक्खाणं जो काहदि मरणदेसयालम्मि ।
धीरो अमूढसण्णो सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ॥ ६९ ॥

एदं—एतत् । **पच्चक्खाणं**—प्रत्याख्यानं । **जो काहदि**—यः कुर्यात् । **मरणदेसयालम्मि**—मरणदेशकाले । **धीरो**—धैर्योपेतः । **अमूढसण्णो**—अमूढसंज्ञः आहारादिसंज्ञास्वलुब्धः । **सो**—सः । **गच्छदि**—गच्छति । **उत्तमं ठाणं**—उत्तमं स्थानं निर्वाणमित्यर्थः । मरणदेशकाले एतत्प्रत्याख्यानं यः कुर्यात् धीरोऽमूढसंज्ञश्च स गच्छत्युत्तमं स्थानमिति ॥ ६९ ॥

अवसानमंगलार्थं क्षपकसमाध्यर्थं चाह—

वीरो जरमरणरिउ[1] वीरो विण्णाणणाणसंपण्णो ।
लोगस्सुज्जोययरो जिणवरचंदो दिसदु बोधिं ॥ ७० ॥

अर्थ—प्रत्याख्यान कहिए आराधना, सुखं कहिए-सुख का निमित्त अैसे मुनिराज के होय है। जो मुनिराज निष्कषाय कहिए—कषाय रहित होय, दांत कहिए-दमो हैं, वशि करी है इन्द्रिय जानैं। बहुरि सूर कहिए-कायर न होय। बहुरि व्यवसायि कहिए चारित्र का आचरण विषै तत्पर होय। संसार-भयभीत कहिए संसार का भयतैं डरता होय। चतुर्गति के दुख का स्वरूप कूं जानता होय।

भावार्थ—मरण करने वाला अैसा होय सो आराधना का आराधक होय अैसे संबंध जानना ॥ ६८ ॥

आगैं उपसंहार द्वारकरि आराधना का फल कहै हैं—

अर्थ—जो मुनि मरण का देशकाल विषै, धीर कहिए—धैर्यकरि संयुक्त हुवा, अमूढसंज्ञः कहिए आहारादिक संज्ञा कै विषैं अलुब्ध हुवा संता, आहारादिक कूं नांही चाहता संता—यह प्रत्याख्यान हैं ताहि करै है, सो मुनि उत्तम स्थान कहिए—निर्वाह, ताहि प्राप्त होय है ॥ ६९ ॥

भावार्थ—आराधना का फल निर्वाण है।

आगै अंत मंगलकैं अर्थि बहुरि क्षपक के समाधि की प्राप्ति के अर्थि कहै हैं—

---

१. अ, ब प्रति में 'रिवु'।

वीरो—वर्धमानभट्टारकः। **जरमरणरिऊ**—जरामरणरिपुः। **विण्णाणणाणसंपण्णो**—विज्ञानं चारित्रं, ज्ञानमवबोधस्ताभ्यां सम्पन्नो युक्तः। **वीरो**—वीरः। **लोगस्स**—लोकस्य भव्यजनस्य पदार्थानां वा। **उज्जोययरो**—उद्योतकरः प्रकाशकरः। **जिणवरचंदो**—जिनवरचन्द्रः। **दिसदु**—दिशतु ददातु। **बोधि**—समाधि सम्यक्त्वपूर्वकाचरणं वा। जिनवरचन्द्रो जरामरणशत्रुः चारित्रज्ञानादिसंयुक्तो लोकस्य चोद्योतकरो वीरो मह्यं दिशतु बोधिमिति सम्बन्धः ॥ ७० ॥

किंचिदपि निदानं न कर्तव्यं, कर्तव्यं चेत्याह—

जा गदी अरहंताणं णिट्ठिदट्ठाणं च जा गदी।
जा गदी वीदमोहाणं सा मे भवदु सस्सदा ॥ ७१ ॥

जा गदी—या गतिः। **अरहंताणं**—अर्हतां। **णिट्ठिदट्ठाणं च**—निष्ठितार्थानां च या गतिः सिद्धानामित्यर्थः। **जा गदी**—या गतिः। **वीदमोहाणं**—वीतमोहानां क्षीणकषायाणां। **सा मे भवदु**—सा मे भवतु। **सस्सदा**—शश्वत् सर्वदा। अर्हतां या गतिः, या च निष्ठितार्थानां वीतमोहानां च या, सा मे भवतु सर्वदा नान्यत् किंचिद्याचेऽहमिति। नात्र पुनरुक्तादयो दोषाः पर्यायार्थिकशिष्यप्रतिपादनात् तत्कालयोग्यकथनाच्च। नापि विभक्त्यादीनां व्यत्ययः प्राकृतलक्षणेन सिद्धत्वात्। छन्दोभंगोऽपि न चात्र गाथाविगाथाश्लोकादिसंग्रहात्, तेषां चात्र प्रपंचो न कृतः ग्रन्थ-बाहुल्यभयात् संक्षेपणार्थकथनाच्चेति ॥ ७१ ॥

इत्याचारवृत्तौ वसुनन्दिविरचितायां द्वितीयः परिच्छेदः।

अर्थ—वीर कहिए वर्द्धमान भट्टारक हैं, सो बोधि कहिए समाधि अथवा सम्यक्[1]पूर्वक आचरण ताहो दिसंतु कहिए देहु। कैसा है वीर ? जरा मरण रिपु कहिए, जरा-मरण का दूरि करणहारा है। बहुरि कैसा है ? वीर कहिए सेवकनिकूं 'वि' कहिए विशिष्ट 'ई' कहिए लक्ष्मी ताकरि कहिए देनेहारा है। बहुरि कैसा है ? विज्ञान कहिए चारित्र, ज्ञान कहिए अवबोध तिनिकरि संपन्न कहिउ युक्त है। बहुरि कैसा है ? लोक कहिए भव्य जोव तिनिकैं अज्ञान-अन्धकारकूं मिटाय ज्ञान रूप उद्योत का करनहारा है। अथवा लोक कहिए समस्त पदार्थ, षट् द्रव्यनि का समूह ताका उद्योतकर कहिए प्रकाश करनहारा है। बहुरि कैसा है ? 'जिन' कहिए सामान्यकेवली तिन विषैं 'वर' कहिए प्रधान चंद्रमा समान उद्योतकारी आल्हादकारी है—अैसे अन्त मंगल कीया। तथा क्षपककैं समाधि की प्राप्ति का कारण वर्द्धमान स्वामी का स्मरण दिखाया ॥ ७० ॥

आगैं कहै हैं कि निदान कछु ही नांही करना। बहुरि अैसा भाव करना सोहू कहैं हैं—

अर्थ—आचार्य कहै हैं—मैं अैसी याचना करूं हूं-जो अर्हंतनि की गति है सो मेरी होउ। बहुरि निष्ठितार्थ कहिए कृत-कृत्य सिद्धपरमेष्ठी, तिनिकी गति सो मेरी गति होउ। बहुरि वीतमोह कहिए क्षीणकषाय छद्मस्थ वीतराग तिनिकी गति सो मेरी गति होउ। शाश्वत कहिए सर्व्वदा अन्य जाचना मैं किंचित् हू नांही करूं हूँ ॥ ७१ ॥

भावार्थ—अैसा अभिलाष का नाम निदान नांही है। भोग के अभिलाषा का नाम निदान है।

१. ब प्रति में सम्यक्त्व।

अैसे अधिकार समाप्त कीया। संस्कृत टीकाकार कहै है जो इहां व्याख्यान विषैं पुनरुक्तादिक दोष नांही है। जाका एक बार कथन कीया ताका अन्य युक्तिकरि दूसरा कथन कीया होय, तहां पर्यायार्थिक नयावलंबी शिष्य का समझावनैं कै अर्थि जाननां। तथा पहलैं वर्णन-अवसर मैं कीया। दूसरा वर्णन अन्य अवसर मैं कीया। अैसे तत्काल-योग्य कथन विषैं पुनरुक्त दोष नांही तथा कहीं विभक्ति पलटिकरि कहीं है। ते प्राकृत लक्षकरि सिद्धिजाननीं, यातैं दोष नांही।

बहुरि इनि प्राकृत सूत्रनि विषैं छन्द-भंग की आशंका न करनी। जातैं गाथा-विगाथा, श्लोक इत्यादिक छन्द अनेक प्रकार होय है। तिनिका इहां संग्रह है। एक ही छन्द-जाति हैं नांही, अर इनिका बिस्तार लिख्या है नांही, ग्रन्थ वधि (बढ़) जानैं का भयतैं संक्षेप अर्थ कथन कीया। अैसे संस्कृत टीकाकार नैं कह्या है। बहुरि मैंने भाषा करी है, सो गाथानिका मूल अर्थ संक्षेपकरि लिख्या है। पदनिका मूल अर्थ संक्षेप करि लिख्या है। पदनिकी निरुक्ति, समास, विभक्ति का विशेष इत्यादि सम्यग् वाचा है सो संस्कृत टीका तैं तथा मूलग्रन्थ तैं गुरु-संप्रदाय तैं निश्चय करौ। भाषा वचनिका तौ मंद बुद्धिनिकै अर्थि है।

अैसे आचार्य वट्टकेर स्वामी विरचित मूलाचार नाम प्राकृत ग्रन्थ को वसुनंदि सिद्धान्त-चक्रवर्ति विरचित आचारवृत्ति नाम संस्कृत टीका कै अनुसार यह देशभाषामय बचनिका विषैं "वृहत् प्रत्याख्यान-संस्तरस्तव" है नाम जाका अैसा द्वितीय अधिकार समाप्त भया। इहां पर्यंति गाथासूत्र एक सौ सात भये।

३. अथ संक्षेप-प्रत्याख्यानाधिकारः

वृहत्प्रत्याख्यानं व्याख्यातमिदानीं यदि भृशमाकस्मिकं सिंहव्याघ्राग्निव्याध्यादिनिमित्तं मरणमुपस्थितं स्यात् तत्र कस्मिन् ग्रन्थे भावना क्रियते इति पृष्टे तदवस्थायां यद्योग्यं संक्षेपतरं प्रत्याख्यानं तदर्थं तृतीयमधिकारमाह—

एस करेमि पणामं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स ।
सेसाणं च जिणाणं सगणगणधराणं च सव्वेसिं ॥ १ ॥❀

एस—एष आत्मनः प्रत्यक्षवचनमेतत् एषोऽहं अतिसंक्षेपरूपप्रत्याख्यानकथनोद्यतः एवं च कृत्वा यात्र संग्रहवाक्यं कृतं सामर्थ्यलब्धत्वात् तस्येति । **करेमि**—करोमि कुर्वे वा । **पणामं**—प्रणामं स्तुतिं । **जिणवरवसहस्स**—जिनानां वराः प्रमत्तादिक्षीणकषायपर्यन्तास्तेषां वृषभः प्रधानः सयोगी अयोगी सिद्धो वा तस्य जिनवरवृषभस्य । **वड्ढमाणस्स**—वर्धमानस्य । **सेसाणं च**—शेषाणां च । **जिणाणं**—जिनानां सर्वेषां च । **सगणगणधराणं च**—सह गणेन यतिमुन्यृष्यनगारकदम्बकेन वर्तंते इति सगणास्ते च ते गणधराश्च सगणगणधराः तेषां च श्रीगौतमप्रभृतीनां **च** । **सव्वेसिं**—सर्वेषां । एषोहं ग्रन्थकरणाभिप्रायः, जिनवरवृषभस्य वर्धमानस्य शेषाणां च जिनानां च सर्वेषां च सगणगणधराणां च प्रणामं कुर्वे अथवा सगणगणधराणां जिनानां विशेषणं द्रष्टव्यमिति ॥ १ ॥

आगै संक्षेपतर प्रत्याख्यान नामा तीसरा अधिकार प्रारम्भ कीजिए हैं।

अथ संक्षेप-प्रत्याख्यानाधिकारः

जातैं वृहत्प्रत्याख्यान का तौ व्याख्यान कीया। अबै जो कदाचित् अकस्मात् सिंह, वघैरा, अग्नि, व्याधि, इत्यादिक निमित्ततैं मरण आय प्राप्त होय तौ तहां कौन से ग्रन्थ विषैं भावनां करिए ? अैसा प्रश्न होतै संतै तिहि अवस्था मैं जोग्य जो अति संक्षेप त्याग ताका वर्णनकैं अर्थि इस तीसरा अधिकार कूं कहै हैं। तहां प्रथम ही मंगलाचरण करै है—

अर्थ—एष कहिए इह मैं स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष **वट्टकेराचार्य** अति संक्षेपरूप प्रत्याख्यान कहनैं को उद्यमी भया सो प्रणाम कहिए—नमस्कार, स्तुति करूँ हूं। किसकूं प्रणाम करूँ हूँ। 'जिन' कहिए कर्मरूप शत्रुनिकूं जीतनहारे सम्यग्दृष्टी तिनिकैं विषैं 'वर' कहिए श्रेष्ठ प्रमत्तसंयमी मुनिराज कूं आदिदेय क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यंत मुनिराज ते जिनवर कहिए। तिनिमैं वृषभ कहिए प्रधान तेरहवें सयोग-गुणस्थानमैं विराजमान तथा चौदहवें अयोग-गुणस्थानमैं विराजमान तथा सिद्धपद विषैं विराजमान ते जिनवर वृषभ कहिए अैसे **जे** वर्द्धमान नामा चउबीसमां तीर्थंकर ताकूं। बहुरि किसकूं प्रणाम करू हूं ? शेष कहिए अवशेष जे जिन कहिए वृषभादि पार्श्वनाथ पर्यंत इस क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान तीर्थंकर तथा अतीत, अनागत काल सम्बन्धी तथा विदेहादि अन्य क्षेत्र संबंधी समस्त तीर्थंकर तथा सामान्य केवली तिनि समस्तनिकूं। बहुरि किसकूं नमस्कार करूँ हूं ? 'गण' कहिए—यति, मुनि, ऋषि, अनगार—अैसैं च्यारि प्रकार का संघ ताकरि सहित श्रीगौतमस्वामीकूं आदिदेय समस्त गणधर आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी तिनिकूं।

❀ इस गाथा की तुलना कोजिए प्रवचनसार के मंगलाचरण रूप गाथा से।

नमस्कारानन्तरमुररीकृतस्यार्थस्य प्रकटनार्थमाह—

सव्वं पाणारंभं पच्चक्खामि अलीयवयणं च ।
सव्वमदत्तादाणं मेहुणपरिग्गहं चेव ।। २ ।।

प्रथमं तावत् व्रतशुद्धिं करोमीति । **सव्वं पाणारंभं**—सर्वं निरवशेषं प्राणारम्भं हिंसां । **पच्चक्खामि**—प्रत्याख्यामि त्यजामि । **अलीयवयणं च**—व्यलीकवचनं च मिथ्यावादं च । **सव्वं**—सर्वं । **अदत्तादाणं**—अदत्तादानं । **मेहुण**—मैथुनं । **परिग्गहं चेव**—परिग्रहं चैव । प्राणारम्भं, मिथ्यावचनं, अदत्तादानं, मैथुनपरिग्रहौ च प्रत्याख्यामीति ।। २ ।।

सामायिकव्रतस्वरूपनिरूपणार्थमाह—

सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झ ण केणइ[1] ।
आसाए वोसरित्ताणं समाधिं पडिवज्जए ।। ३ ।।

सम्मं—समस्य भावः साम्यं । **मे**—मम । **सव्वभूदेसु**—सर्वभूतेषु निरवशेषजीवेषु । **वेरं**—वैरं । **मज्झ**—मम । **ण केणइ**—न केनापि । **आसाए**—आशा आकांक्षाः । **वोसरित्ताणं**—व्युत्सृज्य । **समाहिं**—समाधिं शुभपरिणामं । **पडिवज्जए**—प्रतिपद्ये । यतः साम्यं मम सर्वभूतेषु वैरं मम न केनाप्यत आशा व्युत्सृज्य समाधिं प्रतिपद्ये इति ।। ३ ।।

भावार्थ—समस्त पंच परमेष्ठी कूं नमस्कार करूँ हूं। आगैं नमस्कार क्रिया कै अनन्तर अंगीकार कीया जो अर्थ ताके प्रगट करने कै अर्थि कहै है ।। १ ।।

अर्थ—आचार्य कहै हैं—संक्षेपतर प्रत्याख्यान करने वाला अैसैं प्रतिज्ञा करै—प्रथम मैं महाव्रत की शुद्धता करूँ हूँ। 'सव्वं' कहिए—समस्त, 'प्राणारंभ' कहिए हिंसा, ताका प्रत्याख्यान करूँ हूं। बहुरि व्यलीक वचन कहिए मिथ्यावाद ताका प्रत्याख्यान करूं हूं। बहुरि सर्व अदत्त कहिए बिना दीनी वस्तु लेनैं का प्रत्याख्यान करूँ हूं। बहुरि मैथुन कहिए—स्त्री-पुरुष के संयोग-जनित-क्रिया ताका प्रत्याख्यान करूं हूं। बहुरि समस्त परिग्रह ताका प्रत्याख्यान करूं हूं।

भावार्थ—अैसे प्रथम तो महाव्रतनिकी शुद्धता करै है। आगैं सामायिक व्रत के स्वरूप का निरूपण के अर्थि कहै है ।।२।।

अर्थ—जातैं 'मे' कहिए मेरे, 'सर्वभूत' कहिए समस्त जीवनि विषैं समभाव है। मेरे किस ही करि वैरभाव नांही हैं। तातैं मैं 'आशाः' कहिए आकांक्षा है, तिनहि छौड़िकरि 'समाधि' कहिए शुभ[2] परिणाम हैं, ताहि प्राप्त होत हूँ।

भावार्थ—सर्व जीवनिकैं विषैं समभाव रखनां, वैरभाव किसही मैं नहीं रखनां। सर्व आकांक्षा का छोड़नां, समाधिभाव को प्राप्त होना—याका नाम सामायिक है ।। ३ ।।

---

१. अ, ब प्रति में केणवि । २. ब प्रति में 'शुद्ध परिणाम' ।

पुनरपि परिणामशुद्ध्यर्थमाह—

सव्वं आहारविहिं सण्णाओ आसए कसाए य ।
सव्वं चेय ममत्तिं जहामि सव्वं खमावेमि ।। ४ ।।

सर्वमाहारविधिं अशनपानादिकं संज्ञाश्चाहारादिका आशा इहलोकाद्याकांक्षाः कषायांश्च सर्वं चैव ममत्वं जहामि त्यजामि सर्वं जनं क्षामयामीति ।। ४ ।।

द्विविधप्रत्याख्यानार्थमाह—

एदम्हि देशयाले उवक्कमो जीविदस्स जदि मज्झं ।
एदं पच्चक्खाणं णित्थिण्णे[1] पारणा हुज्ज ।। ५ ।।

एवम्हि—एतस्मिन् । **देसयाले**—देशकाले । **उवक्कमो**—उपक्रमः प्रवर्तनं अस्तित्वं । **जीविदस्स**—जीवितस्य । **जइ मज्झं**—यदि मम । **एदं**—एतत् । **पच्चक्खाणं**—प्रत्याख्यानं । **णित्थिण्णे**—निस्तीर्णे समाप्ति गते । **पारणा**—आहारग्रहणं । **हुज्ज**—भवेत् । एतस्मिन् देशकाले सोपसर्गोऽभिप्रेते वा मध्ये यदि जीवितव्यं नास्ति चतुर्विधाहारस्यैतत्प्रत्याख्यानं मम भवेत् तस्मिंस्तु देशकाले निस्तीर्णे जीवितव्यस्योपक्रमे च सति पारणा भवेदिति सन्देहावस्थायामेतत् ।। ५ ।।

आगैं परिणामनिकी **शुद्धि** कैं अर्थि बहुरि कहै है—

अर्थ—सव्वं जे अशन-पानादिक आहार के प्रकार हैं तिनिकूं तजूं हूँ । बहुरि आहारादिक सर्व संज्ञा है, तिनिकूं तजूं हूँ । इहलोकादिक समस्त आकांक्षा है, तिनहि तजूं हूँ । बहुरि कषाय कहिए समस्त क्रोधादिक भाव है, तिनहिं तजूं हूं । बहुरि ममत्व कहिए समस्त चेतन-अचेतन बाह्य परिग्रह विषैं, यहु मेरा है—ऐसा ममकार भाव हैं, ताहि तजूं हूँ । बहुरि सर्व्व जो प्राणी मात्र हैं, ता प्रति क्षमा भाव करूं हूँ ।। ४।।

भावार्थ—सामायिक ही की शुद्धता के अर्थि ऐसे परिणाम की शुद्धता करै ।

आगैं प्रत्याख्यान दोय प्रकार है ताके अर्थि कहै हैं—

अर्थ—कोई देशकाल विषैं देव, मनुष्य, तिर्यंच, अचेतन कृत उपसर्ग होतैं, अथवा अपने अभिप्रायतैं जीवतव्यमैं संदेह होय, तहां ऐसा प्रत्याख्यान करनां—यह प्रत्याख्यान का प्रथम भेद है, सो कहै हैं—जो 'एतस्मिन्देशकाले' कहिए—इस देश-काल विषैं, 'मम' कहिए मेरा "जीवित" कहिए, जीवे का, 'उपक्रम' कहिए सद्भाव रहेगा तो मेरै इहप्रत्याख्यान है । जो यह उपसर्गादि समाप्त भए 'पारणा' कहिए आहार ग्रहण होय । जो इस देश, कालमैं जीवनां नाहीं तौ यह च्यारि प्रकार आहार का मेरे प्रत्याख्यान है । ऐसैं जीवितव्य का संदेह अवस्था में प्रत्याख्यान करे ।। ५ ।।

१. अ, ब प्रति में णिच्छिणे ।

निश्चयावस्थायां तु पुनरेतदित्याह—

सव्वं आहारविहिं पच्चक्खामि पाणयं वज्ज ।
उवहिं च वोसरामि य दुविहं तिविहेण सावज्जं ॥ ६ ॥

सव्वं—सर्वं निरवशेषं । **आहारविहिं**—भोजनविधिं । **पच्चक्खामि**—प्रत्याख्यामि । **पाणयं वज्ज**—पानकं वर्जयित्वा । **उवहिं च**—उपधिं च । **वोसरामि य**—व्युत्सृजामि च । **दुविहं**—द्विविधं बाह्याभ्यन्तरलक्षणं । **तिविहेण**—त्रिविधेन मनोवचनकायेन । **सावज्जं**—सावद्यं पापकारणं । पानकं वर्जयित्वा सर्वमाहारविधिं प्रत्याख्यामि, बाह्याभ्यन्तरोपधिं च व्युत्सृजामि द्विविधं त्रिविधेन सावद्यं च यदिति ॥ ६ ॥

उत्तमार्थार्थमाह—

जो कोइ मज्झ उवही[1] सब्भंतरवाहिरो य हवे ।
आहारं च सरीरं जावज्जीवा[2] य वोसरे ॥ ७ ॥

जो कोइ—यः कश्चित् । **मज्झ उवही**—ममोपधिः परिग्रहः । **सब्भंतरवाहिरो य**—साभ्यन्तरवाह्यश्च । **हवे**—भवेत् । तं सर्वं । **आहारं च**—चतुर्विकल्पभोजनं शरीरं च । **जावज्जीवा य**—जीवं जीवितव्यमनतिक्रम्य यावज्जीवं यावच्छरीरे मम जीव इत्यर्थः । **वोसरे**—व्युत्सृजे । यः कश्चित् मम सबाह्याभ्यन्तरोपधिर्भवेत् तं आहारं शरीरं च यावज्जीवं व्युत्सृजेदित्यर्थः ॥ ७ ॥

बहुरि जहां निश्चय होय जाय जो इस उपसर्गादिक विषैं अवश्य जीवितव्य नांही, तहां दूसरा प्रत्याख्यान का भेद है, सो ही कहै हैं—

अर्थ—सर्व्व कहिए समस्त, आहारविधि कहिए—भोजन का प्रकार, ताका मेरे प्रत्याख्यान है, त्याग है । पानकं वर्जयित्वा कहिए—जल का त्याग नांही, जल विनां अन्य समस्त का त्याग है । बहुरि बाह्य-आभ्यंतर दोय प्रकार समस्त उपधि ताहि त्रिविधि कहिए—मन, वचन, कायकरि छोड़ूं हूँ । बहुरि सावद्य कहिए पापकारण—जो मन, वचन, कायकरि तीन प्रकार सावद्य योग है, ताकूं छोड़ हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जल बिना अन्य सर्व भोजन मात्र का त्याग करै । बहुरि अभ्यंतर परिग्रह—मिथ्यात्व[3] कषायादिक अर बाह्य परिग्रह—शिष्यादिक तथा धर्मोपकरणादिक तथा पाप का कारण मन का संकल्प न करै, पाप का कारण वचन न कहैं, पाप का कारण काय चेष्टा न करैं—अैसे सर्व सावद्य योग का त्याग करैं । मरण का निश्चय भए अैसा प्रत्याख्यान करैं ।

आगैं उत्तमार्थ कै अर्थि कहैं हैं—

अर्थ—यः-कहिए—जो कोई कहिए कश्चित् मज्झ-कहिये मेरे, साभ्यंतर बाह्य कहिए—अभ्यंतर सहित बाह्य, उपधि कहिए—परिग्रह है ताहि । बहुरि आहार कहिए—च्यारि प्रकार भोजन है ताहि । बहुरि शरीर कहिए—देह है ताहि । यावज्जीवं कहिए—जीवित पर्यंत जे तैं शरीर विषैं जीव हैं तहां पर्यंत, व्युत्सृजे कहिए—छोड़हूँ ॥ ७ ॥

१. अ ब दोनों प्रतियों में 'जवधी' है । २. अ ब जावाजीवा पाठ है । ३. ब प्रति में 'मिथ्यादि' पाठ है ।

आगमस्य माहात्म्यं दृष्ट्वोत्पन्नहर्षो नमस्कारमाह—

जम्मालीणा जीवा तरंति संसारसायरमणंतं ।
तं सव्वजीवसरणं णंददु जिणसासणं सुइरं ।। ८ ।।

जं—यत् । **आलीणा**—आलीना आश्रिताः । **जीवाः**—प्राणिनः । **तरंति**—प्लवंते पारं गच्छंति । **संसारसायरं**—संसरणं संसारः स एव सागरः समुद्रः संसारसागरस्तं । **अणंतं**—न विद्यतेऽन्तो यस्यासौ अनन्तस्तं अपर्यन्तं । **तं**—तत् । **सव्वजीवसरणं**—सर्वे च ते जीवाश्च सर्वजीवास्तेषां शरणं सर्वजीवशरणं । **णंददु**—नन्दतु वृद्धिं गच्छतु । **जिणसासणं**—जिनशासनं । **सुइरं**—सुचिरं सर्वकालं । यज्जिनशासनमाश्रिताः जीवाः संसारसागरं तरन्ति तत्सर्वजीवशरणं नन्दतु सर्वकालं, यदनुष्ठानान्मुक्तिर्भवति तस्यैव नमस्कारकरणं योग्यमिति ।। ८ ।।

आराधनाफलार्थमाह—

जा गदी अरहंताणं णिट्ठिदट्ठाणं च जा गदी ।
जा गदी वीदमोहाणं सा मे भवदु सस्सदा[1] ।। ९ ।।

व्याख्यातार्था गाथेयं । अर्हतां च या गतिः निष्ठितार्थानां वीतमोहानां च या गतिः सा मे भवतु सर्वदा नान्यद्याचेऽहमिति ।। ९ ।।

भावार्थ—अभ्यंतर—बाह्य परिग्रह का, चतुर्विध आहार का, बहुरि शरीर—कायावत् जोवत्याग सो उत्तमार्थ त्याग कहिए। इहां जल मात्र का भी ग्रहण नांही हैं।

आगैं आगम का माहात्म्य देखि उपज्या है हर्ष जाकैं, ऐसा जो क्षपक, ऐसे नमस्कार करैं हैं सो कहै हैं—

अर्थ—यत् कहिए—जा, जिनशासन नैं, आलीना जीवाः कहिये—आश्रय भए जीव हैं, ते, अनंत कहिये नांही विद्यमान है अन्त जाके ऐसो अपर्यंत, संसार सागर कहिए पंच परावर्तन रूप संसार सो ही भया समुद्र ताहि, तरंति कहिए—तरैं है, पार को प्राप्त होय हैं ऐसा। बहुरि सर्व जीवनि कौ शरण—सहाय ऐसा, जो जिनशासन है। केवली-श्रुतकेवली भाषित आगम सो सुचिरं कहिए—सर्वकाल, नंदतु-वृद्धि कौं प्राप्त होहु ।। ८ ।।

भावार्थ—मन, वचन, काय, जिनआगम के स्तवन, नमस्कार विषैं प्रवर्तावैं, जाकैं अनुष्ठानतैं मुक्ति होय ताहि कौं नमस्कार करना योग्य है।

आगैं आराधना के फल कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—आगैं लिख्या है सो ही जाननां।

भावार्थ—जो अर्हंतनि की गति, जो सिद्धन की गति, जो वीतराग छद्मस्थनि की गति, सो सर्वकाल मेरी गति होहु। और मैं कछु जाचूं हूँ नांही। आराधना का फल एता ही चाहूँ हूँ ।। ९ ।।

---

१. यह गाथा इसी ग्रन्थ के द्वितीय अधिकार में गाथा क्रम सं० ७१ पर भी आ चुकी है।

सर्वसंगपरित्यागं कृत्वा, चतुर्विधाहारं च परित्यज्य जिनं हृदये कृत्वा किमर्थं म्रियते चेदतः प्राह—

एगं पंडिय[1]मरणं छिंदइ जाईसयाणि[2] बहुगाणि ।
तं मरणं मरिदव्वं जेण मदं सुम्मदं होदि ॥ १० ॥

इयं[3] च व्याख्यातार्था गाथेति । यतः एकं पंडितमरणं जातिशतानि बहूनि छिनत्ति येन च मरणेन न पुनर्म्रियते किन्तु सुमृतं भवति पुनर्नोत्पद्यते तन्मरणमनुष्ठेयमिति ॥ १० ॥

मरणकाले समाधानार्थमाह—

[4]**एगम्हि य भवग्गहणे समाहिमरणं लहिज्ज जदि जीवो ।**
सत्तट्ठभवग्गहणे णिव्वाणमणुत्तरं लहदि ॥ ११ ॥

एकस्मिन् भवग्रहणे समाधिमरणं यदि लभते जीवस्ततः सप्ताष्टभवग्रहणेषु व्यतीतेषु निश्चयेन निर्वाणमनुत्तरं लभते यतस्ततः समाधिमरणमनुष्ठीयते इति । शरीरे सति जन्मादीनि दुःखानि यतस्ततः सुमरणन शरीरत्यागः कर्तव्यः ॥ ११ ॥

आगैं कोउ पूछै कि सर्व संग का परित्याग करि, च्यारि प्रकार आहार का परित्याग करि, जिनदेव कौ हृदय विषैं धारि मरण करिये—याका फल कहा ? अैसा प्रश्न होतैं कहै हैं—

अर्थ—याका आगैं व्याख्यान कीया है तहां तैं जाननां ।

भावार्थ—एक हु पंडितमरण सैकरा (सैकड़ों) जन्मनिका दूर करण हारा है । तातैं मरण अैसा करिये जातैं फेरि भव-धारण नांही होय, अैसा मरण सो सुमृत कहिए, भला मरण है । इसही प्रयोजन कैं अर्थि पूर्वोक्त प्रकार त्यागकरि मरण करनां ॥ १० ॥

आगैं मरणकाल कै विषैं समाधान कै अर्थि कहै हैं—समाधिमरण के लाभ—

अर्थ—यदि कहिए—जो, जीवः कहिये—यहु जीव है सो, एकस्मिन् भवग्रहणे कहिये—एकहू पर्याय विषैं, समाधिमरणं कहिये समाधि[5]मरण नैं, लभते कहिये प्राप्त होय तो सप्ताष्टभवग्रहणेषु कहिये—सात-आठ भव रूप पर्याय, वितीत भए, अनुतरं कहिए—नांही हैं बहुरि उत्तरभव जहां अैसा जो, निर्वाण कहिए—मोक्ष ताहि, लभते कहिए पावै हैं ।

भावार्थ—जो भावलिंगी विधिपूर्वक सन्यासमरण करै हैं सो सात-आठ भव वितीत भए मोक्ष होय जाय है । बहुत काल संसार में नांही भ्रमै है ॥ ११ ॥

१. अ ब प्रतियों में 'पंडिद' पाठ है । २. अ ब प्रतियों में छिददि जादी सदाणि । ३. यह गाथा इसी ग्रन्थ के द्वितीय अधिकार में क्रमांक ४१ पर आ चुकी है । ४. देखें द्वितीय अधिकार गाथा ६१ । ५. ब प्रति में 'सन्यास' शब्द है ।

कानि जन्मादीनि दुःखानीत्याह—

णत्थि भयं मरणसमं जम्मणसमयं ण विज्जदे दुक्खं ।
जम्मणमरणादंकं छिंदि मर्मात्ति सरीरादो ॥ १२ ॥

मरणसमं—मृत्युसदृशं भयं जीवस्य नान्यत्, जन्मनोत्पत्त्या समकं च दुःखं च न विद्यते । यतोऽतो जन्ममरणान्तकं । **छिंदि**—विदारय । शरीरतश्च ममत्वं छिंधि । शरीरे सति यतः सर्वमेतदिति ॥ १२ ॥

त्रीणि प्रतिक्रमणानि आराधनायामुक्तानि तान्यत्रापि संक्षिप्ते काले सम्भवन्तीत्याह—

पढमं सव्वदिचारं बिदियं तिविहं भवे पडिक्कमणं ।
पाणस्स परिच्चयणं जावज्जीवायमुत्तमट्ठं च ॥ १३ ॥

क्रमप्रतिपादनार्थं चैतत् । **पढमं**—प्रथमं । **सव्वदिचारं**—सर्वातिचारस्य तपःकालमाश्रित्य दोषविधानस्य । **विदियं**—द्वितीयं । **तिविहं**—त्रिविधाहारस्य । **भवे**—भवेत् । **पडिक्कमणं**—प्रतिक्रमणं । परिहरणं । **पाणस्स**—पानकस्य । **परिच्चयणं**—परित्यजनं । **यावज्जीवाय**—यावज्जीवं । **उत्तमट्ठं य**—उत्तमार्थं च तन्मोक्षनिमित्तमित्यर्थः । प्रथमं तावत्सर्वातिचारस्य प्रतिक्रमणं, द्वितीयं प्रतिक्रमणं त्रिविधाहारस्य, तृतीयमुत्तमार्थं पानकस्य परित्यजनं यावज्जीवं चेति तस्मिन् काले त्रिविधं प्रतिक्रमणमेव न केवलं किन्तु योगेन्द्रियशरीरकषायाणां च । तत्र त्रिविधस्य

आगै इस शरीर कौं होतैं संतैं जन्मादिक केई दुख होय हैं, तातैं समाधिमरण करि इस शरीर का त्याग करनां—अैसैं कहै हैं।

अर्थ—मरणसमं भयं कहिये—जीव कै मृत्यु सारिखा और भय नांही है। बहुरि जन्मना समकं दुःखं कहिए—जन्म समान अन्य दुख नांही है। तातैं जन्ममरणांतकं कहिये—जन्म-मरण रूप महाव्याधि है। ताहि छिंधि कहिये—छेदि-विदारण करि बहुरि याहि कैं अर्थि शरीरतः कहिये शरीरस्थको, ममत्व है ताहि छेदि, जातैं[1] शरीर के होयतैं यह सर्व दुःख है॥ १२ ॥

भावार्थ—जीव कै जन्ममरण रूप बड़ा रोग है। तिसका शरीर विषै ममत्व करनां निदान, मूल-कारण हैं। यातैं इस शरीर का बुद्धिपूर्वक सन्यास विधि करि ममत्व छोड़ि त्याग किए जन्ममरण रूप महारोग मिटै हैं।

आगैं कहै हैं कि आराधना विषै तीन प्रतिक्रमण कहै हैं। ते इहाँ संक्षेप काल विषैं भी संभव हैं—

अर्थ—अनुक्रम प्रतिपादन कै अर्थि यह कहै है—प्रथम तो सर्वातिचार प्रतिक्रमण है। दीक्षा ग्रहणतैं लगा इस समस्त, तपश्चरण का कालनैं आश्रयकरि जे दोष अतीचार लागै होय तिनिका शोधन करनां। बहुरि दूसरा त्रिविध प्रतिक्रमण हैं सो जल बिना तीन प्रकार आहार का त्याग कीया ताका अतीचार शोधन करना। तीसरा उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है सो यावज्जीवन पाणि (जल) का भी त्याग करि उत्तमार्थ त्याग कीया, ताके दोष का शोधन करना यह उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है। सो मोक्ष का निमित्त हैं।

१. ब प्रति में यह वाक्य नहीं है।

योगस्य निग्रहो योगप्रतिक्रमणं, पंचेन्द्रियाणां च निग्रह इन्द्रियप्रतिक्रमणं, पंचविधस्य च शरीरस्य च त्यागः कृशता वा शरीरप्रतिक्रमणं, षोडशविधकषायस्य नवविधस्य च नोकषायस्य निग्रहः कृशता कषायप्रतिक्रमणं, हस्तपादानां च ।। १३ ।।

ननु कषायशरीरसल्लेखना आराधनायां आगमे कथिता, एतेषां पुनर्योगेन्द्रियहस्तपादानां न श्रुता, नैतत्, एतेषां चागमेऽस्तीत्याह—

पंचवि इंदियमुंडा वचमुंडा हत्थपायमणमुंडा ।
तणमुंडेण वि सहिया दस मुंडा वण्णिया समए ।। १४ ।।

पंचानामपि इन्द्रियाणां मुण्डनं खण्डनं स्वविषयव्यापारान्निवर्तनं । **वचिमुण्डा**—वचनस्याप्रस्तुतप्रलापस्य खण्डनं । हस्तपादमनसां वाऽसंस्तुतसंकोचप्रसारणचिन्तननिवर्तनं ततः शरीरस्य च मुण्डनं एते दश मुण्डाः समये वणिता यतो न स्वमनीषया व्याख्यानमेतदिति । अथवा एतैर्मुण्डैर्मुण्डधारी भवति नान्यैः सावद्यैरिति ।। १४ ।।

इत्याचारवृत्तौ वसुनन्दिविरचितायां तृतीयः परिच्छेदः ।। ३ ।।

इहां अैसा जाननां तिस काल में केवल तीन प्रकार ही प्रतिक्रमण नांही है। योग, इंद्रिय, शरीर, कषाय, हस्त-पाद--इनका भी प्रतिक्रमण है। इनका स्वरूप कहै है—मन, वचन, काय के योगनिका निग्रह सो योग प्रतिक्रमण कहिये।

ये पंच प्रकार के शरीर का त्याग अथवा क्षीणता सो शरीर-प्रतिक्रमण कहिये। बहुरि सोलह प्रकार कषाय का, नव प्रकार नौ कषाय का निग्रह अथवा क्षीणता सो कषाय प्रतिक्रमण कहिये। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र—इन पंच इंद्रियन का निग्रह सो इंद्रिय प्रतिक्रमण कहिये[1]। हाथ-पगनि को क्रिया न करना सो हस्तपाद प्रतिक्रमण कहिये ।। १३ ।।

इहां कोई प्रश्न करे कि आराधना विषै कषायसल्लेखना, शरोर सल्लेखना सो आगम विषै कहैं हैं, अर योग, इंद्रिय, हस्तपाद--इनकी तो सल्लेखना आगम में सुनी नांही ? ताका समाधान करै है कि अैसे नांही, इनका भी त्याग आगम में कह्या है सो ही कहिये हैं—

अर्थ—पांच इन्द्रियन का मुंडन कहिये खंडन अथवा अपनैं अपनैं, विषयनि विषैं व्यापार तैं छुड़ावना तैं पांच इन्द्रिय मुंड कहिए। स्पर्शन इंद्रिय का स्पर्श विषैं व्यापार का रोकना सो स्पर्शन-इंद्रिय-मुंड कहिए। बहुरि रसना इंद्रिय का रस विषैं व्यापार का रोकना सो रसनैंद्रिय मुंड कहिए। बहुरि घ्राणैंद्रिय का गंध विषैं व्यापार रोकना सो घ्राणैंद्रिय मुंड कहिए। बहुरि चक्षुइंद्रिय का वर्ण विषैं व्यापार का रोकना सो चक्षुइंद्रिय मुंड कहिए। बहुरि श्रोत्रैंद्रिय का शब्द विषैं व्यापार का रोकना सो श्रोत्रैंद्रिय मुंड कहिए। अैसे पंचइंद्रिय मुंड जाननें। बहुरि बिना प्रस्ताव, बिना प्रयोजन वचन नांहो बोलना सो वाक् मुंड कहिए। बहुरि हाथनिका अप्रशस्त संकोचना, विस्तारना न करिए सो हस्तमुंड कहिए। बहुरि पादनिका अप्रशस्त संकोच विस्तार न करि एसो पाद मुंड कहिए।

बहुरि मन विषैं अप्रशस्त चिंतन नांही करैं सो मनोमुंड कहिए। बहुरि शरीर का अप्रशस्त चेष्टा नांही करैं सो

१. ब प्रति में यह पंक्ति यहाँ से निकाल कर बाद में रखी गई है।

शरीर मुंड, कहिए। ऐसे दस मुंड, समय जो जिन-आगम तामैं वर्णन किए हैं। यह व्याख्यान अपनी बुद्धि तैं नांही किया अथवा इनि मुंडनि तैं मुंडधारी होय हैं, अन्य सावद्य रूप मुंडनि करि मुंडधारी नांही ॥ १४ ॥

ऐसे आचार्य श्री वट्टकेरस्वामी विरचित मूलाचार नाम प्राकृत ग्रन्थ को वसुनंदि सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित आचार-वृत्ति नाम संस्कृत टीका कैं अनुसार यह देशभाषामय वचनिका विषैं संक्षेपतर प्रत्याख्यान हैं नाम जाका—ऐसा तृतीय अधिकार समाप्त भया।

यहां पर्यंत गाथा सूत्र एक सौ इक्कईस १२१ भये। अैसें अति निकट हैं मृत्यु जाकैं अैसें मुनि के अर्थि संक्षेप रूप प्रत्याख्यान का व्याख्यान किया।

४. सामाचाराधिकारः

एवं संक्षेपस्वरूपं प्रत्याख्यानमासन्नतममृत्योर्व्याख्याय यस्य पुनः सत्यायुषि निरतिचारं मूलगुणा निर्वहंति तस्य कथं प्रवृत्तिरिति पृष्टे तदर्थं चतुर्थमधिकारं सामाचाराख्यं नमस्कारपूर्वकमाह—

तेलोक्कपूयणीए अरहंते वंदिऊण तिविहेण ।
वोच्छं सामाचारं समासदो आणुपुव्वीयं ।। १ ।।

तेलोक्कपूयणीए—त्रयाणां लोकानां भवनवासिमनुष्यदेवानां पूजनीया वन्दनीयास्त्रिलोकपूजनीयास्तान् त्रिकालग्रहणार्थमनीयेन निर्देशः । **अरहंते**—अर्हतः घातिचतुष्टयजेतॄन् । **वंदिऊण**—वन्दित्वा । **तिविहेण**—त्रिविधेन मनोवचनकायैः । **वोच्छं**—वक्ष्ये । **सामाचारं**—मूलगुणानुरूपमाचारं । **समासदो**—समासतः संक्षेपेण 'कायाः' तस् । **आणुपुव्वीयं**—आनुपूर्व्या अनुक्रमेण । त्रिविधं व्याख्यानं भवति पूर्वानुपूर्व्या, पश्चादानुपूर्व्या यत्र तत्रानुपूर्व्या च । तत्र पूर्वानुपूर्व्या ख्यापनार्थमानुपूर्वीग्रहणं क्षणिकनित्यपक्षनिराकरणार्थं च । क्त्वान्तेन नमस्कारकरणपूर्वकं प्रतिज्ञाकरणं । अर्हतस्त्रिलोकपूजनीययांस्त्रिविधेन वन्दित्वा समासादानुपूर्व्या समाचारं वक्ष्ये इति ।। १ ।।

---

४. सामाचाराधिकार

आगैं आयु:, बल विद्यमान होत संतैं जाकैं अतीचार रहित मूलगुणनि का निर्वाह होय है ताकी प्रवृत्ति कैसैं होय ? ऐसा प्रश्न होत संते ताका समाधान कै अर्थि नमस्कारपूर्वक चौथा सामाचार नाम अधिकार कहै है—

अर्थ—त्रिलोक कहिए—भवनवासी, मनुष्य, देव-तिनिकै पूजनीय कहिए—तीन काल वंदिबे योग्य, ऐसे जे अरहंत च्यारि घातिया कर्मनिके जीतन हारे, अनन्तचतुष्टय विराजमान, तिनहि त्रिविधेन कहिए—मन, वचन, कायकरि, वंदित्वा कहिए—वंदना, स्तवन करि, समासतः कहिए—संक्षेपकरि सामाचारनामाधिकार है। ताहि आनुपूर्व्या[1] कहिए—अनुक्रम करि, वक्ष्ये—कहिए, कहौंगा।

इहां मूलगुणनि के अनुरूप कहिए सदृश जो आचार सो समाचार कहिए हैं। ताकी निरुक्ति आगैं-करहिंगे। बहुरि समासतः ऐसा इहां पद है तामैं जैनेन्द्र व्याकरेण कै अनुसार का कहिए, पंचमी विभक्ति ताका तस ऐसा आदेश कीया हैं। बहुरि व्याख्यान तीन प्रकार है—एक तो पूर्वानुपूर्व्वी करिए, एक पश्चादानुपूर्वी करिए, एक यत्रतत्रानुपूर्वी करि। इहां गाथा विषै आनुपूर्वीपद है ताका पूर्वानुपूर्वी ऐसा अर्थ जानना। ऐसैं[2] पूर्वाचार्यानिकी परिपाटी का अनुक्रमतैं चाल्या आया। तिसही अनुक्रमकरि व्याख्यान करूंगा।

बहुरि इहां वंदित्वा ऐसे पद मैं क्त्वा प्रत्यय करि[3] पूर्वकाल मैं नमस्कार कीया पीछैं अधिकार कहनैं की प्रतिज्ञा करी, सो क्षणिक-नित्यपक्ष का निराकरण कै अर्थि करी है। जे सर्व्वथा आत्माकूं क्षणिक मानैं है, तिनिकैं पहलै क्षण नमस्कार करि विनशि जाय, ता पीछैं दूसरैं क्षण प्रतिज्ञा करणाँ वणैं नांही। ऐसे सर्वथा क्षणिकवादी कै अर्थि क्रिया वणैं नांही। बहुरि जे आत्मा कूं सर्व्वथा नित्य कूटस्थ निर्विकार मानैं हैं, तिनिकै पहलै क्षण वंदना-पर्याय, दूसरै क्षण **प्रतिज्ञा** करनैं रूप **पर्याय** बनै नांही। सर्वथा

१. 'ब' प्रति में 'आनुपूर्व' पाठ है। २. 'अ' प्रति में 'जैसे' पाठ है। ३. 'ब' प्रति में 'कहि' पाठ है।

सामाचारशब्दस्य निरुक्त्यर्थं संग्रहगाथासूत्रमाह—

समदा सामाचारो सम्माचारो समो व आचारो ।

सव्वेसिं सम्माणं समाचारो दु आचारो ।। २ ।।

चतुर्भिरर्थैः सामाचारशब्दो व्युत्पाद्यते, तद्यथा—**समदासामाचारो**—समस्य भावः समता रागद्वेषाभावः स समाचारः अथवा त्रिकालदेववन्दना पंचनमस्कारपरिणामो वा समता, सामायिकव्रतं वा । **सम्माचारो**—सम्यक् शोभनं निरतिचारं, मूलगुणानुष्ठानमाचरणं समाचारः सम्यगाचारः अथवा सम्यगाचरणमवबोधो निर्दोषभिक्षाग्रहणं वा समाचारः, चरेर्भक्षणगत्यर्थत्वात् । **समो व आचारो**—समो व आचारः पंचाचारः । **सव्वेसिं**—सर्वेषां प्रमत्ताप्रमत्तादीनां सर्वेषां यतीनामाचारः । समो प्राणिबधादिभिर्यत्नोऽतः समाचारः । अथवा सम उपसमः क्रोधाद्यभावस्तेन परिणामेनाचरणं समाचारः । समशब्देन दशलाक्षणिकधर्मो गृह्यते स समाचारः । अथवा भिक्षाग्रहणदेववन्दनादिभिः सह योगः **समाचारः**। **सम्माणं**—सह मानेन परिणामेन वर्तते इति समानं सहस्य सः, समानं वा मानं, समानस्य सभावः । अथवा सर्वेषां समानः पूज्योऽभिप्रेतो वा आचारो यः स समाचारः । अथवा समदा सम्यक्त्वं, **सम्माचारो**—चारित्रं, समाणं—ज्ञानं, समो वा आचारो—तपः । एतेषां सर्वेषां योऽयं

नित्यवादी के अर्थक्रिया वणै नांही । तातैं जे स्याद्वादी अनेकांती हैं तीनिकैं द्रव्यार्थिक नयकरि आत्मा नित्य है पर्यायार्थिक नयकरि आत्मा अनित्य है । तातैं क्रम यौगपद्यकरि[1] अर्थक्रिया वणै—अैसा अभिप्राय जानना ।। १ ।।

आगे सामाचार शब्द की निरुक्ति कै अर्थि संग्रह गाथासूत्र कहै हैं—

अर्थ—च्यारि अर्थनि करि सामाचार शब्द की व्युत्पत्ति करिए है, सो ही कहिए हैं । प्रथम तौ—समता है सो समाचार है । समभाव का नाम समता है । यातैं यहु अर्थ भया—"राग-द्वेष का अभाव है" सो समाचार है अथवा त्रिकाल देववंदना, पंचनमस्कार मैं परिणाम सो समता कहिए याही का नाम सामाचार[2] है । अथवा सर्व्वसावद्ययोग का त्यागरूप सामायिक व्रत सो ही समाचार है ।

बहुरि दूसरा अर्थ—'सं' कहिए सम्यक् आचार सो सामाचार है, समाचार सो ही सामाचार है । याका अर्थ सम्यक् कहिए—शोभन, अतिचार रहित जो आचार कहिए मूलगुणनिका अनुष्ठान सो समाचार है । अथवा सम्यक् जो आचरण कहिए अवबोध-ज्ञान सो सामाचार कहिए । इहां चरगति[3] भक्षणयोः अैसा धातु का आचरण शब्द सिद्धकरि गति अर्थ का ग्रहणतैं ज्ञान अर्थ लीया है । बहुरि सम्यक् आचरण कहिए, निर्दोषभिक्षा ग्रहण सो समाचार कहिए । इहां चरगति भक्षणयोः इसही धातु का आचरण शब्द सिद्धकरि भक्षण अर्थ ग्रहण कीया है ।

बहुरि तीसरा अर्थ—सम जो आचार सो समाचार कहिए, समाचार सो ही सामाचार जाननां । इहां पंचाचार का नाम सामाचार जाननां । सर्व्व जे प्रमत्त, अप्रमत्तादिक मुनि तिनिकै समान अहिंसादिक रूप आचार सो सामाचार कहिए । अथवा सम कहिए—उपशमभाव क्रोधादिक का अभाव, दशलक्षणीक धर्म रूप समपरिणाम करि जो आचरण सो समाचार कहिए । अथवा भिक्षा-ग्रहण, देव-वंदना इत्यादिक करि सहयोग कहिए[4] साथि जानां, आवनां सो समाचार कहिए ।

---

१. 'ब' प्रति में अयोगपद्यकरि । २. ब प्रति में 'समाचार' । ३. ब प्रति में 'चारणति' पाठ है । ४. 'ब' प्रति में साथ जाना है ।

समाचारः ऐक्यं स समाचारः, आचारो वा समाचारः । यस्तु समाचारः स आचार एवेत्यविनाभावः । अथवा पञ्चभिरर्थैर्निर्देशः **समदा** समरसीभावः समयाचारो—स्वसमयव्यवस्थयाचारः, **सम्माचारो**—सम्यगाचारः, समो वा सहाचरणं । सः **सव्वेसु**—सर्वेसु क्षेत्रेषु **समाणं**—समाचारः । संक्षेपार्थं [1]समताचारः सम्यगाचारः, समो य आचारो वा सर्वेषां स समाचारो हानिवृद्धिरहितः, कायोत्सर्गादिभिः समानं मानं यस्याचारस्य स वा समाचार इति ॥ २ ॥

अस्यैव समाचारस्य लक्षणभेदप्रतिपादनार्थमाह—

दुविहो समाचारो ओघो विय पदविभागिओ चेव ।
दसहा ओघो भणिओ अणेगहा पदविभागीय ॥ ३ ॥

दुविहो—द्विविधः द्विप्रकारः । **समाचारो**—सामाचारः सम्यगाचार एव समाचारः प्राकृतबलाद्वा दीर्घत्वमादेः । **ओघो विय**—औघिकः सामान्यरूपः । **पदविभागीओ**—पदानां अर्थप्रतिपादकानां विभागो भेदः स विद्यते यस्यासौ पदविभागिकश्च । एवकारोऽवधारणार्थः । स सामाचारः औघिक-पदविभागिकाभ्यां द्विविध एव ।

तयोर्भेदप्रतिपादनार्थमाह—**दसहा**—दशधा दशप्रकारः । **ओघो**—औघिकः । **भणिओ**—भणितः । **अणेयधा**—अनेकधाऽनेकप्रकारः । **पदविभागी य**—पदविभागी च । य औघिकः स दशप्रकारोऽनेकधा च पदविभागी ॥ ३ ॥

बहुरि चौथा **अर्थ—अथवा समान** कहिए परिणाम सहित अथवा सर्व क्षेत्रनि विषै सादृश परिणाम रूप अथवा सर्व के समान कहिए पूज्य अभिप्रेत अैसा समान जो आचार सो सामाचार कहिए, अथवा समता कहिए सम्यक्त्व सम्यग्, आचार कहिए चारित्र, समान कहिए ज्ञान सम, आचार कहिए तप—इनि सबनि की एकता सो सामाचार कहिए । अथवा आचार सो ही सामाचार कहिए । जातैं समाचार आचार कै अविनाभाव है । अथवा पाँच अर्थनि करि निर्देश करै हैं । एक तौ समता कहिए समरसी भाव सो समाचार है । दूसरा समाचार कहिए अपने आगम की मर्यादा करि आचार सो समाचार कहिए । तीसरा सम्यक् कहिए निर्दोष आचार सो समाचार कहिए । चौथा सम कहिए सर्वमुनिनि कै समान आचार सो समाचार कहिए । पाँचवा सर्व क्षेत्रनि विषै समान हानि-वृद्धि रहित कायोत्सर्गादिक करि समान जो आचार सो समाचार कहिए ॥ २ ॥

आगैं याही समाचार केवल क्षणभेद का प्रतिपादन कै अर्थि कहैं हैं ।

अर्थ—सामाचार कहिए समाचार है, सो दोय प्रकार हैं । याका नाम संस्कृत मैं समाचार भो कह्या है । सं कहिए सम्यक् अैसा जो आचार सौ समाचार, याके स्वार्थ मैं प्रत्यय कोए सामाचार शब्द भो होय है । अर्थ भेद है नांही । अथवा संस्कृत मैं समाचार शब्द है ताका प्राकृतभाषा के बलतैं आदि स्वर कूं दोर्घकरि सामाचार कहिए । सो समाचार एक तौ औघिकः कहिए सामान्य रूप है । बहुरि पदविभागी कहिए पदनिका है विभाग जामै अैसा, विशेष रूप है । इहां एव शब्द का नियम अर्थ जाननां । सामाचार दोय प्रकार हो है अैसा नियम जाननां । तहां औघिक समाचार दस प्रकार कह्या है । बहुरि पद विभागिक समाचार अनेक प्रकार कह्या है ॥ ३ ॥

१. क समता समाचारः ।

आद्यस्य ये दशप्रकारास्ते केऽतः प्राह—

इच्छा-मिच्छाकारो तधाकारो व आसिआ णिसिही ।
आपुच्छा पडिपुच्छा छंदणसणिमंतणा य उवसंपा ॥ ४ ॥

इच्छामिच्छाकारो—इच्छामभ्युपगमं करोतीति इच्छाकार आदरः, मिथ्या व्यलीकं करोतीति मिथ्याकारो विपरिणामस्य त्यागः, एकस्य कारशब्दस्य निवृत्तिः, समासान्तस्य वा[1] कृदुत्पत्तिः । **तधाकारो य**—तथाकारश्च सदर्थे प्रतिपादिते एवमेव वचनं । **आसिया**—आसिका आपृच्छ्य गमनं । **णिसिही**—निषेधिका परिपृच्छ्य प्रवेशनं । **आपुच्छा**—आपृच्छा स्वकार्यं प्रति गुर्वाद्यभिप्रायग्रहणं । **पडिपुच्छा**—प्रतिपृच्छा निषिद्धस्य अनिषिद्धस्य वा वस्तुनस्तद्ग्रहणं प्रति पुनः प्रश्नः । **छंदण**—छन्दनं छन्दानुवर्तित्वं यस्य गृहीतं किंचिदुपकरणं तदभिप्रायानुवर्तनं । **सणिमंतणा य**—सनिमंत्रणा च सत्कृत्य याचनं च । **उपसंपा**—उपसम्पत् आत्मनो निवेदनं । नायं पृच्छाशब्दोऽपशब्दः[2] । उत्सर्गापवादसमावेशात् । एतासामिच्छाकारमिथ्याकार-तथाकारासिका-निषेधिकापृच्छा-प्रतिपृच्छा-छन्दन-सनिमंत्रणोपसम्पदां को विषय इत्यत आह—गाथात्रयेण सम्बन्धः ॥ ४ ॥

इट्ठे इच्छाकारो मिच्छाकारो तहेव अवराहे ।❀
पुडिसुणणह्मि[3] तहत्तिय णिग्गमणे आसिया भणिया ॥ ५ ॥
पविसंते य[4] णिसीही आपुच्छणियासकज्ज आरंभे ।
[5]साधम्मिणा य गुरुणा पुव्वणिसिट्ठह्मि पडिपुच्छा ॥ ६ ॥

आगै औधिक समाचार दश प्रकार कह्या, तिनिही कूं कहै है—

अर्थ—इच्छा कहिए अभ्युपगम करै, आदर करैं, मानैं सो **इच्छाकार** कहिए। बहुरि मिथ्या कहिए—असत्य करै, विरुद्ध परिणाम का त्याग करैं सो मिथ्याकार कहिए। बहुरि 'तथा' कहिए भला अर्थ प्रतिपादन कीए संतैं—अैसे ही है, अैसा कहना सो **तथाकार** कहिए। बहुरि पूछिकरि गमन करना सो **आसिका** कहिए। बहुरि पूछि करि प्रवेश करना सो **निषेधिका** कहिए। बहुरि अपनैं कार्य करणैं प्रति गुरु आदिक का अभिप्राय लेनां सो **अपृच्छा** कहिए। बहुरि कोउ वस्तु लेने का निषेध होय अथवा निषेध नांही कीया होय ताकैं लैंने कूं फेरि प्रश्न करैं सो **प्रतिपृच्छा** कहिए बहुरि जाका किंचित् धर्मोपकरण ग्रहण कीया होय ताका अभिप्राय कै अनुकूल वर्तना सो **छंदन** कहिए। बहुरि आदर सत्कार करि पुस्तकादिक का याचना करनां सो **सनिमंत्रणा** कहिए। बहुरि गुरु आदिक कूं अपनां निवेदन करनां—'जो मैं आपका हूं' सो **उपसंपत** कहिए।

आगैं ए १. इच्छाकार, २. मिथ्याकार, ३. तथाकार, ४. आसिका, ५. निषेधिका, ६. आपृच्छा, ७. प्रतिपृच्छा, ८. छंदन, ९. सनिमंत्रणा, १०. उपसंपत—अैसे कहे जे दश प्रकार औधिक समाचार तिनिका विषय कह्या, सो तीन गाथा करि कहै हैं ॥ ४ ॥

१. क वा सकृ° ।   २. क °ब्दो उपशब्दः उपसर्ग उत्स° ।   ❀ अ. ब प्रतियों में "अवराधे" पाठ है ।
३. अ. ब. एवं आ० वसुनन्दि टीका में 'पडिसुणणंहि' पाठ है ।   ४. अ, ब प्रति में 'अ' पाठ है ।   ५. क साहम्मि° ।

छंदणगहिदे दव्वे अगिहदव्वे[1] णिमंतणा भणिदा।
तुह्ममहंतिगुरुकुले आदाणिसग्गो दु उदसंपा ॥ ७ ॥

इट्ठे—इष्टे सम्यग्दर्शनादिके शुभपरिणामे वा। **इच्छाकारो**—इच्छाकारोऽभ्युपगमो हर्ष स्वेच्छया प्रवर्तनं। **मिच्छाकारो**—मिथ्याकारः कायमनसा निवर्तनं। **तहेव**—तथैव। क्व, **अवराहे**—अपराधेऽशुभपरिणामे व्रताद्यतिचारे। **पडिसुणणंहि**—प्रतिश्रवणे सूत्रार्थग्रहणे, **तहत्ति य**—तथेति च यथैव भवद्भिः प्रतिपादितं तथैव नान्यथेत्येवमनुरागः। **णिग्गमणे**—निर्गमने गमनकाले॰। **आसिआ**—आसिका देवगृहस्थादीन् परिपृच्छ्य यानं[2] पापक्रियादिभ्यो मनो निर्वर्तनं वा। **भणिया**—भणिताः कथिताः। **पविसंते य**—प्रविशति च प्रवेशकाले। **णिसिही**—निषेधिका तत्रस्थानाभ्युपगम्य[3] स्थानकरणं सम्यग्दर्शनादिषु स्थिरभावो वा। **आपुच्छणिवा य**—आपृच्छनीयं च गुर्वादीनां वन्दनापूर्वकं प्रश्नकरणं। **सकज्जआरंभे**—स्वस्यात्मनः कार्यं प्रयोजनं तस्यारम्भ आदिक्रिया स्वकार्यारम्भस्तस्मिन् पठनगमनयोगादिके। [4]**साधम्मिणा य**—समानो धर्मोऽनुष्ठानं गुरुर्वा यस्यासौ सधर्मा तेन सधर्मणा च। **गुरुणा**—दीक्षाशिक्षोपदेशकर्त्रा तपोऽधिकज्ञानाधिकेन वा, **पुव्वणिसिट्ठिम्हि**—पूर्वस्मिन्निसृष्टं प्रतिदत्तं समर्पितं

अर्थ—१. इष्ट **कहिए—**सम्यग्दर्शनादिक शुद्धपरिणाम अथवा व्रतादिक शुभ परिणाम, ता विषै मान्यता, हर्षभाव अपनी इच्छा तैं प्रवर्तन करणां सो इच्छाकार कहिए।

२. बहुरि अपराध कहिए अशुभ परिणाम, व्रतादिक विषै अतीचार, ता विषै काय, वचन, मन की निवृत्ति का करनां। मिथ्या शब्द कहनां, सो मिथ्याकार कहिए।

३. बहुरि प्रतिश्रवण कहिए सूत्र कै अर्थ का ग्रहण विषै जैसें अपनैं प्रतिपादन कीया 'तैंसें ही हैं' 'अन्यथा नांहो'—अैसें अनुराग सहित 'तथेति' कहना सो तथाकार कहिए।

४. बहुरि निर्गमने कहिए—जहां विराजे होय तहांतैं गमन करतै देवता, गृहस्थ आदिकनिकूं पूछिकरि गमन करनां अथवा पाप क्रियादिकतैं मन को निवृत्ति का करनां सो **आसिका** कही है।

५. बहुरि नवीन स्थान प्रवेश करता तहां तिष्ठते होहि तिनिकूं पूछि करि प्रवेश करनां, तिनिकूं पूछि करि स्थान करनां अथवा सम्यग्दर्शनादिक विषै थिरभाव सो **निषेधिका** कहिए।

६. बहुरि अपनै कार्य प्रयोजन का आरंभ करतैं, पठन करतैं, कहीं गमन करतैं, आतापनादियोग धरतैं—इत्यादिक विषैं गुरु आदिक कूं वंदनापूर्वक प्रश्न करना सो आपृच्छनीय कहिए तथा **आपृच्छा** कहिए।

७. बहुरि समान है धर्म कहिए—अनुष्ठान, आचरण जाका सो साधर्मी कहिए अथवा समान है गुरु जाका सो साधर्मी कहिए तथा दीक्षा कहिए—प्रथम व्रत ग्रहण ताका करावनैं वाला तथा, शिक्षा कहिए—शास्त्राभ्यास ताका करावनें वाला तथा उपदेश कहिए—धर्मोपदेश ताका करनें वाला तथा तपकरि अधिक बड़ा तपस्वी तथा ज्ञानकरि अधिक बहुज्ञानी—अैसा जो होय

---

१. अ. ब प्रतियों में 'अगहिदव्वे' पाठ है। २. गमनम्। ३. अविराधयित्वा। ४. क साहम्मिणा।

यद्वस्तूपकरणादिकं तस्मिन् पूर्वनिसृष्टे वस्तुनि पुनर्ग्रहणाभिप्राये। **पडिपुच्छा**—प्रतिपृच्छा पुनः प्रश्नः। **छंदणं**—छंदनं छंदो वा तदभिप्रायेण सेवनं, **गहिदे**—गृहीते द्रव्ये पुस्तकादिके। **अगहिदव्वे**—अगृहीतद्रव्ये अन्यदीयपुस्तकादिवस्तुनि स्वप्रयोजने जाते। **णिमंतणा**—निमंत्रणा सत्कारपूर्वकं याचनं गृहीतस्य विनयेन निवेदनं वा। **भणिदा**—भणिता। **तुम्हं**—युष्माकं। **अहंति**—अहमिति। **गुरुकुले**—आम्नाये त्वद्वृहत्पादमूले। **आवणिसग्गो**—आत्मनो निसर्गस्त्यागः तदानुकूल्याचरणं। **तु**—अत्यर्थवाचकः। **उवसम्पा**—उपसम्पत् ॥ ५-७ ॥

एवं दशप्रकारौधिकसामाचारस्य संक्षेपार्थं पदविभागिनश्च विभागार्थमाह—

ओघियसामाचारो एसो भणिदो हु दसविहो णेओ।
एत्तो य पदविभागो[1] समासदो वण्णइस्सामि ॥ ८ ॥

एष—औधिकः सामाचारो दशप्रकारोऽपि। **भणितः**—कथितः। **समासतः**—संक्षेपतो ज्ञातव्यो अनुष्ठेयो वा। **एत्तो य**—ईतश्चोर्ध्वं। पदविभागिनं समाचारं। **समासदो**—समासतः। **वण्णइस्सामि**—वर्णयिष्यामि। यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायादिति ॥ ८ ॥

उग्गमसूरप्पहुदी समणाहोरत्तमंडले कसिणे।
जं आचरंति सददं एसो भणिदो पदविभागो ॥ ९ ॥

सो गुरु कहिए। अैसे साधर्मी तथा गुरुनैं पूर्वे दीया, सौंप्या जो पुस्तकादिक उपकरण ता वस्तु विषैं फेरि ग्रहण का अभिप्राय होतैं फेरि पूछनां सो **प्रतिपृच्छा** कही है।

८. बहुरि ग्रहण कीया जो पुस्तकादिक उपकरण वस्तु ताकौं देनैं वाले का अभिप्राय कै अनुकूल राषणां (सेवन या उपयोग करना) सो **छंदन** कहिए।

९. बहुरि अन्य सम्बन्धी पुस्तकादिक वस्तु जो आपनैं ग्रहण कीया नांही ताका प्रयोजन होतैं सत्कारपूर्वक याचना करनां अथवा ग्रहण कीया ताकूं विनय पूर्वक राषणां सो निमन्त्रण कहिए तथा **सनिमंत्रणा** कहिए।

१०. बहुरि गुरुनिका कुल कहिए आम्नाय ताकै विषै अपनां समर्पण करना "मैं आपका हूं"—अैसैं कहि तिनिकै अनुकूल आचरण करना सो उपसंपत् कही हैं ॥ ५-७ ॥

अैसे दश प्रकार औधिक समाचार का संक्षेप अर्थ कही पदविभागिक समाचार का विभाग कै अर्थि कहै है—

अर्थ—एषः कहिए यहु औधिक सामाचार संक्षैपतैं दस प्रकार वर्णन कीया सो जानना तथा याका आचरण करनां अब यातैं ऊपरि पदविभागी सामाचार हैं ताहि समासतः कहिए संक्षेपतैं, वर्णयिष्यामि कहिए—कहौंगा, जातैं जिस अनुक्रम करि नाममात्र कथन रूप उद्देश[2] करिये। ताहि अनुक्रमकरि लक्षण का कथन रूप स्वरूप का निर्देश करिए—अैसा न्याय प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

---

१. अ. ब. में 'विदविभागी' पाठ है। २. ब प्रति में 'उपदेश' पाठ है।

उग्गमसूरप्पहुदी—उद्गच्छतीत्युद्गमः सूर आदित्यो यस्मिन् काले स **उद्गमसूर** उदयादित्यकालः, अथवा सूरस्योद्गमः उद्गमसूरः उद्गमस्य पूर्वनिपातः स प्रभृतिरादिर्यस्यासौ उद्गमसूरप्रभृतिस्तस्मिन्नुदयसूर्यादौ। **समणा**—श्राम्यंति तपस्यंतीति श्रमणा मुनयः। **अहोरत्तमंडले**—अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रस्तस्य मण्डलं सन्ततिरहोरात्रमंडलं तस्मिन् दिवसरात्रिमध्यक्षणसमुदये। **कसिणे**—कृत्स्ने निरवशेषे। **जं आचरंति**—यदाचरन्ति यन्नियमादिकं निर्वर्तयन्ति। **सददं**—सततं निरंतरं। **एसो**—एष प्रत्यक्षवचनमेतत्। **भणिओ**—भणितोऽर्हद्भट्टारकैः कथितः आप्तकर्तृत्वप्रतिपादनमेतत्। **पदविभागी**—पदस्यानुष्ठानं। उद्गमसूरप्रभृतौ कृत्स्नेऽहोरात्रमण्डले यदाचरन्ति श्रमणाः सततं स एष पदविभागीति कथितः। उत्तरपदापेक्षया पुल्लिगतेति न दोषो लिंगव्यत्ययः॥ ९॥

इष्टे वस्तुनीच्छाकारः कर्तव्य इत्युक्तं पुरस्तात् तत्किमित्याह—

संजमणाणुवकरणे अण्णुवकरणे च जायणे अण्णे।
जोगग्गहणादीसु य इच्छाकारो दु कादव्वो॥ १०॥

संजमणाणुवकरणे—संयम इन्द्रियनिरोधः प्राणिदया च ज्ञानं ज्ञानावरणक्षयोपशमोत्पन्नवस्तुपरिच्छेदात्मकप्रत्ययः श्रुतज्ञानं वा तयोरुपकरणं पिच्छिकापुस्तकादि तस्मिन् संयमज्ञानोपकरणहेतौ विषये वा। **अण्णुवकरणे च**—अन्यस्य तपःप्रभृतेरुपकरणं कुंडिकाहारादिकं तस्मिंश्च तद्विषये च। **जायणे**—याचने भिक्षणे। **अण्णे**—अन्यस्मिन् परविषये औषधादिके परनिमित्ते वा। अथवा[2] च द्रष्टव्यः। एतेषां याचने परनिमित्तमात्मनिमित्तं वा इच्छाकारः कर्तव्यः मनः प्रवर्तयितव्यं, न केवलमत्र किन्तु, **जोगग्गहणादिसु य**—योगग्रहणादिषु च आतापनवृक्षमूलाभ्रावकाशादिषु च किं वहुना शुभानुष्ठाने सर्वत्र परिणामः कर्तव्य इति॥ १०॥

अर्थ—उदय होय हैं सूर्य्य जामैं ऐसा जो काल सूर्य का उदयकाल सो है आदि जाकैं ऐसा जो अहोरात्र मंडल कहिए, साठि-साठि घड़ी रूप एक एक अहोरात्र तिनका मंडल कहिये संतान ता-विषैं समस्त विषैं जो नियमादिक निरंतर आचारण करैं सो इह प्रत्यक्ष रूप पदविभागी तथा पदविभागोक समाचार कह्या। ऐसैं इह समाचार का स्वरूप अर्हत् भट्टारककरि कह्या हुआ है। याका कर्ता आप्त सर्वज्ञ वीतराग हैं, किसी अल्पज्ञानी अपनी बुद्धि करि नांही कह्या है॥ ९॥

आगै औघिक सामाचार के दशभेद कहै तिनका स्वरूप विशेष निर्णय करै है। तहां प्रथम ही इष्ट वस्तु विषै इच्छाकार करनां कह्या, सो इष्ट वस्तु कह्या, सो हो कहै है—

अर्थ—संयम कहिये—इंद्रियनि का निरोध, बहुरि प्राणोनिकी दया, ताका उपकरण पिच्छिकादिक। बहुरि ज्ञान कहिए—ज्ञानावरणकर्म्म का क्षयोपशमतैं उत्पन्न भया वस्तु का परिच्छेद रूप प्रतीतिभाव अथवा श्रुतज्ञान ताका उपकरण पुस्तकादिक। बहुरि अन्योपकरण कहिये तप आदिक का उपकरण कमंडल, आहारादिक ता विषै ताके याचन विषैं, बहुरि अन्यस्मिन् कहिये औषधादिक विषैं अथवा अन्य कहिए परकैं निमित्त ता विषैं, इच्छाकार करना, मनकूं प्रवर्तावनां। बहुरियोग-ग्रहण कहिये—उष्णकाल विषैं आतापनयोग, वर्षाकाल विषैं वृक्षमूलयोग, शीतकाल विषैं अभ्रावकाश योग—इत्यादिक विषैं इच्छाकार करना। बहुत कहा कहिये सर्व हो शुभ आचरन विषै इच्छा परिणाम करनां सोइ इच्छाकार कहिए॥ १०॥

१. ब प्रति में 'अ' पाठ है। २. क वात्र द्र।

अथ कस्यापराधे मिथ्याकारः स इत्याह—

जं दुक्कडं तु मिच्छा तं णेच्छदि दुक्कडं पुणो कादुं ।
भावेण य पडिकंतो तस्स भवे दुक्कडे मिच्छा ॥ ११ ॥

यद्दुष्कृतं यत्पापं मया कृतं तद्दुष्कृतं मिथ्या मम भवतु, अहं पुनस्तस्य कर्ता न भवामीत्यर्थः । एवं यन्मिथ्यादुष्कृतं कृतं तु तद्-दुष्कृतं पुनः कर्तुं नेच्छेत् न कुर्यात् । भावेन च प्रतिक्रान्तो यो न केवलं वचसा किन्तु मनसा कायेन च वर्तमानातीतभविष्यत्काले तस्यापराधस्य यो न कर्ता तस्य दुष्कृते मिथ्याकार इति ॥ ११ ॥

अथ किं तत्प्रतिश्रवणं यस्मिन् तथाकार इत्यत आह—

वायणपडिछण्णाए उवदेसे सुत्तअत्थकहणाए ।
अवितहमेदत्ति पुणो पडिच्छणाए तधाकारो ॥ १२ ॥

वायणपडिछण्णाए—वाचनस्य जीवादिपदार्थव्याख्यानस्य प्रतीच्छा श्रवणं वाचनाप्रतीच्छा तस्यां, सिद्धान्तश्रवणे । **उवदेसे**—उपदेसे आचार्यपरम्परागतेऽविसंवादरूपे मंत्रतंत्रादिके । **सुत्तअत्थकहणाए**—सूचनात्सूक्ष्मार्थस्य सूत्रं वृत्तिवार्तिकभाष्यनिबन्धनं तस्यार्थो जीवादयस्तस्य तयोर्वा

इहां कोउ पूछै कि संयम का उपकरण, अर ज्ञान का उपकरण, अर शौच का उपकरण विषैं भी मुनिराज असंयमी सूं याचना करैं नाहीं । तौ आहार, औषधि कैं अर्थि कैसैं याचनां करैं ? ताका समाधान—इहां इच्छाकार का अर्थ मन का प्रवर्तावना कीया है, सो तपश्चरण करने कूं अपने शरीर की, स्थिति कैं निमित्त तथा आचार्यादिकनिकी वैयावृत्य रूप तप के निमित्त आहार औषधि के ग्रहण विषैं मन ही प्रवर्तें हैं । बहुरि जैसे अन्य मत के अतीत भिक्षुक वचन-काय को नीची चेष्टाकरि आहार-औषधि-मांगैं हैं । तैंसैं जैनमत के मुनिराज याचना नाहीं करैं । इनकी तो अजाचीक (अयाचिक) वृत्ति है । 'याचना बड़ा दोष है— अैसा जानना ॥ १० ॥

आगै कैसैं मुनिराज कैं कौन सा अपराध होतैं मिथ्याकार हैं—सो कहैं हैं—

अर्थ—यत् कहिए—जो, दुःकृत कहिये व्रतादि विषैं अतीचार रूप पाप मैंने कीया होय—सो मिथ्या होहु । मैं तिस अतीचार रूप पाप का कर्त्ता नाहीं हैं—अैसैं जा दुःकृत कूं मिथ्या कीया तिस दुःकृत कूं फेरि इच्छै नांही, करैं नांही । बहुरि केवल वचन ही तैं प्रतिक्रमण नांही कीया, भाव करि कीया । यातैं मन-वचन-काय करि वर्तमान, अतीत, भविष्यत्—तीनूं काल विषैं तिस अपराधकूं जो नांही करैं ताकैं तिस दुःकृत विषैं मिथ्याकार कहिए ॥ ११ ॥

आगे प्रतिश्रवण कहा, जामैं तथाकार कह्या सो कहै हैं—

अर्थ—वाचना प्रतीच्छा कहिए—जीवादिक पदार्थ के व्याख्यान का श्रवण, सिद्धान्त का श्रवण, बहुरि उपदेश कहिए—आचार्य परम्परातैं आया विसंवाद रहित, प्रमाणभूत, मंत्र-तंत्रादिक, बहुरि सूत्रार्थ-कथने कहिए—सूक्ष्म अर्थ का सूचन करैं—

कथनं प्रतिपादनं तस्मिन् सूत्रार्थकथने कथनायां वा। **अवितहं**—अवितथं सत्यं एवमेव। **एतवेत्ति**—एतदिति यत्भट्टारककैः कथितं तदेवमेवेति नान्यथेति कृत्वा। **पुणो**—पुनः। **पडिच्छणाए**—प्रतीच्छायां पुनरपि यच्छ्रवणं क्रियते। **तधाकारो**—तथाकारः। वाचनाप्रतिश्रवणे उपदेशे सूत्रार्थ-योजने गुरुणा क्रियमाणे अवितथमेतदिति कृत्वा पुनरपि यच्छ्रवणं तत्तथाकार इति ॥ १२ ॥

केषु प्रदेशेषु प्रविशता निषेधिका क्रियते इत्याह—

कंदरपुलिणगुहादिसु पवेसकाले णिसोहियं[1] कुज्जा।
तेहिंतो णिग्गमणे तहासिया होदि कायव्वा ॥ १३ ॥

कंदरं—कंदर उदकदारितप्रदेशः। **पुलिणं**—पुलिनं जलमध्ये जलरहितप्रदेशः। **गुहा**—पर्वतपार्श्वविवरं ता आदिर्येषां ते कन्दरपुलिन-गुहादयस्तेषु अन्येषु च निर्जन्तुकप्रदेशेषु नद्यादिषु। **पवेसकाले**—प्रवेशकाले। **णिसीहियं**—निषेधिकां। **कुज्जा**—कुर्यात् कर्तव्या। अत आसिका कुतः? **तेहिंतो**—तेभ्य एव कन्दरादिभ्यः। **णिग्गमणे**—निर्गमने निर्गमनकाले। **तहासिया**—तथैवासिका। **होदि**—भवति। **कायव्वा**—कर्तव्या इति ॥ १३ ॥

प्रश्नश्च केषु स्थानेषु इत्युच्यते—

आदावणादिगहणे सण्णा उब्भामगादिगमणे वा।
विणयेणायरियादिसु आपुच्छा होदि कायव्वा ॥ १४ ॥

आदावणादिगहणे—आतपनं व्रतपूर्वकमुष्णसहनं आदिर्येषां ते आतापनादयस्तेषां ग्रहणमनुष्ठानं तस्मिन्नातपनवृक्षमूलाभ्रावकाशकायो-

---

अैसा सूत्र तथा वृत्ति, वार्तिक, भाष्य, निवंधन तथा जोवादिक अर्थ—तांका कथन, ताकैं विषैं जो यह भट्टारक नैं कह्या है, सो अवितथ कहियें—सत्य है—अैसे ही हैं, अन्यथा नांहो—अैसें कहै है। बहुरि भी जो श्रवण करै सौ तथाकार कहिए ॥ १२ ॥

आगैं कैसे प्रदेश विषैं प्रवेश करतैं निषेधिका करिए सो कहै हैं—

अर्थ—कंदर कहिए जलकरि विदारे प्रदेश, नदोनि कै डाहै विराडा (विदोर्ण), बहुरि पुलिन कहिए—जल के मध्य, जल रहित प्रदेश। गुफा कहिए—पर्वत कैं पसवाडै विवर रूा इत्यादिक निर्जंतुक स्थाननि विषैं अथवा नद्यादिक विषैं, प्रवेश अवसर विषैं निषेधिका करैं ॥ १३ ॥

आगैं आसिका कहां करैं ? सो कहैं हैं—

ते पूर्वेकहे जे कंदर, पुलिन, गुफादिक तिनितैं नीसरने के अवसर विषैं आसिका करैं।

आगैं कहैं है—प्रश्न (पूछना) कैसे स्थाननि विषै करिए ?

अर्थ—आतापन कहिए—व्रतपूर्वक उष्ण का सहनां। आदि शब्दकरि वृक्षमूल, अभ्रावकाश, कायोत्सर्ग इत्यादिक का

---

१. अ, ब, प्रति में 'णिसीहिअं' पाठ है।

त्सर्गादिग्रहणे । **सण्णा उब्भामगादिगमणे**—वा संज्ञायामाहारकालशोधनादिकेच्छायां उद्भ्रम्यते गम्यते उद्भ्रम, उद्भ्रम एवोद्भ्रमकोऽन्यग्रामः स आदिर्येषां ते उद्भ्रमकादयस्तेषां गमनं प्रापणं तस्मिन्वा, निमित्तवशादन्यग्रामगमने वा । **विणएण**—विनयेन नमस्कारपूर्वकप्रणामेन । **आइरियादिसु**—आचार्य आदिर्येषां ते आचार्यादिस्तेषु आचार्यप्रवर्तकस्थविरगणधरादिषु । **आपुच्छा**—आपृच्छा । **होदि**—भवति । **कादव्वा**—कर्तव्या । यत्किंचित्कार्यं करणीयं तत्सर्वमाचार्यादीनापृच्छ्य क्रियते यदि आपृच्छा भवति तत इति ॥ १४ ॥

प्रतिपृच्छास्वरूपनिरूपणार्थमाह—

जं किंचि महाकज्जं करणीयं पुच्छिऊण गुरुआदी ।
पुणरवि पुच्छदि साहू[1] तं जाणसु होदि पडिपुच्छा ॥ १५ ॥

जंकिंचि—यत्किंचित् सामान्यवचनमेतत् । **महाकज्जं**—महत्कार्यं वृहत्प्रयोजनं । **करणीयं**—कर्तव्यमनुष्ठानीयं । **पुच्छिऊण**—पृष्ट्वा । **गुरुआदी**—गुरुरादीर्येषां ते गुर्वादयस्तान् गुरुप्रवर्तकस्थविरादीन् । **पुणरवि**—पुनरपि । **पुच्छदि**—पृच्छति । **साहू**—साधून् परिशेषधर्मोद्युक्तान् । अथवा स साधुः पुनरपि पृच्छति येन पूर्वं याचितं । **तं जाणसु**—तज्जानीहि बुध्यस्व । **होदि**—भवति । **पडिपुच्छा**—प्रतिपृच्छा । यत्किंचित् कार्यं महत्करणीयं गुर्वादीन् पृष्ट्वा पुनरपि साधून् पृच्छति साधुर्वा तत्कार्यं तदेव प्रश्नविधानं प्रतिपृच्छां जानीहीति ॥ १५ ॥

अष्टमं सूत्रं प्रपंचयन्नाह—

गहिदुवकरणे विणए वंदनसुत्तत्थपुच्छणादीसु ।
गणधरवसहादीणं[2] अणुवुत्ति छंदणिच्छाए ॥ १६ ॥

गहिदुवकरणे—गृहीते स्वीकृते उपकरणे संयमज्ञानादिप्रतिपालनकारणे आचार्यादिप्रदत्तपुस्तकादिके **विणए**—विनये विनयकाले

ग्रहण विषैं । बहुरि संज्ञा कहिए—आहार को इच्छा, कायशोधनादिक की इच्छा, तिस विषैं । बहुरि उद्भ्रामक कहिए अन्य ग्रामादिक प्रतिनिमित्तके वशतैं गमन करने विषैं । विनय कहिए—नमस्कार पूर्व्वक सत्कारकरि, आचार्य, आदि शब्दतैं प्रवर्तक, स्थविर, गणी इत्यादिक विषैं अपृच्छा करणो । जो कछु कार्य करणां सो सर्व्व आचार्यादिक कूं पूछिकरि करणां ॥ १४ ॥

आगैं प्रतिपृच्छा के स्वरूप का निरूपण के अर्थि कहैं हैं—

अर्थ—जो कोई महाकार्य कहिए—बड़ा प्रयोजन करना होय तो, गुर्व्वादिक कहिए—गुरु प्रवर्तक, स्थविरादिक, तिनहि पूछि, बहुरि, दूसरा पूछै अथवा अन्य साधु जे धर्म्म विषै उद्यमी हैं तिनहि पूछैं सो प्रतिपृच्छा जानूं ॥ १५ ॥

आगे आठवां सूत्रकूं विस्तारता संता कहै हैं—

अर्थ—गृहीते उपकरणे कहिए—अंगीकार कीया, संयम-ज्ञानादिक का कारण आचार्यादिकनि करि दीया पुस्तकादिक

---

१. अ, ब प्रति में 'साधू' पाठ है । २. अ, ब प्रति में 'वसभादीणं' ।

वंदण—वन्दनायां वंदनाकाले क्रियाग्रहणेन कालस्यापि ग्रहणं तदभेदात् । **सुत्तत्थपुच्छणादीसु**—सूत्रस्य अर्थस्तस्य प्रश्नः स आदिर्येषां ते सूत्रार्थ-प्रश्नादयस्तेषु । **गणधरवसभादीणं**—गणधरवृषभादीनां आचार्यादीनां । **अणुवुती**—अनुवृत्तिरनुकूलाचरणं । **छन्दणं**—छन्दणं छन्दोऽनुवर्तित्वं । **इच्छाए**—इच्छया । सूत्रार्थप्रश्नादिषु उपकरणद्रव्ये च गृहीते विनये वंदनायां च गणधरवृषभादीनामिच्छायानुवृत्तिश्छन्दनमिति । अथवोपकरण-द्रव्यस्वामिन इच्छया गृहीतुरनुवृत्तिश्छंदनमाचार्यादीनां च प्रश्नादिषु वन्दनाकाले चेति ॥ १६ ॥

नवमस्य सूत्रस्य विवरणार्थमाह—

गुरुसाहम्मियदव्वं पुच्छयमण्णं[1] च गेण्हिदुं इच्छे ।
तेसिं विणयेण पुणो णिमंतणा होइ कायव्वा ॥ १७ ॥

गुरुसाहंमियदव्वं—गुरुश्च साधर्मिकश्च गुरुसाधर्मिकौ तयोर्द्रव्यं । गुरुसाधर्मिकद्रव्यं । **पुच्छयं**—पुस्तकं ज्ञानोपकारकं । **अण्णं च**—अन्यच्च कुण्डिकादिकं । **गेण्हिदुं**—ग्रहीतुं आदातुं । **इच्छे**—इच्छेद्वाञ्छेत् । **तेसिं**—तेषां गुरुसाधर्मिकद्रव्याणां गृहितुमिष्टानां । **विणएण**—विनयेन नम्रतया । **पुणो**—पुनः । **णिमंतणा**—निमंत्रणा याचना । **होइ**—भवति । **कायव्वा**—कर्तव्या । यदि गुरुसाधर्मिकादिद्रव्यं पुस्तकादिकं गृहीतुमिच्छेत् तदानीं तेषां विनयेन याचना भवति कर्तव्या इति ॥ १७ ॥

उपसम्पत्सूत्रभेदप्रतिपादनार्थमाह—

उवसंपया य णेया पंचविहा जिणवरेहिं णिद्दिट्ठा ।
विणए खेत्ते मग्गे सुहदुक्खे चेव सुत्ते य ॥ १८ ॥

उवसंपया य—उपसम्पच्चोपसेवात्मनो निवेदनमुपसम्पत् । **णेया**—ज्ञेया ज्ञातव्या । **पंचविहा**—पंचविधा पंचप्रकारा । **जिणवरेहिं**—

उपकरण ताकै विषैं, बहुरि विनय कहिए—विनय का काल कै विषै, बहुरि वंदनायां कहिए—वंदना का काल विषैं । बहुरि सूत्रार्थ-प्रश्नादिषु कहिए—सूत्र के अर्थ का पूछनां इत्यादिक विषैं गणधर वृषभादीनां कहिए—आचार्यादिकनि कैं, इच्छया कहिए—इच्छा करि कैं । अनुवृत्ति कहिए—अनुकूल आचरण—सो छंदन कहिए ॥ १६ ॥

भावार्थ—जिनि आचार्यादिकनि नैं पुस्तकादिक उपकरण दीया तिनकै अनुकूल प्रवर्तनां ।

आगैं नवमां सूत्र का विवरण कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—गुरु साधर्मिक, कहिए गुरु का तथा साधर्मी का, द्रव्यं कहिए ज्ञानोपकरण पुस्तक, बहुरि अन्य कमण्डलु आदिक ग्रहण करनैं की इच्छा होय तौ विनयकरि कैं नम्रीभूत ताकरि याचना करै सो निमंत्रण कहिए ॥ १७ ॥

आगै उपसंपत् सूत्र के भेद का प्रतिपादन कैं अर्थि कहै हैं—

अर्थ—उपसंपत् नाम उपसेवा का है । गुरुजनादिक कै अर्थि आत्माका समर्प्पण—मैं आपका हूँ—ऐसैं उनके अनुकूल

---

१. ब 'पोत्थय' पाठ है ।

जिनवरैः । **णिद्दिट्ठा**—निर्दिष्टा कथिता । के ते पंच प्रकारा इत्याह—**विणये**—विनये । **खेत्ते**—क्षेत्रे । **मग्गे**—मार्गे । **सुहदुक्खे**—सुखदुक्खयोः । चशब्दः समुच्चये । एवकारोऽवधारणे । **सुत्ते य**—सूत्रे च । विषयनिर्देशोऽयं विनयादिषु विषयेषूपसम्पत् पंचप्रकारा भवति विनयादिभेदैर्वेति ॥ १८ ॥

तत्र विनयोसम्पत्प्रतिपादनार्थमाह—

पाहुणविणउवचारो तेसिं चावासभूमिसंपुच्छा ।
दाणाणुवत्तणादीं विणये उवसंपया णेया ॥ १९ ॥

पाहुणविण उपचारो—विनयोश्चोपचारश्च विनयोपचारौ प्राघूर्णिकानां पादोष्णानां विनयोपचारौ, अंगमर्दनप्रियवचनादिको विनयः, आसनादिदानमुपचारः । **आवासभूमिसंपुच्छा**—आवासः स्थानं गुरुगृहं भूमिः मार्गोऽध्वा तयोः संपृच्छा संप्रश्नः आवासभूमिसंप्रश्नः । **दाणं**—दानं संस्तरपुस्तकशास्त्रोपकरणादिनिवेदनं । **अणुवत्तणादी**—अनुवर्तनादयस्तदनुकूलाचरणादयः । **विणये उपसंपया**—विनयोपसम्पत् **णेया**—ज्ञेया । पादोष्णानां विनयोपचारकरणं यत्तेषां चावासभूमिसम्पृच्छां दानानुवर्तनादयश्च ये तेषां क्रियन्ते तत्सर्वं विनयोपसम्पदुच्यते । सर्वत्रात्मनः समर्पण तस्य वा ग्रहणमुपसम्पदिति यतः ॥ १९ ॥

का क्षेत्रोपसम्पदित्यत्रोच्यते—

संजमतवगुणसीला जमणियमादी य जह्मि खेत्तह्मि ।
वड्ढंति तह्मि वासो खेत्ते उवसंपया णेया ॥ २० ॥

संजमतवगुणसीला—संयमतपोगुणशीलानि । **यमणियमादी य**—यमनियमादयश्च आमरणात्प्रतिपालनं यमः कालादिपरिमाणेनाचरणं नियमः, व्रतपरिरक्षणं शीलं, कायादिखेदस्तपः, उपशमादिलक्षणो गुणः, प्राणेन्द्रियसंयमनं संयमः, अतो नैषामैक्यं । **जह्मि**—यस्मिन् । **खेत्तंहि**—

होना, सो यह उपसंपत् जिनवर भगवान् पंच प्रकार कह्या हैं । १–विनय कै विषैं, २-क्षेत्र के विषै, ३–मार्ग कै विषै, ४–सुख दुःख विषै, ५–सूत्र के विषैं—ऐसे पंच प्रकार कहा है ॥ १८ ॥

तहां प्रथम विनियोपसंपत् का प्रतिपादन कैं अर्थि कहैं है—

अर्थ—प्राघूर्णिक कहिए पादोष्ण—अन्य संघ के आए मुनि तिनिका, विनय कहिए अंगमर्दन, प्रिय वचन इत्यादिक करनां, उपचार कहिए आसनादि बैठनें का स्थान देना इत्यादिक, बहुरि आवास कहिए गुरु जहां विराजे ऐसा स्थान सो पूछनां । भूमि कहिए जिस मार्ग होय आए सो मार्ग पूछना, बहुरि दान कहिए संस्तर, पुस्तक शास्त्रोपकरणादिक देनां, अनुवर्तनादि कहिए तिनिकैं अनुकूल आचरणादिक करनां सो विनयोपसंपत कहिए ॥ १९ ॥

आगैं क्षेत्रोपसंपत कहा सो कहै हैं—

अर्थ—छह जीवनिकाय की रक्षा तथा पांच इन्द्रिय बहुरि मनका निरोध सो संयम कहिए । कायक्लेशादिक सो तप कहिए । उपशमादिक लक्षण सो गुण कहिये । व्रत का परिक्षण सो शील कहिए । यावत् जीव आचरण सो यम कहिए कालादिक

क्षेत्रे । **वड्ढंति**—वर्द्धन्ते उत्कृष्टा भवंति । **तह्मि**—तस्मिन् वासोवसनं । **खेत्ते उवसंपया**—क्षेत्रोसम्पत् । **णेया**—ज्ञेया । यस्मिन् क्षेत्रे संयमतपोगुणशीलानि यमनियमादयश्च वर्द्धन्ते तस्मिन् वासो यः सा क्षेत्रोपसम्पदिति ॥ २० ॥

तृतीयायाः स्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

पाहुणवत्थव्वाणं अण्णोण्णागमणगमणसुहपुच्छा ।
उवसंपदा य मग्गे संजमतवणाणजोगजुत्ताणं ॥ २१ ॥

पाहुणवत्थव्वाणं—पादोष्णवास्तव्यानां आगन्तुकस्वस्थानस्थितानां । **अण्णोण्णं**—अन्योन्यं परस्परं । **आगमणगमण**—आगमनं च गमनं चागमनगमने तयोर्विषये । **सुहपुच्छा**—सुखप्रश्नः किं सुखेन तत्रभवान् गत आगतश्च । **उवसंपदा य**—उपसंपत् । **मग्गे**—मार्गे पथिविषये । **संजमतवणाणजोगजुत्ताणं**—संयमतपोज्ञानयोगयुक्तानां । पादोष्णवास्तव्यानां अन्योऽयं योऽयं गमनागमनसुखप्रश्नः सा मार्गविषयोपसम्पदित्यत्रोच्यत इति ॥ २१ ॥

अथ का सुखदुःखोपसम्पदित्यत्रोच्यते—

सुहदुक्खे[1] उवयारो वसहीआहारभेसजादीहिं ।
तुह्मं अहंति वयणं सुहदुक्खुवसंपया णेया ॥ २२ ॥

सुहदुक्खे—सुखदुःखयोर्निमित्तभूतयोः, अथवा तद्योगात्ताच्छब्द्यं सुखदुःखयुक्तयाः पुरुषयारिति । **उवयारो**—उपचारः उपग्रहः । **वसहीआहारभेसजादीहिं**—वसतिकाहारभैषज्यादिभिः सुखिनो निर्वृत्तस्य शिष्यादिलाभे कुंडिकादिदानं, दुखिःनो व्याध्युपपीडितस्य सुखशय्यासनौषधान्नपानमर्दनादिभिरुपकार उपचारः । **तुम्हं अहंति वयणं**—युष्माकमहमिति वचनं युष्माभिर्यदादिश्यते तस्य सर्वस्याहं कर्ता इति । अथवा युष्मा-

---

का परिमाण करि जो आचरण करिए सो नियम कहिए। ऐसे संयम तप, गुण, शील, यम-नियम इत्यादिक धर्म के अंग जा क्षेत्र में वधै बढ़ें, उत्कृष्ट हों तिस क्षेत्र में बसिए—यह क्षेत्रोपसंपत् कहिए ॥ २० ॥

आगैं मार्गोपसंपत् कहे हैं—

अर्थ—पादोष्ण कहिए अन्य संघ के आए मुनि, बहुरि वास्तव्य कहिये अपने स्थान मैं तिष्ठते मुनि, तिनिकै परस्पर आवनैं-जावनैं विषै सुख-प्रश्न[2] पूछनां कि—जो आप सुखतैं तहां पहोचे ? अथवा सुख तैं तहाँ तैं आयैं ? अैसे पूछनां सो संयम, तप, ज्ञान, योग—इन गुणनि करि युक्त वै मुनिराज तिनिकैं मार्गोपसंपत् कहिए ॥ २१ ॥

आगै सुख दुःखोपसंपत् कहा सो कहिये हैं—

अर्थ—सुख दुःख को निमित्त भूत होत संतै अथवा सुख-दुःख युक्त पुरुषनि कैं विषैं वसतिका, आहार, औषध इत्यादिक करि उपचार कहिए उपग्रह-उपकार सुखो कैं शिष्यादिक का लाभ होतैं कमंडल आदि देना, सुख-दुखी व्याधि करिकैं उपपीडित होय तिनिकौं सुख रूप सोवनैं का स्थान, सुख रूप बैठनैं का स्थान बतावनां तथा औषध, अन्न, पान मिलनैं का प्रकार बतावनां

१. अ, ब सुखदुक्खे । २. ब 'का' ।

कमेतत्सर्वं मदीयमिति सचनं । **सुहदुक्खुवसंपया**—सुखदुःखोपसंपत् । **णेया—**ज्ञातव्या । सुखदुःखनिमित्तं पिंछवसतिकादिभिरुपचारो युष्माकमिति वचनं उपसम्पत् सुखदुःखविषयेति ॥ २२ ॥

पंचम्या उपसम्पदः स्वरूपनिरूपणार्थमाह—

उवसंपया य सुद्धे तिविहा[1] सुत्तत्थतदुभया चेव ।
एक्केक्का विय तिविहा लोइय वेदे तहा समये ॥ २३ ॥

सूत्रविषयोपसम्पच्च त्रिविधा त्रिप्रकारा । **सुत्तत्थतदुभया चेव**—सूत्रार्थतदुभया चैव सूत्रार्थो यत्नः सूत्रोपसम्पत्, अर्थनिमित्तो यत्नोऽर्थोपसम्पत्, सूत्रार्थोभयहेतुर्यत्नः तदुभयोपसंपत् तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यमिति । एकैकापि च सूत्रार्थोभयसम्पत् लौकिकवैदिकसामायिकशास्त्रभेदात्त्रिविधा । लौकिकसूत्रार्थतदुभयानामवगमः । तथा वैदिकानां सामायिकानां च । हुण्डावसर्पिण्यपेक्षया वैदिकशास्त्रस्य ग्रहणं । अथवा सर्वकालं नयाभिप्रायस्य सम्भवाद्वैदिकस्य न दोषः । अथवा वेदे सिद्धान्ते समये तर्कादौ इति । त्वद् महद्गुरुकुले आत्मनो निसर्गः उपसम्पदुक्ता[2] ॥ २३ ॥

पदविभागिकस्य सामाचारस्य निरूपणार्थमाह—

कोई सव्वसमत्थो सगुरुसुदं सव्वमागमित्ताणं ।
विणएणुवक्कमित्ता पुच्छइ सगुरुं पयत्तेण ॥ २४ ॥

अंग-मर्दनादिक करना, बहुरि मैं आपका हूँ, आप जो आज्ञा करो सो मैं करूँ, जो मेरा पुस्तकादिक, शिक्षादिक हैं—सो सब आपके हैं—ऐसा वचन कहनां सो सुखोपसंपत् है ॥ २२॥

आगैं सूत्रोपसंपत् का स्वरूप निरूपण कै अर्थि कहै है—

अर्थ—सूत्रोपसंपत् तीन प्रकार है—१. सूत्र कै अर्थि यत्न करिये सो सूत्रोपसंपत् कहिए। २. अर्थ कै निमित्त यत्न करिये सो अर्थोपसंपत् कहिये । ३. सूत्र-अर्थ दोउनिकै निमित्त यत्न करिये सो सूत्रार्थोपसंपत् कहिए। बहुरि शास्त्र तीन प्रकार हैं—१. लौकिक, २. वैदिक, ३. सामायिक। तहां लौकिक-सूत्रोपसंपत्, बहुरि लौकिक अर्थोपसंपत्, लौकिक सूत्रार्थोपसंपत्—अैसे तीन प्रकार बहुरि वैदिक सूत्रोपसंपत्, वैदिक अर्थोपसंपत्, वैदिक सूत्रार्थोपसंपत्—अैसे तीन प्रकार तथा सामयिक—सूत्रोपसंपत्, सामयिक अर्थोपसंपत्, सामयिक सूत्रार्थोपसंपत्—अैसे तीन प्रकार—या प्रकार सूत्रोपसंपत् के नवभेद वर्णन कीये ।

तहां लौकिक शास्त्र तो व्याकरण, गणितादिक जानने, बहुरि सामायिक शास्त्र, द्वादशांग तथा च्यारु अनुयोग के सिद्धान्त—स्याद्वाद, न्याय, अध्यात्म जाननें । बहुरि वैदिक शास्त्र हुंडावसर्पिणी की अपेक्षा कहे है। अथवा नय का अभिप्राय सर्वकाल संभवै है। तातैं वैदिक भेद कहने का दोष नांही—अैसा जाननां। अथवा लौकिक कहतां व्याकरणादिक,वैदिक कहतां सिद्धांत, समय कहतां तर्कादिक—अैसे तीन प्रकार शास्त्र जाननैं ॥ २३ ॥ अैसे उपसंपत् का वर्णन कीया । इहां पर्यंत औघिक समाचार का वर्णन कीया ।

आगैं पदविभागिक समाचार का निरुपण के अर्थि कहै हैं—

१. माणिकचंद्र ग्रन्थमाला तथा ज्ञानपीठ प्रतियों में 'तिबिहा' पाठ है । २. क °क्ता सा कथं भवतीत्याह° ।

कोई—कश्चित् । **सव्वसमत्थो**—सर्वैरपि प्रकारैर्वीर्यधैर्यविद्याबलोत्साहादिभि; समर्थः कल्पः सर्वसमर्थः । **सगुरुसुदं**—स्वगुरुश्रुतं आत्मीयगुरूपाध्यायागतं शास्त्रं । **सव्वं**—सर्वं निरवशेषं । **आगमित्ताणं**—आगम्य ज्ञात्वा । **विणएण**—विनयेन मनोवचनकायप्रणामैः । **उवक्कमित्ता**—उपक्रम्य प्रारभ्योपढौक्य । **पुच्छवि**—पृच्छति अनुज्ञां याचते । **सगुरुं**—स्वगुरुं । **पयत्तेण**—प्रयत्नेन प्रमादं त्यक्त्वा । कश्चित् सर्वशास्त्राधिगमबलोपेतः स्वगुरुशास्त्रमधिगम्य, अन्यदपि शास्त्रमधिगन्तुमिच्छन् विनयेनोपक्रम्य प्रयत्नेन स्वगुरुं पृच्छति गुरुणानुज्ञानेन गन्तव्यमित्युक्तं भवति ॥ २४ ॥

किं तत्पृच्छति इत्यत्रोच्यते—

तुज्झं[1] पादपसाएण अण्णमिच्छामि गंतुमायदणं ।
तिण्णि व पंच व छा वा पुच्छाओ[2] एत्थ सो कुणइ ॥ २५ ॥

तुब्भं पादपसादेण—त्वत्पादप्रसादात् त्वत्पादानुज्ञया । **अण्णं**—अन्यत् । **इच्छामि**—अभ्युपेमि । **गंतुं**—यातुं । **आयदणं**—सर्वशास्त्रपारंगतं चरणकरणोद्यतमाचार्यं, यद्यपि षडायतनानि लोके सर्वज्ञः, सर्वज्ञालयं, ज्ञानं, ज्ञानोपयुक्तः, चारित्रं, चारित्रोपयुक्त इति भेदाद्भवन्ति तथापि ज्ञानोपयुक्तस्याचार्यस्य ग्रहणमधिकारात् । किमेकं प्रश्नं करोति नेत्याह **तिण्णि व**—तिस्रः । **पंच व**—पंच वा । **छा व**—षड् वा । चशब्दाच्चतस्रोधिका वा । **पुच्छाओ**—पृच्छाः प्रश्नान् । **एत्थ**—अत्रावसरे । **कुणदि**—करोति । अनेनात्मोत्साहो विनयो वा प्रदर्शितः । भट्टारकपादप्रसन्नैः अन्यदायतनं गंतुमिच्छामीत्यनेन प्रकारेण तिस्रः पंच षड्वा पृच्छाः सोऽत्र करोतीति ॥ २५ ॥

अर्थ—कोई मुनिराज, सर्वसमर्थः कहिये वीर्य, धैर्य, विद्या, बल, उत्साह इत्यादिक सर्व प्रकार करि समर्थ स्वगुरु, श्रुत कहिए अपनैं गुरु-उपाध्याय करि जाणैं सर्वशास्त्र तिनहि सीखि-जाणिकरि मन, वचन, काय का विनयकरि सहित प्रणामकरि, अपनैं गुरु निकट प्राप्त होय, प्रयत्नेन कहिए प्रमाद छोड़िकरि, पृच्छति कहिए पूछै—आज्ञा मांगैं ।

भावार्थ—जो अैसा समर्थ होय अपनें गुरु उपाध्यायनि के पढ़े ग्रन्थ तौ सब पढ़ि लीये । अधिक शास्त्र पढ़नैं की वांछा करैं—सौ अैसैं जायकरि पूछै ॥ २४ ॥

अभिप्राय अैसा जो गुरु-आज्ञा देय तौ दूजै संघ में शास्त्राभ्यास करनैं कूं जाय सौ गुरुनि कूं कैसैं पूछै ? सो कहै है—

अर्थ—तिहारे चरणनिके प्रसादकरि अन्य आयतन कहिए सर्वशास्त्र पारगामी चरणकमल कै विषै उद्यत आचार्य तिनि प्रति जानैं कूं इच्छा करूँ हूं । अैसैं इस अवसर में तीन तथा पाँच तथा छह तहां च्यारि अथवा अधिक पृच्छा कहिए प्रश्न करैं। यामै ताका उत्साह अथवा विनय दिखाया है ।

आयतन शब्द के लोक विषै छह अर्थ हैं—१. सर्वज्ञ, २. बहुरि सर्वज्ञ का आलय, ३. बहुरि ज्ञान, ४. बहुरि ज्ञानोपयुक्त आचार्य, ५. बहुरि चारित्र, ६. बहुरि चरित्रोपयुक्त—अैसे छह आयतन (षडायतन) हैं। तथापि इहा अधिकार के वशतें ज्ञानोपयुक्त आचार्य ही का ग्रहण कीया ॥ २५ ॥

---

१. अ, ब तुब्भं । २. पुच्छाउ ।

ततः किंकरोत्यसावित्याह—

एवं आपुच्छित्ता सगवरगुरुणा विसज्जिओ संतो ।
अप्पचउत्थो तदिओ बिदिओ वासो तदो णीदी ।। २६ ।।

एवं—पूर्वोक्तेन न्यायेन । **आपुच्छित्ता**—आपृच्छ्याभ्युपगमय्य । **सगवरगुरुणा**—स्वकीयवरगुरुभिः दीक्षाश्रुतगुर्वादिभिः । **विसज्जिदो**—विसृष्टो मुक्तः । **संतो**—सन् । किमेकाक्यसौ गच्छति नेत्याह—**अप्पचउत्थो**—चतुर्णां पूरणश्चतुर्थः आत्मा चतुर्थो यस्यासावात्मचतुर्थः । त्रयाणां द्वयोर्वा पूरणस्तृतीयो द्वितीयः । आत्मा तृतीयो द्वितीयो वा यस्यासावात्मतृतीय आत्मद्वितीयः । त्रिभिर्द्वाभ्यामेकेन वा सह गंतव्यं नैकाकिना । **सो तदो**—स साधुस्ततः तस्मात् स्वगुरुकुलात् । **णीदि**—निर्गच्छति । एवमापृच्छ्य स्वकीयवरगुरुभिश्च विसृष्टः सन्नात्मचतुर्थो निर्गच्छति, आत्मतृतीय आत्मद्वितीयो वा उत्कृष्टमध्यमजघन्यभेदात् ।। २६ ।।

किमिति कृत्वान्येन न्यायेन विहारो न युक्तो यतः—

गिहिदत्थे य विहारो विदिओऽगिहिदत्थसंसिदो चेव ।
एत्तो तदियविहारो णाणुण्णादो जिणवरेंहिं ।। २७ ।।

गिहिदत्थेय—गृहीतो ज्ञातोऽर्थो जीवादितत्त्वं येनासौ गृहीतार्थश्च एकः प्रथमः । **विहारो**—विहरणं देशान्तरगमनेन चारित्रानुष्ठानं । अथवा विहरतीति विहारः एकश्च विहारश्चैकविहारः । **विदिओ**—द्वितीयः । अगिहीदत्थसंसिदो—अगृहीतार्थेन संश्रितो युक्तः । अथ को द्वितीयः,

---

ऐसे गुरुनिकूं प्रश्न कियैं पीछैं कहा (क्या) करे ? सो कहैं है—

अर्थ—एवं कहिए पूर्वोक्त प्रकार, आपृच्छ्य कहिए गुरुनि कूं पूछिकरि तिनि अपनैं दीक्षा-गुरु, श्रुत-गुरु आदिकनि करि आज्ञा दीए संतै संघतैं[1] नीसरै (निकले) सौ कैसे नोसरै ? आत्मचतुर्थः कहिए—चौथा आप अर तीन मुनि लैर (साथ) और हौंहि ऐसै नीसरैं—यह तो उत्कृष्ट भेद है। अथवा आत्मतृतोयः—तीजा आप अर दोय मुनि लार (पीछे या साथ) हौंहि, ऐसे नीसरैं—यह मध्यम भेद है। अथवा आत्मद्वितोयः कहिये दूसरा आप अर एक मुनि और लार हौंहि ऐसे नीसरै—यह जघन्य भेद है।[2]

भावार्थ—तीन मुनि निकरि सहित अथवा "दोय मुनि[3] करि सहित" अथवा एक मुनि करि सहित ही जानां योग्य है, एकाकी जानां योग्य नांही ।। २६ ।।

आगैं कहै हैं—एकाकी जानां योग्य नांही सो याका कारण कहा (क्या ?) सो कहे हैं—

अर्थ—गृहीत कहिए जानैं है—जोवादितत्त्व जानैं ऐसा एकविहार है। देशांतर कै विषैं गमन करि चारित्र का अनुष्ठान

---

१. अ–संगतैं। २. ब प्रति में मध्यम के स्थान पर जघन्य दिया है। ३. ब प्रति में ये वाक्य नहीं है।

अगृहीतार्थस्तस्यानेन सहाचरणं नैकस्य । **एत्तो**—एताभ्यां गृहीतागृहीतार्थसंश्रिताभ्यामन्यः । **तदियविहारो**—तृतीयविहारः । **णाणुण्णादो**—नानुज्ञातो नाभ्युपगतो जिनवरैरर्हद्भिः । एको गृहीतार्थस्य विहारोऽपरोगृहीतार्थेन संश्रितस्य तृतीयो नानुज्ञातः परमेष्ठिभिरिति ॥ २७ ॥

किंविशिष्ट एकविहारीत्यत आह—

तवसुत्तसत्तएगत्तभावसंघण[1]धिदिसमग्गो य ।
पविआआगमबलिओ[2] एयविहारी अणुण्णादो ॥ २८ ॥

तपोद्वादशविधं सूत्रं द्वादशांगचतुर्दशपूर्वरूपं कालक्षेत्रानुरूपो वाऽऽगमः प्रायश्चित्तादिग्रन्थो वा सत्त्वं—कायगतं अस्थिगतं च बलं देहात्मकं वा भावसत्वं, एकत्वं शरीरादिविविक्ते स्वात्मनि रतिः भावः शुभपरिणामः सत्त्वकार्यं, संहननं अस्थित्वग्दृढता वज्रर्षभनाराचादित्रयं, धृतिः मनोबलं, क्षुधाद्यबाधनं चैतासां द्वंद्वः एताभियुक्तस्तपःसूत्रसत्त्वैकत्वभावसंहननधृतिसमग्रः । न केवलमेवंविशिष्टः । किन्तु **पवियाआगमबलिओ**—प्रव्रज्यागमबलवांश्च तपसा वृद्धः, आचारसिद्धान्तक्षुण्णश्च यः स एकविहारी अनुज्ञातोऽनुमतो जिनवरैरिति सम्बन्धः ॥ २८ ॥

न पुनरेवंभूतः—

सच्छंदगदागदो[3] सयणणिसय[4]णादाणभिक्खवोसरणे ।
सच्छंदजंपरोचि य मा मे सत्तूवि एगागी ॥ २९ ॥

करै । बहुरि दूसरा अगृहीतार्थ होय सो गृहीतार्थ कैं आश्रय युक्त होय । बहुरि ये कहे[5] गृहीतार्थ संश्रित दोउ विहारनि मैं अन्य[6] तीसरा विहार जिनवर अर्हंतदेव नै कह्या नांही ॥ २७ ॥

आगैं एकविहारी कैसा होय ? सो कहै हैं—

अर्थ—तप कहतां बारह प्रकार तपश्चरण, सूत्र कहतां ग्यारह अंग, चौदह पूर्व रूप आगम अथवा वर्तमान काल क्षेत्र के अनुरूप आगम अथवा प्रायश्चितादिक ग्रन्थ । बहुरि सत्त्व कहिए—देह विषैं प्राप्त बल अथवा संहनन का बल अथवा मनोबल भावसत्त्व । बहुरि एकत्व कहिए—शरीरादिक तैं भिन्न जो अपनां आत्मा ता विषै रति । बहुरि भाव कहिए शुभ परिणाम । बहुरि संहनन कहिए—सत्त्व हैं कार्य जाका अैसी अस्थि-त्वचा[7] की दृढ़ता वज्रऋषभनाराच, वज्रनाराच अर नाराच—अैसे तीन प्रकार उत्तम संहनन है । बहुरि धृति कहिए—मन का बल, क्षुधादिक करि बाधा का न होनां अैसें ए कहे जो तप, सूत्र, सत्त्व, एकत्व, भाव, संहनन, धृति—इनिकरि समग्र कहिये संयुक्त होय । बहुरि प्रव्रज्या कहिए दीक्षा ता करो बलो (बड़ा) होय, तपकरि बड़ा होय, बहुरि आगम बली कहिए आचार सिद्धान्त कै विषै निपुण होय—अैसा एकविहारी जिनवर ने कहा है ॥ २८॥

बहुरि एकविहारो अैसा न होय सो कहै हैं—

१. अ, ब संघदण । २. अ, परिआआगमवलिऊ ब, परिगाआगमवलिउ । ३. अ, ब गदागदि । ४. अ, ब णिसिय ।
५. ब प्रति में कहि पाठ है । ६. अ प्रति में—तैं अर पाठ है । ७. ब—त्वता ।

सच्छंदगदागदी—स्वैरं स्वेच्छया गत्यागती गमनागमने यस्यासौ स्वैरगतागतिः। केषु स्थानेष्वित्याह—**सयणं**—शयनं। **णिसयणं**—निषदनं आसनं। **आदाणं**—आदानं ग्रहणं। **भिक्ख**—भिक्षा। **वोसरणं**—मूत्रपुरीषाद्युत्सर्गः। एतेषु प्रदेशेषु शयनासनादानभिक्षाद्युत्सर्गकालेषु। **सच्छंदजंपिरोचि य**—स्वेच्छया जल्पनशीलश्च स्वेच्छया जल्पने रुचिर्यस्य वा एवंभूतो यः सः। **मे**—मम शत्रुरप्येकाकी माभूत् किं पुनर्मुनिरिति ॥ २९ ॥

यदि पुनरेवंभूतोऽपि विहरति ततः किं स्यादतः प्राह—

गुरुपरिवादो सुदवुच्छेदो[1] तित्थस्स मइलणा जडदा।
भिंभल[2]कुलसीलपासत्थदा य उस्सारकप्पम्हि ॥ ३० ॥

गुरुपरिवादो—गुरोः परिवादः परिभवः केनायं निःशीलो लुञ्चितः इति लोकवचनं। **सुदवुच्छेदो**—श्रुतस्य व्युच्छेदो विनाशः स तथाभूतस्तं दृष्ट्वा अन्योऽपि भवति अन्योऽपि कश्चिदपि न गुरुगृहं सेवते ततः श्रुतविनाशः। **तित्थस्स**—तीर्थस्य शासनस्य। **मइलणा**—मलिनत्वं नमोस्तूनां[3] शासने एवंभूताःस र्वेऽपीति मिथ्यादृष्ट्यो वदन्ति। **जडदा**—मूर्खत्वं। **भिंभल**—विह्वल आकुलः। **कुसील**—कुशीलः। **पासत्थ**—पार्श्वस्थ एतेषां भावः विह्वलकुशीलपार्श्वस्थता। **उस्सारकप्पम्हि**—उत्सारकल्पे त्याज्यकल्पे गणं त्यक्त्वा एकाकिनो विहरणे इत्यर्थः। मुनिनैकाकिना विहरमाणेन गुरुपरिभवश्रुतव्युच्छेदतीर्थमलिनत्वजडताः कृता भवन्ति तथा विह्वलत्वकुशीलत्वपार्श्वस्थत्वानि कृतानीति ॥ ३० ॥

अर्थ—शयन कहिए सोवनां, निषदन कहिए बैठनां, आदान कहिए ग्रहण, भिक्षा कहिए भोजन लेना, व्युत्सर्ग कहिए मूत्र-पुरीषादि का क्षेपनां—इनि स्थानकनि विषैं इनिके काल विषैं[4] स्वछन्द है गमन-आगमन जाकै ऐसा। बहुरि स्वछन्द जल्परुचि कहिए स्वेच्छा ही करि बोलनैं विषैं हैं रुचि जाकी, ऐसा एकाकी मेरा शत्रु भी मति होउ। मुनिराज ऐसा एकाकी काहे कूं होय ? ॥ २९ ॥

आगैं पूछैं हैं—ऐसा एकाकी विहार करैं तौ कहा होय ? सो ताका समाधान करै हैं—

अर्थ—उत्सारकल्पे कहिए गणकूं छोड़ि इकेले विहार करनैं विषैं एते दोष होय हैं—प्रथम तौ गुरुपरिवादः कहिए—गुरु का पराभव होय। लोक ऐसे कहैं—ऐसे निःशीलकूं कौण गुरु नैं दीक्षा दई है। इसकूं कैसे गुरु नैं मूंड्या है ? दूजादोष श्रुतव्युत्छेदः कहिए—याकौं ऐसा देखि और भी ऐसा होय, कोउ भी गुरु स्थान कौं नांही सेवै, सर्व स्वछंद होय तातैं श्रुत का विनाश होय। बहुरि तीसरा दोष तीर्थमलिनत्व कहिए तीर्थ जो जिनशासन ताकूं मिथ्या-दृष्टि मैं लगावै। ऐसे कहैं—इनि जैनीनि का नमोस्तुनि का मत[5] विषैं ऐसे स्वछंदाचारी सर्व ही होंहिगे। बहुरि चौथा दोष—जडता कहिए—मूर्खपणां। जातैं ज्ञान तो सत्संग तैं आवै है। स्वछंद-एकाकी रहै ताकै ज्ञान होय नांही।

बहुरि विह्वलता, कुशीलता, पार्श्वस्थता—ए भ्रष्ट मुनिनि कै भेद हैं। इनिका वर्णन ग्रन्थकार आगैं करैगें। सो स्वछन्द

१. अ, ब वोच्छेदो। २. अ, ब भेंभल। ३. क ०त्वं सर्वज्ञानां शा०। ४. अ प्रति में-इनि स्थान कनि के काल विषैं।

५. नमोस्तूनां शासने सर्वज्ञानां शासने आ० वसुनंदिटीका के इस उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि जिनेन्द्रदेव के (तीर्थ) शासन को नमोस्तु शासन (सर्वज्ञशासन या सर्वज्ञतीर्थ) भी कहा जाता था। दिगम्बर जैन मुनियों को 'नमोस्तु' शब्द से नमनपूर्वक आदर देने की परम्परा के कारण।

न केवलमेते दोषा किन्त्वात्मविपत्तिश्चेत्यय आह—

कंटयखण्णुयपडिणियसाणगोणादिसप्पमेच्छेहिं ।
पावइ आदविवत्ती विसेण व विसूइया चेव ॥ ३१ ॥

कंटय—कण्टकाः । **खण्णुय**—स्थाणुः । **पडिणिय**—प्रत्यनीकाः क्रुद्धाः । **साणगोणदि**—श्वगवादयः । **सप्पमेच्छेहिं**—सर्पम्लेच्छाः । एतेषां द्वन्द्वस्तैः कण्टकस्थाणुप्रत्यनीकश्वगवादिसर्पम्लेच्छैः । **पावइ**—प्राप्नोति । **आदविवत्ती**—आत्मविपत्तिं स्वविनाशं । **विसेण व**—विषेण च मारणात्मकेन द्रव्येण । **विसूइया चेव**—विसूचिकया वाजीर्णेन । एवकारो निश्चयार्थः । निश्चयेनैकाकी विहरन् कण्टकादिभिर्विषेण विसूचिकया वात्मविपत्तिं प्राप्नोति ॥ ३१ ॥

विहरंस्तावत्तिष्ठतु तिष्ठन् कश्चित् पुनर्निर्धर्मा गुरुकुलेऽपि द्वितीयं नेच्छतीत्याह—

गारविओ गिद्धीओ माइल्लो अलसलुद्धणिद्धम्मो ।
गच्छेवि संवसंतो णेच्छइ संघाडयं मंदो ॥ ३२ ॥

गारविओ—गौरवसमन्वितः ऋद्धिरससातप्राप्त्या अन्यानधिक्षिपति । **गिद्धीओ**—गृद्धिक आकांक्षितभोगः ग्रहिको वा । **माइल्लो**—मायावी कुटिलभावः । **अलस**—आलस्ययुक्तः उद्योगरहितः । **लुद्धो**—लुब्धः अत्यागशीलः । **णिद्धंम्मो**—निर्धर्मः पापबुद्धिः । **गच्छेवि**—गुरुकुलेऽपि ऋषिसमुदायमध्येऽपि त्रैपुरुषिको गणः, साप्तपुरुषिका गच्छः । **संवसंतो**—संवसन् तिष्ठन् । **णेच्छइ**—नेच्छति नाभ्युपगच्छति । **संघाडयं**—

एकविहारी ऐते होहि हैं ॥ ३० ॥

आगैं कहै है—जो ए दोष तौ होय ही हैं बहुरि आपहूकै विपत्ति होय है—

अर्थ—जो स्वच्छन्द इकेला विहार करै हैं सो कांटेनि करि स्थाणु[1] (ठूंठ) करि तथा प्रतिकूल क्रोधकरि आए कूकरे, बलध इत्यादिकनि करि तथा सर्प्पनि करि तथा म्लेच्छनि करि अपनां मरणकूं तथा दुःखकूं पावै । बहुरि मरण का कारण विष, ताके निमित्त-करि तथा विसूचिका, अजीर्णता करि मरणकूं तथा दुःखकूं पावै हैं । जो स्वछन्द एकाकी विहार करै है ताकै किसही[2] का सहाय है नांही । मरण के दुःख के अनेक कारण है तिनिमें दैव ही शरण है ॥ ३१ ॥

आगैं स्वछन्द विहार करै है ताकै ए दोष कहै । धर्मरहित गुरुकूल मैं रहैं तौउ दूसरे कूं नांही चाहैं है, ताका स्वरूप कहै हैं—

अर्थ—जो कोई शिथिलाचारी गौरविकः कहिए रिद्धिः गौरव, रस गौरव, सात गौरव—इनि तीनी प्रकार गौरवकरि अन्य मुनिन कूं नीचै जाणैं । बहुरि गृद्धिकः कहिए-भोगनिकी की आकांक्षा करै कछु ग्रहा[3] चाहै । बहुरि मायावी कहिए-कुटिल स्वभाव होय । बहुरि अलस कहिए-आलस्यभाव करि युक्त होय । उद्यमरहित होय । बहुरि लुब्धः कहिए-त्याग स्वभाव नांही होय । निर्द्धर्म्मः कहिए—पाप विषैं जाकी बुद्धि होय—अैसा जो होय सो गच्छ मैं रहै है तोऊ संघाटक कहिए दूसरे कूं नांही इच्छै है । सो

१. अ, स्थाणा । २. ब, तिसही । ३. ब, ग्रह्या (ग्रहण करना) ।

संघाटकं द्वितीयं । **मंदो**—मंदः शिथिलः । कश्चिन्निर्धर्मोऽलसो लुब्धो मायावी गौरविकः कांक्षावान् गच्छेऽपि संवसन् द्वितीयं नेच्छति शिथिलत्वयोगादिति ।। ३२ ।।

किमेतान्येव पापस्थानानि एकाकिनो विहरतो भवन्तीत्युतान्यान्यपीत्वत आह—

आणा अणवत्थाविय मिच्छत्ताराहणादणासो य ।
संजमविराहणाविय एदे दुणिकाइया ठाणा ।। ३३ ।।

आणा—आज्ञा कोपः सर्वज्ञशासनोल्लंघनं । नन्वाज्ञाग्रहणात्कथमाज्ञाभंगस्य ग्रहणं, एकदेशग्रहणात् यथा भामाग्रहणात् सत्यभामाया ग्रहणं सेनग्रहणाद्वा भीमसेनस्य । अथवोत्तरत्राज्ञाकोपादिग्रहणाद्वा । यद्यत्राज्ञाया एव ग्रहणं स्यादुत्तरत्र कथमाज्ञाकोपादिकाः पंचापि दोषाः कृतास्तेनेत्याचार्यो भणति तस्मात्प्राकृतलक्षणबलात् कोपशब्दस्य निवृत्तिं कृत्वा निर्देशः कृतः । **अणवत्था**—अनवस्था अतिप्रसंगः, अन्येऽपि तेनैवप्रकारेण प्रवर्तेरन् । **अवि य**—अपि च । **मिच्छत्ताराहणा**—मिथ्यात्वस्याराधना सेवा । **आदणासो य**—आत्मनो नाशश्चात्मीयानां सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां विघातः, आत्मीयस्य कार्यस्य वा । **संयमविराहणाविय**—संयमस्य विराधनापि च, इन्द्रियप्रसरोऽविरतिश्च । **एदेदु**—एतानि तु । **णिकाइया**—निकाचितानि पापागमनकारणानि निश्चितानि पुष्टानि वा । **ठाणाणि**—स्थानानि । अपि च शब्दादन्यान्यपि कृतानि भवन्ति इत्यध्याहारः । एकाकिनो विहरत एतानि पंचस्थानानि भवन्त्येवान्यानि पुनर्भाज्यानीति ।। ३३ ।।

शिथिलाचारी ही जाननां । इहां गच्छ शब्द कह्या सो तीनि पुरुषनि का समूह सो गण कहिए, बहुरि सात पुरुषनि का समूह सो गच्छ कहिए—अैसा जाननां ।। ३२ ।।

आगैं कहैं कि एकाकी विहार करनैं वालैंनि कै एते ही पापस्थान हैं कि अन्य भी हैं ? अैसा कहै हैं—

अर्थ—जो एकाकी विहार करै हैं ताकै १–आज्ञाकोप, २–अनवस्था, ३–मिथ्यात्वाराधना, ४–आत्मनाश, ५–संयम विराधना—ए पाँच स्थान तो निकाचित हैं । निश्चित पुष्ट पापागमन के कारण हैं । अर अन्य पापस्थान हैं ते त्याज्य हैं । होहि वा न होहि वा थोरे होहि वा बहुत हो, परन्तु ए पाँच तौ अवश्य हौंहि, तिनिका स्वरूप कहिए हैं । प्रथम तौ आज्ञाकोपः कहिए—सर्वज्ञ की आज्ञा का उल्लंघन होय । सर्वज्ञ की स्वच्छन्द-एकाकी रहने की आज्ञा नाहीं ।

इहां कोउ कहै सूत्र से आज्ञा अैसा शब्द है ताका आज्ञाकोप अैसा अर्थ कैसे किया ?

ताका समाधान सूत्र मैं एकदेश ग्रहण किया है । तातैं सर्वदेश समझि लैनां । जैसैं 'भामा' के ग्रहणतैं 'सत्यभामा' का ग्रहण होय । अथवा 'सेन' का ग्रहणतैं भीमसेन ग्रहण होय—अैसा जाननां ।

अथवा आगै सूत्रनि मैं अैसा कहै हैं, जो आज्ञाकोपादिक पंचदोष है ताकी सामर्थ तैं ऐसा जानिए कि इहां भी आज्ञाकोप ही का ग्रहण है । प्राकृत सूत्र के बलतैं कोप शब्द की निवृत्तिकरि निर्देश कीया है । बहुरि अनवस्था कहिए—अतिप्रसंग आवे है । एक कूं स्वच्छन्द विहार देखि अन्य भी तिहि प्रकार-करि प्रवर्ते तौ सर्वं स्वच्छन्द होय जाय, तब गुरु कैं स्थान काहे कूं रहै ?

बहुरि मिथ्यात्वाराधना कहिए—सम्यक्त्व का अभाव होय जाये । बहुरि आत्मनाशः कहिए–अपनैं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र

एवंभूतस्य तस्य सश्रुतस्य ससहायस्य विहरतः कथंभूते गुरुकुले वासो न कल्पते इत्याह—

तत्थ ण कप्पइ वासो जत्थ इमे णत्थि पंच आधारा ।

आइरियउवज्झाया पवत्तथेरा गणधरा य ।। ३४ ।।

तत्थ—तत्र गुरुकुले । **ण कप्पइ**—न कल्पते न युज्यते । **वासो**—वसनं वासः स्थानं । **जत्थ**—यत्र यस्मिन् गुरुकुले । **णत्थि**—न संति न विद्यन्ते । **इमे**—एते । **पंच आधारा**—आधारभूताः अनुग्रहकुशलाः । के तेऽत आह—**आयरिय**—आचार्यः । **उवज्झाय**—उपाध्यायः, आचार्यतेऽस्मादाचार्यः, उपेत्यास्मादधीयते उपाध्यायः । **पवत्त**—प्रवर्तकः, संघं प्रवर्तयतीति प्रवर्तकः । **थविर**—स्थविर यस्मात् स्थिराणि आचरणानि भवन्तीति स्थविरः । **गणधरा य**—गणधराश्च गणं धरतीति गणधरः । यत्र इमे पंचाधारा आचार्योपाध्यायप्रवर्तकस्थविरगणधरा न सन्ति तत्र न कल्पते वास इति ।। ३४ ।।

अथ किंलक्षणास्तेऽत आह—

सिस्साणुग्गहकुसलो धम्मुवदेसो य संघवट्टवओ ।

मज्जादुवदेसोवि य गणपरिरक्खो मुणेयव्वो ।। ३५ ।।

एतेषामाचार्यादीनामेतानि यथासंख्येन लक्षणानि । **सिस्साणुग्गहकुसलो**—शिष्यस्य शासितुं योग्यस्यानुग्रह उपादानं तस्मिंस्तस्य वा कुशलो दक्षः शिष्यानुग्रहकुशलो दीक्षादिभिरनुग्राहकः परस्यात्मनश्च । **धम्मुवदेसो य**—धर्मस्य दशप्रकारस्योपदेशकः कथकः धर्मोपदेशकः । **संघवट्टवओ**—संघप्रवर्तकश्चर्यादिभिरुपकारकः । **मज्जादुवदेसोवि य**—मर्यादायाः स्थितेरुपदेशको मर्यादोपदेशकः । **गणपरिरक्खो**—गणस्य परिरक्षकः

का विघात होय । बहुरि संयमविराधना कहिए—इंद्रिय, मन, विषयनि मैं प्रवर्तन तैं तथा षट्जीवनिकाय की बाधातैं संयम का घात होय । ऐसैं पंच पापस्थान अवश्य होंय ।। ३३ ।।

आगैं ऐसैं श्रुतज्ञान सहित, सहाय-सहित करता जो मुनि सो ऐसे गुरुकुल मैं वास नांही करै ।

अर्थ—ऐसे गुरुकुल में वास युक्त नांही, जहाँ ए पाँच आधारभूत नांही होय—आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणधर । आप आचरण करै, पैलेनिकूं करावे तै आचार्य कहिए । जिनिके समीप जाय शास्त्र का अध्ययन करिए सो उपाध्याय कहिए । संघकूं प्रवर्तावै ते प्रवर्तक कहिए, जिन तैं आचरण स्थिर होय ते स्थविर कहिए । गण कूं धरै तो गणधर कहिए । ये पंचमुनिराज संघ के आधारभूत हैं । सर्वशिष्यनिके अनुग्रह विषैं कुशल हैं ।।३४ ।।

आगै इनि पांचूनि का लक्षण कहै हैं—

अर्थ—तिनि आचार्यादिकनि के ए अनुक्रम तैं लक्षण है, १–शिष्यनिका अनुग्रह विषैं कुशल होय दीक्षादिकनि करि शिष्यनिका उपगार करैं—इह तौ आचार्यनिका लक्षण है । २–बहुरि दशलक्षणीक धर्म का उपदेश करैं, शास्त्र पढावैं-इह उपाध्यायनिका लक्षण है । ३–बहुरि संघ कूं प्रवर्तावै, चर्यादिक करि संघ का उपगार करै, इह प्रवर्तकनिका लक्षण है । ४–बहुरि मर्यादा उपदेश

पालकोगणपरिरक्षकश्च । **मुणेयव्वो**—मन्तव्यो ज्ञातव्यः । मन्तव्यशब्दः सर्वत्र संबंधनीयः । यत्र चैते पंचाधाराः सन्ति तत्र वासः कर्तव्य इति शेषः ॥ ३५ ॥

अथ तेन गच्छता यद्यन्तराले किंचिल्लब्धं पुस्तकादिकं तस्य कोऽर्ह इत्याह—

जंतेणंतरलद्धं सच्चित्ताचित्तमिस्सयं दव्वं ।
तस्स ण सो आइरिओ अरिहदि एवंगुणो सोवि ॥ ३६ ॥

जंतेण—यत्तेन[1] । **अंतरलद्धं**—अन्तराले लब्धं प्राप्तं । **सचित्ताचित्तमिस्सयं दव्वं**—सचित्ताचित्तमिश्रकं द्रव्यं सचित्तं छात्रादिकं, अचित्तं पुस्तकादिकं, मिश्रं पुस्तकादिसमन्वितं जोवद्रव्यं । **तस्स य**—तस्य च । **सो आयरिओ**—स आचार्यः । **अरिहदि**—अर्हः । अथवा तद्द्रव्यं आचार्योऽर्हति । सचित्ताचित्तमिश्रकं द्रव्यं यत्तेनान्तराले लब्धं तस्य स आचार्योऽर्हति वा तद्द्रव्यमिति वा आचार्योऽपि कथं विशिष्टः **एवंगुणो सोवि**—एवंगुणः सोऽपि ॥ ३६ ॥

कथंगुणोत आह—

संगहणुग्गहकुसलो सुत्तत्थविसारओ पहियकित्तो ।
किरिआचरणसुजुत्तो गाहुय आदेज्जवयणो य ॥ ३७ ॥

संगहणुग्गहकुसलो—संग्रहणं संग्रहः, अनुग्रहणमनुग्रहः, कोऽनयोर्भेदो दीक्षादिदानेनात्मीयकरणं संग्रहः दत्तदीक्षस्य शास्त्रादिभिः

करैं, संघ की रीति, स्थिति, प्राचीन-परम्परा मर्याद होय तो बतावै—इह स्थविरनि का लक्षण है। ५-बहुरि गण की रक्षा करै, पालै इह गणधरनिका लक्षण है। जहाँ ये पाँच आधार होय तहाँ वास करणां ॥ ३५ ॥

आगें कहै है है कि चालतें संतै अंतराल विषै कोई पुस्तकादिक की प्राप्ति भई होय तो तांका कहा (क्या) करै ? सो कहै हैं—

अर्थ—चालतैं सतै अंतराल कै मार्ग विषैं सचित्त कहिए शिष्यादिक, अचित्त कहिए—पुस्तकादिक, मिश्र कहिए—पुस्तकादिक करि सहित शिष्य प्राप्त भए हौंहि, तिनिकैं ग्रहण करनै कूं योग्य आचार्य है, जिनि आचार्यनि के गुण आगानै वर्णन कीजियेगा।

भावार्थ—मार्ग विषै पुस्तकादिक प्राप्त भए हौंहि तथा कोई शिष्य मिलि गया होय तौ जिनि आचार्य कै समीप जाय तिनि आचार्यनिकैं पासि ले जाय ॥ ३६ ॥

तिनि आचार्यनि के गुण कहै है—

अर्थ—आचार्य संग्रह-अनुग्रह कै विषै कुशल होय, दीक्षादिक देनैंकरि शिष्य कूं अपनां करै सो संग्रह कहिए। जाकूं दोक्षा

---

१. क यत्नेन ।

संस्करणमनुग्रहस्तयोः कर्तव्ये ताभ्यां वा कुशलो निपुणः । **सुत्तत्थविसारओ**—सूत्रं चार्थश्च सूणार्थौ तयोस्ताभ्यां वा विशारदोऽवबोधको विस्तारको वा सूत्रार्थविशारदः । **पहिदकित्ती**—प्रख्यातकीर्तिः । **किरियाचरणसुजुत्तो**—क्रिया त्रयोदशप्रकारा पंचनमस्कारावश्यकासिकानिषेधिकाभेदात् । **आचरणमपि**—त्रयोदशविधं पंचमहाव्रतपंचसमितित्रिगुप्तिविकल्पात् । तयोस्ताभ्यां वा सुयुक्तः आसक्तः क्रियाचरणसुयुक्तः । **गाहुयं**—ग्राह्यं । **आदेज्जं**—आदेयं । ग्राह्यं वचनं यस्यासौ ग्राह्यादेयवचनः । उक्तमात्रस्य ग्रहणं ग्राह्यं एवमेवैतदित्यनेन भावेन ग्रहणं, आदेयं प्रमाणीभूतम् ।। ३७ ।।

पुनरपि—

गंभीरो दुद्धरिसो सूरो धम्मप्पहावणासीलो[1] ।
खिदिससिसायरसरसो कमेण तं सो दु संपत्तो ।। ३८ ।।

गंभीरो—अक्षोभ्यो गुणैरगाधः । **दुद्धरिसो**—दुःखेन धृष्यत इति दुर्धर्षः प्रवादिभिरकृतपरिभवः । **सूरो**—शूरः शौर्योपेतः समर्थः । **धम्मप्पहावणासीलो**—धर्मश्च प्रभावना च धर्मस्य वा प्रभावना तयोस्ताभ्यां वा शीलं तात्पर्येण वृत्तिर्यस्यासौ धर्मप्रभावनाशीलः । **खिदि**—क्षितिः पृथिवी, **ससि**—शशी चन्द्रमाः, **सायर**—सागरः समुद्रः । क्षमया क्षितिः सौम्येन शशी निर्मलत्वेन सागरोऽतस्तैः । **सरिसो**—सदृशः समः क्षिति-

---

दई ताका शास्त्र ज्ञानादिकरि संस्कार करै सो अनुग्रह कहिए । इनि दोऊनि विषैं आचार्य कुशल होय, निपुण होय । बहुरि सूत्रार्थ विशारद होय । सूत्र कहिए सिद्धान्त का पाठ, अर्थ कहिए वृत्ति, वार्त्तिक, भाष्यादिक करि पदार्थ का समझनां—इनि दोउनिका ज्ञाता होय, विस्तार करै । बहुरि अनेक देश के लोकनि विषैं विख्यात है यश जिनिका, जिनिकै पवित्र गुण सर्वदेसनि में फैलि रहे होंहि ।

बहुरि क्रियाचरण संयुक्तः कहिए क्रिया तेरह प्रकार—पंचपरमेष्ठोनिकूं नमस्कार करनै रूप पाँच नमस्कार क्रिया, षट् आवश्यक रूप छह क्रिया, आसिका, निषेधिका—अैसे तेरह प्रकार क्रिया । बहुरि तेरह प्रकार आचरण—पंच प्रकार महाव्रत, पंच-समिति, तीन गुप्ति—अैसे क्रिया आचरण करि युक्त होय । बहुरि ग्राह्यादेयवचनः कहिए जिनिकै वचन सुनने मात्र हो करि सब ग्रहण करैं । बहुरि 'जो आचार्य कहैं हैं सो अैसें ही है, अन्यथा नांही'—अैसें प्रमाणभूत जांनि जिनिका वचन अंगोकार करै, अैसे होय ।। ३७ ।।

आगे बहुरि गुण कहै है—

अर्थ—आचार्य गंभीर होय क्षोभ कूं प्राप्त न होय जिनिके गुणनिका थाह आवै नांही । बहुरि दुर्धर्ष होय—परवादी जिनिकैं सन्मुख आवैं नांहो, जिनिसैं वाद कर सकै नांही, जिनिका पराभव[2] करि सकैं नांही । बहुरि सूर—कहिये कार्य करनैं कूं समर्थ होय, कायर नांहीं होय । बहुरि धर्म्म-प्रभावनाशील कहिए—दान, तप, पूजा, विद्या, अतिशयकरि धर्म्म की प्रभावनां करणैं

---

१. अ, ब धम्मप्पभावणासीलो । २. ब परिभव ।

शशिसागरसदृशः। एवंगुणविशिष्टो य आचार्यस्तमाचार्यम्। **कमेण**—क्रमेण न्यायेमागमोक्तेन। **सो दु**—स तु शिष्यः। **संपत्तो**—संप्राप्तः प्राप्तवानिति ॥ ३८ ॥

तस्यागतस्याचार्यादयः किं कुर्वन्तीत्याह—

आएसं एज्जंतं सहसा दट्ठूण संजदा सव्वे।
वच्छल्लाणासंगहपणमणहेदुं समुट्ठंति ॥ ३९ ॥

आएसं—आगतं पादोष्णं प्राघूर्णकं [1]आयस्यायासं कृत्वा वा। **एज्जंतं**—आगच्छन्तं। **सहसा**—तत्क्षणादेव। **दट्ठूण**—दृष्ट्वा। **संजदा**—संयताः। **सव्वे**—सर्वेऽपि। **समुट्ठन्ति**—समुत्तिष्ठंते ऊर्ध्वज्ञवो भवन्ति। किंहेतोरित्याह—**वच्छल्ल**—वात्सल्यनिमित्तं। **आणा**—सर्वज्ञाज्ञापालनकारणं। **संगह**—संग्रह[2] आत्मीयकरणार्थं। **पणमणहेदुं**—प्रणमनहेतोश्च ॥ ३९ ॥

पुनरपि—

पच्चुग्गमणं किच्चा सत्तपदं अण्णमण्णपणमं च।
पाहुणकरणीयकदे तिरयणसंपुच्छणं कुज्जा ॥ ४० ॥

पच्चुग्गमणं किच्चा—प्रत्युद्गमनं कृत्वा। **सत्तपदं**—सप्तपदं यथा भवति। **अण्णमण्णपणमं च**—अन्योऽन्यप्रणामं च परस्परवन्दनाप्रतिवन्दने च। ततः **पाहुणकरणीयकदे**—पादोष्णस्य यत्कर्तव्यं तस्मिन् कृते प्रतिपादिते सति पश्चात्। **तिरयणसंपुच्छणं**—त्रिरत्नसंप्रश्नं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसंप्रश्नं। **कुज्जा**—कुर्यात्करोतु ॥ ४० ॥

विषैं तत्पर होय। बहुरि क्षमाकरि पृथ्वी समान होय। बहुरि उपशांत भाव करि आल्हाद-कारी चन्द्रमा समान होय। बहुरि निर्मलपणां करि समुद्र समान होय—ऐसे गुणनिकरि विशिष्ट जो आचार्य ता प्रति पढ़नैं कूं चाल्या जो शिष्य मुनि सो प्राप्त होय ॥ ३८ ॥

आगैं जे शिष्यमुनि आए तिनिकूं आवतैं संतै दूजे संघ के आचार्यादि कहै ते कहा (क्या) करे ? सो कहै है—

अर्थ—आयास कहिए प्रयासकरि अन्य संघतैं आया जो मुनि पादोष्ण-प्राघूर्णक ताहि देखिकरि शीघ्र ही सर्व्व संयमी हैं, ते खड़े हो जांहि, कारण कहा वात्सल्य सम्यक्त्व का गुण ताकै निमित्ति। बहुरि सर्वज्ञ की आज्ञा पालनै कै निमित्त। बहुरि नवीन मुनि आए तिनिका संग्रह करनें कै निमित्त। उनकूं अपनैं करनैं के निमित्त। बहुरि प्रणमन कहिए, नमस्कार करनैं के निमित्त—इनि प्रयोजन के निमित्त खड़े हौंहि ॥ ३९ ॥

बहुरि कहा (क्या) करै ? सो कहै है—

अर्थ—सात पैंड (कदम) सन्मुख जायकरि परस्पर नमस्कार करै। मुनि आवैं ते पहली वंदना करै! पीछै आचार्य प्रतिवंदना करै। पीछै आए जे पादोष्ण मुनि तिनिकी पादोष्ण क्रिया कीयैं संतै सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र रूप तीन रत्ननिका प्रश्न करै।

भावार्थ—यह पूछै कि जो तुमारे रत्नत्रय शुद्ध पलै हैं ? ॥ ४० ॥

१. क आशय्यावास°। २. क °ग्रहमात्मी°।

पुनरपि तस्यागतस्य किं क्रियत इत्याह—

आएसस्स तिरत्तं णियमा संघाडओ दु दायव्वो[1] ।
किरियासंथारादिसु सहवासपरिक्खणाहेऊं[2] ॥ ४१ ॥

आएसस्स—आगतस्य पादोष्णस्य । **तिरत्तं**—त्रिरात्रं त्रयो दिवसाः । **णियमा**—नियमान्निश्चयेन । **संघाडओ**—संघाटकः सहायः । त्वेवकारार्थे । **दायव्वो**—दातव्यः । केषु प्रदेशेष्वत आह—**किरिया**—क्रियाः स्वाध्यायवन्दनाप्रतिक्रमणादिकाः । **संथार**—संस्तारं शयनीयप्रदेशस्तावादिर्येषां ते क्रियासंस्तारादयस्तेषु षडावश्यकक्रियास्वाध्यायसंस्तरभिक्षामूत्रपुरीषोत्सर्गादिषु[3] । किंनिमित्तमत आह—**सहवास**—सहवसनं सहवासस्तेन सार्द्धमेकस्मिन् स्थाने सम्यग्दर्शनादिषु सहाचरणं तस्य **परिक्खणाहेऊं**—परीक्षणं परीक्षा वा तदेव हेतुः कारणं सहवासपरीक्षणहेतुस्तस्मात्तेन सहाचरणं करिष्याम इति हेतोः । आगतस्य नियमात्त्रिरात्रं संघाटको दातव्यः क्रियासंस्तरादिषु सहवासपरीक्षणनिमित्तमिति ॥ ४१ ॥

किं तैरेव परीक्षा कर्तव्या नेत्याह—

आगंतुयवत्थव्वा पडिलेहाहिं तु अण्णमण्णाहिं ।
अण्णोण्णकरणचरणं जाणणेहदु परिक्खंति[4] ॥ ४२ ॥

आगंतुयवत्थव्वा—आगन्तुकाश्च वास्तव्याश्चागन्तुकवास्तव्याः । **पडिलेहाहिं**—अन्याभिरन्याभिः क्रियाभिः प्रतिलेखनेन[5] भोजनेन स्वाध्यायेन प्रतिक्रमणादिभिश्च । **अण्णमण्णाहिं**—परस्परं । **अण्णोण्णं**—त्रयोदशक्रियाचारित्रं । अथवान्योऽन्यस्य **करणचरणं**—तयोर्ज्ञानं तदर्थं अन्योन्यकरणचरणज्ञानहेतोः । **परिक्खंति**—परीक्षन्ते गवेषयन्ति । परस्परं त्रयोदशविधकरणचरणं आगन्तुकवास्तव्याः परीक्षन्ते काभिः कृत्वा ? परस्परं दर्शनप्रतिदर्शनक्रियाभिः किंहेतोरवबोधार्थमिति ॥ ४२ ॥

पीछै तिस आया मुनि का कहा करै ? सो कहै हैं—

अर्थ—आए जो अन्य संघ कै मुनि ताकूं तीन दिन नियमतैं संघाटक कहिए सहाय मुनि लार देणां । कौंन से प्रदेशनि विषैं क्रिया कहिए स्वाध्याय, वंदना, प्रतिक्रमण इत्यादि षडावश्यक क्रिया । बहुरि संस्तर कहिए सोवनैं का प्रदेश, आदि शब्द तैं भिक्षाचर्या, मूत्रपुरीष का उत्सर्ग इत्यादिक विषैं लारदेनां । प्रयोजन कहा तिनिकरि सहित स्थान करणां, सम्यग्दर्शनादिक का आचरण करनां । अथवा तिनिकी परीक्षा करणीं—इनिकैं शुद्धता कैसी है ? ताका ज्ञान कै अर्थि तीन रात्रि, तीन दिन संघाटक अवश्य लार देनां ॥ ४१ ॥

आगैं अन्य परीक्षा करने का मार्ग कहै है—

अर्थ—आगंतुक कहिए— अन्य संघ कैं आवनै वाले मुनि, बहुरि वास्तव्य कहिए—वाही (उसी) संघ में रहने वाले मुनि है ते अन्योन्य कहिए—परस्पर प्रतिलेखनादि कहिए जीवनिका पिच्छी आदिकतैं प्रतिलेखन की क्रिया, तथा भोजन की क्रिया, तथा स्वाध्याय की क्रिया, तथा प्रतिक्रमणादिक की क्रिया—तिनि करिकैं परस्पर करण-चरण कहिए तेरह प्रकार करण, तेरह प्रकार

---

१. अ, ब दादव्वो । २ हेदुं । ३. क °षु सहा° । ४. अ, ब परिछंति । ५. क °नेन स्वा° ।

केषु प्रदेशेषु परीक्षन्ते तत आह—

आवासयठाणादिसु पडिलेहणवयणगहणणिक्खेवे ।
सज्झाएगविहारे भिक्खग्गहणे परिच्छंति ।। ४३ ।।

आवासयठाणादिसु—आवश्यकस्थानादिषु षडावश्यकक्रियाकायोत्सर्गादिषु आदिशब्दाद्यद्यपि शेषस्य संग्रहः तथापि स्पष्टार्थमुच्यते । **पडिलेहणं**—प्रतिलेखनं चक्षुरिंद्रियपिच्छिकादिभिस्तात्पर्यं । **वयणं**—वचनं । **गहणं**—ग्रहणं । **णिक्खेवो**—निक्षेप एतेषां द्वन्द्वः प्रतिलेखनवचनग्रहणनिक्षेपेषु । **सज्झाये**—स्वाध्याये । **एगविहारे**—एकाकिनो गमनागमने । **भिक्खग्गहणे**—भिक्षाग्रहणे चर्यामार्गे । **परिच्छंति**—परीक्षन्तेऽन्वेषयन्ति ।। ४३ ।।

परीक्ष्यागन्तुको यत्करोति तदर्थमाह—

विस्समिदो तद्दिवसं मीमंसित्ता णिवेदयदि गणिणे ।
विणएणागमकज्जं बिदिए तदिए व दिवसम्मि ।। ४४ ।।

विस्समिदो—विश्रान्तः सन् विश्रम्य पथश्रमं त्यक्त्वा । **तद्दिवसं**—तस्मिन्वा दिने तद्दिवसं विश्रम्य गमयित्वा । **मीमंसित्ता**—मीमांसित्वा परीक्ष्य तच्छुद्धाचरणं ज्ञात्वा । **णिवेदयइ**—निवेदयति प्रतिबोधयति । **गणिणे**—गणिने आचार्याय । **विणएण**—विनयेन । **आगमकज्जं**—आगमनकार्यं स्वकीयागमनप्रयोजनं । **विदिए**—द्वितीये । **तदिए**—तृतीये । **दिवसम्मि**—दिवसे । तं दिवसं विश्रम्य द्वितीये तृतीये वा दिवसे विनयेनोपढौक्याचरणं च परीक्ष्याचार्यायागमनकार्यं निवेदयत्यागन्तुकः । अथवाचार्यस्य गृह्यास्तं[1] परीक्ष्य निवेदयन्ति गणिने इति ।। ४४ ।।

चरण—ताकै ज्ञान कैं निमित्त परस्पर दर्शन-प्रतिदर्शन करि परीक्षा करै ।। ४२ ।।

कौन-कौन प्रदेशनि विषैं परीक्षा करै ? सो कहै हैं—

अर्थ—आवश्यक कहिए—षट् आवश्यक की क्रिया, स्थान कहिये—कायोत्सर्ग की क्रिया इत्यादिक विषै । बहुरि प्रतिलेखन कहिए—नेत्र-इन्द्रिय, पिच्छी करि शोधन विषै, बहुरि वचन कहिए भाषा बोलनैं की क्रिया विषैं, बहुरि ग्रहण निक्षेप कहिए—पुस्तकादिक उठावनै को क्रिया विषैं, बहुरि स्वाध्याय क्रिया विषैं, बहुरि एकविहार कहिए—एकाकी जावनैं-आवनैं की क्रिया विषैं, बहुरि भिक्षाग्रहण चर्यामार्ग विषैं—इनि स्थानकनि विषैं परस्पर परीक्षा करै है ।। ४३ ।।

आगैं अन्य संघतैं आए मुनि हैं ते परीक्षा करि पीछैं कहा (क्या) करैं ? सो कहैं हैं—

अर्थ—आगंतुक मुनि हैं, सो जा दिन आए ता दिन तौ मार्ग का खेद छोडि विश्राम लेय, पीछै आचार्यनि की परीक्षाकरि तिनिका श्रद्धान-ज्ञान-आचरण शुद्ध जानि विनय करिकैं दूसरै दिन तथा तीसरै दिन अपनैं आवनैं का प्रयोजन निवेदन करै, कहै अथवा आचार्यनिके जे गृह्य शिष्य हैं, ते आगंतुक को परीक्षाकरि आचार्यनि कूं निवेदन करै—जो इनिकै शुद्ध आचरण है, इस प्रयोजन कै अर्थ यहाँ आए हैं ।। ४४ ।।

१. क °स्तं श्रुतं प° ।

एवं [1]निवेदयते यदाचार्यः करोति तदर्थमाह—

आगंतुकणामकुलं गुरुदिक्खामाणवरिसवासं च ।
आगमणदिसासिक्खापडिकमणादी य गुरुपुच्छा ।। ४५ ।।

आगन्तुक णामकुलं—आगन्तुकस्य पादोष्णस्य, **नाम**—संज्ञा, **कुलं**—गुरुसंतानः, गुरुः—प्रव्रज्यायादाता । **दिक्खामाणं**—दीक्षाया मानं परिमाणं । **वरिसवासं च**—वर्षस्य वासः वर्षवासश्च वर्षकालकरणं च, **आगमणदिसा**—आगमनस्य दिशा कस्या दिश आगतः । **सिक्खा**—शिक्षा श्रुतपरिज्ञानं । **पडिक्कमणादीय**—प्रतिक्रमण आदिर्येषां ते प्रतिक्रमणादयः । **गुरुपुच्छा**—गुरोः पृच्छा गुरुपृच्छा । एवं गुरुणा तस्यागतस्य पृच्छा क्रियते किं तव नाम ? कुलं च ते किं ? गुरुश्च युष्माकं कः ? दीक्षापरिमाणं च भवतः कियत् ? वर्षकालश्च भवद्भिः क्व कृतः ? कस्या दिशो भवानागतः ? किं पठितः ? किं च[2] श्रुतं त्वया, कियन्त्यः प्रतिक्रमणास्तव संजाताः, न च[3] भूताः कियन्त्यः । प्रतिक्रमणाशब्दो युजन्तोऽयं द्रष्टव्यः । किंच त्वया श्रवणीयं ? कियतोऽध्वन आगतो भवानित्यादि ।। ४५ ।।

एवं तस्य स्वरूपं ज्ञात्वा—

जदि चरणकरणसुद्धो णिच्चुज्जुत्तो विणीदमेधावी ।
तस्सिट्ठं कधिदव्वं सगसुदसत्तीए भणिऊण ।। ४६ ।।

जइ—यदि । **चरणकरणसुद्धो**—चरणकरणशुद्धः चरणकरणयोर्लक्षणं व्याख्यातं ताभ्यां शुद्धः । **णिच्चुज्जुत्तो**—नित्योद्युक्तो विगतातीचारः । **विणीद**—विनीतः । **मेधावी**—बुद्धिमान् । **तस्सिट्ठं**—तस्येष्टं यथावाञ्छितं । **कधिदव्वं**—कथयितव्यं निवेदयितव्यं । **सगसुदसत्तीए**—स्वकीयश्रुतशक्त्या यथास्वपरिज्ञानं । **भणिऊण**—भणित्वा प्रतिपाद्य । यद्यसौ चरणकरणशुद्धो विनीतो बुद्धिमान् नित्योद्युक्तश्च तदानीं तेनाचार्येण तस्येष्टं कथयितव्यं स्वकीयश्रुतशक्त्या भणित्वा भणतीति ।। ४६ ।।

आगै अैसे निवेदन करतैं संतै आचार्य कहा करै ? सो कहै है—

आगंतुक जो अन्य संघ तैं आओ मुनि, ताकूं आचार्य एती बात पूछै—तुम्हारा नाम-संज्ञा कहा है ? तुम्हारा कुल कहिए गुरु का संतान कैसा है ? तुम्हारा गुरु कहिए दीक्षा देनैं वाले कैसे आचार्य है ? तुम्हारा दीक्षामान कहिए दीक्षा के काल का परिमाण कहा है ? तुम्हारै तांई दीक्षा लीएं केते वर्ष व्यतीत भये ? बहुरि वर्षावास कहिए—तुमनैं वर्षाकाल कहां व्यतीत किया ? बहुरि आगमन दिशा कहिए—तुम कौंन सी दिशा तैं आए ? बहुरि शिक्षा कहिए श्रुतज्ञान तुमकूं कैसा हैं ? कौन-कौन से शास्त्र पढ़े हौ ? कौन-कौन से सुनैं हैं ? बहुरि प्रतिक्रमण तुम्हारै केत्ते भये ? अर केते नांही भए ? आदि शब्दतैं तुमकूं कहा (क्या) सीखना हैं ? कहा (क्या) पढ़ना है ? कहा सुनाना है ? कितने दूरि सैं आए हैं ? इत्यादिक पूछै ।। ४५ ।।

ताका वह आगंतुक मुनि उत्तर देय तव ताका स्वरूप नीकै जानि-करि आचार्य कहा करै ? सो कहै है—

अर्थ—जो वह आगंतुक मुनि तेरह प्रकार चरण, तेरह प्रकार करण करि शुद्ध होय, बहुरि नित्य उद्यमी होय, अतीचार

१. क निवेदिते । २. क वर्षकालकालश्च । ३. क स्तवभूताः ।

अथैवमसो न भवतीति तदानीं किं कर्तव्यं ? इत्युत्तरमाह—

जदि इदरो सोऽजोग्गो छेदमुवट्ठावणं च कादव्वं ।
जदि णेच्छदि छंडेज्जो अध गिण्हदि[1] सोवि छेदरिहो ।। ४७ ।।

जदि—यदि । **इदरो**—इतरो व्रतचरणैरशुद्धः । **सो**—सः आगन्तुकः । **अजोगो**—अयोग्यो देववन्दनादिभिः, अथवा योग्यः प्रायश्चित्त-शास्त्रदृष्टः । **छेदो**—छेदः तपोयुक्तस्य कालस्य पादत्रिभागार्धादेः[2] परिहारः । **उवट्ठापणं च**—उपस्थापनं च । यदि सर्वथा व्रताद् भ्रष्टः पुनर्व्रता-रोपणं । **कादव्वो**—कर्तव्यः करणीयः कर्तव्यं वा । **जदि णेच्छदि**—यदि नेच्छेत् अथ नाभ्युगच्छति अथवा लङन्तोयं प्रयोगः । **छंडेज्जो**—त्यजेत् परिहरेत् । **अध गिण्हदि**—अथ तादृग्भूतमपि छेदार्हतं गृह्णाति अदत्तप्रायश्चित्तं तदानीं । **सोवि**—सोप्याचार्यः । **छेदरिहो**—छेदार्हः प्रायश्चित्त-योग्यः संजातः । यदि स शिष्यः प्रायश्चित्तयोग्यो भवति तदानीं तस्य च्छेदः कर्तव्यः उपस्थापनं वा कर्तव्यं अथ नेच्छति छेदमुपस्थानं वा तं त्यजेत् । यदि पुनर्मोहात्तं गृह्णाति सोऽप्याचार्यश्छेदार्हो भवतीति ।। ४७ ।।

तत ऊर्ध्वं किं कर्त्तव्यं ? इत्याह—

एवं विधिणुववण्णो एवं विधिणेव सोवि संगहिदो ।
सुत्तत्थं सिक्खंतो एवं कुज्जा पयत्तेण ।। ४८ ।।

एवं—कथितविधानेनैवंविधिना । **उववण्णो**—उत्पन्न उपस्थितः पादोष्णः तेनाप्याचार्येण एवंविधिना कथितविधानेन कृताचरण-शोधनेन । **सोवि**—सोऽपि शिक्षकः । **संगहिदो**—संगृहीतः आत्मीकृतः सन् । **एवं कुज्जा**—एवं कुर्यात् एवं कर्तव्यं तेन । **पयत्तेण**—प्रयत्नेनादरेण ।

नांही लगावे, विनयवान् होय, बुद्धिवान् होय तौ अपनी श्रुतज्ञान की शक्ति कहिकरि वाकैं जो इष्ट, जो वांछित होय सो वांकूं आचार्य कहै ।। ४६ ।।

बहुरि जो आगंतुक मुनि ऐसा नांही होय तौ आचार्य कहा करै ? सो कहै है—

अर्थ—जो वह आगतुंक-मुनि चरण-करण करि अशुद्ध होय । देववंदना करि अयोग्य होय तौ प्रायश्चित शास्त्र कूं देखि-करि छेद तथा उपस्थापन करनां । तपश्चरण के काल का चतुर्थांश अथवा त्रिभाग अथवा अर्द्ध अपहार करनाँ, छेद करना घटावना सो छेद कहिए । बहुरि जो सर्व्वथा व्रत ही तै भ्रष्ट होय तौ फेरि दीक्षा देनी, सो उपस्थापन कहिए । सो वह छेदोपस्थापन कं योग्य होय । अर जो आगतुंक-मुनि छेदोपस्थापन अंगीकार नांही करै, तौ आचार्य वाकूं अंगीकार नांही करै, छोडि देय । बहुरि जो तिस आगंतुक मुनि प्रायश्चित योग्य कं भी मोह सेती ग्रहण करि ले, प्रायश्चित्त देवै नांही, तौ वह आचार्य है सोहूँ प्रायश्चित्त योग्य होय ।। ४७ ।।

बहुरि ता पीछै कहा कर्तव्य ? सौ कहै है—

अर्थ—पूर्वोवित विधान करि युक्त, वह आगंतुक मुनि[सो]पूर्वोवत विधानकरि, करी है आचार्यनिकरि आचरण की शुद्धता

---

१. अ प्रति—छड्डज्जो अह गेण्हदि, ब[प्रति]में—छडिज्जो अह गेण्हदि । २. क °देरपहारः ।

कथमेवं कुर्यात् ? **सुत्तत्थं**—सूत्रार्थं । **सिक्खंतो**—शिक्षमाणः सूत्रार्थं शिक्षमाणं कुर्यात् । सूत्रार्थं शिक्षमाणेनैतत्कर्तव्यमिति वा ॥ ४८ ॥

किं तत्तेन कर्त्तव्यमित्याह—

पडिलेहिऊण सम्मं दव्वं खेत्तं च कालभावे य ।
विणयउवयारजुत्तेणज्झेदव्वं[1] पयत्तेण ॥ ४९ ॥

पडिलेहिऊण—प्रतिलेख्य निरूप्य । **सम्मं**—सम्यक् । **दव्वं**—द्रव्यं शरीरगतं पिंड[2]कादिव्रणगतं भूमिगतं चर्मास्थिमूत्रपुरीषादिकं । **खेत्तं च**—क्षेत्रं च हस्तशतमात्रभूमिभागं । **कालभावेय**—कालभावौ च संध्यागर्जनविद्युदुत्पादादिसमयविवर्जनं जालशुद्धिः । क्रोधमानमायालोभादिविवर्जनं भावशुद्धिः परिणामशुद्धिः, क्षेत्रगताशुद्धयपनयनं क्षेत्रशुद्धिः, शरीरादिशोधनं द्रव्यशुद्धिः । **विणयउवयारजुत्तेण**—विनयश्चोपचारश्च विनय एवोपचारस्ताभ्यां तेन वा युक्तः समन्वितो विनयोपचारयुक्तस्तेन । **अज्झेयव्वं**—अध्येतव्यं पठितव्यं । **पयत्तेण**—प्रयत्नेन । द्रव्यक्षेत्रकालभावान् सम्यक् प्रतिलेख्य तेन शिष्येण विनयोपचारयुक्तेन प्रयत्नेनाध्येतव्यं नोपेक्षणीयमिति ॥ ४९ ॥

यदि पुनः—

दव्वादिवदिक्कमणं करेदि सुत्तत्थसिक्खलोहेण ।
असमाहिमसज्झायं कलहं वाहिं वियोगं च ॥ ५० ॥

दव्वादिवदिक्कमणं—द्रव्यमादिर्येषां ते द्रव्यादयस्तेषां व्यतिक्रमणमतिक्रमोऽविनयो द्रव्यादिव्यतिक्रमणं द्रव्यक्षेत्रकालभावैः शास्त्रस्य परिभवं । **करेदि**—करोति कुर्यात् । **सुत्तत्थसिक्खलोहेण**—सूत्रं चार्थश्च सूत्रार्थौ तयोः शिक्षात्मसंस्कारोऽवबोध आगमनं तस्या लोभ आसक्तिस्तेन

जानैं—ऐसा बहुरो अंगीकार कीया हुवा आचार्य याकूं सूत्रार्थ सिखावै सो यह यत्नाचारकरि सीखै ॥ ४८ ॥

आगै यत्नाचार कैसे करै ? सो कहै है—

अर्थ—द्रव्य कहिए, शरीरगत पिंडकादि, व्रण (घाव) कहिए गूमडे पांव[3], बहुरि भूमिगत चर्म, अस्थि, मूत्र-पुरीष इत्यादिकनिकूं प्रतिलेखन करि शोधन करनां सो द्रव्य शुद्धि । बहुरि सौ (१००) हाथ मात्र भूमि का भाग का शोधनां सो क्षेत्र-शुद्धि । बहुरि संध्या का काल, मेघगर्जन का काल, व बोजली (बिजली) चमकने का काल, अन्य उत्पातादिक का काल वर्जन-करनां सा काल की शुद्धि । बहुरि क्रोध, मान, माया, लोभादिक का वर्जन करना सो भाव शुद्धि है । ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धता कूं भलै प्रकार देखि विनय-उपचार करि युक्त जो वह आगतुक मुनि सो यत्नाचार करि सूत्रार्थ का अध्ययन करै ॥ ४९ ॥

आगै कहै हैं—जो द्रव्यादिक शुद्धि नांहीं करै तौ कहा होय ? सो कहै हैं—

अर्थ—जो वह आगंतुक मुनि सूत्र-अर्थ सीखनै के लोभ तैं आसक्तता तैं द्रव्यादि कहिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धता का उल्लंघन करै, शास्त्र का अविनय करै तौ असमाधि, बहुरि अस्वाध्याय, बहुरि कलह, बहुरि व्याधि, बहुरि वियोग-ए दोष होंहि । इनिका स्वरूप कहिए हैं—

१. अ, ब विणउवयारजुत्तेण अज्झेदव्वं । २. क पिटका० । ३. ब पाव ।

सूत्रार्थशिक्षालोभेन । **असमाहिं**—असमाधिः मनसोऽसमाधानं सम्यक्त्वादिविराधनं । **असज्झायं**—अस्वाध्यायः शास्त्रादीनामलाभः शरीरादेर्विघातो वा । **कलहं**—कलह आचार्यशिष्ययोः परस्परं द्वन्द्वः, अन्यैर्वा । **वाहिं**—व्याधिः ज्वरश्वासकासभगंदरादिः । **वियोगं च**—वियोगश्च । च समुच्चयार्थः । आचार्यशिष्ययोरेकस्मिन्ननवस्थानं । यदि पुनर्द्रव्यादिव्यतिक्रमणं करोति सूत्रार्थशिक्षालोभेन शिष्यस्तदानीं किं स्यात् ? असमाध्यस्वाध्यायकलहव्याधिवियोगाः स्युः ॥ ५० ॥

न केवलं शास्त्रपठननिमित्तं शुद्धिः क्रियते तेन किंतु जीवदयानिमित्तं चेति—

संथारवासयाणं पाणीलेहाहिं दंसणुज्जोवे ।
जत्तेणुभये काले पडिलेहा होदि कायव्वा ॥ ५१ ॥

संथारवासयाणं—संस्तारश्चतुर्धा भूमिशिलाफलकतृणभेदात् आवासोऽवकाशः आकाशप्रदेशसमूहः संस्तरादिप्रदेश इत्यर्थः । संस्तरश्चावकाशश्च संस्तरावकाशौ तावादिर्येषां ते संस्तरावकाशादयः बहुवचननिर्देशादादिशब्दोपादानं तेषां संस्तरावकाशादीनां । **पाणीलेहाहिं**—पाणिलेखाभिर्हस्ततलगतलेखाभिः । **दंसणुज्जोवे**—दर्शनस्य चक्षुष उद्योतः प्रकाशो दर्शनोद्योतस्तस्मिन् दर्शनोद्योते पाणिरेखादर्शनहेतुभूते चक्षुःप्रकाशे यावता चक्षुरुद्योतेन हस्तरेखा दृश्यन्ते तावति चक्षुषः प्रकाशेऽथवा पाणिरेखानामभिदर्शनं परिच्छेदस्तस्य निमित्तभूतोद्योते पाणिरेखाभिर्दर्शनोद्योते । अथवा प्राणिनो लिहंत्यास्वादयन्ति यस्मिन् स प्राणिलेहः स चासौ अभिदर्शनोद्योतश्च तस्मिन् प्राणिभोजननिमित्तनयनप्रसरे इत्यर्थः । **जत्तेण**—यत्नेन तात्पर्येण । **उभये काले**—उभयोः कालयोः पूर्वाह्णेऽपराह्णे च संस्तरादानदानकाल इत्यर्थः । **पडिलेहा**—प्रतिलेखा शोधनं सन्मार्जनं । **होइ**—भवति । **कादव्व**—कर्तव्या । उभयोः कालयोः हस्तलेखादर्शनोद्योते संजाते यत्नेन संस्तरावकाशादीनां प्रतिलेखा भवति कर्त्तव्येति ॥ ५१ ॥

असमाधि कहिए मन मैं समाधानता रहैं नांही, मन मैला होय जाय, सम्यक्त्वादिक की विराधना हो जाय । बहुरि अस्वाध्याय कहिए–शास्त्रादिक का अलाभ हो जाय, शरीरादिक का विघात हो जाय, स्वाध्याय वणैं नांही । बहुरि कलह कहिए आचार्य-शिष्यनिकै परस्पर विवादादिक होय जाय अथवा अन्य कोई करि विवाद हो जाये । बहुरि व्याधि कहिए ज्वर, श्वांस, कास, भगंदरादिक अनेक प्रकार रोग होंहि, बहुरि वियोग कहिए-आचार्य-शिष्यनि का संबंध छूटि जाय, एक स्थान रहनां होय नांही— अैसे दोष निपजै ॥५० ॥

बहुरि यह द्रव्यादिक शुद्धि केवल शास्त्र-पठन निमित्त ही नांही करिए हैं, जीव दया निमित्त हू करिए हैं—सो ही कहिए हैं—

अर्थ—शुद्ध भूमि, अथवा शिला रूप पाषाण, अथवा फलक कहिए काष्ठ की फडि (पाटा), अथवा शुद्ध निर्जंतुक-तृण-समूह –अैसे च्यारि प्रकार संस्तर । बहुरि अवकाश कहिए संस्तर का प्रदेश इत्यादिकनिकी, उभय कहिए संस्तर ग्रहण करनैं का, बहुरि छोड़नैं का पूर्वाह्न, अपरान्ह रूप दोउ काल, तिनि विषैं हाथ की रेखा दीखैं अैसा नेत्रनिका प्रकाश होतैं संतैं यत्नाचारकरि प्रतिलेखन करिए, शोधन करनां ॥ ५१ ॥

परगण वसता तेन किं स्वेच्छया प्रवर्तितव्यं ? नेत्याह—

उब्भामगादिगमणे उत्तरजोगे सकज्जआरंभे[1] ।
इच्छाकारणिजुत्तो[2] आपुच्छा होइ कायव्वा ।। ५२ ।।

उब्भामगादिगमणे—उद्भ्रामको ग्रामः चर्या वा स आदिर्येषां ते उद्भ्रामकादयस्तेषामुद्भ्रामकादीनां गमनमनुष्ठानं तस्मिन् ग्राम-भिक्षाव्युत्सर्गादिके । **उत्तरजोगे**—उत्तरः प्रकृष्टः योगः वृक्षमूलादिस्तस्मिन्नुत्तरयोगे । **सकज्जआरम्भे**—स्वस्यात्मनः कार्यं प्रयोजनं तस्यारम्भ आदिक्रिया तस्मिन् स्वकार्यारम्भे । **इच्छाकारणिजुत्तो**—इच्छाकारेण कर्त्तुमभिप्रायेण नियुक्तः उद्युक्तः स्थितस्तेन इच्छाकारनियुक्तेन, अथवा आपृच्छाया विशेषणं इच्छाकारनियुक्ता प्रणामादिविनयनियुक्ता । **आपुच्छा**—आपृच्छा सर्वेषां प्रश्नः । होदि—भवति । **कादव्वा**—कर्तव्या कार्या । तेन स्वगणे वसता यथा उद्भ्रामकादिगमने उत्तरयोगे स्वकार्यारम्भे इच्छाकारनियुक्तेनापृच्छा भवति कर्तव्या तथा परगणे वसतापीत्यर्थः ।।५२।।

यथा वैयावृत्यमपीत्याह—

गच्छे वेज्जावच्चं गिलाणगुरु बालबुड्ढसेहाणं ।
जहजोगं कादव्वं सगसत्तीए पयत्तेण ।। ५३ ।।

गच्छे—ऋषिसमुदाये चातुर्वर्ण्यश्रमणसंघे वा सप्तपुरुषकस्त्रिपुरुषको वा तस्मिन् । **वेज्जावच्चं**—वैयावृत्यं कायिकव्यापाराहारादिभि-रूपग्रहणं । **गिलाण**—ग्लानः व्याध्याद्युपपीडितः, क्षीणशक्तिकः । **गुरु**—शिक्षादीक्षाद्युपदेशकः ज्ञानतपोऽधिको वा । **बालो**—नवकः पूर्वापर-विवेकरहितो वा । **बुड्ढ**—वृद्धो जीर्णो जराग्रस्तो दीक्षादीभिरधिको वा । **सेह**—शैक्षः शास्त्रपठनोद्युक्तः स्वार्थपरः निर्गुणो दुराराध्यो वा एतेषां

आगैं कहै हैं—जो दूजे प्रतिलेखन संघ में रहता, वह आगंतुक मुनि सो स्वेच्छाकरि नांही प्रवर्तै—

अर्थ—उद्भ्रामकादिगमने कहिए-ग्राम, भिक्षाचर्या, व्युत्सर्गादिक कैं अर्थि गमन विषैं, बहुरि उत्तरयोग कहिए वृक्ष-मूलादियोग तिनिके धारणैं, विषैं, बहुरि अपनां कार्य प्रयोजन का आरम्भ विषैं, इच्छाकार नियुक्त कहिए-इच्छाकार जो करणैं का अभिप्राय ताकरि सहित प्रणाम, विनय सहित, जैसैं अपनैं संघ विषैं आचार्यादिकनिकूं आपृच्छा करैं था, तैसे ही दूजे संघ में भी आचार्यादिकनि कूं आपृच्छा करै ।। ५२ ।।

आगैं कहैं हैं जो वैयावृत्ति हू तैसैं ही करैं —

अर्थ—गच्छ कहिए ऋषिनिका समुदाय अथवा ऋषि, मुनि, यति, अनगार—ऐसैं च्यारि प्रकार संघ, अथवा सप्त पुरुषक गच्छ, अथवा त्रिपुरुषिक गण ताकैं विषैं ग्लान कहिए रोगादिक करि पीडित क्षीण है शक्ति जाकी । बहुरि गुरु कहिए—दीक्षागुरु, शिक्षागुरु, उपदेश गुरु, बहुज्ञानी तथा तपोधिक, बहुरि बाल कहिए नवीन दीक्षक[3] (दीक्षित) अथवा पूर्वापर विवेक रहित, बहुरि वृद्ध कहिए जरा करि जीर्ण अथवा दीक्षादिक करि अधिक, बहुरि शैक्ष्य कहिए-शास्त्र-पढ़नैं विषैं उद्यमी भए, अथवा स्वार्थ, पर तथा

१. अ. ब. यारंभे, २. अ. ब. णिज्जुत्ते । ३. अ. दीक्षाक ।

द्वन्द्वस्तेषां ग्लानगुरुबालवृद्धशैक्षाणां लक्षणनियोगात् पूर्वापरनिपातो द्रष्टव्यः । **जहजोगं**—यथायोग्यं क्रममनतिलंध्य तदभिप्रायेण वा । **कादव्वं**—कर्तव्यं करणीयं । **सगसत्तीए**—स्वशक्त्या स्वशक्तिमनवगूह्य । **पयत्तेण**—प्रयत्नेनादरेण गच्छे ग्लानगुरुबालवृद्धशैक्षाणां प्रयत्नेन स्वशक्त्या वैयावृत्यं कर्तव्यमिति ।। ५३ ।।

अथ तेन परगणे वन्दनादिक्रियाः किमेकाकिना क्रियंते नेत्याह—

दिवसियरादियपक्खियचाउम्मासियवरिस्सकिरियासु ।
रिसिदेववंदणादिसु सहजोगो होदि कायव्वो ।। ५४ ।।

दिवसिय—दिवसे भवा दैवसिकी अपराह्णनिर्वर्त्या । **रादिय**—रात्रौ भवा रात्रिकी पश्चिमरात्रावनुष्ठेया । **पक्खिय**—पक्षान्ते चतुर्दश्यामावस्यायां पौणमास्यां वा पक्षशब्दः प्रवर्तते तस्मिन् भवा पाक्षिकी । **चाउम्मासिय**—चतुर्थमासेषु भवा चातुर्मासिकी । **वारिसिय**—वर्षेषु भवा वार्षिकी । एताश्च ताः क्रियाश्च । दैवसिकीरात्रिकीपाक्षिकीचातुर्मासिकीवार्षिकीक्रियास्तासु । **रिसिदेववंदणादिसु**—ऋषयश्च ते देवाश्च ऋषिदेवास्तेषां वन्दनादिर्यासां ता ऋषिदेववन्दनादयस्तासु ऋषिदेववन्दनादिषु क्रियासु । **सह**—सार्धं एकत्र । **जोगे**—योग उपयुञ्जनं । अथवाऽखण्डोऽयं शब्दः सहयोगः । दैवसिकादिक्रियासहचरिता बेलाः परिगृह्यन्ते दैवसिकादिक्रियाः सर्वैरेकत्र कर्तव्या भवंति । दैवसिकादिषु ऋषिदेववन्दनादिषु च क्रियासु सहयोगो भवति कर्तव्य इति ।। ५४ ।।

अथ यद्यपराधस्तत्रोत्पद्यते किं तत्रैव शोध्यते उतान्यत्र तत्रैवेत्याह—

मणवयणकायजोगेणुप्पण्णवराध जस्स गच्छम्मि ।
मिच्छाकारं किच्चा णियत्तणं होदि कायव्वं ।। ५५ ।।

परगुण तथा निर्गुण तथा दुराराध्य—इनिका यथायोग्य अपनी शक्ति कूं नांही छिपाये वा तिसके अभिप्रायकरि, यत्नाचार करि, आदर करि वैयावृत्य कहिए—शरीर संबंधी व्यापार, अर आहारादिक करि उपकार करनाँ ।। ५३ ।।

आगैं परगण मैं वंदनादिक क्रिया एकाकी मुनि करै नांही—ऐसें कहैं—

दिन सम्बन्धी अपरान्ह कै विषै करिए सो दैवसिको क्रिया । बहुरि रात्रि सम्बन्धी रात्रि के पिछले पहर मैं करिए सो रात्रि की क्रिया । बहुरि पक्ष संबंधी पक्ष का अन्त चतुर्दशी तथा अमावास्या तथा पूर्णमासी विषै करिए सो पाक्षिकी क्रिया । बहुरि च्यारि महीना संबंधिनी क्रिया सो चातुर्मासकी क्रिया । बहुरि वर्ष संबंधिनी क्रिया सो वार्षिकी को क्रिया । ऐसें इनि पाँच क्रियानि विषैं । बहुरि ऋषि वंदना, देव वंदनां इत्यादिक क्रियानि विषैं सहयोग कर्त्तव्य हैं । दैवसिकादि क्रिया सर्व मुनि एकट्ठे होय एकै काल करैं तथा ऋषि वंदना, देवनादिक कूं एकट्ठे होय करैं ।। ५५ ।।

भावार्थ—क्रिया है ते एकाकी नांही करैं ।

आगैं कहैं हैं—कोई अतीचार-दोष-उपजै ताका शोधन, प्रायश्चित तहां ही करै—

मणवयणकायजोगेण—मनोवचनकाययोगैः । **उप्पण्ण**—उत्पन्नः संजातः । **अवराध**—अपराधो व्रताद्यतिचारः । **जस्स**—यस्य । **गच्छम्मि**—गच्छे गणे चतुः प्रकारे संघे । अथवा **जस्स**—यस्मिन् गच्छे । **मिच्छाकारं किच्चा**—मिथ्याकारं कृत्वा पश्चातापं कृत्वा । **णियत्तणं**—निवर्तनमप्रवर्तनमात्मनः । **होदि**—भवति । **कादव्वं**—कर्तव्यं करणीयं । यस्मिन् गच्छे यस्य मनोवचनकाययोगैरपराध उत्पन्नस्तेन तस्मिन् गच्छे-मिथ्याकारं कृत्वा निवर्तनं भवति कर्तव्यमिति । अथवा **जस्स गच्छे**—यस्य पार्श्वेऽपराध उत्पन्नस्तेन सह मर्षणं कृत्वा तस्मादपराधान्निवर्तनं भवति कार्यमिति ।। ५५ ।।

तत्र गच्छे वसता तेन किं सर्वैः सहालापोऽवस्थानं च क्रियते नेत्याह—

अज्जागमणे काले ण अत्थिदव्वं तधेव एक्केण[1] ।
ताहिं पुण सल्लावो[2] ण य कायव्वो अकज्जेण ।। ५६ ।।

अज्जागमणे काले—आर्याणां संयतीनामुपलक्षणमात्रमेतत् सर्वस्त्रीणां, आगमनं यस्मिन् काले स आर्यागमनस्तस्मिन्नार्यागमने काले । **ण अत्थिदव्वं**—नासितव्यं न स्थातव्यं । **तधेव**—तथैव । **एक्केण**—एकेन एकाकिना विजनेन । **ताहिं**—ताभिरार्यिकाभिः । **पुण**—पुनः बाहुल्येन । **सल्लावो**—सल्लापो वचनप्रवृत्तिः । **ण य कायव्वो**—नैव कर्तव्यो न कार्यः । **अकज्जेण**—अकार्येण प्रयोजनमन्तरेण धर्मकार्योत्पत्तौ कदाचिद्वद्य'[3] । आर्यागमनकाले एकाकिना विजनेन न स्थातव्यं, धर्मकार्यमन्तरेण ताभिः सहालापोऽपि न कर्तव्य इति ।। ५६ ।।

यद्यैव कथं तासां प्रायश्चित्तादिकथनं प्रवर्तत इति प्रश्नेऽतः प्राह—

तासिं पुण पुच्छाओ इक्किस्से णय कहिज्ज[4] एक्को दु ।
गणिणो[5] पुरओ किच्चा जदि पुच्छइ[6] तो कहेदव्वं ।। ५७ ।।

अर्थ—मन, वचन, काय के योगनि करि जाकै जिस गच्छ विषैं, व्रतादिक विषैं अतोचार रूप अपराध उत्पन्न भया, ताकूं तिसही गच्छ विषैं मिथ्याकार पश्चाताप करि॰निवर्तन करनां, शोधना योग्य है अथवा जाकैं जिस गच्छमें जिसकै समोप अपराध उत्पन्न भया तिसकरि सहित क्षमावणा करि तिस अपराध तैं निवर्त होनां ।। ५५ ।।

आगैं तिस गच्छ विषैं प्रवर्तता जो वह आगंतुक मुनि सो सर्व्वकरि सहित[7] आलाप अवस्थान करै कि नांही ? ऐसा प्रश्न होतैं कहै हैं—

अर्थ—आर्या कहिए—आर्यका उपलक्षणतैं सर्व स्त्री तिनिका आगमन जा काल में होय, तिस काल विषैं वन, एकांत विषै इकला[8] मुनिराज बैठें रहै नांही, खड़ैं रहैं नाँही । वहुरि तिनि आर्यकानि सहित (आर्यिकाओं के साथ) बिना प्रयोजन कछु वचनालाप करैं नांही । कोई धर्म-कार्य को उत्पत्ति कै निमित्त कदाचित् बोलैं तो संक्षेप वचन कहैं ।। ५६ ।।

---

१. अ. तधेवइक्केण, ब. तहेव एकेन । २. ब. सल्लाहोवो । ३. क. वाच्यं । ४. ब. तासिं पुणु पुच्छाउ एक्कस्से णय कहेज्ज, अ. एक्कसो णय कहेज्ज । ५. ब. गणिणीं । ६. अ. ब. पुच्छदि । ७. ब (अजमेर) प्रति में उत्पन्न भया तिसकरि सहित''''के बाद से यहाँ तक की तीन पंक्तियों सम्भवतः लिपिकार की भूलवश छूटी हु ई हैं ८. अ. इकेला ।

तासिं—तासामार्याणां। **पुण**—पुनः पुनरपि। **पुच्छाओ**—पृच्छाः प्रश्नान् कार्याणि। **इक्किस्से**—एकस्या एकाकिन्या। **ण य कहिज्ज**—नैव कथयेत् नैव कथनीयं। **एक्को दु**—एकस्तु एकाकी सन् अपवादभयात्। यद्येवं कथं क्रियते। **गणिणी**—गणिनीं तासां महत्तरिकां प्रधानां। **पुरओ**—पुरोऽग्रतः। **किच्चा**—कृत्वा। **यदि पुच्छदि**—यदि पृच्छति प्रश्नं कुर्यात्। **तो**—ततोऽनेन विधानेन। **कहेदव्वं**—कथयितव्यं प्रतिपादयितव्यं नान्यथा। तासां मध्ये एकस्याः कार्यं नैव कथयेदेकाकी सन्, गणिनीं पुरः कृत्वा यदि पुनः पृच्छति ततः कथनीयं मार्गप्रभावना-मिच्छतेति ॥ ५७ ॥

व्यतिरेकद्वारेण प्रतिपाद्यान्वयद्वारेण प्रतिपादयन्नाह—

तरुणो तरुणीए सह कहा व सल्लावणं च जदि कुज्जा।
आणाकोवादीया पंचवि दोसा कदा तेण ॥ ५८ ॥

यदि कथितन्यायेन न प्रवर्तते चेत्। **तरुणो**—यौवनपिशाचगृहीतः। **तरुणीए**—तरुण्या उन्मत्तयौवनया। **सह**—सार्धं। **कहाव**—कथां वा प्राक्प्रबन्धचरितं। **सल्लावणं च**—सल्लापं च अथवा (**असब्भावणं**[1] **च**) प्रहासप्रवचनं च। **जदि कुज्जा**—यदि कुर्यात् विधेयाच्चेत् **आणाकोवादीया**—आज्ञाकोपादयः आज्ञाकोपानवस्थामिथ्यात्वाराधनात्मनाशसंयमविराधनानि। **पंचवि**—पंचापि। **दोसा**—दोषाः पापहेतवः। **कदा**—कृता अनुष्ठिताः। **तेण**—तेनैवंकुर्वता। यदि तरुणस्तरुण्या सह कथामवसल्लापं च कुर्यात्ततः किं स्यात्? आज्ञाकोपादिकाः पंचापि दोषाः कृतास्तेन स्युरिति ॥ ५८ ॥

यत्र वह्व्यस्तिष्ठन्ति तत्र किमावासादिक्रिया युक्ताः? नेत्याह—

णो कप्पदि विरदाणं विरदीणमुवासयह्मि चिट्ठेदुं।
तत्थ णिसेज्जउवट्टणसज्झायाहारभिक्खवोसरणे[2] **॥ ५९ ॥**[3]

आगैं कोई पूछे अैसे है तो आर्यकानि कैं प्रायश्चितादि कथन कैसे प्रवर्त्ते? अैसा प्रश्न होतैं संतैं उत्तर कहै है—

अर्थ—तिनि आर्यकानि कूं इकेला आय होय, बहुरि इकेली ही आर्यिका होय तौ अपवाद के भयतैं ताकूं कछु कहै नांही। जो प्रधान महत्तरिका आर्यिका होय ताहि अगाड़ी करि जो प्रश्न करैं तौं उत्तर कहै। जो मार्ग-प्रभावना कूं इच्छे अैसें प्रवर्त्ते ॥ ५७ ॥

आगैं व्यतिरेक-द्वारकरि कथनकरि अन्वयद्वार करि कथन करता संता कहै हैं—

अर्थ—जो पूर्वैं कह्या न्याय तिसकरि नांही प्रवर्त्तै है। तरुणः कहिये यौवन रूपी पिशाच करि ग्राह्या हुवा मुनि, सो उन्मत्त है यौवन जाका अैसी तरुणी स्त्री ताकरि सहित कथा अथवा सल्लाप-हास्य का वचन करैं तौ तानैं आज्ञा-कौपादिक पंच दोष कीए—१. आज्ञाकोप, २. अनवस्था, ३. मिथ्यात्वाराधनां, ४. आत्मनाश, ५. संयमविराधना—ए पांच दोष पाप के कारण हैं। इनिका वर्णन पहलै याही अधिकार मैं तैतीसवीं गाथा में वर्णन कीया है, तहां तैं जानना ॥ ५८ ॥

१. क सल्लापनं। २. अ, ब वोसरणे। ३. यही गाथा इसी ग्रन्थ के दसम अधिकार (गाथा सं० ६१) में आयी है।

णो कप्पदि—न कल्पते न युज्यते । **विरदाणं**—विरतानां संयतानां पापक्रियाक्षयकरणोद्यतानां । **विरदीणं**—विरतीनां आर्यिकाणां । **उवासयम्हि**—आवासे वसतिकादौ । **चिट्ठिदुं**—चेष्टियितुं स्थातुं वसितुं न केवलं । **तत्थ**—तत्र दीर्घकालाः क्रिया न युक्ताः किन्तु क्षणमात्रायाः क्रियास्ता अपि । **णिसेज्ज**—निषद्योपवेशनं **उवट्टणं**—उद्वर्तनं शयनं लोटनं । **सज्झाय**—स्वाध्यायः शास्त्रव्याख्यानं परिवर्तनादयो वा । **आहार-भिक्खा**—आहारभिक्षाग्रहणं । **वोसरणं**—प्रतिक्रमणादिकं अथवा व्युत्सर्जनं मूत्रपुरीषाद्युत्सर्गः [1]प्रदेशसाहचर्यात् एतेषां द्वन्द्वः सः । अन्याश्चैवमादयश्च क्रिया न युक्ताः । विरतानां चेष्टितुं आर्यिकाणामावासे न कल्पते, निषद्योद्वर्तनस्वाध्यायाहारभिक्षाव्युत्सर्जनानि च तत्र न कल्पते । आहारभिक्षयोः को विशेष ? इति चेत् तत्कृतान्यकृतभेदात् ताभिर्निष्पादितं भोजनं आहारः, श्रावकादिभिः कृतं यत्तत्र दीयते सा भिक्षा । अथवा मध्याह्नकाले भिक्षार्थं पर्यटनं भिक्षा ओदनादिग्रहणमाहारः इति ॥ ४९ ॥

किमर्थमेताभिः सह स्थविरत्वादिगुणसमन्वितस्यापि संसर्गो वार्यते यतः—

थेरं चिरपव्वइयं आयरियं बहुसुदं च तवंसि वा ।
ण गणेदि काममलिणो कुलमवि समणो विणासेइ[2] ॥ ६० ॥

थेरं—स्थविरं आत्मानं सर्वत्र सम्बंधनीयं सामर्थ्यात् सोपस्कारत्वात् सूत्राणां । **चिरपव्वइयं**—चिरप्रव्रजितं प्ररूढव्रतं । **आयरियं**—आचार्यं । **बहुसुदं**—बहुश्रुतं सर्वशास्त्रपारगं । **तवंसि वा**—तपस्विनं वा षष्ठाष्टमादिकयुक्तं चकाराद्वात्मनः समुच्चयः, अथवा स्थविरत्वादयो गुणा गृह्यंते, अथवात्मनोऽन्ये स्थविर[3]त्वादयस्तान् । **ण गणेदि**—न गणयति नोऽपेक्षते[4] नो पश्यति न गणयेद्वा । **काममलिणो**—कामेन मलिनः

आगै कहै हैं कि जहां बहुत आर्यका बैठी होंहि तहां आवाशादिक (आवश्यक आदि) क्रिया युक्त नांही—

अर्थ—विरत कहिए—संयमी पाप क्रिया का क्षय करणें कूं उद्यमी भए ऐसे मुनि, तिनिकैं आर्यकानि का आवास, वसतिकादिक विषैं चेष्टा करनां, खड़ा रहनां, बैठना योग्य नांही । दीर्घकाल क्रिया तों दूर ही रहैं, क्षणमात्र क्रिया है, ते भी तहां नांही करणी । निषद्या कहिए—बैठनां, बहुरि उद्वर्तन कहिए—सोवना (शयन करना), स्वाध्याय कहिए—शास्त्र व्याख्यान, परिवर्तनादिक करनां, बहुरि आहार-भिक्षा कहिए—आहार भिक्षा का ग्रहण, बहुरि व्युत्सर्जन कहिए—प्रतिक्रमणादिक अथवा मूत्रपुरीषादिक का उत्सर्ग इत्यादिक क्रिया तहां नांही करणीं ।

आहार-भिक्षा में कहा (क्या) भेद ? तिनि आर्यकानिकरि उपजाया भोजन सो आहार अर श्रावकानिकरि कीया भोजन जो तहां दीजिये सो भिक्षा अथवा भिक्षा-निमित्त मध्यान्ह समय विषैं भ्रमण सो भिक्षा, ओदन आदिक का ग्रहण सो आहार ॥ ९॥

आगैं कहैं हैं जो मुनि स्थविरपणां आदि गुणनि करि सहित हैं ताकैं आर्यका का संसर्ग क्यों निवारण कीया ? सो कहैं हैं—

अर्थ—काममलिनः कहिए—कामवासनां करि मैला जो, श्रमणः कहिए मुनि है सो स्थविर—जो अपनां आत्मा ताहि विनिष्ट करै हैं । बहुरि चिर प्रव्रजित कहिए—बहुत काल की दीक्षा ताहि विनिष्ट करै हैं । बहुरि अपनी आचार्य पदई (पदवी)

१. क प्रदेशः सा० । २. अ विणासेदि । ३. क °विराद° । ४. क नापेक्षते ।

कश्मलः काममलिनो मैथुनेच्छोपद्रुतः । **कुलमवि**—कुलमपि कुलं मातृपितृकुलं सम्यक्त्वादिकं वा । **समणो**—श्रमणः । **विणासेदि**—विनाशयति विराधयति । स्थविरं चिरप्रव्रजिताचार्यं बहुश्रुतं तपस्विनमात्मानं केवलं न गणयति काममलिनः सन् श्रमणः कुलमपि विनाशयति । अथवा न केवलमात्मनः स्थविरत्वादीन् गुणान् न गणयति सम्यक्त्वादिगुणानपि विनाशयति । अथवा न केवलं कुलं विनाशयति किंतु स्थविरत्वादीनपि[1] न गणयति परिभवतीत्यर्थः ॥ ६० ॥

एताः पुनराश्रयन् यद्यपि कुलं न विनाशयत्यात्मानं वा तथाप्यपवादं प्राप्नोतीत्याह—

कण्णं विधवं[2] अंतेउरियं तह सइरिणी सलिंगं वा ।
अचिरेणल्लियमाणो अववादं तत्थ पप्पोदि ॥ ६१ ॥

कण्णं—कन्यां विवाहयोग्यां । **विहवं**—विगतो मृतो गतो धवो भर्ता यस्याः सा विधवा तां । **अंतेउरियं**—अन्तःपुरे भवा आन्तःपुरिका तामान्तःपुरिकां स्वार्थे कः—राज्ञीं राज्ञीसमानां विलासिनीं वा । **तह**—तथा । **सइरिणी**—स्वेच्छया परकुलानीयर्तीति स्वैरिणी तां स्वेच्छाचारिणी । **सलिंगं वा**—समानं लिंगं सलिंगं व्रतादिकं कुलं वा तद्विद्यते यस्याः सा सलिंगिनी तां । अथवा सह लिंगेन वर्तते इति सलिंगा तां स्वदर्शनेऽन्य-दर्शने वा प्रव्रजितां । **अचिरेण**—क्षणमात्रेण मनागपि । **अल्लियमाणो**—आलीयमानः आश्रयमाणः सहवासालापादिक्रियां कुर्वाणः । **अववादं**—अपवादं अकीर्तिं । **तत्थं**—तत्राश्रयणे । **पप्पोदि**—प्राप्नोति अर्जयतीति । कन्यां विधवां आन्तःपुरिकां स्वैरिणीं सलिंगिनीं वालीयमानोऽचिरेण तत्र अपवादं प्राप्नोतीति ॥ ६१ ॥

नन्वार्यादिभिः सह संसर्गः सर्वथा यदि परित्यजनीयः कथं तासा प्रतिक्रमणादिकं क एवमाह सर्वथा त्यागो यावतैवं विशिष्टेन कर्तव्य इत्याह—

पियधम्मो दढधम्मो संविग्गोऽवज्जभीरु परिसुद्धो ।
संगहणुग्गहकुसलो सददं सारक्खणाजुत्तो ॥ ६२ ॥

ताहि विनष्ट करै हैं। बहुरि चिर प्रव्रजित कहिए—बहुत काल की दीक्षा ताहि विनिष्ट करै हैं। बहुरि अपनो आचार्य पदई (पदवी) ताहि विनिष्ट करै हैं। बहुरि बहुश्रुत पदइ सर्वशास्त्र का पारगामीपणां, ताहि करै है। बहुरि तपसीपणां—बेला-तेला इत्यादिक तप का विधान ताहि नष्ट करै हैं। बहुरि आपतैं अन्य जे स्थविर, चिरदीक्षित आचार्य, बहुश्रुत तपस्वो, बहुरि अपनां कुल तिनि सर्वनिकू नाहीं गिणै है। इनिकी लज्जा नांही करै है। अपनैं सम्यक्त्वादिक गुण हैं, तिनिका भी नाश करै है ॥ ६०।

आगैं कहै है जो कुल का वा[3] आत्मा का नाश नांही करै तथापि अपवाद कूं तौ अवश्य पावै—

अर्थ—कन्या कहिए—विवाह योग्य, विधवा कहिए—भर्तार रहित भई, आंतःपुरिका कहिए—राजा की राणी तथा राणी समान विलासिनी, स्वैरिणी कहिए—स्वेच्छाचारिणी, सलिंगिनो कहिए—समान है व्रत जाकै अैसी तथा समान है कुल जाका—अैसो अथवा लिंग सहित स्वमत मैं तथा अन्य मत मैं धारो हैं दीक्षा जानैं, अैसी, या प्रकार जै स्त्री तिनिका क्षण मात्र भी जो मुनि आश्रय करैं है, इनिकै समोप बैठे है, आलापादिक क्रिया करैं हैं। सो तहां अपवाद कूं प्राप्त होय है ॥ ६१ ॥

---

१. क °रादी° ।   २. अ विहवं ।   ३. अ. वा का ।

पियधम्मो—प्रिय इष्टो धर्मः क्षमादिकश्चारित्रं वा यस्यासौ प्रियधर्मा उपशमादिसमन्वितः । **दढधम्मो**—दृढ; स्थिरो धर्मो धर्माभिप्रायो यस्यासौ दृढधर्मा । **संविग्गो**—संविग्नो धर्मतत्फलविषये हर्षसम्पन्नः । **अवज्जभीरु**—अवद्यभीरुरवद्यं पापं कुत्स्यं तस्माद्भयनशीलोऽवद्यभीरुः । **परिसुद्धो**—परिसमन्ताच्छुद्धः परिशुद्धोऽखण्डिताचरणः । **संगह**—संग्रहो दीक्षाशिक्षाव्याख्यानादिभिरुपग्रहः, **अणुग्गह**—अनुग्रहः प्रतिपालनं आचार्यत्वादिदानं याभ्यां तयोर्वा (कुसलो) कुशलो निपुणः संग्रहानुग्रहकुशलः पात्रभूतं गृह्णाति गृहीतस्य च शास्त्रादिभिः संयोजनं । **सददं**—सततं सर्वकालं । **सारक्खणाजुत्तो**—सहारक्षणेन वर्तत इति सारक्षणा क्रिया पापक्रियानिवृत्तिस्तया युक्त रक्षायां युक्तः हितोपदेशदातेति ॥ ६२ ॥

गंभीरो दुद्धरिसो मिदवादी अप्पकोदुहल्लो य ।
चिरपव्वइदो गिहिदत्थो[1] अज्जाणं गणधरो होदि ॥ ६३ ॥

गंभीरो—गुणैरगाधोऽलब्धपरिमाणः । **दुद्धरिसो**—दुर्धर्षोऽकदर्थ्यः स्थिरचित्तः । **मिदवादी**—मितं परिमितं वदतीत्येवं शीलो मितवादी अल्पवदनशीलः । **अप्पकोदुहल्लो य**—अल्पं स्तोकं कुतूहलं कौतुकं यस्यासावल्पकुतूहलोऽविस्मयनीयोऽथवा अल्पगुह्य[2] दीर्घस्तब्धः प्रश्नवादिरहितः चशब्दः समुच्चयार्थः । **चिरपव्वइदो**—चिरप्रव्रजितः निर्व्यूढव्रतभारो गुणज्येष्ठः । **गिहिदत्थो**—गृहीतो ज्ञातोऽर्थः पदार्थं स्वरूपं येनासो गृहीतार्थः

आगैं कहै है कि सर्व्वथा आर्यकादिक का संसर्गाहो छोड़ियै तौ तिनिकै प्रतिक्रमणादिक कैसे होय ? ताका उत्तर कहै है—

अर्थ—आर्यकानि का गणधर अैसा होय—प्रियधर्मा कहिए प्रिय है, इष्ट है, **धर्म** कहिए—उत्तम क्षमादिक अथवा चारित्र जाकै, अैसा उपशमादिक सहित होय । बहुरि दृढ़धर्मा कहिए—दृढ़ है, स्थिर है, धर्म विषै अभिप्राय जाका, अैसा होय । बहुरि संविग्नः कहिए—धर्म, धर्म्म का फल विषै हर्ष संयुक्त होय । बहुरि अवद्यभीरुः कहिए—पाप से डरता होय । बहुरि परिशुद्ध कहिये समस्तपणे करि शुद्ध होय, अखंडित आचरण जाका है, अैसा होय । बहुरि संग्रह कहिए—दोक्षा, शिक्षा, व्याख्यानादिक, उपकार करि नवीन शिष्य का ग्रहण करनां तथा अनुग्रह कहिए जाका संग्रह कोया, ताका प्रतिपालन करनां, आचार्यादिक पद देनां—अैसे संग्रह, अनुग्रह दोय प्रकार विषैं, कुशलः कहिए—प्रवीण होय । बहुरि सतत् कहिए निरंतर, सारक्षणा कहिए—पापक्रिया की निवृत्ति रूप क्रिया ताकरि युक्त होय, हितोपदेश का दाता होय ॥ ६२ ॥

आगैं ताही के अन्य विशेष कहै है—

अर्थ—गंभीर कहिए--गुणनि करि अगाध होय, जाका परिमाण पाइए नांही । बहुरि दुर्द्धर्ष कहिए--परिवादोनितैं दवैं नांही, स्थिर है चित्त जाका । बहुरि मितवादी कहिए—परिमाणरूप है वचन जाके, थोरा बोलनैं का है स्वभाव जाका । बहुरि अल्प कुतूहलः कहिये--थोरा है कुतुहल-विस्मय जाकै । अथवा अल्पगुह्य कहिये अल्प है लिंग जाकैं तथा दोर्घस्तब्ध प्रस्नवादि कहिए--

---

१. अ चिरपव्वइ गेहदत्थो, ब चिरपव्वइ गिहदत्थो ।   २. क °गुह्यः ।

आचारप्रायश्चित्तादिकुशलः । **अज्जाणं**—आर्याणां संयतीनां । **गणधरो**—मर्यादोपदेशकः प्रतिक्रमणाद्याचार्यः । **होदि**—भवति । प्रियधर्मा दृढधर्मा संविग्नोऽवद्यभीरुः परिशुद्धः संग्रहानुग्रहकुशलः सततं सारक्षणयुक्तो गम्भीरदुर्धर्षमितवाग्ल्पकौतुकचिरप्रव्रजितगृहीतार्थश्च यः स आर्याणां गणधरो भवतीति ॥ ६३ ॥

अथान्यथाभूतो यदि स्यात् तदानीं किं स्यादित्यत आह—

एवं गुणवदिरित्तो जदि गणधारित्तं करेदि अज्जाणं ।
चत्तारि कालगा से गच्छादिविराहणा होज्ज ॥ ६४ ॥

एवं—अनेन प्रकारेण । एत्तैर्गुणैः । **वदिरित्तो**—व्यतिरिक्तो मुक्तः । **जदि**—यदि । **गणधारित्तं**—गणधारित्वं प्रतिक्रमणादिकं । **करेदि**—करोति । **अज्जाणं**—आर्याणां तपस्विनीनां । **चत्तारि**—चत्वारः । **कालगा**—कालकाः गणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थकाला आद्या वा विराधिता भवन्तीति वाक्यशेषः । अथवा कालग्रहणेन प्रायश्चित्तानि परिगृह्यन्ते चत्वारि प्रायश्चित्तानि च्छेदमूलपरिहारपारंचिकानि । अथवा चत्वारो मासाः कांजिमभक्ताहारेण । **से**—तस्य आर्यागणधरस्य भवन्तीत्यर्थः । **गच्छादि**—गच्छ ऋषिकुलं आदिर्येषां ते गच्छादयस्तेषां, **विराहणा**—विराधना विनाशो विपरिणामो वा गच्छादिविराधना गच्छात्मगणकुलश्रावकमिथ्यादृष्ट्यादयो विराधिता भवन्तीत्यर्थः। अथवा गच्छात्मविनाशः । **होज्ज**—भवेत् । पूर्वोक्तगुणव्यतिरिक्तो यद्यार्याणां गणधरत्वं करोति तदानीं तस्य चत्वारः काला विनाशमुपयान्ति, अथवा चत्वारि प्रायश्चित्तानि लभते गच्छादेर्विराधना च भवेदिति ॥ ६४ ॥

तस्मात्तेन परगणस्थेन यत्तस्याचार्यस्यानुमतं तत्कर्तव्यं सर्वथा प्रकारेणेत्यतः आह—

किं बहुणा भणिदेण दु जा इच्छा गणधरस्स सा सव्वा ।
कादव्वा तेण भवे एसेव विधी दु सेसाणं ॥ ६५ ॥

मूत्रादिक तैं रहित । बहुरि चिरप्रव्रजितः कहिये—घनैंकाल का दीक्षित होय, गुणनि करि बड़ा होय। बहुरि गृहीतार्थ कहिये जान्या है पदार्थ का स्वरूप जानैं, असा होय। आचार-प्रायश्चित्तादिक ग्रंथनि विषैं प्रवीण होय। असे विशेषणनिकरि विशिष्ट होय सो आर्यकानि का गणधर होय, मर्यादा का उपदेशक होय। प्रतिक्रमणादिक का आचार्य होय ॥६३ ॥

आगैं कहै हैं—असा न होय तौ कहा होय ? सो कहै हैं—

अर्थ—या प्रकार इनि गुणनिकरि रहित जो मुनि आर्यकानि गणधरपनां करै है, तिन तपस्विनीनि कूं प्रतिक्रमणादि देहैं, ताकैं च्यारिकाल हैं, ते विराधित होय है, विनाश कूं प्राप्त होय है। मुनिनि के छह काल है—१. दीक्षा, २. शिक्षा, ३. गणपोषण, ४. आत्मसंस्कार, ५. सल्लेखना, ६. उत्तमार्थ । तिनिमैं ताकै च्यारिकाल—गणपोषण, आत्मसंस्कार, सल्लेखना, उत्तमार्थ—ये विराधित होय हैं। अथवा आदि के भी दीक्षा, शिक्षा काल विराधित होय है। अथवा इहां कालकाः शब्दकरिकैं च्यारि प्रायश्चित कहिए है—१. छेद, २. मूल, ३. परिहार, ४. पारंचिक—ए च्यारि प्रायश्चित्त ताकैं होय है। अथवा च्यारि महीना पर्यंत कांजिक भोजन का आहार तिस गणधर कै होय है। बहुरि गच्छादि कहिए—ऋषिनि का समूह रूप गच्छ तथा आत्मगण, कुल, श्रावक, मिथ्या दृष्ट्यादिक विराधित होय है अथवा गच्छ का अर आत्मा का विनाश होय ॥ ६४ ॥

किं बहुणा—किं बहुना । **भणिदेण दु**—भणितेन तु किं बहुनोक्तेन । **जा इच्छा**—येच्छा योभिप्रायः । **गणधरस्स**—गणधरस्याचार्यस्य । **सा सव्वा**—सर्वैव सा **कादव्वा**—कर्तव्या । **तेण**—पादोष्णेन । **भवे**—भवेत् । किं परगणस्थेनैव कर्तव्या नेत्याह । **एसेव विधीदु सेसाणं**—एष एव इत्थंभूत एव विधिरनुष्ठानं शेषाणां स्वगणस्थानामेकाकिनां समुदायव्यवस्थितानां च । किं बहुनोक्तेन येच्छा गणधरस्य सा सर्वा कर्तव्या भवेत् न केवलमस्य शेषाणामप्येष एव विधिरिति ॥ ६५ ॥

यदि यतीनामयं न्याय आर्यिकाणां क इत्यत आह—

एसो अज्जाणंपि अ समाचारो जहक्खिओ[1] पुव्वं ।
सव्वह्मि अहोरत्ते विभासिदव्वो जधाजोग्गं[2] ॥ ६६ ॥

एसो—एषः । **अज्जाणंविय**—आर्याणामपि च । **सामाचारो**—सामाचारः । **जहक्खिओ**—यथाख्यातो यथा प्रतिपादितः । **पुव्वं**—पूर्वस्मिन् । **सव्वम्मि**—सर्वस्मिन् । **अहोरत्ते**—रात्रौ दिवसे च । **विभासिदव्वो**—विभाषयितव्यः प्रकटयितव्यो विभावयितव्यो वा । **जहाजोग्गं**—यथायोग्यं आत्मानुरूपो वृक्षमूलादिरहितः । सर्वस्मिन्नहोरात्रे एषोपि सामाचारो यथायोग्यमार्यिकाणां आर्यिकाभिर्वा प्रकटयितव्यो विभावयितव्यो वा यथाख्यातः पूर्वस्मिन्निति ॥ ६६ ॥

वसतिकायां ताः कथं गमयन्ति कालमिति पृष्टेऽत आह—

अण्णोण्णणुकूलाओ अण्णोण्णहिरक्खणाभिजुत्ताओ ।
गयरोसवेरमायासलज्जमज्जादकिरियाओ ॥ ६७ ॥

तातैं तिस परिगण (परगण) में तिष्ठता आगंतुक-मुनि कूं तिस संघ के आचार्य की आज्ञा कै अनुकूल सर्व प्रकार करनां सो कहै—

अर्थ—बहुत कहनें करि कहा, जो गणधर कहिए—आचार्य ताकी जो इच्छा होय सो ही परगण कै विषैं तिष्ठता जो आंगतुक मुनि तानैं करणो योग्य हैं। बहुरि शेष कहिए निजगण मैं तिष्टते जे मुनिराज एकाकी वा समुदाय करि व्यवस्थित तिनि सवनि का यहु ही विधान जाननां ॥ ६५ ॥

आगैं यह कहै हैं जो मुनिराजनि कै यह समाचारनिका न्याय कह्या तौ आर्यकानि कै कैसे है ? ऐसा प्रश्न होत संतै कहै है—

अर्थ—यह समाचार जैसैं पूर्व्वे मुनिराजनि कैं कह्या, सो ही सर्व्व अहोरात्रि कैं विषै यथायोग्य कहनां। यथायोग्य कहने का आशय यहु जो आर्यकानि कै योग्य समाचार आर्यकानि करि प्रगट करनां कह्या है। वृक्षमूलादि योग्य आर्यकानि कै नाँही हैं ॥ ६६ ॥

आगैं कोउ पूछै कि वसतिका कै विषै ते आर्यका काल कैसैं व्यतीत करैं ? ताका उत्तर कहै है—

१. अ जहाखिउ, ब जधाखिउ । २. अ जहाजोग्गं ।

अण्णोण्णणुकूलाओ—अन्योन्यस्यानुकूलास्त्यक्तमत्सरा अन्योन्यानुकूलाः परस्परत्यक्तमात्सर्याः । **अण्णोण्णहिरक्खणाभिजुत्ताओ**—अन्योन्यासां परस्पराणामभिरक्षणं प्रतिपालनं तस्मिन्नभियुक्ता उद्युक्ता अन्योन्याभिरक्षणाभियुक्ताः । **गयरोसवेरमाया**—रोषश्च वैरं च माया च रोषवैरमायाः गता विनष्टा रोषवैरमाया तासां ता गतरोषवैरमायास्त्यक्तमोहनीयविशेषक्रोधमारणपरिणामकौटिल्याः । **सलज्जमज्जादकिरियाओ**—लज्जा च मर्यादा च क्रिया च लज्जामर्यादक्रियाः सह ताभिर्वर्तन्त इति सलज्जमर्यादक्रियाः लोकापवादादात्मनो भयपरिणामो लज्जा, रागद्वेषाभ्यां न्यायादनन्यथा वर्तनं मर्यादा, उभयकुलानुरूपाचरणं क्रियते ॥ ६७ ॥

पुनरपि ताः कथं विशिष्टा इत्यत आह—

अज्झयणे परियट्टे सवणे कहणे तहाणुपेहाए ।
तवविणयसंजमेसु य अविरहिदुपओगजोगजुत्ताओ ॥ ६८ ॥

अज्झयणे—अध्ययनेऽनधीतशास्त्रपठने । **परियट्टे**—परिवर्तने पठितशास्त्रपरिपाट्यां । **सवणे**—श्रवणे श्रुतस्याश्रुतस्य च शास्त्रस्यावधारणे । **कहणे**—कथने आत्मज्ञातशास्त्रन्यनिवेदने । **अणुपेहाए**—अनुप्रेक्षासु श्रुतसर्ववस्तुध्रुवान्यत्वादिचिन्तासु श्रुतस्य शास्त्रस्यानुचिन्तने वा । **तवविणयसंजमेसु य**—तपश्च विनयश्च संयमश्च तपोविनयसंयमास्तेषु चानशनप्रायश्चित्तादिक्रियामनोवचनकाया (य) स्तब्धत्वेन्द्रियनिरोधजीववधपरित्यागेषु । **अविरहिद**—अविरहिताः स्थिता नित्योद्युक्ताः । **उवओग**—उपयोगः तात्पर्यं ज्ञानाभ्यासः । [1]**जोग**—योगो मनोवचनकायशुभानुष्ठानमेताभ्यां । **जुत्ताओ**—युक्ताः उपयोगयोगयुक्ताः ॥ ६८ ॥

अर्थ—आर्यका (आर्यिका) हैं ते परस्पर अनुकूल रहै हैं। परस्पर मत्सर भाव, ईर्षा नांही करै। बहुरि परस्पर अभिरक्षण प्रतिपालन विषै तत्पर रहैं है। बहुरि रोष कहिए-क्रोध, वैर कहिए—मारणै का परिणाम रूप विरोध, माया कहिए—कुटिलता तिनि भावनिकरि रहित है। बहुरि लोक के अपवाद तैं आपकै भय रूप परिणाम सो लज्जा कहिए तथा न्यायमार्ग प्रवर्तनां-राग-द्वेषकरि न्यायमार्ग का उल्लंघन नांही करना, सो मर्यादा कहिए। तथा उभयकुल कहिए—पीहर-सासरा दोन्यू कुल कै योग्य जो आचरण सो क्रिया कहिए। अैसैं लज्जा, मर्यादा, क्रिया—तीनू विशेषनि करि सहित होय—अैसें आर्यकानि के गुण कहे ॥६७ ॥

बहुरि तिनिही का विशेष कहिये है—

अध्ययन कहिए—पूर्वैं न पढ्या-अैसै शास्त्र का पढ़ना, ताकै विषै, बहुरि परिवर्तने कहिए—पढ्या शास्त्र का पाठ करनां, प्रवर्तावनां ता विषै, बहुरि श्रवणे कहिए—पूर्वैं सुण्या तिस शास्त्र का अथवा पूर्वैं नांही सुण्यां, तिस शास्त्र का श्रवण करनां, अवधारण करनां, ता विषैं। बहुरि कथने कहिये अपनैं जानैं शास्त्र का व्याख्यान करनां, ता विषैं। बहुरि अनुप्रेक्षासु कहिये—श्रुत का चिंतवन तथा सर्ववस्तु का अध्रुवपणां, अन्यत्वपणां इत्यादिक रूप चिंतवन विषै।

बहुरि तप कहिए—बहिरंग—अनशनादि छह प्रकार, अंतरंग प्रायश्चितादिक छह प्रकार—अैसे बारह प्रकार तपश्चरण विषै। बहुरि विनय कहिए—मन, वचन, काय का कोमलपणां ताकै विषै। बहुरि संयम कहिये छह प्रकार इन्द्रियनि का निरोध,

1. जोग पाठ मूलगाथा से अतिरिक्त है।

पुनरपि ताः विशेष्यन्ते—

अविकारवत्थवेसा जल्लमलविलित्तचत्तदेहाओ ।

धम्मकुलकित्तिदिक्खापडिरूप[1]विसुद्धचरियाओ ॥ ६९ ॥

अविकारवत्थवेसा—न विद्यते विकारो विकृतिः स्वभावादन्यथाभावो वा येषां तेऽविकाराः वस्त्राणि च वेषश्च शरीरादिसंस्थानं च वस्त्रवेषा, अविकारा वस्त्रवेषा यासां ता अविकारवस्त्रवेषा रक्ताङ्कितादिवस्त्रगतिभंगाक्षिभ्रूविकारादिवेषरहिताः । **जल्लं**—सर्वाङ्गीनं प्रस्वेदयुक्तं रजः । अंगैकदेशश्रवं मलं—ताभ्यां **विलित्ता**—विलिप्ता युक्ता जल्लमलविलिप्ताः । **चत्तदेहाओ**—त्यक्तोऽसंस्कृतो देहः शरीरं यासां तास्त्यक्तदेहाः जल्लमलविलिप्ताश्च तास्त्यक्तदेहाश्च तास्तथाभूताः । **धम्म**—धर्मः । **कुलं**—कुलं । **कित्ति**—कीर्तिः । **दिक्खा**—दीक्षा । तासां, **पडिरूव**—प्रतिरूपा सदृशाः । **विसुद्धं**—विशुद्धा । **चरियाओ**—चर्यानुष्ठानं यासां ता धर्मकुलकीर्तिदीक्षाप्रतिरूपविशुद्धचर्याः क्षमामार्दवादिमातृपितृगुरुकुलात्मयशोव्रतसदृगाभग्नाचरणा इति ॥ ६९ ॥

कथं च तास्तिष्ठन्त्यत आह—

अगिहत्थमिस्सणिलए असण्णिवाए विसुद्धसंचारे ।

दो तिण्णि व अज्जाओ बहुगीओ वा सहत्थंति[2] ॥ ७० ॥

अगिहत्थमिस्सणिलए—गृहे तिष्ठन्तीति गृहस्थाः स्वदारपरिग्रहासक्तास्तैः, **मिस्स**—मिश्रो युक्तो न गृहस्थमिश्रोऽगृहस्थमिश्रः स

छह प्रकार जीववध का परित्याग—ऐसे बारह प्रकार संयम विषैं—ऐसैं कहैं जे अध्ययनादिक तिनिकै विषै आर्यका है, ते अविरहिताः कहिए—नित्य उद्युक्त-तत्पर रहे हैं। बहुरि उपयोग कहिए—ज्ञानाभ्यास, योग कहिए—मन, वचन, काय का शुभ आचरण इनिकरि युक्त है। ऐसैं आर्यकानि के गुण कहे। ६८ ।।

बहुरि तिनहो का विशेष कहिए है—

अर्थ—विकार रहित है वस्त्र जिनिकै, रंगकरि रंगे तथा कसीदल—ऐसे वस्त्र आर्यिका नांही राखैं। बहुरि विकार रहित है वेष (वेश) कहिए शरीरादिक का आकार जिनिका, गमन करनैं के भंग, नेत्रनि के विकार, भौंहनि के विकार-इत्यादिक विकार रहित आर्यकानि की शुद्ध-मुद्रा है। बहुरि जल्ल कहिए-सर्व अंग विषै उत्पन्न भया पसेव (पसीना) रजकरि निपज्या तथा मल कहिए—अंग के एकदेश विषैं उपज्या, ऐसे जल्लमलकरि विलिप्त है तथा त्यक्त कहिए—संस्कार रहित है, देह कहिए—शरीर जिनिका। बहुरि धर्म कहिए—उत्तम क्षमा, मार्दवादिक, कुल कहिए—मातृपक्ष, पितृपक्ष, गुरुपक्ष का संतान, कीर्ति कहिए—अपनां यश, बहुरि दीक्षा—इनिकै सदृश विशुद्ध है, चर्या कहिए—अनुष्ठान-आचरण जिनिकैं—ऐसैं आर्यकानि के गुण हैं ।। ६९ ।।

आगै कहै है, ते कैसे तिष्ठे है ?—

अर्थ—गृहस्थ कहिए-अपनी स्त्री वा परिग्रह कै विषैं आशक्त जे असंयमी जन, तिनिका जहां संबंध नांही ऐसो वसतिका

---

१. अ. ब—पडिरूव । २. क ओवा वि अच्छन्ति, अ—सहछन्ति ।

चासौ निलयश्च वसतिका तस्मिन्नगृहस्थमिश्रनिलये यत्रासंयतजनैः सह सम्पर्को नास्ति तत्र । **असण्णिवाए**—असतां पारदारिकचौरपिशुनदुष्टतिर्यक्प्रभृतीनां निपातो विनाशोऽभावो यत्र तस्मिन्नसन्निपाते । अथवा सतां यतीनां निपातः प्रसरः सन्निकृष्टता सन्निपातः स न विद्यते यत्र सोऽसन्निपातस्तस्मिन् । अथवा असंज्ञिनां [1]पातोऽसंज्ञिपातो बाधारहिते प्रदेशे इत्यर्थः । **विसुद्धसंचारे**—विशुद्धः संक्लेशरहितो गुप्तो वा संचरणं संचारः मलोत्सर्गप्रदेशयोग्यः गमनागमनार्हो वा यत्र स विशुद्धसंचारस्तस्मिन् बालवृद्धरोगिशास्त्राध्ययनयोग्ये । **दो**—द्वे । **तिण्णि**—तिस्रः । **अज्जाओ**—आर्याः संयतिकाः । **बहुगीओ वा**—वह्व्यो वा त्रिंशच्चत्वारिंशद्वा । **सह**—एकत्र । **अत्थन्ति**—तिष्ठन्ति वसन्तीति । अगृहस्थमिश्रनिलयेऽसन्निपाते विशुद्धसंचारे द्वे तिस्रो वह्व्यो वार्या अन्योन्यानुकूलाः परस्पराभिरक्षणाभियुक्ता गतरोषवैरमायाः सलज्जमर्यादक्रिया अध्ययनपरिवर्तनश्रवणकथनतपोविनयसंयमेषु अनुप्रेक्षासु च तथास्थिता उपयोगयोगयुक्ताश्चाविकारवस्त्रवेषा जल्लमलविलिप्तास्त्यक्तदेहा धर्मकुलकीर्तिदीक्षाप्रतिरूपविशुद्धचर्याः सन्त्यस्तिष्ठन्तीति समुदायार्थः ।। ७० ।।

किं ताभिः परगृहं न कदाचिदपि गन्तव्यमित्यतः आह—

ण य परगेहमकज्जे गच्छे कज्जे अवस्सगमणिज्जे ।
गणिणीमापुच्छित्ता संघाडेणेव गच्छेज्ज ।। ७१ ।।

ण य—न च । **परगेहं**—परगृहं गृहस्थनिलयं यतिनिलयं वा । **अकज्जे**—अकार्येऽप्रयोजने कारणमन्तरेण । **गच्छे**—गच्छेयुः यान्ति । **कज्जे**—कार्ये उत्पन्ने प्रयोजने । **अवस्सगमणिज्जे**—अवश्यं गमनीयेऽवश्यं गन्तव्ये भिक्षाप्रतिक्रमणादिकाले । **गणिणीं**—गणिनीं महत्तरिकां । **आपुच्छित्ता**—आपृच्छ्यानुज्ञां लब्ध्वा । **संघाडेणेव**—संघाटकेनैवान्याभिः सह । **गच्छेज्ज**—गच्छेयुः गच्छन्तीति । परगृहं च ताभिर्न गन्तव्यं, किं सर्वथा नेत्याह अवश्यंगमनीये कार्ये गणिनीमापृच्छ्य संघाटकेनैव गन्तव्यमिति ।। ७१ ।।

स्ववासे परगृहे वा एताः क्रियास्ताभिर्न कर्तव्या इत्यत आह—

रोदणण्हावणभोयणपयणं सुत्तं च छव्विहारंभे ।
विरदाण पादमक्खणधोवणगेयं च ण य कुज्जा ।। ७२ ।।

विषै, जहां असत् कहिए-परदारा, लंपट, चौर, पिशुन, दुष्ट तिर्यंचादिक इनिका जहां संचार नांही अथवा सत् कहिए-यति, मुनि तिनिका जहां संचार नांहो, अैसा बाधा रहित स्थान विषै, बहुरि विशुद्ध संचारे कहिए—विशुद्ध संक्लेश रहित् गुप्त है संचार कहिए-मलोत्सर्ग-प्रदेश जहां, अैसा गमन-आगमन कूं योग्य बाल, वृद्ध रोगीनिकैं हू, शास्त्र का अध्ययन करनैं कूं योग्य-अैसै स्थान विषैं दोय आर्यिका, तोन आर्यिका तथा बहुत आर्यिका-तीस-चालीस एक स्थान विषैं तिष्ठै ।। ७० ।।

आगैं कहै है कि आर्यकानि कूं पेले कै घर कदाचित् भी नहीं जावनां—

अर्थ—आर्यिका है ते बिना प्रयोजन गृहस्थ कै स्थान अथवा यति जहां बैठते होंय, तहां जाय नांही । बहुरि जो अवश्य जावने ही का प्रयोजन होय तौ भिक्षा प्रतिक्रमण आदि काल विषै गणिनी जो बड़ी आर्यिका है, ताहि पूछि, बाकी आज्ञा लेय अन्य आर्यिका सहित ही जाहि ।। ७१ ।।

---

१. क असन्निपातः ।

१८

रोदण—रोदनमश्रुविमोचनं दुःखार्तस्य। **ण्हावण**—स्नपनं बालादीनां मार्जनं। **भोयण**—भोजनं तेषामेव बल्भनपानादिक्रियाः। **पयणं**—पचनं ओदनादीनां पाकनिर्वर्तनं। **सुत्तं च**—सूत्रं सूत्रकरणं च। **छव्विहारम्भे**—षट् प्रकारा येषां ते षड्विधास्ते च ते आरम्भाश्चेति षड्विधारम्भाः। असिमषिकृषिवाणिज्यशिल्पलेखक्रियाप्रारम्भास्तान् जीवघातहेतून्। **विरदाण**—विरतानां संयतानां। **पादमक्खणधोवण**—म्रक्षणं अभ्यङ्गनं धावनं प्रक्षालनं पादयोश्चरणयोर्म्रक्षणधावनं पादम्रक्षणधावनं। **गेयं**—गीतं च रागपूर्वकं गन्धर्वं। **ण य**—न च। **कुज्जा**—कुर्युः न कुर्वन्ति। परगृहं गता आर्यिका रोदनस्नपनभोजनपचनसूत्राणि षड्विधारम्भाश्च न कुर्वन्ति, विरतानां पादम्रक्षणधावनं वा न कुर्युः स्वावासे परवासे वान्याश्च या अयोग्याः क्रियास्ता न कुर्वन्त्यपवादहेतुत्वादिति ॥ ७२ ॥

अथ भिक्षाचर्यायां कथमवतरन्ति ता इत्यत आह—

तिण्णि व पंच व सत्त व अज्जाओ अण्णमण्णरक्खाओ ।
थेरीहिं सहंतरिदा भिक्खाय समोदरन्ति सदा ॥ ७३ ॥

तिण्णि व—तिस्रो वा। **पंच व**—पंच वा। **सत्त व**—सप्त वा। **अज्जाओ**—आर्यिकाः। **अण्णमण्णरक्खाओ**—अन्योन्यरक्षायासां ता अन्योन्यरक्षाः परस्परकृतयत्नाः। **थेरीहिं**—स्थविराभिः वृद्धाभिः। **सह**—सार्धं। **अंतरिदा**—अन्तरिता व्यवहिताः काभिर्वृद्धाभिरेवान्यासामश्रुतत्वात्। **भिक्खाय**—भिक्षायै भिक्षार्थं भिक्षाभ्रमणकाले वोपलक्षणमात्रमेतद् भिक्षाग्रहणं यथा काकेभ्यो दधि रक्षतामिति। **समोदरन्ति**—समवतरन्ति सम्यक्पर्यटन्ति। **सदा**—सर्वकालं। यत्र तासां गमनं भवति तत्रानेन विधानेन नान्येनेति। तिस्रः पंच सप्त वा अन्योन्यरक्षाः स्थविराभिः सहान्तरिताश्च भिक्षार्थं समवतरन्ति सदेति ॥ ७३ ॥

आगैं कहै हैं आर्यकानि कूं अपनैं आवास विषै तथा पैले के घर विषैं एती क्रिया करने योग्य नांही—

अर्थ—आर्यिका हैं ते अपनो वसतिका मैं तथा पैले के घर एतो क्रिया नांहो करै—रोदन कहिए—दुःखकरि पीड़ित होय आंसू कांडना, स्नपन कहिए—बालकादिकनिकूं स्नान करावणां, भोजन कहिए—बालकादिकनिकूं जिमाय दैना, पाणोपावनां इत्यादिक। पचन कहिए—उर्दन इत्यादिक रसोई करनां। सूत्र कहिए—कातनां, सीवनां, कसोदा करना। षड्विधारंभ कहिए—असिकर्म, मषिकर्म, कृषिकर्म, वाणिज्यकर्म, शिल्पिकर्म, लेखकर्म—जोवघात के कारण ये षट्कर्म न करनां। बहुरि संयमोनिकै पगनिका अभ्यंगन, प्रक्षालन तथा रागपूर्वक गोत कहिए—गंधर्वविद्या और हू अयोग्य क्रिया, जे अपवाद कूं कारन होय, ते नांही करै ॥ ७२ ॥

आगै कहै है—ते आर्यिका भिक्षाचर्या विषैं कैसें अवतरैं ?

अर्थ—ते आर्यिका भिक्षा कै अर्थि तथा उपलक्षणतैं आचार्यादिकनिको वंदना के अर्थि जाय हैं, तब तोन तथा पंच तथा सात मिलकरि जाय हैं। परस्पर है रक्षा जिनिकै, परस्पर यत्न करै है। बहुरि बड़ी आर्यिका है वृद्धा, ताके पाछैं-पीछैं जाय हैं, सर्वकाल ऐसे गमन करैं ॥ ७३ ॥

आचार्यादीनां च वन्दनां कुर्वन्ति ताः किं यथा मुनयो नेत्याह—

पंच छ सत्त हत्थे सूरी अज्झावगो य साधू य ।
परिहरिऊणज्जाओ गवासणेणेव वंदंति ।। ७४ ।।

पंचछसत्तहत्थे—पंचषट्सप्तहस्तान् । **सूरीअज्झावगोय**—सूर्यध्यापकौ चाचार्योपाध्यायौ च । **साधूय**—साधूश्च । **परिहरिऊण**—परिहृत्य एतावदन्तरे स्थित्वा । **अज्जाओ**—आर्याः । **गवासणेण**—गवासनेन यथा गौरुपविशति तथोपविश्य एवकारोऽवधारणार्थः । **वंदंति**—वन्दन्ते प्रणमन्ति । पंचषट्सप्तहस्तैर्व्यवधानं कृत्वा आचार्योपाध्यायौ च साधूंश्च गवासनेनैव वन्दन्ते आर्या नान्येन प्रकारेणेत्यर्थः । आलोचनाध्ययनस्तुतिभेदात् क्रमभेद इति ।।७४ ।।

उपसंहारार्थमाह—

एवंविधाणचरियं चरंति[1] जे साधवो य अज्जाओ ।
ते जगपुज्जं किर्त्ति सुहं च लद्धूण सिज्झंति ।। ७५ ।।

एवंविधाणचरियं—एवंविधां चर्यां एवप्रकारानुष्ठानं । **चरंति**—आचरन्ति । **जे**—ये । **साधवो य**—साधवश्च मुनयश्च । **अज्जाओ**—आर्याः ते साधव आर्याश्च । **जगपुज्जं**—जगतः पूजा जगत्पूजा तां जगत्पूजां । **किर्त्ति**—कीर्तिं यशः । **सुहं च**—सुखं च । **लद्धूण**—लब्ध्वा । **सिज्झंति**—सिद्ध्यन्ति । एवंविधानचर्या ये चरन्ति साधव आर्याश्च ते ताश्च जगत्पूजां कीर्तिं सुखं च लब्ध्वा सिद्ध्यन्तीति ।। ७५ ।।

ग्रन्थकर्तात्मगर्वनिरासार्थमर्पणार्थमाह—

एवं सामाचारो बहुभेदो वण्णिदो समासेण ।
वित्थारसमावण्णो वित्थरिदव्वो बुहजणेहिं ।। ७६ ।।

बहुरि ते आचार्यादिकनिकूं वंदना जैसे मुनि करै तैसे नांहो करै, सो कहै हैं—

आर्यिका है ते आचार्यनिकूं पांच हाथ दूरि तैं वंदना करै है, उपाध्याय कूं छह हाथ दूरि तैं वंदना करै है, साधुनिकूं सात हाथ दूरि तैं वंदना करै हैं। जैसें गउ (गाय) बैठै हैं तैंसै बैठकरि ही वंदना करैं। आचार्यनि तैं आलोचनां करै हैं तातैं पाँच हाथ ही दूरि रहनां कह्या है। उपाध्यायनितैं अध्ययन करै है तातैं छह हाथ दूरि रहना कह्या है। साधुनिको स्तुति करै तातैं सात-सात हाथ दूरि रहनां कह्या है ।। ७४ ।।

आगै समाचार अधिकार का उपसंहार करि फल कहै हैं।

अर्थ—जे साधु, बहुरि आर्यिका या प्रकार चर्या, अनुष्ठान, आचरण करै है ते साधु बहुरि आर्यका जगत् विषैं पूजा, यश, सुख कूं पायकरि निर्वाण कूं प्राप्त होय हैं।। ७५ ।।

१. माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला एवं भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित मूलाचार में "चरितं" पाठ है ।

एवं—अनेन प्रकारेण। **सामाचारो**—सामाचारः—आगमप्रसिद्धानुष्ठानं। **बहुभेदो**—बहवो भेदा यस्यासौ बहुभेदो बहुप्रकारः। **वण्णिदो**—वर्णितः कथितः। **समासेन**—संक्षेपेण। **वित्थारसमावण्णो**—विस्तारं प्रपंचं समापन्नः प्राप्तो विस्तारयोग्यः। **वित्थरियव्वो**—विस्तारयितव्यः प्रपंचनीयः। **बुहजणेहिं**—बुधजनैरागमव्याकरणादिकुशलैः। एवं पूर्वस्मिन् यो बहुभेदः सामाचारोऽभूत् सा मया संक्षेपेण वर्णितो यतोऽतो विस्तारयोग्यतत्वाद्विस्तारयितव्यो बुधजनैरिति ॥ ७६ ॥

इत्याचारवृत्तौ वसुनन्दिविरचितायां चतुर्थः परिच्छेदः।

आगैं ग्रन्थकार अपनैं गर्व का निराकरण के अर्थि कहै है—

अर्थ—या प्रकार बहुत है भेद कहिए प्रकार जाकैं, अैसा समाचार कहिए आगम प्रसिद्ध अनुष्ठान मैंने संक्षेपकरि वर्णन कीया। बहुरि यह विस्तार कूं प्राप्त है, अर विस्तारवे योग्य है। तातैं जे आगम व्याकरणादिक विषै प्रवीण ज्ञानीजन हैं ते विस्तारकरि जानहु ॥ ७६ ॥ इति

अैसैं आचार्य श्री वट्टकेरस्वामि विरचित मूलाचार नामा प्राकृत ग्रंथ की वसुनंदि सिद्धान्तचक्रवर्ति विरचित आचारवृत्ति नाम संस्कृत-टीका के अनुसार यह देशभाषामय वचनिका विषै सामाचारनि का है वर्णन जामैं, अैसा चतुर्थ अधिकार समाप्त भया।

इहा पर्यंत गाथा सूत्र एक सौ सताणवै[1] (१९७) भए।

●

१. ब. सित्याणवे।

५. पंचाचाराधिकारः

पंचाचाराधिकारप्रतिपादनार्थं नमस्कारमाह—

तिहुयणमन्दरमहिदे तिलोगबुद्धे तिलोगमत्थत्थे ।
तेलोक्कविदिदवीरे तिविहेण य पणिविदे[1] सिद्धे ।। १ ।।

तिहुयणमंदरमहिदे—मन्दरे मेरौ महिताः पूजिताः स्नापिताः मन्दरमहिताः त्रयाणां भुवनानां लोकानां समाहारस्त्रिभुवनं तेन मन्दरमहितास्त्रिभुवनमन्दरमहिताः । अथवा त्रिभुवनस्य मन्दरा प्रधानाः सौधर्मेन्द्रादयस्तैर्महितास्त्रिभुवनमन्दरमहितास्तांस्त्रिभुवनमन्दरमहितान् । **तिलोगबुद्धे**—त्रिलोकानां त्रिलोकैर्वा बुद्धा ज्ञातारः ज्ञाता वा त्रिलोकबुद्धास्तांस्त्रिलोकबुद्धान् । **तिलोगमत्थत्थे**—त्रिलोकस्य मस्तकं सिद्धिक्षेत्रं तस्मिंस्तिष्ठन्तीति त्रिलोकमस्तकस्थास्तांस्त्रिलोकमस्तकस्थान् सिद्धिक्षेत्रस्थान् । **तेलोक्कविदिदवीरे**—त्रिषु लोकेषु विदितः ख्यातो वीरो वीर्यं येषां, अथवा त्रिलोकानां विदिताः प्रख्यातास्ते च ते वीराः शूराश्च त्रिलोकविदितवीरा त्रैलोक्यविदितवीर्यान् त्रिलोकविदितवीरान्वा । **तिविहेण**—त्रिविधेन त्रिप्रकारेण मनोवचनकर्मभिः । **पणिविदे**—प्रणिपत्य क्त्वान्तोऽयं, अथवा प्रणिपतामि मिङन्तोऽयं क्रियाशब्दः । **सिद्धे**—सिद्धान् निराकृतनिर्मूलकर्मणः । न चात्र तेषामसिद्धता पूर्वापराविरुद्धागमतत्स्वरूपप्रतिपादकप्रमाणसद्भावात्, तत्सद्भावबाधकप्रमाणाभावाद्वा । न चेतरेतराश्रयसद्भावः । द्रव्यार्थिकनयार्पणयानादिनिधनस्यागमस्य स्वमहिम्नैव प्रामाण्यात् । पर्यायार्थिकनयाश्रयणाच्च घातिकर्मविनिर्मुक्तार्हत्प्रणीतत्वाद्वा । न

५-पंचाचाराधिकारः

आगे पंचाचार नामा पांचवा अधिकार का प्रारम्भ है, तहाँ प्रथम ही नमस्कार करै हैं—

अर्थ—त्रिभुवन कहिए—तीनलोक करि, मंदर कहिए—सुमेरु कैं विषैं, महित कहिए—पूजित जन्मकल्याण समय अभिषेक कूं प्राप्त भए अथवा त्रिभुवन के मंदर कहिए प्रधान जे—सौधर्मेन्द्रादिक तिनिकरि पूजित अैसें, बहुरि त्रिलोकबुद्ध कहिए—तीन लोक का ज्ञाता, अथवा तीन लोक जिनिकूं जानैं अैसे, बहुरि अथवा तीनलोक का मस्तक जो सिद्धक्षेत्र ताकैं विषै विराजमान अैसे, बहुरि तीनलोक विषैं विख्यात है वीर्य जिनिका अैसा, अथवा तीन लोक में विख्यात, वीर कहिए सूर पराक्रमो[2] अैसे अथवा तीन लोक का जान्या है वीर्य जिनिनैं अैसे विशेषणनिकरि विशिष्ट जो सिद्ध परमेष्ठी निर्मूल-निराकरण कीये हैं कर्म जिनिनैं, तिनहि मन, वचन, काय तैं तीन प्रकार नमस्कार करि पंचाचार अधिकार कहूंगा, अैसी आचार्य प्रतिज्ञा करो।

इहां सिद्ध हैं ते पूर्वापर अविरुद्ध जो आगम रूप सिद्धनि का स्वरूप का प्रतिपादक प्रमाणका सद्भाव है तथा सिद्धनि के सद्भाव कूं बाधनैं वाला बाधक-प्रमाण का अभाव है। तातैं सिद्धनि कैं असिद्धता नांही। बहुरि इहां इतरेतराश्रय दोष नांही आवै है। द्रव्यार्थिक नय की अर्पणाकरि अनादि निधन जो आगम ताकैं अपनो महिमाकरि स्वतः ही प्रमाणता है। बहुरि पर्यायार्थिक

१. अ, ब पणमिदे । २. ब– प्राकर्मी ।

च जीवानां कर्मबन्धाभावाभावो हानिवृद्धिदर्शनादिति । त्रिभुवनमन्दरमहितानर्हतस्त्रिलोकमस्तकस्थांस्त्रैलोक्यविदितवीर्यान् सिद्धांश्च प्रणिपत्य वक्ष्ये, इति सम्बन्धः । अथवा सर्वाणि शास्त्राणि नमस्कारपूर्वाणि, कुतः सर्वज्ञपूर्वकत्वात् तेषां यतोऽतः स्वतंत्रोऽयं नमस्कारः त्रिभुवनमन्दरमहितानर्हतः सिद्धांश्च प्रणिपतामि । शेषाणि विशेषणान्यनयोरेव । अथवा सिद्धानामेव नमस्कारोऽयं भूतपूर्वगतिन्यायेन विशेषणानां सद्भावादिति । वक्ष्ये इति क्रियापदमुक्तं ।। १ ।।

किं वक्ष्ये ? किमर्थं वा नमस्कार इति पृष्टेऽत आह—

दंसणणाणचरित्ते तवेविरियाचारह्मि पंचविहे ।
वोच्छं अदिचारेऽहं कारिदे अणुमोदिदे अ कदे ।। २ ।।

दंसणं—दर्शनं सम्यक्त्वं तत्त्वरुचिः । **णाणं**—ज्ञानं तत्त्वप्रकाशनं । **चरित्तं**—चरित्रं पापक्रियानिवृत्तिः । नात्रविभक्त्यन्तरं प्राकृतलक्षणेनाकारस्यैकारः कुतो यतः । **तवे**—तपः तपति दहति शरीरेन्द्रियाणि तपः वाह्याभ्यन्तरलक्षणं कर्मदहनसमर्थं । **वीरियाचारह्मि**—वीर्यं शक्तिरस्थिशरीरगतबलं, एतेषां द्वन्द्वः दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्याणि तेषां तान्येव वा आचारो अनुष्ठानं तस्मिन् दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्याचारे । तत्त्वार्थविषयपरमार्थश्रद्धानुष्ठानं दर्शनाचारः । नात्रावलोकनार्थवाची दर्शनशब्दोऽनधिकारात् । पंचविधज्ञाननिमित्तं शास्त्राध्ययनादिक्रिया ज्ञानाचारः । प्राणिवधपरिहारेन्द्रियसंयमनप्रवृत्तिश्चारित्राचारः । कायक्लेशाद्यनुष्ठानं तपाचारः, वीर्यस्यानिह्नवो वीर्याचारः शुभविषयस्वशक्त्योत्साहः ।

नय का आश्रयपणां करि घातिया कर्मनि तै रहित जे अर्हंत तिनिकरि प्रणीतपणां तें प्रमाणता है। बहुरि जीवानि कैं कर्म-बंध के अभाव का अभाव नांही है। कर्म-बंध की हानि-वृद्धि देखिए हैं—तातैं कहीं जीव कैं कर्म-बंध का अभाव भी अवश्य होय है।

इहां सिद्धनिके त्रिभुवन-मंदर-महितादि विशेषण कीए ते भूतपूर्वगति-न्याय तै कीये। प्रथम अर्हन्त होय, पीछै सिद्ध भये हैं अथवा पूर्वे विशेषण विशिष्ट ते अर्हंत, अर त्रिलोकमस्तकस्थ ते सिद्ध, ऐसें दोउनि कूं नमस्कार जाननां ।। १ ।।

आगैं नमस्कार करि कहा कहैगें ? सो कहें हैं—

अर्थ—१. दर्शनाचार—दर्शन कहिए सम्यक्त्व तत्त्व रूचि ताका अनुष्ठान, तत्त्वार्थ कै विषैं परमार्थ रूप श्रद्धा का अनुष्ठान सो दर्शनाचार कहिए। इहां दर्शन शब्द अवलोकन अर्थ का वाचक नांही है। इहां अवलोकन का अधिकार नांहीं है। अवलोकन रूप दर्शन तौ दर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशमादिकतैं निर्विकल्प तथा पदार्थ का सामान्य ग्रहण रूप अनाकारोपयोग रूप होय है। तातैं मोक्षमार्ग के कथन मैं याका अधिकार नांही। बहुरि दर्शनमोहनीयकर्म के क्षयोपशमादिक तें तत्त्वार्थनि श्रद्धान का रूप सम्यक्त्व होय है। मोक्षमार्ग मैं याही का अधिकार है इहां याही का कथन है।

२. **ज्ञानाचार**—बहुरि ज्ञान कहिये तत्त्व प्रकाशन, ताका आचार कहिए पंचविधज्ञान कूं निमित्त शास्त्र अध्यायनादिक क्रिया सो ज्ञानाचार कहिए।

३. **चारित्राचार**—बहुरि चारित्र कहिए पाप-क्रिया की निवृत्ति, ताका आचार कहिए प्राणीवध का परिहार, इंद्रियनि का संयम सो चारित्राचार कहिए।

पंचविधे—पंचप्रकारे । **वोच्छं**—वक्ष्ये कथयिष्यामि । **अदिचारे**—अतीचारान् प्रमादादन्यथाचरितानि । [1]अहंकारादिदं अहं—आत्मनः प्रयोगः । **कारिदे**—कारितान् । **अणुमोदिदे**—अनुमतान् । चशब्दः समुच्चयार्थः । **कदे**—कृतात् । **आचारे**—दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यभेदे पंचप्रकारे कृतकारितानुमतानतीचारानहं वक्ष्ये इति सम्बन्धः ।। २ ।।

दर्शनातिचारप्रतिपादनार्थं तावदाह ते चाष्टौ शंकादिभेदेन कुतो यतः—

दंसणचरणविसुद्धी अट्ठविहा जिणवरेहिं णिद्दिट्ठा ।
दंसणमलसोहणयं वोच्छं तं सुणह एयमणा[1] ।। ३ ।।

दंसणचरणविसुद्धी—दर्शनाचरणस्य विशुद्धिर्निर्मलता दर्शनाचरणविशुद्धिः । **अट्ठविहा**—अष्टविधाऽष्टप्रकारा । **जिणवरेहिं**—कर्मारातीन् जयन्तीति जिनास्तेषां वराः श्रेष्ठाः जिनवरास्तैः । **णिद्दिट्ठा**—निर्दिष्टा कथिता । **दंसणमलसोहणयं**—दर्शनस्य सम्यक्त्वस्य मलमतीचारस्तस्य शोधनकं निराकरणं दर्शनमलशोधनकं । **वोच्छं**—वक्ष्ये । **तं**—तत् । **सुणह**—शृणुत जानीध्वं । **एयमणा**—एकाग्रमनसः तद्गतचित्ताः । पूर्वं संग्रहसूत्रेण दर्शनातीचारार्थं जिनवरैर्दर्शनविशुद्धिरष्टप्रकारा निर्दिष्टा यतोऽतस्तद्भेदादशुद्धिरप्यष्टविधा तद्दर्शनमलशोधनकं वक्ष्येऽहं यूयं शृणुतैकाग्रमनस इति ।। ३ ।।

अष्टप्रकारा शुद्धिरुक्ता के तेऽष्टप्रकारा इत्यत आह—

णिस्संकिद णिक्कंखिद णिव्विदिगिंच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पभावणा[2] य ते अट्ठ ।। ४ ।।

---

४. **तपाचार**—बहुरि तप कहिए शरीर इंद्रियनि का कूं तपै-दहै सो तप बाह्य, आभ्यन्तर करि दोय प्रकार। कर्म के दहन करनै कूं समर्थ ताका आचार कायक्लेशादिक का अनुष्ठान करनां सो तपाचार कहिए।

५. **वीर्याचार**—बहुरि वीर्य कहिए—शक्ति,अस्थि, शरीर का बल ताका आचार कहिए निह्नवे नांही करना, छिपावना नांही, शुभ कैं विषैं अपनी शक्ति करि उछाह करनां, सो वीर्याचार कहिए।

अैसे पंच प्रकार आचार विषै अतिचार कहिए प्रमाद सूं अन्यथा आचरण कीया अथवा कराया अथवा अनुमोदना कीया—अैसे में अतीचारनि कौं कहौंगा अैसा संबंध जाननां ।। २ ।।

आगैं दर्शन के अतीचार का प्रतिपादन कैं अर्थि कहै है, ते शंकादिक के भेदकरि अष्टप्रकार हैं।

अर्थ—दर्शनाचार की विशुद्धि कहिए निर्म्मलता सो जिनवर भगवान अष्ट प्रकार कही है। कर्म रूप शत्रुनिकूं जीतै ते जिन कहिए। तिन मैं वर कहिए श्रेष्ठ तीर्थंकरादिक तिनिनै, निर्दिष्ट कहिए कही है सो दर्शन कहिए। सम्यक्त्व ताका मल कहिए अतीचार, ताका शोधन कहिए निराकरण सो कहौंगा। तातैं[3] हे शिष्यजन हौ! एकाग्र-मन होयकरि तुम सुणो ।। ३ ।।

आगैं कहै हैं जे अष्टप्रकार शुद्धि कही, ते अष्ट प्रकार कौन सी हैं? सौ कहै है—

---

१. अ, एयग्गमणा । ब, एगमणा । २. अ, ब पहावणा । ३. अ—ताहि ।

णिस्संकिद—शंका निश्चयाभावः शुद्धपरिणामाच्चलनं शंकाया निर्गतो निःशंकस्तस्य भावो निःशंकता तत्त्वरुचौ शुद्धपरिणामः। **णिक्कंखिद**—कांक्षा इहपरलोकभोगाभिलाषः, कांक्षाया निर्गतो निष्कांक्षस्तस्य भावो निष्कांक्षता सांसारिकसुखारुचिः। **णिव्विदिगिंछा**—विचिकित्साया जुगुप्सा अस्नानमलधारणनग्नत्वादिव्रतारुचिर्विचिकित्साया निर्गतो निर्विचिकित्सस्तस्य भावो निर्विचिकित्सता द्रव्यभावद्वारेण विपरिणामाभावः। **अमूढदिट्ठीय**—मूढान्यत्र गता न मूढा अमूढा, अमूढा दृष्टिः रुचिर्यस्यासावमूढदृष्टिस्तस्य भावोऽमूढदृष्टिता लौकिकसामयिकवैदिकमिथ्याव्यवहारापरिणामः। **उवगूहण**—उपगूहनं चातुर्वर्ण्यश्रमणसंघदोषापहरणं प्रमादाचरितस्य च संवरणं। **ठिदिकरणं**—अस्थिरः स्थिरः क्रियते सम्यक्त्वचारित्रेषु स्थिरीकरणं रत्नत्रयेशिथिलस्य दृढयनं हितमितोपदेशादिभिः। **वच्छल्ल**—वत्सलस्य भावो वात्सल्यं चातुर्वर्ण्यश्रमणसंघे सर्वथानुपवर्तनं धर्मपरिणामेनापद्यनापदि सधर्मजीवानामुपकाराय द्रव्योपदेशादिना हितमाचरणं। **पभावणा य**—प्रभावना च प्रभाव्यते मार्गोऽनयेति

अर्थ—१–निःशंकता, २–निष्कांक्षिता, ३–निर्विचिकित्सता, ४–अमूढ़दृष्टिता, ५–उपगूहन, ६–स्थितीकरण, ७–वात्सल्यता, ८–प्रभावना—अैसे आठ सम्यक्त्व के गुण जाननैं। इनिका अर्थ कहिए हैं—

१—शंका कहिए—निश्चय का अभाव, शुद्ध परिणाम तैं चलित होनां शंकातै रहित सम्यकदृष्टि सो निशंक कहिये, ताका भाव सो निःशंकता तत्व रुचि के विषै शुद्ध परिणाम सौ निःशंकता कहिये।

२—बहुरि कांक्षा कहिए—इहलोक, परलोक सम्बन्धी भोगनिका अभिलाष कांक्षाकरि रहित जो सम्यग्दृष्टि सो निकांक्ष कहिए, ताका जो भाव संसारिक सुख विषैं अरुचिपरिणाम सो निःकांक्षता कहिये।

३—बहुरि विचिकित्सा कहिये, जुगुप्सा, स्नान का त्याग, मल का धारण, नग्नपणां—इत्यादिक जे मुनिराज के व्रत, तिनि विषै अरुचि विचिकित्सा तैं रहित जो सम्यक्दृष्टी सो निर्विचिकित्स कहिए। ताका जो भाव पुरीषादिक द्रव्य कैं विषैं क्षुधा-तृषादिक भावकैं विषे ग्लानि का अभाव सो निर्विचिकित्सता कहिए।

४—बहुरि मूढा कहिए अन्य देवादिक कै विषैं प्राप्त मूढ़ा नांही अन्य देवादिक विषैं प्राप्त होय नांही सो अमूढ़ा कहिये अमूढ़ा है दृष्टि कहिये—रुचि जिस सम्यक् दृष्टि कै सो अमूढ़दृष्टि कहिये। अमूढ़दृष्टि का जो भाव सो लौकिक, सामायिक. वैदिक—तीन प्रकार मिथ्या व्यवहार विषै प्रवर्तनां नांही, सो अमूढ़दृष्टिता कहिए।

५—बहुरि चतुर्वर्ण जो ऋषि, मुनि, यति, अनगार—च्यार रूप मुनिनिका संघ ताकै[1] दोष का निराकरण करनां, प्रमादरूप आचरण का संवरण करणां सो उपगूहन कहिए।

६—बहुरि रत्नत्रय के विषैं शिथिल कौं हितमित उपदेशादिक करिकै अस्थिर कौं सम्यक्त्व चारित्रादिक विषै स्थिर करिये सो स्थिरीकरण कहिये।

७—बहुरि चतुर्वर्ण जो मुनिनि का संघ ताकै विषै सर्वप्रकार अनुकूल प्रवर्तनां धर्म्म परिणाम करिकै साधर्मी जीवनिका उपगार के अर्थि आपदा कौं हौंतै संतै[2] द्रव्यकरि[3] तथा उपदेशादिक करि तिनके हित का आचरण करणां—अैसा वात्सल्य का भाव सौ वात्सल्य कहिये।

---

१. अ संघात कै   २. ब. आपदा कौ हौतैं वा नैं होतै संतैं।   ३. ब. द्रव्य कहिए।

प्रभावना वादपूजादानव्याख्यानमंत्रतंत्रादिभि: सम्यगुपदेशैर्मिथ्यादृष्टिरोधं कृत्वार्हत्प्रणीतशासनोद्योतनं ते एते निःशंकितादयो गुणाः। **अट्ठ**—अष्टौ वेदितव्याः। एतेषां वैपरीत्येन तावन्तोऽतीचारा व्यतिरेकद्वारेण कथिता एवातो नातिचारकथनं प्रतिज्ञाय शुद्धिकथनं दोषायेति ॥ ४ ॥

अथ दर्शनं किं लक्षणं ? यस्य शुद्धयोऽतीचाराश्चोक्ता दर्शनं मार्गः सम्यक्त्वं कुत इत्यत आह—

मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो खलु सम्मत्तं मग्गफलं होइ णिव्वाणं ॥ ५ ॥

मग्गो—मार्गो मोक्षमार्गभ्युपायः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपसामन्योन्यापेक्षया वर्तनं। **मग्गफलंति य**—मार्गस्य फलं सम्यक्सुखाद्यवाप्तिःमार्गफलमिति च। इतिशब्दो व्यवच्छेदार्थः नान्यत्त्रैविध्यमित्यर्थः। **दुविहं**—द्वौ प्रकारावस्यद्विविधं तस्य भावो द्वैविध्यं। **जिणसासणे**—जिनस्य शासनमागमस्तस्मिन् जिनशासने। **समक्खादं**—समाख्यातं सम्यगुक्तं। अथवा प्रथमान्तमेतज्जिनशासनमिति। **मग्गो**—मार्गः। **खलु**—स्फुटं। **सम्मत्तं**—सम्यक्त्वं। ननु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि समुदितानि मार्गस्ततः कथं सम्यक्त्वमेव मार्गः। नैष दोषः अवयवे समुदायोपचारात् मार्गं प्रति सम्यक्त्वस्य प्राधान्याद्वा। **मग्गफलं**—मार्गस्य फलं मार्गफलं। **होइ**—भवति। **णिव्वाणं**—निर्वाणं अनन्तचतुष्टयावाप्तिः। किमुक्तं भवति, जिनशासने मार्गमार्गफलाभ्यामेव द्वैविध्यमाख्यातं कार्यकारणाभ्यां विनान्यस्याभावात्। अतो मार्गः सम्यक्त्वं कारणं, मार्गफलं च निर्वाणं कार्यरूपं। अथवा मार्गमार्गफलाभ्यामिति कृत्वा जिनशासनं द्विविधमेव समाख्यातं। स मार्गः सम्यक्त्वं, शेषश्च फलं निर्वाणमिति ॥ ५ ॥

८—बहुरि वाद (शास्त्रार्थ) पूजा, दान, व्याख्यान, मंत्र, तंत्रादिक करि तथा सम्यक् उपदेशादिककरि मिथ्यादृष्टीनिका निराकरण करि अर्हंत[1] भाषित धर्म का उद्योत करनां सो प्रभावना कहिये।

अैसे ये निःशंकितादिक आठ सम्यक्त्व के गुण जानने[2] इनितै विपरीत आठ हो—शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि अनुपगहन अस्थिरीकरण, अवात्सल्य, अप्रभावनां—अैसें व्यतिरेक[3] द्वार करि कहे अतोचार जाननें ॥ ४ ॥

आगै पूछै हैं कि दर्शन का लक्षण कहा जाको अष्टप्रकार शुद्धि, अष्टप्रकार अतीचार कहै। बहुरि दर्शन कहिये सम्यक्त्व मार्ग कैसा है ?[4] अैसा प्रश्न होतै कहै है—

अर्थ—जिन आगम के विषै मार्ग बहुरि मार्गफल—अैसें द्विविधपणौं वर्णन कीयो है। तहां सम्यक्त्व तो मार्ग है, जातैं मोक्ष का उपाय है। बहुरि निर्वाण है सौ मार्ग का फल है। जो सम्यक्त्व सुखादिक को प्राप्ति स्वरूप है।

इहां कोउ प्रश्न करै—सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का समुदाय मार्ग है। सम्यक्त्व ही मार्ग कैसैं कह्या ? ताका समाधान—इहां अवयव कैं विषैं समुदाय का उपचार है। मोक्षमार्ग प्रति सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप—इनिकैं सापेक्षा है, तिनिमैं सम्यक्त्व कै प्रधानता है। बहुरि सम्यक्त्व मार्ग है सो कारण है, निर्वाण मार्गफल है—सो कार्य है। अैसैं जिनशासन दोय ही प्रकार प्रवर्ते है ॥ ५ ॥

---

१. ब. अरहंत। २. अ. जाणनैं। ३. ब. वितरेक। ४. ब. दर्शन कहिये मार्ग-सम्यक्त्व सो कैसे ?

यद्यपि मार्गः सम्यक्त्वं इति व्याख्यातं तथापि सम्यक्त्वस्याद्यापि स्वरूपं न बुध्यते तद्बोधनार्थमाह—

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च ।

आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मतं ।। ६ ।।

अवयवार्थपूर्विका वाक्यार्थप्रतिपत्तिरिति कृत्वा तावदवयवार्थो व्याख्यायते । **भूदत्थेण**—भूतश्चासावर्थश्च भूतार्थस्तेन । यद्यप्ययं भूतशब्दः पिशाचजीवसत्यपृथिव्याद्यनेकार्थे वर्तते तथाप्यत्र सत्यवाची परिगृह्यते, तथार्थशब्दो यद्यपि पदार्थप्रयोजनस्वरूपाद्यर्थे वर्तते तथापि स्वरूपार्थे वर्तमानः परिगृहीतोऽन्यार्थवाचकेन प्रयोजनाभावात्, भूतार्थेन सत्यस्वरूपेण याथात्म्येन । **अभिगदा**—अभिगताः अधिगताः स्वेन स्वेन स्वरूपेण प्रतिपन्नाः जीवाश्चेतनलक्षणा ज्ञानदर्शनसुखदुःखानुभवनशीलाः । तद्व्यतिरिक्ता अजीवाश्च पुद्गलधर्माधर्मास्तिकायाकाशकालाः रूपादिगतिस्थित्यवकाशवर्तनालक्षणाः । **पुण्णं**—शुभप्रकृतिस्वरूपपरिणतपुद्गलपिंडो जीवाह्लादननिमित्तः । **पावं**—पापं चाशुभकर्मस्वरूपपरिणतपुद्गलप्रचयो जीवस्यासुखहेतुः । **आसव**—आसमन्तात् स्रवत्युपढौकते कर्मानेनास्रवः । **संवर**—कर्मागमनद्वारं संवृणोतीति संवरणमात्रं वा संवरोऽपूर्वकर्मागमननिरोधः । **णिज्जर**—निर्जरणं निर्जरयत्यनया वा निर्जरा जीवलग्नकर्मप्रदेशहानिः । **बंधो**—बध्यतेऽनेन बन्धनमात्रं वा बन्धो जीवकर्मप्रदेशान्यो-

---

आगैं सम्यक्त्व का स्वरूप जाननै के अर्थि कहै हैं—

अर्थ—भूतार्थ करिकैं जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष—जाणैं सम्यक्त्व होय है । भूत शब्द के अनेक अर्थ हैं—भूत नाम पिशाच का है, भूत नाम जीव का है, भूत नाम सत्य का है, भूत नाम पृथिव्यादि का है । तथापि यहाँ सत्यवाची का ग्रहण है ।

बहुरि अर्थ शब्द के अनेक अर्थ हैं । अर्थ नाम पदार्थ का है । अर्थ नाम प्रयोजन का है । अर्थ नाम स्वरूप का है इत्यादि । तथापि इहां स्वरूपवाची का है, अन्य अर्थ वाचो तै प्रयोजन नांही । भूत कहिए सत्य जो अर्थ कहिए स्वरूप सो भूतार्थ कहिए । भूतार्थ, सत्यार्थ, परमार्थ, याथात्म्य—इनिका एक अर्थ है । अपनैं-अपनैं स्वरूपकरि प्रतिपन्न जे जीवादिक ते भूतार्थ कहिए सत्यस्वरूप करि, अभिगत कहिए अधिगत जाणैं सम्यक्त्व होय है ।

तातैं जीवादिका संक्षिप्त स्वरूप कहै है—१. जीव है ते चेतनां लक्षण जाननैं । ज्ञान-दर्शन, सुख-दुःखादिक का अनुभव सो है शील-स्वभाव जिनिका, अैसे हैं ।

२—चेतनां लक्षण करि रहित है तै अजीव है । पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल—अैसे पाँच प्रकार हैं । रूपादिक पुद्गल का लक्षण है । गति हेतुपणां धर्म्मं-द्रव्यका लक्षण है । स्थिति हेतुपणां अधर्म द्रव्य का लक्षण है । अवगाह हेतुपणां आकाश द्रव्य का लक्षण है । वर्तना हेतुपणां काल द्रव्य का लक्षण है ।

३—जीव कै आल्हादन का निमित्त शुभ प्रकृति स्वरूप करिकैं परिणया जो पुद्गल पिंड सो पुण्य कहिए ।

४—जीव के दुख का कारण अशुभ कर्म्म स्वरूप करि परिणया जो पुद्गल स्कंध सो पाप कहिए ।

५—'आ' कहिए समस्तपणैंकरि 'स्रवण' कहिए प्राप्त होय कर्म जाकरि, अैसा कर्म आवनैं का द्वार सो आश्रव कहिए ।

६—आश्रव कूं रौकै अथवा रौकनांमात्र अपूर्वकर्म आवनैं का निरोध सो संवर कहिए ।

न्यसंश्लेषोऽस्वतंत्रीकरणं। **मोक्खो**—मुच्यतेऽनेन मुक्तिर्वा मोक्षो जीवप्रदेशानां कर्मरहितत्वं स्वतंत्रीभावः। चशब्दः समुच्चयार्थः। **सम्मत्तं**—सम्यक्त्वं। एतेषां यथाक्रम एव न्यायः,[1] जीवस्य प्राधान्यादुत्तरोत्तराणां पूर्वपूर्वोपकाराय प्रवृत्तत्वाद्वा। न चैतेषामभावो ज्ञानरूपमुपचारो वा धर्मार्थकाममोक्षाणामभावादाश्रयाभावात्मुख्याभावाच्च प्रमाणप्रमेयव्यवहाराभावाल्लोकव्यवहाराभावाच्च। जीवाजीवा[2] भूतार्थेनाधिगताः सम्यक्त्वं[3]। तथा पुण्यपापं चाधिगतं सम्यक्त्वं। तथा आस्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षाश्चाधिगताः सन्तः सम्यक्त्वं भवति। ननु कथमेतेऽधिगताः सम्यक्त्वं यावतैषामधिगतानां यत्प्रधानं तत् सम्यक्त्वमित्युक्तं, नैष दोषः, श्रद्धानरूपैवेयमधिगतिरन्यथा परमार्थाधिगतेरभावात् कारणे कार्योपचाराद्वा जीवादयोऽधिगताः सम्यक्त्वमित्युक्तं। जीवादीनां [4]परमार्थानां यच्छ्रद्धानं तत्सम्यक्त्वं। अनेन न्यायेनाधिगमलक्षणं दर्शनमुक्तं भवति॥ ६॥

आदौ निर्दिष्टस्य जीवस्य भेदपूर्वकं लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—

दुविहा य होंति जीवा संसारत्था य णिव्वुदा चेव।
छद्धा संसारत्था सिद्धिगदा णिव्वुदा जीवा॥ ७॥

दुविहा य—द्विप्रकारा द्वौ प्रकारौ येषां ते द्विप्रकारा द्विभेदाः जीवाः प्राणिनः। **संसारत्था य**—संसारे तिष्ठन्तीति संसारस्थाश्चतुर्ग-

---

७—कर्म कूं निर्जीर्ण करै जाकरि अथवा निज्जोर्ण करणां जीवकै लगै कर्म्मप्रदेश तिनिकी हानि सो निर्जरा कहिए।

८—कर्मबंधै जाकरि अथवा बंधनैं मात्र जीव अर कर्म्मप्रदेश कै परस्पर एक क्षेत्रावगाह रूप कर्म्मसंश्लेष, स्वाधीनता का अभाव सो बंध कहिए।

९—जाकरि छूटिए अथवा छटनां जीव-प्रदेशनि कैं कर्म्मरहितपणां स्वतंत्र होनां सो मोक्ष कहिए।

इनिका क्रम जैसें कह्या है सो ही न्याय है। जीवकूं प्रधानपणांकरि पहलै कह्या है। पूर्व-पूर्व का उपकार कैं अर्थि उत्तरोत्तर की प्रवृत्ति है। कोई परवादो इनिका अभाव मानैं हैं। कोई ज्ञान रूप ही मानै है। बाह्य वस्तु नांही मानै है। कोई उपचार मात्र मानैं हैं—सो युक्त नांही। जो जीवादिक आश्रव का अभावतैं धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष—पुरुषार्थ का अभाव होय है। बहुरि मुख्य जीवादिक का अभावतैं प्रमाण-प्रमेय के व्यवहार का अभाव होय है। तातैं लोक-व्यवहार का अभाव होय है।

इहां कोउ पूछै—ये ही जानैं संतै सम्यक्त्व कैसैं कहैं? इनका श्रद्धान है सो सम्यक्त्व कह्या है? ताका समाधान—इनि जीवादिकनि का परमार्थ रूप जो अधिगम है सो सम्यक्त्व का कारण है। जाकै सम्यक्त्व होनीं होय ताही कै परमार्थरूप तत्त्वार्थाधिगम होय है, अन्य कै परमार्थभूत तत्त्वार्थाधिगम नांही होय है। तातैं यहु सम्यक्त्व का कारण है। तातैं कारणकै विषैं कार्य का उपचार करिया हो कूं सम्यक्त्व कह्या है—ऐसा न्यायकरि अधिगमज सम्यग्दर्शन कह्या है॥ ६॥

आगैं आदि कैं विषै कह्या जो जीव ताका भेदपूर्वक लक्षण कहै हैं, ताहि प्रतिपादन करता संता कहै हैं—

अर्थ—जीव है ते दोय प्रकार हैं—१. संसार में तिष्ठैं च्यारु गति कै विषैं भ्रमण करै ते संसारस्थ कहिए। २. बहुरि

१. क न्याय्य इति प्रतिभाति। २. क °वाश्च। ३. क °त्वं भवति। ४. क परमार्थतोऽधिगतानां।

तिनिवासिनः । णिव्वुदा देद— निर्वृताश्चेति मुक्ति गता इत्यर्थः । छद्धा—षट्धा षट्प्रकाराः । **संसारत्था—**संसारस्थाः । **सिद्धिपदा—**सिद्धिगता उपलब्धात्मस्वरूपाः । **णिव्वुदा—** निर्वृता जीवास्तेषां भेदकारणाभावादभेदास्ते । संसारमुक्तिवासभेदेन द्विविधा जीवाः । संसारस्थाः पुनः षट्प्रकारा एकरूपाश्च निर्वृता इति सम्बन्धः ॥ ७ ॥

के ते षट्प्रकारा इत्याह—

पुढवी आऊ तेऊ वाऊ य वणप्फदी तहा य तसा ।
छत्तीसविहा पुढवी तिस्से भेदा इमे णेया ॥ ८ ॥

पुढवी—पृथिवी चतुष्प्रकारा पृथिवी, पृथिवीशरीरं, पृथिवीकायिकः, पृथिवीजीवः । आपोऽप्कायोऽप्कायिकोऽप्जीवः । तेजस्तेजस्कायस्तैजस्कायिकस्तेजोजीवः । वायुर्वायुकायो वायुकायिको वायुजीवः । वनस्पतिर्वनस्पतिकायो वनस्पतिकायिको वनस्पतिजीवः । यथा पृथिवी चतुष्प्रकारा तथाप्तेजोवायुवनस्पतयः, चशब्दतथाशब्दाभ्यां सूचितत्वात् । जीवाधिकाराद् द्वयोर्द्वयोराद्ययोस्त्यागः शेषयोः सर्वत्र ग्रहणम् । आद्यस्य प्रकारस्य भेदप्रतिपादनार्थमाह—**छत्तीसविहा पुढवी—**षडभीरधिका त्रिंशत् षट्त्रिंशद्विधा, प्रकारा यस्याः सा षट्त्रिंशत्प्रकारा पृथिवी । **तिस्से—**तस्याः । **भेदा—**प्रकाराः । **इमे—**प्रत्यक्षवचनं । **णेया—**ज्ञेया ज्ञातव्याः ॥ ८ ॥

क इमे इत्यत आह—

पुढवी य बालुगा सक्करा य उवले सिला य लोणे य ।
अत तंव तउय सीसय रुप्प सुवण्णे य वइरे य ॥ ९ ॥

सिद्धि कहिए मुक्ति, ताकूं प्राप्त भए ते निर्वृत्त कहिए । तहां संसारस्थ जोव हैं, तै छह प्रकार हैं । बहुरि निर्वृत्त कहिए पाया है अपनां स्वरूप जिननें अैसे जीव हैं ते सिद्धिगत हैं । तिनिके भेद के कारण का अभाव है, तातैं भेद रहित हैं ॥ ७ ॥

आगैं संसारी जीव छह प्रकार कहे हैं, तिनिकूं कहैं हैं—

अर्थ—पृथिवी—च्यारि प्रकार—१. पृथिवो, २. पृथ्वो-शरीर, ३. पृथ्वी-कायिक, ४. पृथिवी जीव । बहुरि अप् च्यारि प्रकार—अप्, अप्काय, अप्कायिक, अप्जोव । तेजस् च्यार प्रकार—तेजस्, तेजस्काय, तेजस्कायिक, तेजस्जीव । बहुरि वायु च्यारि प्रकार—वायु, वायुकाय, वायुकायिक, वायुजोव । बहुरि वनस्पति च्यारि प्रकार—वनस्पति, वनस्पतीकाय, वनस्पतिकायिक, वनस्पतीजीव—अैसे च्यारि-च्यारि भेद कहै । तिनिमैं आदि के दोय-दोय पृथिवो,, पृथिवोकाय—अैसे तिनकूं तो छोड़ि देनें, अर पोछैं कहे दोय भेद पृथिवीकायिक पृथिवीजीव—अैसैं इनिका सर्वत्र ग्रहण करनां । इहां जोव का अधिकार हैं तातैं जीव रूप दोय भेदनि ही का ग्रहण कोया ॥ ८ ॥

तहाँ पृथ्वी छत्तीस प्रकार है, ताकैं भेद आगैं कहिए है ते जाननें त कौनसे हैं ? सो कहै हैं--

पुढवी—पृथिवी मृद्रूपा। **बालुया**—बालुका रूक्षा गङ्गाद्युद्भवा। **सक्करा**—शर्करा पुरुषरूपा अत्र चतुरस्रादिरूपा। **उवले**—उपलानि वृत्तपाषाणरूपाणि। **सिला य**—शिला च वृहत्पाषाणरूपा। **लोणे य**—लवणभेदाः सामुद्रादयः। **अय**—अयो लोहरूपं। **तव**—ताम्रं। **तउय**—त्रपुषं। **सीसय**—सीसकं श्यामवर्णं। **रुप्प**—रूप्यवर्णं शुक्लरूपं। **सुवण्णेय**—सुवर्णानि च रक्तपीतरूपाणि। **वइरे य**—वज्रं च रत्नविशेषः ॥ ९ ॥

हरिदाले हिंगुलये मणोसिला सस्सगंजण पवालेय।
अब्भपडलब्भवालुय बादरकाया मणिविधीय ॥ १० ॥

हरिदाले—हरितालं नटवर्णकं। **हिंगुलये**—हिंगुलकं रक्तद्रव्यं। **मणोसिला**—मनःशिला काशप्रतिकाराय प्रवृत्तं। **सस्सग**—सस्यकं हरितरूपं। **अंजण**—अञ्जनं अक्ष्युपकारकं (चक्षुरूपकारकं) द्रव्यं। **पवालेय**—प्रवालं च। **अब्भपडल**—अभ्रपटलं। **अब्भबालुग**—अभ्रवालुका चैक्यचिक्यरूपा। **वादरकाया**—स्थूलकायाः। **मणिविधीय**—इत ऊर्ध्वं मणिविधयो मणिप्रकारा वक्ष्यन्त इति सम्बन्धः ॥ १० ॥

गोमज्झगेय रुजगे अंके फलिहे[1] लोहिदंकेय।
चंदप्पभेय[2] वेरुलिए जलकंते सूरकंतेय ॥ ११ ॥

शर्करोपलशिलावज्रप्रवालवर्जिताः शुद्धाः पृथिवीविकाराः पूर्वे एते च खरपृथिवीविकाराः। **गोमज्झगेय**—गोमध्यको मणिः कर्केतन-

---

अर्थ—१. पृथिवी कहिए मृत्तिका रूप। २. बहुरि बालुका लूखी (रूखी) कहिए गंगादिक तैं उत्पन्न भई। ३. बहुरि शर्करा कहिए कठोर रूप तिकूटा, चौकूटा इत्यादिक रूप। ४. बहुरि उपल कहिए गोल-पाषाण रूप। ५. बहुरि शिला कहिए बड़े पाषाण रूप। ६. बहुरि लवण कहिए सामुद्रादिक लवण के भेद। ७. बहुरि अयः कहिए लोहरूप। ८. बहुरि ताम्र कहिए तांबा रूप। ९. बहुरि त्रपुष कहिए जसत (जस्ता)। १०. बहुरि सीसक कहिए श्याम वर्ण सीसो[3]। ११. बहुरि रूप्यक कहिए रूपो शुक्ल वर्ण (चांदी)। १२. बहुरि स्वर्ण कहिए सोनूं (सोना) रक्त-पीत रूप। १३. बहुरि वज्र कहिए हीरो रत्न विशेष—अैसे तेरह भेद कहे ॥९॥

आगैं अन्य भेद कहै हैं—

अर्थ—१४. हरिताल कहिए नटवर्णक। १५. बहुरि हिंगुलक कहिए हींगलु रक्त द्रव्य। १६. बहुरि मनःसिला कहिए मैलसिल कासका (खांसी) प्रतीकारकैं अर्थि प्रवर्तैं। १७. बहुरि सस्यक कहिए हरित रूप। १८. बहुरि अंजन कहिए सुरमू नेत्रनिका उपकार करने वाला। १९. बहुरि प्रवाल कहिए मूंगा, २०. बहुरि अभ्रपटल कहिए भोडल, (अभ्रक), २१. बहुरि अभ्रबालुका कहिए चैक्यचिक्य (चमकने वाली रेत) रूप पृथिवो अैसैं इकईस भेद भये। बहुरि बादरकाय कहिए स्थूलकाय-मणि, विधि कहिए रत्ननि के प्रकार कहिएगैं–अैसा संबंध जानना ॥ १० ॥सो कहै हैं—

अर्थ—पूर्वैं कहे जे इकईस भेद तिनिमैं शर्करा, उपल, शिला, वज्र, प्रवाल—अैसे पंच भेद वर्ज्य करि अन्य सोलह भेद हैं

---

१. अ, ब फलिहे य :   २. अ, ब चंदप्पभे वेरुकिए।   ३. अ. सीसी।

मणिः । **रुजगे**—रुचकश्च मणी राजवर्तकरूपः । **अंके**—अंको मणिः पुलकवर्णः । **फलिहे**—स्फटिकमणिः स्वच्छरूपः । **लोहिदंकेय**—लोहितांको मणी रक्तवर्णः पद्मरागः । **चन्दप्पभेय**—चन्द्रप्रभो मणिः । **वेरुलिए**—वैडूर्यो मणिः । **जलकन्ते**—जलकान्तो मणिरुदकवर्णः । **सूरकन्तेय**—सूर्यकान्तो मणिः ॥ ११ ॥

गेरुय चंदण वव्वग वय मोए तह मसारगल्ले य ।
ते जाण पुढविजीवा जाणित्ता परिहरेदव्वा ॥ १२ ॥

गेरुय—गैरिकवर्णो मणी रुधिराक्षः । **चन्दण**—चन्दनो मणिः श्रीखण्डचन्दनगन्धः । **वव्वग**—वप्पको मणिर्मरकतमनेकभेदं । **वग**—वको मणिः वकवर्णाकारः पुष्परागः । **मोए**—मोचो मणिः कदलीवर्णाकारो नीलमणिः । **तह**—तथा । **मसारगल्लेय**—मसृणपाषाणमणिर्विद्रुमवर्णः । **ते जाण**—तान् जानीहि । **पुढविजीवा**—पृथिवीजीवान् । तैर्ज्ञातैः किं प्रयोजनं ? **जाणित्ता**—ज्ञात्वा । **परिहरेदव्वा**—परिहर्तव्या रक्षितव्याः संयमपालनाय । तानेतान् शुद्धपृथिवीजीवान् तथा खरपृथिवीजीवांश्च मणिप्रकारान् स्थूलान् जानीहि ज्ञात्वा च परिहर्तव्याः । सूक्ष्माः पुनः सर्वत्र ते विज्ञातव्याः आगमबलेन । षट्त्रिंशद्भेदेषु पृथिवीविकारेषु पृथिव्यष्टक—मेरु-कुलपर्वत-द्वीप-वेदिका-विमान-भवन-प्रतिमा-तोरण-स्तूप-चैत्यवृक्ष-

---

ते शुद्ध पृथिवी विकार जाननैं । ए मृदु पृथ्वी के सोलह भेद हैं। बहुरि पाँच भेद ए तथा आगैं कहिएगैं पंदरह भेद ते मिलिकरि बीसूं भेद खर पृथ्वी विकार जानने, सो कहिए हैं ।

२२. गोमध्यक कहिए-गोमेद-कर्कैतनमणि गोरोचन वर्ण । २३. बहुरि रुचक कहिए राजवर्त्तक रूप अतसी पुष्प वर्ण । २४. बहुरि अंक कहिए पुलकवर्ण मणि । २५. बहुरि स्फटिक कहिए स्वच्छ रूप फटिक । २६. बहुरि लोहितांक कहिए रक्तवर्ण पद्मरागमणि । २७. बहुरि चन्द्रप्रभ कहिए चंद्रकांतमणि । २८. बहुरि सूर्यकांल कहिए सूर्यकांत मणि । २९. बहुरि वैंडूर्य कहिए मयूर कंठ वर्ण । ३०. बहुरि जलकांत कहिए उदकवर्णाकार—अैसैं तोस भेद भये ॥११॥ आगैं बहुरि भद कहै हैं—

अर्थ—३१. गैरिक कहिए गेरु वर्णमणि । रुधिराक्ष, ३२. बहुरि चंदन कहिए श्रीखंड चंदन समान है गन्धवर्ण जाका । ३३. बहुरि वप्पक कहिए अनेक भेद रूप मर्कतमणि,विलाव के नेत्र समान हैं वर्ण जाका । ३४. बहुरि वक वर्णाकार कहिए बगुला का सा है, वर्णाकार जाका अैसा पुखराज । ३५. बहुरि मोच कहिए केलिका सा है वर्णाकार जाका अैसा नीलमणि । ३६. बहुरि मसृण, पाषाण कहिए विद्रुम का सा है वर्ण जाका—अैसे ३६ भेद कहे हैं, तिनहि पृथ्वी जीव जानहु । तिनके जानवे करि कहां प्रयोजन ? संयम का पालन कै अर्थि शुद्ध-पृथ्वी के स्थूल जीव तथा खर-पृथ्वी के स्थूल जीव, तिनही जाणिकरि इनिका परिहार करना, रक्षा करणी । बहुरि सूक्ष्म जीव है, ते सर्व्वत्र है । सो आगम तैं जाननैं ।

अैसे छत्तीस रूप भेदनि विषैं आगै कहै है, तिनिका अंतर्भाव जाननां । पृथिव्यष्टक कहिए सात रत्नप्रभादिक नरक पृथ्वी, बहुरि एक मोक्ष पृथ्वी । बहुरि मेरू कहिए पाँचमेरू । बहुरि कुल पर्वत कहिए पाँचूं मेरु संबंधी-तीस कुलाचल, बहुरि द्वीप कहिए—जंबूद्वीपादिक समस्त द्वीप ।

बहुरि वेदिका कहिए—जहाँ-जहाँ कोट वेदिका वर्णन करो है, ते समस्त वेदी । बहुरि विमान कहिये कल्पवासीनिके तथा ज्योतिषीनिके विमान । वहुरि भवन कहिये भवनवासीनिके भवन ।

जम्बू-शाल्मलीद्रुमेष्वाकार-मानुषोत्तर-विजयार्ध-काञ्चनगिरि-दधिमुखाञ्जन-रतिकर-वृषभगिरि-सामान्यपर्वत-स्वयंभु-नगवरेन्द-वक्षार-रुचक-कुण्डल-वर-दंष्ट्रा-पर्वतरत्नाकरादयोऽन्तर्भवन्तीति ॥ १२ ॥

अप्कायिकभेदप्रतिपादनार्थमाह—

ओसाय हिमग महिगा [1]हरदणु सुद्धोदगे घणुदगे य ।
ते जाण आउजीवा जाणित्ता परिहरेदव्वा ॥ १३ ॥

ओसाय—अवश्यायजलं रात्रिपश्चिमप्रहरे निरभ्रावकाशात् पतितसूक्ष्मोदकं । **हिमग**—हिमं प्रालेयं जलबन्धकारणं । **महिमा**—महिका धूमाकारजलं कुहडरूपं । **हरद**[2]—हरत् स्थूलविन्दुजलं । **अणु**—अणुरूपं सूक्ष्मविन्दुजलं । **सुद्ध**—शुद्धजलं चन्द्रकान्तजलं । **उदगे**—उदकं सामान्यजलं निर्झराद्युद्भवं । **घणुदगे**—घनोदकं समुद्रह्लदघनवाताद्युद्भवं घनाकारं । अथवा **हरदणु**—महाह्लदसमुद्राद्युद्भवं । **घणुदए**—मेघादुद्भवं घनाकारं, एवमाद्यप्कायिकान् जीवान् जानीहि ततः किं ? **जाणित्ता**—ज्ञात्वा । **परिहरिदव्वाः**—परिहर्त्तव्याः पालयितव्याः सरित्सागर-ह्रद-कूप-निर्झर-घनोद्भवाकाशज-हिमरूप-धूमरूप-भूम्युद्भव-चन्द्रकान्तजघनवाताद्यप्कायिका अत्रैवान्तर्भवन्तीति ॥ १३ ॥

बहुरि प्रतिमा कहिए अकत्तृम प्रतिबिंब । बहुरि तोरणद्वार, स्तूप, चैत्यवृक्ष जहां-जहां वर्णन कीये, ते समस्त । बहुरि जंबू-शाल्मलीकौं आदि देकरि पांचू मेरु संबंधी दस कुरु वृक्ष, बहुरि च्यारि इष्वाकार पर्वत, बहुरि मानुषोत्तर पर्वत, बहुरि पंचमेरु संबंधी एक सौ सतरि विजयार्द्ध पर्वत, बहुरि कांचनगिरि, बहुरि नंदीश्वर द्वीप संबंधी सोलह दधिमुख पर्वत, च्यारि अंजनगिरि पर्वत, बत्तीस रतिकर पर्वत । बहुरि पांचू मेरु संबंधी एक सौ सतरि वृषभाचल पर्वत । बहुरि सामान्य पर्वत, स्वयंभू रमणद्वीप सम्बन्धी नगवरेंद्र पर्वत । बहुरि पाँचू मेरु सम्बन्धी अस्सी वक्षारगिरि पर्वत । बहुरि च्यारि रुचकवर गिरि, च्यारि कुण्डलवरगिरि, बहुरि वरदंष्ट्रा (गजदंत) पर्वत, बहुरि रत्नाकर (रत्नों की खान) आदिक—इनि सबनिका छत्तीस भेद रूप पृथ्वी कै विषै अंतर्भाव जाननां ॥ १२ ॥

आगैं अप्काय का भेद प्रतिपादन कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—अवश्याय कहिए रात्रि कै पिछलै पहर बादला रहित आकाशतैं पड्या सूक्ष्म-जल रूप ओस, बहुरि हिम कहिए (ओलेरूप) प्रालेय (घन) जल-बंध का कारण, बहुरि महिका कहिए धूवांकै आकार जल-कोहडा (कोहरा) रूप, बहुरि हरत् कहिए स्थूल बिंदू रूप जल, बहुरि **अणु** कहिए सूक्ष्म बिंदु रूप जल, बहुरि शुद्ध कहिए चंद्रकांत मणि तैं उपज्यो शुद्ध जल, बहुरि उदय (उदक) कहिये सामान्य जल निर्ज्जराणां आदिकतैं उत्पन्न भयो । बहुरि घनोदक कहिये समुद्र दह घनवात इत्यादिकतैं उत्पन्न भयो घनाकार अथवा हरदणु कहियै महादह समुद्रादिकतैं उत्पन्न भयो, घनोदक कहिये मेघादिकतैं उत्पन्न भयो घनाकार इत्यादिक अप्कायिक जीवनि कौ जानहु । इनकौ जानकरि परिहार करणे पालनां करणे । बहुरि हरित् कहिए नदीनिका जल, सागर कहिए समुद्र का जल, ह्रद कहिए दहन (सरोवरों) का जल, कूप कहिये कुवानि (कुओं) का जल, निर्झरा (झरना) कहिये नीजरणेनिके

१. २. क हरिद ।

तेजःकायिकभेदप्रतिपादनायाह—

इंगाल जाल अच्ची मुम्मुर सुद्धागणीय अगणी य ।
ते जाण तेउजीवा जाणित्ता परिहरेदव्वा ।। १४ ।।

इंगाल—अंगाराणि ज्वलितनिर्धूमकाष्ठादीनि । **जाल**—ज्वाला । **अच्चि**—अर्चिः प्रदीपज्वालाद्यग्रं । **मुम्मुर**—मुर्मुरं कारीषाग्निः । **सुद्धागणीय**—शुद्धाग्निः वज्राग्निर्विद्युत्सूर्यकान्ताद्युद्भवः । **अगणीय**—सामान्याग्निर्धूमादिसहितः । वाडवाग्निनन्दीश्वरधूमकुण्डिकामुकुटानलादयोऽत्रैवान्तर्भवन्तीति । तानेतांस्तेजःकायिकजीवान् जानीहि ज्ञात्वा च परिहरणीया एतदेव ज्ञानस्य प्रयोजनमिति ।। १४ ।।

वायुकायिकस्वरूपमाह—

वादुब्भामो उक्कलि मंडलि गुंजा महा घण तणू य ।
ते जाण वाउजीवा जाणित्ता परिहरेदव्वा ।। १५ ।।

वादुब्भामो—वातः सामान्यरूपः उद्भ्रमो भ्रमन्नूर्ध्वं गच्छति । **उक्कलि**—उत्कलिरूपो । **मण्डलि**—पृथिवीं लग्नो भ्रमन् गच्छति । **गुंजा**—गुंजन् गच्छति । **महा**—महावातो वृक्षादिभंगहेतुः । **घणतणूय**—घनोदधिः घननिलयस्तनुवातः, व्यञ्जनादिकृतो वा तनुवातो लोक-

---

जल, बहुरि घनोद्भव कहिए मेघका जल, बहुरि आकाश तैं उत्पन्न भया, बहुरि हिम रूप, बहुरि धूम रूप, बहुरि भूमि तें उत्पन्न भया, बहुरि चन्द्रकांत मणितैं उत्पन्न भया, बहुरि घनवातादिक रूप जे अप्कायिक हैं। ते याही में अंतर्भाव जांननैं ।।१३।।

आगैं तेजस्कायनि कै भेदनि के प्रतिपादन कैं अर्थि कहैं हैं—

अर्थ—अंगार कहिये प्रज्वजित[1] निर्धूम भये काष्ठादिक, ज्वाला कहिए हुल (आग की लपटें), अर्चि कहिए दीपक ज्वालादिक की लोय (लौ) का शिरा मुर्मुर कहिए कारीष-अग्नि (कंडे की अग्नि), बहुरि शुद्धाग्नि कहिए वज्राग्नि, बीजली सूर्यकांतादिक तैं उत्पन्न भया। बहुरि अग्नि कहिए सामान्य अग्नि-धूमादिक सहित। बहुरि वाडवाग्नि, नंदीश्वर—धूमकुंडिका (नंदीश्वर के मंदिरों में रखे हुए धूमघटों की अग्नि), मुकुडिका मुकुटानल (अग्निकुमार देव के मुकुट से उत्पन्न अग्नि)—इत्यादिक का याही मैं अंतर्भाव जाननां। ते ये तेजस्कायिक जीव हैं, तिनहि जानहु। जानिकरि इनिका परिहार करनां। जानने का ये ही प्रयोजन हैं ।। १४ ।।

आगैं वायुकायिक का स्वरूप कहै हैं—

अर्थ—वात कहिए सामान्य रूप पवन। बहुरि ऊद्भ्रम कहिए भ्रमतां संता ऊंचा जाय, ऐसा पवन। बहुरि उत्कलि कहिये बहुत रज सहित वाजै (लहरों) ऐसा पवन। बहुरि मण्डलि कहिए पृथ्वी विषैं लग्या हुआ भ्रमता चल्या जाय—ऐसा पवन। बहुरि गुंजा कहिए गुंजता चालै ऐसा पवन। बहुरि महान् कहिए महापवन—वृक्षादिक के भंग का कारण। बहुरि घन

1. अ, ज्वालित।

प्रच्छादकः । उदरस्थपंचवात—विमानाधार—भवनस्थानादिवाता अत्रैवान्तर्भवन्तीति । तानेतान् वायुकायिकजीवान् जानीहि ज्ञात्वा च परिहारः कार्यः ॥ १५ ॥

वनस्पतिकायिकार्थमाह—

मूलग्गपोरबीजा[1] कंदा तह खंधबीजबीजरुहा[2] ।
संमुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥ १६ ॥❀

मूल—मूलबीजा जीवा येषां मूलं प्रादुर्भवति ते च हरिद्रादयः । **अग्ग**—अग्रबीजा जीवाः कोरंटकमल्लिकाकुब्जकादयो येषामग्रं प्रारोहति । **पोरबीया**—पौरबीजजीवा इक्षुवेत्रादयो येषां पोरप्रदेशः प्रारोहति । **कंदा**—कन्दजीवाः कदलीपिण्डालुकादयो येषां कन्ददेशः प्रादुर्भवति । **तह**—तथा । **खंधबीया**—स्कन्धबीजजीवाः शल्लकीपालिभद्रकादयो येषां स्कन्धदेशो रोहति । **बीयबीया**—बीजबीजा जीवा यवगोधूमादयो येषां

कहिए घनोदधि वातवलय । तनु कहिए तनु वात अथवा बीजणादिक[3] करि कीया हुवा पवन। बहुरि लोक का पूच्छादक वात वलय, बहुरि उदर विषैं तिष्टते पंचवायु, बहुरि विमाननि का आधार, बहुरि भवन—स्थानादिक पवन—इनही मैं अंतर्भूत हैं। ते ए वायुकायिक जीव हैं, तिनहि जानहु । बहुरि जानिकरि इनिका परिहार करनां ॥१५॥

आगैं वनस्पतिकायिक जीवनिका स्वरूप कहै हैं—

अर्थ—वनस्पति दोय प्रकार हैं—१. प्रत्येक, २. साधारण । तहाँ एक शरीर मैं एक जीव होय सो प्रत्येक कहिए । बहुरि एक शरीर मैं अनंत जीव होय सो साधारण कहिये । सो साधारण कूं निगोद संज्ञा है । सो बादर-सूक्ष्म भेदरूप हैं। जिस प्रत्येक वनस्पति कै आश्रय बादर निगोद है सो सप्रतिष्ठित—प्रत्येक कहिए । तिनहि का नाम अनन्तकाय है। बहुरि जिनिकै आश्रय निगोद नांहो ते अप्रतिष्ठित—प्रत्येक वनस्पति कहिए ।

सो यहां प्रत्येक-वनस्पति का वर्णन करै है—मूल, अग्र, पोर, कंद, स्कंध, बीज—इनि मूलादिकनितैं उपजै अथवा इनिका अभाव होतै संतै भी संमूर्छिन उपजै ते प्रत्येक वनस्पति कहिए । ते हो बादर निगोदकरि आश्रित होय तो अनन्तकाय कहिए । सो हो कहिए हैं—

जिनिका मूल कहिए जड़ सो ही उगै अैसो हलदी इत्यादिक ते मूलबीज कहिए । २. बहुरि जिनिका अग्र कहिए अणी ऊगै, अैसे कोरंटक, मल्लिका, कुब्जक—इत्यादिक ते अग्रबीज कहिए । ३. बहुरि पोर कहिए पेर (पर्व-गांठ) वाका प्रदेश ऊगै—अैसे इक्षु, वेंत इत्यदिक ते पोर-बीज कहिए । ४. बहुरि जिनिका कंद का देश ही ऊगै—अैसे केलि (कदली) पिंडालू इत्यादिक ते कंद बीज कहिए । ५. बहुरि जिनिका स्कंध देश ही ऊगै, अैसे सल्लकी[4] पारिभद्रक[5] इत्यादिक ते स्कंध बीज कहिए ।

---

१. अ ब में बीया तथा २. बीयबीयारुहा पाठ है । ३. अ प्रति में—विज-विजणानादिक । ४. अ-सच्छकी ।

❀ मूलाचार गाथा नं० ५/९, १३, १४, १५, १६ की धवला भाग १, पुस्तक १, सूत्र ४२ पृ० २७४-७५ की क्रमशः गाथा सं० १४९ से १५३ तक की गाथायें प्रायः समान हैं ।

क्षेत्रोदकादिसामग्र्याः प्ररोहः। **सम्मुच्छिमाय**—सम्मूर्च्छिमाश्च मूलाद्यभावेऽपि येषां जन्म। **भणिया**—भणिताः कथिताः। क आगमे जिनवरैः। **पत्तेया**—प्रत्येकजीवाः पूगफल-नालिकेरादयः। **अणंतकाया य**—अनन्तकायाश्च स्नुहीगुडूच्यादयः, ये छिन्ना भिन्नाश्च प्रारोहन्ति, एकस्य यच्छरीरं तदेवानन्तानन्तानां साधारणाहारप्राणत्वात् साधाराणानां, एकमेकं प्रति प्रत्येकं पृथक्कायादयाः शरोरं येषां ते प्रत्येककायाः। अनन्तः साधारणः कायो येषां तेऽनन्तकायाः। एते मूलादयः सम्मूर्च्छिमाश्च प्रत्येकानन्तकायाश्च भवन्ति ॥ १६ ॥

[1]अवयविरूपं व्याख्यायावयवभेदप्रतिपादनार्थमाह। अथवा वनस्पतिजातिर्द्विप्रकारा भवतीति वोजोद्भवा सम्मूर्च्छिमा च तत्र वीजोद्भवा सम्मूर्च्छिमा च तत्र वोजोद्भवा मूलादिस्वरूपेण व्याख्याता। सम्मूर्च्छिमायाः स्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

कंदा मूला छल्लो खंधं पत्तं पवाल पुप्फफलं।
गुच्छा गुम्मा वल्ली तणाणि तह पव्व काया य ॥ १७ ॥

कन्दा—कन्दकः सूरणपद्मकन्दकादिः। **मूला**—मूलं [2]पिण्डाधः प्ररोहकं हरिद्रकार्द्रकादिकं। **छल्ली**—त्वक् वृक्षादिवहिर्वल्कलं शैलयुतकादिकं च। **खंधं**—स्कन्धः [3]पिंडशाखयोरन्तर्भागः पालिभद्रादिकाः। **पत्तं**—पत्रं अंकुरोर्ध्वावस्था। **पवालू**—प्रवालं पल्लवं पत्राणां पूर्वावस्था। **पुप्फ**—पुष्पं फलकारणं। **फलं**— पुष्पकार्यं पूगफलतालफलादिकं। **गुच्छा**—गुच्छो बहूनां समूह एककालीनोत्पत्तिः जातिमल्लिकादिः। **गुम्म**—गुल्मं करंजकंथारिकादिः। **वल्ली**—वल्लरो श्यामा लतादिका। **तणाणि**—तृणानि। **तह**—तथा। **पव्व**—पर्वं ग्रंथिकयोर्मध्यं वेत्रादि। **काया**—

---

६. बहुरि जिनिका बीज हो क्षेत्र, जल इत्यादिक सामग्रो तैं उपजै जव, गौहूँ (जौ, गेहूँ) इत्यादिक ते बीज-बोज कहिए।

बहुरि मूलादिक का अभावनैं हौतैं भी जिनिका जन्म होय ते संर्मूच्छिम कहिए। ते ये प्रत्येक जोव सुपारी, नारेल (नारियल) इत्यादिक जिनवरदेव नैं आगम मैं कहैं हैं।

बहुरि थोहरि गिलोय (गुरच) इत्यादिक जे छेदे-भेदे भो उगि आवै ते अनन्तकाय है। अनन्त कहिये साधारण है काय जिनिकै ते अनन्तकाय कहिए। एते मूल आदिक बहुरि सम्मूर्छिन ते प्रत्येक बहुरि अनन्तकाय हैं।

आगैं अवयवो का स्वरूप कहि करि अवयवन के भेद का प्रतिपादन कै अर्थि कहैं हैं अथवा वनस्पति जाति दोय प्रकार है—१. बोज तैं उत्पन्न भई ऐसी, बहुरि . संम्मूर्छिमा। तहां बीजतैं उपजी वनस्पति मूलादिक स्वरूपकरि कहै है ॥१६॥

अवै संम्मूर्छिम वनस्पति का स्वरूप का प्रतिपादन कै अर्थि कहै है—

अर्थ—कंद कहिए—सूरण, पद्मकंद आदिक, बहुरि मूल कहिए पिंड तै अधः ऊगनैं वाले हलद (हल्दी), आदा (अदरक) इत्यादिक, बहुरि त्वक् कहिए वृक्षादिक का बारिला वकल (बाहरी छाल) वा सैलयुतकादिक, बहुरि स्कंध कहिए—पिंड कै अरसाषा (शाखा) के वोचिपारिभद्रादिक[3], बहुरि पत्र कहिए अंकूरे की ऊर्ध्वा (बाद की) अवस्था। बहुरि प्रवाल कहिए पल्लव (कोंपल)

---

१. क अवश्यवरूपं। २. ३. क पेडा०।

३. आप्टे के संस्कृत हिन्दी कोश (पृष्ठ ६०८) में पारिभद्र का अर्थ है—मूंगा, देवदारू, सरल और नीम का वृक्ष।

कायः स प्रत्येकमभिसम्बध्यते कन्दकायो मूलकाय इत्यादि, एते सम्मूर्छिमाः प्रत्येकानन्तकायाश्च मूलमादायपत्रमादायोत्पद्यन्त इत्यर्थः। अथवा मूलकायावयवः कन्दकायावयवः इत्यादि, पूर्वाणां बीजमुपादानं कारणं एतेषां पुनः पृथिवीसलिलादिकं उपादानकारणं। तथा च दृश्यते शृङ्गाच्छरः गोमयाच्छालूकं बीजमन्तरेणोत्पत्तिः पुष्पमन्तरेण च यस्योत्पत्तिः फलानां स फल इत्युच्यते, यस्य पुष्पाण्येव भवन्ति स पुष्प इत्युच्यते, यस्य पत्राण्येव न पुष्पाणि न फलानि स पत्र इत्युच्यते इत्यादि सम्बन्धः कर्तव्य इति ॥ १७ ॥

सेवाल पणग[1] केण्णग कवगो कुहणोय बादरा काया।
सव्वेवि सुहुमकाया सव्वत्थ जलत्थलागासे❀ ॥ १८ ॥

सेवाल—शैवलं उदकगतकायिका हरितवर्णी। **पणग**—पणकं भूमिगतं शैवलं इष्टकादिप्रभवा कायिका। **केण्णग**—आलम्बकछत्राणि शुक्लहरितनीलरूपाणि अपस्कारोद्भवानि। **कवगो**—शृंगालम्बकच्छत्राणि जटाकाराणि। **कुहणो य**—आहारकांजिकादिगतपुष्पिका। **बादरा काया**—स्थूलकायाः अन्तर्दीपकत्वात् सर्वैरतीतपृथिव्यादिभिः सह सम्बध्यते सर्वेपि पृथिवीकायिकादयो वनस्पतिपर्यन्ता व्याख्यातप्रकाराः स्थूलकाया

पत्रनिकी पूर्वावस्था। बहुरि पुष्प कहिए फल का कारण। बहुरि फल कहिए पुष्प का कार्य—पूगफल तालफलादिक। बहुरि गुच्छ कहिए बहुतनि का समूह, एक काल विषैं है उत्पत्ति जाकी ऐसे जाति मल्लिकादि। बहुरि गुल्म कहिए करंज, कंथारिकादिक बहुरि बल्ली कहिए बल्लरी, श्यामा लतादिक, बहुरि तृण कहिए तिणगा, बहुरि पर्व कहिए दोऊ गांठिनि के बोचि वेत्रादिक। बहुरि काय शब्द का एक एक प्रति सम्बन्ध करणा कंदकाय, मूलकाय इत्यादिक—एतै संमूर्छिम प्रत्येक वा अनन्तकायक हैं, मूलकूं उपादान करि उपजै हैं। बहुरि पत्रकूं उपादान करि उपजैं हैं—इत्यादिक अर्थ जाननां। अथवा मूलकाय का अवयव, कंद काय का अवयव—इत्यादिक पूर्वे कहे जे मूलादिक तिनिका बीज उपादान कारण है। बहुरि इनिका पृथ्वी, जल आदिक उपादान कारण हैं। तैसें ही देखिए हैं, सींगतैं सर उपजै है। गोबर तैं शालूक कहिए कमूल का कंदबीज बिना उत्पत्ति देखिये हैं। पुष्प बिना जाकै फलनि की उत्पत्ति होय सो फल कहिए, जाकै फूल ही होय सो पुष्प कहिए। जाकै पत्र ही होय पुष्पफलनाही होय सो पत्र कहिए—इत्यादिक सम्बन्ध करना ॥१७॥ बहुरि कहै है—

अर्थ—शैवाल कहिए वर्षा जल विषैं प्राप्त काई। बहुरि पनक कहिये ईंट इत्यादिक तैं उत्पन्न भई भूमिगत काई। बहुरि केण्णग कहिये जोड़ा तैं उत्पन्न भई शुक्ल, हरित नील रूप आलंव छत्र। बहुरि कवगो कहिए जटाकार शृंगालंवक (सींग में उत्पन्न) छत्र, बहुरि कुहणो कहिए आहार, कांजी इत्यादिक तैं उत्पन्न भई, पुष्पिका कहिए ऊलणि (फफूंद)—ये सर्व वादरकाय जाननैं।

---

१. अ, ब पणय। ❀ इस गाथा के बाद निम्नलिखित गाथा फलटन से प्रकाशित प्रति में अधिक है—

जलकंजियाण मज्झे इट्टय वम्मीद सिंगमज्झेय।
सेवाल पणग केणुग कवगो कुहणो जहाकमं होंति ॥ १९ ॥

इति । सूक्ष्मकायप्रतिपादनार्थमाह । **सव्वेवि**—सर्वेपि पृथिव्यादिभेदा वनस्पतिभेदाश्च । **सुहुमकाया**—सूक्ष्मकायाश्चांगुलासंख्यातभागशरीराः । **सव्वत्थ**—सर्वत्र सर्वस्मिन्लोके । **जलत्थलागासे**—जले स्थले आकाशे च । **एते**—पृथिव्यादयो वनस्पतिपर्यन्ता वादरकायाः सूक्ष्मकायाश्च भवन्ति, किंतु पृथिव्यष्टकविमानादिकमाश्रित्य स्थूलकायाः, सूक्ष्मकायाः पुनः सर्वत्र जलस्थालाकाशे ॥ १८ ॥

सर्वत्रं साधारणानां स्वरूपप्रतिपादनायाह—

गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं ।
साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥ १९ ॥

गूढसिरसंधिपव्वं—गूढा अदृश्यमानाः शिराः, सन्धयोऽङ्गबन्धा पर्वाणि ग्रन्थयो यस्य तद्गूढशिरा सन्धिपर्व । **समभंगं**—समः सदृशो भंगः छेदो यस्य तत्समभंगं त्वग्रहितं[1] । अहीरुहं—न विद्यते हीरुकं बालरूपं यस्य तदहीरुहं पुनः सूत्राकारादिवर्जितं मंजिष्ठादिकं । **छिन्नरुहं**—छेदेन रोहतीति च्छेदरुहं छिन्नो भिन्नश्च यो रोहमागच्छति । **साहारणं सरीरं**—तत्साधारणं सामान्यं शरीरं साधारणशरीरं । **तव्विवरीयं (च)**—तद्विपरीतं च साधारणलक्षणविपरीतं । **पत्तेयं**—प्रत्येकं प्रत्येकशरीरं ॥ १९ ॥ ❀

यह पद 'अन्त दीपक' है । सौ सर्व जे पृथ्वीकाय तैं लगाय वनस्पतिकाय पर्यंत व्याख्यान कीये ते स्थूलकाय जाननें । बहुरि जे सर्व ही पृथ्वीकाय तें लगाय वनस्पतिकाय पर्यन्त सूक्ष्मकाय है । अंगुल कै असंख्यात वैं भाग जिनिका शरीर है ते सर्वलोक मैं, जल मैं, थल मैं, आकाश मैं—सर्वत्र हैं ॥१८॥

आगै साधारण जीवनिका स्वरूप प्रतिपादन कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—गूढ कहिए अदृश्यमान हैं शिरा (बहिःस्नायु) जिनिको, बहुरि गूढ है संधि कहिए अंगबंध जिनिका, बहुरि गूढ है पर्व कहिए ग्रन्थि जिनिको, बहुरि सम कहिए सदृश है, भंग कहिये छेद जिनका अैसा त्वचा रहित होय, बहुरि अहीरुहं कहिए नहीं विद्यमान है हीरुक कहिए वाल जिनिकैं, बहुरि सूत्राकारादि करि वर्जित मंजिष्टादिक, बहुरि छिन्नरुह कहिये छेद्या हुआ, भेद्या हुआ भीं जो ऊगै—अैसे जे होय तो साधारण शरीर कहिये । इस लक्षणतैं विपरीत होय सौ प्रत्येक शरीर कहिए ॥ १९ ॥

---

१. क °हितं 'महीरुहं पुनः' ।

❀निम्नलिखित गाथा फलटन से प्रकाशित प्रति में अधिक है ।

वीजे जोणीभूदे जीवो उव्वकमदि सो व अण्णो वा ।
जा विय लसुणादीया पत्तेया पढमदाए ते ॥ २२ ॥

अर्थात् जिस योनिभूत बीज में वही जीव या कोई अन्य जीव आकर उत्पन्न हो वह और लशुन आदि वनस्पति प्रथम अवस्था में अप्रतिष्ठित प्रत्येक रहते हैं । अर्थात् मूल कन्द आदि सभी वनस्पतियाँ जो कि सप्रतिष्ठित प्रत्येक मानी गई हैं वे भी अपनी उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अप्रतिष्ठित प्रत्येक ही रहती हैं ।

किंभूतमिति पृष्टेऽत्र उत्तरमाह—

होदि वणप्फदि वल्ली रुक्खतणादी[1] तहेव एइंदी ।
ते जाण हरित[2]जीवा जाणित्ता परिहरेदव्वा ॥ २० ॥

होदि—भवति । **वणप्फदि**—वनस्पतिः फलवान् वनस्पतिर्ज्ञेयः । **वल्ली**—वल्लरी लता । **रुक्ख**—वृक्षः पुष्पफलोपगतः । **तणादी**—तृणादीनि । **तहेव**—तथैव । **एइंदी**—एकेन्द्रियाः । अथवा साधारणानामेतद्विशेषणं पूर्वं प्रत्येककायानां एते मूलादिबीजाः कन्दादिकायाः साधारणशरीराः प्रत्येककायाश्च सूक्ष्माः स्थूलाश्च ये व्याख्यातास्तान् हरितकायान् जानीहि तथा[3] एतेऽन्ये च पृथिव्यादाश्चैकेन्द्रिया ज्ञातव्याः परिहर्तव्याश्चान्तदीपकत्वात् । कथमेते जीवा इति चेन्नैषदोषः, आगमादनुमानात्प्रत्यक्षाद्वा, आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञास्तित्वादा । सचेतना एते [4]संज्ञादिभीरागमे निरूप्यमाणत्वात्, सर्वत्वगपहरणे मरणात् उदकादिभिः साड्वलभावात्, स्पृष्टस्य [5]लज्जरिकादेः संकोचकारणत्वात्[6] वनितागण्डूषसेकाद्धर्षदर्शनात्[7] वनितापादताडनात्पुष्पांकुरादिप्रादुर्भावात्, निधानादिदिशि पादादिप्रसारणादिति ॥ २० ॥

त्रसस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

दुविधा तसा य उत्ता विगला सगलेंदिया मुणेयव्वा ।
बितिचउरिंदिय विगला सेसा सगलिंदिया जीवा ॥ २१ ॥

दुविहा—द्विविधा द्विप्रकाराः । **तसा**—त्रसा उद्वेजनबहुलाः । **वुत्ता**—उक्ताः प्रतिपादिताः । **विकला**—विकलेन्द्रियाः । **सकला**—

सो कैसा कहे ? सो कहे हैं—

अर्थ—वनस्पति, वेलि, वृक्ष, तृण इत्यादिक रूप है सो ए 'सर्वजीव' एकेन्द्रिय जानने । ए जे व्याख्यान कीए हरितकाय प्रत्येक-साधारण तिनहि जानहु । बहुरि जानिकरि परिहार करहु ।

इहां कोउ पूछै—ये एकेंद्रिय जीव कैसे कहे हैं ? ताका समाधान आगम-प्रमाणतैं कहैं हैं, तथा अनुमान तैं सिद्ध है, तथा प्रत्यक्षतैं सिद्ध है । इनिके आहार, भय, मैथुन, परिग्रह-संज्ञा का अस्तित्व है । तातैं ए सचेतन हैं । अैसा आगम मैं निरूपण कीया है । सर्व त्वचा का अपहरण होतैं इनका मरण है, जल सींचनेंतैं अंकुरित होय हैं—यातैं आहार-संज्ञा जानिए है ।

बहुरि लजालू (लाजवंती) इत्यादिक का स्पर्श कीए संकोच कूं प्राप्त होय है, तातैं भय संज्ञा जानिए ।

बहुरि स्त्री के मुख का जल का सोचनैं तैं, प्रफुल्लित हौनैं तैं, तथा स्त्री के पादताडनैं तैं पुष्पांकुरादिक होनैं तैं मैथुन संज्ञा जानिए हैं । बहुरि निधान (धन के खजाने) आदिक की दिशा कों पाद (जड़) आदिक प्रसारण करने तैं परिग्रह संज्ञा जानिए है । अैसे एकेंद्रिय हैं, ते जीव जानिए है ॥ २० ॥

आगैं त्रस के स्वरूप का प्रतिपादन के अर्थि कहै है—

अर्थ—त्रसकायिक जीव हैं, ते दोय प्रकार कहै है—१. विकलेन्द्रिय, २. सकलेन्द्रिय—अैसे दोय प्रकार जाननैं । तहां

---

१. अ, तणाही । २. अ, ब हरिद । ३. क तथा हिएताम्येवष्ट° । ४. क सदादि° । ५. क लज्जिरि° ।
६. क °णात् । ७. क °कादवष्मर्द° ।

सकलेन्द्रियाः। इन्द्रियशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। **मुणेदव्वा**—ज्ञातव्याः। **वितिचउरिंदिय**—द्वे त्रीणि चत्वारीन्द्रियाणि येषां ते द्वित्रिचतुरिन्द्रिया द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाश्चेति। **विगला**—विकला विकलेन्द्रिया एते। **सेसा**—शेषाः सकलेन्द्रियाः सकलानि पूर्णानीन्द्रियाणि येषां ते सकलेन्द्रियाः पंचेन्द्रिया इत्यर्थः। **जीवा**—जीवा ज्ञानाद्युपयोगवन्तः। द्विप्रकारा विकलेन्द्रियसकलेन्द्रियभेदेन ॥ २१ ॥

के विकलेन्द्रियाः, के सकलेन्द्रिया इत्यत आह—

संखो गोभी भमरादिया[1] दु विगलिंदिया[2] मुणेदव्वा।
सकलिंदिया[3] य जलथलखचरा सुरणारयणरा य ॥ २२ ॥

संखो—शंख। **गोभी**—गोपालिका। **भमर**—भ्रमरः। आदिशब्दः प्रत्येकभिसम्बध्यते, शंखादयो भ्रमरादयः। आदिशब्देन शुक्ति-क्रामि-वृश्चिक-मत्कुण-मक्षिका पतंगादयः परिगृह्यन्ते। एते **विगलेंदिया**—विकलेन्द्रियाः। **मुणेदव्वा**—ज्ञातव्याः। शेषाः पुनः **सकलिंदिया**—

वेइंद्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिंद्रिय—अैसें विकलैंद्रिय तीन प्रकार जाननां। बहुरि शेष जीव है तैं सकलैंद्रिय जाननैं।

स्पर्शन, रसन—अैसे दोय जिनिके इंद्रिय तै वेइन्द्रिय कहिए। बहुरि स्पर्शन, रसन, घ्राण–अैसे तीन हैं इन्द्रिय जिनिकैं ते तेइंद्रिय कहिए। बहुरि स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु—अैसे च्यारि हैं इन्द्रिय जिनिकै ते चतुरिन्द्रिय कहिए। इनिकैं सकल कहिए पूर्ण पांचू इन्द्रिय नांही तातैं इनिकूं विकलैंद्रिय कहिए।

बहुरि सकल कहिए—संपूर्ण, स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र—पांचूं हैं इन्द्रिय जिनिकैं ते सकलेंद्रिय कहिए—पंचेन्द्रिय जाननैं। अैसे ज्ञानादिक उपयोग सहित जे त्रस जीव हैं—ते दोय प्रकार कहे हैं ॥ २१ ॥

आगैं विकलेन्द्रिय–सकलेंद्रिय जीव कौन से हैं ? सो कहै हैं—

अर्थ—१. शंख नाम जीवादि शब्द तैं शुक्ति कहिए सीप नामा जीव, कृमि कहिए लट इत्यादिक जीव, जिनिकै स्पर्शन, रसन दोय इन्द्रिय हैं, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र—तीनू इन्द्रिय नांही हैं—ते वेइन्द्रिय जीव—विकलैंद्रिय जाननैं। यह विकलैंद्रिय का प्रथम भेद हैं।

२. बहुरि गोभी कहिए गोपालिका नामा जीव। आदि शब्द तैं वृश्चिक कहिए बीछू, मत्कुण कहिए, खटमल—इत्यादिक जीव जिनिकै-स्पर्शन, रसन, घ्राण—तीनि इन्द्रिय हैं, चक्षु, श्रोत्र दोय इन्द्रिय नांही हैं—ते तैंइन्द्रिय जीव जाननैं। यह विकलेंद्रिय का दूसरा भेद है।

३. बहुरि भ्रमर नामा जीव आदि शब्दतैं मक्षिका कहैं। ए मांखी, पतंग इत्यादिक जीव, जिनिकै स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु—च्यारि इन्द्रिय हैं, श्रोत्र एक इन्द्रिय नाही है, ते चउरिन्द्रिय जीव जाननैं। यह विकलेंद्रियादि का तीसरा भेद है। ए एकेन्द्रियादिक चउरिंदिय पर्यंत जीव हैं ते सर्व्व तिर्यंच गति विषैं जाननैं।

१. अ, ब–भमरादिआ। २. अ, ब–विकलेंदिया। ३. अ, ब–सकलेंदिया।

सकलेन्द्रियाः । के ते **जलथलखचरा**—जले चरन्तीति जलचराः मत्स्यमकरादयः, स्थले चरन्तीति स्थलचराः सिंहव्याघ्रादयः, खेचरन्तीति खचरा हंससारसादयः । **सुरणारयणरा य**—सुरा देवा भवनवासिवानव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिनः, नारकाः सप्तपृथिवीनिवासिनो दुःखबहुलाः, नरा मनुष्या इति ॥ २२ ॥

पुनरपि भेदप्रकरणायाह—

कुलजोणिमग्गणा विय णादव्वा सव्वजीवाणं ।
णाऊण सव्वजीवे णिस्संका होदि कादव्वा ॥ २३ ॥

कुल—कुलं जातिभेदः । **जोणि**—योनिरुत्पत्तिकारणं । कुलयोन्योः को विशेष इति चेन्न, वटपिप्पलकृमिशुक्तिमत्कुणपिपीलिकाभ्रमरमक्षिकागोश्वक्षत्रियादि कुलं । कन्दमूलाण्डगर्भरसस्वेदादिर्योनिः । **मग्गणावि य**—मार्गणाश्च गत्यादयः । **णादव्वा**—ज्ञातव्याः । **सव्वजीवाणं**—सर्वजीवानां पृथिव्यादीनां । **णाऊण**—ज्ञात्वा । **सव्वजीवे**—सर्वजीवान् । **णिस्संका**—निःशंका संदेहाभावः । **होदि**—भवति । **कादव्वा**—कर्तव्या । कुलयोनिमार्गणाभेदेन सर्वजीवान् ज्ञात्वा निःशंका भवति कर्तव्येति ॥ २३ ॥

---

४. बहुरि पंचेन्द्रिय जीव है, तिनिमैं च्यांरू गति हैं । जे तिर्यंच हैं त तीन प्रकार हैं—जल, स्थलचर, खचर—अैसे तीनि प्रकार जाननैं । तहां जलमैं विचरै, चरै—अैसे मच्छ, मगर इत्यादिक जलचर तिर्यंच जीव जाननैं । बहुरि स्थल कहिए पृथ्वी पर्वतादिक तिनि विषै चरै-विचरै, अैसे, सिंह वघेरा इत्यादिक स्थलचर तिर्यंच जीव जाननैं । बहुरि खग कहिए आकाश, ता विषैं चरै-विचरै—अैसे हंस, सारस इत्यादिक खचर तिर्यंच जीव जाननैं । अैसे तीन प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच कहैं, बहुरि सुर जे भवनवासी तथा वान-व्यंतर तथा ज्योतिष्क तथा कल्पवासी—अैसे च्यारुं निकाय के देव हैं-ते सर्व पंचेन्द्रिय जाननैं । बहुरि सातूं नरकपृथ्वी के संबंधी दुःख है बहुल जिनिकै, अैसे जे नारकी जीव ते सर्व पंचेन्द्रिय जाननैं । बहुरि नरक कहिए मनुष्य भोगभूमि के तथा कुभोगभूमि के तथा कर्मभूमि कै पर्याप्त तथा कर्मभूमि मैं अपर्याप्त संमूर्च्छन हैं ते सर्व पंचेन्द्रिय जानने ॥२२॥

आगैं इन्हीं जीवनिका भेद निरूपण कै अर्थि कहै है—

अर्थ—सर्व जीवनि के कुल, योनि, मार्गणा हैं, ते जाननैं योग्य हैं । इनिकूं जानिकरि सर्व्व जीवनि कै विषै संदेह रहित श्रद्धान करनां । कुल, नाम जाति भेद का है । जैसे एकेन्द्रिय में बड़, पोपल इत्यादिक जाति भेद हैं । वेइंद्रिय मैं लट, सोप इत्यादिक जाति भेद हैं तेइंद्रिय में खटमल, कीडो (चीटीं) इत्यादिक जाति भेद हैं । चउइंद्रिय मैं भ्रमर, मक्षिका इत्यादिक जाति भेद हैं । पंचेन्द्रिय मैं बैल, घोड़ा इत्यादिक जाति भेद हैं । तथा मनुष्यनि में क्षत्रियादिक जातिभेद हैं । ते ए सर्व्व कुल भेद जाननैं ।

बहुरि उत्पत्ति का जो कारण होय सो योनि कहिए । जैसे कंद विषैं उपजै हैं तिनि जीवनि की कंद योनि है । मूल बिषैं जे जीव उपजै है तिनिको मूल योनि है । अंड विषै जे जीव उपजै, तिनिकी अंडयोनि है । गर्भ विषै जे जीव उपजै तिनिकी गर्भ योनि है । रस विषै जे जीव उपजै तिनिकी रस योनि है । स्वेद विषैं जे जीव उपजैं तिनिकी स्वेद योनि हैं । इत्यादिक उत्पत्तिकारण जोनि जाननां । अैसे कुल-योनि का विशेष जाननां ॥२३ ॥

कुलभेदेन जीवान् प्रतिपादयन्नाह—

बावीस सत्ततिण्णि य सत्त य कुलकोडिसदसहस्साइं ।
णेया पुढविदगागणिवाऊकायाण पडिसंखा ॥ २४ ॥

बावीस—द्वाविंशतिः । **सत्त य**—सप्त च । **तिण्णि य**—त्रीणि च । **कुलकोडिसदसहस्साइं**—कुलानां कोट्यः कुलकोट्यः कुलकोटीनां शतसहस्राणि तानि कुलकोटीशतसहस्राणि । द्वाविंशतिः सप्त त्रीणि च सप्त च । **णेया**—ज्ञातव्याः । **पुढवि**—पृथिवीकायिकानां । **दग**—अप्पकायिकानां । **अगणि**—अग्निकायिकानां । **वाऊ**—वायुकायिकानां । पडिसंखा—परिसंख्या । पृथिवीकायानां कुलकोटिलक्षाणि द्वाविंशतिः । अप्कायानां कुलकोटिलक्षाणि सप्त । अग्निकायिकानां कुलकोटी लक्षाणि त्रीणि । वायुकायिकानां कुलकोटी लक्षाणि सप्त यथाक्रमेण परिसंख्या ज्ञातव्येति ॥ २४ ॥

कोडिसदसहस्साइं सत्तट्ठ व णव य अट्ठवीसं च ।
वेइंदियतेइंदियचउरिंदियहरिदकायाणं ॥ २५ ॥

कोटीशत सहस्राणि सप्ताष्टौ नवाष्टाविंशतिश्च यथासंख्यं द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियहरितकायानां । द्वीन्द्रियाणां कुलकोटी लक्षाणि सप्त । त्रींद्रियाणां कुलकोटी लक्षाण्यष्टौ । चतुरिंद्रियाणां कुलकोटी लक्षाणि नव । हरितकायानां कुलकोटी लक्षाण्यष्टाविंशतिरिति ॥ २५ ॥

अद्धत्तेरस बारस दसयं कुलकोडिसदसहस्साइं ।
जलचरपक्खिचउप्पयउरपरिसप्पेसु णव होंति ॥ २६ ॥

अर्धत्रयोदश, द्वादश, दश च कुलकोटीशतसहस्राणि जलचरपक्षिचतुष्पदां । उरसा परिसर्पन्तीति उरःपरिसर्पाः, गोधासर्पादयस्तेषामुरः परिसर्पाणां **णव होंति**—नव भवंति । जलचराणां मत्स्यादीनां कुलकोटीलक्षाण्यर्धत्रयोदश । पक्षिणां हंसभेरुण्डादीनां कुलकोटीलक्षाणि द्वादश । चतुष्पदां सिंहव्याघ्रादीनां कुलकोटी लक्षाणि दश । उरःपरिसर्पाणां कुलकोटी लक्षाणि नव भवन्तीति सम्बन्धः ॥ २६ ॥

बहुरि मार्गणा गत्यादिक जाननें, तहां कुलभेदकरि जीवनि का प्रतिपादन करता संता कहै—

अर्थ—पृथ्वीकायिक जीवनि के कुल बावीस लाख कोडि है। बहुरि अप्कायिक जीवनि के कुल सात लाख कोडि हैं। बहुरि वायुकायिक जीवनि के कुल सात लाख कोडि हैं—ऐसे इनि जीवनि के कुलनि की संख्या जाननी ॥ २४ ॥

बहुरि जीवनि के कुल कहै हैं—

अर्थ—वेंद्रिय जीवनि के कुल सात लाख कोडि हैं। तेन्द्रिय जीवनि के कुल आठ लाख कोडि हैं। चौन्द्रिय जीवनि के कुल नव लाख कोडि है, हरितकाय कहिये वनस्पति-कायिक जीवनि कै कुल अठाईस लाख कोडि है ॥ २५ ॥

बहुरि जीवनि के कुल कहै हैं—

अर्थ—जलचर तियँच मत्स्यादिकनिके कुल अर्द्ध त्रयोदश कहिये आधा है तेरवां जामैं ऐसे साढ़े बारह लाख कोडि है।

छव्वीसं पणवीसं चउदस कुलकोडिसदसहस्साइं ।
सुरणेरइयणराणं जहाकमं होइ णायव्वं ।। २७ ।।

षड्विंशतिः पंचविंशतिः चतुर्दश कुलकोटीशतसहस्राणि सुरनारकनराणां च यथाक्रमं भवन्ति ज्ञातव्यं । देवानां कुलकोटी लक्षाणि षड्विंशतिः नारकाणां कुलकोटी लक्षाणि पंचविंशतिः । मनुष्याणां कुलकोटीलक्षाणि चतुर्दश सर्वत्र यथाक्रमं भवन्ति ज्ञातव्यं यथोद्देशस्तथा निर्देशः क्रमानतिलङ्घनं वेदितव्यम् ।। २७ ।।

सर्वकुलसमासार्थं गाथोत्तरेति—

एया य कोडिकोडी णवणवदीकोडिसदसहस्साइं ।
पण्णासं च सहस्सा संवग्गेणं कुलाण कोडीओ ।। २८ ।।

एका कोटीकोटी, नवनवतिः कोटी शतसहस्राणि पंचाशत्सहस्राणि च । **संवग्गेण**—सर्वसमासेन कुलानां कोट्यः । सर्वसमासेन कुलानां एका कोटीकोटी नवनवतिश्च कोटीलक्षाणि पंचाशत्सहस्राणि च कोटीनामिति ।। २८ ।।

योनिभेदेन जीवान्प्रतिपादयन्नाह—

णिच्चिदरधादु सत्त य तरु दस विगलिंदिएसु छच्चेव ।
सुरणरयतिरिय चउरो चउदश मणुएसु सदसहस्सा ।। २९ ।।

भावार्थ—बारह लाख पचास हजार कोडि कुल हैं। बहुरि पक्षी, हंस, भेरुंडादिकनि के कुल बारह लाख कोडि हैं। बहुरि चउपद सिंह, वघेरा इत्यादिकनि के कुल दस लाख कोडि हैं। बहुरि उर करिकै परिसर्पण करै, गमन करै—अैसे उर परिसर्प जीव, गोह सर्प इत्यादिक जोव तिनकै कुल नव लाख कोडि हैं। अैसैं पंचेन्द्रिय तिर्यंचनि के कुल तियालीस लाख पचास हजार कोडि कहे। बहुरि एकेन्द्रियनिके पूर्वे को जोड़ रूप सडसठि लाख कोडि। बहुरि विकलत्रय के पूर्वे कहे हैं जोड रूप चोइस लाख—अैसे एकेन्द्रिय, विकलैंद्रिय, पंचेन्द्रिय, तिर्यंचनि के जोडे हुए कुल एक कोडाकौड़ी चौतीस लाख पचास हजार कोडि जाननैं ।। २६ ।।

बहुरि जीवनि के कुल कहै है—

अर्थ—देवनि के कुल छबीस लाख कोडि हैं। नारकीनिकौ कुल पचीस लाख कोडि हैं। मनुष्यनिके कुल चौदह लाख कोडि हैं। अैसे जीवनि के कुल यथाक्रम जाननैं ।। २७ ।।

सर्वकुल भेदनि का जोड कै अर्थि कहैं हैं—

अर्थ—एक कोडाकोडि निन्याणवै लाख पच्चास हजार कोडि प्रमाण सर्व जोड दीए सर्व जीवनि के कुल का प्रमाण होय हैं ।। २८ ।।

आगैं जोनि भेद करिकैं जीवनि कौ प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

णिच्च—नित्यनिकोतं यैस्त्रसत्वं न प्राप्तं कदाचिदपि ते जीवा नित्यनिकोतशब्देनोच्यंते । **इदर**—इतरन्निकोतं चतुर्गतिनिकोतं यैस्त्रसत्वं प्राप्तं । यद्यप्यत्र निकोतशब्दो नास्ति तथापि द्रष्टव्यो देशामर्शकत्वात्सूत्राणां । **धादु**—धातवः पृथिव्यप्तेजोवायुकायाश्चत्वारो धातव इत्युच्यन्ते । **सत्त य**—सप्त च । **तरु**—तरूणां वृक्षाणां । **दस**—दश । **विगलिंदिएसु**—विकलेन्द्रियाणां द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणां । **छच्चेव**—षट्चैव । **सुरणरयतिरिय**—सुरनारकतिरश्चां । **चउरो**—चत्वारः । **चोद्दश**—चतुर्दश । **मणुएसु**—मनुष्याणां । **सदसहस्सा**—शतसहस्राणि । नित्यनिकोतानां सप्त लक्षाणि योनीनामिति । चतुर्गतिनिकोतानां सप्तलक्षाणि, पृथिवीकायिकानां सप्तलक्षाणि, अप्कायिकानां सप्तलक्षाणि, तेजःकायिकानां सप्तलक्षाणि, वायुकायानां सप्तलक्षाणि योनीनामिति सम्बन्धः । तरूणां दश लक्षाणि, द्वीन्द्रियाणां द्वे लक्षे, त्रींद्रियाणां द्वे लक्षे, चतुरिंद्रियाणां द्वे लक्षे, सुराणां चत्वारि लक्षाणि, नारकाणां चत्वारि लक्षाणि, तिरश्चां पञ्चेन्द्रियाणां संज्ञिकानामसंज्ञिकानां च चत्वारि लक्षाणि । मनुष्याणां चतुर्दश लक्षाणि योनीनामिति । सर्वसमासेन चतुरशीतियोनिलक्षाणि भवन्तीति ॥ २९ ॥

मार्गणाद्वारेण च जीवभेदान् प्रतिपादयन्नाह—

तसथावरा य दुविहा जोगगइकसायइंदियविधीहिं ।
बहुविहे[1] भव्वाभव्वा एस गदी जीवणिद्देसे ॥ ३० ॥

अर्थ—नित्य निगोदिया जिननैं कदाचित हो त्रस पर्याय नांहो पाया अैसे जीवनि की सात लाख योनि हैं। बहुरि इतर निगोदिया कहिये चतुर्गति निगोदिया जिननैं त्रस पर्याय हु पाया तिनकी सात लाख योनि हैं। इहां सूत्र में निगोद शब्द नांही हैं तथापि समझ लेना । जातैं सूत्र विषै नाम का एकदेश तैं सर्वदेश का ग्रहण होय है। बहुरि धातु शब्द से इहां पृथिवी, अप्, तेज, वायु—च्यारुंकाय जाननो । तहां पृथ्वीकायिक जीवनिके सात-सात लाख योनि भेद हैं ।

बहुरि अप्कायिक जीवनि के सात लाख योनि भेद हैं। बहुरि अग्निकायिक जीवनि के सात लाख योनि भेद हैं। बहुरि वायुकायिक जोवनिकै सात लाख योनि भेद हैं। बहुरि तरु कहिये, वनस्पतिकायिक जीवनिके दस लाख योनि भेद हैं। बहुरि विकलेंद्रिय जीवनिके वेइन्द्रियनि के दोय लाख, तेइन्द्रियनि के दोयलाख, चौइंन्द्रियके दोय लाख—अैसे मिलिकरि छहलाख योनि भेद हैं।

बहुरि पंचेन्द्रियनि विषै देवनि के च्यारलाख योनि भेद है। नारकीनिकै च्यारि लाख योनिभेद हैं। तिर्यंचनि विषैं अट्ठावन लाख योनि भेद तौ चौइन्द्रिय पर्यंत पहलैं कहे च्यार लाख योनि भेद पंचैन्द्रिय तिर्यंचतिके जाननें। सर्व मिलिकरि तिर्यंच गति मैं योनि भेद वासठि लाख हैं। बहुरि मनुष्यनिके चौदह लाख योनि भेद हैं। अैसे जोड़ दिये सर्व चतुर्गति के जीव संबंधी जोनि भेद चौरासी लाख होय हैं ॥ २९ ॥

आगै मार्गणाद्वार करिकैं जीवभेदनि कौ प्रतिपादन करतै संतै कहै हैं—

---

१. अ, ब बहुविध ।

कायमार्गणाद्वारेण **तसथावराय**—त्रसनशीलास्त्रसा द्वीन्द्रियादयः स्थानशीलाः स्थावरा पृथिव्यादिवनस्पत्यन्ताः। **दुविहा**—द्विप्रकारास्त्रसस्थावरभेदेन द्विप्रकारा जीवाः। **जोग**—योग आत्मप्रदेशपरिस्पन्दरूपो मनोवाक्कायलक्षणस्त्रिप्रकारस्तस्य विधिर्योगविधिस्तेन जीवास्त्रिप्रकारा मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययोगिनश्चेति। मनोयोगिनश्चतुष्प्रकाराः सत्यानृतसत्यानृतासत्यानृतभेदेन। एवं वाग्योगिनोऽपि चतुष्प्रकाराः। काययोगिनः सप्तविधा औदारिकवैक्रियिकाहारकतन्मिश्रकार्मणभेदेन। **गदि**—गतिर्भवान्तरप्राप्तिः, गतेर्विधिगतिविधिस्तेन, गतिविधिना चतस्रो गतयस्तद्भेदेन जीवाश्चतुर्विधा भवन्ति नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवभेदेन तेऽपि स्वभेदेनानेकविधाः। **कसाय**—कषन्तीति कषायः क्रोधमानमायालोभाः, अनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनभेदेन चतुःप्रकारास्तद्भेदेन प्राणिनोऽपि भिद्यन्ते। **इंदिय**—इन्द्र आत्मा तस्य लिंगं इन्द्रेण नामकर्मणा वा निर्वर्तितमिंद्रियं तस्य विधिरिंद्रियविधिस्तेनेन्द्रियविधिना जीवाः पंचप्रकारा एकेन्द्रिय-द्वींद्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियभेदेन। **बहुविहा**—बहुविधा बहुप्रकारा। अनेन किमुक्तं भवति स्त्रीपुंनपुंसकभेदेन, ज्ञान-दर्शनसंयम-लेश्या-सम्यक्त्व-संज्ञाहारभेदेन च बहुविधास्ते सर्वेऽपि। (भव्व)

अर्थ—जीव कायमार्गणा करि दोय प्रकार हैं—जे त्रसन-शील हैं, भय आये उद्वेजन करै है, डरै हैं-ते वे इन्द्रियादिक जीव त्रस काय हैं। २—बहुरि स्थानशील हैं, ते स्थावर कहिये—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पती रूप पंच प्रकार है। अैसे अभेद विविक्षाकरि काय दोय प्रकार हैं। भेदविविक्षा करि काय छः प्रकार हैं। बहुरि योग विधि, गति विधि, कषाय विधि, इन्द्रिय विधिकरि जीव बहु प्रकार हैं।

जोग कहिये आत्मा के प्रदेशनि का परस्पर रूप, मन, वचन, काय है लक्षण जाका—अैसा तीन प्रकार जोग की विधि सो योग विधि तिस योगविधिकरि जीव तीन प्रकार हैं—मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी।

मनोयोगी च्यारि प्रकार है—सत्यमनोयोगी, असत्य मनोयोगी, उभय मनोयोगी, अनुभय मनोयोगी। वचनयोगी चार प्रकार— सत्यवचनयोगी, असत्यवचनयोगी, उभयवचनवचनयोगी, अनुभयवचनयोगी। बहुरि काययोगी सात प्रकार है—औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाय योगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्र योगी, आहारक काययोगी, आहारक मिश्रकाय योगी। बहुरि कार्माणकाययोगी—अैसे योग विधिकरि जीव अनेक प्रकार हैं।

बहुरि एकभव तै अन्यभव की प्राप्ति सो गति कहिए। गति की जो विधि सो गति—विधि कहिए। तिस गतिविधी करि जीव च्यारि प्रकार हैं—केई नारको हैं—ते अपनैं भेदन करि अनेक प्रकार हैं। केई तिर्यंच हैं ते अपने भेदनि करि अनेक प्रकार हैं। केई देव हैंतैं अपने भेदनिकरि अनेक प्रकार हैं। केई मनुष्य अपने भेदन करि अनेक प्रकार हैं। अैसे गतिविधि करि जीव अनेक प्रकार हैं।

बहुरि जीव के सम्यक् देशसंयम, सकलसंयम, यथाख्यातचारित्र रूप गुण कौ कसैं ते कषाय कहिये। ते अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ तथा अप्रत्याख्यानवरण क्रोध, मान, माया, लोभ तथा संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ—अैसे च्यारि प्रकार तथा सोलह प्रकार तिनि कषाय भेदनि करि जीव अनेक प्रकार हैं।

बहुरि इंद्र आत्मा ताका जो लिंग कहिये चिन्ह सो इन्द्रिय कहिए। अथवा इन्द्र कहिये नामकर्म ताकरि रच्या हुवा होय सो इन्द्रिय कहिये। इन्द्रिय की जो विधि सो इन्द्रिय विधो कहिए तिस इन्द्रिय-विधिकरि जोव पंचप्रकार है। तथा तिनिके भेदनि करि जोव बहु प्रकार हैं तथा बहु विधा कहिए जीव बहुत प्रकार हैं। स्त्रो, पुरुष, नपुंसक रूप वेद के भेदनि करि तथा

भव्या निर्वाणपुरस्कृताः,(अभव्वा-)अभव्यास्तद्विपरीता भवन्ति जीवसमासभेदेन गुणस्थानभेदेन च बहुविधाः। **एसगदी**—एषा गतिः। **जीवणिद्देसे**—जीवनिर्देशे जीवप्रपंचे। गतींद्रियकाययोगवेदादिविविधिभिः कुलयोन्यादिभिश्च बहुविधा जीवा इति, जीवनिर्देशे कर्तव्ये एतावती गतिः॥ ३०॥

ननु जीवभेदा एते ये व्याख्यातास्ते किंलक्षणाः? इत्यत आह—

णाणं पंचविधं पिअ अण्णाणतिगं च सागरुबओगो।
चदुदंसणमणगारो सव्वे तल्लक्खणा जीवा॥ ३१॥

णाणं—जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञानमात्रं वस्तुपरिच्छेदकं। तच्च **पंचविहं**—पंचप्रकारं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलभेदेन। षट्त्रिंशत्-त्रिशतभेदं चावग्रहेहावायधारणाभिः षड्इन्द्रियाणि प्रगुणितानि तानि चतुर्विंशतिप्रकाराणि भवन्ति तत्र चतुर्षु व्यञ्जनावग्रहेषु प्रक्षिप्तेष्वष्टाविंशति-र्भवन्ति सा चाष्टाविंशतिर्बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवेतरभेदैर्द्वादशभिर्गुणिताः षट्त्रिंशत्त्रिशतभेदा भवन्ति मतिज्ञानमेतत्। श्रुतज्ञानमंगांग-

---

ज्ञान के भेदनि करि तथा दर्शन के भेदन करि तथा संयम के भेदनि करि तथा लेश्यानि के भेदनि करि तथा सम्यक्त्वनि के भेदनिकरि तथा संज्ञा के भेदनिकरि तथा आहार के भेदनि करि—जीव बहुत प्रकार हैं। ते सर्व निर्वाण प्राप्त होने को योग्य हैं, ते भव्य हैं। तिनसैं विपरीत है, ते अभव्य है। बहुरि ते जीवसमास भेदनिकरि तथा गुणस्थान भेदनिकरि बहुत प्रकार हैं। जीव के निर्देश करिणें विषैं यह गति हैं, यह मार्ग है, जीवका निर्देश इस मार्ग करि करणां॥ ३०॥

आगैं यह जीव भेद कहे, तहां जीव का लक्षण कहा (क्या) सो कहै हैं—

अर्थ—ज्ञान शब्द का अर्थ तीन प्रकार जाननां। १—जानन क्रिया का कर्ता जानने वाला सो ज्ञान तथा। २—जानन क्रिया का कारण जा करि जानिए सो ज्ञान तथा ३—जाननें रूप भाव सो ज्ञान-वस्तु का परिछेदक। सो ज्ञान पंच प्रकार हैं-१. मति-ज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्ययज्ञान, ५. केवलज्ञान।

तहां मतिज्ञान के तीन से छत्तीस भेद हैं, सो कहिय कै—स्पर्शन इन्द्रिय सूं अवग्रह होय, ईहा होय, अवाय होय, धारणा होय। बहुरि, रसना इन्द्रिय सूं अवग्रह होय, ईहा होय, अवाय होय, धारणा होय—अैसे च्यारि। बहुरि घ्राण इन्द्रिय सूं अवग्रह होय, ईहा होय, अवाय होय, धारणा होय—अैसे च्यारि। बहुरि चक्षुरिंद्रिय सूं अवग्रह होय, ईहा होय, अवाय होय, धारणा होय—अैसे च्यारि। बहुरि श्रोत्रेन्द्रिय सूं अवग्रह होय, ईहा होय, अवाय होय, धारणा होय—अैसे च्यारि। बहुरि मन सूं अवग्रह होय, ईहा होय, अवाय होय, धारणा होय—अैसे च्यारि। अैसे अर्थ रूप विषय की अपेक्षा (६×४=२४) चौईस प्रकार भए।

बहुरि व्यंजन रूप विषय का स्पर्शन करि अवग्रह तथा रसनकरि अवग्रह, तथा घ्राणकरि अवग्रह तथा श्रोत्रकरि अव-ग्रह—अैसे च्यारि ही भेद हैं। व्यंजन रूप विषय का अवग्रह मात्र हो होय है। इहां अवाय-धारणा नांही होय हैं। बहुरि चक्षु-रिंद्रिय का मनकरि अवग्रह भी नांही होय हैं। इहां अवाय-धारणां नांही होय हैं। बहुरि चक्षुरिंद्रिय का मन करि अवग्रह भी नांही होय है। इनिका विषय व्यंजन है ही नांही। अैसे अठाईस भेद भए। तिनकूं प्रत्येक बारह विषयनिकरि गुणिए, तिनके नाम—१-बहु, २-अवहु, ३-बहुविध, ४-अबहुविध, ५-क्षिप्र, ६-अक्षिप्र, ७-निःसृत, ८-अनिःसृत, ९-उक्त, १०-अनुक्त, ११-ध्रुव, १२-अध्रुव—अैसे बारह प्रकारनि करि गुणे, मतिज्ञान के तीन (२८×१२=३३६) सैं छत्तीस भेद होय हैं।

वाह्यभेदेन द्विविधं, अंगभेदेन द्वादशविधं पर्यायाक्षर-पद-संघात-प्रतिपत्तिकानुयोग-प्राभृतकप्राभृतक-प्राभृतक-वस्तुपूर्वभेदेन विंशतिविधं च। अवधिज्ञानं देशावधि-परमावधि-सर्वावधिभेदतस्त्रिप्रकारं। मनःपर्ययज्ञानं ऋजुमति-विपुलमतिभेदेन द्विप्रकारं। केवलमेकमसहायं। **अण्णाणतिगं**—अज्ञानमयथात्मवस्तुपरिच्छित्तिस्वरूपं तस्य त्रयमज्ञानत्रयं मत्यज्ञानश्रुताज्ञान-विभंगज्ञानभेदेन संशयविपर्ययानध्यवसायाकिञ्चित्करादिभेदेन चानेकप्रकारं। **सागरुवजोगो**[1]—सहाकारेण व्यक्त्यार्थेन वर्तत इति साकारः सविकल्पो गुणीभूतसामान्यविशेषग्रहणप्रवणउपयोगः। ज्ञानं पंचप्रकारमज्ञानत्रयं च साकार उपयोगः **चदुदंसणं**—चत्वारि दर्शनानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनभेदेत। **अणगारो**—अनाकारोऽविकल्पको गुणीभूतविशेषसामान्यग्रहणप्रधानः, चत्वारिदर्शनान्यनाकार उपयोगः। **सव्वे**—सर्वे। **तल्लक्खणा**—तौ ज्ञानदर्शनोपयोगौ लक्षणं येषां ते तल्लक्षणा ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणाः सर्वे जीवा ज्ञातव्या इति ॥ ३१ ॥

जीवभेदोपसंहारादजीवभेदसूचनाय गाथा—

एवं जीवविभागा बहु भेदा वण्णिया समासेण।
एवंविधभावरहियमजीवदव्वेत्ति [2]विण्णेयं ॥ ३२ ॥

बहुरि श्रुतज्ञान है सो अंग तथा अंगबाह्य—अैसे भेदकरि दो प्रकार हैं। तहां अंग भेद करि बारह प्रकार हैं—१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग, ६. ज्ञातृधर्मकथांग, ७. उपासकाध्ययनांग, ८. अंतकृद्दशांग, ९. अनुत्तरौपपादिकदशांग, १०. प्रश्नव्याकरणांग, ११. विपाकसूत्रांग, १२. दृष्टिवादांग—अैसे बारह अंग हैं।

बहुरि १. पर्याय, २. पर्यायसमास, ३. अक्षर, ४. अक्षरसमास, ५. पद, ६. पदसमास, ७. संघात, ८. संघातसमास, ९. प्रतिपत्तिक, १०. प्रतिपत्तिकसमास, ११. अनुयोग, १२. अनुयोगसमास, १३. प्राभृतक, १४. प्राभृतकसमास, १५. प्राभृतक प्राभृतक, १६. प्राभृतक प्राभृतक समास, १७. वस्तु. १८. वस्तुसमास, १९. पूर्व, २०. पूर्वसमास—अैसे भेद किये बीस प्रकार हैं।

बहुरि अवधिज्ञान—देशावधि, परमावधि, सर्वावधि भेदतैं तीन प्रकार है। बहुरि मनःपर्ययज्ञान—ऋजुमति, विपुलमति भेदकरि दोय प्रकार है। केवलज्ञान एक है, असहाय है।

बहुरि अज्ञान-अयथार्थ-वस्तु-परिच्छेद रूप—मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान—अैसे तीन प्रकार हैं। बहुरि संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय अकिंचित्कर—इत्यादिक भेदकरि अनेक प्रकार है।

अैसे साकारोपयोग हैं सो अष्ट प्रकार कहा है। आकार कहिए व्यक्ति अर्थ ताकरि सहित होय सो साकार (सविकल्प) कहिए तथा विकल्प कहिए गुणीभूत है सामान्य जामैं अैसा विशेष का ग्रहण विषैं समर्थ जो उपयोग सो पांच ज्ञान, तीन अज्ञान रूप आठ प्रकार साकार-उपयोग है। बहुरि चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन भेदकरि अनाकार रूप अविकल्पक गुणीभूत है विशेष जानै अैसे सामान्य का ग्रहण विषैं प्रधान सो च्यारि प्रकार दर्शन अनाकारोपयोग कहिए। बहुरि सर्वजीव हैं ते ज्ञान-दर्शन उपयोग हैं लक्षण जिनिकैं अैसे जाननें ॥ ३१ ॥

आगैं जीवनिके भेद का उपसंहारकरि अजीव द्रव्य का भेदनि के सूचना के अर्थि कहैं हैं—

१. मूलगाथा में 'ओगो' २. क विण्णेया।

एवं—व्याख्यातप्रकारेण । **जीवविभागा**—जीवविभागाः । **बहुभेवा**—बहुप्रकाराः । **वण्णिदा**—वर्णिताः । **समासेण**—संक्षेपेण । **एवंविधभावरहियं**—व्याख्यातस्वरूपविपरीतमजीवद्रव्यमिति विज्ञेयम् ।। ३२ ।।

अजीवभेदप्रतिपादनायाह—

अज्जीवा विय दुविहा रूवारूवा य रूविणो चदुधा ।
खंधा य खंधदेसो खंधपदेसो अणू य तहा ।। ३३ ।।

अज्जीवा विय—अजीवाश्चाजीवपदार्थाश्च । **दुविहा**—द्विप्रकाराः । **रूवा**—रूपिणो रूपरसगन्धस्पर्शवन्तो यतो रूपाविनाभाविनो रसादयस्ततो रूपग्रहणेन रसादीनामपि ग्रहणं । **अरूवा य**—अरूपिणश्च रूपादिवर्जिताः । **रूविणो**—रूपिणः पुद्गलाः । **चदुधा**—चतुःप्रकाराः । के ते चत्वारः प्रकारा इत्यत आह—**खंधा य**—स्कन्धः । **खंधदेसो**—स्कन्धदेशः । **खंधपदेसो**—स्कन्धप्रदेशः । **अणू य तहा**—अणुरपि तथा परमाणुः । रूप्यरूपिभेदेनाजीवपदार्थों द्विप्रकाराः, रूपिणः पुनः स्कन्धादिभेदेन चतुःप्रकारा इति ।। ३३ ।।

स्कन्धादिस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेय अविभागी ।। ३४ ।।

खंधं—स्कन्धः । **सयल**—सह कलाभिर्वर्तते इति सकलं सभेदं परमाण्वन्तं । **समत्थं**—समस्तं सर्वं पुद्गलद्रव्यं । सभेद स्कन्धः सामान्यविशेषात्मकं पुद्गलद्रव्यमित्यर्थः । अतो न सकलसमस्तयोः पौनरुक्त्यं । **तस्स दु**—तस्य तु स्कन्धस्य । **अद्धं**—अर्धं सकलं । **भणंति**—वदन्ति । **देसोत्ति**—देश इति तस्य समस्तस्य पुद्गलद्रव्यार्धं देश इति वदन्ति जिनाः । **अद्धद्धं च**—अर्धस्यार्धस्यार्धमर्धार्धं तत्समस्तपुद्गलद्रव्यार्ध

अर्थ—अैसैं जोवनि के बहुप्रकार विभाग हैं ते संक्षेपकरि वर्णन कोए, अब अजीव का स्वरूप कहै है । जो व्याख्यान कीया जीव का लक्षण उपयोगताकरि रहित होय जीव स्वरूप तैं विपरीत होय सो अजीव द्रव्य जाननां ।। ३२ ।।

आगैं अजीव द्रव्य का, भेदनि का प्रतिपादन कै अर्थि कहै है—

अजीव पदार्थ है, ते दोय प्रकार हैं—रूपी तथा अरूपी अैसे भेदकरि । तहाँ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श जिनिकै पाइए ते रूपी कहिए । रूप, नाम वर्ण का है, तथापि रूप है सो रसादिक बिना होय नांही, रसादिक तैं अविनाभावो है । तातैं रूप ग्रहणकरि रसादिक भी ग्रहण करनैं । तहां रूपी हैं, जे पुद्गल है ते च्यारि प्रकार हैं—१-स्कंध, २-स्कंधदेश, ३-स्कंधप्रदेश, ४-अणु कहिए परमाणु ।। ३३ ।।

आगैं स्कंधादिक का स्वरूप का प्रतिपादन कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—कला कहिए अपने भेद तिनिकरि सहित होय सो सकल कहिए । जो समस्त कहिए सकल पुद्गल-द्रव्य सामान्य-विशेष स्वरूप होय सो स्कन्ध कहिए । बहुरि ताका जो अर्द्ध होय सो स्कन्ध देश कहिए । बहुरि स्कंध देश का जो अर्द्ध होय सो स्कंध

तावदर्धेनार्धेन कर्तव्यं यावद् द्व्यणुकस्कन्धः ते सर्वे भेदाः प्रदेशवाच्या भवन्ति । **परमाणूचेव**—परमाणुश्च । **अविभागी**—निरंशो यस्य विभागो नास्ति तत्परमाणुद्रव्यम् ॥ ३४ ॥

अरूपिद्रव्यभेदनिरूपणार्थमाह—

ते पुणु धम्माधम्मागासा य अरूविणो य तह कालो ।
खंधा देस पदेसा अणुत्ति विय पोग्गला रूवी ॥ ३५ ॥*

ते पुणु—तच्छब्दः पूर्वप्रक्रान्तपरामर्शी ते पुनररूपिणोऽजीवाः । **धम्माधम्मागासा य**—धर्माधर्माकाशानि । किंलक्षणानि **अरूविणो य**—

प्रदेश कहिए । बहुरि अविभागी निरंश होय सो परमाणु कहिए, जाका विभाग नाही, सो परमाणु द्रव्य है ॥ ३४ ॥

आगैं अरूपी द्रव्य का भेद का निरूपण कै अर्थि कहै हैं ।

अर्थ—अरूपी अजीव द्रव्य च्यारि हैं— १–धर्म्मद्रव्य, २–अधर्म्म द्रव्य, ३–आकाश द्रव्य, ४–कालद्रव्य । ते रूप, रस,

---

*फलटन से प्रकाशित मूलाचार में दो गाथाएँ किंचित् बदली हुई हैं और एक अधिक है—

खंधा देसपदेसा जाव अणुत्तीवि पोग्गलारूवी ।
वण्णादिमंत जीवेण होंति बंधा जहाजोग्गं ॥ ४१ ॥

अर्थ—स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश आदि अणु तक होने वाले जो जो विभाग हैं वे सब पुद्गल हैं । वे सब रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि गुणों से युक्त होने से रूपी हैं । और जीव के साथ यथायोग्य कर्म-नोकर्म रूप होकर बद्ध होते हैं ।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदिय विसय कम्मपरमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं पुग्गलदव्वं जिणवरेंहि ॥ ४२ ॥

अर्थ—पुद्गल द्रव्य को जिनेन्द्रदेव ने छह प्रकार का बतलाया है । जैसे पृथिवी, जल, छाया, नेत्रेंद्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों का विषय, कर्म और परमाणु ।

वादरवादर वादर बादरसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं सुहुमसुहुमं धरादियं होदि छब्भेयं ॥ ४३ ॥

अर्थ—जिसका छेदन-भेदन और अन्यत्र प्रापण हो सके उस स्कन्ध को वादरवादर कहते हैं । जैसे पृथिवी, काष्ठ, पाषाणादि । जिसका छेदन भेदन न हो सके किन्तु अन्यत्र ले जाया जा सके वह स्कन्धवादर है जैसे जल, बैल आदि । जिसका छेदन-भेदन और अन्यत्र प्रापण भी न हो सके ऐसे नेत्र से दिखने योग्य स्कन्ध को वादरसूक्ष्म कहते हैं, जैसे छाया, आतप, चाँदनी आदि । नेत्र को छोडकर शेष चार इन्द्रियों के विषयभूत पुद्गल स्कन्ध को सूक्ष्मस्थूल कहते हैं, जैसे शब्द, रस, गंध आदि । जिसका किसी इन्द्रिय से ग्रहण न हो सके उस पुद्गल-स्कन्ध को सूक्ष्म कहते हैं जैसे कर्मवर्गणाएँ । जो स्कन्धरूप नहीं हैं ऐसे अविभागी परमाणु को सूक्ष्मसूक्ष्म कहते हैं ।

अरूपीणि रूपरसगन्धस्पर्शरहितानि । **तह कालो**—तथा कालश्चारूपी लोकमात्रः सप्तरज्जूनां घनीकृतानां यावन्तः प्रदेशास्तावत्परिमाणानि, अलोकाकाशं पुनरनन्तं । स्कन्धादयः के ते आह—स्कन्धदेश प्रदेशा अणुरिति च पुद्गलाः पूरणगलनसमर्थाः । **रूवी**—रूपिणो रूपरसगन्धस्पर्शवन्तोऽनन्तपरिमाणाः । ननु कालः किमिति कृत्वा पृथग्व्याख्यातश्चेत् नैष दोषः, धर्माधर्माकाशास्यस्तिकायरूपाणि कालः पुनरनस्तिकायरूप एकैकप्रदेशरूपः, निचयाभावप्रतिपादनाय पृथग्व्याख्यात इति । रूपिणः पुद्गला इति ज्ञापनार्थं पुनः स्कंधादिग्रहणमतो न पौनरुक्त्यं । धर्मादीनां च स्कन्धादिभेदप्रतिपादनार्थं च पुनर्ग्रहणम् ।। ३५ ।।

ननु यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थं सत् तदेषां धर्मादीनां किं कार्यं ? केषामेतानि कारणान्यत आह—

गदिठाणोग्गाहणकारणाणि कमसो दु वत्तणगुणोय ।
रूवरसगंधफासदि कारणा[1] कम्मबंधस्स ।। ३६ ।।

गदि—गतिर्गमनक्रिया । **ठाणं**—स्थानं स्थितिक्रिया । **ओगाहण**—अवगाहनमवकाशदानमेषां । **कारणाणि**—निमित्तानि । **कमसो**—क्रमशः यथाक्रमेण । **वत्तणगुणोय**—वर्तनागुणश्च परिणामकारणं । गतेः कारणं धर्मद्रव्यं जीवपुद्गलानां । तथा तेषामेव स्थितेः कारणधर्मद्रव्यं । अवकाशदाननिमित्तमाकाशद्रव्यं पंचद्रव्याणां । तथा तेषामपि वर्तनालक्षणं कालद्रव्यं स्वस्य च परमार्थकालग्रहणात् । धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि स्वपरिणामनिमित्तानि परेषां गत्यादीनां निमित्तान्यपि भवन्ति, अनेककार्यकारित्वाद् द्रव्याणां तस्मान्न विरोधो यथा मत्स्यः स्वगतेः कारणं तद्गतेः,

---

गंध, स्पर्शकरि रहित हैं । तहां धर्म, अधर्म, आकाश—ए तो एक-एक द्रव्य हैं ! बहुरि काल है सो लोक मात्र है । सात राजू का घन कीए घन रूप तीन सैं तैतालीस राजू होय । इनिके जितने प्रदेश होंय, तितने परमाणु कालद्रव्य असंख्यातें हैं । आकाश के प्रदेश अनन्त हैं । तहाँ लोकाकाश असंख्यातें हैं । अलोकाकाश के अनन्ते हैं । बहुरि स्कंधदेश, प्रदेश, अणु रूप जे रूपी कहे, ते अनन्त-परमाणु रूप रस, गंध, स्पर्श गुण सहित, पूरण-गलन कूं समर्थ है, तातैं पुद्गल कहिए ।

इहां कोउ पूछै—काल कूं जुदा पदकरि क्यों कह्या ? ताका समाधान—धर्म्म, अधर्म्म, आकाश सो अस्तिकाय रूप हैं । काल अस्तिकाय रूप नांही है । एक-एक प्रदेश रूप है । परस्पर मिलैं नांही । यातैं जुदे पदकरि कह्या है ।। ३५ ।।

इहां कोउ पूछै—जो अर्थक्रियाकारो होय, सो परमार्थ सत् होय । धर्मादिक द्रव्य कहै तिनिका कार्य कहो ? ए कैसी अर्थक्रिया के कारण है ? अैसा प्रश्न होतैं तैं संतै कहै हैं—

अर्थ—गति कहिए—गमन क्रिया, ताका निमित्त कारण धर्म्म द्रव्य है । स्थान कहिए—स्थिति क्रिया, ताका निमित्त कारण अधर्म द्रव्य है । अवगाहन कहिये—अवकाश देनां, ताका निमित्त आकाश द्रव्य है। बहुरि वर्तनां काल द्रव्य का गुण है । सो आप वर्तैं है । स्वपरिणाम तैं अन्य द्रव्य वर्तैं हैं । तिनिकौं निमित्त कारण है । ये धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य हैं । अपने परिणमन कौं भी निमित्त हैं । अर जीवादिक अन्य द्रव्य के गति, स्थिति आदि कौ निमित्त होय हैं । इहां विरोध नांही ।

1. अ, ब. क. कारणाणि ।

स्वगतेः कारणं पुरुषः सुखः पन्थाश्च । तथा स्वस्थितेः कारणं पुरुषः, छायादिकं च कारणं । अथ रूपादयः कस्य कारणमिति चेत्, रूपरसगन्धस्पर्शादयः जीवस्वरूपान्यथानिमित्तकर्मबन्धस्योपादानहेतवः रूपादिवन्तः पुद्गलाः । कथं पुद्गला इति लभ्यन्ते, तेनाभेदोपचारात् तात्स्थ्याद्वा बन्धः पुद्गलरूपो भवतीत्यर्थः ।। ३६ ।

कर्मबन्धो द्विधा पुण्यपापभेदादतस्तत्स्वरूपं तन्निमित्तं च प्रतिपादयन्नाह—

सम्मत्तेण सुदेण य विरदीए कसायणिग्गहगुणेहिं ।
जो परिणदो स पुण्णो तव्विवरीदेण पावं तु ।। ३७ ।।

सम्यक्त्वेन, श्रुतेन, विरत्या पंचमहाव्रतपरिणत्या, तथा कषायनिग्रहगुणैरुत्तमक्षमामार्दवार्जवसन्तोषगुणैः चशब्दादिन्द्रियनिरोधैश्च । **जो परिणदो**—यः परिणतो जीवस्तस्य यत्कर्मसंश्लिष्टं तत्पुण्यमित्युच्यते, अथवा सम्यक्त्वादिगुणपरिणतो जीवोऽपि पुण्यमित्युच्यते अभेदात् । **तव्विवरीदेण**—तद्विपरीतेन मिथ्यात्वाज्ञानासंयमजषायगुणैर्यः परिणतः पुद्गलनिचयस्तत्पापमेव । शुभप्रकृतयः पुण्यमशुभप्रकृतयः पापमिति पुण्यपापास्रवकौ जीवौ वानेन व्याख्यातौ ।। ३७ ।।

इत ऊर्ध्वं पुण्यपापास्रवकारणमाह—

पुण्णस्सासवभूदा अणुकंपा सुद्ध एव उवओगो ।
विवरीदं पावस्स दु आसवहेउं वियाणाहि ।। ३८ ।।

द्रव्यानि के अनेक कार्यकारीपणां हैं। जैसैं—अपनैं गति कौं मत्स्य उपादान कारण है, जल निमित्त कारण है। बहुरि जैसे अपनी गति का पुरुष उपादान कारण है। सुख रूप मार्ग है सो निमित्त कारण है। तथापि अपनी स्थिति का पुरुष उपादान कारण है—अैसैं जाननां। बहुरि रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादिक है, ते जीव के स्वरूप कौं अन्यथा करनें के निमित्त जे कर्म, तिनि के बंध का उपादान कारण है इहां रूप, रस, गंध, स्पर्शादिक शब्दकरि अभेदोपचारतैं रूपादिकवंत पुद्गल जांननैं। बहुरि तिनिका जो बंध होय है सो पुद्गल रूप हैं, अैसा अर्थ जाननां ।। ३६ ।।

आगैं कहै हैं पुन्य-पाप के भेदतैं कर्म-बंध दोय प्रकार हैं। यातैं तिसका स्वरूप, बहुरि तिसका निमित्त प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—सम्यक्त्व करिके बहुरि, श्रुतज्ञान करिके, बहुरि विरति कहिए पंच महाव्रत परिणामकरि तथा कषाय निग्रह रूप गुणनिकरि उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, संतोष-गुणनिकरि, च शब्द तैं इन्द्रिय-निरोधकरि जो जीव परिणया, ताकै जो कर्मबंध अथवा सम्यक्त्वादिक गुणनिकरि परिणया जो जीव सो पुण्य कहिए। अभेद विवक्षा तैं अथवा सम्यक्त्वादिक कारणकरि जो कर्मबंध रूप होय सो पुण्य कहिए। बहुरि सम्यक्त्वादिकन तैं विपरीत जे मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, कषाय तिनकरि परिणया जो पुद्गल समूह सो पाप कहिए। शुभ प्रकृति है ते पुन्य कहिए। अशुभ प्रकृति है तें पाप कहिए। अैसे पुण्य-पाप के आश्रव करने वाले जीव तिनिका व्याख्यान कीया ।। ३७ ।।

पुण्यस्य सुखनिमित्तपुद्गलस्कन्धस्यास्रवभूता आस्रवत्यागच्छत्यनेनेत्यास्रवः आस्रवणमात्रं वास्रवः आस्रवभूता कारणरूपा अनुकम्पा कृपा दया शुद्धोपयोगश्च शुद्धमनोवाक्कायक्रिया इत्यर्थः शुद्धज्ञानदर्शनोपयोगश्चाभ्यामनुकम्पा शुद्धोपयोगाभ्यां । **विवरीदं**—विपरीतोऽननुकम्पाऽशुद्धमनोवाक्कायक्रियाः मिथ्याज्ञानदर्शनोपयोगः । पावस्स दु—पापस्यैव । **आसव**—आस्रव आगमहेतुस्तमास्रवहेतुं । **वियाणाहि**—विजानीहि बुध्यस्व । पूर्वगाथार्थेनास्य गाथार्थस्य नैकार्थं बन्धास्रवोपकारेण प्रतिपादनात् । पूर्वैः कारणैः पुण्यबन्धः पापबन्धश्च व्याख्यातः, आभ्यां पुनः कारणाभ्यां शुभकर्मागमोऽशुभास्रवोऽशुभकर्मागमो व्याख्यातः । पुण्यस्यागमनहेतू अनुकम्पाशुद्धोपयोगौ जानोहि, पापागमस्य तु विपरीतावननुकंपाऽशुद्धोपयोगौ हेतू विजानीहीति ।। ३८ ।।

ननु जीवप्रदेशानाममूर्तानां कथं कर्मपुद्गलैर्मूर्तैः सह सम्बन्धोऽत आह—

णेहोउप्पिदगत्तस्स रेणुओ लग्गदे जधा अंगे ।

तह रागदोससिणेहो[1]ल्लिदस्स कम्मं मुणेयव्वं ।। ३९ ।।

स्नेहो घृतादिकं तेनार्द्रीकृतस्य गात्रस्य शरीरस्य रेणवः पांसवो लगन्ति संश्रवंति यथा तथा रागद्वेषस्नेहार्द्रस्य जीवस्यांगे शरीरे कर्मपुद्गला ज्ञातव्यास्तैजसकार्मणयोः शरीरयोः सतोरित्यर्थः । रागः स्नेहः, कामादिपूर्विका रतिः, द्वेषोऽप्रीतिः क्रोधादिपूर्विकाऽरतिरिति ।। ३९।।

तद्विपरीतेन पापस्यास्रव इत्युक्तं तन्मुख्यरूपेण किमित्यत आह—

आगे पुण्य-पाप के आश्रव का कारण हैं ताहि कहे हैं—

अर्थ—जा करि कर्म्म आस्रवै—आवै, आस्रवणं का कारण सो आस्रव कहिए । अथवा कर्म का आश्रवण मात्र भाव सो आश्रव कहिए । सो आश्रव दोय प्रकार है—१-पुण्याश्रव, २-पापाश्रव । तहां पुण्य कहिए—सुख के निमित्त, पुद्गल-स्कंध ताकैं आश्रवभूत कहिए द्वारभूत, कारणभूत, अनुकम्पा कहिए कृपा, दया । बहुरि शुद्धोपयोग कहिए—शुद्ध मन, वचन, काय को शुद्ध क्रिया—ज्ञान-दर्शन रूप उपयोग । बहुरि अनुकंपा अर शुद्धोपयोग इनितैं विपरीत भाव जो अनुकंपा का अभाव अशुद्ध मन, वचन, काय की क्रिया, मिथ्याज्ञान-दर्शन का उपयोग, सो पाप-आश्रव का कारण जाननां ।। ३८ ।।

इहां कोउ पूछै जीव के प्रदेश अमूर्तिक हैं, कर्म-पुद्गल मूर्तिक हैं तिनिकरि सहित सम्बन्ध कैसे भया ? ताका उत्तर कहैं हैं—

अर्थ—जैसे स्नेह कहिए—घृतादिक ताकरि आला कोया, जो शरीर ताही के रज है, ते लगैं है । तैसे राग-द्वेष स्नेहकरि आर्द्रित जो जोव, ताके अंग कहिए शरोर विषैं कर्म पुद्गल लगै हैं ।। ३९ ।।

भावार्थ—तैजस् कार्म्मण शरोर होतैं राग कहिये स्नेह, कामादिक पूर्वक रति । बहुरि द्वेष कहिए—अप्रोति, क्रोधादिक-पूर्वक अरति । इनिकौं होंतै संतैं पापकर्म आवै है । बहुरि तिस आश्रव हो के भेद कहै हैं—

१. अ, ब सिणिहो ।

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति ।
अरिहंतवुत्तअत्थेसु विमोहो होइ मिच्छत्तं ॥ ४० ॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषाया योगश्चैते आस्रवा भवन्ति । अथ मिथ्यात्वस्य किं लक्षणमित्यत आह—अर्हदुक्तार्थेषु सर्वज्ञभाषितपदार्थेषु विमोहः संशयविपर्ययानध्यवसायरूपो मिथ्यात्वमिति भवति ॥ ४० ॥

अविरमणादीन्प्रतिपादयन्नाह—

अविरमणं हिंसादी पंचवि दोसा हवंति णादव्वा ।
[1]कोधादी य कसाया जोगो जीवस्स चेट्ठा दु ॥ ४१ ॥

हिंसादयः पंचापि दोषाः हिंसासत्यस्तेयाब्रह्मपरिग्रहा अविरमणं ज्ञातव्यं भवति । क्रोधमानमायालोभाः कषायाः । जीवस्य चेष्टा तु योगः ॥ ४१ ॥

संवरपदार्थस्य व्याख्यानायाह—

मिच्छत्तासवदारं रुंभइ सम्मत्तदढकवाडेण ।
हिंसादिदुवाराणिवि दढवदफलिहेहिं रुब्भंति ॥ ४२ ॥

मिथ्यात्वमेवास्रवद्वारं मिथ्यात्वास्रवद्वारं । **रुब्भन्ति**—रुंधन्ति निवारयन्ति । **सम्मत्तदढकवाडेण**—सम्यक्त्वमेव दृढकपाटं तेन सम्यक्त्वदृढकपाटेन तत्त्वार्थश्रद्धानविधानेन हिंसादीनि द्वाराणि दृढव्रतफलकै रुन्धन्ति प्रच्छादयन्तीति ॥ ४२ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व अविरमण कहिए—अविरति, कषाय, योग—ए आश्रव हैं। तहां प्रथम मिथ्यात्व का लक्षण कहै हैं। अर्हंत कहिए सर्वज्ञ, ताकरि भाषित जे पदार्थ तिनिकै विषै संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रूप जो विमोह सो मिथ्यात्व कहिये ॥ ४० ॥

आगैं अविरमणादिक का स्वरूप कहैं हैं—

अर्थ—हिंसादिक कहिए हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह—ए पांच दोष हैं। ते अविरमणाश्रव जाननां। बहुरि क्रोधादिक कहिए—क्रोध, मान, माया, लोभ-रूप च्यारि कषाय हैं, ते आश्रव जाननां। बहुरि जीव की जो चेष्टा सो योग कहिये ॥ ४१ ॥

आगैं संवर पदार्थ का व्याख्यान करै—

अर्थ—संवर करने वाले जीव हैं, ते मिथ्यात्व रूप जो आश्रवद्वार, ताहि सम्यक्त्व रूप जो दृढ़ कपाट ताकरि रोकैं है। बहुरि हिंसादिक रूप जे आश्रवद्वार, तिनहि दृढ़ व्रत रूप जे फलक, तिनिकरि रोकै है ॥ ४२ ॥

१. कोहादी य द० ।

आसवदि जंतु कम्मं कोधादीहिं तु अयदजीवाणं ।
तप्पडिवक्खेहिं विदु रुंभंति[1] तमप्पमत्ता दु ।। ४३ ।।

क्रोधादिभिर्यत्कर्मास्रवत्युपढौकतेऽयत्नपरजीवानां तत्प्रतिपक्षैस्तत्प्रतिकूलैः क्षमादिभिरप्रमत्ताः प्रमादरहिता विद्वांसो रुन्धन्ति प्रतिकूलयन्ति । अनेन संवारको जीवो व्याख्यात इति ।। ४३ ।।

आस्रवसंवरसमुच्चयप्रतिपादनायोत्तरगाथा संवरकारणाय वा—

मिच्छत्ताविरदीहि य कसायजोगेहिं जं च आसवदि ।
दंसणविरमणणिग्गहणिरोधणेहिं तु णासवदि ।। ४४ ।।

मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगैर्यत्कर्मास्रवति, दर्शनविरतिनिग्रहनिरोधनैस्तु नास्रवति । न च पूर्वगाथानां पौनरुक्त्यं बन्धास्रवसंवरभेदेन व्याख्यानाद् द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकशिष्यसंग्रहाद्वा ।। ४४ ।।

निर्जरार्थप्रतिपादनायोत्तरप्रबन्धः—

संयमजोगे जुत्तो जो तवसा चेट्ठदे अणेगविधं ।
सो कम्मणिज्जराए विउलाए वट्टदे जीवो ।। ४५ ।।

निर्जरकनिर्जरानिर्जरोपायास्तत्र निर्जरकः किंविशिष्ट इत्यत आह—संयमो द्विविध इन्द्रियसंयमः प्राणसंयमश्च । **जोगे**—योगे यत्नः

बहुरि कहै है—

अर्थ—यत्नाचार करि रहित जे जीव हैं, तिनिकै क्रोधादिक करि जो कर्म्म आवैं हैं, ताहि जे प्रमाद रहित ज्ञानी हैं ते, तिनि क्रोधादिकनितैं प्रतिकूल प्रतिपक्ष जे उत्तमक्षमादिक धर्म्म, तिनकरिकै रोकै हैं ।। ४३ ।।

बहुरि कहै है—

अर्थ—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योगकरि जो कर्माश्रवै हैं, सो कर्म्म दर्शन-विरमण, निग्रह कहिए कषाय का निग्रह, निरोधन कहिए योग का निरोध—इनि करिकैं नांही आश्रवै हैं । यातैं संवर होहैं, इहां पुनरुक्तता नांही जाननां ।

द्रव्यार्थिक नयावलंबी शिष्य कै अर्थि सामान्यरूप कथन कीया है । पर्यायार्थिक नयावलंबी शिष्य कै अर्थि विशेष रूप कथन कीया है । बहुज्ञानी, वीतरागी, स्याद्वादी के वेत्ता मुनि सर्व जीवनि का उपकार के अर्थि अनेक नयनि तैं वर्णन करैं हैं ।।४४।।

आगैं निर्जरा का प्रतिपादन करै हैं—

अर्थ—इहां निर्ज्जरक, निर्ज्जरा, निर्ज्जरोपाय—तीनू पदार्थनिका वर्णन है । तहां निर्जरक कहिए—निर्जरा करणे वाला

---

१. अ, ब, रुंधंति ।

शुभमनोवचनकायो ध्यानं वा । संयमयोगयुक्तो यस्तपसा तपसि वा चेष्टते प्रवर्ततेऽनेकविधे द्वादशविधे वा, द्वादशविधं तपो यः करोति यत्नपरः स कर्मनिर्जरायां कर्मविनाशे वर्तते जीवः । अनेन निर्जरोपायश्च व्याख्यातः । पूर्वसूत्रेष्वप्येवं व्याख्येयं, बन्धको बन्धो बन्धोपायः । आवस्रक आस्रव आस्रवोपायः । संवरकः संवरः संवरोपायः । अनेन व्याख्यानेन पौनरुक्त्यं च न भवतीति ॥ ४५ ॥

दृष्टान्तद्वारेण जीवकर्मणोः शुद्धिमाह—

जह धाऊ धम्मंतो सुज्झदि सो अग्गिणा दु संतत्तो ।
तवसा तधा विसुज्झदि जीवो कम्मेहिं कणयं व[1] ॥ ४६ ॥

यथा धातु पाषाणः कनकोपलो धम्यमानस्तप्यमान- शुद्धयते सोऽग्निना तु संतप्तो दग्धः किट्टकालिकादिरहितः संजायते, तथा तपसा विशुद्धयते जीवः कर्मभिः कनकमिव । यथा धातुः कनकं अग्निसंयोगेन शुद्धं भवति, तथा तपोयोगेन जीवः शुद्धो भवति ॥ ४६ ॥

किमर्थं सकारणा निर्जरा व्याख्याता बन्धादयश्च सहेतवः नित्यपक्षेऽनित्यपक्षे च किमर्थमिति । तत्सर्वं न घटते यतः कुतः ?

जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागं कसायदो कुणदि ।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ॥ ४७ ॥

चतुर्विधो बन्धः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदेन, कार्मणवर्गणागतपुद्गलानां ज्ञानावरणादिभावेन परिणामः प्रकृतिबन्धः । तेषां कर्म-

---

कैसा होय ? सो कहै है—संयम कहिए इंद्रियसंयम, प्राणसंयम—अैसे दोय प्रकार तथा योग कहिए—शुभ मन, वचन, काय अथवा ध्यान तिनि संयम तथा योगकरि युक्त होय सो कर्मनिकी निर्जरा करैं। बहुरि अनेक प्रकार बारह भेद रूप जो तप ता विषैं प्रवर्तै यह निर्जरा का उपाय है सो जीव विपुल कर्मनिर्ज्जरा विषै प्रवर्तैं, पूर्व सूत्रन विषैं हू अैसैं व्याख्यान जानना। बंधक-बंध-बंधोपाय, आश्रवक-आश्रव-आश्रवोपाय, संवरक-संवर-संवरोपाय—इस व्याख्यान करि पुनरुक्त दोष नांही होय है ॥ ४५ ॥

आगैं दृष्टांतद्वारकरि जीव-कर्म्म को शुद्धता का वर्णन करै हैं—

अर्थ—जैसैं कनकधातु कहिए—कनकोपल, धम्यूं हुवो (अर्थात्) अग्निकरिकैं तपायो हुवो, कीट कालिकादिक करि रहित शुद्ध स्वर्ण होय हैं। तैसैं यह जीव तपकरिकै तप्यो हुवो कर्म्मरहित शुद्ध होय ॥ ४६ ॥

आगैं कहैं हैं—निर्जरा कारण सहित वर्णन करि, बंधादिक कारण सहित वर्णन कीए। याका अभिप्राय यहु जो सर्वथा नित्यपक्ष विषैं, सर्वथा अनित्यपक्ष विषैं निर्जरादिक वणै नांही, सो ही कहै हैं—

अर्थ—१-प्रकृति बंध, २-स्थिति बंध, ३-अनुभाग बंध, ४-प्रदेश बंध—अैसे बंध च्यारि प्रकार है। अब इनिका स्वरूप कहिए है—

१—कार्माण वर्गणा सम्बन्धो आए जे पुद्गल तिनिका ज्ञानावरणादिभाव करि परिणाम होनां सो प्रकृति बंध कहिए।

---

१. अ, कणयत्व ।

रूपपरिणतानामनन्तानन्तानां जीवप्रदेशैः सह संश्लेषः प्रदेशबन्धः । तेषां जीवप्रदेशानुश्लिष्टानां जीवस्वरूपान्यथाकरण[1]स्सोऽनुभागबधः । तेषामेव कर्मरूपेण परिणतानां पुद्गलानां जीवप्रदेशैः सह यावत्कालस्थितिः । योगज्जीवाः प्रकृतिबन्धं च करोति । कषायेण स्थितिबन्धमनुभागन्धं च करोति अथवा योगः प्रकृतिबन्धं प्रदेशबन्धं च करोति । कषायाः स्थितिबन्धमनुभागबन्धं च कुर्वन्ति । यतोऽतोऽपरिणतस्य नित्यस्य, उच्छिन्नस्य निरन्वयक्षणिकस्य च बन्धस्थिते कारणं नास्ति । अथवाऽयमथिसम्बन्धः कर्तव्यो मिथ्यादृष्ट्याद्युपशान्तानामेतद् व्याख्यानं वेदितव्यं । कुतो यतो योगः प्रकृतिप्रदेशबन्धौ करोति कषायाश्च स्थित्यनुभागौ कुर्वन्ति, अतोऽपरिणतयोरयोगिसिद्धयो। सयोग्ययोगिनोर्वोच्छिन्नस्य क्षीणकषायस्य च बन्धस्थितेः कारणं नास्ति । ननु क्षीणकषायसयोगिनोर्योगोऽस्ति, सत्यमस्ति, किंतु तस्याकिंचित्करत्वादभाव एवेति ॥ ४७ ॥

निर्जराभेदार्थमाह—

पुव्वकदकम्मसडणं तु णिज्जरा सा पुणो हवे दुविहा[2] ।
पढमा विवागजादा विदिया अविवागजादा य ॥ ४८ ॥

अथ का निर्जरा ? पूर्वकृतकर्मसटनं गलनं निर्जरेत्युच्यते सा पुनर्निर्जरा द्विविधा द्विप्रकारा भवेत् । प्रथमा विपाकजातोदयस्वरूपेण कर्मानुभवनं । द्वितीया निर्जरा भवेदविपाकजातानुभवमन्तरेणैकहेलया कारणवशात् कर्मविनाशः ॥ ४८ ॥

२—बहुरि कर्म्म स्वरूप परिणये जे अनंता कार्माण वर्गणा संबंधो पुद्गल, तिनिका जीव-प्रदेशनि करि सहित संश्लेष होना सो प्रदेशबंध कहिए । ३—बहुरि जीव के प्रदेशनि विषै अनुश्लिष्ट जे कर्म-परमाणु तिनिकै जीव के स्वरूप कौं अन्यथा करणैं का है स्वभाव जाका अैसा जो रस सो अनुभागबंध कहिए । ४—बहुरि कर्मरूप परिणये जे पुद्गल तिनिका जीव के प्रदेशनि करि सहित जैंते काल अवस्थिति सो स्थिति-बंध कहिए ।

तहां यहु जीव है सो योगनितैं प्रकृति-बंध, प्रदेशबंध करै है अथवा योग है सो प्रकृति-बंध, प्रदेश बंध है, ताहि करै है । बहुरि कषाय है ते स्थिति बंध, अनुभाग बंध है ताहि करै है । यातैं अपरिणत कहिए नित्य-स्वरूप कै, बहुरि उच्छिन्न कहिए निरन्वय क्षणिक-स्वरूप कै बंध, स्थिति का कारण नांही, अथवा अैसा सम्बन्ध करनां—मिथ्यादृष्टि आदि उपशांत-कषाय पर्यंत यह व्याख्यान जाननां । जातैं अपरिणत कहिए सयोगी गुणस्थानवर्ती तथा अयोगी गुणस्थानवर्ती तथा सिद्ध । बहुरि उछिन्न कहिए क्षीणकषाय, इनिकै बंध, स्थिति का कारण नांही है ।

यहां कोउ कहे हैं—क्षीण-कषाय सयोगकेवलि कै योग बंध कारण है ? ताका समाधान—तिनिकै योग विद्यमान हैं तथापि कछु कार्यकारी नांही । तातैं (वह योग) अकिंचित्कर[3] (कुछ कार्य करने में समर्थ नहीं) है सो अभाव ही कहिए ॥ ४७ ॥

आगैं निर्ज्जरा के भेद कहै है—

अर्थ—पूर्वे कीए जे कर्म्म तिनिका सटन कहिए—गलनां, क्षिरनां (खिरना) सो निर्ज्जरा कहिए । बहुरि सो निर्ज्जरा दोय प्रकार है—१. तो उदय स्वरूपकरि कर्म का अनुभव सो सविपाकजा कहिए । २. बहुरि जो कर्म का अनुभव विना ही

---

१. क— °णशीलरसोऽ° । २. अ, ब दुविधा । ३. अ. ब. आकिंचित्कर ।

विपाकजाताविपाकजातयोर्निर्जरयोर्दृष्टान्तद्वारेण स्वरूपमाह—

कालेण उवाएण य पच्चंति जधा वणप्फदिफलाणि ।
तध कालेण [1]उवाएण च पच्चंति कदाणि कम्माणि ।। ४९ ।।

यथा कालेन क्रमपरिणामेनोपायेन च यवगोधूमादेर्वनस्पतेः फलानि पच्यन्ते तथा कालेनोदयागतगोपुच्छैरुपायेन च सम्यक्त्वज्ञानचारित्र-तपोभिः कृतानि कर्माणि पच्यन्ते विनश्यन्ति ध्वस्तीभवन्तीत्यर्थः ।। ४९ ।।

मोक्षपदार्थनिरूपयन्नाह—

रागी बंधइ कम्मं मुच्चइ जीवो विरागसंपण्णो ।
एसो जिणोवएसो समासदो बंधमोक्खाणं ।। ५० ।।

अत्रापि मोचको मोक्षो मोक्षकारणं च प्रतिपादयति बन्धस्य च बन्धपूर्वकत्वान्मोक्षस्य । रागी बध्नाति कर्माणि वीतरागः पुनर्जीवो मुच्यते । एष जिनोपदेशः आगमः समासतः संक्षेपात् कयोर्बन्धमोक्षयोः । संक्षेपेणायमुपदेशो जिनस्य, रागी बध्नाति कर्माणि वैराग्यं संप्राप्तः पुनर्मुच्यते इति ।। ५० ।।

अथ पदार्थान् संक्षेपयन् प्रकृतेन च योजयन्नाह—

णव य पदत्था[2] एदे जिणदिट्ठा वण्णिदा मए तच्चा ।
एत्थ भवे जा संका दंसणघादी हवदि एसो ।। ५१ ।।

एक हेला ही करि (लीला मात्र मैं) कारण के वशतैं कर्म्म का विनाश सो अविपाकजा कहिए ।। ४८ ।।

आगै विपाकजा, अविपाकजा भेदकरि दोय प्रकार जो निर्ज्जरा, ताका स्वरूप दृष्टांतद्वार करि कहैं हैं—

अर्थ—यथा कहिए जैसे जव (यव), गौहूं इत्यादिक वनस्पति के फल हैं, ते यथाकाल कहिए क्रम रूप तिनिका परिणाम, तिनिकरि पचै हैं। बहुरि उपाय करि हूँ पचे हैं, तैसैं कीए कर्म हैं ते यथाकाल उदय आए जे कर्मनि के गोपुछ कहिए गउ की पूंछि कैं आकार कर्मनिके स्पर्द्धक तिनकरि पचै है, निर्ज्जरै हैं ।। ४९ ।।

आगैं मोक्ष पदार्थ का निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ--रागी है सो कर्म्म हैं तिनहि बांधै है। बहुरि वैराग्य कूं प्राप्त भया वोतराग जोव है। सो कर्म्मनितैं मुक्त होय है। यह बंध-मोक्ष का संक्षेप तै भगवान उपदेश दिया है। इहां हूँ मोचक कहिए मोक्ष जावे वाला जोव, अर मोक्ष, अर मोक्ष का कारण--तोन प्रकार व्याख्यान है ।। ५० ।।।

अैसे नव पदार्थनि का संक्षेप वर्णन कोया। तिनिका यथार्थ श्रद्धानतैं सम्यक्त्व होय हैं।

---

१. तवेण य इत्यपि पाठः । २. अ, ब, पयच्छा ।

अथ का शंका नाम, एते ये व्याख्याता नवपदार्था जिनोपदिष्टाः, अनेन किमुक्तं भवति वक्तुः प्रामाण्याद्वचनस्य प्रामाण्यं, वर्णिता व्याख्याता मया। **तच्चा**—तत्त्वभूताः, जिनमतानुसारेण मयानुवर्णिता इत्यर्थः। **एत्थभवे**—एतेषु पदार्थेषु भवेत् यस्य शंका स जीवो दर्शनघात्येष मिथ्यादृष्टिः। अथवा शंका सन्दिग्धाभिप्राया सैषा दर्शनघातिनी स्यात् ॥ ५१ ॥

किमेते पदार्था नित्या आहोस्विदनित्याः, किं सन्त आहोस्विदविद्यमानाः, यथैते वर्णिता एतैरन्यैरपि बुद्धकणादाक्षपादादिभिश्च वर्णिता न ज्ञायन्ते के सत्या इति संशयो दर्शनविनाशहेतुरिति शंकां प्रतिपाद्याकांक्षां निरूपयन्नाह—

तिविहा य होइ कंखा इह परलोए तधा कुधम्मे य।
तिविहं पि जो ण कुज्जा दंसणसुद्धीमुवगदो सो ॥ ५२ ॥

त्रिविधा भवति कांक्षाभिलाष इहलोकविषया परलोकविषया तथा कुधर्मविषया च। इहलोके ममयदि गजतुरगद्रव्यपशुपुत्रकलत्रादिकं तदानीं शोभनोऽयं धर्मः परलोके चैतन्मम स्यात्, भोगा मे सन्तु लोकधर्मश्च शोभनः सर्वपूज्यस्तमहमपि करोमीति कांक्षा। तां त्रिप्रकारामपि यो न कुर्यात् स जीवो दर्शनशुद्धिमुपगतः। कांक्षामन्तरेण यदि सर्वं लभ्यते किमिति कृत्वा काङ्क्षा क्रियते। निंद्यते च सर्वैः काङ्क्षावानिति ॥ ५२ ॥

ताके शंकादिक दोष है, तिनिका वर्णन करै है—

अर्थ—ये नव पदार्थ जिन-भगवानकरि उपदेशे, मैंने वर्णन कीए हैं, सो वक्ता के प्रमाणतैं वचनि का प्रमाण है। यहां वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो इनि तत्त्वनिका श्रद्धान करनां। इनि पदार्थनि विषैं जिस जीव कै शंका कहिए संदेह रूप अभिप्राय है सो जीव दर्शनघाती कहिए मिथ्यादृष्टि है अथवा इन पदार्थनि विषैं शंका कहिए संदेह रूप अभिप्राय है, सो यहु शंका दर्शनघातिनी कहिए सम्यक्त्व के विनाश का कारण हैं ॥ ५१ ॥

शंका का स्वरूप कहै हैं—ए पदार्थ वर्णन कीये हैं—ते नित्य हैं कि अनित्य हैं? सत् रूप हैं कि असत् रूप है? जैसै इनिनै वर्णन कीए हैं तैसे अन्यमत वाले बौद्ध कहिए बौद्धमत का आचार्य, कणाद कहिए वैशषिक मत का आचार्य, अक्षपाद कहिए नैयायिक मत का आचार्य—इत्यादिक आचार्यंनि नैं अनेक प्रकार वर्णन कीये हैं। न जानिए कौन सांचे है? अैसा संशय है, सो दर्शन के विनाश ही का कारण है ॥ ५१ ॥

अैसे शंका का प्रतिपादनकरि आगैं कांक्षा का निरूपण करैं हैं—

अर्थ—कांक्षा कहिए—अभिलाष—सो तीन प्रकार है—१. इहलोक कै विषै मैंरे जो हाथी, घोड़े, धन, पशु, पुत्र, कलत्रादिक संपत्ति होय तौ इह धर्म भला जानहु। अैसा जो वांछा है सो इहलोक विषै आकाक्षां है। २. बहुरि परलोक विषैं यहु संपत्ति मेरे होहु, भोग मेरे होहु—अैसी जो वांछा सो परलोक विषै आकांक्षा है। ३. बहुरि लौकिक धर्म है सो भी भला है। सर्व लोक जाकूं पूजै है सो मैं भी करूं—अैसी जो वांछा सो कुधर्म विषै आकांक्षा है।

अैसे इहलोक विषैं या परलोक विषै या कुधर्म विषैं या तीन प्रकार जो आकांक्षा—जो नांही करैं हैं सो दर्शन की शुद्धता को प्राप्त होय हैं।

इह लोकाकाङ्क्षां परलोकाकांक्षां च प्रतिपादयन्नाह—

बलदेवचक्कवट्टीसेट्ठीरायत्तणादिअहिलासो ।
इहपरलोगे देवत्तपत्थणा दंसणाभिघादी सो ।। ५३ ।।

बलदेवचक्रवर्तिश्रेष्ठयादीनां राज्याभिलाष इहलोके यो भवति सेहलोकाकाङ्क्षा । परलोके च स्वर्गादौ देवत्वप्रार्थना यस्य स्यात् दर्शनाभिघाती सः । इहलोके षट्खण्डाधिपतित्वं, बलदेवत्वं, राजश्रेष्ठित्वं, परलोके इन्द्रत्वं, सामान्यदेवत्वं, महर्द्धिकत्वं, [1]स्वस्वरूपत्वमित्येवमादि प्रार्थयन् मिथ्यादृष्टिर्भवति, निदानशल्यत्वात्कांक्षयेति ।। ५३ ।।

कुधर्मकांक्षास्वरूपमाह—

रत्तवडचरगतावसपरिहत्तादीणमण्णतित्थीणं ।[2]
धम्मह्मि य[3] अहिलासो कुधम्मकंखा हवदि एसा ।। ५४ ।।

रक्तपट-चरक-तापस-परिव्राजकादीनामन्यतीर्थिकानां धर्मविषये योऽभिलाषः कुधर्मकांक्षैषा भवति । चत्वारो रक्तपटा वैभाषिकसौत्रान्तिकयोगाचारमाध्यमिकभेदात् । नैयायिकवैशेषिकदर्शने चरकशब्देनोच्यते कणचरादिर्वा । कन्दफलमूलाद्याहारा भस्मोद्गुण्ठनपरा जटाधारिणो विनयपरास्तापसाः । सांख्यदर्शनस्थाः पंचविंशतितत्त्वज्ञाः परिव्राजकशब्देनोच्यन्ते इत्येवमाद्यन्येष्वपि तैर्थिकमतेष्वभिलाषः कुधर्मकांक्षेति । कथमेषां कुधर्मत्वं चेत् पदार्थानां तदीयानां विचार्यमाणानामयोगात्सर्वथा नित्यक्षणिकोभयत्वात् । इन्द्रियसंयमप्राणसंयमजीवविज्ञानपदार्थसर्वज्ञपुण्यपापादीनां परस्परविरोधाच्चेति ।। ५४ ।।

जो कांक्षा विना ही सर्व पाइए तो कांक्षा किसै अर्थि करिए ? कांक्षावान् तो सर्व हो करि निंदा योग्य होय हैं ॥ ५२ ॥

आगैं इहलोक कांक्षा, परलोक कांक्षा का स्वरूप कहै है—

अर्थ—इह कहतां इस लोक विषै जाकै बलभद्र होनैं का, षट्खंड का अधिपति चक्रवर्ति होनैं का, राजश्रेष्ठी होने का—इत्यादिक संपत्ति का अभिलाष, बहुरि परलोक विषैं इन्द्र होनैं की, सामान्य देव होने की, महाऋद्धिधारी देव होनें की इत्यादिक प्रार्थनां होय सो जोव दर्शनाभिघातो कहिए मिथ्यादृष्टि हो है। काक्षां है सो निदान-शल्य है ॥ ५३ ॥

आगैं कुधर्म्म विषयक कांक्षा का स्वरूप कूं कहैं है—

अर्थ—रक्तपटनि[4] के भेद च्यारि—वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार और माध्यमिक। तथा चरक कहिए नैयायिक, वैशेषिक मत वाले, वा कणचरादिक तथा तापस कहिए—कंद, फल, मूल—इत्यादिक का आहार करनैं वाले, भस्म लगावन हारे, जटाधारी, विनय कैं विषै तत्पर अैसे तथा परिव्राजक कहिए सांख्यमत में तिष्ठते, पचोस तत्त्व के जाननैं वारे। इनिकूं आदि देकरि अन्यमतो तिनिका धर्म कै विषै अभिलाष सो कुधर्म्म-कांक्षा कहिए।

इहां कोउ पूछै इनिकै कुधर्म्मपणां कैसें ? ताका समाधान—इनिकै कहे पदार्थनिकौं विचारतै संतै अयुक्तपणां है।

१. क स्वरूप० । २. क परिभत्त० । ३. ब धम्मंहि अ । ४. बौद्धधर्मदर्शन ।

विचिकित्सास्वरूपमाह—

बिदिगिंच्छा वि य दुविहा दव्वे भावे य होइ णायव्वा ।
उच्चारादिसु दव्वे खुधादिए भाव विदिगिंछा ॥ ५५ ॥

विचिकित्सापि द्विप्रकारा द्रव्यभावभेदात् भवति ज्ञातव्या उच्चारप्रश्रवणादिषु मूत्रपुरीषादिदर्शने विचिकित्सा द्रव्यगता क्षुधादिषु क्षुत्तृष्णानग्नत्वादिषु भावविचिकित्सा व्याधितस्य वान्यस्य वा यतोमूत्राशुचिच्छर्दिश्लेष्मलालादिकं यदि दुर्गन्धिविरूपमिति कृत्वा घृणां करोति वैयावृत्यं न करोति स द्रव्यविचिकित्सायुक्तः स्यात् । सर्वमेतच्छोभनं न क्षुधातृष्णानग्नत्वेन केशोत्पाटनादिना च दुःखं भवति एतद्विरूपकमित्येवं भावविचिकित्सेति ॥ ५५ ॥

द्रव्यविचिकित्साप्रपंचनार्थमाह—

उच्चारं पस्सवणं खेलं सिंघाणयं च चम्मट्ठी ।
पूयं च मंससोणिदवंतं जल्लादि साधूणं ॥ ५६ ॥

उच्चारं, प्रश्रवणं, खेलं—श्लेष्मा, सिंहानकं, चर्म, अस्थिपूयं च क्लिन्नरुधिरं, मासं[1], खलं, शोणितं, वान्तं जल्लं सर्वांगीनं मलं, अंगैकदेशाच्छादकं, लालादिकं च साधूनामिति ॥ ५६ ॥

सर्वथा नित्य, क्षणिक, उभयपनैं तैं । बहुरि इन्द्रिय-संयम, प्राण-संयम, जीव, ज्ञान (विज्ञान), पदार्थ, सर्वज्ञ, पुण्य-पापादिक कैं (के विषय में इन सभी के यहाँ) परस्पर विरोध है ।

यातैं आगैं विचिकित्सा का स्वरूपकूं कहै हैं—

अर्थ—विचिकित्सा दोय प्रकार है—एक द्रव्य विचिकित्सा, दूजी भाव विचिकित्सा । तहा रोग सहित तथा अन्य मुनिराज का मूत्र-पुरीष, छर्दि, श्लेष्म, लाल (लार)—इत्यादिक देखिकरि—जो दुर्गंध है, विरूप है—ऐसा विचार करि ग्लानि करै, वैयावृत्य नांही करैं—सो द्रव्यविचिकित्सा कहिए । बहुरि मुनिनिकैं सब बात अच्छी हैं, परंतु क्षुधा-तृषा का सहनां, नग्नपनां, केशनिका उपाड़ना—इत्यादिक करि तौ दुःख होता है, यह तो विरूपक हैं—ऐसा विकल्प करनां सो भाव विचिकित्सा कहिए ॥ ५५ ॥

आगैं द्रव्य विचिकित्सा का विस्तार रूप अर्थ कहैं हैं—

अर्थ—साधु के शरीर संबंधी उच्चार कहिए पुरीष (मल), प्रश्रव कहिए मूत्र, श्लेष्मा कहिए कफ, सिंघानक कहिए नासिका का मल, चर्म्म कहिए चांम, अस्थि कहिए हाड, पूतिक कहिए—विगड्या रुधिर (पोप) राधि, मांस, शोणित कहिए रुधिर, वांत कहिए वमन छर्द्दि, जल्ल कहिए सर्वांग मल, आदि शब्दकरि अंग के एकदेश का मल तथा लाल (लार) इत्यादिक जाननें, इनिकै विषैं जो ग्लानि का करनां सो द्रव्यविचिकित्सा कहिए ॥ ५६ ॥

१. क—मांसं शोणितं रक्तं जल्लं ।

भावविचिकित्सां प्रपंचयन्नाह—

छुहतण्हा सीदुण्हा दंसमसयमचेलभावो य ।
अरदिरदिइत्थिचरियाणिसीधिया सेज्जअक्कोसो[1] ॥ ५७ ॥
बधजायणं अलाहो रोग तणप्फास जल्लसक्कारो ।
तह चेव पण्णपरिसह अण्णाणमदंसणं खमणं ॥ ५८ ॥

क्षुह—क्षुत् चारित्रमोहनीववीर्यान्तरायापेक्षयाऽसातावेदनीयोदयादशनाभिलाषः । **तण्हा**—तृषा चारित्रमोहनीयवीर्यान्तरायपेक्षाऽसातावेदनीयोदयादुदकपानेक्षा । **सीद**—शीतं तद्द्वयपेक्षाऽसातोदयात्प्रावरणेच्छाकारणपुद्गलस्कंधः । **उण्हा**—उष्णं पूर्वोक्तप्रकारेण सन्निधाच्छीताभिलाषकारणादित्यज्वरादिसन्तापः । **दंसमसयं**—दंशाश्च मशकाश्च दंशमशकं दंशमशकैः खाद्यमानस्य शरीरपीडा दंशमशकमित्युच्यते कार्ये कारणोपचारात् । **अचेलभावो य**—अचेलकत्वं नाग्न्यमिति यावत् । **अरदिरदि**—अरतिरती चारित्रमोहोदयात् चारित्रद्वेषासंयमाभिलाषौ । **इत्थि**—स्त्रीकटाक्षेक्षणादिभिर्योषिद्बाधा कार्ये कारणोपचारात् । **चरिया**—चर्या आवश्यकाद्यनुष्ठानपरस्यातिश्रान्तस्याप्युपानत्कादिरहितस्यापि मार्गयानं ।

आगैं भाव चिकित्सा का विस्तार कहैं हैं—

अर्थ—१. चारित्र मोहनीय कर्म्मं, वोर्यांतराय कर्म को है अपेक्षा जाकै अैसा जो असाता-वेदनोय कर्म का उदय तातैं भोजन के विषै अभिलाष सो क्षुधा कहिए।

२. बहुरि चारित्र मोहनोय कर्म्म वीर्यांतराय कर्म्म (कर्म) को है अपेक्षा जाकै अैसा जो असाता वेदनीय का उदय तातैं जल पीवनैं की जो इच्छा सो तृषा परीषह कहिए।

३. बहुरि चारित्र मोहनीय कर्म्म की है अपेक्षा जाकै अैसा जो असाता वेदनोय का उदय तातैं आवरण की इच्छा का कारण जे पुद्गल स्कंध सो शीत कहिए।

४. बहुरि चारित्र मोहनीय कर्म्म वीर्यांतराय कर्म की हैं अपेक्षा जाकूं अैसा जो असातावेदनोयकर्मं ताकैं उदय तैं शोताभिलाष का कारण जो आदित्य का तथा ज्वरादिक का संताप सो उष्ण कहिए।

५. बहुरि दंश कहिए—डांस, मशेक कहिए मांछर, तिनकरि काटनें तै शरोर विषैं पीड़ा होय सोइ कार्य कैं विषैं कारण का उपचार करने तैं दंशमशक कहिए।

६. बहुरि अचेलकपनां—नग्नपणां वस्त्रादि रहितपणां सो अचेलभाव कहिए।
७. बहुरि चारित्रमोह के उदय तैं चारित्र तैं दोष, असंयम का अभिलाष सो अरति-रति कहिए।
८. बहुरि स्त्री के कटाक्ष ईक्षणादि करि स्त्री आदि बाधा कारण कैं विषै कार्य का उपचार करनैं तैं स्त्रोपरिषह कहिए।

१. क– आकोसो ।

निसीधिया—निषिद्या श्मशानोद्यानशून्यायतनादिषु वीरासनोत्कुटिकाद्यासनजनितपीडा। **सेज्जा**—शय्या स्वाध्यायध्यानाध्वश्रमपरिखेदितस्य खर-विषमप्रचुरशर्कराद्याकीर्णभूमौ शयनस्यैकपार्श्वे दण्डशयनादिशय्याकृतपीडा। **अक्कोसो**—आक्रोशस्तीर्थयात्राद्यर्थपर्यटतः मिथ्यादृष्टिविमुक्तावज्ञासंघ-निन्दावचनकृताबाधा। **वह**—बधः मुद्गरादिप्रहरणकृतपीडा। **जायणं**—अयाञ्चा अकारोत्र लुप्तो द्रष्टव्यः प्राणात्ययेऽपि रोगादिभिः पीडितस्या-याचयतः अयाञ्चापीडा। अथवा वरं मृतो न कश्चिद्याचितव्यः शरीरादिसंदर्शनादिभिः यांचा तु नाम महापीडा। **अलाहो**—अलाभः अंतराय-कर्मोदयादाहाराद्यलाभकृतपीडा। **रोय**—रोगो ज्वरकासभगन्दरादिजनितव्यथा। **तणफास**—तृणस्पर्शः शुष्कतृणपरुषशर्कराकण्टकनिशितमृत्तिका-कृतशरीरपादवेदना। **जल्ल**—सर्वांगोणं मलमस्नानादिजनितप्रस्वेदाद्युद्भवा पीडा। **सक्कारो**—सत्कारः पूजाप्रशंसात्मकः। **पुरस्कारो**—नमनक्रिया-रम्भादिष्वग्रतः करणमामंत्रणं। **तह चेव**—तथा चैव। **पण्ण**—प्रज्ञा विज्ञानमदोद्भूतगर्वः। **परिसह**—परिषहः। पोडाशब्दः सर्वत्रापि सम्बध्यते।

---

९. बहुरि आवश्यकादि का अनुष्ठान विषै तत्पर अति खेदित पग रखो इत्यादिक करि रहित मुनिराज का मार्ग कैं विषैं जाननां सो चर्या कहिए।

१०. बहुरि मसान, उद्यान, शून्यायतन इत्यादिक स्थानानि विषैं वीरासन, उत्कुटिकासन इत्यादिक आसननि करि बैठनें तैं भई जो पीड़ा सो निषद्या कहिए।

११. बहुरि स्वाध्याय, ध्यान मार्ग का खेदकरि खेदित जो मुनिराज तिनकै कठोर, विषम बहुत कांकरांनि भूमि के व्याप्त भूमि कै विषै एक पसवाड़ा करि दण्ड शयनादि सोवनें तैं भई जा पोड़ा सा शय्या परिषह कहिए।

१२. बहुरि तोर्थ यात्रादिक के अर्थि भ्रमण करता मुनिराज के मिथ्यादृष्टीनि करि जो अवज्ञा नांहो सहे जाये—अैसैं निंदावचन तिनकरि भई जो बाधा सो आक्रोश परिषह कहिए।

१३. बहुरि मुद्गरादिक का प्रहार[1] करि जो पोड़ा सो वध कहिए।

१४. बहुरि रोगादिक करि पीड़ित मुनिराज प्राणनिका विनाश होतैं भो याचना करै नांहो तथा अैसा विचारै जो मरण श्रेष्ठ परंतु जो कोउ कूं शरीरादिक दिखाय करि भो याचनां नांहो करनां सो अयाचनां पोड़ा कहिए।

१५. बहुरि अंतरायकर्म के उदयतैं आहारादिक का अलाभतैं भई जो पोड़ा सो अलाभ कहिए।

१६. बहुरि ज्वर, श्वास, भगंदर इत्यादि करि उत्पन्न भई जो पोड़ा सो रोग कहिए।

१७. बहुरि सूका तृण, कठोर, कांकरा, कांटा, तीक्षण, मृत्तिका ताकरि भई सरीर विषै, पादनि विषैं जो वेदनां सो तृण-स्पर्श कहिए।

१८. बहुरि अस्नानादि करि उपज्या प्रस्वेद, रज आदिकरि जम्यां सर्व अंग विषै जल ताकरि भई जो पीड़ा सो मल कहिए।

१९. बहुरि सत्कार कहिए पूजा, प्रशंसा नमनादिक, पुरस्कार कहिए क्रिया का आरंभादिक विषै अग्रेसर करना, बुला-वनां मो कोई सत्कार पुरुस्कार नांहो करै। ताको जो पोड़ा सो सत्कार पुरुस्कार कहिए।

---

१. ब परिहार।

क्षुत्परिषहः, तृणपरिषहः, दंशमशकपिपीलिकामत्कुणादिभक्षणपरीषह इत्यादि। **अण्णाणं**—अज्ञानं सिद्धान्तव्याकरणतर्कादिशास्त्राप रिज्ञानोद्भूतमनः सन्तापः। **अदंसणं**—अदर्शनं महाव्रतानुष्ठानेनाप्यदृष्टातिशयबाधा, उपलक्षणमात्रमेतत् अन्येप्यत्र पीडाहेतवो द्रष्टव्याः। एतैः परिषहैर्व्रताद्यभंगेऽपि संक्लेशकरणं भावविचिकित्सा। **खमणं**—क्षमणं सहनं तत्प्रत्येकमभिसम्बध्यते क्षुत्परीषहक्षमणं तृणपरीषहक्षमणमित्यादि। ततः परीषहजयो भवति ततश्च भावविचिकित्सा दर्शनमलं निराकृतं भवतीति ॥ ५७–५८ ॥

दृष्टिमोहप्रपंचनार्थमाह—

लोइयवेदियसामाइएसु तह अण्णदेवमूढत्तं।
णच्चा दंसणघादो ण य कायव्वं ससत्तीए ॥ ५९ ॥

लोइय—लोकः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रास्तस्मिन् भवो लौकिकः आचार इति सम्बन्धः। **वेदेषु**—सामऋग्यजुःषु भवो वैदिकः आचारः। **समयेषु**—नैयायिकवैशेषिकबौद्धमीमांसकापिललोकायतिकेषु भव आचारः सामयिकस्तेषु लौकिकवैदिकसामयिकेषु आचारेषु क्रियाकलापेषु तथान्यदेवकेषु। **मूढत्तं**—मूढत्वं मोहः परमार्थरूपेणं ग्रहणं तद्दर्शनघाति। सम्यक्त्वविनाशं ज्ञात्वा तस्मात्तन्मूढत्वं सर्वशक्त्या न कर्तव्यं ॥ ५९ ॥

---

२०. बहुरि विज्ञान के मद तैं उत्पन्न भया जो गर्व्व ताको जो पोडा सो प्रज्ञा कहिए।

२१. बहुरि सिद्धान्त, व्याकरण, तर्क इत्यादि शास्त्रनिका ज्ञान नांही हूवा तातैं उपज्या जो मन विषै संताप सो अज्ञान कहिए।

२२. बहुरि महाव्रतादिक का अनुष्ठान करतै संतै अतिशय चमत्कार नाहीं होनें तै उपज्या जो चित्त विषैं खेद सो अदर्शन परीषह कहिए।

अैसे उपलक्षण मात्र कह्या है। अन्य भी पोड़ा के हेतु जो होय सो हु यहां जाननें। इन परिषहनि करि व्रतादिक का अभंग होतैं संतै भी संक्लेश करना सो भाव विचिकित्सा है सो दर्शन का मल है। इनि क्षुधादिकनिका दमन कहिए सहनां, परोषह का जीतनां सो भाव विचिकित्सा रूप सम्यक्त्व के दोष का निराकरण है॥ ५७-५८ ॥

आगैं दृष्टिमोह को विस्तार कैं अर्थि कहै हैं—

अर्थ—मूढता के च्यारि विशेष कहै है—१. लौकिक मूढता, २. वैदिक मूढता, ३. सामयिक मूढता, ४. अन्यदेव मूढता। तिनिकूं दर्शन के घातक जानि अपनी सर्वशक्ति प्रगट करि यथार्थ जानिकरि मूढ़ता नांही करणां। तहां लोक कहिए—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—तिनिकै विषै परमार्थ माननां, परमार्थरूप करि ग्रहण करनां सो लौकिक-मूढ़ता है। बहुरि वेद कहिए—सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद—इन वेदन के विषै कह्या जो आचार सो वैदिकाचार विषैं परमार्थ माननां, परमार्थ रूप करि ग्रहण करना सो वैदिक मूढ़ता है। बहुरि समय कहिए नैयायिक मत, वैशेषिक मत, बौद्धमत, मीमांसक मत, सांख्यमत, लोकायत (चार्वाक) नास्तिक मत—इनिकै विषै जो आचार सो सामयिकाचार कहिए। सामयिकाचार विषैं परमार्थ माननां, परमार्थरूप करि ग्रहण करनां सो सामयिक मूढ़ता है॥ ५९ ॥

लौकिकमूढत्वप्रपंचनार्थमाह—

कोडिल्लमासुरक्खा भारहरामायणादि जे धम्मा ।
होज्जु व तेसु विसुत्ती लोइयमूढो हवदि एसो ।। ६० ।।

कोडिल्ल—कुटिलस्य भावः कौटिल्यं तदेव प्रयोजनं यस्य धर्मस्य सः कौटिल्यधर्मः ठकादिव्यवहारो लोकप्रतारणाशीलो धर्मः परलोकाद्यभावप्रतिपादनपरो व्यवहारः । **आसुरक्खा**—असवः प्राणास्तेषां छेदनभेदनताडनत्रासनोत्पाटनमारणादिप्रपंचेन वञ्चनादिरूपेण वा रक्षा यस्मिन् धर्मे स आसुरक्षो धर्मो नगराद्यारक्षिकोपायभूतः । अथवा कौटिल्यधर्मः, इंद्रजालादिकं पुत्रबन्धुमित्रपितृस्वाम्यादिघातनोपदेशः, चाणक्योद्भव आसुरक्षः मद्यमांसखादनाद्युपदेशः । बलाधानरोगाद्यपनयनहेतुः वैद्यधर्मः । भारतरामायणादिकाः पंचपाण्डवानामेका योषित्, कुंतिश्च पंचभर्तृका, विष्णुश्च सारथिः, रावणादयो राक्षसाः, हनुमानादयश्च मर्कटाः इत्येवमादिका असद्धर्मप्रतिपादनपरा ये धर्मास्तेषु या भवेद्विश्रुतिर्विपरिणामः एतेपि धर्मा इत्येवं मूढो लौकिकमूढो भवत्येष इति ।। ६० ।।

वैदिकमोहप्रतिपादनार्थमाह—

रिव्वेदसामवेदा वागणुवागादिवेदसत्थाइं[1] ।
तुच्छाणित्तिण[2] गेण्हइ वेदियमूढो हवदि एसो ।। ६१ ।।

बहुरि अन्य देवनि विषै जो मूढ़ता सो देवमूढ़ता कहिए ।

आगै लौकिक मूढ़ता का विस्तार कहै है ।

अर्थ—कौटिल्य कहिए कुटिलता, सो है प्रयोजन जाका, अैसा लौकिक धर्म, ठग विद्यादि रूप भोले लोकनिके ठगने कूं, परलोकादिक का अभाव कहि करि प्रवर्ता या व्यवहार । बहुरि असु कहिए—अपनें प्राण, तिनिको अन्य जोवनि का छैंदन-भेदन, ताडन, त्रासन, उत्पाटन-मारण, वंचनादिक रूप करि (प्राणों की)रक्षा जामैं वर्णनकरि, अैसा लौकिक नीतिधर्म्म, कोटपाल आदिकनि कैं नगरादिक को रक्षा के उपायभूत ।

अथवा इंद्रजालादिक तथा पुत्र, बंधु, मित्र, पिता, माता, स्वामो इत्यादिक का भो घातनैं का उपदेश चालिल्य (चाणक्य) का नीति इत्यादिक सो कौटिल्य कहिए तथा मद्य-मांसादिक करवानैं का उपदेश, शरीर विषैं बल (शक्ति) कै अर्थि रोगादिक का निराकरण के अर्थि वैद्यधर्म्म सो आसुरक्षा कहिए । बहुरि भारत, रामायणादिक विषैं कह्या पंच पांडवनि कैं एक द्रोपदी[3] स्त्रो है सो पंचभर्तृका है। बहुरि विष्णु (कृष्ण) है सो अर्जुन का सारथो है। रावणादिक हैं ते राक्षस हैं, हनुमानादिक है ते वानर हैं। इत्यादिक असत्य स्वरूप के प्रतिपादन करन-हारे जे धर्म्म तिनि विषै यहु धर्म है—अैसा मूढता रूप परिणाम सो लौकिक मूढ़ता कहिए ।। ६० ।।

आगै वैदिक मूढ़ता का स्वरूप कहै है—

---

१. माणिकचन्द०, ज्ञानपीठ०—वादादि । २. तुच्छाणित्तणि—मु० । ३. ब प्रति में कुन्ती ।

रिव्वेद—ऋग्वेदः । **सामवेदः** । **वाग**—वाक्, ऋचः । **अणुवाग**—अनुवाक् कंडिकासमुदायः । अथवा वाक्—ऋग्वेदप्रतिबद्धप्रायश्चित्तादिः, अनुवाक् मन्वादिस्मृतयः । आदि शब्देन यजुर्वेदाथर्वणादयः परिगृह्यन्ते । **वेदसत्थाइं**—वेदशास्त्राणि हिंसोपदेशकानि अग्न्यादिकार्यप्रतिपादकानि । गृह्यसूत्रारण्यगर्भाधानपुंसवननामकर्मान्नप्राशनचौलोपनयनव्रतबन्धनसौत्रामण्यादिप्रतिपादकानि नन्दकेशर[1]गौतमयाज्ञवल्क्यपिप्पलादवररुचिनारदवृहस्पतिशुक्रबुद्धा[2]दिप्रणीतानि तुच्छानि धर्मरहितानि निरर्थकानीति यदि न गृह्णाति तदासौ वैदिकाचारमूढो भवत्येष इति ।। ६१ ।।

सामयिकमोहप्रतिपादनार्थमाह—

रत्तवडचरगतावसपरिहत्ता[3]दीय अण्णपासंडा ।
संसारतारगत्ति य जदि गेण्हइ[4] समयमूढो सो ।। ६२ ।।

रत्तवड—रक्तपटः । **चरग**—चरकः । काजवाहेन कणभिक्षाहाराः, अथवा भिक्षावेलायां हस्तलेहनशीला उत्सिष्टाः कालमुखादयः । **तावसा**—तापसाः कन्दमूलफलाद्याहारा वनवासिनः जटाकौपीनादिधारिणः । **परिहत्ता**—परिव्राजका एकदण्डित्रिदण्डयादयः स्नानशीला शुचिवादिनः । आदिशब्देन शैव-पाशुपतकापालिकादयः परिगृहयन्ते । (अण्ण पासंडा—) । एते लिंगिनः संसारतारकाः शोभनानुष्ठाना यद्येवं गृह्णाति समयमूढोऽसाविति ।। ६२ ।।

देवमोहप्रतिपादनार्थमाह—

ईसरबंभाविण्हूअज्जाखंदादिया य जे देवा ।
ते देवभावहीणा देवत्तणभावणे मूढो ।। ६३ ।।

अर्थ—ऋग्वेद, सामवेद, वाक् कहिए वेद को ऋचा, अनुवाक् कहिए—कंडिका समूह अथवा वाक् कहिए—ऋग्वेद करि प्रतिबद्ध प्रायश्चितादिक, अनुवाक् कहिए—मन्वादि(मनु आदि ऋषि), आदि शब्दकरि यजुर्वेद, अथर्वणादिक ये वेद शास्त्र हैं, ते हिंसा के उपदेशक हैं । अग्नि-होम इत्यादिक कार्यनि के प्रतिपादक हैं । गृह्यसूत्र, आरण्यक, गर्भाधान, पुंसवन, नामकर्म, अन्नप्राशन, चौल-उपनयन[5], व्रतवंधन, सौत्रामिणि इत्यादिक के प्रतिपादक हैं—नंदिकेश्वर, गोतम, याज्ञवल्क्य, पिप्पलाद, वररुचि, नारद, वृहस्पति, शुक्र, बुध आदि करि प्रणीत हैं ते तुच्छ हैं, धर्म रहित हैं, निरर्थक हैं—अैसे जो नांही ग्रहण करै हैं सो वैदिकाचार मूढ है ।। ६१ ।।

आगैं सामायिक मूढ़ता का स्वरूप कहै है—

अर्थ—रक्तपट कहिए वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार, माध्यमिक तथा चरक कहिए नैयायिक, वैशेषिक वा कण भिक्षा तैं है आहार जिनिकै अथवा भिक्षा बेला विषैं हाथ चाटने का है स्वभाव जिनिका, अैसे उत्सिष्टा कालमुखादिक तथा तापस कहिए कंदमूल फलादिक के आहार करनै वाले वनवासो, जटा कोपीनादिक के धारी, तथा परिव्राजक कहिए एक दंडो, त्रिदंडी आदिक स्नान करनैं का है स्वभाव जिनिका—शुचिवादी । आदि शब्दकरि शैव, पाशुपत, कापालिक इत्यादिक जे अन्य पाखंडी लिंगी है, ते संसार तै तारने वाले हैं । इनिका अनुष्ठान भला है, जो अैसे ग्रहण करें सो सामायिक मूढता है ।। ६२ ।।

१. क केश्वर । २. क बुधा । ३. क परिभत्तरी॰ । ४. क गिण्हदि । ५. ब, चौलोपनयन ।

ईश्वर-ब्रह्म-विष्णु-भगवती-स्वामिकार्तिकादयो ये देवास्ते देवभावहीनाः चतुर्णिकायदेवस्वरूपेण सर्वज्ञत्वेन च रहितास्तेषूपरि यदि देवत्वपरिणामं करोति तदानीं देवत्वभावेन मूढो भवतीत्यर्थः ।। ६३ ।।

उपगूहनस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

दंसणचरणविवण्णे जीवे दट्ठूण धम्मभत्तीए ।
उपगूहणं करितो दंसणसुद्धो हवदि एसो ।। ६४ ।।

दर्शनचरणविपन्नान् सम्यग्दर्शनचारित्रम्लानान् जीवान् दृष्ट्वा धर्मभक्त्या वा उपगूहयन् उज्वलयन् संवरयन्वा एतेषामूपगूहनं संवरणं कुर्वन् दर्शनशुद्धो भवत्येष उपगूहनकर्तेति ।। ६४ ।।

स्थिरीकरणस्वरूपं प्रतिपादनायाह—

दंसणचरणुवभट्ठे[1] जीवे दट्ठूण धम्मबुद्धीए ।
हिदमिदमवगूहिय ते खिप्पं तत्तो णियत्तेइ ।। ६५ ।।

दर्शनचरणोपभ्रष्टान् सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रेभ्यो भ्रष्टान्निर्गतान् जीवान् दृष्ट्वा धर्मबुद्धया हितमितवचनैः सुखनिमित्तैः पूर्वापर विवेकसहितैर्वचनैरवगूह्य स्वीकृत्य तेभ्यो दोषेभ्यः क्षिप्रं शीघ्रं तान्निर्वर्तयन् निवर्तयति यः स स्थिरीकरणं कुर्वन् दर्शनशुद्धो भवतीति सम्बन्धः ।। ६५ ।।

आगैं देवमूढता का स्वरूप कहै है—

अर्थ—ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, पार्वती, स्वामि कार्तिकेय इत्यादिक जे देव कहिए हैं ते देवभावकरि हीन हैं। जातैं परमार्थ देव तो सर्वज्ञ हैं। अर व्यवहार देव च्यारि प्रकार के देवता हैं। तातैं ईश्वरादि विषैं दोन्यू ही प्रकारतैं देवभाव का अभाव है। इनि विषै जो देवपणैं का भाव करै हैं सो देवता-मूढ (देवमूढ) है ।। ६३ ।।

आगैं उपगूहन का स्वरूप के प्रतिपादन कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—दर्शन कहिए सम्यग्दर्शन, सम्यक्-चरण[2] कहिए सम्यक्चारित्र तिनि विषै, विपन्न कहिए म्लान सदोष जे जीव, तिनिकूं देखि धर्म्म की भक्तिकरि तिनिके दोष-ज्ञान का उपगूहन करता, तिनिकूं उज्जवल करता, दोषनि का संवरण करता, शुद्ध है सम्यक्त्व जाकै—अैसा होय है ।। ६४ ।।

आगैं स्थिरीकरण के स्वरूप का प्रतिपादन कै अर्थि कहै है—

अर्थ—सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्रतैं भ्रष्ट होते जीवनिकूं देखि धर्म्मबुद्धि करि, पूर्वापर विवेक सहित, सुख के निमित्त अैसे हित-मित-वचन तिनिकरि, उनकूं अपनैं करि, तिनिकूं दोषनितैं निवर्त्त करै, सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र विषै स्थिर करैं—सो शुद्ध सम्यक्त्वी होय—अैसा संबंध जाननां ।। ६५ ।।

---

१. क चरणपभट्टे । २. अ. सम्यग्ज्ञाचरण ।

वात्सल्यार्थं प्रतिपादयन्नाह—

चादुव्वण्णे संघे चदुगदिसंसारणित्थरणभूदे ।
वच्छल्लं कादव्वं वच्छे गावी जहा गिद्धी ।। ६६ ।।

चातुर्वर्णे ऋष्यार्जिकाश्रावकश्राविकासमूहे संघे चतुर्गतिसंसारनिस्तरणभूते नरकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिषु यत्संसरणं भ्रमणं तस्य विनाशहेतौ वात्सल्यं यथा नवप्रसूता गौर्वत्से स्नेहं करोति । एवं वात्सल्यं कुर्वन् दर्शनविशुद्धो भवति । वात्सल्यं च कायिक-वाचिक-मानसिकानुष्ठानैः सर्व-प्रयत्नेनोपकरणौषधाहारावकाशशास्त्रादिदानैः संघे कर्तव्यमिति ।। ६६ ।।

प्रभावनास्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

धम्मकहाकहणेण य बाहिरजोगेहिं चावि [1]णवज्जेहिं ।
धम्मो पहाविदव्वो जीवेसु दयाणुकंपाए ।। ६७ ।।

धर्मकथाकथनेन त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिताख्यानेन सिद्धान्ततर्कव्याकरणादिव्याख्यानेन धर्मपापादिस्वरूपकथनेन वा बाह्ययोगैश्चापि अभ्रावकाशातापनवृक्षमूलानशनाद्यनवद्यैर्हिंसादिदोषरहितैर्धर्मः प्रभावयितव्यो मार्गस्योद्योतः कर्तव्यो जीवदयानुकम्पायुक्तेन, अथवा जीवदयानुकम्पया च धर्मः प्रभावयितव्यः तथापिशब्दसूचितैः परवादिजयाष्टांगनिमित्तदानपूजादिभिश्च धर्मः प्रभावयितव्य इति ।। ६७ ।।

आगैं वात्सल्य अंग का प्रतिपादन करता संता कहै है —

अर्थ—नरक, तिर्यक्, मनुष्य, देवरूप चतुर्गति संसारतैं तिरनैं का उपायभूत जो ऋषि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका-इनिका समूहरूप चातुर्वर्ण संघ ता विषैं कायिक, वाचिक मानिसिक आचरण की सर्व्व यत्नकरि उपकरण, औषधि, आहार, अवकाश (आवास), शास्त्र इत्यादिक दानकरि, जैसे नई व्याई गाय वत्सा (बछड़ा) विषैं स्नेह करै है, तैंसे संघ विषैं जो वात्सल्य करे सो शुद्ध सम्यक्त्वो होय ।। ६६ ।।

आगैं प्रभावना का स्वरूप प्रतिपादन कै अर्थि कहै है—

धर्म्म कथा का कथन, त्रेषठि शलाका पुरुषनिका चरित्र का व्याख्यान, सिद्धान्त, तर्क्क, व्याकरण-इत्यादिक का व्याख्यान धर्म्म-पाप इत्यादिक का स्वरूप का कथन करि, बहुरि बाह्य योग—अभ्रावकाश, आतापन, वृक्षमूल, अनशन-इत्यादिक अनवद्य हिंसादिक दोष रहित तपश्चरण करि धर्म्म को प्रभावनां करणो। धर्म्म मार्ग का उद्योत करणां। बहुरि जीवनि को दया, अनु-कंपाकरि धर्म्म को प्रभावना करणीं। अपि शब्दकरि परवादी का जीतनां, अष्टांग-निमित्त का ज्ञान, दान, पूजाक करि इत्यादिक करि जिनधर्म की प्रभावना करणो ।। ६७ ।।

---

१. अ, क °वि अणवज्जो ।

अधिगमस्वरूपं प्रतिपाद्य नैसर्गिकसम्यक्त्वस्वरूपप्रतिपादनायाह—

जं खलु जिणोवदिट्ठं तमेव तत्थित्ति भावदो गहणं ।

सम्मद्दंसणभावो तव्विवरीदं च मिच्छत्तं ।। ६८ ।।*

यत्तत्त्वं जिनैरुपदिष्टं प्रतिपादितं तदेव तथ्यं सत्यं खलु व्यक्तमित्येवं भावतः परमार्थेन ग्रहणं यत्सम्यग्दर्शनभावः आज्ञासम्यक्त्वमिति यावत् । तद्विपरीतं मिथ्यात्वमसत्यरूपेण जिनोपदिष्टस्य तत्त्वस्य ग्रहणं मिथ्यात्वं भवतीति ।। ६८ ।।

दर्शनाचारसमर्पणाय ज्ञानाचारसूचनायोत्तरगाथा—

दंसणचरणो एसो णाणाचारं च वोच्छमट्ठविहं ।

अट्ठविहकम्ममुक्को जेण य जीवो लहइ सिद्धिं ।। ६९ ।।

दर्शनाचार एष मया वर्णितः समासेनेऽत ऊर्ध्वं ज्ञानाचारं वक्ष्ये कथयिष्याम्यष्टविधं येन ज्ञानाचारेणाष्टविधकर्ममुक्तो जीवो लभते सिद्धिं, ज्ञानभावनया कर्मक्षयपूर्विका सिद्धिरिति भावार्थः ।। ६९ ।।

किं ज्ञानं यस्याचारः कथ्यते इति चेदित्याह—

जेण तच्चं विबुज्झेज्ज जेण चित्तं णिरुज्झदि ।

जेण अत्ता विसुज्झेज्ज तं णाणं जिणसासणे ।। ७० ।।

आगैं अधिगमज सम्यक्त्व का स्वरूप प्रतिपादनकरि निसर्ग सम्यक्त्व का प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—जो तत्त्व जिनभगवान् करि उपदेश्या, प्रतिपादन कीया सो ही सत्य है—ऐसैं भावथकी ग्रहण करना सो ही सम्यग्दर्शन भाव है। सो उपदेश विन निसर्ग ज्ञान के बलतैं ऐसा भाव का ग्रहण होय जाय सो निसर्ग सम्यक्त्व है। बहुरि उपदेशतैं ग्रहण होय तौ आज्ञा सम्यक्त्व है। बहुरि यातैं विपरीत श्रद्धान है, जिनोपदिष्ट तत्त्व का ग्रहण नांही सो मिथ्यात्व है ।। ६८ ।।

आगैं दर्शनाचार का समर्प्पण कैं अर्थि ज्ञानाचार का सूचन कै अर्थि कहै हैं—

भावार्थ—ज्ञान भावना का यहु फल है, जो पूर्व्वैं च्यारि कर्म का क्षय होय, केवलज्ञान होय हैं पीछै समस्त कर्म्मंनि का क्षयकरि मोक्ष कूं प्राप्त होय है ।। ६९ ।।

आगै जाका आचार कहिए, ऐसा को ज्ञान ताका स्वरूप कहै है—

---

* फलटन से प्रकाशित प्रति में इस गाथा के स्थान पर निम्नलिखित गाथा दी है—

संवेगो वेरग्गो णिंदा गरिहा य उवसमो भत्ती ।

अणुकंपा वच्छल्ला गुणा य सम्मत्तजुत्तस्स ।।

अर्थ—संवेग, वैराग्य, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, अनुकम्पा और वात्सल्य—सम्यक्त्व के ये आठ गुण होते हैं।

येन तत्त्वं वस्तुयाथात्म्यं विबुध्यते परिच्छिद्यते येन च चित्तं मनोव्यापारो निरुद्ध्यते आत्मवशं क्रियते येन चात्मा जीवो विशुद्धचते वीतरागः क्रियते परिच्छिद्यते तज्ज्ञानं जिनशासने प्रमाणं मोक्षप्रापणाभ्युपायं संशयविपर्ययानध्यवसायाकिंञ्चित्करविपरीतं प्रत्यक्षं परोक्षं च। तत्र प्रत्यक्षं द्विप्रकारं मुख्यममुख्यं च, मुख्यं द्विविधं देशमुख्यं परमार्थमुख्यं, देशमुख्यमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं च, परमार्थमुख्यं केवलज्ञानं, सर्वद्रव्यपर्यायपरिच्छेदात्मकं। अमुख्यं प्रत्यक्षेन्द्रियविषयसन्निपातानन्तरसमुद्भूतसविकल्पकमीषत्प्रत्यक्षभूतं। परोक्षं श्रुतानुमानार्थापत्तितर्कोपमानादिभेदेनानेकप्रकारं, श्रुतं मतिपूर्वकं इन्द्रियमनोविषयादन्यार्थविज्ञानं यथाग्निशब्दात् खर्परविज्ञानं। अंगपूर्वं वस्तुप्राभृतकादि सर्वं श्रुतज्ञानं। अनुमानं त्रिरूपं त्रिविधलिंगादुत्पन्नं साध्याविनाभाविलिङ्गादुत्पन्नं वा एतच्छ्रुतज्ञानेष्यन्तर्भवति। एकमर्थं जातं दृष्ट्वाविनाभावेनान्यस्यार्थस्य परिच्छित्तिरर्थापत्तिर्यथा शूनपीनांगो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते अर्थादापन्नं रात्रौ भुंक्ते इति। प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानं यथा गोस्तथा गवय इति। साध्य-

---

अर्थ—जा करि तत्त्व कहिए—वस्तु का यथार्थ स्वरूप जानिए, परिच्छेद करिए तथा जाकरि चित्त कहिए—मन का व्यापार रोकिए, अपनै वशि करिए। तथा जाकरि अपना जोव विशुद्ध कहिए वोतराग करिए जानि एसो जिनशासन विषैं ज्ञान कह्या है सो ज्ञान प्रमाणभूत हुवा मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है। संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय, अकिंचित्कर—ए ज्ञान के दोष हैं, तिनिकरि रहित सो प्रमाण कहिए। ताके भेद दोय १-प्रत्यक्ष, २-परोक्ष। तहां प्रत्यक्ष के दोय भेद हैं। १—मुख्य प्रत्यक्ष, २—अमुख्य प्रत्यक्ष। तहां मुख्य प्रत्यक्ष के दोय भेद हैं—१ देशमुख्य, २—परमार्थ मुख्य। तहां १-देश मुख्य तौ अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान है। २-परमार्थ मुख्य केवलज्ञान है। सो सर्वद्रव्यपर्याय का परिच्छेद स्वरूप है।

बहुरि अमुख्य प्रत्यक्ष है सो इन्द्रिय अर विषय—इनिका संनिपात कै अंतरि हो उपज्या सविकल्पक साकार उपयोग है, सो इषत् प्रत्यक्ष है। याका नाम सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए। बहुरि परोक्ष प्रमाण हैं सो श्रुत, अनुमान, अर्थापत्ति, तर्क, उपमान इत्यादिक भेदकरि अनेक प्रकार हैं। तहां मतिपूर्वक इन्द्रिय, मन का साक्षात्, विषयतैं अन्य अर्थ का जाननां। जैसें अग्नि शब्दतैं खप्पर (खर्पर) का विज्ञान होय जाय। तैसैं श्रुतज्ञान जाननां। बहुरि अंग-पूर्व वस्तु-प्राभृतक इत्यादिक सर्व का ज्ञान होय सौ श्रुतज्ञान जाननां।

बहुरि १-पक्षधर्मत्व, २-सपक्षेसत्व, ३-विपक्षाद्व्यावृत्ति—अैसें तीन हैं रूप जाके अैसा केवलान्वयि, केवलव्यतिरेकी, अन्वयव्यतिरेकी भेदतैं तीन प्रकार जो लिंग कहिए हेतु तातैं उत्पन्न भया। अथवा साध्यतैं, अविनाभावी अैसा जो लिंग तातैं उत्पन्न भया सो अनुमान कहिए। यहु अनुमान वचनात्मक होय तव श्रुतज्ञान विषैं भी अंतर्भूत होय।

बहुरि एक अर्थ देखिकरि अविनाभाव नियमकरि अन्य अर्थ का ज्ञान होय सो अर्थापत्ति कहिए। जैसे किसो नें कह्या जो पुष्ट है अंग जाका अैसा देवदत्त पुरुष दिन (में) भोजन नांही करै है। इहां अंग का पुष्टपनां रूप अर्थ तै 'रात्रि विषैं भोजन करै हैं'—अैसा बोध भया। जो अंग का पुष्टपना भोजन बिना होय नांहो। तातैं भोजनतैं अविनाभावी अंग का पुष्टपनांतैं ज्ञान भया सो अर्थपत्ति प्रमाण है।

बहुरि प्रसिद्ध पदार्थ का समान धर्मपणांतैं साध्य का साधना सो उपमान प्रमाण है। जेसै किसी नैं कह्या जैसा बैल तैसा गवय होय है। अैसैं बैल का साधर्म्मितैं गवय का ज्ञान सो उपमान प्रमाण है।

साधनसम्बन्धग्राहकस्तर्कः सर्वमेतत्परोक्षं ज्ञानम् ॥ ७० ॥

सम्यक्त्वसहचरं ज्ञानस्वरूपं व्याख्याय चारित्रसहचरस्य ज्ञानस्य प्रतिपादयन्नाह—

जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि ।
जेण मित्तीं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे ॥ ७१ ॥

येन रागात् स्नेहाद् कामक्रोधादिरूपाद्विरज्यते पराङ्मुखो भवति जीवः । येन च श्रेयसि रज्यते रक्तो भवति । येन मैत्रीं द्वेषाभावं प्रभावयेत् तज्ज्ञानं जिनशासने । किमुक्तं भवति—अतत्त्वे तत्त्वबुद्धिरदेवे देवताभिप्रायोऽनागमे आगमबुद्धिरचारित्रे चारित्रबुद्धिरनेकान्ते एकान्त-बुद्धिरित्यज्ञानम् ॥ ७१ ॥

ज्ञानाचारस्य कति भेदा इति पृष्ठेऽत आह—

काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे ।
वंजण अत्थ तदुभए णाणाचारो दु अट्ठविहो ॥ ७२ ॥

काले—स्वाध्यायवेलायां पठनपरिवर्तनव्याख्यानादिकं क्रियते सम्यक् शास्त्रस्य यत्स कालोऽपि ज्ञानाचार इत्युच्यते, साहचर्यात्कारणे

बहुरि साध्य अर साधन का अविनाभाव नियम रूप संबंध ताका ग्राहक कहिए जाननैं वाला ज्ञान सो तर्क प्रमाण कहिए । यह परोक्ष प्रमाण है । अैसे यह प्रमाण का संक्षेप रूप कह्या । याका विस्तार प्रमाण का स्वरूप, संख्या, विषय, फल तथा प्रमाणाभास का स्वरूप संख्या, विषय, फल तथा अन्यमत का निराकरण जान्या चाहै सो परीक्षामुख नामा ग्रन्थतै तथा ताकी लघुटीका पंजिकातैं तथा ताकी बड़ी टीका प्रमेयकमलमार्त्तण्ड नाम ग्रन्थतैं विस्तार सहित जाननां । अैसे सम्यक्त्व सहचर जो ज्ञान ताका स्वरूप व्याख्यान करि ॥ ७० ॥

आगैं चारित्र सहचर जो ज्ञान ताका स्वरूप कूं प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—जाकरि काम, क्रोधादि रूप जो राग कहिए स्नेह तातैं विरक्त होय, परान्मुख होय तथा जाकार जीव श्रेयसि कहिए कल्याण रूप चारित्र ताकै विषैं यहु जीव रक्त होय तथा मैत्री कहिए द्वेष का अभाव, सर्व जननिसूं मित्रता ताहि भावैं मैत्री भावना होय सो जिनशासन मैं ज्ञान कह्या है ।

यहाँ तात्पर्य अैसा—जो अतत्त्व कैं विषैं यहु तत्त्व है—अैसी बुद्धि, बहुरि अदेव कै विषैं यहु देवता है—अैसा अभिप्राय, वहुरि अनागम कै विषैं यहु आगम है—अैसी बुद्धि, बहुरि अचारित्र कै विषै यहु चारित्र है—अैसी बुद्धि, बहुरि अनेकांत विषै यहु एकांत है—ऐसी मिथ्या कल्पनां सो अज्ञान है ॥ ७१ ॥

आगैं ज्ञानाचार के कैतने भेद हैं ? अैसा प्रश्न हौंतै संतै कहै है—

अर्थ—स्वाध्याय की वेला विषै सम्यक् शास्त्र का पठन, परिवर्तन, व्याख्यानादिक कहिए सो काल भी ज्ञानाचार का

कार्योपचाराद्वा। **विणए**—कायिकवाचिकमानसशुद्ध परिणामैः **स्थितस्य** तेन वा योऽयं श्रुतस्य पाठो व्याख्यानं परिवर्तनं यत्स विनयाचारः। **उवहाणे**—उपधानं अवग्रहविशेषेण[1] पठनादिकं साहचर्यात् उपधानाचारे (रः)। बहुमानं पूजासत्कारादिकेन पाठादिकं बहुमानाचारः। तथैवानिह्नवनं यस्मात्पठितं श्रुतं स व प्रकाशनीयः यद्वा पठित्वा श्रुत्वा ज्ञानी सञ्जातस्तदेव श्रुतं ख्यापनीयमिति [2]अनिह्नवाचारः। **व्यञ्जनं**—वर्णपदवाक्यशुद्धिः, व्याकरणोपदेशेन वा तथा पाठादिर्व्यञ्जनाचारः। **अत्थ**—अर्थोऽभिधेयोऽनेकान्तात्मकस्तेन सह पाठादि अर्थाचारः। शब्दार्थशुद्धया पाठादि तदुभयाचारः। सर्वत्र साहचर्यात् कार्ये कारणाद्युपचाराद्वाऽभेदः। कालादिशुद्धिभेदेन वा ज्ञानाचारोऽष्टविध एव, अधिकरणभेदेन वाधारस्य भेदः। प्रथमा विभक्तिः सप्तमी वा द्रष्टव्या॥ ७२॥

कालाचारप्रपंचप्रतिपादनार्थमाह—

पादोसियवेरत्तियगोसग्गियकालमेव गेण्हित्ता।
उभये[3] कालह्मि पुणो सज्झाओ होदि कायव्वो॥ ७३॥

प्रकृष्टा दोषा रात्रिर्यस्मिन् काले स प्रदोषः कालः रात्रेः पूर्वभाग इत्यर्थः। तत्सामीप्याद्दिनपश्चिमभागोऽपि प्रदोष इत्युच्यते। ततः प्रदोषग्रहणेन द्वौ कालौ गृह्येते। प्रदोष एव प्रादोषिकः। विगता रात्रिर्यस्मिन् काले सा विरात्रो रात्रेः पश्चिमभागः, द्विघटिकासहितार्धरात्रादूर्ध्व-

---

सहचरी है। तथा कारण हैं तातैं कारण विषै कार्य का उपचार करि काल भो ज्ञानाचार कहिए। २—बहुरि कायिक, वाचिक, मानसिक शुद्ध परिणाम रूप जो विनय ताकरि सहित जीव कै निर्दोष विनयाचार होय हैं अथवा श्रुत को पाठ, व्याख्यान, परिवर्तन पूर्वोक्त विनय करिए सो विनयाचार कहिए। ३—बहुरि अवग्रह विशेष करिकैं जो पाठनादिक करिए सो उपधानाचार कहिए। ४—बहुरि पूजा सत्कारादिक करि बहुमान करि पाठादिक करिए सो बहुमानाचार कहिए। ५—बहुरि जा गुरु तैं शास्त्र पढ्या होय ताही गुरु का प्रकास करनां, जा शास्त्र कूं पढ़िकरि, सुनिकरि ज्ञानी भया ताही शास्त्र कूं प्रगट करिए, गुरु कूं तथा शास्त्र कूं छिपाइए नांही—सो अनिह्नवाचार कहिए। ६—बहुरि वर्ण, पद, वाक्य को शुद्धता व्याकरण के उपदेश करि तथा उच्चारण की शुद्धता पाठादिक की शुद्धता सो है व्यंजनाचार कहिए। ७—बहुरि अर्थ कहिए अभिधेय सो यावत् पदार्थ, वाक्यार्थ है तो सकल अनेकांत स्वरूप है—ऐसें अर्थ की शुद्धता सो अर्थाचार है। ८—बहुरि अर्थ करि सहित पाठादिक की शुद्धता सो तदुभयाचार कहिए।

इहां सर्व भेदनि विषै साहचर्य तैं तथा कार्य विषै कारण के उपचारतैं अभेद कह्या है। ऐसैं कालादिक की शुद्धता के भेद करि ज्ञानाचार है सो अष्ट प्रकार है। अथवा अधिकरण कैं भेद तैं आधारका भेद है। इहां कालादिक शब्दनि कै प्रथमा विभक्ति अथवा सप्तमो विभक्ति जाननी॥ ७२॥

आगैं कालाचार का विस्तार प्रतिपादन कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—प्र कहिए प्रकृष्ट है—दोषा कहिए रात्रि जा काल मैं, सो प्रदोषकाल कहिए रात्रि का पूर्व भाग, ताके समीपपणातैं दिन का पश्चिम भाग—ऐसे प्रदोष शब्दतैं दोउ काल ग्रहण करनैं। दोय घड़ो रात्रि गये तें लेकर दोय घड़ी अर्द्धरात्रि मैं,

१. ग प्रति में-विशेषेण मनोवाक्कायशुद्धिपूर्वकं पठनादिकं। २, क °ति अनिह्नवेन पाठादि अनि°। ३. अ. ब. उवधो।

कालः, विरात्रिरेव वैरात्रिकः। गवां पशूनां सर्गो निर्गमो यस्मिन् काले स कालो गोसर्गः। गोसर्ग एव गौसर्गिको द्विघटिकोदयादूर्ध्वकालो द्विघटिकासहितः मध्याह्नात्पूर्वः। एतत्कालचतुष्टयं गृहीत्वोभयकाले दिवसस्य पूर्वाण्हकालेऽपराण्हकाले च तथा रात्रेः पूर्वकालेऽपरकाले च पुनः अभीक्ष्णं स्वाध्यायो भवति कर्तव्यः पठनपरिवर्तनव्याख्यानादीनि कर्तव्यानि भवन्तीति ॥ ७३ ॥

स्वाध्यायस्य ग्रहणकालं परिसमाप्तिकालं च प्रतिपादयन्नाह—

सज्झाये पट्ठवणे जंघच्छायं वियाण सत्तपयं।
पुव्वण्हे अवरण्हे तावदियं चेव णिट्ठवणे ॥ ७४ ॥

स्वाध्यायस्य परमागमव्याख्यानादिकस्य प्रस्थापने प्रारम्भे, जंघयोश्छाया जंघच्छाया तां जंघच्छायां विजानीहि सप्तपदां सप्तवितस्तिमात्रां पूर्वाण्हेऽपराण्हे च तावन्मात्रां स्वाध्यायसमाप्तिकाले च्छायां विजानीहि। सवितुरुदये यदा जंघाच्छाया सप्तवितस्तिमात्रा भवति तदा स्वाध्यायो ग्राह्यः। अपराण्हे च सवितुरस्तमनकाले यदा जंघाच्छाया सप्तवितस्तिमात्रा तिष्ठति तदा स्वाध्याय उपसंहरणीय इति ॥ ७४ ॥

पूर्वाण्हे स्वाध्यायस्य परिसमाप्तिः कस्यां वेलायां क्रियते इति पृष्टेऽत आह—

आसाढे दुपदा छाया पुस्समासे चदुप्पदा।
वड्ढदे हीयदे चावि मासे मासे दुअंगुला ॥ ७५ ॥

घटनी होय, यह तो रात्रि का पूर्व भाग काल है। बहुरि मध्याह्न तैं दोय घड़ो गयें पोछै तैं लेकरि दोय घड़ी दिन पिछला[1] रहै, तहां पर्यंत दिन का पश्चिम भाग कहिए। इनि दोउ कालनिकूं प्रदोष कहिए है। प्रदोष सो ही प्रादोषिक कहिए। बहुरि गई है रात्रि जा काल विषैं सो विरात्रि कहिए रात्रि का पश्चिम भाग—अर्द्धरात्रि पोछैं दोय घड़ी गये तैं लेकरि उपला कालदोष घड़ी रात्रि रहे पर्यंत, जो काल सो विरात्रि कहिए। बहुरि गौ कहिए पशु तिनिका निर्गम जिस काल में होय सो काल गोसर्गिक कहिए दो घड़ी दिन चढै तैं लेकरि मध्यान्ह काल में दोय घड़ी घटती रहे पर्यंत जो काल सो गोसर्गिक कहिए।

ऐसे ये च्यारि काल कहै। तिनिमैं दिन के उभयकाल—पूर्वाह्नकाल, अपराह्नकाल तथा रात्रि के उभयकाल—पूर्वकाल, अपरकाल, इनिमें निरन्तर पठन, परिवर्तन, व्याख्यानादिक रूप स्वाध्याय करनां ॥ ७३ ॥

आगैं स्वाध्याय का ग्रहण का वा समाप्ति कूं प्रतिपादन करता संता कहै हैं—

अर्थ—स्वाध्याय कहिए—परमागम का व्याख्यानादिक ताका प्रारम्भ कै विषै दोउ जंघनि की छाया पूर्वाह्न के विषै सात वितस्ति प्रमाण जानहु। बहुरि स्वाध्याय का समाप्ति काल विषै सात वितस्ति प्रमाण ही छाया जानउ। सूर्य का उदय हौंतैं जदि जंघा छाया सात वितस्ति प्रमाण होय, तदि स्वाध्याय ग्रहण करिनां। बहुरि अपरान्ह कै विषै सूर्य का अस्त हौंने का काल विषैं जब जंघा की छाया सात वितस्ति प्रमाण वहरैं (रहे) तब स्वाध्याय समाप्ति करना ॥ ७४ ॥

१. ब पाछिला।

जंघाच्छाया इत्यनुवर्तते । मिथुनराशौ यदा तिष्ठत्यादित्यः स काल आषाढमास इत्युच्यते । मासस्त्रिंशद्रात्रः समुदाये वर्तमानोऽप्यत्र मासावसाने दिवसे वर्तमानो गृह्यते । समुदायेषु हि वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्त इति न्यायात् । एवं पुष्यमासेऽपि निरूपयितव्यः । आषाढमासे यदा द्विपदा जंघाच्छाया पूर्वाण्हे तदा स्वाध्याय उपसंहर्त्तव्यः । अत्र षडंगुलः पादः परिगृह्यते । तथा पुष्यमासे मध्याह्लोदये यदा चतुष्पदा जंघाच्छाया भवति तदा स्वाध्यायो निष्ठापयितव्यः । आषाढमासान्तदिवसादारभ्य मासे मासे द्वे द्वे अङ्गुले तावद्वृद्धिमागच्छते यावत्पुष्यमासे चतुष्पदाच्छाया सञ्जाता । पुनस्तस्मादारभ्य द्वे द्वे अंगुले मासे मासे हानिमुपनेतव्ये यावदाषाढे मासे द्विपदाच्छाया संजाता । कर्कटसंक्रान्तेः प्रथमदिवसमारभ्य यावद्धनुःसंक्रान्तेरन्त्यदिनं तावद्दिनं प्रति दिनं अंगुलस्य पंचदशभागो वृद्धिं गच्छति ततो हानिम् । अत्र त्रैराशिकक्रमेण हानिवृद्धी साधितव्ये । अपराह्ण स्वाध्यायप्रारम्भकालस्य रात्रौ स्वाध्यायकालस्य च कालपरिमाणं न ज्ञातं तज्ज्ञात्वा वक्तव्यम् । मध्याह्लादुपरिघटिकाद्वये स्वाध्यायो ग्राह्यः, तथा रात्रौ प्रथमघटिकाद्वये सर्वासु संध्यादानवन्ते[1] च घटिकाद्वये वर्जयित्वा स्वाध्यायो ग्राह्यो हातव्यश्चेति ॥ ७५ ॥

आगै पूर्वाह्ण कै विषै स्वाध्याय की समाप्ति कौन सी बेला करिए ? ऐसा प्रश्न होंते संतै कहै हैं—

अर्थ—इहां जंघा छाया ऐसी अनुवृत्ति है। जा काल विषै सूर्य मिथुनरासि विषै तिष्ठै सो काल आसाढ़ मास कहिए। मास शब्द तीस अहोरात्रि का समुदाय विषैं प्रवर्तै है। तथापि इहां मास शब्दकरि मास का अन्त दिवस जाननां। जातैं ऐसा न्याय है—'समुदाय विषै प्रवर्तै शब्द ते अवयव वचनि विषै भी प्रवर्तै हैं।' ऐसे आषाढ़मास शब्दकरि आषाढ़ का अंत का दिवस लेनां। पुष्य मास शब्द करि पुष्य मास का अंत का दिवस लेनां। सो ही कहै हैं—

आषाढ़ का अंत दिवस विषैं पूर्वाह्ण समय दोय पहरां पहली जंघा छाया दोय पद प्रमाण होय, तिस समय स्वाध्याय समाप्ति कर देणा। इहां पद का प्रमाण छह आंगुल है। द्विपदा शब्दकरि बारह अंगुल का ग्रहण करनां। बहुरि पोस (पौष) मास का अंत का दिवस विस विषैं दुपहरां पहलै समय च्यारि पद प्रमाण जंघाछाया होय तिस समय स्वाध्याय समाप्ति (निष्ठापन) करि देणां। इहां च्यारि पाद का प्रमाण चउवीस अंगुल जाननां।

आषाढ़ मास का अन्त दिवस तैं लगाय मास-मास विषै दोय-दोय अंगुल प्रमाण छाया बधती (बढ़तो) कहीं। यातैं पौष मास छाया बधती (बढ़ती) कही, यातैं पौष मास का अंत का दिवस पर्यंत छह मास विषैं बारह अंगुल छाया बधाय करि चौबीस अंगुल छाया कही। पीछे पौष मास का अंत दिवसतैं लगाय मास प्रति दोय-दोय आंगुल प्रमाण घटती छाया जाननी। ऐसैं, बहुरि आषाढ़ मास का अंत दिवस विषै द्विपदा कहिए बारह आंगुल प्रमाणछाया जाननी।

भावार्थ—कर्क संक्राति का प्रथम दिवस तै लगाय धनुः संक्राति का अंत दिन पर्यंत अंगुल का पनरहवां (पन्द्रहवाँ) भाग प्रमाण जंघा छाया एक-एक दिन प्रति वधतो जाननो। तहाँ पीछे मकर संक्रांति का प्रथम दिवस तैं लगाय मिथुन संक्रांति का अंत दिवस पर्यंत आंगुल का पन्द्रहवाँ भाग प्रमाण एक-एक दिन प्रति जंघाछाया घटतो जाननों।

इहां त्रैमासिक गणित का विधान करि हानि-वृद्धि जाननो। इहां अपरान्ह विषै स्वाध्याय प्रारंभ का काल तथा रात्रि विषै स्वाध्याय का काल का प्रमाण नांही कह्या। सो अन्य शास्त्रतैं जानिकरि कहनां अपरान्ह विषैं तौ दुपहरां उपरि दोय घड़ी

1. ग सन्ध्यासु आदावन्ते।

दिग्विभागशुद्धचर्थमाह—

णवसत्तपंचगाहापरिमाणं दिसिविभागसोहीए[1] ।

पुव्वण्हे अवरण्हे पदोसकाले य सज्झाएँ ॥ ७६ ॥

दिशां विभागो दिग्विभागस्तस्य शुद्धिरुल्कापातादिरहितत्वं[2] दिग्विभागशुद्धेर्निमित्तं कायोत्सर्गमास्थाय प्रतिदिशं पूर्वाह्णकाले स्वाध्याय-विषये नव नव गाथापरिमाणं जाप्यं । तत्र यदि दिशादाहादीनि भवन्ति तदा कालशुद्धिर्न भवतीति वाचनाभंगो भवति । एषा कालशुद्धी रात्रि-पश्चिमयाम[3]स्वाध्याये कर्तव्या । एवमपराह्णे स्वाध्यायनिमित्तं कायोत्सर्गमास्थाय प्रतिदिशं सप्तसप्तगाथापरिमाणं पाठ्यम् । अपराह्णस्वाध्याये तथा प्रदोषवाचनानिमित्तं पंच पंच गाथाप्रमाणं प्रतिदिशं घोष्यमिति । सर्वत्र दिशादाहाद्यभावे कालशुद्धिरिति ॥ ७६ ॥❀

गये स्वाध्याय करनां तैसे ही रात्रि विषै प्रथम दोय घड़ी रात्रि गये पीछै स्वाध्याय करनां । सर्व ही संध्या विषै आदि अंत विषै दोय दोय घड़ी छोड़िकरि स्वाध्याय ग्रहण करनां समाप्ति करनां ।

भावार्थ—प्रभात दोय घड़ी का तडंका सूं लेय दोय घड़ी दिन चढ्या ताईं तौ संध्या काल है । पीछै स्वाध्याय ग्रहण करना—ऐसे ही दोय पहर दोय घड़ी घटितै लगाय उपरांत दोय घड़ी जाय तहां पर्यंत संध्या काल है । पीछै स्वाध्याय करनां । ऐसें ही दोय घड़ी दिन पिछला रहै तहा तैं लगाय दोय घड़ी, रात्रि गयैं पर्यंत संध्याकाल है । पीछै स्वाध्याय का काल है । ऐसे ही अर्द्ध रात्रि दोय घड़ी पहलै तै लगाय अर्द्धरात्र उपरांति, दो घड़ी जाय तहां पर्यंत संध्याकाल है । पीछे स्वाध्याय का काल है सो दोय घड़ी तड़का पर्यंत जाननां ॥ ७५ ॥

आगैं दिग्विभाग की शुद्धि के अर्थि कहैं है—

अर्थ—दिशानि का जो विभाग सो दिग्विभाग कहिए ताको शुद्धता उल्कापादिक करि रहितपणां सो दिग्विभाग शुद्धि कहिए । ताकै निमित्त रात्रि का पश्चिम पहर संबंधो स्वाध्याय कीए पीछैं पूर्वान्ह काल का स्वाध्याय कै निमित्त कायोत्सर्ग रूप खड़ा रहिकरि पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशानि प्रति, एक-एक दिशा प्रति नव नव गाथा परिमाण जाप्य करै । जातैं दो दिशा-दाहादिक होय तौ काल को शुद्धता नांही होय, तातें वाचना का भंग होय । यातैं पहले स्वाध्याय मैं आगानैं स्वाध्याय करनैं कै काल की शुद्धता कै निमित्त कायोत्सर्ग करै । ऐसे ही पूर्वाह्न सम्बन्धो स्वाध्याय समाप्ति कीए—पीछैं फेरि अपराह्न संबंधी स्वाध्याय कै निमित्त कायोत्सर्ग रूप खड़ा रहिकरि दिशा-दिशा प्रति सात-सात गाथा प्रमाण करि जाप्य करै ।

बहुरि ऐसे ही अपरान्ह संबंधो स्वाध्याय समाप्ति कोए पोछै प्रदोष संबंधो स्वाध्याय कैं निमित्त कायोत्सर्ग रूप खड़ा

---

१. अ, ब सोधीए । २. ग. दिग्विभागशुद्धिः, तस्या । ३. क °यामे स्वाध्यायः कर्तव्यः ।

❀ फलटन से प्रकाशित प्रति में यह गाथा अधिक है—

आसाढे सत्तपदे आउड्ढपदे य पुस्समासम्हि ।
सत्तंगुलखयवुड्ढी मासे मासे तदिदराम्हि ॥

अर्थात् आषाढ़ मास की पूर्णिमा में जब सूर्योदय के समय में सात पाद प्रमाण छाया होती है तब स्वाध्याय [प्रारम्भ] करना और

अथ के ते दिग्दाहादय इति पृष्टे तानाह—

दिसदाह उक्कपडणं विज्जु चडक्कासणिंदधणुगं च ।
दुग्गंधसंज्झदुद्दिणचंदग्गहसूरराहुजुज्झं च ॥ ७७ ॥

दिशां दाह उत्पातेन दिशोऽग्निवर्णाः । उल्कायाः पतनं गगनात् तारकाकारेण पुद्गलपिण्डस्य पतनं । विद्युच्चैक्यचिक्यं, चडत्कारः वज्रं मेघसंघट्टोद्भवं । अशनिः करकनिचयः । इन्द्रधनुः धनुषाकारेण पंचवर्णपुद्गलनिचयः । दुर्गन्धः पूतिगन्धः । सन्ध्या लोहितपीतवर्णाकार; । दुर्दिनः पतदुदकाभ्रसंयुक्तो दिवसः । चन्द्रयुद्धं, ग्रहयुद्धं, सूरयुद्धं राहुयुद्धं च । चन्द्रस्य ग्रहेण भेदः संघट्टो वा, ग्रहस्यान्योन्यग्रहेण भेदाः संघट्टादिर्वा, सूर्यस्य ग्रहेण भेदादिः, राहोश्चन्द्रेण सूर्येण वा संयोगो ग्रहणमिति । चशब्देन निर्घातादयो गृह्यन्त इति ॥ ७७ ॥

कलहादिधूमकेदू धरणीकंपं च अब्भगज्जं च ।
इच्चेवमाइबहुया सज्झाए वज्जिदा दोसा ॥ ७८ ॥

कलहः क्रोधाद्याविष्टानां वचनप्रतिवचनैर्जल्पः महोपद्रवरूपः । आदिशब्देन खड्ग-कृपाणी-लकुटादिभिर्युद्धानि परिगृह्यन्ते । धूमकेतुर्गगने

रहि करि दिशा-दिशा प्रति पांच-पांच गाथा प्रमाण जाप्य करै । सर्वदिशा-दाहादिक का अभाव होतैं संतै कालशुद्धि होय है ॥७६॥

आगै ते दिग्दाहादिक कौन ? ऐसा प्रश्न होतै संतै कहै है—

अर्थ—दिग्दाह कहिए उत्पात करि दिशा अग्नि वर्ण होय जाहि, तथा उल्कापतन कहिए आकाश तै तारा के आकार होय पुद्गल पिंड का पडनां तथा विद्युत कहिए विजुली का चिमकनां तथा चडत्कार कहिए मेघ, बादलानिके संघट्ट (टकराने) तैं उपज्या वज्रपात तथा अशनिः कहिए गडनि (करक = ओला) का समूह वर्षणां तथा इन्द्रधनुः कहिए धनुष के आकार करि पंचवर्ण के पुद्गलनि का समूह तथा दुग्गंध कहिए पूति रूप वास तथा संध्या कहिए रक्तपीत वर्ण आकार होना । बहुरि दुर्दिन[1] कहिए पड़ता है जल जिनितैं बादलनि करि संयुक्त दिन, बहुरि चन्द्रयुद्ध कहिए चंद्रमा के बिम्ब का ग्रह करि भेद अथवा संघट्ट तथा ग्रहयुद्ध कहिए ग्रह कै अन्य ग्रहकरि भेद अथवा संघट्टादिक तथा सूरयुद्ध कहिए सूर्य के ग्रहण करि भेदादिक तथा राहुयुद्ध कहिए राहु कै चन्द्रमा करि अथवा सूर्य करि संयोग ग्रहण तथा गाथा मैं च शब्द कह्या है तातैं निर्घातादिक ग्रहण करनैं ॥ ७७ ॥

बहुरि कहै हैं—

अर्थ—कलह कहिए क्रोधादिक खोटे भावनि करि भरे जे प्राणी तिनिका वचन, प्रतिवचन, रूप, वकवाद मुनिनि

सूर्यास्तकाल में सात पाद प्रमाण छाया होने पर अपराह्न स्वाध्याय समाप्त करना । पौष मास की पूर्णिमा में सूर्योदय के समय साढ़े तीन पाद प्रमाण छाया होने पर पूर्वाह्न स्वाध्याय करना और सूर्यास्त के समय साढ़े तीन पाद प्रमाण छाया होने पर अपराह्न स्वाध्याय समाप्त करना । तदनन्तर प्रतिमास छाया में हानि-वृद्धि होती है । अर्थात् आषाढ़मास को प्रारम्भ कर मगसिर तक सात पाद प्रमाण छाया में हानि होती है और पुष्यमास से ज्येष्ठमास तक वृद्धि होते-होते सप्तपादप्रमाण छाया होती है ।

१. मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनं —अमरकोशः । २. क कार्यः ।

धूमाकाररेखाया दर्शनं । धरणीकम्पः पर्वतप्रासादादिसमन्विताया भूमेश्चलनं । चकारेण शोणितादिवर्षस्य ग्रहणं । अभ्रगर्जनं मेघध्वनिः । चकारेण महावाताग्निदाहादयः परिगृह्यन्ते । इत्येवमाद्यन्येऽपि बहवः स्वाध्यायकाले वर्जिताः परिहरणीया दोषाः सर्वलोकानामुपद्रवहेतुत्वात् । एते कालशुद्ध्यां क्रियमाणायां दोषाः पठनोपाध्यायसंघराष्ट्रराजादिविघ्नकारिणो यत्नेन त्याज्या इति ।। ७८ ।।

कालशुद्धिं विधाय द्रव्यक्षेत्रभावशुद्ध्यर्थमाह—

रुहिरादिपूयमंसं दव्वे खेत्ते सदहत्थपरिमाणं ।
कोधादिसंकिलेसा भावविसोही पढणकाले ।। ७९ ।।

रुधिरं रक्तं । आदिशब्देनाशुचिशुक्रास्थिव्रणादीनि परिगृह्यन्ते, पूयं—कुथितक्लेदः । मांसं आर्द्रं पंचेन्द्रियावयवः । द्रव्ये आत्मशरीरेऽन्यशरीरे वैतानि वर्जनीयानि । क्षेत्रे स्वाध्यायकरणप्रदेशे चतसृषु दिक्षु हस्तशतचतुष्टयमात्रेण सर्वाणि वर्जनीयानि । यदि शोधयितुं न शक्यन्ते तत्क्षेत्रं द्रव्यं च त्याज्यं तस्मिन् सजीवे सति स्वाध्यायो न कर्तव्यः । प्रवक्तृश्रोत्रादिभिरुष्णोदकादीनि ग्राह्याणि, वातप्रचुरहेत्वाहारादिर्न ग्राह्यः, अजीर्णादयोऽपि न कर्तव्याः । द्रव्यशुद्धिं क्षेत्रशुद्धिं चेच्छुभिः क्रोधादयोऽपि संक्लेशा वर्जनीयाः । क्रोधमानमायालोभासूयेर्ष्यादीनामभावो भावशुद्धिः पठनकाले कर्तव्या अत्यर्थमुपशमादयो भावयितव्याः । कालशुद्ध्यादिभिः शास्त्रं पठितं कर्मक्षयाय भवत्यन्यथा कर्मबन्धायेति ।। ७९ ।।

कौं महाउपद्रव रूप तथा आदि शब्द करि, तलवार, कटारी, लकड़ी इत्यादिक करि युद्ध तथा धूमकेतु कहिए आकाश कै विषैं धूवां के आकार रेखा का दीखनां बहुरि धरणी-कंप कहिए पर्वत, मन्दिर, महल इत्यादिक सहित पृथ्वी का कांपना । बहुरि गाथा मैं चकार शब्द है ताकरि रुधिरादिक का वर्षनां जाननां । बहुरि अभ्रगर्जन कहिए बादलानि का गाजनां । बहुरि गाथा में दूसरा चकार शब्द है ताकरि महापवन तथा अग्निदाह इत्यादिक जानि लेनां । अैसे ये कहै ते, बहुरि अन्य भी बहुत स्वाध्यायकाल विषै दोष हैं ते वर्जित कोए हैं । सर्व लोकनि कूं उवद्रव के कारण है । काल शुद्धि कीए ये दोष स्वाध्याय का पाठ विषै तथा उपाध्याय कैं संघ कैं, देश के, राजादिकनि कै विघनकारो हैं ते यतनतैं त्यजनै योग्य है ।। ७८ ।।

आगैं कालशुद्धि का विधान कहि द्रव्य, क्षेत्र, भाव की शुद्धि कै अर्थि कहै है—

अर्थ—रुधिर कहिए रक्त आदि शब्दकरि मल-मूत्र, वीर्य, हाड, गूमडे (घाव) इत्यादिक जाननैं तथा पूय कहिए—राधि, मांस कहिए आला पंचैन्द्रिय का अवयव सो द्रव्य कहिए अपना शरीर अथवा अन्य का शरीर विषैं वर्जन करनें, क्षेत्र कहिए—जिस प्रदेश में स्वाध्याय करैं हैं तिस प्रदेश तैं च्यारूं दिशा मैं सौ-सौ हाथ प्रमाण वर्जन करनैं जो द्रव्य-क्षेत्र शोधन करनैं कूं शक्य नांही होय तौ द्रव्य-क्षेत्र छोडि देनां । अैसा द्रव्य-क्षेत्र कूं होतैं स्वाध्याय नांही करनां । बहुरि वक्ता, श्रोता इत्यादिकनि करि उष्ण जलादिक ग्रहण करनां, वायु प्रचुर होने के कारण अैसे आहारादिक नांहि ग्रहण करणें जातैं वायु उतरवो करै, उद्जार आवो करै—अैसे द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि कूं जे इच्छै है ते क्रोधादिक संक्लेश भाव है । तिनिकूं वर्जन करै हैं । क्रोध, मान माया, लोभ, असूया, ईर्षा—इत्यादिक का अभाव सो भावशुद्धि कहिए । स्वाध्याय का काल विषैं भावशुद्धि करनां, क्रोधादिकनिका उपशमादिक की भावनां करनी । काल शुद्ध्यादिक करि पढ्या शास्त्र है सो ज्ञानवरणादिक कर्मनि का क्षय कै अर्थि होय है । कालशुद्धादिक विना पढ़ै कर्म्मबंध होय है ।। ७९ ।।

कालशुद्धयां[1] यद्यत्सूत्रं पठ्यते तत्तत्केनोक्तमत आह—

सुत्तं गणहरकहिदं तदेव पत्तेयबुद्धिकहिदं च ।
सुदकेवलिणा कहिदं अभिण्णदसपुव्वकहिदं च ।। ८० ।।

सूत्रं अंगपूर्ववस्तुप्राभृतादि गणधरदेवैः कथितं सर्वज्ञमुखकमलादर्थं गृहीत्वा ग्रन्थस्वरूपेण रचितं गौतमादिभिः । तथैवेकं कारणं प्रत्याश्रित्य बुद्धाः । धर्मश्रवणाद्युपदेशमन्तरेण चारित्रावरणादिक्षयोपशमात्, ग्रहणोल्कापातादिदर्शनात् संसारस्वरूपं विदित्वा गृहीतसंयमाः प्रत्येकबुद्धास्तैः कथितं । श्रुतकेवलिना कथितं रचितं द्वादशांगचतुर्दशपूर्वधरेणोपदिष्टं । अभिन्नानि रागादिभिरपरिणतानि दशपूर्वाणि उत्पादपूर्वादीनि येषां तेऽभिन्नदशपूर्वास्तैः कथितं प्रतिपादितमभिन्नदशपूर्वकथितं च सूत्रमिति सम्बन्ध ।। ८० ।।

तत्सूत्रं किम्—

तं पढिदुमसज्झाये णो कप्पदि विरद इत्थिवग्गस्स ।
एत्तो अण्णो गंथो कप्पदि पढिदुं असज्झाए ।। ८१ ।।

तत्सूत्रं पठितुमस्वाध्याये न कल्प्यते न युज्यते विरतवर्गस्य संयतसमूहस्य स्त्रीवर्गस्य चार्यिकावर्गस्य च । इतोऽस्मादन्यो ग्रन्थः कल्प्यते पठितुमस्वाध्यायेऽन्यत्पुनः सूत्रं कालशुद्धयाद्यभावेऽपि युक्तं पठितुमिति ।। ८१ ।।

कालशुद्धि करि जे-जे सूत्र पढिए है, ते सूत्र कौन से हैं ? सो कहै हैं—

अर्थ—सूत्र कहिए अंग पूर्व वस्तु प्राभृतादिक सो च्यारि प्रकार है—गणधर कथित, प्रत्येकबुद्ध कथित, श्रुतकेवली कथित, अभिन्नदसपूर्व कथित । १. तहां गौतमादिक जे गणधर तिनिकरि सर्वज्ञ का मुखकमलतैं अर्थ कूं ग्रहण करि, ग्रंथस्वरूप करि रच्या-कह्या सो गणधर-कथित सूत्र कहिए । २. बहुरि एक कारण हैं ताहि प्रति कहिए आश्रयकरि बुद्ध भये ते प्रत्येकबुद्ध कहिए । धर्म्म श्रवणादिक उपदेश विना ही चारित्रावरणादिक कर्म के क्षयोपशमतें ग्रहण, उल्कापात इत्यादिक वैराग्य के कारण दिखनैं तै संसार का स्वरूप हैं ताहि असार जांनिकरि ग्रहण कीया है संयम जिननैं—अैसे जे प्रत्येकबुद्धि तिनिकरि कह्या जो सूत्र सो प्रत्येकबुद्ध-कथित सूत्र कहिए । ३. बहुरि बारह अंग, चौदह पूर्व के धारी श्रुतकेवली, तिनकरि उपदेश्या-कह्या जो सूत्र सो श्रुतकेवली कथित सूत्र कहिए । ४. बहुरि अभिन्न कहिए रागादिक भावनिकरि नांही परिणए, शुद्ध हैं उत्पाद पूर्वादिक दशपूर्व जिनिकै, तिनिकरि प्रतिपादन कीया, कह्या जो सूत्र सो अभिन्नदशपूर्व-कथित कहिए—अैसे च्यारि प्रकार सूत्र हैं ॥ ८० ॥

बहुरि आगै है—सूत्र कैसैं पढ़वे योग्य है ?

अर्थ—ते च्यारि प्रकार सूत्र कालशुद्धादिक बिना संयत-समूह कूं तथा आर्यिका-समूह कूं पढ़ना योग्य नांही । इनितैं अन्य ग्रन्थ कालशुद्धयादिक का अभाव होतै भी पढ़नां योग्य है।। ८१ ।।

---

१. क °द्धया ।

किं तदन्यत्सूत्रमित्यत आह—

आराहणणिज्जुत्ती मरणविभत्ती य संगहत्थुदिओ ।
पच्चक्खाणावासयधम्मकहाओ य एरिसओ ।। ८२ ।।

आराधना सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपसामुद्योतनोद्यवननिर्वाहणसाधनादीनि तस्य नियुक्तिराराधनानियुक्तिः । मरणविभक्तिः सप्तदशमरणप्रतिपादकग्रन्थरचना । संग्रहः पंचसंग्रहादयः । स्तुतयः देवागमपरमेष्ठ्यादयः । प्रत्याख्यानं त्रिविधचतुर्विधाहारादिपरित्यागप्रतिपादनो ग्रन्थः सावद्यद्रव्यक्षेत्रादिपरिहारप्रतिपादनो वा । आवश्यकाः सामायिकचतुर्विंशतिस्तववन्दनादिस्वरूपप्रतिपादको ग्रन्थः । धर्मकथास्त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितानि द्वादशानुप्रेक्षादयश्च । ईदृग्भूतोऽन्योऽपि ग्रन्थः पठितुमस्वाध्यायेऽपि च युक्तः ।। ८२ ।।

कालशुद्ध्यनन्तरं कस्मिन् ग्रन्थे कस्मिंश्चावसरे काः क्रियाः कर्तव्या इति पृष्टेऽत आह—

उद्देसे समुद्देसे अणुणापणए अ होंति पंचेव ।
अंगसुदखंधझेणुवदेसा विय पदविभागी य ।। ८३ ।।

उद्देशे प्रारम्भकाले, समुद्देशे शास्त्रसमाप्तौ, अनुज्ञार्पणायां गुरोरनुज्ञायां भवन्ति पंचैव । नात्र केचन निर्दिष्टास्तथा[1]प्युपदेशादुपवासाः कायोत्सर्गा वा ग्राह्याः । अथवा अनुज्ञायां एतावत्पंच पणका व्यवहाराः प्रायश्चित्तानि पंचैव भवन्ति ते चोपवासाः कायोत्सर्गा वा । अंगं द्वादशाङ्गानि । श्रुतं चतुर्दशपूर्वाणि । स्कन्धः वस्तूनि । झेणुव—प्राभृतं । देशश्च प्राभृतप्राभृतं । पदविभागादेकैकशः । अंगस्याध्ययनप्रारम्भे

ते वैं अन्य सूत्र कैसे ? सो कहै है—

अर्थ—आराधना नियुक्ति कहिए सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप—इनिका उद्योतन, उद्यमन, निर्वाहन, साधन इत्यादिक वर्णन जामैं होय ऐसा ग्रंथ। बहुरि मरणविभक्ति कहिए सतरह प्रकार मरण का प्रतिपादन करनैं हारा ऐसा ग्रंथ। बहुरि संग्रह कहिए पंचसंग्रहादिक ग्रंथ। बहुरि स्तुति कहिए देवागमस्तोत्र, परमेष्ठिस्तोत्र[2], इत्यादिक स्तुतिग्रंथ। बहुरि प्रत्याख्यान कहिए जल बिना तीन प्रकार आहार अथवा चतुर्विध आहार का परित्याग का प्रतिपादन करनहारा ग्रन्थ तथा सावद्य द्रव्य, क्षेत्रादिक का परिहार का प्रतिपादन करनहारा—ऐसा ग्रन्थ। बहुरि आवश्यक कहिए सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना इत्यादिक के स्वरूप का प्रतिपादन करनहारा—ऐसा ग्रन्थ, बहुरि धर्मकथा कहिए तिरेसठि शलाका पुरुषनिका चरित्र वर्णन करनहारे पुराण, चारित्रादिक तथा द्वादश-अनुप्रेक्षा इत्यादिक ग्रंथ। बहुरि ऐसा ही अन्य जो ग्रन्थ होय सो काल-शुद्ध्यादिक का अभाव होतैं भी पढ़ना युक्त है ।। ८२ ।।

आगै कौन से ग्रंथ विषैं, कौन से अवसर में, कौन सी क्रिया करिए ? ऐसा प्रश्न होतैं संतै कहै हैं—

अर्थ—अंग कहिए—द्वादश अंग, श्रुत कहिए—चौदह पूर्व, स्कंध कहिए वस्तु, बहुरि झेणव[3] कहिए प्राभृत, देश कहिए

---

१. ग. निर्दिष्टागमस्याध्ययनप्रारम्भे समाप्तौ बुद्धिमत्पञ्च तथा ।   २. ब प्रति में परमेष्ठी स्तोत्र का उल्लेख नहीं है ।
३. अ– झेणु ।

समाप्तौ बुद्धिमच्छिष्यानुज्ञायामुपवासाः कायोत्सर्गा वा पंच कर्तव्या भवन्ति। एवं पूर्वाणां, वस्तूनां, प्राभृतानां, प्राभृतप्राभृतानां प्रारम्भे समाप्तौ अनुज्ञायामेकैकशः पंच पंचोपवासाः कायोत्सर्गा वा कर्तव्या भवन्तीति ॥ ८३ ॥

पदविभागतः पृथक्पृथक्कालशुद्धिं व्याख्याय विनयशुद्ध्यर्थमाह—

पलियंकणिसेज्जगदो पडिलेहिय अंजलीकदपणामो ।[1]
सुत्तत्थजोगजुत्तो पढिदव्वो आदसत्तीए ॥ ८४ ॥*

पर्यंकेण निषद्यां गत उपविष्टः पर्यंकनिषद्यागतः पर्यंकेन वीरासनादिभिर्वा सम्यग्विधानेनोपविष्टस्तेन, प्रतिलिख्य चक्षुषा पिच्छिकया शुद्धजलेन च पुस्तकं भूमिहस्तपादादिकं च सम्माज्यं। अञ्जलिना कृतः प्रणामो येनासावञ्जलिकृतप्रणामस्तेन करमुकुलाङ्कितचक्षुषा सूत्रार्थसंयोगः सम्पर्कस्तेन युक्तः समन्वितः सूत्रार्थयोगयुक्तोऽङ्गादिग्रन्थः पठितव्योऽध्येतव्यः। आत्मशक्त्या सूत्रार्थाव्यभिचारेण शुद्धोपयोगेन शक्तिमनवगुह्य यत्नेन जिनोक्तं सूत्रमर्थयुक्तं पठनीयमिति ॥ ८४ ॥

प्राभृत-प्राभृत—इनिका पदविभागतैं, उद्देश्य कहिए प्रारंभ के विषैं, बहुरि समुद्देश कहिए—समाप्ति विषै गुरुनिकी अनुज्ञा होतैं संतै पांच-पांच ही होय है। इहां कह्या नांही जो पंच कहा होय हैं तथापि अन्य ग्रन्थनि के उपदेशतैं ऐसा जानिए—जो पांच-पांच उपवास करिये अथवा पांच-पांच कायोत्सर्ग करिए अथवा पांच प्रायश्चित करिए ॥ ८३ ॥

ऐसैं कालशुद्धि का व्याख्यानकरि विनयशुद्धि के अर्थि कहै है—

अर्थ—पर्यंकनिषद्यागत कहिए पल्यंक आसनकरि बैठा अथवा वीरासनादिक करि सम्यक् प्रकार बैठा नेत्रनिकरि पुस्तक कूं देखि पीछी करि भूमि कौं सोधि-संवारि, शुद्ध जलकरि हस्त-पादादिक धोय, अंजलिकरि कीया है प्रणाम जानैं—ऐसा अंजुलि करि नेत्रनिकूं जोड़ि सूत्र-अर्थ का संबंधकरि युक्त अपनी शक्तिकूं प्रगटकरि शुद्धोपयोग करि यत्नाचारकरि जिनोक्त अंगादि ग्रन्थ हैं ते सूत्र-अर्थ का व्यभिचार (दोष) रहित पढ़नैं। इह विनयशुद्धि का व्याख्यान कीया।। ८४ ॥

---

१. ब प्रति में कदयसगमो। *फलटन से प्रकाशित प्रति में निम्नलिखित दो गाथाएँ और हैं—

सुत्तत्थं जप्पंतो अत्थविसुद्धं च तदुभयविसुद्धं।
पयदेण य वाचंतो णाणविणीदो हवदि एसो ॥

अर्थ—अंगपूर्वादि सूत्रों को शुद्ध बोलते हुए उसके अर्थ को भी शुद्ध समझते हुए तथा सूत्र और अर्थ दोनों को शुद्ध पढ़ते हुए प्रयत्नपूर्वक जो मुनि वाचना स्वाध्याय करते हैं वे ज्ञानविनीत होते हैं।

विसयेण सुदमधीदं जदि वि पमादेण होदि विस्सरिदं।
तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आवहदि ॥

यह गाथा आगे आठों ज्ञानाचारों के अनन्तर क्र० २८६ की है।

उपधानशुद्ध्यर्थमाह—

आयंबिल णिव्वियडी अण्णं वा होदि जस्स कादव्वं ।
तं तस्स करेमाणो उपहाणजुदो हवदि एसो ।। ८५ ।।

आचाम्लं सौवीरौदनादिकं, विकृतेर्निर्गतं निर्विकृतं घृतदध्यादिविरहितौदनः, अन्यद्वा पक्वान्नादिकं यस्य शास्त्रस्य कर्तव्यमुपधानं सम्यक्सन्मानं तदुपधानं कुर्वाणस्तस्य शास्त्रस्योपधानयुक्तो भवत्येषः । साधुनावग्रहादिकं कृत्वा शास्त्रं सर्वं श्रोतव्यमिति तात्पर्यं पूजादरश्च कृतो भवति ।। ८५ ।।

बहुमानस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

सुत्तत्थं जप्पंतो वायंतो चावि णिज्जराहेदुं ।
आसादणं ण कुज्जा तेण किदं होदि बहुमाणं ।। ८६ ।।

अङ्गश्रुतादीनां सूत्रार्थं यथास्थितं तथैव जल्पन्नुच्चरन् पाठयन् वाचयंश्चापि प्रतिपादयंश्चाप्यन्यस्य निर्जराहेतोः कर्मक्षयनिमित्तं च आचार्यादीनां शास्त्रादीनामन्येषामपि आसादनं परिभवं न कुर्याद्गर्वितो न भवेत्तेन शास्त्रादीनां बहुमानं पूजादिकं कृतं भवति । शास्त्रस्य गुरोरन्यस्य वा परिभवो न कर्तव्यः पूजावचनादिकं च वक्तव्यमिति तात्पर्यार्थः ।। ८६ ।।

अनिह्नवस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

कुलवयसीलविहूणे सुत्तत्थं सम्मगागमित्ताणं[1] ।
कुलवयसीलमहल्ले णिण्हवदोसो दु जप्पंतो[2] ।। ८७ ।।

आगैं उपधान शुद्धि के अर्थि कहै है—

अर्थ—जिस शास्त्र का श्रवणादि करिए, तिसका भलै-प्रकार सम्मान करिए । आचाम्ल कहिए कांजि का आहार, निर्विकृति कहिए—नीरस । घृत, दही इत्यादिक करि रहित ओदन वा पक्या अन्य अन्नादिक तथा अन्य अवग्रहादिक मर्यादा, पक्व-अन्नादिक की मर्यादा करि जिस शास्त्र के जो योग्य होय ताका नियम करनां । बहुरि[3] शास्त्र सुणैंगें जे तैं यहु नियम है—ऐसे करिए सो उपधान कहिए । इस उपधान अंगतैं उस शास्त्र की पूजा, आदर कीया जानिए ।। ८५ ।।

आगैं बहुमान का स्वरूप कूं प्रतिपादन करता कहै हैं—

अर्थ—अंगपूर्वादिकनिका यथास्थिति[4] सूत्रार्थ हैं ताहि उच्चार करतां, पढ़तां, पढ़ावतां, वांचता, अर्थ प्रतिपादन करता, अन्यकूं कर्म्म निर्जरा कैं अर्थि जो अन्य आचार्यादिकनि का, शास्त्रादिकनि का, अन्य का परिभव-अपमान नांही करैं । आप गर्वित नांही होय पूजा वचनादिक कहै सो बहुमान कहिए ।। ८६ ।।

---

१. ब. मित्तीणं । २. अ. ब. जंपंता । ३. अ प्रति में—यहु शास्त्र । ४. ब- प्रति में यथाशक्ति ।

कुलं गुरुसन्ततिः, व्रतानि हिंसादिविरतयः, शीलं व्रतपरिरक्षणाद्यनुष्ठानं तैर्विहीना म्लानाः कुलव्रतशीलविहीनाः। मठादिपालनेना-ज्ञानादिना वा गुरुः सदोषस्तस्य शिष्यो ज्ञानी तपस्वी च कुलहीन इत्युच्यते। अथवा तीर्थंकरगणधरसप्तर्धिसंप्राप्तेभ्योऽन्ये यतयः कुलव्रतशीलविहीनास्तेभ्यः कुलव्रतशीलविहीनेभ्यः सम्यक्शास्त्रमवगम्य ज्ञात्वा कुलव्रतशीलैर्ये महान्तस्तान् यदि कथयति तेभ्यो मया शास्त्रं ज्ञातमित्येवं तस्य जल्पतो निह्नवदोषो भवति। आत्मनो गर्वमुद्वहता शास्त्रनिह्नवो गुरुनिह्नवश्च कृतो भवति। ततश्च महान् कर्मबन्धः। जैनेन्द्रं च शास्त्रं पठित्वा श्रुत्वा पश्चाज्जल्पति न मया तत्पठितं, न तेनाहं ज्ञानीति किन्तु नैयायिक-वैशेषिकसांख्य-मीमांसा-धर्मकीर्त्यादिभ्यो मम बोधः संजात इति निर्ग्रंन्थयतिभ्यः शास्त्रमवगम्यान्यान् प्रतिपादयति ब्राह्मणादीन्, कस्माल्लोकपूजाहेतोर्यदा मिथ्यादृष्टिरसौ तदाप्रभृति मन्तव्यः निह्नवदोषेणेति। सामान्ययतिभ्यो ग्रन्थं श्रुत्वा तीर्थंकरादीन् प्रतिपादयत्येवमपि निह्नवदोष इति ॥ ८७ ॥

व्यंजनार्थोभयशुद्धिस्वरूपनिरूपणार्थमाह—

[1]विंजणसुद्धं सुत्तं अत्थविसुद्धं च तदुभयविसुद्धं।
पयदेण य जप्पंतो णाणविसुद्धो हवइ एसो ॥ ८८ ॥❀

आगैं अनिह्नव का स्वरूप प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—कुल कहिए गुरु का संतान परिपाटी व्रत कहिए, हिंसादिक का त्याग। शील कहिए व्रत का रक्षादिक अनुष्ठान। कुल व्रत-शीलकरि विहीन कहिए मैले[2] अर्थात् मठादिक का सेवन-पालन करि अथवा अज्ञानादिक करि गुरु सदोष होय ताका शिष्य ज्ञानी, तपस्वी सो भी कुलहीन कहिए। अथवा तीर्थंकर, गणधर सप्तरिद्धि कूं प्राप्त ऋषीश्वर—इनितैं अन्य (भिन्न) यती वे कुल-व्रत-शील विहीन कहिए। तिनितै भलैं प्रकार शास्त्र कूं जाणि करि कुल-व्रत शीलकरि जो जे महापुरुष हैं—तिनिका नाम लेय कहै—तिनितैं मैंने शास्त्र पठे हैं—अैसैं कहै ताकै निह्नवदोष होय। बहुरि जो गर्व कूं प्राप्त होय शास्त्र का निह्नव करै, गुरु का निह्नव करै, तातैं ताकैं महान् कर्मबंध होय है।

जिनेन्द्र का मत के शास्त्र पढिकरि, सुनिकरि पीछैं कहे, मैंनैं जैनेंद्र के शास्त्र पढ्या नांही, तिनिकरि मैं ज्ञानी भया नांही, मेरै तो नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा, धर्म्मकीर्ति जो बौद्ध इत्यादिक तैं बौद्ध उपज्या है। अैसै निर्ग्रंन्थ यतीनिकै पासि शास्त्रनि कूं जानि अन्य ब्राह्मणादिकनि का नाम लेय, लोक विषै अपनी पूजा के कारण तिस कालतैं लगाय सो निह्नव के दोषतैं मिथ्यादृष्टी ही हैं। बहुरि सामान्य यतीनितैं ग्रंथ सुणिकरि तीर्थंकरादिकनि का नाम लेय—अैसैं भी निह्नव दोष लागै। अैसैं निह्नवदोष का वर्णन कीया ॥ ८७ ॥

---

१. अ. ब. वंजण। ❀ फलटन से प्रकाशित प्रति में यह अधिक है—

तित्थयकहियं अत्थं गणहररचिदं यदीहिं अणुचरिदं। णिव्वाणहेदुभूदं सुदमहमखिलं पणिवदामि ॥

अर्थ—जो श्रुत तीर्थंकर के द्वारा अर्थरूप से कथित है, गणधर देव के द्वारा द्वादशांगरूप से रचित है, और अन्य यतियों के द्वारा अनुचरित है अर्थात् परम्परा से कथित है और जो निर्वाण के लिए कारणभूत है ऐसे सम्पूर्ण—द्वादशांगमय श्रुत को मैं नमस्कार करता हूँ।

२. "मैले" शब्द आया है अजमेर प्रति में।

व्यञ्जनशुद्धं, अक्षरशुद्धं पदवाक्यशुद्धं च दृष्टव्यं देशामर्षकत्वात्सूत्राणां । अर्थविशुद्धं—अर्थसहितं । तदुभयविशुद्धं च व्यंजनार्थसहितं सूत्रमिति सम्बन्धः । प्रयत्नेन च व्याकरणद्वारेणोपदेशेन वा जल्पन् पठन् प्रतिपादयन् वा ज्ञानविशुद्धो भवत्येषः । सिद्धांतादीनक्षरविशुद्धानर्थशुद्धान् ग्रन्थार्थशुद्धांश्च पठन् वाचयन् प्रतिपादयंश्च ज्ञानविशुद्धो भवत्येषः । अक्षरादिव्यत्ययं न करोति यथा व्याकरणं यथोपदेशं पठतीति ॥ ८८ ॥

किमर्थं विनयः क्रियत इत्याह—

विणएण सुदमधीदं जदिवि पमादेण होदि विस्सरिदं ।
तमुवट्ठादि[1] परभवे केवलणाणं च आवहदि ॥ ८९ ॥

विनयेन श्रुतमधीतं यद्यपि प्रमादेन विस्मृतं भवति तथापि परभवेऽन्यजन्मनि तत्सूत्रमुपतिष्ठते, केवलज्ञानं चावहति प्रापयति तस्मात्कालादिशुद्धया पठितव्यं शास्त्रमिति ॥ ८९ ॥

ज्ञानाचारप्रबन्धमुपसंहरंश्चारित्राचारप्रबन्धं सूचयन्नाह—

णाणाचारो एसो णाणगुणसमण्णिदो मए वुत्तो ।
एत्तो चरणाचारं चरणगुणसमण्णिदं वोच्छं ॥ ९० ॥

ज्ञानाचारो ज्ञानगुणसमन्वितो मयोक्तः । इत ऊर्ध्वं चरणाचारं चरणगुणसमन्वितं वक्ष्ये कथयिष्येऽनुवदिष्यामीति । तेनात्रात्मकर्तृत्वं च ख्यापितं ॥ ९० ॥

आगैं व्यंजनशुद्धि, अर्थिशुद्धि, उभयशुद्धि का स्वरूप निरूपण के अर्थि कहै है—

अर्थ—अक्षर शुद्ध होय, जैसैं आम्नाय मैं उपदेश हैं, तैसैं हो पढै । बहुरि पद, वाक्य शुद्ध होय, जैसैं व्याकरण शास्त्र मैं लक्षणसूत्र कहे हैं । तिनिकै प्रतिकूल पढ़ै, अक्षरादिक का विपर्यय नांही करै सो व्यंजन शुद्ध कहिए । बहुरि जामैं अर्थ विशुद्ध होय, निर्बाध होय सो अर्थशुद्ध कहिए । बहुरि अर्थ सहित व्यंजन जामैं शुद्ध होय सो उभय शुद्ध कहिए । अैसें सिद्धांतादिकनि कूं यत्नाचारकरि व्यंजनशुद्ध, उभयशुद्ध पढै, वांचै, व्याख्यान करै, सो ज्ञानविशुद्धि कहिए । अैसे अष्ट प्रकार ज्ञानशुद्धि का वर्णन कोया ॥८८ ॥

आगै विनय किसैं अर्थि करिए ? सो कहै हैं—

अर्थ—विनयकरि कै पढ्या श्रुतज्ञान प्रमादकरि कदाचित् विस्मरण भी होय जाय तथापि अन्य जन्म विषैं सो सूत्र यादि (स्मरण) आ जाय है, संस्कार रहै है, केवलज्ञान कूं प्राप्त करै हैं । तातैं कालादिक की शुद्धता करि, विनयकरि शास्त्र पढ़ना योग्य है ॥ ८९ ॥

आगैं ज्ञानाचार के प्रवंध कूं समाप्त करता संता, चारित्राचार के प्रबंध की सूचनिका करता संता कहै है—

अर्थ—अैसे यहु ज्ञान गुण सहित ज्ञानाचार मैंने कह्या । यातै आगैं आचरणगुण सहित चरणाचार कहिए चारित्राचार

---

1. क तमुट्ठावदि ।

[1]तथा प्रतिज्ञानिर्वहन्नाह —

पाणिवहमुसावाद-अदत्तमेहुणपरिग्गहा विरदो ।
एस चरित्ताचारो पंचविहो होदि णादव्वो ।। ९१ ।।

प्राणिवधमृषावादादत्तमैथुनपरिग्रहाणां विरतयो निवृत्तय एष चारित्राचारः पंचप्रकारो भवति ज्ञातव्यः । येन प्राण्युपघातो जायते तत्सर्वं मनसा वचसा कायेन च परिहर्तव्यं येनानृतं, येन च स्तैन्यं, येन मैथुनेच्छा, येन च परिग्रहेच्छा तत्सर्वं त्याज्यमिति ।। ९१ ।।

प्रथमव्रतप्रपंचनार्थमाह—

एइंदियादिपाणा पंचविहावज्जभीरुणा सम्मं ।
ते खलु ण हिंसिदव्वा मणवचिकायेण सव्वत्थं[2] ।। ९२ ।।

एकमिन्द्रियं येषां ते एकेन्द्रियाः, एकेन्द्रिया आदिर्येषां प्राणानां जीवानां त एकेन्द्रियादयः प्राणाः, ते कियन्तः पंचविधाः पंचप्रकारास्ते, खलु स्फुटं अवद्यभीरुणा सम्यग्विधानेन न हिंसितव्याः, मनसा वचसा कायेन च सर्वत्र पीडा न कर्तव्या न कारयितव्या नानुमन्तव्येति । सर्वस्मिन् काले, सर्वस्मिन् देशे सर्वस्मिन्वा भावे चेति ।। ९२ ।।

है, ताहि वक्ष्ये कहिए पूर्वाचार्यनिकै अनुसार कहूंगा । इहां आपकै ग्रन्थकर्तापणां का परिहार कीया है। आप्तकै ग्रंथकर्तापणां प्रगट कीया ।। ९० ।।

आगैं प्रतिज्ञा का निर्वाह करता चारित्राचार कूं कहै हैं—

अर्थ—१. प्राणिवध, २. मृषावाद, ३. अदत्त, ४. मैथुन ५. परिग्रह—इनि पंच पापनिको विरति कहिए—निवृत्ति सो यहु पंच प्रकार चारित्राचार है—ऐसा जाननां। जा कार्य करि प्राणीनिका वध कहिए, उपघात होय सो सर्वकार्य मनकरि, वचनकरि, कायकरि छोड़नां। बहुरि जा करि मृषावाद कहिए असत्यवचन प्रवर्ते सो सर्व छोड़ना। बहुरि जा कहियै बिना दियैं वस्तु का लेंना रूप स्तैन्य प्रवर्तैं सो सर्व कार्य छोड़नां। बहुरि जाकरि मैथुन कहिए—स्त्री-पुरुष का अभिलाष रूप मैथुनेच्छा प्रवर्तैं हैं सो सर्वकार्य छोड़नां। बहुरि जाकरि परिग्रह कहिए चेतन-अचेतन-परिग्रह की इच्छा प्रवर्तैं सो सर्वकार्य छोड़नां। ऐसे संक्षेप अर्थ कह्या ।। ९१ ।।

आगैं प्रथम व्रत का विस्तार कै अर्थि कहै है—

अर्थ—एक है इंद्रिय, जिनिकै ते जीव एकेंद्रिय कहिए। दोय हैं इंद्रिय जिनिकै ते द्वींद्रिय कहिए। तीन हैं इंद्रिय जिनिकै त्रींद्रिय कहिए। च्यारि हैं इंद्रिय जिनिकैं ते चतुरिंद्रिय कहिए। पांच हैं इंद्रिय जिनिकै ते पंचेंद्रिय कहिए। ऐसे पंच प्रकार जे जीव ते खलु कहिए प्रगटपणे, अवद्य कहिए पाप, ताकरि भयभीत जो पुरुष, ताकरि मनकरि, वचनकरि, कायकरि सर्वत्र कहिए सर्वकाल विषै, सर्वदेश विषैं, सर्वभाव विषैं, सम्यक्-भलै प्रकार-करि हिंसनैं नहीं, सर्वजीवनि कौं पीड़ा करनो नांही, करावनो

१. क यथा । २. अ. ब. सव्वच्छ ।

द्वितीयव्रतस्वरूपनिरूपणार्थमाह—

हस्सभयकोहलोहा[1] मणिवचिकायेण सव्वकालम्मि ।
मोसं ण य भासिज्जो पच्चयघादी हवदि एसो ।। ९३ ।।

हास्यभयक्रोधलोभैर्मनोवाक्कायप्रयोगेन सर्वस्मिन् कालेऽतीतानागवर्तमानकालेषु मृषावादं—परपीडाकरं वचनं नो वदेत् । यत एष मृषावादः प्रत्ययघाती भवतीति न कस्यापि विश्वासस्थानं जायते । अतो हास्यात्, क्रोधात्, भयाल्लोभाद्वा परपीडाकरं वस्तुयाथात्म्यविपरीतप्रतिपादकं वचनं मनसा न चिन्तयेत्, ताल्वादिव्यापारेण नोच्चारयेत्, कायेन नानुष्ठापयेदिति ।। ९३ ।।

अस्तेयव्रतस्वरूपनिरूपणायाह—

गामे णगरे रण्णे थूलं सचित्त बहु सपडिवक्खं ।
तिविहेण वज्जिदव्वं[2] अदिण्णगहणं च तण्णिच्चं ।। ९४ ।।

ग्रामो वृत्यावृतः । नगरं चतुर्गोपुरोद्भासि शालं । अरण्यं महाटवीगहनं । उपलक्षणमात्रमेतत् । तेन ग्रामे, नगरे, पत्तने, अरण्ये, पथि, खले, मटंवे, खेटे, कर्वटे, संवाहने, द्रोणमुखे, सागरे, द्वीपे, पर्वते, नद्यां वेत्येवमाद्यन्येष्वपि प्रदेशेषु स्थूलं सूक्ष्मं, सचित्तमचित्तं, बहु स्तोकं वा सप्रतिपक्षं द्रव्यं सुवर्णादिकं धनधान्यं वा द्विपदचतुष्पदजातं वा कांस्यवस्त्राभरणादिकं वा पुस्तिकाकपलिकानखरदनपिच्छिकादिकं वा, नष्टं वा

नांही, अन्य करतै कूं भला जानना नांही । ऐसे प्रथम व्रत का स्वरूप कह्या ।। ९२ ।।

आगैं दूसरे व्रत का स्वरूप निरूपण कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—हास्यकरि, भयकरि, क्रोधकरि, लोभकरि सर्व अतीत, अनागत, वर्तमान विषैं पर कूं पीडा का करने वाला जो वचन, वस्तु के सांचे स्वरूपतैं विपरीत स्वरूप का प्रतिपादक जो वचन, तांहि नांहो बोलैं, मनकरि ऐसे वचन का चिंतवन करै नांही, तालुवादिक स्थाननि के व्यापार करि ऐसे वचन का उच्चार करै नांहो, कायकरि ऐसे वचन का अनुष्ठान करै नांहो । ऐसैं द्वितीयव्रत कै स्वरूप का निरूपण कीया ।। ९३ ।।

आगैं तृतीय अस्तेय व्रत के स्वरूप निरूपण के अर्थि कहै है—

अर्थ—ग्राम कहिए कांटेनिकी वाडिकरि वेढ्या वास । नगर कहिए च्यारि दरवाजेनि करि शोभित है कोटा जाका, ऐसा । बहुरि अरण्य कहिए—महाअटवी, वन । यह कथन उपलक्षण है । तातैं पत्तन, पथ, खल (खलिहान), मटंब, खेट, कर्वट, संवाहन, द्रोणमुख, सागर, द्वीप, पर्वत, नदी इत्यादिक अन्य हूं प्रदेशनि विषै स्थूल तथा सूक्ष्म, सचित्त तथा अचित्त, बहुतया तथा थोरा द्रव्य, सुवर्णादिक तथा धन-धान्य तथा द्विपद, चतुष्पद का समूह तथा कांस्यादिक भाजन तथा वस्त्रादिक तथा आभरणादिक तथा पुस्तक, कबली-कमण्डल, नखरदन (नखकतरनो), पीछो इत्यादिक नष्ट कहिए जाते रहे, विस्मृत कहिए

---

१. ग—हास्सभयकोहल्लोहे । २. अ. वज्जेदव्वं ।

विस्मृतं पतितं स्थापितं परसंगृहीतं त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतैर्वादत्तग्रहणं नित्यं तत्सर्वं वर्जितव्यं । अन्यदप्येवमादिधनादिकं विरोधकारणं निहितव्यं । यतस्तत्सर्वमदत्तं स्तेयस्वरूपमिति ॥ ९४ ॥

चतुर्थव्रतस्वरूपनिरूपणायाह—

अच्चित्तदेवमाणुसतिरिक्खजादं च मेहुणं चदुधा ।
तिविहेण तं ण सेवदि णिच्चं पि मुणी हि पयदमणो ॥ ९५ ॥

अचित्तं, चित्र-लेप-पुस्त-भांड-शैल-बंधादिकर्मनिर्वर्तितस्त्रीरूपाणि, भवनवानव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासदेवस्त्रियः, ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रस्त्रियश्च, वडवागोमहिष्यादितिरश्च्यश्च, एताभ्यो जातमुत्पन्नं चतुर्धा मैथुनं रागोद्रेकात्कामाभिलाषं त्रिविधेन मनोवचनकायकर्मभिः कृतकारितानुमतैस्तन्न सेवते । नित्यमपि मुनिः प्रयत्नमनाः । हि स्फुटं । स्वाध्यायपरो लोकव्यापाररहितः सर्वाः स्त्रीप्रतिमाः मातृदुहितृभगिनीवत् चितये । नैकाकी ताभिः सहैकान्ते तिष्ठेत् । न वर्त्मनि गच्छेत् । न च रहसि मंत्रयेत् । नाप्येकाकी सन्नेकस्याः प्रतिक्रमणादिकं कुर्यात् । येन येन जुगुप्सा भवेत् तत्सर्वं त्याज्यमिति ॥ ९५ ॥

पंचमव्रतप्रपंचनार्थमाह—

गामं णगरं[1] रण्णं थूलं सच्चित्त बहु सपडिवक्खं ।
अज्झत्थ बाहिरत्थं तिविहेण परिग्गहं वज्जे ॥ ९६ ॥

धरि भूलि गये, पतित कहिए गिर पड़े, स्थापित कहिए धरे हुवे, पर-संगृहोत कहिए पैले ने संग्रह कोये, तिनिका त्रिविध कहिए मन-वचन-कायनिकरि, कृत-कारित-अनुमोदना करि, बिना दिए ग्रहण—सो सर्व्व हो सदा वर्ज्जन करनां औरहूं अैसेहूं विरोध का कारण होय, ताकी इच्छा ही नहीं करणीं—तातैं सो सर्व ही अदत्त-स्तेय रूप हैं ॥ ९४ ॥

आगैं चतुर्थव्रत के स्वरूप का निरूपण कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—अचित्त कहिए चित्र, लेप, पुस्त, भांड, शैल, बंधादि कर्म तिनिकरि रचे जे स्त्रीरूप, बहुरि भवनवासो, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी देवनिकी स्त्री जे हैं, ते । बहुरि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इनिकी स्त्रो जे है ते, बहुरि गाय, घोड़ी, भैंसि इत्यादि तिरजंचरणी (तिर्यंचणी) जे हैं ते सो तिनकरि उत्पन्न भयो जो च्यारि प्रकार मैथुन राग का उदय ते काम का अभिलाष, ताहि नित्य ही प्रयत्न रूप है, मन जाका, बहुरि प्रकट स्वाध्याय विषैं तत्पर, बहुरि लोक-व्यापारतैं रहित—अैसा मुनि जो है सो त्रिविध कहिए मन, वचन, कायनि करि कृत, कारित, अनुमोदना, करि नांही सेवन करै है, सर्व जे स्त्री रूप हैं तिनही, माता, बहनि, पुत्री की ज्यो (तरह) जानै, एकाकी तिनसहित-एकांत विषैं नाहीं तिष्ठैं तथा मार्ग विषैं तिन सहित गमन नाहीं करैं, एकांत विषैं तिनि सहित मंत्र नांही करै । बहुरि अकेला आप, अकेलो आर्यिका कूं प्रतिक्रमणादिक नांही करैजा । जा कारण करि मन विषैं जुगुप्सा होय, सो सर्व ही त्याग करै ॥ ९५ ॥

[1] अ, ब नगरं ।

ग्रामं, नगरं, अरण्यं, पत्तनं, मटंवादिकं च। स्थूलं—क्षेत्रगृहादिकं। सचित्तं दासीदासगोमहिष्यादिकं। बहुमनेकभेदभिन्नं। सप्रतिपक्षं सूक्ष्मं[1] चित्रैकरूपं नेत्रचीनकौशेयद्रव्यमणिमुक्ताफलसुवर्णभाण्डादिकं। अध्यात्मं मिथ्यात्व-वेद-राग-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-क्रोध-मान-माया-लोभात्मकं बहिःस्थं क्षेत्रवास्त्वादिकं दशप्रकारं। मनोवाक्कायकर्मभिः कृतकारितानुमतैः परिग्रहं श्रामण्यायोग्यं वर्जयेत्। सर्वथा मूर्च्छा त्याज्येति नैःसंग्यमाचरेत् ॥ ९६ ॥

अथ महाव्रतानामन्वर्थव्युत्पत्तिं प्रतिपादयन्नाह—

साहंति[2] जं महत्थं आचरिदाणी य जं महल्लेहिं।
जं च महल्लाणि तदो महव्वयाइं[3] भवे ताइं ॥ ९७ ॥

यस्मान्महार्थं मोक्षं साधयन्ति, यस्माच्च महद्भिस्तीर्थकरादिभिराचरितानि सेवितानि, यतश्च स्वत एव महान्ति सर्वसावद्यत्यागात् ततस्तानि महाव्रतानि भवन्ति। न पुनः कपालादिग्रहणेनेति ॥ ९७ ॥

अथ रात्रिभोजननिवृत्यादिनिरूपणोत्तरप्रबन्धः किमर्थं इति पृष्टेऽत आह—

तेसिं चेव वदाणं रक्खट्ठं रादिभोयणणियत्ती[4]।
अट्ठय पवयणमादा य भावणाओ य सव्वाओ ॥ ९८ ॥

आगै पंचमहाव्रत के स्वरूप का विस्तार कै अर्थि कहै है—

अर्थ—ग्राम, नगर, अरण्य, उपलक्षणतैं पत्तन, अटवादिक[5], स्थूल कहिए क्षेत्र-गृहादिक, सचित्त कहिए दासी-दास, गाय-भैंसि इत्यादिक, बहु कहिए अनेक भेदनिकरि भिन्न, बहुरि सप्रतिपक्ष कहिए सूक्ष्म अचित्त एकरूप करि सहित—नेत्र, चीन-कौशिय कहिए रेशमी वस्त्र, द्रुम्म (द्रव्य) मणि मुक्ताफल, सुवर्ण, भांड इत्यादिक। बहुरि अध्यात्म (अन्तरंग परिग्रह) कहिए मिथ्यात्व, वेद (तीन), राग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ-स्वरूप। बहुरि बहिस्थ कहिये क्षेत्र, वास्तु—इत्यादिक दस प्रकार बाह्य परिग्रह, ताहि मन, वचन, कायकरि, कृत, कारित, अनुमोदना करि, मुनिपद कै अयोग्य ताहि वर्ज्जन करै। सर्व प्रकार मूर्च्छा कहिए ममत्व परिणाम जो हैं, सो, त्याज्य कहिए त्याग करिबे योग्य है। यातैं नैःसंग्य कहिए—निःसंग्यता ताहि आचरै ॥ ९६ ॥

आगैं महाव्रतनि की अन्वर्थ व्युत्पत्ति जो है ताहि प्रतिपादन करतै संतै कहै हैं—

अर्थ—जा कारणतैं महान् अर्थ जो है, सो मोक्ष, ताहि साधयंति कहिए साधत हैं। बहुरि महत् पुरुष जे तीर्थंकरादिक तिनकरि आचरिये हैं—सेइये हैं। बहुरि सर्वप्रकार सावद्य जोग का त्यागकरिकैं स्वतैं ही पूज्य हैं तातैं महाव्रत कहिए। बहुरि कपालादि (पात्रों को) ग्रहणकरि महाव्रत संज्ञा नांही होय है ॥ ९७ ॥

---

१. क °सूक्ष्माचित्तैक°। २. अ, ब साहेंति। ३. अ, ब महव्वदाइं। ४. 'विरत्ती' इत्यपि पाठः।
५. मूलाचार वृत्ति मटंवादिकं।

तेषामेव महाव्रतानां रक्षणार्थं रात्रिभोजननिवृत्तिः। रात्रौ भोजनं तस्य निवृत्ती रात्रिभोजननिवृत्तिः। बुभुक्षितोऽपि भोजनकालेऽतिक्रान्ते नैवाहारं चिन्तयति। नाप्युदकादिकं। अष्टौ प्रवचनमातृकाः पंच समितयस्त्रिगुप्तयः। भावनाश्च सर्वाः पंचविंशतयः महाव्रतानां पालनाय वक्ष्यन्त इति ॥ ९८ ॥

यतः रात्रौ भोजनक्रियायां प्रविशतो दोषानाह—

तेसिं पंचण्हंपि य ण्हयाणमावज्जणं च संका वा।
आदविवत्ती अ हवे रादीभत्तप्पसंगेण ॥ ९९ ॥

तेषां पंचानामप्यह्लवानां व्रतानामासमन्ताच्चावर्जनं भंगः म्लानता, आशङ्का वा लोकस्य किमितिकृत्वायं प्रव्रजितो रात्रौ प्रविष्टो दुरारेकः स्यात्। गृहस्थानामात्मविपत्तिश्चि भवेत्। स्थाणुपशुसिंहचौरसारमेयनगररक्षकादिभ्यो रात्रिभक्तप्रसंगेन रात्रावाहारार्थं पर्यटतस्तस्माद्रात्रिभोजनं त्याज्यमिति ॥ ९९ ॥

पंचविधमाचारं व्याख्याय समित्यादिद्वारेणाष्टविधं व्याख्यातुकामः प्राह—

पणिधाणजोगजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
एस चरित्ताचारो अट्ठविहो होइ णायव्वो ॥ १०० ॥

आगैं रात्रिभोजन का त्याग इत्यादिक निरूपण रूप उत्तरप्रबंध जो है, सो काहे कै अर्थि करिये है? अैसा प्रश्न होतैं संतैं कहै हैं—

अर्थ—तिनि महाव्रतनि ही की रक्षा कैं अर्थि रात्रि विषैं भोजन की निवृत्ति करिये हैं। क्षुधा की बाधा होय तो हूँ भोजन का अवसर वितीत भये (बीत जाने पर) पीछै आहार का तथा जलादिक का चिंतवन ही नांही करै हैं। बहुरि आठ प्रवचन मातृका कहिए—पंचसमिति, तीन गुप्ति जे हैं ते, बहुरि सर्व कहिए पंचविंशति अैसी भावनां हैं ते, महाव्रतनि की रक्षा कै अर्थि यत्न हैं, अैसा जाननां ॥ ९८ ॥

आगैं मुनिकैं रात्रिविषैं भोजन-क्रिया विषै प्रवेश करैं तौ एते दोष प्रगट होय, अैसा कहै हैं—

अर्थ—रात्रिभोजन के प्रसंग करि रात्रि विषैं जे आहार कै अर्थि गमन करै हैं तिनिकैं पंचमहाव्रतनि का आवर्जन कहिए—समस्त पणै करि भंग अथवा मलीनती होय है। बहुरि गृहस्थ लोकनि कै—यहु दीक्षा का धारक रात्रि विषैं काहे कौं प्रवेश करै है? अैसी दुष्टभाव रूप आशंका होत है। बहुरि स्थाणु कहिए ठूँठ, कीले, पशु, चोर, श्वान, कोटपाल—इत्यादिकनिकरि आपके विपत्ति होत हैं।[1] तातैं रात्रिभोजन का अवश्य त्याग करनां ॥ ९९ ॥

आगै पंचविध आचार का व्याख्यान करि समित्यादिक द्वारकरि अष्टप्रकार आचार का व्याख्यान करिवे का अभिप्राय जाकैं अैसा कहै[2] है—

१. ब प्रति में—बहुरि स्थाणु से यहाँ तक का अंश नहीं है।   २. ब प्रति में—होय है।

प्रणिधानं परिणामस्तेन योगः सम्पर्कः प्रणिधानयोगः। युक्तो न्याय्यः शोभनमनोवाक्कायप्रवृत्तयः। पंचसमितिषु त्रिषु गुप्तिषु। एष चारित्राचारोऽष्टविधो भवति ज्ञातव्यः। महाव्रतभेदेन पंचप्रकारः आचारः। अथवा समितिगुप्तिविषयपरिणामभेदेनाष्टप्रकारो न्याय्य आचार इति ॥ १०० ॥

अथ युक्त इति विशेषणं किमर्थमुपात्तमित्याशंकायामाह—

पणिधाणंपि य दुविहं पसत्थ तह अप्पसत्थं च।
समिदीसु य गुत्तीसु य पसत्थं[1] सेसमप्पसत्थं[2] तु ॥ १०१ ॥

प्रणिधानमपि द्विप्रकारं। प्रशस्तं शुभं। तथाऽप्रशस्तमशुभमिति। समितिषु गुप्तिषु प्रशस्तं प्रणिधानं। तथाशेषमप्रशस्तमेव। सम्यगयनं जीवपरिहारेण मार्गोद्योते धर्मानुष्ठानाय गमनं प्रयत्नपरस्य यतेर्यत् सा समितिः। अशुभमनोवाक्कायानां गोपनं स्वाध्यायध्यानपरस्य मनोवाक्कायसंवृतिर्गुप्तिः। एतासु यत्प्रणिधानं स युक्तोऽष्टप्रकारश्चारित्राचार इति। शेषं पुनर्यदप्रशस्तं प्रणिधानं तद्द्विविधमिन्द्रियनोइंद्रियभेदेन ॥ १०१ ॥

इन्द्रियप्रणिधानस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

सद्दरसरूवगंधे फासे य मणोहरे य इदरे य।
जं रागदोसगमणं पंचविहं होइ पणिधाणं[3] ॥ १०२ ॥

अर्थ—प्रणिधान कहिए परिणाम ताकरि योग कहिए संयोग रूप, युक्त कहिए न्याय रूप, पंचसमिति, तीन गुप्ति विषैं शुभ रूप मन, वचन, काय, की प्रवृत्ति सो—यहु अष्ट प्रकार चारित्राचार है—अैसा जाननां। महाव्रतनि के भेदकरि पंच प्रकार आचार अथवा समिति, गुप्ति विषैं प्रवर्ते जे परिणाम तिनिके भेदकरि अष्ट प्रकार आचार न्याय रूप हैं ॥ १०० ॥

आगै 'युक्त' अैसा विशेषण काहे कैं अर्थि ग्रहण कीया ? अैसी शंका होत संतै कहै है—

अर्थ—प्राणिधान जो परिणाम सो हू दोय प्रकार है—प्रशस्त कहिये शुभ तथा अप्रशस्त कहिये अशुभ। अैसे तहां समितिनि विषै, गुप्तिनि विषै प्रणिधान है सो प्रशस्त है तथा अवशेष इंद्रिय विषयनि विषै प्रणिधान है सो अप्रशस्त ही है।

प्रयत्न विषै तत्पर जो मुनि ताकै, सम्यक् कहिये भलै प्रकार जीवनिकी परिहार करि, मार्ग के उद्योत विषै, धर्मार्थ अनुष्ठान कै अर्थि जो प्रवर्तनां सो समिति कहिये। बहुरि स्वाध्याय ध्यान विषै तत्पर जो मुनि ताकै अशुभ मन, वचन, कायनि का, गोपनां कहिये संवर सो गुप्ति कहिये। अैसे पंच समिति, तीन गुप्तिनि विषैं जो प्रणिधान सो युक्त कहिये। बहुरि सो ही अष्ट प्रकार चरित्राचार कहिये। अवशेष जो अप्रशस्त प्रणिधान सो दोय प्रकार है—इंद्रिय प्रणिधान, नोइंद्रियप्रणिधान ॥ १०१ ॥

तहां इंद्रियप्रणिधान का स्वरूप प्रतिपादन कै अर्थि कहैं हैं—

---

१. अ. प्रति सच्चं, ब. 'सच्छं'। २. अ. ब. सेसमप्पसच्छं। ३. अ. ब. णिधानं।

शब्दरसरूपगन्धस्पर्शेषु मनोहरेषुः शोभनेषु, इतरेष्वशोभनेषु, यद्रागद्वेषयोर्गमनं प्रापणं तत्पंचप्रकारमिन्द्रियप्रणिधानं भवति। स्त्रीपुरुषादिप्रवृत्तेषुषड्जर्षभ-गान्धार-मध्यम-पंचम-धैवत-निषादभेदभिन्नेषु आरोह्यवरोहिस्थायिसंचारिचतुर्वर्णयुक्तेषु षडलंकारद्विविधकाकुभिन्नेषु मूर्च्छनास्त्यानादिप्रयुक्तेषु सुस्वरेषु यद्रागप्रापणं, तथा कोकिलमयूरभ्रमरादिशब्देषु वीणारावणहस्तवंशादिशब्देषु यद्रागकरणं, तथोष्ट्रखरकरभादिप्रयुक्तेषु दुःस्वरेषु उरःकण्ठशिरस्त्रिस्थानभेदभिन्नेष्वनिष्टेषु यद्द्वेषकरणं। तथा तिक्तकटुकषायाम्लमधुरभेदभिन्नेषु सुप्रयुक्तेषु मनोहरेष्वमनोहरेषु तीव्रतीव्रतरतीव्रतम-मन्दमन्दतरमन्दतमेषु गुडखंडदधिघृतपयःपानादिगतेषु निंबकांजीरविषखल[1] यवसकुष्ठादिगतेषु च रसेषु यद्रागद्वेषयोः करणं। तथा स्त्रीपुरुषादिगतेषु गौरश्यामादिवर्णेषु रूपेषु हावभावहेलांगजभावप्रयुक्तेषु लीलाविलासविच्छित्तिविभ्रमकिलकिंचित-मोट्टायितकुट्टिमितविव्वोकललितविहृतैर्दशभिःस्वाभाविकैर्भावैर्युक्तेषु शोभाकान्तिमाधुर्यधैर्यप्रागल्भ्यौदार्यैरयत्नजैः प्रयोजितेषु द्वात्रिंशत्करणयुक्तेषु कटाक्षनिरीक्षणपरेषु नृत्तगीतहास्यादिमनोहरेषु रूपेषु तद्विपरीतेष्वमनोहरेषु रागद्वेषप्रयुक्तेषु द्विविधगन्धेषु शोभनाशोभनभेदभिन्नेषु आर्द्रमहिषीयक्षकर्दमकस्तूरीकर्पूरकाला-

---

अर्थ—शब्द, रस, रूप, गंध, स्पर्श, मनोहर कहिये शोभन, इतर कहिए अशोभन, तिनि विषै रागद्वेष का प्राप्त होनां—सो पंचप्रकार इन्द्रिय प्रणिधान है। तहां स्त्री-पुरुषादिककनि विषै प्रवर्तै-षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद रूप भेदनि करि भिन्न, बहुरि उर, कंठ, शिर रूप तोन स्थान भेदनि करि भिन्न, ऐसे आरोही, अवरोही, स्थापि, संचारो—या प्रकार च्यारि वर्णकरि युक्त, बहुरि छह अलंकार, दोय काकू (ध्वनि) भेदकरि भिन्न, मूर्च्छना, स्त्यानादि करि प्रयुक्त—ऐसे जै सुस्वर कहिए भले स्वर, तिनि विषैं राग कौ प्राप्त होना तथा कोकिल, मयूर, भ्रमर इत्यादिकनिके शब्द विषैं, तथा वोणा, रावण (के) हत्था (हाथ), बांसुरी इत्यादिकनिके शब्द विषै राग कूं प्राप्त होनां तथा ऊँट, गर्दभ, करभ इत्यादिकनि करि उच्चारित ते अनिष्ट स्वर, तिनि विषै द्वैष कौ करणां सो यहु शब्द विषयक अप्रशस्त प्रणिधान है।

तथा, तिक्त, कटुक, कषाय, आम्र, मधुर—इनि पंचभेदनि करि भिन्न रूप, सु कहिए भलै प्रकार प्रयोग रूप किये, मनोहर तथा अमनोहर तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर और मन्दतम—ऐसे छह भेद रूप गुड, खांड, दधि, घृत, दुग्धपान इत्यादिकिनि विषै प्राप्त भया। बहुरि नीम, कांजोर, विष, खल, यवम, कुष्ठ कहिये मौठ इत्यादिकनि विषै प्राप्त भया जे रस, तिनि विषै राग-द्वेष का कारना सो यह रस विषयक अप्रशस्त प्रणिधान है।

तथा स्त्रीपुरुषादि विषै प्राप्त भये जे गौर श्यामादि वर्ण तिनि विषै, बहुरि हाव-भाव, हेला—ये अंगज भाव, इनिकरि प्रयुक्त, बहुरि १. लीला, २. विलास, ३. विच्छित्ति, ४. विभ्रम, ५. किलकिंचित, ६. मोहायित, ७. कुट्टिमित, ८. विव्वोक, ९. ललित, १०. विहृत—यहु दश। इस प्रकार स्वाभाविक भाव, तिनिकरि युक्त। बहुरि स्वभाव ही तैं विना यत्नभये—शोभा, कांति, माधुर्य, धैर्य, प्रगल्भता, उदारता—तिनि करी प्रयुक्त किये। बहुरि बत्तीस करण करि युक्त, बहुरि कटाक्ष निरीक्षण करि उत्कृष्ट, बहुरि नृत्य, गीत, हास्यादि करि मनोहर जे रूप, तिनि विषैं। बहुरि ईनतैं विपरीत जे अमनोहर रूप, तिनि विषै राग-द्वैष का करणां सो यहु रूप (चक्षु) विषयक अप्रशस्त प्रणिधान है।

---

१. क °यमकुण्ठा°।

गुरुचन्दनकुंकुमजातिमल्लिकापाटलादिविभिन्नेषु तथा विभीतकाशुचिस्वेदव्रणादिप्रभवेष्वनिष्टेषु यद्रागद्वेषयोः करणं । तथाष्टप्रकारेषु स्पर्शेषु मृदु-कर्कशशीतोष्णस्निग्धरूक्षगुरुलघुभेदभिन्नेषु स्त्रीवस्त्र[1]सूलीकादिप्रभवेषु तथा भूमिशिलातृणशर्करादिप्रभवेषु यद्रागद्वेषकरणं तत्सर्वमिन्द्रियप्रणिधान[2]मस्तीति ।। १०२ ।।

इन्द्रियप्रणिधानमुक्तमीषदिन्द्रियप्रणिधानं किंस्वरूपमिति पृष्टेऽत आह—

णोइंदियपणिधाणं कोहे माणे तदेव मायाए ।

लोहे य णोकसाए मणपणिधाणं तु तं वज्जे ।। १०३ ।।

क्रोधे माने मायायां तथैव लोभे चैकस्मिश्चतुर्विधे एतद्विषये यदेतन्मनःप्रणिधानं मनोव्यापारस्तन्नोइन्द्रियप्रणिधानं । तदेतदिन्द्रियप्रणिधानं चाप्रशस्तमयुक्तं वर्जयेत् वर्जयितव्यमिति ।। १०३ ।।

समितिगुप्तिविषयः प्रणिधानयोगोऽष्टविध आचारोक्त[3] इति प्रतिपादितं ततः काः समितयो गुप्तयश्चेत्याशंकायामाह—

णिक्खेवणं च गहणं इरियाभासेसणा य समिदीओ ।

पदिठावणियं च तहा उच्चारादोणि पंचविहा ।। १०४ ।।

बहुरि आर्द्र-महिषी, यक्षकर्दम कहिये कंकोल अगरु, कस्तूरी, कपूर, कालागुरु—इन च्यारि वस्तु करि जो वण्या सुगंध-द्रव्य–कस्तूरी, कपूर, कालागुरु, चंदन, केसरि, जाय (जायपुष्प), मल्लिका, पाटल पुष्प (ये फूल) इत्यादि भेदनिकरि भिन्न इष्ट गन्ध। बहुरि विभीतक-अशुचि कहिए मल-मूत्र, स्वेद कहिए पसेव, व्रण कहिए घाव इत्यादिकनि तैं उत्पन्न भये जे अनिष्ट गंध, या प्रकार शोभन भेदकरि भिन्न, दोय प्रकार जे गंध, तिनि विषै जो रागद्वेष का कारणां सो यहु गंध विषयक अप्रशस्त प्रणिधान है।

तथा मृदु कहिये कोमल, कर्कश कहिये कठोर, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, गुरु और लघु इनि भेदन करि भिन्न, बहुरि स्त्री, वस्त्र, तूलिका कहिये कोमल विछावणो (विस्तर) इत्यादिकनि तैं उत्पन्न भया तथा भूमि, शिला, तृण, कंकरेट (मोटी रेत) इत्यादिकनितैं उत्पन्न भये जे अष्टप्रकार इष्ट-अनिष्ट स्पर्श, तिनि विषैं रागद्वेष का करना सो यहु स्पर्श विषयक सर्व अप्रशस्त इंद्रिय प्रणिधान हैं। ऐसे इंद्रिय प्रणिधान कह्या ।। १०२ ।।

आगैं ईषदोन्द्रिय (ईषत् इन्द्रिय) जो मन ता विषयक (मनः) प्रणिधान का स्वरूप कैसा है ? ऐसे प्रश्न होत संतै कहै हैं—

अर्थ—क्रोध विषैं तथा मान विषै, तथा माया विषै तथा लोभ विषै अनन्तानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन—ऐसे एक-एक के च्यारि-च्यारि भेद हैं। तिनि विषैं तथा हास्यादि नोकषायनि विषै जो मन का प्रणिधान कहिए व्यापार सो अप्रशस्त नोइन्द्रिय प्रणिधान कहिए। सो यहु इन्द्रिय-प्रणिधान तथा नोइन्द्रिय-प्रणिधान जो अप्रशस्त है, अयुक्त है, ताहि वर्ज्जन करना। बहुरि समिति, गुप्ति, विषयक प्रणिधान है सो अष्ट प्रकार आचारोक्त है। या प्रकार प्रतिपादन कीया है ।। १०३ ।।

आगैं तातैं समिति कहा ? गुप्ति कहा (क्या) ? ऐसे आशंका होत संतै कहै हैं—

---

१. क °तूलिका° । २. क °नमप्रशस्तमिति । ३. क आचार उक्त ।

निक्षेपणं निक्षेपः पुस्तिकाकुण्डिकादिव्यवस्थापनं । तेषामेव ग्रहणमादानं समीक्ष्य, सैषादाननिक्षेपणसमितिः । धर्मार्थिनो यत्नपरस्य गमनमीर्यासमितिः । सावद्यरहितभाषणं भाषासमितिः कृतकारितानुमतरहिताहारादानमशनसमितिः । समितिशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । उच्चारादीनां मूत्रपुरीषादीनां प्रासुकप्रदेशे प्रतिष्ठापनं त्यागः प्रतिष्ठापनासमितिः । इत्येवं पंचविधा समितिरिति ॥ १०४ ॥

तत्र तावदीर्यासमितिस्वरूपप्रपंचनार्थमाह—

मग्गुज्जोवुवओगालंबणसुद्धीहिं इरियदो मुणिणो ।
सुत्ताणुवीचि भणिया इरियासमिदी पवयणम्मि ॥ १०५ ॥

मग्ग—मार्गः पन्थाः । **उज्जोव**—उद्योतश्चक्षुरादित्यादिप्रकाशः । **उवओग**—उपयोगो ज्ञानदर्शनविषयो यत्नः । **आलंबण**—देवतानिर्ग्रन्थयतिधर्मादिकारणं । एतेषां शुद्धयस्ताभिर्मार्गोद्योतोपयोगालम्बनशुद्धिभिःईर्यतो गच्छतो मुनेः सूत्रानुवीच्या प्रायश्चित्तादिसूत्रानुसारेण प्रवचने ईर्यासमितिर्भणिता गणधरदेवादिभिर्भणितेति शेषः ॥ १०५ ॥

तावद्गमनं विचार्यत उत्तरगाथयेति—

इरियावहपडिवण्णेणवलोगंतेण होदि गंतव्वं ।
पुरदो जुगप्पमाणं सयापमत्तेण संतेण ॥ १०६ ॥

कैलाशोर्जयन्तचम्पापावादितीर्थयात्रासंन्यासदेवधर्मादिकारणेन शास्त्रश्रावणादिकेन वा सप्रतिक्रमणश्रवणादिप्रयोजनेन वोदिते सवितरि

अर्थ—निक्षेपण कहिये पुस्तक, कंमडलु इत्यादिकनि का धरनां तथा तिनका ग्रहण करना, उठावनां यत्नपूर्वक देखिकरि करिये—सो यहु आदान निक्षेपण समिति कहियै है। बहुरि धर्म का अर्थी यत्न विषें तत्पर अैसा जो मुनिराज ताका गमन सो ईर्यासमिति कहिये। बहुरि, पापादि रहित वचन कहनां—सो भाषा समिति कहिये। बहुरि कृत-कारित-अनुमोदनाकरि रहित आहार का लेनां सो एषणा समिति कहिए। समिति शब्द का एक-एक प्रति संबंध करनां। बहुरि उच्चारादिक कहिये मूत्रपुरोषादिकतिनि का प्रासुकदेश विषैं क्षेपण करनां सो प्रतिष्ठापना समिति कहिये। अैसें पंच प्रकार समिति कही ॥ १०४ ॥

तहां प्रथम ही ईर्यासमिति का स्वरूप विस्तार करणें कैं अर्थि कहै है—

अर्थ—मार्ग तथा उद्योत कहिये—नेत्र का तथा सूर्य का प्रकाश, उपयोग कहिये—ज्ञान-दर्शन विषै यत्न, आलंबन कहिये देवता, निर्ग्रंथ-यतिधर्म इत्यादिक गमन के कारण इनिकी जो शुद्धता, तिनिकरि तथा प्रायश्चित्तादि सूत्रनि कै अनुसारकरि गमन करता जो मुनि, ताके ईर्या समिति होय। अैसें प्रवचन कहिये आगम विषैं गणधरदेव आदिकनि नै कही है ॥ १०५ ॥

प्रथम ही गमन विचारिए है, उत्तरगाथा करि—

अर्थ—कैलाश, गिरिनारि, चंपापुर, पावापुर, इत्यादिक तीर्थयात्रा के कारण करि तथा कोउ मुनि सन्यास लेते होय तहां, तथा देव कहिए तीर्थंकर केवली होय तहां तथा धर्मोत्सव होय तहां इत्यादि कारणकरि तथा तथा शास्त्रश्रवणादिक का

प्रकाशप्रकाशिताशेषदिगन्ते विशुद्धदृष्टिसंचारे विशुद्धसंस्तरप्रदेशे ईर्यापथमार्गं प्रतिपन्नेन समीहमानेन कृतस्वाध्यायप्रतिक्रमणदेववन्दनेन पुरतोऽग्रतो युगमात्रं हस्तचतुष्टयप्रमाणमवलोकयता सम्यक्पश्यता स्थूलसूक्ष्म[1]जीवानप्रमत्तेन यत्नपरेण श्रुतशास्त्रार्थं स्मरता परिशुद्धमनोवाक्कायक्रियेण स्वाध्यायध्यानोपयुक्तेन सता सदा भवति गन्तव्यमिति ।। १०६ ।।

पुनरपि श्लोकत्रयेण मार्गशुद्धिस्वरूपप्रतिपादनायाह—

सयडं जाण जुग्गं वा रहो वा एवमादिया ।
बहुसो जेण गच्छंति सो मग्गो फासुओ हवे[2] ।। १०७ ।।

शकटं वलीवर्दादियुक्तं काष्ठमयं यंत्रं । यानं मत्तवारणयुक्तं पल्यङ्कजातं, हस्त्यश्वमनुष्यादिभिरूह्यमानं युग्यं पीठिकादिरूपं मनुष्यद्वयेनोह्यमानं । रथो विशिष्टचक्रादियुक्तो मुद्गरभुषुंढितोमरादिप्रहरणपूर्णो जात्यश्वादिभिरुह्यमानः इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहुशोऽनेकवारं येन मार्गेण गच्छन्ति स मार्गः प्रासुको भवेदिति ।। १०७ ।।

के ते एवमादिका इत्यत आह—

हत्थी अस्सो खरोढो वा गोमहिसगवेलया ।
बहुसो जेण गच्छंति सो मग्गो फासुओ हवे[3] ।। १०८ ।।

कारणकरि अथवा प्रतिक्रमण करते होय तिनिका श्रवणादि प्रयोजनकरि, बहुरि प्रकाशकरि प्रकाश्या है समस्त दिशानि के अंत जानै असा जो सूर्य ताकौ उदय होत संतै निर्मल दृष्टि का संचार होतैं शोधन किया है संस्तर प्रदेश जा विषैं, ईर्यापथ मार्ग कौ प्राप्त भया सम्यक् प्रकार गमन करता, कीया है पूर्वं स्वाध्याय-प्रतिक्रमण देव-वंदना जानै, बहुरि अग्रभाग विषै, च्यारि हस्तप्रमाण भूमि अवलोकन करता स्थूल, सूक्ष्म, जीवनि कौ भलै प्रकार देखता, प्रमाद रहित यत्नाचार विषैं तत्पर, श्रवण किया जो शास्त्रार्थ ताहि स्मरण करता, परिशुद्ध कहिए समस्तपणैंतै शुद्ध है मन, वचन, काय की क्रिया जाकी, बहुरि स्वाध्याय ध्यान विषै उपयुक्त भया संता गमन करै । मुनि कौ असे ही गमन करनां योग्य है ।। १०६ ।।

आगैं तीन श्लोक करि मार्गशुद्धि का स्वरूप प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—शकट कहिए वलध आदिकरि युक्त काष्ठमय यंत्र कहिए वहल गाडा (बैलगाड़ी) । बहुरि यान कहिये मतवाले हाथीनिकी अंवाडी[4] हौदा, पालिकीनि के समूह, हाथी, घोड़ा, मनुष्यादिकनि करि धारण किये हुवे, बहुरि युग्म कहियै पीठिकादि रूप दोय मनुष्यनि करि धारी हुई डोलो इत्यादिक, बहुरि रथ कहिए अनेक विशेष रूप पह्यनि (पहिये) करि युक्त, मुद्गर, भुषुंढि, तोमर इत्यादि शस्त्रनिकरि भरया, जातिकंत घोड़ा इत्यादिकनिकरि वहै (ले जाने) इत्यादिक अन्य हु बहुत बार जा मार्गकरि चालते होय सो मार्ग प्रासुक होय ।। १०७ ।।

---

१. ज्ञानपीठ० स्थूल स्थूल । २. अ. ब. भवे । ३. अ. ब. भवे । ४. ब प्रति में अंवावाड़ी ।

हस्तिनोऽश्वा गर्दभा उष्ट्रा गावो महिष्याः गवेलिका अजा अविकादयो बहुशो येन मार्गेण गच्छन्ति स मार्गः प्रासुको भवेत् ॥ १०८ ॥

इत्थी[1] पुंसा व गच्छंति आदवेण य जं हदं ।
सत्थ[2]परिणदो चेव सो मग्गो फासुओ हवे[3] ॥ १०९ ॥

स्त्रियः पुरुषाश्च येन वा गच्छन्ति । आतापेनादित्यदावानलतापेन यो हतः । शस्त्रपरिणतः कृषीकृतः स मार्गः प्रासुको भवेत् । तेन मार्गेण यत्नवता स्वकार्येणोद्योतेन गन्तव्यमिति ॥ १०९ ॥

भाषासमितिस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

सच्चं असच्चमोसं अलियादीदोसवज्जमणवज्जं ।
वदमाणस्सणुवीची भासासमिदी हवे सुद्धा ॥ ११० ॥

सच्चं—सत्यं स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षयास्ति, परद्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया नास्ति, उभयापेक्षयास्ति च नास्ति च, अनुभयापेक्षयावक्तव्यमित्येवमादि वदतोऽवितथं वचनं । तथा प्रमाणनयनिक्षेपैर्वदतः सत्यं वचनं । **असच्चमोसं**—असत्यमृषा यत्सत्यं न भवति, अनृतं च भवति सामान्यवचनं । **अलीको**—मृषावाद आदिर्येषां दोषाणां ते व्यलोकादिदोषास्तैर्वर्जितं व्यलीकादिदोषवर्जितं परमतारणादिदोषरहितं । **अणवज्जं**—

आगै इत्यादिक अन्यहु लिखै ते कौन ? अैसे प्रश्न करतैं कहै है—

अर्थ—हाथी, घोरे, गर्दभ, ऊंट, गाय, महिषी, छैला, मीढे (भेड़ैं) इत्यादिक बहुत वेर जा मार्ग करि गमन करैं सो मार्ग प्रासुक होय ॥ १०८ ॥

अर्थ—स्त्री और पुरुष जे हैं ते जाकरि गमन करै, बहुरि आतप कहिए सूर्य दावानल का आतापकरि व्याप्त होय, बहुरि शास्त्र-परिणत कहिए खेती करी होय, किसाण नैं हलादिक करि संवारचा होय, सो मार्ग प्रासुक होय, ता मार्गकरि यत्न सहित उद्योत कै विषैं प्रयोजन कार्य कै निमित्त गमन करनां जोग्य है ॥ १०९ ॥

आगैं भाषा समिति का स्वरूप प्रतिपादन करता संता सूत्र कहै है—

अर्थ—सत्य कहिये स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव की अपेक्षा अस्ति रूप । परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव की अपेक्षा करि नास्ति रूप तथा स्व द्रव्यादि, परद्रव्यादि-उभय की अपेक्षा करि अस्ति रूप तथा स्वद्रव्यादि, परद्रव्यादि युगपत् कह्यो जाय नांही, तातैं उभय की अपेक्षा नांही करिये तव अवक्तव्य रूप अैसे कहनां तथा प्रमाण, नय, निक्षेपनि करि कहनां सो सत्य वचन । बहुरि असत्यमृषा कहिये जो सत्य नांही, असत्यहू नांही अैसा सामान्य वचन—अैसे सत्यवचन तथा असत्य मृषा कहिये अनुभय वचन, सो अलीक कहिये मृषावाद, ताकूं आदि देय जे दोष, तिनकरि वर्ज्जित, पैलेकूं ठिगनां-इत्यादि दोष रहित

१. अ. ब. इच्छी । २. अ. ब. सच्छ । ३. अ. ब. भवे ।

अनवद्यं हिंसादिपापागमनवचनरहितं । इत्येवं सूत्रानुवीच्या प्रवचनानुसारेण वाचनापृच्छनानुप्रेक्षादिद्वारेणान्येनापि धर्मकार्येण वदतो भाषासमितिर्भवेच्छुद्धति ॥ ११० ॥

सत्यस्वरूपं विवृण्वन्नाह—

जणवदसम्मदठवणा णामे रूवे पडुच्चसच्चे य ।
संभावणववहारे भावे[1] ओपम्मसच्चे य ॥ १११ ॥

सत्यशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । जनपदसत्यं, बहुजनसम्मतसत्यं, स्थापनासत्यं, नामसत्यं, रूपसत्यं, प्रतीतिसत्यमन्यापेक्षसत्यमित्यर्थः, संभावनासत्यं, व्यवहारसत्यं, भावसत्यं उपमानसत्यं इति दशधा सत्यं वाच्यमिति सम्बन्धः ॥ १११ ॥

एतानि दशसत्यानि विवृण्वन्नाह—

जणपद[2] सच्चं जध ओदणादि यवुच्चदि य सव्वभसेण[3] ।
बहुजणसम्मदमवि होदि जं तु लोए जहा देवी ॥ ११२ ॥

जनपदसत्यं देशसत्यं । यथौदनादिरुच्यते सर्वभाषाभिः द्रविडभाषया चौर इत्युच्यते । कर्णाटभाषया कूल इत्युच्यते । गौडभाषया भक्तमित्युच्यते । एवं नानादेशभाषाभिरुच्यमान ओदनो जनपदसत्यमिति जानीहि । बहुभिर्जनैर्यत्सम्मतं तदपि सत्यमिति भवति । यथा महादेवी,

---

अनवद्य कहिये हिंसादिके पाप के आगमन के कारण जे वचन तिनकरि वर्जित, अैसे अनुवोचि कहिये प्रवचन के अनुसार वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षादिक का द्वारकरि अन्य भी धर्मकार्यकरि बोलता जो मुनि, ताकैं शुद्ध कहिये निर्दोष —अैसी भाषा-समिति होय ॥ ११० ॥

आगैं सत्य के स्वरूप का विस्तार करता संता कहै हैं—

अर्थ—सत्यवचन दश प्रकार है । तहां सत्य अैसा शब्द एक-एक भेद प्रति जोडनां । सो ही कहिये है—१. जनपद सत्य, २. बहुत जननि करि मान्यां अैसी सम्मतसत्य, ३. स्थापना सत्य व्रत, ४. नामसत्य, ५. रूपसत्य, ६. प्रतीत्यसत्य—यहु अन्यापेक्ष सत्य है अैसा अर्थ जाननां । ७. संभावना सत्य, ८. व्यवहार सत्य, ९. भावसत्य, १०. उपमान सत्य—अैसे दश प्रकार है सत्य बोलनां—अैसा सम्बन्ध है ॥ १११ ॥

आगैं दस प्रकार सत्य का विशेष वर्णन करता संता कहैं है—

अर्थ—जनपद सत्य कहिये-देश सत्य । जैसे ओदनादिक जो है सो सर्व भाषानि करि कहिये है । जैसे द्रविड़देश संबंधी भाषा करि 'चोरू' अैसा नाम औदन का कहिये । कर्णाटक भाषा करि 'कूल' अैसा नाम कहिये । गौडभाषा करि 'भक्त' अैसा कहिये । अैसें नाना देश भाषानि करि कह्या हुवा ओदन जनपदसत्य है—अैसा जाननां ।

---

१. अ. ब. क °वेणोप° । १. अ. ब. जणवद । २. अ. ब. क सव्वभासाए ।

मानुष्यपि लोके महादेवीति । यथा देवो वर्षतीत्यादिकं वचनं लोकसम्मतं सत्यमिति वाच्यं । न प्रतिबन्धः कार्यः एवं न भवतीति कृत्वा । प्रतिबन्धे सत्यमसत्यं स्यादिति ॥ ११२ ॥

ठवणा ठविदं जह देवदादि णामं च देवदत्तादि ।
उक्कडदरोत्ति वण्णे रूवे सेओ जध बलाया ॥ ११३ ॥

यद्यपि देवतादिप्रतिरूपं या स्थापना स्थापितं । तथा च देवदत्तादिनाम । न हि तत्र देवतादिस्वरूपं विद्यते । नापि तं (?) देवैर्दत्तोऽसौ । तथापि व्यवहारनयापेक्षया स्थापनासत्यं, नामसत्यं च सत्यमित्युच्यते सद्भिरिति । अर्हत्प्रतिमा-सिद्धप्रतिमादि तथा नागयक्षेन्द्रादिप्रतिमाश्च तत्सर्वं स्थापनासत्यं । तथा देवदत्त इन्द्रदत्तो यज्ञदत्तो, विष्णुमित्र इत्येवमादिवचनं नामसत्यमिति । तथा वर्णेनोत्कटतरेति श्वेता बलाका । यद्यपि तत्रान्यानि रक्तादीनि सम्भवन्ति रूपाणि, तथापि श्वेतेन वर्णेनोत्कृष्टतरा बलाका, अन्येषामविवक्षितत्वादिति रूपसत्यं द्रव्यार्थिकनयापेक्षया वाच्यमिति ॥ ११३ ॥

अण्णं अपेक्खसिद्धं पडुच्चसच्चं जहा हवदि दिग्घं ।
ववहारेण य सच्चं रज्झदि[1] कूरो जहा लोए ॥ ११४ ॥

बहुरि बहुत जननि करि मान्या अैसा नाम कहना सो सम्मत सत्य है। जैसे मानुषी है राजा की स्त्री तथापि लोक विषैं महादेवी कहिये तथा मेघकूं देववर्षे है—अैसा कहिये। यहु लोक सम्मत सत्य है। याका प्रतिबंध नांही करनां कि जो मानुषी कूं देवी मति कहो, मेघकूं देव मति कहो। अैसा प्रतिबंध कियै जे लोक सम्मत सत्य है ते सर्व असत्य ठहरै ॥ ११२ ॥

आगै बहुरि कहै है—

अर्थ—जो पणि देवतादिक का प्रतिबिंब स्थापना करि स्थाप्या है, तहां देवता का स्वरूप विद्यमान है नांही, तथापि व्यवहार नय की अपेक्षाकरि सत् पुरुष याकूं भी सत्य कहै है। जैसे—अरहंत प्रतिमा, सिद्ध प्रतिमा इत्यादिक कहिये तथा नाग प्रतिबिंब, यक्ष प्रतिबिंब, इन्द्र प्रतिबिम्ब इत्यादिक नाम कहियै सो सर्व स्थापना सत्य जाननां।

बहुरि देवदत्तादिक नाम धरिये है। तहां यद्यपि देवनिकरि सो दिया नांही, तथापि व्यवहारनय की अपेक्षा करि देवदत्त, इन्द्रदत्त, यक्षदत्त, विष्णुमित्र इत्यादिक नामसत्य कहिये।

बहुरि रूपसत्य कहिये वर्णसत्य। जैसे यहु बगुलानि की पंक्ति श्वेत है। जो पणि तहां अन्य रक्तादिक रूप हू संभवै है तथापि श्वेतवर्णकरि, उत्कृष्टता कहिये श्वेतता बहुत हैं। अन्य वर्ण का विवक्षा नांही करनैं तैं द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा करि यहु रूपसत्य है ॥ ११३ ॥

---

१. अ. ब. रज्जदि ।

अन्यद्वस्तुजातमपेक्ष्य किंचिदुच्यमानं प्रतीत्यसत्यं भवति। यथा दीर्घोऽयमित्युच्यते। वितस्ति-मात्राद्धस्तमात्रं दीर्घं तथा द्विहस्तमात्रात्पंचहस्तमात्रं। पंचहस्तमात्राद्दशहस्तमात्रं। एवं यावन्मेरुमात्रं। तथैवं (व) ह्रस्ववृत्तचतुरस्रादि, कुरूप-सुरूप-पंडित-मूर्ख-पूर्वापरादिकमपेक्ष्यसिद्धं निष्पन्नमपेक्ष्य सत्यमित्युच्यते। न तत्र विवादः कार्यः। तथा, रध्यदे पच्यते क्रूर ओदनः मण्डकाः घृतपूराः इत्यादि लोके वचनं व्यवहारसत्यमिति वाच्यं। न तत्र विवादः कार्यः। यद्यौदनः पच्यते भस्म भवति, मण्डका यदि पच्यन्ते भस्मीभवन्तीति कृत्वेति व्यवहारसत्यं वचनं सत्यमिति ॥ ११४ ॥

संभावणा य सच्चं जदि णामेच्छेज्ज एव कुज्जंति।
जदि सक्को इच्छेज्जो जंबूदीवं हि पल्हत्थे ॥ ११५ ॥

यदि नामैतदेवमिच्छेत्, एवं कुर्यात् यदेतत्संभावना सत्यं। संभाव्यत इति संभावना। सा द्विविधाभिनीतानभिनीतभेदेन। शक्यानुष्ठानाभिनीता। अस्ति सामर्थ्यं यदुत नाम तथा न सम्पादयेदभिनीता। यथा यदि नाम शक्र इच्छेज्जम्बूद्वीपं परिवर्तयेत्। संभाव्यत एतत्सामर्थ्यमिन्द्रस्य यज्जम्बूद्वीपमन्यथा कुर्यात्। अपि शिरसा पर्वतं भिन्द्यात्। सर्वमेतदभिनीता संभावना सत्यं। अपि भवान् प्रस्थं भक्षयेत्। बाहुभ्यां गंगां तरेदेतदभिनीतं सम्भावनासत्यमिति सम्पाद्यासम्पाद्यभेदेनेति ॥ ११५ ॥

आगै बहुरि कहै है—

अर्थ—अन्य वस्तु कौं अपेक्षा करि जो कछु कहिए सो प्रतीत्यसत्य कहिये। जैसे—यहु दोर्घ है—ऐसा कहियैं दोर्घ विलसत (वितस्ति) मात्र की अपेक्षा हस्तप्रमाण होय सो दीर्घ कहियै। दोय हस्तप्रमाण की अपेक्षा पंच हस्तप्रमाण होय सो दीर्घ कहिये। पंच हस्त मात्र की अपेक्षा दस हस्त मात्र होय सो दीर्घ कहिए।

ऐसे हुं मेरु मात्र कहिये तथा ऐसे ही अन्य की अपेक्षा करि ह्रस्व कहिए तथा गोल कहिए, चतुस्र कहिये तथा कुरूप, सुरूप कहिये। तथा पंडित-मूर्ख कहिये तथा पूर्व, अपर कहिये इत्यादिक जो-जो अन्य सिद्ध-निष्पन्न की अपेक्षा करि कहिये सो सर्व अपेक्षा सत्य है, तहां विवाद नांही करना। बहुरि कूर, ओदन तथा मंडक, घेवर इत्यादिक रांधिये है, पचाइये है—इत्यादिक लोक विषैं जो वचन हैं, सो व्यवहार सत्य है। तहां विवाद नांही करनां जो औदन पचाइये तौ भस्म होय जाय, मंडक पचाइये तो भस्म हो जाये—ऐसी वितर्क करि लोक व्यवहार के वचन असत्य न माननै, तातैं व्यवहार सत्य का वचन है सो सत्य है ॥११४॥

अर्थ—जो ऐसे इच्छै तो ऐसे करै या प्रकार जो संभावना करनां सो संभावना सत्य कहिये। सो संभावना दोय प्रकार है १-जाका आचरन करना शक्य होय सो अभिनीत संभावना कहिये। जैसे—तेरा ऐसा सामर्थ्य है जो तू प्रस्थ-प्रमाण अन्न भक्षण करै, भुजानि करि गंगा है ताहि तिरै—यहु अभिनीत संभावना सत्य कहिए। यहु शक्यानुष्ठान है, संपादन करने जोग्य है। बहुरि ऐसा सामर्थ्य है, जो ऐसा संपादन करै—ऐसे सामर्थ्य मात्र ही कहिये। जैसे—'इन्द्र जो इच्छा करै तौ जंबूद्वीप है ताहि पलट देवे—ऐसा इन्द्र का सामर्थ्य है, जो जंबूद्वीप कौं अन्यथा करि देवे तथा किसो का सामर्थ्य कहिये कि यहु ऐसा है—जो मस्तककरि पर्वत कूं भेदे, यहु कार्य संपादन करनैं योग्य नांही—यातैं अनभिनीत संभावना सत्य कहिये ॥ ११५ ॥

हिंसादिदोसविजुदं सच्चमकप्पियवि[1] भावदो भावं।

ओवम्मेण दु सच्चं जाणसु पलिदोवमादीया ॥ ११६ ॥

हिंसा आदिर्येषां दोषाणां ते हिंसादयस्तैर्वियुक्तं विरहितं हिंसादिदोषवियुक्तं। हिंसास्तैन्याब्रह्मपरिग्रहादिग्राहकवचनरहितं सत्यं। अकल्पितमपि भावतोऽयोग्यमपि भावयतः परमार्थतः सत्यं तत्। केनचित् पृष्टस्त्वया चौरो दृष्टो न मया दृष्ट एवं वक्तव्यं। यद्यपि वचनमेतदेवासत्यं तथापि परमार्थतः सत्यं हिंसादिदोषरहितत्वात्। यथा येन येन परपोडोत्पद्यते परलोकं प्रति इहलोकं च प्रति, तत्तद्वचनं सत्यमपि त्याज्यं रागद्वेषसहितत्वात्। सत्यमपि हिंसादिदोषसहितं न वाच्यमिति भावसत्यं। औपम्येन च युक्तं तद्वचनं तदपि सत्यं जानीहि। यथा पल्योपमादिवचनं। उपमामात्रमेतत्। न हि कुशलो योजनमात्रः केनापि रोमच्छेदैः पूर्यते। एवं सागरो रज्जुः प्रतरांगुलं सूच्यंगुलं घनांगुलं श्रेणी लोकप्रतरो लोकश्चन्द्रमुखी कन्या इत्येवमादयः शब्दाः उपमानवचनानि उपमासत्यानीति वाच्यानि। न तत्र वि ादः कार्यः। इत्येतद्दशप्रकारं सत्यं वाच्यं।

तथा सन्धिनामतद्धितसमासाख्यातकृदौणादियुक्तं, पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनसहितं, छलजातिनिग्रहस्थानादिविवर्जितं, लोकसमयस्ववचनविरोधरहितं, प्रमाणोपपन्नं, नैगमादिनयपरिगृहीतं, जातियुक्तियुक्तं, मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थवचनसहितं, अनिष्ठुरमकर्कशमनुद्धतमर्थवत्,

---

बहुरि कहै है—

अर्थ—हिंसा है आदि जिनै विषैं तैं हिंसा, चौरो, अब्रह्म, परिग्रहादि ग्राहक जै वचन तिनिकरि रहित अकल्पित कहिये अयोग्य, झूंठ वचन हू बोलै है। जैसे काहू नैं पूछ्या—'ए जो तैंने चौर देख्या ? तव तानैं कह्या—मैं नांही देख्या। जो पणि यह वचन झूंठ है तथापि परमार्थ तैं यहु वचन हिंसादि दोष रहित हैं तातैं भावसत्य कहिए। तथा जा-जा वचनकरि परलोक विषैं तथा इस लोक विषैं पैंलेकूं पीडा उपजै सो-सो वचन सत्य होय। तथापि नांही बोलनां राग-द्वेष सहितपनैं तैं सत्यवचन है, सो हु हिंसादि दोष सहित होय, सो नांही बोलनां—यहु भावसत्य है।

बहुरि उपमाकरि युक्त जो वचन होय सो उपमा सत्य कहिए। जैसे—पल्योपमादिक वचन, यहु उपमान मात्र हैं। काहू नैं योजन मात्र खाडा (गढ्ढा) रोम छेदनि करि भरिये है नांही—अैसें ही सागरोपम रज्जू (राजू), प्रतरांगुल, सूच्यंगुल, घनांगुल श्रेणी, लोकप्रतर अर लोक तथा चन्द्रमुखो कन्या इत्यादि शब्द जाननैं उपमान वाचक हैं, ते उपमा सत्य जाननैं। तहां विवाद नांही करना। अैसे दस प्रकार सत्य बोलना तथा संधि, नाम (लिंग), तद्धित, समास, आख्यात, कृदन्त, उण्यादिकनिकरि युक्त वचन कहनां। तथा पक्ष, हेतु, दृष्टांत, उपनय, निगमन सहित वचन बोलना, तथा छल, जाति, निग्रहस्थान इत्यादिकरि वर्ज्जित वचन बोलना। तथा लोक विषैं विरोध, सिद्धांत-विरोध स्ववचन विरोधकरि रहित वचन बोलना तथा प्रमाणकरि उपपादन कीया वचन बोलना तथा नैगमादि नयकरि परिग्रहण कीया वचन बोलनां। बहुरि जाति युक्ति करि संयुक्त वचन बोलना। बहुरि मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ-भावनाकरि सहित वचन बोलनां। बहुरि अनिष्ठुर, अकर्कश, अनुद्धत, अर्थसहित, श्रवणनिकूं प्यारा,

---

१. क सच्चमकमविजमभा०।

श्रवणकान्तं, सुललिताक्षरपदवाक्यविरचितं, हेयोपादेयसंयुक्तं—इत्थंभूतं सत्यं वाच्यं। लिंगसंख्याकालकारकपुरुषोपग्रहसमेतं धातुनिपातबलाबलच्छन्दोऽलंकारादिसमन्वितं, वाच्यमिति सम्बन्धः ॥ ११६ ॥

एतद्व्यतिरिक्तमसत्यमिति प्रतिपादयन्नाह—

तव्विवरीदं मोसं तं उभयं जत्थ सच्चमोसं तं।
तव्विवरीदा भासा असच्चमोसा हवदि दिट्ठा ॥ ११७ ॥

तद्दशप्रकारसत्यविपरीतं पूर्वोक्तस्य सर्वस्य प्रतिकूलमसत्यं मृषा। तयोः सत्यासत्ययोरुभयं यत्र पदे वाक्ये वा सत्यमृषावचनं तत् गुणदोषसहितत्वात्। तस्मात्सत्यमृषावादाद्विपरीता भाषा वचनोक्तिरसत्यमृषोक्तिः। सा भवति दृष्टा जिनैः। न सा सत्या न मृषेति सम्बन्धः ॥ ११७ ॥

असत्यमृषाभाषां विवृण्वन्नाह—

आमंतणि आणवणी जायणिसंपुच्छणी य पण्णवणी।
पच्चक्खाणी भासा छट्ठी[1] इच्छाणुलोमा य ॥ ११८ ॥

आमंत्र्यतेऽनयामंत्रणी। गृहीतवाच्यवाचकसंबन्धो व्यापारान्तरं प्रत्यभिमुखी क्रियते यया सामंत्रणी भाषा। यथा हे देवदत्त इत्यादि। आज्ञाप्यतेऽनयेत्याज्ञापना। आज्ञां तवाहं ददामीत्येवमादि वचनमाज्ञापनी भाषा। याच्यतेऽनया याचना। यथा याचयाम्यहं त्वां किंचिदिति।

अतिशयकरि ललित कहिए सुन्दर जे वर्ण, पद, वाक्य तिनिकरि रच्या हुआ हेय-उपादेयकरि संयुक्त, बहुरि लिंग, संख्या, काल, कारक, पुरुष, उपग्रह इनिकरि सहित धातु, निपात, बलाबल, छन्द, अलंकार इत्यादि करि सहित वचन बोलनां—अैसे बोलना सो सत्य वचन हैं। ११६ ॥

आगै कह्या जो सत्यवचन, तासों विरुद्ध असत्यवचन हैं—अैसा प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—तिस पूर्वोक्त दश प्रकार सत्यतैं विपरीत प्रतिकूल वचन सो असत्यवचन सो मृषा कहिए। बहुरि जिस पद में तथा वाक्य में सत्यपणां-असत्यपणां-दोउ होय, सो वचन, गुण, दोष सहित पणांतैं सत्यमृषा कहिए। तिस सत्यमृषावादतैं रहित होय सो असत्य-मृषा वचन कहिए। जो सत्यहू नांही, झूठ हू नांही सो असत्यमृषा भाषा भगवान अरहंतदेव नैं कही है। याका नाम अनुभय भाषा भी कह्या है ॥ ११७ ॥

आगैं तिस असत्यमृषा भाषा का विशेष वर्णन करता संता कहै हैं—

अर्थ—आमंत्रण करिये जाकरि सो आमंत्रणी कहिये। ग्रहण कीया है वाच्य-वाचक-संबंध जानैं—अैसा मनुष्यादिक अन्य व्यापार प्रति-सन्मुख करियै जाकरि सो आमंत्रणी भाषा कहियै। जैसे—हे देवदत्त! इत्यादिक रूप वचन—अैसा कहनां। बहुरि आज्ञा करिये, जाकरि सो आज्ञापना भाषा कहियै। जैसे 'यहु आज्ञा तोकूं मैं द्यौ हूं'—अैसा कहनां। बहुरि याचना करिये जाकरि

1. क °यानुलो°।

पृच्छ्यतेऽनयेति पृच्छना। यथा पृच्छाम्यहं त्वामित्यादि। प्रज्ञाप्यतेऽनयेति प्रज्ञापना। यथा प्रज्ञापनाम्यहं त्वामित्यादि। प्रत्याख्यायतेऽनयेति प्रत्याख्याना यथा प्रत्याख्यानं मम दीयतामित्यादि भाषासमितिः सर्वत्र संबन्धः। इच्छया [1]लोमानुकूलेच्छा[2]लोमा सर्वत्रानुकूला। यथा एवं करोमीत्यादि ॥ ११८ ॥

संसयवयणी य तहा असच्चमोसा य अट्ठमी भासा।
णवमी अणक्खरगया असच्चमोसा हवदि दिट्ठा ॥ ११९ ॥

संशयमव्यक्तं वक्तीति संशयवचनी। संशयार्थप्रख्यापनानभिव्यक्तार्था यस्माद्वचनात्संदेहरूपादर्थो न प्रतीयते तद्वचनं संशयवचनी भाषेत्युच्यते। यथा दन्तरहितातिबालातिवृद्धवचनं, महिष्यादीनां च शब्दः। तथैवासत्यमृषा साष्टमी भाषा। नवमी पुनरनक्षरगता। यस्यां नाक्षराण्यभिव्यक्तानि ककारचकारमकारादीनामनभिव्यक्तिर्यत्र सा नवमी भाषानक्षरगता। सा च द्वीन्द्रियादीनां भवत्येव। सासत्यमृषा भाषा नव प्रकारा भवति। विशेषाप्रतिपत्तेरसत्या सामान्यस्य प्रतिपत्तेर्न मृषा। आमन्त्रणरूपेणाभिमुखीकरणेन न मृषा पश्चादन्यस्यार्थस्याप्रतिपत्तेरसत्या। तथाज्ञादानेन न मृषा पश्चात्किं दास्यतीति न ज्ञायते तेन न सत्या। तथा याञ्चामात्रेण न मृषा, उत्तरकालं किं याचयिष्यतीति न ज्ञायते

सो याचना भाषा कहिये। जैसे—मैं तौहि कछु याचना करहूं। बहुरि पृच्छना करिये जाकरि सो पृच्छना भाषा कहियै। जैसे मैं तौहि पूछै हूं—अैसा वचन बोलनां। बहुरि प्रज्ञापन करियै, जणाइये जाकरि सो प्रज्ञापना भाषा कहिए। जैसे जणावत (निवेदन करता) हूं मैं तोही—इत्यादि वचन बोलनाँ। बहुरि प्रत्याख्यान कहिए त्याग लीजिए जाकरि सो प्रत्याख्यानो भाषा है। जैसे—प्रत्याख्यान मोहि दीजिये—अैसा वचन बोलनां। बहुरि इच्छानुलोमा कहिए—इच्छा के अनुकूल बोलिये सो सर्व विषै अनुकूल, जैसे 'एवं करोमि' कहिए 'अैसे करूं'–अैसे वचन बोलना ॥ ११८ ॥

अर्थ—संशय कहिये अव्यक्त अर्थ कहै सौ संशय-वचनी कहिये संशय रूप अर्थ की प्रकट करनहारी। नांही अनभिव्यक्त है अर्थ जाका, जा संदेह रूप वचनतैं अर्थप्रतीति में नांही आवै सो वचन संशयवचनी भाषा कहिये। जैसे—दंतरहित पुरुष का तथा अतिबालक का तथा अतिवृद्ध का वचन तथा भैंसि इत्यादिक का शब्द, तैसे ही सो यहु अष्टमो असत्यमृषा भाषा है।

बहुरि नवमी अनक्षरगता कहिये—जा विषैं अक्षर अभिव्यक्त करना नांही। ककार, वकार, चकारादिक अक्षरनिका प्रगटता जा विषैं नांही सो नवमी अनक्षरगता भाषा कहिये। सो यहु भाषा द्वींद्रियादिक जीवनि कै होय है। अैसे असत्यमृषा भाषा नव प्रकार होय हैं।

विशेष की प्रतिपत्ति (ज्ञान, इन भाषाओं से) नांही, तातें सत्यहु नांही, सामान्य की प्रतिपत्ति है तातैं मृषा हूं नांही। जैसे—आमंत्रण रूप करि अभिमुख करनैं करि मृषा हू नांही। पाश्चात्य कहिये पिछला जो अर्थ ताकी अप्रतिपत्ति तैं सत्यहु नांही तथा आज्ञादान करि झूंठहु नांही। बहुरि पाछैं कहा आज्ञा देगा अैसा न जानिये ताकरि सत्यहूँ नांही। तथा याचना मात्र करि झूंठहूं नांही

---

१. क °यानुलो°। २. °छातुलो°।

ततो न सत्या । तथा प्रश्नमात्रेण न मृषा पश्चान्न ज्ञायते किं पृच्छ्यतेऽनेनेति न सत्या । तथा प्रत्याख्यानसामान्यरूपस्य याचनायाः प्रतीतेर्न मृषा पश्चात्कस्य प्रत्याख्यानं दास्यतीति न ज्ञायते तेन न सत्या । तथेच्छाया एवं करोमीति भणनेन न मृषा किंचित् पश्चात्किं करिष्यतीति न ज्ञायते तेन न सत्या । तथाक्षराणि संदिग्धानि प्रतीयन्ते तेन न मृषा, अर्थः सन्दिग्धो न प्रतीयते तेन न सत्या । यथा शब्दमात्रं प्रतीयते तेन न मृषा, अक्षराणामर्थस्य चाप्रतीतेर्न सत्येति । अनेन न्यायेन नवप्रकारा असत्यमृषाभाषा व्याख्यातेति ॥ ११९ ॥

पुनरपि यद्वचनं सत्यमुच्यते तदर्थमाह—

सावज्जजोग्गवयणं वज्जंतोऽवज्जभीरु गुणकंखी ।
सावज्जवज्जवयणं णिच्चं भासेज्ज भासंतो ॥ १२० ॥

यदि मौनं कर्तुं न शक्नोति तत एवं भाषेत—सावद्यं सपापमयोग्यं यकारभकारादियुक्तं वचनं वर्जयेत् । अवद्यभीरुः पापभीरुः । गुणाकांक्षी हिंसादिदोषवर्जनपरः । सावद्यवर्जं वचनं नित्यं सर्वकालं भाषयन् भाषयेत् । अन्वयव्यतिरेकेण वचनमेतत् । नैतस्य पौनरुक्त्यं द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकशिष्यानुग्रहपरादिति ॥ १२० ॥

अशनसमितिस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

उग्गम उप्पादणएसणेहिं पिंडं च उवधि सज्जं च[1] ।
सोधंतस्य मुणिणो परिसुज्झइ एसणासमिदी ॥ १२१ ॥

बहुरि उत्तरकाल विषैं कहा जावैगा—ऐसा न जानिये, तातै सत्यहूँ नांही । तथा प्रश्नमात्रकरि मृषा हूँ नांही । बहुरि पीछै कहा पूछैगो—ऐसा न जानियै, तातैं सत्यहूँ नांही । तथा सामान्य प्रत्याख्यान कहिये त्याग, ताकी याचना की प्रतीति तैं मृषा हूं नांही । वहुरि प्रत्याख्यान काहे कौं लेगौं—ऐसा न जानिये, तातैं सत्यहूं नांही तथा इच्छातैं ऐसे करूं हूं या प्रकार कहनैं करि झूंठ हूं नांही । बहुरि पीछे कहा करैगो ? ऐसा न जानिए, तातैं सत्यहूँ नांही । तथा अक्षर संदेह रूप प्रतीति मैं आवै है, तातैं मृषा नाँही । बहुरि अर्थ संदेह रूप हैं सो नांही प्रतीति मैं आवै, तातैं सत्य नांही तथा शब्द मात्र प्रतीति मैं आवैं है तातैं मृषा नांही । बहुरि अक्षर वा अर्थ की प्रतीति नांही तातैं सत्य नांही । या प्रकार इस न्यायकरि असत्यमृषा भाषा नव प्रकार व्याख्यान करी ॥ ११९ ॥

आगैं बहुरि भी सो वचन सत्य कहिये है, ताकै अर्थि कहै है—

अर्थ—जो मौन करिवे कूं नांही समर्थ होय तो सावद्य कहिए पाप सहित, अयोग्य कहिये यकार, मकारादि सहित वचन जो है ताहि वर्जन करैं । बहुरि अवद्यभीरू कहिये पाप का है भय जाकूं, बहुरि गुण-कांक्षी कहिये हिंसादि दोष के वर्जन विषैं तत्पर—ऐसा जो मुनि सो सर्वकाल विषैं, सावद्य वर्जन कहिये पाप-रहित वचन जो है, ताहि भाषण करै, यहु वचन अन्वय-व्यतिरेक करि जानना । याकै पुनरुक्तता दोष नांही । द्रव्यार्थिकनयग्राही तथा पर्यायार्थिकनयग्राही शिष्य के अनुग्रह विषैं तत्परता है, जातै ॥ १२० ॥

---

१. पिंडमुवधिं च इत्यपि पाठः ।

उद्गच्छत्युत्पद्यत आहारो यैर्दोषैस्त उद्गमदोषाः। उत्पाद्यते निष्पाद्यत आहारो यैस्त उत्पादनादोषाः। अश्यते भुज्यते आहारो वसत्यादयो वा यैस्तेऽशनदोषास्तैः। पिण्ड आहारः। उपधिः पुस्तकपिच्छकादिः। शय्या वसत्यादीन् शोधयतः सुष्ठु सावद्यपरिहारेण निरूपयतो, मुनेः परिशुद्धयतेऽशनसमितिः। अशनस्य सम्यग्विधानेन दोषपरिहारेणेति वा चरणमशनसमितिः। उद्गमोत्पादनाशनदोषैः पिण्डं उपधिं शय्यां शोधयतो मुनेः परिशुद्धयतेऽशनसमितिरिति। तत उद्गमादयो दोषाः सप्रपंचेन पिण्डशुद्धौ वक्ष्यन्त इति नेह प्रतन्यन्ते, पुनरुक्तदोटभयात्।

कथमेतान् दोषान्परिहरति मुनिरित्याशंकायामाह चकारः (र) सूचितार्थं। सवितुरुदये देववन्दनां कृत्वा घटिकाद्वयेऽतिक्रान्ते श्रुतभक्तिगुरुभक्तिपूर्वकं स्वाध्यायं गृहीत्वा वाचनापृच्छनानुप्रेक्षापरिवर्तनादिकं सिद्धान्तादेर्विधाय घटिकाद्वयमप्राप्त[1]मध्याह्नादरात् स्वाध्यायं श्रुतभक्तिपूर्वकमुपसंहृत्यावसथो[2] दूरतो मूत्रपुरीषादीन् कृत्वा पूर्वापरकायविभागमवलोक्य हस्तपादादिप्रक्षालनं विधाय कुण्डिकां पिच्छिकां गृहीत्वा मध्याह्नदेववन्दनां कृत्वा पूर्णोदरबालकान् भिक्षाहारान् काकादिवलीनन्यानपि लिंगिनो भिक्षावेलायां ज्ञात्वा प्रशान्ते धूमकुशलादिशब्दे गोचरं प्रविशेन्मुनिः। तत्र गच्छन्नातिद्रुतं, न मन्दं, न विलम्बितं गच्छेत्। ईश्वरदरिद्रादिकुलानि न विवेचयेत्। न वर्त्मनि जल्पेत्तिष्ठेत्। हास्यादिकान् विवर्जयेत्।

आगैं अशन समिति के स्वरूप को प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—आहार जिन दोषनितैं उपजै ते उद्गम दोष कहिये। बहुरि आहार जिन दोषनि तैं उपजाइए सो उत्पादन दोष कहिये। बहुरि भोगिए आहार तथा वसतिकादिक जिन दोषनिकरि ते अशन दोष, सो तिन दोषनिकरि पिंड कहिये आहार तथा उपधि कहिए पुस्तक-पिच्छिकादिक, शय्या कहिए वसतिकादिक सो इनिका अतिशयकरि, सावद्य के परिहार करि देखता, सोधन करता जो मुनिराज, ताकै अशन समिति परिशुद्ध[3] होय है। अथवा अशन जो आहार ताका भला विधानकरि दोषनिका परिहार करि या प्रकार आचरण करनां सो अनशन समिति कहिये। ये उद्गमादिक दोष हैं तै पिंडशुद्धि अधिकार मैं विस्तार सहित कहियैगे। यातैं इहां विस्तार नांही करिये हैं। पुनरुक्त दोषके भयतैं।

मुनिराज इनि दोषनि कौ कैंसे परिहार करैं? अैसे आशंका होत संते कहै हैं, सो यहु अर्थ सूत्र विषै चकार ग्रहण हैं, ताकरि सूचिय है, सो ही कहियै है। जो सूर्य के उदय होंतैं देववंदना है, ताहि करि दोय घड़ी वितीत हुपे संतैं पूर्वैं श्रुतभक्ति, गुरुभक्तिकरि स्वाध्याय ग्रहण करै सो वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, परिवर्तन इत्यादिककूं सिद्धांतादिक का करि दो परहां में दोय घड़ी अवशेष रहै, ता पहली स्वाध्याय जो है ताहि श्रुतभक्ति पूर्वक समाप्त करि पीछै संस्तरस्थान तैं दूर, मूत्रपुरीषादिक की बाधा मेटि, पूर्वापर काय-विभागकूं देखि हस्तपादादिक का प्रक्षालन करि कमंडलु. पीछी कौ ग्रहणकरि. मध्याह्न सम्बन्धी देववंदना करि भरे हैं उदर जिनिकैं—अैसैं बालकनि कौं देखि तथा भिक्षाकरि है आहार जिनिकैं अैसे अन्यलिंगी (दूसरे मत के साधुओं) तिनिकौं देखि, तथा काकादिक कैं वलि (दाने आदि) ग्रहण देखि, भिक्षा की बेला जानि, धूम तथा मूसलादिक का शब्द, ताहि प्रशांत होत संतैं मुनि जो है सो भिक्षा कैं अर्थि प्रवेश करैं।

बहुरि तहां गमन करतैं, अतिशीघ्र नांही चलैं, अतिमन्द नांही चलै, विलंब करता नांही चलै। यहु धनवान का कुल है, यहु निर्धन का कुल है—अैसा भेद कूं नांही विचारता मार्ग विषैं वार्ता करतैं खड़े न रहै, हास्यादिक नांही करै। नीच गोत्रनि के

१. क मप्राप्त मध्याह्नदारात् द०। २. क ०वसरोदू०। ३. अ, परमशुद्ध।

नीचकुलेषु न प्रविशेत् । सूतकादिदोषदूषितेषु शुद्धेष्वपि कुलेषु न प्रविशेत् । द्वारपालादिभिर्निषिद्धो न प्रविशेत् । यावन्तं प्रदेशमन्ये भिक्षाहाराः प्रविशन्ति तावन्तं प्रदेशं प्रविशेत् । विरोधनिमित्तानि स्थानानि वर्जयेत् । दुष्टखरोष्ट्रमहिषगोहस्तिव्यालादीन् दूरतः परिवर्जयेत् । मत्तोन्मत्तमदावलिप्तान् सुष्ठु वर्जयेत् । स्नानविलेपनमण्डनरतिक्रीडाप्रशक्ता योषितो नावलोकयेत् । विनयपूर्वकं विधृतस्तिष्ठेत् । सम्यग्विधानेन दीयमानमाहारं प्रासुकं सिद्धभक्ति कृत्वा प्रतीच्छेत् । स(श)तनपतनगलनमकुर्वन् निश्छिद्रं पाणिपात्रं नाभिप्रदेशे कृत्वा शुरशुरशब्दादिवर्जितं भुञ्जीत । योषितां स्तनजघनोरुनाभिकटिनयनललाटमुखदन्तौष्ठबाहुकक्षान्तरजंघापादलीलागतिविलासगीतनृत्तहासस्निग्धदृष्टिकटाक्षनिरीक्षणानीन्नावलोकयेत् । एवं भुक्त्वा पूर्णोदरोऽन्तरायादपूर्णोदरो वा मुखहस्तपादान् प्रक्षाल्य शुद्धोदकपूर्णां कुण्डिकां गृहीत्वा निर्गच्छेत् । धर्मकार्यमन्तरेण न गृहान्तरं प्रविशेत् । एवं जिनालयादिप्रदेशं सम्प्राप्य प्रत्याख्यानं गृहीत्वा प्रतिक्रामेदिति ।। १२१ ।।

आदाननिक्षेपणसमितिस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

आदाणे णिक्खेवे पडिलेहिय चक्खुणा पमज्जेज्जो ।

दव्वं च दव्वठाणं संजमलद्धीए सो भिक्खू ।। १२२ ।।

आदाने ग्रहणे । निक्षेपे त्यागे । प्रतिलेख्य सुष्ठु नितीक्षयित्वा चक्षुषा पश्चात्पिच्छिकया सम्मार्जयेत् प्रतिलेखयेत् । द्रव्यं द्रव्यस्थानं

कुल विषैं नांही गमन करै । बहुरि सूतकादिक दोषनि करि दूषित जे शुद्ध कुल तिन विषै हू नांही प्रवेश करैं । द्वारपालादिकनि करि मनैं किया (मना करने पर) नांही प्रवेश करैं । जितने प्रदेश विषै अन्य भिक्षाकरि आहार करनैं वाले गमन करैं तितनैं पर्यंत ही प्रवेश करै । बहुरि विरोध के कारण जे स्थान तिनि विषैं नांही गमन करै । बहुरि दुष्ट, गर्दभ, ऊंट, भैंसा, बलध, हाथी, सर्प्प इत्यादिकनिकौं दूर ही तैं वर्ज्जन करें । बहुरि मतवाले (पागल आदि) होय, उन्माद सहित होय, मदकरि गर्वित होय, तिनहि अतिशय प्रकार वर्ज्जन करैं ।

बहुरि स्नान, विलेपन, मंडन, रतिक्रीडा विषै आशक्त जे स्त्रीजन, तिनहीं नांही अवलोकन करै । विनयपूर्वक कोउ पडिगाहै तो खड़े रहै, भला विधान करि दीया प्रासुक जो आहार ताहि सिद्धभक्ति करि ग्रहण करै । बहुरि शतन जो तोड़ना, पतन जो पटकना, गलन जो झरा (गिरा) देना, तिनहि न करता संता, छिद्र रहित पाणिपात्र जो है ताहि नाभिप्रदेश विषै करि, शुर-शुर शब्द कहिए भोजन करतै सवरका इत्यादि करि रहित भोजन करै । स्त्रीनि का स्तन, जंघा, उरू, नाभि, कटि, नेत्र ललाट, मुख, दांत, होठ, भुजा, कांख, जंघा, चरणनि (इत्यादि) की लीला, गति, विलास, गीत, नृत्य, हास्य, स्निग्ध दृष्टि, कटाक्ष-निरीक्षण इत्यादिकनिकौं नांही अवलोकन करै ।

अैसे भोजनकरि उदर पूर्ण हुये, अंतरायतैं पूर्ण उदर नांही हुयैं हू मुख, हस्त, पाद-प्रक्षालन करि, शुद्ध जलकरि भरया कमंडलुकू लेय गृहस्थ घरतैं निकसैं । धर्म्मकार्य बिना गृहांतर विषै प्रवेश न करैं । अैसे जिनमंदिरादिक स्थान कौं प्राप्त होय प्रत्याख्यान ग्रहणकरि, तहां प्रतिक्रमण करैं ।। १२१ ।।

आगैं आदाननिक्षेपणा समिति का स्वरूप प्रतिपादन करते कहै है—

अर्थ—आदाने कहिये-ग्रहण विषैं, निक्षेप कहिये स्थापन विषैं, द्रव्य कहिये कवली (शास्त्र रखने की चौकी), कमंडलू

च । कवलिका कुण्डिकादि द्रव्यं, यत्र तद्व्यवस्थितं तत्स्थानं । संयमलब्ध्या स भिक्षुर्यतिः । श्रामण्ययोग्यवस्तुनो ग्रहणकाले निक्षेपकाले वा चक्षुषा द्रव्यं द्रव्यस्थानं च प्रतिलेख्य पिच्छिकया सम्मार्जयेदिति ॥ १२२ ॥

येन प्रकारेणादाननिक्षेपसमितिः शुद्धा भवति तमाह—

सहसाणाभोइयदुप्पमज्जिद अप्पच्चुवेक्खणा दोसा ।
परिहरमाणस्स हवे समिदी आदाणणिक्खेवा ॥ १२३ ॥

सहसा शीघ्रं ध्यापारान्तरं प्रत्युद्गतमनसा निक्षेपमादानं वा । अनाभोगितमनालोकनं स्वस्थचित्तवृत्त्याग्रहणमादानं वा अनालोक्य द्रव्यं द्रव्यस्थानं यत्क्रियते तदानाभोगितं । दुष्टप्रमार्जितं दुष्प्रमार्जितं पिच्छिकयावष्टभ्य प्रतिलेखनं । अप्रत्युपेक्षणं किंचित् संस्थाप्य पुनः कालान्तरेणालोकनं । एतान् दोषान् परिहरतो भवेदादाननिक्षेपसमितिरिति । किमुक्तं भवति, स्वस्थवृत्त्या द्रव्यं द्रव्यस्थानं च चक्षुषावलोक्य मृदुप्रतिलेखनेन सम्मार्ज्यादानं ग्रहणं वा कर्तव्यं । स्थापितस्य पुस्तकादेः पुनः कतिपयदिवसैरालोकनं कर्तव्यमिति ॥ १२३ ॥

उच्चारप्रस्रवणसमितिस्वरूपनिरूपणायाह—

वणदाहकिसिमसिकदे थंडिल्लेणुप्परोध वित्थिण्णे ।
अवगदजंतु विवित्ते उच्चारादी विसज्जेज्जो[1] ॥ १२४ ॥

वनदाहो दावानलः । कृषिः शीरेणाऽनेकवारभूमेर्विदारणं । मषी श्मशानांगारानलादिप्रदेशः । कृतशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । वन-

---

आदि मुनिपद योग्य वस्तु तथा सो कवली, कमंडलु आदि वस्तु जहां धरै हैं, तिस स्थान कूं प्रथम नेत्रनिकरि नीकैं देखि, पीछे पिच्छीका करि सम्मार्जन करै, सो संयम की लब्धि कहिए प्राप्ति, ताकरि सो यति है ॥ १२२ ॥

आगैं जा प्रकार करि आदान-निक्षेपणा समिति शुद्ध होय ताहि कहै हैं—

अर्थ—सहसा कहिए शीघ्र, अन्य व्यापारप्रति प्राप्त हुवा जो मन ताकरि उपकरण का उठावना, धरनां । बहुरि अनाभोगित कहिये स्वस्थ चित्तवृत्ति करिकैं, बिना देखैं द्रव्य वा द्रव्यस्थान कूं न देखिकरि ग्रहण करनां । बहुरि दुःप्रमार्जित कहिये पिच्छिका करि अनादरतैं अवलोकन करनां । बहुरि अप्रत्युपेक्षण कहिये किंचित् उपकरणस्थापि करि, कालांतर कहिये बहुत काल विषै, देखनां सो यहु दोष जे हैं तिनहि परिहार करता जो मुनि, ताकैं आदान-निक्षेप समिति कहिये ।

भावार्थ—स्वस्थवृत्ति करिकै द्रव्य, द्रव्यस्थानकूं नेत्रनिकरि अवलोकनकरि, कोमल पिच्छिकातैं संमार्जनकरि ग्रहण करनां, स्थापे हुवे पुस्तकादिकनिका कितनैक दिननि विषैं सम्हारि लेनां ॥ १२३ ॥

आगैं उच्चारप्रश्रवण समिति का स्वरूप निरूपण कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—वनदाहकतैं कहिये-दावानलकरि दगधरूप हुवा प्रदेश, बहुरि कृषिकृत कहिए हलकरि अनेक वार जाकी भूमि का विदारण कीया—अैसा प्रदेश, बहुरि मषीकृत कहिए—मंसाण भूमि के अंगार-अग्नि सहित प्रदेश। इहां कृत शब्द तीन्यूं

[1] अ, विसज्जे ।

दाहीकृते, कृषीकृते, मषीकृते, स्थंडिलीकृते, ऊषरीकृते । अनुपरोधे लोकोपरोधवर्जिते । विस्तीर्णे विशाले । अपगता अविद्यमाना जन्तवो द्वीन्द्रियादयो यत्र सोऽपगतजन्तुस्तस्मिन्नपगतजन्तौ । विविक्तेऽशुच्याद्यपस्कररहिते जनरहिते वा उच्चारादीन् विसर्जयेत् परित्यज्येत्। अचित्तभूमिदेश इत्यनेन सह सम्बन्धः कर्तव्य इति ।। १२४ ।।

अथ के ते उच्चारादय इत्याशंकायामाह—

उच्चारं पस्सवणं खेलं सिंघाणयादियं[1] दव्वं ।
अच्चित्तभूमिदेसे पडिलेहित्ता विसज्जेज्जो ।। १२५ ।।

उच्चारं अशुचिः । प्रस्रवणं मूत्रं । खेलं श्लेष्प्राणं । सिंघाणकं नासिकापस्करं । आदिशब्देन केशोत्पाटबालान् मदप्रमादवातपित्तादिदोषान् सप्तमधातुं छर्यादिकं च पूर्वोक्तविशेषणविशिष्ट अचित्तभूमिदेशे हरिततृणादिरहिते प्रतिलेखयित्वा सुष्ठु निरूप्य विसर्जयेत् । पूर्वं सामान्यव्याख्यातं[2]मिदं तु सप्रपंचमिति कृत्वा न पौनरुक्तचमिति ।। १२५ ।।

अथ रात्रौ कथमिति चेदित्यत आह—

रादो दु पमज्जित्ता पण्णसमणपेक्खिदम्मि ओगासे[3] ।
आसंकविसुद्धीए[4] अवहत्थ-फासणं कुज्जा ।। १२६ ।।

रात्रौ तु प्रज्ञाश्रमणेन वैयावृत्यादिकुशलेन साधुना विनयपरेण सर्वसंघप्रतिपालकेन वैराग्यपरेण जितेन्द्रियेण प्रेक्षिते सुष्ठुदृष्टेऽवकाशैक-

---

जायगां (जगह) संबंध रूप करियै है। बहुरि स्थंडिल कहिए—खार सहित भूमि (रेतोला स्थान)। बहुरि अनुपरोध कहिए लोक के उपरोध जो रोकनां ताकरि वर्जित, बहुरि विस्तीर्ण कहिये—विशाल। बहुरि अपगतजंतु कहिए—नांही विद्यमान है द्विंद्रियादि त्रस जीव जहां, बहुरि विविक्त कहिए अशुच्यादिक (अपवित्र विष्ठा आदि) जोड़ाकरि रहित अथवा जनरहित—ऐसा जो अचित्तभूमिप्रदेश ता विषैं उच्चारादिक का निक्षेपण करै ।। १२४ ।।

आगैं उच्चारादिक तैं कहा-कहा (क्या-क्या लेना) ? ऐसी आशंका होत संतैं कहै हैं—

अर्थ—उच्चारि कहिए अशुचिमल, प्रश्रवण कहिए मूत्र, खेल कहिए श्लेष्म-कफ, सिंहानिक कहिए नासिका का मल, आदि शब्दकरि केशनि के उखड़े बाल, मद, प्रमाद, वात-पित्तादिक के दोषतैं सप्तम धातु कहिए वीर्य, छर्दि आदिक, ताहि पूर्वोक्त विशेषणनि करि विशिष्ट जो अचित्त-भूमिप्रदेश, हरित तृणादिक करि रहित, ता विषै भलै प्रकार देखि निक्षेपण करै ।। १२५ ।।

पूर्वं तो सामान्य वर्णन कीया, यहु सविस्तार वर्णन कीया है। या हेतु करि पुनरुक्तता दोष नांही है।

आगैं रात्रि विषैं मलमूत्रादि कैसे करैं ? ऐसा प्रश्न करतैं संतै कहै हैं—

अर्थ—बहुरि रात्रि विषैं प्रज्ञाश्रमण कहिए—वैयावृत्यादि विषैं प्रवीण, बहुरि विनय विषैं तत्पर, बहुरि सर्वसंघ का

---

१. अ. ब-जं २. क °ख्यान° । ३. क उवगासे । ४. अ, ब विसोधीए ।

प्रदेशे पुनरपि सचक्षुषा प्रतिलेखनेन प्रमार्ज्ययित्वोच्चारादीन् विसृजेत् । अथ यदि तत्र सूक्ष्मजीवाद्याशंका भवत्तत आशंकाविशुद्धयर्थं अपहस्तकस्पर्शनं कुर्यात्—विपरीतकरतलेन मृदुना स्पर्शनं कर्तव्यमिति ॥ १२६ ॥

तेन प्रज्ञाश्रमणेन सति सवितरि चक्षुर्विषये च सति त्रीणि स्थानानि द्रष्टव्यानि भवन्ति किमर्थमित्याह—

जदि तं हवे असुद्धं बिदियं तदियं अणुण्णए[1] साहू ।
लहुए अणिच्छयारे ण देज्ज साधम्मिए गुरुए ॥ १२७ ॥

यदि तत्प्रथमस्थानं प्रेक्षितमशुद्धं भवेद् द्वितीयं स्थानमनुजानात्यमनुमन्येत । तदपि यद्यशुद्धं तृतीयं स्थानमनुजानाति जानीत (ते) गच्छेद्वा साधुः संयतः । अथ कदाचित्तस्य साधोर्व्याधितस्यान्यस्य वा लघुशीघ्रमशुद्धेऽपि प्रदेशे मलच्युतिरनिच्छया विनाभिप्रायेण भवेत् ततस्तस्मिन् सधर्मिणि धार्मिके साधौ [2]अए अयः प्रायश्चित्तं तद्गुरु न दातव्यं । अयः पुण्यं, अयनिमित्तत्वात् प्रायश्चित्तमप्ययमित्युच्यते । यत्नपरस्य न बहु प्रायश्चित्तं भवति यतः । अथवा **लहुए**—लघु शीघ्रं । **अणिच्छयारे** अनिच्छया कुर्वति मलच्युतिं सधर्मिणि महत्प्रायश्चित्तं न दातव्यं । यद्यपि प्रायश्चित्तं नात्रोपात्तं तथापि सामर्थ्याल्लभ्यतेऽन्यस्याश्रुतत्वात् । अथवा लघुकेन कुशलेनेच्छाकारेणानुकूलेन प्रज्ञाश्रमणेन यदि प्रथमस्थानं शुद्धं द्वितीयं तृतीयं स्थानं वानुज्ञाप्य सम्बोध्य सधर्मिणि साधौ गुरौ वा प्रासुकं स्थानं दातव्यमिति ॥ १२७ ॥

अनेन क्रमेण किंकृतं भवतीति चेदत आह—

पदिठवणासमिदीवि य तेणेव कमेण वण्णिदा होदि ।
वोसरणिज्जं दव्वं तु थंडिले वोसरंतस्स ॥ १२८ ॥

पालनां करनै वारा, बहुरि वैराग्य विषैं तत्पर, जीती हैं इंद्रिय जानै-अैसा जो मुनि, तानै भलै प्रकार देख्या अवकाश रूप जो प्रदेश ता विषै, फेरि हूँ अपनैं नेत्रनि करि देखि अथवा पीच्छिका करि प्रमार्ज्जन करि मलमूत्रादि जे है तिन्हें क्षेपण करैं । बहुरि जो तहां सूक्ष्म जीवादिक की आशंका होय तो तहां आशंका की विशुद्धता कै अर्थि कोमल औंधा, हस्ततल करि स्पर्शन करै ॥ १२६ ॥

बहुरि ता प्रज्ञाश्रमण ने सूर्यकौं विद्यमान नेत्रगोचर होतैं तीनस्थान देखें । काहे कै अर्थि ? सो कहै हैं—

जो वह प्रथम स्थान देख्या सो अशुद्ध होय तो द्वितीय स्थान कूं प्राप्त होय । बहुरि कदाचित् द्वितीय स्थान हू अशुद्ध होय तो तीसरे स्थान कूं प्राप्त होय । कदाचि वह साधु रोगकरि पीडित तथा विना रोग भी जो शीघ्रताकरि अशुद्ध प्रदेश विषैं भी बिना अभिप्राय मल छूटै तो तिस धर्म-साधु विषैं अयः कहिए प्रायश्चित्त गुरु कहिए बड़ा (बड़ा प्रायश्चित्त) नांही देना ।

इहां अयः अैसा पुण्य का नाम है । पुण्य कैं निमित्तपनैं तैं प्रायश्चित हु अय कहिए । जातैं यत्नाचार विषैं तत्पर होय ताकैं दोष लागते संतै हू प्रायश्चित बहुत नांही कह्या है । अथवा अन्य अर्थ कहै है—जो लघुक कहियै कुशल, इच्छाकार कहिए अनुकूल प्रज्ञाश्रमण, ताकरि प्रथम स्थान जो शुद्ध नांही होय तो द्वितीय स्थान तथा तृतोय स्थान जणाय करि (बतलाकर) सधर्मी साधु तथा गुरु कै निमित्त प्राशुक स्थान बताय देनां ।

१. अ, ब अणुण्णवे ।   २. द अय एव अयः ।

तेनैवोक्तक्रमेण प्रतिष्ठापनासमितिरपि वर्णिता व्याख्याता भवति। तेनोक्तक्रमेण व्युत्सर्जनीयं त्यजनीयं। स्थंडिले व्यावर्णितस्वरूपे व्युत्सृजतः परित्यजतः प्रतिष्ठापनाशुद्धिः स्यादिति ॥ १२८ ॥

एताभिः समितिभिः सह विहरन् किंविशिष्टः स्यादित्याह—

एदाहिं सया जुत्तो समिदीहिं महिं विहरमाणो[1] दु।
हिंसादीहिं ण लिप्पइ जीवणिकाआउले साहू ॥ १२९ ॥

एताभिः समितिभिः **सया**—सदा सर्वकालं युक्तो मह्यां सर्वत्र विहरमाणः साधुर्हिंसादिभिर्न लिप्यते जीवनिकायाकुले लोके इति ॥ १२९ ॥

ननु जीवसमूहमध्ये कथं साधुर्हिंसादिभिर्न लिप्यते ? चेदित्थं न लिप्यते इति दृष्टान्तमाह—

पउमिणिपत्तं व जहा उदएण ण लिप्पदि सिणेहगुणजुत्तं।
तह समिदीहिं ण लिप्पदि साहू काएसु इरियंतो ॥ १३० ॥

पद्मिनीपत्रं जले वृद्धिगतमपि यथोदकेन न लिप्यते, स्नेहगुणयुक्तं यतः तथा समितिभिः सह विहरन् साधुः पापेन न लिप्यते कायेषु जीवेषु तेषां वा मध्ये विहरन्नपि यत्नपरो यतः इति ॥ १३० ॥

आगैं (अैसे) या प्रकार क्रमकरि कहा किया ? सो अैसे प्रश्न करते संतै कहै हैं—

अर्थ—ताहि उक्त क्रमकरिकैं प्रतिष्ठापना समिति जो है सो हु वर्णन करी हौत है। बहुरि ताही उक्त क्रमकरि व्युत-सर्ज्जनीय कहिए त्यजनें जोग्य मलमूत्रादिक है ताहि वर्णन किया है स्वरूप जाका, अैसा स्थंडिल (रेतीले आदि) प्रदेश विषैं जो क्षेपण करैं, ताकै प्रतिष्ठापना शुद्धि होय है ॥ १२८ ॥

आगैं इनि समितिन सहित विहार करता जो मुनि सो कैसा होय है ? सो कहै हैं—

अर्थ—इनि समितिनि करि सर्वकाल विषैं युक्त जीवनिके समूह करि भरी सर्वत्र पृथ्वी विषैं विहार करता जो साधु सो हिंसादिकनिकरि लिप्त नांही होय ॥ १२९ ॥

आगैं कोउ पूछै कि जीवनि के समूह मध्य हू साधु हिंसादिकनिकरि कैसैं नांही लिप्त होय ? अैसैं पूछतैं कहै हैं कि जो अैसैं नांही लिप्त होय हैं या प्रकार दृष्टान्त कहै हैं—

अर्थ—जैसैं कमलनिका पत्र जल विषैं वृद्धि कूं प्राप्त भया हैं तोहु स्नेह गुणतैं युक्त हैं, तातैं जलकरि नांही लिप्त होय है। तैसे समिति करि सहित साधु जीव-निकायनि विषैं विहार करता संता हू, जातैं यतनाचार विषैं तत्पर हैं तातैं पापकरि लिप्त ही नांही होय है ॥ १३० ॥

---

१. अ, ब क °णोवि।

पुनरपि दृष्टान्तेन पोषयन्नाह—

सरवासेहिं पडंते हिं जह दिढकवचो ण भिज्जदि सरेहिं ।
तह समिदीहिं ण लिप्पइ[1] साहू काएसु इरियंतो ।। १३१ ।।

शरवर्षैः पतद्भिः संग्रामे यथा दृढकवचो दृढवर्म न भिद्यते शरैस्तीक्ष्णनाराचतोमरादिभिस्तथा षड्जीवनिकायेषु समितिभिर्हेतुभूताभिः साधुः पापेन न लिप्यते पर्यटन्नपीति ।। १३१ ।।

यत्नपरस्य गुणमाह—

जत्थेव चरदि बालो परिहारण्हूवि चरदि तत्थेव ।
वज्झदि पुण सो बालो परिहारण्हू विमुच्चदि[2] सो ।। १३२ ।।

यत्रैव चरति भ्रमत्याचरतीति वा बालोऽज्ञानी जीवादिभेदातत्त्वज्ञः । परिहरमाणोऽपि चरत्यनुष्ठानं करोति भ्रमतीति वा तत्रैव लोके बध्यते कर्मणा लिप्यते पुनरसौ बाल अज्ञानः । परिहरमाणो यत्नपरः पुनः स विमुच्यते कर्मणा यस्मादेवंगुणा समितयः ।। १३२ ।।

तम्हा चेट्ठिदुकामो जइया तइया भवाहि तं समिदो ।
समिदो हु अण्ण णादियदि खवेदि पोराणयं कम्मं ।। १३३ ।।

तस्माच्चेष्टितुकामः पर्यटितुमना यदा तदा यत्र तत्र यथा तथा भव त्वं समितः समितिपरिणतः । हि यस्मात् समितोऽन्यन्नवं कर्म नाददाति न गृह्णाति । पुराणकं सत्कर्म च क्षपयति निर्जरयतीति ।। १३३ ।।

आगैं बहुरि दृष्टांतकरि पोषते संते कहै है ।

अर्थ—जैसे संग्राम विषै वाणनिकी वर्षा करि पड़ते जे तीक्ष्ण नाराच तोमरादिक बाण तिनकरि दृढ़ है वगतर (कवच) जाके ऐसा पुरुष जो है सो भेद कूं प्राप्त नांही होत है, तैसे छहजीवनिकाय विषैं विहार करता हू साधु जो है, सो समिति जे कारण भूत तिनीकरि पापतैं नांही लिपै है ।। १३१ ।।

आगैं यत्नाचार विषैं तत्पर जो मुनि, ताके गुण कहै है—

अर्थ—जहां बाल कहिये अग्यानी जीव, जीवादि तत्त्वनिकूं नांही जाणनैं वारा, जहां चरण कहिए भ्रमण करै हैं, आचरण करै हैं। तहां ही परिहार करनै वारा हूं आचरण करैं हैं, भ्रमण करै हैं। परन्तु बाल अज्ञानी है सो तो लोक विषैं कर्म करि लिप्त होय है। बहुरि जो परिहार करनैं वारा यत्नाचार विषैं तत्पर हैं, सो कर्मनि तैं मुक्त होय है—अैसे गुण इनि समितिनि के हैं।। १३२ ।।

अर्थ—ता कारणतैं जा काल विषैं गमनादिक करनैं की इच्छा होय ता काल विषैं भो मुनि ! तू समिति करि परिणत होहु । जातैं जो मुनि समितिकरि परिणमैं है, सो अन्य नवीन कर्म का ग्रहण नांहीं करैं हैं । बहुरि प्राचीन सत्तारूप कर्म है ताहि

१. अ, ब लिप्पदि । २. क विमुंचदि ।

एवं समितिस्वरूपं व्याख्याय गुप्तीनां सामान्यविशेषभूतं च लक्षणमाह—

मणवचकायपउत्तो भिक्खू सावज्जकज्जसंजुत्ता ।
खिप्पं णिवारयंतो तीहिं दु गुत्तो हवदि एसो ।। १३४ ।।

प्रवृत्तिशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । मनःप्रवृत्तिं वाक्प्रवृत्तिं कायप्रवृत्तिं च । किंविशिष्टां, सावद्यकार्यसंयुक्तां हिंसादिपापविषयां । भिक्षुः साधुः शीघ्रं निवारयंस्त्रिगुप्तो भवत्येषः । गुप्ते सामान्यलक्षणमेतत् ।। १३४ ।।

विशेषलक्षणमाह—

जा रायादिणियत्ती मणस्स जाणाहि तं मणोगुत्ती ।
अलियादिणियत्ती वा मोणं वा होदि वचिगुत्ती ।। १३५ ।।

रागद्वेषादिभ्यो मनसो या निवृत्तिश्चेतसा तेषां परिहारस्तां जानीहि मनोगुप्तिं मनःसंवृत्तिं । अलीकादिभ्यश्चासत्याभिप्रायेभ्यश्च वचसो या निवृत्तिः मौनं ध्यानाध्ययनचिंतनं च यत्तूष्णींभावेनासौ वा वाग्गुप्तिर्भवति ।। १३५ ।।

कायगुप्त्यर्थमाह—

कायकिरियाणियत्ती काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती ।
हिंसादिणियत्ती वा सरीरगुत्तो हवदि एसा ।। १३६ ।।

कायक्रियानिवृत्तिः शरीरचेष्टाया अप्रवृत्तिः शरीरगुप्तिः कायोत्सर्गो वा कायगुप्तिः । हिंसादिभ्यो निवृत्तिर्वा शरीरगुप्तिर्भवत्येषा

खपावै हैं, निर्जरा करै हैं ।। १३३ ।।

अैसे समिति का स्वरूप-व्याख्यान करि गुप्तिनिका सामान्य-विशेषभूत लक्षण जो है ताहि कहै हैं—

अर्थ—प्रवृत्ति शब्द प्रत्येक लगावनां । सावद्यकार्य करि संयुक्त हिंसादि पापनि विषै मन सम्बन्धी प्रवृत्ति, वचन संबंधो-प्रवृत्ति, काय संबंधी प्रवृत्ति कूं शीघ्र ही निवारण कर्ता जो यहु भिक्षु कहिए साधु जो है सो, तीन गुप्ति का धारक होय है । यहु गुप्ति का सामान्य लक्षण है ।। १३४ ।।

आगैं गुप्ति का विशेष लक्षण कहै है—

अर्थ—राग-द्वेषादिक तै जो मनकै निवृत्ति कहिये तिनिको परिहार ताहि 'मनोगुप्ति जानो' । यहु मन का संवर है । बहुरि अलीकादिक कहिए असत्य अभिप्राय तिनिकरि वचन की निवृत्ति, मौन अथवा मौनकरि ध्यान, अध्ययन, चिंतन सो यहु वचनगुप्ति कहिए ।। १३५ ।।

आगैं कायगुप्ति के अर्थि कहै है—

अर्थ—काय संबंधी क्रिया की जो निवृत्ति कहिए शरीर चेष्टा की अप्रवृत्ति, सो शरीर गुप्ति कहिए है । अथवा कायोत्सर्ग

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि गुप्यन्ते रक्ष्यन्ते यकाभिस्ता गुप्तयः। अथवा मिथ्यात्वासंयमकषायेभ्यो गोप्यते रक्ष्यते आत्मा यकाभिस्ता गुप्तय इति ॥ १३६ ॥

दृष्टान्तद्वारेण तासां माहात्म्यमाह—

खेत्तस्स वई णयरस्स खाइया अहव होइ पायारो ।
तह पावस्स णिरोहो ताओ गुत्तीउ साहुस्स[1] ॥ १३७ ॥

यथा क्षेत्रस्य शस्यस्य वृतिः रक्षा नगरस्य वा खातिकाथवा प्राकारो यथा गुप्तिस्तथा पापस्याशुभकर्मणो निरोधः संवृतिस्ता गुप्तयः साधोः संयतस्येति ॥ १३७ ॥

यस्मादेवंगुणा गुप्तयः—

तम्हा तिविहेण तुमं णिच्चं मणवयणकायजोगेहिं ।
होहिसु समाहिदमई णिरंतरं झाण सज्झाए ॥ १३८ ॥

तस्मात्त्रिविधेन कृतकारितानुमतैस्त्वं साधो ! मनोवाक्काययोगैर्भव सुसमाहितमतिः सम्यक्स्थापितबुद्धिः। निरन्तरमभीक्ष्णं ध्याने स्वाध्याये चेति ॥ १३८ ॥

समितिगुप्तिस्वरूपं संक्षेपयन्नाह—

एताओ[2] अट्ठपवयणमादाओ णाणदंसणचरित्तं ।
रक्खंति सदा मुणिणो मादा पुत्तं व पयदाओ ॥ १३९ ॥

सो हु कायगुप्ति कहिए। अथवा हिंसादिक की जो निवृत्ति सो काय गुप्ति कहिए है। तिनिकरि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्र गोपिए, रक्षा करिए ते गुप्ति कहिए। अथवा जिनिकरि मिथ्यात्व, असंयम, कषायनितैं आत्मा गोपिए, रक्षा करिए तैं गुप्ति कहियै ॥ १३६ ॥

आगैं दृष्टांतद्वारकरि तिनि गुप्तिनि का या माहात्म्य कहै है—

अर्थ—जैसे धान्य के खेत की रक्षा वाडि तैं होय है तथा नगर की रक्षा खाई तथा कोटतैं होय है, तैंसें पाप कहिए अशुभ कर्म, ताका निरोध कहिए संवर, साधु कहिए संयमी कैं, ते गुप्ति हैं ॥ १३७ ॥

जातैं अैसे गुण गुप्तिनि के हैं, तातैं आगै कहैं हैं—

अर्थ—ता कारणतैं हे साधु ! त्रिविधेन कहियै कृत-कारित अनुमोदना करि, मन-वचन-कायनिके जोगनि करि सदा काल निरंतर ध्यान, स्वाध्याय विषै भलै प्रकार स्थापन करि है बुद्धि जानैं, अैसा होहु ॥ १३८ ॥

---

१. अ, ब साधुस्स । २. अ, ब एदाओ ।

एता अष्टप्रवचनमातृकाः पंचसमितयस्त्रिगुप्तयः प्रवचनमातरो मुनेर्ज्ञानदर्शनचारित्राणि रक्षन्ति पालयन्ति । कथं ? यथा माता जननी पुत्रं पालयति तथैषाः पालयति तथैषाः पालयन्तीति सम्बन्ध अत्रोकारस्य ह्रस्वत्वं प्राकृतबलाद् द्रष्टव्यं ॥ १३९ ॥

अष्टप्रवचनमातृकाः प्रतिपाद्य भावनास्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

एसणणिक्खेवादाणिरियासमिदी तहा मणोगुत्ती ।
आलोयभोयणंपि य अहिंसाए भावणा पंच ॥ १४० ॥

अशनसमितिर्निक्षेपादानसमितिरीर्यासमितिस्तथा मनोगुप्तिरालोक्यभोजनमपि चाहिंसाव्रतस्यैता भावनाः पंच । एता भावयन् जीवदयां प्रतिपालयति । प्रथममहाव्रतं परिपूर्णं तिष्ठति । तस्य साधनत्वेन पंचभावना जानीहीति ॥ १४० ॥

द्वितीयस्य निरूपयन्नाह—

कोहभयलोहहासपइण्णा अणुवीचिभासणं चेव ।
बिदियस्स भावणाओ वदस्स पंचेव ता होंति ॥ १४१ ॥

क्रोधभयलोभहास्यानां प्रतिज्ञा प्रत्याख्यानं । क्रोधस्य प्रत्याख्यानं भयस्य प्रत्याख्यानं लोभस्य प्रत्याख्यानं हास्यस्य प्रत्याख्यानं । अनुवीचिभाषणं चैव सूत्रानुसारेण भाषणं च द्वितीयस्य सत्यव्रतस्य भानना: पंचैव भवन्ति । पंचैता भावना भावयतः सत्यव्रतं सम्पूर्णं स्यादिति ॥ १४१ ॥

आगैं समिति-गुप्ति का स्वरूप कौं संक्षेप रूप करता संता कहै है—

अर्थ—यह पंचसमिति, तीन गुप्ति—अैसे आठ प्रवचनमातृका हैं, तै मुनि के ज्ञान-दर्शन-चारित्र जो हैं, ताहि सदा रक्षा करै हैं, पालना करै है । जैसे प्रयता कहिए सावधान माता पुत्र को रक्षा करैं, तैसें ये यत्नाचार करि पाली हुई मुनि के रत्नत्रय की रक्षा करै है । एय 'ओ' इहां ओकार का ह्रस्व उच्चार प्राकृत के बलतैं जाननां ॥ १३९ ॥

आगैं अष्ट-प्रवचनमातृका को स्वरूप वर्णन करि, भावना का स्वरूप को प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—हिंसा विरति नामा महाव्रत की यहु पंचभावना हैं—एषणासमिति, निक्षेपादान समिति, ईर्या समिति तथा मनोगुप्ति, बहुरि आलोक्यभोजन—या प्रकार जाननां । इनि पंचभावनानिकौं भावता संता साधु जो है सो जीव दया पालै है ताकै प्रथम महाव्रत परिपूर्ण ठहरै है ताका साधनपणां करि पंचभावना जाननां ॥ १४० ॥

आगैं द्वितीयव्रत की भावना निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ—क्रोध की प्रतिज्ञा कहिए त्याग, भय का त्याग, लोभ का त्याग, हास्य का त्याग, बहुरि अनुवीचि भाषण कहिए—सूत्रानुसार वचन बोलना—अैसे पंचभावना दूसरैं सत्य महाव्रत की है । इनि पंचभावनानि कौं भावता मुनि कै सत्यव्रत संपूर्ण होय है ॥ १४१ ॥

तृतीयव्रतस्य भावनास्वरूपं विवृण्वन्नाह—

जायणसमणुण्णमणा अणण्णभावोवि चत्तपडिसेवी ।
साधम्मिओवकरणस्सणुवीचीसेवणं चावि ।। १४२ ।।

याञ्चा प्रार्थना समनुज्ञापना यस्य सम्बन्धि किंचिद्वस्तु तमनुमन्य ग्रहणं गृहीतस्य वा सम्बोधनं । अनन्यभावोऽदुष्टभावोऽनात्मभावः परवस्तुनः परिगृहीतस्यात्मभावो न कर्तव्यः । त्यक्तं श्रामण्ययोग्यं, अन्ये चार्थिनो न तस्य, सावद्यरहितं च व्यक्तमित्युच्यते । अथवा वियत्त आचार्य इत्युच्यते । प्रतिसेवयतीति प्रतिसेवी । स प्रत्येकमभिसम्बध्यते । यांचया प्रतिसेवी समनुज्ञापनया प्रतिसेवी अनात्मभावप्रतिसेवी, निरवद्यस्य श्रामण्येयोग्यस्य त्यक्तस्याचार्यस्य वा प्रतिसेवी । समानो धर्मोऽनुष्ठानं यस्य सधर्मा तस्य यदुपकरणं पुस्तकपिच्छिकादि तस्यानुवीच्यागमानुसारेण सेवनं सधर्मोपकरणस्य सूत्रानुकूलतया सेवनं चापि । एताः पंच भावनास्तृतीयव्रतस्य भवन्तीति । एताभिरस्तेयाख्यं व्रतं सम्पूर्णं भवतीति ।।१४२।।

चतुर्थव्रतस्य भावनास्वरूपं विकल्पयन्नाह—

महिलालोयण पुव्वरदिसरणसंसत्तवसधिविकहाहिं ।
पणिदरसेहिं य विरदी य भावणा पंच बह्मह्मि ।। १४३ ।।

महिलानां योषितामवलोकनं दुष्टपरिणामेन निरीक्षणं महिलालोकनं । पूर्वस्य [स्या] रतेः गृहस्थावस्थायां चेष्टितस्य स्मरणं चिन्तनं पूर्वरतिस्मरणं । संसक्तवसतिः सद्रव्या सरागा वा । विकथा दुष्टकथाः । **पणिदरस**—प्रणीतरसा इष्टहार[1]समदकराः । विरतिशब्दा प्रत्येकमभि-

---

आगैं तीसरै व्रत की भावना कौ वर्णन करता संता कहै हैं—

अर्थ—तृतीय महाव्रत की पंचभावना यहु जाननी—याञ्चा कहिए आचार्यादिकतैं प्रार्थनाकरि पुस्तकादि धर्मोपकरण का अंगीकार करै । समनुज्ञापना कहिए जाके पुस्तकादि यत्किंचित् ज्ञानोपकरणादिक है, ताहि जनायकरि ग्रहण करना अथवा ग्रहण कीया होय सो जनाय देनां । बहुरि अनन्य भाव कहिए दुष्ट भाव न करनां, परका धर्मोपकरण आदि वस्तु ग्रहण किया ताविषैं आत्मबुद्धि न करनां । बहुरि त्यक्तप्रतिसेवी कहिए मुनिपद योग्य जाके अन्यजन अर्थी नांही–ऐसा निर्दोष धर्मोपकरण ग्रहण करै । अथवा वियत्त कहिए आचार्य तिनिकी प्रतिसेवनां करने वाला । यहु प्रतिसेवी शब्द प्रत्येक च्यारों भावनानि विषैं लगानां । बहुरि समान है धर्म कहिए अनुष्ठान जाका ऐसा जो सधर्मा ताके उपकरण जे पुस्तक, पिच्छिकादिक ताहि आगम के अनुसार करि सेवने । ऐसे यहु पंचभावना तृतीय महाव्रत की कही । इनिकरि अस्तेय महाव्रत संपूर्ण होय है ॥ १४२ ॥

आगै चतुर्थ महाव्रत की भावना का स्वरूप वर्णन करता संता कहै है—

अर्थ—महिलालोकन कहिए दुष्ट परिणामकरि स्त्रीनिका अवलोकन करनां । बहुरि पूर्वरतिस्मरण कहिए जो पूर्वे गृहस्थावस्था मैं चेष्टा करि ताका चिंतवन करना । बहुरि संसक्तवसतिः कहिए द्रव्य सहित तथा राग सहित जो वसतिका होय ।

---

१. क °रामद° ।

सम्बध्यते। महिलालोकनाद्विरतिः पूर्वरतिस्मरणाद्विरतिः संसक्तवसतेर्विरति। विकथाभ्यः स्त्रीचौरराज्यभक्तकथाभ्यो विरतिः समीहितरसेभ्योः विरतिः। एताः पंच भावनाः चतुर्थस्य ब्रह्मव्रतस्य भावना भवन्ति। एताभिश्चतुर्थमहाव्रतं सम्पूर्णं तिष्ठतीति ॥ १४३ ॥

पंचमव्रतभावनां विकल्पयन्नाह—

अपरिग्गहस्स मुणिणो सद्दप्फरिसरसरूवगंधेसु ।
रागद्दोसादीणं परिहारो भावणा पंच ॥ १४४ ॥

अपरिग्रहस्य मुनेः शब्दस्पर्शरसरूपगन्धेषु रागद्वेषादीनां परिहारः भावना पंच भवन्ति। शब्दादिविषये रागद्वेषादीनामकरणानि यानि तैः सम्पूर्णं पंचमं महाव्रतं स्यादिति ॥ १४४ ॥

किमर्थमेता भावना भावयितव्या यस्मात्—

ण करेदि भावणाभाविदो हु पीलं व दाण सव्वेंसि ।
साधू पासुत्ता स मणागवि किं दाणि वेदंतो ॥ १४५ ॥

हु यस्मात् पंचविंशतिभावनाभावितः साधु; प्रसुप्तोऽपि निद्रांगतोऽपि मूर्छांगतोऽपि सर्वेषां व्रतानां मनागपि पीडां विराधनां न करोति किं पुनश्चेतयमानः। स्वप्नेऽपि ता एव भावनाः पश्यति, न व्रतविराधनाः पश्यतीति ॥ १४५ ॥

बहुरि विकथा कहिए दुष्ट, संयमविरुद्ध कथा। बहुरि प्राणीतरस कहिए-दुष्टरूप आहार, मदादिक करनेंहारा। इहां विरति शब्द का प्रत्येक अभिसंबंध करनां—तहां महिलालोकन-विरति, पूर्वरतिस्मरणविरति, संसक्तवसति विरति, स्त्री, चौर, राज, भक्त-कथा—इन रूप जे विकथा तिनितैं विरति, इष्ट-रसनितैं विरति—ऐसे यहु पंचभावना ब्रह्मचर्य व्रत की होय है। इनिकरि व्रत संपूर्ण होय है ॥ १४३ ॥

आगैं पंचमहाव्रत की भावना के भेद कहता संता कहै है—

अर्थ—परिग्रहतैं रहित जो मुनि ताकै शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इनि विषयनि विषै रागद्वेष का परिहार करनां सो पंच भावना होय है। जे रागद्वेषादिकनिके न करनां तिनिकरि कै यहु पंचमहाव्रत परिपूर्ण होय ॥ १४४ ॥

आगैं काहे कै अर्थि यहु भावना भाइये है?—

अर्थ—जातै पंचविंशति भावनानि कों भावता मुनि जो है सो सूत्ताहू (सोता हुआ भी) किंचित् मात्र हू व्रतनिकी पीडा कहिए विराधना जो है ताहि नांही करत है। बहुरि जागृत अवस्था का कहा (क्या) कहनां? स्वप्न कै विषैं भी तिनि भावनानि कूं ही देखै है, व्रतनि की विराधना कूं नांही देखैं हैं ॥ १४५ ॥

---

१. क समुहदो च किं।

एदाहि भावणाहिं दु तम्हा भावेहि अप्पमत्तो त्तं ।
अच्छिद्दाणि अखंडाणि ते भविस्संति हु वदाणि ।। १४६ ।।

तस्मादेताभिर्भावनाभिः भावयात्मानमप्रमत्तः स त्वं । ततोऽच्छिद्राण्यखण्डानि सम्पूर्णानि भविष्यन्ति हि स्फुटं ते तव व्रतनीति ।।१४६।।

चारित्राचारमुपसंहरस्तप-आचारं च सूचयन्नाह—

एसो चरणाचारो पंचविधो वण्णिदो समासेण ।
एत्तो य तवाचारं समासदो वण्णयिस्सामि ।। १४७ ।।

एष चरणाचारः पंचविधोऽष्टविधश्च वर्णितो मया समासेन इत ऊर्ध्वं तप आचारं समासतो वर्णयिष्यामीति ।। १४७ ।।

दुविहा य तवाचारो बाहिर अब्भंतरो मुणेयव्वो ।
एक्कक्को विय छद्धा जधाकमं तं परूवेमो[1] ।। १४८ ।।

द्विप्रकारस्तप आचारस्तपोऽनुष्ठानं । बाह्यो बाह्यजनप्रकटः । अभ्यन्तरोऽभ्यन्तरजनप्रकटः । एकैकोऽपि च बाह्याभ्यन्तरश्चैकैकः षोढा षड्प्रकारः यथाक्रमं क्रममनुल्लंध्य प्ररूपयामि कथयिष्यामीति ।। १४८ ।।

बाह्यं षड्भेदं नामोद्देशेन निरूपयन्नाह—

अणसण अवमोदरियं रसपरिचाओ य वुत्तिपरिसंखा ।
कायस्स व परितावो विवित्तसयणासणं छट्ठं ।। १४९ ।।

अर्थ—ता कारणतैं इनि भावनानि करि प्रमाद रहित हुवा संता तू आत्मा है, ताहि भावहु । जातैं स्फुट कहिए प्रगटपनैं, छिद्र रहित, अखंड, सम्पूर्ण व्रत तेरे होंहिगें ।। १४६ ।।

आगै चारित्राचार का उपसंहार करता संता तप-आचार की सूचना करता संता कहै है—

अर्थ—यहु चरित्राचार पंच प्रकार बहुरि अष्ट प्रकार संक्षेप करि वर्णन किया । यातैं उपरि तप आचार है, ताहि संक्षेप तैं वर्णन करौंगा ।। १४७ ।। अैसे आचार्य नैं प्रतिज्ञा करि है—

अर्थ—तप आचार दोय प्रकार है १. बाह्य—लौकिक जननि कैं प्रगट है सो बाह्य तप आचार है । बहुरि २. आभ्यंतर जन कहिये ज्ञानी जननि कैं प्रगट सो आभ्न्तर तप आचार है । यहु एक-एक छह-छह प्रकार है । ताहि यथाक्रमकरि प्रगट करूंगा ।। १४८ ।।

आगै प्रथम बाह्य तप छह प्रकार, ताहि नाम, उद्देश्यकरि निरूपण करता संता कहै है—

१. अ, ब परुवेमि ।

अनशनं चतुर्विधाहारपरित्यागः । अवमौदर्यमतृप्तिभोजनं । रसानां परित्यागो रसपरित्यागः स्वाभिलषितस्निग्धमधुराम्लकटुकादि-रसपरिहारः । वृत्तेः परिसंख्या वृत्तिपरिसंख्या गृहदायकभाजनौदनकालादीनां परिसंख्यानपूर्वको ग्रहः । कायस्य शरीरस्य परितापः कर्मक्षयाय बुद्धिपूर्वकं शोषणं आतापनाभ्रावकाशवृक्षमूलादिभिः । विविक्तशयनासनं स्त्रीपशुषण्ढकविवर्जितं स्थानसेवनं षष्ठमिति ॥ १४९ ॥

अनशनस्य भेदं स्वरूपं च प्रतिपादयन्नाह—

इत्तिरियं जावजीवं [1]दुविहं पुण अणसण मुणेयव्वं ।
इत्तिरियं साकंखं णिरावकंखं हवे बिदियं ॥ १५० ॥

अनशनं पुनरित्तिरिययावज्जीवभेदाभ्यां द्विविधं ज्ञातव्यं इत्तिरियं साकांक्षं कालदिभिः सापेक्षं एतावन्तं कालमहमशनादिकं नानुतिष्ठामीति । निराकांक्षं भवेद् द्वितीयं यावज्जीवं आमरणान्तादपि न सेवनम् ॥ १५० ॥

साकांक्षानशनस्य स्वरूपं निरूपयन्नाह—

छट्ठट्ठमदसमदुवादसेंहि मासद्धमासखमणाणि ।
कणगेगावलिआदी तवोविहाणाणि णाहारे[2] ॥ १५१ ॥

अहोरात्रस्य मध्ये द्वे भक्तवेले तत्रैकस्यां भक्तवेलायां भोजनमेकस्याः परित्याग एकभक्तः । चतसृणां भक्तवेलानां परित्यागे चतुर्थः ।

अर्थ—१- अनशन कहिये च्यारि प्रकार-आहार का त्याग । २- अवमौदर्य कहिये तृप्ति रहित भोजन करनां । ३-रसपरित्याग कहिए रसनिका परित्याग । आपकै अभिलास जो वांछित विनां मीठा, खट्टा, कड़वा इत्यादिक रसनि का परिहार करनां । बहुरि ४- वृत्तिपरिसंख्यान कहिए वृत्ति को परिसंख्या, गृह दानदैनें-वारा भाजन, औदनकाल इत्यादिक की परिसंख्या करि भोजन का ग्रहण करनां । बहुरि ५- काय को परिताप (क्लेश) कहिए कर्म के क्षय कै अर्थि बुद्धिपूर्वक आतापन, अभ्रावकाश, वृक्षमूल इत्यादिक योगनिकरि शोषण करनां । बहुरि ६-विविक्त शयनासन कहिये स्त्री, पशु, नपुंसक—इनिकरि रहित एकांत स्थान विषैं सोवनां-बैठनां, सोयहु छट्ठा बाह्य तप है । अैसे छह बाह्य तपनि के नाम मात्र कहे । ॥ १४९ ॥

आगैं अनशन नामा प्रथम बाह्य तप ताके भेद स्वरूप कौं प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—बहुरि अनशन नामा बाह्य तप जो है सो इत्तिरिय, यावज्जीव भेदकरि दोय प्रकार जाननां । तहां इत्तिरिय अनशन है सो साकांक्ष कहिए कालादिक की अपेक्षा सहित है कि जो एता काल पर्यन्त मैं अशनादिक ग्रहण नांही करौंगा । बहुरि दूसरा यावज्जीव नामा अनशन है सो या विषैं मरण का अंतपर्यंन्त अनशनादि ग्रहण करनैं की आकांक्षा नांही ॥ १५० ॥

आगैं साकांक्ष अनशन का स्वरूप कौ निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ—एक दिवस विषैं दोय भोजन वेला हैं । तहां एक वेला विषैं भोजन करनां, एक का परित्याग करनां सो एकभक्त

---

१. अ, जावज्जीवं । २. क णाहारो ।

षण्णां भक्तवेलानां परित्यागे षष्ठो द्विदिनपरित्यागः । अष्टानां परित्यागेऽष्टमस्त्रस्य उपवासाः । दशानां त्यागे दशमश्चत्वार उपवासाः । द्वादशानां परित्यागे द्वादशः पंचोपवासाः । मासार्धं पंचदशोपवासाः पंचदशदिनान्याहारपरित्यागः । मास—मासोपवासस्त्रिंशदहोरात्रमात्रा अशनत्यागः । क्षमणान्युपवासाः । आवलीशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । कनकावली चैकावली च कनकावल्येकावल्यौ तौ विधो आदिर्येषां तपोविधानानां कनकैकावल्यादीनि । आदिशब्देन मुरजमध्य-विमानपंक्ति-सिंहनिष्क्रीडितादीनां ग्रहणं । कनकावल्यादीनां प्रपंचः टोका[1]राधानायां द्रष्टव्यो त्रिस्तरभयान्नेह प्रतन्यते । अनाहारोऽनशनं षष्ठाष्टमदशमद्वादशैर्मासार्धमासादिभिश्च यानि क्षमणानि कनकैकावल्यादीनि च यानि तपोविधानानि तानि सर्वाण्यनाहारो यावदुत्कृष्टेन षण्मासास्तत्सर्वं साकाक्षमनशनमिति ॥ १५१ ॥

निराकांक्षस्यानशनस्य स्वरूपं निरूपयन्नाह—

भत्तपइण्णा इंगिणि पाउवगमणाणि जाणि मरणाणि ।
अण्णेवि एवमादी बोधव्वा णिरकंखाणि ॥ १५२ ॥

भक्तप्रत्याख्यानं द्वयाद्यष्टचत्वारिंशन्निर्यापकैः परिचर्यमाणस्यात्मपरोपकारसव्यपेक्षस्य यावज्जीवमाहारत्यागः । इङ्गणीमरणं नामात्मो-

---

कहिए । बहु दिवस विषैं दोय भोजन वेला हैं । तहां एक वेला विषैं भोजन करनां, एक का परित्याग करना सो एकभक्त कहिये । बहुरि च्यारि भोजन वेला का त्याग करैं सो चतुर्थ कहिये । यहु एक उपवास का नाम है । तहां धारणा के दिन दोपहरां पहली धारणां करैं, बहुरि दूसरी भोजन वेला का त्याग करैं । पीछै उपवास कैं दिन दोय भोजन वेला का त्याग करैं । बहुरि पारणां के दिन दोपहरां पीछै द्वितीय भोजन वेला विषैं भोजन करै—सो चतुर्थ जाननां ।

बहुरि छह भोजन वेला का त्याग करनां सो षष्ठ कहिए, यहु दोय उपवास का नाम है । अैसे आठ भोजन-वेला का त्याग करनां सो अष्टम कहिये । यहु तेला का नाम है । बहुरि दस भोजन बेला का त्याग करना सो दशम कहिये । यहु च्यारि उपवास का नाम है । बहुरि द्वादश भोजन वेला का परित्याग कहिये द्वादशम कहिए, यहु पांच उपवास का नाम है । बहुरि मासार्द्धक्षमण कहिए पंदरह अहोरात्र आहार का त्याग सो पंदरह उपवास मासक्षमण कहिये । तीस अहोरात्र आहार का त्याग सो तीस उपवास । बहुरि कनकावली, एकावली आदि शब्दकरि मुरज-मध्य, विमानपंक्ति, सिंहनीःक्रीडित इत्यादि तप के विधाननिका ग्रहण करनां । तिन कनकावली आदिक का विस्तार टीका आराधना ग्रन्थ विषैं देखना । ग्रन्थ का विस्तार के भयतैं इहां नांही कह्या है । यह सर्व अनशन विधान उत्कृष्ट छह महीना के उपवास पर्यन्त होय है । सो यहु सर्व साकांक्ष अनशन है । ॥ १५१ ॥

आगैं निराकांक्ष अनशन का स्वरूप निरूपण कहै है—

अर्थ—१. दोय कौं आदि दे आठ करि अधिक चालीस पर्यंन्त निर्यापक मुनिनि करि परिचर्या जाकी करियो—अैसा मुनिराज आप (स्वयं) करि तथा परकरि उपकार की अपेक्षा सहित ताकै यावज्जीव आहार का परित्याग सो भक्तप्रत्याख्यान

१. संस्कृतहरिवंशपुराणे च द्रष्टयं ।

पकारसव्यपेक्षं परोपकारनिरपेक्षं । प्रायोपगमनमरणं नामात्मपरोपकारनिरपेक्षं । एतानि त्रीणि मरणानि । एवमादीन्यन्यान्यपि प्रत्याख्यानि निराकांक्षाणि यानि तानि सर्वाण्यनिराकांक्षमनशनं बोद्धव्यं ज्ञातव्यमिति ॥ १५२ ॥

अवमौदर्यस्वरूपं निरूपयन्नाह—

बत्तीसा किर कवला पुरिसस्स दु होदि पयदि आहारो ।

एगकवलादिहिं [1]तत्तो ऊणियगहणं उमोदरियं ॥ १५३ ॥

द्वात्रिंशत्कवलाः पुरुषस्य प्रकृत्याहारो भवति । ततो द्वात्रिंशत्कवलेभ्य एकाकवलेनोनं द्वाभ्यां त्रिभिः, इत्येवं यावदेककवलः शेषः एकसिक्थो वा । किलशब्द आगमार्थसूचकः आगमे पठितमिति । एककवलादिभिनित्यस्याहारस्य ग्रहणं यत् सावमौदर्यवृत्तिः । सहस्रतंदुलमात्रः कवल आगमे पठितः द्वात्रिंशत्कवलाः पुरुषस्य स्वाभाविक आहारस्तेभ्यो यन्न्यूनग्रहणं तदवमौदर्यं तप इति ॥१५३॥

किमर्थमवमोदर्यवृत्तिरनुष्ठीयत इति पृष्टे उत्तरमाह—

धम्मावासयजोगे[2] णाणादीए उवग्गहं कुणदि ।

ण य इंदियप्पदोसयरी उम्मोदरितवोवुत्ती ॥१५४॥

धर्मे क्षमादिलक्षणे दशप्रकारे । आवश्यकक्रियासु समतादिषु षट्सु । योगेषु वृक्षमूलादिषु । ज्ञानादिके स्वाध्याये चारित्रे चोपग्रहमुपकारं करोतीत्यवमोदर्यतपोवृत्तिः । न चेन्द्रियप्रद्वेषकरी न चावमोदर्यवृत्त्येन्द्रियाणि प्रद्वेषं गच्छन्ति किन्तु वशे तिष्ठन्तीति । वह्वाशीधर्मं नानु-

---

कहिये। २. बहुरि आपकरि (स्वयंकृत) कीया उपकार की अपेक्षा सहित, परकृत उपकार की अपेक्षा रहित जो यावज्जीवन आहार का परित्याग करनां सो इंगिनीमरण कहिए। ३. बहुरि आपकृत उपकार तथा परकृत उपकार की नांही है अपेक्षा जहां, ऐसा जो यावज्जीव आहार का त्याग सो प्रायोपगमन मरण कहिये। ऐसे तीन प्रकार मरण जाननैं। इनिकौं आदि देकरि अन्य हू जे निराकांक्ष प्रत्याख्यान ते सर्व निराकांक्ष अनशन जाननें ॥ १५२ ॥

आगै अवमौदर्य तप का स्वरूप कूं निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ—बत्तीस ग्रास मात्र पुरुष के स्वभावकरि आहार है। तिन बत्तीस ग्रासनितैं एक ग्रास ऊन, दोय ग्रास ऊन, तीन ग्रास ऊन और एक ग्रास अवशेष रहै, तहां पर्यन्त तथा एक सिक्थ कहिए एक चांवल पर्यन्त आहार लेनां। इहां किल शब्द आगम के अर्थ का सूचक है, व आगम विषैं ऐसें कह्या है, यहु अर्थ जाननां। एक ग्रासादि ऊन आहार का लेनां सो अवमौदर्यतप होय है। हजार तंदुल प्रमाण ग्रास आगम विषैं कह्या है। ऐसें बत्तीस ग्रास मात्र पुरुष का स्वाभाविक आहार जाननां ॥ १५३ ॥

आगैं यहु अवमौदर्य तप काहे के अर्थि करिये है? ऐसे पूछै संतै उत्तर के अर्थि कहै हैं—

अर्थ—अवमौदर्य तप के विषैं वृत्ति है सो क्षमा तैं आदि लेय करि दशलक्षण धर्म्म के विषै तथा सामायिकादिक छह प्रकार आवश्यक-क्रिया विषैं तथा वृक्षमूलादिक योगिनि विषैं तथा ज्ञानादिके स्वाध्याय, चारित्र विषैं उपग्रह कहिये उपकार है,

---

१. अ, ब, क ०दितत्तो। २. अ, ब जोग्गे।

तिष्ठति । आवश्यकक्रियाश्च न सम्पूर्णाः पालयति । त्रिकालयोगं च न क्षेमेण समानयति । स्वाध्यायध्यानादिकं च न कर्तुं शक्नोति । तस्येन्द्रियाणि च स्वेच्छाचारीणि भवन्तीति । मिताशिनः पुनर्धर्मादयः स्वेच्छया वर्तन्त इति ॥ १५४ ॥

रसपरित्यागस्वरूपं प्रतिपादन्नाह—

खीरदहिसप्पितेल[1] गुडलवणाणं च जं परिच्चयणं ।
तित्तकटुकसायं[2]विलमधुरसाणं च जं चयणं ॥ १५५ ॥

अथ को रसपरित्याग इति पृष्टेऽत आह—क्षीरदधिसर्पिस्तैलगुडलवणानां घृतपूरलड्डुकादीनां च यत् **परिच्चयणं**—परित्यजनं एकैकशः सर्वेषां वा तिक्तकटुकषायाम्लमधुररसानां च यत्त्यजनं स रसपरित्यागः । एतेषां प्रासुकानामपि तपोबुद्ध्या त्यजनम् ॥ १५५ ॥

याः पुनर्महाविकृतयस्ताः कथमिति प्रश्नेऽत आह—

चत्तारि महावियडी य होंति णवणीदमज्जमंसमधू ।
कंखापसंगदप्पासंजमकारीओ[3] एदाओ ॥ १५६ ॥

याः पुनश्चतस्रो महाविकृतयो महापापहेतवो भवन्तीति नवनीतमद्यमांसमधूनि, कांक्षाप्रसंगदर्पासंयमकारिण्य एताः । नवनीतं कांक्षां—

ताहि करै है। बहुत भोजन करनेहारा धर्म का अनुष्ठान नांहो करै, आवश्यक क्रिया संपूर्ण नांही पालै है, त्रिकाल योग-क्षेमकरि नांहो समाप्ति करैं है, स्वाध्याय-ध्यानादिक करनें कौ समर्थ नांहीं होय है। इह अवमौदर्य तप कै विषैं वृत्ति है, सो इंद्रियनिकैं प्रद्वेष करनहारी नांही होय हैं। वा ताकरि इन्द्रिय प्रद्वेष कूं नांहीं प्राप्त होय हैं, वशि रहै हैं। ताकैं इन्द्रिय स्वेच्छाचारी नांही रहै हैं। अल्प-आहारी कै धर्मादिक है ते स्वेच्छाकरि प्रवर्तैं हैं ॥ १५४ ॥

आगैं रसपरित्याग-तप के स्वरूप को प्रतिपादन करता संता कहै हैं—

अर्थ—इहां कोउ पूछै कि रसपरित्याग कहा (क्या है) ? ताका समाधान कहै है—क्षीर कहिये दूध, दधि कहिये दही, सर्पि कहिए घृत, तैल कहिए तैल, गुड कहिये गुड-खंडादिक, लवण कहिए क्षीररस—इनिका, च शब्दकरि घेवर, मोदक इत्यादिकनि का एक-एक का त्याग तथा समस्तनिका परित्याग, बहुरि तिक्त कहिए तीक्ष्ण-रस, कटुक कहिए कड़वारस, कसाय कहिए कषायला रस, आम्ल कहिये खाटा रस, मधुर कहिये मीठा रस—इनिका जो त्याग सो रसपरित्याग तप कहिये। यहु रस प्रासुक होय तौहू तपश्चरण की बुद्धिकरि इनिका त्याग करनां ॥ १५५ ॥

आगैं जे महाविकृति कहिए हैं ते कौन ? अैसे प्रश्न करते कहै है—

अर्थ—यहु च्यारि महाविकृति हैं ते महापाप की कारण हैं, तें कहिये है—१. नवनीत कहिये लूण्यौ घृत, २. मद्य कहिये-मदिरा, ३. मांस कहिये जीवनि का कलेवर, ४. मधु कहिये-सहत (शहद)—इनि महाविकृति के दोष कहै हैं। नवनीत है सो कांक्षा

---

१. अ, ब तेल्लं । २. अ, ब, कडु । ३. क ०री दु ए० ।

महाविषयाभिलाषं करोति । मद्यं—सुराप्रसंगमगम्यगमनं करोति । मांसं-पिशितं दर्पं करोति । मधु असंयमं हिंसां करोति ।

एताः किंकर्तव्या इति पृष्टेऽत आह—

आणाभिकंखिणावज्जभीरुणा तवसमाधिकामेण ।

ताओ जावज्जीवं णिव्वुड्ढाओ पुरा चेव ।। १५७ ।।

सर्वज्ञाज्ञाभिकांक्षिणा—सर्वज्ञमतानुपालकेन । अवद्यभीरुणा—पापभीरुणा, तपःकामेन—तपोनुष्ठानपरेण, **समाधिकामे**—न च ता नवनीतमद्यमांसमधूनि विकृतयो **यावज्जीवं**—सर्वकालं **निव्यूढाः**—निसृष्टाः त्यक्ता पुरा चैव पूर्वस्मिन्नेव काले संयमग्रहणान्पूर्वमेव । आज्ञाभिकांक्षिणा नवनीतं सर्वथा त्याज्यं दुष्टकांक्षाकारित्वात् । अवद्यभीरुणा मांसं सर्वथा त्याज्यं दर्पकारित्वात् । तपः तपःकामेन मद्यं सर्वथा त्याज्यं प्रसंगकारित्वात् । समाधिकामेन मधु सर्वथा त्याज्यं, असंयमकारित्वात् । व्यस्तं समस्तं वा योज्यमिति ।। १५७ ।।

वृत्तिपरिसंख्यानस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

गोयरपमाण दायगभायण णाणाविहाण जं गहणं ।

तह एसणस्स गहणं विविहस्स य वुत्तिपरिसंखा ।। १५८ ।।

कहिये महाविषयाभिलाष ताहि करै हैं। बहुरि मद्य है सो प्रसंग कहिये अगम्य-गमन (वेश्या आदि का सहवास) न करनै योग्य कार्य, ताहि करै है। बहुरि मांस जो है सो दर्प्प कहिए मद, ताहि करै है, मधु जो है सो असंयम, हिंसा, ताहि करै है ।।१५६।।

आगैं इनिका कहा करनां ? अैसे प्रश्न करते संतैं कहै है—

अर्थ—सर्वज्ञ की आज्ञा का अभिलाषी, सर्वज्ञ के मत का सेवनहारा, पापकरि भयभीत, तप का अनुष्ठान के विषैं सावधान, समाधि विषैं है कामना जाके, ताकरि नवनीत, मद्य, मांस, मधु रूप च्यारि प्रकार महाविकृति जे है ते संयम ग्रहणतैं पूर्वकाल ही विषैं यावत्-जीव सर्वकाल त्यजन करिये हैं। जो सर्वज्ञ की आज्ञा का अभिलाषी होय सो दुष्ट भोगाभिलाष का करनैं वारा जो नवनीत, ताहि सर्वथा प्रकार छोड़ै। बहुरि जो पाप से भयभीत होय सो मद-गर्व का करनैं वारा जो मांस, ताहि सर्वथा प्रकार ही छोड़ै। बहुरि तप करनैं का जाकै मनोरथ होय सो अकार्य करनैं का कारण जो मदिरा ताका अवश्य त्याग करै। बहुरि जाकै समाधि ध्यान का अभिलाष होय सो असंयम का करनैं वारा जो सहत (शहद) ताका सर्वथा प्रकार का त्याग करै। अैसे जुदे-जुदे गुण कहैं।

अथवा जो सर्वज्ञ का आज्ञा का अभिलाषी होय सो समस्त च्यारू ही प्रकार महाविकृतिनि का सर्वथा प्रकार त्याग करै। तथा पापकरि जो भयभीत होय सो हुँ तथा तप का अभिलाषी होय तथा समाधि का अभिलाषी होय सो समस्त च्यारूं ही प्रकार महाविकृतिनि का त्याग करैं—अैसे जाननां ।। १५७ ।।

आगै वृत्तिपरिसंख्यान व्रत का स्वरूप प्रतिपादन करता संता कहै है—

गोचरस्य प्रमाणं गोचरप्रमाणं गृहप्रमाणं, एतेषु गृहेषु प्रविशामि नान्येषु बहुष्विति । दायका दातारो भाजनानि परिवेष्यपात्राणि तेषां यन्नानाविधानं नानाकरणं तस्य ग्रहणं स्वीकरणं—दातृविशेषग्रहणं पात्रविशेषग्रहणं च । यदि वृद्धो मां विधरेत् तदानीं तिष्ठामि नान्यथा । अथवा वालो युवा स्त्री उपानत्करहितो वर्त्मनि स्थितोऽन्यथा वा विधरेत् तदानीं तिष्ठामीति । कांस्यभाजनेन रूप्यभाजनेन सुवर्णभाजनेन मृन्मयभाजनेन वा ददाति तदा गृहीष्यामीति यदेवमाद्यं । तथाशनस्य विविधस्य नानाप्रकारस्य यद्ग्रहणमवग्रहोपादानं, अद्य मकुष्ठं भोक्ष्ये नान्यत् । अथवाद्य मंडकान् सक्तून् ओदनं वा ग्रहीष्यामीति यदेवमाद्यं[1] ग्रहणं तत्सर्वं वृत्तिपरिसंख्यानमिति ॥ १५८ ॥

कायक्लेशस्वरूपं विवृण्वन्नाह—

ठाणसयणासणेहिं य विविहेहिं य उग्गयेहिं बहुएहिं[2] ।
अणुवीचीपरिताओ कायकिलेसो हवदि एसो ॥ १५९ ॥

स्थानं—कायोत्सर्गं । शयनं—एकपार्श्वमृतकदण्डादिशयनं । **आसनं**—उत्कुटिका-पर्यंक-वीरासनमकरमुखाद्यासनं । स्थानशयनासनै-र्विविधैश्चावग्रहैर्धर्मोपकारहेतुभिरभिप्रायैर्बहुभिरनुवीचीपरितापः सूत्रानुसारेण कायपरितापो वृक्षमूलाभ्रावकाशातापनादिरेष कायक्लेशो भवति ॥ १५९ ॥

अर्थ—गोचर प्रमाण कहिये-गृहनि का प्रमाण करै, इतने गृहनि विषैं प्रवेश करेंगे। अन्य बहुत गृहनि विषैं प्रवेश नांही करेंगे। तथा दायक कहिये भोजन का देनें-वारा ताके विशेष का ग्रहण करैं—'जो वृद्ध श्रावक पडिगाहैगा तो खड़े रहेंगे, अन्यथा नांहीं' अथवा बालक, जवान तथा स्त्री तथा मार्ग मैं खड़ा पगरखीं (जूता, खड़ाऊँ आदि) रहित इत्यादिक अनेक प्रतिज्ञा करै—'अैसा दाता पडिगाहैंगा तो आज्य (आज) भोजन लेंगे, अन्यथा नांही' । बहुरि पात्र विशेष का ग्रहण करै—'आज्य' कांसी के भाजन करि भोजन देगा जो लैंगे, अन्यथा नांही'—अैंसे ही रूपा (चांदी) का भाजन तथा स्वर्ण का भाजन तथा मृतिकामय भाजन—अैंसैं भाजन की अनेक प्रकार प्रतिज्ञा करै। तथा बहुरि अशन कहिये भोजन, नाना प्रकार का ग्रहण करनैं की प्रतिज्ञा करै—'आज्य मोठ (ममुष्ठ) का ही भोजन लेंगे, अन्यथा नांही'—'आज्य मंडक का ही भोजन करैंगे, अन्य नांही', तथा आज्य सत्तू का ही भोजन करैंगे, अन्यथा नांही तथा 'आज्य ओदन ही का भोजन करैंगे अन्यथा नांही—अैसें प्रतिज्ञा मन विषैं धारि लेवे, तैंसे ही विधि मिलैं तो भोजन करै, अन्यथा नांही । सो यहु वृत्तिपरिसंख्यान तप है ॥ १५८ ॥

आगैं कायक्लेश तप का विवरण करता संता कहै है—

अर्थ—स्थान कहिए—कायोत्सर्ग, शयन कहिए एक पार्श्वा (करवट) सोवनां, मृतकवत् सोवनां, दंडवत् सोवनां इत्यादिक । आसन कहिए—उत्कुटिका बैठना, पर्यंक बैठना, वीरासन बैठना, मकरमुख बैठना इत्यादिक । अैसे स्थान, शयन, आसनकरि तथा नाना प्रकार बहुत अवग्रह कहिए धर्मोपकार के कारण अभिप्रायनिकरि जिनसूत्र के अनुसार वृक्षमूलयोग करि, अभ्रावकाशयोग करि, आतापनयोग करि इत्यादिक करि शरीर कूं परिताप दीजिये—यहु कायक्लेश नामा तप है ॥ १५९ ॥

---

१. क °माद्यग्र° । २. अ, ब बहुगेहिं ।

विविक्तशयनासनस्वरूपमाह—

तेरिक्खिय माणुस्सिय सविगारियदेवि गेहि संसत्ते[1] ।
वज्जेंति[3] अप्पमत्ता णिलए सयणासणट्ठाणे ॥ १६० ॥

तिर्यंची—गोमहिष्यादयः । **मानुष्यः**—स्त्रियो वेश्याः स्वेच्छाचारिण्यादयः । **सविकारिण्यो** देव्यो भवनवानव्यन्तरादियोषितः । गेहिनो गृहस्थाः । एतैः संसक्तान्—सहितान्, निलयानावासान् **वर्जयन्ति**—परिहरन्त्यप्रमत्ता यत्नपराः सन्तः शयनासनस्थानेषु कर्तव्येषु एवमनुतिष्ठतो विविक्तशयनासनं नाम तप इति ॥ १६० ॥

बाह्यं तप उपसंहरन्नाह—

सो णाम बाहिरतवो जेण मणो दुक्कडं ण उट्ठेदि ।
जेण य सद्धा जायदि जेण य जोगा ण हीयंते ॥ १६१ ॥

तन्नाम बाह्यं तपो येन मनोदुष्कृतं-चित्तसंक्लेशो नोत्तिष्ठति नोत्पद्यते । येन च श्रद्धा शोभनानुरागो जायते उत्पद्यते येन च योगा मूलगुणा न हीयन्ते ॥ १६१ ॥

एसो दु बाहिरतवो बाहिरजणपायडो परम घोरो ।
अब्भंतरजणणादं बोच्छं अब्भंतरं वि तवं ॥ १६२ ॥

तद्बाह्यं तपः षड्विधं बाह्यजनानां मिथ्यादृष्टिजनानामपि प्रकटं प्रख्यातं परमघोरं सुष्ठु दुष्करं प्रतिपादितं । अभ्यन्तरजनज्ञातं आगमप्रविष्टजनैर्ज्ञातं वक्ष्ये कथयिष्याम्यभ्यन्तरमपि षड्विधं तपः ॥ १६२ ॥

आगैं विविक्त शयनाशन का स्वरूप कहै है—

अर्थ—तिरश्ची कहिए गाय, भैंसि इत्यादिक तिर्यंच । स्त्री-मानुषी कहिए वेश्या, स्वेच्छाचारिणी इत्यादिक । मनुष्य-स्त्री सविकारणी । देवी कहिए भवनवासी, वान, व्यंतर इत्यादिक देवांगना । गेही कहिए गृहस्थ, असंयमी इनिकरि संशक्त, इनिके रहनैं के निलय कहिए आवास तिनहि, अप्रमत्त कहिए यत्नाचारी मुनिराज हैं ते, शयनासन कहिए सोवनां, बैठनां, खड़ा रहना इनि कार्यंनि विषै वर्जन करै हैं—ऐसैं आचरण करता साधु कै विविक्तशयनासन नाम तप होय है ॥ १६० ॥

आगैं बाह्य तप का उपसंहार करता संता कहै है—

अर्थ—हे शिष्य ! सो बाह्य तप कहिए, जाकरि मनोदुःकृतं कहिए चित्त विषैं संक्लेश नांही उपजै । बहुरि जाकरि **श्रद्धा** कहिये भला धर्मानुराग उपजै, बहुरि जाकरि जोग कहिए मूलगुण है ते हीन नांही होय, वृद्धि कौं प्राप्त होहि ॥ १६१ ॥

आगै बहुरि कहै है—

अर्थ—यहु छह प्रकार बाह्य तप है सो बाह्य जन, जे मिथ्यादृष्टि जन, तिनिकै भी प्रगट परमघोर अतिशयकरि दुष्कर

---

१. 'सविगारिणिदेवी'—यह पाठ सम्भव है । २. ख. संजुत्तो । ३. अ, ख वर्जिति, ब, अंजिति ।

के ते षट्प्रकारा इत्याशंकायामाह—

पायच्छित्तं विणयं वेज्जावच्चं तहेव सज्झायं ।
झाणं च विउस्सग्गो अब्भंतरओ तवो एसो ।। १६३ ।।

प्रायश्चित्तं—पूर्वापराधशोधनं । विनयमनुतद्ध वृत्तिः । वैयावृत्यं स्वशक्त्योपकारः । तथैव स्वाध्यायः सिद्धान्ताद्यध्ययनं । ध्यानं चैकाग्रचिंतानिरोधः व्युत्सर्गः । अभ्यन्तरतप एतदिति ।। १६३ ।।

प्रायश्चित्तस्वरूपं निरूपयन्नाह—

पायच्छित्तं त्ति तवो जेण विसुज्झदि हु पुव्वकयपावं ।
पायच्छित्तं पत्तोत्ति तेण वुत्तं दसविहं तु ।। १६४ ।।

प्रायश्चित्तमपराधं प्राप्तः सन् येन तपसा पूर्वकृतात्पापात् विशुद्धयते हु—स्फुटं पूर्वं व्रतैः सम्पूर्णो भवति तत्तपस्तेन कारणेन दशप्रकारं प्रायश्चित्तमिति ।। १६४ ।।

के ते दसप्रकारा इत्याशंकायामाह—

आलोयणपडिकमणं उभयविवेगो तहा विउस्सग्गो ।
तव छेदो मूलं विय[1] परिहारो चेव सद्दहणा ।। १६५ ।।

है, सो प्रतिपादन कीया ।। १६२ ।।

आगै जै आगम प्रविष्ट ज्ञानीजन हैं तिनिकरि जाण्यां—ऐसा जो अंतरंग छह प्रकार तप कौन ? ऐसी आशंका होतैं कहे हैं—

अर्थ—१. प्रायश्चित्त कहिए पूर्व अपराध का सोधनां, २. विनय कहिये—उद्धतता रहित वृत्ति, ३. वैयावृत्य कहिए अपनी शक्तिकरि उपकार करनां, ऐसे हो ४. स्वाध्याय कहिए सिद्धांतादिक का अध्ययन करनां, ५. ध्यान कहिए एकाग्रचिंता का निरोध करनां, ६. व्युत्सर्ग कहिए बाह्य-अभ्यंतर उपधि का त्याग करनां। ऐसे यहु अभ्यंतर तप छह प्रकार हैं ।। १६३ ।।

आगैं प्रायश्चित का स्वरूप है, ताहि निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ—प्रायश्चित कहिये अपराध, व्रत विषैं दोष, ताकूं प्राप्त हुवा व्रती, जा तपकरि पूर्वकृत पापतैं विशुद्ध होय, निर्दोष होय, पूर्वव्रत करि सम्पूर्ण होय सो तप, ता कारणकरि प्रायश्चित—ऐसा दश प्रकार कह्या है ।। १६४ ।।

ते दश प्रकार कौन ? ऐसी आशंका होतैं संतै कहै है—

---

१. अ. ब. पि य ।

आलोचना—आचार्याय देवाय वा चारित्राचारपूर्वकमुत्पन्नापराधनिवेदनं । **प्रतिक्रमणं**—रात्रि भोजनत्यागव्रतसहितपंचमहाव्रतोच्चारणं संभावनं दिवसप्रतिक्रमणं पाक्षिकं वा । **उभयं**—आलोचनप्रतिक्रमणे । **विवेको**—द्विप्रकारो गणविवेकः स्थानविवेको वा । तथा **व्युत्सर्गः**—कायोत्सर्गः । तपोऽनशनादिकं । **छेदो**—दीक्षायाः पक्षमासादिभिर्हानिः । **मूलं**—पुनरद्य प्रभृति व्रतारोपणं । अपि च परिहारो द्विप्रकारो गणप्रतिबद्धोऽप्रतिबद्धो वा । यत्र प्रश्रवणादिकं कुर्वन्ति मुनयस्तत्र तिष्ठन्ति पिच्छिकामग्रतः कृत्वा यतीनां वन्दनां करोति तस्य यतयो न कुर्वन्ति, एवं या गणे क्रिया गणप्रतिबद्धः परिहारः । यत्र देशे धर्मो न ज्ञायते तत्र गत्वा मौनेन तपश्चरणानुष्ठानकरणमगणप्रतिबद्धः परिहारः । तथा श्रद्धानं तत्त्वरुचौ परिणामः क्रोधादिपरित्यागो वा । एतद्दशप्रकारं प्रायश्चित्तं दोषानुरूपं दातव्यमिति । कश्चिद्दोषः आलोचनमात्रेण निराक्रियते । कश्चित्प्रतिक्रमणेन कश्चिदालोचनप्रतिक्रमणाभ्यां कश्चिद्विवेकेन कश्चित्कायोत्सर्गेण कश्चित्तपसा कश्चिच्छेदेन कश्चिन्मूलेन कश्चित्परिहारेण कश्चिच्छ्रद्धानेनेति ॥ १६५ ॥

प्रायश्चित्तस्य नामानि प्राह—

पोराणकम्मखवणं खिवणं णिज्जरण सोधणं धुवणं ।
पुंच्छणमुच्छिवणं छिदणं[1] त्ति पायच्छित्तस्स णामाइं ॥ १६६ ॥

अर्थ—१. आलोचना कहिए आचार्यनिकैं अर्थि तथा देव अर्हंत कै अर्थि चारित्राचारपूर्वक उपजे अपराध का निवेदन करनां । बहुरि २. प्रतिक्रमण कहिये रात्रिभोजन परित्याग-व्रतकरि—सहित पंच महाव्रत का उच्चारण करनां, संभावन करना, दिवस प्रतिक्रमण करनां, तथा पाक्षिक प्रतिक्रमण करनां । बहुरि ३. उभय कहिए आलोचना तथा प्रतिक्रमण दोउ करनैं । बहुरि ४. विवेक कहिए-गण[2]-विवेक तथा स्थान-विवेक—अैसे दोय प्रकार हैं । बहुरि ५. व्युत्सर्ग कहिए कायोत्सर्ग । वहुरि ६. तप कहिए अनशनादिक । बहुरि ७. छेद कहिए दीक्षा का पक्ष, मासादिक करि छेद करनां—घटावनां । बहुरि ८. मूल कहिए फेरि (पुनः) तिस कालतैं लेय व्रत अंगीकार करावनां ।[3] वहुरि ९. परिहार दोय प्रकार—एक गण-प्रतिबद्ध, दूजा अगणप्रतिबद्ध । अैसा प्रायश्चित लीजिये—जहां मुनिजन मूत्रादिक करैं हैं, तहां बैठि पोछी अगाड़ी करि यतीनिकूं वंदना करै ताकूं यति प्रतिवंदना नांही करैं । अैसें गण विषै जो क्रिया करिए सो गण-प्रतिबद्ध परिहार कहिये । तथा जहां देश विषै धर्म नांही जानिए तहां जायकरि, मौन करिकैं तपश्चरण का अनुष्ठान करनां सो अगण-प्रतिबद्ध परिहार कहिए । बहुरि १०. श्रद्धान कहिए तत्त्वरुचि कैं विषैं परिणाम तथा क्रोधादिक का परित्याग ।

अैसे यहु दश प्रकार प्रायश्चित दोष-सदृश (दोषों के अनुरूप) देनां । कोउ दोष तौ आलोचना मात्र ही करि निराकरण कीजिए, कोउ दोष प्रतिक्रमणकरि निराकरण कीजिये हैं, कोउ दोष आलोचना-प्रतिक्रमण दोउनिकरि निराकरण करिये हैं, अैसे ही कोई विवेक करि, कोई कायोत्सर्ग करि, कोई तप करि, कोई छेद करि, कोई मूल करि, कोई परिहार करि, कोई श्रद्धान करि—अैसैं 'जैसा दोष तैसा प्रायश्चित देना' ॥ १६५ ॥

---

१. अ. ब. छेदणं । २. ब. गणधर । ३. ब. करनां ।

पुराणस्य कर्मणः क्षपणं विनाशः, क्षेपणं, निर्जरणं, शोधनं, धावनं, पुच्छणं, निराकरणं, उत्क्षेपणं, छेदनं द्वैधीकरणमिति प्रायश्चित्तस्यैतान्यष्टौ नामानि ज्ञातव्यानि भवन्तीति ॥ १६६ ॥

विनयस्य स्वरूपमाह—

दंसणणाणेविणओ चरित्ततवओवचारिओ विणओ ।
पंचविहो खलु विणओ पंचमगइणायगो भणिओ ॥ १६७ ॥

दर्शने विनयो ज्ञाने विनयश्चारित्रे विनयस्तपसि विनयः औपचारिको विनयः पंचविधः खलु विनयः पंचमीगतिनायकः प्रधानः भणितः प्रतिपादित इति ॥ १६७ ॥

दर्शनविनयं प्रतिपादयन्नाह—

उवगूहणादिआ पुव्वुत्ता तह भत्तिआदिआ य गुणा ।
संकादिवज्जणं पि य दंसणविणओ समासेण ॥ १६८ ॥

उपगूहनस्थिरीकरणवात्सल्यप्रभावनाः पूर्वोक्ताः । तथा भक्त्यादयो गुणाः पंचपरमेष्ठिभक्त्यानुरागस्तेषामेव पूजा तेषामेव गुणानुवर्णनं, नाशनमवर्णवादस्यासादनापरिहारो भक्त्यादयो गुणाः । शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसानां वर्जनं परिहारो दर्शनविनयः समासेनेति ॥ १६८ ॥

आगैं प्रायश्चित्त के नाम कहै है—

अर्थ—पुराणकर्मक्षपणं कहिए पुरातन कर्म्म का विनाश, बहुरि क्षेपण, बहुरि निर्जरण, बहुरि शोधन, बहुरि धावन, बहुरि पुंछन कहिए निराकरण, बहुरि उत्क्षेपण, बहुरि छैदन कहिए द्वैधीकरण—अैसैं ये प्रायश्चित के आठ नाम जाननैं ॥ १६६ ॥

आगै विनय का स्वरूप कहै है—

अर्थ—१. दर्शन-विनय, २. ज्ञान-विनय, ३. चारित्र-विनय, ४. तप-विनय, ५. औपचारिक विनय—अैसे विनय निश्चय करि पंच प्रकार है । सो पंचमीगति कहिये, सिद्धगति कहिये ताका नायक कहिए प्रधान प्राप्ति करनहारा कह्या है ॥ १६७ ॥

आगै दर्शन-विनय का प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—उपगूहनादिक कहिए उपगूहन, स्थिरीकरण, वात्सल्य, प्रभावना पूर्वैं कहै तथा भक्त्यादिक कहिये पंचपरमेष्ठी की भक्ति-अनुराग, तिनिका पूजन, तिनहि के गुण का वर्णन, तिनिका अवर्णवाद नांही करणां, तिनिकी आसादना का परिहार। बहुरि शंकादि कहिये शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा—इनिका वर्ज्जन करनां, परिहार करनां—सो संक्षेप करिकै दर्शनविनय है ॥ १६८ ॥

जे अत्थपज्जया खलु उवदिट्ठा जिणवरेहिं सुदणाणे ।
ते तह रोचेदि णरो दंसणविणयो हवदि एसो ।। १६९ ।।

येऽर्थपर्याया जीवाजीवादयः सूक्ष्मस्थूलभेदेनोपदिष्टाः स्फुटं जिनवरैः श्रुतज्ञाने द्वादशांगेषु चतुर्दशपूर्वेषु, तान् पदार्थास्तथैव तेन प्रकारेण याथात्म्येन रोचयति नरो भव्यजीवो येन परिणामेन स एष दर्शनविनयो ज्ञातव्य इति ।। १६९ ।।

ज्ञानविनयं प्रतिपादयन्नाह—

काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे ।
वंजणअत्थतदुभयं विणओ णाणम्हि अट्ठविहो ।। १७० ।।

द्वादशांगचतुर्दशपूर्वाणां कालशुद्ध्या पठनं व्याख्यानं परिवर्तनं वा । तथा हस्तपादौ प्रक्षाल्य पर्यंकेऽवस्थितस्वाध्ययनं । अवग्रहविशेषेण पठनं । बहुमानं यत्पठति यस्माच्छृणोति तयोः पूजागुणस्तवनं । तथैवानिह्नवो यत्पठति यस्मात्पठति तयोः कीर्तनं । व्यञ्जनशुद्धं, अर्थशुद्धं व्यञ्जनार्थोभयशुद्धं च यत्पठनं । अनेन न्यायेनाष्टप्रकारो ज्ञाने विनय इति ।। १७० ।।

तथा—

णाणं सिक्खदि णाणं गुणेदि णाणं परस्स उवदिसदि ।
णाणेण कुणदि णायं णाणविणीदो हवदि एसो ।। १७१ ।।

ज्ञानं शिक्षते विद्योपादानं करोति । ज्ञानं गुणयति परिवर्तनं करोति । ज्ञानं परस्मै उपदिशति प्रतिपादयति । ज्ञानेन करोति न्याय-

---

बहुरि कहै है—

अर्थ—ये अर्थपर्याय जीवादिक सूक्ष्म-स्थूल भेदकरिकै जिनवरदेव, श्रुतज्ञान, तद्द्वादशांग, चतुर्दशपूर्व विषैं प्रगटपणैं उपदेश्या तिनि पदार्थनिकूं तैसैहि प्रकार यथास्वरूप करि भव्य जीव प्रतीति करै। जा परिणाम करि सो यहु दर्शन विनय जाननां ।। १६९ ।।

आगैं ज्ञान-विनय का प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—काल कहिए द्वादशांग चउदह पूर्वनिका काल शुद्धिकरि पढ़नां, व्याख्यान करनां, परिवर्तन करनां तथा विनये कहिए हाथ-पग धोयकरि पर्यंकासन बैठैं अध्ययन करनां। बहुरि उपधान कहिए अवग्रह विशेष करिकै पढ़नां। बहुरि बहुमान कहिए जो पढ़ै जातैं सुणैं तिनिकी पूजा गुणस्तवन करनां। बहुरि अनिह्नव कहिए जाहि पढै, जिस गुरुतैं पढ़ैं तिनिका प्रगट कर दैना। बहुरि व्यंजन शुद्ध पढ़ना, बहुरि अर्थ शुद्धि पढ़ना, बहुरि व्यंजन-अर्थ—उभय शुद्ध पढ़ना—इस न्यायकरि आठ प्रकार ज्ञान-विनय जाननां ।। १७० ।।

तथा बहुरि कहै है—

अर्थ—जो ज्ञान है ताहि सीखै, विद्या का उपादान करै, बहुरि ज्ञान है ताहि गुणै, परिवर्तन करै, बहुरि ज्ञान है ताहि

मनुष्ठानं । य एवं करोति ज्ञानविनीतो भवत्येष इति । अथ दर्शनाचारदर्शनविनययोः को भेदस्तथा ज्ञानाचारज्ञानविनययोः कश्चन भेद एत्याशंकायामाह—शंकादिपरिणामपरिहारे यत्नः उपगूहनादिपरिणामानुष्ठाने च यत्नो दर्शनविनयः । दर्शनाचारः पुनः शंकाद्यभावेन तत्त्वश्रद्धानविषयो यत्न इति । तथा कालशुद्ध्यादिविषयेऽनुष्ठाने यत्नः कालादिविनयः, तथा द्रव्यक्षेत्रभावादिविषयश्च यत्नः । ज्ञानाचारः पुनः कालशुद्ध्यादिषु सत्सु श्रुतं पठनयत्नं । ज्ञानविनयः श्रुतोपकरणेषु च यत्नः श्रुतविनयः । तथापनयति तपसा तमोऽज्ञानं उपनयति च मोक्षमार्गे आत्मानं तपोविनयः नियमितमतिः सोऽपि तपोविनय इति ज्ञातव्य इति ॥ १७१ ॥

चारित्रविनयस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

इंदियकसायपणिहाणंपि य गुत्तीओ चेव समिदीओ ।
एसो चरित्तविणओ समासदो होइ णायव्वो ॥ १७२ ॥

इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि कषायाः क्रोधादयः तेषामिन्द्रियकषायाणां प्रणिधानं प्रसरहानिरिन्द्रियकषायप्रणिधानं इन्द्रियप्रसरनिवारणं कषायप्रसरनिवारणं । अथवेन्द्रियकषायाणां अपरिणामस्तद्गतव्यापारनिरोधनं । अपि च गुप्तयो मनोवचनकायशुभप्रवृत्तयः । समितय ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोच्चारप्रस्रवणप्रतिष्ठापनाः । एष चारित्रविनयः समासतः संक्षेपतो भवति ज्ञातव्यः । अत्रापि । समितिगुप्तय आचारः । तद्रक्षणोपाये यत्नश्चारित्रविनय इति ॥ १७२ ॥

पैला के अर्थि उपदेश करै, प्रतिपादन करै। बहुरि ज्ञानकरि न्याय अनुष्ठान करैं। जो अैसै करै सो यहु ज्ञान विनयवान होय।

इहां कोउ पूछै जौ दर्शनाचार अर दर्शन-विनय में भेद कहा (क्यों)? बहुरि ज्ञानाचार-ज्ञानविनय में भेद कहा? ताका समाधान—शंकादि परिणाम का परिहार विषैं जो यत्न, बहुरि उपगूहनादि परिणाम का आचरण विषैं जो यत्न सो दर्शनविनय कहिए। बहुरि शंकादिक का अभाव करि तत्त्वश्रद्धान विषैं जो यत्न सो दर्शनाचार कहिए। अैसा भेद जाननां। तथा काल शुद्धयदिक का अनुष्ठान विषैं जो यत्न तथा द्रव्य क्षेत्र, भावादि विषैं जो यत्न सो ज्ञानविनय कहिये। बहुरि काल शुद्धयादिक होतै संतै श्रुतपठन के विषैं जो यत्न सो ज्ञानाचार कहिए॥ १७१॥

आगैं चारित्रविनय का स्वरूप कूं प्रतिपादन करता संता कहै हैं—

अर्थ—इन्द्रिय-प्रणिधान कहिए चक्षुरादिक इन्द्रियनिका प्रचार मेटनां, इनिके व्यापार का निरोध करना तथा कषाय-प्रणिधान कहिए क्रोधादिक कषायनिका प्रचार मेंटना, इनिके परिणामनि का व्यापार का निरोध करना। बहुरि गुप्ति कहिए मन, वचन, काय की शुद्ध प्रवृत्ति। बहुरि समिति कहिए ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपणा, उच्चार-प्रश्रवण, प्रतिष्ठापना—यहु संक्षेपतैं चारित्रविनय जाननां। इहां भी समिति-गुप्ति कही हैं ते चारित्राचार जाननां। इनिके रक्षण का जो उपाय ताकै विषै जो यत्न सो चारित्रविनय जानना॥ १७२॥

तपोविनयस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

उत्तरगुणउज्जोगो सम्मं अहियासणा य सद्धा य।
आवासयाणमुचिदाणं[1] अपरिहाणीयणुस्सेहो ॥ १७३ ॥

आतापनाद्युत्तरगुणेषूद्योग उत्साहः। सम्यगध्यासनं तत्कृतश्रमस्य निराकुलतया सहनं। तद्गतश्रद्धा—तानुत्तरगुणान् कुर्वतः शोभनपरिणामः। आवश्यकानां समतास्तववन्दनाप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानकायोत्सर्गाणामुचितानां कर्मक्षयनिमित्तानां परिमितानामपरिहाणिरनुत्सेधः न हानिः कर्तव्या नापि वृद्धिः। षडेव भावाश्चत्वारः पंच वा न कर्तव्याः। तथा सप्ताष्टौ न कर्तव्याः। या यस्यावश्यकस्य वेला तस्यामेवासौ कर्तव्यो नान्यस्यां वेलायां हानिं वृद्धिं प्राप्नुयात्। तथा यस्यावश्यकस्य यावन्तः पठिताः कायोत्सर्गास्तावन्त एव कर्तव्या न तेषां हानिर्वृद्धिर्वा कार्या इति ॥ १७३ ॥

भत्ती तवोधियम्हि[2] य तवम्हि अहीलणा य सेसाणं।
एसो तवम्हि विणओ जहुत्तचारित्तसाहुस्स ॥ १७४ ॥

भक्तिः स्तुतिपरिणामः सेवा वा। तपसाधिकस्तपोऽधिकः तस्मिंस्तपोधिके। आत्मनोऽधिकतपसि तपसि च द्वादशविधतपोऽनुष्ठाने च भक्तिरनुरागः। शेषाणामनुत्कृष्टतपसामहेलना अपरिभवः। एष तपसि विनयः सर्वसंयतेषु प्रणामवृत्तिर्यथोक्तचारित्रस्य साधोर्भवति ज्ञातव्य इति ॥ १७४ ॥

आगै तपोविनय का स्वरूप प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—आतापनादि उत्तरगुणनि विषैं उद्योग कहिए उत्साह, बहुरि सम्यगध्यासनं कहिए आपातनादि योगकरि कीया श्रम ताकौं निराकुलता करि सहनां बहुरि श्रद्धा कहिए तिनि उत्तरगुणनिकूं करता भला परिणाम। बहुरि समता, स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग उचित कर्मक्षय के निमित्त परिणाम रूप तिनिकी हानि नांही करनी, वृद्धि हू नांही करनी। आवश्यक छह ही करनैं, च्यारि तथा पांच नांही करनैं, सात आठ हूं नांही करनैं। जिस आवश्यक की जो वेला होय, तिस ही वेला सो आवश्यक करनां। अन्य वेला नांही करनां। तथा जिस आवश्यक के जेते कायोत्सर्ग कहे हैं, ते ही करनैं, घाटि-वाधि (घट-बढ़) नांही करनें ॥ १७३ ॥

बहुरि कहै है—

अर्थ—तपोधिक कहिए—आप तैं अधिक तपश्चरण करने वालैं महामुनि तिनिकै विषैं भक्ति कहिए स्तुति रूप परिणाम अथवा तिनिकी सेवा करनी तथा बारह प्रकार तप का आचरण विषै भक्ति कहिए अनुराग, बहुरि शेष कहिए जिनितैं उत्कृष्ट तप नांही वणै—अैसे मुनि तिनिकी अवहेलना कहिए, पराभव नांहो करनां। सर्व संयमीनिकूं नमस्कार करनां, नम्रीभूत रहनां सो यहु तप विनय यथोक्त चारित्र पालनैं वाले साधु कै होय है—अैसा जाननां ॥ १७४ ॥

१. अ. आवासणाय, ब. आवासदाण।   २. क °म्हि अ°।

पंचमौपचारिकविनयं प्रपंचयन्नाह—

काइयवाइयमाणसि ओ त्ति अ तिविहो दु पंचमो विणओ ।
सो पुण सव्वो दुविहो पच्चक्खो तह परोक्खो य ।। १७५ ।।

काये भवः कायिकः । वाचि भवो वाचिकः । मनसि भवो मानसिकः । त्रिविधस्त्रिप्रकारस्तु पंचमो विनयः । स्वर्गमोक्षादीन् विशेषेण नयतीति विनयः । कायाश्रयो वागाश्रयो मानसाश्रनश्चेति । स पुनः सर्वोऽपि कायिको वाचिको मानसिकश्च द्विविधो द्विप्रकारः प्रत्यक्षश्चैव परोक्षश्च । गुरोः प्रत्यक्षश्चक्षुरादिविषयः । चक्षुरादिविषयादतिक्रान्तः परोक्ष इति ।। १७५ ।।

कायिकविनयस्वरूपं दर्शयन्याह—

अब्भुट्ठाणं किदिअम्मं णमणं[2] अंजलीय मुंडाणं ।
पच्चूगच्छणमेत्ते पछिदस्सण साहणं चेव ।। १७६ ।।

अभ्युत्थानमादरेणासनादुत्थानं । **क्रियाकर्म** सिद्धभक्तिश्रुतभक्तिगुरुभक्तिपूर्वकं कायोत्सर्गादिकरणं । नमनं शिरसा प्रणामः । अञ्जलिना करकुंडलेनाञ्जल्किरणं वा मुण्डानामृषीणां । अथवा मुण्डा सामान्यवन्दना । **पचूगच्छणमेत्ते**—आगच्छतः प्रतिगमनमभिमुखयानं । प्रस्थितस्य प्रयाणके व्यवस्थितस्यानुसाधनं चानुव्रजनं च साधूनामादरः कार्यः । तथा तेषामेव क्रियाकर्म कर्तव्यम् । तथा तेषामेव कृताञ्जलिपुटेन नमनं कर्तव्यं । तथा साधोरागतस्य प्रत्यभिमुखगमनं कर्तव्यं तथा तस्यैव प्रस्थितस्यानुव्रजनं कर्त्तव्यमिति ।। १७६ ।।

आगैं पाँचमां औपचारिक विनय है ताहि विस्तारकरि कहै हैं—

अर्थ—काय विषैं होय सो कायिक कहिए, वचन विषैं होय सो वाचिक कहिए, मन विषैं होय सो मानसिक कहिए। अैसे औपचारिक विनय है सो तीनि प्रकार है—स्वर्गमोक्षादिक है ताहि विशेष करिकैं प्राप्ति करै सो विनय कहिए। सो यहु विनय कायाश्रय, वचनाश्रय, मानसाश्रय—अैसे तीनि प्रकार है, सो गुरुनिकैं चक्षु आदि विषय होय तब प्रत्यक्ष कहिए। चक्षुरादि विषय नांही होय, गुरुनि कौ साक्षात् न होतै हूँ करि करिए सो परोक्ष विनय कहिए। अैसें दोय प्रकार जाननां ।। १७५ ।।

आगैं कायिक-विनय का स्वरूप दिखावता संता कहै है—

अर्थ—अभ्युत्थानं कहिए आदरकरि आसनतैं उठनां। कृतिकर्म्म कहिए सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, गुरुभक्ति पूर्वक कायोत्सर्गादिक करणा। नमन कहिए अंजलिकरि हाथ जोडि मस्तककरि नमस्कार करनां अथवा अंजलिकरणं। मुंड कहिए ऋषीश्वरनिकूं अथवा मुंडा कहिए सामान्य वंदना कूं अर आवतनिकैं सनमुख जानां, जातैंनिकी लार पौचानैं कूं लार (पीछे) जानां। अैसे कायकरि साधूनिका आदर करनां ।। १७६ ।।

---

१. अ. ख. माणसिय उत्ति । २. माणिकचंद्र–णवणं ।

तथा—

णीचं ठाणं णीचं गमणं णीचं च आसणं सयणं ।
आसणदाणं उवगरणदाणं ओगासदाणं च ।। १७७ ।।

देवगुरुभ्यः पुरतो नीचं स्थानं वामपार्श्वे स्थानं । नीचं च गमनं गुरोर्वामपार्श्वे पृष्ठतो वा गन्तव्यं । नीचं च न्यग्भूतं चासनं पीठादिवर्जनं । गुरोरासनस्य पीठादिकस्य दानं निवेदनं । उपकरणस्य पुस्तिकाकुंडिकापिच्छिकादिकस्य प्रासुकस्यान्विष्य दानं निवेदनं । अथवा नीचं स्थानं करचरणसंकुचितवृत्तिर्गुरोः सधर्मणोऽन्यस्य वा व्याधितस्येति ।। १७७ ।। तथा—

पडिरूवकायसंफासणदा य पडिरूपकालकिरिया य ।
पेसणकरणं संथरकरणं उवकरण[1] पडिलिहणं ।। १७८ ।।

प्रतिरूपं शरीरबलयोग्यं कायस्य शरीरस्य संस्पर्शनं मर्दनमभ्यंगनं वा । **प्रतिरूपकालक्रिया** चोष्णकाले शीतक्रिया शीतकाले उष्णक्रिया वर्षाकाले तद्योग्यक्रिया । **प्रेष्यकरणं**—आदेशकरणं । **संस्तरकरणं** पट्टकादिप्रस्तरणं । उपकरणानां पुस्तिकाकुण्डिकादीनां प्रतिलेखनं सम्यग्निरूपणम् ।। १७८ ।।

इच्चेवमादिओ जो उवयारो कीरदे सरीरेण ।
एसो काइयविणओ जहारिहं साहुवग्गस्स ।। १७९ ।।

बहुरि कायविनय का विशेष कहै है—

अर्थ—देवगुरु तैं पीछै खड़ा रहना तथा वावैं (वायें) वसवाडै खड़ा रहना तथा गुरुनिकै पीछै गमन करनां । अथवा वावैं (वायें) पसवाडै गमन करनां । बहुरि गुरुनितैं नीचा बैठना, पीठा आदिक परि नांही बैठनां । नीचा सोवनां । गुरुनिकूं पीठादिक आसन देनां, बताय देनां । पुस्तक, कमण्डलु, पीछी, आदिक धर्मोपकरण देनां । वसतिका, पर्वत-गुफादिक, प्रासुक देखिकरि देनां, बताय देनां । गुरुनिकै समीप, साधर्मीकै समीप अथवा अन्य रोगादिक-करि सहित कै समीप हाथ-चरण संकोचिकरि बैठना । ये सर्व कायविनय के विशेष हैं ।।१७७ ।।

बहुरि कहै हैं—

अर्थ—शरीर का बल कै अनुकूल शरीर का संस्पर्शन, मर्दन, अभ्यंगन । बहुरि प्रतिरूप कालक्रिया कहिए उष्णकाल विषैं शीतक्रिया, शीतकाल विषैं उष्णक्रिया । वर्षाकाल विषै ताके योग्य क्रिया । बहुरि प्रेष्यकरणं कहिए उनकी आग्या (आज्ञा) होय सो ही करणां । बहुरि संस्तरकरणं कहिए पट्टिकादि संथरा (संस्तर-विछावन) करि देणां, उपकरण-प्रतिलेखन कहिए पुस्तक, पिच्छिकादिक उपकरणनिका भलै प्रकार सोधि देनां ।। १७८ ।। बहुरि—

---

१. अ. ब. ख. संथारकरणुवकरण ।

इत्येवमादिरूपकारो गुरोरन्यस्य वा साधुवर्गस्य यः शरीरेण क्रियते यथायोग्यं स एष कायिको विनयः कायाश्रितत्वादिति ॥ १७९ ॥

वाचिकविनयस्वरूपं विवृण्वन्नाह—

पूयावयणं हिदभासणं[1] मिदभासणं च मधुरं च ।
सुत्ताणुवीचिवयणं अणिट्ठुरमकक्कसं वयणं ॥ १८० ॥

पूजावचनं बहुवचनोच्चारणं यूयं भट्टारका इत्येवमादि । हितस्य पथ्यस्य भाषणं इहलोकपरलोकधर्मकारणं वचनं । मितस्य परिमितस्य भाषणं चाल्पाक्षरबह्वर्थं । मधुरं च मनोहरं श्रुतिसुखदं । सूत्रानुवीचिवचनमागमदृष्ट्या भाषणं यथा पापं न भवति । अनिष्ठुरं दग्धमृतप्रलीनेत्यादिशब्दै रहितं । अकर्कशं वचनं च वर्जयित्वा वाच्यमिति ॥ १८० ॥

उवसंतवयणमगिहत्थवयणमकिरियमहीलणं वयणं ।
एसो वाइयविणओ जहारिहं होदि कादव्वो ॥ १८१ ॥

उपशान्तवचनं क्रोधमानादिरहितं । अगृहस्थवचनं गृहस्थानां मकारवकारादि यद्वचनं तेन रहितं बन्धनत्रासनताडनादिवचनरहितं । अकिरियं असिमसिकृष्यादिक्रिया (दि) रहितं अथवा सक्रियमिति पाठः । सक्रियं क्रियायुक्तमन्यच्चिन्तान्यदोषयोरिति न वाच्यं, तदुच्यते तन्निष्पाद्यते । अहोलं—अपरिभववचनं । इत्येवमादिवचनं यत्र स एष वाचिको विनयो यथायोग्यं भवति कर्तव्य इति ॥ १८१ ॥

अर्थ—इत्यादिक गुरुनिका तथा अन्य साधु-समूह का जो शरीरकरि यथायोग्य उपकार करिए सो यह कायाश्रित पणांतैं कायिकविनय जाणनां ॥ १७९ ॥

आगै वाचिकविनय का स्वरूप है, ताहि विवरण करता संता कहै हैं—

अर्थ—पूजा वचन कहिए बहुवचन करि उच्चारण करनां । 'आप भट्टारक हो—इत्यादिक उच्चवचन कहनैं । बहुरि हित भाषण कहिए, हितरूप, पथ्यरूप इहलोक-परलोक विषैं धर्म का कारण—अैसा वचन कहनां । बहुरि मितभाषणं कहिए परिणाम रूप अल्प अक्षरनि मैं बहुत अर्थ कहनां । बहुरि मधुरं कहिए, मनोहर काननिकूं सुखदाई अैसा वचन कहनां । बहुरि सूत्रानुवीची वचनं कहिए आगम कै अनुसारि वचन कहनां, जैसे पाप नांही होय । बहुरि अनिष्ठुरं कहिए—'दग्ध, मृत, प्रलीन' इत्यादिक निष्ठुर शब्दनिकरि रहित वचन बोलनैं । बहुरि अकर्कशं कहिए काम-कर्कश, रण-कर्कश-इत्यादिक कर्कश वचनकरि रहित बोलना ॥ १८० ॥ बहुरि—

अर्थ—उपशांत वचन कहिए क्रोधमानादिक करि रहित बोलनां । बहुरि अगृहस्थवचन कहिए चकार मकारादि वचन रहित, वंधन, त्रासन, ताडन इत्यादिक जैसे वचन गृहस्थ बोलै हैं, तैसे नांही बोलनां । बहुरि अक्रियं कहिए असि, मसि, कृषि इत्यादिक जो क्रिया तिनिकरि रहित अथवा सक्रियं अैसा हू पाठांतर है । क्रिया-युक्त वचन बोलनां अन्य की चिंता, अन्य का दोष नांही कहनां । जो वचन बोलनां सो ही करनां । बहुरि अहोलनं कहिए परिभव वचन, अपमान रूप वचन नांही बोलना । सो

१. अ. ब. ख. हिदभासणं च ।

मानसिकविनयस्वरूपमाह—

पापविसोत्तिअपरिणामवज्जणं पियहिदे य परिणामो ।
णादव्वो संखेवेणेसो माणसिओ विणओ ॥ १८२ ॥

पापविश्रुतिपरिणामवर्जनं पापं हिंसादिकं विश्रुतिः सम्यग्विराधना तयोः परिणामस्तस्य वर्जनं परिहारः । प्रिये धर्मोपकारे हिते च सम्यग्ज्ञानादिके च परिणामो ज्ञातव्यः । संक्षेपेण स एष मानसिकश्चित्तोद्भवो विनय इति ॥ १८२ ॥

इय एसो पच्चक्खो विणओ पारोक्खिओवि जं गुरुणो ।
विरहम्मिवि वट्टिज्जदि आणाणिद्देसचरियाए ॥ १८३ ॥

इत्येष प्रत्यक्षविनयः कायिकादिः, गुर्वादिषु सत्सु वर्तते यतः, पारोक्षिकोऽपि विनयो यद्गुरोर्विरहेऽपि गुर्वादिषु परोक्षीभूतेषु यद्वर्तते । आज्ञानिर्देशेन चर्याया वार्हद्भट्टारकोपदिष्टेषु जीवादिपदार्थेषु श्रद्धानं कर्तव्यं तथा तैर्या चर्योद्दिष्टा व्रतसमित्यादिका तया च वर्तनं परोक्षो विनयः । तेषां प्रत्यक्षतो यः क्रियते स प्रत्यक्षमिति ॥ १८३ ॥

पुनरपि त्रिविधं विनयमन्येन प्रकारेणाह—

अह ओपचारिओ खलु विणओ तिविहो समासदो भणिओ ।
सत्त चउव्विह दुविहो बोधव्वो आणुपुव्वीए ॥ १८४ ॥

अथौपचारिको विनय उपकारे धर्मादिकपरचित्तानुग्रहे भव औपचारिकः खलु स्फुटं त्रिविधस्त्रिप्रकारः कायिकवाचिकमानसिकभेदेन

यहु वाचिक विनय है । सो यथायोग्य करनां ॥ १८१ ॥

आगैं मानसिक विनय का स्वरूप कहैं हैं—

अर्थ—पाप कहिए हिंसादिक, विश्रुति कहिए सम्यक्त्व की विराधना—इनि विषैं जो परिणाम ताका परिहार करनां । बहुरि प्रिय कहिए धर्मोपकार में हित में, सम्यक्त्व ज्ञानादिक तिनिके विषैं परिणाम सो यह संक्षेपकरि मानसिक-विनय कह्या है ॥ १८२ ॥ बहुरि कहै हैं—

अर्थ—अैसे यहु कायकादिकविनय, गुरु आदिक कूं प्रत्यक्ष विद्यमान होत संतैं करिए सो प्रत्यक्षविनय कहिए। बहुरि जो गुरुनि का विरह होतैं उनकौ परोक्ष होतैं जो कायिकादिक विनय वर्तै अथवा उनकी आज्ञा निर्देश करि जो अर्हंत भट्टारक नैं उपदेशे जीवादिक पदार्थ हैं, तिनि विषै श्रद्धान करना, तिनिनैं जो व्रत, समिति आदि रूप चर्या उपदेशी है, ताकरि प्रवर्तनां सो यहु परोक्षविनय है ॥ १८३ ॥

आगै त्रिविधि विनय अन्य प्रकार करिकैं कहै है—

अर्थ—बहुरि उपचारिक कहिए धर्मात्मा के चित्त का अनुग्रह निमित्त भया अैसा जो विनय है सो प्रगटपणे संक्षेप थकी

समासतः संक्षेपतो भणितः कथितः। सप्तविधश्चतुर्विधो द्विविधो बोद्धव्यः। आनुपूर्व्यानुक्रमेण कायिकः सप्तप्रकारो वाचिकश्चतुर्विधः मानसिको द्विविध इति ॥ १८४ ॥

कायिकविनयं सप्तप्रकारमाह—

अब्भुट्ठाणं सण्णदि आसणदाणं अणुप्पदाणं च।
किदियम्मं पडिरूवं आसणचाओ य अणुव्वजणं ॥ १८५ ॥※

अभ्युत्थानम् आदरेणोत्थानं। **सन्नतिः** शिरसा प्रणामः। **आसनदानं** पीठाद्युपनयनं। **अनुप्रदानं** च पुस्तकपिच्छिकाद्युपकरणदानं। **क्रियाकर्म** श्रुतभक्त्यादिपूर्वककायोत्सर्गः **प्रतिरूपं** यथायोग्यं, अथवा शरीरप्रतिरूपं कालप्रतिरूपं भावप्रतिरूपं च क्रियाकर्म शीतोष्णमूत्रपुरीषाद्यपनयनं। **आसनपरित्यागो** गुरोः पुरत उच्चस्थाने न स्थातव्यं। **अनुव्रजनं** प्रस्थितेन सह किंचिद्गमनमिति। अभ्युत्थानमेकः सन्नतिर्द्वितीय आसन-

---

कायिक, वाचिक, मानसिक भेदतैं तीन प्रकार कह्या है सो अनुक्रमकरि कायिक-विनय सात प्रकार, वाचिक-विनय च्यारि प्रकार, मानसिक विनय दोय प्रकार जाननां ॥ १८४ ॥

आगै कायिक-विनय सात प्रकार कैसे है ? सो कहै है—

अर्थ—अभ्युत्थानं कहिये आदरकरि उठावनां—येक तौ यहु। बहुरि सन्नति कहिए मस्तककरि नमस्कार करनां—दूसरा यहु। बहुरि आसनदान कहिए पीठादिक देनें—तीसरा यहु। बहुरि अनुदानं कहिए पुस्तक, पिच्छी इत्यादिक उपकरण देनां—चौथा यहु। बहुरि प्रतिरूप कृतिकर्म कहिये यथायोग्य श्रुत भक्त्यादि पूर्वक क्रियाकर्म्म, कायोत्सर्ग करना। अथवा शरीर-प्रतिरूप, काल-प्रतिरूप, भाव-प्रतिरूप, क्रियाकर्म, शीत, उष्ण, मूत्रपुरीष इत्यादिक बाधा का मेटनां—यहु पांचवा प्रकार है। बहुरि आसनत्याग

※ फलटन से प्रकाशित में ये गाथाएँ इसके पहले हैं। ये गाथाएँ मूल में नहीं हैं—

उपचार विनय के दो भेदों का वर्णन—

अहवोवचारिओ खलु विणओ दुविहो समासदो होदि।
पडिरूवकालकिरियाणासादणसीलदा चेव ॥
पडिरूवो काइगवाचिगमाणसिगो दु बोधव्वो।
सत्त चदुव्विह दुविहो जहाकमं होदि भेदेण ॥

अर्थात् धर्मात्मा के चित्त पर अनुग्रह करने वाला औपचारिक विनय संक्षेप से दो प्रकार का है। प्रतिरूप-कालक्रिया-विनय—गुरुओं के अनुरूप काल आदि को देखकर क्रिया अर्थात् भक्ति-सेवा आदि करना। अनासादनशीलता विनय—आचार्यों आदि की निन्दा नहीं करने का स्वभाव होना, ऐसे दो भेद हैं। प्रतिरूपविनय कायिक, वाचिक और मानसिक भेद से तीन प्रकार का है। कायिकविनय सात प्रकार का, वाचिक चार प्रकार का और मानसिक विनय दो प्रकार का है।

दानं तृतीयः अनुप्रदानं चतुर्थः प्रतिरूपक्रियाकर्म पंचमः आसनत्यागः षष्ठोऽनुव्रजनं सप्तमः प्रकारः कायिकविनयस्येति ।। १८५ ।।

वाचिकमानसिकविनयभेदानाह—

हिदमिदपरिमिदभासा अणुवीचीभासणं च बोधव्वं ।
अकुसलमणस्स रोधो कुसलमणपवत्तओ चेव ।। १८६ ।।❀

हितभाषणं मितभाषणं परिमितभाषणमनुवीचिभाषणं च । हितं धर्मसंयुक्तं । मितमल्पाक्षरं बह्वर्थं । परिमितं कारणसहितं । अनुवीची-भाषणमागमाविरुद्धवचनं चेति चतुर्विधो वचनविनयो ज्ञातव्यः । तथाऽ**कुशलमनसो रोधः** पापादानकारकचित्तनिरोधः । **कुशलमनसो**धर्मप्रवृत्त-चित्तस्य **प्रवर्तकश्चेति** द्विविधो मनोविनय इति ।। १८६ ।।

स एवं द्विविधो विनयः साधुवर्गेण कस्य कर्तव्य इत्याशंकायामाह—

रादिणिए उणरादिणिएसु अ अज्जासु चेव गिहिवग्गे ।
विणओ जहारिओ सो कायव्वो अप्पमत्तेण ।। १८७ ।।

रादिणिए—रात्र्यधिके दीक्षागुरौ श्रुतगुरौ तपोधिके च । **उणरादिणिएसु य**—ऊनरात्रिकेषु च तपसा कनिष्ठेषु गुणकनिष्ठेषु वयसा

कहिए गुरुनिके आगैं ऊंचै स्थान नांही बैठना—यहु छठा प्रकार है। बहुरि अनुव्रजन कहिए चालतैं केतीक दूरि तांई साथ जानां—यहु सातवां प्रकार है। अैसे कायिक-विनय सात प्रकार कहै ।। १८५ ।।

आगैं वाचिक, मानसिक-विनय भेदनिकौं कहै है—

अर्थ—हित कहिए हितरूप धर्म-संयुक्त वचन बौले, मित कहिए अल्प अक्षर, जिनिमैं अर्थ बहुत—अैसा वचन बोलै तथा परिमित कहिए कारण सहित वचन बौले, बहुरि अनुवीचि भाषण कहिए आगमतैं अविरुद्ध वचन बौलै—अैसे वचन-विनय च्यारि प्रकार जाननां। बहुरि मानसिक विनय दोय प्रकार है—१. अकुशलमनः—पापग्रहण करावनैं वाला चित्त, ताका रोकनां। बहुरि २. कुशलमनः कहिए धर्म्म विषैं प्रवर्त्या चित्त, ताका प्रवर्तावनां—अैसे दोय प्रकार मानसिक विनय है ।। १८६ ।।

सो यहु विनय साधु वर्ग कौन का करैं ? अैसी आशंका होतै संतै कहै है—

अर्थ—रात्र्याधिक कहिए दीक्षा गुरु, श्रुत-गुरु, तपोधिक। बहुरि ऊनरात्रिक कहिए तपकरि घटते (लघु), गुणकरि घटते,

---

❀ फलटन से प्रकाशित में कुछ अन्तर है—

हिदमिदमद्दवअणुवीचिभासणो वाचिगो हवे विणओ ।
असुहमणसण्णिरोहो सुहमणसंकप्पगो तदिओ ।।

अर्थात् हितभाषण, मितभाषण, मृदुभाषण और आगम के अनुकूल भाषण यह वाचिक विनय है। अशुभमन का निरोध करना और शुभ में मन लगाना—ये दो मानसिक विनय के भेद हैं।

कनिष्ठेषु च साधुषु । **अज्जासु**—आर्यिकासु । **गिहिवग्गे**—गृहिवर्गे श्रावकलोके च । **विनयो यथार्हो** यथायोग्यः कर्तव्यः । **अप्रमत्तेन** प्रमादरहितेन । साधूनां यो योग्यः आर्यिकाणां यो योग्यः, श्रावकाणां यो योग्यः, अन्येषामपि यो योग्यः स तथा कर्तव्य, केन ? साधुवर्गेणाप्रमत्तेनात्मतपोऽनुरूपेण प्रासुकद्रव्यादिभिः स्वशक्त्या चेति ॥१८७॥

किमर्थं विनयः क्रियते इत्याशंकायामाह—

विणयेण विप्पहीणस्स हवदि सिक्खा णिरत्थिया सव्वा ।
विणओ सिक्खाए फलं विणयफलं सव्वकल्लाणं ॥ १८८ ॥

विनयेन विप्रहीणस्य विनयरहितस्य भवति शिक्षा श्रुताध्ययनं **निरर्थिका** विफला सर्वा सकला विनयः पुनः शिक्षा या विद्याध्ययनस्य फलं, विनयफलं सर्वकल्याणान्यभ्युदयनिःश्रेयससुखानि । अथवा स्वर्गावतरणजन्मनिष्क्रमणकेवलज्ञानोत्पत्तिपरिनिर्वाणादीनि कल्याणादीनीति ॥ १८८ ॥

विनयस्तवमाह—

विणओ मोक्खद्दारं विणयादो संजमो तवो णाणं ।
विणएणाराहिज्जदि आइरिओ सव्वसंघो य ॥ १८९ ॥

विनयो मोक्षस्य द्वारं प्रवेशकः । विनयात्संयमः । विनयात्तपः । विनयाच्च ज्ञानं । भवतीति सम्बन्धः । विनयेन चाराध्यते आचार्यः सर्वसंघश्चापि ॥ १८९ ॥

अवस्था करि घटते—अैसे साधु, तिनि विषैं । बहुरि आर्यिकानि विषैं, बहुरि गृही वर्ग कहिए श्रावक लोक, तिनि विषैं यथायोग्य विनय प्रमाद-रहित साधु कूं करने योग्य है । साधुनि कै योग्य-साधुनि का विनय करनां, आर्यिकानि के योग्य आर्यिकानि का विनय करना, श्रावकानि के योग्य श्रावकनि का विनय करना । अन्य के योग्य होय सो अन्य का करना । अपने तप के अनुरूप प्रासुक द्रव्यादिकरि अर शक्ति करि करनां ॥ १८७ ॥

आगैं विनय किस प्रयोजन कै अर्थि करिए ? अैसी आशंका होतै संतै कहै है—

अर्थ—जो विनय करि रहित है ताका शास्त्र अध्ययन करनां सर्व निरर्थक-विफल जाननां । जातै शिक्षा, जो विद्या का अध्ययन, ताका फल विनय है । बहुरि विनय का फल सर्वकल्याण कहिए अभ्युदय तिस के सुख हैं । अथवा स्वर्गावतरण, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञानोत्पति, निर्वाण—अैसे पंचकल्याणक हैं सो विनय का फल है ॥ १८८ ॥

बहुरि विनय का स्तवन करैं है—

अर्थ—विनय है सो मोक्ष का द्वार कहिये प्रवेश करावने वाला है । बहुरि विनयतैं संयम होय है । विनयतैं तप होय है, विनयतैं ज्ञान होय है, विनयकरि आचार्यनि को आराधना होय है, सर्वसंघ की आराधना होय है ॥ १८९ ॥

आयारजीदकप्पगुणदीवणा अत्तसोधि णिज्जंजा[1] ।
अज्जवमद्दवलाहवभत्तीपल्हादकरणं च ॥ १९० ॥

आचारस्य गुणा जीद (त) प्रायश्चित्तस्य कल्पप्रायश्चित्तस्य गुणास्तद्गतानुष्ठानानि तेषां दीपनं प्रकटनं । आत्मशुद्धिश्चात्मकर्मनिर्मुक्तिः । निर्द्वन्द्वः कलहाद्यभावः । ऋजोर्भाव आर्जवं स्वस्थता, मृदो भावो मार्द्रवं मायामानयोर्निरासः । लघोर्भावो लाघवं निःसंगता लोभनिरासः । भक्तिगुरुसेवा । प्रह्लादकरणं च सर्वेषां सुखोत्पादनं । यो विनयं करोति तेनाचरजीदकल्पविषया ये गुणास्ते दीपिता उद्योतिता भवंति । आर्जवमार्दवलाघवभक्तिप्रह्लादकरणानि च भवंति विनयकर्तुरिति ॥ १९० ॥

कित्ती मित्ती[2] माणस्स भंजणं गुरुजणे य बहुमाणं ।
तित्थयराणं आणा गुणाणुमोदो य विणयगुणा ॥ १९१ ॥

कीर्तिः सर्वव्यापी प्रतापः ख्यातिश्च । मैत्री सर्वैः सह मित्रभावः । मानस्य गर्वस्य भंजनमामर्दनं । गुरुजने च बहुमानं पूजाविधानं । तीर्थंकराणामाज्ञा पालिता भवति । गुणानुमोदश्च कृतो भवति । एते विनयगुणा भवन्तीति । विनयस्य कर्ता कीर्तिं लभते । तथा मैत्रीं लभते । तथात्मनो मानं निरस्यति । गुरुजनेभ्यो बहुमानं लभते । तीर्थंकराणामाज्ञां च पालयति । गुणानुरागं च करोतीति ॥ १९१ ॥

वैयावृत्यस्वरूपं निरूपयन्नाह—

आइरियादिसु पंचसु सबालवुड्ढाउलेसु गच्छेसु ।
वेज्जावच्चं वुत्तं कादव्वं सव्वसत्तीए ॥ १९२ ॥

आगैं बहुरि विनय के गुण कहै हैं—

अर्थ—आचार के गुण, जीद (जीत)–प्रायश्चित के गुण, कल्प-प्रायश्चित्त के गुण—जो तिनि विषै प्राप्त आचरण हैं, तिनका दीपन कहिए प्रगटपनां, बहुरि आत्मशुद्धि कहिए आत्मा के कर्मतै छूटनां, बहुरि निर्द्वंद कहिए कलहादिक का अभाव, बहुरि ऋजु का भाव सो आर्ज्जव, मार्दव कहिए कोमलभाव, माया-मान का निराकरण लाघव कहिए, लघुभाव-निःसंगता लोभ का निरास, भक्ति कहिए गुरुनिकी सेवा, प्रल्हादकरण कहिए सर्व कै सुख उपजावनां—ये विनय के गुण हैं। जो विनय करै हैं, तातैं ये गुण प्रगट होय हैं ॥ १९० ॥

बहुरि विनय के गुण कहै है—

अर्थ—कीर्ति कहिये सर्वव्यापि प्रताप अथवा ख्याति । बहुरि मैत्री कहिए सर्वप्राणीनि करि सहित मित्रता होय । बहुरि मान कहिए गर्व, ताका भंजन कहिए निराकरण होय, बहुरि गुरुजन जे आचार्यादिक, तिनितैं बहुमान पावैं, बहुरि तीर्थंकरनि की आज्ञा पालैं, बहुरि गुणनि की अनुमोदनां करै, गुणनितैं अनुराग करैं । विनय करने वाले कैं—येतैं गुण प्रगट होय । अैसे विनय के गुण कहे ॥ १९१ ॥

---

१. ख. णिस्संका । २. अ. ब. मेत्ती ।

आचार्योपाध्यायस्थविरप्रवर्तकगणधरेषु पंचसु । बाला नवकप्रव्रजिताः । वृद्धा वयोवृद्धास्तपोवृद्धा गुणवृद्धास्तैराकुलो गच्छस्तथैव बालवृद्धाकुले गच्छे सप्तपुरुषसन्ताने । वैयावृत्यमुक्तं यथोक्तं कर्तव्यं सर्वशक्त्या सर्वसामर्थ्येन उपकरणाहारभैषजपुस्तकादिभिरुपग्रहः कर्तव्य इति ॥ १९२ ॥

पुनरपि विशेषार्थं श्लोकेनाह—

गुणाधिए उवज्झाए तवस्सि सिस्से य दुव्वले[1] ।
साहुगण कुले संघे समणुण्णे य चापदि ॥ १९३ ॥

गुणैरधिको गुणाधिकस्तस्मिन् गुणाधिके । उपाध्याये श्रुतगुरौ । तपस्विनि कायक्लेशपरे । शिक्षके शास्त्रशिक्षणतत्परे दुःशीले वा दुर्बले व्याध्याक्रान्ते वा । साधुगणे ऋषियतिमुन्यनगारेषु । कुले [2]शुक्रकुले स्त्रीपुरुषसन्ताने । संघे चातुर्वर्ण्ये श्रमणसंघे । समनोज्ञे सुखासीने सर्वोपद्रवरहिते । आपदि चोपद्रवे संजाते वैयावृत्यं कर्तव्यमिति ॥ १९३ ॥

कैः कृत्वा वैयावृत्यं कर्तव्यमित्याह—

सेज्जोग्गासणिसेज्जो तहोवहिपडिलेहणा[3] हि उवग्गहिदे ।
आहारोसहवायण विकिंचणं वंदणादीहिं[4] ॥ १९४ ॥

आगै वैयावृत्य के स्वरूप कौ निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ—आचार्यादिक कहिए आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणधर—ऐसे पंच प्रकार, तिनिकै विषै। बहुरि बाल कहिए नवीनदीक्षित, वृद्ध कहिए अवस्था करि बड़े तथा तपकरि बड़े तथा गुणकरि बड़े, तिनि करि व्याप्त जो गच्छ कहिये सप्त पुरुषनि का संतान ताकै विषै वैयावृत्य कह्या है सो सर्व शक्ति करिकैं सर्व अपनी सामर्थ्य प्रगट करि उपकरण, आहार, भेषज, पुस्तक-इत्यादिक करि उपकार करणां ॥ १९२ ॥

बहुरि विशेष प्राकृत श्लोक करि कहै है—

अर्थ—गुणाधिक कहिए-गुणनिकरि अधिक, तिनि विषैं, बहुरि उपाध्याय कहिये पढ़नैं-पढावनै के अधिकारी श्रुतगुरु तिनिकै विषै। बहुरि तपस्वी कहिए कायक्लेश कै विषै तत्पर तपश्चरणा करणे वाले, तिनि विषैं, बहुरि शिष्य के कहिये शास्त्र सीखनै विषै तत्पर—ऐसे शिष्यजन अथवा दुःशील कहिये दुष्ट परिणामी तिनिकै विषै। बहुरि दुर्बल कहिए रोगकरि पीड़ित तिनि विषै, बहुरि साधुगण कहिए ऋषि, यति, मुनि, अनगार—ऐसे च्यारि प्रकार साधु-समूह, तिनि विषै। बहुरि कुल कहिए अपनां गुरुकुल, तीन पुरुषनिका संतान ताकै विषै। बहुरि संघे कहिए चातुर्वर्ण संघकै विषैं, समनोज्ञ कहिए मनोज्ञ सुखासीन सर्व उपद्रव रहित, ताकै विषै। बहुरि आपदि कहिये उपद्रव कूं होत संतै वैयावृत्य करनां योग्य है ॥ १९३ ॥

---

१. अ. ब. तवस्सि सेहे दुव्वले । २. क कुले गुरुकुले । 'कुले—शुक्रकुले स्त्रीपुरुषसन्ताने' इति पाठान्तरम् ।
३. अ. ब. उवहिपडिलिहणाउवगाहिदे । ४. अ. ब. क °दीणं ।

शय्यावकाशो वसतिकावकाशदानं निषद्याऽऽसनादिकं । **उपधिः** कुण्डिकादि । **प्रतिलेखनं** पिच्छिकादिः । इत्येतैरुपग्रह **उपकारः** । अथवैतैरुपगृहीते स्वीकृते । तथाहारौषधवाचनाव्याख्यानविकिंचनमूत्रपुरीषादिव्युत्सर्गवन्दनादिभिः । आहारेण भिक्षाचर्यया । **औषधेन** शुंठिपिप्पल्यादिकेन । शास्त्रव्याख्यानेन । च्युतमलनिर्हरणेन । वन्दनया च । शय्यावकाशेन निषद्ययोपधिना प्रतिलेखनेन च पूर्वोक्तानामुपकारः कर्तव्यः । एतैस्ते प्रतिगृहीता आत्मीकृता भवन्तीति ।। १९४ ।।

केषु स्थानेषूपकारः क्रियतेऽत आह—

अद्धाणतेसावदरायणदीरोधणासिवे ओमे ।
वेज्जावच्चं वुत्तं संगहसारक्खणोवेदं ।। १९५ ।।

अध्वनि श्रान्तस्य । **स्तेनैः**श्चौरैरुपद्रुतस्य । **श्वापदैः** सिंहव्याघ्रादिभिः परिभूतस्य । **राजभिः** खंचितस्य । **नदीरोधेन** पीडितस्य । **अशिवेन** मारिरोगादिव्यथितस्य । **ओमे**—दुर्भिक्षपीडितस्य । **वैयावृत्यमुक्तं संगहसारक्षणोपेतं** । तेषामागतानां संग्रहः कर्तव्यः । संगृहीतस्य रक्षणं कर्तव्यं । अथचैवं सम्बन्धः कर्तव्यः । एतेषु प्रदेशेषु संग्रहोपेतं सारक्षणोपेतं च वैयावृत्यं कर्तव्यमिति । अथवा रोधशब्दाः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । पथिरोधश्चौररोधः श्वापदरोधः राजरोधो नदीरोध एतेषु रोधेषु तथा अशिवे दुर्भिक्षे च वैयावृत्यं कर्तव्यमिति ।। १९५ ।।

स्वाध्यायस्वरूपमाह—

परियट्टणाय वायण पडिच्छणाणुपेहणा य धम्मकहा ।
थुदिमंगलसंजुत्तो पंचविहो होइ सज्झाओ ।। १९६ ।।

आगै कौन से कारणनिकरि वैयावृत्य करणां, सो कहिये हैं—

अर्थ—शय्याकरि अवकाश कहिए वसतिका का अवकाश दैनैंकरि, निषद्या कहिए आसनादिक के देनेकरि, उपधि कहिए कमडंलु आदि करि, प्रतिलेखन कहिए पिच्छिकादिक करि, अथवा आहार कहिए भिक्षाचर्या करि, औषध कहिए सूंठि, पीपलि इत्यादिक करि-वाचना कहिये शास्त्र-व्याख्यान करि, विकिंचन कहिये मूत्रपुरीषादिक का व्युत्सर्ग—च्युत मल का निरहरण ताकरि। बहुरि वंदनादिक करि पूर्वैं कहै जे मुनि तिनि का उपकार करनां। यहु वैयावृत्य तप है। ऐसे उपकार करनैं तैं अपनैं होय हैं, तिनितैं एकता होय है ।। १९४ ।।

आगै कौन से स्थान विषैं उपकार करिए सो कहै है—

अर्थ—जो साधु मार्ग विषैं खेदखिन्न भया होय तथा चोरनि करि जाकूं उपद्रव भया होय तथा श्वापद कहिये नाहर, वघेरा इत्यादिक क्रूर जीवनि करि जाका परिभव भया होय अथवा राजानि करि भय भया होय। तथा नदी के रोध करि पीडित भया होय। तथा अशिव कहिये मारी रोगादिक करि व्याधि युक्त होय तथा दुर्भिक्ष करि पीडित होय, ताका वैयावृत्य कह्या है। सो संग्रह कहिए आए का संग्रह करना। संरक्षण कहिए जाका संग्रह कीया ताका रक्षण करनां। ऐसे संग्रह सारक्षण करि सहित एते स्थानकनि विषैं वैयावृत्य करनां ।। १९५ ।।

परिवर्तनं पठितस्य ग्रन्थस्यानुवेदनं । **वाचना** शास्त्रस्य व्याख्यानं । **पृच्छना** शास्त्रश्रवणं । **अनुप्रेक्षा** द्वादशानुप्रेक्षाऽनित्यत्वादि । **धर्मकथा** त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितानि । स्तुतिर्मुनिदेववन्दना मंगल इत्येवं संयुक्तः पंचप्रकारो भवति स्वाध्यायः । परिवर्तनमेको वाचना द्वितीयाः पृच्छना तृतीयोऽनुप्रेक्षा चतुर्थो धर्मकथास्तुतिमंगलानि समुदितानि पंचमः प्रकारः । एवं पंचविधः स्वाध्यायः सम्यग्युक्तोऽनुष्ठेय इति ।।१९६।।

ध्यानस्वरूपं विवृण्वन्नाह—

अट्टं च रुद्दसहियं दोण्णिवि झाणाणि अप्पसत्थाणि ।
धम्मं सुक्कं च दुवे पसत्थझाणाणि णेयाणि ।। १९७ ।।

आर्तध्यानं रौद्रध्यानेन सहितं । एते द्वे ध्याने अप्रशस्ते नरकतिर्यग्गतिप्रापके । धर्मध्यानं शुक्लध्यानं चैते द्वे प्रशस्ते देवगतिमुक्तिगतिप्रापके । इत्येवंविधानि ज्ञातव्यानि । एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमिति ।। १९७ ।।

आर्तध्यानस्य भेदानाह—

अमणुण्णजोगइट्ठविओगपरीसहणिदाणकरणेसु ।
अट्टं कसायसहियं झाणं भणिदं समासेण ।। १९८ ।।

अमनोज्ञेन ज्वरशूलशत्रुरोगादिना योगः सम्पर्कः । इष्टस्य पुत्रदुहितृमातृपितृबन्धुशिष्यादिकस्य वियोगोऽभावः । परीषहाः क्षुत्तृट्छीतोष्णादयः । निदानकरणं इहलोकपरलोकभोगविषयोऽभिलाषः । इत्येतेषु प्रदेशेष्वार्तमनःसंक्लेशः कषायसहितं ध्यानं भणितं समासेन संक्षेपतः ।

आगे स्वाध्याय तप का स्वरूप कहै है—

अर्थ—परिवर्तन कहिये पढै ग्रंथ का प्रवर्त्तावनां, वाचना कहिए शास्त्रनिका व्याख्यान करना, पृच्छना कहिये शास्त्रनि का श्रवण करना, अनुप्रेक्षा कहिये बारह भावना—अनित्यादिक का चिंतवन । धर्मकथा कहिए त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषनिके चरित्र, बहुरि स्तुति कहिए मुनि, देववंदना, मंगल इत्यादिक करि-संयुक्त । स्वाध्याय पंच प्रकार हैं—एक तो परिवर्तन, दूजी वाचना, तीजा पृच्छना, चौथा अनुप्रेक्षा, पांचवा धर्मकथा, स्तुति-मंगल इनिका समुदाय—अैसे पंच प्रकार स्वाध्याय भलै प्रकार अनुष्ठान करनां ।। १९६ ।।

आगैं ध्यान स्वरूप कूं विवरण करता संता कहै है—

अर्थ—आर्तध्यान, रौद्रध्यान करि सहित ए दोय ध्यान अप्रशस्त हैं । नरक, तिर्यंच गति के प्राप्त करणहारे हैं । धर्म्मध्यान, शुक्लध्यान ए दोय ध्यान प्रशस्त हैं । देवगति, मुक्तिगति के प्राप्त करणहारे हैं । अैसे ये च्यारि प्रकार ध्यान जाणन । एकाग्रचिंता का निरोध यहु ध्यान का लक्षण है ।। १९७ ।।

आगैं आर्त्तध्यान का भेद कहै हैं—

अर्थ—अमनोज्ञ कहिये ज्वर, शूल, शत्रु, रोग इत्यादिक करि । योग कहिए संबंध, ताकूं होतैं संतै तथा इष्ट कहिये

कदा ममानेनामनोज्ञेन वियोगो भविष्यतीत्येवं चिन्तनमार्तध्यानं प्रथमं । इष्टैः सह सर्वदा यदि मम संयोगो भवति वियोगो न कदाचिदपि स्याद्य-द्येवं चिन्तनमार्तध्यानं द्वितीयं । क्षुत्तृट्शीतोष्णादिभिरहं व्यथितः कदैतेषां ममाभावः स्यात् । कथं मयौदनादयो लभ्या येन मम क्षुधादयो न स्युः । कदा मम वेलायाः प्राप्तिः स्याद्येनाहं भुंजे पिबामि वा । हाकारं पूत्कारं जलसेकं च कुर्वतोऽपि न तेन मम प्रतीकार इति चिन्तनमार्तध्यानं तृतीय-मिति । इहलोके यदि मम पुत्राः स्युः परलोके यद्यहं देवो भवामि स्त्रीवस्त्रादिकं मम स्यादित्येवं चिन्तनं चतुर्थमार्तध्यानमिति ।। १९८ ।।

रौद्रध्यानस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

तेणिक्कमोससारक्खणेसु तध केव छव्विहारंभे ।
रुद्दं कसायसहिदं झाणं भणियं समासेण ।। १९९ ।।

स्तैन्यं परद्रव्यापहरणाभिप्रायः । मृषाऽनृते तत्परता । सारक्षणं यदि मदीयं द्रव्यं चोरयति तमहं निहन्मि, एवमायुधव्यग्रहस्तमारणा-भिप्रायः । स्तैन्यमृषावादसारक्षणेषु । तथा चैव षड्विधारम्भे पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकविराधने च्छेदनभेदनवधताडनदहनेषूद्यमः रौद्रं

पुत्र-पुत्री, माता-पिता, बंधु, शिष्य इत्यादिक तिनिका वियोग कहिए अभाव ताकूं होतैं संतै तथा परीषह कहिए क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण इत्यादिक की बाधा होतैं संतै, तथा निदानकरण कहिए इहलोक-परलोक संबंधी भोग, तिनि विषैं अभिलाष, ताकूं होते जो कषाय सहित मन का संक्लेश सो आर्तध्यान संक्षेपकरि कह्या, अैसा जाननां—

१—यहु मेरै अमनोज्ञ-अनिष्ट का संबंध है । याका वियोग कब होयगा ? या प्रकार चिंतवन करै, यहु प्रथम आर्तध्यान है । तथा

२—इष्टपदार्थनिकरि सहित मेरे सदा संबंध होहु, कदाचित् भी वियोग मति होहु या प्रकार चिंतवन करैं—यहु दूसरा आर्तध्यान है । तथा

३—क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण इत्यादिक करि मैं पीडित हौं, इनिका मेरे कब अभाव होयगा ? मैं औदनादिक कैंसे पाऊं ? जाकरि मेरे क्षुधा आदिक न होहि । मेरैं भोजन वैला की प्राप्ति कब होयगी ? जाकरि मैं भोजन-करूं पान करूं । अैसे संक्लेश करता, हाहाकार वचन करूं हूं, पुकार करूं हूं, जल सेक (सिंचन) करूं हूँ, तौहु मेरे उपशम नांही होय है—अैसा चिंतवन करै । यह तीसरा आर्तध्यान है । तथा

४—यह लोक विषैं जो मेरे पुत्र हौहि, परलोक विषैं हू देवजन्म पाऊं, स्त्री-वस्त्रादिक मेरै होय—या प्रकार चिंतवन करै । यहु चौथा आर्तध्यान है ।।१९८।।

आगै रौद्रध्यान का स्वरूप प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—स्तैन्य कहिये पैले का द्रव्य हरणैं का अभिप्राय, मृषा कहिए अनृत-असत्य वचन, ताके विषैं तत्परता । तथा सारक्षण कहिए जो मेरा द्रव्य कोऊ चौरै, ताहि मैं मारूं । अैसे आयुधकरि सहित है हस्त जाकैं—अैसे मारणै का अभिप्राय तथा पृथवी, अप्, तेज, बायु, बनस्पति, त्रस—अैसे छह प्रकार जीवनि को काय, तिनिका आरंभ विषैं विराधन, छेदन, भेदन, बंधन, वध, तपडन, दहन-इनि विषैं जो उद्यम सो यहु कषाय सहित रौद्रध्यान संक्षेप करि कह्या है ।

कषायसहितं ध्यानं भणितं । समासेन संक्षेपेण । परद्रव्यहरणे तत्परता प्रथमं रौद्रं । परपीडाकरे मृषावादे यत्नः द्वितीयं रौद्रं । द्रव्यपशुपुत्रादिरक्षण-विषये चौरदायादिमारणोद्यमे यत्नस्तृतीयं रौद्रं । तथा षड्विधे जीवमारणारम्भे कृताभिप्रायश्चतुर्थं रौद्रमिति ।। १९९ ।। ततः—

अवहट्टु अट्टरुद्दे महाभए सुग्गदीयपच्चूहे ।
धम्मे वा सुक्के वा होहि समण्णागदमदीओ ।। २०० ।।

यत एवंभूते आर्तरौद्रे । किंविशिष्टे, महाभये महासंसारभीतिदायिनि (नी) सुगतिप्रत्यूहे—देवगतिमोक्षगतिप्रतिकूले । अपहृत्य निराकृत्य । धर्मध्याने शुक्लध्याने वा भव सम्यग्विधानेन गतमतिः । धर्मध्याने शुक्लध्याने च सादरो सुष्ठु विशुद्धं मनो विधेहि समाहितमतिर्भवेति ।। २०० ।।

धर्मध्यानभेदान् प्रतिपादयन्नाह—

एयग्गेण मणं णिरुंभिऊण धम्मं चउव्विहं झाहि ।
आणापायविवायविचओ य संठाणविचयं च ।। २०१ ।।*

एकाग्रेण पंचेन्द्रियव्यापारपरित्यागेन कायिकवाचिकव्यापारविरहेण च । मनो मानसव्यापारं । निरुध्यात्मवशं कृत्वा । धर्मं चतुर्विधं चतुर्भेदं । ध्याय चिन्तय । के ते चत्वारो विकल्पा इत्याशंकायामाह—आज्ञाविचयोऽपायविचयो विपाकविचयः संस्थानविचयश्चेति ।। २०१ ।।

१-पैंला का द्रव्य हरणैं कै विषैं तत्परता यहु—प्रथम रौद्र ध्यान है । तथा २-पैलेकूं पीडा करनैं वाला जो असत्य वचन ताकै विषै यतन सौ यहु दूसरा रौद्रध्यान है। तथा ३—द्रव्य, पशु, पुत्र इत्यादिक की रक्षा कैं विषै चोर दायाद कहिये वटायत इत्यादिक कै मारनैं का उद्यम विषै यतन, यहु तीसरा रौद्रध्यान है । तथा ४—छह प्रकार जीव मारनै का कारण जो आरम्भ, ताकैं विषै किया जो अभिप्राय सो चौथा रौद्रध्यान है ।। १९९ ।।

तातैं कहा करिए ? सो कहै है—

अर्थ—जातैं आर्त, रौद्रध्यान—अैसे भेदनिकरि सहित है, संसार सम्बन्धी महाभय के दाता, सुगति जो देवगति, मोक्षगति तैं प्रतिकूल इनिका निराकरण करि धर्म्मध्यान तथा शुक्लध्यान विषैं समाधान है बुद्धि जाकी, अैसा होउ । धर्म्मध्यान, शुक्ल ध्यान के विषैं आदर सहित होहु, आतिशयकरिकैं विशुद्ध मन करहु ।। २०० ।।

आगैं धर्मध्यान के भेद प्रतिपादन करता कहै है—

अर्थ—एकाग्रता करि पांच इन्द्रियनि के व्यापार का परित्याग करि काय-संबंधी, वचन सम्बन्धी व्यापार का निवारण करि मन का व्यापारकूं रोकि अपनैं वशिकरि च्यारि प्रकार धर्म्मध्यान हैं, ताहि ध्यावो । ते च्यारि विकल्प कौन से ? अैसी आशंका होतैं कहै हैं । आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय—अैसे च्यारि प्रकार जाननां ।। २०१ ।।

---

* यही गाथा षट्खण्डागम (धवला टीका) १. ५. १. पुस्तक ४. पृ. ३१६ तथा भगवती आराधना (गाथा १७११) में भी देखिए ।

तत्राज्ञाविचयं विवृण्वन्नाह—

पंचत्थिकायछज्जीवणिकाये कालदव्वमण्णे य ।

आणागेज्झे भावे आणाविचयेण विचिणादि ॥ २०२ ॥

पंचास्तिकायाः जीवास्तिकायोऽजीवास्तिकायो धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकायो वियदास्तिकाय इति तेषां प्रदेशबन्धोऽस्तीति कृत्वा काया इत्युच्यन्ते । षड्जीवनिकायश्च पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसाः । कालद्रव्यमन्यत् । अस्य प्रदेशबन्धाभावादस्तिकायत्वं नास्ति । एतानाज्ञाग्राह्यान् भावान् पदार्थान् । आज्ञाविचयेनाज्ञास्वरूपेण । विचिनोति विवेचयति ध्यायतीति यावत् । एते पदार्थाः सर्वज्ञनाथेन वीतरागेण प्रत्यक्षेण दृष्टा न कदाचिद् व्यभिचरन्तीत्यास्तिक्यबुद्धया तेषां पृथक्पृथग्विवेचनेनाज्ञाविचयः । यद्यप्यात्मनः प्रत्यक्षबलेन हेतुबलेन वा न स्पष्टा तथापि सर्वज्ञाज्ञा-निर्देशन गृह्णाति नान्यथावादिनो जिना यत इति ॥ २०२ ॥

अपायविचयं विवृण्वन्नाह—

कल्लाणपावगाओ पाए विचिणादि जिणमदमुविच्च ।

विचिणादि वा अपाये जीवाण सुहे य असुहे य ॥ २०३ ॥

कल्याणप्रापकान् पंचकल्याणानि यैः प्राप्यन्ते तान् प्राप्यान् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि । विचिनोति ध्यायति । जिनमतमुपेत्य जैनागम-माश्रित्य । विचिनोति वा ध्यायति वा । अपायान् कर्मापगमान् स्थितिखण्डाननुभागखण्डानुत्कर्षापकर्षभेदान् । जीवानां सुखानि जीवप्रदेशसंतर्प-णानि । असुखानि दुःखानि चात्मनस्तु विचिनोति भावयतीति । एतैः कर्तव्यैर्जीवा दूरतो भवन्ति शासनात्, एतैस्तु शासनमुपढौकते, एतैः परिणामैः

आज्ञाविचय का विवरण करता संता कहै हैं—

अर्थ—पंचास्तिकाय कहिए जीवास्तिकाय, अजीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय—इनिकै प्रदेशनि का बंधान है तातैं काय कहिए है । तातैं इनि पंच अस्तिकाय हैं, तिनहि तथा षट्जीवनिकाय कहिए पृथ्वीकाय, अप्काय तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय—अैसे छहकाय हैं तिनहि, बहुरि कालद्रव्य पंचास्तिकायतैं जुदा हैं । याकै प्रदेशबंध नांही है । तातैं अस्तिकायपनां नांही है, द्रव्य (काय) संज्ञा है । ताहि ए आज्ञाग्राह पदार्थ हैं, तिनहि आज्ञास्वरूप करिकैं विचारै, विवेक करैं, ध्यावै, ये पदार्थ सर्वज्ञनाथ वीतरागनैं प्रत्यक्षज्ञानकरि देखैं हैं । इनिमैं कदाचित् व्यभिचार नांही—अैसी अस्तिकाय बुद्धिकरि तिनिका जुदा-जुदा विवेककरि यद्यपि अपनैं प्रत्यक्षबल करि तथा हेतुबल करि स्पष्ट नांही भासै हैं, तथापि सर्वज्ञ की आज्ञा का निर्देशकरि ग्रहण करैं । जिन भगवान् अन्यथावादी नांही—अैसे ध्यावै सो आज्ञाविचय कहिए ॥ २०२ ॥

आगैं अपायविचय का विवरण करता संता कहै है—

अर्थ—कल्यान कैं प्राप्त करनहारे, जिनतै पंचकल्याणक प्राप्ति होहि, अैसे उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक्-चारित्र, तिनहि जिनमत का आश्रय ल्येय ध्यावै अथवा कर्मनिका अपाय अर्थात् स्थिति खंडन, अनुभागखंडन, उत्कर्षण, अपकर्षण भेद जीवनि के सुख जो जीवनि कैं प्रदेशनि का संतर्प्पण (सुख), असुख जो दुःख आपकै विचारै, भावनां करै—एते कर्तव्यनिकरि

संसारे भ्रमन्ति जीवाः, एतश्च संसाराद्विमुञ्चन्तीति चिन्तनमपायचिन्तनं नाम द्वितीयं धर्मध्यानमिति ॥ २०३ ॥

विपाकविचयस्वरूपमाह—

एआणेयभवगयं जीवाणं पुण्णपावकम्मफलं ।
उदओदीरणसंकमबंधं मोक्खं च विचिणादि ॥ २०४ ॥

एकभवगतमनेकभवगतं च जीवानां पुण्यकर्मफलं पापकर्मफलं च विचिनोति । उदयं स्थितिक्षयेण गलनं विचिनोति ये कर्मस्कन्धा उत्कर्षापकर्षादिप्रयोगेण स्थितिक्षयं प्राप्यात्मनः फलं ददते तेषां कर्मस्कन्धानामुदय इति संज्ञा तं ध्यायति । तथा चोदीरणमपक्वपाचनं । ये कर्मस्कन्धाः सत्सु स्थित्यनुभागेषु अवस्थिताः सन्त आकृष्याकाले फलदाः क्रियन्ते तेषां कर्मस्कन्धानामुदीरणमिति संज्ञा तद् ध्यायति । संक्रमणं परप्रकृतिस्वरूपेण गमनं विचिनोति । तथा बन्धं जीवकर्मप्रदेशान्योन्यसंश्लेषं ध्यायति । मोक्षं जीवकर्मप्रदेशविश्लेषमनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्वरूपं विचिनोतीति सम्बन्धः । तथा शुभ प्रकृतीनां गुडखण्डशर्करामृतस्वरूपेणानुभागचिन्तनम् अशुभप्रकृतीनां निम्बकांजीरविषहालाहलस्वरूपेणानुभागचिन्तनम् तथा घातिकर्मणां लतादार्वस्थिशिलासमानानुचिंतनं[1] । नरकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिप्रापककर्मफलचिन्तनं इत्येवमादिचिन्तनं विपाकविचयधर्म्यध्यानं नामेति ॥ २०४ ॥

जीव है, ते जिनशासन तैं दूरि होय हैं। एते कर्तव्यनि करि जिनशासन कूं प्राप्त होहि हैं। इनि परिणामनि करि जीव संसार के विषैं भ्रमैं है। इनि परिणामनि करि संसारतैं छूटै है, ऐसा चिंतवन करनां—यहु अपायविचय नामा दूसरा धर्मध्यान है ॥ २०३ ॥

आगैं विपाकविचय का स्वरूप कहै हैं—

अर्थ—एकभव विषैं प्राप्त तथा अनेक भव विषैं प्राप्त जो जीवनि के पुण्यकर्म का फल तथा पापकर्म का फल ताहि विचारै तथा उदय कहिए कर्मनिकी स्थिति के क्षय करि गलन होना जे कर्म्म स्कंध उत्कर्षण, अपकर्षण आदि प्रयोग बिना अपनी स्थिति का क्षयकूं पाय, आत्मा का फल देय खिरै, तिनि कर्म स्कंधनि की 'उदय' ऐसी संज्ञा है, ताहि ध्यावै तथा उदीरणा कहिए अपक्व पाचन, कर्मस्कंध स्थिति, अनुभागकूं होतैं संतैं अवस्थित है, तिनहि आकर्षण (खींच) करि बिना ही काल फलदाता करिए तिनि कर्म स्कंधनिकी उदीरणा ऐसी संज्ञा है, ताहि ध्यावै। बहुरि संक्रमण कहिए—अन्य प्रकृति स्वरूपकरि प्रकृति का परिणामनां, ताहि विचारै। बहुरि कहिए जीव अरु कर्म के प्रदेशनि का परस्पर संश्लेष होनां, एक क्षेत्रावगाह होनां, ताहि चिंतवै। बहुरि मोक्ष कहिए—जीव अर कर्म के प्रदेशनि का छूटना। अनंतज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य स्वरूप होनां चितवैं। तथा शुभ प्रकृतिनि का अनुभाग, गुड, खंड, शक्करा, अमृत ऐसे च्यारि स्वरूप करि कै चिंतवै तथा अशुभ प्रकृतिनि का अनुभाग निंब (नीम), कंजीर, विष, हालाहल—ऐसे च्यारि स्वरूप करि चिंतवै तथा घातिया कर्मनिका अनुभाग लता, दारू, अस्थि, शिला—ऐसें च्यारि प्रकार चिंतवै। तथा नरक तिर्यंच, मनुष्य, देव—ऐसे च्यारि गति का प्राप्त करनें वाला कर्म्म, ताके फलकूं चिंतवै। इत्यादिक चिन्तवन करै। सो यहु विपाक-विचय नामा धर्मध्यान है ॥ २०४ ॥

---

1. ख. समानानुभागविचिंतनं ।

संस्थानविचयस्वरूपं विवृण्वन्नाह—

उड्ढमहतिरियलोए विचिणादि सपज्जए ससंठाणे।
एत्थेव अणुगदाओ अणुपेक्खाओ य विचिणादि ॥ २०५ ॥

ऊर्ध्वलोकं सपर्ययं सभेदं ससंस्थानं त्र्यस्रचतुरस्रवृत्तदीर्घायतमृदंगसंस्थानं पटलेन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकविमानभेदभिन्नं विचिनोति ध्यायति। तथाधोलोकं सपर्ययं ससंस्थानं वेत्रासनाद्याकृतिं त्र्यस्रचतुरस्रवृत्तदीर्घायतादिसंस्थानभेदभिन्नं सप्तपृथिवीन्द्रकश्रेणिविश्रेणिवद्धप्रकीर्णक-प्रस्तरस्वरूपेण स्थितं शीतोष्णनारकसंहितं महावेदनारूपं च विचिनोति। तथा तिर्यग्लोकं सपर्ययं सभेदं ससंस्थानं झल्लर्याकारं मेरुकुलपर्वतादि ग्रामनगरपत्तनभेदभिन्नं पूर्वविदेहापरविदेहभरतैरावतभोगभूमिद्वीपसमुद्रवननदीवेदिकायतनकूटादिभेदभिन्नं दीर्घह्रस्ववृत्तायतत्र्यस्रचतुरस्रसंस्थान-सहितं विचिनोति ध्यायतीति सम्बन्धः। अत्रैवानुगता अनुप्रेक्षा द्वादशानुप्रेक्षा विचिनोति ॥ २०५ ॥

कस्ता अनुप्रेक्षा इति नामानीति दर्शयन्नाह—

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्ण संसारलोगमसुचित्तं।
आसवसंवरणिज्जर धम्मं बोधिं च चिंतिज्जो[1] ॥ २०६ ॥*

ध्रुवमनित्यता। अशरणमनाश्रयः। एकत्वमेकोऽहं। अन्यत्वं शरीरादन्योऽहं। संसारश्चतुर्गतिसंक्रमणं। लोक ऊर्ध्वाधोमध्यवेत्रासन-

---

आगैं संस्थानविचय नामा धर्मध्यान का विचरण करता संता कहै है—

अर्थ—सपर्याय कहिए पटल इन्द्रक, श्रेणीबद्ध, प्रकीर्णक, विमाननि के भेदरूप पर्याय तिनिकरि सहित भिन्न रूप। बहुरि ससंस्थानं कहिए त्रयस्र चतुर सवृत्त दीर्घायत मृदंगाकार अैसे संस्थान करि सहित उर्द्धलोक है ताकि चिंतवै-ध्यावै तथा सपर्याय कहिए सप्त पृथिवी के इन्द्रक श्रेणीबद्ध, विश्रेणीबद्ध प्रकीर्णक प्रस्तर रूपकरि तिष्ठते शीतता-उष्णता सहित महावेदनां रूप नरक के विलानि तिनि भेदनि करि सहित। ससंस्थानं कहिए वेत्रासन आदि आकार त्र्यस्र, चतुस्र वृत, दीर्घायत आदि संस्थाननि के भेद तिनिकरि सहित भिन्नरूप जो अधोलोक ताहि चिंतवै तथा सपर्याय कहिए मेरू, कुल, पर्वत आदि ग्राम, नगर, पत्तन भेद करि भिन्न। बहुरि पूर्व विदेह, अपर विदेह, भरत, ऐरावत, भोगभूमि, द्वीप, समुद्र, वन, नदी, वेदिका, आयतन, कूट, इत्यादिक भेदनिकरि सहित भिन्नरूप। ससंस्थान कहिए दीर्घ, ह्रस्व, आयत, त्र्यस्र, चतुरस्र संस्थाननि करि सहित जो तिर्यग्लोक, ताहि चितवे-ध्यावै सो यहु संस्थानविचय नामा धर्मध्यान है—अैसा संबंध जाननां ॥ २०५ ॥

याही विषै अनुगत बारह अनुप्रेक्षा कौन ? अैसें तिनिके नाम दिखावते संतै कहै है—

अर्थ—अध्रुव कहिए अनित्यता, अशरण कहिए आश्रय का अभाव, एकत्व कहिए "मैं एक हौं"— अैसो भावना। बहुरि अन्यत्व कहिए 'मैं शरीर तैं अन्य हूं' अैसी भावनां। संसार कहिए च्यारू गति विषैं भ्रमण करनां। बहुरि लोक कहिए उर्ध्व

---

[1] अ. ब. ख. चितेज्जो। * यही गाथा मूलाचार ८/२. तथा भगवती आराधन गाथा १७१५ में भी देखिए।

झल्लरीमृदंगरूपश्चतुर्दशरज्ज्वायतः । अशुचित्वं । आस्रवः कर्मास्रवः । संवरो महाव्रतादिकं । निर्जरा कर्मसातनं । धर्मोऽपि दशप्रकारः क्षमादिलक्षणः । बोधिं च सम्यक्त्वसहिता भावना एता द्वादशानुप्रेक्षाश्चिन्तय । तत् एतच्चतुर्विधं धर्मध्यानं नामेति ॥ २०६ ॥

शुक्लध्यानस्य स्वरूपं भेदांश्च विवेचयन्नाह—

उवसंतो दु पुहुत्तं झायदि झाणं विदक्कवीचारं ।
खीणकसाओ झायदि एयत्तविदक्कवीचारं ॥ २०७ ॥

उपशान्तकषायस्तु पृथक्त्वं ध्यायति ध्यानं । द्रव्याण्यनेकभेदभिन्नानि त्रिभिर्योगैर्यतो ध्यायति ततः पृथक्त्वमित्युच्यते । वितर्कः श्रुतं यस्माद्वितर्केण श्रुतेन सह वर्तते यस्माच्च नवदशचतुर्दशपूर्वधरैरारभ्यते तस्मात्सवितर्कं तत् । विचारोर्थव्यंजनयोगः (ग) संक्रमणः । एकमर्थं त्यक्त्वार्थान्तरं ध्यायति मनसा संचित्य वचसा प्रवर्तते वचसा प्रवृत्य कायेन प्रवर्तते एवं परंपरेण संक्रमो योगानां द्रव्याणां व्यंजनानां च स्थूलपर्यायाणामर्थानां सूक्ष्मपर्यायाणां वचनगोचरातीतानां संक्रमः सवीचारं यानमिति । अस्य त्रिप्रकारस्य ध्यानस्योपशान्तकषायः स्वामी । तथा क्षीणकषायो ध्यायत्येकत्वं वितर्कमवीचारं । एकं द्रव्यमेकार्थपर्यायमेकं व्यंजनपर्यायं च योगनैकेन ध्यायति तद्ध्यानमेकत्वं, वितर्कः श्रुतं पूर्वोक्तमेव, अवीचारं अर्थव्यंजनयोगसंक्रान्तिरहितं । अस्य त्रिप्रकारस्यैकत्वमवितर्कवीचारभेदभिन्नस्य क्षीणकषायः स्वामी ॥ २०७ ॥

लोक, अधोलोक, मध्यलोक, वेत्रासन, भल्लरी, मृदंग रूप चौदह राजू ऊँचा लोकस्वरूप । बहुरि अशुचित्वं कहिए अशुचिता । बहुरि आश्रव कहिए कर्म का आश्रव । बहुरि संवर कहिए महाव्रतादिक । निर्जरा कर्म का झड़नां । बहुरि धर्म कहिए उत्तमक्षमादि लक्षण दशप्रकार । बहुरि बोधि कहिए सम्यक्त्व सहित भावना । अैसे बारह अनुप्रेक्षा हैं ते चिंतवनैं योग्य हैं । अैसें यहु च्यारि प्रकार धर्मध्यान है सो जाननां ॥ २०६ ॥

आगैं शुक्लध्यान का स्वरूप तथा भेद हैं तिनहि विवेक करता संता कहै है—

अर्थ—उपशांतः कहिए उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती जीव है सो पृथक्त्व-वितर्क-वीचार नाम शुक्लध्यान है, ताहि ध्यावै है। अनेक भेदभिन्न द्रव्य है, तिनहि तीनूं योग योगनि करि ध्यावै है, तातैं पृथक्त्व अैसा कहिए है । बहुरि वितर्क नाम श्रुत का है, जातैं वितर्क सहित है नवपूर्व के धारी तथा दशपूर्व के धारी तथा चौदह पूर्व के धारी । तिनिकरि आरंभिए है तातैं सवितर्क कहिए । बहुरि वीचार कहिए—अर्थव्यंजन योगनिका संक्रम कहिए पलटनां । एक अर्थ कूं छोडि अन्य अर्थ कूं ध्यावैं, मनकरि चिंतवनकरि वचनकरि प्रवर्तै, वचनकरि प्रवर्त्ति कायकरि प्रवर्तै—अैसे योगनि का संक्रमण होय । बहुरि व्यंजन कहिए स्थूलपर्याय, अर्थ कहिए सूक्ष्म पर्याय । वचनगोचरतैं अतीत तिनिका संक्रमण सो वीचार कहिए—अैसे पृथक्त्व-वितर्क-विचार जो तीन प्रकार प्रथम शुक्लध्यान, ताका स्वामी उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती जीव है । तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीव है सो एकत्व-वितर्क-अवीचार नामा द्वितीय शुक्लध्यान है, ताहि ध्यावै । एक द्रव्य, एक अर्थपर्याय, एक व्यंजन पर्याय, एक योगकरि ध्यावैं । अर्थ-व्यंजन योग का संक्रमणकरि रहित यहु एकत्ववितर्क अवीचार नामा शुक्लध्यान है । ताका क्षीणकषाय-गुणस्थानवर्ती जीव स्वामी है ॥ २०७ ॥

तृतीयचतुर्थशुक्लध्यानस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

सुहुमकिरियं सजोगी झायदि झाणं च तदियसुक्कंतु ।
जं केवली अजोगी झायदि झाणं समुच्छिण्णं ।। २०८ ।।

सूक्ष्मक्रियामवितर्कमवीचारं श्रुतावष्टम्भरहितमर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिवियुक्तं सूक्ष्मकायक्रियाव्यवस्थितं तृतीयं शुक्लं सयोगी ध्यानमिति । यत्कैवल्ययोगी ध्यायति ध्यानं तत्समुच्छिन्नमवितर्कमविचारमनिवृत्तिनिरुद्धयोगमपश्चिमं शुक्लमविचलं मणिशिखावत् । तस्य चतुर्थध्यानस्यायोगी स्वामी । यद्यप्यत्र मानसो व्यापारो नास्ति तथाप्युपचारक्रिया ध्यानमित्युपचर्यते । पूर्वप्रवृत्तिमपेक्ष्य घृतघटवत् पुंवेदवद्वेति ।। २०८ ।।

व्युत्सर्गस्वरूपनिरूपणायाह—

दुविहो य विउस्सग्गो अब्भंतर बाहिरो मुणेयव्वो ।
अब्भंतर कोहादी बाहिर खेत्तादियं दव्वं ।। २०९ ।।

द्विविधो द्विप्रकारो व्युत्सर्गः परिग्रहपरित्यागोऽभ्यन्तरबाहिरो अभ्यन्तरो वाह्यश्च ज्ञातव्यः । क्रोधादीनां व्युत्सर्गोऽभ्यन्तरः । क्षेत्रादिकस्य-द्रव्यस्य त्यागो वाह्यो व्युत्सर्ग इति ।। २०९ ।।

अभ्यन्तरस्य व्युत्सर्गस्य भेदप्रतिपादनार्थमाह—

मिच्छत्तवेदरागा तहेव हस्सादिया य छद्दोसा ।
चत्तारि तह कसाया चोद्दस[1] अब्भंतरा गंथा ।। २१० ।।*

आगैं तीसरे चौथे शुक्लध्यान का स्वरूप है, ताहि प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—सूक्ष्मक्रिया कहिए सूक्ष्मकाय करि व्यवस्थित, अवितर्क कहिये श्रुत का अवष्टंभकरि रहित, अवीचार कहिए अर्थ-व्यंजन-योग—इनिकी संक्राति करि रहित अैसा तीसरा शुक्लध्यान है, ताहि सयोगी केवली ध्यावैं । बहुरि जो अयोगी केवली ध्यावै सो ध्यान समुछिन्न-अवितर्क अवीचार-अनिवृत्ति निरोध्या है योग जातैं, बहुरि अपश्चिमं कहिए याकै पीछै अन्यध्यान है नांही—अैसा मणिशिखावत् अविचल शुक्लध्यान है । इस चौथा शुक्लध्यान का स्वामी अयोगकेवली है । यद्यपि इहां मानसव्यापार नांही, तथापि उपचार क्रियामैं ध्यान-अैसा उपचार कीया है । पहली प्रवृत्ति की अपेक्षा लेय जैसे 'घृत का घड़ा' कहिए अथवा पुरुषवेद कहिए तैसैं यहां ध्यान का उपचार जाननां ।। २०८ ।।

आगैं व्युत्सर्ग तप के निरूपण कै अर्थि कहै है—

अर्थ—व्युत्सर्ग कहिए परिग्रह का त्याग, सो दोय प्रकार है—एक अभ्यंतर, एक बाह्य । तहां क्रोधादिक का त्याग सो अभ्यंतर व्युत्सर्ग है । बहुरि क्षेत्रादिक बाह्य द्रव्य का त्याग सो बाह्य व्युत्सर्ग कहिए ।। २०९ ।।

---

१. ख. चोद्दसा ।   * यही गाथा भगवती आराधना (गाथा १११८) में देखिए ।

मिथ्यात्वं । स्त्रीपुंनपुंसकवेदास्त्रयः । रागा हास्यादयः षट् दोषा हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साः चत्वारस्तथा कषाया क्रोधमानमाया-लोभाः । एते चतुर्दशाभ्यन्तरा ग्रन्थाः । एतेषां परित्यागोऽभ्यन्तरो व्युत्सर्ग इति ॥ २१० ॥

बाह्यव्युत्सर्गभेद प्रतिपादनार्थमाह—

खेत्तं वत्थु धणधण्णगदं दुपदचदुप्पदगदं च ।
[1]जाणसयणासणाणि य कुप्पे भंडेसु दस होंति ॥ २११ ॥

क्षेत्रं सस्यादिनिष्पत्तिस्थानं । वास्तु गृहप्रासादादिकं । धनगतं सुवर्णरूप्यद्रव्यादि । धान्यगतं शालियवगोधूमादिकं द्विपदा दासीदासादयः । चतुष्पदगतं गोमहिष्याजादिगतं । यानं शयनमासनं । कुप्यं कार्पासानिकं । भाण्डं हिंगुमरीचादिकं । एवं बाह्यपरिग्रहो दशप्रकारस्तस्य त्यागो बाह्यो व्युत्सर्ग इति ॥ २११ ॥

द्वादशविधस्यापि तपसः स्वाध्यायोऽधिक इति निरूपयन्नाह—

बारसविधह्मिवि तवे सब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे ।
णवि अत्थि णवि य होही सज्झायसमं तवोकम्मं ॥ २१२ ॥*

आगैं अभ्यंतर व्युत्सर्ग का भेद प्रतिपादन कै अर्थि कहै है—

अर्थ—एक मिथ्यात्व, स्त्री, पुरुष, नपुंसक रूप तीन वेद, राग बहुरि तैंसे हो हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा—ऐसे छह हास्यादिक दोष तथा क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसें च्यारि कषाय—ऐसे चौदह अभ्यंतर ग्रंथ (परिग्रह) हैं। इनिका परित्याग सो अभ्यंतर व्युत्सर्ग कहिए ॥ २१० ॥

आगैं बाह्य व्युत्सर्ग के भेद प्रतिपादन कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ—१. क्षेत्र कहिए धान्यादिक के निपजनैं का स्थान, २. वास्तु कहिए घर, प्रासादादिक, ३. धनगत कहिए सोना, रूपा (चांदी), विद्रुम्म इत्यादिक, ४. धान्यगत कहिए शालि, यव, गोधूम (गेहूँ) आदिक, ५. द्विपद कहिए दासी-दास इत्यादिक, ६. चतुष्पदगत कहिए गाय, भैंस, छयालो (बकरी) इत्यादिक, ७. यान कहिए शिविका आदि वाहन, ८. शयन कहिए पर्यंकादिक सोवने के, आसन कहिए सिंहासन, चौको, पाटा आदि, ९. कुप्य कहिये—कर्पासादिक, १०. भांड कहिए—हिंगु, मिरच इत्यादिक के भाजनादिक—ऐसैं बाह्य परिग्रह दशप्रकार हैं, ताका त्याग सो बाह्य व्युत्सर्ग है। ऐसे द्वादश प्रकार तप कह्या ॥ २११ ॥

तामैं स्वाध्याय अधिक (श्रेष्ठ) है—ऐसा निरूपण करता संता कहै है—

---

१. अ. ब. याण ।

* इस गाथा को देखिए कल्पभाष्य (श्वेताम्बर) गाथा सं० ११६९ ।

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में यह गाथा बदली हुई है—

कोहो माणो माया लोहो रागो तहेव दोसो य ।
मिच्छत्तवेदरतिअरदि हाससोगभयदुगुंछा य ॥

द्वादशविधस्यापि तपसः सबाह्याभ्यन्तरे कुशलदृष्टे सर्वज्ञगणधरादिप्रतिपादिते नाप्यस्ति नापि च भविष्यति स्वाध्यायसमानं-तपःकर्म। द्वादशविधेऽपि तपसि मध्ये स्वाध्यायसमानं तपोनुष्ठानं न भवति न भविष्यति ॥ २१२ ॥ कुतः ?

सज्झायं कुव्वंतो पंचेंदियसंवुडो तिगुत्तो य ।
हवदि य एअग्गमणो विणएण समाहिओ भिक्खू ॥ २१३ ॥*

स्वाध्यायं कुर्वन् पंचेन्द्रियसंवृतः त्रिगुप्तश्चेन्द्रियव्यापाररहितो मनोवाक्कायगुप्तश्च, भवत्येकाग्रमनाः शास्त्रार्थंतन्निष्ठो विनयेन समाहितो विनययुक्तो भिक्षुः साधुः । स्वाध्यायस्य माहात्म्यं दर्शितमाभ्यां गाथाभ्यामिति ॥ २१३ ॥

तपोविधानक्रममाह—

सिद्धिप्पासादवदंसयस्स करणं चदुव्विहं होदि ।
दव्वे खेत्ते काले भावे वि य आणुपुव्वीए[1] ॥ २१४ ॥

तस्य द्वादशविधस्यापि तपसः किंविशिष्टस्य, सिद्धिप्रासादावतंसकस्य मोक्षगृहकर्णपूरस्य मण्डनस्याथवा सिद्धिप्रासादप्रवेशकस्य करणमनुष्ठानं चतुर्विधं भवति । द्रव्यमाहारशरीरादिकं । क्षेत्रमनूपमरुजांगलादिकं स्निग्धरूक्षवातपित्तश्लेष्मप्रकोपकं । कालः शीतोष्णवर्षादिरूपः । भावः (व) परिणामश्चित्तसंक्लेशः । द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य तपः कुर्यात् । यथा वातपित्तश्लेष्मविकारो न भवति । आनुपूर्व्यानुक्रमेण क्रमं त्यक्त्वा यदि तपः करोति चित्तसंक्लेशो भवति संक्लेशाच्च कर्मबन्धः स्यादिति ॥ २१४ ॥

अर्थ—बारह प्रकार बाह्य-आभ्यंतर तप कह्या, सर्वज्ञ गणधरादिक करि प्रतिपादन कीया । तामैं स्वाध्याय समान तपःकर्म्म है नांही, अर होयगा नांहो ॥ २१२ ॥

बहुरि कहै हैं—

अर्थ—स्वाध्याय कूं करता साधु है सो पांचूं इंद्रियनि का संवर करै । इंद्रियनि का व्यापार रहित होय । बहुरि मन, वचन, काय तीनूं गुप्तिनि का पालनैंहारा होय । बहुरि एकाग्र है मन जाका अैसा शास्त्र का अर्थ कै विषैं तल्लीन होय । बहुरि विनयकरि संयुक्त होय है । अैसे दोउ गाथानि करि स्वाध्याय का माहात्म्य दिखाया ॥ २१३ ॥

आगैं तप विधान का क्रम कहै है—

अर्थ—मुक्ति रूप प्रासाद को अवतंसक कर्णपूर आभूषण जो यह बारह प्रकार तप, ताको अनुष्ठान च्यारि प्रकार है—१. द्रव्य कहिए आहार शरीरादिक, ताकै आश्रय, २. क्षेत्र कहिए अनूप जो जल बहुल स्थान, मरु-निर्जलदेश—जांगलादिक ताकै आश्रय अथवा स्निग्ध, रूक्ष, वात, पित्त, श्लेष्म का परिकोप कैं आश्रय, ३. काल कहिए शीत, उष्ण, वर्षा इत्यादिक के आश्रय । बहुरि, ४. भाव कहिए परिणाम, चित्त का संक्लेश । अैसे च्यारि प्रकार हैं । जैसे—वात, पित्त, श्लेष्म का विकार न होय तैंसे अनुक्रम करि तप करै । जो क्रम छोडि तप करैं तौ चित्त संक्लेश होय । संक्लेशतै कर्म्मबंध होय है ॥ २१४ ॥

* यह गाथा फलटन से प्रकाशित मूलाचार में नहीं है । १. ख. पुव्वीयं ।

तपोऽधिकारमुपसंहरन् वीर्याचारं च सूचयन्नाह—

अब्भंतरसोहणओ एसो अब्भंतरो तओ भणिओ[1] ।
एत्तो विरियाचारं समासओ वण्णइस्सामि ॥ २१५ ॥

अभ्यन्तरशोधनकमेतदभ्यन्तरतपो भणितं भावशोधनार्यैतत्तपः तथा बाह्यमप्युक्तं । इत ऊर्ध्वं वीर्याचारं वर्णयिष्यामि संक्षेपत इति ॥ २१५ ॥

अणुगूहिय[2]बलविरिओ परिक्कामदि[3] जो जहुत्तमाउत्तो ।
जुंजदि य जहाथाणं विरियाचारोत्ति णादव्वो ॥ २१६ ॥❀

अनुगूहितवलवीर्य अनिगूहितमसंवृतमपह्नुतं बलमाहारौषधादिकृतसामर्थ्यं, वीर्यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं संहननापेक्षं स्थानशरीरावयवकरणचरणजंघोरुकटिस्कन्धादिघनघटितबन्धापेक्षं । अनिगूहिते बलवीर्ये येनासावनिगूहितबलवीर्यः । पराक्रमते चेष्टते समुत्सहते यो यथोक्तं तपश्चारित्रं त्रिविधानुमतिरहितं सप्तदशप्रकारसंयमविधानं प्राणसंयमं तथेन्द्रियसंयमं चैतद्यथोक्तं । अनिगूहितबलवीर्यो यः कुरुते युनक्ति चात्मानं यथास्थानं यथाशरीरावयवांष्टंभं यः स वीर्याचार इति ज्ञातव्यो भेदात् । अथवा तस्य वीर्याचारो ज्ञातव्यः इति ॥ २१६ ॥

आगैं तप अधिकार का उपसंहार करता संता वीर्याचार की सूचना करता संता कहै है—

अर्थ—अभ्यंतर का शोधन करनहारा इह अभ्यंतर तप कह्या हुवा जाणनां । बाह्य तप है सो भाव का सोधन के निमित्त कह्या है ॥ २१५ ॥

यातैं आगैं संक्षेपतैं वीर्याचार है, ताहि वर्णन करेंगैं—

अर्थ—नांही छिपाया है बल कहिए आहार, औषधादिक करि कीया सामर्थ्य तथा वीर्य कहिए—वीर्यांतराय कर्म्म के क्षयोपशमतैं उपज्या संहननि की है अपेक्षा जामैं, दृढ़रूप शरीर के अवयव—कर, चरण, जंघा, उरु, कटि, स्कंध इत्यादिक घन रूप घटित जो बंध ताकी है अपेक्षा जामैं, असा सामर्थ्य जानै, असा जो यथोक्त तप, चारित्र, तीन प्रकार अनुमतिकरि रहित, सत्रह प्रकार संयम का विधान करने कूं आत्मा कूं युक्त करै है, पराक्रम करै है, चेष्टा करै है । जैसा स्थान कहिए शरीर का अवयव का अवष्टंभ है तैसैं करै है सो वीर्याचार जाननां अथवा असै जो साधु करै है ताके वीर्याचार जाननां ॥ २१६ ॥

---

१. ख. तवो णेओ । २. ख. अणिगूहिय । ३. ख. परक्कमदि । ❀ यह गाथा फलटन से प्रकाशित प्रति में अधिक है—

बलवीरियसत्तिपरक्कमधिदिबलमिदि पंचधा उत्तं ।
तेसिं तु जहाजोग्गं आचरणं वीरियाचारो ॥

अर्थात् बल, वीर्य, शक्ति, पराक्रम और धृतिबल ये पाँच प्रकार कहे गये हैं । इनके आश्रय से जो यथायोग्य आचरण किया जाता है उसे वीर्याचार कहते हैं ।

त्रिविधानुमतिपरिहारो यथोक्तमित्युक्तस्तथा सप्तदशप्रकारं प्राणसंयमनमिन्द्रियसंयमनं च यथोक्तमित्युक्तं । तत्र कत्रा विधानुमतिः कश्च सप्तदशप्रकारः प्राणसंयमः को वेन्द्रियसंयम इति पृष्टे उत्तरमाह—

पडिसेवा पडिसुणणं संवासो चेव अणुमदी तिविहा ।
उद्दिट्ठं जदि भुंजदि भोगदि य होदि पडिसेवा ।। २१७ ।।

प्रतिसेवा प्रतिश्रवणं संवासश्चैवानुमतिस्त्रिविधा । अथ किं प्रतिसेवाया लक्षणं ? आह—उद्दिष्टं दात्रा पात्रमुद्दिश्यं पात्राभिप्रायेणाहारादिकमुपकरणादिकं चोपनीतं तदानीतमाहारादिकं यदि भुंक्तेऽनुभवति । उपकरणादिकं च प्रासुकमानीतं दृष्ट्वा भोगयति सेवते यदि तदा तस्य पात्रस्य प्रतिसेवानामानुमतिभेदः स्यात् ।। २१८ ।। तथा—

उद्दिट्ठं जदि विचरदि पुव्वं पच्छा व होदि पडिसुणणा ।
सावज्जसंकिलिट्ठो ममत्तिभावो दु संवासो ।। २१८ ।।

पूर्वमेवोपदिष्टं यावत्तद्वस्तु न गृह्णाति साधुस्तावदेव पूर्वं प्रतिपादयति दाता, भवतो निमित्तं मया संस्कृतमाहारादिकं प्रासुकमुपकरणं वा तद्भवान् गृह्णातु । एवं पूर्वमेव श्रुत्वा यदि विचरति गृह्णाति । अथवा दत्वाहारादिकमुपकरणं पश्चान्निवेदयति युष्मन्निमित्तं मया संस्कृतं तद्भवद्भिर्गृहीतं अद्य मे संतोषः संजातः इति श्रुत्वा तूष्णींभावेन सन्तोषेण वा यदि तिष्ठति तदा तस्य प्रतिश्रवणानामानुमतिभेदो द्वितीयः

आगैं त्रिविध अनुमति का परिहार कह्या सो कहा ? तथा सत्तरह प्रकार संयम कह्या सो कहा ? अैसा प्रश्न होतै संतैं उत्तर कहै हैं—

अर्थ—प्रतिसेवा, प्रतिश्रवण, संवास—अैसे अनुमति है, सो तीनि प्रकार है। तहां प्रथम प्रतिसेवा का लक्षण कहै है—दाताकरि उद्दिष्ट कहिए पात्र का नाम लेय, पात्र का अभिप्राय करि, आहारादिक तथा उपकरणादिक ल्याए ताकूं जो भोजन करै, उपकरणादिक प्राशुक ल्याए देखि सेवै तो तिस पात्र कै प्रतिसेवा नामा अनुमति का भेद होय ।। २१७ ।। बहुरि कहै है—

अर्थ—साधु जैतैं वस्तु नांही ग्रहण करै, तिस पहली ही दाता कहै—'तिहारे निमित्त मोकरि सवारे हुए आहारादिक प्राशुक है तथा उपकरण है, सो तुम ग्रहण करौ'—अैसे पूर्वं ही सुणिकरि ग्रहण करै तो प्रतिश्रवण नामा अनुमति का भेद होय तथा आहारादिक वा उपकरण देयकरि पीछै पात्रकूं कहै—मोकरि तिहारे निमित्त ये सवारे थे, बणवाये थे—सो तुमने ग्रहण कीए, अब मैरै संतोष उत्पन्न भया'—अैसा सुणिकरि वह पात्र मौनकरि तिष्ठै तथा संतोषकरि तिष्ठै, तवहू ताकै प्रतिश्रवण नामा अनुमति का दूसरा भेद ही होय ।

बहुरि सावद्य भावकरि संक्लिष्ट होय जो यह ममत्वभाव ग्रहस्थनिकरि सहित संबंध—'यह मेरे हैं'—अैसा भाव करै आहारादिक तथा उपकरण कै निमित्त, सो यह संवास नामा तीसरा अनुमति का भेद है। अैसे तीन प्रकार अनुमति करै, तातैं यथोक्त आचरण कीया नांही, बल-वीर्य छिपाया, वीर्याचार का अनुष्ठान कीया नांही, तातैं जो साधु वीर्याचार का अनुष्ठान करै सौ तीन प्रकार अनुमति का परिहार करैं ।। २१८ ।।

स्यादिति । तथा सावद्यसंक्लिष्टो योऽयं ममत्वभावः स संवासः । गृहस्थैः सह संवसति ममेदमिति भावं च करोत्याहाराद्युपकरणनिमित्तं सर्वदा संक्लिष्टः सन् संवासनामानुमतिभेदस्तृतीयः एवं त्रिप्रकारामनुमतिं कुर्वता यथोक्तं नाचरितं बलवीर्यं चात्रगूहितं तेन वीर्याचारो नानुष्ठितः स्यात्तस्मात् सानुमतिस्त्रिप्रकारापि त्याज्या वीर्याचारमनुष्ठतेति ।। २१८ ।।

सप्तदशप्रकारसंयमं प्रतिपादयन्नाह—

पुढविदगतेउवाऊवणप्फदीसंजमो य बोधव्वो ।
विगतिगचदुपंचेंदिय अजोवकायेसु संजमणं ।। २१९ ।।

पृथ्व्युदकतेजोवायुवनस्पतिकायिकानां संयमनं रक्षणं संयमो ज्ञातव्यः । तथा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियाणां संयमनं रक्षणं संयमः । तथा अजीवकायानां शुष्कतृणादीनामच्छेदनं । कायभेदेन पंचप्रकारः संयमस्त्रसभेदेन चतुर्विधोऽजोवरक्षणेन चैकविध इति दशप्रकारः संयमः ।। २१९ ।। तथा—

अप्पडिलेहं दुप्पडिलेहमुवेखुअवहट्टु संजमो चेव ।
मणवयणकायसंजम सत्तरसविहो दु णादव्वो ।। २२० ।।

आगैं सतरह प्रकार संयम का प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक—इनि पंचकायिक जोवनि का रक्षण सो पंच-प्रकार संयम जाननां । बहुरि वेइंद्री, तेइंद्री, चतुरिंद्रिय, पंचेन्द्रिय—च्यारि प्रकार त्रस जोवनि का रक्षण सो च्यारि प्रकार संयम जाननां । बहुरि अजीवकाय—सूका-तृण इत्यादिक, इनिका छेदना नांही करैं सो अजीव-रक्षण एक प्रकार—ऐसैं दशप्रकार संयम कह्या ।। २१९ ।।

आगै बहुरि कहै है—

अर्थ—११. द्रव्य का तथा द्रव्यस्थानका पोछोकरि प्रीतिलेखन नांही करै, नेत्रनिकरि देखै नांहो, सो अप्रतिलेखन कहिए । ताका संयमन पोछीकरि प्रतिलेखन करनां, नेत्रनिकरि देखनां सो अप्रतिलेख संयम जाननां । बहुरि १२. जोवघात मर्दनादिक का कारक, ऐसा दुष्ट-प्रमार्जन सो दुःप्रतिलेख कहिए, ताका संयमन यत्न करि, प्रमाद-बिना जा प्रतिलेखन सो दुःप्रतिलेख संयम कहिए । बहुरि १३. उपकरणादिक कूं स्थापि करि कालांतर करि भो नांही देखै, जोव संमूर्छनादिक देखिकरि उपेक्षा करै सो उपेक्षा कहिए । तिस उपेक्षा का संयम—दिन-दिन प्रति उपकरणादिक देखि लैनां सो उपेख्या (उपेक्षा) संयम कहिए । तथा १४. उपकरणानितैं पंचैन्द्रिय, द्वीन्द्रियादिक जोवनि का अपहरण कहिएं अपनयन करनां अन्य स्थान क्षेपण करनां सो अपहरण कहिए । ताका निराकरण तथा उदर कृमि आदिक का निराकरण करनां सो अपहरण संयम कहिए । ऐसे च्यारि प्रकार यहु संयम कह्या तथा १५. मन का संयम, १६. वचन का संयम, १७. काय का संयम—ऐसे तोनि प्रकार यहु संयम कह्या । ऐसे दशभेद तौ पूर्वें गाथा विषैं कहै, बहुरि सातभेद इस गाथा विषै कहैं । ऐसे सतरह प्रकार प्राणसंयम वीर्याचार के रक्षणकरि यथोक्त आचरण करिए ।। २२० ।।

अप्रतिलेखश्चक्षुषा पिच्छिकया वा द्रव्यस्य द्रव्यस्थानस्याप्रतिलेखनमदर्शनं तस्य संयमनं दर्शनं प्रतिलेखनं वा प्रतिलेखसंयमः। दुःप्रतिलेखो दुष्टुप्रमार्जनं जीवघातमर्दनादिकारकं तस्य संयमनं यत्नेन प्रतिलेखनं जीवप्रमादमंतरेण दुष्प्रतिलेखसंयमः। उपेक्षोपेक्षणं--उपकरणादिकं व्यवस्थाप्य पुनः कालान्तरेणाप्यदर्शनं जीवसम्मूर्छनादिकं दृष्ट्वा उपेक्षणं तस्या उपेक्षायाः संयमनं दिनं प्रति निरोक्षणमुपेक्षासंयमः। अवहट्टु—अपहरणमपनयनं [1]पंचेन्द्रियद्वीन्द्रियादीनामपनयनमुपकरणेभ्योऽन्यत्र संक्षेपणमुपवर्तनं तस्य संयम (मः) निराकरणं उदरकृम्यादिकस्य वा निराकरणमपहरणं संयमः। एवं चतुर्विधः संयमः। तथा मनसः संयमनं वचनस्य संयमनं कायस्य संयमनं मनोवचनकायसंयमस्त्रिप्रकारः। एवं पूर्वान् दशभेदानिमांश्च सप्तभेदान् गृहीत्वा, सप्तदशप्रकारः संयमः प्राणसंयमः। अस्य रक्षणेन यथोक्तमाचरितं भवति ॥ २२० ॥

तथेन्द्रियसंयमं प्रतिपादयन्नाह—

पंचरसपंचवण्णा दो गंधे[2] अट्ठ फास सत्त सरा।
मणसा चोद्दसजीवा इंदियपाणा य संजमो णेओ ॥ २२१ ॥*

पंच रसास्तिक्तकषायाम्लकटुकमधुरा रसनेन्द्रियविषयाः। पंचवर्णाः कृष्णनीलरक्तपीतशुक्लाश्चक्षुरिन्द्रियविषयाः द्वौ गंधौ सुगंधदुर्गंधौ घ्राणेंद्रियविषयौ। अष्टौ स्पर्शाः स्निग्धरूक्षकर्कशमृदुशीतोष्णलघुगुरुकाः स्पर्शनेन्द्रियविषयाः। सप्तस्वराः षड्गर्षभगान्धारमध्यमपंचमधैवतनिषादाः श्रोत्रेन्द्रियविषयाः एतेषां मनसा सहाष्टाविंशतिभेदभिन्नानां संयमनमात्मविषयनिरोधनं संयमः। मनसो नोइंद्रियस्य संयमः। तथा चतुर्दशजीवसमासानां रक्षणं प्राणसंयमः। एवमिन्द्रियसंयमः प्राणसंयमश्च ज्ञातव्यो यथोक्तमनुष्ठेय इति ॥ २२१ ॥

आगै इन्द्रियसंयम का प्रतिपादन करना संता कहै है—

अर्थ—तिक्त, कषाय, आम्ल, कटुक, मधुर—अैसे रसना इंद्रिय के विषय पाँच रस जाननैं। बहुरि कृष्ण, नील, रक्त, पीत, शुक्ल—अैसे चक्षुरिंद्रिय के विषय पाँच वर्ण जाननें। बहुरि सुगंध, दुर्गंध—अैसे घ्राणइंद्रिय के विषय दोय गंध जाननें। बहुरि स्निग्ध, रूक्ष, कर्कश, मृदु, शोत, उष्ण, लघु, गुरु,—अैसे स्पर्शन इंद्रिय के विषय आठ स्पर्श जाननें। बहुरि षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद—अैसे श्रोत्रेंद्रिय के विषय सात स्वर जाननैं। बहुरि मन का विषय येक जाननां। अैसैं अठाईस भेदनि करि भिन्न जे विषय तिनिका संयमन कहिए निरोध सो इंद्रियसंयम कहिए तथा चौदह प्रकार जीवसमास तिनिका रक्षण सो प्राणसंयम—अैसे इंद्रियसंयम, प्राणसंयम जाननैं, यथोक्त अनुष्ठान करनें—अैसे वीर्याचार कह्या ॥ २२१ ॥

१. क एकेन्द्रिय॰। २. क ख. द. गंधा। * निम्नलिखित चार गाथाएँ फलटन से प्रकाशित संस्करण में अधिक हैं—

जियदु व मरदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामित्तेण समिदस्स ॥

—जीव मरे या न मरे, अयत्नाचारी के निश्चित ही हिंसा होती है तथा समिति से युक्त सावधान मुनि के हिंसामात्र से बन्ध नहीं होता है।

अपयत्ता वा चरिया सयणासणठाणचंकमादीसु।
समणस्स सव्वकालं हिंसा सांतत्तिया त्ति मता ॥

पंचाचारमुपसंहरन्नाह—

दंसणणाणचरित्ते तव विरियाचारणिग्गहसमत्थो ।
अत्ताणं जो समणो गच्छदि सिद्धिं धुदकिलेसो ।। २२२ ।।

एवं दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्याचारैरात्मानं निग्रहयितुं नियंत्रयितुं यः समर्थः श्रवणः साधुः स गच्छति सिद्धिं धुतक्लेशो विधूताष्ट-कर्मा । एवं पंचाचारो व्याख्यातः ।। २२२ ।।

इति वसुनन्दिविरचितायामाचारवृत्तौ पंचाचारविवर्णनं नाम
पंचमः प्रस्तावः समाप्तः ।। ५ ।।

आगैं पंचाचार का उपसंहार कर्ता संता कहै है—

अर्थ—जो श्रमण कहिए साधु दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप वीर्याचार करि अपनैं आत्मा कूं नियमरूप करणें कूं समर्थ हैं, सो साधु, क्लेश कहिए निराकरण कीए हैं अष्टकर्म्म जानैं—अैसा होय सिद्धि जो मुक्ति है, ताहि प्राप्त होय है ॥ २२२ ॥
अैसैं पंचाचार का व्याख्यान कीया ।

अैसें आचार्य श्रीवट्टकेर स्वामो विरचित मूलाचारनाम प्राकृतग्रंथ ताको वसुनंदो सिद्धांतचक्रवर्ति विरचित आचार-वृत्ति नाम संस्कृतटोका, ताकै अनुसार यह देशभाषामय वचनिका विषैं पंचाचार का है वर्णन जामैं, अैसा पंचम अधिकार समाप्त भया ॥ ५ ॥

इहां पर्यंत गाथासूत्र च्यारि सै उगणीस (४१९) भए ।

—जिस साधु की सोना, बैठना, चलना, भोजन करना इत्यादि कार्यों में होने वाली प्रवृत्ति यदि प्रमाद सहित है तो उस साधु को हिंसा का पाप सतत् लगेगा ।

अयदाचारो समणो छसु वि कायेसु बंधगोत्ति मदो ।
चरदि यदं यदि णिच्चं कमलं व जलं निरुवलेओ ।।

—प्रमाद युक्त मुनि षड्काय जीवों का वध करने वाला होने से नित्य बंधक है और जो मुनि यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करता है वह जल में रहकर भी जल से निर्लेप कमल की तरह कर्मलेप से रहित होता है ।

असिअसणिपरूसवणदहवग्घग्गहकिण्णसप्पसरिसस्स ।
मा देहि ठाणवासं दुग्गदिमग्गं च रोचिस्स ।।

—तलवार, बिजली, तीव्र वनाग्नि, व्याघ्र, ग्रह, काला सर्प इत्यादि के समान जो मिथ्यादृष्टि जीव है वह दुर्गति को ही प्रिय समझता है । उसे हे साधो ! स्थान और निवास नहीं देना चाहिए क्योंकि वह तलवार आदि के समान आत्मा को नष्ट करने वाला है ।

६. अथ पिण्डशुद्धि-अधिकारः

पिंडशुद्धयाख्यं षष्ठमाचारं विधातुकामस्तावन्नमस्कारमाह—

तिरदणपुरुगुणसहिदे अरहंते विदिदसयलसब्भावे ।
पणमिय सिरिसा वोच्छं समासदो पिण्डसुद्धी दु ॥ १ ॥

त्रिरत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तानि च तानि **पुरुगुणाश्च** ते महागुणाश्च ते त्रिरत्नपुरुगुणाः । अथवा **त्रिरत्नानि** सम्यक्त्वादीनि **पुरुगुणा** अनन्तसुखादयस्तैः सहितास्तान् । **अरहंते** अर्हतः सर्वज्ञान् विदितसकलसद्भावान् विदितो विज्ञातः सकलः समस्तः सद्भावः स्वरूपं यैस्तान् परिज्ञातसर्वपदार्थस्वरूपान् प्रणम्य शिरसा, वक्ष्ये समासतः पिण्डशुद्धिमाहारशुद्धिमिति ॥ १ ॥

यथाप्रतिज्ञं निर्वहन्नाह—

उग्गम उप्पादण एसणं च संजोजणं पमाणं च ।
इंगाल धूम कारण अट्ठविहा पिण्डसुद्धी दु ॥ २ ॥

उद्गच्छत्युत्पद्यते यैरभिप्रायैर्दातृपात्रगतैराहारादिस्ते उद्गमोत्पादनदोषाः आहारार्थानुष्ठानविशेषाः । अश्यते भुज्यते येभ्यः पारिवेषकेभ्यस्तेषामशुद्धयोऽशनदोषाः । संयोज्यते संयोजनमात्रं वा संयोजनदोषः । प्रमाणातिरेकः प्रमाणदोषः । अङ्गारमिवाङ्गारदोषः । धूम इव धूमदोषः । कारणनिमित्तं कारणदोषः । एवं एतैरष्टभिर्दोषैं रहिताष्टप्रकारा पिण्डशुद्धिरिति संग्रहसूत्रमेतत् ॥ २ ॥

---

६. पिण्डशुद्धि–अधिकारः

आगैं पिंडशुद्धि है नाम जाका, अैसा छठा अधिकार, ताहि करनैं का है अभिलाष जाके, अैसा आचार्य वट्टकेर स्वामी सो प्रथम ही नमस्कार करै है—

अर्थ—त्रिरत्न कहिये—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तेई भये पुरुगुण कहिए महागुण अथवा त्रिरत्न कहिए सम्यक्त्वादिक, पुरुगुण कहिए अनंत-सुखादिक तिनिकरि सहित अैसे, बहुरि विदित कहिए जाण्या है, सकल सद्भाव कहिये—समस्त पदार्थनिका स्वरूप जिननैं, अैसे अरहंत कहिए सर्वज्ञ-वीतरागदेव, तिनहि मस्तक नवाय-नमस्कारकरि संक्षेप थकी पिंड कहिए आहार की, शुद्धि कहिए शुद्धता, ताका है कथन जामैं अैसा पिंडशुद्धि नामा अधिकार, ताहि कहेंगें—अैसो आचार्यनैं प्रतिज्ञा करी ॥ १ ॥

आगैं इस ही प्रतिज्ञा का निर्वाह करता संता कहै है—

अर्थ—१. जिन दातानि के अभिप्रायनितैं आहारादिक उपजै ते अभिप्राय उद्गमदोष हैं । २. पात्रनि के जिन अभिप्रायनिकरि आहारादि उपजाइये ते अभिप्राय उत्पादन दोष है । ३. जिन दातानितैं अशन करिये—भोजन करिये तिनको अशुद्धता ते अशनदोष कहिए । ४. संयोजन करिये अथवा संयोजन करणें मात्र सो संयोजन दोष कहिए । ५. प्रमाणतैं अधिक भोजन लेय सो प्रमाणदोष कहिये । ६. अंगारवत् अतिगृद्धिकरि भोजन ले सो अंगार दोष कहिये । ७. धूमवत् निंदा संक्लेश करता संता आहार ले सो धूमदोष कहिये । ८. कारण नांहो हौंते भोजन ले सो कारण दोष कहिये । अैसे आठ प्रकार जे दोष तिनकरि रहित, तातैं अष्टप्रकार पिंडशुद्धि कहिये । यहु संग्रह सूत्र है ॥ २ ॥

उद्गमदोषाणां नामनिर्देशायाह—

आधाकम्मुद्देसिय अज्झोवज्झेय पूदिमिस्से य ।

ठविदे बलि पाहुडिदं पादुक्कारे य कीदे य ।। ३ ।।

गृहस्थाश्रितं पंचसूनासमेतं तावत्सामान्यभूतमष्टविधपिण्डशुद्धि वाह्यं महादोषरूपमधःकर्म कथ्यते । **आधाकम्म**—अधःकर्म निकृष्ट-व्यापारः षड्जीवनिकायवधकरः । उद्दिश्यते इत्युद्देशः उद्देशे भव ओद्देशिकः । **अज्झोवज्झेय** अध्यधिसंयतं दृष्ट्वा पाकारम्भः । **पूदि**—पूतिर-प्रासुकमिश्रणं सहेतुकं । **मिस्सेय**— मिश्रश्चासंयतमिश्रणं । **ठविदे**—स्थापितं स्वगृहेऽन्यगृहे वा । वलिर्निवेद्य देवार्चना वा । **पाहुडियं**—प्रावर्तितं कालस्य हानिवृद्धिरूपं । **पादुक्कारेय**—प्राविष्करणं मण्डपादेः प्रकाशनं । **कीदेय**—क्रीतं वाणिज्यरूपमिति ।। ३ ।। तथा—

पामिच्छे परियट्टे अभिहडमुब्भिण्ण मालआरोहे[1] ।

अच्छिज्जे अणिसट्ठे उग्गमदोसा दु सोलसिमे ।। ४ ।।

आगै उद्गम दोषनि का नाम निर्देशनि कै अर्थि कहै है—

अर्थ—प्रथम ही गृहस्थ के आश्रय पंचसूनां कहिये रसोई, पानीय, गृह, चाक्की, ऊखल, बुवारी (झाडू) इनकरि सहित सामान्य रूप अष्टप्रकार पिंडशुद्धि सो बाह्य रूप महादोष रूप छहकाय का जोवनि की हिंसा को करवा वालो जो निकृष्ट आरंभ सो अधःकर्म कहिये । सो यहु तो निंद्य कर्महु असंजमोजनकै आश्रय हैं । संयमी आप-कायकरि करै नांही, वचनकरि करावै नांही, अनुमोदना करै नांही । याका तौ सर्व यत्नकरि त्याग ही है । यहु तो महादोष है ।

आगै सोलह उद्गम-दोषनि के नाम कहिये हैं । १. मुनिनिका उद्देश कहिये नामकरि करै सो उद्देशिक कहिये । २. संयमी कौं आया देखि पाक का आरंभ करै सो अध्यधि दोष कहिये । ३. अप्रासुक-प्रासुक मिलावै, कारण सहित सो प्रतिदोष कहिये । ४. गृहस्थ अन्य लिंगोन तै मिलाय करि दे सो मिश्र दोष कहिए । ५. अपनैं घर विषैं तथा अन्य का घर विषैं स्थाप्पो (रखा) हुवो भोजन दे सो स्थापित दोष । ६. देवादिक कै अर्थि कोयो होय सो भोजन दे तथा संयमीनिका आगमन कै अर्थि बलिकर्म्म करै सो बलि दोष कहिये । 6. काल की हानि-वृद्धि रूप भोजन दे प्रावर्तित दोष कहिये । ८. मंडपादिक का प्रकाश करैं सो प्राविष्करण दोष कहिये । ९. वाणिज्य रूप खरीद्या हुवा भोजन दे सो क्रीत दोष कहिये ।। ३ ।। ऐंसे सब दोष कहै हैं ।

आगैं और दोष कहै है—

अर्थ—१०. उधारो ल्यायकरि भोजन दे सो प्रामृष्य दोष कहिये । ११. पैला का सूं बदलायकरि भोजन दे सो परिवर्तक दोष कहिये । १२. अन्य प्रदेशसूं आयो भोजन दे सो अभिघट दोष कहिये । १३. बंधन दूरिकरि छांदो खोलकरि भोजन दे सो उद्भिन्न दोष कहियै । १४. पैडा (सीढ़ी) चढ़ि, घर ऊपर लैंषण सूं ल्यायो भोजन दे सो मालारोहण दोष कहिए १५. राजा, चोर इत्यादिक का भयादिक करि भोजन दे सो अच्छेद्य कहिये । १६. अप्रधान दाता भोजन दे सा अनिसष्ट (अनिशार्थं) दोष कहिये । अैसे सात दोष ये कहै, नव दोष पूर्वले गाथा विषै कहैं—अैसे सोलह दोष यह जाननें । अैसें सोलह यह उद्गम दोष जाननैं ।। ४ ।।

---

१. क० मुज्झिणमालमारोहे ।

पामिच्छे—प्रामृष्यं सूक्ष्मर्णमुद्धारकं । **परियट्टे**—परिवर्तकं दत्वा ग्रहणं । **अभिहड**—अभिघटो देशान्तरादागतः । **उब्भिण्णं**—उद्भिन्नं बन्धनापनयनं । **मालारोहे**—मालारोहणं गृहोर्ध्वमाक्रमणं । **अच्छिज्जे**—अच्छेद्यं त्रासहेतुः । **अणिसट्ठे**—अनीशार्थेऽप्रधानदाता । **उद्गमदोषाः षोडशेमे ज्ञातव्याः** ।। ४ ।।

गृहस्थाश्रितस्याधःकर्मणः स्वरूपं विवृण्वन्नाह—

छज्जीवणिकायाणं विराहणोद्दावणादिणिप्पण्णं ।
आधाकम्मं णेयं सयपरकदमादसंपण्णं ।। ५ ।।

आगैं गृहस्थाश्रित जो अधःकर्म ताका स्वरूप है, ताहि विवरण करता संता आचार्य कहै हैं—

अर्थ—षट् जीवनिकाय कहिये पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, त्रस—ये छह् काय के जीव तिनका विराधन कहिये दुःख उपजावनां उद्दावन कहिये मारणा, तिनकरि निष्पन्न कहिये उपज्या हुवा जो आहारादिक वस्तु सो अधःकर्म जानना । आपकरि कीया पैले करैं कराया अथवा पैलेनैं कीया, आप अनुमोदना करि सो जीवनि का विराधन उद्दवन अधःकर्म्म है, पापक्रिया है, तिनतैं निष्पन्न भया जो आहारादिक सो भी अधःकर्म हो कह्या । सो इहां कार्य कै विषैं कारण को उपचार जाननां । सो अैसा अधःकर्म वैयावृत्यादि विना संयमी कौं दूरि ही तैं छोड़नां इह गृहस्थपणा है । वैयावृत्यादि विना अपनैं भोजन के निमित्त यहु अधःकर्म षट्-जीवनिकाय की हिंसा का कारण मन, वचन, कायकरि करणां नांही, करावणां नांही, अनुमोदनाकरणो नाही । यह नवप्रकार अधः कर्म है सो छियालीस दोषनितैं जुदा सर्व प्राणि साधारण गृहस्थनिका कार्य संयमी कौं सर्वथा वर्जन कीया, जो यहु कर्म करै तो श्रमण काहे का ? गृहस्थ ही भया ।

इहां कोउ कहै तुम याका निषेध करो हो सो कोउ करै ही कहा ? ताका समाधान—जे अन्य लिंगी है, पाखंडी हैं, तिनकै यहु अधःकर्म देखियै है, तातैं निषेध करिये है । यह आचरण साधु का नांही । अैसा आचरण करै हैं, ते गृहस्थ हैं, नाममात्र ही तैं साधु होय नांही । जे घर छोड़ै है, परिग्रह छोड़ैं हैं, आरम्भ छोड़ै हैं,अधःकर्म करि भोजनादि नांही करै हैं, ते साधु हैं ।। ५ ।।

भावार्थ—रसोई करणां, पाणी परंडा रखणा, चाकी पीसणां, उखल खोटनां भुवारी देनां—इन कार्यनि में छहकाय के जीवनिका प्राण व्यपरोपण रूप आरम्भ होय है तथा तिन जीवनिकौं उपद्रव होय है तथा तिनिके अंग छेदादि रूप विद्रावण होय हैं तथा तिनिकौं संताप रूप करणैंरूप परितापन होय है—अैसे आरम्भ, उपद्रव, विद्रावण, परितापन—इनि च्यारि पाप कर्मनितैं निष्पन्न कीया भोजनादिक सो अतिनिंदित अधःकर्म है । संयमी कायकरि यहु अधःकर्म करै नांही, काय-चेष्टा समस्या करि अन्य करि करावै नांही, अन्यनैं कीया होय ताकी काय समस्याकरि अनुमोदना करै नांही । अधःकर्म करणें का वचन कहै नांही, वचन करि करावै नांही, वचन करि अनुमोदना करै नांही । अधःकर्म करणै का मन करै नांही, मनकरि करावै नांही, मनकरि अनुमोदना करै नांही—अैसे नवप्रकार अधःकर्मकरि वर्जित अष्ट प्रकार पिंडशुद्धिकरि भोजन करै है, तिन साधुनि कैं भिक्षा शुद्धि होय है ।। ५ ।।

षड्जीवनिकायानां पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकानां विराधनं दुःखोत्पादनं । **उद्द्रावणं**—उद्दवनं मारणं । विराधनोद्दवनाभ्यां निष्पन्नं संजातं विराधनोद्दवननिष्पन्नं यदाहारादिकं वस्तु तदधःकर्म ज्ञातव्यं । स्वकृतं परकृतानुमतं कारितमात्मनः सप्राप्तं । आत्मनः समुपस्थितं । विराधनोद्दवने अधःकर्मणी पापक्रिये ताभ्यां यन्निष्पन्नं तदप्यधः कर्मेत्युच्यते । कार्ये कारणोपचारात् । स्वेनात्मना कृतं परेण कारितं वा परेण वा कृतं, आत्मनानुमतं । विराधनोद्दवननिष्पन्नमात्मने संप्राप्तं यद्वैयावृत्यादिविरहितं तदधःकर्म दूरतः संयतेन परिहरणीयं गार्हस्थ्यमेतत् । वैयावृत्यादिविमुक्तमात्मभोजननिमित्तं पचनं षड्जीवनिकायबधकरं न कर्तव्यं न कारयितव्यमिति । एतत् षट्चत्वारिंशद्दोषवहिर्भूतं सर्वप्राणिसामान्यजातं गृहस्थानुष्ठेयं सर्वथा मुनिना वर्जनीयं । यद्येतत् कुर्यात्[1] श्रवणो गृहस्थः स्यात् । किमर्थमेतदुच्यत इति चेन्नैष दोषः, अन्येषु पाखण्डिस्वध्यासकर्मणो दर्शनाद्यथा[2] तेषां तदनुष्ठेयं तथा साधूनां तदनुष्ठानमयोग्यं । तेन गृहस्थाः । साधवः पुनरनागार निःसंगा यतो अतो नानुष्ठेयमधःकर्मेति ज्ञापनार्थमेतदिति ॥ ५ ॥

उद्गमदोषाणां स्वरूपं प्रतिपादयन् विस्तरसूत्राण्याह—

देवदपासंडट्ठं किविणट्ठं[3] चावि जं तु उद्दिसियं ।
कदमण्णसमुद्देसं चदुव्विहं वा समासेण ॥ ६ ॥

अधःकर्मणः [पश्चात्] औद्देशिकं सूक्ष्मदोषमपि परिहर्तुकामः प्राह—देवता नागयक्षादयः, पाषण्डा जैनदर्शनबहिर्भूतानुष्ठाना लिंगिनः कृपणका दीनजनाः । देवतार्थं पाखण्डार्थं कृपणार्थ चोद्दिश्य यत्कृतमन्नं तन्निमित्तं निष्पन्नं भोजनं तदौद्देशिकं अथवा चतुर्विधं सम्यगौद्देशिकं समासेन जानीहि वक्ष्यमाणेन न्यायेन ॥ ६ ॥

तमेव चतुर्विधं प्रतिपादयन्नाह—

जावदियं उद्देसो पासंडोत्ति य हवे समुद्देसो ।
समणोत्ति य आदेसो णिग्गंथोत्ति य हवे समादेसो ॥ ७ ॥

आगै सोलह प्रकार उद्गम दोष तिनका स्वरूप है, ताहि प्रतिपादित करना संता आचार्य विस्तार सूत्र हैं, तिनहि कहै है—

अर्थ—अधःकर्म्म महादोष है ताकी अपेक्षातैं उद्देशिक सूक्ष्म दोष है । ताका भी परिहार कै अर्थि कहै है । नाग, यक्षादिक देवता तिनिकैं अर्थि तथा जैनदर्शनतैं बाह्य है आचरण जिनिका अैसे अन्यलिंगी पाखंड, तिनिकै अर्थि तथा दीनजन, कृपण तिनिकै अर्थि तिनिका उद्देश कहिए नाम लेयकरि तिनिकै निमित्त कीया जो भोजन सो उद्देशिक कहिए । अथवा च्यारि प्रकार संक्षेपकरि कैं अगिले सूत्र मैं कहसी । तिस न्यायकरि, उद्देश करि कोया भोजन सो समौद्देशिक जानहु ॥ ६ ॥

तिसहि कूं प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—१. यावानुद्देश, २. समुद्देश, ३. आदेश, ४. समादेश–अैसे च्यारि प्रकार उद्देशिक भोजन का वर्णन करै हैं । तह

---

१. क कुर्यान्न । २. क यथास्तैस्तदनु° । ३. अ. ब. किमिणट्ठं ।

यावान् कश्चिदागच्छति तस्मै सर्वस्मै दास्यामीत्युद्दिश्य यत्कृतमन्नं स यावानुद्देश इत्युच्यते । ये केचन पाखण्डिन आगच्छन्ति भोजनाय तेभ्यः सर्वेभ्यो दास्यामीत्युद्दिश्य कृतमन्नं स पाखण्डिन इति च भवेत्समुद्देशः । ये केचन श्रत्रणा आजीवकतापसरक्तपटपरिव्राजका-श्छात्रा वागच्छन्ति भोजनाय तेभ्यः सर्वेभ्योऽहमाहारं दास्यामीत्युद्दिश्य कृतमन्नं स श्रवण इति कृत्वादेशो भवेत् । ये केचन निर्ग्रन्थाः साधव आगच्छन्ति तेभ्यः सर्वेभ्यो दास्यामीत्युद्दिश्य कृतमन्नं निर्ग्रन्था इति च भवेत्समादेशः । सामान्यमुद्दिश्य पाषण्डानुद्दिश्य श्रवणानुद्दिश्य यत्कृत-मन्नं तच्चतुर्विधमौद्देशिकं भवेदन्नमिति । उद्देशेन निर्वर्तितमौद्देशिकमिति ॥ ७ ॥

अध्यधिदोषस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

जलतंदुलपक्खेवो दाणट्ठं संजदाण [1]सयपयणे ।
अज्झोवज्झं[2]णेयं अहवा पागं तु जाव रोहो वा ॥ ८ ॥

१. जो कोई आवैगा तिस सर्वकैं अर्थि देवेंगे—अैसा उद्देशिकरि कीया जो अन्न सो यावानुद्देश कहिये। बहुरि २. जे केई पाखंडी अन्य लिंगी भोजन कै अर्थि आवैंगे तिनि सर्वकूं देवेंगे—अैसा उद्देशकरि कीया अन्न सो समुद्देश कहिये। बहुरि ३. जे केई श्रवण कहिए आजीवक तथा तापस तथा रक्तपट तथा परिव्राजक तथा छात्र भोजन कै अर्थि आवेंगे तिनि सर्वके अर्थि हम आहार देवेंगें—अैसे उद्देशकरि कीया भोजन सो आदेश कहिये। बहुरि ४. जे केई निर्ग्रंथ साधु आवैगे तिनि सर्वके अर्थि दैवेंगे—अैसा उद्देशकरि कीया भोजन सो समादेश कहिए। अैसे च्यारि प्रकार उद्देश्यकरि तिनिका नाम लेयकरि भोजन कीया, तातैं उद्देशिक च्यारि प्रकार वर्णन कीया ।। ७ ।।

आचारसार मैं अैसे कह्या है जो अपना नाम लेयकरि अन्न निष्पन्न कीया अथवा समस्त व्रती, पाखंडी, दुर्बल, तिनिका नाम लेयकरि अन्न कीया सो उद्दिष्ट अन्न है। जो अन्न प्रासुक, शुद्ध है तथापि आपकै अर्थि कीया है तो संयमी के सेव्य नांही। मदकारी, जल माछलेनि कै अर्थि कोया, ताकरि माछले उन्मत्त होहि हैं, मोडकै (मेंढक)उन्मत्त नांही होय हैं, तैसे संयमी का नाम लेयकरि ताकै अर्थि कोया अन्नकूं संयमी सेवै सो संयमी सदोष्य है।

भावार्थ—अैसे उद्देशकरि कीया अन्न संयमी लैवै नांही—इह उद्देशिक नाम प्रथम उद्गमदोष है। सो यहु दाता के आश्रय है। अैसे उद्देशकरि कीया भोजन साधु कूं श्रावक देवै नांही, अर साधु जानैं तदि लेवैं नांही, लीए पोछै जानें तो प्रतिक्रम-णादिक करैं। अैसे ही अन्य दोषनि विषैं भी जाननां।

आगैं अध्यधि दोष का स्वरूप है, ताहि आचार्य प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—संयमी कूं देखिकरि तिनिकूं दैनें के अर्थि आपकैं निमित्त भी जल तंदुल पचावनैकूं वर्तन में निक्षेपण कीए है तिनिमैं तिनिमैं और जल, तंदुल मिलाय दे, भोजन वधाय करैं, अैसे करैं तो अध्यधि दोष जाननां। अथवा जेतैं काल भोजन पचि तैयार होय, तेतैं काल तपसो (मुनि) कूं बैठा देख्या करैं, तपस्वो कूं पूजै, धर्मप्रश्नादि मिस (बहाना) करि बैठा राखै, (जब तक भोजन बनकर तैयार नहीं हो जाता, तब तक किसी बहाने मुनि को रोक लेना और) भोजन तैयार होय जदि उनकूं भोजन देवै, सो भी अध्यधि दोष जाननां ।। ८ ।। आचारसार (ग्रन्थ) विषैं यस (इस) दोष का नाम अध्यवधि कह्या है।

१. संपयणे। २. अ बोज्झं।

जलतंदुलानां प्रक्षेपः दानार्थं, संयतं[1] दृष्ट्वा स्वकीयपचने संयतानां दानार्थं स्वस्य निमित्तं यज्जलं पिठरे निक्षिप्तं तंदुलाश्च स्वस्य निमित्तं ये स्थापितास्तस्मिन् जलेऽन्यस्य जलस्य प्रक्षेपः तेषु च तंदुलेष्वन्येषां तंदुलानां प्रक्षेपणं यदेवंविधं तदध्यधि दोषरूपं ज्ञेयं। अथवा पाको यावता कालेन निष्पद्यते तस्य कालस्य रोधस्तावन्तं कालमासीन उदोक्षत एतदध्यधि दोषजातमिति ॥ ८ ॥

पूतिदोषस्वरूपं निगदन्नाह—

अप्पासुएण मिस्सं पासुयदव्वं तु पूदिकम्मं तं।
चुल्ली उक्खलि दव्वी भायणगंधत्ति पंचविहं ॥ ९ ॥

प्रासुकमप्यप्रासुकेन सचित्तादिना मिश्रं यदाहारादिकं स पूतिदोषः। प्रासुकद्रव्यं तु पूतिकर्म यत्तदपि पूतिकर्म, पंचप्रकारं **चुल्लो** रन्धनी। **उक्खलि** उदूखलः। **दव्वी**—दर्वी। **भायण**—भाजनं। **गन्धत्ति**—गन्ध इति। अनेन प्रकारेण रन्धन्युदूखलदर्वीभाजनगन्धभेदेन पंचविधं। रन्धनीं कृत्वैव महानस्यां रन्धन्यामोदनादिकं निष्पाद्य साधुभ्यस्तावद्दास्यामि पश्चादन्येभ्य इति प्रासुकमपि द्रव्यं पूतिकर्मणा निष्पन्नमिति पूतीत्युच्यते। तथोदूखलं कृत्वैमवस्मिन्नुदूखले चूर्णयित्वा यावदृषिभ्यो न दास्यामि तावदात्मनोऽन्येभ्यश्च न ददामीति निष्पन्नं प्रासुकमपि तत् तथाऽनया दर्व्या यावद्यतिभ्यो न दास्यामि तावदात्मनोऽन्येषां न तद्योग्यमेतदपि पूति। तथा भाजनमप्येतद्यावदृषिभ्यो न ददामि तावदात्मनोऽन्येषां च न तद्योग्यमिति पूति। तथायं गन्धो यावदृषिभ्यो न दीयते भोजनपूर्वकस्तावदात्मनोऽन्येषां च न कल्पते इत्येवं हेतुना निष्पन्नमोदनादिकं पूतिकर्म। तत्पंचप्रकारं दोषजातं प्रथममारम्भकरणादिनि ॥ ९ ॥

आगैं पूतिदोष का स्वरूप है, ताहि प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—प्रासुक आहारादिक, अप्रासुक-सचित्तादि वस्तुकरि मिश्र होय सो पूति दोष कहिए। बहुरि प्रासुक द्रव्य पूतिकर्म्म कल्पनाकरि मिल्या पूतिकर्म्म कहिए। सो पंच प्रकार है—१. चुल्ली (चूल्हा), २. उदूखल (ओखली), ३. दर्व्यी (कलछो), ४. भाजन, ५. गंध—ऐसे पांच प्रकार हैं।

तहाँ यहु चुल्ली कहिए रंधनी रसोई विषैं इस चूल्है ओदनादिक रांधिकरि प्रथम साधुनि कूं देवेंगे, पीछै अन्य कूं देवैंगे। साधुनि कूं नांही देवैं जैतैं अन्य कूं नांही देवैंगे,। अर हम भो नांही लेवेगैं—ऐसा संकल्प कोया, तातैं प्रासुक द्रव्य भो ऐसे संकल्परूप पूतिकर्म्मतैं तै निष्पन्न भया, तातैं पूतिदोष कहिये। ऐसे हो इस उदूखल विषैं अन्न कूटकरि पहलैं साधुनि कूं देवैंगे, तैते हमहु नांही लेवेगें, अन्यकूं नांही देवेंगैं—ऐसे संकल्पकरि पूतिकर्म का दूसरा भेद कहिए।

बहुरि इस दर्व्यी कहिए कलाई ताकरि जैंते जतोनि कूं नांही देवै तेतैं हमहु नांहो लेवैंगे, अन्य को नांही देवैगे—ऐसा संकल्पकरि पूतिकर्म्म का तोसरा भेद कहिये।

बहुरि इस भाजन तैं भोजन जैतैं यतीनकौं नांही देवैं, तैतैं हमहु नांहो लेवैंगे, अन्यकौं नांहो देवैगे—ऐसे संकल्पकरि पूतिकर्म्म का चौथा भेद कहिये।

तथा यहु गंध भोजन पूर्वक जेतैं ऋषीन कौं नांहो देवैगें, तेतैं हमहु नांहो लैंवैंगे, अन्यकूं नांहो देवैगें—ऐसे संकल्पकरि पूतिकर्म्म का पांचवां भेद कहिये। ऐसा पंच प्रकार प्रथम आरंभ करणेतैं पूतिदोष जाननां ॥ ९ ॥

---

१. क संयतान्।

मिश्रदोषस्वरूपं निरूपयन्नाह—

पासंडेहि य[1] सद्धं सागारेंहि य[2] जदण्णमुद्दिसियं ।
दादुमिदि संजदाणं सिद्धं मिस्सं वियाणाहि ॥ १० ॥

प्रासुकं सिद्धं निष्पन्नमपि यदन्नमोदनादिकं पाषण्डः सार्धं सागारैः सह गृहस्थैश्च सह संयतेभ्यो दातुमुद्दिष्टं तं मिश्रदोषं विजानीहि । स्पर्शनादिनानादरादिदोषदर्शनादिति ॥ १० ॥

स्थापितदोषस्वरूपमाह—

पागादु भायणाओ अण्णह्मि य भायणह्मि पक्खविय ।
सघरे[3] व परघरे वा णिहिदं ठविदं वियाणाहि ॥ ११ ॥

पाकाद्भाजनात् पाकनिमित्तं यद्भाजनं यस्मिन् भाजने पाको व्यवस्थितस्तस्माद्भाजनात् पिठरादोदनादिकमन्यस्मिन् भाजने-पात्र्यादौ प्रक्षिप्य व्यवस्थाप्य स्वगृहे वा नीत्वा निहितं स्थापितं यत स्थापितमिति दोषं जानीहि । सभयेन दात्रा दीयमानत्वाद्विरोधादिदोषदर्शनाद्वेति ॥ ११ ॥

बलिदोषस्वरूपं निरूपयन्नाह—

जक्खयणागादीणं बलिसेसं स[4] बलित्ति पण्णत्तं ।
संजदआगमणट्ठं बलियकम्मं वा बलिं जाणे ॥ १२ ॥

आगै मिश्रदोष का स्वरूप निरूपण करता संता कहै है ।

अर्थ—सिद्ध कहिये प्रासुक निष्पन्न भया जो अन्न ओदनादिक सो भी अन्य लिंगी तथा गृहस्थ तिनिकरि सहित संयमीनिकै अर्थि देणे का उद्देश करै तो मिश्र दोष जाननां । यामैं अन्य का स्पर्श दीनता, अनादर इत्यादि दोष देखिये हैं। तातैं संयमी मिश्र दोष सहित भोजन लैवे नांही ॥ १० ॥

आगैं स्थापित दोष का स्वरूप कहै है—

जिस भाजन विषै पाक कीया, तिस भाजनतैं अन्य भाजन पात्र इत्यादिक ताकै विषै तिस भोजनकौं धरिकरि अपने घर विषै तथा अन्यके घर विषैं जाइ, धरि दीया, ताहि स्थापित दोष जांनहु । दाता भय सहित देवै तामैं विरोधादिक दोष देखिये है तातैं स्थापित दोष कह्या ॥ ११ ॥

आगैं बलि दोष का स्वरूप निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ—यक्ष नागादिक कै निमित्त जो बलि कीयो होइ तामैं अवशेष रह्यौ होइ सो कारण विषैं कार्य के उपचारतैं बलि

१, २. अ. ब. ख. 'व' । ३. अ. ब. सगरे । ४. क ०सं तं ब० ।

यक्षनागादीनां निमित्तं यो बलि[1]स्तस्य बलि (लेः) शेषः स बलिशेषो बलिरिति प्रज्ञप्तः। सर्वत्र कारणे कार्योपचारात्। संयतानामागमनार्थं वा बलिकर्म तं बलिं विजानीहि। संयतान् धृत्वार्चनादिकमुदकक्षेपणं पत्रिकादिखण्डनं यत् यक्षादिबलिशेषश्च यस्तं बलिदोषं विजानीहि सावद्य दोषदर्शनादिति ॥ १२ ॥

प्राभृतदोषस्वरूपं विवृण्वन्नाह—

पाहुडियं पुण दुविहं बादर सुहुमं च दुविहमेक्केक्कं।
ओकस्सणमुक्कस्सण महकालोवट्टणावड्ढी ॥ १३ ॥

पाहुडियं—प्रावर्तिकं (प्राभृतकं)। **पुण**—पुनः। **दुविहं**—द्विविधं। **बादरं**—स्थूलं। **सुहुमं**—सूक्ष्मं। पुनरप्येकैकं द्विविधं। **ओक्कस्सणं**—अपकर्षणं। **उक्कस्सणं**—उत्कर्षणं। अथवा कालस्य हानिर्वृद्धिर्वा। अपकर्षणं कालहानिः। उत्कर्षणं कालवृद्धिरिति। स्थूलं प्राभृतं कालहानिवृद्धिभ्यां द्विप्रकारं तथा सूक्ष्मप्राभृतं तदपि द्विप्रकारं कालवृद्धिहानिभ्यामिति ॥ १३ ॥

बादरं च द्विविधं सूक्ष्मं च द्विविधं निरूपयन्नाह—

दिवसे पक्खे मासे वास परत्तीय बादरं दुविहं।
पुव्वपरमज्झबेलं परियत्तं दुविह सुहुमं च ॥ १४ ॥

कहिये, अैसो भोजन मुनि लेवे नांही तथा संयमोनिका आगमन कै अर्थि बलिकर्म करे सावद्य पूजन जल, चंदनादि क्षेपण करै—सो बलिदोष है। तहां मुनि भोजन लेवै नांहि। यामैं सावद्य का दोष देखियै है ॥ १२ ॥

आगै प्राभृत दोष का स्वरूप विवरण करता संता कहै है—

अर्थ—प्राभृत कहिये प्रावर्त्तित दोष है, सो दोय प्रकार है—एक तो वादर कहिये स्थूल, दूजा सूक्ष्म। बहुरि वादर है सो दोय प्रकार है—एक अपकर्षण, एक उत्कर्षण। काल की हाणि का नाम अपकर्षण है। काल की वृद्धि का नाम उत्कर्षण है। बहुरि सूक्ष्म है, सो भी दोय प्रकार है—एक अपकर्षण कहिये तथा काल की वृद्धि सो उत्कर्षण कहिए ॥ १३ ॥

आगैं बादर दोय प्रकार तथा सूक्ष्म दोय प्रकार कहा, ताहि निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ—दिवस है ताहि पलट (परावर्तन) करि, पक्ष हैं ताहि पलटकरि, मास है ताहि पलटिकरि, वर्ष है ताहि पलट करि जो दान दीजै सो वादर प्राभृत दोष है, (हानि-वृद्धि की अपेक्षा) दोय प्रकार है—शुक्ला अष्टमी विषैं देनां ठहराया काल-अपकर्षण करि शुक्ला पंचमी कै दिन देवैं तथा शुक्ला पंचमी कै दिन देवूंगा—अैसे ठहराय, काल का उत्कर्षण करि शुक्ल अष्टमी कै दिन देवै—यहु दोय प्रकार दिवस परावर्तन तैं उपज्या प्राभृत दोष है तथा चैत के शुक्ल पक्ष विषैं देनां ठहराय चैत का कृष्णपक्ष विषै देवै तथा अंधकार पक्ष में देना ठहराय, शुक्लपक्ष मैं देवैं—यहु पक्ष पलटनि तैं ऊपज्या दोष दोय प्रकार प्राभृतदोष है। दोष तथा चैत मास मैं देना ठहराय फालगुन मास में देवै तथा फालगुन मैं देनां ठहराय चैत मैं देवैं—सो यहु मास पलटनै तैं उपज्या दोष दोय

---

१. क बलिः कृतस्त०।

परावृत्यशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते, दिवसं परावृत्य, पक्षं परावृत्य, मासं परावृत्य, वर्षं परावृत्य यद्दानं दीयते तद्वादरं प्राभृतं द्विविधं भवति। शुक्लाष्टम्यां वा दास्यामीति स्थितं[1] उत्कृष्टा-(उत्कर्ष्या) ष्टम्यां ददात्येतद्दिवसं परावृत्य जातं परावृत्य जातं प्राभृतं तथा चैत्रशुक्लपक्षे देयं यत्तच्चैत्रांधकारपक्षे ददाति। अन्धकारपक्षे वा देयं शुक्लपक्षे ददाति पक्षपरावृत्तिजातं प्राभृतं। तथा चैत्रमासे देयं फाल्गुने ददाति फाल्गुने देयं वा चैत्रे ददाति तन्मासपरिवृत्तिजातं प्राभृतं। तथा परुत्तने वर्षे देयं यत्तदधुनातने वर्षे ददाति। अधुनातने वर्षे यदिष्टं परुत्तने ददाति तद्वर्षपरावृत्तिजातं प्राभृतं। तथा सूक्ष्मं च प्रावर्तितं द्विविधं पूर्वाह्णवेलायामपराह्णवेलायां मध्याह्णवेलायामिति। अपराह्णवेलायां दातव्यमिति स्थितं प्रकरणं मंगलं संयतागमनादिकारणेनापकृष्य पूर्वाह्णवेलायां ददाति पूर्वाह्णवेलायां दातव्यमित्युत्कृष्यापराह्णवेलायां ददाति तथा मध्याह्ने दातव्यमिति स्थित पूर्वाह्णेऽपराह्णे वा ददाति एनं प्रावर्तितदोषं कालहानिवृद्धिपरिवृत्त्या वादरसूक्ष्मभेदभिन्नं जानीहि क्लेशबहुवि[2]घातारंभदोषदर्शनादिति ॥ १४ ॥

प्रादुष्कारदोषमाह—

पादुक्कारो दुविहो संकसणं पयासणा य बोधव्वो ।
भायणभोयणदीणं[3] मंडवविरलादियं कमसो ॥ १५ ॥

प्रकार वादर-प्राभृतदोष है तथा पुर के वर्ष (गतवर्ष) विषैं देनां ठहराया सो अैस के (इस) वर्ष विषैं देवैं तथा अैसे के (इस) वर्ष विषै जो देना इष्ट कोया सो पुर के वर्ष मैं देवै—सो यहु वर्ष पलटनैं तैं उत्पन्न हुवा दोय प्रकार वादर प्राभृतदोष है।

तथा सूक्ष्म प्रावर्त्तित दोष दोय प्रकार है—पूर्वाह्ण वेला, अपराह्ण वेला, मध्याह्ण वेला पलटिकरि देवै—जैसैं अपरान्ह वेला मैं देना ठहराय प्रकरण मंगल (मंगल प्रकरण) संयत का आगमन इत्यादिक कारणकरि काल का अपकर्षण करि पूर्वाह्ण वेला विषैं देवै तथा मध्याह्ण हू वेला विषैं देनां ठहराय, पूर्वाह्ण विषै तथा अपरान्ह विषै देवै—यहु दोय प्रकार का सूक्ष्म प्रावर्त्तित दोष जाननां।

काल की हानि वृद्धि पलटनैं करि दोय-दोय प्रकार बादर-सूक्ष्म भेदकरि कै भिन्न-भिन्न रूप प्रावर्तित दोष जाननां। यामैं कलेस तथा बहु विघात तथा आरंभ—ये दोष देखिये हैं। तातैं आचारसार मैं यह कह्या है—वेला, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष, इत्यादि नियमकरि जो यती कौं दीया अन्न सो प्राभृत दोष कह्या है। अैसा अन्न संयमी लेवै नांही ॥ १४ ॥

आगै प्रादुष्कर नामा आठवां उद्गम दोष, ताहि कहै है—

अर्थ—प्रादुःकार दोष दोय प्रकार जाननां। भाजन, भोजनादिक का संक्रमण कहिये अन्य प्रदेशतैं अन्य प्रदेश विषैं प्राप्त करनां—एक तौ यह दोष तथा भाजनादिक का प्रकाशन कहिये भस्मो (राख) इत्यादि करि तथा जल इत्यादि करि मांजनां तथा भाजनादिक का विस्तार करनां, फैलावनां अथवा मंडप का विरलन कहिये उद्योतन करनां (खोल देना), आदि शब्दकरि भीति (दीवाल) इत्यादिक का उज्जवलन करनां, प्रदीप का जोवनां (जलाना)—अैसे सर्व प्रकार संक्रमणादिक प्रादुःकार दोष हैं। यामैं ईर्यापथ का दोष देखिये है। तातैं अैसा दोष साधु नांही लगावै ॥ १५ ॥ आचारसार मैं याका नाम प्राविष्कृत कह्या है।

१. क °तमपकृष्य उत्कृष्टाष्टम्यां।   २. क °विघाता°।   ३. अ. ब. क ख. °णमादी मं।

प्रादुष्कारो द्विविधो बोधव्यो ज्ञातव्यः । भाजनभोजनादीनां संक्रमणमेकः । तथा भाजनभोजनादीनां प्रकाशनं द्वितीयः । संक्रमणमन्यस्मात्प्रदेशादन्यत्र नयनं प्रकाशनं भाजनादीनां भस्मादिनोदकादिना वा निर्माजनं भाजनादेर्वा विस्तरणमिति । अथवा मण्डपस्य विरलनमुद्योतनं मण्डपादिविरलनं । आदिशब्देन कुड्यादिकस्य ज्वलनं प्रदीपद्योतनमिति संक्रमः सर्वः प्रादुष्कारो दोषोऽयं । ईर्यापथदोषदर्शनादिति ।। १५ ।।

क्रीततरदोषस्वरूपमाह—

कीदयडं पुण दुविहं दव्वं भावं च सगपरं दुविहं ।
सच्चित्तादी दव्वं विज्जामंतादि भावं च ।। १६ ।।

क्रीततरं पुनर्द्विविधं द्रव्यं भावश्च । द्रव्यमपि द्विविधं स्वपरभेदेन स्वद्रव्यं परद्रव्यं स्वभावः परभावश्च । सचित्तादिकं गोमहिष्यादिकं द्रव्यं । विद्यामंत्रादिकं च भावः । संयते भिक्षायां प्रविष्टे स्वकीयं परकीयं या सचित्तादिद्रव्यं दत्त्वाहारं प्रगृह्य ददाति तथा स्वमंत्रं वा स्वविद्यां परविद्यां वा दत्त्वाहारं[1] प्रगृह्य ददाति यत् स क्रीतदोषः कारुण्यदोषदर्शनादिति । प्रज्ञप्त्यादिर्विद्या । चेटकादिमंत्र इति ।। १६ ।।

ऋणदोषस्वरूपमाह—

डहरिय रिणं तु भणियं पामिच्छं ओदणादिअण्णदरं ।
तं पुण दुविहं भणिदं सवड्ढियमवड्ढियं चावि ।। १७ ।।

आगैं क्रीततर नामा उद्गम दोष, ताहि कहै है—

अर्थ—बहुरि क्रीततर दोष है, सो दोय प्रकार है—येक द्रव्य, एक भाव। तहां द्रव्य क्रीततर है सो दोय प्रकार है—स्वद्रव्य, परद्रव्य के भेदकरिकैं। बहुरि भावक्रीततर है सो दोय प्रकार है—स्वभाव, परभाव के भेदकरि। तहां संयमी भिक्षां कै अर्थि प्रवेश करतैं संतैं अपना तथा पैलें का सचित्तादिक गाय, भैंसि आदिक द्रव्य हैं, ताहि देयकरि, बदलैं आहार लेयकरि साधु कौं देवैं तौ द्रव्य क्रीततर दोष कहिये। तथा स्वमंत्र अथवा परमंत्र (स्वविद्या या परविद्या) चेटकादि (मन्त्र) रूप तथा स्वविद्या प्रज्ञप्ति आदि कौं देकरि, तिनकौं दैय, बदलैं आहार लेय साधु कौं देवै सो भाव क्रीततर दोष कह्या। यामैं कारुण्य दोष देखियै हैं, तातैं अैसा भोजन मुनि लेवे नांही ।। १६ ।।

आगैं ऋण नामा दशवां उद्गम दोष, ताकी स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ—लघु ऋण कहिये स्तोक ऋण, सो प्रामृष्य दोष कहिये ओदनादिक तथा अन्यतरत कहे, ए मंडकादिक भिक्षाचर्यातैं प्रवेश करता जो साधु, त्यानैं आता संता दाता अन्य के घर जाहि, अर भक्ति करि, अर भक्तादिक मांगै—'मोंकों भक्तपान, स्वाद्य, मंडक देहु, साधुनिकैं कारण जाचैं (मांगें), यहु कहैं—तुमकौं ओदनादिक जैसें लीये तैंसे के तैसे द्यूंगा अथवा वृद्धि सहित द्यूंगा—अैसे कहि मंडकादिक उधारे लेय अर संयमीनिकैं अर्थि देवै, ताहि ऋण सहित प्रामृष्य दोष जानहु। दाता कैं कलेश आयास (परिश्रम) आदिक देखिये हैं। तातैं अैसा अन्नादिक साधु नांही लेवै ।। १७ ।।

१. क °हारादिकं प्रगृह्य ।

उद्दरिवरिणं तु—लघुऋणं स्तोकणं भणितं । **पामिच्छं**—प्रामृष्यं ओदनादिकं भक्तं मण्डकादिमन्यतरत् । तत्पुनर्द्विविधं सवृद्धिकमवृद्धिकं चापि । भिक्षौ चर्यायां प्रविष्टे दातान्यदीयं गृहं गत्वा भक्त्या भक्तादिकं याचते वृद्धिं समिष्य वृद्धयाविना वा साधुहेतोः । तवौदनादिकं वृद्धि-सहितमन्यथा दास्यामि मम भक्तं पानं खाद्यं मण्डकाश्च प्रयच्छ । एव भणित्वा मण्डकादीन् गृहीत्वा संयतेभ्यो ददाति तदृणसहितं प्रामृष्यं दोष जानीहि । दातुः क्लेशायासकरणादिदर्शनादिति ॥ १७ ॥

परावर्तदोषमाह—

बीहीकूरादीहिं य सालीकूरादियं तु जं गहिदं ।
दातुमिति संजदाणं परियट्टं होदि णायव्वं ॥ १८ ॥

संयतेभ्यो दातुं व्रीहिक्रूरादिभिर्यच्छालिक्रूरादिकं संगृहीतं तत्परिवर्तं भवति ज्ञातव्यं । मदीयं व्रीहिभक्तं गृहीत्वा मम शाल्योदनं प्रयच्छ साधुभ्योऽहं दास्यामीति मण्डकान्वा दत्वा व्रीहिभक्तादिकं गृह्णाति साधुनिमित्तं यत्तत्परिवर्तनं नाम दोषं जानीहि । दातुः क्लेशकारणा-दिति ॥ १८ ॥

अभिघटदोषस्वरूपं विवृण्वन्नाह—

देसत्ति य सव्वत्ति य दुविहं पुण अभिहडं वियाणाहि ।
आचिण्णमणाचिण्णं देसाभिहडं हवे दुविहं ॥ १९ ॥

देश इति सर्वं इति द्विविधं पुनरभिघटं विजानीहि । एकदेशादागतमोदनादिकं देशाभिघटं । सर्वस्मादागतमोदनादिकं सर्वाभिघटं । देशाभिघटं पुनर्द्विविधं । आचिन्नानाचिन्नभेदात् । आचिन्नं योग्यं । अनाचिन्नमयोग्यमिति ॥ १९ ॥

आगै परिवर्त (परावर्त) नामा ग्यारवां उद्गम दोष ताहि कहै है—

अर्थ—संयमीन कै अर्थि देनें कौं अपने व्रीहि, क्रूरादिक (धान्यविशेष के भात आदि को) देयकरि, अन्यकौं कहै—'मेरे व्रीहि-भक्त लेहु, मौंकौं शालि ओदन देहु, मैं साधुनि कै अर्थि देऊंगा'—ऐसे शालि क्रूरादिकूं पलटि ल्यावै अथवा मंडक देय व्रीहि-भक्तादिक लेय साधुनि कै निमित्त, ऐसे पलटिकरि भोजन देय—यह दाता के क्लेश का कारण है । तातैं याहि परिवर्तनाम दोष जानहु ॥ १८ ॥

आगै अभिघट नामा बारवां उद्गम दोष ताका स्वरूप है, ताहि विवरण करता संता कहै है—

अर्थ—अभिघट नामा दोष है ताहि दोय प्रकार जानहु—एक देशाभिघट, दूजा सर्वाभिघट । तहां देशाभिघट है सो दोय प्रकार है—एक आचिन्न, एक अनाचिन्न । अन्य स्थानकतैं भोजन ल्याय दीजिये, तहां अभिघट दोष लागै । एकदेशतैं आया ओदनादिक ग्रहण करणें योग्य होय सो तो आचिन्न कहियै हैं । जो ग्रहण करनें योग्य नांही होय सो अनाचिन्न कहिये ॥ १९ ॥

आचिन्नानाचिन्नस्वरूपमाह—

उज्जु तिहिं सत्तहिं वा घरेहिं जदि आगदं दु आचिण्णं ।
परदो वा तेहिं भवे तव्विवरीदं अणाचिण्णं ।। २० ।।

ऋजुवृत्या पंक्तिस्वरूपेण यानि त्रीणि सप्त गृहाणि वा व्यवस्थितानि । तेभ्यस्त्रिभ्यः सप्तभ्यो वा गृहेभ्यो यद्यागतमोदनादिकं तु आचिन्नं ग्रहणयोग्यं दोषाभावात् । परतस्त्रिभ्यः सप्तगृहेभ्य ऊर्ध्वं यद्यागतमोदनादिकमनाचिन्नं ग्रहणायोग्यं तद्विपरीतं वा ऋजुवृत्या विपरीतेभ्यः सप्तेभ्यो यद्यागतं तदप्यनाचिन्नमादातुमयोग्यं । यत्र तत्र स्थितेभ्यो सप्तभ्यो गृहेभ्योप्यागतं न ग्राह्यं दोषदर्शनादिति ।। २० ।।

सर्वाभिघटभेदं प्रतिपादयन्नाह—

सव्वाभिघडं चदुधा सयपरगामे सदेसपरदेसे ।
पुव्वपरपाडणयडं पढमं सेसंपि णादव्वं ।। २१ ।।

सर्वाभिघटं चतुर्विधं जानीहि । स्वग्रामपरग्रामस्वदेशपरदेशभेदात् । स्वग्रामादागतं परग्रामादागतं स्वदेशादागतं परदेशादागतमोदनादिकं यत् तच्चतुर्विधं सर्वाभिघटं । यस्मिन् ग्रामे आस्यते स स्वग्राम इत्युच्यते । तस्माद्येभ्यः स परग्राम इत्युच्यते । एवं स्वदेशः परदेशोऽपि ज्ञातव्यः ।

सो आचिन्न-अनाचिन्न का स्वरूप कहैं हैं—

अर्थ—ऋजु कहिए पंक्ति स्वरूप सूधा (सोधा-सरल) लगता तीन अथवा सात घर होय, तिनितैं आयो ओदनादिक सो आचिन्न कहिये । ग्रहण योग्य है, यामैं दोष नांही । तिन तीन अथवा सात गृहतैं उपरांति आठवां, नवमा इत्यादि घरतैं आया औदनादिक अनाचिन्न कहिये ग्रहण करनें कूं योग्य नांही । बहुरि ऋजुवृत्ति करि विपरीत वाके (बाकी) सात घरतैं आया भी अनाचिन्न कहिए ग्रहण करनें कूं योग्य नांही । जहां-तहां सात घर होय तिनितैं ले आया ओदनादिक ग्रहण योग्य नांहीं, यामैं दोष देखिये हैं, तातैं अनाचिन्न कहिए ।। २० ।।

आगैं सर्वाभिघट दोष के भेद हैं, ताहि प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—सर्वाभिघट दोष हैं ताहि च्यारि प्रकार जानहु—१. स्वग्राम, २. परग्राम, ३. स्वदेश, ४. परदेश । आप बैठा सो स्वग्राम कहिये, तातैं अन्य सो परग्राम कहिये । जिस देश में आप बैठा सो स्वदेश कहिए, तातैं अन्य सो परदेश कहिये ।

इहां कोई वितर्क करैं स्वग्रामतैं ल्यावणा कैसें वनै ? अैसे आशंका होतैं समाधान करै हैं—पूर्व दिशा के पाडातैं[1] वासतैं पच्छिम दिशा के पाडै वास ले जाणां तथा पच्छिम दिशा के पाडा वासतैं पूर्व दिशा के पाडा वासतैं ले जानां, सो स्वग्रामाभिघट नामा सर्वाभिघट दोष का प्रथम दोष जाननां । अैसे ही अवशेष तीनभेद सर्वाभिघट कैं जानउ । परग्रामतैं स्वग्राम के विषैं ल्यावनां, स्वदेशतैं स्वग्राम मैं ल्यावना तथा परदेशतैं स्वदेश मैं ल्यावणां । अैसे सर्वाभिघटदोष प्रचुर ईर्यापथ के देखवै तैं च्यारि प्रकार सर्वाभिघट दोष हैं, ताहि जानहु ।। २१ ।।

१. पाटक = गाँव का एक भाग या विभाजक गली आदि ।

३६

ननु स्वग्रामात्कथमागच्छतीत्येतस्यामाशंकायामाह—पूर्वपाटकात् परस्मिन् पाटके नयनं परपाटकाद्वा[1]परस्मिन् नयनमोदनादिकस्य यत्तत स्वग्रामाभिघटं प्रथमं जानीहि । तथाशेषमपि जानीहि परग्रामात्स्वग्राम आनयनं स्वदेशात स्वग्राम आनयनं परदेशात्स्वग्रामे स्वदेशे वानयनमिति सर्वाभिघटदोषं चतुर्विधं जानीहि । प्रचुरेर्यापथदर्शनात ।। २१ ।।

उद्भिन्नदोषमाह—

पिहिदं लंछिदयं वा ओसहघिदसक्करादि जं दव्वं ।
उब्भिण्णिऊण देयं उब्भिण्णं होदि णादव्वं ।। २२ ।।

पिहितं पिधानादिकेनावृतं कर्दमजंतुना वा संवृतं । लांछितं मुद्रितं नामबिंबादिना च यदौषधं घृतशर्करादिकं गुडखंडलड्डुकादिकं द्रव्यमुद्भिद्योघाट्य देयं स उद्भिन्नदोषो भवति ज्ञातव्यः पिपीलिकादिप्रवेशदर्शनादिति ।। २२ ।।

मालारोहणं दोषं निरूपयन्नाह—

णिस्सेणीकट्ठादिहि णिहिदं पूयादियं[2] तु घेत्तूणं ।
मालारोहं किच्चा देयं मालारोहणं णाम ।। २३ ।।

निःश्रेण्या काष्ठादिभिर्हेतुभूतैर्मालारोहणं कृत्वा मालं द्वितीयगृहभूमिमारुह्य गृहोर्ध्वभागं चारुह्य निहितं स्थापितमपूपादिकं मंडकलड्डुकशर्करादिकं गृहीत्वा यद्देयं स मालारोहो नाम दोषः । दातुरपायदर्शनादिति ।। २३ ।।

अच्छेद्यदोषस्वरूपमाह—

रायाचोरादीहिं य संजदभिक्खासमं तु दट्ठूणं ।
बीहेदूण णिजुत्तं[3] अच्छिज्जं[4] होदि णादव्वं ।। २४ ।।

आगैं उद्भिन्न नामा तेरवां उद्गम दोष, ताहि कहै है—

अर्थ—पिहित कहिए पिधानिक करि आवृत कादो, माटी, लाख, चिपटीकरि ढक्यौ अथवा लांछित कहिए मुद्रित जो नाम, बिम्ब, मुद्रिका, महोर (मुहर), छापकरि[5] चिह्नित जो औषध, घृत, शर्करा, आदि शब्दकरि गुड, खंड, लड्डुकादिक द्रव्य उघाडि करि दीजिए तो उद्भिन्न नामां दोष जाननां । कीडी (कृमि) चींटो आदि का प्रवेश देखिए हैं । तातैं इह दोष कह्या ।।२२।।

आगै मालारोहण नाम चौदमां उद्गम दोष ताहि निरूपण करता संता आचार्य कहै हैं—

अर्थ—माला कहिए घर का दूजा खण (तल) अथवा घर का उर्ध्व-भाग, तहां निहित कहिए स्थापित जें पूवा, मण्डक, लड्डुक, शर्करादिक भोजन, ताहि निसीरणी काष्ट (नसैनी-सीढ़ी) इत्यादिक पगथ्यानि करि आरोहण करि चढि ग्रहणकरि ल्यायकरि दीजिए तो मालारोहण नामा दोष होय । यामैं दाता कैं विघ्न देखिये हैं । तातैं यह दोष कह्या है ।। २३ ।।

आगैं आछेद्य नामा पनरहवां उद्गम दोष ताका स्वरूप है, ताहि कहै है—

---

१. क ०द्वापूर्वस्मिन् । २. अ. ब. पूवादियं । ३. णिजुज्जं । ४. ख. अच्छेज्जं । ५. आवृत कादो·······से यहाँ तक का पाठ 'अ' (तिजारा) प्रति में नहीं है ।

संयतानां भिक्षाश्रमं दृष्टवा राजा चौरादय एवमाहुः कुटुम्बिकान् यदि संयतानामागतानां भिक्षादानं न कुरु (र्व) ते तदानीं युष्माक द्रव्यमपहरामो ग्रामाद्वा निर्वासयाम इति । एवं राज्ञा चौरादिभिर्वा कुटुम्बिकान् भावयित्वा नियुक्तं नियोजितं यद्दानं नाम तदाच्छेद्यं नाम दोषो भवति ज्ञातव्यः । कुटुम्बिनां भयकरणादिति ।। २४ ।।

अनीशार्थदोषस्वरूपं विवृण्वन्नाह—

अणिसट्ठं पुण दुविहं इस्सरमह णिस्सरं चदुवियप्पं ।
पढमिस्सर सारक्खं वत्तावत्तं च संघाडं ।। २५ ।।

अनीशार्थोऽप्रधानहेतुः । स पुनर्द्विविध ईश्वरो वानीश्वरश्च । अथवाऽधनेश्वर इति पाठः । अनीशोऽप्रधानोऽर्थः कारणं यस्यौदनादिकस्य तदौदनादिकमनीशार्थं तद्ग्रहणे यो दोषः सोऽप्यनीशार्थः कारणे कार्योपचारादिति[1] स चानीशार्थो द्विविधः ईश्वरानीश्वरभेदेन । द्विविधोऽपि चतुर्विधः । प्रथम ईश्वरो दानस्य सारक्षः सहारक्षैर्वर्तते इति सारक्षः यद्यपि दातुमिच्छति तथापि दातुं न लभतेऽन्ये विघातं कुर्वन्ति तत्तस्य ददतः स ईश्वरो ददाति अन्ये चामात्यपुरोहितादयो विघातं कुर्वन्ति, एवं यदि तदान्नं गृह्यते प्रथम ईश्वरो नामैकभेदोऽनीशार्थो दोष इति । तथानीश्वरोऽप्रधानहेतुर्यस्य दानस्य तद्दानमनीशार्थं दोषोप्यनीशार्थः इत्युच्यते कार्ये कारणोपचारात् । स चानीशार्थस्त्रिप्रकारो व्यक्तोऽव्यक्तः संघाटकः । दानादिकस्यानीश्वरः स्वामी न भवति किन्तु व्यक्तः प्रेक्षापूर्वकारी तेन दीयमानं यदि गृह्णाति तदा व्यक्तोऽनीश्वरो नामानीशार्थो दोष इति । तथा दानस्यानीश्वरस्तया (दा) व्यक्तोऽप्रेक्षापूर्वकारी भवति तेन दीयमानं यदि गृह्णाति तदाव्यक्तानीश्वरो नामानीशार्थं इति । तथा संघाटकेन व्यक्ताव्यक्तानीश्वरेण दीयमानं यदि गृह्णाति तदाव्यक्ताव्यक्तसंघाटानीश्वरो नामानीशार्थो दोषाऽपायदर्शनादिति । अथवैवं बाह्यं, ईश्वरेण प्रभुणा व्यक्ते-

---

अर्थ—संयतानिकै भिक्षा का श्रम देखि राजा, चौरादिक गृहस्थीनि कूं ऐसे कहै है—जो आए संयमीनिकूं भिक्षादान नांही करोगे तौ तुमारा द्रव्य हम हरैंगे, तुमकूं ग्रामतैं निकासि दैंगें—ऐसे डर उपजाय नियोगरूप कीया जो दान सो आछेद्यनाम दोष जाननां । गृहस्थनि कै भय का कारण तातैं यह दोष कह्या ।। २४ ।।

आगै अनीशार्थ नामा सोल्हवां उद्गम दोष, ताका स्वरूप है, ताहि विवरण करता संता आचार्य कहै है—

अर्थ—अनीशार्थ अप्रधान हेतु का नाम है । अनीश कहिए अप्रधान, सो है अर्थ कहिये कारण जिस ओदनादिक का, सो ओदनादिक अनीशार्थ है तिसकै ग्रहण करणैं विषैं जो दोष, सो भी कारण विषैं कार्य का उपचार करणैं तैं अनीशार्थ ही कहिये । सो अनीशार्थ दोष एक ईश्वर, एक अनीश्वर—ऐसे भेदकरि दोय प्रकार है । तथापि एक ईश्वर, तीन प्रकार अनीश्वर—ऐसे भेद कीये च्यारि प्रकार जाननां ।

तहां ईश्वर कहिए दान का स्वामी, सो सारक्ष होय । यद्यपि आप दैनें की इच्छा करै हैं, तथापि देय नांही सकै हैं । आरक्ष जे अन्य अमात्य, पुरोहित इत्यादिक तिनकरि सहित होय सो सारक्ष कहिये, सो तिसकौं देतेकौं अमात्य, पुरोहिततादिक आरक्ष कहिए रखवाले, ते विघात करै हैं, मनैं करैं हैं—ऐसे होतैं जो दान के स्वामी का दीया हुवा भी भोजन ले, तो ईश्वर नाम अनीशार्थ दोष है । इहां दान का स्वामी प्रधान नांही ।

---

१. ख. कार्ये कारणोपचारादित ।

नाव्यक्तेन वा यत्सारक्षं यत्प्रतिषिद्धं तद्दानं यदि साधु गृह्णाति तदा व्यक्ताव्यक्तेश्वरो नामानीशार्थो दोषः । तथानीश्वरेण प्रभुणा व्यक्तेनाव्यक्तेन वा यत्प्रतिषिद्धं सारक्ष्यं दानं तद्यदि गृह्णाति साधुस्तदा व्यक्ताव्यक्तानीश्वरो नामानीशार्थो दोषः। तथा संघाटकः समवाय एको ददात्यपरो निषेधयति दानं तत्तथाभूतं यदि गृह्णाति साधुस्तदा संघाटको नामानीशार्थो दोष इति । ईश्वरो व्यक्ताव्यक्तसंघाटभेदेन द्विविधः । अनीश्वरो व्यक्ताव्यक्तसंघाटभेदेन द्विविध इति । अत्र चशब्दः समुच्चयार्थो द्रष्टव्यः । ईश्वरो द्विविधः । अनीश्वरो द्विविधः । प्रथम ईश्वरेण व्यक्ताव्यक्तसंघाटकेन वा सारक्षोऽनीशार्थः । द्वितीयोऽनीश्वरेण व्यक्ताव्यक्तसंघाटकेन वा संरक्ष्योऽनीशार्थ इति अथवा व्यक्तेनाव्यक्तेन चेश्वरेण सारक्ष्यं प्रथम ईश्वरानीशार्थो द्विविधः । तथा व्यक्तेनाव्यक्तेन चानीश्वरेण सारक्ष्यं, द्वितीयोऽनीश्वरोऽनीशार्थो द्विविध इति । तथा संघाटकेन च सारक्ष्यं पृथग्भूतोऽयं दोषोऽनीशार्थो द्रष्टव्यः सर्वत्र विरोधदर्शनादिति । अथवा निसृष्टो मुक्तो न निसृष्टोऽनिसृष्टो निवारितः स च द्विविधः ईश्वरोऽनीश्वरश्च । ईश्वरेण निसृष्टोऽनीश्वरेणऽनिसृष्टः ईश्वरश्चतुर्भेदोस्तयाऽनीश्वर इति । प्रथमः ईश्वरः सारक्षो व्यक्तोऽव्यक्तः संघाटकः । तथानीश्वरोऽपि सारक्षो व्यक्तोऽव्यक्तः संघाटकः । मन्त्रादियुक्तः सारक्षः बालो व्यक्त[1] द्वयोः स्वामित्वं संघाटकः । एवमनीश्वरोऽपि द्रष्टव्यः इति । एतैरनिसृष्टं निषिद्धं दत्तं वा दानं यदि गृह्यते तदा निसृष्टो नाम दोषो भवति विरोधदर्शनादिति ॥ २५ ॥

बहुरि दूजा भेद अनीश्वर, सो तीन प्रकार—एक तो व्यक्त, एक अव्यक्त, एक संघाटक । व्यक्त कहिए प्रेक्षापूर्वकारी (विवेक-बुद्धि से कार्य करने वाले) अथवा वृद्ध अथवा सारक्ष कहिये स्वतंत्र, बहुरि अव्यक्त कहिये अपेक्षापूर्वकारी (अबुद्धि से कार्य करने वाले) अथवा बाल अथवा असारक्ष कहिए परतंत्र । बहुरि संघाटक कहिये—कोई व्यक्त, कोई अव्यक्त—असें समूह रूप एक जणांदे हैं, दूसरा निषेध करै हैं—अैसे तीन प्रकार अनीश्वर कहै । तिनकरि दीया भोजन लेवै तो अनीश्वरभेद रूप तीन प्रकार अनीशार्थ दोष जाननैं । इनमें अपाय देखिये हैं, तातैं यह दोष वर्णन कीया । अथवा अन्य प्रकार करि दोष कहै है—

बहुरि अर्थ कहै है—ईश्वर कहिए दान का स्वामी व्यक्त अथवा अव्यक्त दान देवैं परंतु सारक्ष होय कोई रखवाले प्रतिषेध करै हैं । तिसदान कौं जो लेवै तो व्यक्ताव्यक्त ईश्वर नाम अनीशार्थ दोष जानना । तथा अनीश्वर कहिए दान का स्वामी नांही, अैसा व्यक्त-अव्यक्त जो दान देवैं परंतु सारक्ष होय कोई प्रतिषेधै, तिस दान कौं जो साधु लेवै तो व्यक्ताव्यक्त अनीश्वर नाम अनीशार्थ दोष जानना । तथा संघाटक कहिये समवाय है—एक जणां दान देवै है, अन्य कोइ निषेध करै हैं—अैसे जो साधु लेवे तौ संघाटक नाम अनीशार्थ दोष जानना । अथवा अन्य अर्थ कहै है—ईश्वर कहिए दान का स्वामी, सो देवै हैं अर ईश्वर ही व्यक्त, अव्यक्त, संघाटक तिनिकरि सारक्ष हैं, वे देतैं मनै करै है—यह अनीशार्थ दोष है । तथा ईश्वर-दान का स्वामी देवै है, अर अनीश्वर व्यक्त, अव्यक्त संघाटक हैं तिनि करि सारक्ष हैं वे रखवालै मनैं करै हैं, यह भी अनीशार्थ दोष है । तथा अनीश्वर देवै, व्यक्त, अव्यक्त, ईश्वरकरि सारक्ष होय यह हु अनीशार्थ दोष होय है । तथा अनीश्वर देवै व्यक्त, अव्यक्त, अनीश्वर करि सारक्ष होय, ते रखवाले मनै करैं—यह हु अनीशार्थ दोष है तथा संघाटक करि सारक्ष होय संघाटक रखवाले मनै करै, यह जुदा हू अनीशार्थ दोष जानना । सर्वभेदनि मैं परस्पर विरोध के देखनैं तैं यहु दोष कहे ।

---

१. ख. वृद्धोव्यक्तः बालोव्यक्तः ।

उत्पादनदोषान् प्रतिपादयन्नाह—

धादीदूदणिमित्ते आजीवे वणिवग्गे य तेगिंछे ।

कोधी माणी मायी लोही य हवंति दस एदे ।। २६ ।।

धादी—धात्री माता । **दूद**—दूतो लेखधारकः । **णिमित्ते**—निमित्तं ज्योतिषं । **आजीवे**—आजीवनमाजीविका । **वणिवग्गेय**—वनीपकवचनं दातुरनुकूलवचनं । **तेगिंछे**—चिकित्सा वैद्यशास्त्रं । **कोधी**—क्रोधी । **माणी**—मानी । **माई**—मायी । **लोही**—लोभी । **हवंति दस एदे**—भवन्ति दशैत उत्पादनदोषाः ।। २६ ।। तथा—

पुव्वी पच्छा संथुदि विज्जामंते य चुण्णजोगे य ।

सप्पादणा य दोसो सोलसमो मूलकम्मे य ।। २७ ।।

संस्तुतिशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । पूर्वसंस्तुति पश्चात् संस्तुतिः । पूर्वसंस्तुतिः दानग्रहणात्प्राग्दातुः संस्तवः, दानं गृहीत्वा पश्चाद् दातुः संस्तवनं । **विज्जा**—विद्याकाशगामिनीरूपपरिवर्तिनी शस्त्रस्तम्भिन्यादिका । **मंते च**—मंत्रश्च सर्पवृश्चिकविषापहरणाक्षराणि । **चुण्ण-**

अथवा निसृष्ट नाम मुक्त का है (जो त्याग किया गया है), निसृष्ट नांही सो अनिसृष्ट कहिये । अनिसृष्ट कहिये निवारण (निवारित) कोया, निषेध्या जो भोजन लेवै, सो अनिसृष्टदोष कहिये । तहां ईश्वर दान का स्वामी सारक्ष होय, व्यक्त होय तथा अव्यक्त होय तथा संघाटक होय, ईश्वर करि अनिसृष्ट होय तथा अनीश्वर करि अनिसृष्ट होय—इहां अनिसृष्ट नाम दोष जाननां । इनिमैं विरोध देखियै हैं, तातैं ये दोष कहै हैं ।

आचारसार में याका संक्षेप अैसा कह्या है—जो इस अनोश के अनभिमत करि दीजिये सो अनिसृष्ट दोष हैं । चारित्रसार मैं अैसा संक्षेप कह्या है—जहां अप्रधान दाता तहां निसृष्ट दोष कहियै । अैसे सोलह (१६) उद्गम दोष वर्णन कीया ।। २५ ।।

आगै सोलह उत्पादन दोष हैं, तिनहि प्रतिपाद करता संता आचार्य कहै—

अर्थ—१. मातावत् क्रिया करै सो धात्री दोष, २. लेखधारकवत् (समाचार पहुँचाने वालो) क्रिया करै सौं दूत दोष, ३. ज्योतिषक कहै सो निमित्त दोष, ४. आजोविका करै सो आजीवन दोष, ५. दाता कै अनुकूल वचन कहै सो वनीपक दोष, ६. वैद्य-शास्त्र कहै सो चिकित्सा दोष, ७. क्रोध करै सो क्रोध दोष, ८. मान करै सो मान दोष, ९. माया करै सो माया दोष, १०. लोभ करै सो लोभ दोष—अैसे दश तो उत्पादन दोष इस गाथा विषै कहै ।। २६ ।।आगै अन्य कहै है—

अर्थ—संस्तुति शब्द का पूर्व शब्दकरि, पश्चात् शब्दकरि जुदा-जुदा अभिसंबंध करणा—११. दान ग्रहणतैं पहलो ही दाता का संस्तव करैं, सो पूर्वसंस्तुति कहो । १२. दान लोयै पोछैं दाता का संस्तव करै सो पश्चात् संस्तुति कहिये । १३. आकाशगामिनी, रूप-परिवर्तिनी, शस्त्र-स्तंभिनो आदि विद्या दिखावै सो विद्या-दोष कहिये । १४. बहुरि सर्प, बोछूं इत्यादिक विषके निराकरण-करणहारे अक्षर जिनिमैं अैसे मंत्र दिखावैं सो मंत्रदोष कहिये । १५. बहुरि गात्र-भूषणादिकनि कैं निमित्त द्रव्य, धूलि बतावैं सो चूर्णजोग दोष कहिये । यह भोजन के उत्पादन के निमित्त हैं, तातैं उत्पादना दोष कहे । यह उत्पादन पद प्रत्येक अभिसंबंध करणां । १६. सोलवां मूलकर्म नामा दोष है, जे वश में नांहो, तिनका वशोकरण कहै, तातैं यह हू उत्पादन दोष है ।। २७ ।।

जोगे य—चूर्णयोगश्च गात्रभूषणादिनिमित्तं द्रव्यधूलिः। **उप्पादणा य दोसो**—उत्पादनायोत्पादननिमित्तं दोष उत्पादनदोषः। स प्रत्येकमभिसम्बध्यते। **सोलसमो**—षोडशानां पूरण षोडशः। **मूलकम्मे य**—मूलकर्मावशानां वशीकरणं। **धात्रीकर्मणा सहचरितो दोषोऽपि** धात्रीत्युच्यते ॥ २७ ॥

तं धात्रीदोषं विवृण्वन्नाह—

मज्जणमंडणधादो खेल्लावणखीरअंबधादी य।
पंचविधधादिकम्मेणुप्पादो धादिदोसो दु ॥ २८ ॥

धापयति दधातीति वा धात्री। **मार्जनधात्री**—वालं स्नपयति या सा मार्जनधात्री। वालं मण्डयति विभूषयति तिलकादिभिर्या सा मण्डनधात्री मण्डननिमित्तं माता। वालं क्रीडयति रमयति क्रीडनधात्री क्रीडानिमित्तं माता। क्षीरं स्तन्यं धारयति दधाति या सा क्षीरधात्री स्तनपायिनी। अम्बधात्री जननी, स्वापयति या साप्यसम्बधात्री। एतासां पंचविधानां [1]धात्रीणां क्रियया कर्मणा य आहारादिरुत्पद्यते स धात्रीना-

---

आगैं इनका जुदा-जुदा स्वरूप वर्णन करै हैं—

१–तहां धात्री नाम धाय का है। धाय का सा कर्म्मकरि सहचरित जो दोष सो भी धात्री कहिये, तिस धात्री नामा प्रथम उत्पादन दोष है, ताहि विवरण करता संता कहै है—

अर्थ—धारण करै, पोषण करै, अैसी जो धाय ताका नाम इहां धात्री कहै है। सो पंच प्रकार है—१. बालक कौं स्नपन करावै सो मार्जन धात्री कहावै। २. बालक कौं तिलक इत्यादिकरि भूषित करैं, भूषण पहरावै सो मंडनधात्री कहिये। ३. बालक कौ क्रीडाकरि रमावै, क्रीडा का निमित्त होय सो क्रीडन धात्री कहिये। ४. बालक कौं दूध पावैं, स्तन चुषावै, पुष्ट करै सो क्षीर धात्री कहिये। ५. बहुरि माता समान होय बालक कौ अपनैं पासि सुवावै सो अंबधात्री कहिये। अैसे पंचप्रकार धात्री कहीं, तिनका साकर्म्म—क्रियाकरि जो जती आहारादिक उत्पादन करै सो धात्री नाम प्रथम उत्पादन दोष है।

याका विशेष कहै है—

जो जती, गृहस्थ कौ अैसैं कहै—१. इस बालक कौ स्नान करावो, इस प्रकार करि बालक कौं स्नान कराये हैं, जातैं सुखी होय, नीरोगी होय–अैसें स्नान करायवै कै निमित्त गृहस्थ के अर्थि उपदेश करैं, तिसकर्म्मकरि गृहस्थ दान दे, तिस दान करौं जो ग्रहण करै तिसकै मार्जनधात्री नाम उत्पादन दोष लागै हैं तथा २. बालक कौं आप भूषित करनैं कै निमित्त क्रिया का उपदेश करैं, तिस करि सो गृहस्थ भक्तहोय, दान दैवे, तिस दान कौं जो ग्रहैं, ताकै मंडनधात्री नाम प्रथम उत्पादन दोष लागै तथा ३. बालक कौ आप क्रीडाकरि रमावे, क्रीडा के निमित्त क्रिया का उपदेश करैं, तिसकरि सो गृहस्थ दान देवैं, तिस दान कौं जो ग्रहण करै, ताकै क्रीडनधात्री नाम प्रथम उत्पादन दोष लागै। तथा ४. जिस उपायकरि स्तननि मैं दूध होय जाय तथा जिस विधानकरि बालकनि कौं दूध दीजिये हैं, तिस विधान का उपदेश करैं, जातैं दाताभक्त होय दान देवै,सो दान जो ग्रहण करै ताके खीर(क्षीर) धात्री नाम प्रथम उत्पादन दोष होय है। तथा ५. बालक कौं आप सुवाय दे, सुवावनें का विधान बतावै, तातैं सो दाता दान देवैं, तिस

---

१. क [0]धात्रीकर्मणा क्रियया च।

मोत्पादनदोषः । बालं स्नापयानेन प्रकारेण बालः स्नाप्यते येन सुखी नीरोगी च भवतीयेत्वं मार्जननिमित्तं वा कर्म गृहस्थायोपदिशति, तेन च कर्मणा गृहस्थो दानाय प्रवर्तते तद्दानं यदि गृह्णाति साधुस्तस्य धात्रीनामोत्पादनदोषः । तथा बालं स्वयं मण्डयति मण्डननिमित्तं वा कर्मोपदिशति यस्मै दात्रे स तेन भक्तः सन् दानाय प्रवर्तते तद्दानं यदि गृह्णाति साधुस्तस्य मण्डनधात्रीनामोत्पादनदोषः । तथा बालं स्वयं क्रीडयति क्रीडा-निमित्तं च क्रियामुपदिशति यस्मै दात्रे स दाता दानाय प्रवर्वते तद्दानं यदि गृह्णाति साधुस्तस्य क्रीडनधात्री नामोत्पादनदोषः । तथा येन क्षीरं भवति येन च विधानेन बालाय क्षीरं दीयते तदुपदिशति यस्मै दात्रे स भक्तः सन् दाता दानाय प्रवर्तते तद्दानं यदि गृह्णाति तदा तस्य क्षीरधात्री-नामोत्पादनदोषः । तथा स्वयं स्त्रापयति स्वापनिमित्तं विधानं चोपदिशति यस्मै दात्रे स दाता दानाय प्रवर्तते तद्दानं यदि गृहणाति तदा तस्या-म्बधात्रीनामोत्पादनदोषः । कथमयं दोष इति चेत् स्वाध्यायविनाशमार्गदूषणादिदर्शनादिति ।। २८ ।।

दूतनामोत्पादनदोषं विवृण्वन्नाह—

जलथलआयासगदं सयपरगामे सदेसपरदेसे ।
संबंधिवयणणयणं दूदीदोषो हवदि एसो ।। २९ ।।

स्वग्रामात्परग्रामं गच्छति जले नावा तथा स्वदेशात्परदेशं गच्छति जले नावा तत्र तस्य गच्छतः कश्चिद् गृहस्थ एवमाह—भट्टारक ! मदीयं संदेशं गृहीत्वा गच्छ स साधुस्तत्सम्बन्धिनो वचनं नीत्वा निवेदयति यस्मै प्रहितं स परग्रामस्थः परदेशस्थश्च तद्वचनं श्रुत्वा तुष्टः सन् दानादिकं ददाति तद्दानादिकं यदि साधुर्गृह्णाति तदा तस्य दूतकर्मणोत्पादनदोषः । तथा स्थले गच्छत आकाशे च गच्छतः साधोर्यत्सम्बन्धिवचन-नयनं स्वग्रामात्परग्रामे स्वदेशात्परदेशे, यस्मिन् ग्रामे तिष्ठति स स्वग्राम इत्युच्यते, तथा यस्मिन् देशे तिष्ठति बहूनि दिनानि स स्वदेश इत्युच्यते । इत्येवं जलगतं स्थलगतमाकाशगतं च तद्दूतेन नीयते इति तद्दूतमित्युच्यते । यदेतत्सम्बन्धिनो वचनस्य नयनं स एष दूतदोषो भवति । दूतकर्म शासनदोषायेति दोषदर्शनादिति ।। २९ ।।

दान कौं जो ग्रहण करैं, तिसकैं अम्बधात्री नामा उत्पादन दोष लागै हैं। इन दोषनि मैं स्वाध्याय का विनाश, मार्ग का दूषण इत्यादिक दोष देखिये है, तातैं अैसा दोष साधु नांही लगावै है ।। २८ ।।

आगै दूत नाम दूसरा उत्पादन दोष ताहि विवरण करता संता आचार्य कहै हैं—

अर्थ—कोई यति जिस ग्राम मैं हैं, तातैं परग्राम मैं जाइ है, जल विषैं नाव करि जाय है। तथा स्थल विषैं, आकाश विषैं जाइ है। तथा जिस देश मैं है तिस देश तैं परदेश जाय, तहां जाते कौं कोई गृहस्थ अैसे कहै है—पूज्य मेरा संदेशा लेते जावो, मेरा संबंधी कौं अैसैं वचन कहि देने, इस संबंधी के संदेश रूप वचन कौं लेय, जिस परग्राम विषैं तथा परदेश विषैं इसका संबंधी होय, ताकौं कहि देवै, तिस वचन कौ सुणि वे गृहस्थ संतुष्ट हुआ संता दानादिक देवै, तिस दानादिक कौं जो लेवैं, ग्रहण करै ताकैं दूत नामा दूसरा उत्पादन दोष लागै। यहु दूत कर्म है सो शासन विषैं दूषण के अर्थि, तातैं अैसा दूषण साधु नांहो लगावै ।। २९ ।।

निमित्तस्वरूपमाह—

वंजणमंगं च सरं छिण्णं भूमं च अंतरिक्खं च ।
लक्खण सुविणं च तहा अट्ठविहं होइ णेमित्तं ॥ ३० ॥

व्यञ्जनं मशकतिलकादिकं । अङ्गं च शरीरावयवः । स्वरः शब्दः । छिन्नं छेदः, खड्गादिप्रहारो वस्त्रादिच्छेदो वा । भूमि भूमि-विभागः । अन्तरिक्षमादित्यगृहाद्युदयास्तमनं । लक्षणं नन्दिकावर्तपद्मचक्रादिकं । स्वप्नश्च सुप्तस्य हस्तिविमानमहिषारोहणादिदर्शनं च तथाष्टप्रकारं भवति निमित्तं । व्यञ्जनं दृष्ट्वा यच्छुभाशुभं ज्ञायते पुरुषस्य तद्व्यञ्जननिमित्तमित्युच्यते । तथाङ्गं शिरोग्रीवादिकं दृष्ट्वा पुरुषस्य यच्छुभाशुभं ज्ञायते तदङ्गनिमित्तमिति । तथा यं स्वरं शब्दविशेषं श्रुत्वा पुरुषस्यान्यस्य वा शुभाशुभं ज्ञायते तत्स्वरनिमित्तमिति । यं प्रहारं छेदं वा दृष्ट्वा पुरुषस्यान्यस्य वा शुभाशुभं ज्ञायते तच्छिन्ननिमित्तं नाम । तथा यं भूमिविभागं दृष्ट्वा पुरुषस्यान्यस्य वा शुभाशुभं ज्ञायते तद्भौमनिमित्तं नाम । यदन्तरिक्षस्य व्यवस्थितं ग्रहयुद्धं ग्रहास्तमनं ग्रहविर्घातादिकं समीक्ष्य प्रजायाः शुभाशुभं विबुध्यते तदन्तरिक्षं नाम । यल्लक्षणं दृष्ट्वा पुरुषस्यान्यस्य वा शुभाशुभं ज्ञायते तल्लक्षणनिमित्तं नाम । यं स्वप्नं दृष्ट्वा पुरुषस्यान्यस्य वा शुभाशुभं परिच्छिद्यते तत्स्वप्ननिमित्तं नाम । तथा चशब्देन भूमिगर्जनदिग्दाहादिकं परिगृह्यते । एतेन निमित्तेन भिक्षामुत्पाद्य यदि भुंक्ते तदा यस्य निमित्तनामोत्पादनदोषः । रसास्वादनदैन्यादिदोषदर्शनादिति ॥ ३० ॥

आगै निमित्त नाम तोसरा उत्पादन दोष, ताका स्वरूप है, ताहि कहै है—

अष्टांग निमित्तज्ञानः अर्थ—निमित्त ज्ञान अष्ट प्रकार है, सो ही कहै है—१. मस, तिल इत्यादिक व्यंजन पुरुष के शरीर में देखिकरि जो शुभाशुभ जानिये सो व्यंजन निमित्त कहिये तथा २. शरीर कै अवयव, मस्तक, ग्रोवा इत्यादिक पुरुष मैं देखिकरि जो शुभाशुभ जानिए सो अंगनिमित्त कहिये तथा ३. पुरुष का तथा अन्य का शब्द विशेष रूप, स्वर सुणिकरि शुभाशुभ जानिये सो स्वर निमित्त कहिये । ४. बहुरि खड्गादिक का प्रहार तथा वस्त्रादिक का छेद रूप छिन्नता, ताहि देखिकरि पुरुष का तथा अन्यका शुभाशुभ जानिये सो छिन्न-निमित्त कहिये । तथा ५. भूमि का विभाग देखिकरि पुरुष का तथा अन्य का शुभाशुभ जानिये सो भौम-निमित्त कहिये । तथा ६. सूर्य, ग्रह इत्यादिक का उदय-अस्त, ग्रहयुद्ध, ग्रह अस्तमन ग्रहनिर्घात इत्यादिक अंतरीक्ष की विवस्था देखि प्रजा का शुभाशुभ जानिये सो अंतरीक्ष निमित्त कहिये । बहुरि ७. नंदिकावर्त, पद्म, चक्र इत्यादिक लक्षण देखि पुरुष का तथा अन्य का शुभाशुभ जानिये है सो लक्षणनिमित्त कहिये । बहुरि ८. सूता पुरुष (स्वप्न में) हाथो, विमाण, महिषारोहण इत्यादिक देखै, ताकै देखनैं तैं पुरुष का तथा अन्य का शुभाशुभ जानिये सो स्वप्ननिमित्त कहिये ।

अैसैं अष्टांग-निमित्त ज्ञान कह्या तथा गाथा मैं 'च' शब्द है ताकरि- भूमि, गर्जना, दिग्दाह इत्यादिक निमित्त हैं ते ग्रहण करनैं निमित्तज्ञानकरि गृहस्थनि कौं शुभाशुभ कहिए भिक्षा उपजाय जो भोजन लेय, ताकै रस का आस्वादन, दीनता इत्यादिक दोष के दर्शनतैं निमित्त नामउत्पादन दोष कहिये ॥ ३० ॥

आजीवं दोषं निरूपयन्नाह—

जादी कुलं च सिप्पं तवकम्मं ईसरत्त आजीवं ।
तेहिं पुण उप्पादो आजीव दोसो हवदि एसो ॥ ३१ ॥

जातिर्मातृसन्ततिः । कुल पितृसन्ततिः । मातृशुद्धिः । पितृशुद्धिर्वा । शिल्पेकर्मं लेपचित्रपुस्तकादिकर्म हस्तविज्ञानं । तपःकर्म तपोऽनुष्ठानं । ईश्वरत्वं च । आजीव्यतेऽनेनाजीवः । आत्मनो जातिं कुलं च निर्दिश्य शिल्पकर्म तपःकर्मेश्वरत्वं च निर्दिश्याजीवनं करोति यतोऽत आजीववचनान्येतानि तेभ्यो जातिकथनादिभ्यः पुनरुत्पाद आहारस्य योऽयं स आजीवदोषो भवत्येषः वीर्यगूहनदीनत्वादिदोषदर्शनादिति ॥ ३१ ॥

वनीपकवचनं निरूपयन्नाह—

साणकिविणतिधिमांहणपासंडियसवणकागदाणादी ।
पुण्णं णवेति पुट्ठे पुण्णेत्ति य वणीवयं वयणं ॥ ३२ ॥

शुनां, कृपणादीनां कुष्ट[1]व्याध्याद्यार्तादीनां अतिथीनां मध्याह्नकालागतानां भिक्षुकाणां, ब्राह्मणानां मांसादिभक्षिणां पाखंडिनां दीक्षोपजीविनां, श्रवणानामाजीवकानां छात्राणां वा काकादीनां च यद्दानादिकं दीयते तेन पुण्यं भवति किं वा न भवतीत्येवं पृष्टे दानपतिना, 'भवति पुण्यमिति' यद्येवं ब्रूयात्तद्वनीपकं वचनं दानपत्युनुकूलवचनं प्रतिपाद्य यदि भुञ्जीत तस्य वनीपकनामोत्पादनदोषः दीनत्वादिदोषदर्शनादिति ॥ ३२ ॥

आगैं आजीव नाम दोष है, ताहि निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ—जाति कहिये माता पक्ष की संतति अथवा माता की शुद्धता, कुल कहिये पिता पक्ष को संतति अथवा पिता की शुद्धता, शिल्पोकर्म्म कहिये लेप, चित्र, पुस्तक इत्यादिक हस्तक्रिया रूप चतुराई। तपःकर्म कहिये तपश्चरण का अनुष्ठान, ईश्वरत्व कहिये आपका महंतपणां—ये गुण प्रकटकरि निर्देश करै—'हम अैसे हैं, आजीविका पूरण करणे कै अर्थि अैसें वचन गृहस्थनि कौं कहि आहार लेवै, यामैं वीर्य को हीनता, दीनपणां इत्यादिक दोष देखिये हैं। तातैं यह आजीव नामा उत्पादन दोष है ॥ ३१ ॥

आगैं वनीपक वचन नामां पांचवां उत्पादनदोष, ताहि निरूपण करता संता कहै है—

अर्थ—कोई दानपति यतीकौं अैसे पूछै—'श्वान कहियैं कुत्ता, तिनिकौं देनैं मैं तथा कृपण कहिये कोढी, रोगी इत्यादिक दुखी जीवनिकौं देनैं मैं तथा अतिथि कहिये—मध्याह्न काल विषैं आये भिक्षुक तिनिकौं देने मैं तथा ब्राह्मण, मांसादि भक्षी तिनिकौ देंने मैं, तथा पाखंडि दीक्षोपजीवो भेखी (भिक्षु) तिनिकौं देनें मैं, तथा श्रवण (श्रमण) कहिये आजीवक छात्र—इनिकौं देनैं मैं, तथा काग इत्यादिक कौ देने मैं पुण्य होय है कि नांहीं'—अैसा पूछै संतै तिस दानपति की रुचि कै अनुकूल 'पुण्य ही होय है'—ऐसा वचन कहि देवे अर भोजन लेवै, ताकै दीनपणां इत्यादिक दोष देखियै हैं। तातैं यहु वनीपक नाम उत्पादन दोष कहिये है ॥ ३२ ॥

१. क °कव्यद्या° ।

चिकित्सां प्रतिपादयन्नाह—

कोमारतणुतिगिंछारसायणविसभूदखारतंतं च ।
सालंकियं च सल्लं तिगिंछदोसो दु अट्ठविहो ॥ ३३ ॥

कौमारं बालवैद्यं मासिकसावंत्सरिकादिग्रहत्रासनहेतुः शास्त्रं तनुचिकित्साज्वरादिनिराकरणं कण्ठोदरशोधनकारणं च, रसायनं वलिपलितादिनिराकरणं वहुकालजीवित्वं च, विषं स्थावरजंगमं सकृत्रिमभेदभिन्नं । तस्य विषस्य चिकित्सा विषापहारः भूत (तः) पिशाचादि तस्य चिकित्सा भूतापनयनशास्त्रं क्षारतंत्रं क्षारद्रव्यं दुष्टव्रणादिशोधनकरं । शलाकया निर्वृत्तं शालाकिकं अक्षिपटलाद्युद्घाटनं । शल्यं भूमिशल्यं शरीरशल्यं च।तोमरादिकं शरीरशल्यं अस्थ्यादिकं भूमिशल्यं तस्यापनयनकारकं शास्त्रं शल्यमित्युच्यते । तथा विषापनयनशास्त्रं विषमिति । भूतापनयननिमित्तं शास्त्रं भूतमिति, कार्ये कारणोपचारादिति । अथवा चिकित्साशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते काकाक्षितारकवदिति । एवमष्टप्रकारेण चिकित्साशास्त्रेणोपकारं कृत्वाहारादिकं गृह्णाति तदानीं तस्याष्टप्रकारश्चिकित्सादोषो भवत्येव सावद्यादिदोषदर्शनादिति ॥ ३३ ॥

क्रोधमानमायालोभदोषान् प्रतिपादयन्नाह—

कोधेण य माणेण य मायालोभेण चावि उप्पादो ।
उप्पादणा य दोसो चदुव्विहो होदि णायव्वो ॥ ३४ ॥

आगै चिकित्सा नाम छठा उत्पादन दोष, ताहि प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—चिकित्सा शास्त्र अष्ट प्रकार हैं, सो ही कहिये हैं—१. कौमार कहिये बाल चिकित्सा, मासिक, सांवत्सरिक इत्यादिक जे ग्रह, तिनकै त्रास का कारण शास्त्र। २. बहुरि तनु चिकित्सा कहिये ज्वर आदि रोग का निराकरण, कंठ, उदर आदि के शोधन का कारण शास्त्र। ३. बहुरि रसायन कहियै शुक्लकेश इत्यादिक वृद्ध अवस्था का निराकरण बहुत काल जोवनि का साधन शास्त्र। ४. बहुरि विषतंत्र कहिये स्थावर, जंगम, कृत्रिम भेदकरि भिन्न विष, ताकै निराकरण करणैं का विषापहार शास्त्र। ५. बहुरि भूततंत्र कहिये भूत, पिशाच इत्यादिक के निराकरण करणें के भूतापनयन शास्त्र। ६. बहुरि क्षारतंत्र कहिए दुष्ट व्रण (घाव) इत्यादिक शोधन करणै कौं क्षारद्रव्य इत्यादिक का वर्णन रूप क्षारतंत्र-शास्त्र। ७. बहुरि शालादिक कहिये शलाका करि रच्या, अक्षपटलादिक का उद्घाटन[1] कूं कारण। ८. बहुरि शल्य तो भूमि-शल्य अर शरीर शल्य भेदकरि दोय प्रकार है—१. तोमरादिक सो तौ शरीर शल्य कहिये। २. अस्थि (हड्डो) आदिक सो भूमिशल्य कहिये। तिसका अपनयन करणें का शास्त्र।

अैंसे कार्य विषैं कारण का उपचारकरि अष्टप्रकार चिकित्सा शास्त्र कहै। इहां चिकित्सा शब्द का एक-एक भेद प्रति संबंध करणा। कागला (कौवा) के नेत्र का तारक की ज्यों प्रत्येक अभिसंबंध करणां। अैसें अष्टप्रकार चिकित्सा शास्त्रकरि, गृहस्थनि का उपकार करि आहार ग्रहण करै, तिसकै सावद्यादिक दोष देखनैतैं आठ प्रकार चिकित्सा नाम उत्पादन दोष होय है ॥ ३३ ॥

आगैं क्रोध, मान, माया, लोभ नामा च्यारि प्रकार उत्पादन दोष, तिनहि प्रतिपादन करतां संता आचार्य कहै है—

---

१. ब. उच्चारन।

[1]क्रोधमानमायालोभेन च योऽयं भिक्षाया उत्पादः स उत्पादनदोषश्चतुष्प्रकारस्तैर्ज्ञातव्य इति । क्रोधं कृत्वा भिक्षामुत्पादयति आत्मनो यदि तदा क्रोधो नामोत्पादनदोषः तथा मानं गर्वं कृत्वा यद्यात्मनो भिक्षादिकमुत्पादयति तदा मानदोषः। मायां कुटिलभावं कृत्वा यद्यात्मनो भिक्षादिकमुत्पादयति मायानामोत्पादनदोषः। तथा लोभं कांक्षां प्रदर्श्य भिक्षां यद्यात्मन उत्पादयति तदा लोभोत्पादनदोषो भावदोषादिदर्शनादिति ॥ ३४ ॥

पुनरपि तान् दृष्टान्तेन पोषयन्नाह—

कोधो य हत्थिकप्पे माणो [2]वेणायडम्मि णयरम्मि ।
माया वाणारसिए[3] लोहो पुण रासियाणम्मि ॥ ३५ ॥

हस्तिकल्पपत्तने कश्चित्साधुः क्रोधेन भिक्षामुत्पादितवान् । तथा वेन्नातटनगरे कश्चित्संयतो मानेन भिक्षामुत्पादितवान् । तथप वाराणस्यां कश्चित्साधुः मायां कृत्वा भिक्षामुत्पादितवान् । तथान्यः संयतो लोभं प्रदर्श्य राशियाने भिक्षामुत्पादितवानिति । तेन क्रोधो हस्तिकल्पे, मानो वेन्नातटनगरे माया वाराणस्यां लोभो राशियाने इत्युच्यते । अत्र कथा उत्प्रेक्ष्य वाच्या इति ॥ ३५ ॥

पूर्वसंस्तुतिदोषमाह—

दायगपुरदो कित्ती तं दाणवदी जसोधरो वेत्ति ।
पुव्वीसंथुदि दोसो विस्सरिदे बोधणं चावि ॥ ३६ ॥

अर्थ—क्रोधकरि आपकै भिक्षादिक का उत्पादन करैं तो क्रोध नामा सातवां उत्पादनदोष कहिये । तथा मान कहिये गर्वकरि आपकै भिक्षादिक का उत्पादन करैं सो मान नामा आठमां उत्पादनदोष कहिये । तथा माया कहियै कुटिलभाव, ताकरि आपकै भिक्षादिक का उत्पादन करै तो माया नामा नवमां उत्पादन दोष कहिये । तथा लोभ, कांक्षा ताहि दिखाय आपकै भिक्षा उत्पादन करै तदि लोभ नामा दशवां उत्पादन दोष कहिये । ये च्यारि दोष वर्णन कीये ॥ ३४ ॥

इनमें भाव दोषादिक देखिये हैं, तातैं कहै हैं, इनही कौं दृष्टांतकरि पोषते संते कहै हैं—

अर्थ—कोई साधु हस्तिकल्प नामा पत्तन कै विषैं क्रोध करिकै भिक्षा उत्पादन करतभया, तथा कोई साधु वेणा (वेन्ना)-तट नगर के विषैं मान करिकैं भिक्षा उत्पादन करत भया, तथा कोई साधु वाणारसी विषै मायाचार करि भिक्षा उत्पादन करत भया तथा कोई साधु राशियान नगर कै विषैं लोभ करिकै भिक्षा उत्पादन करता भया ॥ ३५ ॥

ऐसैं यह च्यारुं कथा अन्यत्र हैं, तहां तैं देखि-विचारि इस प्रसंग विषैं कहणी । इहां पर्यंत दश उत्पादन दोष कहै । आगै पूर्वसंस्तुति नामा ग्यारमां उत्पादन दोष ताहि कहै है—

अर्थ—जो दान देवै सो दायक कहिये । ताकैं अगाडी जो जती ताकी कीर्ति-ख्याति कहैं—'तुम दानपति हो, तुम यशोधर

१. क क्रोधेन मानेन मायया लोभेन च । २. क ख. विण्णाय, ३. कारंजा प्रति—वाराणसिए ।

ददातीति दायको दानपतिः तस्य पुरतः कीर्तिं ख्यातिं ब्रूते । कथं, त्वं दानपतिर्यशोधरः त्वदीया कीर्तिर्विश्रुता लोके । यद्दातुरग्रतो दानग्रहणात्प्रागेव ब्रूते तस्य पूर्वसंस्तुतिदोषो नाम जायते । विस्मृतस्य च दानसम्बोधनं त्वं पूर्वं महादानपतिरिदानीं किमिति कृत्वा विस्मृत इति सम्बोधनं करोति यस्तस्यापि पूर्वसंस्तुतिदोषो भवतीति । यां कीर्तिं ब्रूते, यच्च स्मरणं करोति तत्सर्वं पूर्वसंस्तुतिदोषो नग्नाचार्यैकर्तव्यदोषदर्शनादिति ॥ ३६ ॥

पश्चात्संस्तुतिदोषमाह—

पच्छा संथुदिदोसो दाणं गहिदूण तं पुणो कित्ति ।
विक्खादो दाणवदी तुज्झ जसो विस्सुदो वेंति ॥ ३७ ॥

पश्चात्संस्तुतिदोषो दानमाहारादिकं गृहीत्वा ततः पुनः पश्चादेवं कीर्तिं ब्रूते विख्यातस्त्वं दानपतिस्त्वं, तव यशोविश्रुतमिति ब्रूते यस्तस्य पश्चात् संस्तुतिदोषः, कार्तण्यादिदोषदर्शनादिति । ३७ ॥

विद्यानामोत्पादनदोषमाह—

विज्जा साधितसिद्धा तिस्से आसापदाणकरणेहिं ।
तस्से माहप्पेण य विज्जादोसो दु उप्पादो ॥ ३८ ॥

विद्या नाम साधितसिद्धा साधिता सती सिद्धा भवति तस्या विद्याया आशाप्रदानकरणेन तुभ्यमहं विद्यामिमां दास्यामि तस्याश्च माहात्म्येन यो जीवति तस्य विद्योत्पादनो नाम दोषः आहाराद्याकांक्षाया दर्शनादिति ॥ ३८ ॥

हो, तुमारी कीर्ति लोक विषैं विख्यात है—अैसे दान ग्रहण कीये पहलै दाता कै अगाडी स्तुति करै सो पूर्व संस्तुति दोष कहिये। तथा दान विस्मरण होय गया होय, ताकूं दान का संबोधन करैं—जो तुम पूर्वै तो महादानपति थे, अब दान कूं कैसे भूलि गये ?' अैसे संबोधन करैं, ताकै पूर्व संस्तुति दोष होय, यामैं नग्नाचार्यनिकै कर्तव्य का दोष देखिये हैं, तातैं यहु दोष कह्या ॥ ३६ ॥

आगै पश्चात् संस्तुति नामा बारवां उत्पादन दोष, ताहि कहै है—

अर्थ—दान आहारादिक लेयकरि तातैं पीछैं जो जती दाता की कीर्ति बोलै—'तुम विख्यात दानपति हो, तिहारो जस प्रसिद्ध है'—अैसैं कहैं, तातैं कृपणता दोष देखने, तैं पश्चात्-संस्तुति दोष कहिये ॥ ३७ ॥

आगै विद्यानाम तेरवां उत्पादनदोष है, ताहि कहै है—

अर्थ—जो साधी हुई सिद्ध (साधितसिद्ध) होय सो विद्या कहिये। तिस विद्या की आशा देणेकरि—'यह विद्या तुम्हारै अर्थि हम देवेंगे'—अैसे कह्या करै तिस विद्या के माहात्म्य करि जो जती जीविका करै ताकै आहारादिक की आकांक्षा देखनैं तैं विद्या नामा उत्पादन दोष कह्या है ॥ ३८ ॥

मंत्रोत्पादनदोषमाह—

सिद्धे पढिदे मंते तस्स य आसापदाणकरणेण ।
तस्स य माहप्पेण य उप्पादो मंतदोसो दु ।। ३९ ।।

सिद्धे पठिते मंत्रे पठितमात्रेण यो मंत्रः सिद्धिमुपयाति स पठितसिद्धो मंत्रस्तस्य मंत्रस्याशाप्रदानकरणेन तवेमं मंत्रं दास्यामीत्याशाकरणयुक्तया तस्य माहात्म्येन च यो जीवत्याहारादिकं च गृह्णाति तस्य मंत्रोत्पादनदोषः । लोकप्रतारण जिह्वागृद्ध्यादिदोषदर्शनादिति ।। ३९ ।।

अथवा विद्योत्पादनदोषो मंत्रोत्पादनदोषश्चैवं ग्राह्यः इत्याशंक्याह—

आहारदायगाणं विज्जामंतेहिं देवदाणं तु ।
आहूय साधिदव्वा विज्जामंतो हवे दोसो ।। ४० ।।

आहारदात्री भोजनदानशीला देवता व्यंतरादिदेवान् विद्यया मंत्रेण चाहूयानीय साधितव्यास्तासां साधनं क्रियते यद्दानार्थं स विद्यादोषो मंत्रदोषश्च भवति । अथवाऽऽहारदायकानां निमित्तं विद्यया मंत्रेण वाहूय देवतानां साधितव्यं साधनं क्रियते तत् स विद्यामंत्रदोषः । अस्य च पूर्वयोर्विद्यामंत्रदोषयोर्मध्ये निपातः इति कृत्वा नायं पृथग्दोषः पठितस्तयोरन्तर्भावादिति ।। ४० ।।

चूर्णदोषमाह—

णेत्तस्संजणचुण्णं भूसणचुण्णं च गत्तसोभयरं ।
चुण्णं तेणुप्पादो चुण्णयदोसो हवदि एसो ।। ४१ ।।

आगै मंत्र नामा चौदवां उत्पादन दोष, ताहि कहै है—

अर्थ—पढना मात्रकरि (पढ़ने मात्र से) जो मंत्र सिद्धिकौं प्राप्त होय सो पठित सिद्ध हु मंत्र कहिये । तिस मंत्र के आशा देनेकरि—तुमकौं यह मंत्र हम देगैं'—ऐसैं कह्या करै तिस मंत्र के माहात्म्यकरि, जीवैं, आहारादिक लीया करैं ताकैं लोक का ठगना, जिह्वा की गृद्धि इत्यादिक दोष देखनें तै यह मंत्र नाम उत्पादन दोष कह्या ।। ३९ ।। अथवा

विद्या नामा उत्पादन दोष तथा मंत्र नामा उत्पादन दोष ऐसें ग्रहण करना—

अर्थ—आहार के देनैंहारे व्यंतरादिकदेव तिनिकूं विद्या तथा मंत्रकरि आह्वानन करि साधै, दान कै अर्थि सो विद्यामंत्र दोष कहिए । अथवा आहार के दायक जे गृहस्थ तिनिकै निमित्त विद्याकरि तथा मंत्रकरि, देवता का आह्वानन करि साधन करै तौ विद्यामंत्र दोष कहिए । इस दोष का पूर्वैं विद्या मंत्र दोय कहै । तामैं अन्तर्भाव होव गया, तातैं जुदा दोष नांही गिन्या ।।४०।।

आगै चूर्णनामा पनरमां उत्पादन दोष है, ताहि कहै है—

अर्थ—नेत्रनिका निर्म्मल करणैं का निमित्त अंजन द्रव्य (सुरमा आदि), रजसो चूर्ण कहिए । तथा जाकरि तिलक,

नेत्रयोरञ्जनं चूर्णं चक्षुषोर्निर्मलीकरणनिमित्तमञ्जनं द्रव्यरजः । तथा भूषणनिमित्तं चूर्णं येन चूर्णेन तिलकपत्र[1]स्थल्यादयः क्रियन्ते तद्भूषणद्रव्यरजः । गात्रस्य शरीरस्य शोभाकरं च चूर्णं येन चूर्णेन शरीरस्य शोभाकरं दीप्त्यादयो भवन्ति तच्छरीरशोभानिमित्तं चूर्णमिति । तेन चूर्णेन योयमुत्पादो भोजनस्य क्रियते स चूर्णोत्पादनामदोषो भवत्येष जीविकादिक्रियया जीवनादिति ॥ ४१ ॥

मूलकर्मदोषं प्रपिपादयन्नाह—

अवसाणं वसियरणं संजोजयणं च विप्पजुत्ताणं ।
भणिदं तु मूलकम्मं एदे उप्पादणा दोसा ॥ ४२ ॥

अवशानां वशीकरणं यद्विप्रयुक्तानां च संयोजनं यत्क्रियते तद्भणितं मूलकर्म । अनेन मूलकर्मणोत्पादो यो भक्तादिकस्य स मूलकर्मदोषः सुष्ठु लज्जाद्याभोगस्य करणादिति । एते उत्पादनदोषास्तथोद्गमदोषाश्च सर्वं एते परित्याज्या अधःकर्मांशदर्शनात् ! एतेष्वधःकर्मांशस्य सद्भावोऽस्ति यतः । तथान्ये च दोषाः जुगुप्सादयो दर्शनदूषणारुयः सम्भवन्ति येभ्यस्तेऽपि परित्याज्या इति ॥ ४२ ॥

अशनदोषान् प्रतिपादयन्नाह—

संकिदमक्खिदणिक्खिदपिहिदं [2]संववहरणदायगुम्मिस्से ।
अपरिणदलित्तछोडिद एसणदोसाइं[3] दस एदे ॥ ४३ ॥

शंकयोत्पन्नः शंकितः; किमयमाहारोऽधःकर्मणा निष्पन्न उत नेति शंका कृत्वा भुंक्ते यस्तस्य शंकितनामाशनदोषः । तथा म्रक्षितस्तैलाद्यभ्यक्तस्तेन भाजनादिना दीयमानमाहारं यदि गृह्णाति म्रक्षितदोषोभवति । तथा निक्षिप्तः स्थापितः, सचित्तादिषु परिनिक्षिप्तमाहारं यदि

पत्रवेल्ली इत्यादिक भूषण का निमित्त सो भूषण चूर्ण कहिए । तथा शरीर की शोभा का कारण जाकरि शरीर को दीप्त्यादिक होय सो चूर्ण कहिए । तिस चूर्णकरि भोजन कूं उत्पादन करै गृहस्थनि कूं अैसे चूर्ण की विधि बताय, आजीवका करै सो चूर्णदोष कहिए ॥ ४१ ॥

आगैं मूलकर्म्म नामा सोलमां उत्पादन दोष है, ताहि प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—जो वशि नांही तिनिका वशीकरण । बहुरि जै स्त्री-पुरुषादि वियुक्त हैं, तिनिका संयोग करणां। अैसे मंत्र-तंत्रादिक ग्रहस्थनि कूं बतावै जिसकरि भोजनादिक का उत्पादन करैं, यातैं अतिशयकरि लज्जादिक का अभोग करणैंतैं यह "मूलकर्म्म नामा" दोष कहिए ॥ ४२ ॥ अैसे सोलह उत्पादन दोष वर्णन कीए ।

पहली सोलह उद्गमदोष वर्णन कीए थे । ते ए सर्व्व दोष परिताज्य हैं । इनिमैं अधःकर्म अंश का सद्भाव है । तथा अन्य जुगुप्सादि दोष तथा दर्शन दूषणादि दोष सम्भवैं हैं । जिनिकरि ते सर्व दोष परित्याग करणैं ।

आगै अशन दोष हैं तिनही प्रतिपादन करता सन्ता कहै हैं—

अर्थ—१. शंकाकरि उत्पन्न भयो आहार, जो यहु आहार अधःकर्म करि निष्पन्न भया है कि नांही ? अैसी आशंकाकरि

---

१. क पत्रावल्यादयः॰ । २. क आहारण । ३. क दोसा दु ।

गृह्णाति साधुस्तदा तस्य निक्षिप्तदोषः। तथा पिहितश्छादितः अप्रासुकेन प्रासुकेन च महता यदवष्टब्धमाहारादिकं तदावरणमुत्क्षिप्य दीयमानं यदि गृह्णाति तदा तस्य पिहितनामाशनदोषः। तथा संव्यवहरणं दानार्थं संव्यवहारं कृत्वा यदि ददाति तद्दानं यदि साधुर्गृह्णाति तदा तस्य संव्यवहरणनामाशनदोषः। तथा दायकः परिवेषकः, तेनाशुद्धेन दीयमानमाहारं यदि गृह्णाति साधुस्तदा तस्य दायकनामाशनदोषः। तथोन्मिश्रोऽप्रासुकेन द्रव्येण पृथिव्यादिसच्चितेन मिश्र उन्मिश्र इत्युच्यते तं यद्यादत्ते उन्मिश्रनामाशनदोषः। यथाऽपरिणतोऽविध्वस्तोऽग्न्यादिकेनापक्वस्तमाहारं पानादिकं वा यद्यादत्तेऽपरिणतनामाशनदोषः। तथा लिप्तोऽप्रासुकवर्णादिसंसक्तस्तेन भाजनादिना दीयमानमाहारादिकं यदि गृह्णाति तदा तस्य लिप्तनामाशनदोषः। तथा छोडिदं परित्यजनं भुंजानस्यास्थिरपाणिपात्रेणाहारस्य परिशतनं गलनं परित्यजनं यत्क्रियते तत्परित्यजननामाशनदोषः। एतेऽशनदोषा दशैव भवंति ज्ञातव्या इति ॥ ४३ ॥

शंकितदोषं विवृण्वन्नाह—

असणं च पाणयं वा खादीयमध सादियं च अज्झप्पे।
कप्पियमकप्पियत्ति य संदिद्धं संकियं जाणे ॥ ४४ ॥

अशनं भक्तादिकं, पानकं दधिक्षीरादिकं खाद्यं लड्डुकाशोकवर्त्यादिकं, अथ स्वाद्यं एलाकस्तूरीलवंगकक्कोलादिकं। वाशब्दैरत्र स्व-

---

जो भोजन करे ताके शंकित नामा प्रथम अशनदोष है। तथा २. मृक्षित कहिए तैलादिक करि चुपड्या भाजनादिककरि (चम्मच आदि से] दीया आहारकू जो ग्रहण करे, ताकें मृक्षित नामा दोष होय। तथा ३. सचित्तादिक कैं विषैं निःक्षिप्त कहिए स्थापित कीया आहार, जो ग्रहण करै ताकैं निक्षिप्त नामा तोसरा दोष लागै है। तथा ४. पिहित कहिए प्रासुक अथवा अप्रासुककरि महावस्तु करि (बड़े वजनदार ढक्कन आदि से) जो आहारादिक (मुद्रित) होय तिसका आवरण उघाडि दीया जो भोजन, ताहि ग्रहण करै तौ ताके पिहित नामा चौथा अशन दोष है। तथा रै दान कै अर्थि संव्यवहारकरि (वस्त्र या पात्रादि को जल्दी से खींच करके) अर जो दान देय तिस दान कूं साधु ग्रहण करै ताकै "संव्यवहारणा नामा पाचमां अशन दोष है। ५–तथा ६–दायक कहिए परिवेशक (परोसने वाला) अशुद्ध होय तिसका दीया साधु ग्रहण करै ताकै 'दायकनामा' छठा अशन दोष है। तथा ७–अप्रासुक (सचित्त) वस्तुकरि मिश्रित उन्मिश्र आहारकूं जो मुनि ग्रहण करै ताकै उन्मिश्र नामा सातमा दोष लागै। तथा ८–अग्नादिक पाकरि अपक्व आहार पानादिक अपरिणत कहिए अविध्वस्त (जिसका रस नहीं बदता) होय तिनिकूं जो ग्रहण करै सो अपरिणत नामा आठवां अशन दोष है। तथा ९–अप्रासुक वर्ण (रंग) आदिक करि संश्रित जे भाजनादिक सो लिप्प कहिए। ताकरि दीया जो आहारादिक ग्रहण करै ताकै लिप्तनामा नवमां अशन दोष हो है। तथा भोजन करता यती का अथिर (अस्थिर-छिद्र सहित) पाणिपात्र करि भोजन आहार गिरि परै तो परित्यजन नाम दशमां अशन दोष कहिए। अैसे ये अशन दोष दश प्रकार कहे, ते जानने ॥ ४३ ॥

आगैं प्रथम कह्या शंकित दोष, ताहि विवरण करता संता कहै है—

अर्थ—अशन कहिए–भक्त (भात) इत्यादिक, पानक कहिए दही, दूध इत्यादिक, खाद्य कहिए लाडू, शोकवर्ति

---

१. क °हारं भुंक्ते तदा शंकितं नामाशनदोषं जानीहि।

गतभेदा ग्राह्याः। अध्यात्मे आगमे चेतसि वा कल्पितं योग्यमकल्पितमयोग्यमिति सन्दिग्धं संशयस्थं शंकितं जानीहि, आगमे किमेतन्मय कल्प्यमुत नेति यद्येवं संदिग्धमाहारं भुंक्ते तदा शंकितनामाशनदोषं जानोहि। अथवाध्यात्मे चेतसि किमधःकर्मसहितमुत नेति सन्दिग्धमाहारं[1] यदि गृह्णीयाच्छंकितं जानीहि ॥ ४४ ॥

द्वितीयं म्रक्षितदोषमाह

ससिणिद्धेण य देयं हत्थेण य भायणेण दव्वीए ।
एसो मक्खिददोसो परिहरदव्वो सदा मुणिणा ॥ ४५ ॥

सस्निग्धेन हस्तेन भाजनेन दर्व्या कटच्छुकेन च यद्देयं भक्तादिकं यदि गृह्यते तदा म्रक्षितदोषो भवति। तस्मादेष म्रक्षितदोषः परिहर्तव्यो मुनिना सम्मूर्च्छनादि सूक्ष्मदोषदर्शनादिति ॥ ४५ ॥

तृतीयं निक्षिप्तदोषमाह—

सच्चित्त पुढविआऊ तेऊहरिदं च वीयतसजीवा ।
जं तेसिमुवरि ठविदं णिक्खित्तं होदि छब्भेयं ॥ ४६ ॥

सचित्तपृथिव्यां सचित्ताप्सु सचित्ततेजसि हरितकायेषु बीजकायेषु त्रसजीवेषु तेषूपरि यत्स्थापितमाहारादिकं तन्निक्षिप्तं भवति षड्भेदं। अथवा सह चित्तेनाप्रासुकेन वर्तते इति सचित्तं। सचित्तं च पृथिवीकायाश्चाप्कायाश्च तेजःकायाश्च हरितकायाश्च त्रसजीवाश्च तेषामुपरि यन्निक्षिप्तं सचित्तं तत् षड्भेदं भवति ज्ञातव्यं ॥ ४६ ॥

इत्यादिक, स्वाद्य कहिए इलायची, कस्तूरी, लवंग इत्यादिक। वा शब्दकरि यहाँ भेद हैं ते ग्रहण करनैं। ए च्यारि प्रकार भोजन आध्यात्म कहिये आगम विषैं तथा चित्त विषै कल्पित कहिए योग्य हैं, अकल्पित कहिए अयोग्य हैं। ऐसें संदिग्ध कहिए संदेह रूप होय, आगम मैं यह 'मैरे लेवे योग्य कह्या है कि नांही'—ऐसे संदेह सहित आहार कूं लेय तौ शंकित नामा अशन दोष जानहु। अथवा अपनैं चित्त विषैं ऐसा संदेह होय जो यहु भोजन अधःकर्मकरि सहित है, कि नांही, ऐसा संदेह रूप आहार जो ग्रहण करै तौ शंकित नाम अशन दोष जानहु ॥ ४४ ॥

आगै मृक्षित नामा द्वितीय दोष है, ताहि कहै है—

अर्थ—सचिक्कण हाथ तथा भाजन कहिए पात्र दर्व्या कहिए कलाई (कलछी, चम्मच आदि) ताकरि जो भक्तादिक देवै तिसकूं जो ग्रहण करै ताकै सन्मूर्छनादिक सूक्ष्म दोष देखनैतैं मृक्षित नामा दूसरा अशन दोष हो है ॥ ४५ ॥

आगैं निक्षिप्तनामा दोष है, ताहि कहै हैं—

अर्थ—सचित्त जे पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, हरितकाय, बीजकाय, त्रसजीव, तिनिकै ऊपरि स्थापित जो आहारादिक सो निक्षिप्त छह भेद रूप कहिए। अथवा चित्त कहिए प्रासुक ताहि करिकै सहित जो होय सो सचित्त (अप्रासुक) कहिए। सो सचित्त तथा पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, हरितकाय बीजकाय, त्रसजीव तिनिकै ऊपरि जो निक्षेपण कीयो सो छहभेद रूप सचित्त जाननां ॥ ४६ ॥

पिहितदोषप्राह—

सच्चित्तेणं व पिहिदं अथवा अचित्तगुरुगपिहिदं च ।
तं छंडिय जं देयं पिहिदं तं होदि बोधव्वो ।। ४७ ।।

सचित्तेन पिहितमप्रासुकेन पिहितं । अथवाऽचिगुरुकपिहितं वा प्रासुकेण (न) गुरुकेण यद्वावृतं तत्त्यक्त्वा यद्देयमाहारादिकं यदि गृह्यते पिहितं नाम दोषं भवति बोद्धव्यं ज्ञातव्यमिति ।। ४७ ।।

संव्यवहारदोषमाह—

संववहरणंकिच्चा पदादुमिदि चेल भायणादीणं ।
असमक्खिय जं देयं संववहरणो[1] हवदि दोसो ।। ४८ ।।

संव्यवहरणं संझटिति व्यवहारं कृत्वा, प्रदातुमिति चेलभाजनादीनां संभ्रमेणाहरणं वा कृत्वा प्रकर्षेण दाननिमित्तं[2] वसुभाजनादीनां झटिति संव्यवहरणं कृत्वाऽसमीक्ष्य यद्देयं पानभोजनादिकं तद्यदि संगृह्यते संव्यवहरणं दोषो भवत्येष इति ।। ४८ ।।

दायकदोषमाह—

सूदी सुंडी रोगी मदयणपुंसय पिसायणग्गो य ।
उच्चारपडिदवंतरुहिरवेसी समणो अंगमक्खीया ।। ४९ ।।

सूतिः या बालं प्रसाधयति । सुंडी—मद्यपानलम्पटः । रोगी व्याधिग्रस्तः । **मदय**—मृतकं श्मशाने परिक्षिप्यागतो यः स मृतक इत्युच्यते । मृतकसूतकेन यो जुष्टः सोऽपि मृतक इत्युच्यते । **नउंसय**—न स्त्री न पुमान् नपुंसकमिति जानीहि । पिशाचो वाताद्युपहतः । नग्नः

आगै पिहित नामा अशन दोष है, ताहि कहै है—

अर्थ—जो आहारादिक सचित्त कहिये अप्रासुक वस्तुकरि पिहित कहिए ढक्या होय अथवा प्राशुक भारी वस्तुकरि ढक्या होय ताहि उघाडिकरि जो देवै, ताहि जो ग्रहण करै, ताकै पिहित नामा दोष होय, ऐसा जाननां ।। ४७ ।।

आगै संव्यवहरण (संव्यवहार) नामा पांचवा अशन दोष है, ताहि कहै हैं—

अर्थ—वस्त्र-भाजनादिक का व्यवहार दान देने कौ शीघ्रकरि विना देखे पान-भोजनादिक देवै, ताकू जो लैवे, ताकै संव्यवहरण नामां अशनदोष होय है ।। ४८ ।।

आगै दायक नामा छठा अशन दोष है, ताहि कहै है—

अर्थ—यह दोष सहित दाता है । सूति कहिये जो स्त्री बालक का साधन करतो (सजाती) हो । बहुरि सुंडो कहिये मद्यपान विषैं लंपट होय । बहुरि रोगी कहिये व्याधिकरिकै गृहस्थ होय । बहुरि मृतक कहिये मुरदे कौ मसाण कै विषै क्षेपि-

१. क साहरणो सो ह० । २. क °त्तं भा° ।

पटाद्यावरणरहितो गृहस्थः । उच्चारं मूत्रादीन् कृत्वा य आगतः स उच्चार इत्युच्यते । पतितो मूर्च्छागतः । वान्तश्छर्दि कृत्वा य आगतः । रुधिरं रुधिरसहितः । वेश्या दासी । श्रमणिकाऽऽर्यिका । अथवा पंचश्रमणिका रक्तपटिकादयः । अंगम्रक्षिका अंगाभ्यंगनकारिणी ॥ ४९ ॥ तथा—

अतिबाला अतिवुड्ढा घासत्ती गब्भिणी य अंधलिया ।
अंतरिदा व णिसण्णा उच्चत्था अहव णीचत्था ॥ ५० ॥

अतिबाला अतिमुग्धा, अतिवृद्धा अतीवजराग्रस्ता । ग्रासयन्ती भक्षयन्ती उच्छिष्टा । गर्भिणी गुरुभारा पंचमासिका । अंधलिका चक्षूरहिता । अन्तरिता कुड्यादिभिर्व्यवहिता । आसीनोपविष्टा । उच्चस्था उन्नतप्रदेशस्थिता । नीचस्था निम्नप्रदेशस्थिता । एवं पुरुषो वा वनिता च यदि ददाति तदा न ग्राह्यं भोजनादिकमिति ॥ ५० ॥ तथा च—

फूयण पज्जलणं वा सारण पच्छादणं च [1]विज्झवणं ।
किच्चा तहग्गिकज्जं णिव्वादं घट्टणं चावि ॥ ५१ ॥

फुयणं—संधुक्षणं मुखवातेनान्येन वा अग्निना काष्ठादीनां प्रज्वालनं प्रद्योतनं वा सारणं काष्ठादीनामुत्कर्षणं, प्रच्छादनं भस्मादिना विध्यापनं जलादिना कृत्वा तथान्यदपि अग्निकार्यं, निर्वातं निर्वाणं काष्ठादिपरित्यागः, घट्टनं चापि कुड्यादिनावरणं ॥ ५१ ॥ तथा—

करि आया तथा मौत का सूतिग (सूतक) करि सहित होय, बहुरि नपुंसक कहिये स्त्री-पुरुष के चिह्न रहित नपुंसकवेदी होय। बहुरि पिशाच कहिये वायु आदिकरि पीड़ित होय। बहुरि नग्न कहिए वस्त्रादिक ओढनेतैं रहित नागा गृहस्थ होय। बहुरि उच्चार कहिये मूत्रादिक करि आया होय। बहुरि पतित कहिए मूर्च्छा आय गिर पड्या होय। बहुरि वांत कहिए छर्दिकरि आया होय, बहुरि रुधिर कहिए रुधिर सहिता होय, बहुरि वेश्या कहिए दासी होय। बहुरि श्रमणिका कहिये आर्यिका अथवा रक्तपटिका कौं आदि दे पंचश्रमणिका कही हैं ते होय, बहुरि अंगम्रक्षिका कहिये अंग का मर्दन करणा वाली होय—इन सबनि के हाथतैं मुनिराज आहार लेवै नांही ॥ ४९ ॥

तथा अन्य कहै हैं—

अर्थ—अतिबाला कहिए अतिभोली, अतिवृद्धा कहिये अतिजरा करिकै ग्रस्त। ग्रासयंती कहिये भोजन करती हुई औठी (उच्छिष्टा)। बहुरि गर्भिणी कहिए गर्भयुक्त पाँच महिना आदि का गर्भ जाकै होय। बहुरि अंधलिका कहिए नेत्र रहित होय। अन्तरिता कहिये भीति (दीवाल) इत्यादिक कै आंतिरै (आड़ में) खड़ी होय। बहुरि आसीना कहियै बैठी होय। बहुरि उच्च-स्थान कहिए—ऊँचे प्रदेश मैं तिष्ठती होय, बहुरि नीचस्था कहिए नीचे प्रदेश विषैं तिष्ठती होय—इन विशेषणकरि सहिता स्त्री होय अथवा पुरुष होय अर जो भोजनादि देवै तो ग्रहण करनां योग्य नांहीं ॥ ५० ॥

तथा अन्य कहै हैं—

अर्थ—फूत्करण कहिए संधुखण मुख की पवनरूप फूंककरि अथवा अन्य वास इत्यादिक करि, बहुरि प्रज्वालन कहिए

१. क णिज्झ° ।

लेवणमज्जणकम्मं पियमाणं दारयं च णिक्खिविय ।
एवंविहादिया पुण दाणं जदि दिंति दायगा दोसा ॥ ५२ ॥

लेपनं गोमयकर्दमादिना कुड्यादेर्मार्जनं स्नानादिकं कर्म कृत्वेति सम्बंधः । पिवन्तं दारकं च स्तनमाददानं बालं निक्षिप्य त्यक्त्वा, अन्यांश्चैवंविधादिकान् कृत्वा पुनर्दानं यदि दत्ते दायकदोषा भवन्तीति ॥ ५२ ॥

उन्मिश्रदोषमाह—

पुढवी आऊ य तहा हरिदा बीया तसा य सज्जीवा ।
[1]पंचेहिं तेहिं मिस्सं आहारं होदि उम्मिस्सं ॥ ५३ ॥

पृथिवी मृत्तिका, आपश्चाप्रासुकः, तथा हरितकाया पत्रपुष्पफलादयः । **बीयाणि**—बीजानि यवगोधूमादयः त्रसाश्च सजीवा निर्जीवाः पुनर्मलमध्ये भविष्यन्ति दोषा इति । तैः पंचभिर्मिश्र आहारो भवत्युन्मिश्रः सर्वथा वर्जनीयो महादोष इति कृत्वेति ॥ ५३ ॥

अपरिणतदोषमाह—

तिलतंडुलउसिणोदयं चणोदयं तुसोदयं अविद्धत्थं ।
अण्णं तहाविहं वा अपरिणदं णेव गेण्हिज्जो ॥ ५४ ॥[2]

अग्निकाष्ठादिक का प्रद्योतन करनां । बहुरि सारण कहिये काष्ठादिक कानीकै वलणैं के अर्थि सरकावना (अग्नि में लकड़ी को डालना), प्रच्छादन कहिए भस्म (राख) आदिक करि अग्नि का दावणां (ढकना), बहुरि विध्यापन कहिये जलादिक करि अग्नि का भुजावणां तथा अन्य भी अग्नि कार्य—निर्वाति निर्वाण (अग्नि से लकड़ी को हटा देना), घट्टन इत्यादिक कार्य करि भोजन देवै तौ जैन-जती नांहीं लेवै ॥ ५१ ॥ तथा अन्य कहै है—

अर्थ—लेपन कहिए गौमयकर्दम (गोबर, मिट्टी) इत्यादिक करि भीति इत्यादिक का लीपनां करि आहार देवै तथा मार्जन कहिये स्नानादिक क्रियाकरि आहार देवैं तथा चूषते (स्तनपान करते) बालक कौं छोड़िकरि आहार देवै इत्यादिक क्रियाकरि जो आहार देवैं तौ दायक दौष है । अैसे साधु आहार लेवै नांहीं ॥ ५२ ॥

आगै उन्मिश्र नामा सातवाँ अशन दोष है, ताहि कहै है—

अर्थ—पृथिवी कहिये मृत्तिका, आपः कहिए अप्रासुक जल, हरित कहिये पात-फूल इत्यादिक हरितकाय, बीज कहिए जव, गोउ इत्यादिक, त्रस कहिये सजीव बींदियादि पंचेंद्रिय पर्यन्त जीव, निर्जीव कलेवर हैं ताका निषेध । मलदोष मल का वर्णन करतैं करसी, तातैं इहाँ सजीव कह्या—अैसैं इनि पंचनिकरि मिल्या हुआ जो आहार सो उन्मिश्र दोष कहिए । यह महादोष है, तातै याका सर्वथा प्रकार वर्ज्जन करनां ॥ ५३ ॥

---

१. क पंचहि य ते° । २. फलटन से प्रकाशित मूलाचार की इस गाथा में अन्तर है—
तिलचाउणउसणोदय चणोदय तुसोदय अविद्धुत्थं ।
अण्णं पि य असणादी अपरिणदं णेव गेण्हेज्जो ॥

तिलोदकं तिलप्रक्षालनं । तंदुलोदकं तंदुलप्रक्षालनं । उष्णोदकं तप्तं भूत्वा शीतं च चणोदकं चणप्रक्षालनं । तुषोदकं तुषप्रक्षालनं । अविध्वस्तमपरिणतं आत्मीयवर्णगन्धरसापरित्यक्तं । अन्यदपि तथाविधमपरिणतं हरीतकीचूर्णादिना अविध्वस्तं । नैवं गृह्णीयात् नैव ग्राह्यमिति । एतानि परिणतानि ग्राह्याणीति ॥ ५४ ॥

लिप्तदोषं विवृण्वन्नाह—

गेरुय हरिदालेण व सेडीय मणोसिलामपिट्ठेण ।
सपबालो[1]दणलेवे ण व देयं करभायणे लित्तं ॥ ५५ ॥

गैरिकया रक्तद्रवेण, हरितालेन सेढिकया षटिकया पांडुमृत्तिकया, मनःशिलया आमपिष्टेन वा तंदुलादिचूर्णेन सप्रवालेन अपक्वशाकेन अप्रासुकोदकेन वा आर्द्रेणैव हस्तेन भाजनेन वा यद्देयं तल्लिप्तं नाम दोषं विजानीहि ॥ ५५ ॥

परित्यजनदोषमाह—

बहु परिसाडणमुज्झिअ आहारो परिगलंत दिज्जंतं ।
छंडिय भुंजणमहवा [2]छंडियदोसो हवे णेवो ॥ ५६ ॥

बहुपरिसातनमुज्झित्वा बहुप्रसातनं कृत्वा भोज्यं स्तोकं त्याज्यं बहुपात्रहारेण[3] सोऽपि बहुपरिसातनमित्युच्यते । आहारं परिगलंतं

आगैं अपरिणत नामां आठवाँ अशन दोष है, ताहि कहैं है—

अर्थ—तिलोदक कहिये तिल प्रक्षालन जल, तंदुलोदक कहिये चावल प्रक्षालन जल, उष्णोदक कहिए ताता होयकरि सीला हुआ—अैसा जाननां । चणोदक कहिए चण (चना) प्रक्षालन जल, तुषोदक कहिए तुष-प्रक्षालन जल—ये अविध्वस्त कहिये अपना वर्ण, रस, गन्ध ताहि नांही छोड़ै है हरडै का चूरण इत्यादिक करि भी जो परिणया नांही होय, सो नांही ग्रहण करणां, ये ही जल परिणत होय तौं ग्रहण करने में दोष नांही ॥ ५४ ॥

आगैं लिप्तनामा नवमा अशन दोष है ताहि वर्णन करता सन्ता कहै है—

अर्थ—गैरिका कहियै रक्त द्रव्य गेरु तथा हरिताल तथा सेढिका कहिए खड़ी पाण्डुका मृतिका (सफेद मिट्टी), मनः-शिला कहिये मैंणशिल, आनपिष्ट कहिए तंदुल इत्यादिक का चूर्ण (आटा), प्रवाल कहिए अपक्व शाक—इनकरि लिप्त हाथ तथा पात्र, बहुरि अप्रासुक जलकरि आला हाथकरि तथा पात्रकरि जो आहार देवे तौ लिप्त नामा दोष जाननां ॥ ५५ ॥

आगै परित्यजन नामा दशवां अशन दोष है, ताहि कहै है—

अर्थ—बहुरि बहुत भोजन छोड़ि (गिरा कर) स्तोक भोजन करै अथवा छाछि, घृत, जल इत्यादिक करि छीदे (छिद्र-

---

१. क °लदगोल्लेणव° । २. क छोडिय । ३. क हारे सो ।

दीयमानं तक्रघृतोदकादिभिः परिस्रवंतं छिद्रहस्तैश्च बहुपरिसातनं च कृत्वाहारं यदि गृह्णाति त्यक्त्वा चैकमाहारमपरं भुंक्ते यस्तस्य त्यक्तदोषो भवति। एते अशनदोषाः दश परिहरणीयाः । सावद्यकारणाज्जीवदयाहेतोर्लोकजुगुप्सा ततश्चेति ॥ ५६ ॥

संयोजनाप्रमाणदोषानाह—

संजोयणा य दोसो जो संजोएदि भत्तपाणं तु ।
अदिमत्तो आहारो पमाणदोसो हवदि एसो ॥ ५७ ॥

संयोजनं च दोषो भवति । यः संयोजयति भक्तं पानं तु । शीतं भक्तं पानेनोष्णेन संयोजयति । शीतं वा पानं उष्णेन भक्तादिना संयोजयति । अन्यदपि विरुद्धं परस्परं यत्तद्यदि संयोजयति तस्य संयोजननाम दोषो [1]भवति । अतिमात्र आहारः—अशनस्य सव्यंजनस्य द्वयभागं तृतीयभागमुदकस्योदरस्य[2] यः पूरयति, चतुर्थभागं चावशेषयति यस्तस्य प्रमाणभूत आहारो भवति, अस्मादन्यथा यः कुर्यात्तस्यातिमात्रो नामाहार-दोषो भवति । प्रमाणातिरिक्ते आहारे गृहीते स्वाध्यायो न प्रवर्तते, षडावश्यकक्रियाः कर्तुं न शक्यंते, ज्वरादयश्च संतापयन्ति, निद्रालस्यादयश्च दोषा जायंते इति ॥ ५७ ॥

अंगारधूमदोषानाह—

तं होदि [3]सयंगालं जं आहारेदि[4] मुच्छिदो संतो ।
तं पुण होदि सधूमं जं आहारेदि णिंदिदो ॥ ५८ ॥

युक्त) हार्थानतैं डारता (गिराता) भोजन करैं अथवा कोई एक आहार छोड़ि अन्य ग्रहण करै, ताकैं त्यक्तनामा दोष होय॥५६॥

अैसे ये दश प्रकार अशन दोष कहै, तिनिमैं सावद्य का दोष है तिस कारणतैं जीवदया के कारणतैं तथा लोक जुगुप्सातैं इनि दोषनि का त्याग करनां ।

आगै संयोजन दोष तथा अप्रमाण दोष ताहि कहै है—

अर्थ—जो ठण्डा भोजन उष्ण जलकरि मिलावै, अथवा ठंडा पाणी कूं उष्ण भोजनकरि मिलावै—अैसे हो अन्य भी परस्पर विरुद्ध संयोजन करै ताकै संयोजनानामा दोष होय । बहुरि मात्रा उल्लंघि भोजन करै, ताकौ अप्रमाणनामा दोष होय ।

उदर का च्यारि विभाग है । तिनिमैं दोयभाग अर्द्ध उदर प्रमाण ताकू तौ व्यंजन सहित भोजन करि पूर्ण करै । अर तीसरै भाग कूं जलकरि पूर्ण करैं । चौथा भाग अवशेष खाली राखै । अैसे करै ताकै प्रमाणभूत आहार कहिये । जो अैसे नांहीं करैं ताकै अतिमात्रनामा आहारदोष होय । जो प्रमाणतैं अधिक आहार ग्रहण करै ताकैं स्वाध्याय नांही प्रवर्तें है, षडाव-श्यक क्रिया करी नांही जाये हैं । ज्वरादिक रोग हैं ते संताप उपजावै हैं, निद्रा, आलस्य इत्यादिक दोष हैं ते उपजे हैं, तातै इस

---

१. क °त्येव । २. क °उदकस्यानेन विधनोदरं यः । ३. क ग. सङ्गालं । ४. क °रेदि मु° ।

यदि मूर्च्छितः सन् गृद्धयाद्या युक्तः आहरत्यल्यवहरति[1] भुंक्ते तदा तस्य पूर्वोक्तोऽङ्गारादिदोषो भवति, सुष्ठु गृद्धिदर्शनादिति। तत्पुनर्भवति स पूर्वोक्तो धूमो नाम दोषः, यस्मादाहरति निंदन्जुगुप्समानो विरूपकमेतदनिष्टं मम, एवं कृत्वा यदि भुंक्ते तदानीं धूमो नाम दोषो भवत्येव, अन्तःसंक्लेशदर्शनादिति ॥ ५८ ॥

कारणमाह—

छहिं कारणेहिं असणं आहारंतो वि आयरदि धम्मं ।
छहिं चेव कारणेहिं दु णिज्जुहंतो वि आचरदि ॥ ५९ ॥

षड्भिः कारणैः प्रयोजनैस्तु निरवशेषमशनमाहारं भोज्यखाद्यलेह्यपेयात्मकमभ्यवहरन्नपि[2] भुंजानोऽप्याचरति चेष्टयति अनुष्ठानं करोति धर्मं चारित्रं। तथैव षड्भिः कारणैः प्रयोजनैस्तु निरवशेषं [3]जुगुप्सन्नपि परित्यजन्नप्याचरति प्रतिपालयति धर्ममिति संबंधः। निष्कारणं यदि भुंक्ते भोज्यादिकं तदा दोषः, कारणैः पुनर्भुंजानोऽपि धर्ममाचरति साधुरिति सम्बन्धः। तथापरैः प्रयोजनैः परित्यजन्नपि भोज्यादिकं धर्ममेवाचरति नाशनपरित्यागे दोषः सकारणत्वात्परित्यागस्येति ॥ ५९ ।

कानि तानि करणानि यैर्भुङ्क्तेऽशनमित्याशंकायामाह—

वेयणवेज्जावच्चे किरियाठाणे[4] य संजमट्ठाए ।
तध पाणधम्मचिंता कुज्जा एदेहिं आहारं ॥ ६० ॥[5]

दोष का परित्याग करनां, प्रमाणरूप आहार ग्रहण करनां साधु कूं योग्य है ॥ ५७ ॥

आगैं अङ्गारनामा दोष तथा धूमनामा दोष है, ताहि कहै है—

अर्थ—जो मूर्च्छित हुवा संता अति तृष्णाकरि आहार ग्रहण करै ताकै सो पूर्वोक्त अङ्गार दोष होय है। यामैं अतिशयकारी गृद्धि देखिए है। तातैं याका त्याग करणा। बहुरि जो निंदा करता संता, ग्लानि करता संता, कहे—यह भोजन विरूपक है, मेरे अनिष्ट हैं—ऐसैं संक्लेश करता जो भोजन करै ताकै सो पूर्वोक्त धूम नामा दोष होय। यामैं अंतरंग का संक्लेश देखिए है। तातैं इस दोष का त्याग करणां ॥ ५८ ॥

अर किनि कारणनि करि छोड़िये है, तिनकूं कहै है—

अर्थ—छह कारण कहिए प्रयोजन, तिनिकरि भोज्य, खाद्य, लेह्य, पेय स्वरूप समस्त आहार ग्रहण करता भी धर्म्म का आचरण करै। बहुरि छह जे कारण कहिये प्रयोजन तिनिकरि समस्त भोजन का त्याग करता संता भी धर्म्म का प्रतिपालन करै। निःकारण जो भोजन करै तदि दोष कहिए। कारण सहित भोजन करता साधु है सो धर्म्म आचरण करै है, दोष नांही। तथा प्रयोजन सहित भोजन का परित्याग करै है सो भी धर्म्म ही का आचरण करै है। कारण सहित भोजन का परित्याग करणैं में दोष नाँही ॥ ५९ ॥

---

१. ग. आहारमत्यल्पवहरति-इत्यपि पाठान्तरः, माणिकचन्द्र ग्र०—आहारम्यहहरति, २. ग. मल्पवहरन्नपि, ३. क उ.ज्भन्नपि, ४. ग. ठाए, ५. यही गाथा देखिए उत्तराध्ययन २६।३३, स्थानांग ६।४१ ।

वेदना क्षुद्वेदनामुपशमयामीति भुंक्ते । वैयावृत्यमात्मनोऽन्येषां च करोमीति वैयावृत्यार्थं भुंक्ते । क्रियार्थं षडावश्यकक्रिया मम भोजनमन्तरेण न प्रवर्तते इति ताः प्रतिपालयामीति भुंक्ते । संयमार्थं त्रयोदशविधं संयमं पालयामीति भुंक्ते, अथवाहारमन्तरेणेन्द्रियाणि मम विकलानि भवन्ति तथा सति जीवदयां कर्तुं न शक्नोमीति प्राणसंयमार्थं इन्द्रियसंयमार्थं च भुंक्ते, तथा प्राणचिन्तया भुंक्ते, प्राणा दशप्रकारास्तिष्ठन्ति (न) ममाहारमन्तरेण विशेषेणायुर्न तिष्ठतीत्येवं प्राणार्थं भुंक्ते । तथा धर्मचिन्तया भुंक्ते धर्मो दशप्रकारः उत्तमक्षमादिलक्षणो मम वशे न तिष्ठति भोजनमंतरेण, क्षमां मार्दवमार्जवं चेत्यादिकं कर्तुं न शक्नोत्ययं जीवोऽशनमन्तरेणेति भुंक्ते । [1]नातिमात्रं धर्मसंयमयोः पुनरैक्यं क्षमादिभेददर्शनादिति । एभिः षड्भिः कारणैराहारं कुर्याद्यतिरिति सम्बन्धः ॥ ६० ॥

अथ यैः कारणैस्त्यजत्याहारं कानि तानीत्याशंकायामाह—

आदंके उवसग्गे तिरक्खणे बंभचेरगुत्तीओ ।
पाणिदयातवहेऊ सरीरपरिहार वोच्छेदो ॥ ६१ ॥

आतंके आकस्मिकोत्थितव्याधौ मारणान्तिकपीडायां सहितायां बाह्यजातीयामाहारव्युच्छेदः परित्यागः । तथोपसर्गे दीक्षाविनाशहेतौ देवमानुषतिर्यग्चेतनकृते समुपस्थिते भोजनपरित्यागः । नितिक्षणायां ब्रह्मचर्यगुप्तेः सुष्ठु निर्मलीकरणे सप्तमधातुक्षयायाहारव्युच्छेदः । तथा प्राणिदयाहेतौ यद्याहारं गृह्णामि बहुप्राणिनां घातो भवति तस्माद्यद्याहारं न गृह्णामीति जीवदयानिमित्तमाहारव्युच्छेदः तथा तपोहेतौ द्वादशविधे तपस्य-

---

अर्थ—१. वेदना कहिए, क्षुधा की वेदना है ताहि उपशम करुं हूँ—इस कारण करि भोजन करै। तथा २. वैयावृत्य कहिए मेरे आत्मा का तथा अन्य आचार्यादिक का वैयावृत्य करुं—इस कारण करि भोजन करै। तथा ३. क्रियार्थ कहिए षट् आवश्यकक्रिया मेरे भोजन बिना नांही प्रवर्तैं, इनिको प्रतिपालना करुं—इस कारणकरि भोजन करै। तथा ४, संयमार्थ कहिए तेरह प्रकार संयम जो चारित्र, ताहि पालूं। आहार बिना मेरै इंद्रिय विकल होय हैं। तातैं इन्द्रिय संयम कै अर्थि तथा इन्द्रिय विकल भए मैं जीव दया करणैं कूं समर्थ नांही, तातैं प्राणसंयम कै अर्थि—इस कारणकरि भोजन करै तथा ५. प्राणचिंता कहिए दश प्रकार प्राण हैं, ते आहार बिना नांही रहैं। आहार विना आयुविशेष ताकरि नांही है। अैसे प्राण राखणें के कारणतैं भोजन करैं। तथा ६. धर्म्म की चिंता कहिए उत्तमक्षमादिक दशलक्षणीक धर्म्म हैं, सो मेरे वश रहें नांही। भोजन विनां क्षमा, मार्दव, आर्जव इत्यादिक यह जीव करणैं कूं समर्थ नांही—इस कारणतैं भोजन करै—अैसे छह कारणकरि यति भोजन करै है। अैसा संबंध जाननां ॥ ६० ॥

आगैं जिनि कारणनि करि आहार छौड़े है तै कारण कौन ? अैसी आशंका होतैं संतै कहै है—

अर्थ—आतंक कहिए अकस्मात् उपजी व्याधि, मरण का अंत समय की सी है, पीडा जामैं, तहां आहार का व्युच्छेद कहिए परित्याग करना तथा दीक्षा के विनाश का कारण। देव, मनुष्य, तिर्यंच, अचेतनकृत उपसर्ग आवतैं संतै भोजन का परित्याग करनां तथा ब्रह्मचर्य, गुप्ति का अतिशयकरि निर्मल करणें कै अर्थि, सप्तमधातु जो वीर्य ताका क्षयकैं अर्थि आहारका

---

१. क नात्र धर्म० ।

नशनं नाम तपस्तदद्य करोमीति तपो निमित्तमाहारव्युच्छेदः । तथा शरीरपरिहारे संन्यासकाले जरा मम श्रामण्यहानिकरी, रोगेण च दुःसाध्यतमेन जुष्टः, करणविकलत्वं च मम संजातं स्वाध्यायक्षतिश्च दृश्यते, जीवितव्यस्य च ममोपायो नास्तीत्येवं कारणे शरीरपरित्यागस्तन्निमित्तो भक्तादिव्युच्छेदः । एतैः षड्भिः कारणैराहारपरित्यागः कार्यः । न पूर्वैः सह विरोधो[1] विषयविभागदर्शनादिति, क्षुद्वेदनादिषु सत्स्वपि आतंकः स्यात्, यदि प्रचुरजीवहत्या वा दृश्यते ततो भोजनादिपरित्यागं, शरीरपीडारहितस्य तपोविधानमिति न विरोधो विषयभेददर्शनादिति । आहारोऽत्रानुवर्तते तेन सह सम्बन्धो व्युच्छेदस्येति ॥ ६१ ॥

एतदर्थं पुनराहारं न कदाचिदपि कुर्यादिति प्रपंचयन्नाह—

ण बलाउसाउअट्ठं ण सरीर[2]स्सुवचयट्ठ तेजट्ठं ।
णाणट्ठ संजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजेज्जो ॥ ६२ ॥

न बलार्थं मम बलं युद्धादिक्षमं भूयादित्येवमर्थं न भुंक्ते नायुषोर्थं—ममायुर्वृद्धिं यात्विति न भुंक्ते । न स्वादार्थं, शोभनोऽस्य स्वादो भोजनस्येत्येवमर्थं न भुंक्ते । न शरीरस्योपचयार्थं, शरीरं मम पुष्टं मांसवृद्धं वा भवत्विति न भुंक्ते । नापि तेजोऽर्थं. शरीरस्य मम

परित्याग करणां तथा प्राणीनिकी दया के निमित्त जो आहार ग्रहण करुं तौ बहुत प्राणिनिका घात होय है, आहार न ग्रहण करुं तौ जीवनि की दया होय है—इस निमित्त आहार का परित्याग करै है। तथा तप कै निमित्त बारह प्रकार तप विषैं प्रथम तप अनशन कह्या है सो तप मैं करुं। असैं तप के निमित्त आहार का परित्याग करै। तथा शरीर का परिहार कै निमित्त सन्यास काल के विषै यह जरा है सो मेरे श्रमणपणां की हानि करै है, मैं अत्यंत दुःसाध्य रोगकरि सहित भया हूँ, इंद्रियानि का मैरे विकलपणा भया है, स्वाध्याय का अभाव देखिए है, जीवतव्य का मेरै उपाय है नांही—असैं कारण होंतैं संतै शरीर का परिहार करैं, ताका निमित्त जो भोजनादिक तिसका त्याग करै। इनि छहूँ कारणानिकरि भोजन का परित्याग करै।

पूर्वै भोजन ग्रहण के कारण कहे तिनि-करि विषय विभाग देखिए है, तातैं विरोध नांही। जो क्षुधावेदना इत्यादिक भोजन ग्रहण के कारण होतैं संतै भी जो आतंक उपजै तथाप्रचुर जीव हत्या देखिए हैं तथा तपोविधान करणां होय तौ भोजनादिक का परित्याग करिए यामैं विरोध नांही। यहां गाथा मैं व्युच्छेद शब्द कह्या सो आहार पद की अनुवृत्ति है। तातैं आहार का व्युच्छेद करणां असैा संबंध जानना॥ ६१ ॥

आगैं कहै हैं कि इस प्रयोजन के अर्थि मुनि कदाचित् आहार नांही ग्रहण करैं सो विस्तार वर्णन करता संता कहै है—

अर्थ—साधु है सो मेरै युद्धादि करणैं कूं समर्थ असैा बल होउ—असैं बल कै अर्थि भोजन नांही करै है तथा मेरै आयु वृद्धि कूं प्राप्त होउ—असैं आयु के अर्थि भोजन नांही करै हैं। तथा इस भोजन का भला स्वाद है—असैं स्वाद कै अर्थि भोजन नांही करै है। तथा मेरा शरीर पुष्ट होउ, मांस अधिक होउ, मोटा होउ—असैं शरीर का उपचय कै अर्थि भोजन नांही करै

---

१. क °विरोधो विभागदर्शनादिति आहाररोधो विषयदर्शनादिति । २. अ. ब. क °रमुपच्चयट्ठ ।

दीप्तिः स्याद्दर्पो वेति न भुंजीताहारमिति । यद्येवमर्थं न भुंक्ते किमर्थं तर्हि भुंक्तेऽत आह—ज्ञानार्थं, ज्ञानं स्वाध्यायो मम प्रवर्ततामिति भुंक्ते । संयमार्थं, संयमो मम स्यादिति भुंक्ते । ध्यानार्थं चैव, आहारमन्तरेण न ध्यानं प्रवर्तते यतो भुंक्ते यतिरिति ॥६२॥ तथापि भुंक्ते इत्यत आह—

णवकोडीपरिसुद्धं असणं बादालदोसपरिहीणं ।
संजोजणाय हीणं पमाणसहियं विहिसुदिण्णं ॥ ६३ ॥

नवकोटिपरिशुद्धं । कास्ताः कोटयो मनसा कृतकारितानुमतानि तिस्रः कोटयः, तथा वचसा कृतकारितानुमतानि तिस्रः कोटयः, तथा कायेन कृतकारितानुमतानि तिस्रः कोटयः एताभिः कोटिभिः परिशुद्धमशनं, द्विचत्वारिंशद्दोषपरिहीणं उद्‌गमोत्पादैषणादोषरहितं, संयोजनया-रहितं, प्रमाणसहितं, विधिना दत्तं प्रतिग्रहोच्चस्थानपादोदकार्चनाप्रणमनमनोवचनकायशुद्ध्यशनशुद्धिभिर्दत्तमुपनीतं, श्रद्धाभक्तितुष्टिविज्ञानालुब्धताक्षमाशक्तियुक्तेन दात्रेति ॥ ६३ ॥ तथा—

विगदिंगाल विधूमं छक्कारणसंजुदं कमविसुद्धं ।
जत्तासाधणमेत्तं चोद्दसमलवज्जिदं भुंजे ॥ ६४ ॥

विगतांगारं, विगतधूमं, षट्कारणसंयुक्तं क्रमविशुद्धमुत्क्रमहीनं, यात्रासाधनमात्रं प्राणसंधारणार्थं अथवा मोक्षयात्रासाधननिमित्तं, चतुर्दशमलवर्जितं भुंक्ते साधुरिति सम्बन्धः ॥ ६४ ॥

हैं। तथा मेरै शरीर मैं दीप्ति होउ, दर्प्प होउ—अैसे तेज के अर्थि भोजन नांही करैं हैं। इहां कोउ पूछै—जो इन प्रयोजनतैं भोजन नांहीं करै हैं तौ किस प्रयोजन तै भोजन करै हैं ? ताका समाधान—ज्ञान, स्वाध्याय मेरौ प्रवर्तै इस प्रयोजनतैं भोजन करैं तथा संयम मेरै होउ—इस प्रयोजनतैं भोजन करै है तथा आहार बिना ध्यान प्रवर्तै नांही, तातैं ध्यान कै अर्थि यती भोजन करै हैं ॥ ६२ ॥

आगै जैसे यती भोजन करैं, तैसें कहै है—

अर्थ—मुनि है सो अैसा आहार ग्रहण करैं—'नवकोटि परिशुद्धं' कहिए नव कोटि करिकै समस्तपणैं शुद्ध होय, मन-करि कीया नांही, कराया नांही, अनुमोद्या नांही । वचनकरि कीया नांही कराया नांही, अनुमोद्या नांही तथा कायकरि कीया नांही, कराया नांही, अनुमोद्या नांही—अैसे नवकोटि करिकैं शुद्ध जाननां । बहुरि 'द्विचत्वारिंश दोष परिहीणं' कहिए सोलह उद्‌गम दोष, सोलह उत्पादन दोष, दस असन दोष—अैसे बीयालीस दोषकरि रहित होय । बहुरि संयोजना दोष रहित होय, बहुरि प्रमाण सहित होय, बहुरि विधिसुदत्तं कहिये नवधाभक्ति करि सप्तगुण सहित दाता करि दीया हुवा होय ।

अब नवधाभक्ति के नाम—१. प्रतिग्रह, २. उच्चस्थान, ३. पादोक, ४. अर्चन, ५. प्रणमन, ६. मनशुद्धि, ७. वचनशुद्धि, ८. कायशुद्धि, ९. अशनशुद्धि—अैसे नव जानर्नें । दाता के सप्त गुणनि के नाम—१. श्रद्धा, २. भक्ति, ३. तुष्टि, ४. विज्ञान, ५. अलुब्धता, ६. क्षमा, ७. शक्ति—अैसे सात जाननां ॥ ६३ ॥ तथा फेरि कहै है—

अर्थ—अंगार दोषकरि रहित, बहुरि धूम दोषकरि रहित, बहुरि छह भोजन के कारण कहे तिनिकरि संयुक्त । बहुरि

अथ कानि चतुर्दशमलानीत्याह—

णहरोमजंतुअट्ठी कणकुंडयपूयचम्मरुहिरमंसाणि ।
बीयफलकंदमूला छिण्णाणि मला चदुसा होंति ।। ६५ ।।

नखो, हस्तपादाङ्गुल्याग्रप्रभवो मनुष्यजातिप्रतिबद्धतिर्यग्जातिप्रतिबद्धो वा रोमवालः सोपि मनुष्यतिर्यग्जातः[1] । जन्तुर्जीवः प्राणिरहित-शरीरं । अस्थि कंकालं कणः यवगोधूमादीनां बहिरवयवः । कुंड्यादिशाल्यादीनामभ्यन्तरसूक्ष्मावयवाः । पूयं, पक्वरुधिरं व्रणक्लेदः चर्म शरीर-त्वक् प्रथमधातुः । रुधिरं द्वितीयो धातुः । मांसं रुधिराधारं तृतीयो धातुः । बीजानि प्रा(प्र) रोहयोग्यावयवगोधूमादयः । फलानि जंम्बाम्राम्वा-डकफलानि । कंदः कंदल्य[2]धःप्रारोहकारणं । मूलं पिप्पला[3]द्यधःप्ररोहनिमित्तं । छिन्नानि पृथग्भूतानि मलानि चतुर्दश भवन्ति । कानिचिदत्र महामलानि, कानिचिदल्पानि, कानिचिन्महादोषाणि, कानिचिदल्पदोषाणि । रुधिरमांसास्थिचर्मपूयानि महादोषाणि सर्वाहारपरित्यागेऽपि प्रायश्चित्तकारणानि द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियशरीराणि बालाश्चाहारत्यागकारणनिमित्तानि । नखेनाहारः परित्यज्यते । किंचित्प्रायश्चित्तं क्रियते । कणकुंडबीजकंदफलमूलानि परिहारयोग्यानि यदि परिहर्तुं न शक्यन्ते भोजनपरित्यागः क्रियते । तथा स्वशरीरे सिद्धभक्तौ कृतायां यदि

क्रम विशुद्ध कहिए उत्कर्म करि हीण, बहुरि यात्रा साधन मात्र कहिए प्राणन का धारण कै अर्थि अथवा मोक्षयात्रा का साधना कै निमित्त बहुरि चौदह मलकरि वर्जित—ऐसा भोजन साधु ग्रहण करै—ऐसा संबंध जानना ।। ६४ ।।

आगै चौदह मलनि के नाम कहै हैं—

अर्थ—१. नख कहिए मतुष्य का तथा तिरजंच का हाथ-पाँव की अंगुली का अग्र विषै उत्पन्न भया नख । २. बहुरि रोम कहिए मनुष्य तिरजंच का बाल । ३. बहुरि जंतु कहिए प्राण रहित शरीर । ४. बहुरि अस्थि कहिए हाड । ५. बहुरि कण कहिए जव, गौहूँ इत्यादिक का बाह्य अवयव । ६. कुंडि कहिए सालि (शाल्य) इत्यादिक का आभ्यंतर सूक्ष्म अवयव । बहुरि ७. पूय कहिए पक्या रुधिर, गूमड़े का क्लेद जिसकूं राधि कहिए । ८. बहुरि चर्म कहिए शरीर की त्वचा प्रथमधातु । बहुरि कहिए ९. लोही (रुधिर) दूसरा धातु । वहुरि १०. मांस कहिये रुधिर का आधार तीसरा धातु १०. बहुरि बीज कहिये अंकुरा उपजनै कौ योग्य जव गौहूँ इत्यादिक । वहुरि १२. फल कहिये जामूणि, आम्र, अवांडक इत्यादिक फल । वहुरि १३. कंद कहिये कदली कौं आदि दे नीचे प्ररोह (जमींकंद) कौ कारण । १४. मूल कहिये पीपल कौं आदि दे नीचै प्ररौहकौं निमित्त । ऐसैं ये छिन्न कहिये पृथक्भूत चौदह मल हैं ।

इहां कोई महामल है, कोई अल्पमल है, कोई महादोष है, कोई अल्पदोष है । रुधिर, मांस, अस्थि, चर्म, पूति—ये महादोष हैं । सर्व आहार का त्याग कीये भी प्रायश्चित लेने के कारण हैं । बहुरि विकलत्रय का शरीरबल ये आहार परित्याग के कारण हैं । बहुरि नखतैं आहार का परित्याग करणां किंचित्प्रायश्चित कारण है । बहुरि कण, कुंड, कंद, बीज, फल, मूल परिहार योग्य हैं । जो परिहार करने को शक्य न होय तौ भोजन का परित्याग करै तथा अपनें शरीर विषैं सिद्धभक्ति कीये पीछै रुधिर, राधि

---

१ क °र्यग्गतः । २. क °ल्याधः प्ररो° । ३. क °ल्याधः° ।

रुधिरं पूयं च गलति पारिवेशकशरीराद्वा तदाहारस्य त्यागः। तद्दिवसेऽस्य मांसस्य पुनर्दर्शनेनाष्टप्रकारायां पिंडशुद्धौ न पठितानीति पृथगुच्यन्ते इति ॥ ६५ ॥

दोषरहितं भुंक्ते यतिरित्युक्ते किं तद्भुंक्ते इत्याशंकायामाह—

पगदा असओ जह्मा तह्मादो दव्वदोत्ति तं दव्वं।
फासुगमिदि सिद्धेवि य अप्पट्ठकदं असुद्धं तु ॥ ६६ ॥

द्रव्यभावतः प्रासुकं द्रव्यं भुंक्ते। द्रव्यगतप्रासुकमाह—प्रगता असवः प्राणिनो यस्मात्तस्माद्द्रव्यतः शुद्धमिति तद्द्रव्यं यत्रैकेन्द्रिया जीवा न सन्ति न विद्यन्ते स आहारस्तद्द्रव्यतः शुद्धः, द्वीन्द्रियादयः पुनर्यत्र सजीवा निर्जीवा वा सन्ति स आहारो दूरतः परिवर्जनीयो द्रव्यतोऽशुद्धत्वादिति। प्रासुकमिति अनेन प्रकारेण प्रासुकं सिद्धं निष्पन्नमपि द्रव्यं यद्यात्मार्थं कृतमात्मनिमित्तं कृतं चिन्तयति तदा द्रव्यतः शुद्धमप्यशुद्धमेव ॥ ६६ ॥

कथं परार्थकृतं शुद्धमित्याशंकायां दृष्टान्तेनार्थमाह—

जह मच्छयाण पयदे मदणुदये मच्छया हि मज्जंति।
ण हि मंडूगा एवं परमट्ठकदे जदि विसुद्धो ॥ ६७ ॥

यथा मत्स्यानां प्रकृते मदनोदके यथा मत्स्यानां निमित्ते कृते मदनकारणे जले मत्स्या हि स्फुटं माद्यन्ति विह्वलीभवन्ति न हि मण्डूका, भेका नैव माद्यन्ति। यस्मिञ्जले मत्स्यास्तस्मिन्नेव मण्डूका अपि तथापि ते न विपद्यन्ते तद्धेतोरभावात्। एवं परार्थे कृते भक्षादिके[1] प्रवर्तमानो-

---

झरै तथा भोजन देनैं वालैं कै शरीरतैं झरैं तो तिस दिन आहार का त्याग करै। मांस का देखनें हौतैं आहार का त्याग करै, अष्ट प्रकार पिंडशुद्धि मैं नाहीं करैं, यातैं पृथक् कहै है ॥ ६५ ॥

अैसे जती दोषरहित भोजन करैं, सौ भोजन कैसा ? अैसी आशंका हौतैं संतै कहैं है—

अर्थ—मुनि है सो द्रव्य-भाव दोन्यूं प्रकारकरि प्रासुक द्रव्य का भोजन करें। प्रथम द्रव्यप्रासुक का स्वरूप कहै—प्रगता कहिए गए हैं, असु कहिए प्राणी, जातैं सो द्रव्य द्रव्यकरि शुद्ध कहिए जामैं एकैन्द्रिय जीव नांही विद्यमान होय सो आहार द्रव्य शुद्ध कहिए। जामैं एकैंद्रिय जीव विद्यमान होय सो द्रव्य शुद्ध नांही। बहुरि जामैं वेंद्रियादिक त्रस जीव अथवा तिनिका कलेवर विद्यमान होय सौ तौं दूरि ही थकी छोडनां। बहुरि इस प्रकार प्रासुक सिद्ध निष्पन्न भी द्रव्य है। जो अपने अर्थी कीया है—अैसा चिंतैं तदि भावकरि अशुद्ध कहिए। जो प्राशुक द्रव्य होय अपने अर्थि कीया नांही होय सो दोउ प्रकार सिद्ध कहिए ॥ ६६ ॥

आगै पैला के अर्थि कीया जो शुद्ध कैसे ? अैसी आशंका हौते संतै दृष्टांतकरि अर्थ हैं ताहि कहै हैं—

अर्थ—जैसे माछलांनि कैं निमित्त कीया मदन कारण जल ताकूं हौतें माछले ही मतवाले विह्वल होय है, तिसही जल विषैं मीडके हैं तें विह्वल नांही होय है। तिनि ही कै अर्थि वह जल मदकारी कीया नांही। तातैं तिनकै मद का कारण नांही होय

---

१. क ०भक्ष्यादिके०।

ऽपि यतिर्विशुद्धस्तद्गतेन दोषेण न लिप्यते । कुटुम्बिनोऽधःकर्मादिदोषेण गृह्यन्ते न साधवः । तेन कुटुम्बिनः साधुदानफलेन तं दोषमपास्य स्वर्गगामिनो मोक्षगामिनश्च भवन्ति सम्यग्दृष्टयः, मिथ्यादृष्टयः पुनर्भोगभुवमवाप्नुवंति न दोष इति ॥ ६७ ॥

भावतः शुद्धमाह—

आधाकम्मपरिणदो फासुगदव्वेवि बंधओ भणिओ ।
सुद्धं गयेसमाणो आधाकम्मेवि सो सुद्धो ॥ ६८ ॥

प्रासुके द्रव्ये सति यद्यधःकर्मपरिणतो भवति साधुर्यद्यात्मार्थं कृतं मन्यते गौरवेण तदासौ बन्धको भणितः कर्मवध्नाति । शुद्धं पुनर्गवेषयमाणोऽधःकर्मविशुद्धं कृतकारितानुमतिरहितं यत्नेन पश्यन्नधःकर्मणि सत्यपि शुद्धोऽसौ यद्यप्यधःकर्मणा निष्पन्नोऽसावाहारस्तथापि साधोर्न बंधहेतुः कृतादिदोषाभावादिति ॥ ६८ ॥

सव्वोवि पिंडदोसो दव्वे भावे समासदो दुविहो ।
दव्वगदो पुण दव्वे भावगदो अप्पपरिणामो ॥ ६९ ॥

सर्वोऽपि पिण्डदोषो द्रव्यगतो भावगतश्च समासतो द्विप्रकारः । द्रव्यमुद्गमादिदोषसहितमप्यधःकर्मणा युक्तं द्रव्यगतमित्युच्यते तस्माद्द्रव्यगतः पुनर्द्रव्यमिति । भावतः पुनरात्मपरिणामः शुद्धमपि द्रव्यं परिणामानामशुद्धयाऽशुद्धमिति तस्माद्भावशुद्धिर्यत्नेन कार्या । भावशुद्धया सर्वं तपश्चरणं ज्ञानदर्शनादिकं च व्यवस्थितमिति ॥ ६९ ॥

हैं । अैसे पैला के अर्थी कीया भोजनादिक ताकैं विषैं प्रवर्तमान यती है सो विशुद्ध है, ताके दोषकरि लिप्त नांही होय हैं । बहुरि गृहस्थी हैं ते अधःकर्मादि दोषकरिकैं लिप्त हैं, साधु लिप्त नांही । बहुरि गृहस्थ हैं ते साधु दानके फलकरि तिस दोषकूं निराकरणकरि सम्यग्दृष्टि हैं ते तौ स्वर्गगामी, मोक्षगामी होय हैं । मिथ्यादृष्टि है ते भोगभूमि कूं पावै है, तातैं दोष नांही ॥ ६७ ॥

आगैं भावशुद्ध का स्वरूप कहै है—

अर्थ—द्रव्य प्रासुक होतैं संतैं भी जो साधु अधःकर्म परिणत होय गौरवकरि मेरै अर्थि अैसा भोजन कीया है—अैसा मानें तो कर्म्म कूं बांधे है । बहुरि अधःकर्म्म रहित, कृत, कारित, अनुमोद्यना रहित, अधःकर्म्म विशुद्ध, यत्नकरि देखिता यद्यपि गृहस्थकैं अधःकर्म्मकरि निपज्या आहार है सो भी साधु कै कृत, कारित, अनुमोदना दोष के अभावतैं बंध का कारण नांही ॥ ६८ ॥

आगै फेरि कहै है—

अर्थ—सर्व्व पिंडदोष द्रव्यगत वहुरि भावगत—अैसे समास कहिए संक्षैपतैं दोय प्रकार हैं । द्रव्य उद्गमादि दोष सहित भी होय वा अधःकर्म्म करि युक्त होय, वहुरि भाव कहिये आतमपरिणाम सो परिणाम की अशुद्धताकरि शुद्धद्रव्य सो भी अशुद्ध ही कहिए । तातैं भाव की शुद्धता यत्नकरि करणी । भाव की शुद्धता की सर्व तपश्चरण ज्ञानदर्शनादिक ठहरै है ॥ ६९ ॥

द्रव्यस्य भेदमाह—

सव्वेसणं च विद्देसणं च सुद्धासणं च ते कमसो ।
एसणसमिदिविसुद्धं णिव्वियडमवंजणं जाणे ॥ ७० ॥

सर्वैषणं चशब्देनासर्वैषणं, विद्वैषणं चशब्देनाविद्वैषणं शुद्धाशनं चशब्देनाशुद्धाशनं च ग्राह्यं । एषणासमितिविशुद्धं सर्वैषणमित्युच्यते । तथा विकृतेः पंचरसेभ्यो निष्क्रान्तं निर्विकृतं गुडतैलघृतदधिदुग्धशाकादिरहितं सौवीरशुष्कतक्रादिसमन्वितं विद्वैषणमित्युच्यते । तथा सौवीरशुष्कतक्रादिभिर्वर्जितमव्यञ्जनं पाकादवतीर्णरूपं मनागप्यन्यथा न कृतं शुद्धाशनमिति क्रमशो यथानुक्रमेण जानीहि । एतत्त्रिविधं द्रव्यमशनयोग्यं । असर्वाशनं सर्वरससमन्वितं सर्वव्यञ्जनैश्च सहितं कादाचिद्योग्यं कादाचिदयोग्यमिति । एवमनेन न्यायेनैषणासमितिर्व्याख्याता भवति ॥ ७० ॥

तां कथं कुर्यादित्याशंकायामाह—

दव्वं खेत्तं कालं भावं बलवीरियं च णाऊण ।
कुज्जा एषणसमिदि जहोवदिट्ठं जिणमदम्मि ॥ ७१ ॥

द्रव्यमाहारादिकं ज्ञात्वा, तथा क्षेत्रं जांगलानूपरूक्षस्निग्धादिकं ज्ञात्वा. तथा कालं शीतोष्णवर्षादिकं ज्ञात्वा तथा भावमात्मपरिणामं श्रद्धामुत्साहं ज्ञात्वा, तथा शरीरबलमात्मनो ज्ञात्वा, तथात्मनो वीर्यं संहननं ज्ञात्वा कुर्यादशनसमितिं जिनागमे यथोपदिष्टामिति । अन्यथा यदि कुर्याद्वातपित्तश्लेष्मादिसमुद्भवः स्यादिति ॥ ७१ ॥

आगैं द्रव्य का भेद कहै हैं—

अर्थ—सर्वैषण, च शब्दकरि असर्वैषणं, विद्वैषणं, च शब्दकरि अविद्वैषणं, शुद्धाशन च शब्दकरि अशुद्धाशन ग्रहण करना । तहां एषणा समितिकरि विशुद्ध सो सर्वैषण कहिए तथा विकृति कहिए पंचरस तिनिकरि रहित होय, गुड, तेल, घृत, दही, दूध शाकादिक इनिकरि रहित होय, कांजी, धौलि, छांछ इत्यादिककरि सहित होय सो विद्वेषण कहिए । बहुरि कांजी, शुष्क छाछि इत्यादिककरि हु रहित होय, व्यंजन रहित होय । पाक तैं उतरचा किंचित् भी अन्यथा नांही कीया सो शुद्धाशन कहिए । अैसे अनुक्रमकरि द्रव्य तीनप्रकार जाननां सो असन योग्य है । बहुरि असर्वाशन सर्व रसकरि सहित, सर्व व्यंजनकरि सहित कदाचित् योग्य, कदाचित् योग्य नांही । अैसे इस न्यायकरि एषणा समिति का व्याख्यान कीया ॥ ७० ॥

आगैं तिस ऐषणा समितिकूं कैसैं करैं ? अैसी आशंका होतै संतै कहै है—

अर्थ—द्रव्य कहिए आहारादिक, क्षेत्र कहिए जांगल, अनूप, रुक्ष, स्निग्ध इत्यादिक तथा काल कहिए शीत, उष्ण, वर्षा इत्यादिक तथा भाव कहिए अपना परिणाम, श्रद्धा, उत्साह तथा बल कहिए शरीर का बल तथा वीर्य कहिए संहनन—इनिकूं जानिकरि जैसै जिनमत मैं उपदेश कीया है तैंसे एषणा समिति है ताहि करै । जो अन्यथा करैं तौ वात, पित्त, श्लेषम इत्यादिक की उत्पत्ति होय ॥ ७१ ॥

भोजनविभागपरिमाणमाह—

अद्धमसणस्स सव्विजणस्स उदरस्स तदियमुदयेण ।
वाउ संचरणट्ठं चउत्थमवसेसये भिक्खू ।। ७२ ।।

उदरस्यार्धं सव्यञ्जनेनाशनेन पूरयेत्तृतीयभागं चोदरस्योदकेन पूरयेद्वायोः संचरणार्थं चतुर्थभागमुदरस्यावशेषयेद्भिक्षुः । चतुर्थभागमुदरस्य तुच्छं कुर्याद्येन षडावश्यकक्रियाः सुखेन प्रवर्तते, ध्यानाध्ययनादिकं च न हीयते, अजीर्णादिकं च न भवेदिति ।। ७२ ।।

भोजनयोग्यकालमाह—

सूरुदयत्थमणादो णालीतिय वज्जिदे असणकाले ।
तिगदुगएगमुहुत्ते जहण्णमज्झिम्ममुक्कस्से ।। ७३ ।।

सूर्योदयास्तमनयोर्नाडीत्रिकवर्जितयोर्मध्येऽशनकालः । तस्मिन्नशनकाले त्रिषु मुहूर्तेषु भोजनं जघन्याचरणं द्वयोर्मुहूर्तयोरशनं मध्यमाचरणं एकस्मिन् मुहूर्तेऽशनमुत्कृष्टाचरणमिति सिद्धिभक्तौ कृतायां परिमाणमेतन्न भिक्षामलभमानस्य पर्यटत इति ।। ७३ ।।[1]

भिक्षार्थं प्रविष्टो मुनिः किं कुर्वन्नाचरतीत्याह—

भिक्खा चरियाए पुण गुत्तीगुणसीलसंजमादीणं ।
रक्खंतो चरदिमुणी णिव्वेदतिगं च पेच्छंतो ।। ७४ ।।

आगै भोजनविभाग का परिमाण कहै है—

अर्थ—भिक्षु कहिए साधु है सो उदर के च्यारि भागनि मैं अर्द्ध कहिए दोयभाग है ताहि व्यंजन सहित अशनकरि पूरण करैं । बहुरि तीसराभाग है ताहि जलकरि पूर्ण करै । बहुरि चौथा भाग है ताहि पवन का संचारकै अर्थि अवशेष रीता राखैं, जाकरिकैं षडावश्यक क्रिया हैं ते सुखकरि प्रवर्तैं, ध्यान-अध्ययनादिक हीन नांही होय, बहुरि अजीर्णादिक नांही होय ।। ७२ ।।

आगैं भोजन योग्य काल है, ताहि कहै है—

अर्थ—सूर्य का उदयतैं तीन घडी पीछै तैं लेयकरि, सूर्य का अस्ततैं तीनघडी, पहली तीन घडी दिन पिछला रहै जब तांई वीचि का भोजनकाल है । इस काल में एक वार तीन मुहुर्त काल भोजन मैं लागै यहु जघन्य आचरण है । दोय मुहुर्तकाल लागै यहु मध्य आचरण है । एक मुहुर्त काल लागै यह उत्कृष्ट आचरण है । सिद्धभक्ति कीये पीछै यह परिमाण है । भिक्षा न पावै भ्रमण करै, ताका काल का यह परिणाम नांही सो कहैं हैं ।। ७३ ।। आगैं भिक्षा के अर्थी प्रवेश करता जो मुनिराज सो कहा करता आचरण करैं ?—

---

१. यह गाथा फलटन से प्रकाशित मूलाचार में अधिक है—एकम्हि दाण्णि तिण्णि य मुहुत्तकालो दु उत्तमादीगो ।
पुरदो य पच्छिमेण य णालीतिगवज्जिदो चारे ।।

अर्थात् सूर्योदय से तीन घटिका के बाद और सूर्यास्त से तीन घटिका के पूर्व बीच का काल आहार का काल है । एक मुहूर्त में भोजन करना उत्तम, दो मुहूर्त में मध्यम और तीन मुहूर्त में जघन्य माना गया है । यही अर्थ ऊपर का गाथा में आ चुका है ।

भिक्षाचर्यायां प्रविष्टो मुनिर्मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति रक्षंश्चरति । गुणान् मूलगुणान् रक्षंश्चरति । तथा शीलसंयमादींश्च रक्षंश्चरति । निर्वेदत्रिकं चापेक्ष्यमाण: शरीरवैराग्यं संगवैराग्यं संसारवैराग्यं चापेक्ष्यमाण इत्यर्थः ।। ७४ ।। तथा—

आणा अणवत्थावि य मिच्छत्ताराहणादणासो य ।
संजमविराहणावि य चरियाए परिहरेदव्वा ।। ७५ ।।

आणा—आज्ञा वीतरागशासनं रक्षयन् पालयंश्चरतीति सम्बन्धः । एतांश्च परिहरंश्चरति अनवस्था स्वेच्छाप्रवृत्तिरपि च, मिथ्यात्वाराधनं सम्यक्त्वप्रतिकूलाचरणं, आत्मनाशः स्वप्रतिघातः, संयमविराधना चापि चर्यायां परिहर्त्तव्याः । भिक्षाचर्यायां प्रविष्टो मुनिरनवस्था यथा न भवति तथा चरति । मिथ्यात्वाराधनात्मनाशः संयमविराधनाश्च यथा न भवन्तीति तथा चरति तथान्तरायांश्च परिहरंश्चरति ।। ७५ ।।

केतेऽन्तराया [1]इत्याशंक्याह—

कागा मेज्झा छद्दी रोहण रुहिरं च अस्सुवादं च ।
जण्हूहिट्ठामरिसं जण्हुवरि वदिक्कमो चेव ।। ७६ ।।

काका उपलक्षणार्थो गृहीतस्तेन काकवकश्येनादयः परिगृह्यन्ते । गच्छतः स्थितस्य वा वक-काकादयो यदुपरि व्युत्सर्गं कुर्वन्ति तदपि काक इत्युच्यते साहचर्यात् । काको नाम भोजनस्यान्तरायः । तथाऽमेध्यमशुचि तेन पादादिकं यल्लिप्तं तदप्यमेध्यमिति साहचर्यात्, अमेध्यं

अर्थ—भिक्षाचर्या के विषैं प्रवेश करता मुनिराज मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति पालता संता विचरै तथा मूलगुण पालता संता विचरै तथा शील, संयम इत्यादिक कौं पालता विचरै । वहुरि निर्वेदत्रिक कहिये—शरीर सौं वैराग्य तथा परिग्रहसौं वैराग्य तथा संसारसौं वैराग्य—अैसे तीन वैराग्य हैं, ताकी अपेक्षा करता विचरै ।। ७४ ।।

वहुरि कहै है—

अर्थ—आज्ञा कहिए वीतराग का शासन ताकौं पालता संता विचरै । तथा चर्या के विषै अनवस्था कहिये स्वेच्छाप्रवृत्ति ताका परिहार करै । मिथ्यात्वाराधना कहिये सम्यक्त्व के प्रतिकूल आचरण ताका परिहार करै । वहुरि आत्मनाश कहिये अपना प्रतिघात ताका परिहार करै । वहुरि संयम विराधना का परिहार करैं, जैसे अनवस्था नांही होय, मिथ्यात्व की आराधना नांही होय, 'आत्मनाश नांही होय, संजम विराधना नांही होय तैसें' भिक्षाचर्या विषैं प्रवेश करै तथा अंतराय है तिनका परिहार करता संता विचरै ।। ७५ ।।

ते अंतराय कौन से ? अैसी आशंका होतैं संतै कहै है—

अर्थ—काक शब्द उपलक्षणार्थं ग्रहण कीया तातैं काक, वक, सेन (श्येन) इत्यादिक का ग्रहण करणा सांधु कै चालतैं खडा रहतैं जो ऊपरि काक आदिक वीट करै सो काक नामा भोजन का अंतराय जाननां । तथा अमेध्य कहिये अशुचि ताकरि

---

१. क इत्याशंकायामाह ।

नामान्तरायः । तथा छर्दिर्वमनमात्मनो यदि भवति । तथा रोधनं यदि कश्चिद्धरणादिकं करोति । तथा रुधिरमात्मनोऽन्यस्य वा यदि पश्यति । चशब्देन पूयादिकं च ग्राह्यं । तथाऽश्रुपातो दुःखेनात्मनो यद्यश्रूण्यागच्छन्ति परेषामपि सन्निकृष्टानां यद्ययं दोषो भवेत् । तथा जान्वधः आमर्शो जान्वधः परामर्शः । तथा जानूपरि व्यतिक्रमश्चैव । सर्वत्रान्तरायेण सम्बन्ध इति ।। ७६ ।। तथा—

णाभिअधोणिग्गमणं पच्चक्खियसेवणा य जंतुवहो ।
कागादिपिंडहरणं पाणीदो पिंडपडणं च ।। ७७ ।।

नाभ्यधो निर्गमनं नाभेरधो मस्तकं कृत्वा यदि निर्गमनं भवेत् । तथा प्रत्याख्यातस्य सेवना च, अवग्रहो यस्य वस्तुनस्तस्य यदि भक्षणं स्यात् । तथा जन्तुवधः आत्मनोऽन्येन या पुरतो जीववधो यदि क्रियते । तथा काकादिभिः पिंडहरणं यदि काकादयः पिण्डमपहरन्ति । तथा पाणिपात्रात्पिण्डपतनं भुंजानस्य पाणिपुटाद्यदि पिण्डो ग्रासमात्रं वा पतति ।। ७७ ।। तथा—

पाणीए जंतुवहो मंसादीदंसणे य उवसग्गे ।
पादंतरम्मि जीवो संपादो भायणाणं च ।। ७८ ।।

पाणिपात्रे जन्तुबधो जन्तुरात्मनागत्य पाणौ भुंजानस्य यदि म्रियते । तथा मांसादिदर्शनं मांसं मृतपंचेन्द्रियशरीरं इत्येनमादीनां दर्शनं

आपका चरणादिक लिप्त हो जाये सो अमेध्य नामा अंतराय कहिये । वहुरि जो आपके वमन हो जाये तो छर्दि नामका अंतराय कहिये तथा भोजन करणै का कोउ निषेध करै । भोजन मति करउ—अैसा कहै तौ रोधन नाम अंतराय कहिये । तथा आपका वा अन्य का रुधिर च शब्दकरि राधि इत्यादि कौं देखैं तौ रुधिर नामां अंतराय कहिए । तथा दुःखकरि आपकै आंसू आवैं तथा नजदीक पैलेन कैं आसू आवैं तौ अश्रुपात नाम अंतराय कहिये निकटवर्त्तीन, कै उच्च स्वरकरि सहित रुदन होता होय । तथा गोडा नीचैं हाथकरि स्पर्श करै जान्वधः परामर्श नामा अंतराय कहिये । तथा गोडा-प्रमाण तिरिछा आगल इत्यादिक रूप काष्ठ तिस उपरि उलंघि जाना होय तो जानूंपरिव्यतिक्रम नामा अंतराय कहिये ।।७६।। अैसे इस गाथा मैं आठ अंतराय कहै है ।

आगै अन्य अन्तराय कहै हैं—

अर्थ—नाभि तैं नीचा मस्तककरि नीसरणां परै तो नाभ्यधोनिर्गमन नाम अंतराय कहिये तथा आपकरि अन्यकरि अगाडी जीववध हौय तौं जंतुवधनाम अंतराय कहिये । तथा काकादि का पिंड ले जाय तौ काकादिपिंडहरण नाम अंतराय है तथा भौजन करता पाणिपात्रतैं पिंड-ग्रास गिरि पडै तो पाणितः पिंडपतन नाम अंतराय है । अैसें इस गाथा मैं पांच अंतराय और कहै ।। ७७ ।।

आगैं अन्य अंतराय कहै हैं—

अर्थ—भोजन करता पाणिपात्र के विषैं कोउ जंतु आप आयकरि मर जाय तौ पाणौ-जंतुवध नामा अंतराय कहिये तथा देवकरि इत्यादिक उपसर्ग होय तौ उपसर्ग नामा अंतराय कहिए तथा दोउ पांवनि वीचि पंचेन्द्रिय जीव गमन करै तौ पादांतरै

यदि स्यात् । तथोपसर्गो दैविकाद्युपसर्गो यदि स्यात् । तथा पादान्तरे पंचेन्द्रियजीवो यदि गच्छेत् । तथा सम्पातो भाजनस्य परिवेषकहस्ताद्‌-भाजनं यदि पतेत् ॥ ७८ ॥ तथा—

उच्चारं पस्सवणं अभोजगिहपवेसणं तहा पडणं ।
उववेसणं सदंसं भूमीसंफास णिट्ठुवणं ॥ ७९ ॥

उच्चार आत्मनो यद्युदरमलव्युत्सर्गः स्यात् । तथात्मनः प्रस्रवणं मूत्रादिकं यदि स्यात् । तथा पर्यटतोऽभोजनगृहप्रवेशो यदि भवेत् चांडालादिगृहप्रदेशो यदि स्यात् । तथा पतनमात्मनो मूर्च्छादिना यदि पतनं भवेत् । तथोपवेशनं यद्युपविष्टो भवेत् । तथा सदंशः सह दंशेन वर्तते इति सदंशः श्वादिभिर्यदि दष्टः स्यात् । तथा भूमिसंस्पर्शः सिद्धभक्ति कृतायां हस्तेन भूमिं यदि स्पृशेत् । तथा निष्ठीवनं स्वेन यदि श्लेष्मादिकं क्षिपेत् ॥ ७९ ॥ तथा—

उदरक्किमिणिग्गमणं अदत्तगहणं पहारगामडाहोय ।
पादेण किंचि गहणं करेण वा जं च भूमीए ॥ ८० ॥

उदराद्यदि कृमिनिर्गमनं भवेत् । तथा अदत्तग्रहणमदत्तं यदि किंचिद् गृह्णीयात् । तथा प्रहार आत्मनोऽन्यस्य वा खड्गादिभिर्यदि प्रहारः स्यात् । तथा ग्रामदाहो यदि स्यात् । तथा पादेन यदि किंचिद् गृह्यते । तथा करेण वा यदि किंचिद्गृह्यते भूमेरिति सर्वत्राशनस्यान्तरायो भवतीति सम्बन्धः ॥ ८० ॥ तथा—

जीव-नामा अंतराय कहिये तथा पारिवेषक कहिये भोजन देनें वाला के हाथ तैं भाजन गिर परै सो भाजन संपातनाम अंतराय कहिये ॥ ७८ ॥ इस गाथा मैं पाँच अंतराय फेरि कहे ।

आगैं अन्य अंतराय अरि कहै है—

अर्थ—आपका उदरतैं मल का व्युत्सर्ग होय तौ उच्चार नामा अंतराय कहिये तथा आपकै मूत्रादिक श्रवै तौ प्रश्रवण नामा अंतराय कहिये । तथा भिक्षाकै अर्थि भ्रमण करतै अभोज्य गृह चांडालादि गृह मैं प्रवेश होय जाय तौ अभोज्यगृहप्रवेश नामा अंतराय कहिये तथा आपका मूर्छादिक करि जो पतन हो जाये तौ पतननाम अंतराय कहिये । तथा आप खडा है सो बैठि जाय तौ उपवेशन नाम अंतराय कहिये । तथा कुत्तादिक काटै तो सदंश नाम अंतराय कहिये । तथा सिद्धभक्ति कीये पीछै हाथकरि भूमि को स्पर्श तौ भूमिसंस्पर्श नाम अंतराय कहिये । तथा आप श्लेषमादिक खिपे तौ निष्ठीवन नाम अंतराय कहिये । अैसे इस गाथा मैं आठ अंतराय और कहै ॥ ७९ ॥

आगैं अन्य अंतराय कहै हैं—

अर्थ—जो उदरतैं क्रमि का निर्गमन होय तौ उदरक्रमि निर्गमन नामा अंतराय कहिये । तथा बिना दीया किंचित् ग्रहण होय तौ अदन्तग्रहणनाम अंतराय कहिये । तथा आपकै वा अन्य कै खंज्जरादिक करि प्रहार होय तौ प्रहार नाम अंतराय कहिये तथा ग्राम दाह होय तौ ग्रामदाह नामा अंतराय कहिये तथा पांवकरि भूमितैं कछु ग्रहण करै तौ पादेनकिंचित् ग्रहण नामा अंतराय कहियै । तथा हस्तकरि भूमितैं किंचित् ग्रहण करै तौ करेण किंचित्ग्रहणनामा अंतराय कहिये ॥ ८० ॥ अैसें इस गाथा में छह अंतराय और कहै ।

एदे अण्णे बहुगा कारणभूदा अभोयणस्सेह ।
बीहणलोगदुगुंछणसंजमणिव्वेदणट्ठं च ।। ८१ ।।[1]

एते पूर्वोक्ताः काकादयोऽन्तरायाः कारणभूता भोजनपरित्यागस्य द्वात्रिंशत् । तथान्ये च बहवश्चंडालादिस्पर्शकरेष्टमरणसाधर्मिकसंन्यासपतनप्रधानमरणादयोऽशनपरित्यागहेतवः । भयलोकजुगुप्सायां संयमनिर्वेदनार्थं च यदि किंचित्स्यात् भयं राज्ञः स्यात्, तथा लोकजुगुप्सा च यदि स्यात् तथाप्याहारत्यागः । संयमार्थं चाहारत्यागो निर्वेदनार्थं चेति ।। ८१ ।।

पिण्डशुद्धिमुपसंहरन्नाह—

जेणेह पिंडसुद्धी उवदिट्ठा जेहि धारिदा सम्मं ।
ते वीरसाधुवग्गा तिरदणसुद्धि मम दिसंतु ।। ८२ ।।[2]

सूत्रकारः फलार्थी प्राह—यैरिह पिण्डशुद्धिरुपदिष्टा यैश्च धारिता सेविता सम्यग्विधानेन ते वीरसाधुवर्गास्त्रिरत्नशुद्धिं मम दिशन्तु प्रयच्छन्तु ।। ८२ ।।

इत्याचारवृत्तौ वसुनन्दिविरचितायां पिण्डशुद्धिर्नाम षष्ठः प्रस्तावः ।

आगैं फिरि कहैं है—

अर्थ—एते कहिये पूर्बैं पांच गाथानि करि कहै काकादिक बत्तीस अंतराय ते भोजन का परित्याग का कारणभूत जाननां । तथा अन्य अनेक चांडालादिक का स्पर्श, कलह, इष्ट का मरण, तथा सार्धामि का सन्यासकरि पतन, तथा प्रधान मरणादिक भोजन का परित्याग का कारण जाननैं तथा राजादिक का भय हौतैं लोकनिंदा हौतैं तथा संजमकै अर्थि तथा निर्वेर कै अर्थि आहार का परित्याग करणां ।। ८१ ।।

आगैं पिंडशुद्धि का उपसंहार करता संता कहै है—

अर्थ—सूत्रकार फल का अर्थि हुवा संता कहै है—जिनि यहु पिंडशुद्धि उपदेशी है । वहुरि जिनि यहु सम्यक् विधानकरि धारण करी हैं ते वीर साधुसमूह मैरे तांई तीन् रत्न की शुद्धता देहु । तिनिके प्रसादकरि मैरे दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्म्मलता होउ ।। ८२ ।।

अैसे आचार्य श्रीवट्टकेर स्वामि विरचित मूलाचार नाम प्राकृत ग्रंथ ताकी वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित आचारवृत्ति नाम संस्कृत टीका ताकै, अनुसार यह देशभाषामय वचनिका ताकै विषैं पिंडशुद्धि का है वर्णन जामैं । **अैसा छठा अधिकार समाप्त भया ।** इहांपर गाथासूत्र पांच सै एक (५०१) भये ।

---

१. अन्तरायों का यह वर्णन फलटन से प्रकाशित मूलाचार के प्रथम अध्याय में ही है ।

२. फलटन से प्रकाशित मूलाचार में अन्त्यमंगल रूप एक गाथा और है—

सगबोधदीवणिज्जिद भुवणत्तयरद्धमंदमोहतमो । णमिदसुरासुरसंघो जयदु जिणिंदो महावीरो ।।

अर्थात् जिन्होंने अपने केवलज्ञानरूपी दीप के द्वारा तीनों लोकों में व्याप्त मोहरूपी अन्धकार को नष्ट कर दिया है तथा जिनको सभी सुर-असुर समूह वन्दन करते हैं, वे कर्मों के विजेता श्री महावीर भगवान् सतत् जयवंत हों ।

७. षडावश्यकाधिकारः

प्रायेण जायते पुंसां वीतरागस्य दर्शनम् ।
तद्दर्शनविरक्तानां भयेज्जन्मापि निष्फलम् ॥

षडावश्यकक्रियं मूलगुणान्तर्गतमधिकारं प्रपंचेन विवृण्वन् प्रथमतरं तावन्नमस्कारमाह—

काऊण णमोक्कारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं ।
आइरियउवज्झाए लोगम्मि य सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

कृत्वा नमस्कारं, केषामर्हतां तथैव सिद्धानां, आचार्योपाध्यायानां च लोके च सर्वसाधूनां । लोकशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । कारशब्दो येन तेन षष्ठी संजाताऽन्यथा पुनश्चतुर्थी भवति । अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुभ्यो लोकेऽस्मिन्नमस्कृत्वा आवश्यकनिर्युक्ति वक्ष्ये इति सम्बन्धः सापेक्षत्वात् क्त्वान्तप्रयोगस्येति ॥ १ ॥

नमस्कारपूर्वकं प्रयोजनमाह—

आवासयणिज्जुत्ती वोच्छामि जहाकमं समासेण ।
आयरियपरंपराए जहागदा आणुपुव्वीए ॥ २ ॥

आवश्यकनिर्युक्ति वक्ष्ये । यथाक्रमं क्रममनतिलंघ्य परिपाट्या । समासेन संक्षेपतः । आचार्यपरंपरया यथागतानुपूर्व्या । येन क्रमेणागता पूर्वाचार्यप्रवाहेण संक्षेपतोऽहमपि तेनैव क्रमेण पूर्वागमक्रमं चापरित्यज्य वक्ष्ये कथयिष्यामीति ॥ २ ॥

षडावश्यकाधिकारः

वीतराग जिनराज का दर्शन कठिन नवीन ।
तिनका निष्फल जन्म है जे जिनदर्शन हीन ॥

आगै मूलगुणनि मैं अन्तर्भूत षडावश्यक क्रिया ताका विस्तार करि विवर्ण करता संता सातवाँ अधिकार, आरंभ मैं प्रथम ही नमस्कार कहै है—

अर्थ—जे लोक विषैं अर्हन्त हैं तथा सिद्ध हैं तथा आचार्य, उपाध्याय हैं तथा सर्वसाधु हैं तिनिकौं नमस्कारकरि आवश्यक निर्युक्ति है, ताहि कहूँगा ॥ १ ॥

आगैं अगली गाथा मैं सम्बन्ध जानना—

अर्थ—आवश्यक निर्युक्ति है, ताहि क्रमपरिपाटी है । ताका नहीं उल्लंघन करि जैसे आचार्यनि की परम्परा करि शल्या आया पूर्व-आचार्यनि के प्रवाहकरि जैसे आया तिस ही क्रमकरि पूर्व-आगम का अनुक्रम नांही छोड़िकरि संक्षेपथकी मैं कहूँगा ॥ २ ॥

तावत्पंचनमस्कारनिर्युक्तिमाह—

रागद्दोसकसाए य इंदियाणि य पंच य ।
परिसहे उवसग्गे णासयंतो णमोरिहा ॥ ३ ॥

रागः स्नेहो रतिरूपः । द्वेषोऽप्रीतिररतिरूपः । कषायाः क्रोधादयः । इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि पंच । परीषहाः क्षुधादयो द्वाविंशति । उपसर्गा देवादिकृतसंक्लेशाः । तान् रागद्वेषकषायेन्द्रियपरीषहोपसर्गान् स्वतः कृतकृत्यत्वाद्भव्यप्राणिनां नाशयद्भ्यो विनाशयद्भ्योऽर्हद्भ्यो नम इति ॥ ३ ॥

अथार्हन्तः कया निरुक्त्या उच्यन्त इत्याह—

अरिहंति णमोक्करं अरिहा पूजा सुरुत्तमा लोए ।
रजहंता अरिहंति य अरहंता तेण उच्चंदे ॥ ४ ॥

नमस्कारमर्हन्ति नमस्कारयोग्याः । पूजाया अर्हा योग्याः । लोके सुराणामुत्तमाः प्रधानाः । रजसो ज्ञानदर्शनावरणयोर्हन्तारः । अरेर्मोहस्यान्तरायस्य च हन्तारोऽपनेतारो यस्मात्तस्मादर्हन्त इत्युच्यन्ते । येनेह कारणेनेत्थम्भूतास्तेनार्हन्तः सर्वलोकनाथा लोकेस्मिन्नुच्यन्ते ॥ ४ ॥

अतः किं ?

अरहंतणमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥ ५ ॥

इत्थंभूतानामर्हतां नमस्कारं यः करोति भावेन प्रयत्नमतिः स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण कालेनेति ॥ ५ ॥

अर्थ—राग कहिये स्नेह–रतिरूप भाव, द्वेष कहिये अप्रीति–अरति रूप भाव, कषाय कहिये क्रोधाधिक, इन्द्रिय कहिये नेत्रादिक पांच इन्द्रिय, परिषह कहिये क्षुधा को आदि दे बाईस परिषह, उपसर्ग कहिए देवादिककरि कीया संक्लेश इन सबनिकौं आप कृतकृत्य भये भव्य प्राणीनिका रागादिक समस्त भावनिकौं विनाश करते जे अरहंतदेव तिनकै अर्थि मेरा नमस्कार होउ ॥ ३ ॥

आगै कहै है अरहन्त कैसी निर्युक्तिकरि कहियै, सो ही कहै—

अर्थ—नमस्कार कौं अरिहन्ते कहिए योग्य हैं। तातैं अरिहन्त कहिए बहुरि पूजा कौं अर्हा कहिये हैं। तातैं अरिहन्त कहिए अथवा लोककै विषैं देवनि मैं उत्तमदेव हैं, प्रधानदेव है तातैं अरहन्त कहिए। तथा अरि कहिए मोह-अन्तराय ताका आदि अक्षर अकार, रज कहिए ज्ञानावरण, दर्शनावरण ताका आदि अक्षर रेफ ऐसे अर शब्दकरि च्यारि घातिकर्म कहो तिनिके हंता हैं तातैं अर्हन्त कहिए है। तातैं अर्हन्त हैं सर्वलोक के नाथ हैं ॥ ४ ॥ इस कहनैं तैं कहा अर्थ है, सो कहैं हैं—

अर्थ—पूर्वगाथा विषैं निरुक्तिकरि कहै ऐसे जे अरहन्त तिनिकौं नमस्कार, जो यत्नाचार रूप है बुद्धि जाकी ऐसा पुरुष भावशुद्धिकरि करै है सो शीघ्र कालकरि सर्वःदुखतैं मोक्ष है, ताहि प्राप्त होय हैं ॥ ५ ॥

सिद्धानां निरुक्तिमाह—

दोहकालमयं जंतू उसिदो अट्ठकम्मंहि।
सिदे धत्ते णिधत्ते य सिद्धत्तमुवगच्छइ ॥ ६ ॥

श्लोकोऽयं। दीर्घकालमनादिसंसारं। अयं जन्तुर्जीवः। उषितः स्थितः अष्टसु कर्मसु ज्ञानावरणादिभिः कर्मभिः परिवेष्टितोयं जीवः परिणतः स्थितः। सिते कर्मबन्धे निवृत्ते[1]। निर्धत्ते परप्रकृतिसंक्रमोदयोदीरणोत्कर्षापकर्षणरहिते ध्वस्ते प्रणाशमुपगते सिद्धत्वमुपगच्छति। निर्धत्ते बन्धे ध्वस्ते सत्ययं जन्तुर्यद्यपि दीर्घकालं कर्मसु व्यवस्थितस्तथापि सिद्धो भवति सम्यग्ज्ञानाद्यनुष्ठानेनेति ॥ ६ ॥

तथोपायमाह—

आवेसणी सरीरे इंदियभंडो मणो व आगरिओ।
धमिदव्व जीवलोहो वावीसपरससिहग्गीहिं ॥ ७ ॥

आवेसनी चुल्ली यत्रांमाराणि क्रियन्ते। शरीरे किंविशिष्टे, आवेशनीभूते। इन्द्रियाण्येव भाण्डमुपस्कारभूतं सदंशकाभीरणी हस्तकूट घनादिकं। मनस्त्वाकरी चेता उपाध्यायो लोहकारः। ध्मातव्यं दाह्यं निर्मलीकर्तव्यं। जीवलोहं जीवधातुः। द्वाविंशतिपरीषहाग्निना। एवं द्वाविंशतिपरीषहाग्निना कर्मबन्धे ध्वस्ते चुल्लीकृतं शरीरं त्यक्त्वेन्द्रियाणि चोपस्करणभूतानि परित्यज्य निर्मलीभूतं जीवसुवर्णं गृहीत्वा मनः केवलज्ञानमाकरी सिद्धत्वमुपगच्छति सिद्धो भवतीति सम्बन्धः। तस्मात् सिद्धत्वयुक्तानां सिद्धानां नमस्कारं भावेन यः करोति प्रयत्नमतिः स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण कालेनेति ॥ ७ ॥

आगै सिद्ध शब्द की निर्युक्ति कहै हैं—

अर्थ—यहु जीव अष्टकर्म विषैं अनादिकालतैं दीर्घकाल व्यवस्थित है सो निधत्त कहिए परप्रकृति रूप, संक्रमण, उदय, उदीरणा, अपकर्षण, उत्कर्षण रहित जो सिते कहिए कर्मबंध ताकौं ध्वस्त कहिए नाशकौं प्राप्त होत संतै सम्यक्ज्ञानादिक का आचरणकरि सिद्धभाव कौं प्राप्त होय है ॥ ६ ॥ सो ही उपाय कहै है—

अर्थ—आवेशनी कहिए जहां अंगारे करिए अैसा चुल्ला (चूल्हा) सौ तौ यह शरीर है। बहुरि ये इन्द्रिय हैं तै भांड कहिए सिंडासा (संडासी) अहरणि, अथोडा (हथौडा), घण (घन) इत्यादिक रूप उपकरण हैं। मन (चित्त) है सो आकरी कहिए केवलज्ञान रूप वेत्ता—उपाध्याय है सो लोहकार है। जोवरूप धातु हैं सो निर्मल करने कौं योग्य दाह्य हैं। धवनै कौं योग्य है बाईस परिषह रूप अग्निकरि सौ कर्मबंध कौं ध्वस्त होत सन्तै चुल्ला रूप कीया जो शरीर, ताहि छोड़ि इन्द्रिय रूपी उपकरण कौं छोडि निर्मल हुवा जो जीव रूप सुवर्ण ताहि ग्रहणकरि, मन कहिए केवलज्ञान रूप आकरी सिद्धभाव कौं प्राप्त होय हैं—अैसा सम्बन्ध है। तातैं सिद्धभावकरि युक्त जे सिद्ध तिनिकौं यत्नाचारी होय भावकरि जो नमस्कार करै सो सर्वदुःखतैं मोक्ष होय है, ताहि शीघ्र कालतैं प्राप्त होय हैं ॥ ७ ॥

1. 'निवृत्ते' नास्ति क प्रतौ।

आचार्यस्य निरुक्तिमाह—

सदा आयारविद्दण्हू सदा आयरियं चरो ।
आयारमायारवंतो आयरिओ तेण उच्चदे ।। ८ ।।*

श्लोकोऽयं । सदा सर्वकालं आचारं वेत्तीति, सदाचारवित् रात्रौ दिने वाचरस्य परमार्थसंवेदनं यत्नेन युक्तोऽथवा सदाचारः शोभनाचारः सम्यग्ज्ञानवांश्च सदा सर्वकालमाचरितं चर आचरितं गणधरादिरभिप्रेतं चेष्टितं चरतीति वा चरितं चरोऽथवा चरणीयं श्रामण्ययोग्यं दीक्षाकालं च शिक्षाकालं च चरितवानिति कृतकृत्य इत्यर्थः । आचारमन्यान् साधूनाचारयन् हि यस्मात् प्रभासते तस्मादाचार्यं इत्युच्यते ।। ८ ।। तथा

जम्हा पंचविहाचारं आचरंतो पभासदि ।
आयरियाणि देसंतो आयरिओ तेण वुच्चदे ।। ९ ।।❀

श्लोकोऽयं । पंचविधमाचारं दर्शनाचारादिपंचप्रकारमाचारं चेष्टयन् । प्रभासते शोभते । आचरितानि स्वानुष्ठानानि दर्शयन् प्रभासते आचार्यस्तेन कारणेनोच्यते इति । एवं विशिष्टाचार्यस्य यो नमस्कारं करोति स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण कालेनेति ।। ९ ।।

आगैं आचार्य शब्द की निरुक्ति है, ताहि कहै हैं—

अर्थ—सदा कहिए सर्वकाल समस्त रात्रि-दिन सम्बन्धी आचार, ताकौं परमार्थकरि जाणैं सो सदाचारवित् आचार्य कहिए अथवा सत् कहिए शोभन आचार अर वित् कहिए सम्यक्ज्ञान जाकै होय सो सदाचारवित् आचार्य कहिए । बहुरि सदा कहिए सर्वकाल गणधरादि महामुनिनि करि आचरित कहिए मान्या, आचरण कीया ताकौं आचरण करे सो सदा चरितंचर आचार्य कहिए । अथवा सदा आचरणीय कहिए मुनि पदवी योग्य दीक्षा-काल, शिक्षा-काल ताकौं पहिली आचरणकरि कृतकृत्य भया सो सदा चरितंचर आचार्य कहिए । बहुरि अन्य साधननि कौं आचार है ताहि आचरण करावे है, तातैं आचार्य—अैसा कहिए।। ८ ।। तथा फेरि कहै है—

अर्थ—जम्हा कहिए जातैं दर्शनाचारादिक पंच प्रकार आचार है । ताहि आचरण करता सन्ता सोहै-शोभित है । अर आपकरि आचरण कीये अनुष्ठान अन्यकौं दिखावता उपदेश करता संता शोभे हैं तातैं आचार्य अैसा कहिए है । अैसा आचार्य कौं जो नमस्कार करै हैं सो सर्वदुःखतैं मोक्ष है ताहि शीघ्र कालकरि पावै है ।। ९ ।।

---

* यह गाथा फलटन से प्रकाशित मूलाचार में अधिक है—सिद्धाणणमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमती ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ।।

अर्थात् जो भक्त मन एकाग्र करके सिद्धों को नमस्कार करता है बह सभी दुःखों से मुक्त हो सिद्ध पद प्राप्त कर लेता है ।

❀ फलटन की प्रति में यह गाथा अधिक है—आइरिय णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयद मदी ।
सो सव्वदुक्ख मोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ।।

अर्थात् जो भव्यजीव भाव से एकाग्रचित्त होकर आचार्यों को नमस्कार करता है वह शीघ्र ही सर्वदुःखों से मुक्त हो जाता है ।

उपाध्यायनिरुक्तिमाह—

बारसंगे जिणक्खादं सज्झायं कथितं बुधे ।
उवदेसइ[1] सज्झायं तेणुवज्झाउ उच्चदि ।। १० ।।

द्वादशांगानि जिनाख्यातानि जिनैः प्रतिपादितानि स्वाध्याय इति कथितो बुधैः पंडितैस्तं स्वाध्यायं द्वादशाङ्गचतुर्दशपूर्वरूपं यस्मादुपदिशति प्रतिपादयति तेनोपाध्याय इत्युच्यते । तस्योपाध्यायस्य नमस्कारं यः करोति प्रयत्नमतिः स सर्वदुखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण कालेनेति ।। १० ।।

साधूनां निरुक्तितो नमस्कारमाह—

णिव्वाणसाधए जोगे सदा जुंजंति साधवो ।
समा सव्वेसु भूदेसु तह्मा ते सव्वसाधवो ।। ११ ।।*

यस्मान्निर्वाणसाधकान् योगान् मोक्षप्रापकान् मूलगुणादितपोऽनुष्ठानानि सदा सर्वकालं रात्रिंदिवं युंजन्ति तैरात्मानं योजयन्ति साधवः साधुचरितानि । यस्माच्च समाः समत्वमापन्नाः सर्वभूतेषु तस्मात्कारणात्ते सर्वसाधव इत्युच्यन्ते । तेषां सर्वसाधूनां नमस्कारं भावेन यः करोति प्रयत्नमतिः स सर्वदुःखमोक्षं करोत्यचिरेण कालेनेति ।। ११ ।।

आगै उपाध्याय शब्द की निरुक्ति है, ताहि कहै है—

अर्थ—द्वादशांग, चउदह पूर्व रूप जिनदेवकरि प्रतिपादन कीया ताहि पंडितजन स्वाध्याय कहै है, तिस स्वाध्याय कौं जो उपदेशकरि तातैं उपाध्याय कहिए । तिस उपाध्याय कौं जो जतनाचारी नमस्कार करै है सो सर्व दुःखतैं मोक्ष है ताहि शीघ्रकाल करि पावै है ।। १० ।।

आगैं साधु शब्द की निरुक्ति बहुरि तिनकौं नमस्कार कहै हैं—

अर्थ—निर्वाण का साधक मोक्ष ।का प्राप्ति करवा वाला जे जोग कहिए मूलगुणादिक तपश्चरण तिनकौं जे साधु सर्व-काल रात्रि-दिन जोड़ै, तिनकरि अपने आतमा कौं जोड़ै तथा सर्वभूत कहिए सकल जीव तिनकै विषैं समभाव कौं प्राप्त भयौ तातैं सर्वसाधु कहिए तिन सर्वसाधुनि कौं जो यत्नाचारी भावकरि नमस्कार करै है, सर्वदुःखतैं मोक्ष है, ताहि शीघ्रकाल करि पावै है ।। ११ ।।

---

१. अ प्रति में उवदेसई ।

*यह गाथा फलटन से प्रकाशित प्रति में अधिक है—

उवज्झायणमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ।।

अर्थात् जो स्थिरचित्त भव्य भक्ति से उपाध्याय परमेष्ठी को नमस्कार करता है, वह शीघ्र ही सर्वदुःखों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

पंचनमस्कारमुपसंहरन्नाह—

एवंगुणजुत्ताणं पंचगुरूणं विसुद्धकरणेहिं ।
जो कुणदि णमोक्कारं सो पावदि णिव्वुदिं सिग्घं ॥ १२ ॥*

एवं गुणयुक्तानां पंचगुरूणां पंचपरमेष्ठिनां सुनिर्मलमनोवाक्कायैर्यः करोति नमस्कारं स प्राप्नोति निर्वृतिं सिद्धिसुखं शीघ्रं । न पौनरुक्त्यं, द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकयोरुभयोरपि संग्रहार्थत्वादिति ॥ १२ ॥

किमर्थं पंचनमस्कारः क्रियत इति चेदित्याह—

एसो पंच णमोयारो[1] सव्वपावपणासणो ।
मंगलेसु य सव्वेसु पढमं हवदि[2] मंगलं ॥ १३ ॥

एष पंचनमस्कारः सर्वपापप्रणाशकः सर्वविघ्नविनाशकः मलं पापं गालयन्तीति विनाशयन्ति, मंगं सुखं लान्त्याददतीति वा मंगलानीति तेषु मंगलेषु भावमंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं भवति मंगलं यस्मात्तस्मात् सर्वशास्त्रादौ मंगलं क्रियत इति ॥ १३ ॥

आगैं पंचनमस्कार है, ताहि उपसंहार करता संता कहै है—

अर्थ—अैसे पूर्वोक्त गुणनिकरि जुक्त जै पंचगुरु कहिए पंचपरमेष्ठी तिनिकौं विशुद्धकरणैः कहिए निर्मल मन, वचन, कायकरि नमस्कार करै हैं सो शीघ्र ही निर्वृत्ति जा मोक्षसुख है, ताहि प्राप्त होय है। इहां पुनरुक्तता नांही है। द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोन्यू नय का संग्रहकरि सामान्य-विशेष दोन्यूं रूप कथन कीया है ॥ १२ ॥

आगैं यहु पंचनमस्कार कौंन अर्थि करिए है ? सो कहै है—

अर्थ—यह पंचनमस्कार है सो सर्वपाप का नाश करणहारा है, सर्वविघ्न का विनाशक है। बहुरि 'मं' कहिए मल-पाप ताहि गाले विनाशै सो मंगल अथवा 'मंग' कहिए सुख ताहि, 'ल' कहिए देवै, सो मंगल कहिए। अैसे द्रव्यमंगल कहिए। अैसे द्रव्यमंगल तथा भावमंगल तिन सर्वमंगल विषैं यह पंचचमस्कार प्रथम मंगल है। ताही तैं सर्वशास्त्र की आदि विषैं यहु मंगलाचरण करिए है ॥ १३ ॥ अैसे पंचनमस्कार की निरुक्ति कहि।

---

*यह गाथा फलटन से प्रकाशित प्रति में अधिक है—

साहूण णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पाइव अचिरेण कालेण ॥

अर्द—जो स्थिरचित्त हुआ भव्यजीव भावपूर्वक साधुओं को नमस्कार करता है वह तत्काल ही सर्वदुःखों से छूटकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है। 'साहूण' की जगह 'अरहंत' शब्द देकर ज्यों की त्यों यह गाथा क्र० ५ पर अंकित है।

१. अ, ब, ग णमोकारो। २. ग भवदि।

पंचनमस्कारनिरुक्तिमाख्यायावश्यकनिर्युक्तेर्निरुक्तिमाह—

ण वसो अवसो अवसस्सकम्ममावस्सयंति बोधव्वा[1] ।
जुत्तित्ति उवायत्ति य णिरवयवा होदि णिज्जुत्ती ॥ १४ ॥

न वश्यः पापादेरवश्यो यदेन्द्रियकषायेषत्कषायरागद्वेषादिभिरनात्मीयकृतस्तस्यावश्यकस्य यत्कर्मानुष्ठानं तदावश्यकमिति बोद्धव्यं ज्ञातव्यं । युक्तिरिति उपाय इति चैकार्थः । निरवयवा सम्पूर्णाऽखण्डिता भवति निर्युक्तिः । आवश्यकानां निर्युक्तिरावश्यकनिर्युक्तिरावश्यक-सम्पूर्णोपायः अहोरात्रमध्ये साधूनां यदाचरणं तस्याववोधकं पृथक्पृथक् स्तुति[2] स्वरूपेण "जयति भगवानित्यादि" प्रतिपादकं यत्पूर्वापराविरुद्धं शास्त्रं न्याय आवश्यकनिर्युक्तिरित्युच्यते । सा च षट्प्रकारा भवति ॥ १४ ॥

तस्य (स्या) भेदान् प्रतिपादयन्नाह—

सामाइय चउवीसत्थव वंदणयं पडिक्कमणं ।
पच्चक्खाणं च तहा काओसग्गो हवदि छट्ठो ॥ १५ ॥

समः सर्वेषां समानो यो सर्गः पुण्यं वा समायस्तस्मिन् भवं, तदेव प्रयोजनं पुण्यं तेन दीव्यतीति वा सामायिकं समये भवं वा सामायिकं । चतुर्विंशतिस्तवः चतुर्विंशतितीर्थंकराणां स्तवः स्तुतिः । वन्दना सामान्यरूपेत्त स्तुतिर्जयति भगवानित्यादि, पंचमुरुभक्तिपर्यन्ता पंचपरमेष्ठिविषय-

---

आगै आवश्यक निर्युक्ति की निरुक्ति है, ताहि कहै है—

अर्थ—जो मद, इंद्रिय, कषाय, ईषत्कषाय (नोकषाय) और रागद्वेषादिक पापादिक कै वशीभूत नांही सो 'अवश्य' कहिये, तिस अवश्य का जो कर्म आचरण सो 'आवश्यक' जाननां । बहुरि 'युक्ति' नाम उपाय का है संपूर्ण-अखंडित जो युक्ति सो निर्युक्ति कहिये । अवश्यकनकी जो निर्युक्ति संपूर्णोपाय सो आवश्यक निर्युक्ति कहिये । दिन-राति के वीचि साधु का जो आचरण ताका भिन्न-भिन्न स्वरूपकरि स्तुति—'जयति भगवान्' इत्यादिक का प्रतिपादन करणै वाला जो पूर्वापर अविरुद्ध शास्त्र न्याय सो 'आवश्यक-निर्युक्ति कहिये ॥ १४ ॥

सो छह प्रकार है तिन भेदनिकौं प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ—१. सामायिकावश्यकनिर्युक्ति, २. चतुर्विशतिस्तवावश्यकनिर्युक्ति, ३. वंदनावश्यकनिर्युक्ति, ४. प्रतिक्रमणावश्यकनिर्युक्ति, ५. प्रत्याख्यानावश्यक निर्युक्ति, ६. तैसे ही छठी कायोत्सर्गावश्यक निर्युक्ति—अैसे आवश्यकनिर्युक्ति छह प्रकार हैं ।

तहां 'सम' कहिये सब कै समान जो 'अय' कहिये मार्ग अथवा पुण्य सो समाय कहिये तामैं हुवा होय अथवा सो ही प्रयोजन वा पुण्य ताकरि क्रीडा करैं—अैसे अर्थ मैं 'इक' प्रत्यय कीया तब सामायिक शब्द सिद्ध भया । अथवा समय विषै हुवा होय

---

१. ग बोधव्वं ।   २. क स्वरूपेण स्तुति र्ज° ।

नमस्कारकरणं वा शुद्धभावेन । प्रतिक्रमणं व्यतिक्रान्तदोषनिर्हरणं व्रताद्युच्चारणं च । प्रत्याख्यानं भविष्यत्कालविषयवस्तुपरित्यागश्च । तथा कायोत्सर्गो भवति षष्ठः । सामायिकावश्यकनिर्युक्तिः चतुर्विंशतिस्तवाश्यकनिर्युक्तिः, वन्दनावश्यकनिर्युक्तिः, प्रतिक्रमणावश्यकनिर्युक्तिः, प्रत्याख्यानावश्यकनिर्युक्तिः, कायोत्सर्गावश्यकनिर्युक्तिरिति ॥ १५ ॥

तत्र सामायिकनामावश्यकनिर्युक्तिं वक्तुकामः प्राह—

सामाइयणिज्जुत्ती वोच्छामि जहाकमं समासेण ।
आयरियपरंपराए जहागदं आणुपुव्वीए[1] ॥ १६ ॥❀

सामायिकनिर्युक्तिं सामायिकनिरवयवोपायं वक्ष्ये यथाक्रमं समासेनाचार्यपरंपरया यथागतमानुपूर्व्या । अधिकारक्रमेण पूर्वं यथानुक्रमं सामायिककथनविशेषणं पाश्चात्यानुपूर्वीग्रहणं, यथागतविशेषणमिति कृत्वा न पुनरुक्तदोषः ॥ १६ ॥

सामायिकनिर्युक्तिरपि[1] षट्प्रकारा तामाह—

णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते काले तहेव भावे य ।
सामाइयह्मि एसो णिक्खेओ छव्विओ णेओ ॥ १७ ॥

अथवा निक्षेपविरहितं शास्त्रं व्याख्यायमानं वक्तुः श्रोतुश्चोत्पथोत्थानं कुर्यादिति सामायिकनिर्युक्तिनिक्षेपो वर्ण्यते—नामसामायिक-

---

सो सामायिक कहिये । २. बहुरि चतुर्विंशति तीर्थंकरनि की स्तुति सो चतुर्विंशति स्तव कहिये । ३. बहुरि सामान्य रूपकरि जो स्तुति–'जयति, भगवन्'—अैसे पाठ सौं लगाय पंचगुरु भक्ति पर्यंत पाठ अथवा पंचपरमेष्ठी का नमस्कार शुद्धभाव करि करिये सो वंदना कहिये । ४. बहुरि व्रतादिक का उच्चारणकरि अतीत दोष का निर्हरण सो प्रतिक्रमण कहिये । ५. बहुरि भविष्य काल विषै वस्तु का परित्याग सो प्रत्याख्यान कहिये । ६. काय का उत्सर्ग जो मोह का त्याग सो कायोत्सर्ग कहिये । अैसें इनका अर्थ जाननां ॥ १५ ॥

आगै सामायिक निर्युक्ति कहने का है अभिलाष जाकै अैसा आचार्य सो कहै है—

अर्थ—मैं जो वट्टकरेनाम आचार्य हूँ, सो सामायिक निर्युक्ति कहिये सामायिक का संपूर्ण उपाय है, ताहि क्रम का नांहि उल्लंघन करि जैसें आचार्यनि की परंपराकरि चल्या आया तिसही क्रमकरि संक्षेपकरि कहूँगा ।

इस गाथा में पूर्वै 'यथाक्रम' शब्द है सो सामायिक कथन का विशेषण जाननां । पीछै आनुपूर्वी शब्द का ग्रहण कीया सो 'यथागत' शब्द का विशेषण जाननां । अैसे कीये पुनरुक्त दोष नांही होय है ॥ १६ ॥

आगै सामायिक निर्युक्ति है सो हू छह प्रकार है, ताहि कहै है—

अर्थ—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, तैसे ही भाव—इनकरि सामायिक विषै यह निक्षेप छह प्रकार जाननां ।

---

१. अ, ब–पुव्वोय । ❀ ग्रन्थारम्भ से यहाँ तक की कुल ५१६ गाथाओं तक को संस्कृत टीका पर भाषावचनिका के लेखक पं० नन्दलाल जी हैं । इनके अचानक स्वर्गवास के बाद शेष (ग्रन्थान्त तक) भाषा वचनिका के कर्ता पं० ऋषभदास निगोत्या हैं ।

नियुं क्तिः, स्थापनासामायिकनियुं क्तिः, द्रव्यसामायिकनियुं क्तिः, क्षेत्रसामायिकनियुं क्तिः, कालसामायिकनियुं क्तिः, भावसामायिकनियुं क्तिः। नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदेन सामायिक एष निक्षेप उपायः षट्प्रकारो भवति ज्ञातव्यः। शुभनामान्यशुभनामानि च श्रुत्वा रागद्वेषादिवर्जनं नामसामायिकं नाम। काश्चन स्थापनाः सुस्थिताः सुप्रमाणाः सर्वावयवसम्पूर्णाः सद्भावरूपा मन आह्लादकारिण्यः। काश्चन पुनः स्थापना दुस्थिताः प्रमाणरहिताः सर्वावयवैरसम्पूर्णाः सद्भावरहितास्तास्तासूपरि रागद्वेषयोरभावः स्थापनासामायिकं नाम। सुवर्णरजतमुक्ताफलमाणिक्यादिमृत्तिकाकाष्ठकंटकादिषु समदर्शनं रागद्वेषयोरभावो द्रव्यसामायिकं नाम। कानिचित् क्षेत्राणि रम्याणि आरामनगरनदीकूपवापीतडागजनपदोपचितानि, कानिचिच्च क्षेत्राणि रूक्षकंटकविषमविरसास्थिपाषाणसहितानि जीर्णाटवीशुष्कनदीमरुसिकतापुंजादिबाहुल्यानि तेषूपरि रागद्वेषयोरभावः क्षेत्रसामायिकं नाम। प्रावृड्वर्षाहैमन्तशिशिरवसन्तनिदाघाः षड्ऋतवो रात्रिदिवसशुक्लपक्षकृष्णपक्षाः कालस्तेषूपरि रागद्वेषवर्जनं कालसामायिकं नाम। सर्वजीवेषूपरि मैत्रीभावोऽशुभपरिणामवर्जनं भावसामायिकं नाम। अथवा जातिद्रव्यगुणक्रियानिरपेक्षं संज्ञाकरणं सामायिकशब्दमात्रं नामसामायिकं नाम। सामायिकावश्यकेन परिणतस्याकृतिमत्यनाकृतिमति च वस्तुनि गुणारोपणं स्थापनासामायिकं नाम। द्रव्यसामायिकं द्विविधं

टीका—इहां अैसा विशेष जाननां निक्षेप-रहित शास्त्र व्याख्यान कीया हुवा वक्ता कूं, बहुरि श्रोता कूं उन्मार्ग विषैं प्रवृत्ति करै हैं। इस हेतुतैं सामायिक नियुं क्ति के निक्षेप है सो कहिये है—१. नाम-सामायिक-नियुं क्ति, २. स्थापना सामायिक नियुं क्ति, ३. द्रव्य सामायिक नियुं क्ति, ४. क्षेत्र सामायिक नियुं क्ति, ५. काल सामायिक नियुं क्ति, ६. भाव सामायिक नियुं क्ति—अैसे नामादिक भेदकरि सामायिक निक्षेप छह प्रकार जाननां। अव इनिका विशेष स्वरूप कहिये हैं—

१. शुभ नाम, बहुरि अशुभ नाम सुनिकरिकैं राग-द्वेषादिक का त्यजनां सो नाम-सामायिक अैसा नाम है। २. कोउ स्थापना भले प्रकार अवस्थित है, भलै प्रमाणकरि युक्त है समस्त अंग-उपांग करि संपूर्ण है, समोचीन-भावरूप है, मन कूं आनंदकारी है। बहुरि कोउ स्थापना खोटे प्रकार अवस्थित है, प्रमाणरहित है। अंग-उपांग करि हीन है, समीचीन भावकरि रहित है, तिन ऊपरि रागद्वेष का अभाव सो स्थापना-सामायिक अैसा नाम है। ३. सुवर्ण, रूपा, मोती, माणिक इत्यादिक विषै मृत्तिका, काष्ठ, पाषाण, कंटक इत्यादिक विषैं समान अवलोकन अर रागद्वेष का अभाव सो द्रव्य सामायिक अैसा नाम है। ४. केत्तेक क्षेत्र रमणीक हैं वाग, नगर, नदी, कूवा, वावरी, तलाब अर देश इनकरि व्याप्त हैं, केत्तेक क्षेत्र रूखे कंटक विषम, विरस हाड, पाषांण—इनिकरि सहित हैं। अर पुराणी वनी (जीर्ण-अटवी), सूकी नदी, मरुस्थल के धूलि के पुंज-ए हैं प्रचुर जिन विषैं—अैसें हैं, तिन ऊपरि राग-द्वेष का अभाव सो क्षेत्र सामायिक अैसा नाम है। ५. वर्षा, शरद, हिम, शिशिर, वसंत, ग्रीषम—यह छह रितु रात्रि-दिन, शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष यह जो काल, तिन उपरि रागद्वेष का अभाव सो काल सामायिक अैसा नाम है। ६. सर्व जीवनि विषैं मैत्रीभाव, अशुभ परिणाम का त्याग सो भाव-सामायिक अैसा नाम है।

अथवा १. जाति, द्रव्य, गुण, क्रिया की अपेक्षा रहित संज्ञा का करणा सो सामायिक शब्द मात्र नाम-सामायिक अैसा नाम है। २. सामायिक आवश्यक करिकैं परिणयो जो आत्मा ताके साकार-निराकार वस्तु विषै गुणनिकौं आरोपण सो स्थापना सामायिक अैसा नाम है। द्रव्य सामायिक है सो दोय प्रकार है—आगम-द्रव्यसामायिक—सामायिक का है वर्णन जामैं अैसा प्राभृत का ज्ञाता, अर उपयोग रहित सो आगमद्रव्य सामायिक अैसा नाम है। नोआगम द्रव्य सामायिक—वर्णनसो १. सामायिक

आगमद्रव्यसामायिकं वोआगमद्रव्मसामायिकं चेति । सामायिकवर्णनप्राभृतज्ञायी अनुपयुक्तो जीव आगमद्रव्यसामायिकं नाम । नोआगमद्रव्यसामायिक त्रिविधं सामायिकवर्णनप्राभृतज्ञायकशरीरसामायिकप्राभृतभविष्यज्ज्ञायकजीवतद्व्यतिरिक्तभेदेन । ज्ञायकशरीरगति त्रिविधं भूतवर्तमानभविष्यद्-भेदेन । भूतमपि त्रिविधं च्युतच्यावितत्यक्तभेदेन । सामायिकपरिणतजीवाधिष्ठितं क्षेत्रं क्षेत्रसामायिकं नाम । यस्मिन् काले सामायिकं करोति स कालः पूर्वाह्लादिभेदभिन्नः कालसामायिकं । भावसामायिकं द्विविधं, आगमभावसामायिकं नोआगमभावसामायिकं चेति । सामायिकवर्णनप्राभृत-ज्ञाय्युपयुक्तो जीव आगमभावसामायिकं नाम, सामायिकपरिणतपरिणामादि नोआगमभावसामायिकं नाम । तथेषां मध्ये आगमभावसामायिकेन नोआगमभावसामायिकेन च प्रयोजनमिति ॥ १७ ॥

निरुक्तिपूर्वकं भावसामायिकं प्रतिपादयन्नाह—

सम्मत्तणाणसंजमतवेहिं जं तं पसत्थसमगमणं ।
समयंतु तं तु भणिदं तमेव सामाइयं जाण[1] ॥ १८ ॥

सम्यक्त्वज्ञानसंयमतपोभिर्यत्तत् प्रशस्तं समागमनं प्रापणं तैः सहैक्यं च जीवस्य यत् समयस्तु समय एव भणितस्तमेव सामायिकं जानीहि ॥ १८ ॥

वर्णन प्राभृतज्ञायक शरीर, २. सामायिक प्राभृत भविष्यत ज्ञायक जीव, ३. तद्व्यतिरिक्त भेदकरि तीन प्रकार हैं।

ज्ञायक शरीर है सोहू भूत, वर्तमान, भविष्यत् भेदकरि तीन प्रकार है—

भूत शरीर हु १. च्युत, २. च्यावत, ३. त्यक्त भेदकरि तीन प्रकार हैं । सामायिक विषैं परिणया जो जीव ताकरि आश्रित जो क्षेत्र, सो क्षेत्र सामायिक–अैसा नाम है । जाकाल विषैं सामायिक करैं हैं सो पूर्वाह्न कूं आदि भेदकरि सहित काल सामायिक–अैसा नाम है । भाव सामायिक दोय प्रकार हैं—१. आगमभाव सामायिक, २. बहुरि नोआगमभाव सामायिक । तहां सामायिक वर्णन प्राभृत का ज्ञाता उपयोग सहित जो जीव सो आगम-भाव सामायिक–अैसा जाननां । सामायिक विषैं परिणया आत्मा का परिणामादिक हैं सो नोआगम-भाव सामायिक अैसा नाम है । तहां इनिके मध्य आगमभाव सामायिक करिके बहुरि नोआगम-भाव सामायिक करिकै प्रयोजन है ॥ १७ ॥

आगैं निरुक्तिपूर्वक भाव सामायिक है, ताहि वर्णन करते संते आचार्य कहैं हैं—

अर्थ— १. सम्यक्त्व २. ज्ञान, ३. संजम अर ४. तप । इनि करिकै जो जीवकै भली प्राप्ति, बहुरि तिनकरि संहित जीव कै एकता है सो समय कहिये, तिसही कूं तुम सामायिक जानहु[2] ॥ १८ ॥

---

१. अ, ब–जाणे । २. यहाँ 'समय' शब्द से स्वार्थ में 'इकण्' प्रत्यय होकर 'समय' एवं सामायिकं' ऐसा शब्द बना ।

तथा यः—

जिदउवसग्गपरीसह उवजुतो भावणासु समिदीसु ।
जमणियमउज्जदमदी सामाइय[1]परिणदो जीवो ।। १९ ।।

जिताः सोढा उपसर्गाः परीषहाश्च येन स जितोपसर्गपरीषहः समितिषु भावनासु चोपयुक्तो यः यमनियममोद्यतमतिश्च यः, स सामायिकपरिणतो जीव इति ।। १९ ।।

तथा—

जं च समो अप्पाणं परे य मादूय सव्वमहिलासु ।
अप्पियपियमाणादिसु तो समणो तो य सामइयं ।। २० ।।

यस्माच्च समो रागद्वेषरहित आत्मनि परे च, यस्माच्च मातरि सर्वमहिलासु च शुद्धभावेन समानः, सर्वा योषितो मातृसदृशः पश्यति, यस्माच्च प्रियाप्रियेषु समानः, यस्माच्च मानापमानादिषु सनानस्तस्मात् स श्रमणस्ततश्च तं सामायिकं जानीहीति[1] ।। २० ।।

जो जाणइ समवायं दव्वाण गुणाण पज्जयाणं च ।
सब्[2]भावं तं सिद्धं सामाइयमुत्तमं जाणे[3] ।। २१ ।।

पूर्वगाथाभ्यां सम्यक्त्वसंयमयोः समागमनं[4] व्याख्यातं अनया पुनर्गाथया ज्ञानसमागमन[5] माचष्टे । यो जानाति समवायं सादृश्यं वा द्रव्याणां, द्रव्यसमवायं क्षेत्रसमवायं कालसमवायं भावसमवायं च जानाति । तत्र द्रव्यसमवायो नाम धर्माधर्मलोकाकाशैकजीवप्रदेशाः समाः । क्षेत्र-

---

तैसे औरहू कहै हैं—

अर्थ—जीतैं हैं उपसर्ग अर परीषह जानैं, बारह भावन विषैं, पंचसमिति विषैं, उपयोग युक्त यम-नियम विषैं, उद्यम युक्त हैं बुद्धि जाकी सो सामायिक परिणत जीव है—ऐसे जानहू अथवा केवली भगवान का शासन कहिये आगम विषै ताके सामायिक है—ऐसे जानना ।। १९ ।।

आगैं समता भाव पूर्वक सामायिक है, ताहि भेद करि कहै है—

अर्थ—जातै आप विषै, बहुरि पर विषैं सम कहिये रागद्वेष रहित है। बहुरि माता विषैं समस्त स्त्रीनि विषैं शुद्ध-भाव करिकै सम कहिये समस्त स्त्रीनिकूं माता समान देखें है। बहुरि जातै शत्रु विषैं, मित्र विषैं, मान विषै, अपमान विषैं इत्यादिक विषैं समान है सो श्रमण कहिये। तातैं तिसही कूं उत्तम सामायिक जानहु ।।२०।।

अर्थ—पूर्व दोय गाथानि करि सम्यक्त्व अर संजम का एकत्व कूं सामायिक कह्या। बहुरि इस गाथा करि जीव

---

१. क ०ति सम्बन्धः । तथा—   २. क ०सज्झावत्तं सि० ।   ३. क जाण ।   ४-५. क समगमनं ।

समवायो नाम सीमन्तनरकमनुष्यक्षेत्रजु विमानसिद्धालयाः समाः । कालसमवायो नाम समयः समयेन समः, अवसर्पिण्युत्सर्पिण्या समेत्यादि । भावसमवायो नाम केवलज्ञानं केवलदर्शनेन सममिति । गुणा रूपरसगन्धस्पर्शज्ञातृत्वद्रष्टुत्वादयस्तेषां समानतां जानाति । अथवौदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिका गुणास्तेषां समानतां जानाति । पर्याया नारकत्वमनुष्यत्वतिर्यक्त्वदेवत्वादयस्तेषां समानतां जानाति । द्रव्याधारत्वेनापृथग्वर्तित्वेन च गुणानां समवायः । पर्यायाणां उत्पादविनाशध्रौव्यत्वेन समवायो भावसमवायो गुणेष्वन्तर्भवति । क्षेत्रसमवायः पर्यायेष्वन्तर्भवति । कालसमवायो द्रव्यसमवायेऽन्तर्भवतीति । द्रव्यसमवायं गुणसमवायं पर्यायसमवायं च यो जानाति तेषां सिद्धिं[1] सद्भावं निष्पन्नं परमार्थरूपं च यो जानाति तं

के साथ ज्ञान के समागमन (ऐक्य) कू कहै है । जो द्रव्यनि का, गुणनिका, बहुरि परजायनिका समवाय जो सादृश्य ताकू वा सिद्ध स्वरूप कू जानै है तिसकू तुम उत्तम सामायिक (सादृश्य) जानहु ।

टीका—समानताकूं अथवा स्वरूप कूं समवाय (सादृश्य) कहिये है जहां । द्रव्याणां कहिये द्रव्य समवाय कू क्षेत्र समवाय कूं, काल समवाय कूं जे संयमी जानैं हैं तहां १–धर्म, २– अधर्म, ३–लोकाकाश अर ४–एकजीव—इनिकौ प्रदेश समान है सो द्रव्य समवाय है ।

१–सीमन्त नरकक्षेत्र, २–मनुष्य क्षेत्र, ३–ऋजु विमान, ४–मुक्तिशिला, ५–सिद्धालय—इनिका क्षेत्र समान है सो क्षेत्र समवाय कहिये ।

समय है सो समय करिकैं समान, अवसर्पिणी है सो उत्सर्पिणी करिकै समान इत्यादिक समान काल है सो काल समवाय कहिये । केवलज्ञान है सो केवलदर्शन करिकैं समान—या प्रकार रूप, रस, गंध, स्पर्श, ज्ञातृत्व, दृष्टत्वादिक जे गुण तिनकी समानता कूं जानैं अथवा औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक—ये जे गुण तिनकी समानता कू जानैं, सो भाव समानता कूं जानैं, सो भाव सामायिक है ।

१–नारक, २–मनुष्य, ३–तिरंजच, ४–देवध—इत्यादिक जे परजाय हैं तिनकी समानता कूं जानैं सो परजाय (पर्याय) समवाय है । द्रव्याधारपनैं करिकैं, अभिन्नवर्तीपनै करिकैं गुणनि को समवाय है उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यपनै करिकैं परजायनिकौं समवाय है ।

(यहाँ जिन द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव रूप समवाय की चर्चा की गई है उनको द्रव्य, गुण और पर्यायों के अन्तर्गत करने से तीन प्रकार के समवाय माने जाते हैं । इसीलिए अब यहाँ इन्हीं का विवेचन प्रस्तुत है—)

भाव-समवाय है सो गुणनि विषैं अंतर्भूत है । क्षेत्र-समवाय है सो परजायनि विषैं अन्तर्भूत है । काल समवाय है सो द्रव्य समवाय विषैं अन्तर्भूत है । या हेतुतैं द्रव्य-समवायकूं, गुणसमवाय कूं, बहुरि परजाय-समवाय कूं जो जानैं हैं तिनका सिद्धं कहिये निष्पन्न (पूर्ण), बहुरि परमार्थ रूप अैसा अस्तित्वकूं जो जानै है तिस संजमीकूं तुम उत्तम सामायिक जानहु । अथवा द्रव्यनि की समवाय-सिद्धि है, ताहि जानैं । बहुरि गुण-पर्ययनिकों सद्भाव है, ताहि जानैं, तिसकूं तुम सामायिक जानहु ।

---

१. क सिद्धं ।

संयतं सामायिकमुत्तमं जानीहि । अथवा द्रव्याणां समवायं सिद्धिं, गुण पर्यायाणां च सद्भावं यो जानाति तं सामायिकं जानीहि । अथवा [1]समवृत्ति समवायं, द्रव्यगुणपर्यायाणां समवृत्ति, द्रव्यं गुणविरहितं नास्ति गुणाश्च द्रव्यविरहिता न सन्ति पर्यायाश्च द्रव्यगुणरहिता न सन्ति । [2]एवंभूतं समवृत्ति समवायं सद्भावरूपं न संवृत्तिरूपं, न कल्पनारूपं, नाप्यविद्यारूपं, स्वतः सिद्धं न समवायद्रव्यबलेन यो जानाति तं सामायिकं जानीहीति सम्बन्धः ॥ २१ ॥

सम्यक्त्वचारित्रपूर्वकं सामायिकमाह—

रागदोसे णिरोहित्ता समदा सव्वकम्मसु[3] ।
सुत्तेसु य[4] परिणामो सामाइयमुत्तमं जाणे ॥ २२ ॥

रागद्वेषौ निरुध्य सर्वकर्मसु सर्वकर्तव्येषु या समता, सूत्रेषु च द्वादशांगचतुर्दशपूर्वेषु च यः परिणामः श्रद्धानं सामायिकमुत्तमं प्रकृष्टं जानीहि ॥ २२ ॥

अथवा गुण-परजायनिकी समवृत्ति (सहवृत्ति—द्रव्य, गुण, पर्यायों का साथ-साथ रहना) सो समवाय कहिए । यथा—द्रव्य हैं सो गुणनिकरि रहित नांही, बहुरि गुण हैं ते द्रव्य करिकैं रहित नांही, बहुरि परजाय (पर्याय) हैं ते द्रव्य अर गुणनिकरि रहित नांही । या प्रकार जो समवृत्ति-समवाय है सो अस्तित्व (सद्भाव) रूप है, वह संवृत्तिरूप नांही, कल्पना रूप नांही, अर अविद्या रूपहू नांही है अपितु स्वतः सिद्ध है मिथ्यावादी समवाय-सम्बन्धकरि, गुण-गुणीकौं एक कहै है—सो अैसे ज्ञानी नांही जानैं हैं । स्वतः सिद्ध जो जानैं ताहि तुम सामायिक जानहु ॥ २१ ॥

विशेष—यहाँ विभिन्न भारतीय दर्शनों की तद्विषयक मान्यताओं का खण्डन किया गया है । यथा—बौद्ध द्रव्य, गुण आदि को सर्वथा संवृत्ति रूप अर्थात् असत्य मानते हैं । शून्यवादी बौद्ध आदि सभी कुछ कल्पना रूप मानते हैं । ब्रह्माद्वैतवादी इस चराचर जगत् को अविद्या-माया का विलास मानते हैं । योगदर्शन द्रव्य को गुणों से पृथक् मानकर समवाय सम्बन्ध से गुणी कहते हैं अर्थात् अग्नि को उष्ण-गुण समवाय सम्बन्ध से उष्ण कहते हैं । किन्तु जैनाचार्यों ने द्रव्य, गुण पर्यायों को सर्वथा अपृक्रूप (तादात्म्य) सम्बन्धयुत माना है । अतः वास्तव में यह द्रव्य-गुण-पर्यायों का समवाय-तादात्म्य स्वतः सिद्ध है, परमार्थभूत है—ऐसा जानना तथा इस प्रकार के सम्यग्ज्ञान से परिणत हुए महामुनि 'सामायिक' रूप ही हैं—ऐसा यहाँ विवेचन किया गया है । यहाँ इस परमार्थज्ञान के साथ मुनि का ऐक्य बतलाये जाने से मुनि का एक नाम 'सामायिक भी' कहा जाने लगा ॥ २२ ॥

आगैं सम्यक्त्व चारित्रपूर्वक सामायिक कहै है—

अर्थ—समस्त कारिजनि (कार्यों में) विषैं रागद्वेष है, ताहि त्यजकरिकै जो समता कहिए समभाव बहुरि सूत्र जे द्वादशांग, चतुर्दश पूर्व तिनिकै विषै जो परिणाम कहिए श्रद्धान, ताहि तुम उत्तम सामायिक जानहु ॥ २२ ॥

---

१. क समवायवृत्ति द्र० । २. क एवं निवृ'त्तिसमवायं सद्भावरूपं । ३. क समकं मदा । ४. अ प्रति में 'अ' ।

तपःपूर्वकं सामायिकमाह—

विरदो सव्वसावज्जं तिगुत्तो पिहिदिंदिओ ।
जीवो सामाइयं णाम संजमट्ठाणमुत्तमं ॥ २३ ॥

सर्वसावद्याद्यो विरतस्त्रिगुप्तः, पिहितेन्द्रियो निरुद्धरूपादिविषयः, एवंभूतो जीवः सामायिकं संयमस्थानमुत्तमं जानीहि जीवसामायिकसंयमयोरभेदादिति ॥ २३ ॥

भेदं च प्राह—

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे ।
तस्स सामायियं ठादि इदि केवलिसासणे ॥ २४ ॥

यस्य संनिहितः स्थितः आत्मा । क्व, संयमे नियमे तपसि च तस्य सामायिकं तिष्ठति । इत्येवं केवलिनां शासनं एवं केवलिनामाज्ञा शिक्षा वा । अथवास्मिन् केवलिशासने जिनागमे तस्य सामायिकं तिष्ठतीति ॥ २४ ॥

समत्वभावपूर्वकं भेदेन सामायिकमाह—

जो समो सव्वभूदेसु तसेसु थावरेसु य ।
[1]तस्स सामायियं ठादि इदि केवलिसासणे ॥ २५ ॥

यः समः सर्वभूतेषु-त्रसेषु स्थावरेषु च समस्तेषामपीडाकरस्तस्य सामायिकमिति ॥ २५ ॥

आगैं तपपूर्वक सामायिक कहै है—

अर्थ—जो समस्त पापतैं विरत तीन गुप्तिकरि सहित रोक्या है पाँच इन्द्रियनिं केविषयनि के व्यापार जानैं—अैसा जीव सो सामायिक नाम है, ताहि उत्तम संजम का स्थान जानहु । जीव अर सामायिक-संजमकै अभेदी हैं, यातैं जीव ही कूं सामायिक जाननां ॥ २३ ॥

बहुरि भेद हैं ताहि कहै है—

अर्थ—जाको आत्मा संजम विषैं, नियम विषैं, तप विषैं तिष्ठै है, ताके सामायिक तिष्ठै है—अैसे केवली भगवान् का शासन कहिए आज्ञा वा उपदेश है अथवा केवली भगवान का शासन कहिये आगम विषैं ताके सामायिक है अैसे जाननां ॥ २४ ॥

आगैं समताभावपूर्वक सामायिक है, ताहि भेदकरि कहै है—

अर्थ—जो त्रस, बहुरि स्थावर—ऐसे समस्त प्राणीनि विषैं बाधारहित परिणाम सो सम कहिए । जाकै समभाव

१. अस्याः गाथायाः उत्तरार्धं द्वात्रिंशत्तमगाथापर्यन्तं संयोज्य संयोज्य पठनीयम् ।

रागद्वेषविकाराभावभेदेन सामायिकमाह—

जस्स रागो य दोसो य वियडिं ण जणेंति दु ।

यस्य रागद्वेषौ विकृतिं विकारं न जनयतस्तस्य सामायिकमिति

कषायजयेन सामायिकमाह—

❀जेण कोधो या माणो य माया लोभो य णिज्जिदो[1] ।

येन क्रोधमानयायालोभाः सभेदाः सनोकषाया निर्जिता दलितास्तस्य सामायिकमिति ।

संज्ञालेश्याविकाराभावभेदेन सामायिकमाह—

जस्स सण्णा य लेस्सा य वियडिं ण जणंति[2] दु ॥ २६ ॥

यस्य संज्ञा आहारभयमैथुनपरिग्रहाभिलाषा विकृतिं विकारं न जनयन्ति । तथा यस्य लेश्याः कृष्णनीलकापोतपीतपद्मलेश्याः कषायानुरञ्जितयोगवृत्तयो विकृतिं विकारं न जनयन्ति तस्य सामायिकमिति ॥ २६ ॥

कामेन्द्रियविषयवर्जनद्वारेण सामायिकमाह—

जो दुरसे य[1] फासे य कामे वज्जदि णिच्चसा ।

होय ताकै सामायिक तिष्ठै है । रागद्वेष विकार भाव के अभाव रूप भेदकरि सामायिककूं कहै हैं, जाके राग बहुरि द्वेष विकारकूं नांहि उपजावै है ताकै सामायिक तिष्ठै है ॥ २५ ॥

आगै कषायनि के जीतवे करि सामायिक कूं कहै है—

अर्थ—जानैं क्रोध, बहुरि मान, बहुरि माया, बहुरि लोभ भेदनिकरि सहित कषाय, बहुरि भेदनिकरि सहित हास्यादिक नोकषाय जीतें ताकैं सामायिक कहै है ॥ २६ ॥

आगै संज्ञा लेश्या विकार का अभाव रूप भेदकरि सामायिक कूं कहै है—

अर्थ—जाकै (१) आहार, (२) भय, (३) मैथुन, (४) परिग्रह का अभिलाष रूप अैसे संज्ञा है ते विकारकूं नांही उपजावै है तैंसे ही कषायनि करि रंगी हुई अैंसी जोग (योग) की प्रवृत्ति रूप—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) कापोत, (४) पीत, (५) पद्म--अैंसी लेश्या है ते विकारकूं नांही उपजावे है, ताके सामायिक तिष्ठे है ॥ २६ ॥

---

१. अ, ब णिज्जिदा । २. अ, ब जणेंणी ।

❀ ग प्रति माणिकचन्द ग्रन्थमाला और भा० ज्ञानपीठ से प्रकाशित मूलाचार में इस गाथा से गाथा-संख्या बदली हुई है । क्रमशः इस गाथा सं० २७ एवं २८ है । किन्तु भाषा वचनिका के अनुसार संख्या में परिवर्तन किया गया है ।

१. अ–जो रसे दुरसे य, ब–जो रसेन्द्रियफासे य...., (ग) जो रसे य फासे य कामे....

रस: कटुकषायादिभेदभिन्न:, स्पर्शो मृद्वादिभेदभिन्न: रसस्पर्शौ काम इत्युच्यते। रसनेन्द्रियं स्पर्शनेन्द्रियं च कामेन्द्रिये। यो रसस्पर्शौ कामौ वर्जयति नित्यं। कामेन्द्रियं च निरुणद्धि तस्य सामायिकमिति।

भोगेन्द्रियविषयवर्जनद्वारेण सामायिकमाह—

जो रूवगंधसद्दे य भोगे वज्जदि णिच्चसा ।। २७ ।।

य: रूपं कृष्णनीलादिभेदभिन्नं, गन्धो द्विविध: सुरभ्यसुरभिभेदेन च, शब्दो वीणावंशादिसमुद्भव:, रूपगन्धशब्दा भोगा इत्युच्यन्ते' चक्षुर्घ्राणश्रोत्राणि भोगेन्द्रियाणि, यो रूपगन्धशब्दान् वर्जयति, भोगेन्द्रियाणि च नित्यं सर्वकालं निवारयति तस्य सामायिकमिति ।। २७ ।।

दुष्टध्यानपरिहारेण सामायिकमाह—

जो दु अट्टं रुद्दं च झाणं वज्जदि णिच्चसा।

चकारावनयो: स्वभेदग्राहकाविति कृत्वैवमुक्यते यस्त्वार्तं चतुष्प्रकारं रौद्रं च चतुष्प्रकारं ध्यानं वर्जयति सर्वकालं तस्य सामायिकमिति।

शुभध्यानद्वारेण सामायिकस्थानमाह—

जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणे झायदि णिच्चसा ।। २८ ।।

अत्रापि चकारावनयो: स्वभेदप्रतिपादकाविति कृत्वैवमाह—यस्तु धर्मं चतुष्प्रकारं शुक्लं च चतुष्कारं ध्यानं ध्यायति युनक्ति सर्वकालं तस्य सामायिकं तिष्ठतीति। केवलिशासनमिति सर्वत्र सम्बन्धो दृष्टव्य इति ।। २८ ।।

आगै कामेंद्रिय के विषय के त्याग-द्वारकरि सामायिक कहै है—

समान है, सौ द्रव्य समवाय है।

अर्थ—कटुक, कषायला कूं, आदि दे भेद युक्त रस हैं। कोमल, कठोर भेद युक्त स्पर्श है। रस-स्पर्श कूं काम अैसे कहिये है। रसना इन्द्रिय, स्पर्शन इन्द्रिय, कामेंद्रिय है। रस-स्पर्श विषयन कूं, बहुरि रसन-स्पर्शन इन्द्रिय कूं जो रोकै ताके सामायिक तिष्ठै है। भोगेन्द्रियनि कै विषयनि के त्याग द्वारकरि सामायिक कूं कहै है। कृष्ण, नीलादिक भेदयुक्त रूप है। सुगन्ध-दुर्गंध भेदकरि गंध दोय प्रकार है। वीणा-वंसरी आदितैं उपज्या शब्द है। रूप, गंध, शब्द—यह भोग कहिये है। नेत्र, नासिका, श्रवण भोगेन्द्रिय है। जो रूप, गंध, शब्द कूं, बहुरि भोगेन्द्रिय कूं सदाकाल निवारण करै, ताकै सामायिक तिष्ठै है ।। २७।।

आगै दुष्ट ध्यान के परिहार करि सामायिक कूं कहै हैं—

अर्थ—इस गाथा के विषैं प्रथम ही दोय चकार हैं सो आर्त, रौद्रध्यान के भेद के ग्राहक हैं। यातैं जो च्यार प्रकार आर्तध्यान ताहि च्यार प्रकार रौद्रध्यान ताहि सदाकाल निवारै ताके सामायिक तिष्ठै है। शुभध्यान के द्वारकरि सामायिक की स्थिति कहै है। गाथा के उत्तरार्ध विषैं हु दोय चकार हैं। अपनै भेद के ग्राहक हैं, यातैं जो च्यार प्रकार धर्मध्यान, च्यार

किमर्थं सामायिकं प्रज्ञप्तमित्याशंकायामाह—

सावज्जजोगपरिवज्जणट्ठं सामाइयं केवलिहिं पसत्थं ।
गिहत्थधम्मोऽपरमत्ति पच्चा कुज्जा बुधो अप्पहियं पसत्थं ।। २९ ।।

वृत्तमेतत् । सावद्ययोगपरिवर्जनार्थं पापास्रववर्जनाय सामायिकं केवलिभिः प्रशस्तं प्रतिपादितं स्तुतमिति । यस्मात्तस्माद् गृहस्थधर्मः सारम्भारम्भादिप्रवृत्तिविशेषोऽपरमो जघन्यःसंसारहेतुरिति ज्ञात्वा बुधः संयतः प्रशस्तं शोभनमात्महितं सामायिकं कुर्यादिति ।। २९ ।।

पुनरपि सामायिकमाहात्म्यमाह—

सामाइयह्मि दु कदे समणो इर सावओ हवदि जह्मा ।
एदेण कारणेण दु बहुसो सामाइयं कुज्जा ।। ३० ।।

सामायिके तु कृते सति श्रावकोऽपि किल श्रमणः संयतो भवति । यस्मात्कस्मिंश्चित् पर्वणि कश्चित् श्रावकः सामायिकसंयमं समत्वं गृहीत्वा श्मशाने स्थि (तः) तस्य पुत्रनप्तृबन्धवादिमरणपीडादिमहोपसर्गः संजातस्तथाप्यसौ न सामायिकव्रतान्निर्गतः । भावश्रमणः संवृत्तस्तर्हि श्रावकत्वं कथं ? प्रत्याख्यानमन्दतरत्वात् । अत्र कथा वाच्या । तस्मादनेन कारणेन बहुशो बाहुल्येन सामायिकं कुर्यादिति ।। ३० ।।

प्रकार शुक्लध्यान हैं ताहि ध्यावै, ताकै सदाकाल सामायिक तिष्ठै है । केवली भगवान् की अैसैं आज्ञा है—यह सर्वत्र सम्बन्ध जाननां ।

कौन प्रयोजन सामायिक वर्णन कीया ? अैसी आशंका होंतै कहै है—(समाधान-) इहां विशेष अैसा जाननां—''जो समोसव्व भूदेसु''—यह पचीसवाँ छन्द है । तिसहि आदि दे ''जोदु धम्मं च सुक्कं च''—इहां पर्यन्त छन्द च्यारि की मूल ग्रन्थ मैं संख्या है । टीकाकार व्याख्यान आधा-आधा छन्द की संख्या करि जुदा-जुदा कीया है—सो इहां छन्द तो पूर्ण मांज्या है, सूचनिका अर कथन संस्कृत टीका मैं है, तैसे ही भिन्न-भिन्न इहां लिखि दिया है ।। २८ ।।

विशेष—इसी कारण मूलाचार की प्रकाशित अन्य प्रतियों से भाषावचनिका प्रतियों की गाथा-संख्या के क्रम में कुछ अन्तर आ गया है ।

अर्थ—केवली भगवान् पापाश्रव के रोकवे-अरथि सामायिक कह्या । आरम्भ सहित है प्रवृत्ति-विशेष जा विषैं अैसा गृहस्थ धर्म है । जो जघन्य है, संसार का कारण है—अैसें जांनिकरि ज्ञानी संजमी है सो शोभायमान आत्मा का हितकारी सामायिक है ताहि करै ।। २९ ।।

बहुरि हू सामायिक की महिमा है ताहि कहै है—

अर्थ—सामायिक करता संता श्रावक है सोहू संजमी है । जातैं कोऊ पर्व विषैं कोऊ श्रावक है सो सामायिक-संजम है, ताहि अंगीकार करि मसाण विषैं स्थित रह्या, ताके पुत्र-पौता-बन्धु आदि का मरणतैं पीडादिकतैं महान् उपसर्ग हुवा । तोहू यह श्रावक सामायिक व्रततैं चलित नांही भया । कोऊ कहै यह भावनि मैं मुनि है, संवर युक्त हैं तदि याकै श्रावकपनां कैसे ?

पुनरपि सामायिकमाहात्म्यमाह—

सामाइए कदे सावएण विद्धो मओ अरणह्मि ।
सो य मओ उद्धादो ण य सो सामाइयं फिडिओ ।। ३१ ।।

सामाइए—सामायिके । कदे—कृते । सावएण—श्रावकेन । विद्धो—व्यथितः केनापि । माओ—मृगो हरिणपोत : अरण्येऽटव्यां । सो य मओ—सोऽपि मृगः । उद्धादो—मृतः प्राणैर्विपन्नः । ण य सो—न चासौ । सामाइयं—सामायिकात् । फिडिओ—निर्गतः परिहीणः । केनचिच्छ्रावकेणाटव्यां सामायिके कृते शल्येन विद्धो मृगः पादान्तरे आगत्य व्यवस्थितो ,वेदनार्त्तः सन् स्तोकबारं स्थित्वा मृतो मृगो नासौ श्रावकः सामायिकात् संयमान्निर्गतः संसारदोषदर्शनादिति, तेन कारणेन सामायिकं क्रियत इति सम्बन्धः ।। ३१ ।।

केन सामायिकमुद्दिष्टमित्याशंकायामाह—

बावीसं तित्थयरा सामायियसंजमं उवदिसंति ।
छेदोवट्ठावणियं[1] पुण भयवं उसहो य वीरो य ।। ३२ ।।

द्वाविंशतितीर्थंकरा अजितादिपार्श्वनाथपर्यन्ताः सामायिकसंयममुपदिशन्ति प्रतिपादयन्ति । छेदोपस्थानं पुनः संयमं बृषभो वीरश्च प्रतिपादयतः ।। ३२ ।।

किमर्थं वृषभमहावीरौ छेदोपस्थापनं प्रतिपादयतो यस्मात्—

आचक्खिदुं विभजिदुं विण्णादुं चावि सुहदरं होदि ।
एदेण कारणेण दु महव्वदा पंच पण्णत्ता ।। ३३ ।।

याका उत्तर—प्रत्याख्यान-कषाय के मंदतरपनैंतैं याकी कथा अन्य शास्त्रतैं वाचनी । तातैं या कारण बाहुल्यता करि श्रावक है, सो सामायिक कूं को करे ।। ३० ।।

बहुरि हू सामायिक की महिमा है ताहि कहैं हैं—

अर्थ—काहू श्रावकनैं वन विषैं सामायिक करतैं संतैं प्रहारकरि युक्त अैसा मृग प्राण रहित भया । बहुरि यह श्रावक सामायिकतैं रहित नांही भया—इहां अैसा जाननां । काहू श्रावकनैं विषम वनी मैं सामायिक करत संतैं शल्य (तीर) करि बींध्या—अैसा हरिण, तिस श्रावक के पांव के मध्य आया सो वेदनाकरि पीड़ित थोरे से काल मैं मरण कूं प्राप्त भया । यह श्रावक संसार विषैं दोष के देखवे तैं सामायिक कूं नांही छांडत भया—अैसा सम्बन्ध जाननां ।। ३१ ।।

आगैं कौन नैं सामायिक का उपदेश कीया ? अैसी आशंका होतैं कहै है—

अर्थ—अजितनाथ कूं आदि दे पार्श्वनाथ पर्यन्त बाईस तीर्थंकर हैं । ते सामायिक संयम का उपदेश करे हैं । बहुरि वृषभदेव अर महावीर हैं सो छेदोपस्थान संजम को उपदेश करै हैं ।। ३२ ।।

---

१. ज्ञानपीठ—छेदुवठावणियं ।

आचक्खिदुं–कथयितुं आस्वादयितुं वा । विभयिदुं–विभक्तुं पृथक्-पृथक् भावयितुं । विण्णादुं–विज्ञातुमवबोद्धुं चापि । सुहदरं–सुखतरं सुखग्रहणं । होदि–भवति । एदेण–एतेन । कारणेन । महव्वदा–महाव्रतानि । पंचपण्णत्ता–पंच प्रज्ञप्तानि । यस्मादन्यस्मै प्रतिपादयितुं स्वेच्छानुष्ठातुं विभक्तुं, विज्ञातुं चापि भवति सुखतरं सामायिकं तेन कारणेन महाव्रतानि पंच प्रज्ञप्तानीति ।। ३३ ।।

किमर्थ[1]मादितीर्थेऽन्ततीर्थे च च्छेदोपस्थापन[2]संयममित्याशंकायामाह—

आदीए दुव्विसोधण णिहणे तह सुट्ठु दुरणुपाले य ।
पुरिमा य पच्छिमा वि हु कप्पाकप्पं ण जाणंति[3] ।। ३४ ।।

आदितीर्थे शिष्याः दुःखेन शोध्यन्ते सुष्ठु ऋजुस्वभावा यतः । तथा पश्चिमतीर्थे शिष्याः दुःखेन प्रतिपाल्यन्ते सुष्ठु वक्रस्वभावा यतः पूर्वकालशिष्याः पश्चिमकालशिष्याश्च अपि स्फुटं कल्पं—योग्यं, अकल्प्यं अयोग्यं च न जानन्ति यतस्ततः आदौ निधने च छेदोपस्थानमुपदिशत इति ।। ३४ ।।

सामायिककरणक्रममाह—

पडिलिहियअंजलिकरो उवजुत्तो उट्ठिऊण एयमणो ।
अव्वाखित्तो वुत्तो करेदि सामाइयं भिक्खू ।। ३५ ।।

प्रतिलेखितावञ्जलिकरौ येनासौ प्रतिलेखिताञ्जलिकरः । उपयुक्तः समाहितमतिः, उत्थाय—स्थित्वा, एकाग्रमना अव्याक्षिप्तः, आग-

---

कौन कारण वृषभदेव, महावीर छेदोपस्थापन संजम है, ताहि कहत भये, याका उत्तर कहै है--

अर्थ—जातैं कहवे कूं, वा आस्वादवे कूं, भिन्न-भिन्न भायवे (भावित करने) कूं, वा जानिवे कूं सामायिक है सो सुगम होय है । या कारणकरि महाव्रत पंच कहे ॥ ३३ ॥

कौन कारण आदि तीर्थके विषैं, वहुरि अन्त तीर्थके विषैं छेदोपस्थापन संजम का प्रतिपादन है ? ऐसी आशंका होतैं सन्ते कहै है—

अर्थ—आदि तीर्थ के विषैं शिष्य हैं ते दुःख करिकै शुद्ध करियै है । काहैतैं अतिशयकरि सरल स्वभाव है या कारणतैं तैंसैं अन्त तीर्थ विषैं शिष्य हैं ते दुःखकरि निर्वाह करैं हैं । काहैंते अतिशयकरि वक्र स्वभाव है या कारणतैं । जातैं पूर्वकाल के शिष्य, पश्चिमकाल कैं शिष्य प्रकटपणैं जोग्य जोग्य हैं, ताहि नांही जानैं हैं, तातैं आदि विषैं अन्त विषैं छेदोपस्थापना का उपदेश है ॥ ३४ ॥

आगैं सामायिक करणैं का अनुकम है, ताहि कहै हैं—

अर्थ—सोधे हैं अंजलि अर हस्त जानैं, समाधान है मति जाकी, एकाग्र है मन जाका, आकुलता रहित अैसा जो

---

१. क °दि अंत° । २. क °नमि° । ३. अ, ब–याणंति ।

मोक्तक्रमेण करोति सामायिकं भिक्षुः । अथवा प्रतिलेख्य **शुद्धो** भूत्वा द्रव्यक्षेत्रकालभावशुद्धिं कृत्वा, **प्रकृष्टाञ्जलि**[1]**करमुकलितकरः प्रतिलेखनेन सहिताञ्जलिकरो वा सामायिकं** करोतीति ।। ३५ ।।

सामायिकनिर्युक्तिमुपसंहर्तुं चतुर्विंशतिस्तवं सूचयितुं प्राह—

सामाइयणिज्जुत्ती एसा कहिया मए समासेण ।
चउवीसयणिज्जुत्ती एतो उड्ढं पवक्खामि ।। ३६ ।।

सामायिकनिर्युक्तिरेषा कथिता समासेन । इत ऊर्ध्व चतुर्विंशतिविनिर्युक्ति प्रवक्ष्यामिति ।। ३६ ।।

[2]तदवबोधनार्थं [3]निक्षेपमाह—

णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते काले य होदि भावे य ।
एसो थवह्मि णेओ णिक्खेवो छव्विहो होई ।। ३७ ।।

नामस्तवः स्थापनास्तवो द्रव्यस्तवः क्षेत्रस्तवः कालस्तवो भावस्तव एष स्तवे निक्षेपः षड्विधो भवति **ज्ञातव्यः । चतुर्विंशतितीर्थंकराणां**

मुनि सो खड़े होकरि आगम कथित विधिकरि सामायिक है, ताहि करै अथवा प्रतिलेख्य कहिये द्रव्य, क्षेत्र, भाव, काल की शुद्धि-करि दोऊं हाथ कूं मुकुलितकरि अथवा पीछी सहित हैं, अंजलि अर कर जाका—अैंसा मुनि है, सो सामायिक हैं, ताहिकरै ।।३५।।

आगैं सामायिक निर्युक्ति है, ताहि संकोचवें कूं चतुर्विंशति स्तव है, ताहि सूचवै कूं कहै है—

अर्थ—हम यह सामायिक की निर्युक्ति संक्षेपकरि कही, याकै आगैं चतुर्विंशति स्तव-निर्युक्ति है, ताहि कहैंगे ।। ३६ ।।

आगैं ताके जाणवे अर्थि निक्षेप है तिनहै कहै है—

अर्थ—१. नामस्तव, २. स्थापना स्तव, ३. द्रव्य स्तव, ४. क्षेत्रस्तव, ५. कालस्तव, ६. भावस्तव—यह चतुर्विंशति स्तव विषै निक्षेप है सो छह प्रकार जानवे जोग्य है। **याका विशेष**—१. चौबीस तीर्थङ्करनके जथार्थ (यथार्थ) एक हजार अर आठ है संख्या जिनकी, अैसे नामकरिकै स्तवन सो चतुर्विंशति नामस्तव है। २, चौवीस तीर्थङ्करनि की अथवा प्रमाण रहित तीर्थङ्क-रनिकी कृत्रिम अर अकृत्रिम स्थापना है तिनिको स्तवन है सो चतुर्विंशति स्थापना स्तव है। ३. परम औदारिक स्वरूप अैसे तीर्थंकरनि के शरीरनि के वर्ण-भेद करिकै स्तवन है सो चतुर्विंशति द्रव्यस्तव है। ४. कैलाश, सम्मेदशिखर, गिरनार, पावापुर, चंपापुरकूं आदि दे निर्वाण क्षेत्र, बहुरि समोसरण क्षेत्र—इनको स्तवन है सो क्षेत्रस्तव है। ५. बहुरि गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण के जे समय तिनको स्तवन हैं सो कालस्तव है। ६. केवलज्ञान, केवलदर्शनकूं आदि दे गुणनि को स्तवन है जो भावस्तव है।

अथवा—१-जाति, द्रव्य, गुण, क्रिया की अपेक्षा रहित चौबोसी मात्र जो संज्ञा का करणां सो नामस्तव है। २-साकार-निराकार वस्तु विषैं चतुर्विंशति तीर्थंकरनि के गुणनि कूं आरोपिकरि स्तवन है सो स्थापना स्तव है।

---

१. क °लिकने कृत्वांजलिकरः भु० । २. क तदनुवो° । ३. क °पानाह ।

यथार्थानुगतैरष्टोत्तरसहस्रसंख्यैर्नामभिः स्तवनं चतुर्विंशतिनामस्तवः, चतुर्विंशतितीर्थंकराणामपरिमितानां कृत्रिमाकृत्रिमस्थापनानां स्तवनं चतुर्विंशतिस्थापनास्तवः। तीर्थकरशरीराणां परमौदारिकस्वरूपाणां वर्णभेदेन स्तवनं द्रव्यस्तवः। कैलाससम्मेदोर्जयन्तपावाचम्पानगरादिनिर्वाणक्षेत्राणां समवसृतिक्षेत्राणां च स्तवनं क्षेत्रस्तवः। स्वर्गावतरणजन्मनिष्क्रमणकेवलोत्पत्तिनिर्वाणकालानां स्तवनं कालस्तवः। केवलज्ञानकेवलदर्शनादिगुणानां स्तवनं भावस्तवः। अथवा जातिद्रव्यगुणक्रियानिरपेक्षं संज्ञाकर्म चतुर्विंशतिमात्रं नामस्तवः। चतुर्विंशतितीर्थंकराणां साकृत्यनाकृतिवस्तुनि गुणानारोप्य स्तवनं स्थापनास्तवः। द्रव्यस्तवो द्विविधः आगमनोआगमभेदेन। चतुर्विंशतिस्तवव्यावर्णनप्राभृतज्ञाय्यनुपयुक्त आगमद्रव्यस्तवः। चतुर्विंशतिस्तवव्यावर्णनप्राभृत[1]ज्ञायक-शरीरभाविजीवतद्व्यतिरिक्तभेदेन नोआगमद्रव्यस्तवस्त्रिविधः, पूर्ववत्सर्वमन्यत्। चतुर्विंशतिस्तवसहितं क्षेत्रं कालश्च क्षेत्रस्तवः कालस्तवश्च। भावस्तव आगमनोआगमभेदेन द्विविधः। चतुर्विंशतिस्तवव्यावर्णनप्राभृतज्ञायी उपयुक्त आगमभावचतुर्विंशतिस्तवः। चतुर्विंशतिस्तवपरिणतपरिणामो नोआगमभावस्तव इति। भरतैरावतापेक्षश्चतुर्विंशतिस्तव उक्तः। पूर्वविदेहा[2]परविदेहापेक्षस्तु सामान्यतीर्थंकरस्तव इति कृत्वा न दोष इति ॥ ३७ ॥

अत्र नामस्तवेन भावस्तवेन प्रयोजनं सर्वैर्वा प्रयोजनं। तदर्थमाह—

लोगुज्जोए धम्मतित्थयरे जिणवरे य अरहंते।
कित्तण केवलिमेव य उत्तमबोहिं मम दिसंतु ॥ ३८ ॥

लोको जगत्। उद्योतः प्रकाशः। धर्म उत्तमक्षमादिः। तीर्थं संसारतारणोपायं। धर्ममेव तीर्थं कुर्वन्तीति धर्मतीर्थकराः। कर्मारातीन् जयन्तीति जिनास्तेषां वरा प्रधाना जिनवराः। अर्हन्तः सर्वज्ञाः। कीर्तनं प्रशंसनं कीर्तनीया वा केवलिनः सर्वप्रत्यक्षाववोधाः। एवं च। उत्तमाः

३-आगम, नोआगम भेदकरि द्रव्यस्तव दोय प्रकार है। (१) चतुर्विंशति स्तव का है वर्णन जामैं अैसा प्राभृत का ज्ञाता उपयोग रहित सो आगम द्रव्यस्तव है, (२) चतुर्विंशति स्तव का है वर्णन जामैं ऐसा प्राभृत का ज्ञायक है ताका शरीर, भावी जीव, अर तत्व्यतिरिक्त भेदकरि नोआगम द्रव्यस्तव है, सो तीन प्रकार है। और समस्त वर्णन पूर्ववत् जाननां। चतुर्विंशति स्तव सहित क्षेत्र वा क्षेत्रस्तव, बहुरि काल वा कालस्तव जाननां।

आगम, नोआगम भेदकरि भावस्तव है सो दोय प्रकार है। चतुर्विंशति स्तव का है वर्णन जामैं अैसा प्राभृत का ज्ञाता उपयोग युक्त सो आगम-भाव चतुर्विंशति का स्तव है। वहुरि चतुर्विंशतिका स्तव विषैं परिणया परिणाम है, सो नोआगमभावस्तव है—या प्रकार भरत-ऐरावत की अपेक्षा चतुर्विंशति स्तव कह्या। वहुरि पूर्व-विदेह अर पश्चिम-विदेह की अपेक्षा सामान्य तीर्थंकर स्तव है—अैसेकरि दोष नांही ॥ ३७ ॥

इहाँ नामस्तव करि, बहुरि भाव स्तव करि प्रयोजन है अथवा सर्वकरि प्रयोजन है, ताका कारण कहै है—

अर्थ—लोक कहिये जगत, उद्योत कहिये प्रकाश, इनकूं करै ते लोकोद्योतकर कहिये। धर्म्म कहिए उत्तम क्षमादिक, तीर्थ कहिये संसारतें तारवे का उपाय। धर्म्म सो ही भया तीर्थ, ताहि करै ते धर्म्म-तीर्थंकर कहिए। कर्म्म रूप वैरी हैं तिनही

---

१. क °तज्ञश° । २. क पूर्वविदेहापेक्षस्तु ।

प्रकृष्टाः सर्वपूज्याः । मे बोधिं संसारनिस्तरणोपायं । दिशन्तु ददतु । एवं स्तवः क्रियते । अर्हन्तो लोकोद्योतकरा धर्मतीर्थंकरा जिनवराः केवलिन उत्तमाश्च ये तेषां कीर्तनं प्रशंसनं बोधिं मह्यं दिशन्तु प्रयच्छन्तु । अथवा एते अर्हंतो धर्मतीर्थकरा लोकोद्योतकराः जिनवराः कीर्तनीया उत्तमाः केवलिनो मम बोधिं दिशन्तु । अथवा अर्हन्तः सर्वविशेषणविशिष्टाः केवलिनां च कीर्तनं मह्यं बोधिं प्रयच्छन्त्विति सम्बन्धः ॥ ३८ ॥

एतैर्दशभिरधिकारैश्चतुर्विंशतिस्तवो व्याख्यायत इति कृत्वादौ तावल्लोकनिरुक्तिमाह—

लोयदि आलोयदि पल्लोयदि सल्लोयदित्ति एगत्थो[1] ।
जह्मा जिणेहिं कसिणं तेणेसो वुच्चदे लोओ ॥ ३९ ॥

लोक्यते आलोक्यते प्रलोक्यते संलोक्यते दृश्यते इत्येकार्थः । कैर्जिनैरिति तस्माल्लोक इत्युच्यते ? कथं छद्मस्थावस्थायां—मतिज्ञान-श्रुतज्ञानाभ्यां लोक्यते दृश्यते यस्मात्तस्माल्लोकः । अथवावधिज्ञानेनालोक्यते पुद्गलमर्यादारूपेण दृश्यते यस्मात्तस्माल्लोकः । अथवा मनःपर्ययज्ञानेन प्रलोक्यते विशेषेण रूपेण दृश्यते यस्मात्तस्माल्लोकः । अथवा केवलज्ञानेन जिनैः कृत्स्नं यथा भवतीति तथा संलोक्यते सर्वद्रव्यपर्यायैः सम्यगुपलभ्यते यस्मात्तस्माल्लोकः । तेन कारणेन लोकः स इत्युच्यत इति ॥ ३९ ॥

नवप्रकारैर्निक्षेपैर्लोकस्वरूपमाह—

णामट्ठवणं दव्वं खेत्तं चिण्हं कसायलोओ य ।
भवलोगो भावलोगो पज्जयलोगो य णादव्वो ॥ ४० ॥

जीतैं ते जिन कहिये तिनमैं 'वर' कहिये प्रधान होय ते जिनवर कहिए, अर्हन्त कहिये सर्वज्ञ, कीर्तन कहिये प्रशंसा अथवा कीर्तनीया कहिये प्रशंसा करवे जोग्य, केवलिन कहिए सर्वज्ञनि को है प्रत्यक्षज्ञान जिनिकैं, उत्तमा कहिये उत्कृष्ट, सर्बकै पूजवे योग्य—अैसे हमारे अर्थि बोधि कहिये संसारतैं तरने का उपाय ताहि देहु । या प्रकार स्तवन करिये है अथवा लोकोद्योतकर, धर्म-तीर्थंकर जिनवर कीर्तनीय उत्तम—अैसे अर्हन्त हैं, ते मोकूं बोधित ,हैं ताहि देहु । अथवा सर्व विशेषणकरि जुक्त अर्हन्त, बहुरि केवली—इनकौं गुणानुवाद हैं—सो हमारै अर्थि संसार तरवे का उपाय है, ताहि देहु—अैसा सम्बन्ध जाननां ॥ ३८ ॥

इन दश अधिकारनि करि चतुर्विंशतिस्तव है, सो करिये है । तहाँ आदि कै विषै प्रथम ही लोक शब्द की निरुक्ति कहै है—

अर्थ—जातैं जिन भगवान् हैं तिन लोक्यते, आलोक्यते, प्रलोक्यते, संलोक्यते, दृश्यते—यह सब ही क्रिया हैं सो दर्शन अर्थ कूं कहै हैं । तिसतै भगवान् देख्या सो लोक है । कैसे देख्या ? सो कहै है —छद्मस्थ अवस्था विषैं मति-श्रुतज्ञानकरि देखै हैं, तातै लोक है अथवा अवधिज्ञान करिकै आलोक्यते कहिए पुद्गल मरजादा रूप करिकै देखैं हैं तातैं लोक है । अथवा मनपरजय-ज्ञान करिकै प्रलोक्यते कहिये विशेष रूप करिकै देखैं है, तातै लोक है । अथवा केवलज्ञान करिकै संपूर्ण संलोक्यते कहिये सर्व द्रव्य-परजायनि करिकै सहित भलै प्रकार देखै हैं, तातैं लोक है ॥ ३९ ॥

---

१. क एयट्ठो ।

नात्र विभक्तिनिर्देशस्य प्राधान्यं प्राकृतेऽन्यथापि वृत्तेः । लोकशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । **नामलोकः स्थापनालोको द्रव्यलोकः क्षेत्रलोकश्चिह्नलोकः** कषायलोको भवलोको भावलोकः पर्यायलोकश्च ज्ञातव्य इति ॥ ४० ॥

तत्र नामलोकं विवृण्वन्नाह—

णामाणि जाणि काणि[1]चिसहासुहाणि[2] लोगह्मि ।
णामलोगं वियाणाहि अणंतजिणदेसिदं[3] ॥ ४१ ॥

नामानि संज्ञारूपाणि, यानि कानिचिच्छुभान्यशुभानि च शोभनान्यशोभनानि च सन्ति विद्यंते जीवलोकेस्मिन् तन्नामलोकमनन्तजिनदर्शितं विजानीहि । न विद्यतेऽन्तो विनाशोऽवसानं वा येषां तेऽनन्तास्ते च ते जिनाश्चानन्तजिनास्तैर्दृष्टो यतः इति ॥ ४१ ॥

स्थापनालोकमाह—

ठविदं ठाविदं चावि जं किंवि अत्थि लोगह्मि ।
ठवणालोगं वियाणाहि अणंत[4]जिणदेसिदं ॥ ४२ ॥

ठविदं—स्वतः स्थितमकृत्रिमं । **ठाविदं**—स्थापितं कृत्रिमं चापि यत्किंचिदस्ति विद्यतेऽस्मिन् लोके तत्सर्वं स्थापनालोकमिति जानीहि, अनन्तजिनदर्शितत्वादिति ॥ ४२ ॥

आगैं नव प्रकार निक्षेपनिकरि लोक का स्वरूप कहै हैं—

अर्थ—इस गाथा विषैं विभक्ति निर्देश की प्रधानता नांही, प्राकृत विषैं और-और प्रकार हू विभक्ति की प्रवृत्ति हैं। लोकशब्द हैं सो प्रत्येक संबंध करिये हैं—१. नामलोक, २. स्थापना लोक, ३. द्रव्यलोक, ४. क्षेत्रलोक, ५. चिह्नलोक, ६. कषायलोक, ७. भवलोक, ८. भावलोक, ९. पर्यायलोक—अैसे जाननां ॥ ४० ॥

तहां नामलोक है, ताहि वर्णन करते संतै कहै हैं—

अर्थ—या लोक विषै जे केई शुभ बहुरि अशुभ नाम हैं, विनाश रहित अैसे जिन भगवान् करि दिखाया, तिसकूं तुम नामलोक जानहु ॥ ४१ ॥

आगै स्थापना-लोक है, ताहि कहै हैं—

अर्थ—स्थितं कहिये स्वतः स्थित-अकृत्रिम, बहुरि स्थापितं कहिये कृत्रिम, अैसो हू जो कछु या लोक विषैं विद्यमान है, अविनाशी जिनवर करि दिखाया, तिस ही कूं स्थापना-लोक जानहु ॥ ४२ ॥

---

१. क °णिवि ।   २. क अ, ब °णि य संति लोगंहि ।   ३. ब–दिसिदं ।   ४. अ, आणंत।

द्रव्यलोकस्वरूपमाह—

जीवाजीवं रूवारूवं सपदेसमप्पदेसं च ।
दव्वलोगं वियाणाहि अणंतजिणदेसिदं ।। ४३ ।।

जीवाश्चेतनावन्तः । अजीवाः कालाकाशधर्माधर्माः पुद्गलाः । रूपिणो रूपरसगन्धस्पर्शशब्दवन्तः पुद्गलाः । अरूपिणः कालाकाशधर्माधर्मा जीवाश्च । सप्रदेशाः सर्वे जीवादयः । अप्रदेशो कालाणुपरमाणू च । एनं सर्वलोकं द्रव्यलोकं विजानीहि, अक्षयसर्वज्ञदृष्टो यत इति ।। ४३ ।।

तथेममपि द्रव्यलोकं विजानीहीत्याह—

परिणाम जीव मुत्तं सपदेसं एक्कखेत्त किरिओ[1] य ।
णिच्चं कारण कत्ता सव्वगदिदरह्मि अपवेसो ।। ४४ ।।

परिणामोऽन्यथाभावो विद्यते येषां ते परिणामिनः । के ते जीवपुद्गलाः । शेषाणि धर्माधर्मकालाकाशान्यपरिणामीनि कुतो द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यञ्जनपर्यायं चाश्रित्यैतदुक्तं । पर्यायार्थिकनयापेक्षयान्वर्थपर्यायमाश्रित्य सर्वेऽपि परिणामापरिणामात्मका यत इति । जीवो जीवद्रव्यं चेतनालक्षणो यतः । अजीवाः पुनः सर्वे पुद्गलादयो ज्ञातृत्वदृष्टृत्वाद्यभावादिति । मूर्तं पुद्गलद्रव्यं रूपादिमत्वात् । शेषाणि जीवधर्माधर्मकालाकाशान्यमूर्तानि रूपादिविरहितत्वात् । सप्रदेशानि सांशानि जीवधर्माधर्मपुद्गलाकाशानि[2] प्रदेशबन्धदर्शनात् । अप्रदेशाः कालाणवः परमाणुश्च प्रचया-

---

आगैं द्रव्यलोक का स्वरूप कहै है—

अर्थ—१. जीव चेतनावंत है, २. अजीव हैं ते काल, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल हैं। ते रुपिणः कहिये रूप, रस, गंध, स्पर्शवंत पुद्गल है। अरूपी काल, आकाश, धर्म, अधर्म, जीव द्रव्य हैं। सप्रदेश सर्व जीवादिक हैं। अप्रदेश कालाणु-परमाणु हैं। यह समस्त द्रव्यलोक अविनाशी जिनदेव (सर्वज्ञ) करि देख्या, तुम जानहु ।। ४३ ।।

तैंसे इसे आगैं कहैंगे, ताकूं हू तुम द्रव्यलोक जानहु, अैसे कहै हैं—

अर्थ—परिणाम जो अन्यथा-भाव सो है विद्यमान जिनिकैं, ते परिणामी कहिये। ते कौन ? जीव, पुद्गल, अवशेष जे १. धर्म, २. अधर्म, ३. आकाश, ४. काल—ये च्यारि अपरिणामी हैं। काहै तैं ? द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षाकरि बहुरि व्यंजन पर्याय का आश्रयकरि यह कह्या है। पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षाकरि जीव द्रव्य है, चेतना लक्षण है। यातैं बहुरि अन्वर्थ पर्याय

---

१. अ ब. किरिअ ।　　२. क °नि सप्र° ।

*निम्नलिखित गाथा फलटन से प्रकाशित प्रति में अधिक है—

परियट्टणदो ठिदि अविसेसेण विसेसिदं दव्वं ।
कालोत्ति तं हि भणिदं तेहि असंखेज्जकालाणु ।।

अर्थात् प्रत्येक घट, पट आदिकों में नया, पुराना इत्यादि परिवर्तन देखने से काल नामक पदार्थ का अस्तित्व सिद्ध होता है। प्रत्येक पदार्थ कुछ स्थिति को धारण करता है। पदार्थ की यह स्थिति काल के बिना नहीं हो सकती है अतः यह काल नामक पदार्थ द्रव्य है—ऐसा जिनेश्वर ने कहा है और यह काल द्रव्य असंख्यात है।

भावाद् बन्धाभावाच्च। धर्माधर्माकाशान्येकरूपाणि सर्वदा प्रदेशविघाताभावात्। शेषाः संसारिजीवपुद्गलकाला अनेकरूपाः प्रदेशानां भेददर्शनात्। आकाशं क्षेत्रं सर्वपदार्थानामाधारत्वात्। शेषा जीवपुद्गलधर्माधर्मकाला अक्षेत्राणि अवगाहनलक्षणाभावात्। जीवपुद्गलाः क्रियावन्तो गतेर्दर्शनात् शेषा धर्माधर्माकाशकाला अक्रियावन्तो गतिक्रियाया अभावदर्शनात्। नित्या धर्माधर्माकाशपरमार्थकाला व्यवहारनयापेक्षया व्यञ्जनपर्यायाभावमपेक्ष्य विनाशाभावात्। जीवपुद्गला अनित्या व्यञ्जनपर्यायदर्शनात्। कारणानि पुद्गलधर्माधर्मकालाकाशानि जीवोपकारकत्वेन वृत्तत्वात्। जीवोऽकारणं स्वतंत्रत्वात्। जीवः कर्ता शुभाशुभभोक्तृत्वात्। शेषा धर्माधर्मपुद्गलाकाशकाला अकर्तारः शुभाशुभभोक्तृत्वाभावात् आकाशं सर्वगतं सर्वत्रोपलभ्यमानत्वात्। शेषाण्यसर्वगतानि जीवपुद्गलधर्माधर्मकालद्रव्याणि सर्वत्रोपलंभाभावात्। तस्मात्परिणामजीवमूर्तसप्रदेशैकक्षेत्रक्रियावन्नित्यकारणकर्तृसर्वगतिस्वरूपेण द्रव्यलोकं जानीहि, इतरैश्चापरिणामादिभिः प्रदेशैः द्रव्यलोकं जानीहीति सम्बन्धः ॥ ४४ ॥

क्षेत्रलोकस्वरूपं विवृण्वन्नाह—

आयासं[1] सपदेशं उड्ढमहो[2] तिरियलोगं च।
खेत्तलोगं वियाणाहि अणंतजिणदेसिदं ॥ ४५ ॥

का आश्रयकरि सर्व ही परिणाम अपरिणामस्वरूप है जीव है। सो जीव द्रव्य है, चेतना लक्षण हैं, यातैं। बहुरि अजीव सर्व ही पुद्गलादिक हैं। ज्ञातृत्व, दृष्टत्वादिके गुणनिके अभावतैं मूर्त हैं सो पुद्गल द्रव्य हैं, रूपादिमान् हैं। यातैं अवशेष जे १. जीव, २. धर्म, ३. अधर्म, ४. आकाश, ५. काल—यह अमूर्त हैं, रूपादिक गुणनितैं रहित हैं।

सप्रदेशनि कहिये प्रदेशनिकरि सहित—१. जीव २. धर्म, ३. अधर्म, ४. पुद्गल, ५. आकाश (सप्रदेशी) हैं। काहे तैं? इनकैं प्रदेशबंध देखिये हैं,यातैं। प्रदेश रहित कालाणु–परमाणु (अप्रदेशी) हैं। काहे तैं? प्रदेश-प्रचय का अभाव है, बहुरि बंध का अभाव है, यातैं। धर्म्म, अधर्म्म, आकाश–यह एकरूप है। काहें तैं? सर्बकाल प्रदेश विघात का अभाव है, यातैं, अवशेष जे संसारी जीव, पुद्गल, काल यह अनेक रूप है, काहे तैं? इनकै प्रदेशनिका भेद दर्शन है यातैं। क्षेत्र आकाश है, सर्बपदार्थनिका आधारपना है यातैं। अवशेष जे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म अर काल यह अक्षेत्र हैं, अवगाहन लक्षण का अभाव है, यातैं। जीव, पुद्गल—यह क्रियावान् हैं, गमन का दर्शन है, यातैं। अवशेष धर्म, अधर्म, आकाश, काल—यह अक्रियावान् हैं, गतिक्रिया का अभाव का दर्शन हैं यातैं। धर्म, अधर्म, आकाश अर निश्चयकाल—यह नित्य हैं काहे तैं? व्यवहारनय की अपेक्षाकरि व्यंजन-पर्यय का अभाव है। ताहि अपेक्षाकरि विनाश का अभाव है यातैं। जीव, पुद्गल—यह अनित्य है, व्यंजन परजाय का दर्शन है, यातैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—यह कारण हैं, काहैं तैं? जीव का उपगारपनैं करिकैं प्रवर्तैं हैं यातैं। जीव अकारण हैं, स्वतंत्रपनैंतैं। जीव कर्ता है, शुभ अशुभ को भोक्ता है यातैं। अवशेष धर्म, अधर्म, पुद्गल, आकाश, काल—यह अकर्ता है। शुभ-अशुभ के भो क्तापनैं के अभावतैं। आकाश सर्वगत् है, सर्वत्र ग्रहण होय है यातैं। अवशेष जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल द्रव्य है, ते असर्वगत हैं, सर्वत्र ग्रहण कर अभाव है यातैं। तातैं। १. परिणाम, २. जीव, ३. मूर्ति, ४. सप्रदेश, ५. एक, ६. क्षेत्र, ७. क्रियावान्, ८. नित्य, ९. कारण, १०. कर्ता, और ११. सर्वगत—

इन स्वरूप करिकैं द्रव्यलोक है, ताहि तुम जानहु। बहुरि इतर कहिये अन्य जे अपरिणामादिक प्रदेश तिनकरि द्रव्य

---

१. अ. ब. आगास। २. अ. ब. मह।

आकाशं सप्रदेशं प्रदेशैः सह । ऊर्ध्वलोकं मध्यलोकमधोलोकं च । एतत्सर्वं क्षेत्रलोकमनन्तजिनदृष्टं विजानीहीति ॥ ४५ ॥

चिह्नलोकमाह—

जं दिट्ठं संठाणं दव्वाण गुणाण पज्जयाणं च ।
चिण्हलोगं वियाणाहि अणंतजिणदेसिदं ॥ ४६ ॥

द्रव्यसंस्थानं धर्माधर्मयोर्लोकाकारेण संस्थानं । कालद्रव्यस्याकाशप्रदेशस्वरूपेण संस्थानं । आकाशस्य केवलज्ञानस्वरूपेण संस्थानं । लोकाकाशस्य गृहगुहादिस्वरूपेण संस्थानं । पुद्गलद्रव्यस्य लोकस्वरूपेण संस्थानं द्वीपनदीसागरपर्वतपृथिव्यादिरूपेण संस्थानं । जीवद्रव्यस्य समचतुरस्रन्यग्रोधादिस्वरूपेण संस्थानं । गुणानां द्रव्याकारेण कृष्णनीलशुक्लादिस्वरूपेण वा संस्थानं । पर्यायाणां दीर्घह्रस्ववृत्तत्र्यस्रचतुरस्रादिनारकत्वतिर्यक्त्वमनुष्यत्वदेवत्वादिस्वरूपेण संस्थानं । यद्दृष्टं संस्थानं द्रव्याणां गुणानां पर्यायाणां च चिह्नलोकं विजानीहीति ॥ ४६ ॥

लोक हैं, ताहि तुम जानहु—ऐसा संबंध है ॥ ४४ ॥

आगैं क्षेत्रलोक का स्वरूप है, ताहि वर्णन करते संतै आचार्य कहै हैं—

अर्थ—आकाश-प्रदेशकरि सहित उर्ध्वलोक, मध्यलोक बहुरि अधोलोक—यह समस्तकूं अविनाशी जिनदेव करि देख्या क्षेत्रलोक तुम जानहु ॥ ४५ ॥

आगैं चिह्नलोक कूं कहै है—

अर्थ—'द्रव्याणां संस्थानं' कहिये धर्म, अधर्म द्रव्यनिकौ लोकाकारकरि संस्थान है। कालद्रव्य का आकाश प्रदेश स्वरूपकरि संस्थान है। आकाश द्रव्य का केवलज्ञान स्वरूपकरि संस्थान है। लोकाकाश का गृह, गुफादि स्वरूपकरि संस्थान है। पुद्गल द्रव्य का लोकस्वरूपकरि संस्थान है। द्वीप, नदी, सागर, पर्वत, पृथिव्यादि स्वरूपकरि संस्थान है। जीवद्रव्य का समचतुरस्र, न्यग्रोध-परिमंडलादि स्वरूपकरि संस्थान है।

(**विशेष**—यहाँ यह विशेष ध्यातव्य है कि नामकर्म के अन्तर्गत संस्थान के १- समचतुरस्र संस्थान, २- न्यग्रोध परिमण्डल, ३- स्वाति, ४- वामन, ५- कुब्जक और ६- हुंडक—ऐसे छह भेद माने हैं। जीव-संसार में इन छहों में से किसी एक संस्थान को लेकर ही शरीर धारण करता है तथा मुक्त जीव भी जिस संस्थान से मुक्त होते हैं उनके आत्म-प्रदेश मुक्तावस्था में उसी आकार के ही रहते हैं। इस प्रकार यहाँ द्रव्यों के संस्थान बतलाये गये हैं।)

गुणानां कहिये गुणनि को द्रव्याकारकरि संस्थान है अथवा कृष्ण, नील, शुक्लादि स्वरूपकरि संस्थान हैं। पर्यायाणां कहिये परजायनि को दीर्घ ह्रस्व, गोल, तिकूटां, चौकोर आदि तथा नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपनां, देवपनां आदि स्वरूपकरिसंस्थान है—ऐसा जो द्रव्य, गुण, परजायनि कौ संस्थान देख्यौ सो अविनाशी भगवानकरि कथित चिह्नलोक है, ताहि तुम जानहु ॥ ४६ ॥

कषायलोकमाह—

कोधो माणो माया लोभो उदिण्णा जस्स जंतुणो ।
कसायलोगं वियाणाहि अणंतजिणदेसिदं ॥ ४७ ॥

यस्य[1] जन्तोर्जीवस्य क्रोधमानमायालोभा उदीर्णा उदयमागताः तं कषायलोकं विजानीहीति अनन्तजिनदर्शितम् ॥ ४७ ॥

भवलोकमाह—

णेरइयदेवमाणुसतिरिक्खजोणिं गदाय जे सत्ता ।
णिययभवे वट्टंता भवलोगं तं विजाणाहि ॥ ४८ ॥

नारकदेवमनुष्यतिर्यग्योनिषु गताश्च ये जीवा निजभवे निजायुःप्रमाणे वर्तमानास्तं भवलोकं विजानीहीति ॥ ४८ ॥

भावलोकमाह—

तिव्वो रागो य दोसो य उदिण्णा जस्स जंतुणो ।
भावलोगं वियाणाहि अणंतजिणदेसिदं ॥ ४९ ॥

यस्य जन्तोस्तीव्रौ प्रीतिविप्रीती उदीर्णौ उदयमागतो तं भावलोकं विजानीहीति ॥ ४९ ॥

आगै कषायलोक है, ताहि कहै हैं—

अर्थ—जा जीव कै क्रोध, मान, माया, लोभ—यह कषाय उदय कूं प्राप्त भया, अविनाशी भगवान्‌करि दिखाया तिस ही कूं तुम कषाय लोक जानहु ॥ ४७ ॥

आगैं भवलोक है, ताहि कहै है—

अर्थ—नारक, देव, मनुष्य, तिरजंच जोणि विषैं प्राप्त भये वहुरि अपनैं भव विषैं, अपने आयु-प्रमाण जे जीव, ताहि तुम जीवलोक जानहु ॥ ४८ ॥

आगैं भावलोक हैं, ताहि कहै है—

अर्थ—जा जीव कै तीव्र राग-द्वेष उदयकूं प्राप्त भये, अविनाशी भगवान्‌करि देख्या ताहि तुम भावलोक जानहु ॥ ४९ ॥

१. क °क्तिमपि षट्प्रकारामाह ।

पर्यायलोकमाह—

दव्वगुणखेत्तपज्जय भवाणुभावो य भावपरिणामो ।
जाण चउव्विहमेयं पज्जयलोगं समासेण ॥ ५० ॥

द्रव्याणां गुणा ज्ञानदर्शनसुखवीर्यकर्तृत्वभोक्तृत्वकृष्णनीलशुक्लरक्तपीतगतिकारकत्वस्थितिकारकत्वावगाहनागुरुलघुवर्तमानादयः । क्षेत्र-पर्यायाः सप्तनरकपृथ्वीप्रदेशपूर्वविदेहापरविदेहभरतैरावतद्वीपसमुद्रत्रिषष्टिस्वर्गभूमिभेदादयः । भवानामनुभवः आयुषो जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पः । भावो [1]नाम परिणामोऽसंख्यातलोकप्रदेशमात्रः शुभाशुभरूपः कर्मादाने परित्यागे वा[2] समर्थः । द्रव्यस्य गुणाः पर्यायलोकः, क्षेत्रस्य पर्यायाः पर्याय-लोकः भवस्यानुभवाः पर्यायलोकः भावो नाम परिणामः पर्यायलोकः । एवं चतुर्विधं पर्यायलोकं समासेन जनीहीति ॥ ५० ॥

उद्योतस्य स्वरूपमाह—

उज्जोवो खलु दुविहो णादव्वो दव्वभावसंजुत्तो ।
दव्वुज्जोवो [3]अग्गी चंदो सूरो मणी चेव ॥ ५१ ॥

उद्योतः प्रकाश खलु द्विविधः स्फुटं ज्ञातव्यो द्रव्यभावभेदेन । द्रव्यसंयुक्तो भावसंयुक्तश्च । तत्र द्रव्योद्योतोऽग्निश्चन्द्रः सूर्यो मणिश्च । एवकारः प्रकारार्थः । एवंविधोऽन्योऽपि द्रव्योद्योतो ज्ञात्वा वक्तव्य इति ॥ ५१ ॥

आगैं पर्यायलोक है, ताहि कहै है—

अर्थ—द्रव्यनि के गुण—ज्ञान, दर्शन, सुख, वीरज, कर्तृत्व, भोक्तृत्व (ये जीवद्रव्य के गुण हैं ।), कृष्ण, नील, शुक्ल, रक्त, पीत (ये पुद्गल के गुण हैं), गति-कारकत्व (यह धर्म द्रव्य का गुण है), स्थिति-कारकत्व (यह अधर्म द्रव्य का गुण है), अवगाहन (यह आकाश का गुण है) अगुरुलघु (यह सब द्रव्यों का गुण है) वर्तना (यह काल द्रव्य का गुण है) आदि कहैं है । क्षेत्रनि कै परजाय—सप्त नरक, पृथिवी-प्रदेश, पूर्वविदेह, पश्चिम विदेह, भरत, ऐरावत, द्वीप, समुद्र, त्रेसठि स्वर्ग की भूमि—इत्यादि भेद क्षेत्रनि की पर्याय हैं । भवानुभाव कहिए ये आयु कौ जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट भेद भवानुभाव हैं । भाव परिणाम कहियै सो असंख्यात लोकमात्र, शुभाशुभ रूप, कर्म्म के ग्रहण विषैं अथवा कर्म के त्याग विषैं समर्थ अैसैं १. द्रव्य गुण, २. क्षेत्र परजाय, ३. भवानुभाव, ४. भावपरिणाम—च्यारि प्रकार संक्षेपकरि परजाय लोक कूं तुम जानहु ॥ ५० ॥

आगैं उद्योत का स्वरूप कहै है—

अर्थ—उद्योत कहिए प्रकाश है सो प्रगट द्रव्य-भाव-भेदकरि सहित दोय प्रकार जानना—१. द्रव्य संयुक्त, २. भाव-संयुक्त । तहां द्रव्योद्योत—अग्नि, चंद्रमा, सूरिज, बहुरि मणि है । इहां 'एव' अव्यय है सो प्रकारार्थ मैं है, ताकरि अन्य हू द्रव्योद्योत जानिकरि कहनी ॥ ५१ ॥

---

१. क नाम अनुभवपर्यायः प० । २. क वा असमर्थः । ३. जोऊ द० ।

भावोद्योतं निरूपयन्नाह—

भावुज्जोवो णाणं जह भणियं सव्वभावदरिसीहिं ।
तस्स दु पओगकरणे भावुज्जोवोत्ति णादव्वो ॥ ५२ ॥

भावोद्योतो नाम ज्ञानं यथा भणितं सर्वभावदर्शिभिः येन प्रकारेण सर्वपदार्थदर्शिभिर्ज्ञानमुक्तं तद्भावोद्योतः परमार्थोद्योतस्तथा ज्ञानस्योपयोगकरणात् स्वपरप्रकाशकत्वाद्भावोद्योत इति ज्ञातव्यः ॥ ५२ ॥

पुनरपि भावोद्योतस्य भेदमाह—

पंचविहो खलु भणिओ भावुज्जोवो य जिणवरिंदेहिं ।
आभिणिबोहियसुदओहि-णाणमणकेवलमओ[1] य ॥ ५३ ॥

स भावोद्योतो जिनवरेन्द्रैः पंचविधः पंचप्रकारः खलु स्फुटं, भणितः प्रतिपादितः । आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानमनःपर्ययकेवलमयो मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानभेदेन पंचप्रकार इति ॥ ५३ ॥[2]

द्रव्यभावोद्योतयोः स्वरूपमाह—

दव्वुज्जोवोजोवो पडिहण्णदि परिमिदह्मि खेत्तह्मि !
भावुज्जोवोजोवो लोगालोगं पयासेदि ॥ ५४ ॥

आगै भावोद्योत है, ताहि निरूपण करते संतै कहै ।

अर्थ—ज्ञान है सो भावोद्योत है, सर्वभावदर्शी जो केवली जा प्रकार जैसा कह्या सो भावोद्योत, परमार्थ स्वरूप उद्योत है। तैसा ज्ञान कै उपयोग कै करणैंतैं स्व-पर का प्रकाशकपना है, यातैं भावोद्योत—अैसा जाननां ॥ ५२ ॥

बहुरि हु भावोद्योत के भेद कहै है—

अर्थ—जिनेन्द्रदेव सो भावोद्योत मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान—इन भेदकरि प्रगटपनैं पंच प्रकार कह्या ॥ ५३ ॥

---

१. °लंणेयं ।

२. यह गाथा फलटन से प्रकाशित प्रति में अधिक है—

लोयालोयपयासं अक्खलियं णिम्मलं असंदिद्धं ।
जं णाणं अरहंता भावुज्जोओ त्ति वुच्चंति ॥

अर्थात् जो ज्ञान लोकालोक को प्रकाशित करता है, कभी स्खलित नहीं होता है, निर्मल है, संशयरहित है, अरिहंतदेव ऐसे ज्ञान को भावोद्योत कहते हैं ।

द्रव्योद्योतो य उद्योतः स प्रतिहन्यतेऽन्येन द्रव्येण परिमिते च क्षेत्रे वर्तते । भावोद्योतः पुनरुद्योतो लोकमलोकं च प्रकाशयति न प्रतिहन्यते नापि परिमिते क्षेत्रे वर्ततेऽप्रतिघातिसर्वगतत्वादिति ॥ ५४ ॥

तस्मात्—

लोगस्सुज्जोवयरा दव्वुज्जोएण ण हु जिणा होंति ।
भावुज्जोवयरा पुण होंति जिणवरा चउव्वीसा ॥ ५५ ॥

लोकस्योद्योतकरा द्रव्योद्योतेन नैव भवन्ति जिनाः । भावोद्योतकराः पुनर्भवन्ति जिनवराश्चतुर्विंशतिः । अतो भावोद्योतेनैव लोकस्योद्योतकरा जिना इति स्थितमिति । लोकोद्योतकरा इति व्याख्यातं ॥ ५५ ॥

धर्मतीर्थंकरा इति पदं व्याख्यातुकामः प्राह—

तिविहो य होदि धम्मो सुदधम्मो अत्थिकाधम्मो य ।
तदिओ चरित्तधम्मो सुदधम्मो एत्थ पुण तित्थं ॥ ५६ ॥

धर्मस्तावत्त्रिप्रकारो भवति । श्रुतधर्मोऽस्तिकायधर्मस्तृतीयश्चारित्रधर्मः । अत्र पुनः श्रुतधर्मस्ती[1]र्थान्तरं संसारसागरं तरन्ति येन तत्तीर्थमिति ॥ ५६ ॥

आगैं द्रव्योद्योत अर भावोद्योत को स्वरूप है, ताहि कहै हैं—

जो द्रव्योद्योत है सो उद्योत अन्य द्रव्यकरि रोकिये है। प्रमाणजुत क्षेत्र विषैं वरतै है। बहुरि भावोद्योत या नामा उद्योत है सो लोक वहुरि अलोक हैं ताहि प्रकाशै है, न रुके है न प्रमाणजुत क्षेत्र विषैं वरते है, अप्रतिघाती अर सर्वगतपनां है ॥ ५४ ॥ यातैं—

अर्थ—जिन-भगवान् द्रव्योद्योतकरिकैं लोक के उद्योतकारी नांही होय हैं। बहुरि चौबीस जिनवर भावोद्योत कर्ता हैं, यातैं भावोद्योतकरिकैं ही लोक के उद्योतकारी जिनवर है—ऐसा निश्चय है ॥ ५५ ॥

लोकोद्योत कराया का व्याख्यान परिपूर्ण भया। आगै धर्म्मतीर्थंकर या पद के व्याख्यान करवे के अभिलाषी आचार्य कहैं हैं—

अर्थ—प्रथम ही धर्म है सो तीन प्रकार है—१. श्रुतधर्म्म, बहुरि २. अस्तिकाय धर्म्म, तीसरा चारित्रधर्म। बहुरि तीन प्रकार धर्म विषै श्रुतधर्म्म है सो तीर्थ है, सो जाकरि संसार समुद्र कूं प्राणी तिरैं सो तीर्थ है—'तीर्थ' शब्द की ऐसी व्युत्पत्ति है ॥ ५६ ॥

---

१. क तीर्थं सं० । १ क ०र्थस्य० ।

तीर्थस्य स्वरूपमाह—

दुविहं च होइ तित्थं णादव्वं दव्वभावसंजुत्तं ।
एदेसिं दोण्हंपि य पत्तेय परूवणा होदि ।। ५७ ।।

द्विविधं च भवति तीर्थं द्रव्यसंयुक्तं भावसंयुक्तं चेति । द्रव्यतीर्थमपरमार्थरूपं । भावतीर्थं पुनः परमार्थभूतमन्यापेक्षाभावात्। एतयोर्द्वयोरपि तीर्थयोः प्रत्येकं प्ररूपणा भवति ।। ५७ ।।

द्रव्यतीर्थस्य स्वरूपमाह—

दाहोपसमण तण्हाछेदो मलपंकपवहणं चेव ।
तिहिं कारणेहिं जुत्तो तह्मा ते दव्वदो तित्थं ।। ५८ ।।

द्रव्यतीर्थेन दाहस्य संतापस्योपशमनं भवति तृष्णाऽच्छेदो विनाशो भवति स्तोककालं पंकस्य च प्रवहणं शोधनमेव भवति न धर्मादिको गुणस्तस्मात्त्रिभिः कारणैर्युक्तं द्रव्यतीर्थं भवतीति ।। ५८ ।।

भावतीर्थस्वरूपमाह—

दंसणणाणचरित्ते णिज्जुत्ता जिणवरा दु सव्वेवि ।
तिहिं कारणेहिं जुत्ता तह्मा ते भावदो तित्थं ।। ५९ ।।

दर्शनज्ञानचारित्रैर्युक्ताः संयुक्ता जिनवराः सर्वेऽपि ते तीर्थं भवंति तस्मात्त्रिभिः कारणैरपि भावतस्तीर्थमिति भावोद्योतेन लोकोद्योतकरा भावतीर्थकर्तृत्वेन धर्मतीर्थकरा इति । अथवा दर्शनज्ञानचारित्राणि जिनवरैः सर्वैरपि निर्युक्तानि सेवितानि तस्मात्तानि भावतस्तीर्थमिति ।। ५९ ।।

आगै तीर्थ का स्वरूप कहै हैं—

अर्थ—तीर्थ दोय प्रकार जानना—१. द्रव्यसंयुक्त, २. भावसंयुक्त । द्रव्यतीर्थ है सो अपरमार्थभूत है । बहुरि भावतीर्थ है सो परमार्थभूत है । अन्य की अपेक्षा का अभाव है, यातैं इन दोउ तीर्थ की प्ररूपणा कहिये कथन भिन्न-भिन्न हैं ।। ५७ ।।

आगैं द्रव्यतीर्थ का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ—द्रव्यतीर्थकरि दाह जो संताप ताका उपशम होय है । तृषा का छेद कहतां विनाश होय है । थोरे कालमैं मल-पंक को प्रवहणं कहिये शोधन होय हैं यातैं धर्मादिक गुण नांही, तातै तीन कारण सहित सो द्रव्यतीर्थ है ।। ५८ ।।

आगैं भावतीर्थ का स्वरूप कहै है—

अर्थ—दर्शन-ज्ञान-चारित्रकरि संयुक्त सर्वही जिनवर हैं, ते तीर्थ होय हैं, तातैं तीन कारणकरिकैं ही भावतीर्थ हैं ।

जिनवरा अर्हन्निति पदं व्याख्यातुकामः प्राह—

जिदकोहमाणमाया जिदलोहा तेण ते जिणा होंति ।
हंता अरिं च जम्मं अरहंता तेण [1]वुच्चंति ॥ ६० ॥

यस्माज्जितक्रोधमानमायालोभास्तस्मात्तेन कारणेन ते जिना इति भवंति येनारीणां हन्तारो जन्मनः संसारस्य च हन्तारस्तेनार्हन्त इत्युच्यन्ते ॥ ६१ ॥

येन च—

अरिहंति वंदणणमंसणाणि अरिहंति पूयसक्कारं ।
अरिहंति सिद्धगमणं अरहंता तेण उच्चंति ॥ ६१ ॥

वंदनाया नमस्कारस्य च योग्या वंदनां नमस्कारमर्हंति, पूजायाः सत्कारस्य च योग्याः पूजासत्कारमर्हन्ति च यतः सिद्धिगमनस्य च योग्याः सिद्धिगमनमर्हन्ति, यस्मात्तेनाऽर्हन्त इत्युच्यन्ते ॥ ६१ ॥

किमर्थमेते कीर्त्यन्त इत्याशंकायामाह—

किह ते ण कित्तणिज्जा सदेवमणुयासुरेहिं लोगेहिं ।
दंसणणाणचरित्ते तव विणओ जेहिं पण्णत्तो ॥ ६२ ॥

कथं ते न कीर्तनीयाः व्यावर्णनीयाः सदेवमनुष्यासुरैर्लोकैर्दर्शनज्ञानचारित्रतपसां विनयो यैः प्रज्ञप्तः प्रतिपादितः ते चतुर्विंशतितीर्थंकराः कथं न कीर्त्तनीयाः ॥ ६२ ॥

इहां ऐसा जाननां—समस्त हू जिनवर भावोद्योत करि लोक के उद्योतकर्ता हैं। भावधर्म्म-तीर्थंकरत्वपनां करि धर्मतीर्थके कर्ता हैं अथवा दर्शन-ज्ञान-चारित्र सर्वही जिनदेवकरि सेई हैं, तातैं तीन्यूं भावतीर्थ हैं ॥ ५९ ॥

आगैं जिनवर बहुरि 'अर्हंत' पद है, ताहि व्याख्यान करवे के अभिलाषी आचार्य कहै है—

अर्थ—जातै जीते हैं क्रोध, मान, माया, लोभ जिनिनैं, तिस कारणकरि ते 'जिन'—ऐसे नाम के धारक हैं, जा कारणकरि कर्म्मशत्रु के हर्ता हैं, बहुरि संसार के हननें वारे हैं, ता कारण 'अरहंत'—ऐसा नाम कहै हैं ॥ ६० ॥

बहुरि 'अर्हंत' शब्द की व्युत्पत्ति कहै है—

अर्थ—वंदना कैं बहुरि नमस्कार कैं जोग्य हैं। पूजा कै बहुरि सत्कार कै जोग्य हैं। मोक्ष जावै के जोग्य हैं तिस कारण तैं 'अर्हंत'—ऐसे नाम कहिये है ॥ ६१ ॥

कौन कारण करि यह चौबीस तीर्थंकर गुणानुवाद करिये ? ऐसी आशंका होतैं कहै है—

अर्थ—जिनि तीर्थंकरनि नैं दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप का विनय है, सो उपदेश कीया, ते भगवान देव, मनुष्य अरु

1. क वुच्चदि य।

इति कीर्तनमधिकारं व्याख्याय केवलिनां स्वरूपमाह—

सव्वं केवलिकप्पं लोगं जाणंति तह य पस्संति ।
केवलणाणचरित्ता[1] तह्मा ते केवली होंति ॥ ६३ ॥

किमर्थं केवलिन इत्युच्यन्त इत्याशंकायामाह—यस्मात्सर्वं निरवशेषं केवलिकल्पं केवलज्ञानविषय लोकमलोकं च जानन्ति तथा च पश्यंति केवलज्ञानमेव चरित्रं येषां ते केवलज्ञानचरित्राः परित्यक्ताशेषव्यापारास्तस्मात्ते केवलिनो भवंतीति ॥ ६३ ॥

अथोत्तमाः कथमित्याशंकायामाह—

मिच्छत्तवेदणीयं णाणावरणं चरित्तमोहं च ।
तिविहा तमाहु मुक्का तह्मा ते उत्तमा होंति ॥ ६४ ॥

मिथ्यात्ववेदनीयमश्रद्धानरूपं ज्ञानावरणं ज्ञानदर्शनयोरावरणं चारित्रमोहश्चैतत्त्रिविधं तमस्तस्मात् मुक्ता यतस्तस्मात्ते उत्तमाः प्रकृष्टा भवंतीति ॥ ६४ ॥

त एवं विशिष्टा मम—

आरोग्ग बोहिलाहं दिंतु समाहिं च मे जिणवरिंदा ।
किं ण हु णिदाणमेयं णवरि विभासेत्थ कायव्वा ॥ ६५ ॥

असुरनिकरि सहित लोकनि करि कैसै गुणानुवाद करवे जोग्य नांही ? सदा ही देव, मनुष्य, असुरनिकरि पूज्यवे जोग्य हैं ॥ ६२ ॥

कीर्तन अधिकार का व्याख्यान करि आगै 'केवली' का स्वरूप कहै है—

कौन कारण केवली ऐसा नाम कहिये है ? ऐसी आशंका होतैं आचार्य कहैं हैं ? जातैं समस्त केवलज्ञान का विषय जो लोक बहुरि अलोक ताहि जानैं। बहुरि तैसैं देखै केवलज्ञान ही है आचरण जिनिकैं, ते केवलज्ञान चारित्र कहिये। (अर्थात् जिनके अशेष व्यापार छूट चुके हैं, इसलिए वे 'केवली' कहलाते हैं।) ॥ ६३ ॥

भावार्थ—अन्य समस्त व्यापारकरि रहित तातै ते केवली हैं। अथानंतर उत्तम विशेषण कौन प्रकार ? ऐसी आशंका होतैं कहै है—

अर्थ—१. अश्रद्धानरूप कहिये श्रद्धानतैं रहित है रूप जाका ऐसा मिथ्यात्व वेदनीय है।[2] २. ज्ञानावरण कहिये ज्ञान-दर्शन का आवरण है सो, ३. बहुरि चारित्रमोह है सो तीन प्रकार (मोहनीयकर्म, ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण—ये तीन) 'तम' अंधकार हैं इनतैं जे रहित हैं ता कारणतैं 'उत्तम' कहिए उत्कृष्ट हैं। ॥ ६४ ॥

---

१. कणीं। २. मिथ्यात्वकर्म के उदय से जीव को सम्यक तत्वों का श्रद्धान नहीं होता। यह दर्शनमोह का गाढ–अन्धकार के सदृश है।

एवं विशिष्टास्ते जिनवरेन्द्रा मह्यमारोग्यं जातिजरामरणाभावं बोधिलाभं च जिनसूत्रश्रद्धानं दीक्षाभिमुखीकरणं वा समाधिं च मरणकाले सम्यक्परिणामं ददतु प्रयच्छन्तु, किं पुनरिदं निदानं न भवति न भवत्येव कस्माद्विभाषाऽत्र विकल्पोऽत्र कर्तव्यो यस्मादिति ॥ ६५ ॥

एतस्माच्चेदं निदानं न भवति यतः—

भासा असच्चमोसा णवरि हु भत्तीय भासिदा [1]एसा ।
ण हु खीण[2]रागदोसा [3]दिंति समाहिं[4]च बोहिं[5] च ॥ ६६ ॥

असत्यमृषा भाषेयं किंतु भक्त्या भाषितैषा यस्मान्नहि क्षीणरागद्वेषा जिना ददते समाधिं बोधिं च । यदि दाने प्रवर्त्तेरन् सरागद्वेषाः स्युरिति ॥ ६६ ॥

अन्यच्च—

जं तेहिं दु दादव्वं तं दिण्णं जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
दंसणणाणचरित्तस्स एस तिविहस्स उवदेसो ॥ ६७ ॥

यत्तैस्तु दातव्यं तद्दत्तमेव जिनवरैः सर्वैः किं तद्दर्शनज्ञानचारित्राणां त्रिप्रकाराणां एष उपदेशोऽस्मात्किमधिकं यत्प्रार्थ्यते । इति एषा च समाधिबोधिप्रार्थना भक्तिर्भवति यतः ॥ ६७ ॥

आगैं आचार्य प्रार्थना करै हैं—(अर्थात् पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट तीर्थंकर हमें क्या देवें ? सो ही बतलाते हैं—)

अर्थ—पूर्वोक्त विशेषण करि सहित अैसे जिनेंद्रदेव मोकूं आरोग्य कहिये जन्म-मरण का अभाव है, ताहि, बोधिलाभ कहिये जिन-सूत्र विषैं श्रद्धान् हैं ताहि, अथवा दीक्षा के सन्मुख-करणां हैं ताहि, बहुरि समाधि कहिए मरणसमय विषैं सम्यक्त्व सहित परिणाम हैं ताहि देहु । (प्रश्न–) कोउ कहैं—इहां जाचनां (याचना) है ई तातैं निदान कैसैं नांही ? याका उत्तर—इहां अैसा कहना 'विकल्परूप' है ॥ ६५ ॥

याका विशेष आगै कहै हैं, यातैं यह निदान नांही है—

अर्थ—यह असत्यमृषा भाषा है । प्रगटपनैं (वास्तव में) केवल भक्तिकरि वचन कह्या है । जातैं क्षीण हुवा है रागद्वेष जिनिकै अैसे जिनभगवान् हैं । ते समाधि अर बोधि है ताहि नांही दे हैं । जो दान विषैं भगवान् प्रवर्तैं तब रागद्वेष सहित होय ॥ ६६ ॥

और हु आगै कहै हैं—

अर्थ—जो जिनवर करि देनें जोग्य था सो समस्त हूं जिनवर दीया । सो कहा (क्या) ? तीन प्रकार अैसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र तिनका यह उपदेश है, सो दीया । यातैं अधिक कहा (क्या) ? कि जो प्रार्थनां करिये—अैसा जाननां । इहां

१. क ब, भासा । २. क °खीणपेज्जदोसा° । ३. क दिंतु । ४-५. अ, ब–धिं ।

अत आह—

भत्तीए जिणवराणं खीयदि जं पुव्वसंचियं कम्मं ।
आयरियपसाएण म विज्जा मंता य सिज्झंति ।। ६८ ।।

जिनवराणां भक्त्या पूर्वसंचितं कर्म क्षीयते विनश्यते यस्माद् आचार्याणां च भक्तिः किमर्थं ? आचार्याणां च प्रसादेन विद्या मंत्राश्च सिद्धिमुपगच्छंति यस्मादिति तस्माज्जिनानामाचार्याणां च भक्तिरियं न निदानमिति ।। ६८ ।।

अन्यच्च ;—

अरहंतेसु य राओ ववगदरागेसु दोसरहिएसु ।
धम्मह्मि य जो राओ सुदे य जो बारसविधह्मि ।। ६९ ।।
आयरियेसु य राओ समणेसु य बहुसुदे चरित्तड्ढे ।
एसो पसत्थराओ हवदि सरागेसु सव्वेसु ।। ७० ।।

व्यपगतरागेष्वष्टादशदोषरहितेयु अर्हत्सु यः रागः या भक्तिस्तथा धर्मे यो रागस्तथा श्रुते द्वादशविधे यः रागः ।। ६९ ।। तथा—

आचार्येषु रागः श्रमणेषु बहुश्रुतेषु च यो रागश्चरित्राढ्येषु च रागः स एष राग प्रशस्तः शोभनो भवति सरागेषु सर्वेष्विति ।।७०।।

विशेष जाननां—वीतराग भगवान इच्छापूर्वक देते नांही। इच्छापूर्वक दे तौ यामैं दोष आवै हैं। आचार्य ने जाचना करी, सो यह समाधि–बोधि की प्रार्थना है, सो भक्ति है ।। ६७ ।।

इस हेतु तैं आचार्य उत्तर रूप (पूर्वक) गाथा कहैं हैं—

अर्थ—जिनवर देवनि की भक्तिकरि पूर्व-संचित कर्म हैं सो क्षयकूं प्राप्त होय हैं। बहुरि आचार्यनिकी भक्ति है सो कौन अर्थि है ? याका उत्तर—जातैं आचार्यनि कैं प्रसादकरि विद्या-मंत्र है ते सिद्धि कूं प्राप्ति होय है, जातैं अैसै हैं तातैं जिनवर-निकी, आचार्यनिकी भक्ति है सो निदान नांही ।। ६८ ।। और कहै है—

अर्थ—विनष्ट भया है राग जिनकैं, अठारह दोषनि करि रहित अैसे अरहंत देवनि विषैं जो राग कहिए—भक्ति तथा तैंसैं धर्म विषैं जो राग कहिए भक्ति तथा तैसैं धर्म विषैं जो राग, बहुरि द्वादशांग श्रुत विषैं जो राग तैंसैं ।। ६९ ।।

और हु विशेष कहै है—

अर्थ—आचार्यनि विषैं जो राग, बहुरि मुनिश्वरनि विषैं जो राग, बहुरि बहुत है शास्त्रज्ञान जिनिकै अैसे बहुश्रुतनि विषैं राग, उत्कृष्ट चारित्र के धारीनि विषै जो राग—सो सर्बं ही रागनि विषै यह राग प्रशस्त-राग है ।।७० ।।

अन्यच्च;—

तेसिं अहिमुहदाए अत्था सिज्झंति तह य भत्तीए ।
तो भत्ति रागपुव्वं वुच्चइ एदं ण हु णिदाणं ।। ७१ ।।

तेषां जिनवरादीनामभिमुखतया भक्त्या चार्था वांछितेष्टसिद्धयः सिद्धयन्ति हस्तग्राह्या भवन्ति यस्मात्तस्माद्भक्ती रागपूर्वकमेतदुच्यते न हि निदानं, संसारकारणाभावादिति ।। ७१ ।।

चतुर्विंशतिस्तस्वविधानमाह—

चउरंगुलंतरपादो पडिलेहिय अंजलीकयपसत्थो ।
अव्वाखित्तो वुत्तो कुणदि य चउवीसत्थयं भिक्खू ।। ७२ ।।

चतुरंगुलान्तरपादः स्थितांगः परित्यक्तशरीरावयवचालनश्चकारादेतल्लब्धं प्रतिलिख्य शरीरभूमिचित्तादिकं प्रशोध्य प्रांजलिः सपिंडः कृतांजलिपुटेन प्रशस्तः सौम्यभावोऽव्याक्षिप्तः सर्वव्यापाररहितः करोति चतुर्विंशस्तवं भिक्षुः संयतश्चतुरंगुलमंतरं ययोः पादयोस्तौ चतुरंगुलान्तरौ तौ पदौ यस्य स चतुरंगुलान्तरपादः स्थितं निश्चलमंगं यस्य सः स्थितांगः शोभनकायिकवाचिकमानसिकक्रिय इत्यर्थः ।। ७२ ।।

चतुर्विंशतिस्तवनिर्युक्तिमुपसंहर्तुं वंदनानिर्युक्तिं च प्रतिपादयितुं प्राह—

चउवीसयणिज्जुत्ती एसा कहिया मए समासेण ।
वंदणणिज्जुत्ती पुण एत्तो उड्ढं पवक्खामि ।। ७३ ।।

चतुर्विंशतिनिर्युक्तिरेषा कथिता मया समासेन वंदनानिर्युक्तिं पुनरित ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रतिपादयिष्यामिति ।। ७३ ।।

बहुरि कहै है—

अर्थ—जातैं तिनि जिनवरादिकनि के सन्मुख भावकरि, बहुरि भक्ति करि, 'अर्थ' कहिये वांछित इष्ट सिद्ध होय है। तातैं यह भक्ति रागपूर्वक हैं, निदान नांही। काहै तैं? संसार के कारण कूं निदान कहिये है, यामैं संसार के कारण का अभाव है—अैसें जाननां ।। ७१ ।।

आगै चतुर्विंशतिस्तव का विधान है, ताहि कहै हैं—

अर्थ—च्यार अंगुल प्रमाण है अंतर जिन विषै अैसे हैं चरण जाके, निश्चल है शरीर जाकौ, त्यज्या है शरीर कै अवयवनिकै हलन-चलन जानैं। गाथा में चकार है तातैं यह विशेष ग्रहण कीया। प्रतिलेख्य कहिये शरीर, भूमि, चित्त इत्यादिक कूं शुद्ध करिकैं पीछी सहित कीया जो अंजलिपुट ताकरि श्रेष्ठ सौम्य है भाव जाकैं, अव्याक्षिप्त कहिये सर्व व्यापारनिकरि रहित अैसा संजमी चतुर्विंतिस्तव है, ताहि करै ।। ७२ ।।

---

१. अ. ब. णेओ।

तथैतां नामादिनिक्षेपैः प्रतिपादयन्नाह—

णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते काले य होदि भावे य ।
एसो खलु वंदणगे णिक्खेवो छव्विहो भणिदो[1] ॥ ७४ ॥

एकतीर्थंकरनामोच्चारणं सिद्धाचार्यादिनामोच्चारणं च नामावश्यकवंदनानिर्युक्तिरेकतीर्थंकरप्रतिबिंबस्य सिद्धाचार्यादिप्रतिबिंबानां च स्तवनं स्थापनावंदनानिर्युक्तिस्तेषामेव शरीराणां स्तवनं द्रव्यवंदनानिर्युक्तिस्तैरेव यत्क्षेत्रमधिष्ठितं कालश्च योऽधिष्ठितस्तयोः स्तवनं क्षेत्रवंदना च, एकतीर्थंकरस्य सिद्धाचार्यादीनां च शुद्धपरिणामेन यद्गुणस्तवनं तद्भावावश्यकवंदनानिर्युक्तिः नामाथवा जातिद्रव्यगुण क्रियानिरपेक्षं संज्ञाकर्म वंदनाशब्दमात्रं नामवंदनापरिणतस्य प्रतिकृतं प्रतिकृतिवंदना स्थापनावंदनावन्दनाव्यवर्णनप्राभृतज्ञोऽनुपयुक्त आगमद्रव्यवंदना शेषः पूर्ववदिति । एष वंदनाया निक्षेपः षड्विधो भवति ज्ञातव्यो नामादिभेदेनेति ॥ ७४ ॥

नामवंदनां प्रतिपादयन्नाह—

किदियम्मं चिदियम्मं पूयाकम्मं च विणयकम्मं च ।
कादव्वं केण[2] कस्स व कधे व कहिं व कदिखुत्तो ॥ ७५ ॥

आगै चतुर्विंशतिस्तव निर्युक्ति कूं संकोचवे कूं, बहुरि वंदना निर्युक्ति है, ताहि व्याख्यान करिवेकूं आचार्य कहै है—

अर्थ—मैं यह चतुर्विंशति स्तवनिर्युक्ति है सो संक्षेप करि कही। याकै आगै वंदनानिर्युक्ति है, ताहि संक्षेपकरि मैं कहूँगा। जैसे चतुर्विंशतिस्तव के नामादि निक्षेप कहे हैं तैसे ही वंदना निर्युक्ति है ॥ ७३ ॥

ताहि नामादि निक्षेपनिकरि उपदेश करते आचार्य कहे हैं—

अर्थ—१. एक तीर्थंकर नाम का उच्चारण, बहुरि सिद्ध, आचार्य आदि नामका उच्चारण सो नामावश्यक-वंदना-निर्युक्ति है। २. एक तीर्थंकर प्रतिबिंब का, बहुरि सिद्ध, आचार्य आदि के प्रतिविबनिका स्तवन है सो स्थापना वंदना निर्युक्ति ३. तिनही का शरीरानि का स्तवन सो द्रव्यवंदना निर्युक्ति है। ४. तिनही नैं जो क्षेत्र आश्रय कीया ताका स्तवन सो क्षेत्र वंदना है। ५. बहुरि जो काल आश्रय कीया सो काल वंदना है। ६. एक तीर्थंकर का सिद्ध, आचार्यादिक का शुद्ध परिणामकरि जो गुणस्तवन सो भावावश्यक वंदना निर्युक्ति है।

अथवा १. जाति, द्रव्य, गुण, क्रिया की अपेक्षा रहित वंदना अैसा शब्द मात्र संज्ञा कर्म सो नाम वंदना है। २. वंदना परिणत जो जीव तिसका आकार रूप जो वंदना सो स्थापना वंदना है। ३. वंदना को है व्याख्यान जामें अैसा प्राभृत को ज्ञाता उपयोग रहित सो आगमद्रव्य वंदना है। 'शेषं' कहिये अवशेष नोआगमादिक भेद है सो पूर्व्वैं कह्या है, त्यूं जाननां। यह वंदना का निक्षेप है, सो नामादिक भेदनि करि छह प्रकार जाणणां ॥ ७४ ॥

आगैं नामवंदना का बहुरि भाव वंदना का व्याख्यान करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ—गाथा का पूर्वार्द्धकरि वंदना का एकार्थ कह्या है। उत्तरार्द्धकरि तिसका भेद कह्या है। 'कृत्यते' कहिये छेदिये,

---

१. अ. ब. णेओ। २. अ. केणु।

पूर्वगाथार्धेन वंदनाया एकार्थः कथ्यते[1]ऽपरार्द्धेन तद्विकल्पा इति । कृत्यते छिद्यते अष्टविधं कर्म येनाक्षरकदंबकेन परिणामेन क्रियया वा तत्कृतिकर्म पापविनाशनोपायः[2] । चीयते समेकीक्रियते संचीयते पुण्यकर्म तीर्थकरत्वादि येन तच्चितिकर्म पुण्यसंचयकारणं । पूज्यन्तेऽर्च्यन्तेऽर्हदादयो येन तत्पूजाकर्म बहुवचनोच्चारणस्रक्चंदनादिकं । विनीयंते निराक्रियन्ते संक्रमणोदयोदीरणादि भावेन प्राप्यंते येन कर्माणि तद्विनयकर्म । सुश्रूषणं तत्क्रियाकर्म कर्तव्यं केन कस्य कर्तव्यं कथमिव केन विधानेन कर्त्तव्यं कस्मिन्नवस्थाविशेषे कर्त्तव्यं कतिवारान् ॥ ७५ ॥

तथा—

कदि ओणदं कदि सिरं कदि आवत्तगेहिं परिसुद्धं ।
कदिदोसविप्पमुक्कं किदियम्मं होदि कादव्वं ॥ ७६ ॥

कदि ओणदं—कियन्त्यवनतानि । कति करमुकुलांकितेन शिरसा भूमिस्पर्शनानि कर्त्तव्यानि । **कदि सिरं**—कियन्ति शिरांसि कतिवारान् शिरसि करकुड्मलं कर्त्तव्यं । कदि आवत्तगेहिं **परिसुद्धं**—कियद्भिरावर्त्तैः परिशुद्धं कतिवारान्मनोवचनकाया आवर्त्तनीयाः । कदि दोसविप्पमुक्कं—कति दोषैर्विमुक्तं कृतिकर्म भवति कर्त्तव्यमिति ।। ७६ ।।

इति प्रश्नमालायां कृतायां तावत्कृति[3] कर्मविनयकर्मणोरनेकार्थ इति कृत्वा विनयकर्मणः सप्रयोजनां निरुक्तिमाह—

जह्मा विणेदि[4] कम्मं अट्ठविहं चाउरंगमोक्खो य ।
तह्मा वदंति विदुसो विणओत्ति विलीणसंसारा ॥ ७७ ॥

यस्माद्विनयति विनाशयति कर्माष्टविधं चातुरंगात्संसारान्मोक्षश्च यस्माद्विनयात्तस्माद्विद्वांसो विलीनसंसारा विनय इति वदंति ॥ ७७ ॥

आठ प्रकार के कर्म्म जिन अक्षर के समूहकरि वा परिणामकरि बहुरि क्रियाकरि सो कृतिकर्म है । कैसा है यह पाप ? विनासवे का उपाय है। 'चीयते' कहिए संचय करिये पुण्यकर्म जाकरिकै, तीर्थंकर कूं आदि दे सो 'चितिकर्म्म' है। कैसा है यह पुण्य ? संचय का कारण है। 'पूज्यते' कहिये पूजिये अर्हंतादिक जाकरिकैं सो पूजाकर्म है। कैसो पूजाकर्म्म है ? उच्चवचन का बोलणां, माला, चंदनादिक—यह पूजाकर्म है। 'विनीयंते' कहिये निराकरण करिये, संक्रमण, उदय, उदीरणां आदि भावकरि प्राप्त करिये कर्म जाकरिकै सो विनयकर्म्म है। सो विनय कर्म्म शुश्रुणा का करणां, जाणणां सो क्रियाकर्म कौंन करै, कौंनका (किसका) करणां ? किस विधानकरि करणां ? कौन अवस्था विशेष विषैं करणा ? केती बार करणां ? ॥ ७५ ॥

तैसैं और हू भेद कहे सो जाणणां—

अर्थ—'कियंति अवनतानि' केती वार हस्त-मुकुलकरि संजुगत जो मस्तक ताकरि भूमि का स्पर्शन करणां ? 'कियंते शिरांसि' कहिये केती बार मस्तक विषैं हस्त मुकुल करणा ? कितनै आवर्त करणे विषैं कितने दोषनिकरि रहित कृतिकर्म करणां ? या प्रकार प्रश्ननि की माला करत संतै, प्रथम ही कृतिकर्म, विनयकर्म का एकार्थ है ॥ ७६ ॥

अैसैं करि विनयकर्म की प्रयोजन सहित निरुक्ति है, ताहि कहै है—

अर्थ—जातैं अष्ट प्रकार कर्म्म है ताहि, 'विनयति' कहिये नाशकूं प्राप्त करै जातै चतुर्गति रूप संसारतैं मोक्ष होय तिस हेतुतैं विलय भया है संसार जिनिका अैसें पंडित पुरुष जे हैं ते ताहि विनय–अैसे कहै हैं ॥ ७७ ॥

---

१. क °ते पश्चार्द्धेन । २. क °पायं । क्रियते समो वा क्रियते । ३. क °कर्मणः विनयकर्मणो° । ४. क विणयदि ।

यस्माच्च—

पुव्वं चेव य विणओ परूविदो जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
सव्वासु कम्मभूमिसु णिच्चं मोक्खमग्गम्मि ।।७८।।

यतश्च पूर्वस्मिन्नेव काले विनयः प्ररूपितो जिनवरैः सर्वैः सर्वासु कर्मभूमिषु सप्तत्यधिकक्षेत्रेषु नित्यं सर्वकालं मोक्षमार्गे मोक्षमार्गहेतोस्तस्मन्नार्वाक्कालिको रथ्यापुरुषप्रणीतो वा शंकाऽत्र न कर्त्तव्या निश्चयेनात्र प्रवर्तितव्यमिति ।।७८।।

कतिप्रकारोऽसौ विनय इत्याशंकायामाह—

लोगाणुवित्तिविणओ अत्थणिमित्ते य कामतंते य ।
भयविणओ य चउत्थो पंचमओ मोक्खविणओ य ।।७९।।

लोकस्यानुवृत्तिरनुवर्तनं लोकानुवृत्तिर्नाम प्रथमो विनयः, अर्थस्य निमित्तमर्थनिमित्तं कार्यहेतुर्विनयो द्वितीयः, कामतंत्रे कामतंत्रहेतुः कामानुष्ठाननिमित्तं तृतीयो विनयः, भयविनयश्चतुर्थः[१] भयकारणेन यः क्रियते विनयः स चतुर्थः, पंचमो मोक्षविनयः; एवं कारणेन पंचप्रकारो विनय इति ।।७९।।

तत्रादौ तावल्लोकानुवृत्तिविनयस्वरूपमाह—

अब्भुट्ठाणं अंजलि आसणदाणं[२] च अतिहिपूजा य ।
लोगाणुवत्तिविणओ देवदपूया सविहवेण[३] ।।८०।।

अभ्युत्थानं कश्मिंश्चिदागते आसनादुत्थानं प्रांजलिरंजलिकरणं स्वावासमागतस्यासनदानं तथाऽतिथिपूजा च मध्याह्नकाले आगतस्य साधोरन्यस्य

अर्थ— याही तैं बहुरि कहै हैं—

जातैं समस्त एक सौ सत्तरि (१७०) कर्म्मभूमि विषैं सर्वकाल मोक्षमार्ग-मार्ग के निमित्त सर्व जिनवर देव हैं । तिनि प्रथम ही काल के विषैं विनय है । सो प्ररूपण किया है । तिसतैं इस काल का उपज्या सामान्य पुरुषकरि प्ररूप्या विनय नांही है । यामै शंका नांही करणी । या विनय विषै निश्चयकरि प्रवर्तना ।।७८।।

यह विनय कै (कितने) प्रकार हैं - ऐसी आशंका होतैं आचार्य कहै हैं—

अर्थ— लोकनि कै अनुकूल प्रवृत्ति सो लोकानुवृत्ति नाम प्रथम विनय है । अर्थनिमित्त कहिये कारज के निमित्त विनय सो अर्थ-निमित्त नाम दूसरा विनय है । कामतंत्र कहिये कामानुष्ठान निमित्त विनय सो कामतंत्र नामा तीसरा विनय है । भय के कारण करि जो विनय कीजे सो भय नाम चौथा विनय है । पांचवां मोक्ष नामा विनय है । ऐसे कारणनि के द्वारकरि विनय है। सो पंच प्रकार कह्या ।।७९।।

तहां आगै आदि विषैं प्रथम लोकानुवृत्ति विनय का स्वरूप कहैं हैं—

अर्थ— काहू पुरुष आये संतै आसन तैं उठणां, अंजलि कहिये हाथ जोरनां, वहुरि अपनैं स्थान आये कूं आसन देंना, तैसैं ही

१. क थः पंचमो । २. अ. ब. यासणदाणं । ३. अ. ब. सविभवेण ।

वा धार्मिकस्य बहुमानं देवतापूजा च स्वविभवेन स्ववित्तानुसारेण देवपूजा च तदेतत्सर्वं लोकानुवृत्तिर्नाम विनयः ।।८०।।

तथा—

भासाणुवत्ति छंदाणुवत्तणं देसकालदाणं च ।
लोकाणुवत्तिविणओ अंजलिकरणं च अत्थकदे ।।८१।।

भाषाया वचनस्यनुवृत्तेरनुवर्त्तनं यथासौ वदति तथा सोऽपि भणति भाषानुवृत्तिः, छंदानुवर्त्तनं तदभिप्रायानुकूलाचरणं, देशयोग्यं कालयोग्यं च यद्दानं स्वद्रव्योत्सर्गस्तदेतत्सर्वं लोकानुवृत्तिविनयो लोकात्मीकरणार्थो यथाऽयं विनयोंजलिकरणादिकः प्रयुज्यते तथांऽजलिकरणादिको योऽर्थनि[३]मित्तं क्रियते सोऽर्थहेतुः ।।८१।।

तथा—

एमेव कामतंते भयविणओ चेव आणुपुव्वीए ।
पंचमओ खलु विणओ परूवणा तस्सिमा होदि ।।८२।।

यथा लोकानुवृत्तिविनयो व्याख्यातस्तथैवं कामतन्त्रो भयार्थश्च भवति आनुपूर्व्या विशेषाभावात्, यः पुनः पंचमो विनयस्तस्येयं प्ररूपणा भवतीति ।।८२।।

अतिथि पूजा बहुरि मध्यान्ह समय विषैं आया साधु का वा अन्य धर्म्मात्मा का बहुमान, वहुरि अपनैं वित्त (धन) के अनुसार करि देव ता की पूजा सो यह समस्त लोकानुवृत्ति नाम विनय है ।।८०।।

तैसे ही अन्य गाथा कहै है—

अर्थ— भाषा जो वचन ताकै अनुकूल बोलणां । जैसे यह बोलैं तैसैं सोहू बोलै - यह भाषानुवृत्ति है । छंदानुवर्तनं कहिये तिसका अभिप्राय कैं अनुकूल आचरण, बहुरि देशकालदानं कहिये देशजोग्य, कालजोग्य अपनै द्रव्य का देना - यह समस्त लोकानुवृत्ति नामकी विनय है । जैसे लोकनिकूं अपनै करवे अर्थि अंजली करणादिक लोकानुवृत्ति विनय कहिये है । तैसैं अर्थनिमित्तिक प्रयोजन के निमित्त अंजली-करणादिक करिये-सो अर्थनिमित्त विनय है ।।८१।।

तैंसे ही विनय का भेद कहै है—

अर्थ— जैसें लोकानुवृत्ति विनय कह्या तैंसै ही काम के निमित्त कामतंत्र-विनय है, भय-निमित्त भयविनय है । अंजलीकरणादिक क्रिया जैसें लोकानुवृत्ति विषै हैं तैंसैं ही इन विषैं अनुक्रमकरि समान भावतैं जाननां ।।८२।।

---

३. क °र्थगतोनि° ।

दंसणणाणचरित्ते तवविणओ ओवचारिओ चेव ।
मोक्खह्मि एस विणओ पंचविहो होदि णायव्वो ।।८३।।

दर्शनज्ञानचारित्रतप औपचारिकभेदेन मोक्षविनय एषः पंचप्रकारो भवति ।।८३।।

स पंचाचारे यद्यपि विस्तरेणोक्तस्तथाऽपि विस्मरणशीलशिष्यानुग्रहार्थं संक्षेपतः पुनरुच्यत इति—

जे दव्वपज्जया खलु उवदिट्ठा जिणवरेहिं सुदणाणे ।
ते तह सद्दहदि णरो दंसणविणओत्ति णादव्वो ।।८४।।

ये द्रव्यपर्यायाः खलूपदिष्टा जिनवरैः श्रुतज्ञाने तांस्तथैव श्रद्दधाति यो नरः स दर्शनविनय इति ज्ञातव्यो भेदोपचारादिति ।।८४।।

अथ ज्ञाने किमर्थं विनयः क्रियते इत्याशंकायामाह—

णाणी गच्छदि णाणी वंचदि णाणी णवं च णादियदि ।
णाणेण कुणदि चरणं तह्मा णाणे हवे विणओ ।।८५।।

यस्माज्ज्ञानी गच्छति मोक्षं जानाति वा गतेर्ज्ञानगमनप्राप्त्यर्थकत्वात्, यस्माच्च ज्ञानी वंचति परिहरति पापं यस्माच्च ज्ञानी नवं कर्म नाददाति न कर्मभिरिति यस्माच्च ज्ञानेन करोति चरणं चारित्रं तस्माच्च ज्ञाने भवति विनयः कर्त्तव्य इति ।।८५।।

अथ चारित्रे विनयः किमर्थं क्रियत इत्याशंकायामाह—

पोराणय कम्मरयं चरिया रित्तं करेदि जदमाणो ।
णवकम्मं ण य बंधदि चरित्तविणओत्ति णादव्वो ।।८६।।

बहुरि जो पांचवां मोक्ष नामां विनय है सो ताका निरुपण । आगै कहै है, सो जाननां—

अर्थ— १-दर्शन, २-ज्ञान, ३-चारित्र, ४-तप, ५-उपचार — भेदकरि, मोक्षे कहिये मोक्ष-निमित्त यह विनय है सो पंचप्रकार जानना। सो यह मोक्ष विनय है ।।८३।।

सो यद्यपि पंचाचार अधिकार विषैं विशेष करि कह्या है । तोहू भूलने का है स्वभाव जिनिका, अैसे शिष्यनिके अनुग्रह अर्थि, संक्षेपतैं बहुरि कहिये है—

अर्थ— श्रुतज्ञान विषैं जिनवर देव जे द्रव्य-पर्याजाय जैसें कहैं तिनि द्रव्य-परजायनिकूंजो मनुष्य, तैंसे ही श्रद्धान करै सो दर्शन-विनय-अैसे जाननां । इहां पुरुष ही कूं दर्शन विनय कह्या, सो अभेद व्यवहारतैं कह्या है ।।८४।।

अथानंतर ज्ञान विषैं विनय है सो कौंन अर्थी है ? अैसी आशंका हौतैं कहै हैं—

अर्थ— जातै ज्ञानी है सो मोक्ष है ताहि जानैं है । बहुरि जातैं ज्ञानी है सो, पाप हैं ताहि तजै हैं । बहुरि जातै ज्ञानी हैं सो, नवीनकर्म्म हैं, ताहि नांही ग्रहण करै है । बहुरि जातै ज्ञानी है सो, चारित्र है । ताहि अंगीकार करै है । तातैं ज्ञान विषैं विनय है सो कर्तव्य है ।।८५।।

अथानंतर चारित्र विषैं विनय है सो कौन अर्थि है ? अेसी आशंका होतैं आचार्य कहै है—

अर्थ— जातैं यत्नाचार सहित प्रवर्ते तो ज्ञानी है । सो चारित्र करिके प्राचीन कर्म्म रूप रज है, ताहि क्षीण करै है । बहुरि नवीन

चिरंतनकर्मरजश्चर्यया चारित्रेण रिक्तं तुच्छं करोति यतमानश्चेष्टमानो नवं कर्म च न बध्नाति यस्मात्, तस्माच्चारित्रे विनयो भवति कर्त्तव्य इति ज्ञातव्यः ।।८६।।

तथा तपोविनयप्रयोजनमाह—

अवणयदि तवेण तमं उवणयदि मोक्खमग्गमप्पाणं ।
तवविणयणियमिदमदी सो तवविणओ त्ति णादव्वो ।।८७।।[१]

इत्येवमादिगाथानां 'आयारजीदा' दिगाथापर्यन्तानां तप आचारेर्थः प्रतिपादित इति कृत्वा नेह प्रतन्यते पुनरुक्तदोषभयादिति ।।८७।।

यतो विनयः शासनमूलं यतश्च विनयः शिक्षाफलम्—

तह्मा सव्वपयत्तेण विणयत्तं मा कदाइ[२] छंडिज्जो ।
अप्पसुदो विय पुरिसो खवेदि कम्माणि विणएण ।।८८।।

यस्मात्सर्वप्रयत्नेन विनयत्व नो कदाचित्परिहरेत् भवान् यस्मादल्पश्रुतोऽपि पुरुषः क्षपयति कर्माणि विनयेन तस्माद्विनयो न त्याज्य इति ।।८८।।

कर्म्म हैं, ताहि नांही बांधै हैं तातै चारित्र कै विषैं विनय है सौ करवे जोग्य है ।।८६।।

तैंसे ही तपोविनय का प्रयोजन है, ताहि कहै है—

अर्थ— तप विनय विषैं दृढ़ है बुद्धि जाका-अैसा पुरुष तपकरि पापरूप अंधकार है ताहि दूर करै है । आत्मा है ताहि मोक्षमार्ग मैं प्राप्त करैं है सो पुरुष तपविनय है— अैसे जाननां ।।८७।।

इस गाथा कूं आदि दे आयारजीद-इत्यादि गाथा[३] [पंचाचार अधिकार] परजंत गाथानि कौ अरथ, तप-आचार विषै व्याख्यान कीयो। याकरि इस अधिकार विषैं पुनरुक्त दोष के भयतैं विस्तार नांही कीया है ।

जातै विनय है सो जिनधर्म (शासन) का मूल है, बहुरि विनय है सो शिक्षा का फल है, तातैं विनय कूं नांही छोड़ना-अैसे अर्थ कूं लीयैं गाथा कहै है—

अर्थ— तातैं भो संजमी ! सर्वप्रकार उत्कृष्ट जतनकरि विनयभाव है, ताहि कदाचित् मति छांडौ । जिस विनयकरिकैं अल्प है श्रुत-ज्ञान जाकै-अैसा हू पुरुष कर्म्मनिकूं क्षि(खि)पावै हैं । तातैं विनय है सो त्यजवे योग्य नांही ।।८८।।

---

१. मूलाचार के ही 'पंचाचार' नामक पंचम अधिकार में दंसणणाणेविणओ इत्यादि- गाथा सं. १६७ से लेकर "आयारजीदकुप्पगुणदीवणा" .... इत्यादि गाथा सं. १९१ तक की गाथाओं में "विनय" का विस्तृत विवेचन किया गया है । इनमें भी उत्तरगुणउज्जोगो.... इत्यादि गाथा सं. १७३ से लेकर आयारजीदकप्पगुणदीवणा अत्तसोधिणिज्जंजा । अज्जवमाद्दवलाहवमत्तीपल्हादकरणं च - इस गाथा सं. १८९ तक की गाथाओं में तपोविनय का ही अच्छा विवेचन किया गया है ।

२. ब. कदाय । ३. गाथा सं० १८९ ।

कृतिकर्मण: प्रयोजनं तं दत्वा प्रस्तुताया: प्रश्नमालायास्तावदसौ केन कर्तव्यं तत्कृतिकर्म यत्पृष्टं तस्योत्तरमाह—

पंचमहव्वयगुत्तो संविग्गोऽणालसो अमाणी य ।
किदियम्म णिज्जरट्ठी कुणइ सदा ऊणरादिणिओ ।।८९।।

पंचमहाव्रतैर्गुप्त: पंचमहाव्रतानुष्ठानपर: संविग्नो धर्मफलयोर्विषये हर्षोत्कंठितदेहोऽनालस: उद्योगवान् अमाणीय अमानी च परित्यक्तमानकषायो निर्जरार्थी ऊनरात्रिको दीक्षया लघुर्य: एवं स कृतिकर्म करोति सदा सर्वकालं, पंचमहाव्रतयुक्तेन परलोकार्थिना विनयकर्म कर्त्तव्यं भवतीति सम्बन्ध: ।।८९।।

कस्य तत्कृतिकर्म कर्त्तव्यं यत्पृष्टं तस्योत्तरमाह—

आइरियउवज्झायाणं पवत्तयत्थेरगणधरादीणं ।
एदेसिं किदियम्मं कादव्वं णिज्जरट्ठाए ।।९०।।

तेषामाचार्योपाध्यायप्रवर्त्तकस्थविरगणधरादीनां कृतिकर्म कर्तव्यं निर्जरार्थं न मन्त्रतन्त्रोपकरणायेति ।।९०।।

एते पुन: क्रियाकर्मायोग्या इति प्रतिपादयन्नाह—

णो वंदिज्ज अविरदं मादा पिदु गुरु णरिंद अण्णतित्थं व ।
देसविरद देवं वा विरदो पासत्थपणगं वा ।।९१।।

कृतिकर्म का प्रयोजन वताय कही जो प्रश्नमाला, ताके आदि विषैं कौंन पुरुष तिस कृतिकर्म्म कूं करै ? अैसें जो पूछा ताका उत्तर आचार्य कहै है—

अर्थ— पंचमहाव्रत के आचरण विषैं तत्पर धर्म-अधर्म के फल विषै हर्षकरि उत्साह जुत है देह जाका, अनालस कहिये उद्यमवान, वहुरि त्यजा है मानकषाय जानैं, निर्ज्जरा का अर्थी, ऊनरात्रिक कहतां दीक्षाकरि लघु जो अैसा होय, सो कृतिकर्म्म है, ताहि करै ।।८९।।

सो कृतिकर्म कौंन का करणां जोग्य है ? अैसें जो पूछता, ताका उत्तर कहै है—

अर्थ— यह जे आचार्य, उपाध्याय हैं तिनकौ प्रवर्त्तक, स्थविर, गणधरादिक हैं, तिनकौ कृतिकर्म्म है, सो निर्ज्जरा के अर्थि कृतिकर्म हैं सो करवे जोग्य नांही ।।९०।।

बहुरि यह पुरुष क्रियाकर्म्म कै जोग्य न अैसे उपदेश देत आचार्य कहै है—

अर्थ— संजमी इनकूं वंदना नांही करै, वे कौन ? १- संजम रहित पुरुष माता, २- पिता, ३- संजम करि रहित आचरणादि विषै शिथिल-अैसा दीक्षा गुरु, बहुरि ४- स्थितगुरु, ५- अैसा हू राजा, बहुरि ६- अन्य तीर्थिक कहिये पाखंडि, बहुरि ७- शास्त्रादिक विषैं प्रवीण-अैसा हू अणुव्रती श्रावक, ८- बहुरि देव कहिये नागकुमार, यक्ष, चन्द्रमा, सूर्य कूं आदि दे, पार्श्वस्थ-पंचकं कहिये ज्ञान, दर्शन, चारित्र विषै शिथिल निर्ग्रन्थ-अैसे हू पंचपुरुषनि कूं स्नेहादिक करि नांही वंदना करै ।।९१।।

इहां विशेष अैसे जानना— असंजमी माता है ताहि, असंजमी पिता है ताहि, बहुरि अन्य हू असंजमी हैं ताहि, नांही स्तवै, भयकरि

णो वंदिज्ज न वंदेत् न स्तुयात् कं **अविरदमविरतमसंयतं** मातरं जननीं पितरं जनकं गुरुं दीक्षागुरुं श्रुतगुरुमप्यसंयतं चरणादिशिथिलं नरेन्द्रं राजानं अन्यतीर्थिकं पाखंडिनं वा देशविरतं श्रावकं शास्त्रादि प्रौढमपि देवं वा नागयक्षचन्द्रसूर्येन्द्रादिकं वा विरत: संयत: सन् पार्श्वस्थपणकं वा ज्ञानदर्शनचारित्रशिथिलान् पंचजनान्निर्ग्रन्थानपि संयत: स्नेहादिना पार्श्वस्थपणकं न वंदेत मातरमसंयतां पितरमसंयतं अन्यं च मोहादिना न स्तुयात् भयेन लोभादिना वा नरेन्द्रं न स्तुयात् ग्रहादिपीडाभयाद्देवं सूर्यादिकं न पूजयेत् शास्त्रादिलोभेनान्यतीर्थिकं न स्तुयादाहारादिनिमित्तं श्रावकं न स्तुयात्। आत्मगुरुमपि विनष्टं न वंदेत तथा वाशब्दसूचितानन्यानपि स्वोपकारिणोऽसंयतान्न स्तुयादिति ।।९१।।

इति के ते पंच पार्श्वस्था इत्याशंकायामाह—

पासत्थो य कुसीलो संसत्तोसण्ण मिगचरित्तो य ।
दंसणणाणचरित्ते अणिउत्ता मंदसंवेगा ।।९२।।

संयतगुणेभ्य: पार्श्वे अभ्यासे तिष्ठतीति पार्श्वस्थ: वसतिकादिप्रतिबद्धो मोहबहुलो रात्रिंदिवमुपकरणानां कारकोऽसंयतजनसेवी संयतजनेभ्यो दूरीभूत:, कुत्सितं शीलं आचरणं स्वभावो वा यस्यासौ कुशील: क्रोधादिकलुषितात्मा **व्रतगुणशीलैश्च** परिहीन: संघास्यापयश:करणकुशल:, सम्यगसंयतगुणेष्वाशक्त:, संशक्त: आहारादिगृद्ध्या वैद्यमन्त्रज्योतिषादिकुशलत्वेन प्रतिबद्धो राजादिसेवातत्पर:, ओसण्णोऽपमतसंज्ञोऽपगता विनष्टा संज्ञा सम्यग्ज्ञानादिकं यस्यासौ अपगतसंज्ञश्चारित्राद्यपहीनो जिनवचनमजानञ्चारित्रादिप्रभ्रष्ट: करणालस: सांसारिकसुखमानस:, मृगस्येव पशोरिव चरित्रमाचरणं यस्यासौ मृगचरित्र: परित्यक्ताचार्योपदेश: स्वच्छन्दगतिरेकाकी जिनसूत्रदूषणस्तप:सूत्राद्यविनीतो धृतिरहितश्चेत्येते पंच पार्श्वस्था दर्शनज्ञानचारित्रेषु

वा, लोभादिक करि नरेंद्र(राजा)कूं नांही स्तवै । ग्रहादिक की पीड़ा के भयतैं सूर्यादिक है देव हैं ताहि नांही पूजै । शास्त्रादिक के लोभकरि अन्यमती हैं, ताहि नांही स्तवै । आहारादिक कै निमित्त श्रावक है, ताहि नांही स्तवै । धर्म विषैं भ्रष्ट अैसा अपनां गुरु हुं कूं नांही स्तवै । जैसैं इनकूं नांही स्तवै तैंसे गाथा मैं 'वा' शब्द कह्या ताकरि अैसा जणाया है । और हू अपनें उपगारी असंजमी हैं, तिनही नांही स्तवै ।।९१।।

ते पंचपार्श्वस्थ कौन हैं ? अैसी आशंका हौंते आचार्य कहै हैं—

अर्थ— संजमी के निकट तिष्ठै सो पार्श्वस्थ है— अैसा शब्दार्थ है । कैसा है ? वसतिकादिक विषैं आसक्त मोह है प्रचुर जाकैं, रात्रि-दिन उपकरणनिकों संचय करता, असंजमी-जन की सेवा करनें वाला, संजमी जनतैं दूर रहनै वाला सो पार्श्वस्थ है । कुत्सित कहिये निंद्य है आचरण वा स्वभाव जाका सो कुशील कहिये । कैसा है? यह क्रोधादिक कषायनि तैं मलिन है आत्मा जाका, बहुरि व्रत, गुण अर शील-इनकरि रहित, संघ के अपजस करने विषैं निपुण— अैसा कुशील जांनना । अतिशय करि असंजमी के गुणनि-विषैं आसक्ति सो संसक्त है । कैसा है? यह आहारादिक लोलुपता करि वैद्य, मंत्र, ज्योतिष आदिक विषैं कुशलपनैं करि राजादिक की सेवा विषैं तत्पर अैसा संसक्त जाणनां । अपगत कहिये-विनष्ट भई है, संज्ञा-कहिये सम्यक्ज्ञान जाकै सो अपसंज्ञ है । कैसा है यह ? चारित्रादिक करि रहित जिनवाणी है ताहि नांही जांणता । चारित्रादिकतैं भ्रष्ट किया विषैं, आलसी, संसारिक सुख विषैं है मन जाका, मृग कहिये-पशु की नांई है आचरण जाकै, सो मृगचरित्र है । कैसा है यह? छोड्या है आचार्य का उपदेश जिहि, स्वछंद है प्रवृत्ति जाकी एकला रहनें वाला, जिनसूत्र के दूषण देवें विषैं प्रवीण, तप अर शास्त्रज्ञानतैं रहित, शिथिल-परिणामी— अैसा मृगचरित्र जांणणा ।

अनियुक्ताश्चारित्राद्यनुष्ठानपरा मंदसंवेगास्तीर्थधर्माद्यकृतहर्षाः सर्वदा न वंदनीया इति ।।९२।।*

पुनरपि स्पष्टमवन्दनायाः कारणमाह—

दंसणणाणचरित्ते तवविणए णिच्चकाल पासत्था ।
एदे अवंदणिज्जा छिद्दप्पेही गुणधराणं ।।९३।।

दर्शनज्ञानचारित्रतपोविनयेभ्यो नित्यकालं पार्श्वस्था दूरीभूता यतोऽत एते न वंदनीयाश्छिद्रप्रेक्षिणः सर्वकालं गुणधाराणां च छिद्रान्वेषिणः संयतजनस्य दोषोद्भाविनो यतोऽतो न वंदनीया एतेऽन्ये चेति ।।९३।।

यह पंच पार्श्वस्थ दर्शन, ज्ञान, चारित्र विषै जुक्त नांही । कैसे हैं पंच पार्श्वस्थ ? मंदसंवेगा कहिये तीरथ, धर्मादिक विषैं हर्ष-रहित, यह सदाकाल वंदवे जोग्य नांही ।।९२।।

बहुरि वंदना का स्पष्ट कारण हैं, ताहि कहै हैं—

अर्थ— दर्शन, ज्ञान, चारित्र तपविनय— इनतैं सदाकाल पार्श्वस्थ कहिये दूरि तिष्ठै हैं । जातैं यह पंच पार्श्वस्थ वंदवे योग्य नांही । बहुरि संजमीजन के सदाकाल छिद्रनिके देखनहारे ये हैं । यातैं ते बहुरि अैसे अन्य हू वंदवे योग्य नांही ।।९३।।

★ये गाथायें फलटन से प्रकाशित कृति में अधिक हैं—

पांचों पार्श्वस्थ आदि का लक्षण गाथा द्वारा कहा गया है—

वसहीसु य पडविद्धो अहवा उवयरणकारओ भणिओ ।
पासत्थो समणणाणं पासत्थो णाम सो होई ।।

अर्थ— जो वसतिओं में आसक्त हैं, जो उपकरणों को बनाता रहता है, जो मुनियों के मार्ग का दूर से आश्रय करता है उसको पार्श्वस्थ कहते हैं ।

कोहादिकलुसिदप्पा वयगुणसीलेहि चावि परिहाणो ।
संघस्स अयसकारी कुसीलसमणो त्ति णायव्वो ।।

अर्थ— जिसने क्रोधादिकों से अपने को कलुषति कर रखा है, व्रतगुम और शीलों से हीन है, संघ का अपयश करने वाला है वह कुशील श्रमण है ऐसा जानना ।

वेज्जेण व मंतेण व जोइसकुसलत्तणेण पडिबद्धो ।
राजादी सेवंतो संसत्तो णाम सो होई ।।

अर्थ— वैद्यशास्त्र, मंत्रशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र में कुशल होने से उनमें आसक्ति रखते हैं अर्थात् हमेशा इन्हीं के प्रयोग में लगे रहते है, एवं राजा आदिकों की सेवा करते हैं उनको संसक्त मुनि कहते हैं ।

जणिवयण मयाणंतो मुक्कधुरो णाणचरणपरभट्ठो ।
करणालसो भवित्ता सेवदि ओसण्णसेवाओ ।।

के तर्हि वंद्यंत्तेऽत आह—

समणं वंदिज्ज मेधावी सजदं सुसमाहिदं ।
पंचमहव्वदकलिदं असंजमदुगंछयं[१] धीरं ।।९४।।

हे मेधाविन् ! चारित्राद्यनुष्ठानतत्पर ! श्रमणं निर्ग्रन्थरूपं वंदेत पूजयेत् किंविशिष्टं संयतं चारित्राद्यनुष्ठानतन्निष्ठं । पुनरपि किंविशिष्टं ? सुसमहितं ध्यनाध्ययनतत्परं क्षमादिसहितं पंचमहाव्रतकलितं असंयमजुगुप्सकं प्रणेन्द्रियसंयमपरं धीरं धैर्योपेतं चागमप्रभावनाशीलं सर्वगुणोपेतमेवं विशिष्टं स्तूयादिति ।।९४।।

तथा—

दंसणणाणचरित्ते तवविणए णिच्चकालमुवजुत्ता ।
एदे खु[२]वंदणिज्जा जे गुणवादी गुणधराणं ।।९५।।

दर्शनज्ञानचारित्रतपोविनयेषु नित्यकालमभीक्ष्णमुपयुक्ता: सुष्ठु निरता ये ते एते वंदनीया गुणधराणां शीलधराणां च गुणवादिनो ये च ते वंदनीया इति ।।९५।।

तव कौन वंदवे जोग्य है? सो कहै है—

अर्थ— हे मेधाविन कहिये चारित्रादिक के आचरण विषैं तत्पर, श्रमण कहिये निर्ग्रंथ मुनीश्वर है, ताहि वंदना करिकै, पूजाकरि, कैसा है मुनिश्वर? चारित्रादिक के आचरण विषैं दृढ़, ध्यान, अर अध्ययन विषैं तत्पर, उत्तम क्षमादि धर्मकरि सहित पंचमहाव्रतन करि संजुगत बहुरि ''असंजमजुगुप्सकं'' कहिये असंजमी की है ग्लानि जाकै, प्राण अर इंद्रियसंजम विषैं तत्पर, धीरज करि सहित, जिनआगम की प्रभावना करबे का है स्वभाव जाका, समस्त गुणनि करि संजुगत अैसे संजुगत अैसे मुनीश्वर कूं स्तवै है ।।९४।।

तैंसे और हु विशेष कहै हैं—

अर्थ— जो दर्शन, ज्ञान, चरित्र,.तप-विनय-इन विषैं सदाकाल उपयुक्ता कहिये भलै प्रकार लीन होय ते वंदवे जोग्य हैं । बहुरि शीलगुण के धारीनि के जे गुणनि के कहवे वारे होय ते वंदवे जोग्य हैं ।।९५।।

अर्थ— जो जिन-वचनों को नहीं जानते हुए चारित्ररूपी धुरा को छोड़ चुके हैं, ज्ञान और आचरण से भ्रष्ट हैं, तेरहविध क्रियाओं में आलसी हैं, उनको अपसंज्ञक मुनि कहते हैं ।

आयरयिकुलं मुच्चा विहरइ एगागिणो य जो समणो ।
जिणवयणं णिंदंतो सच्छंदो होइ मिगचारी ।।

अर्थ— आचार्य के संघ को छोड़कर जो एकाकी विहार करते हैं, जिनवचनों की निन्दा करते हैं, स्वच्छन्द प्रवृत्ति रखते हैं, वे मृगचारी मुनि कहलाते हैं ।

---

१. अ. ब. जुगंछयं । २. क व्याख्यानदिना व्याकु॰ ।

संयतमप्येवं स्थितमेतेषु स्थानेषु च न वंदेतेत्याह—

वाक्खित्तपराहुत्तं तु पमत्तं मा कदाइ वंदिज्जो ।
आहारं च करंतो णीहारं वा जदि करेदि ।।९६।।

व्याक्षिप्तं [1]ध्यानादिनाकुलचित्तं परावृत्तं पराङ्मुखं पृष्ठदेशतः स्थितं प्रमत्तं निद्राविकथादिरतं मा कदाचिद् वंदिज्ज नो वंदेत संयतमिति संबंधस्तथाऽहारं च कुर्वन्तं भोजनक्रियां कुर्वाणं नीहारं वा मूत्रपुरीषादिकं यदि करोति तदाऽपि नो कुर्वीत वंदनां साधुरिति ।।९६।।

केन विधानेन स्थितो वंद्यते इत्याशंकायामाह—

आसणे आसणत्थं च उवसंतं उवट्ठिदं ।
अणु[2] विण्णय मेधावी किदियम्मं पउंजदे ।।९७।।

आसने विविक्तभूप्रदेशे आसनस्थं पर्यंकादिना व्यवस्थितं अथवा आसने आसनस्थमव्याक्षिप्तमपराङ्मुखमुपशांतं स्वस्थचित्तं उपस्थितं वंदनां कुर्वीत इति स्थितं अनुविज्ञाप्य वंदनां करोमीति संबोध्य मेधावी प्राज्ञोऽनेन विधानेन कृतिकर्म प्रारभेत प्रयुंजीत विदधीतेत्यर्थः ।।९७।।

कथमिव गतं सूत्रं वंदनायाः स्थानमित्याह—

आलोयणाय करणे पडिपुच्छा पूयणे[3] य सज्झाए ।
अवराहे य गुरूणं वंदणमेदेसु ठाणेसु ।।९८।।

अैसे तिष्ठता संजमी है, ताहि हू इन स्थाननि विषैं नांही वंदना करै, अैंसे कहै है—

अर्थ— 'व्याक्षिप्तं' कहिये व्याख्यानादिक करि व्याकुल है चित्त जाका । 'परावृतं' कहिये परान्मुख, सन्मुख नांही विराजे । 'प्रमत्तं' कहिये निद्रा-विकथादिक विषै लीन - अैसा संजमी है ताहि, कदाचित् हू साधु बंदना न करैं, तैसें ही आहार कहिये भोजनादिक क्रिया, ताहि करते कूं, बहुरि 'नीहार' कहिये मलमूत्रादिक करै-तिसकाल साधु वंदना नांही करैं ।।९६।।

कौन विधि करि तिष्ठता मुनीश्वर वंदवे जोग्य है? अैसी आशंका है, तै आचार्य कहै है—

अर्थ— आसन कहिये-विविक्त भूमि के प्रदेश विषैं, आसनस्थं कहिये पद्मासन आदि विषैं तिष्ठते अथवा आसन विषैं आसन सूं तिष्ठते, व्याकुलता रहित, सन्मुख विराजे । उपशांत कहिये स्वस्थचित्त, उपस्थितं कहिये निकट तिष्ठते— अैसे मुनीश्वर हैं ताहि वंदना करुं हुं— अैसे संबोधनकरि बुद्धिमान या विधानकरि कृतिकर्म्म कूं करै ।।९७।।

कथमिव अैसा सूत्र का (अर्थात् वन्दना किनकी करना? और कैसे करना? इन दो प्रश्नों का) व्याख्यान समाप्त भया । आगै वंदना का स्थान है, ताहि कहै है—

अर्थ— आलोचना के काल विषै अथवा षडावश्यक काल विषैं, प्रश्न के काल विषैं, पूजा के काल विषैं, स्वाध्याय के काल विषैं, बहुरि 'अपराधे' कहिये क्रोधादिक अपराध काल विषैं, गुरुणा कहिये आचार्य, उपाध्यायादिकनि की इन स्थान विषैं वंदना है, वैसो करवे जोग्य हैं ।।९८।।

---

१. अ. ब. हु । २. अ. ब. क. अणुण्णचित्त मे । ३. अ. ब. पूजणे ।

आलोचनाया: करणे आलोचनाकालेऽथवा करणे षडावश्यककाले परिप्रश्ने प्रश्नकाले पूजने पूजाकाले च स्वाध्याये स्वाध्यायकालेऽपराधे क्रोधाद्यपराधकाले च गुरूणामाचार्योपाध्यायादीनां वंदनैतेषु स्थानेषु कर्तव्येति ।।९८।।

"कस्मिन्स्थाने" यदेतत्सूत्रं स्थापितं तद्व्याख्यातमिदानीं कतिवारं कृतिकर्म कर्तव्यमिति यत्सूत्र स्थापितं तद्व्याख्यानायाह—

चत्तारि पडिक्कमणे किदियम्मा तिण्णि होंति सज्झाए ।
पुव्वण्हे अवरण्हे किदियम्मा चोद्दसा होंति ।।९९।।

सामायिकस्तवपूर्वककायोत्सर्गश्चतुर्विंशतितीर्थंकरस्तवपर्यन्त: [१]कृतिकर्मेत्युच्यते । प्रतिक्रमणकाले चत्वारि क्रियाकर्माणि स्वाध्यायकाले च त्रीणि क्रियाकर्माणि भवंत्येवं पूर्वाह्णे क्रियाकर्माणि सप्त तथाऽपराह्णे च क्रियाकर्माणि सप्तैवं पूर्वाह्णेऽपराह्णे च क्रियाकर्माणि चतुर्दश भवंतीति। कथं प्रतिक्रमणे चत्वारि क्रियाकर्माणि, आलोचनाभक्तिकरणे कायोत्सर्ग एकं क्रियाकर्म तथा प्रतिक्रमणभक्तिकरणे कायोत्सर्ग: द्वितीयं क्रियाकर्म तथा[२] वीरभक्तिकरणे 'कायोत्सर्गस्तृतीयं क्रियाकर्म तथा चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकरणे शांतिहेतो: कायोत्सर्गश्चतुर्थं क्रियाकर्म । कथं च स्वाध्याये त्रीणि क्रियाकर्माणि, श्रुतभक्तिकरणे कायोत्सर्ग एकं क्रियाकर्म तथाऽऽचार्यभक्तिक्रियाकरणे द्वितीयं क्रियाकर्म तथा स्वाध्यायोपसंहारे श्रुतभक्तिकरणे कायोत्सर्गस्तृतीयं क्रियाकर्मैवं जातिमपेक्ष्य त्रीणि क्रियाकर्माणि भवंति स्वाध्याये शेषाणां वंदनादिक्रियाकर्मणामत्रैवान्तर्भावो द्रष्टव्य:। प्रधानपदोच्चारणं कृतं यत: पूर्वाह्णे दिवस इति एवमपराह्णे रात्रावपि द्रष्टव्यं भेदाभावात् अथवा पश्चिमरात्रौ प्रतिक्रमणे क्रियाकर्माणि चत्वारि स्वाध्याये त्रीणि वंदनायां द्वे, सवितर्युदिते स्वाध्याये त्रीणि मध्याह्नवंदनायां द्वे एवं

कस्मिन् स्थाने कहिए कौन स्थान विषैं वंदना करणीं? अैसें प्रश्न किया था । ताका उत्तर सूत्र का व्याख्यान समाप्त भया। अब कृतिकर्म है सो केते बार करवे जोग्य है? अैसे प्रश्न भया, ताके व्याख्यान के अर्थि आगैं सूत्र कहै हैं—

अर्थ— सामायिक स्तव हैं आदि विषैं जाकै अर चतुर्विंशाति-तीर्थंकर-स्तव है अंत विषैं जाकै-अैसा जो कायोत्सर्ग सो कृतिकर्म कहिये अथवा क्रियाकर्म्म या प्रकार कहिये— प्रतिक्रमण-काल विषैं च्यार क्रियाकर्म (कृतिकर्म) हैं, बहुरि स्वाध्याय-काल विषैं तीन क्रियाकर्म्म हैं, अैसे ही पूर्वाह्न विषैं क्रियाकर्म सात हैं । बहुरि तैसे ही अपराह्न विषैं क्रियाकर्म सात हैं । या प्रकार पूर्वाह्न-अपराह्न दोउकाल विषै च्यारि क्रियाकर्म्म चौदह होय हैं ।

प्रतिक्रमण कै विषैं च्यारि क्रियाकर्म्म कौन प्रकार? १- आलोचना सिद्धभक्ति के करणैं विषैं कायोत्सर्ग है सो एक क्रियाकर्म है । तैंसे ही २- प्रतिक्रमण भक्ति के करवे विषैं कायोत्सर्ग है दूसरा क्रियाकर्म्म है । तैंसे ही ३- वीरभक्ति के करणैं विषैं कायोत्सर्ग है सो तृतीय क्रियाकर्म है । तैसे ही ४- चतुर्विंशति तीर्थंकरनिकी भक्ति के करवे विषैं शांति के निमित्त कायोत्सर्ग है सो चौथा क्रियाकर्म हैं ।

बहुरि स्वाध्याय कै विषैं तीन क्रियाकर्म कौन प्रकार हैं? सो कहिये हैं— १- (स्वाध्याय के प्रारम्भ में) श्रुतभक्ति के करणैं विषैं कायोत्सर्ग है सो एक क्रियाकर्म है । तैंसे ही २- आलोचना-भक्ति के करणै विषैं कायोत्सर्ग है सो द्वितीय क्रियाकर्म है । तैसें ही ३- स्वाध्याय की समाप्ति विषैं श्रुतभक्ति के करणैं विषैं कायोत्सर्ग सो तृतीय क्रियाकर्म— या प्रकार जाति की अपेक्षा करि स्वाध्याय कै विषैं तीन क्रियाकर्म हैं । अवशेष वंदनादिक क्रियाकर्म्मनि को ईहां ही अंतर्भाव देखनां । जो पूर्वाह्ने-दिवसे या प्रकार प्रधान पद का उच्चारण कीया (अर्थात् पूर्वाह्न कहने से दिवस का ग्रहण किया) या प्रकार अपराह्न विषैं, रात्रि विषैं हुं देखना भेद के अभाव तैं ।

---

१. क क्रियाकर्मे । २. क तथा महावीर° ।

पूर्वाह्णक्रियाकर्माणि चतुर्दश भवन्ति; तथाऽपराह्णवेलायां स्वाध्याये त्रीणि क्रियाकर्माणि प्रतिक्रमणे चत्वारि वंदनायां द्वे योगभक्तिग्रहणोपसंहारकालयोः द्वे रात्रौ प्रथमस्वाध्याये त्राणि । एवमपराह्णक्रियाकर्माणि चतुर्दश भवंति प्रतिक्रमणस्वाध्यायकालयोरुपलक्षणत्वादिति, अन्यान्यपि क्रियाकर्माण्यित्रैवान्तर्भवन्ति नाव्यापकत्वमिति संबन्धः। पूर्वाह्णसमीपकालः पूर्वाह्ण इत्युच्येतऽपराह्णसमीपकालोऽपराह्ण इत्युच्यते तस्मान्न दोष इति ।।९९।

कत्यवनतिकरणमित्यादि यत्पृष्टं तदर्थमाह—

दोणदं तु जधाजादं बारसावत्तमेव य[1] ।
चदुस्सिरं तिसुद्धं[2] च किदियम्मं पउंजदे ।।१००।।

दोणदं— द्वे अवनती पंचनमस्कारादावेकावनतिर्भूमिसंस्पर्शस्तथा चतुर्विंशतिस्तवादौ द्वितीयाऽवनतिः शरीरनमनं द्वे अवनती **जहाजादं**-यथाजातं जातरूपसदृशं क्रोधमानमायासंगादिरहितं । **वारसावत्तमेव** य द्वादशावर्त्ता एवं च पंचनमस्कारोच्चारणादौ मनोवचनकायानां संयमनानि शुभयोगवृत्तयस्त्रय आवर्त्तास्तथा पंचनमस्कारसमाप्तौ मनोवचनकायानां शुभवृत्तयस्त्रीण्यपराण्यावर्त्तनानि तथा चतुर्विंशतिस्तवसमाप्तौ शुभमनोवचनकायवृत्तयस्त्रीण्यावर्त्तनान्येवं

अथवा पिछली रात्रि विषैं प्रतिक्रमण कै विषैं क्रियाकर्म च्यारि हैं । स्वाध्याय के विषैं तीन हैं । वंदना कै विषैं दोय हैं। सूर्य का उदय होतें स्वाध्याय विषैं तीन मध्याह्न वंदनादि विषैं दोय-इस प्रकार पूर्वान्ह के क्रिया कर्म चौदह हौय हैं । तैसें अपरान्ह की वेलां विषैं स्वाध्याय के विषैं तीन क्रियाकर्म हैं । प्रतिक्रमण विषैं च्यारि हैं । वंदना विषैं दोय हैं । योगभक्ति के प्रांरभ काल विषैं, समाप्ति काल विषै क्रियाकर्म दोय हैं । रात्रि वषैं प्रथम स्वाध्याय कै विषैं तीन प्रकार या प्रकार अपरान्ह कै विषैं क्रियाकर्म चौदह ही है ।।९९।।

प्रतिक्रमणकाल अर स्वाध्याय काल के उपलक्षणपणैंतैं और हू क्रियाकर्म या विषैं अंतर्भाव होय हैं । अतः अव्यापक दोष नांही— अैसा संबंध है । पूर्वान्ह का समीपकाल है सो पूर्वाह्न या प्रकार कहिये है । अपरान्ह का समीपकाल है सो अपराह्न या प्रकार कहिये है । तातै दोष नांही।

केती अवनति करणी इत्यादिक जो पूछता ताकैं अर्थि कहै हैं—

अर्थ— दोय अवनति हैं- पंच नमस्कार की आदि विषैं एक, अवनति कहियै भूमि कूं स्पर्शि नमस्कार करणां । तैसे ही चतुर्विंशति-स्तव आदि विषैं द्वितीय अवनति है । अवनति का अर्थ शरीर का नमावणा है । यथाजात कहिये जात (जन्म) रूप सदृश है । माता के गर्भतैं उपज्या बालक, ताके रूप समान हैं । क्रोध, मान, माया, लोभ, परिग्रह इत्यादि करि रहित बारह आवर्त हैं। पंचनमस्कार के उच्चारण की आदि विषैं मन, वचन, कायनि के संयमनानि कहिये शुभयोगनि की प्रवृत्ति तीन आवर्त होय हैं। तैसे ही पंचनमस्कार की समाप्ति विषैं मन, वचन, कायनि की शुभ प्रवृत्ति हैं तैं और तीन आवर्त होय हैं । तैंसें चतुर्विंशतिस्तव की आदि विषैं मन, वचन, कायनि की शुभ प्रवृत्ति है, ते अन्य तीन आवर्त होय हैं । तैंसे ही चतुर्विंशतिस्तव की समाप्ति विषैं शुभ मन, वचन, कायनि की प्रवृत्ति है ते तीन आवर्त होय हैं- अैसे बारह प्रकार मन, वचन, कायनि की प्रवृत्ति है ते बारह आवर्त होय है अथवा च्यारि-दिशानि विषैं एक बार के भ्रमण वषैं च्यार प्रणाम होय हैं । या प्रकार तीन भ्रमण विषैं बारह आवर्त होय हैं । च्यारि शिरोनति होय हैं । कैसे होय हैं? पंचनमस्कार की आदि विषैं, बहुरि अंत विषैं, दोउ हाथ जोरि मस्तक विषैं लगाय नमस्कार करणा । तैसे ही चतुर्विंशतिस्तव का आदि विषैं वहुरि अंत विषैं करमुकुल करि चिन्ह

---

१. अ-च । २. ग. तिसुद्धिं ।

द्वादशधा मनोवचनकायवृत्तयो द्वादशावर्त्ता भवंति, अथवा चतसृषु दिक्षु चत्वारः प्रणामा एकस्मिन् भ्रमणे एवं त्रिषु भ्रमणेषु द्वादश भवंति, **चदुस्सिरं** चत्वारि शिरांसि पंचनमस्कारस्यादावंते च करमुकुलांकितशिरःकरणं तथा चतुर्विंशतिस्तवस्यादावंते च करमुकुलांकितशिरःकरणमेवं चत्वारि शिरांसि भवंति, त्रिशुद्धं मनोवचनकायशुद्धं क्रियाकर्म प्रयुंक्ते करोति । द्वे अवनती यस्मिन्तत् द्व्यवनति क्रियाकर्म द्वादशावर्त्ताः यस्मिंस्तत् द्वादशवर्त्तं, मनोवचनकायशुद्ध्या चत्वारि शिरांसि यस्मिन् तत् चतुःशिरःक्रियाकर्मैवं विशिष्टं यथाजातं क्रियाकर्म प्रयुंजीतेति ।।१००।।[1]

पुनरपि क्रियाकर्मप्रयुंजनविधानमाह—

तिविहं तियरणसुद्धं मयरहियं दुविहठाण पुणरुत्तं ।
विणएण कम्मविसुद्धं किदियम्मं होदि कायव्वं ।।१०१।।

त्रिविधं ग्रंथार्थोभयभेदेन त्रिप्रकारं, अथवाऽवनतिद्वयमेकः प्रकारः द्वादशावर्त्त द्वितीयः प्रकारश्चतुःशिरस्तृतीयं विधानमेवं त्रिविधं, अथवा कृतकरितानुमतिभेदेन त्रिविधं, अथवा प्रतिक्रमणस्वाध्यायवन्दनाभेदेन त्रिविधं, अथवा पंचनमस्कारध्यानचतुर्विंशतिस्तवभेदेन त्रिविधमिति । त्रिकरणशुद्धं मनोवचनकायाशुभपरिणामविमुक्तं, अथवाऽवनतिद्वयद्वादशावर्त्तचतुःशिरःक्रियाभिः शुद्धं । मदरहितं जात्यादिमदहीनं । द्विविधस्थानं द्वे पर्यंककायोत्सर्गौ स्थाने यस्य तत् द्विविधं स्थानं । पुनरुक्तं क्रियां क्रियां प्रति, तदेव क्रियत इति पुनरुक्तं, विनयेन विनययुक्त्या क्रमविशुद्धं [2]क्रममनतिलंघ्यागमानुसारेण कृतिकर्म भवति कर्त्तव्यं । न पुनरुक्तो दोषो द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकशिष्यसंग्रहणादिति ।।१०१।।

युक्त शिर का करणां है । सो त्रिशुद्धं कहिये मन, वचन, कायनि करि शुद्ध अैसे, क्रियाकर्म जो हैं ताहि करैं । दोय है अवनति जा विषैं सो द्व्यवनति कहियै । बारह हैं आवर्त जा विषैं सो द्वादशावर्त कहिये । मन, वचन कायनि की शुद्धता करि च्यारि हैं शिरोनति जा विषैं सो चतुःशिर कहिये । या प्रकार यथाजात क्रियाकर्म है ताहि करै ।।१००।।

बहुरि हू क्रियाकर्म्म करणें का विधान है ताहि कहै हैं—

अर्थ— त्रिविधं कहिये शब्द, अर्थ, शब्दार्थ— इन भेदकरि तीन प्रकार, अथवा दोय अवनति अैसे एक प्रकार, बारह आवर्त द्वितीय प्रकार, च्यारि शिरोनति तीसरा प्रकार— अैसें तीन प्रकार अथवा कृत, कारित, अनुमोदना—इन भेदनि करि तीन प्रकार अथवा प्रतिक्रमण स्वाध्याय, वंदना—इन भेदनि करि तीन प्रकार अथवा १. पंच नमस्कार, २. ध्यान, ३. चतुर्विंशतिस्तव—इन भेदनि करि तीन प्रकार, त्रिकरणशुद्धं कहियै मन, वचन, काय का अशुभ परिणाम तिनकरि रहित, अथवा १- अवनति, २- बारह आवर्त, ३- शिरोनति- तिनकरि शुद्ध, मदरहित कहिये जात्यादिक आठमद, तिनकरि रहित, द्विविधस्थान कहिये दोय पर्यंक कायोत्सर्ग है, स्थान कहिये आसन जा विषैं, पुनरुक्तं कहिये **क्रिया,क्रिया** प्रति, तैंसे ही करणा सो पुनरुक्त कहिये । विनयेन कहिये विनय की जुगति करि, क्रमविशुद्धं कहिये अनुक्रम का उल्लंघन नांही करैं, आगम के अनुसार कृतिकर्म हैं सो करणैं जोग्य हैं । इहां पुनरुक्त दोष न जाननां । द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक- दोउ नय के ग्राहक अैसे शिष्यनि कौ संग्रह है ।।१०१।।

---

१. यह गाथा भगवती आराधना गाथा सं. ११६ की विजयोदया टीका में भी आयी है । २. क °शुद्ध्या ।

कति दोषविप्रमुक्तं कृतिकर्म भवति कर्त्तव्यमिति यत्पृष्टं तदर्थमाह—

अणाठिदं[1] च थट्टं च पविट्ठंपरिपीडिदं ।
दोलाइयमंकुसियं तहा कच्छभरिंगियं ।।१०२।।

अणाढिदमनादृत्तं विनादरेण संभ्रममंतरेण यत् क्रियाकर्म क्रियते तदनादृतमितयुच्यते अनादृतनामा[2] दोष: । **थट्टंच** स्तब्धश्च विद्यादिगर्वेणोद्धत: सन् य: करोति क्रियाकर्म तस्य स्तबधनाम[3] दोष: **पविट्टं** प्रविष्ट: पंचपरमष्ठिनाम्त्यासन्नो भूत्वा य: करोति कृतिकर्म तस्य प्रविष्टदोष:, **परिपीडिदं** परिपीडितं करजानुप्रदेशै: परिपीड्य संस्पर्श्य य: करोति वंदनां तस्य परिपीडितदोष:, **दोलायिदं**— दोलायितं देलामिवात्मानं चलाचलं कृत्वा शयित्वा वा यो विदधाति वन्दनां तस्य दोलायितदोष: **अंकुसियं** अंकुशितमंकुशमिव करांगुष्ठं ललाटदेशे कृत्वा यो वन्दनां करोति तस्यांकुशितदोष:, तथा **कच्छभरिंगियं** कच्छपरिंगितं चेष्टितं कटिभागेन कृत्वा यो विदधाति वन्दनां तस्य कच्छपरिंगितदोष: ।।१०२।।

तथा—

मच्छुव्वत्तं मणोदुट्ठं वेदिआवद्धमेव य ।
भयसा चेव भयत्तं इड्ढिगारब गारवं ।।१०३।।

मत्स्योद्वर्त्त: पार्श्वद्वयेन वन्दनाकारणमथवा मत्स्यस्य इव कटिभागेनोद्वर्त्तं कृत्वा यो वंदनां विदधाति तस्य मत्स्योद्वर्त्तदोष:, मनसाचार्यादीनां दुष्टो भूत्वा यो वंदनां करोति तस्य मनोदुष्टदोष: । संक्लेशयुक्तेन मनसा यद्वा वंदनाकरणं, **वेदियावद्धमेव** य वेदिकाबद्ध एव च वेदिकाकारेण हस्ताभ्यां बंधो हस्तपंजरेण वामदक्षिणस्तनप्रदेशं प्रपीड्य जानुद्वयं वा प्रबद्ध्य वंदनाकरणं वेदिकाबद्धदोष:, **भयसा चेव** भयेन चैव मरणादिभीतस्य भयसंत्रस्तस्य

यातैं केते दोषकरि रहित कृतिकर्म करणा? अैसे जो पूछ्या ताकै अर्थि कहै है—

अर्थ— १. जो आदर बिना क्रियाकर्म्म कीजिये सो अनाहत नामा दोष है । २. विद्यादिक के गर्वकरि उद्धत हुवा जो मुनि क्रियाकर्म्म करै, ताकै स्तब्ध नामा दोष है । ३. पंचपरमेष्ठीनि कै अति निकट होयकरि जो क्रियाकर्म्म कूं करै ताकै प्रविष्ट नामादोष है । ४. हाथ-गोडेनिके प्रदेशनि करि पीडा उपजाय जो वंदना करै ताकै परिपीडित नामादोष है । ५. हींडोला की सी नांई आत्मानैं चंचल करि वा संशय युक्तकरि जो वंदना करै ताकै दोलायित नामा दोष है । ६. अंकुश की नांई हाथ का अंगुष्ट, ललाट के प्रदेश, विषैं करि जो वंदना करै ताकै अंकुशित नामा दोष है । ७. काछिवा की नांई कटिभाग करि चेष्टाकरि जो वंदना करै ताकै कच्छपरिंगित नामादोष है ।।१०२।।

तैंसे ही और दोष कहै हैं—

अर्थ— ८- दोउ पसवाडेकरि वंदना का करणां अथवा मत्स्य की नांई (समान) कटिभागकरि पलटि करि कै जो वंदना करै ताकै मत्स्योद्वर्त नामा दोष है। ९- मनकरि आचार्यादिकनि सुं दुष्ट होय करि जो वंदना करै ताकै मनोदुष्ट नामा दोष है, अथवा संक्लेश जुगत मनकरि जो वंदना करणां ताकै मनोदुष्ट नामा दोष है । १०- वेदिका के आकार करि हस्तपंजरकरि— १. वाम २. दाहणा कुचनि (स्तन) का प्रदेश हैं ताहि पीड़िकरि अथवा हाथ करि दोउ गोडेनिकूं बांधि वंदना करणां ताकै वेदिका-बद्ध नामा दोष है । ११- मरणादिकतैं डरता,

---

१. ख ढिदं । २. क नाम दोषरूपं । ३. क स्तब्धो °नाम° ।

यद्वन्दनाकारणं भयदोषः भयतो विभ्यतो गुर्वादिभ्यो विभ्यतो भयं प्राप्नुवतः परमार्थात्परस्य वालस्वरूपस्य वंदनाभिधानं विभ्यद्दोषः, **इड्डिगारव** ऋद्धिगौरवं वंदनामकुर्वतो महापरिकरश्चातुर्वर्ण्यश्रमणसंघो भक्तो भवत्येवभभिप्राणेय यो वंदनां विदधाति तस्य ऋद्धिगौरवदोषः । **गारवं** गौरवं आत्मनो माहात्म्यासनादिभिराविः कृत्य रससुखहेतोर्वा यो वंदनां करोति गौरववंदनादोषः ।।१०३।। तथा—

तेणिदं[1] पडिणिदं चावि पदुट्ठं तज्जिदंतधा ।
सद्दं च हीलिदं चावि [2]तह तिवलिद[3] कुंचिदं ।।१०४।।

तेणिदं स्तेनितं चौरबुद्ध्या यथा गर्वादयो न जानंति वन्दनादिकमपवरकाभ्यन्तरं प्रविश्य वा परेषां वंदनां चोरयित्वा यः करोति वंदनादिकं[1] तस्य स्तेनितदोषः, **पडिणिदं** प्रतिनीतं देवगुर्वादीनां प्रतिकूलो भूत्वा यो वंदनां विदधाति तस्य प्रतिनीतदोषः, **पदुट्ठं** प्रदुष्टोऽन्यैः सह प्रद्वेषं वैरं कलहादिकं विधाय क्षंतव्यमकृत्वा यः करोति क्रियाकलापं तस्य प्रदुष्टदोषः । **तज्जिदं** तर्जितं तथा अन्यांस्तर्जयन्नन्येषां भयमुत्पादयन्यदि वन्दनां करोति तदा तर्जितदोषस्तस्याथवाऽचार्यादिभिरंगुल्यादिना तर्जिताः शासितो यदि 'नियमादिकं न करोषि निर्वासयामो भवन्त' मिति तर्जितो यः करोति तस्य तर्जितदोषः । **सद्दं च** शब्दं ब्रुवाणो यो वन्दनादिकं करोति मौनं च परित्यज्य तस्य शब्ददोषोऽथवा **सट्ठं चेति** पाठस्तत एवं ग्राह्यं शाठ्येन मायाप्रपंचेन यो वन्दनां करोति तस्य शाठ्यदोषः । **हीलिदं** हीलितं वचनेनाचार्यादीनां परिभवं कृत्वा यः करोति वन्दनां तस्य हीलितदोषः, **तह तिवलिदं** तथा त्रिविलिते शरीरस्य त्रिषु कटिहृदयग्रीवाप्रदेशेषु भंगं कृत्वा ललाटदेशे वा त्रिविलं कृत्वा यो विदधाति बन्दनां तस्य त्रिवलितदोषः, **कुंचिदं** कुचितं कुंचितहस्ताभ्यां शिरः परामर्शं कुर्वन् यो वन्दनां विदधाति जानुमध्ययोर्वा शिरः कृत्वा संकुचितो भूत्वा यो वन्दनां करोति तस्य कुंचितदोषः ।।१०४।।

भयकरि, त्रासयुक्त अैसा पुरुष कैं जो बंदना का करणां भय दोष है । १२- गुर्वादिक तैं डरता भय कूं प्राप्त होता परमार्थ विषैं प्रवीण (शिथिल) नांही अैसा अज्ञानी कै जो वंदना का करणा सो विभ्यद्दोष है । १३- वंदना करता जो मैं ताकै महान् परिवार-च्यारि प्रकार मुनिन का संघ भक्त होय हैं । अैसा अभिप्राय करि जो वंदना करै ताकै ऋद्धि गौरव नामा दोष है । १४- आपका माहात्म्य आसनादिककरि, प्रगटकरि या रससुख कै हेतु जो बंदना करै ताकै गौरवनामा दोष है ।।१०३।।

तैसे और दोष कहे है—

अर्थ— १५- चौर की बुद्धिकरि जैसे गुरुआदिक वंदना आदि कूं नांही जाणै चोवरा (कोठरी) के भीतरि पैठि वा अन्य की (आँखें चुराकर) वंदना की क्रिया करै, ताकै स्तेनित नामा दोष है । १६- देवगुरु आदिक सों प्रतिकूल होय जो वंदना करै ताकै प्रतिनीत नामा दोष है । १७- औरनि करि जो द्वैष, जो बैर कलहादिक ताहि करि क्षमा नांही करि जो क्रिया कलाप करै ताकै प्रदुष्ट नामा दोष है । १८- तैंसे औरनि कूं तर्जना उपजावतो, भय करतो जो वंदना करै अथवा आचार्यदिकनिकरि अंगुलीनिकरि डर पायो । अैसे उपदेश कीयो-जो तुम नियमादिक न करै है तो तुम कूं निकासि देंगे अैसे तर्जना कूं प्राप्त भया जो वंदना करै ताकै तर्जित नामा दोष है । १९- मौन कूं तजि शब्द कूं प्रगट कहता जो वंदना करै ताकै शब्दनामां दोष हैं अथवा सट्ठं अैसा पाठ हैं तातैं अैसे ग्रहण करनां । २०- शठता करि, माया-प्रपंच करि जो बंदना करै ताकै शाठ्यनामा दोष है । २१- वचनकरि आचार्यादिकनि को निरादर करि जो वंदना करै ताकै हीलित नामा दोष है । तैंसे शरीर के तीन जे १. कटि, २. हृदय, ३. ग्रीवा कहिये नाडि इनके स्थान विषैं भंगकरि अथवा ललाट के प्रदेशनि विषैं जो भंग (त्रिवली) करे

१. ब. तिणिदं । २. क तहा । ३. क °दं तु कुं° ।

दिट्ठमदिट्ठं चावि य संघस्स करमोयणं ।
आलद्धमणालद्धं च हीणमुत्तरचूलियं ।।१०५।।

दिट्ठ दृष्टं आचार्यादिभिर्दृष्टः सन् सम्यग्विधानेन वन्दनादिकं करोत्यन्यथा स्वेच्छयाऽथवा दिगवलोकनं कुर्वन् वन्दनादिकं यदि विदधाति तदा तस्य दृष्टो दोषः । **अदिट्ठं** अदृष्टं आचार्यादीनां दर्शनं पृथक् त्यक्त्वा भूप्रदेशं शरीरं चाप्रतिलेख्यातद्गतमनाः पृष्ठदेशतो वा भूत्वा यो वन्दना[1]दिकं करोति तस्यादृष्टदोषः, अपि च **संघस्स करमोयणं** संघस्य करमोचनं.संघस्य मायाकरो वृष्टिर्दातव्योऽन्यथा न ममोपरि संघः शोभनः स्यादिति ज्ञात्वा यो वन्दनादिकं करोति तस्य संघकरमोचनदोषः । **आलद्धमणालद्धं** उपकरणादिकं लब्ध्वा यो वन्दनादिकं करोति तस्य लब्धदोषः । **अणालद्धं**—अनालब्धं उपकरणादिकं लप्स्येऽहमिति बुद्ध्या यः करोति वन्दनादिकं तस्यानालब्धदोषः । **हीणं** हीनं ग्रंथार्थकालप्रमाणरहितां वन्दनां यः करोति तस्य हीनदोषः । **उत्तरचूलियं** उत्तरचूलिकां वन्दनां स्तोकेन निर्वर्त्य वनदनायाश्चूलिकाभूतस्यालोचनादिकस्य महता कालेन निर्वर्त्तकं कृत्वां यो वन्दनां विदधाति तस्योत्तरचूलिकादोषः ।।१०५।।

मूगं च दद्दुरं चावि चुलुलिदमपच्छिमं ।
बत्तीसदोसविसुद्धं किदियम्मं पउंजदे ।।१०६।।

जो वंदना करै तैकै त्रिविलित नामा दोष है । २२- हस्तनिकरि मस्तक का स्पर्श करतो जो वंदना करै अथवा गोडेनिकै मध्य विषैं मस्तक लगाया संकुचित होय जो वंदना करै ताकै संकुचित नामा दोष है ।।१०४।।

अर्थ— २३- आचार्यादिकानि करि देख्यो संतो भली-विधिकरि वंदनादिक करै, आचार्यादिक, नांही देखे, तव अपनी इच्छा होय जैसें करें अथवा दिशानि के अवलोकन करता वंदनादिक जो करै, तिसकाल ताकै दृष्टनामा दोष है । २४- आचार्यादिकनि कौ (के दर्शन हेतु) दृष्टिगोचर मार्ग है, ताहि तजिकरि भूमि-प्रदेश बहुरि शरीर—इनकूं अप्रतिलेख्य कहिये नांही शुद्धकरि (पिच्छी से परिमार्जन न करके), नांही है तिस (वन्दना और प्रतिक्रमणादि पाठ) विषैं मन जाका का अथवा (आचार्यादिक के) पीछै तैं होयकरि जो वंदना करै, ताकै अदृष्टनामा दोष है । २५- हमनैं संघ की 'कर' कहिये वेगारि करणी है, जो न करै तौ हमपरि संघ प्रसन्न नांही होय—अैसी जांणि जो वंदना करै, ताकै संघकरमोचन नामा दोष है । २६- उपकरणादिक पाय जो वंदना करै ताकै आलब्ध नामा दोष है । २७- उपकरणादिक कूं हूं प्राप्त होगा— या बुद्धिकरि जो वंदनादिक करैं ताके अनालब्धनामा दोष है । २८- ग्रंथ, अर्थ, अर काल इनकरि रहित वंदना कूं जो करै ताकै हीन नामा दोष है । २९- वंदना है ताहि थोरे काल करि पूर्णकरि वंदना की चूलिका-भूत अैसी जो आलोचनादिक क्रिया ताहि बहुत कालकरि पूर्णकरि जो वंदना करै ताकै उत्तरचूलिका नामा दोष है ।।१०५।।

तैंसे ही अन्य दोष कहै है ।

अर्थ— ३०- गूंगा (मूक) की नांई मुख्य के मध्य विषैं जो वंदना करै अथवा वंदना करता हुंकार, अंगुली आदिकनि करि समस्या (इशारा) करै ताकै मूकनामा दोष है । ३१- बहुरि अपनैं शब्द करि औरनि के शब्द कूं आच्छादिकरि (दबाकर) महान् कलकल ऊंचे गलाकरि

---

१. ग. वंदनां विदधाति ।

मूगं च मूकश्च मूक इव मुखमध्ये यः करोति वन्दनामथवा वन्दनां कुर्वन् हुंकारांगुल्यादिभिः संज्ञा च यः करोति तस्य मूकदोषः **दद्दुरं** दर्दुरं आत्मीयशब्देनान्येषां शब्दानभिभूय महाकलकलं वृहद्गलेन कृत्वा यो वन्दनां करोति तस्य दर्दुरदोषः, **अविचुलुलिदमपच्छिमं** अपि चुरुलितमपश्चिमं एकस्मिन्प्रदेशे स्थित्वा करमुकुलं संभ्राम्य सर्वेषां यो वन्दनां करोत्यथवा पंचमादिस्वरेण यो वन्दनां करोति तस्य चुरुलितदोषो भवत्यपश्चिमः । एतैर्द्वात्रिंशद्दोषैः परिशुद्धं विमुक्तं यदि कृतिकर्म प्रयुंक्ते करोति साधुस्ततो विपुलनिर्जराभागी भवति ।।१०६।।

यदि पुनरेवं करोति तदा—

किदियम्मं पि करंतो ण होदि किदियम्मणिज्जराभागी ।
बत्तीसाणण्णदरं साहू ठाणं विराहंतो[1] ।।१०७।।

कृतिकर्म कुर्वन्नपि न भवति कृतिकर्मनिर्जराभागी कृतिकर्मणा या कर्मनिर्जरा तस्याः स्वामी न स्यात्, यदि द्वात्रिंशद्दोषेभ्योऽन्यतरं स्थानं दोष[2] निवारयन्नाचरन् क्रियाकर्म कुर्यात्साधुरिति । अथवा द्वात्रिंशद्दोषेभ्योऽन्यतरेण दोषेण स्थानं कायोत्सर्गादिवन्दनां विराधयन्कुर्वीतेति ।।१०७।।

कथं तर्हि वन्दना कुर्वीत साधुरित्याह—

हत्थंतरेणबाधे संफासपमज्जणं पउंज्जंतो ।
जाचेंतो[3] वंदणयं इच्छाकारं कुणइ भिक्खू ।।१०८।।

जो वंदना करै ताकै दर्दुरनामा दोष है । बहुरि 'अपश्चिमं' कहिए अंत का दोष यह है— ३२- एक स्थान विषैं तिष्ठकरि अंजुली कूं भरमाय (घुमाकर) सर्बकूं जो वंदना करैं अथवा पंचम है आदि जाकैं अैसा स्वर करिकै जो वंदना करै, ताकै चुलुलित नामा दोष है । यह कहै जे बत्तीस दोष, तिनिकरि रहित जो साधु कृतिकर्म करै है तातैं प्रचुर निर्जरा कौं भजवे वारा होय है ।।१०६।।

बहुरि जो अैसैं न करैं तौ कहा दोष होय? सो आगै कहै है—

अर्थ— बत्तीस दोषनि में काहू दोष कूं आचरण करता साधु है सो कृतिकर्म कूं करता हू कृतिकर्मतैं निर्जरा होय है, ताका स्वामी नांही होय है । अथवा बत्तीस दोषनि में काहू दोषकरि स्थान कहिये कायोत्सर्गादि वंदना कूं विराधतौ (विराधना) करै सो हू निर्जरा का स्वामी नांही होय है ।।१०७।।

तदि साधु है सो वंदना कैसे करै? अैसा प्रश्न होतैं आचार्य उत्तर कहै है—

अर्थ— जाकी वंदना करिये, बहुरि जो वंदना करै-तिन दोउ कै अंतर एक हाथ प्रमाण है । तिस अंतराल विषैं तिष्ठकरि बाधा रहित, संस्पर्शप्रमार्जनं कहिये अपने देह का संस्पर्श कहिये भला आसन, बहुरि कटि, पाद, गुह्य अंगादिकनिकी अत्यंत शुद्धि करता, 'आप कै अर्थि वंदना है' ताहि करुं हूं—अैसे वंदना कूं जाचता (याचना-प्रार्थना करके) जो साधु सो इच्छाकार कहिये वंदना, प्रणाम करैं—अैंसी बत्तीस दोषनि के परिहारकरि बत्तीस गुण होय हैं । तातैं जतनाचार विषैं तत्पर हास्य, भय, आसादना, राग, द्वेष, गौरव कहिये १. ऋद्धि,

१. अ. ब. विराधंतो । २. क. ग. 'दोषं विराधयन्' । ३. ब. जाऐंतो ।

हस्तान्तरेण हस्तमात्रान्तरेण यश्च करोति तयोरन्तरं हस्तमात्रं भवेत् तस्मिन् हस्तान्तरे स्थित्वा **अणावाधेऽनाबाधे** बाधामन्तरेण **संफासपमज्जणं** स्वस्य देहस्य स्पर्शः संस्पर्शनं कटिगुह्यादिकं च तस्य प्रमार्जनं प्रतिलेखनं शुद्धिं **पउंजंतो** प्रयुंजानः प्रकर्षेण कुर्वन् **जाचेंतो वंदणयं** वन्दनां च याचमानो 'भवद्भ्यो वन्दनां विदधामि' इति याञ्चां कुर्वन्निच्छाकारं वन्दना प्रणामं करोति भिक्षुः साधुरेवं द्वात्रिंशद्दोषपरिहारेण तावत् द्वात्रिंशद् गुणा भवंति तस्माद्यत्नपरेण हास्यभयासादनारागद्वेषगौरवालस्यमदलोभस्तेनभावप्रातिकूल्यवालत्वोपरोधहीनाधिकभावशरीरपरामर्शवचनभृकुटिकरणषाट्‌करणादिवर्जनपरेण देवतादिगतमानसेन विवर्जितकार्यान्तरेण विशुद्धमनोवचनकाययोगेन मौनपरेण वन्दना करणीया वन्दनाकारकेणेति ।।१०८।।

यस्य क्रियते वन्दना तेन कथं प्रत्येषितव्येत्याह—

तेण च पडिच्छिदव्वं गारवरहिएण सुद्धभावेण ।
किदियम्मकारकस्सवि संवेगं संजणंतेण ।।१०९।।

तेण च तेनाचार्येण **पडिच्छिदव्वं** प्रत्येषितव्यमभ्युगन्तव्यं गौरवरहितेन [1]ऋद्धिवीर्यादिगारवरहितेन कृतिकर्मकारकस्य वन्दनायाः कर्तुरपि संवेगधर्मेऽधर्मफले[2] च हर्षं संजनयता सम्यग्विधानेन कारयता शुद्धपरिणामवता वन्दनाऽभ्युपगंतव्येति ।।१०९।।

वन्दनानिर्युक्तिं संक्षेपयन् प्रतिक्रमणे निर्युक्तिं सूचयन्नाह—

वंदणणिज्जुत्ती पुण एसा कहिया मए समासेण ।
पडिक्कमणणिज्जुत्ती पुणो एतो उड्ढं पवक्खामि ।।११०।।

---

२. रस, ३. सात भेद करि तीन प्रकार अपनी उच्चता, आलस्य, मद, लोभ, चोरी, गुरु आदिकतैं प्रतिकूलता, आज्ञानभाव उपरोध कहिये हटावा, अटक देणा (दूसरों को रोक देना), हीन, अधिक भाव शरीर का पीड़ना (स्पर्श करता), वचन कहिये बोलणा, भृकुटी चढ़ावणा, खैखारा करना (खांसना-खखारना) इत्यादिक का त्याग विषैं तत्पर देवता कूं आदि दे पूज्य पुरुषनि विषैं लीन है मन जाका, बरज्या है अन्य करिज (अन्यकार्यों को छोड़ा है) जानै, विशुद्ध है मन, वचन, काय का जोग जाका, मौन विषैं तत्पर- अैसा वंदना का करता पुरुष कूं वंदना करणे जोग्य है ।।१०८।।

जिनकी वंदना कीजिये तिननैं कैसैं वंदना अंगीकार करणैं जोग्य है? अैसे प्रश्न होतैं आचार्य कहै है—

अर्थ— गौरवरहितेन कहिये ऋद्धि, रस, सात-इन तीन का गर्वकरि रहित, बहुरि कृतिकर्म्म जो वंदना तिसके कर्ताहू कै धर्म अर धर्म के फल विषैं भलै प्रकार हर्ष उपजावता, शुद्ध है परिणाम जाका-अैसा जो आचार्य तातैं वंदना अंगीकार करणें जोग्य है ।।१०९।।

वंदना निर्युक्ति है, ताहि संकोचते पूर्ण करते, बहुरि प्रतिक्रमण-निर्युक्ति हैं । ताहि सूचना करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ— यह वंदना निर्युक्ति हैं सो हम संक्षेपकरि कही । याकै आगै प्रतिक्रमण निर्युक्ति है, ताहि हम कहैंगे ।।११०।।

---

१. ग. ऋद्धिरससात । २. ग. धर्मेधर्मफले ।

वन्दनानिर्युक्तिरेषा पुनः कथिता मया संक्षेपेण प्रतिक्रमणनिर्युक्तिं पुनरित ऊर्ध्वं वक्ष्य इति ।।११०।।

तां निक्षेपस्वरूपेणाह—

णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते काले तहेव भावेय ।
एसो पडिक्कमणगे णिक्खेवो छव्विहो णेओ ।।१११।।

नामप्रतिक्रमणं पापहेतु[1] नामातीचारान्निवर्त्तनं प्रतिक्रमणदंडकगतशब्दोच्चारणं वा, सरागस्थापनाभ्यः परिणामनिवर्त्तनं स्थापनाप्रतिक्रमणं । सावद्यद्रव्यसेवायाः परिणामस्य निवर्त्तनं द्रव्यप्रतिक्रमणं । क्षेत्राश्रितातिचारान्निवर्त्तनं क्षेत्रप्रतिक्रमणं, कालमाश्रितातीचारान्निवृत्तिः कालप्रतिक्रमणं, रागद्वेषाद्याश्रितातीचारान्निवर्त्तनं भावप्रतिक्रमणमेष नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रितातीचारनिवृत्तिविषयः प्रतिक्रमणे निक्षेपः षड्विधो ज्ञातव्य इति । अथवा नाम प्रतिक्रमणं नाममात्रं, प्रतिक्रमणपरिणतस्य प्रतिविंबस्थापना स्थापनाप्रतिक्रमणं, प्रतिक्रमणप्राभृतज्ञोप्यनुपयुक्त[2] आगमद्रव्यप्रतिक्रमणं, तच्छरीरादिकं नोआगमद्रव्यप्रतिक्रमणमित्येवमादि पूर्ववद् द्रष्टव्यमिति ।।१११।।

प्रतिक्रमणभेदं प्रतिपादयन्नाह—

पडिकमणं देवसियं रादिय इरियापधं चबोधव्वं ।
पक्खिय चादुम्मासिय संवच्छरमुत्तमट्ठं च ।।११२।।

आगै प्रतिक्रमण निर्युक्ति है, ताहि निक्षेप-स्वरूपकरि कहै हैं—

अर्थ— १-पाप के कारण जो अतिचार तिनके नाम की निवृत्ति का करणां अथवा प्रतिक्रमण कै दंडक विषैं पठित जे शब्द तिनकौं उच्चारण है सो नाम प्रतिक्रमण है । २-सराग स्थापना तैं परिणाम की निवृत्ति सो स्थापना प्रतिक्रमण है । ३-सावद्यद्रव्य सेवातैं परिणाम की निवृत्ति सो द्रव्य प्रतिक्रमण है । ४-क्षेत्र, आश्रय अतीचारतैं निवृत्ति सो क्षेत्र प्रतिक्रमण है । ५-काल कै आश्रय जो अतीचार तातैं निवृत्ति है सो काल प्रतिक्रमण है । ६-रागद्वेषादिक कै आश्रय जो अतीचार तातैं निवृत्ति है सो भाव प्रतिक्रमण है । नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकैं आश्रय जो अतिचार तिनकी निवृत्ति-गोचर जो प्रतिक्रमण के विषैं यह निक्षेप है । सो छह प्रकार जांनवे जोग्य है ।

अथवा १-नाम मात्र नाम-प्रतिक्रमण है । २-प्रतिक्रमण कै विषैं परिणया जौ पुरुष ताकै प्रतिबिंब की स्थापना है सो स्थापनां-प्रतिक्रमण है । ३-प्रतिक्रमण के प्राभृत का ज्ञाता उपयोग रहित सौ आगम-द्रव्य-प्रतिक्रमण है । ४-ताका शरीरादिक है सो नोआगमद्रव्य-प्रतिक्रमण है। याकूं आदि दे प्रतिक्रमण के भेद पूर्ववत् जानना ।।१११।।

आगैं प्रतिक्रमण का भेद हैं, ताहि उपदेश करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ— कृत, कारित, अनुमोदना कै अतीचारतैं निवर्तन कहिये निवृत्ति है, सो प्रतिक्रमण है । १-दिवस विषै भया सो दैवसिक कहिये । दिवस के मध्य नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव-इनकैं आश्रय जौ अतीचार मन, वचन, कायकरि कीया, कराया, अनुमोद्या ताका शौधन है सो दैवसिक है । तैसे २-रात्रि विषैं भया सो रात्रिक है । ३-ईर्यापथ विषैं भया सो ईर्यापथ है, छह जीवनिकाय संबंधी अतीचार का निराकरण है सो ऐर्यापथिक जाणवे योग्य है । ४-पक्ष कहिये पखवाडे विषैं भया सो पाक्षिक है । पंचदश दिन-रात्रि संबंधी छह प्रकार नामादिक कहै कारण जाकै अैसा मन, वचन, कायकरि किया, कराया, अनुमोद्या अतीचार का शोधन है सो पाक्षिक है । ५-संवत्सर विषैं

---

१. क °तु अतीचारनाम्नो निव° । २. ग. प्राभृतज्ञोऽनुपयुक्त ।

प्रतिक्रमणं कृतकारितानुमतातिचारान्निवर्त्तनं, दिवसे भवं दैवसिकं दिवसमध्ये नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रितातीचारस्य कृतकारितानुमतस्य मनोवचनकायैः शोधनं, तथा रात्रौ भवं रात्रिकं रात्रिविषयस्य षड्विधातीचारस्य कृतकारितानुमतस्य त्रिविधेन निरसनं रात्रिकं, ईर्यापथे भवमैर्यापथिकं षड्जीवनिकायविषयातीचारस्य निरसनं ज्ञातव्यं, पक्षे भवं पाक्षिकं पंचदशाहोरात्रविषयस्य षड्विधनामादिकारणस्य कृतकारितानुमतस्य मनोवचनकायैः परिशोधनं, चातुर्मासेषुभवं चातुर्मासिकं, संवत्सरे भवं सांवत्सरिकं । चतुर्मासमध्ये संवत्सरमध्ये नामादिभेदेन षड्विधस्यातीचारस्य बहुभेदभिन्नस्य वा, कृतकारितानुमतस्य मनोवचनकायैः निरसनं, उत्तमार्थे भवमौत्तमार्थं यावज्जीवं चतुर्विधाहारस्य परित्यागः सर्वातिचारप्रतिक्रमणस्यात्रान्तर्भावो द्रष्टव्यः, [1]एवं प्रतिक्रमणसप्तकं द्रष्टव्यम् ।।११२।।

पुनरप्यन्येन प्रकारेण भेदं प्रतिपादयन्नाह—

पडिकमओ पडिकमणं पडिकमिदव्वं च होदि णादव्वं ।
एदेसिं पत्तेयं परूवणा होदि [2]तिण्हंपि ।।११३।।

प्रतिक्रामति कृतदोषाद्विरमतीति प्रतिक्रामकः, अथवा दोषनिर्हरणे प्रवर्तते अविघ्नेन प्रतिक्रमत इति प्रतिक्रामकः, पंचमहाव्रतादिश्रवणधारणदोषनिर्हरणतत्परः, प्रतिक्रमणं पंचमहाव्रताद्यतीचारविरतिर्व्रतशुद्धिनिमित्ताक्षरमाला वा, प्रतिक्रमितव्यं द्रव्यं च परित्याज्यं मिथ्यात्वाद्यतीचाररूपं भवति ज्ञातव्यं, एतेषां त्रयाणां प्रत्येकमेकमेकं प्रति प्ररूपणाप्रतिपादनं भवति ।।११३।।

तथैव प्रतिपादयन्नाह—

जीवो दु पडिक्कमओ दव्वे खेत्ते य काल भावे य ।
पडिगच्छदि जेण [3]जह्मि तं तस्स भवे पडिक्कमणं ।।११४।।

भया सो सांवत्सरिक है । 'चतुरमास विषैं भया सो चातुर्मासिक है । च्यार महीना के मध्य विषैं बहुरि संवत्सर कै मध्य विषैं नामादि भेदकरि छह प्रकार अथवा बहुत भेद संजुगत अैसा जो अतीचार, मन, वचन, कायकरि कीया, कराया, अनुमोद्या ताका निराकरण है सो चातुर्मासिक अर सांवत्सरिक है । उत्तमार्थ विषैं भया सो उत्तमार्थ है । जावज्जीव चउविह आहार का परित्याग, सर्वातिचार प्रतिक्रमण का इन विषैं ही अंतर्भाव देखनां । या प्रकार सात प्रकार सात प्रतिक्रमण हैं, सो देखनां ।।११२।।

बहुरि हूं अन्य प्रकारकरि प्रतिक्रमण के भेद कूं जणावतैं संतै आचार्य कहै है—

अर्थ— प्रतिक्रामति कहिये कीया दोषतैं रहित होय सो प्रतिक्रामक है अथवा दोष के हरवे विषैं प्रवर्तै निर्विघ्नकरि प्रवर्तै सो प्रतिक्रामक है । कैसा है यह ? पंचमहाव्रतादिकनिके १. श्रवण, २. धारण विषैं, वा लागै दोषनि के त्यजवे विषैं तत्पर प्रतिक्रामक कहा । पंचमहाव्रतनि विषैं लागे दोषनितैं निवृत्ति अथवा व्रत-शुद्धि कूं निमित्त अैसी अक्षरमाला कहिये प्रतिक्रमण पाठ सो प्रतिक्रमण है । बहुरि प्रतिक्रमितव्यं त्यजने जोग्य द्रव्य है सो मिथ्यात्व आदि अतीचार रूप जाणवे जोग्य है । इन तीननि की, प्रत्येकं कहिये एक-एक प्रतिरूपणा का कथन है ।।११३।।

तैसे ही उपदेश करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ— जीव है सो प्रतिक्रामक है । कैसा है? दोषनि कै द्वारनि करि आये जे कर्म्म, तिनके निवारण विषै है स्वभाव जाका, चेतना है लक्षण जाका । किन विषैं प्रतिक्रामक है? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विषैं है । द्रव्य कहा (क्या)? आहार, पुस्तक, औषधि, उपकरणादिक

---

१. क एवं सप्त प्रकारं प्रतिक्रमणं द्रष्टत्यम्° । २. क °होदि कायव्वा । ३. क जाहिं ।

जीवस्तु प्रतिक्रामकः दोषद्वारागतकर्मविक्षपणशीलो जीवश्चेतनालक्षणः । क प्रतिक्रामकः? द्रव्यक्षेत्रकालभावविषये, द्रव्यमाहारपुस्तकभेषजोपकरणादिकं, क्षेत्रं शयनासनस्थानचंक्रमणादिविषयो भूभागोऽगुलवितस्तिहस्तधनुः क्रोशयोजनादिप्रमितः, कालः घटिकामुर्हूर्तसमयलवदिवसरात्रिपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरसंध्यापर्वादिः, भावः परिणामरागद्वेषादिमदादिलक्षणः, एतद्विषयादतिचारान्निवर्त्तनपरो जीवः प्रतिक्रामक इत्युच्यते ज्ञेयाकारवहिर्व्यावृत्तरूपः, अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावविषयादतिचारात्प्रतिगच्छति निवर्त्तते स प्रतिक्रामकोऽथवा येन परिणामेनाक्षरकदंबकेन वा प्रतिगच्छति पुनर्याति यस्मिन् व्रतशुद्धिपूर्वस्वरूपे यस्मिन् वा जीवे पूर्वव्रतशुद्धिपरिणतेऽतीचारं परिभूतं स परिणामोऽक्षरसमूहो[१] वा तस्य व्रतस्य तस्य वा व्रतशुद्धिपरिणतस्य जीवस्य भवेत्प्रतिक्रमणं व्रतविषयमतीचारं येन परिणामेन प्रक्षाल्य प्रतिगच्छति पूर्वव्रतशुद्धौ स परिणामस्तस्य जीवस्य भवेत्प्रतिक्रमणमिति । मिथ्यादुष्कृताभिधानादभिव्यक्तप्रतिक्रियं द्रव्यक्षेत्रकालभावमाश्रित्य प्रतिक्रमणमिति वा ।।११४।।

प्रतिक्रमितव्यं तस्य स्वरूपमाह—

पडिकमिदव्वं दव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सयंतिविहं ।
खेत्तं च गिहादीयं कालो दिवसादिकालह्मि ।।११५।।

प्रतिक्रमितव्यं परित्यजनीयं । किं तत् द्रव्यं सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रिविधं । सह चित्तेन वर्तत[१] इति सचित्तं द्विपदचतुष्पदाद्यचित्तं सुवर्णरूप्यलोहादिमिश्रं वस्त्रादियुक्तद्विपदादि । तथा क्षेत्रं गृहपत्तनकूपवाप्यादिकं प्रतिक्रमितव्यं तथा कालो दिवसमुहूर्तरात्रिवर्षाकालादिः प्रतिक्रमितव्यः । येन द्रव्येण क्षेत्रेण कालेन

है । क्षेत्र कहा? शयन, आसन, स्थान कहिये ठाड़ा रहणां, चंक्रमण कहिये भ्रमण इत्यादिक कै गोचरभूमि का भाग, अंगुल, विलसति (वितस्ति-वित्ता), हाथ, धनुष, कोस—जो जन आदि है प्रमाण जाको सो क्षेत्र है । काल कहा (क्या)? घड़ी, मुहूर्त, समय, लव, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, संध्या, पर्वादिक सो काल हैं । भाव नाम परिणाम का है, राग-द्वेष, मद आदि है लक्षण जाका— इन संबंधी अतिचारतैं निवृत होवै में तत्पर जीव हैं सो प्रतिक्रामक, या प्रकार कहिये है ।

अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, संबंधी-अतीचार तैं प्रतिगच्छति कहिये निवृत्ति होय सो प्रतिक्रामक है । अथवा जिस परिणाम करि बहुरि जिस अक्षर समुदायकरि जिस व्रत-शुद्धिपूर्वक स्वरुप विषैं, बहुरि जिस पूर्व व्रतशुद्धि परिणत जीव विषैं तिरस्कार कूं प्राप्त भया अतिचार दूरि होय सो परिणाम, बहुरि अक्षरनिका समुदाय तिस व्रत को करै बहुरि व्रतशुद्धि विषैं परिणया जीवकै प्रतिक्रमण होय ।।११४।।

भावार्थ— जिस परिणामकरि व्रतगोचर अतिचार हैं ताहि धोयकरि पूर्व-व्रत-शुद्धि विषैं प्राप्त होय, तिस जीवकैं सो परिणाम-प्रतिक्रमण है । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का आश्रयकरि 'मिथ्या मे दुष्कतं' (मिच्छा मे दुक्कडं) अैसे दोष निवृत्ति जामैं सो प्रतिक्रमण है ।

आगै प्रतिक्रमण करवे जोग्य, त्यजवे जोग्य— अैसा जो **प्रतिक्रमितव्य ताका स्वरूप कहै है—**

अर्थ— जो त्यजवे जोग्य सो द्रव्य प्रतिक्रमितव्य है । सचित्त, अचित्त, मिश्र-भेदकरि तीन प्रकार है । चित्त जो चैतन्य, ताकरि सहित वरतै सो सचित्त-द्विपद, चतुष्पद कूं आदि दे जाणणां । चैतन्य रहित सो अचित्त-सुवर्ण, रूपा, लोहा, मिश्र, वस्त्रादिक करि संजुगत द्विपदादिक जाणणां । तैसें क्षेत्र जो घर, पत्तन, कुवा, वापी आदि त्यजवे योग्य है । जैंसे काल जो दिवस, मुहूर्त, रात्रि, वर्षाकाल कूं आदि दे त्यजवे

---

१. क °हो वा तस्य वा व्रतशुद्धि° । १. ग. चित्तेन चैतन्येन वर्त्तत ।

वा पापागमो भवति तत् द्रव्यं तत् क्षेत्रं स कालः परिहरणीयः द्रव्यक्षेत्रकालाश्रितदोषाभाव इत्यर्थः । काले च प्रतिक्रमितव्यं यस्मिन् काले च प्रतिक्रमणमुक्तं तस्मिन् काले कर्तव्यमिति, अथवा कालेऽष्टमीचतुर्दशीनंदीश्वरादिके द्रव्यं क्षेत्रं प्रतिक्रमितव्यं कालश्च दिवसादिः प्रतिक्रमितव्य उपवासादिरूपेण, अथवा 'भावो हि' पाठान्तरं भावश्च प्रतिक्रमितव्य इति । अप्रासुकद्रव्यक्षेत्रकालभावास्त्याज्यास्तद्द्वारेणातीचाराश्च परिहरणीया इति ।।११५।।

भावप्रतिक्रमणमाह—

मिच्छत्तपडिक्कमणं तह चेव असंजमे पडिक्कमणं ।
कसाएसु पडिक्कमणं जोगेसु य अप्पसत्थेसु ।।११६।।

मिथ्यात्वस्य प्रतिक्रमणं त्यागस्तद्विषयदोषनिर्हरणं तथैवासंयमस्य प्रतिक्रमणं तद्विषयातीचारपरिहारः । कषायाणां क्रोधादीनां प्रतिक्रमणं तद्विषयातीचारशुद्धिकरणं । योगानामप्रशस्तानां प्रतिक्रमणं मनोवाक्कायविषयाव्रतातीचारनिवर्त्तनमित्येवं भावप्रतिक्रमणमिति ।।११६।।

आलोचनापूर्वकं यतोऽत आलोचनास्वरूपमाह—

काऊण य किदियम्मं पडिलेहिय अंजलीकरणसुद्धो ।
आलोचिज्ज सुविहिदो गारव माणं च मोत्तूण ।।११७।।

जोग्य हैं । जिस द्रव्यकरि, जिस क्षेत्रकरि, बहुरि जिस कालकरि पापाश्रव होय सो द्रव्य, सो क्षेत्र, सो काल त्यजवे जोग्य हैं । द्रव्य, क्षेत्र काल कै आश्रय जो दोष ताका अभाव है सो प्रतिक्रमितव्य का प्रयोजन है । 'काले च प्रतिक्रमितव्यं'-याका अर्थ— जिस काल विषैं प्रतिक्रमण कह्या, तिसकाल विषै करणां जोग्य है । अथवा काले कहिये अष्टमी, चतुर्दशी, नंदीश्वरादिक पर्व के दिन विषैं द्रव्य, क्षेत्र त्यजवे जोग्य है । बहुरि काल जो दिवसादिक सो उपवासादि रूपकरि त्यजवे जोग्य है । अथवा 'भावो हि'-अैसा गाथा मै पाठांतर है । ताका अर्थ - भाव हू त्यजवे जोग्य है । अप्रासुक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव त्यजवे जोग्य है । बहुरि तिस द्वारकरि अतीचार हैं, ते त्यजवे जोग्य हैं ।।११५।।

आगै भावप्रतिक्रमण है, ताहि कहै है—

अर्थ— मिथ्यात्व संबंधी दोष का त्याग सो मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण है । तैसें ही असंजम संबंधी अतीचार का परिहार सो असंजम का प्रतिक्रमण है । कषाय जे क्रोधादिक तिनका प्रतिक्रमणं जो तिन संबंधी व्रतनि के अतीचार का शुद्ध करणा सो कषाय प्रतिक्रमण है । मन, वचन, काय संबंधी व्रतनि के अतीचार का निवारण सो अप्रशस्त जोग का प्रतिक्रमण है । अैसे मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, जोग संबंधी अतीचारनिका त्याग सो भाव प्रतिक्रमण— या प्रकार जाणणां ।।११६।।

जातैं आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण है, यातैं आलोचना का स्वरूप कहै है—

अर्थ— कृतिकर्म कहिये सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति है आदि जाकै अैसा जो विनय ताहि करिकै, 'प्रतिलेख्य' कहिये आगिला-पिछिला शरीर का भाग, बहुरि अपनैं वैसणैं (बैठने)[1] का स्थान ताहि पीछिकरि वहुरि नेत्रकरि सोधि करिकै अथवा चारित्र के अतीचार हैं, तिनहि भलै प्रकार जाणिकरिकै, अंजलीकरणशुद्धः कहिये ललाटपट्ट विषैं स्थाप्या जो अंजली, ताकी क्रिया विषैं शुद्ध अैसे 'आलोचयेत्' कहिये गुरु के

---

१. ब. बसने ।

कृतिकर्म विनयं सिद्धभक्तिश्रुतभक्त्यादिकं कृत्वा पूर्वापरशरीरभागं स्वोपवेशनस्थानं च प्रतिलेख्य सम्मार्ज्य पिच्छिकया चक्षुषा चाथवा चारित्रातीचारान् सम्यङ्निरूप्यांजलिकरणशुद्धललाटपट्टविन्यस्तकरकुड्मलक्रियाशुद्ध एवमालोचयेत् गुरवेऽपराधान्निवेदयेत् सुविहितः सुचरितः स्वच्छवृत्तिः ऋद्धिगौरवं रसगौरवं मानं[1] च जात्यादिमदं मुक्त्वा परित्यज्यैवं गुरवे स्वव्रतातीचारान्निवेदयेदिति ।।११७।।

आलोचनाप्रकारमाह—

आलोचणं दिवसियं रादिअ इरियापधं[2] चबोद्धव्वं ।
पक्खिय चादुम्मासिय संवच्छरमुत्तमट्ठं च ।।११८।।

आलोचनं गुरुवेऽपराधनिवेदनं अर्हद्भट्टारकस्याग्रतः स्वापराधाविष्करणं वा स्वचित्तेऽपराधानामनवगूहनं, दिवसे भवं दैवसिकं, रात्रौ भवं रात्रिकं, ईर्यापथे भवमैर्यापथिकं बोद्धव्यं । पक्षे भवं पाक्षिकं, चतुर्षु मासेषु भवं चातुर्मासिकं, संवत्सरे भवं सांवत्सरिकं, उत्तमार्थे भवमौत्तमार्थं च दिवसरात्रीर्यापथपक्षचतुर्माससंवत्सरोत्तमार्थविषयजातापराधानां गुर्वादिभ्यो निवेदनं सप्तप्रकारमालोचनं वेदितव्यमिति ।।११८।।*

आलोचनीयमाह—

अणाभोगकिदं[3] कम्मं जं किंवि मणसा कदं ।
तं सव्वं आलोचेज्जहु[4] अव्वाखित्तेण चेदसा ।।११९।।

अर्थि अपराधनिकूं निवेदन करै । कैसो है आलोचना करणै वाला? 'सुविहित' कहिये निर्म्मल है प्रवृत्ति जाकी, गौरव कहिये १-ऋद्धि गौरव, २-रसगौरव, ३-सातगौरव, वहुरि 'मान' कहिये जाति आदि आठ मद ताहि, मोत्तूण कहिये तजिकरिकै अैसे गुरु कै अर्थि अपने व्रतनि के अतिचारनि कूं निवेदन करै ।।११७।।

आगै आलोचना का प्रकार कहै है—

अर्थ— आलोचनं कहिये गुरु के अर्थि अपराध का कहणां अथवा अर्हतं भट्टारक कै आगै अपनैं अपराध का प्रगट करणां, अपनैं चित्त विषैं अपराध का नहीं छिपाणां । दिवस विषै भया सो दैवसिक है, रात्रि विषै भया सो रात्रिक है । ईर्यापथ विषैं भया सो ऐर्यापथ जाणणा। पक्ष कहिये पखवाड़े विषैं भया सो पाक्षिक है, चतुरमासनि विषैं भया सो चातुर्मासिक है । संवत्सर जो एक वर्ष ता विषैं भया सो सांवत्सरिक है । उत्तमार्थ विषैं भया सो औत्तमार्थ है । १-दिवस, २-रात्रि, ३-ईर्यापथ, ४-पक्ष, ५-चतुर्मास, ६-संवत्सर, ७-उत्तमार्थ— इन विषैं उत्पन्न भये जे अपराध तिनको गुरु आदिनिकै अर्थि निवेदन है सो सप्त प्रकार आलोचन जाणवे जोग्य है ।।११८।।

आगै आलोचना करवे जोग्य है, ताहि कहै है—

अर्थ— सर्व जननि करि जाण्या जो व्रतनि का अतिचार सो आभोग है, अन्यकर नांही जाण्या सो अनाभोग है । तातैं भोग विन

---

१. ग. रसगारवं सातगारवं मानं च । २. क °यवाहं च । ३. अ. ब. कदं । ४. क °आलोचज्जाहु ।

* यह गाथा फलटन से प्रकाशित मूलाचार की प्रति में अधिक है—

आलोचिय अवराहं ठिदिओ सुद्धो तुट्ठमणो ।
पुणरवि तमेव जुज्जइ तोसत्थं होइ पुणरूत्तं ।।

अर्थ— खड़े होकर गुरु के समीप अपराधों का निवेदन करके मैं शुद्ध हुआ—ऐसा समझकर जो आनन्दित हुआ है, ऐसा वह आलोचक यदि पुनः आनन्द के लिए उसी दोष की आलोचना करता है तो वह आलोचना पुनरुक्त होती है ।

आभोग: सर्वजनपरिज्ञातव्रतातीचारोऽनाभोगो न परैर्ज्ञातस्तस्मादनाभोगकृतं कर्माऽऽभोगमन्तरेण कृतातीचारस्तथाभोगकृतश्चातीचारश्च तथा यत्किंचिन्मनसा च कृतं कर्म तथा कायवचनकृतं च तत्सर्वमालोचयेत् यत्किंचिदनाभोगकृतं कर्माभोगकृतं कायवाङ्मनोभि: कृतं च पापं तत्सर्वमव्याक्षिप्तचेतसाऽनाकु[२]लितचेतसाऽऽलोचयेदिति ।।११९।।

आलोचनापर्यायनामान्याह—

आलोचणमालुंचण विगडीकरणं च भावसुद्धीदु।
आलोचदह्मि आराधणा अणालोचणे भज्जा ।।१२०।।

आलोचनमालुंचनमपनयनं विकृतीकरणमाविष्करणं भावशुद्धिश्चेत्येकोऽर्थ: । अथ किमर्थमालोचनं क्रियत इत्याशंकायामाह—यंस्मादालोचिते चरित्राचारपूर्वकेण गुरवे निवेदिते चेति आराधना सम्यग्यदर्शनज्ञानचारित्रशुद्धिरनालोचने पुनर्दोषाणामनाविष्करणे पुनर्भाज्याऽऽराधना तस्मादालोचयितव्यमिति ।।१२०।।

आलोचने कालहरणं न कर्त्तव्यमिति प्रदर्शयन्नाह—

उप्पण्णो उप्पण्णा माया अणुपुव्वसो णिहंतव्वा ।
आलोचणणिंदणगरहणाहिं ण पुणो तिअं विदिअं ।।१२१।।

उत्पन्नोत्पन्ना यथा यथा संजाता माया व्रतद्यतीचारोऽनुपूर्वशोनुक्रमेण यस्मिन् काले यस्मिन् क्षेत्रे यद्द्रव्यमाश्रित्य येन भावेन तेनैव क्रमेण कौटिल्यं परित्यज्य निहन्तव्या परिशोध्या यस्मादालोचने गुरवे दोषनिवेदने निंदने परेष्वाबिष्करणे गर्हणे आत्मजुगुप्सने कर्त्तव्ये पुनर्द्वितीयं पुनर्न करिष्यामीत्यथवा न

कीया अतीचार सो अनाभोग कृत कर्म है । तैसैं आभोगकरि कीया अतीचार, तैसें जो कछु मन करि कीया कर्म, तैंसें काय वचन करि कीया कर्म, तिस सर्वकूं आलोचना करैं । जो कछु अनाभोग कृत कर्म हैं, आभोग कृत कर्म हैं, बहुरि काय, वचन, मनकरि कीया पाप है, तिस सर्वकूं निराकुल चित्तकरि आलोचना करैं ।।११९।।

आगै आलोचना के परजाय नाम कूं कहै हैं—

अर्थ— १-आलोचन, २-आलुंचन जो अपनयन, वहुरि ३-विकृतिकरण जो आविःकरण, वहुरि ४-भाव शुद्धि-यह एकार्थ हैं । यहां प्रश्न-कौन अर्थि आलोचना कीजिये है ? अैसी आशंका होतैं कहै हैं— जातैं आलोचिते कहिये चारित्राचार पूर्वक गुरुनि कैं अर्थि दोषनि को निवेदन कीयै । आराधना जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धि होय है । बहुरि अनालोचने कहिये लागै दोषनि कौं नांही प्रकट कीये संतैं सम्यगदर्शन, ज्ञान, चारित्र शुद्धि, भाज्या कहिये होय अथवा नाही होय तावैं आलोचना करवे जोग्य है ।।१२०।।

आगैं आलोचना विषैं काल का उल्लंघन नांही करणां-अैसें दिखावतैं संतैं आचार्य कहै हैं—

अर्थ— उत्पन्ना उत्पन्ना कहिए जैसे जैसें (उत्पन्न हुई), माया कहिये व्रतादिक को अतीचार, अनुपूर्वश: कहिये अनुक्रमकरि जिस काल विषैं, जिस क्षेत्र विषैं, जिस द्रव्य कूं आश्रयकरि जिस भावकरि भया, तिस ही क्रमकरि कुटिलता छोड़ि अतीचार शुद्ध करणां । जातैं

---

२. क °कुलचित्तेनवालो° ।

पुनस्तृतीयं द्दिनं द्वितीयं वा द्वितीयदिवसे तृतीयदिवसे आलोचयिष्यामीति न चिंतनीयं यस्माद्‌गतमपि कालं न जानंतीति भावार्थस्तस्माच्छीघ्रमालोचयितव्यमिति ।।१२१।।

यस्मात्—

आलोचणणिंदणगरहणाहिं अब्भुट्ठिओ अ करणाए ।
तं भावपडिक्कमणं सेसं पुणदव्वदो भणिअं ।।१२२।।

गुरवेऽपराधनिवेदनमालोचनं वचनेनात्मजुगुप्सनं परेभ्यो निवेदनं च निन्दा चित्तेनात्मनो जुगुप्सनं शासनविराधनभयं च गर्हणमेतैः क्रियायां प्रतिक्रमणेऽथवा पुनरतीचाराकरणेऽभ्युत्थित उद्यतो यतस्तस्माद्भावप्रतिक्रमणं परमार्थभूतो दोषपरिहारः शेषं पुनरेवमन्तरेण द्रव्यतोऽपरमार्थरूपं पुनः भणितमिति ।।१२२।।

द्रव्यप्रतिक्रमणे दोषमाह—

भावेण अणुवजुत्तो दव्वीभूदो पडिक्कमदि जो दु ।
जस्सट्ठं पडिकमदे तं पुण अट्ठं ण साधेदि ।।१२३।।

भावेनानुपयुक्तः शुद्धपरिणामरहितः द्रव्यीभूतेभ्यो । दोषेभ्यो न[१] निर्गतमना रागद्वेषाद्युपहतचेताः प्रतिक्रमते दोषनिर्हरणाय प्रतिक्रमणं शृणोति करोति चेति यः स यस्यार्थं यस्मै दोषाय प्रतिक्रमते तं पुनरर्थं न साधयति तं दोषं न[२] परित्यजतीत्यर्थः ।।१२३।।

आलोचने कहिये गुरुनि के अर्थि दोषनि का निवेदन कीये संतै, निंदनै कहिये ओरनि कै निकट दोषकौं प्रगट कीये संतै, गर्हणे कहिये स्वयं निंदा कीये संतै । बहुरि-हम नांही करैगें, बहुरि दूसरे दिवस विषैं, तीसरे दिवस विषैं आलोचना करुँगा - असै चिंतवन नांही करणं । जातैं गया हू कालकूं नांही जाणे है, भूलि जाय है—अैसा याका भावार्थ है ।।१२१।।

तातैं शीघ्र आलोचना करवे जोग्य है-अैंसे कहै है—

अर्थ— गुरुनि कै अर्थि अपना अपराध का कहणां सो आलोचन है । वचनकरि आपकी निंदा, वहुरि औरनि कै अर्थि निवेदन करणां सो निंदन हैं । मनकरि आपकूं निंदना, बहुरि आज्ञा विराधिवे का भय सो गर्हण है । इन करिके 'करण' कहिये प्रतिक्रमण क्रिया विषैं अथवा वहुरि अतीचार के नांही करवे विषैं, अभ्युत्थित कहिये उद्यमी भया तातैं भावप्रतिक्रमण है । सो सत्यार्थभूत दोष का परिहार है । शेष कहिये-भाव प्रतिक्रमण बिन द्रव्य थकी प्रतिक्रमण सो अपरमार्थ रूप कह्या है ।।१२२।।

आगै द्रव्य प्रतिक्रमण विषैं दोष हैं, ताहि कहै है—

अर्थ— 'भावेन अनुपयुक्तः' कहिये शुद्धपरिणाम करि रहित 'द्रव्यीभूतः कहिये दोषनितैं नांही निकसणै का है मन जाका, रागद्वेष-करि हूँ त्याग्या है चित्त जाका, प्रतिक्रमते कहि दोष के हरणे अर्थि प्रतिक्रमण कूं सुणे है वा करैं है तिस प्रयोजन कूं नांही साधै है, तिस दोष कूं नांही त्यजै है- अैसा अर्थ जाननां ।।१२३।।

१.-२. 'न' नास्ति क-प्रतौ ।

भावप्रतिक्रमणमाह—

भावेण संपजुत्तो जदत्थजोगो य जंपदे सुत्तं ।
सो कम्मणिज्जराए विउलाए वट्टदे साधू ।।१२४।।

भावेन संप्रयुक्तो यदर्थं योगश्च यन्निमित्तं शुभानुष्ठानं यस्मै अर्थायाभ्युद्यतो जल्पति सूत्रं प्रतिक्रमणपदान्युच्चरति शृणोति वा स साधुः कर्मनिर्जरायां विपुलायां प्रवर्त्तते सर्वापराधान् परिहरतीत्यर्थः ।।१२४।।

सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।
अवराहे[1] पडिकमणं मज्झिमयाणं जिणवराणं ।।१२५।।

सह प्रतिक्रमणेन वर्तत इति सप्रतिक्रमणो धर्मो दोषपरिहारेण चारित्रं पूर्वस्य प्राक्तनस्य वृषभतीर्थंकरस्य पश्चिमस्य पाश्चात्यस्य सन्मतिस्वामिनो जिनस्य तयोस्तीर्थंकरयोर्धर्म्मः प्रतिक्रमणसमन्वितः अपराधो भवतु मा वा, मध्यमानां पुनर्जिनवराणामजितादिपार्श्वनाथपर्यन्तानामपराधे सति प्रतिक्रमणं तेषां यतोऽपराधबाहुल्याभावादिति ।।१२५।।

जावेदु अप्पणो वा अण्णदरे वा भवे अदीचारो ।
तावेदु पडिक्कमणं मच्छिमयाणं जिणवराणं ।।१२६।।

यस्मिन् व्रत आत्मनोऽन्यस्य रा भवेदतीचारस्तस्मिन् विषये भवेत्प्रतिक्रमणं मध्यमजिनवराणामाद्यपश्चिमयोः पुनस्तीर्थंकरयोरेकस्मिन्नपराधे सर्वान् प्रतिक्रमणदण्डकान् भणति ।।१२६।।

आगै भाव-प्रतिक्रमण कूं कहै—

अर्थ—भाव करिकै संजुगत पदार्थ, योगश्च कहिये जा निमित्त शुभ आचरण जिसकै अर्थि उद्यमी भया, सूत्रं कहिये प्रतिक्रमण पद हैं तिनहि, जल्पति कहिये उच्चारण करै है वा सुणै है, सो साधु प्रचुर कर्मनिकी निर्जरा विषैं वर्तैं है । सर्व अतिचारनिकूं परिहरै है- ऐसा अर्थ जाननां ।।१२४।।

कौन अर्थि प्रतिक्रमण विषैं तत्परता है? इस हेतु आगै गाथा कहै है—

अर्थ—पूर्वस्य कहिये प्रथम भए ऐसे वृषभ तीर्थंकर को, पश्चिमस्य कहिये पीछैं भये ऐसे सन्मति स्वामी जो, वर्द्धमान तीर्थंकर—इन दोउ तीर्थंकरिनि को धर्म्म सप्रतिक्रमण कहिये प्रतिक्रमण सहित बरतै, ऐसो है । दोष होउ अथवा मति होउ-धर्म कहा दोष के परिहार करिकै जो चारित्र सो धर्म्म है । बहुरि मध्यमानां कहिये अजितनाथ कूं आदि दे पार्श्वनाथ परजंत—ऐसे जिनवर जो हैं, तिनकै समय अपराध होतै प्रतिक्रमण है, जातैं तिनकैं समय प्रचुर अपराध का अभाव है—या कारण ऐसें जाननां ।।१२५।।

अर्थ—जिस व्रत विषैं आपकैं अथवा अन्यकैं अतिचार लाग्या होय, 'मध्यमजिनवराणां' कहिये अजितनाथ कूं आदि दे पार्श्वनाथ परजंत बाईस तीर्थंकरनि कैं तिस व्रतके अतीचार विषैं प्रतिक्रमण है । बहुरि आदि-अंत के तीर्थंकरनि के समय विषैं, एक अपराध विषैं समस्त प्रतिक्रमण दंडक हैं, तिनहि भणै (बोलते) हैं ।।१२६।।

१. अ. ब. अवराधे ।

इत्याह—

इरिया[1]गोयरसुमिणादिसव्वमाचरदु मा व आचरदु ।
पुरिम चरिमादु सव्वे णियमा पडिक्कमंदि ।।१२७।।

ईर्यागोचरस्वप्नादिभवं सर्वमतीचारमाचरतु मा वाऽऽचरतु पूर्वे ऋषभनाथशिष्याश्चरमा वर्द्धमानशिष्याः सर्वे सर्वान्नियमान् प्रतिक्रमणदण्डकान् प्रतिक्रमन्त उच्चारयन्ति ।।१२७।।

किमित्याद्याः पश्चिमाश्च सर्वान्नियमा[2]दुच्चारयंति किमित्यजितादिपार्श्वनाथपर्यन्तशिष्योनोच्चारयन्ति इत्याशंकायामाह—

मज्झिमया दिढबुद्धी एयग्गमणा अमोहलक्खा य ।
तह्मा हु जमाचरंति तं गरहंता वि सुज्झंति ।।१२८।।

यस्मान्मध्यमतीर्थंकरशिष्या दृढबुद्धयोऽविस्मरणशीला एकाग्रमनसः स्थिरचित्ता अमोहलक्षा अमूढमनसः प्रेक्षापूर्वकारिणः तस्मात्स्फुटं यं दोषं आचरंति तस्माद्दोषाद् गर्हन्तोऽप्यात्मानं जुगुप्समानाः शुद्ध्यन्ते[3] शुद्धचारित्रा भवन्तीति ।।१२८।।

पुरिमचरिमादु जह्मा चलचित्ता चेव मोहलक्खा य ।
तो सव्वपडिक्कमणं अंधलयघोडय दिट्ठंतो ।।१२९।।

पूर्वचरमतीर्थंकरशिष्यास्तु यस्माच्चलचित्ताश्चैव दृढ़मनसो नैव, मोहलक्षाश्च मूढमनसो बहून् वारान् प्रतिपादितमपि शास्त्रं न जानंति ऋजुजडा वक्रजडाश्च यस्मात्तस्मात्सर्वप्रतिक्रमणं दण्डकोच्चारणं । तेषामन्धलकघोटकदृष्टान्तः । कस्यचिद्राज्ञोऽश्वोऽन्धस्तेन च वैद्यपुत्रं प्रति अश्वायौषधं पृष्टं स च

अैसे आगैं कहै है—

अर्थ—पूर्वै कहिये ऋषभनाथ के शिष्य, चरमा कहिये वर्द्धमान के शिष्य—यह समस्त ईर्यागोचरी स्वप्नादिकतैं उपज्या सर्व अतिचार हैं। ताहि प्राप्त होहु अथवा मति प्राप्त होहु, 'सर्व नियमान्' कहिये प्रतिक्रमण कैं दंडक हैं, तिनहि प्रतिक्रमंते कहिये उच्चारण करै हैं ।।१२७।।

आदि के, अंत के शिष्य हैं तै समस्त नियमकूं कौन कारण आचरण करै है? अजितनाथ कूं आदि दे पार्श्वनाथ परजंत भगवान् के शिष्य है तैं समस्त नियमकूं कौन कारण आचरण करै है? अजितनाथ कूं आदि दे पार्श्व परजंत भगवान के शिष्य हैं ते कौंन कारण नांही आचरण करै है? अैसी आशंका होतैं आचार्य कहै हैं—

अर्थ—जातैं मध्यम तीर्थंकरनि के शिष्य हैं ते, दृढ़बुद्धयः कहिये नांही विस्मरण होने का है स्वभाव जिनिका, एकाग्रमनसः कहिये स्थिर है चित्त जिनका, अमोहलक्षाः कहिये अमूढ है मन जिनका, परीक्षा पूर्वक कारज के करनैं वाले हैं । तातैं प्रगट जिस दोषकूं आचरै हैं, तिस दोषतैं, गर्हतः अपि कहिये आत्मा कूं निंदा करतैं हू शुद्ध्यन्ते कहिये शुद्ध चारित्र के धारी होय हैं ।।१२८।।

अर्थ—बहुरि जातैं आदि-अंत के तीर्थंकरनि के शिष्य, चलचित्रा कहिये दृढ़चित्त नांही हैं, मोहलक्षाः कहिये मूढ है मन जिनका, बहुत बार पढ़ाया हू शास्त्र कूं नांही जाणै है । तातैं ऋषभदेव के शिष्य ऋजु-जड़ हैं । तातैं तिनकैं सर्व प्रतिक्रमण दंडक का उच्चारण है।

१. अ. ब. ग. इरियं । २. ग नु । ३. ग. शुद्धयन्ति ।

वैद्यकं न जानाति, वैद्यश्च ग्रामं गतस्तेन च वैद्यपुत्रेणाश्वाक्षिनिमित्तानि सर्वाण्यौषधानि प्रयुक्तानि तैः सोऽश्वः स्वस्थीभूतः एवं साधुरपि यदि एकस्मिन्प्रतिक्रमणदण्डके स्थिरमना न भवति अन्यस्मिन् भविष्यति । अन्यस्मिन् वा न भवत्यन्यस्मिन् भविष्यतीति सर्वदण्डकोच्चारणं न्याय्यमिति, न चात्र विरोधः, सर्वेपि कर्मक्षयकरणसमर्था यतः इति ।।१२९।।

प्रतिक्रमणनिर्युक्तिमुपसंहरन् प्रत्याख्याननिर्युक्तिं प्रपंचयन्नाह—

पडिकमणणिजुत्ती पुण एसां कहिया मए समासेण ।
पच्चक्खाणणिजुत्ता एतो उड्ढं पवक्खामि ।।१३०।।

प्रतिक्रमणनिर्युक्तिरेषा कथिता मया समासेन पुनः प्रत्याख्याननिर्युक्तिमित ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामीति ।

तामेव प्रतिज्ञां निर्वहन्नाह—

णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते काले य होदि भावे य ।
एसो पच्चक्खाणे णिक्खेवो छव्विहो णेओ ।।१३१।।

अयोग्यानि नामानि पापहेतूनि विरोधकारणानि न कर्तव्यानि न कारयितव्यानि नानुमंतव्यानीति नामप्रत्याख्यानं प्रत्याख्याननाममात्रं वा, अयोग्याः स्थापनाः पापबंधहेतुभूताः मिथ्यात्वादिप्रवर्त्तका अपरमार्थरूपदेवतादिप्रतिविंबानि पापकारणद्रव्यरूपाणि च न कारयितव्यानि नानुमन्तव्यानि इति स्थापनाप्रत्याख्यानं।

इहां अंधलक घोटक का दृष्टान्त आचार्य कह्या, ताका विशेष असा जाननां—काहू राजा कै अंधा घोड़ा था । सो राजा वैद्यपुत्रकूं घोड़ा कै अर्थि औषधि पूछी । सो वैद्य-विद्या नांही जाणै । बहुरि वैद्य है सो गाँव गया । तिस वैद्यपुत्र नैं घोड़ा के नेत्रनि कूं सूझवे के कारण सर्व औषधि अंजन कीये । तिन औषधिनिकरि सो घोड़ा सुखी भया । असे साधु हू जो एक प्रतिक्रमण दंडक विषैं स्थिरचित्त नांही होय, तौ अन्य विषैं होसी । वा अन्य विषैं नांही होय तौ और विषै होसी । असे सर्वदंडक का उच्चारण न्याय है । यामें चारित्र का विरोध नांही। जातैं सर्वही प्रतिक्रमण के दंडक कर्म्मक्षय के करबे विषैं समर्थ हैं ।।१२९।।

यह प्रतिक्रमण निर्युक्ति है, ताहि संकोचते आगै प्रत्याख्यान निर्युक्ति है, ताहि विस्तारते आचार्य कहैं है—

अर्थ—हम संक्षेपकरि यह प्रतिक्रमण निर्युक्तिः है सो मेरे द्वारा कही, बहुरि याकै आगै प्रत्याख्यान की निर्युक्ति है, ताहि हम कहैंगे ।।१३०।।

आगैं आचार्य तिसही प्रतिज्ञा कूं निर्वाह करै है—

अर्थ—१-अजोग्य जे **नाम** पाप के कारण, विरोध के कारणतें न करणे, न करावणे, न अनुमोदना करणे— यह नामप्रत्याख्यान है। अथवा प्रत्याख्यान का नाममात्र सो नाम-प्रत्याख्यान है । २-अजोग्य जे स्थापना, पापबंध के कारणभूत मिथ्यात्वादिक की प्रवृत्ति के कर्त्ता, अपरमार्थ रूप देवतादिक के प्रतिबिंब-पाप के कारण रूप द्रव्य ते न करणे, न करावणे, न अनुमोदनाकरणे— यह स्थापना-प्रत्याख्यान है। बहुरि प्रत्याख्यान विषैं परिणया पुरुष का प्रतिबिंब तद्रूप वा अतद्रूप सो स्थापना प्रत्याख्यान है । ३-पापबंध का कारण द्रव्य जो सावद्य बहुरि निरवद्यहु तप-निमित्त त्यजा सौ न भौगणा, न और कूं भोगावनां, न अनुमोदना करणें—या प्रकार, बहुरि द्रव्य-प्रत्याख्यान-प्राभृत का ज्ञाता,

प्रत्यख्यानपरिणतप्रतिबिंबं च सद्भावासद्भावरूपं स्थापनाप्रत्याख्यानमिति, पापबन्धकारणद्रव्यं सावद्यं निरवद्यमपि तपोनिमित्तं त्यक्तं न भोक्तव्यं न भोजयितव्यं नानुमंतव्यमिति द्रव्यप्रत्याख्यानं प्राभृतज्ञायकोऽनुपयुक्तस्तच्छरीरं भावी जीवस्तद्व्यतिरिक्तं च द्रव्यप्रत्याख्यानं असंयमादिहेतुभूतस्य क्षेत्रस्य परिहार: क्षेत्रप्रत्याख्यानं, प्रत्याख्यानपरिणतेन सेवितप्रदेशे[1] प्रवेशो वा क्षेत्रप्रत्याख्यानं, असंयमादिनिमित्तभूतस्य[2] कालस्य त्रिधा परिहार: कालप्रत्याख्यानं प्रत्याख्यानपरिणतेन सेवितकालो वा, मिथ्यात्वासंयमकषायादीनां त्रिविधेन परिहारो भावप्रत्याख्यानं भावप्रत्याख्यानप्राभृतज्ञायकस्तद्विज्ञानं प्रदेशादित्येवमेष नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावविषय: प्रत्याख्याने निक्षेप: षड्विधो ज्ञातव्य इति । प्रतिक्रमणप्रत्याख्यानयो: को विशेष इति चेन्नैष दोषोऽतीतकालविषयातीचारशोधनं प्रतिक्रमणमतीतभविष्यद्वर्त्तमानकाविषयातिचारनिर्हरणं प्रत्याख्यानमथवा व्रताद्यतीचारशोधनं प्रतिक्रमणमतीचारकारणसचित्ताचित्तमिश्रद्रव्यविनिवृत्तस्तपोनिमित्तं प्रासुकद्रव्यस्य च निवृत्ति: प्रत्याख्यानं यस्मादिति ।।१३१।।

प्रत्याख्यायकप्रत्याख्यानप्रत्याख्यातव्यस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

पच्चक्खाओ पच्चक्खाणं पच्चक्खियव्वमेवं तु ।
तीदे पच्चुप्पण्णे अणागदे चेव कालह्मि ।।१३२।।

प्रत्याख्यायको जीव: संयमोपेत: प्रत्याख्यानं परित्यागपरिणाम: प्रत्याख्यातव्यं द्रव्यं सचित्ताचित्तमिश्रकं सावद्यं निरवद्यं वा । एवं त्रिप्रकार[3] प्रत्याख्यानस्वरूपोऽन्यथाऽनुपपत्तेरिति । तत्त्रिविधमप्यतीते काले प्रत्युत्पन्ने कालेऽनागते च काले भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालेष्वपि ज्ञातव्यमिति ।।१३२।।

उपयोग रहित जीव, ताका शरीर, भावि जीव, वहुरि व्यतिरिक्त - सो द्रव्य-प्रत्याख्यान है । ४-असंजमादिक के कारणभूत क्षेत्र का परिहार सो क्षेत्र प्रत्याख्यान है । अथवा प्रत्याख्यान विषैं परिणया जो जीव, ताकरि सेया (सोवित) प्रदेश विषैं प्रवेश है सो क्षेत्र-प्रत्याख्यान है । ५-असंजमादिक के कारणभूत अैसा काल का तीन प्रकार परिहार है सो काल-प्रत्याख्यान है । अथवा प्रत्याख्यान विषैं परिणया पुरुषकरि सेवित काल है सो काल प्रत्याख्यान है । ६-मिथ्यात्व, असंजम, कषायादिकनि का तीन प्रकारकरि परिहार सो भाव-प्रत्याख्यान है ।

प्राभृत का ज्ञाता वा ताका विज्ञान इस प्रदेशतैं या प्रकार यह १-नाम, २-स्थापना, ३-द्रव्य, ४-क्षेत्र, ५-काल, ६-भावकै गोचर प्रत्याख्यान विषैं निक्षेप हैं । सो छह प्रकार जाणवे जोग्य है ।

आगै प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान विषैं कौंन विशेष? अैसा कोउ पूछै । तौ यामैं दोष नांही अतीतकाल संबंधी अतीचार का सोधनां सो प्रतिक्रमण है । भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल संबंधी अतीचार का परिहार सो प्रत्याख्यान है । अथवा व्रतादिक के अतीचार को सोधन है सो प्रतिक्रमण है । अतीचार के कारण-अैसे सचित्त, अचित्त, मिश्र द्रव्यनि की निवृत्ति, बहुरि तप के निमित्त प्रासुक द्रव्य की निवृत्ति सो प्रत्याख्यान है ।।१३१।।

आगैं प्रत्याख्यायक, प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यातव्य-इनका स्वरूप जाणावणें अर्थि कहै है—

अर्थ—संजम सहित अैसा जीव है सो प्रत्याख्यायक है । परित्याग का परिणाम है सो प्रत्याख्यान है । सचित्त, अचित्त, मिश्र अथवा सावद्य-निरवद्य अैसा द्रव्य है सो प्रत्याख्यातव्य है । अैसे तीन प्रकार ही प्रत्याख्यान के स्वरूप की अन्यथानुपपत्ति (अन्यथा अप्राप्ति) है । यातैं सो तीन प्रकार हू प्रत्याख्यान अतीत काल विषैं, वर्तमान काल विषैं, भविष्यत्काल विषैं जाणवे जोग्य हैं ।।१३२।।

---

१. क °देशो वा । २. क °दिहेतुभूतस्य । ३. क. त्रिप्रकार एवं ।

प्रत्याख्यायकस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

आणाय जाणणावि य उवजुत्तो मूलमज्झणिद्देसे ।
सागारमणागारं अणुपालेंतो दढधिदीओ ।।१३३।।

आणाविय आज्ञया गुरूपदेशेनार्हदाद्याज्ञया चारित्रश्रद्धया, **जाणणाविय** ज्ञापकेन गुरुनिवेदनेनाथवा परमार्थतो ज्ञात्वा दोषस्वरूपं तपोहेतुं वाह्याभ्यन्तरं प्रविश्य ज्ञात्वाऽपि चोपयुक्तः षट्प्रकारसमन्वितः मूले आदौ ग्रहणकाले मध्ये मध्यकाले निर्देशे समाप्तौ सागारं गार्हस्थ्यं संयतासंयतयोग्यमथवा साकारं सविकल्पं भेदसहितं अनागारं संयमसमेतोद्भवं यतिप्रतिबद्धमथवाऽनाकारं निर्विकल्पं सर्वथा परित्यागमनुपालयन् रक्षयन् दृढधृतिकः सहढधैर्यः मूलमध्यनिर्देशे साकारमनाकारं च प्रत्याख्यानमुपयुक्तः सन् आज्ञया सम्यग्विवेकेन वाऽनुपालयन् दृढधृतिको यो भवति स एष प्रत्याख्यायको नामेति सम्बन्धः । उत्तरेणाथवा मूलमध्यनिर्देश आज्ञयोपयुक्तः साकारमनाकारं च प्रत्याख्यानं च गुरुं ज्ञापयन् प्रतिपादयन् अनुपालयंश्च दृढधृतिकः प्रत्याख्यायको भवेदिति ।।१३३।।

शेषं प्रतिपादयन्नाह—

एसो पच्चक्खाओ पच्चक्खाणिति वुच्चदे चाओ ।
पच्चक्खिदव्वमुवहिं आहारो चेव बोधव्वो ।।१३४।।

एष प्रत्याख्यायकः पूर्वेण सम्बन्धः प्रत्याख्यानमित्युच्यते । त्यागः सावद्यस्य द्रव्यस्य निरवद्यस्य वा तपोनिमित्तं परित्यागः प्रत्याख्यानं प्रत्याख्यातव्यः परित्यजनीय उपधिः परिग्रहः सचित्ताचित्तमिश्रभेदभिन्नः क्रोधादिभेदभिन्नश्चाहारश्चाभक्ष्यभोज्यादिभेदभिन्नो बोद्धव्य इति ।।१३४।।

आगै प्रत्याख्यायक का स्वरूप कह्या है, ताहि उपदेश देते संते कहे हैं—

अर्थ—आज्ञा जो गुरू का उपदेश, अर्हंतादिक की आज्ञा, चारित्र विषैं श्रद्धा—ताकरि कैं, बहुरि जाणणा कहिये ज्ञायक जो गुरुनितैं निवेदन, ता करिकैं अथवा परमार्थतैं दोष का स्वरूप जाणिकरि बाह्य-आभ्यंतर तप का कारण जाणिकरि छह प्रकार प्रत्याख्यानकरि सहित, मूल कहिये आदि जो ग्रहणकाल ता विषैं, मध्य कहिये । मध्यकाल विषैं, निर्देश कहिये- समाप्तिकाल विषैं, सागारं कहिये गृहस्थपनां संयतासंयत कै जोग्य अथवा साकार कहिये भेद सहित, अनाकारं कहिये संजम सहित उपज्या मुनि करि सेव्य अथवा अनाकारं कहिये निर्विकल्प, सर्वथा परित्यागकूं पालतौ दृढ़ धैरजकरि सहित जो है सो प्रत्याख्यान का कर्त्ता (प्रत्याख्यायक) है - इहां ऐसा संबंध करणां । अथवा उत्तरकरिकै ऐसा अर्थात् अगली गाथा से संबंध जाणणा । आदि विषैं, मध्य विषैं, अंत विषैं आज्ञाकरि सहित साकार, बहुरि अनाकार प्रत्याख्यान हैं, ताहि गुरु कूं जणावती, निवेदन करतो, पालतौ बहुरि दृढ़ है धीरज जाकै ऐसो प्रत्याख्यान कौ कर्त्ता होय है ।।१३३।।

अवशेष कूं प्रतिपादन करिते आचारिज कहै है—

अर्थ—एष प्रत्याख्यायकः - इस पद का पूर्वकरिकै संबंध करना । तातैं पूर्व गाथा मैं कह्या सो प्रत्याख्यायक का स्वरूप जाणणां। प्रत्याख्यान ऐसा त्याग कूं कहिये है सो कहा? सावद्य वहुरि निरवद्य ऐसा द्रव्य का तप निमित्त त्याग सो प्रत्याख्यान है । प्रत्याख्यातव्य नाम त्याज्य का है सो कहा? उपधि कहिये परिग्रह १-सचित्त, २-अचित्त, ३-मिश्र भेदकरि जुगत, बहुरि क्रोधादिक भेदकरि जुगत, बहुरि आहार-भक्ष्य-भोज्यादिक भेदकरि जुगत बोद्धव्यः कहिये जाणवे योग्य है ।।१३४।।

प्रस्तुतं प्रत्याख्यानं प्रपंचयन्नाह—

पच्चक्खाणं उत्तरगुणेसु खमणादि होदि णेयविहं ।
तेणवि अ एत्थ पयदं तंपि य इणमो दसविहं तु ।।१३५।।

प्रत्याख्यानं मूलगुणविषयमुत्तरगुणविषयं वक्ष्यमाणादिभेदेनाशनपरित्यागादिभेदेनानेकविधमनेकप्रकारं । तेनापि चात्र प्रकृतं प्रस्तुतं अथवा तेन प्रत्याख्यायकेनात्र यत्नः कर्त्तव्यस्तदेतदपि च दशविधं तदपि चैतत् क्षमणादि दशप्रकारं भवतीति वेदितव्यम् ।।१३५।।

तान् दशभेदान् प्रतिपादयन्नाह—

अणागदमदिकंतं कोडीसहिदं णिखंडिदं चेव ।
सागारमणागारं परिमाणगदं अपरिसेसं ।।१३६।।

अणागदं अनागतं भविष्यत्कालविषयोपवासादिकरणं चतुर्दश्यादिषु यत्कर्त्तव्यं तत्त्रयोदश्यादिषु यत् क्रियते तदनागतं प्रत्याख्यानं, **अदिकंतं** अतिक्रान्तं अतीतकालविषयोपवासादिकरणं चतुर्दश्यादिषु यत्कर्त्तव्यमुपवासादिकं तत्प्रतिपदादिषु क्रियतेऽतिक्रान्तं प्रत्याख्यानं । **कोडीसहिदं** कोटिसहितं संकल्पसमन्वितं शक्त्यपेक्षयोपवासादिकं श्वस्तने दिने स्वाध्यायवेलायामतिक्रान्तायां यदि शक्तिर्भविष्यत्युपवासादिकं करिष्यामि नो चेन्न करिष्यामीत्येवं यत् क्रियते प्रत्याख्यानं तत्कोटिसहितमिति, **णिक्खंडिदं** निखंडितं अवश्यकर्त्तव्यं पाक्षिकादिषूपवासकरणं निखंडितं प्रत्याख्यानं, साकारं सभेदं सर्वतोभद्रकनकावल्याद्युपवासविधिर्नक्षत्रादिभेदेन करणं तत्साकारप्रत्याख्यानं, अनाकारं स्वेच्छयोपवासविधिर्नक्षत्रादिकमंतरेणोपवासादिकरणमनाकारं प्रत्याख्यानं, परिमाणगतं प्रमाणसहितं षष्ठाष्टमदशमद्वादशपक्षार्द्धपक्षमासादिकालादिपरिमाणेनोपवासादिकरणं परिमाणगतं प्रत्याख्यानं, अपरिशेषं यावज्जीवं

आगैं कह्या जो प्रत्याख्यान ताकूं विस्तारतैं संते आचारिज कहै है—

अर्थ—प्रत्याख्यान हैं सो मूलगुणनिकै गोचर उत्तरगुणनिकै गोचर कहैंगे । जे अनशनादिक भेद ताकरिकै अनेक प्रकार हैं । ताहि करिहूं इहां प्रकरण हैं अथवा तिस प्रत्याख्यान के कर्त्ताकरि इहां जतन करवे जोग्य है । सो हू यह प्रत्याख्यान क्षमणादिक दश प्रकार जाणवे जोग्य है ।।१३५।।

आगैं तिस दश भेदनिकूं उपदेश करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ—१- अनागतं कहिये भविष्यत्काल गोचर जो उपवासादिक ताका करणां, चतुर्दशी आदि पर्वनि विषैं जो कर्तव्य सो त्रयोदशी आदि तिथि विषैं करिये सो अनागत नाम प्रत्याख्यान है । २- अतिक्रांतं कहिये अतीत काल गोचर जो उपवासादिक ताका करणां, चतुर्दशीकूं आदिदे पर्व विषैं जो उपवासादिक कर्तव्य हैं सो प्रतिपदा जो पडिवा तिसकूं आदि दे तिथि विषै करिये सो अतिक्रांत नाम प्रत्याख्यान है । ३- कोटिसहितं कहिये संकल्प सहित शक्ति की अपेक्षा उपवासादिक का करणां, कलि के दिन विषैं स्वाध्याय की वेला उल्लंघन होतैं जो शक्ति होयगी तौ उपवास करैगैं, शक्ति नांही होयगी तो नांही करुंगा—या प्रकार करिये सो कोटी सहित प्रत्याख्यान है । ४- निखण्डितं कहिये पाक्षिकादिक दिवस विषैं अवश्य उपवास का करणां, सो निखंडित प्रत्याख्यान है । ५-साकारं कहिये भेद सहित सर्वतौभद्र, कनकावली आदि उपवासनिकी विधि, नक्षत्रादिक के भेदकरि करणां सो साकार प्रत्याख्यान है । ६-अनाकारं कहिये स्वेच्छाकरि उपवास का विधान नक्षत्रादि

चतुर्विधाऽऽहारादित्यागोऽपरिशेषं प्रत्याख्यानम् ।।१३६।।

तथा—

अद्धाणगदं णवमं दसमं तु सहेदुगं वियाणाहि ।
पच्चक्खाणवियप्पा णिरुत्तिजुत्ता जिणमदह्मि ।।१३७।।

अद्धाणगदं अध्वानं गतमध्वगतं मार्गविषयाटवीनद्यादिनिष्क्रमणद्वारेणोपवासादिकरणं । अध्वगतं नाम प्रत्याख्यानं नवमं, सहहेतुना वर्त्तत इति सहेतुकमुपसर्गादिनिमित्तापेक्षमुपवासादिकरणं सहेतुकं नाम प्रत्याख्यानं दशमं विजानीहि, एवमेतान्प्रत्याख्यानकरणविकल्पान्विभक्तियुक्तान्तथानुगतान्[1] परमार्थरूपाञ्जिनमते विजानीहीति ।।१३७।।

पुनरपि प्रत्याख्यानकरणविधिमाह—

विणएण तहणु[2]भासा हवदि य अणुपालणाय परिणामे ।
एदं पच्चक्खाणं चदुव्विधं होदि णादव्वं ।।१३८।।

विनयेन शुद्धं तथाऽनुभाषयाऽनुपालनेन परिणामेन च यच्छुद्धं भवति तदेतत्प्रत्याख्यानं चतुर्विधं भवति ज्ञातव्यमिति यस्मिन् प्रत्याख्याने विनयेन सार्द्धमनुभाषाप्रतिपालनेन सह परिणामशुद्धिस्तत्प्रत्याख्यानं चतुर्विधं भवति ज्ञातव्यमिति ।।१३८।।

बिना उपवासादिक का करणा सो अनाकार प्रत्याख्यान है । ७- परिमाणगतं कहिये प्रमाण सहित बेला, तेला, चौला, पंच, छह उपवास, पक्ष, अर्द्धपक्ष, मासादिक काल के प्रमाणकरि उपवासादिक का करणां सो परिमाणगत प्रत्याख्यान है । ८- अपरिशेषं कहिये यावज्जीव च्यार प्रकार आहारादिक का त्याग सो अपरिशेष प्रत्याख्यान है । तैसें ९- अध्वानगतं कहिये मार्गगोचर—वनी, नदी आदि के निकसवे के द्वारकरि उपवासादिक का करणा सो अध्वगत नाम नौमा (नवम) प्रत्याख्यान है । १०-हेतुकरि सहित वरतै सो सहेतुक कहिये । उपसर्गादिक कारण की है अपेक्षा जा विषैं अैसे उपवासादिक का करणां सो सहेतुक नाम दशमा प्रत्याख्यान जानहु ।

अैसे इन प्रत्याख्यान के भेदनिकूं निरुक्तियुक्तान् कहिये अर्थानुकूल तैसा ही परमार्थ रूप जिनमत विषैं जानहु ।।१३६-१३७।।

बहुरि हू प्रत्याख्यान करणै की विधि है, तांहि कहै है—

अर्थ—विनयकरि शुद्ध तैंसै ही अनुभाषाकरि अनुपालन करि, बहुरि परिणामकरि जो शुद्ध है, सौ यह प्रत्याख्यान च्यार प्रकार जाणवै ज्योग्य है । जिस प्रत्याख्यान विषैं विनयकरि सहित, अनुभाषा परिपालनकरि सहित परिणाम की शुद्धि सो प्रत्याख्यान च्यार प्रकार जाणवे जोग्य है ।।१३८।।

---

१. ग. भक्तियुक्तान् अर्थानुगतान् । २. अ. ब. तहाणु ।

विनयप्रत्याख्यानं तावदाह—

किदियम्मं उवचारिय-विणओ तह णाणदंसणचरित्ते ।
पंचविधविणयजुत्तं विणयसुद्धं हवदि तं तु ।।१३९।।

कृतिकर्म सिद्धभक्तियोगभक्तिगुरुभक्तिपूर्वकं कायोत्सर्गकरणं, पूर्वोक्तः औपचारिकविनयः कृतकरमुकुलललाटपट्टविनतोत्तमांगः प्रशांततनुः पिच्छिकया विभूषितवक्ष इत्याद्युपचारविनयः, तथा ज्ञानदर्शनचारित्रविषयो विनयः, एवं क्रियाकर्मादिपंचप्रकारेण विनयेन युक्तं विनयशुद्धं तत्प्रत्याख्यानं भवत्येवेति ।।१३९।।

अनुभाषायुक्तं प्रत्याख्यानमाह—

अणुभासदि गुरुवयणं अक्खरपदवंजणं कमविसुद्धं ।
घोसविसुद्धी सुद्धं एवं अणुभासणासुद्धं ।।१४०।।

अणुभासदि अनुभाषते अनुवदति गुरुवचनं गुरुणा यथोच्चारिता प्रत्याख्यानाक्षरपद्धतिस्तथैव तामुच्चरतीति, अक्षरमेकस्वरयुक्तं व्यंजनं, इच्छामीत्यादिकं पदं सुबन्तं मिङंतं चाक्षरसमुदायरूपं, व्यंजनमनक्षरवर्णरूपं खंडाक्षरानुस्वारविसर्जनीयादिकं क्रमविशुद्धं येनैव क्रमेण स्थितानि वर्णपदव्यंजनवाक्यादीनि ग्रंथार्थोभयशुद्धानि तेनैव पाठः, घोषविशुद्ध्या च शुद्धं गुर्वादिकवर्णविषयोच्चारणसहितं मुख्यमध्योच्चारणरहितं महाकलकलेन विहीनं स्वरविशुद्धमिति, एवमेतत्प्रत्याख्यानमनुभाषणशुद्धं वेदितव्यमिति ।।१४०।।

आगैं प्रथम ही विनय प्रत्याख्यान है, ताहि कहै है—

अर्थ—कृतिकर्म कहिये सिद्धभक्ति, गुरुभक्ति पूर्वक कायोत्सर्ग का करणां सो कृतिकर्म्म है । पूर्वोक्त औपचारिक विनय तो कीया है कर-मुकुल जाविषैं— अैसा ललाट पट्टकरि नम्र है मस्तक जाका, शांत है शरीर जाका, पीछीकरि शोभित है उरु जाका इत्यादिक औपचारिक विनय है । तैंसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र विषैं विनय या प्रकार क्रियाकर्म्म कूं आदि दे पंच प्रकार विनयकरि सहित सो प्रत्याख्यान विनयकरि शुद्ध होय हैं ।।१३९।।

अनुभाषा सहित प्रत्याख्यान है, ताहि कहै है—

अर्थ—गुरुवचनमनुभाषते कहिये गुरु जैसैं प्रत्याख्यान के अक्षर-समूह उच्चारण कराये तैसैं ही तिसकूं उच्चारण करै । एकस्वरकरि युक्त अैसा व्यंजन है तो अक्षर है! सुबंत बहुरि मिङ्त अक्षरनि का समुदाय रूप 'इच्छामि' इत्यादिक पद है ! । अव्यक्त वर्ण रूप खोडा अक्षर (खण्डाक्षर), अनुस्वार, विसर्जनीय कूं आदि दे व्यंजन है । जिस क्रम करिके वर्ण, पद, व्यंजन वाक्यादिक शब्दकरि, अर्थकरि, शब्दार्थकरि शुद्धि स्थित है, तिसही क्रमकरि पढणां, सो क्रम-विशुद्ध है । बहुरि 'घोष विशुद्धय-शुद्धं अर्थात् गुरू आदि वर्ण संबंधी उच्चार-सहित होय। मुख ही कै मध्य उच्चारकरि रहित होय, महान् कल-कल शब्दकरि रहित होय, स्वरकरि शुद्ध होय, (यह सब घोषशुद्धि है ।)— या प्रकार यह प्रत्याख्यान-अनुभाषण-विशुद्ध जाणणां ।।१४०।।

अनुपालनसहितं प्रत्याख्यानस्य स्वरूपमाह—

आदंके उवसग्गे समे य दुब्भिक्खवुत्ति कंतारे ।
जं पालिदं ण भग्गं एदं अणुपालणासुद्धं ।।१४१।।

आतंक: सहसोत्थितो व्याधि:, उपसर्गो देवमनुष्यतिर्यक्कृतपीडा, श्रम उपवासालाभमार्गादिकृत: परिश्रम: ज्वररोगादिकृतश्च, दुर्भिक्षवृत्तिर्वर्षाकालराज्यभंगविड्वरचौराद्युपद्रवभयेन शस्याद्यभावेन[1] भिक्षाया: प्राप्त्यभाव:, कान्तारे महाटवीविंध्यारण्यादिकभयानकप्रदेश:, एतेषूपस्थितेष्वातंकोपसर्गदुर्भिक्षवृत्तिकान्तारेषु यत्प्रतिपालितं रक्षितं न भग्नं न मनागपि विपरिणामरूपं जातं तदेतत्प्रत्याख्यानमनुपालनविशुद्धं नाम ।।१४१।।

परिणामविशुद्धप्रत्याख्यानस्य स्वरूपमाह—

रागेण व दोसेण व मणपरिणामेण दूसिदं जं तु ।
तं पुण पच्चक्खाणं भावविसुद्धं तु णादव्वं ।।१४२।।

रागपरिणामेन द्वेषपरिणामेन च न दूषितं न प्रतिहतं विपरिणामेन यत्प्रत्याख्यानं.तत्पुन: प्रत्याख्यानं भावविशुद्धं तु ज्ञातव्यमिति । सम्यग्दर्शनादियुक्तस्य नि:कांक्षस्य वीतरागस्य समभावयुक्तस्याहिंसादिव्रतसहितस्य शुद्धभावस्य प्रत्याख्यानं परिणामशुद्धं भवेदिति ।।१४२।।

चतुर्विधाहारस्वरूपमाह—

असणं खुहप्पसमणं पाणाणमणुग्गहं तहा पाणं ।
खादंति खादियं पुण सादंति सादियं[2] भणियं ।।१४३।।

आगैं अनुपालन सहित प्रत्याख्यान का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ—तत्काल उपजी पीड़ा है सो आतंक है । देव, मनुष्य, तिरजंचकरि करी पीड़ा है, सो उपसर्ग है । उपवास, अलाभ, मार्ग्ग इत्यादिक करि उपज्या जो परिश्रम बहुरि ज्वर, रोगादिक-इनकरि कीया सो खेद श्रम है । वर्षाकाल का अभाव, राज्यभंग, विड्वर (बदमाश), चोर इत्यादिक उपद्रव के होवे करि, धान्यादिक निपजने का अभाव करि भिक्षा की प्राप्ति का अभाव है, सो दुर्भिक्ष वृत्ति है । महाटवी, विंध्यारण्य कूं आदि दे भयानक प्रदेश हैं, ते कान्तार हैं—यह जो आतंक, उपसर्ग, श्रम, दुर्भिक्षवृत्ति कांतार, सो प्राप्त होतै संतै जो प्रत्याख्यान, पालितं कहिये रक्षा कीया, न भग्नं कहिये किंचित् हू और रूप न भया, सो यह प्रत्याख्यान अनुपालन-विशुद्ध-ऐसा नाम जाणणां ।।१४१।।

आगैं परिणाम-विशुद्ध प्रत्याख्यान का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ—राग परिणामकरि अथवा द्वेष परिणामकरि, बहुरि मन के विकारकरि जो प्रत्याख्यान दूषित नांही होय सो प्रत्याख्यान भावविशुद्ध जाणणां । सम्यक्दर्शनादिककरि युक्त, वांछाकरि रहित, वीतराग, समभावकरि युक्त, अहिंसा आदि व्रतानि करि सहित शुद्ध है भाव जाकै—ऐसे मुनीश्वरकै भावशुद्ध प्रत्याख्यान होय है ।।१४२।।

आगैं चउविह आहार का स्वरूप कहै है—

अर्थ—क्षुधा का है उपशम जाकरि, भूख का मिटनां सो अशन है । प्राणानां कहिये दश प्रकार प्राणनि को है उपगार जाकरि सो

---

१. ग. शस्यादिनिष्पत्य भावेन । २. ग. सादंति य सादियं ।

अशनं क्षुदुपशमनं बुभुक्षोपरतिः प्राणानां दशप्रकाराणामनुग्रहो येन तत्तथा खाद्यत[1] इति खाद्यं रसविशुद्धं लड्डुकादि पुनरास्वाद्यत इति आस्वाद्यमेलाकक्कोलादिकमिति भणितमेवंविधस्य चतुर्विधाहारस्य प्रत्याख्यानमुत्तमार्थप्रत्याख्यानमिति ।।१४३।।

चतुर्विधस्याहारस्य भेदं प्रतिपाद्याभेदार्थमाह—

सव्वोवि य आहारो असणं सव्वोवि वुच्चदे पाणं ।
सव्वोवि खादियं पुण सव्वोवि य सादियं भणियं ।।१४४।।

सर्वोऽप्याहारोऽशनं तथा सर्वोऽप्याहारः पानमित्युच्यते तथा सर्वोऽप्याहारः खाद्यं तथा सर्वोऽप्याहारः स्वाद्यमिति भणितं एवं चतुर्विधस्याप्याहारस्य द्रव्यार्थिकनयापेक्षयक्यं आहारत्वेनाभेदादिति ।।१४४।

पर्यायार्थिकनयापेक्षया पुनश्चतुर्विधस्तथैव प्राह—

असणं पाणं तह खादियं चउत्थं च सादियं भणियं ।
एवं परूवदं दु सद्दहिदुं जे सुही होदि ।।१४५।।

एवमशनपानखाद्यस्वाद्यभेदेनाहारं चतुर्विधं प्ररूपितं श्रद्धाय सुखी भवतीति फलं व्याख्यातं भवतीति ।।१४५।।

प्रत्याख्याननिर्युक्तिं व्याख्याय कायोत्सर्गनिर्युक्तिस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

पच्चक्खाणणिजुत्ती एसा कहिया मए समासेण ।
काओसग्गणिजुत्ती एत्तो उड्ढं पवक्खामि ।।१४६।।

पान है । खायिये सो खाद्य हैं । लाडू कूं आदि दे पकवान—बहुरि आस्वाद्यते कहिए मुख का आस्वाद करिये सो स्वाद्य हैं—इलायची कूं, कंकोल कूं आदि दे । भणितं कहिये कह्या है । या प्रकार चतुर्विध आहार का त्याग सो उत्तमार्थ प्रत्याख्यान जाननां ।।१४३।।

च्यार प्रकार अैसा हू आहार का भेद जणाय अभेद के अर्थि कहै हैं—

अर्थ—सर्व ही आहार अशन कहिये है । सर्व ही आहार पान कहिये है । तैसे सर्व ही आहार खाद्य, तैसे ही सर्व आहार स्वाद्य कहिये-अैसे कह्या । अैसें चतुर्विध हू आहारकैं द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षाकरि एकता है । आहारपनैं करि अनैक भेद हैं ।।१४४।।

यातै बहुरि पर्यायार्थिक नय की अपेक्षाकरि आहार च्यार प्रकार हैं । तैंसे ही कहै है—

अर्थ—या प्रकार अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भेदकरि च्यार प्रकार आहार कह्या । तिसकूं श्रद्धानकरि सुखी होय है । अैसै यह (इसका) फल व्याख्यान किया ।।१४५।।

अैसें प्रत्याख्यान निर्युक्ति है, ताहि व्याख्यानकरि, कायोत्सर्ग निर्युक्ति कूं व्याख्यान करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ—यह प्रत्याख्यान की निर्युक्ति हम संक्षेपकरि कही । यातैं आगैं कायोत्सर्ग निर्युक्ति है । ताहि हम कहैंगे ।।१४६।।

---

१. ग. तत्तथा पानं खाद्यत ।

प्रत्याख्याननिर्युक्तिरेषा कथिता मया समासेन कायोत्सर्गनिर्युक्तिमित ऊर्ध्वं प्रवक्ष्य इति[1] । स्पष्टोर्थः ।।१४६।।

णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते काले य होदि भावे य ।
एसो काउस्सग्गे णिक्खेवो छव्विहो णेओ ।।१४७।।

खरपरुषादिसावद्यनामकरणद्वारेणागतातीचारशोधनाय कायोत्सर्गो नाममात्रः कायोत्सर्गो वा नामकायोत्सर्गः, पापस्थापनाद्वारेणा[2]गतातीचारशोधननिमित्तकायोत्सर्गपरिणतप्रतिविंवता[3] स्थापनाकायोत्सर्गः सावद्यद्रव्यसेवाद्वारेणागतातीचारनिर्हरणाय कायोत्सर्गः, कायोत्सर्गव्यावर्णनीयप्राभृतज्ञोऽनुपयुक्तस्तच्छरीरं वा द्रव्यकायोत्सर्गः, सावद्यक्षेत्रसेवनादागतदोषध्वंसनाय कायोत्सर्गः कायोत्सर्गपरिणतसेवितक्षेत्रं वा क्षेत्रकायोत्सर्गः, सावद्यकालाचरणद्वारागतदोषपरिहाराय कायोत्सर्गः कायोत्सर्गपरिणतसहितकालो वा कालकायोत्सर्गः, मिथ्यात्वाद्यतीचारशोधनाय भावकायोत्सर्गः कायोत्सर्गव्यावर्णनीयप्राभृतज्ञ उपयुक्तसंज्ञानं जीवप्रदेशो वा भावकायोत्सर्गः, एवं नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावविषय एष कायोत्सर्गनिक्षेपः षड्विधो ज्ञातव्य इति ।।१४७।।

कायोत्सर्गकारणमन्तरेण कायोत्सर्गः प्रतिपादयितुं न शक्यत इति तत्स्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

काउस्सग्गो काउस्सग्गी काउस्सग्गस्स कारणं चेव ।
एदेसिं पत्तेयं परूवणा होदि तिण्हंपि ।।१४८।।

आगैं नामादिककरि कायोत्सर्ग का निरूपण करिवे कूं कहै हैं—

अर्थ— खरा (तीक्ष्ण), परुष (कठोर) कूं आदि दे सावद्य नाम के करवे के द्वारकरि आये अतीचारनि के सोधवे अर्थि कायोत्सर्ग अथवा नाममात्र कायोत्सर्ग सो नाम **कायोत्सर्ग है** । पापरूप स्थापना के द्वारकरि आये अतीचारनि के सोधिवे निमित्त जो कायोत्सर्ग अथवा कायोत्सर्ग विषै परिणया पुरुष का प्रतिबिंब की स्थापना सो **स्थापना कायोत्सर्ग** है । सावद्य द्रव्य के सेवे के द्वारकरि आये अतीचारनि के निवारवे अर्थि जो कायोत्सर्ग अथवा कायोत्सर्ग के वर्णन करवे जोग्य ऐसा प्राभृत का ज्ञाता, उपयोग रहित अथवा ताका शरीर सो **द्रव्य कायोत्सर्ग** है । सावद्य क्षेत्र के सेवा के द्वारकरि आये दोषनि के निवारबे अर्थि जो कायोत्सर्ग है अथवा कायोत्सर्ग विषैं परिणया तिसकरि सेया क्षेत्र है सो **क्षेत्र कायोत्सर्ग** है । सावद्यकाल के आचरण द्वारकरि आये अतीचारनि के परिहार अर्थि जो कायोत्सर्ग अथवा कायोत्सर्ग विषै परिणया तिस सहित कायोत्सर्ग है सो **काल कायोत्सर्ग** है । मिथ्यात्व कूं आदि दे अतीचारन के सोधिवे अर्थि जो कायोत्सर्ग अथवा कायोत्सर्ग का वर्णन जोग्य प्राभृत का ज्ञाता, उपयोग युक्त ताका ज्ञान अथवा जीव का प्रदेश सो **भाव कायोत्सर्ग** है । या प्रकार नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव संबंधी यह कायोत्सर्गनि का निक्षेप छह प्रकार जाणवे जोग्य है ।।१४७।।

१-कायोत्सर्गी, २-कायोत्सर्ग, ३-कारणं— इन बिना कायोत्सर्ग उपदेश करवे शक्य नांही । या कारण तिसके स्वरूपकूं प्रतिपादन करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ—१-काय जो शरीर ताका उत्सर्ग कहिये परित्याग सो कायोत्सर्ग है । खडा बहुरि बैठना, समस्त शरीर की चपलता रहित

---

१. क इति । नामादिभिः कायोत्सर्गं निरूपयितुमाह—१ । २. क °णातीचार । ३. क °बिबंस्था°, ग. बिंबस्थापना ।

कायस्य शरीरस्योत्सर्गः परित्यागः कायोत्सर्गः स्थितस्यासीनस्य सर्वांगचलनरहितस्य शुभध्यानस्य वृत्ति कायोत्सर्गोऽस्यास्तीति कायोत्सर्गी असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिभव्यः कायोत्सर्गस्य कारणं हेतुरेव मे तेषां त्रयाणामपि प्रत्येकं प्ररूपणा भवति ज्ञातव्येति ।।१४८।।

तावत्कायोत्सर्गस्वरूपमाह—

वोसरिदबाहुजुगलो चदुरंगुलअंतरेण समपादो ।
सव्वंगचलणरहिओ काउस्सगो विसुद्धो दु ।।१४९।।

व्युत्सृष्टं त्यक्तं बाहुयुगलं यस्मिन्नवस्थाविशेषे सो व्युत्सृष्टबाहुयुगलः प्रलंवितभुजश्चतुरंगुलमन्तरं ययोः पादयोस्तौ चतुरंगुलान्तरौ । चतुरंगुलान्तरौ समौ पादौ यस्मिन्स चतुरंगुलान्तरसमपादः । सर्वेषामंगानां करचरणशिरोग्रीवाक्षिभ्रू विकारादीनां चलनं तेन रहितः सर्वांगचलनरहितः सर्वाक्षेपविमुक्तः, एवंविधस्तु विशुद्धः कायोत्सर्गो भवतीति ।।१४९।।

कायोत्सर्गिकस्वरूपनिरूपणायाह—

मुक्खट्ठी जिदणिद्दो सुत्तत्थविसारदो करणसुद्धो ।
आदबलविरियजुत्तो काउस्सग्गी विसुद्धप्पा ।।१५०।।

मोक्षमर्थयत इति मोक्षार्थी कर्मक्षयप्रयोजनः, जिता निद्रा येनासौ जितनिद्रः जागरणशीलः सूत्रञ्चार्थश्च सूत्रार्थौ तयोर्विशारदो निपुणः सूत्रार्थविशारदः, करणेन क्रियाया परिणामेन शुद्धः करणशुद्धः आत्माहारशक्तिक्षयोपशमशक्तिसहितः कायोत्सर्गी विशुद्धात्मा भवति ज्ञातव्य इति ।।१५०।।

अैसा शुभध्यान की वृत्ति सो कायोत्सर्ग है, २-कायोत्सर्ग है जाकै सो कायोत्सर्गी, ३-असंयत सम्यग्दृष्टी कूं आदि दे भव्य है सो कायोत्सर्ग का कारण कहिये हेतु है—अैसे इन तीनहू की भिन्न-भिन्न व्याख्या जाणवे जोग्य है ।।१४८।।

प्रथम ही कायोत्सर्ग का स्वरूप कहै हैं—

अर्थ–लंबे किये है बाहुजुगल जिस अवस्था विशेष विषैं सो व्युत्सृष्ट बाहु-जुगल कहिये लंबायमान हैं दोउ भुज जा विषैं, च्यार अंगुल हैं अंतर जिस विषैं ते चतुरंगुलांतर कहिये, चतुरंगुलांतर समान हैं पाद जिस विषैं सो चतुरंगुलांतर समपाद कहिये । सर्व अंग जो हाथ, पाँव, मस्तक, नाडि (ग्रीवा), नेत्र, भंवारेनि का विकार इत्यादिक के चलन रहित सो सर्वांग चलन-रहित कहिये—या प्रकार विशुद्ध कायोत्सर्ग होय है ।।१४९।।

आगैं कायोत्सर्ग-कर्ता के स्वरूप के कथन अर्थि कहै हैं—

अर्थ–मोक्षार्थी कहिये कर्मक्षय करणे का है प्रयोजन जाका । जितनिद्रः कहिये जीती है निद्रा जानै, जागवे का है स्वभाव जाका। सूत्र और अर्थ इन विषै विशारद कहिये निपुण होय सो सूत्रार्थ विशारद कहिये । करण जो क्रिया अथवा परिणाम ताकरि शुद्ध आत्मबल-वीर्ययुक्त कहिये अपनी आहार शक्ति, बहुरि क्षयोपशम शक्ति, तिनिकरि सहित विशुद्ध है आत्मा जाका-अैसा कायोत्सर्गी जाणवे जोग्य है।।१५०।।

कायोत्सर्गमधिष्ठातुकामः प्राह—

काउस्सग्गं मोक्खपहदेसयं घादिकम्म अदिचारं ।
इच्छामि अहिट्ठादुं जिणसेविद देसिदत्तादो ।।१५१।।

कायोत्सर्गं मोक्षपथदेशकं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रोपकारकं घातिकर्मणां ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयान्तरायकर्मणामतीचारं विनाशनं[1] घातिकर्मविध्वंसकमिच्छाम्याहमधिष्ठातुं यतः कायोत्सर्गो [2]जिनैर्देशितः सेवितश्च तस्मात्तमधिष्ठातुमिच्छामीति ।।१५१।।

कायोत्सर्गस्य कारणमाह—

एगपदमस्सिदस्सवि जो अदिचारो दु रागदोसेहिं ।
गुत्तीहिं[3] वदिकमो[4] वा चदुहिं कसाएहिं व[5]वदेहिं ।।१५२।।

एकपदमाश्रितस्यैकपदेन स्थितस्य योऽतीचारो भवति रागद्वेषाभ्यां तथा गुप्तीनां यो व्यतिक्रमः कषायैश्चतुर्भिः स्यात् व्रतविषये वा यो व्यतिक्रमः स्यात् ।।१५२।। तथा—

छज्जीवणिकाएहिं भयमयठाणेहिं बंभधम्मेहिं[6] ।
काउस्सग्गं ठामि य तं कम्मणिघादणट्ठाए ।।१५३।।

षट्जीवनिकायैः पृथिव्यादिकायविराधनद्वारेण यो व्यतिक्रमस्तथा भयमदस्थानैः सप्तभयाष्टमदद्वारेण[7] यो व्यतिक्रमस्तथा ब्रह्मचर्यविषये यो व्यतिक्रमस्तेनाऽऽगतं यत्कर्मैकपदाद्याश्रितस्य गुप्त्यादिव्यतिक्रमेण च यत्कर्म तस्य कर्मणो निर्घातनाय कायोत्सर्गमधितिष्ठामि कायोत्सर्गेण तिष्ठामीति सम्बन्धः, अथवैकपदस्थितस्यापि रागद्वेषाभ्यामतीचारो भवति यतः किं पुनर्भ्रमति ततो घातनार्थं कर्मणां तिष्ठामीति ।।१५३।।

कायोत्सर्ग है, ताहि आचरण करवेकी है इच्छा जाके ऐसा कहै है—

अर्थ–मोक्षपथदेशकं कहिये सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र को उपकारी, घाति कर्म्मातीचारं कहिये घातिया कर्म्म जे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय इनको विनाशक ऐसो कायोत्सर्ग है ताहि अंगीकार करवे कूं मैं इच्छू हूँ, जातै कायोत्सर्ग है सो जिन-भगवान् करि उपदेश्या है, बहुरि सेया है तातै कायोत्सर्गकूं आचरण करवेकूं इच्छूं (इच्छुक) हूं ।।१५१।।

आगैं कायोत्सर्ग का कारण है, ताहि कहै है—

अर्थ–एक पाद करि स्थितस्य कहिये खरा (खड़ा) है, ताकै जो अतीचार रागद्वेषनिकरि होय हैं, तैसैं ही च्यार कषायनिकरि, तीन गुप्तिन को जो उल्लंघन होय, बहुरि व्रतनि विषै जो अतीचार होय तैसे ही, षट्जीवनिकाये: कहिये-पृथिवी आदि छह कायनि की विराधना के द्वारकरि जो अतिचार भया होय, तैसे ही सप्तभय, आठमदनि के स्थान के द्वारकरि, जो व्यतिक्रम भया होय तैसें ही ब्रह्मचर्य कै विषैं जो अतीचार भया होय तिसकरि आया जो कर्म, तिस कर्म्म के विनाशवे अर्थ कायोत्सर्ग कूं आश्रय करूं हू । कायोत्सर्गकरि तिष्ठूं हूं-ऐसा संबंध जाननां । अथवा एकपद करि तिष्ठताहू कै रागद्वेषनि करि जातैं अतीचार होय हैं । बहुरि भ्रमताकै कहा कहिये ? (भ्रमण क्यों करते हो?) कर्म्मनि के घातवे अर्थि कायोत्सर्ग करि तिष्ठूं हूं ।।१५२-१५३।।

---

१. ग. विनाशकं । २. क जिनेन्द्रैर्देशितः । ३. क गुत्तीवदिक्कमो । ४. अ. ब. वदिक्कमो । ५. क. वदएहिं । ६. क °भकम्मे° । ७ .ग. मदस्थानद्वारेण।

पुनरपि कायोत्सर्गकारणमाह—

जे केई उवसग्गा देवमाणुसतिरिक्खचेदणिया ।
ते सव्वे अधिआसे काओसग्गे ठिदो संतो ।।१५४।।

ये केचनोपसर्गा देवमनुष्यतिर्यक्कृता अचेतना विद्युदशन्यादयस्तान् सर्वानध्यासे सम्यग्विधानेन सहेऽहं कायोत्सर्गे स्थितः सन्, उपसर्गेष्वागतेषु कायोत्सर्गः कर्त्तव्यः कायोत्सर्गेण वा स्थितस्य यद्युपसर्गाः समुपस्थिताः भवन्ति तेऽपि सहनीया इति ।।१५४।।

कायोत्सर्गप्रमाणमाह—

संवच्छरमुक्कस्सं भिण्णमुहुत्तं जहण्णयं होदि ।
सेसा काओसग्गा होंति अणेगेसु ठाणेसु ।।१५५।।

संवत्सरं द्वादशमासमात्रं उत्कृष्टं प्रमाणं कायोत्सर्गस्य । जघन्येन प्रमाणं कायोत्सर्गस्यान्तर्मुहूर्तमात्रं । संवत्सरान्तर्मुहूर्त्तमध्येऽनेकविकल्पा दिवसरात्र्यहोरात्र्यादिभेदभिन्नाः शेषाः कायोत्सर्गा अनेकेषु स्थानेषु बहुस्थानविशेषेषु शक्त्यपेक्षया कार्याः, कालद्रव्यक्षेत्रभावकायोत्सर्गविकल्पा भवन्तीति ।।१५५।।

दैवसिकादिप्रतिक्रमणे कायोत्सर्गस्य प्रमाणमाह—

अट्ठसदं देवसियं कल्लद्धं पक्खियं च तिण्णिसया ।
उस्सासा कायव्वा णियमंते अप्पमत्तेण ।।१५६।।

बहुरि हू कायोत्सर्ग का कारण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–जे केई उपसर्ग देव, मनुष्य, तिरजंचनिकरि, कीये होय, अचेतन कहियेबीजरी गड़ा (बिजली, बज्रपात) इत्यादि करि होय, तिस समस्त उपसर्गकूं कायोत्सर्ग विषै तिष्ठता हूं भले विधानकरि सहूं हूं । उपसर्ग आये कायोत्सर्ग करवे जोग्य है अथवा कायोत्सर्ग करि तिष्ठता कै जो उपसर्ग आये होय तेहू उपसर्ग सहने जोग्य है ।।१५४।।

आगैं कायोत्सर्ग का प्रमाण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–कायोत्सर्ग का उत्कृष्ट प्रमाण संवत्सर कहिये बारह महीने प्रमाण है, कायोत्सर्ग का जघन्य प्रमाण भिन्नमुहूर्त कहिये अंतरमुहूर्त प्रमाण है । शेष कहिये संवत्सर अर अंतर्मुहूर्त कै मध्य विषै दिन-रात्रि आदि भेद युक्त अनेक हैं भेद जिनकै अैसे कायोत्सर्ग, अनेक स्थान विशेष, शक्ति की अपेक्षाकरि कार्य, बहुरि काल, द्रव्य, क्षेत्र, भावादिक की अपेक्षाकरि (कायोत्सर्ग के भेद) होय हैं ।।१५५।।

आगै दैवसिक आदि प्रतिक्रमण विषैं कायोत्सर्ग का प्रमाण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–दैवसिक प्रतिक्रमण विषै कायोत्सर्ग है, तिस विषै एक सौ आठ (१०८) उच्छ्वासनि को करवौ जोग्य है । कल्पेक रात्रिक, प्रतिक्रमण संबंधी कायोत्सर्ग विषैं अर्द्ध कहिये चोवन (५४) उच्छ्वास करवे जोग्य हैं । बहुरि पाक्षिक प्रतिक्रमण संबंधी कायोत्सर्ग विषैं उच्छ्वासनि के तीनसैं (३००) करै । ये चिंतवन करवे जोग्य है, स्थापनै जोग्य है, करवे जोग्य है । नियमांते कहिये वीरभक्ति कायोत्सर्ग-

अष्टभिरधिकं शतमष्टोत्तरशतं[1] दैवसिके प्रतिक्रमणे दैवसिकप्रतिक्रमणविषये कायोत्सर्गे उच्छ्वासानामष्टोत्तरशतं कर्त्तव्यं । कल्लद्धं रात्रिकप्रतिक्रमणविषयकायोत्सर्गे चतु:पंचाशदुच्छ्वासा: कर्त्तव्या: । पाक्षिके च प्रतिक्रमणविषये कायोत्सर्गे त्रीणि शतानि उच्छ्वासानां चिन्तनीयानि स्थातव्यानि विधेयानि । नियमान्ते वीरभक्तिकायोत्सर्गकाले अप्रमत्तेन प्रमादरहितेन यत्नवता विशेषे[2] सिद्धभक्तिप्रतिक्रमणभक्तिचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकरणकायोत्सर्गे सप्तविंशतिरुच्छ्वासा: कर्त्तव्या इति ।।१५६।।

चातुर्मासिकसांवत्सरिककायोत्सर्गप्रमाणमाह—

चादुम्मासे चउरो सदाइं संवत्थरे[3] य पंचसदा ।
काओसग्गुस्सासा पंचसु ठाणेसु णादव्वा ।।१५७।।

चातुर्मासिके प्रतिक्रमणे चत्वारि शतान्युच्छ्वासानां चिन्तनीयानि । सांवत्सरिके च प्रतिक्रमणे पंचशतान्युच्छ्वासानां चिन्तनीयानि स्थातव्यानि नियमान्ते कायोत्सर्गप्रमाणमेतच्छेषेषु पूर्ववत् द्रष्टव्य: । एवं कायोत्सर्गोच्छ्वासा: पंचसु स्थानेषु ज्ञातव्या: ।।१५७।।

शेषेषु स्थानेषूच्छ्वासप्रमाणमाह—

[4]पाणिवह मुसावाए अदत्त मेहुण परिग्गहे चेय ।
अट्ठसदं उस्सासा काओसग्गह्मि कादव्वा।।१५८।।

[5]प्राणिवधातीचारे मृषावादातीचारे अदत्तग्रहणातीचारे मैथुनातिचारे परिग्रहातीचारे च कायोत्सर्गे चोच्छ्वासानामष्ठोत्तरशतं कर्त्तव्यं नियमान्ते[6] सर्वत्र द्रष्टव्यं शेषेषु पूर्ववदिति ।।१५८।।

काल विषैं और सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमण-भक्ति,चतुर्विंशति-तीर्थंकर भक्ति के कायोत्सर्ग विषैं प्रमाद रहित जतनवान—ऐसा मुनिनै सताईस (२७) उच्छ्वास करवे जोग्य है ।।१५६।।

आगैं चातुर्मासिक बहुरि सांवत्सरिक काल संवंधी कायोत्सर्ग का प्रमाण है, ताहि कहै है—

अर्थ–चातुर्मासिक प्रतिक्रमण विषैं च्यार सौ (४००) उच्छ्वास विचारवे जोग्य हैं । सांवत्सरिक प्रतिक्रमण विषैं पांच सौ (५००) उच्छ्वास कहै हैं । नियमांत प्रतिक्रमण विषैं कायोत्सर्ग का यह प्रमाण कह्या । अवशेष विषै पीछले ज्यौं देखनां । या प्रकार कायोत्सर्ग विषैं उच्छ्वास पंचस्थान विषैं जाणवे जोग्य हैं ।।१५७।।

आगैं अवशेष स्थाननि विषैं उच्छ्वासनि कौं प्रमाण कहै हैं—

अर्थ–प्राणिवध जो हिंसा तिसके अतीचार विषैं, मृषावाद जो असत्य ताके अतीचार विषैं, अदत्तग्रहण जो चोरी तिसके अतीचार विषैं, मैथुन के अतीचार विषैं, परिग्रह के अतीचार विषैं-इन विषैं जो कायोत्सर्ग तिसके अतीचार विषैं एक सौ आठ (१०८) उच्छ्वास करवे जोग्य हैं । नियमांत विषैं सर्वत्र कायोत्सर्ग जाणणे । अवशेष स्थान विषैं पूर्व ज्यौं जाणणैं ।।१५८।।

---

१. क °अष्टशतं । २. क °विशेषेषु । ३. क संवच्छराय ।
४. क पाण° । ५. क प्राण° । ६. °न्तेषु ।

पुनरपि कायोत्सर्गप्रमाणमाह—

भत्ते पाणे गामंतरे य अरहंतसमणसेज्जासु ।
उच्चारे पस्सवणे पणवीसं होंति उस्सासा ।।१५९।।

भक्ते पाने च गोचरे प्रतिक्रमणविषये गोचरादागतस्य कायोत्सर्गे पंचविंशतिरुच्छ्वासाः कर्त्तव्या भवन्ति, प्रस्तुतात् ग्रामादन्यग्रामो ग्रामान्तरं ग्रामान्तरगमनविषये च कायोत्सर्गे च पंचविंशतिरुच्छ्वासाः कर्त्तर्व्याः तथार्हच्छय्यायां जिनेन्द्रनिर्वाणसमवसृतिकेवलज्ञानोत्पत्तिनिष्क्रमणजन्मभूमिस्थानेषु वन्दनाभक्तिहेतोर्गतेन पंचविंशतिरुच्छ्वासाः कायोत्सर्गे कर्त्तव्याः । तथा श्रमणशय्यायां निषद्यिकास्थानं गत्वाऽऽगतेन पंचविंशतिरुच्छ्वासाः कायोत्सर्गे कर्त्तव्यास्तथोच्चारे वहिर्भूमिगमनं कृत्वा प्रस्रवणे प्रस्रवणं च कृत्वा[१] यः कायोत्सर्गः क्रियते तत्र नियमेनेति ।।१५९।।

तथा—

उद्देसे णिद्देसे सज्झाए वंदणे य पणिधाणे ।
सत्तावीसुस्सासा काओसग्गह्मि कादव्वा ।।१६०।।

उद्देशे ग्रन्थादिप्रारम्भकाले निर्देशे प्रारब्धग्रन्थादिसमाप्तौ च कायोत्सर्गे सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः कर्त्तव्याः । तथा स्वाध्याये स्वाध्यायविषये कायोत्सर्गास्तेषु च सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः कर्त्तव्याः । तथा वन्दनायां ये कायोत्सर्गास्तेषु च प्रणिधाने च मनोविकारे चाशुभपरिणामे तत्क्षणोत्पन्ने सप्तविंशतिरुच्छवासाः कायोत्सर्गे कर्त्तव्या इति ।।१६०।।

बहुरि हू कायोत्सर्ग का प्रमाण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–भक्त-पान जो गोचरी तिस संबंधी प्रतिक्रमण विषैं गोचरीतैं आया जो मुनि तिसकूं कायोत्सर्ग विषैं पचीस उच्छ्वास करवे जोग्य है । ग्रामतैं अन्य ग्राम होय सो ग्रामांतर कहिये । तिस ग्रामांतर के गमन संबंधी कायोत्सर्ग विषैं पचीस उच्छ्वास करवे जोग्य हैं । तैसैं ही अरहंत शय्यायां कहिये जिनैंद्र का निर्वाण, समवसरण, केवलज्ञान की उत्पत्ति, तपश्चरण, अर जन्मभूमि-इनिकें स्थान विषैं वंदना-भक्ति के निमित्त गया जो मुनीश्वर तानैं कायोत्सर्ग विषैं पच्चीस उच्छ्वास करवे जोग्य है । तैंसे ही श्रमणशय्यायां कहिये निषद्यिका के स्थान जाय आया जो मुनि तानैं कायोत्सग्र्ग विषैं पचीस उच्छ्वास करवे जोग्य हैं । तैंसे ही उच्चारे कहिये बर्हिभूमि जाय आया, लघुशंका (मूत्रत्याग) करि आया तिसकै कायोत्सर्ग विषैं नियमकरि पचीस उच्छ्वास करबे जोग्य हैं ।।१५९।।

तैंसे ही औरहु कहै हैं—

अर्थ–उद्देशे कहिये ग्रंथादिक के प्रारंभ काल विषैं, निर्देशो कहिये प्रारंभ कीये ग्रंथादिकनि की पूर्णता विषैं, तैसें ही स्वाध्याय विषैं, वंदना विषैं बहुरि प्रणिधाने कहिये मन का विकार विषैं, तत्काल उत्पन्न भया अशुभ परिणाम तिसकै विषैं जो कायोत्सर्ग तिस विषैं सत्ताईस उच्छ्वास करवे जोग्य हैं ।।१६०।।

१ क कृत्वा यः कायोत्सर्गः क्रियते तत्र गतेन पंचविंशतिरुच्छ्वासाः कायोत्सर्गे नियमेन कर्तव्या इति ।

एवं प्रतिपादितक्रमं कायोत्सर्गं किमर्थमधितिष्ठन्तीत्याह—

काओसग्गं इरियावहादिचारस्स मोक्खमग्गम्मि ।
वोसट्ठचत्तदेहा करंति दुक्खक्खयट्ठाए ।।१६१।।

ईर्यापथातीचारनिमित्तं कायोत्सर्गं मोक्षमार्गे स्थित्वा व्युत्सृष्टत्यक्तदेहाः सन्तः कुर्वन्ति दुःखक्षयार्थमिति ।।१६१।।

तथा—

भत्ते पाणे गामंतरे य [1]चदुमासियवरिसचरिमेसु ।
[2]णाऊण ठंति धीरा घणिदं दुक्खक्खयट्ठाए ।।१६२।।*

भक्तपानग्रामान्तर चातुर्मासिकसांवत्सरिकचरमोत्तमार्थविषयं ज्ञात्वा कायोत्सर्गे तिष्ठति दैवसिकादिषु च धीरा अत्यार्थं दुःखक्षयार्थं नान्येन कार्येणेति ।।१६२।। यदर्थं कायोत्सर्गं करोति तमेवार्थं चिन्तयतीत्याह—

काओसग्गह्मि ठिदो चिंतिदु इरियावधस्स अदिचारं ।
तं सव्वं समाणित्ता धम्मं सुक्कं च चिंतेज्जो ।।१६३।।

कायोत्सर्गे स्थितः सन् ईर्यापथस्यातीचारं विनाशं चिन्तयन् तं नियमं सर्वं निरवशेषं समाप्य समाप्तिं नीत्वा पश्चाद्धर्मध्यानं शुक्लध्यानं च

या प्रकार कह्या है क्रम जाका कायोत्सर्गादि ताहि कौन निमित्त मुनीश्वर आचरण करै हैं? सो कहै हैं—

अर्थ–ईर्यापथ संबंधी अतीचार के सोधवे निमित्त मोक्षमार्ग विषैं तिष्ठते, त्यजा है शरीर विषैं ममत्व जिननैं—अैसे मुनि दुःख के क्षय-निमित्त कायोत्सर्ग है, ताहि करै हैं ।।१६१।।

बहुरि तैसें ही कहै हैं—

अर्थ–भक्त, पान, ग्रामांतर गमन, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक चरम जो उत्तमार्थ तिनहि जाणिकरि धीर पुरुष हैं, ते अतिशयकरि दुःख के क्षय-निमित्त कायोत्सर्ग विषैं तिष्ठै हैं ।।१६२।।

जिस निमित्त कायोत्सर्ग करै है, तिस ही अर्थ कूं विचारै हैं—

अर्थ—कायोत्सर्ग विषैं तिष्ठता ईर्यापथ का अतीचार का विनाश है, ताहि चिंतवता अैसा मुनि, तिस समस्त नियमकूं समाप्तकरि

---

१. ग० चादु । २. क० काऊण वंति वीरा सणिदं ।

* फलटन प्रति की गाथा में इससे यह अन्तर है—

एवं दिवसियराइयपक्खिय चादुम्मासियवरिसचरिमेसु ।
णादूण ठंति धीरा घणिदं दुक्खक्खयट्ठाए ।

अर्थ–दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक. चातुर्मासिक, वार्षिक और उत्तमार्थ—इन सबन्धी प्रतिक्रमणों के विषय को जानकर धीर साधु दुःखों का अत्यन्त क्षय करने के लिए कायोत्सर्ग धारण करते हैं, अन्य प्रयोजन के लिए नहीं ।

चिन्तयत्विति ।।१६३।। तथा—

तह दिवसयरादियपक्खियचादुम्मासियवरिसचरिमेसु ।
तं सव्वं समाणित्ता धम्मं सुक्कं च झायेज्जो ।।१६४।।

एवं तथा ईर्यापथातीचारार्थं दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकोत्तमार्थान् नियमान् तान्[1] समाप्य धर्मध्यानं शुक्लध्यानं ध्यायेत्, न तावन्मात्रेण तिष्ठेदित्यनेनालस्याद्यभावः कथितो भवतीति ।।१६४।।

कायोत्सर्गस्य दृष्टं फलमाह—

काओसग्गह्मि कदे जह भिज्जदि अंगुवंगसंधीओ ।
तह भिज्जदि कम्मरयं काउस्सग्गस्स करणेण ।।१६५।।

कायोत्सर्गे हि स्फुटं कृते यथा भिद्यन्तेऽगोपांगसंधयः शरीरावयवास्तथा भिद्यते कर्मरजः कायोत्सर्गकरणेनेति ।।१६५।।

द्रव्यादिचतुष्टयापेक्षमाह—

बलवीरियमासेज्ज य खेत्ते काले सरीरसंहडणं ।
काओसग्गं कुज्जा इमे दु दोसे परिहरंतो ।।१६६।।

बलं वीर्यं चौषधाद्याहारशक्तिं वीर्यान्तरायक्षयोपशमं वाऽऽश्रित्य क्षेत्रबलं कालबलं चाश्रित्य शरीरं व्याध्याद्यनमुपहतसंहननवज्रर्षभनाराचादिकमपेक्ष्य कायोत्सर्गं कुर्यात्, इमांस्तु कथ्यमानान् दोषान्परिहरन्निति ।।१६६।।

धर्मध्यान, बहुरि शुक्लध्यान तिसै ही चिंतवन करो ।।१६३।। बहुरि कहै हैं—

अर्थ–या प्रकार जैसे ईर्यापथ अतीचार के निमित्त कायोत्सर्ग हैं, तैसें १-दैवसिक, २-रात्रिक, ३-पाक्षिक, ४-चातुर्मासिक, ५-सांवत्सरिक, ६-उत्तमार्थ - इन समस्त नियमकूं पूर्णकरि धर्मध्यान बहुरि शुक्लध्यान हैं, तिस ही ध्यावै "ना तावन्मात्रेण तिष्ठेत्" तिस मात्र ही करि नांही तिष्ठना । याका प्रयोजन अैसा प्रतिक्रमणादिक करिहूं निश्चिंत नांही होंना धर्मध्यान बहुरि शुक्लध्यान ध्यावणां । इस कथनकरि आलस्यादिक का अभाव कह्या ।।१६४।।

आगै कायोत्सर्ग का प्रत्यक्षफल है, ताहि कहै है—

अर्थ–प्रगट कायोत्सर्ग कीये संतै जैसे अंग-उपांग की संधि है, ते भिदैं हैं, तैसैंही कायोत्सर्ग के करवे करि कर्मरूप रज है, सो भेदकूं प्राप्त होय हैं ।।१६५।। आगैं द्रव्यादिक चतुष्टय की अपेक्षा है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–बल कहिये औषधादिक अर आहार इनकी शक्ति हैं ताहि, वहुरि वीर्य कहिये वीर्यांतराय को क्षयोपशम हैं ताहि आश्रयकरि, बहुरि क्षेत्रबल अर कालबल हैं, ताहि आश्रयकरि रोगादिक की बाधा रहित शरीर, वहुरि वज्रवृषभनाराचनैं आदि दे संहनन इनकी अपेक्षाकरि कायोत्सर्ग हैं , ताहि करै । बहुरि आगै कहैगें, अैसे इन दोषनिकूं परिहार करता संता कायोत्सर्ग करै ।।१६६।।

१. ग० तान् सर्वान् ।

तान् दोषानाह—

घोडय लदा य खंभे कुड्डे माले सवरबधू णिगले ।
लंबुत्तरथणदिट्ठी वायस खलिणे जुग कविट्ठे ।।१६७।।

घोडय घोटकस्तुरग: स यथा एकं पादमुत्क्षिप्य विनम्य वा तिष्ठति तथा य: कायोत्सर्गेण तिष्ठति तस्य घोटकसदृशो घोटकदोष:, तथा लता इवांगानि चालयन्य: तिष्ठति कायोत्सर्गेण तस्य लतादोष: । स्तंभमाश्रित्य यस्तिष्ठति कायोत्सर्गेण तस्य स्तंभदोष: । स्तंभवत् शून्यहृदयो वा तत्साहचर्येण स एवोच्यते। तथा कुड्यमाश्रित्य कायोत्सर्गेण यस्तिष्ठति तस्य कुड्यदोष: । साहचार्यादुपलक्षणमात्रमेतदन्यदप्याश्रित्य न स्थातव्यमिति ज्ञापयति, तथा मालापीठाद्युपरि स्थानं अथवा मस्तकादूर्ध्वं यत्तदाश्रित्य मस्तकस्योपरि यदि किंचिल्लगतिस्तथापि यदि कायोत्सर्ग: क्रियते स मालदोष: । तथा शवरवधूरिव जंघाभ्यां जघनं

आगैं कायोत्सर्ग के दोष हैं, तिनहि कहै हैं—

अर्थ–१-घोटक कहिये तुरंग सो जैसें एक पांवकूं उठाया वा स्थाप्य तिष्ठै, तैसें जो कायोत्सर्ग विषैं तिष्ठै ताकै घोड़ेकरि समान भावतैं घोटक नाम दोष है । २-तैंसे ही लता जो वेलि ताकी नांई अंगनिकूं चलायमान करता जो कायोत्सर्गकरि तिष्ठै ताकै लता नाम दोष हैं । ३-स्तंभ का आश्रयकरि जो कायोत्सर्गकरि तिष्ठै ताकै स्तंभनाम दोष है । अथवा स्तंभ की ज्यौं शून्य हृदय हुवा जो कायोत्सर्ग करै ताकै स्तंभ की समानता तैं सो ही स्तंभ नाम दोष है ।

४-तैंसैं ही भीति कौं आश्रय लेय जो कायोत्सर्गकरि तिष्ठै, ताकै कुड्यनाम दोष है । सहचरपनैं तैं यह उपलक्षण मात्र है । यातैं औरहू काहू का आश्रय लेय नांही तिष्ठणा कुड्य दोष का अैसा स्वरूप जानना ।

५-माला कहिये पीठकादिक ऊपरी स्थान अथवा मस्तकतैं ऊंचा जो स्थान ताहि आश्रयकरि मस्तक कै ऊपरि जो कछु लगै तोऊ जो कायोत्सर्ग करिये तब मालनाम दोष है ।

६-तैंसे शबरवधू जो भीलणी ताकी नांई जांघनिकरि जंघनकूं पीडि जो कायोत्सर्गकरि तिष्ठै ताकै शबरवधू दोष है ।

७-तैसे ही 'निगड पीडित इव' कहिये बेडीकरि पीडित पुरुष की नांई पावनि विषैं महान् अंतरालकरि जो कायोत्सर्गकरि तिष्ठैं ताकै निगड दोष है ।

८-तैंसे ही कायोत्सर्ग विषैं तिष्ठता जिस पुरुष कै नाभितैं उर्ध्वभाग लंबायमान होय, बहुरि उन्नमन, अधोनमन जाकैं होय, तिस कैं लंबोत्तर नाम दोष है ।

९-तैंसे ही कायोत्सर्ग विषैं तिष्ठता जिस पुरुष कै स्तन जे कुच तिन विषैं दृष्टि होय, जो अपनैं स्तननि कूं देखैं, ताकै स्तन दृष्टिनाम दोष है ।

१०-तैंसे ही कायोत्सर्ग विषैं तिष्ठता जो पुरुष वायस जो काग ताकी नांई जो पखवारे कूं देखै, तिसकै वायसनामा दोष है ।

निपीड्य कायोत्सर्गेण तिष्ठति तस्य शवरबधूदोषः, तथा निगडपीडित इव पादयोर्महदन्तरालं कृत्वा यस्तिष्ठति कायोत्सर्गेण तस्य निगडदोषः, तथा लंबमानो नाभेरूर्ध्वभागो भवति वा कायोत्सर्गस्थस्योन्नमनमधोनमनं वा च भवति तस्य लंबोत्तरदोषो भवति । तथा यस्य कायोत्सर्गस्थस्य स्तनयोर्दृष्टिरात्मीयौ स्तनौ यः पश्यति तस्य स्तनदृष्टिनामा दोषः । तथा यः कायोत्सर्गस्थो वायस इव काक इव पार्श्वं पश्यति तस्य वायसदोषः । तथा यः खलीनपीडितोऽश्व इव दन्तकटकटं मस्तकं कृत्वा कायोत्सर्गं करोति तस्य खलीनदोषः । तथा यो युगनिपीडितवलीवर्दवत् ग्रीवां प्रसार्य तिष्ठति कायोत्सर्गेण तस्य युगदोषः । तथा यः कपित्थफलवन्मुष्टिं कृत्वा कायोत्सर्गेण तिष्ठति तस्य कपित्थदोषः ।।१६७।।

तथा—

सीसपकंपिय मुइयंह अंगुलि भूविकार वारुणीपेयी ।
काओसग्गेण ठिदो एदे दोसे परिहरेज्जो ।।१६८।।

शिरःप्रकंपितं कायोत्सर्गेण स्थितो यः शिरः प्रकंपयति चालयति तस्य शिरःप्रकंपितदोषः मुइयं मूकत्वं मूक इव कायोत्सर्गेण स्थितो मुखविकारं नासिकाविकारं च करोति तस्य मूकितदोषः, तथा यः कायोत्सर्गेण स्थितोऽगुलिगणनां करोति तस्यांगुलिदोषः, तथा भ्रूविकारः कायोत्सर्गेण स्थितो यो भ्रूविक्षेपं करोति तस्य भ्रूविकारदोषः पादांगुलिनर्त्तनं वा, तथा यो वारुणीपायीव—सुरापायीवेति घूर्णमानः कायोत्सर्गं करोति तस्य वारुणीपायीदोषः, तस्मादेतान् दोषान् कायोत्सर्गेण स्थितः सन् परिहरेद्वर्जयेदिति ।।१६८।।

११-तैसे ही जो खलिननि पीडित कहिये लगामकरि पीडित अैसे घोड़े की ज्यौं दंत के कटकट शब्द युक्त मस्तककरि कायोत्सर्ग है ताहि करै है ताकै खलीन नाम दोष है ।

१२-तैसे ही जो युग निपीडित वलीवर्दवत् कहिये जूडाकरि पीडित बैल की ज्यौं नाडि पसारि कायोत्सर्गकरि तिष्ठै ताकै युग नाम दोष है ।

१३-तैसे ही कपित्थफलवत् कहिये काथोडी (कैंथा) के फल ज्यों मुष्टीकूं बांधिकरि कायोत्सर्गकरि तिष्ठै, ताकै कपित्थनाम दोष है ।

१४-तैसे ही शिरःप्रकंपित कहिये जो कायोत्सर्गकरि तिष्ठता मस्तक कूं कंपायमान करै ताके शिरःप्रकंपित नाम दोष है ।

१५-तैसें ही मूकत्वं कहिये जो कायोत्सर्गकरि तिष्ठता मुखविकार वहुरि नासिका-विकार है, ताहि करै, ताकै मूकित दोष है ।

१६-तैसे ही अंगुली कहिये जो कायोत्सर्गकरि तिष्ठता अंगुली का विकार कहिये गणना ताहि करै ताकै अंगुलि नाम दोष है ।

१७-तैसे ही भ्रूविकारः कहिये जो कायोत्सर्ग करि तिष्ठता भ्रूविक्षेप करै अथवा पावानेंकी अंगूलीनिकरि नर्तन करै, ताकै भ्रूविकार नाम दोष है ।

१८-तैसे ही जो वारुणीपायी कहिये मदिरा पीवे वारे की ज्यौं झूमता कायोत्सर्गकरि तिष्ठै ताकै वारुणीपायी नाम दोष है । तातैं कायोत्सर्गकरि तिष्ठता मुनि इन दोषनि कूं परिहरै ।।१६७/१६८।।

तथेमांश्च दोषान् परहरेदित्याह—

आलोगणं दिसाणं गीवाउण्णामणं पणमणंच ।
णिट्ठीवणंगमरिसो काउसग्गह्मि वज्जिज्जो ।।१६९।।

कायोत्सर्गेण स्थितो दिशामालोकनं वर्जयेत्, तथा कायोत्सर्गेण स्थितो ग्रीवोन्नमनं वर्जयेत् तथा कायोत्सर्गेण स्थितः सन् प्रणमनं च वर्जयेत्, तथा कायोत्सर्गेण स्थितो निष्ठीवनं षाट्करणं च वर्जयेत् तथा कायोत्सर्गेण स्थितोंऽगामर्शं शरीरपरामर्शं वर्जयेदेतेऽपि दोषाः सन्त्यतो वर्जनीयाः । दशानां दिशामवलोकनानि दश दोषाः, शेषा एकैका इति ।।१६९।।

यथा यथोक्तं कायोत्सर्गं[1] कुर्वन्ति तथाह—

णिक्कूडं सविसेसं बलाणुरूवं वयाणुरूवंच ।
काओसग्गं धीरा करंति दुक्खक्खयट्ठाए ।।१७०।।

निःकूटं मायाप्रपंचान्निर्गतं, सह विशेषेण वर्त्तत इति सविशेषस्तं सविशेषं विशेषतासमन्वितं बलानुरूपं स्वशक्त्यनुरूपं, वयोऽनुरूपं च, बाल्ययौवनवार्द्धक्यानुरूपं तथा वीर्यानुरूपं कालानुरूपं च कायोत्सर्गं धीरा दुःखक्षयार्थं कुर्वन्ति तिष्ठन्तीति ।।१७०।।

आगै जैसें पूर्वोक्त दोषनिकूं त्यजै तैसें कहैगे । जे ये दोष तिनहूं कूं त्यजैं, असा कहै है—

अर्थ–१९-कायोत्सर्गकरि तिष्ठता (दस) दिशानि को आलोकन जो दोष हैं ताहि त्यजै । २०-तैसें ही कायोत्सर्ग करि तिष्ठता ग्रीवोन्नमनं कहिये नाडिका ऊँचा करणां है, ताहि त्यजैं । २१-तैसें ही कायोत्सर्गकरि तिष्ठता थका नाडिका प्रणमनं कहिये नमावना है, ताहि त्यजै । २२-तैसें ही कायोत्सर्ग करि तिष्ठता निष्ठीवनं कहिये कफ थूकना त्यजै । २३-तैसें ही कायोत्सर्ग करि तिष्ठता अंगामर्श कहिये शरीर का मसलणा है, ताहि त्यजै ।

ये हु दोष लंबोत्तर एक ही हैं । अर दिशावलोकन पूर्बै एक गिणया है, दश दिशानि के अवलोकन हैं, ते दश हैं । अवशेष हैं ते एक-एक हैं । अैसे तेईस की संख्या तौं होय गई, अर दिशावलोकन दश गिणे जदि तो नव और अधिक भये-अैसैं बत्तीस दोष जाननें ।।१६९।।

आगैं जैसैं यथोक्त का कायोत्सर्ग करैं, तैसैं कहैं हैं—

अर्थ–निःकूटं कहिये माया-प्रपंचतैं रहित, सविशेषं कहिये विशेष करि सहित । बलानुरूपं कहिये अपनी शक्ति के अनुसार, बहुरि वयोऽनुरूपं बाल, जोवन, अर वृद्ध—इन तीन्यूं अवस्था कै अनुसार, तैसे वीर्य कै अनुसार, बहुरि काल कै अनुसार धीर पुरुष हैं, ते दुख के क्षयनिमित्त कायोत्सर्ग हैं, ताहि करै हैं ।।१७०।।

[1]. क० करोति ।

मायां प्रदर्शयन्नाह—

जो पुण तीसदिवरिसो सत्तरिवरिसेण पारणाय समो ।
विसमो य कूडवादी णिव्विण्णाणी य सोय जडो ।।१७१।।

यः पुनस्त्रिंशद्वर्षप्रमाणो यौवनस्थः शक्तः सप्ततिसंवत्सरेण सप्ततिसंवत्सरायुःप्रमाणेन वृद्धेन निःशक्तिकेन पारणेनानुष्ठानेन कायोत्सर्गादिसमाप्त्या समः सदृशशक्तिको निःशक्तिकेन सह यः स्पर्द्धां करोति सः साधुर्विषमश्च शान्तरुपो न भवति कूटवादी मायाप्रपंचतत्परो निर्विज्ञानी विज्ञानरहितश्चारित्रमुक्तश्च जडश्च मूर्खो, न तस्येहलोको नाऽपि परलोक इति ।।१७१।।

कायोत्सर्गस्य भेदानाह—

उट्ठिदउट्ठिद उट्ठिदणिविट्ठ उवविट्ठउट्ठिदो चेव ।
उवविट्ठणिविट्ठोवि य काओसग्गो चदुट्ठाणो ।।१७२।।

उत्थितश्चासावुत्थितश्चोत्थितोत्थितो महतोऽपि महान्, तथोत्थितनिविष्टः पूर्वमुत्थितः पश्चान्निविष्ट उत्थितनिविष्टः, कायोत्सर्गेण, स्थितोप्यसावासीनो द्रष्टव्यः । उत्थितः, उपविष्टो भूत्वा स्थितो आसीनोऽप्यसौ कायोत्सर्गस्थश्चैव । तथोपविष्टो[१]ऽपि चासावासीनः । एवं कायोत्सर्गः चत्वारि स्थानानि यस्यासौ चतुःस्थानश्चतुर्विकल्प इति ।।१७२।।

आगैं मायाकूं दिखावते आचार्य कहै है—

अर्थ–बहुरि जो तीस बरस प्रमाण जोवन अवस्था विषैं तिष्ठता, अर समर्थ सो सत्तरि (७०) वर्ष आयु का प्रमाण जाकै अैसा शक्ति रहित वृद्धकरि पारण जो अनुष्ठान कायोत्सर्गदिक की पूर्णता, ता करिकै समः कहिये समान होय जो शक्तिकरि सहित साधु, शक्ति रहित साधु करि स्पर्द्धा हैं, ताहि करै है सो साधु विषमः कहिये शांतरूप नांही है । बहुरि कूटवादी कहिये माया-प्रपंच विषैं तत्पर है, निर्विज्ञानी कहिये विज्ञान रहित है । बहुरि चारित्र करि रहित है । बहुरि जड़ कहिये मूर्ख है, ताकै इसलोक वषैं हित नांही, परलोक विषैं हू हित नांही ।।१७१।। आगै कायोत्सर्ग के भेद रहै, तिनही कहै है—

अर्थ–१-उत्थित अैसा जो उत्थित सो उत्थितोत्थित है । बड़ा (महान्) सूं बड़ा यह भेद है, तैसें उत्थितनिविष्टः कहिये पूर्वैं उत्थित पीछै निविष्ट सो उत्थित निविष्ट कहिये । यह कायोत्सर्गकरि खड़ा है तोउ बैठ्या जाणणां । उपविष्टोत्थितः कहिये बैठ्या होयकरि कै उत्थित होय सो उपविष्टोत्थित कहिये । यह बैठ्या है तोऊ कायोत्सर्ग विषैं तिष्ठता ही जाणणा । बहुरि तैसें ही उपविष्ट-निविष्टः कहिए उपविष्ट अैसा जो निविष्ट सो उपविष्ट-निविष्ट कहिये । यह बैठ्या हू तैं अधिक बैठ्या है । अैसें कायोत्सर्ग है सो चतुःस्थान कहिये च्यार है भेद जाका अैसा है ।।१७२।

---

१. क °विष्टनिविष्टोऽपि चासावासीनादप्यासीनः ।

उक्तं च (अमितगतिश्रावकाचारे-उपासकाचारे ८/५७-६१)—

त्यागो देहममत्वस्य तनूत्सृतिरुदाहृता । उपविष्टोपविष्टादिविभेदेन चतुर्विधा ।।१।।
आर्त्तरौद्रद्वयं यस्यामुपविष्टेन चिन्त्यते । उपविष्टोपवष्टाख्या कथ्यते सा तनूत्सृतिः ।।२।।
[1]धर्मशुक्लद्वयं यत्रोपविष्टेन विधीयते । तामुपविष्टोत्थितांकां निगदंति महाधियः ।।३।।
आर्तरौद्रद्वयं यस्यामुत्थितेन विधीयते । तामुपविष्टोत्थितांकां निगदंति महाधियः ।।४।।
धर्मशुक्लद्वयं यस्यामुत्थितेन विधीयते । उत्थितोत्थितनाम्ना तामाभाषन्ते विपश्चितः[2] ।।५।।

उत्थितोत्थितकायोत्सर्गस्य लक्षणमाह—

धम्मं सुक्कं च दुवे झायदि[3] झाणाणि जो ठिदो संतो ।
एसो काओसग्गो इह उट्ठिदउट्ठिदो णाम ।।१७३।।

धर्म्यध्यानं शुक्लध्यानं द्वे ध्याने यः कायोत्सर्गस्थितः सन् ध्यायाति तस्यैष इह कायोत्सर्ग उत्थितोत्थितो नामेति ।।१७३।।

तथोत्थितनिविष्टकायोत्सर्गस्य लक्षणमाह—

अट्टं रुद्दं च दुवे झायदि झाणाणि जो ठिदो संतो ।
एसो काओसग्गो उट्ठिदणिविट्ठिदो णाम ।।१७४।।

आर्तध्यानं रौद्रध्यानं च द्वे ध्याने यः पर्यंककायोत्सर्गेण स्थितो ध्यायति तस्यैष कायोत्सर्गे उत्थितनिविष्टनामेति ।।१७४।।

आगै उत्थितोत्थित कायोत्सर्ग का लक्षण है, ताहि कहै है—

अर्थ–जो कायोत्सर्ग करि तिष्ठता संता धर्मध्यान अर शुक्लध्यान इनकूं ध्यावै है, ताकै इसलोक विषैं उत्थितोत्थित है नाम जाका, अैसे यह कायोत्सर्ग होय है । **भावार्थ–**उत्थित नाम खड़ा का है । एक उत्थित शब्दकरि शरीरतैं खड़ा जाणणा, दूसरा उत्थित शब्दकरि परिणामकरि खड़ा जाणणा । ध्यानतैं पडाहूं परिणाम नांही होय अैसा जाणणां ।।१७३।।

तैसे ही उत्थितनिविष्ट कायोत्सर्ग का लक्षण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ—जो कायोत्सर्ग करि स्थित हुवा संता आर्तध्यान, बहुरि रौद्रध्यान-इन दोय ध्यानकूं ध्यावै है, ताकै यह कायोत्सर्ग उत्थित निविष्ट नाम जाणणा ।।१७४।।

---

१. क० धर्मशुक्लद्वयं य स्यामुपविष्टेन चिन्त्यते ।
तामासीनोत्थितां लक्ष्मां निगदन्ति महाधियः ।।
२. क० उपासकाचारे उक्तमास्ते । ३. अ० ब० ज्जायदि ।

धम्मं सुक्कं च दवे झायदि झाणाणि जो णिसण्णो दु ।
एसो काओसग्गो उवविट्ठउट्ठिदो णाम ।।१७५।।

धर्म्यं शौक्ल्यं च द्वे ध्याने यो निविष्टो ध्यायति तस्यैष कायोत्सर्ग इहागमे उपविष्टोत्थितो नामेति ।।१७५।।

उपविष्टोपविष्टकायोत्सर्गस्य लक्षणमाह—

अट्टं रुद्दं च दुवे झायदि झाणाणि जो णिसण्णो दु ।
एसो काओसग्गो णिसण्णिदणिसण्णिदो णाम ।।१७६।।

आर्तध्यानं रौद्रध्यानं च द्वे ध्याने यः पर्यंककायोत्सर्गेण स्थितो ध्यायति तस्यैष कायोत्सर्ग उपविष्टोपविष्टो नाम ।।१७६।।

कायोत्सर्गेण स्थितः शुभं मनःसंकल्पं कुर्यात् परन्तु कः शुभो मनःसंकल्प इत्याह—

दंसणणाणचरित्ते उवओगे संजमे विउस्सग्गे ।
पच्चक्खाणे करणे पणिधाणे तह य समिदीसु ।।१७७।।

दर्शनज्ञानचारित्रेषु यो मनःसंकल्प उपयोगे ज्ञानदर्शनोपयोगे यश्चित्तव्यापारः संयमविषये यः परिणामः कायोत्सर्गस्य हेतोर्यत् ध्यानं प्रत्याख्यानग्रहणे यः परिणामः करणेषु पंचनमस्कारषडावश्यकासिकानिषद्यकाविषये शुभयोगस्तथा प्रणिधानेषु धर्मध्यानादिविषयपरिणामः समितिषु समितिविषयः

तैसें ही उपविष्टोत्थित कायोत्सर्ग का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–बहुरि जो बैठ्या हुवा धर्मध्यान अर शुक्लध्यान—इन दोय ध्यान हैं, ताहि ध्यावै है, ताकैं यह कायोत्सर्ग आगम विषै उपविष्टोत्थित नाम जाणणा ।।१७५।।

आगै उपविष्टोपविष्टनाम कायोत्सर्ग का लक्षण है ताहि, कहै है—

अर्थ–जो पर्यंकासन कायोत्सर्ग करि तिष्ठता आर्तध्यान, बहुरि रौद्रध्यान-यह दो ध्यान हैं, ताहि ध्यावै है ताकें यह कायोत्सर्ग उपविष्टोपविष्ट नाम जाणणां ।।१७६।।

आगै कायोत्सर्गकरि तिष्ठता शुभमन विषैं संकल्प हैं , ताहि करै । कौंन शुभ मनःसंकल्प हैं? ऐसे पूछैं कहै हैं—

अर्थ–दर्शन, ज्ञान, चारित्र विषैं जो मन का संकल्प ज्ञान, दर्शन, उपयोग विषैं जो चित्त का व्यापार अर संजम विषैं जो परिणाम कायोत्सर्ग के निमित्त जो ध्यान प्रत्याख्यान कैं ग्रहण विषैं जो परिणाम, करणेषु कहिये पंच नमस्कार, षडावश्यक, आसिका, निषद्यिका- इन विषैं, शुभजोग तैसें ही प्रणिधाने कहिये धर्म-ध्यानादिक विषैं परिणाम, बहुरि समिति विषैं परिणाम, विद्या जो द्वादशांग, चतुर्दश पूर्व इन विषैं जो संकल्प, आचरण जो भिक्षाशुद्धि कूं आदि दे तिन विषैं परिणाम, अहिंसा आदि महाव्रतनि विषैं परिणाम, समाधि कहिये सन्यास विषैं, पंचनमस्कार सुणवै विषैं परिणाम, गुण विषै परिणाम, ब्रह्मचर्य जो मैथुन का त्याग ता विषैं परिणाम, पृथिवीकायकूं आदि दे छहजीवनिकाय विषै रक्षा का परिणाम, क्षमा जो क्रोध का उपशम तिस विषैं परिणाम, निग्रहे कहिये इंद्रियनि के निग्रह विषैं अभिलाष, आर्जव-मार्दव विषैं परिणाम, मुक्ति जो सर्वपरिग्रह का त्याग तिस विषैं परिणाम, विनय विषैं परिणाम, श्रद्धान विषैं परिणाम—यह समस्त शुभ

परिणामः ।।१७७।। तथा—

विज्जाचरणमहव्वदसमाधिगुणबंभचेरछक्काए ।
खमणिग्गह अज्जवमद्दवमुत्तीविणए च सद्दहणे ।।१७८।।

विद्यायां द्वादशांगचतुर्दशपूर्वविषयः संकल्पः, आचरणे भिक्षाशुद्ध्यादिविषयः परिणामः, महाव्रतेषु अहिंसादिविषयपरिणामः, समाधौ विषयसंन्यसनेन पंचनमस्कारस्तवनपरिणामः, गुणेषु गुणविषयपरिणामः, ब्रह्मचर्ये मैथुनपरिहारविषयपरिणामः, षट्कायेषु पृथिवीकायादिरक्षणपरिणामः, क्षमायां क्रोधोपशमनविषयपरिणामः, निग्रह इन्द्रियनिग्रहविषयोऽभिलाषः, आर्जवमार्दवविषयः परिणामः, मुक्तौ सर्वसंगपरित्यागविषयपरिणामः, विनयविषयः परिणामः, श्रद्धानविषयः परिणामः ।।१७८।।

उपसंहरन्नाह—

एवंगुणो महत्थो मणसंकप्पो पसत्थ वीसत्थो ।
संकप्पोत्ति वियाणह जिणसासणसम्मदं सव्वं ।।१७९।।

एवंगुण पूर्वोक्तिमनःसंकल्पो मनःपरिणामः महार्थः कर्मक्षयहेतुः प्रशस्तः शोभनो विश्वस्तः सर्वेषां विश्वासयोग्यः संकल्प इत सम्यग्ध्यानमिति विजानीहि जिनशासने सम्मतं सर्वं समस्तमिति, एवंविशिष्टं ध्यानं कायोत्सर्गेण स्थितस्य योग्यमिति ।।१७९।।

अप्रशस्तमाह—

परिवारइड्ढिसक्कारपूयणं असणपाणहेऊ वा ।
लयणसयणासणं भत्तपाणकामट्ठहेऊ वा ।।१८०।।

परिवारः पुत्रकलत्रादिकः शिष्यसामान्यसाधुश्रावकादिकः ऋद्धिर्विभूतिर्हस्त्यश्वद्रव्यादिका, सत्कारः कार्यादिष्वग्रतः करणं पूजनमर्चनं अशनं

संकल्प है ।।१७७-१७८।। आगै इस कथन का संकोच करै है—

अर्थ–एवं गुण कहिये पूर्वोक्त, मनःसंकल्प कहिये मन का परिणाम, महार्थः कहिये कर्मक्षय कूं कारण, प्रशस्त कहितै शोभायमान, विश्वस्तः कहिये सर्व के विश्वास जोग्य, या प्रकार जिन शासन विषैं कह्या समस्त संकल्प ताहि सम्यक् ध्यान तुम जानहु । कायोत्सर्गकरि तिष्ठता पुरूषकै या प्रकार श्रेष्ठ ध्यान जोग्य है ।।१७९।। आगै अशुभ ध्यान है, ताहि कहै है—

अर्थ–परिवार जो पुत्र, कलत्र, मित्रादिका अथवा शिष्य जो सामान्य साधु श्रावकादिक, ऋद्धि जो विभूति, हाथी, घोरा (घोड़ा) द्रव्यादिक, सत्कार जो कार्य आदि विषैं आगै करणां, पूजन, अशन जो भोजनादिक, पान जो सुगंध जलादिक, हेतु कहिये कारण वा का विकल्प अर्थ है । लयन जो उकीरया (उत्कीर्ण) पर्वत का प्रदेश, शयन जो पल्यंक, तुलाई (गद्दा) आदि आसन जो वेत्रासनादिक, भक्त कहिये भक्ति युक्त मनुष्य वा आपनी भक्ति, प्राण जो सामर्थ्य वा दस प्रकार प्राण, काम जो मैथुन की इच्छा, अर्थ जो द्रव्यादिक को प्रयोजन इत्यादिक कै कारण

भक्तादिकं पानं सुगन्धजलादिकं हेतु: कारणं वा विकल्पार्थ:, लयनं उत्कीर्णपर्वतप्रदेश:, शयनं पल्यंकतूलिकादिकं, आसनं वेत्रासनादिकं, भक्तो भक्तियुक्तो जन आत्मभक्तिर्वा, प्राण: सामर्थ्यं दशप्रकारा: प्राणा वा, कामो मैथुनेच्छा, अर्थो द्रव्यादिप्रयोजनं, इत्येवंकारणेन कायोत्सर्गं य: करोति परिवारनिमित्तं विभूतिनिमित्तं सत्कारपूजानिमित्तं चाशनपाननिमित्तं वा लयनशयनासननिमित्तं कायोत्सर्गं य: करोति मम भक्तो जनो भवत्विति मदीया भक्तिर्वा ख्यातिं गच्छत्विति, य: कायोत्सर्गं करोति, मदीयं प्राणसामर्थ्यं लोको जानातु मम प्राणरक्षको देवो वा मनुष्यो वा भवत्विति हेतो य: कायोत्सर्गं करोति, कामहेतुरर्थहेतुश्च य: कायोत्सर्ग: स सर्वोऽप्यप्रशस्तो मन:संकल्प इति ।।१८०।।

आज्ञाणिद्देसपमाणकित्तीवण्णणपहावणगुणट्ठं ।
झाणमिणमप्पसत्थं मणसंकप्पो दु वीसत्थो ।।१८१।।

आज्ञा आदेशमन्तरेण नीत्वा वर्त्तनं । निर्देश: आदेशो वचनस्यानन्यथा करणं । प्रमाणं सर्वत्र प्रमाणीकरणं । कीर्त्ति: ख्यातिस्तस्या वर्णनं प्रशंसनं। प्रभावनं प्रकाशनं । गुणा: शास्त्रज्ञातृत्वादयोऽर्थ: प्रयोजनं, आज्ञां मम सर्वोऽपि करोतु निदेशं मम सर्वोऽपि करोतु प्रमाणीभूतं मां सर्वोऽपि करोतु मम कीर्त्तिवर्णनं सर्वोऽपि करोतु, मां प्रभावयन्तु सर्वेऽपि मदीयान् गुणान् सर्वेऽपि विस्तारयन्त्वित्यर्थं कायोत्सर्गेण ध्यानमिदमप्रशस्तमेवंविधो मन:संकल्पोऽविश्वस्तोऽविश्वसनीयो न चिन्तनीयोऽप्रशस्तो यत इति ।।१८१।। कायोत्सर्गनिर्युक्तिमुपसंहरन्नाह—

काउस्सग्गणिजुत्ती एसा कहिया मए समासेण ।
संजमतवड्ढियाणं[1] णिग्गंथाणं महरिसीणं ।।१८२।।

कायोत्सर्गनिर्युक्तिरेषा कथिता मया समासेन, संयमतपोवृद्धिमिच्छतां निर्ग्रन्थानां महर्षीणामिति, नात्र पौनरुक्त्यमाशंकनीयं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकशिष्यसंग्रहणात्सूत्रवार्त्तिकस्वरूपेण कथनाच्चेति ।।१८२।।

जो कायोत्सर्ग करै, मेरे भक्तजन होउ, भक्ति विख्याति है, ताहि प्राप्त होउ—इस निमित्त कायोत्सर्ग करै । वहुरि मेरा सामर्थ्य लोक जानहु, देव अथवा मनुष्य मेरा प्राणनिका रक्षक होहु, काम कै निमित्त, अर्थ के निमित्त, जो कायोत्सर्ग सो समस्तहू अप्रशस्त मन का संकल्प है ।

आज्ञा जो आदेश, विना भयकरि प्रवृत्ति, निर्देश जो वचन का अन्यथा नांही करणां, प्रमाण जो सर्वत्र प्रमाणीकता, कीर्ति जो विख्याति ताका वर्णन प्रशंसा, प्रभावना जो प्रकाश, गुण जे शास्त्र ज्ञातृत्व आदिक-इनकै निमित्त जो कायोत्सर्गकरि ध्यान करै । समस्त हू मेरी आज्ञा पालो, समस्त हूं मेरा कह्या करौ, समस्त ही मोही प्रमाणभूत करौ, समस्त हू मेरी कीर्ति का वर्णन करौं, समस्त हू मेरी प्रभावना करो, समस्त हू मेरे गुण विस्तारौ—अैसा मन का संकल्प अप्रशस्त ध्यान है, सो नांही चितवन करणां । जातै यह अप्रशस्त कहतां अशुभ ध्यान है ।।१८०-१८१।। आगैं कायोत्सर्ग की निर्युक्ति है, ताहि संकोचते आचार्य कहै है—

अर्थ–संजम अर तप इनकी वृद्धिकूं वांछते अैसे निर्ग्रंथ महान ऋषीश्वर तिनकूं मैं यह कायोत्सर्ग निर्युक्ति संक्षेपकरि कही । इहां पुनरुक्त दोष की नांही शंका करणी । द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक शिष्य के संग्रहतैं बहुरि सूत्र, वार्तिक स्वरूपकरि कथन है यातैं ।।१८२।।

---

१. अ० ब० संजमतवट्टयाणं, ग० तवड्ढयाणं

षडावश्यकचूलिकामाह—

सव्वावासणिजुत्तो णियमा सिद्धोत्ति होइ णायव्वो ।
अह णिण्सेसं कुणदि ण णियमा आवासया होंति ।।१८३।।

आवश्यकानां फलमाह—अनया गाथया सर्वैरावश्यकैर्निर्युक्त: सम्पूर्णैरस्खलितै: समताद्यावश्यकैरुद्युक्त: परिणतो नियमात् निश्चयेन सिद्ध इति भवति ज्ञातव्यो [1]भाविनिवर्त्तमानबहुप्रचारोऽन्तर्मुहूर्त्तादूर्ध्वं सिद्धो भवति, अथवा सिद्ध एवं सर्वावश्यकैर्युक्त: सम्पूर्णो नान्य इति, अथ पुन: शेषात् स्तोकात् निर्गतानि नि:शेषाणि[2] न स्तोकरहितानि सावशेषाणि न सम्पूर्णानि करोत्यावश्यकानि तदा तस्य नियमान्निश्चयात् आवासका:[3] स्वर्गाद्यावासा भवन्ति तेनैव भवेन न मोक्ष: स्यादिति यदि सविशेषान्नियमात्करोति तदा तु सिद्ध: कर्मक्षयसमर्थ: स्यात्, अथ निर्विशेषान्नियमाच्छैथिल्यभावेन करोति तदा तस्य यतेर्नियमा: समतादिक्रिया आवासयन्ति प्रच्छादयन्तीति आवासका: प्रच्छादका: नियमाद्भवन्तीत्यर्थ: । अथवा संसारे आवासयन्ति स्थापयन्तीत्यर्थ: ।।१८३।।

अथवाऽऽवासकानामयमर्थ इत्याह—

आवासयं तु आवसएसु सव्वेसु अपरिहीणेसु ।
मणवयणकायगुत्तिंदियस्स आवासया होंति ।।१८४।।

मनोवचनकार्यैर्गुप्तानीन्द्रियाणि यस्यासौ मनोवचनकायगुप्तेन्द्रियस्तस्य मनोवचनकायगुप्तेन्द्रियस्य सर्वेष्वावश्यकेष्वपरिहीणेष्वावसनमवस्थानं यत्तेन आवश्यका: साधोर्भवंति परमार्थतोऽन्ये पुनरावासका: कर्मागमहेतव एवेति, अथवा आवासयन्तु इति प्रश्नवचनं, आवश्यकानि सम्पूर्णानि कथंभूतस्य पुरुषस्य भवन्तीति प्रश्ने तत आह—सर्वेषु चापरिहीणेषु मनोवचनकायगुप्तेन्द्रियास्यावश्यकानि भवन्तीति निर्देश: कृत इति ।।१८४।।

आगै ''षडावश्यक-चूलिका'' है, ताहि कहै है—

अर्थ—इस गाथा करि आवश्यकनि को फल है, ताहि कहै हैं— संपूर्ण अस्खलित समतादिक जे आवश्यक तिनकरि निर्युक्त कहिये उद्यमवान अैसा साधु नियमकरि (निश्चयकरि) सिद्ध होय है—अैसा जाणणां । इहां भावी विषैं विद्यमान का उपचार है । अंतर्मुहूर्त पीछै सिद्ध होयगा अथवा सर्व आवश्यकनिकरि पूर्ण है, सो सिद्ध ही है और नांही है । बहुरि शेष जो स्तोक, तातैं रहित ते नि:शेष कहिये संपूर्ण, आवश्यक नांही करै हैं तदि ताकै नियमकरि स्वर्गादिक विषैं आवास होय है, तिस ही भवकरि मोक्ष नांही होय । जो सविशेष नियम करै तदि सिद्ध कहिये कर्मक्षय विषैं समर्थ होय, बहुरि शिथिल भावकरि निर्विशेष नियम करै, तदि तिस जती (मुनि) के नियम जे समतादिक क्रियातैं प्रच्छादक होय है । अथवा संसार विषैं स्थापै हैं- अैसा प्रयोजन है ।।८३।। अथवा आवासकनिका यह अर्थ है । अैसा कहै है—

अर्थ—मन, वचन, कायकरि गुप्त हैं इंद्रिय जाकै अैसा मुनि कैं संपूर्ण समस्त आवश्यकनिकै विषैं जो आवसनं कहिये जतन करि अवस्थान ते परमार्थतैं आवासक होय हैं । बहुरि अन्य आवासक हैं ते कर्म्मागम के कारण ही हैं । अथवा 'आवासयंतु' यह प्रश्नवचन है—कौन पुरुष कै आवश्यक संपूर्ण होय है? यह प्रश्न होतैं यह पूर्वोक्त उत्तर निर्देश कीया ।।१८४।।

---

१. क० भाविनि भूतवदुपचार: अन्त° । २. क० न सम्पूर्णानि । ३. क० °कात् स्वर्गादौ निवासो भावति ।

आवश्यककरणविधानमाह—

तियरण सव्वविसुद्धो दव्वे खेत्ते यथुत्तकालह्मि ।
मोणेणव्वाखित्तो कुज्जा आवासया णिच्चं ।।१८५।।

त्रिकरणैर्मनोवचनकायैः सर्वथा शुद्धो द्रव्यविषये क्षेत्रविषये यथोक्तकाले आवश्यकानि नित्यं मौनेनाव्याक्षिप्तः सन् कुर्याद्यतिरिति ।।१८५।।

अथासिकानिषिद्यकयोः किंलक्षणमित्याशंकायामाह—

जो होदि णिसीदप्पा णिसीहिया तस्स भावदो होदि ।
अणिसिद्धस्स णिसीहियसद्दो हवदि केवलं तस्स ।।१८६।।

यो भवति निसितो बद्ध आत्मपरिणामो येनासौ निसितात्मा निगृहीतेन्द्रियकषायचित्तादिपरिणामोऽसौ निसितात्माऽथ वा निषिद्धात्मा सर्वथा नियमितमतिस्तस्य भावतो निषिद्यका भवति । [१]अनिषिद्धस्य स्वेच्छाप्रवृत्तस्यानिषिद्धात्मनश्चलचित्तस्य कषायादिवशवर्त्तिनो निषिद्यकाशब्दो भवति केवलं शब्दमात्रकरणं तस्येति ।।१८६।। आसिकार्थमाह—

आसाए विप्पमुक्कस्स आसिया होदि भावदो ।
आसाए अविप्पमुक्कस्स सद्दो हवदि केवलं ।।१८७।।

आशया कांक्षया विविधप्रकारेण मुक्तस्य आसिका भवति भावतः परमार्थतः, आशया पुनरविप्रमुक्तस्यासिकाकरणं शब्दो भवति केवलं, किमर्थमासिकानिषिद्यकयोरत्र निरूपणमिति चेन्न त्रयोदशकरणमध्ये पठितत्वात्, यथाऽत्र पंचनमस्कारनिरूपणं षडावश्यकानां च निरूपणं कृतमेवमनयोरप्यधिकारात्

आगै आवश्यक करणें के विधान कहै हैं—

अर्थ—त्रिकरण जे मन, वचन, काय तिनकरिकै सर्वथा शुद्ध द्रव्य विषैं, क्षेत्र विषैं, यथोक्त काल विषैं, नित्य ही मौन करि, अव्याक्षिप्त कहिये निराकुल हुवा संता आवश्यक हैं, तिनहि करैं ।।१८५।।

आगैं आसिका-निषद्यका का लक्षण कह्या ? ऐसी आशंका होतैं कहै हैं—

अर्थ—जो निसितात्मा कहिये रोक्या है आपका परिणाम जानैं, निग्रह कीया है इंद्रिय, कषाय, चित्तादि परिणाम जानैं सो यह निसितात्मा है । अथवा निषिद्धात्मा कहिये सर्वथा निश्चित है बुद्धि जाकी, ताकै भावतैं निषद्यका होय है । बहुरि अनिसितस्य कहिये स्वेच्छातैं प्रवर्तता अनिषिद्धात्मनः कहिये चलायमान है चित्त जाका कषायादिकतैं वशवर्ती ताकै निषद्यका है सो केवल शब्द मात्र जाणणां ।।१८६।।

आगै आसिका का अर्थि है, ताहि कहै हैं—

अर्थ—नाना प्रकार आशा जो आकांक्षा ताकरि रहित, ताकैं आसिका है । सो भावतः कहिये परमार्थतैं जाननां । बहुरि आशाकरि सहित जो पुरुष ताकैं आसिकाकरणां केवल शब्द मात्र है । कौन अर्थि आसिका, निषद्यका इहां निरूपण है? ऐसे पूछै, उत्तर कहै है—तेरह प्रकार करण विषैं यहु पठित हैं, यातैं जैसैं इहां पंचनमस्कारनिका निरूपण बहुरि षडावश्यकनिका निरूपण कीया, ऐसे इनहूं का अधिकारतैं

१. क० अनिसितस्य ।

भवतीति नामस्थाने निरूपणमनयोरिति ।।१८७।। चूलिकामुपसंहरन्नाह—

णिज्जुत्ती णिज्जुत्ती एसा कहिदा मए समासेण ।
अह वित्थारपसंगोऽणियोगदो होदि णादव्वो ।।१८८।।

निर्युक्तेर्निर्युक्तिरावश्यकचूलिकावश्यकनिर्युक्तिरेषा[१] कथिता मया समासेन संक्षेपेणार्थविस्तारप्रसंगोऽनियोगादाचारांगाद्‌भवति ज्ञातव्य इति।।१८८।।

आवश्यकनिर्युक्तिं सचूलिकामुपसंहरन्नाह—

आवासयणिज्जुत्ती एवं कधिदा समासओ विहिणा ।
जो उवजुंजदि णिच्चं सो सिद्धिं जादि विसुद्धप्पा ।।१८९।।

आवश्यकनिर्युक्तिरेवंप्रकारेण कथिता समासतः संक्षेपतो विधिना, तां य उपयुंक्ते समाचरति नित्यं सर्वकालं स सिद्धिं याति विशुद्धात्मा सर्वकर्मनिर्मुक्त इति ।।१८९।।

इति श्रीवट्टकेराचार्यवर्यप्रणीतमूलाचारस्य वसुनंद्याचार्यविरचितायाम्
आचारवृत्तावावश्यकनिर्युक्तिनामकः सप्तमः परिच्छेदः ।।७।।

दोय हैं इसीलिये नाम के स्थान विषैं इनका निरूपण है ।। १८७।।

'चूलिका' को संकोचते आचार्य कहै हैं—

अर्थ–निर्युक्ते निर्युक्ति कहिये आवश्यक चूलिका अथवा आवश्यक न्याय में यह संक्षेपकरि कही । बहुरि याका विस्तारका प्रसंग अनियोग जो आचारांग, तातैं जाननां ।।१८८।।

आगैं चूलिका सहित आवश्यक निर्युक्ति हैं, ताहि संकोचते संते आचार्य कहै हैं—

अर्थ–या प्रकार मैं आवश्यक निर्युक्ति विधिकरि संक्षेपतैं कही । जो आवश्यक निर्युक्ति कूं सर्वकाल आचरण करै हैं, सो पुरुष समस्त कर्म्मनितैं रहित भया, सिद्धि जो मोक्ष, ताहि प्राप्त होय है ।।१८९।।

अैसे आचार्य श्री वट्टकेरस्वामी विरचित मूलाचार नाम प्राकृत ग्रंथ की आचार्य वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ति विरचित आचारवृत्ति नाम संस्कृत टीका कैं अनुसार यह देशभाषामय वचनिका विषैं आवश्यक निर्युक्ति है नाम जाका अैसा सातवां अधिकार समाप्त भया ।।७।।

इहां पर्यंत गाथासूत्र छह सै निवैं (६९०) भये, अैसैं जाननां ।।

---

१. क ०क्तिन्याये वा एषा ।

अष्टमं

द्वादशानुप्रेक्षाधिकारः[१]

अर्हम्

अनंतपदलाभाय यत्पदद्वन्द्वचिन्तनम् ।
जगदर्हः स वः पायाद्देवस्त्यागदिगम्बरः ।।

द्वादशानुप्रेक्षाधिकारमष्टमं प्रपञ्चयंस्तावदादौ नमस्कारपूर्वकं प्रतिज्ञावाक्यमाह—

सिद्धे णमंसिदूण[२] य झाणुत्तमखविय[३]दीहसंसारे ।
दह दह दो दो य जिणे दह दो अणुपेहणा वुच्छं ।।१।।

सिद्धान् लब्धात्मस्वरूपान् । नमंसित्वा प्रणम्य । किंविशिष्टान् ? ध्यानेनोत्तमेन क्षपितो दीर्घसंसारो यैस्ते ध्यानोत्तमक्षपितदीर्घसंसारास्तान् शुक्लध्यानविध्वस्तमिथ्यात्वासंयमकषाययोगान् । दश दश वीप्सावचनं चैतत् विंशतितीर्थंकरान्, द्वौ द्वौ चतुरश्चतुर्विंशतितीर्थंकराँश्च जिनान् प्रणम्य । दश द्वे च द्वादशानुप्रेक्षा वक्ष्य इति संबंधः । [४]ध्यानमध्ये या द्वादशानुप्रेक्षाः सूचितास्तासां प्रपंचोऽयमिति ।।१।।

भो भव्यजन हो बाह्य-आभ्यंतर परिग्रह के त्याग तैं दिगंबर मुद्रा के धारी जगतकरि पूज्य सो देव तुमारी रक्षा करहु । जाका चरणजुगलनिका चिंतवन अनंत यह जो अविनश्वर मोक्षपद, ताकी प्राप्ति निमित्त होय है ।

आगै "द्वादशानुप्रेक्षिक नाम आठवां अधिकार" है । ताहि विस्तारतैं संतै प्रथम ही आदि विषैं नमस्कार पूर्वक प्रतिज्ञा वाक्य है ताहि कहै है—

अर्थ—उत्तम ध्यानकरि खिपाया है दीर्घ संसार जिनने याका विशेष शुक्ल ध्यानकरि विध्वस्त कीया है मिथ्यात्व, असंजम, कषाय, जोग जिनने, असे सिद्धान् कहियो पाया है आत्म स्वरूप जिनने तिनहि नमस्कारकरि वहुरि दश-दश कहिये वीस, द्वौ-द्वौ कहिये च्यार असे-चतुर्विंशति२४ तीर्थंकर जिनदेव, तिनहि नमस्कारकरि द्वादश अनुप्रेक्षा कहिये बारह (१२) अनुप्रेक्षा हैं । तिनहि कहूंगा । ध्यान के मध्य जै द्वादश अनुप्रेक्षा कहे तिनका यह विस्तार कथन है ।।१।।

---

१. फलटन से प्रकाशित प्रति में यह नवम अधिकार है और 'अनगार भावना' अष्टम अधिकार है । २. ख. णमंसदूण । ३. ख. बिंद ।
४. ध्यानमध्ये या द्वादशानुप्रेक्षाः सूचितास्तासां प्रपंचोऽयमिति प्रतिज्ञावाक्येन सूचितास्तासां प्रपंचोऽयमिति प्रेस-पुस्तके पाठः ।

प्रतिज्ञावाक्येन सूचितानुप्रेक्षानामान्याह—

अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णसंसारलोगमसुचित्तं ।
आसवसंवरणिज्जरधम्मं बोधिं च चिंतेज्जो ।।२।।

अध्रुवमनित्यमशाश्वतं । अशरणमत्राणं । एकत्वमसहायत्वं द्वितीयस्याभावो न मे द्वितीयः । अन्यत्वं पृथकत्वं शरीरादप्यन्योऽहमिति भावनं। संसारश्चतुर्गतिपरिभ्रमणं प्रदेशानामद्वर्त्तनं परिवर्तनं च । लोकं वेत्रासनझल्लरीमृदंगसंस्थानं । अशुभत्वमशुचित्वं सर्वदुःखस्वरूपं । आस्रवं कर्मागमद्वार मिथ्यात्वादिकं । संवरं कर्मागमद्वारनिरोधनं सभ्यक्त्वादिकं । निर्जरां कर्मनिर्गमनं । धर्ममुत्तमक्षमादिलक्षणं । बोधिं सभ्यवत्वादिलाभं चान्तकाले संन्यासेन प्राणत्यागं चिन्तयेत् । एवंप्रकारा द्वादशानुप्रेक्षा ध्यायेदिति ।।२।।

तासु मध्ये तावदनित्यताभेदमाह—

ठाणाणि आसणाणि य देवासुरइड्ढिमणुयसोक्खाइं ।
मादुपिदुसयणसंवासदा य पीदी वि य अणिच्चा ।।३।।

स्थानानि ग्रामनगरपत्तनदेशपर्वतनदीमटंवादीनि, अथवा देवेन्द्रचक्रधरबलदेवस्थानानि अथवेक्ष्वाकुहरिवंशादिस्थानानि, तिष्ठन्ति सुखेन जीवा येषु तानि स्थानानि । आसन्ते सुखेन विशन्ति येषु तान्यासनानि राज्याङ्गानि सिंहासनादीनि, अथवा अशनानि नानाप्रकारभोजनानि [१]उत्तरत्राशनशब्देन चाशनादीनां ग्रहणात्, देवाश्चासुराश्च मनुष्याश्च देवासुरमनुष्यास्तेषां ऋद्धिर्विभूतिर्हस्त्यश्वरथपदातिद्रव्यसुवर्णादिकायाः पूर्वावस्थाया अतिरेकः, सौख्यानि

प्रतिज्ञा वाक्यकरि सूचना कीये जे अनुप्रेक्षा, तिनके नाम हैं, तिनहि कहै है—

अर्थ—अध्रुवं कहिये अनित्य, अशाश्वत, अशरणं कहिये शरण-रहित, एकत्व कहिये सहाय रहित-दूसरे का अभाव, मेरा दूसरा नांहीं । अन्यत्व कहिए जुदापणां हूं, शरीरहू तैं अन्य हूं—अैसा भावणां । संसार कहिये चतुरगति विषैं भ्रमण, प्रदेशनि का उद्वर्तन वहुरि परिवर्तन, लोक कहिये अधोलोक, मध्यलोक, उर्द्धलोक वेत्रासन, झल्लरी, मृदंग का है आकार जाका, अशुभत्वं कहिये अशुचि सर्वदुःख सरूप । आश्रव कहिये-कर्म्मागमन द्वार मिथ्यात्व आदि । संवर कहिये कर्म्मागमन द्वार का निरोध सम्यक्त्वादिक । निर्जरा कहिये कर्म्म का निग्गर्मन कहिये झडणां । धम्मं कहिये उत्तमक्षमादि लक्षण । बोधिं कहिये सम्यत्वादिक का लाभ अथवा अंतकाल विषैं सन्यासकरि प्राणत्याग कूं चिंतवणा—या प्रकार द्वादश अनुप्रेक्षा है, ताहि ध्यावै ।।२।।

आगै तिनके मध्य प्रथम ही अनित्यता का भेद कहै है—

अर्थ–स्थानानि कहिये-ग्राम, नगर, पत्तन, देश, पर्वत, नदी, मटंवादिक अथवा देवेन्द्र, चक्रवर्ति, बलिभद्रादिक स्थान अथवा इक्ष्वाकु, हरिवंशादिक स्थान जीव सुखकरि जिन विषै तिष्ठै ते स्थान कहिये । सुखकरि जिन विषै वैठिये ते आसन कहिये । राज्य के अंग अैसे सिंहासनादिक अथवा अशनानि कहिये नाना प्रकार के भोजन । देव, असुर अर मनुज कहिये मनुष्य, तिनकी ऋद्धि कहिये-विभूति हाथी-घोड़ा, रथ, पयादे, द्रव्य सुवर्णादिक पूर्व अवस्थातैं अधिकतर अर सौख्यानि कहिये भले द्रव्य अर इन्द्रिय-इनतें उपज्या आनंद, माता पिता स्वजन कहियें वांधव

---

१. उत्तरत्रासन शब्देन वेत्रासनादीनां ग्रहणात् । क० द०

शुभद्रव्येन्द्रियजनितानंदरूपाणि । माता जननी, पिता जनक:, स्वजना बान्धवा संवासतास्तै: सहैत्रावस्थानं । प्रीतिरपि तै: सह स्नेहोऽपि । अनित्या इति संबंध: । एतानि सर्वाणि स्थानादीन्यनित्यानि नात्र शाश्वतरूपा बुद्धि: कर्त्तव्येति ।।३।।

तथा—

सामग्गिंदियरूवं मदिजोवणजीवियं बलं तेजं ।
गिहसयणासणभंडादिया अणिच्चेति चिंतेज्जो ।।४।।

सामग्री राज्यगृहाद्युपकरणं हयहस्तिरथपदातिखड्गकुंतलपरशुबीजकोशादीनि, इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि, रूपं गौरवर्णादिरमणीयता, मतिर्बुद्धि: पूर्वापरविवेचनं, यौवनं द्वादशवर्षेभ्य उर्ध्वं वय:परिणाम:, जीवितमायु:, बलं सामर्थ्यं, तेज: शरीरकान्ति: प्रतापो वा, पुरुषैरानीतानर्थान् गृहणन्तीति गृहा: स्त्रियस्तत्सहचरितप्रासादादयश्च, शयनानि तूलिकापर्यंकादीनि सुखकारणानि, आसनानि वेत्रासनपीठिकादीनि सुखहेतूनि शरीरादीनि वा पुत्रमित्रदासीदासादीनि च, भांडादीनि च शुंठिमरिचहिंगुवस्त्रकर्पासरूप्यताम्रादीनि सर्वाण्यनित्यानि अध्रुवाणि इत्येवं चिन्तयेत् ध्यायेदिति ।।४।।

अशरणस्वरूपमाह—

हयगयरहणरबलवाहणाणि मंतोसधाणि विज्जाओ ।
मच्चुभयस्स ण सरणं णिगडी णीदी य णीया य ।।५।।

अश्वगजरथनरबलवाहनानि मंत्रौषधानि च विद्याश्च प्रज्ञप्त्यादयो मृत्युभयाद्युपस्थितात्र शरणं न त्राणं न रक्षा, निकृतिर्वंचना, नीतिश्चाणक्यविद्या "स्वपक्षपरपक्षवृद्धिहानिप्रतिपादनोपायो नीति:" । सा च सामोपप्रदानभेददंडरूपा । तत्र प्रियहितवचनमंगं स्वाजन्यं च साम, नानाद्रव्यप्रदानमुपप्रदानं,

---

इनकरि सहित, संवासता कहिये एक ठोर रहणां । बहुरि इनकरि सहित प्रीति हू अनित्य है । यह सर्व ही स्थानादिक अनित्य हैं । इन विषैं नित्यपणैं की बुद्धि नांही करनां ।।३।। तैसे ही आगै कहैं हैं—

अर्थ–सामग्री कहिये राज्य, घर आदि उपकरण अर घोड़े, हाथी, रथ, पयादे, खड्ग, सैल, हल, फरसी, बीजकोश आदि, इंद्रियाणि कहिये नेत्रादिक, रूप कहिये गौर वर्णादिक को रमणीक पणों । मति कहिये पूर्वापर का विवेक रूप बुद्धि । यौवन कहिये बारह बरस पीछै अवस्था की परिणति । जीवित कहिये आयु, बल कहिये सामर्थ्य, तेज कहिये शरीर की कांति अथवा प्रताप, पुरुषकरि ल्याये जे अर्थ तिनकूं ग्रहण करै-तिनकूं गृह कहिये सो इहां गृह नाम स्त्री का है, तिनकै रहवेतै मंदिरादिक भी गृह कहिये । शयनानि कहिये तुलंग, पिलंग आदि सुख के कारण । आसनानि कहिये वेत्रासन, पीठिकादिक सुख के कारण अथवा शरीरादिक बहुरि पुत्र, मित्र, दासी, दासादिक, भांडादीनि कहिये सूठिं, मिरचि, हींग, वस्त्र, कपास, तावां, रूपा यह सर्व ही अनित्य है—अैसे चिंतवन करै, ध्यावै ।।४।।

आगै अशरणानुप्रेक्षा का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–घोड़ा, हाथी, रथ, मनुष्य, बल, वाहन बहुरि, मंत्र, औषधि, प्रज्ञप्ति आदि विद्या, निकृति कहिये ठिगणां, नीति कहिये चाणिक्य, विद्या-स्वपक्ष की वृद्धि, परपक्ष की हाणि, ताका कहणै का उपाय सो नीति—१. साम, २. दान (उपप्रदान), ३. भेद, ४. दंड रूप हैं । (१) तहां प्यारे हितकारी वचन अंग की स्वजनना (आत्मीयता) सो साम है । (२) नाना प्रकार द्रव्य का देनां सो दान है । (३) भय उपजावना,

त्रासनभर्त्सनादिर्भेद:, ताडनं छेदनं दंड:, निजा बांधवा भ्रात्रादयश्चैवमादीनि मृत्युभये सत्युपस्थिते शरणं न भवंतीति चिन्तनीयमिति ।।५।।

तथा—

जम्मजरामरणसमाहिदह्मि सरणं ण विज्जदे लोए ।
जरमरणमहारिउवारणं तु जिणसासणं मुच्चा ।।६।।

जन्मोत्पत्ति:, जरा वृद्धत्वं, मरणं मृत्यु:, एतै: समाहिते संयुक्ते सुष्ठु [1]संकलिते शरणं रक्षा न विद्यते लोकेऽस्मिञ्जगति, जरामरणमहारिपुवारणं, जिनशासनं मुक्त्वा[2]ऽन्यच्छरणं न विद्यते लोके इति संबंध: ।।६।। तथा—

मरणभयह्मि उवगदे देवा वि सइंदया ण तारंति ।
धम्मो त्ताणं सरणं गदित्ति चिंतेहि सरणत्तं ।।७।।

मरणभय उपगते उपस्थिते देवा अपि सेन्द्रा देवेन्द्रसहिता: सुरासुरा: न तारयन्ति न त्रायन्ते तस्माद्धर्मो जिनवराख्यातस्त्राणं रक्षणं शरणमाश्रयो गतिश्चेति चिंतय भावय शरणत्वं, यस्मात्र कश्चिदन्य आश्रय:, धर्मो पुन: शरणं रक्षकोऽगतिकानां गतिरिति कृत्वा धर्मं शरणं जानीहीति ।।७।।

एकत्वस्वरूपमाह—

सयणस्स परियणस्स य मज्झे एक्को रुवंतओ दुहिदो ।
वज्जदि मच्चुवसगदो ण जणो कोई समं एदि ।।८।।

निरादर करनां सो भेद है । (४) ताडन अर छैदन सो दंड है । बहुरि निजा कहिये भाई ने आदिदे बांधव इत्यादिक मरणभय निकट आवतैं सहाई नांही होय हैं, अैसे विचारै ।।५।।

तैंसे ही और कहै है—

अर्थ–जन्म कहिये उत्पत्ति, जरा कहिये वृद्धावस्था, मरण कहिये मृत्यु, इनकरि संजुगत अैसा जो यह लोका कहिये जगत, ताकै विषैं जरा-मरण तेई भये बडे शत्रु, तिनका निवारण करने वाला अैसो जिनशासन ताहि मुक्त कहिये छोड़ि और सरणा नांही है । एक जिनधर्म ही सहाय है ।।६।। तैंसे ही आगै कहै है–

अर्थ–मरणभय निकट आवतैं इंद्र सहित सुर-असुर अैसे देव नांही, तारयंति कहिये रक्षा करै हैं । तातैं जिनवर भाषित धर्म है सो त्राण कहिये रक्षक, शरण कहिये आश्रय, गति कहिये भली गति का दाता—या प्रकार शरणां है । ताहि चितवनकरि जातैं धर्म विना अन्य सरण, रक्षक, अगति पुरूषनिकी गति कोउ नांहीं है, अैसे तुम जानउ ।।७।।

आगै एकत्वानुप्रेक्षा का स्वरूप है, ताहि कहै है –

अर्थ–स्वजन जो भाई, भतीजा, काका, बाबा, परिजन जो दासी, दास, मित्रादिक—इनकै मध्य, एक: कहिये सहाय रहित एकला,

---

१. संकुले क । २. नान्यच्छरणं विद्यते क ।

स्वजनस्य भ्रातृव्यपितृव्यादिकस्य, परिजनस्य दासीदासमित्रादिकस्य च मध्ये, एकोऽसहाय:, रुजार्तो व्याधिग्रस्तो दु:खित: रुदन् व्रजति मृत्युवशंगतो न जन: कश्चित् तेन सममेति गच्छति ।।८।।

तथा—

एक्को करेइ कम्मं एक्को हिंडदि य दीहसंसारे ।
एक्को जायदि मरदि य एवं चिंतेहि एयत्तं ।।९।।

एक: करोति शुभाशुभं कर्म, एक एव च हिण्डते भ्रमति दीर्घसंसारे, एका जायते, एकश्च म्रियते, एवं चिन्तय भावयैकत्वमिति ।।९।।

अन्यत्वस्वरूपमाह—

मादुपिदुसयणसंबंधिणो य सव्वे वि अत्तणो अण्णे ।
इह लोग बंधवा ते ण य परलोगं समं णेंति ।।१०।।

मातृपितृस्वजनसंबंधिन: सर्वेऽपि आत्मनोऽन्ये पथग्भूता इह लोके बांधवा किंचित्कार्यं कुर्वन्ति ते न परलोकं समं यन्ति गच्छन्ति—नामुत्र लोके बान्धवास्ते भवन्तीत्यर्थ: ।।१०।। तथा—

अण्णो अण्णं सोयदि मदोत्ति मम णाहओत्ति मण्णंतो ।
अत्ताणं ण दु सोयदि संसारमहण्णवे बुड्डं ।।११।।

अन्य: कश्चिदन्यं जीवं शोचयति मृतो मम नाथ इति मन्यमान:, आत्मानं न तु शोचयति संसारमहार्णवे संसारमहासमुद्रे मग्नमिति ।।११।।

रुजार्त: कहिये रोगकरि पीड़ित, दुखी अर रुदन करता मृत्यु कै वश हुवा परलोककूं गमन करैं हैं । ताकी साथि कोउ ही मनुष्य साथि नांही जाय है ।।८।।

तैसे ही आगै कहैं हैं –

अर्थ–एक ही यह जीव शुभ, अशुभ कर्म है ताहि करै है । बहुरि एक ही दीर्घ संसार विषै भ्रमै है, एक ही उपजै है, बहुरि एक ही मरै है—या प्रकार एकत्व भावना है, ताहि तुम भावऊ ।।९।।

आगै अन्यत्व अनुप्रेक्षा का स्वरूप है, ताहि कहै है–

अर्थ–माता-पिता अर स्वजन संबंधी समस्त ही अपनी आत्मातैं न्यारे हैं । ते इस लोक के भाई हैं, इस लोक संबंधी कछु कार्य करै हैं । बहुरि परलोक साथि नांही जाय हैं, परलोक विषै भाई नांही है—अैसा प्रयोजन है ।।१०।।

तैसे औरिहु कहैं है–

अर्थ– मेरा नाथ मूवा (मर गया)—अैसे मानता अन्य कोउ जीव अन्य का सोच करै है । बहुरि संसार समुद्र विषै डूबता अपना आत्मा है—ताहि नांही सोच करै है ।।११।।

शरीरादप्यन्यत्वमाह—

अण्णं इमं सरीरादिगं पि जं होज्ज बाहिरं दव्वं ।
णाणं दंसणमादा त्ति एवं चिंतेहि[१] अण्णत्तं ।।१२।।

शरीरमप्यन्यदिदं, किं पुनर्यद्बहिर्द्रव्यं नान्यदिति? तस्माज्ज्ञानं दर्शनमात्मेत्येवं चिन्तयान्यत्वमिति ।।१२।।

संसारस्य स्वरूपं विवृण्वन्नाह—

मिच्छत्तेणाछण्णो मग्गं जिनदेसिदं अपेक्खंतो ।
भमिहदि भीमकुडिल्ले जीवा संसारकंतारे ।।१३।।

मिथ्यात्वेनाछन्नोऽश्रद्धानतमसा समंतादावृत: 'मार्ग: सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि' तं जिनदर्शितं जिनेन प्रतिपादितमपश्यन् अज्ञानाद्भ्रमत्ययं जीव:, संसारकान्तारे संसारटव्यां, भीमे भयानके, कुटिलेऽतीवगहने मोहवल्यादिनिबद्ध इति ।।१३।।

चतुर्विधं संसारस्वरूपमाह—

दव्वे खेत्ते काले भावे य चदुव्विहो य संसारो ।
चदुगदिगमणणिबद्धो बहुप्पयारेहिं णादव्वो ।।१४।।

आगैं शरीरहूमैं अन्यपणां है, ताहि कहै है—

अर्थ–जो यह शरीरादिक हू अन्य है, तो बाह्य द्रव्य कहा अन्य नांही ? वे तो अन्य ही हैं । यातैं ज्ञान-दर्शन आत्मा है–या प्रकार अन्यत्व अनुप्रेक्षा है, ताहि चिंतवन करउ ।।१२।।

आगै संसार का स्वरूप है, ताहि वर्णन करते आचार्य कहै है–

अर्थ–मिथ्यात्व जो अश्रद्धान् रूप अंधकार, ताकरि आछन्न कहिये सर्व ठोर व्याप्त भया अैसा जीव, जिनदेवकरि उपदेश्या मार्ग जो सम्यग्शन-ज्ञान-चरित्ररूप मोक्षमार्ग ताहि नांही जानता, भयानीक अत्यंत गहन संसार रूप वनी विषै भ्रमण करेगा । मोह के बाहुलपणांतैं अैसा संबंध जानना ।।१३।।

आगै च्यार प्रकार संसार का स्वरूप है, ताहि कहै है–

अर्थ–संसरणं कहिये परिभ्रमण, सो संसार च्यार परिवर्तन स्वरूप जाननां–१. द्रव्यपरिवर्तन, २. क्षेत्रपरिवर्तन, ३. कालपरिवर्तन, बहुरि ४. भावपरिवर्तन. बहुरि ५. भवपरिवर्तन । इहां ही जाननां अन्य शास्त्र विषैं पंचप्रकार परिवर्तन का उपरिवर्तन है ।

१. द्रव्यपरिवर्तन—यातैं तहां द्रव्य परिवर्तन है सो दोय प्रकार है—एक नोकर्मद्रव्य परिवर्तन, बहुरि दूसरा कर्म्मद्रव्य परिवर्तन। तहां नोकर्म्मद्रव्य परिवर्तन नाम याका है—तीन शरीरनि (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक) कै मध्य, छह (पर्याप्तियों) परजाप्तियनि कै जोग्य जे पुद्गल ते एक जीवकरि, एकसमय विषै ग्रहण कीये स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादिकरि भेदरूप, बहुरि तीव्र, मंद, मध्यम भावकरि जैसे अवस्थित

१. चिंतिज्ज क ।

संसरणं संसारः परिवर्तनं, तच्चतुर्विधं द्रव्यपरिवर्तनं क्षेत्रपरिवर्त्तनं कालपरिवर्त्तनं भावपरिवर्त्तनं, भवपरिवर्त्तनं चात्रैव द्रष्टव्यमन्यत्र पंचविधस्योपदेशादिति। तत्र द्रव्यपरिवर्त्तनं द्विविधं नोकर्मपरिवर्त्तनं कर्मपरिवर्त्तनं चेति । तत्र नोकर्मपरिवर्त्तनं नाम त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या

तैसे द्वितीयादिक समय विषैं झड़ते (निर्जीण) भये ता पीछै अगृहीत परमाणु का समय प्रबद्ध हैं, तिनहि अनंतवार पूर्णकरि मिश्र परमाणु का समय प्रबद्ध तिनहि अनंत बार ग्रहकरि छोड़े, मध्य विषै गृहीत परमाणु का समय प्रबद्ध तिनहि अनंतवार ग्रहण करि छोड़ै, ऐसे तिस ही प्रकार तिस ही जीव कै जे पहले समय पुद्गल ग्रहे थे ते ही स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादिकरि नोकर्म्म भावकूं प्राप्त होय जितनैं काल तितना समुदाय रूप काल नोकर्म द्रव्य परिवर्तन है ।

आगैं कर्मद्रव्य परिवर्तन कहिये है– एक समय विषैं एक जीवकरि आठ प्रकार कर्म्म भावकरि जे पुद्गल ग्रहण कीये, समय अधिक आवली प्रमाण आवाधा काल व्यतीतकरि, द्वितीयादिक समय विषैं निर्जरा रूप कीये ता पीछैं अग्रहीत मिश्र गृहीत अनंतबार व्यतीतकरि ते ही कर्मस्कंध तिसही विधिकरि ता जीव कै जितनै काल कर्मभाव कूं प्राप्त होय तितनैं काल कर्म्मद्रव्य परिवर्तन जाननां ।

याका विशेष श्री गोमट्टसार सिद्धान्त के अनुसार लिखिये है – जीवकरि पूर्वै ग्रहे होय ऐसैं परमाणु जिनि समय प्रबद्ध रूप स्कन्धनि विषैं होय ते गृहीत कहिए । बहुरि जीवकरि पूर्वै न ग्रहे ऐसे परमाणु जिन विषैं होय ते अगृहीत कहिए । गृहीत अर अगृहीत दोउ जाति के परमाणु जिन विषैं होय ते मिश्र कहिये । इहां कोउ कहैं–अगृहीत परमाणु कैसै हैं ? ताका समाधान—सर्व जीवराशि के प्रमाण को समय प्रबद्ध के परमाणुनिका परिमाणकरि गुणिए, बहुरि जो प्रमाण आवै ताकौ अतीत काल के समयनि का परिमाणकरि गुणिए, जो प्रमाण होई तिसतैं भी पुद्गल द्रव्य का प्रमाण अनंत गुणा है । जातैं जीवराशितैं अनंत वर्गस्थान गए पुद्गल राशि होहै । तातैं अनादि काल नाना जीवनिकी अपेक्षा भी अगृहीत परमाणु लोक विषैं बहुत पाइए है । बहुरि एक जीव का परिवर्तन काल की अपेक्षा नवीन परिवर्तन का प्रारंभ भया, तब सर्व ही अगृहीत भए पीछैं गृहे तेई गृहीत हौहैं । सो इहां तिस अपेक्षा गृहीत, अगृहीत, मिश्र कहै हैं सो यथासंभव जाननां ।

अब विशेष दिखाइए है–पुद्गल परिवर्तन का काल तीन प्रकारि है—१. तहां अगृहीत के ग्रहण का काल सो अगृहीत ग्रहण काल है । २. गृहीत के ग्रहण का काल सो गृहीत ग्रहणकाल है । ३. मिश्र के ग्रहण का काल सो मिश्र ग्रहणकाल है । सो इन का परिवर्तन जो पलटनां सो कैसें हो हैं ? सो अनुक्रमयंत्र करि दिखाइए है ।—

द्रव्य परिवर्तन का यंत्र–[१]

००x	००x	००१	००x	००x	००१
xx०	xx०	xx१	xx०	xx०	xx१
xx१	xx१	xx०	xx१	xx१	xx०
११x	११x	११०	११x	११x	११०

---

१. प्रस्तुत यंत्र के चिन्हों का अर्थ इस प्रकार है १—शून्य (०) = अग्रहीत, २. हंसपद (x) = मिश्र, ३. १ = ग्रहीत ।

ये पुद्गला एकेन जीवनैकस्मिन् समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगंधादिभिन्नास्तीव्रमन्दमध्यभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णास्ततो गृहीतानंतवारानतीत्य मिश्रकांश्चानंतवारान्प्रगृह्य मध्ये गृहीताँश्चानंतवारान् समतीत्य तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्त्तनमिति ! कर्मद्रव्यपरिवर्त्तनमुच्यते—एकस्मिन् समये जीवेनैकेनाष्टविधकर्मभावेन ये पुद्गला गृहीताः समयाधिकामावलिकामतीत्य

यंत्र विषैं अग्रहीत की सहनानी तो बिंदी (शून्य–०) जानना । अर मिश्र की सहनानी हंसपद (x) जाननां । अर ग्रहीत की सहनानी एक का अंक जानना । अर दोय बार लिखनैं तैं अनंतबार जानि लेनां।

तहां विवक्षित नोकर्म पुद्गल-परिवर्तन का पहले समय तैं लगाय–प्रथम बार समयप्रबद्ध विषैं अग्रहीत का ग्रहण करै, दूसरी बार अग्रहीत का ग्रहण करें, तीसरी बार अग्रहीत का ग्रहण करै–अैसे निरंतर अनंतबार अगृहीत का ग्रहण होय निवरै, तब (हो चुकने पर) एक बार मिश्र का ग्रहण करै । याही तैं यंत्र विषैं पहलै कोठा विषै दोय बार बिंदी (शून्य) अर एक बार हंसपद (x) लिख्या । बहुरि तहां पीछै तैसे ही निरन्तर अनंतवार अग्रहीत का ग्रहणकरि एक बार मिश्र का ग्रहण करै सो, अैसे ही मिश्र का भी ग्रहण अनंतवार हो है । याहीतैं अनंतवार की सहनानी कै निमित्त यंत्र विषै जैसा पहला कोठा था, तैसा ही दूसरा कोठा लिख्या । बहुरि तंहा पीछैं तैसे ही निरंतर अनंतवार अग्रहीत का ग्रहण करि एक बार ग्रहीत का ग्रहण करै । याही तैं सीतरा कोठा विषैं दोय बिंदी अर एक का अंक लिख्या । बहुरि अग्रहीत ग्रहण आदि अनुक्रम तैं जैसे यहु एकवार ग्रहीत ग्रहण भया । तैसे ही अनुक्रमतैं एक–एक बार ग्रहीत ग्रहणकरि अनंतवार ग्रहीत ग्रहण होहै। याही तैं जैसे तीन कोठे पहले लिखे थे तैसे ही अनंत की सहनानी कै निमित्त दूसरा तीन कोठे लिखे । सो अैसैं होते प्रथम परिवर्तन भया। तातैं इतना प्रथम पंक्ति विषैं लिख्या ।

अब दूसरी पंक्ति का अर्थ दिखाइए है । पूर्वोक्त अनुक्रम भए पीछैं निरन्तर अनंतवार मिश्र ग्रहण करै, तब एक बार अगृहीत ग्रहण करैं । यातैं प्रथम कोठा विषैं दोय हंसपद अर एक बिंदी लिखी । बहुरि निरतंर अनंतवार मिश्र ग्रहणकरि एकबार अग्रहीत ग्रहण करै, सो इस ही क्रमतैं अनंतवार अग्रहीत ग्रहण करै । यातैं पहला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या । बहुरि तहां पीछैं निरंतर अनंतवारि गृहणकरि एकवार ग्रहीत ग्रहण करैं, यातैं तीसरा कोठा विषैं दोय हंसपद (xx) अर एक का अंक लिख्या सो मिश्र ग्रहण आदि पूर्वोक्त सर्व अनुक्रम लीए एक बार ग्रहीत ग्रहण होइ सो अैसे ग्रहीत ग्रहण भी अनंतबार हो है । यातैं जैसे पहले तीन कोठे लिखे थे तैसें ही दूसरा तीन कोठे लिखे । अैसे होत संतै दूसरा परिवर्तन भया ।

अब तीसरी पंक्ति का अर्थ दिखाइए है—पूर्वोक्त क्रम भए पीछै निरन्तर अनंत बार मिश्र का ग्रहणकरि एक बार ग्रहीत का ग्रहण करै । यातैं प्रथम कोठा विषैं दोय हंसपद अर एक एक का अंक लिख्या सो अनंत-अनंत बार मिश्र ग्रहणकरि–करि एक–एक बार ग्रहीत गृहणकरि अनंतवार ग्रहीत ग्रहण होहै । यातैं पहला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या ।

बहुरि अनंतबार मिश्र का ग्रहणकरि एक बार अग्रहीत का ग्रहण करै । यातैं तीसरा कोठा विषैं दोय हंसपद अर एक बिंदी लिखी। सो जैसे मिश्र ग्रहणादि अनुक्रम तैं एक बार अग्रहीत का ग्रहण भया, तैसे ही एक-एक बार करि अनंतवार अग्रहीत का ग्रहण होहै । तातैं पहले तीन कोठे थे तैसे ही दूसरा तीन कोठे लिखे । अैसे होत संतै तीसरा परिवर्तन भया ।

द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णास्ततो गृहीतानगृहीतान्मिश्राननंतवारानतीत्य त एव कर्मस्कन्धास्तेनैव विधिना तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्त्तनमिति। क्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—सूक्ष्मनिगोदजीवोऽपर्याप्तकः सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्यप्रदेशान् स्वशरीरमध्यप्रदेशान् कृत्वोत्पन्नः क्षुद्रभवग्रहणं जीवित्वा

आगैं चौथी पंक्ति का अर्थ दिखाईए है । पूर्वोक्त क्रम भए पीछैं निरन्तर अनंतवार ग्रहीत का ग्रहणकरि एक बार मिश्र का ग्रहण करै। यातैं प्रथम कौठा विषैं दोय एक अर एक हंसपद लिखा, सो अनंत अनंतवार ग्रहीत का ग्रहण करि-करि, एक-एक मिश्र ग्रहणकरि अनंत वार मिश्र का ग्रहण होहै । यातै प्रथम कोठा सारिखा दूसरा कोठा कीया । बहुरि तहां पीछै अनंत वार ग्रहीत का ग्रहणकरि एक वार अग्रहीत का ग्रहण करै। यातैं तीसरा कोठा विषैं दोय एका अर एक विंदी लिखी । बहुरि चतुर्थ परिवर्तन की आदि तैं जैसा अनुक्रमकरि यहु एक बार अग्रहीत ग्रहण भया, तैसे ही अनुक्रमतैं अनंतवार अग्रहीत का ग्रहण होइ । यातैं पहलैं तीन कोठे कीए थे तैसे ही आगै अनंतवार की सहनानी के अर्थि दूसरा तीन कौठे कीए । अैसें होत संतै चतुर्थ परिवर्तन भया ।

बहुरि तीह चतुर्थ परिवर्तन का अनंत बार समय विषैं विवक्षित नोकर्म्मद्रव्य परिवर्तन के पहलै समय विषै जे पुद्गल, जिस स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि भावकौं लीए ग्रहण कीये थै, तेई पुद्गल तिस ही स्निग्ध रूक्ष वर्ण, गंधादिभाव कों लीए शुद्ध ग्रहीत रूप ग्रहण कीजिये है । सो यहु सर्व मिल्या हुवा संपूर्ण नोकर्म द्रव्यपरिवर्तन जाननां ।

आगै कर्मपुद्गल परिवर्तन कहिए है किसी जीवनैं एक समय विषैं आठ प्रकार कर्म रूप जे पुद्गल ग्रहे, ते एक समय अधिक आवली प्रमाण आवाधा कालकौं गए पीछै द्वितीयादि समयनि विषैं निर्जरा रूप कीए । पीछै जैसा अनुक्रम आदितै लगाय अंत पर्यंत नोकर्म द्रव्य परिवर्तन विषैं कह्या तैसा ही अनुक्रम सर्व चार्‍यौं परिवर्तन संबंधी इस कर्मद्रव्य परिवर्तन विषैं जानना । विशेष इतना तहां नोकर्म संबंधी पुद्गल थे, यहां कर्म संबंधी पुद्गल जाननैं । अनुक्रम विषैं किछु विषैं नांही । पीछै पहलैं समय जैसे जे पुद्गल ग्रहे थे, तेई पुद्गुल तिस ही भाव को लिए चतुर्थ परिवर्तन कै अनंतर समय विषैं ग्रहण होई सो यहु सर्व मिल्या हुवा संपूर्ण कर्म्म परिवर्तन जाननां ।

इस द्रव्य परिवर्तन कों पुदगल परिवर्तन भी कहिये हैं । सो नोकर्म पुदगल परिवर्तन का अर पुद्गल परिवर्तन का काल समान है। बहुरि इहां इतनां जाननां—पूर्वें जो क्रम कह्या तहां जैसे पहलै अनंतवार अग्रहीत का ग्रहण कह्या तहां वीचि-वीचि में ग्रहीत ग्रहण वा मिश्र ग्रहण भी होई सो अनुक्रम विषैं तो पहली बार अर दूसरी वार आदि जो अग्रहीत ग्रहण होई सोई गिणने मैं आवे हैं । अर काल परिमाण, विषै ग्रहीत मिर ग्रहण का समय सहित सर्वकाल गिणने में आवै है । जिनि समयनि विषै ग्रहीत का ग्रहण है, ते समय ग्रहीत ग्रहण के काल विषैं गिणने में आवे है । जिन समयनि विषैं मिश्र का ग्रहण हो है ते समय मिश्रग्रहण के काल विषैं गिणने में आवैं हैं । जिनी समयनि विषैं अग्रहीत ग्रहणहो है, ते समय अग्रहीत ग्रहण काल विषै गिनने मैं आवै हैं सो यहु उदाहरण कह्या है । अैसे ही सर्वत्र जाननां । क्रम विषै तो जैसा अनुक्रम कहा होई तैसे होइ तब ही गिणने मैं आवै अर तिस अनुक्रम कै बीचि कोई अन्य रूप प्रवर्तै सो अनुक्रम विषैं गिणनै में नांही । अर जिनि समयनि विषैं अन्य रूप भी प्रवर्तैं हैं, तिनि समयनि रूप जो काल सो परिवर्तन का काल विषैं गिणनैं में आवै ही है।

२—अैसे ही क्षेत्रादिक परिवर्तन विषैं भी जानना । जैसे क्षेत्र परिवर्तन विषै किसी जीव नैं जघन्य अवगाहना पाई, परिवर्तन प्रारंभ कीया। पीछे केतेइक काल अनुक्रम रहित अवगाहना पाई थी, अर पीछै दूसरी बार अनुक्रम रूप अवगाहना पाई सोई गिणने में आये हैं । अर क्षेत्र परिवर्तन का काल विषैं वीचि में अनुक्रम रहित अवगाहना पावने का काल सहित सर्वकाल गिणने में आवे है । अैसे ही सर्व विषैं जानि लैनां ।

मृत: स एव पुनस्तेनैवावगाहेन द्विरुत्पन्नस्तथा त्रिस्तथा चतुरित्येवं यावदंगुलस्यासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशास्तावत्कृत्वा तत्रैव जनित्वा पुनरेकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वो लोक आत्मनो जन्मनो जन्मक्षेत्रभावमुपनीतो भवति यावत्तावत् क्षेत्रपरिवर्त्तन मिति । कालपरिवर्तनमुच्यते–उत्सर्पिण्या: प्रथमसमये जात: कश्चिज्जीव:

अब इहां द्रव्यपरिवर्तन विषै काल का परिमाण् कहै है –तहां अग्रहीत ग्रहण का काल अनंत है । तथापि यहु सर्वतै स्तोक है । जातैं जिनि पुद्गलनि स्यौं द्रव्य, क्षेत्र, काल भावनि का संस्कार नष्ट है, तैं पुद्गल बहुत बार ग्रहणे में आवतैं नांही, याही तैं विवक्षित पुद्गल परिवर्तन कै मध्य ग्रहीत पुद्गलनि का ही बहुत वार ग्रहण संभवै है, सोई कह्या है—

सुहु मट्ठिदि संजुत्तं आसण्णं कम्म णिज्जरा मुक्कं । पाऐण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठ संठाणं ।।१।। गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ५६० ।

अर्थ–जे पुद्गल कर्म रूप परिणये थे अर जिनकी स्थिति थोरी थी, अर निर्जरा होतैं कर्म अवस्थाकरि रहित भये हैं अर जीव के प्रदेशनिस्यों एक क्षेत्रावगाही तिष्ठै हैं । अर संस्थान आकार जिनका कह्या न जाये । अर विवक्षित पुद्गल परिवर्तन का पहला समय विषैं· जिस स्वरूप ग्रहणे में आये तिस करि रहित होई । अैसे पुद्गल जीवकरि बाहुल्यपनैं समय प्रबद्धनि विषैं ग्रहण कीजिए है । अैसा नियम नांही–जो अैसे ही पुद्गलनि का ग्रहण करैं परन्तु बहुत बार अैसे ही पुद्गलनिका ग्रहण हो हैं । जातैं ए पुद्गल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का संस्कारकरि संयुक्त हैं ।

बहुरि अग्रहीत ग्रहण के कालतैं मिश्र ग्रहण का काल अनंत गुणा है । बहुरि तिस मिश्र ग्रहण के कालतैं ग्रहीतग्रहण का जघन्य काल अनंत गुणा हैं । बहुरि तिसतैं सर्व पुद्गल परिवर्तन का जघन्य काल किछु अधिक है । जघन्य गृहीत–ग्रहण–कालकौं अनंत का भाग दीए जो प्रमाण आवै, तितनां जघन्य-गृहीत-ग्रहणकाल विषैं मिलाइए, तब जघन्य पुद्गल परिवर्तन का काल हो हैं । बहुरि तिसतैं ग्रहीत ग्रहण का उत्कृष्ट काल अनंतगुणा है । बहुरि तातैं संपूर्ण पुद्गल परिवर्तन का उत्कृष्ट काल किछु अधिक है । उत्कृष्ट ग्रहीत ग्रहण कालकौं अनंत का भाग दीए जो प्रमाणं आवै तितना उत्कृष्ट ग्रहीत ग्रहणकाल विषैं मिलाइए, तब उत्कृष्ट–पुद्गल परिवर्तन का काल होहैं । इहां अग्रहीत ग्रहण–काल अर मिश्र ग्रहण काल विषैं जघन्य उत्कृष्टपंना नांही है । जातैं परंपरा सिद्धांत विषैं तिनके जघन्य उत्कृष्टपनैं का उपदेश का अभाव है । इहां प्रसंगिक उक्तं च गाथा कहै हैं—

अगहिद मिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च । मिस्सं गहिद मगहिदं, गहिदं मिस्सं अगहिदं च ।।२।।

अर्थ–पहला अग्रहीत मिश्र ग्रहीत रूप, दूसरा मिश्र अगृहीत गृहीत रूप, तीसरा मिश्र गृहीत अगृहीत रूप, चौथा गृहीत मिश्र अग्रहीत रूप परिवर्तन भए द्रव्य परिवर्तन हो है । सो विशद रूप पूर्वै कह्या ही है ।

उक्तं च आर्या छंद–**सर्वेपि पुद्गला: खलु एके नात्रोज्जिताश्च जीवने । ह्यसकृत्वानंतकृत्व: पुद्गल परिवर्तसंसारे ।।१।।**

अर्थ–एकै जीव पुद्गल परिवर्तन रूप संसार विषै यथायोग्य सर्व पुद्गल बारंबार अनंतबार ग्रहि छोडै है ।

२. क्षेत्रपरिवर्तन—आगै क्षेत्र परिवर्तन कहिये है—सूक्ष्म निगोदिया जीव अपर्याप्तक सर्वतैं जघन्य प्रदेश है शरीर कै विषै जाके सो लोकके अष्ट–मध्यप्रदेश अपने शरीर के मध्यकरिकै उपज्या क्षुद्रभव ग्रहणकरि जीवकरि मूवा (मरा) सो ही जीव बहुरि तिस ही अवगाहनाकरि दूसरा उपज्या, तैसे ही तीसरा उपज्या, तैसे ही चौथे उपज्या–या प्रकार जितनें अंगुल कै असंख्यातवै भाग प्रमाण आकाश के प्रदेश तितने

स्वायुषः परिसमाप्तौ मृतः स एव पुनर्द्वितीयाया उत्सर्पिण्या द्वितीयसमये जातः स्वायुषः क्षयान्मृतः स एव पुनस्तृतीयस्या उत्सर्पिण्यास्तृतीयसमये जातः स एवानेन क्रमेणोत्सर्पिणी परिसमाप्ता तथाऽवसर्पिणी च एवं जन्मनैरन्तर्यमुक्तं, मरणस्यापि तथैव ग्राह्यं, यावत्तावत्कालपरिवर्तनमिति ।

बार तहां ही जन्मकरि बहुरि एक-एक प्रदेश अधिक भावकरि सर्वलोक आपके जन्म क्षेत्र भाव हैं, ताहि प्राप्त कीया । जेतैं तेतें क्षेत्र परिवर्तन जाननां ।

याका विशेष कथन श्रीगोम्मटसार विषैं है, तहांतैं इहां लिखिये हैं । सो क्षेत्र परिवर्तन दोय प्रकार हैं –१. एक स्वक्षेत्र–परिवर्तन, एक २. परक्षेत्र परिवर्तन । तहां स्वक्षेत्र परिवर्तन कहिए हैं—कोई जीव सूक्ष्म निगोदियाकौं जघन्य अवगाहनकौ धारि उपज्या अपनां सांस (श्वास) कैं अठारहवैं भाग–प्रमाण आयु को भोगि मूवा बहुरि तिसतैं एक प्रदेश वधती अवगाहनां कौं धरैं । पीछै दोय प्रदेश वधती अवगाहनां कौं धरैं । अैसे एक-एक प्रदेश अनुक्रमतैं वधती-वधती महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहनां परजंत संखात घनांगुल प्रमाण अवगाहना के भेदनिकों सो ई जीव प्राप्त होई । जे अवगाहनां के भेद हैं ते सर्व एक जीव अनुक्रम तै यावत्काल विषैं धारैं सो यहु सर्व समुदाय रूप स्वक्षेत्र परिवर्तन जाननां । अब परक्षेत्र परिवर्तन कहिये–सूक्ष्म निगोदिया लब्धि-अपर्याप्तक जघन्य अवगाहनारूप शरीर का धारक सो लोकाकाश कै मध्य जे आठ आकाश के प्रदेश हैं, तिनकौं अपने शरीर की अवगाहना के मध्यवर्ती अवर्ती आठ प्रदेशकरि अवशेष उनके निकटवर्ती अन्य प्रदेश तिनकौं रोकिकरि उपज्या सांस का अठारहवां भाग मात्र क्षुद्रभव काल जीयकरि मूवा बहुरि सोई जीव तैंसे ही अवगाहना कौं धारि तिसही क्षेत्र विषैं दूसरां उपज्यां सो अैसे घनांगुल का असंख्यातवां भागप्रमाण जघन्य अवगाहना के जेते प्रदेश हैं, तितनी बार तो तैंसे ही उपज्या पीछैं तहां स्यौं एकप्रदेश आकाश का उसकै निकटवर्ती ताकौं रोकिकरि उपज्या अैसे अनुक्रमतैं एक–एक प्रदेशकरि सर्व लोकाकाश के प्रदेशनि कौं अपना जन्म क्षेत्र करै सो यहु सर्व परक्षेत्र परिवर्तन है । उक्तं च—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशोन ह्यस्ति जंतुनाक्षुणः । अवगाहनानि बहुसोवं भ्रमता क्षेत्रसंसारे ।।१।।

क्षेत्र संसार विषैं भ्रमण करता जीवकरि जाका अपनैं शरीर की अवगाहनाकरि स्पर्शन कीया । अैसा सर्वजगत् श्रेणी का जघन्य प्रमाण लोक विषैं कोई प्रदेश नांही है । बहुरि जाकौं बहुतवार अंगीकार न कीया अैसा कोई अवगाहना का भेद भी नांही । आगैं काल परिवर्तन कहिए है–

(३) कालपरिवर्तन—कोई जीव उत्सर्पिणी का प्रथम समय विषैं उपज्या आयु की पूर्णता होत संतै मूवा (मरा) बहुरि सोही जीव द्वितीय उत्सर्पिणी के दूसरे समय विषैं उपज्या अपनैं आयु के क्षयतैं मूवा, बहुरि सोही जीव तीसरी उत्सर्पणी का तीसरा समय विषैं उपज्या या प्रकार अैसे अनुक्रमकरि उत्सर्पिणी पूर्ण कीया, तैसें ही अवसर्पिणी विषैं या प्रकार जन्म का निरन्तरपनां कह्या । मरण का हू तैसें ही अनुक्रम ग्रहण करणा, जैतें काल तेतैं काल परिवर्तन है ।

याका विशेष कथन श्रीगोम्मटसार विषै जेताहै सो लिखिये है—

कोई जीव उत्सर्पिणी काल का पहला समय विषैं उपज्या अपना आयुकौं पूर्णकरि मूवा, बहुरि दूसरा उत्सर्पिणीकाल का दूसरा समय विषैं उपज्या[1] अपना आयु कौं पूर्ण करि मूवा । बहुरि तीसरा उत्सर्पिणीकाल की तीसरा समय विषै उपज्या, तैंसे ही मूवा अैसें दस कोडाकोडी

१. ब० प्रति में जैतैं समय उपज्या ।

भावपरिवर्त्तनमुच्यते—पंचेन्द्रियः संज्ञी पर्याप्तको मिथ्यादृष्टिः कश्चिज्जीवः सर्वजघन्यां स्वयोग्यां ज्ञानावरणप्रकृतेः स्थितिमन्तःकोट्यकोटीसंज्ञिकामापद्यते, तस्य कषायाध्यवसायस्थानानि असंख्ययलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि तत्स्थितियोग्यानि भवन्ति, तत्र

सागर प्रमाण उत्सर्पिणीकाल के जेते समय हैं । तिनकों पूर्ण करैं । बहुरि जैसें जन्म की अपेक्षा अनुक्रम कह्या तैसें ही मरण की अपेक्षा अनुक्रम जाननां ।

पहले समय विषैं मूवा, दूसरा समय विषैं मूवा अैसे कल्पकाल का समयनिकौं पूर्ण करै सो यहु सर्व मिल्या हूवा कालपरिवर्तन जाननां । उक्तं च—

उत्सर्पिण्यवसर्पिणि समयवलिका सुनिरवशेषासु । जातो मृतश्चवहुशः परिभ्रमन्कालसंसारे ।।

अर्थ–काल संसार विषैं भ्रमण करता जीव उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी रूप कल्पकाल का समस्त समय, तिनकी पंकति विषै क्रमतैं बहुत बार जन्म धर्‍या है, अर मरण कीया है । आगै भाव परिवर्तन कहिए—

(४) भावपरिवर्तन—कोई पंचैंद्रिय सैनी परजायत मिथ्यादृष्टि जीव सो सर्वतैं जघन्य आपकै जोग्य ज्ञानावरणकर्म प्रकृतिकी स्थिति विषैं अंतःकोडाकोडी है संज्ञा जाकी, ताहि बांधै है । ताकै कषायाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान पतित तिस स्थिती के जोग्य है । तहां सर्व जघन्य कषायाध्यवसाय स्थाननि कूं कारणभूत अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात् लोकप्रमाण है, या प्रकार सर्वजघन्य स्थिती। बहुरि सर्व जघन्य कषायाध्यवसाय स्थान, सर्व जघन्य ही अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थाननि कूं प्राप्त होता, तिसकै जोग्य सर्व जघन्य योगस्थान होय है। तिनही स्थिति कषाय, अनुभाग स्थाना कै द्वितीय असंख्यात भाग वृद्धियुक्त योगस्थान होय है । बहुरि याही प्रकार तृतीयकूं आदिदे चतुःस्थानपतित श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण योग्य स्थान होय है । तैसे ही सो ही स्थिति, बहुरि सो कषायाध्यवसाय स्थान ताहि प्राप्त होता कै द्वितीय अनुभागाध्यवसाय स्थान है । बहुरि तिस कै योग स्थान पूर्ववत् जानने । अैसे ही तृतीयादिक हू अनुभागाध्यवसाय स्थाननिकै विषै असंख्यात लोक की समाप्तता जाननी । या प्रकार तिस ही स्थिती कूं प्राप्त होता जीव कै द्वितीय कषायाध्यवसाय स्थान होय है । तिस ही जीव के अनुभाग बंधाध्यावसाय स्थान योगस्थान पूर्ववत् जानने ।

या प्रकार तृतीयादिक हू कषायाध्यावसाय स्थाननि कै विषैं असंख्यात लोकप्रमाण वृद्धि का क्रम जाननां । कही जो जघन्य स्थिति समयकरि अधिकता कै कषायाध्यवसाय स्थान अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान बहुरि योगस्थान पूर्ववत् जानने । या प्रकार समयाधिक क्रमकरि उत्कृष्ट स्थिति है तीस कोडी–कोडी सागर प्रमाण जैते पूर्ण होय तैं कषायाध्यवसाय कूं आदिदे स्थान जानने । या प्रकार सर्व कर्म्मनिकी मूलप्रकृति, बहुरि उत्तरप्रकृति का परिवर्तन क्रम है सो जानना । सो यह सर्वसमुच्चय रूप भावपरिवर्तन जाननां ।

गाथा मैं कह्या जो 'च' शब्द ताकरि सूचित अैसा जो भवपरिवर्तन सो कहिये है–नरकगति के विषैं सर्वतैं जघन्य आयु दश हजार वर्ष प्रमाण है । तिस आयुकरि तहां कोई जीव उपज्या बहुरि परिभ्रमणकरि तिस ही आयुकरि तहां ही उपज्या–या प्रकार दश हजार वर्ष कै जेते समय हैं, तेती वार तहाँ उत्पन्न भया, बहुरि मूवा बहुरि एक-एक समय अधिक भावकरि तेतीस सागर पूरे कीये । तहां तैं चयकरि तिरजंच गति विषैं अंतर्मुहूर्त का है आयु ताका अैसा उपज्या पूर्वोक्त ही समयाधिक क्रमकरि तीन पल्यप्रमाण तिस ही जीवनें पूर्ण कीये । बहुरि तैसे ही मनुष्यगति विषै जाननां । देवगति के विषैं नरकगतिवत् जाननां । बहुरि येता विशेष है—जैंते इकतीस सागर पूर्ण करै तैतैं भवपरिवर्तन जाननां ।

सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तान्यनुभवाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि भवन्ति, एवं सर्वजघन्यां स्थितिं सर्वजघन्यं च कषायाध्यवसानं सर्वजघन्यमेव चानुभागबंधस्थानमास्कन्दतस्तद्योग्यं सर्वं जघन्यं योगस्थानं भवति, तेषामेव स्थितिकषायानुभवस्थानानां द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धियुक्तं योगस्थानं भवति, एवं चतुःस्थानपतितानि कषायाध्यवसायस्थानानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति, तथा तामेव स्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थानं च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयानुभवाध्यवसायस्थानं भवति तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्दृष्टव्यानि, एवं तृतीयादिष्वप्यनुभवाध्यवसायस्थानेष्वसंख्येयलोकपरिसमाप्तेः,

---

४–५ भवपरिवर्तन एवं भावपरिवर्तन–अब भवपरिवर्तन अर भावपरिवर्तन का विशेष व्याख्यान श्रीगोम्मटसार विषैं जेता कह्या है, सो समस्त स्पष्ट समझने अर्थि लिखिये है –

प्रथम भवपरिवर्तन कहै है–कोउ जीव नरकगति विषैं जघन्य आयु दश हजार वर्ष की धारि उपज्या, पीछैं मरणकरि संसार विषैं भ्रमणकरि तहा ही जघन्य दशहजार वर्ष की आयु को धारि उपज्या । अैसे दशहजार वर्ष के जेते समय होहि, तितनी बार तौ जघन्य आयु कौं ही धारिकरि उपजै अर मरै । पीछै दश हजार वर्ष एक समय की आयु कौं धारि उपजै । पीछै दश हजार वर्ष दोय समय के आयुकौं धारि उपजै । अैसे एक-एक समय बधता अनुक्रमतैं उत्कृष्ट आयु मात्र तैंतीस सागर पूरण करै । पीछै तिरजंच गति विषैं अंतर्मुहूर्त मात्र जघन्य आयुकौं धारि उपजै सो पूर्ववत् अंतर्मुहूर्त के जेते समय होहि, तितनी बार तो तिस अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही आयुकौं धारि-धारि उपजै। पीछै एक समय अधिक अंतर्मूहूर्त आयुकों धारि उपजै । पीछै दोय समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयुकौं धारि उपजै । अैसे एकसमय अनुक्रमतैं वधतैं-वधतैं उत्कृष्ट आयु मात्र तीन पल्य पूर्ण करै ।

बहुरि मनुष्यगति विषै तिरजंच गति की ज्यौं अंतर्मुहूर्त तें लगाय तीनपल्य को पूर्ण करे । बहुरि देवगति विषैं नरकगति की ज्यौं दश हजार वर्षतैं लगाय इकतीस सागर पूर्ण करे । जातैं मिथ्यादृष्टि जीव अनुत्तर अनुदिश विमान विषैं उपजै नांही, उपरि कै ग्रैवेयक परजंत ही उपजै, तातैं इकतीस सागर ही कहे । अैसे भ्रमणकरि बहुरि नरक विषैं दश हजार वर्षप्रमाण जघन्य आयुकौं धारि उपजै । तब यहु सर्व संपूर्ण भवपरिवर्तन होहैं । उक्तं च—

नरक जघन्यायुष्यादुपरिमग्रैवियिकावशानेषु । मिथ्यात्वसंश्रितेनहि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ।।१।।

मिथ्यात्वकरि आश्रित जीवंतीह नरक का जघन्य आयु आदि उपरि ग्रैवेयक पर्यंत आयु विषैं संसार की स्थिति बहुत बार भोगई (भोगी) है ।

आगैं भावपरिवर्तन कहिए है, सो भावपरिवर्तन—१. योगस्थान, २. अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान, ३. कषायाध्यावसाय स्थान, ४. स्थितिस्थान–इनि च्यारिनिके परिवर्तनतै हो है । सो प्रथम इनका स्वरूप कहिए है –

प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध कौ कारण अैसे प्रदेश परिस्पंद लक्षण योग तिनके जे जघन्यादिक स्थान ते योगस्थान हैं । बहुरि जिनि कषाययुक्त परिणामनितैं कर्मनितैं कर्मनिका अनुभाग बंध हो है, तिनके जघन्यादिक स्थानते अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान हो है । बहुरि जिनि कषाय परिणामनितैं स्थितिबंध हो हैं तिनिके जघन्यादिक स्थानतें इहां कषायाध्यवसाय स्थान कहै हैं । वा स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान भी इनको कहिए। बहुरि बंधने रूप जो कर्मनिकी स्थिति, तिनके जघन्यादिक स्थान ते स्थितिस्थान कहिए । इनका विशेष स्वरूप आगै कहेंगे, सो जाननां ।

बहुरि इहां एक-एक स्थितिभेद के बंध के कारण अपने योग्य असंख्यात लोकप्रमाण स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान पाइए है । बहुरि

एवं तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीयकषायाध्यवसायस्थानं भवति तस्याप्यनुभवाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च पूर्ववद्वेदितव्यानि, एवं तृतीयादिष्वपि कषायाध्यवसायस्थानेषु असंख्येयलोकपरिसमाप्तेर्वृद्धिक्रमो वेदितव्य:, उक्ताया जघन्यस्थिते: समयाधिकाया: कषायाध्यवसायस्थानानि अनुभागाध्यवसायस्थानानि

एक-एक स्थिति बंधाध्यवसायस्थान विषैं यथायोग्य असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबंधाध्यावसाय स्थान पाइए है । बहुरि एक–एक अनुभाग बंधाध्यवसाय–स्थान विषैं जगत् श्रेणी कै असंख्यातबैं भाग मात्र योग्यस्थान पाइए है ।

अब इनके परिवर्तन का अनुक्रम ज्ञानावरणकर्म का उदाहरणकरि कहिये है—कोई जीव पंचैद्रि-सैनी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी सो अपनैं योग्य जघन्य ज्ञानावरण नामाकर्म की स्थिति अंत:कोडाकोडी सागर प्रमाण बांधै है । इस जीव के यातैं घटि स्थितिबंध होता नांही । तातैं याकै यहु ही जघन्य स्थिती स्थान है, सो कोडि कै ऊपरि अर कोडाकोडी कै नीचै जो होई ताकौं अंत:कोटाकोटी कहिए है । तहां तिस जघन्य स्थितिबंध करनैं वाले जीवकै तिस जघन्य स्थितिबंध होनै को योग्य असंख्यात लोकप्रमाण कषायाध्यवसाय स्थान पाइए है । ते परिणामनिकी अपेक्षा अनंत भागादिक षट्स्थानकौं लीए है । बहुरि तिनि विषैं भी जघन्य कषायाध्यवसाय स्थान कौं निमित्तभूत अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक मात्र पाइए है । सो पूर्वोक्त कोउ जीव कै अंत:कोटाकोटी सागर प्रमाण जघन्य ही तो स्थिति स्थान है। अर ताकै जघन्य ही कषायाध्यवसाय स्थान है । अर जघन्य ही अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान है । अर तिस जीव कै जैसा जोग्य होई तैसा जघन्य ही योगस्थान पाईए है ।

तहां भावपरिवर्तन का प्रारंभ हुवा । बहुरि तिस ही जीव कै स्थितिस्थान, कषायाध्यवसायस्थान, अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान–एतौ तीनों जघन्य ही रहे । अर जघन्यतैं असंख्यात भाग–वृद्धि कौं लीये योगस्थान दूसरा भया । पीछैं स्थिति स्थानादिक तीनौं तौ जघन्य ही रहे। अर योगस्थान तीसरा भया । अैसे अनुक्रमतैं अविभाग प्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा १. असंख्यात भाग वृद्धि, २. संख्यात भाग वृद्धि, ३. संख्यात गुणवृद्धि, ४. असंख्यात गुणवृद्धि रूप चतुःस्थान-पतित-वृद्धि रूप पतितवृद्धि लीए श्रेणी कै असंख्यातवै भागप्रमाण योगस्थान भए । बहुरिस्थिति स्थान अर कषायाध्यवसाय स्थान तो जघन्य ही रहे । अर अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान का दूसरा स्थान भया । तहां योगस्थान जघन्यतै लगाय पूर्वोक्त प्रकार क्रमतैं सर्व भए । बहुरि स्थितिस्थान अर कषायाध्यवसायस्थान तौ जघन्य ही रहै अर अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान का तीसरा स्थान भया । तहाँ भी योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार भए । अैसे क्रमतैं अपनें योग्य असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान मए । बहुरि स्थितिस्थान तौ जघन्य ही रह्या अर कषायाध्यावसायस्थान का दूसरा स्थान भया । तहां पूर्वोक्त प्रकार योगस्थानिकौं लीए जघन्यतैं लगाय अनुभागाध्यवसायस्थान भए । बहुरि स्थितिस्थान तौ जघन्य ही रह्या अर कषायाध्यवसायस्थान का तीसरा स्थान भया । तहाँ की पूर्वोक्त प्रकार योगस्थाननिकौं लीए क्रमतैं अनुभागाध्यवसायस्थान भए । अैसैं ही क्रमतैं अपने योग्य कषायाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण भए ।

बहुरि जैते यह अंत:कोटाकोटी प्रमाण जघन्य स्थितिस्थान विषै अनुक्रम कह्या, तैसें ही जघन्यतैं एक समय अधिक दूसरा स्थितिस्थान विषैं अपनें योग्य योगस्थान अनुभागाध्यवसाय स्थान के परिवर्तनकौं लीए पूर्वोक्त प्रकार क्रमतैं अपनैं योग्य सर्व कषायाध्यवसाय स्थान भए। बहुरि अैसें ही जघन्यतैं दोय समय अधिक तीसरा स्थिति स्थान विषैं भए । अैसे एक-एक समय बधता स्थितिस्थान का अनुक्रमकरि तीस कोडा–कोडी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत जाननां । बहुरि जैसे यह ज्ञानावरण अपेक्षा कथन कीया, तैसे ही कर्मनिकी सर्व मूलप्रकृति

योगस्थानानि च पूर्ववद्वेदितव्यानि, एवं समयाधिकक्रमेण आ उत्कृष्टस्थितेस्त्रिंशत्सागरोपमकोट्यकोटीपरिमितायाः कषायाध्यवसायस्थानानि वेदितव्यानि, एवं सर्वेषां कर्मणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च परिवर्त्तनक्रमो वेदितव्यस्तदेतत्सर्वं समुदितं भावपरिवर्त्तनमिति । चशब्देन सूचितं भवपरिवर्तनमुच्यते— नरकगतौ सर्वजघन्यमायुर्दशवर्षसहस्राणि तेनायुषा तत्र कश्चिदुत्पन्नः पुनः परिभ्रम्य तेनैवायुषा तत्रैव जात एवं दशवर्षसहस्राणां यावन्तः समयास्तावत्कृत्वस्तत्रैव जातो तत्रैव मृतश्च पुनरेकैकसमयाधिकभावेन त्रयास्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि, ततः प्रच्युत्य तिर्यग्गतावन्तर्मुहूर्त्तायुः समुत्पन्नः पूर्वोक्तैनैव क्रमेण

वा उत्तरप्रकृतिनि विषैं परिवर्तन का अनुक्रम जाननां । ऐसे यहु सर्व मिल्या हुवा भावपरिवर्तन जाननां । इहां जघन्यस्थिति आदि विषैं सर्व ही कषायाध्यवसाय स्थानादिकनि का पलटनां न होहैं । जघन्यस्थिति आदि विषै जे संभवै तिनही का पलटनां हो है–ऐसा जाननां ।

उक्तं च आर्याछन्द—**सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि । स्थानान्यनुभूतानि भ्रमताभुविभावसंसारे ।।१।।**

लोक विषैं, भावसंसार विषै भ्रमण करता जीवनैं प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभागबंध कौं योग्य जे योगनि के, कषायनिके, स्थिति के स्थानतैं सर्वही भोग हैं ।

इहां परिवर्तन का अनुक्रम विषैं जघन्य स्थितिस्थान संबंधी स्थितिबंधाध्यवसाय-स्थान-अनुभाग बंधाध्यवसाय-स्थानयोग योगस्थान, जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यंत हो है, तिनको आदि देकरि सर्वोत्कृष्ट स्थितिपर्यंत अपने–अपनैं संबंधी जघन्यतैं उत्कृष्ट पर्यंत स्थिति बंधाध्यवसाय स्थानकौं स्थापि यथासंभव जैसैं गुणस्थान प्ररूपणा विषैं प्रमाद भेदनि कै निमित्त अक्षसंचारकरि परिवर्तन का विधान कह्या था, तैसैं इहां भी अक्षसंचारकरि परिवर्तन का विधान जाननां । ऐसें ए पंचपरिवर्तन कहै ।

अब इनका काल कहिए है –सर्वतैं स्तोक एक पुद्गल परिवर्तन का काल है सो अनंत है । बहुरि तातैं अनंतगुणा क्षेत्रपरिवर्तन काल है । बहुरि तातैं अनंत गुणां कालपरिवर्तन का काल है । बहुरि तातैं अनंतगुणां भवपरिवर्तन का काल है । बहुरि तातैं अनंतगुणा भापरिवर्तन का काल हैं । याही तैं एक जीव कै अनादितैं लगाय अतीतकाल विषैं भावपरिवर्तन थोरे भए, ते पणि अनंत भए । बहुरि तिनतैं अनंत गुणैं भवपरिवर्तन भए । बहुरि तिनतैं अनंतगुणैं कालपरिवर्तन भए । बहुरि तिनतैं अनंत गुणैं क्षेत्रपरिवर्तन भए । बहुरि तिनतैं अनंत गुणैं द्रव्यपरिवर्तन भए । ऐसे जाननां ।

बहुरि जैसें स्वर्गादि विषैं दिनरात्रि का अभाव हैं । तहां मनुष्यक्षेत्र अपेक्षा वर्ष आदि का प्रमाण कीजिए हैं । तैसें निगोदादि विषैं जीवनि कै जहां परिवर्तन का अनुक्रम न हो है, तहां अन्य जीव अपेक्षा परिवर्तन का काल ग्रहण कीजिए है । उक्तं च—

पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः । मार्ग्गमपश्यन्प्राणी नाना दुःखाकुले भ्रमति ।।२।।

अर्थ–जिनमतकरि दिखाया जो मुक्ति का मार्ग ताकौं न श्रद्धान करता प्राणी–जीवा नाना प्रकार दुःखनिकरि आकुलित जो पंचप्रकार संसार तीह विषै भ्रमण करै है । इतिपंच परिवर्तन वर्णनं समाप्तम्[१] ।

---

१. इसके विशेष विवेचन के लिए पढ़िए—१. गोम्मटसार (जीवकाण्ड) की पं० टोडरमल जी कृत सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका तथा २. गोम्मटकार (जीवकाण्ड) गाथा सं० ५६० के बाद पृ० २६४ से २६८ तक देखिऐ । अनुवादक पं० खूबचन्द जैन, प्रकाशक—श्रीमद् राजचन्द जैन शास्त्रमाला अगास (आणंद-गुजरात) तृतीय संस्सकरण १९५९ ई० ।

त्रीणि पल्योपमानि तनैव परिसमापितानि, तथैवं मनुष्यगतौ देवगतौ च नरकगतिवत्, अयं तु विशेषः—एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि यावत्तावद्भवपरिवर्त्तनमिति। एवं चतुर्विधः पंचविधो वा संसारः चतुर्गतिगमननिबद्धो नरकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिभ्रमणहेतुको बहुप्रकारैः षट्सप्तादिभेदैर्ज्ञातव्य इति ।।१४।।

तथा षड्विधसंसारमाह—

किं केण कस्स कत्थ व केवचिरं कदिविधो य भावो य ।
छहिं अणिओगद्दारे सव्वे भावाणुगंतव्वा ।।१५।।

कः संसारः? संसरणं संसारश्चतुर्गतिगमनरूपः, केन भावेन संसारः ? औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकादिभावेन, कस्य? संसारिजीवस्याष्टविधकर्मावष्टब्धस्यनारकतिर्यङ्मनुष्यदेवरूपस्य, क्व संसारः? मिथ्यात्वासंयमकषाययोगेषु तिर्यग्लोके वा, कियच्चिरं संसारः? अनाद्यनिधनोऽनादिसनिधनः, कतिविधः? कतिप्रकार इति। अनेन प्रकारेण संसार एकविधा द्विविधस्त्रिविधश्चतुर्विधः पंचविधः षड्विध इत्यादि, न केवलं संसारः षड्भिरनियोगद्वारैर्ज्ञायते किन्तु सर्वेऽपि भावाः पदार्था अनुगंतव्या ज्ञातव्या इत्यर्थः ।।१५।।

संसारे दुःखानुभवमाह—

तत्थ जरामरणभयं दुक्खं पियविप्पओग बीहणयं ।
अप्पियसंजोगं[1] वि य रोगमहावेदणाओ य ।।१६।।

तत्रैवंविधे संसारे जरामरणभयं जन्मभयं दुःखं, जरामरणभवं जन्मभवं वा दुःखं कायिकं वाचिकं मानसिक, प्रियेण विप्रयोगः पृथग्भाव

अैसैं च्यार प्रकार, बहुरि पांच प्रकार संसार है। चतुर्गति गमननिबद्ध कहिये नरक, तिरजंच, मनुष्य, देवगति विषै भ्रमणकूं कारण, बहुप्रकारैः कहिये छह–सात इत्यादि भेदनिकरि ज्ञातव्य कहिये जाणिवे जोग्य है ।।१४।। तैसैं ही छह प्रकार संसार हैं, ताहि कहै है—

अर्थ–१. कौन संसार है ? उत्तर—संसरणं कहिये परिभ्रमण, चर्तुगति गमन रूप सो संसार है। २. कौन भावकरि संसार है? उत्तर–औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, परिणामिक आदि भावकरिकै। ३. कौनकै संसार है ? उत्तर—अष्टविध कर्मकरि वेष्टित अैसा नरक, तिरयक्, मनुष्य, देवरूप–अैसा जो जीव, ताकै है। ४. कौन विषै संसार रहे ? उत्तर–मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, योग विषै है। बहुरि उर्ध्व, अधः, तिर्यक् लोक विषै है। ५. केतेक चिरकाल संसार है ? उत्तर–अनादि-अनंत है, अनादि–सांत है।–६–केते प्रकार संसार है ? उत्तर–या प्रकार संसार है—१. एकविध, २. दोयविध, ३. त्रिविध, ४. चतुर्विध, ५. पंचविध, ६. षट्विध इत्यादिक प्रकार है। केवल संसार ही छह अनुयोग द्वारकरि नांही जाननां, इहां अैसा विशेषसर्व ही पदार्थ छह अनियोगद्वारनि करि जाननें ।।१५।।

संसार विषैं दुःख का अनुभव है, ताहि कहैं है–

अर्थ–इस प्रकार संसार के विषै जरा-मरण का भय, जन्म का भय है ताहि, बहुरि मन, वचन, काय संबंधी दुःख है ताहि, बहुरि प्रिय–विप्रयोग कहिये इष्ट वियोगतैं उपज्या दुःख है ताहि, बहुरि भयंकर अप्रिय संयोग कहिए अनिष्ट संयोगतैं उपज्या दुःख है ताहि, बहुरि

---

१. अ० ब० संजोगा

इष्टवियोगदु:खं, भीषणं च महाभयानकं, अप्रियेण संयोगोऽनिष्टेन सहैकत्र वासोद्भवं दु:खं चाऽपि, रोगान् कासश्वासछर्दिकुष्ठव्याध्यादिजनितवेदनाश्चाप्नुवंतीति संबंध: ।।१६।।

तथा—

जायंतो य मरंतो जलथलखयरेसु तिरियणिरएसु ।
माणुस्से देवत्ते दुक्खसहस्साणि पप्पोदि ।।१७।।

तत्र संसारे जायमानो म्रियमाणश्च जलचरेषु स्थलचरेषु खचरेषु च मध्ये तिर्यक्षु नरकेषु च दु:खसहस्राणि प्राप्नोति, मनुष्यत्वे देवत्वे च पूर्वोक्तानि दु:खसहस्राणि प्राप्नोतीति सम्बन्ध: ।।१७।।

तथा—

जे भोगा खलु केई देवा माणुस्सिया य अणुभूदा ।
दुक्खं च णंतखुत्तो णिरिए तिरिएसु जोणीसु ।।१८।।

ये केचन भोगा दैवा मानुषाश्चानुभूता: सेवितास्तेषु भोगेषु अनंतवारान् दु:खं च प्राप्तं, नरकेषु तिर्यग्योनिषु च दु:खमनंतवारान् प्राप्तमिति ।।१८।।

तथा—

संजोगविप्पओगा लाहालाहं सुहं च दुक्खं च ।
संसारे अणुभूदा माणं च तहावमाणं च ।।१९।।

अस्मिन् संसारे जीवेन संयोगा इष्टसमागमा:, विप्रयोगा अनिष्टसमागमा:, स्वेष्टवस्तुनो लाभप्राप्ति:, अलाभोऽप्राप्तिश्चैते सर्वेऽप्यनुभूतास्तथा सुखं दुखं चानुभूतं' तथा मानं पूजा, अपमानं परिभवश्चानुभूतमिति ।।१९।।

रोग जे कास (खासी), श्वास, छर्दि, कोढ़ (कुष्ठ) नै आदि दे तिनकरि उपजी वेदना जो पीड़ा, ताहि प्राप्त होय है–ऐसा संबंध है ।।१६।। तिसैं और कहै है–

अर्थ–तिस संसार के विषै जनमता, बहुरि मरता जलचर, स्थलचर, नभचर–इनकै मध्य तिरजंचगति विषैं, बहुरि नरकके विषैं मनुष्यगति विषैं, देवगति विषैं पूर्वोक्त दुःखसहस्राणि कहिये हजारा दु:ख है ? तिनहि प्राप्त होय है ।।१७।।

तैसे और कहे हैं –

अर्थ–जे केई भोग देवगति संबंधी, बहुरि मनुष्यगति सबंधी निश्चयकरि सेये तिस भोग भोगतैं नरक, तिरजंच जोणि विषैं अनंतबार दु:ख पाया ।।१८।।

तैसे ही बहुरि कहै है—

अर्थ–इस संसार विषै जीवनैं इष्टके समागम, बहुरि अनिष्ट के समागम, वांछित वस्तु का लाभ, बहुरि अलाभ, सुख, बहुरि दुख मान कहिये पूजा, तैसैं अपमान कहिये तिरस्कार–सर्व भोग्या ।।१९।। बहुरि कहै हैं—

संसारानुप्रेक्षामुपसंहरन्नाह—

एवं बहुप्पयारं संसारं विविहदुक्खथिरसारं ।
णाऊण विचिंतिज्जा तहेव लहुमेव णिस्सारं ।।२०।।

एवं बहुप्रकारं संसारं विविधानि दुःखानि स्थिरः सारो यस्यासौ विविधदुःखस्थिरसारस्तं संसारं ज्ञात्वा लघुमेव शीघ्रं निःसारं चिन्तयेत् भावयेदिति।।२०।।

लोकानुप्रेक्षां विवृण्वन्नाह—

एगविहो खलु लोओ दुविहो तहा बहुविहो वा ।
दव्वेहिं पज्जएहिं य चिंतिज्जो [1]लोयसब्भावं ।।२१।।

षड्भिरनुयोगद्वारैर्लोकोऽपि ज्ञातव्यः । सामान्येनैकविधः, लोक्यन्त उपलभ्यन्ते पदार्था यस्मिन्निति स लोकः । उर्ध्वाधःस्वरूपेण द्विविधः, ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्स्वरूपेण त्रिविध उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपेण वा त्रिविधः, गतिरूपेण चतुर्विधः, अस्तिकायादिभेदेन पंचविधः, षड्द्रव्यस्वरूपेण षड्विधः, पदार्थद्वारेण सप्तविधः, कर्मरूपेणाऽष्टविधः, इत्येवं बहुविधः, द्रव्यैः, पर्यायैश्च द्रव्यभेदेन पर्यायभेदेन लोकसद्भावं बहुप्रकारं चिन्तयेत् ध्यायेदिति ।।२१।।

लोकस्वरूपमाह—

लोओ अकिट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिप्पण्णो ।
जीवाजीवेहिं भुडो णिच्चो तालरुक्खसंठाणो ।।२२।।

लोकोऽकृत्रिमः खलु न केनाऽपि कृतः, खलु स्फुटमेतत्प्रमाणविषयत्वात्, अनादिनिधन आद्यन्तवर्जितः, स्वभावनिष्पन्नो विश्वसारूप्येण स्थितः,

---

अर्थ–अैसे बहुत प्रकार नाना दुःख ही हैं दृढ़ सार जा विषैं–अैसा संसारकूं जाणि शीघ्र ही "निःसार है"–ऐसा चिंतवन करौ ।।२०।।

आगैं लोकानुप्रेक्षा है, ताहि वरणन करते संते आचार्य कहै हैं—

अर्थ–लोक हूं छह अनुयोगद्वारकरि जानने जोग्य है । सामान्यकरि लोक है सो निश्चयकरि एक प्रकार है । १. लोक्यंते कहिये पाइए है पदार्थ जा विषैं सो लोक एक प्रकार है । २. ऊर्ध्व, अधः स्वरूपकरि सो दोय प्रकार है । ३. बहुरि ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक् स्वरूप करि तीन प्रकार है, अर उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वरूपकरि तीन प्रकार है । ४. गति रूपकरि च्यारि प्रकार है, ५. अस्तिकाय भेदकरि पांच प्रकार है, ६. षट्द्रव्य स्वरूपकरि छह प्रकार है, ७. पदार्थ द्वारकरि सात प्रकार है, ८. कर्मरूपकरि अष्ट प्रकार है –या प्रकार तथा बहुत प्रकार द्रव्य भेदकरि, बहुरि परजाय भेदनिकरि लोक का अस्तित्व है, ताहि बहुत प्रकार चिंतवन करे ।।२१।।

लोक का स्वरूप कहै है–

अर्थ–लोक है सो अकृत्रिम है, काहूकरि कीया नांही, यह प्रमाण गोचर है । यातैं खलु कहिये प्रगट है, अनादि–अनिधनः कहिये आदि–अंतकरि रहित है । स्वभावनिष्पन्नः कहिये अपने स्वभावकरि स्थित है । जीवाजीवैः कहिये जीव–अजीव पदार्थनिकरि, भृतः कहिये

---

१. क० लोग ।

जीवाजीवैश्च पदार्थैर्भृत: पूर्ण:, नित्य: सर्वकालमुपलभ्यमानत्वात्, तालवृक्षसंस्थानस्तालवृक्षाकृति:, अधो विस्तीर्ण: सप्तरज्जुप्रमाणो मध्ये संकीर्ण एकरज्जुप्रमाण: पुनरपि ब्रह्मलोके विस्तीर्ण: पंचरज्जुप्रमाण उर्ध्वं संकीर्ण एकरज्जुप्रमित इति ।।२२।। लोकस्य प्रमाणमाह—

धम्माधम्मागासा गदिरागदि जीवपुग्गलाणं च ।
जावत्तावल्लोगो आगासमदो परमणंतं ।।२३।।

धर्माधर्मौ लोकाकाशं च यावन्मात्रे जीवपुद्गलानां च गतिरागतिश्च यावन्मात्रं तावल्लोकोऽत: परमित उर्ध्वमाकाशं पंचद्रव्याभावोऽनंतमप्रमाणं केवलज्ञानगम्यमिति ।।२३।।

पुनरपि लोकस्य संस्थानमित्याह—

हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासणझल्लरीमुदंगणिभो ।
मज्झिमवित्थारेण दु चोद्दसगुणमायदो लोओ ।।२४।।

हेट्ठा अध:प्रदेशे मध्यप्रदेशे उपरिप्रदेशे च यथासंख्येन वेत्रासनझल्लरीमृदंगनिभ: अधो वेत्रासनाकृतिर्मध्ये झल्लर्याकृतिरूर्ध्वं मृदङ्गाकृतिरिति, मध्यमविस्तार[1] प्रमाणेन चतुर्दशगुण:, मध्यमविस्तारस्य[2] प्रमाणमेका रज्जु: सा च चतुर्दशभिर्गुणिता लोकस्यायामो भवति, वातवलयादधस्तादारभ्य यावन्मोक्षस्थानं तयोर्मध्य आयाम इत्युच्यते । स आयामश्चतुर्दशरज्जुमात्र इति । घनाकारेण यदि पुनर्मीयते तदा त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशतरज्जुमात्रो भवतीति ।।२४।।

पूर्ण है । नित्य कहिये सासाता (शाश्वत) है, सर्वकाल उपलभ्यमानपनां है । यातैं तालवृक्षसंस्थान कहिये तालवृक्ष के आकार का है । नीचे विस्तार–सात राजू प्रमाण, मध्य विषैं सकरा–एकराजू प्रमाण, बहुरि हू ब्रह्म लोक विषैं विस्तार पांच राजू प्रमाण, ऊपरि सकरा–एक राजू प्रमाण है, या प्रकार जाननां ।।२२।।

लोक का प्रमाण कहै है–

अर्थ–धर्म, अधर्म, बहुरि लोकाकाश, बहुरि यावन्मात्र विषैं जीव पुद्गलनि का गमन आगमन तावन्मात्र लोक है । याकै आगै 'अनंतं'[3] कहिये प्रमाण रहित, केवलज्ञानगम्य पंचद्रव्य का अभाव स्वरूप आकाश है ।।२३।।

बहुरि हू लोक का संस्थान कहै है–

अर्थ–अध:प्रदेश कै विषै, मध्यप्रदेश कै विषै, ऊपरलै प्रदेश कै विषै, यथासंख्यकरि वेत्रासन झल्लरी, मृदंग—इनकरि समान है। नीचै वेत्रासन कै आकार है, मध्य विषै झल्लरी कै आकार है । उपरि मृदंग कै आकार है । मध्य विषै विस्तार का प्रमाण एक राजू है। सो चौदहकरि (१४) गुण्या समस्त लोक का आयाम (ऊँचाई) होय है, नीचेला वातवलयतैं लेय मोक्षस्थान परजंत है । तिनका मध्य क्षेत्र आयाम है । सो आयाम चौदह राजू प्रमाण है । बहुरि जो घनाकारकरि प्रमाण करिये तव तीनसैं तीयालीस (३४३) राजू प्रमाण लोक होय है ।।२४।।

---

१. विस्तर क । २. विस्तरस्थ क । ३. तत्त्रयात्मके क ।

तत्र[3] लोके जीवा: किं कुर्वन्तीत्याह—

तत्थणुहवंति जीवा सकम्मणिव्वत्तियं सुहं[1] दुक्खं ।
जम्मणमरणपुणब्भवमणंतभवसायरे भीमे ।।२५।।

तत्र च लोके जीवा: स्वकर्मनिर्वर्त्तितं स्वक्रियानिष्पादितं सुखं दु:खं चानुभवन्ति, अनंतभवसागरे च जन्ममरणं पुनर्भवं च पुनरावृत्तिं च भीमे भयानके कुर्वन्तीत्यर्थ: ।।२५।।

पुनरप्यसमंजसमाह—

मादा य होदि धूदा धूदा मादुत्तणं पुण उवेदि ।
पुरिसो वि तत्थ इत्थी पुमं च अपुमं च होइ जए ।।२६।।

अस्मिंल्लोके संसारे माता च भवति दुहिता सुता, दुहिता च पुनर्मातृत्वमुपैति प्राप्नोति, पुरुषोऽपि तत्र जगति स्त्री भवति, स्त्र्यपि पुमान्, पुरुषोऽपुमान्नपुंसकं च लोके भवतीति संबंध: ।।२६।।

पुनरपि लोकगतसंसारविरूपतां दर्शयन्नाह—

होऊण तेयसत्ताधिओ[2] दु बलविरियरूवसंपण्णो ।
जादो वच्चघरे किमि धिगत्थु संसारवासस्स ।।२७।।

विदेहस्वामी राजा तेज:—प्रताप: सत्त्वं—स्वाभाविकसौष्ठवं ताभ्यामधिकस्तेज:सत्वाधिको भूत्वा तथा बलवीर्यरूपसम्पन्नश्च भूत्वा पश्चात्स राजा वर्चोगृहेऽशुचिस्थाने कृमि: संजातो यत एवं तत: संसारवासं धिगस्तु धिग्भवतु संसारे वासमिति ।।२७।।

तिसलोक विषै जीव कहा करै है ? ऐसे पूछै, आचार्य कहै है—

अर्थ–तिस लोक विषैं जीव है, तैं अपनैं कर्मनिकरि उपाज्या सुख–दु:ख है, ताहि भोगवै है । भंयकर अनंत भवसागर विषैं जन्ममरण, बहुरि जन्म ऐसे बारंबार भ्रमण करै है ।।२५।।

बहुरि हू संसार का निंद्य स्वरूप है, ताहि कहै है–

अर्थ–इस संसार कै विषै माता है सो पुत्री होय है, बहुरि पुत्री है सो माता का भाव कूं प्राप्त होय है । इस जगत् विषैं पुरुष हू, स्त्री होय है बहुरि स्त्री है सो पुरुष अर नपुंसक होय है ।।२६।।

बहुरि हू लोक विषैं व्याप्त संसार की विरूपता है, ताहि दिखावते संते आचार्य कहै है–

अर्थ–विदेह का स्वामी ऐसा राजा है सो तेज कहिये प्रताप, सत्व कहिये स्वाभाविक सुंदरता–इनकरि अधिक होय । बहुरि बलवीर्य, रूप–इनकरि परिपूर्ण होय । पीछै सो राजा वर्चोगृह कहिये अशुचि स्थान विषैं, कृमि कहिये लट होता भया, जातैं ऐसे संसार का स्वरूप है । तिस कारण संसार विषैं वास है–ताहि धिक्कार होउ ।।२७।।

१. सुहदु:खं क । २. सत्ताहियो क ।

पुनरपि लोकस्य स्वरूपमाह—

धिग्भवदु लोगधम्मं देवा वि य सुरवदीय महड्ढीया ।
भोत्तूण सुक्खमतुलं पुणरवि दुक्खावहा होंति ।।२८।।

धिग्भवतु लोकधर्मं लोकस्वरूपं, यस्माद्देव: सुरपतयोऽपि महर्द्धिका महाविभूतयो भूत्वा सौख्यमतुलं सुखमनुपमं भुक्त्वा पुनरपि दु:खवहा भवन्ति दु:खस्य भोक्तारो भवन्तीति ।।२८।।

लोकानुप्रेक्षामुपसंहरन्नाह—

णाऊण लोगसारं णिस्सारं दीहगमणसंसारं ।
लोगग्गसिहरवासं झाहि पयत्तेण सुहवासं ।।२९।।

एवं लोकस्य सारं नि:सारं तु ज्ञात्वा दीर्घगमनं[१] संसारं च ज्ञात्वा संसारं चापर्यन्तमवबुध्य लोकाग्रशिखरवासं मोक्षस्थानं सुखवासं निरुपद्रवं ध्यायस्व चिन्तय प्रयत्नेनेति ।।२९।।

अशुभानुप्रेक्षस्वरूपं निरूपयन्नाह—

णिरिएसु असुहमेयंतमेव तिरियेसु बंधरोहादी ।
मणुएसु रोगसोगादियं तु दिवि माणसं असुहं ।।३०।।

नरकेष्वशुभमेकान्तत: सर्वकालमशुभमेव, तिर्यक्षु [२]महिषाश्ववारणादिषु बंधरोधादयो बंधनधरणदमनदहनताडनादय:, मनुष्येषु रोगशोकादयस्तु, दिवि देवलोके मानसमशुभं परप्रेषणवाहनमहर्द्धिकदर्शनेन मनोगतं सुष्ठु दु:खमिति ।।३०।।

बहुरि लोकका स्वरूप कहै है–

अर्थ–लोकधर्म कहिये लोक का स्वभाव है ताहि धिक्कार होउ । जातैं देव, बहुरि इन्द्र, महर्द्धिका कहिये महान है विभूति जिनकै–अैसे होयकरि अनुपम सुख है ताहि भोगिकरि बहुरि दु:ख के भोक्ता होय है ।।२८।।

लोकानुप्रेक्षा कूं संकोच करते आचार्य कहै है—

अर्थ–या प्रकार लोक का सार हैं, ताहि नि:सार कहिये तुच्छ जाणि, बहुरि संसार कूं अनंत जाणि, सुखवास कहिये उपद्रव रहित लोकाग्रशिखर वास जो मोक्षस्थानि ताहि जतन करिकैं ध्यायहु ।।२९।।

अशुभ अनुप्रेक्षा स्वरूप, ताहि कहै है–

अर्थ–नरक विषैं एकांतत: कहिये सदा काल दु:ख ही है । तिर्यक्षु कहिये घोडा, भैसा, हाथी आदि, तिन विषैं बंध, रोधादय: कहिये बंधन, खान–पान, का निरोध, दमन, दहन ताडन इत्यादिक, मनुष्यनि विषै रोग शोकादिक, बहुरि दिवि कहिये देवलोक विषैं, मानसीक दु:ख—अन्य की आज्ञा, अर वाहन, महर्द्धिक का दर्शन ताकरि (देवलोक में मानसिक दु:ख) होय है ।।३०।।

१. दीर्घगमनसंसारं क० । २. अश्वमहिषवारणादिसु क० ।

तथार्थद्वारेण दु:खमाह—

आयासदुक्खवेरभयसोगकलिरागदोसमोहाणं ।
असुहाणमावहो वि य अत्थो मूलं अणत्थाणं ।।३१।।

आयासोऽर्थार्जनतत्परता, दु:खमसातावेदनीयकर्मोदयनिमित्तासुखरूपं, वैरं मरणानुबंध:, भयं भयकर्मोदयजनितत्रस्तता, शोक: शोककर्मोदयपूर्वकेष्टवियोगज: संताप:, कलिर्वचनप्रतिवचनकृतो द्वन्द्व:, रागो रतिकर्मोदयजनिता प्रीति:, द्वेषोऽरतिकर्मोदयोद्‌भूताऽप्रीति:, मोहो मिथ्यात्वासंयमादिरूप इत्येवमादीनामशुभनामावहोऽवस्थानं, अर्थ: स्त्रीवस्त्रसुवर्णादिरूप:, अथवैतान्यशुभान्यावहति प्रापयतीति आयासाद्यशुभावह:, अनर्थानां च सर्वपरिभवानं च मूलं कारणमर्थस्तस्मात्तेन यच्छुभं तच्छुभं एव न भवतीति ।।३१।। तथा कामसुखमप्यशुभमिति प्रतिपादयति[1]—

दुग्गमदुल्लहलाभा भयपउरा अप्पकालिया लहुया ।
कामा दुक्खविवागा असुहा सेविज्जमाणा वि ।।३२।।

दु:खेन कृच्छ्रेण गम्यन्त इति दुर्गमा[2] विषमस्था दुरारोहा:, दुर्लभो लाभो येषां ते दुर्लभलाभा: स्वेप्सितप्राप्तयो न भवन्ति, भयं प्रचुरं येभ्यस्ते भयप्रचुरा दंडमारणवंचनादिभयसहिता:, अल्पकाले भवा अल्पकालिका: सुष्ठु स्तोककाला:, लघुका नि:सारा:, के ते? कामा मैथुनाद्यभिलाषा दु:खं विपाक फलं येषां बंधनादि ते दु:खविपाका दु:खावसाना: अशुभा: सेव्यमाना अपि, तत्राऽपि न सुखमस्तीति भाव: सर्वाशुभमेवेति ।।३२।।

तैसें अर्थद्वारकरि दु:ख कहै है–

अर्थ–अर्थ (धन) के उपार्जवे विषैं तत्परता सो आयास कहिये । असाता वेदनीयकर्म के उदय के निमित्ततैं असुख रूप सो दु:ख कहिये । मारवै का अभिप्राय सो वैर कहिये । भय कर्म के उदयतैं उपज्या त्रास सो भय कहिये । शोक कर्म के उदयपूर्वक इष्ट वियोगतैं उत्पन्न भया जो संताप सो शोक कहिये । परस्पर विसंवाद सो कलह कहिये । रतिकर्म के उदय जनित प्रीति सो राग कहिये । अरति कर्म के उदयकरि उत्पन्न भई अप्रीति सो द्वेष कहिये । मिथ्यात्व असंममादि रूप सो मोह कहिये–इनकूं आदि दे अशुभ है तिनका आवह कहिये स्थान सो, अर्थ है स्त्री, वस्त्र, सुवर्ण आदि है रूप जाका अैसा है । अथवा आयासादिक अशुभ है, तिनकूं प्राप्त करैं सो अर्थ है । बहुरि अनर्थ जे समस्त परिभव तिनको मूलं कहिये कारण अैसा अर्थ है, तिस अर्थतैं जो शुभ है, सो शुभ नांही अशुभ ही हैं ।।३१।।

तैसें कामसुख है सो भी अशुभ है–अैसे प्रतिपादन करते संते आचार्य कहै है—

अर्थ–दु:ख जो कष्ट ताकरि मिलै ते दुर्गम कहिये अतिविषम स्थान विषैं तिष्ठते दुखकरि पाईए अैसे है । दुर्लभ है लाभ जिनका ते दुर्लभ कहिये अपने वांछे प्राप्त होते नांही । भय है प्रचुर जिनतैं ते भय प्रचुर कहिये—दमन, मारण, वंधनादिक भयकरि सहित है । अल्पकाल विषैं उत्पन्न भये ते अल्पकालिक कहिये इनका काल थोरा है । लघुका कहिये नि:सार है, अैसे कौन हैं ? कामा कहिये मैथुनादिक का अभिलाष है सो दुख हैं विपाक कहिये फल जिनका ते, दुखविपाक कहिए दु:ख ही जिनके अंग विषैं हैं ते येहु अशुभ हैं । भावार्थ— सेवता हू कामभोग विषैं सुख नांही है, नियमकरि सर्व अशुभ हैं ।।३२।। भोजनहूं तैं सुख नांही होय है अैसैं कहै है–

---

१. प्रतिपादयन्नाह क० । २. सुष्ठु विषमस्था क० ।

आहारादपि न सुखं भवतीत्याह—

असुइविलिविले गब्भे वसमाणो वत्थिपडलपच्छण्णो ।
मादूइसिंभ[1]लालाइयं तु तिव्वासुहं पिबदि ।।३३।।

अशुच्याविले मूत्रपुरीषश्लेष्मपित्तरुधिरादिबीभत्से, गर्भ उदराभ्यंतरे, वसन् संतिष्ठमानः, वस्तिपटलप्रच्छन्नः जरायुरावृतः, मातृश्लेष्मलालायितं जनन्या चर्वितं श्लेष्मलालासमन्वितं रसं तीव्रं दुर्गन्धं पिबति यत एवंभूतो मूलाहारस्ततः कथमाहारात सुखमित्याहारोऽप्यशुभरूप एवेति ।।३३।।

शरीरमप्यशुभमिति निरूपयन्नाह—

मंसट्ठिसिं[2]भवसरुहिरचम्मपित्तं तमुत्तकुणिपकुडिं ।
बहुदुक्खरोगभायण सरीरमसुभं वियाणाहि ।।३४।।

मांसास्थिश्लेष्मवसारुधिरचर्मपित्तांत्रमूत्रकुणिपाशुचिकुटीं गृहमेतेषां बहुदुःखरोगभाजनं शरीरमिदमशुभमशुचि विजानीहीति ।।३४।।

तस्मात्—

अत्थं कामसरीरादियं[3] पि सव्वमसुभत्ति णादूण ।
णिव्विज्जंतो झायसु[4] जह जहसि कलेवरं असुइं ।।३५।।

अर्थं स्त्रीवस्त्रादिकं, कामं मैथुनादिकं, शरीरादिकमपि सर्वमशुभमिति जगति ज्ञात्वा निर्वेदं गच्छन् ध्यायस्व चिन्तय यथा [5]जहासि कुत्सितकलेवरमशुचि, शरीरवैराग्यं च सम्यक् चिंतयेति ।।३५।।

अर्थ–अशुच्याविले कहिये मूत्र, मल, श्लेष्म, रूधिरादिककरि ग्लानि युक्त अैसा जो गर्भ कहिये उदर का मध्य ता विषैं वसता जरायुकरि वेष्टित, माता करि चाच्या श्लेष्म, लाल (लार) करि सहित, तीव्र दुर्गंध रस है, ताहि पीवै हैं । जातैं आदि विषै या प्रकार आहार हैं, तातैं कैसें आहारतैं सुख होय ? ।।३३।।

आगै आहारहू अशुभरूप निश्चयकरि हैं, ता कारण शरीरहू अशुभ है–अैसा निरूपण करते संतै आचार्य कहै हैं–

अर्थ–मांस, हाड, कफ, मेद, रुधिर, चाम, पित्त, आंत, मूत्र, मल–इनका घर, बहुत जे दुख अर रोग इनका पात्र । अैसा शरीर है, ताहि तुम अशुचि जानहु ।।३४।।

आगै तातैं कहा कर्तव्य है ? सो कहै हैं–

अर्थ–अर्थ कहिये स्त्री-वस्त्रादिक, काम कहिये मैथुनादिक, शरीरादिक हू सर्व अशुचि है–अैसें जगत् विषैं जाणि निर्वेद कूं प्राप्त होता तैंसैं ध्यायहु जैंसै अशुचि शरीरकूं त्यजै । भावार्थ—अशुचि शरीरतैं वैराग्य, संसारतैं वैराग्य, बहुरि भोगनितैं वैराग्य, ताहि भलै प्रकार चिंतवन करै ।।३५।।

---

१. मादूअसिंभ लाला—द० क० २. अ० ब० सेंभ । ३. अ० ब० गं । ४. ब० जायसु । ५. जहासि त्यजसि द० ।

अशुभानुप्रेक्षां संक्षेपयन्नाह—

मोत्तूण जिणक्खादं धम्मं सुहमिह दु णत्थि लोगम्मि ।
ससुरासुरेसु तिरिएसु णिरयमणुएसु चिंतेज्जो ।।३६।।

ससुरासुरेषु नरकतिर्यङ्मनुष्येषु जिनख्यातं धर्मं मुक्त्वा शुभमिहान्यन्नास्ति, एवं चिन्तयेत्, लोके धर्ममन्तरेणान्यच्छुभं न भवतीति जानीहि ।।३६।।

आस्रवानुप्रेक्षां प्रकटयन्नाह—

दुक्खभयमीणपउरे संसारमहण्णवे परमघोरे ।
जंतू जं तु णिमज्जदि कम्मासवहेदुयं सव्वं ।।३७।।

दुःखभयान्येव मीना मत्स्यास्त एव प्रचुराः प्रभूता यस्मिन् स दुःखभयमीनप्रचुरस्तस्मिन् संसारमहार्णवे परमघोरे सुष्ठु रौद्रे जन्तुर्जीवो यस्मान्निमज्जति प्रविशति तत्सर्वं कर्मास्रवहेतुकं कर्मादाननिमित्तमिति ।।३७।।

के आस्रवा इत्याशंकायामाह—

रागो दोसो मोहो इंदियसण्णा य गारवकसाया ।
मणवयणकायसहिदा[1] दु आसवा होंति कम्मस्स ।।३८।।

रागद्वेषमोहपंचेन्द्रियाहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञाः ऋद्धिगारवरसगौरवसातगौरवकषायाश्च मनोवचनकायसहिता एवं सर्व एते कर्मण आस्रवा भवन्ति—कर्माण्येतैरागच्छन्तीति ।।३८।।

आगै अशुभानुप्रेक्षा है, ताहि संकोच करते संते आचार्य कहै है–

अर्थ–सुर, असुरनि करि सहित नरक, तिरजंच, मनुष्य इनकै विषैं भगवान् भाषित धर्मकूं त्यजकरि लोक विषैं और कल्याणकारी नांही है । जगत् विषै आत्मा का हितकारी जिनधर्म ही है, असें जानहु ।।३६।।

आश्रवानुप्रेक्षा है, ताहि प्रगट करते आचार्य कहै हैं–

अर्थ–दुःख और भय सो ही भये मत्स्य (मछली), ते हैं प्रचुर जा विषैं, अत्यंत भंयकर अैसा जो संसार-समुद्र, ता विषैं प्राणी है सो जा कारण डूबै हैं सो सर्व कर्म्माश्रव के कारण तैं हैं । ।।३७।।

आश्रव कौन है? अैसी आशंका होतैं आचार्य कहै है–

अर्थ–राग, द्वेष, मोह, पांच–इंद्रियाँ, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह–यह च्यार संज्ञा, ऋद्धि गौरव, रस गौरव, सात गौरव—अैसें तीन गौरव और कषाय, बहुरि मन, वचन, कायकरि सहित—या प्रकार यह समस्त आश्रव हैं । इनकरि कर्म्म आवै हैं ।।३८।।

---

१. ख० सहिया ।

रागादीन् विवेचयन्नाह—

रंजेदि असुहकुणपे रागो दोसो वि दूसदी णिच्चं ।
मोहो वि महारिवु जं णियदं मोहेदि सब्भावं ।।३९।।

रागो जीवं कुणपे वस्तुनि रंजयति—कुत्सिते द्रव्येऽनुरागं कारयति रागः । **द्वेषोऽपि शोभनमपि द्वेष्टि**—सम्यग्दर्शनादिषु द्वेषं कारयति । नित्यं सर्वकालं । मोहोऽपि महारिपुर्महावैरी यस्मान्नियतं निश्चयेन मोहयति सद्भावं—जीवस्य परमार्थरूपं तिरयतीति ।।३९।।

यत एवंभूतो मोहोऽतस्तं कुत्सयन्नाह—

धिद्धी मोहस्स सदा जेण हिदत्थेण मोहिदो संतो ।
ण विबुज्झदि जिणवयणं हिदसिवसुहकारणं मग्गं ।।४०।।

धिक्-धिक् भवतु मोहं—मोहः प्रलयं गच्छतु । येन मोहेन हृदयस्थेन[1] मोहितो मूढः सन् न विबुध्यते तत्र जानाति जिनवचनं परमागमं । किं विशिष्टं? **हितशिवसुखकारणं मार्ग**—एकांतवादिपरिकल्पितसुखनिमित्तमार्गविपरीतं येन मोहेन हृदयस्थेन न विबुध्यते तं मोहं धिग्भवन्त्विति ।।४०।।

रागद्वेषौ कुत्सयन्नाह—

जिणवयण सद्दहाणो वि तिव्वमसुहगदिपावयं कुणइ[2] ।
अभिभूदो जेहिं सदा धित्तेसिं रागदोसाणं ।।४१।।

याभ्यां रागद्वेषाभ्यामभिभूतः कदर्थितोऽयं जीवो जिनवचनं श्रद्धानोऽपि तत्त्वरुचिसहितोऽप्यशुभगतिहेतुकं तीव्रं पापं करोति श्रेणिकादिवत्,

---

आगै रागादिक है तिनहि विचार करते आचार्य कहै हैं–

अर्थ–राग है सो जीव हैं, ताहि अशुभ अर कुत्सित वस्तु विषैं अनुराग उपजावै हैं । द्वेष है सो हूं शोभायमान सम्यग्दर्शनादिक विषैं द्वेष उपजावै है । सदाकाल मोह है सोहूं महा बैरी है, जातैं निश्चयकरि जीव का सद्भाव जो परमार्थरूप, ताहि विनाशै है ।।३९।।

जातैं मोह अैसा है, तातैं तिस मोहकूं निंदते संतै कहै है–

अर्थ–मोह है ताहि सदाकाल धिक्कार होऊ, धिक्कार होऊ । मोह है सो प्रलय है, ताहि प्राप्त होउ हृदय विषैं तिष्ठता अैसा जो मोह ताकरि यह जीव मोही हुवा संता जिनवचन जो परमागम, ताहि नांही जानै है । कैसा है जिनवचन ? हितकारी, मोक्ष सुख का कारण–अैसा मार्ग्ग है । एकांतवादी जे मिथ्यादृष्टी तिनकरि कल्पित कहिये मिथ्याकथित सुख का निमित्तमार्ग तासूं विपरीत है ।

भावार्थ–मोह हृदय विषैं तिष्ठता संता मोक्षसुख का कारण जिनवचन, अर संसार का कारण मिथ्यावचन, ताका भेद नांही जानै हैं । तातैं तिस मोहकूं धिक्कार होऊ ।।४०।।

आगै राग–द्वेष है, ताहि निंदते संतै आचार्य कहै है–

अर्थ–यह जीव जिनि रागद्वेषनिकरि पीडित हुवा संता जिनवचन का श्रद्धान करता हू, सदा अशुभ गति का कारण तीव्र पाप है,

---

१. हृदयस्थितेन क० । २. कुणदि क० ।

धिग्भवतस्तौ रागद्वेषौ, इति दर्शने सत्यपि रागद्वेषौ पुरुषस्य पापं जनयत इति तयोर्निराकरणे संभ्रमः कार्य इति ।।४१।।

विषयाणां दुष्टत्वमाह—

अणिहुदमणसा एदे इंदियविसया णिगेण्हिदुं दुक्खं ।
मंतोसहिहीणेण व दुट्ठा आसीविसा सप्पा ।।४२।।

एकाग्रचित्तमन्तरेणैतानिन्द्रियविषयान्निग्रहीतुं दुःखमेतेषां रूपरसगंधस्पर्शशब्दविषयाणामिन्द्रियाणां निग्रहं कर्त्तुं न शक्यते चलचित्तेन । यथा मंत्रौषधिहीनेन दुष्टा आशीविषाः सर्पा वशीकर्तुं न शक्यन्त इति ।।४२।। तानि कुत्सयन्नाह—

धित्तेसिमिंदियाणं जेसिं वसेदो दु पावमज्जणिय ।
पावदि पावविवागं दुक्खमणंतं भवगदिसु[1] ।।४३।।

धिग्भवतु तानीन्द्रियाणि, येषामिन्द्रियाणां वशतो वशं गतः पापमर्जयित्वा च पापं संगृह्य प्राप्नोति, तस्य पापस्य विपाकं फलं भवगतिषु च दुःखमनंतं प्राप्नोतीति ।।४३।।

संज्ञागौरवाणां स्वरूपमाह—

सण्णाहिं गारवेहिं अ गुरुओ गुरुगं तु पावमज्जणिय ।
तो कम्मभारगुरुओ गुरुगं दुक्खं समणुभवइ[2] ।।४४।।

आहारादिसंज्ञाभिर्गौरवैश्च गुरुः सन् गुरुकं तु पापमर्जयित्वा पापभारं स्वीकृत्य ततः पापभारेण गुरुर्भूत्वा ततो गुरुकं दुःखं समनुभवतीति ।।४४।।

ताहि करै है । श्रेणिक राजा कूं आदि दे पूर्वेंभये तिनकी नांई । तातैं तिन रागद्वेषनिकूं धिक्कार होहु । सम्यग्दर्शन होतै हूं रागद्वेष है, ते पुरुष कै पापु उपजावैं हैं या कारण तिनका निराकरण होतैं आनंद करवे जोग्य है ।।४१।।

आगै विषयन की दुष्टता है, ताहि कहै है–

अर्थ–एकाग्र मन विना यह इंद्रियनिके विषय जे रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द–इनका निग्रह करने कूं समर्थ नांही होय है । जैसे मंत्र–औषधिकरि हीन पुरूष दुष्ट आसी विष जाति, सर्प्पनिकूं वशिंकरवै समर्थ नांही होय ।।४२।।

आगै इंद्रियनि कूं निंदते आचार्य कहै हैं–

अर्थ–तिन इंद्रियनिकूं धिक्कार होउ, जिन इन्द्रियनि कै वशिभया जीव पाप का संचयकरि तिस पाप का फल जो च्यारुं गति विषैं दुख ताहि प्राप्त होय है ।।४३।।

आगै संज्ञा अर गौरव इनका स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–आहारादिक च्यार संज्ञानिकरि बहुरि तीन गौरवनि करि अति-भार्‌या हुवा पाप का भार अंगीकार करि तिस पापभार करि भर्‌या होयकरि ता पीछैं महान् दुःख हैं, ताहि भोगवै है ।।४४।।

---
१. भवगतिषु २. अ० ब० भवदि ।

कषायास्रवस्वरूपमाह—

कोधो माणो माया लोभो य दुरासया कसायरिऊ ।
दोससहस्सावासा दुक्खसहस्साणि पावंति ।।४५।।

क्रोधमानमायालोभा दुराश्रया दुष्टाश्रयाः कषायरिपवः दोषसहस्राणामावासाः दुःखसहस्राणि जीवान् प्रापयंति—दुःखसहस्रैः कषाया जीवान् संबंधयन्तीत्यर्थः ।।४५।। पुनरप्यास्रवानाह—

हिंसादिएहिं पंचहिं आसवदारेहिं आसवदि पावं ।
तेहिंतु धुव विणासो सासवणावा जह समुद्दे ।।४६।।

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहैः पंचभिरास्रवद्वारैरास्रवति कर्मोपढौकते पापं । तेभ्यश्चाश्रितेभ्यो ध्रुवो निश्चयरूपो विनाशो जीवस्य भवति । यथा सास्रवा नौः पोतः समुद्रे निमज्जति, एवं कर्मास्रवैर्जीवः संसारसागरे निमज्जतीति ।।४६।। आस्रवानुप्रेक्षामुपसंहरन्नाह—

एवं बहुप्पयारं कम्मं आसवदि दुट्ठमट्ठविहं ।
णाणावरणादीयं दुक्खविवागं ति चिंतेज्जो ।।४७।।

एवं ज्ञानावरणादिकं कर्माष्टविधं भेदेन बहुप्रकारं दुष्टं वाऽऽस्रवति यस्मात्तस्मात्तमास्रवं दुःखविपाकमिति कृत्वा चिन्तयेत् भावयेदिति ।।४७।।

यस्मादेवमास्रवैः कर्मास्रवति तस्मात्संवरमाह—

तम्हा कम्मासवकारणाणि सव्वाणि ताणि रुंधेज्जो ।
इंदियकसायसण्णागारवरागादिआदीणि ।।४८।।

आगै कषायाश्रव का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–दुष्ट हैं आलंवन जिनको हजारां दोषनिके निवास अैसे क्रोध, मान, माया, लोभ-यह च्यार कषाय तेई भये शत्रु जीवनिकूं हजारां दुःख प्राप्ति करै हैं । च्यार कषाय हजार दुखनिकरि जीवकूं संबंधयुक्त करै हैं ।।४५।।

बहुरि हू आश्रव है, ताहि कहै है—

अर्थ–हिंसा, असत्य, चौर्य, मैथुन, परिग्रह–यह जे पंच आश्रवनि के द्वार तिनकरि पापकर्म आवै हैं । बहुरि तिनि आश्रवनिकरि जीव का निश्चय थकी नाश होय है । जैसे छिद्र सहित नाव समुद्र विषैं डूबै, अैसैं कर्माश्रवनिकरि जीव है सो संसार-समुद्र विषैं डूबै है ।।४६।।

आगै आश्रवानुप्रेक्षा है, ताहि संकोच करते संतें आचार्य कहै हैं–

अर्थ–जैसैं ज्ञानावरणादिक अष्ट प्रकार उत्तरप्रकृति के भेदकरि बहुत प्रकार दुष्टकर्म्म हैं, सो जातैं आवै है, तातैं तिस आश्रवकूं दुःख है फल जाका–अैसा जाणि चितवन करणां ।।४७।।

जातै इन प्रकार आश्रवनिकरि कर्म आवै हैं, तातैं संवर है, ताहि कहै है–

अर्थ–तातैं जे कर्म्माश्रव के कारण सर्वही इंद्रिय, कषाय, संज्ञा, गौरव, रागादिक जे हैं, तिनकूं निवारण करैं । जातैं इनकरि कर्म्म

तस्मात्कर्मास्रवकारणानि सर्वाणि यानि तानि निरोधयेत् निवारयेत् । कानि तानि? इन्द्रियकषायसंज्ञागौरवरागादिकानि । यस्मादेतैः कर्मागच्छति तस्मादेतानि सर्वाणि निरोधयेदिति ।।४८।।

रुद्धेषु तेषु यद्भवति तदाह—

रुद्धेसु कसायेसु अ मूलादो होंति आसवा रुद्धा ।
दुब्भत्तम्हि णिरुद्धे वणम्मि णावा जह ण एदि ।।४९।।

रुद्धेषु च कषायेषु च मूलादारभ्य मूलत आस्रवाः सर्वेऽपि रुद्धाः सम्यक् पिहिता भवंति यथा दुर्वहति वने पानीये—दुष्टे वहति स्रोतसि जले, अथ व्रणे—विवरे, दुष्टे वहति, निरुद्धे विधृते, नावं नैति जलं यथा । अथवा नालिकेरादित्वग्भिर्बद्धा नौः सास्रवा सत्यपि नयति प्राप्नोति परतीरं, अथवा नैति विनाशं । कषायेषु निरुद्धेषु आस्रवा रुद्धा यथा नावं नैति जलं रुद्धेषु, यथा च सास्रवा नौर्दुर्वहति पानीये निरुद्धे मूलतस्तस्या नावः सर्वेऽपि आस्रवा निरुद्धा भवंति ततः सा नौर्नयति प्रापयतीष्टस्थानमानयति वा स्वेष्टं वस्तु-विनाशं च न गच्छति, एवं कषायेषु रुद्धेषु मूलतः सर्वेऽप्यास्रवा निरुद्धा भवंति ततो यद्यपि योगादिद्वारैः सास्रवो जंतुस्तथाऽपि रत्नत्रयं मोक्षपत्तनं नयतीति ।।४९।। इन्द्रियसंवरस्वरूपमाह—

इंदियकसायदोसा णिग्घिप्पंतितवणाणविणएहिं ।
रज्जूहिं णिग्घिप्पंति हु उप्पहगामी जहा तुरया ।।५०।।

इन्द्रियाणि कषाया द्वेषाश्चैते निगृह्यन्ते निरुध्यन्ते यथासंख्यं[1] तपसा ज्ञानेन विनयेन । इन्द्रियाणि तपसा निगृह्यन्ते, कषाया ज्ञानभावनया वशीक्रियंते, द्वेषो विनयक्रियया प्रलयमुपनीते । यथोत्पथगामिन उन्मार्गयायिनस्तुरगा अश्वा निगृह्यन्ते वशतामुपनीयन्ते रज्जुभिर्वरत्राभिः खल्विति[2] ।।५०।।

आवै हैं, तातैं इन समस्तनिकूं रोकै है ।।४८।।

आगै तिनकूं रोकतैं संतै जो होय ताहि कहै है–

अर्थ–कषायें रोके संतैं मूलतैं लगायकरि समस्त हूं आश्रव भलीभांति रोके होय हैं । जैसें वने कहिये पाणी स्रोतसि कहिये छिद्र विषैं दुष्ट बहता संता अथवा दुष्ट बहता अैसा व्रण कहिये छिद्र सो रोके संतै जल है सो नावकूं नांही प्राप्त होय है । अथवा नालेर (नारियल) आदि वृक्षनिकी त्वचाकरि बंधी अैसै नाव आश्रव सहित होती हू नयति कहिये पर (दूसरे) तीरकूं प्राप्त करै है अथवा नैति कहिये नाशकूं नांही प्राप्त होय है ।

भावार्थ–जैसे छिद्र सहित नाव छिद्रकूं रोके पाणी विषै नांही डूबै है, वांछित स्थानकूं प्राप्त करै है । या प्रकार कषायनिकूं रोके संतै सर्व ही आश्रव रूकै हैं । तिस कारणतैं यद्यपि योगद्वारनिकरि आश्रव सहित प्राणी हैं, तोहू रत्नत्रयमय मोक्षनगर है, ताहि प्राप्त करै हैं ।।४९।।

आगै इंद्रिय संवर का स्वरूप है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–इंद्रिय, कषाय अर द्वेष—ये हैं ते तप, ज्ञान, अर विनयकरि रोकिये है । इंहा यथासंख्यकरि इंद्रिय है ते तपकरि रोकिये है । कषाय हैं ते ज्ञान भावनाकरि वशि करिये हैं । द्वेष है सो विनयक्रियाकरि प्रलय है, ताहि प्राप्त करिये हैं । जैसे उन्मार्ग विषैं गमन करते घोडा वरहानि (रस्सी) करि प्रगटपनै वाशि करिये हैं ।।५०।।

---

१. यथासंख्येन द० क० । २. स्फुटमिति क० ।

चारित्रसंवरस्य स्वरूपमाह—

मणवयणकायगुत्तिंदियस्स समिदीसु अप्पमत्तस्स ।
आसवदारणिरोहे णवकम्मरयासवो ण हवे[1] ।।५१।।

मनोवचनकायैर्गुप्तेन्द्रियस्य समितिषु चेर्याभाषैषणाऽऽदाननिक्षेपोच्चर[2] प्रस्रवणसंज्ञिकास्वप्रमत्तस्य सुष्ठु प्रमादरहितस्य चारित्रवत आस्रवद्वारनिरोधे यैर्द्वारैः कर्मागच्छति तेषां निरोधे सति नवकर्मरजस आस्रवो न भवेत—अभिनवकर्मागमो न भवेदिति ।।५१।।

पुनरपि संक्षेपत आस्रवं संवरं चाह—

मिच्छत्ताविरदीहिं य कसायजोगेहिं जं च आसवदि ।
दंसणविरमणणिग्गहणिरोधणेहिं तु णासवदि ।।५२।।

मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगैर्यत्कर्मास्रवति तत्कर्म सम्यग्दर्शनविरतिनिग्रहनिरोधनैस्तु यथासंख्यं[3] नास्रवति नागच्छतीति ।।५२।।

संवरानुप्रेक्षां संक्षेपयन् तस्याश्च फलं प्रतिपादयन्नाह—

संवरफलं तु णिव्वाणमेत्ति संवरसमाधिसंजुत्तो ।
णिच्चुज्जुत्तो भावय संवर इणमो विसुद्धप्पा ।।५३।।

संवरफलं निर्वाणमिति कृत्वा संवरेण समाधिना चाथवा संवरध्यानेन संयुक्तः सन् नित्योद्युक्तश्च सर्वकालं यत्नपरं भावयेमं संवरं विशुद्धात्मा सर्वद्वन्द्वपरिहीणः—संवरं प्रयत्नेन चिन्तयेति ।।५३।।

आगै चारित्र संवर का स्वरूप कहै है—

अर्थ–मन, वचन, कायकरि गोप्या है इंद्रिय जानै, बहुरि समितिषु कहिये—१. ईर्य्या, २. भाषा, ३. एषणा, ४. आदाननिक्षेप, ५.उच्चारप्रस्रवण ये हैं संज्ञा जिनकी तिनकै विषैं, भलै प्रकार प्रमाद रहित अैसा चारित्रयुक्त मुनिकैं आश्रवद्वार रोके संतै, तिन द्वारनिकरि कर्म आवै हैं, तिनका निरोध होत संतै, नवीन कर्म्मरूपरज का आश्रव नांही होय है ।।५१।।

बहुरि संक्षेपतें आश्रव अर संवर हैं, ताहि कहै है—

अर्थ–१. मिथ्यात्व, २. अविरति, ३. कषाय, ४. योग–इनकरि जो कर्म आवै है सो, सम्यग्दर्शन, विरति, (इन्द्रिय) निग्रह, (योग) निरोध-इनकरि यथासंख्यकरि नांहीं आवै है ।।५२।।

आगैं संवरानुप्रेक्षा है, ताहि संकोचते बहुरि तिसका फलकूं प्रतिपादन करते आचार्य कहै हैं–

अर्थ–संवर का फल निर्वाण है—या कारण संवरकरि बहुरि समाधि जो ध्यान ताकरि अथवा संवर का ध्यानकरि संयुक्त हुवा संता, बहुरि सर्वकाल जतन विषैं तत्पर हुवा संता विशुद्ध है आत्मा जाका सर्व द्वंदकरि रहित यह संवर है, ताहि भाय ।।५३।।

१. अ० ब० भवे । २. निक्षेपोच्चारणं प्रस्रवणं क० । ३. यथासंख्येन क० ।

निर्जरास्वरूपं विवृण्वन्नाह—

रुद्धासवस्स एवं तवसा जुत्तस्स णिज्जरा होदि ।
दुविहा य सा वि भणिया देसादो सव्वदो चेव ।।५४।।

रुद्धास्रवस्य पिहितकर्मागमद्वारस्यैवं तपसा युक्तस्य निर्जरा भवति—कर्मशातनं भवति । साऽपि च निर्जरा द्विविधा भणिता, देशतः सर्वतश्च [1]कर्मैकदेशनिर्जरा सर्वकर्मनिर्जरा चेति ।।५४।। देशनिर्जरास्वरूपमाह—

संसारे संसरंतस्स खओवसमगदस्स कम्मस्स ।
सव्वस्स वि होदि जगे तवसा पुण णिज्जरा विउला ।।५५।।

संसारे चतुर्गतिसंसरणे, संसरतः पर्यटतः, क्षयोपशमगतकर्मणः किंचित् क्षयमुपगतं किंचिदुपशान्तं किंचित्सत्स्वरूपेण स्थितं कर्म तस्य कर्मणो या निर्जरा सा सर्वस्यैव जीवस्य भवति जगति सा च देशनिर्जरा तपसा पुनर्निर्जरा विपुला—तपोग्निना भस्मीकृतस्य सर्वस्य कर्मणो निर्जरा सकलेति ।।५५।।

सकलनिर्जरायाः फलं स्वरूपं चाह—

जह धादू धम्मंतो सुज्झदि सो अग्गिणा दु संतत्तो ।
तवसा तहा[2] विसुज्झदि जीवो कम्मेहिं कणयं व ।।५६।।*

आगैं निर्जराप्रेक्षा का स्वरूप है, ताहि वर्णन करते आचार्य कहै है–

अर्थ–या प्रकार रोक्या है कर्म्मनिका आगमद्वार जानैं बहुरि तपकरि युक्त–अैसा मुनिकै निर्जरा होय हैं । सोहू निज्र्जरा दोय प्रकार कही—देशतः कहिये कर्मनिकी एकदेश निर्जरा बहुरि सर्वतः कहिए कर्म्मनिकी सर्वदेश निर्जरा, अैसे जाननी ।।५४।।

आगैं देशनिर्जरा का स्वरूप है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–चतुर्गति संसार विषैं परिभ्रमण करता सर्वही जीवकै जगत विषैं किचिंत् क्षयकूं प्राप्त भया किचिंत् उपशांत भया किचिंत् तिस स्वरूपकरि स्थित रह्या अैसा जो कर्म्म ताकी निर्जरा है, सो देशनिर्जरा है ।।५५।।

आगै सकल–निर्जरा का फल, बहुरि स्वरूप है, ताहि कहै है–

अर्थ–जैसैं धातु जो सुवर्णपाषाण सो धमाया बहुरि अग्निकरि तप्तायमान कीया । शुद्धयति कहिये कीट–कालिमाकरि शुद्ध होय

---

१. 'एककर्मैक' इति प्रेस-पुस्तके पाठः । २. अ० ब० तथा ।

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में यह गाथा अधिक है—

आवेसणी सरीरे इंदियभंडो मणो व आगरिओ । धमिदव्व जीवलोहो वावीसपरीसहग्गीहिं ।।

अर्थ–यह शरीर आवेशनी—चूल्हा के समान है, इन्द्रियाँ भांड अर्थात् अलंकार बनाने के साधन चिमटा, हथौड़ा आदि के समान हैं, मन सुवर्णकार के समान है । जीव सुर्वणधातु के समान है और क्षुधातृषादि परीषिह अग्नि के समान हैं । अर्थात् शरीर रूपी चूल्हे—भट्टी में बाईस परीषहरूपी अग्नि में मनरूपी उपाध्याय—या सुवर्णकार के द्वारा तपाया गया यह जीवरूपी सुवर्ण कर्मरूपी मल के नष्ट हो जाने से निर्मल-शुद्ध हो जाता है ।

यथा धातुस्सुवर्णपाषाणः धम्यमानः शुध्यति किट्टकालिमादिरहितो भवति अग्निना तु सन्तप्तः सन्, तथा तपसा विशुध्यते कर्मभ्यो जीवः सर्वकर्मविमुक्तः स्यात्कनकमिव । यथा धातुर्धम्यमानोऽग्निना सन्तप्तः कनकः स्यात्तथा जीवस्तपसा संतप्तः सिद्धः संपद्यत इति ।।५६।।

तपसो माहात्म्यमाह—

णाणवरमारुदजुदो सीलवरसमाधिसंजमुज्जलिदो ।
दहइ तवो भवबीयं तणकट्ठादी जहा अग्गी ।।५७।।

ज्ञानवरमारुतयुतं मत्यादिज्ञानबृहद्वातसहितं, शीलं व्रतपरिरक्षणं, वरसमाधिरेकाग्रचिन्तानिरोधः, पंचनमस्कृतिसहितः संयमः प्राणिदया इन्द्रियनिग्रहश्चैतैरुज्ज्वलितं प्रज्वलितं दीप्तं तपो दहति भवबीजं संसार कारणं । तृणकाष्ठादिकं [1]यथाऽग्निर्दहति तथेति ।।५७।। पुनरपि—

चिरकालमज्जिदं पि य विहुणदि तवसा रयत्ति णाऊण ।
दुविहे तवम्मि णिच्चं भावेदव्वो हवदि अप्पा ।।५८।।

चिरकालं संख्या(म)तीतसमयं कर्मार्जितमपि तपसा विधूयत इति ज्ञात्वा द्विविधे तपसि नित्यं निरन्तरमात्मा भावयितव्यो भवतीति ।।५८।।

भावितात्मा स नु किं स्यादित्याह—

णिज्जरियसव्वकम्मो जादिजरामरणबंधणविमुक्को ।
पावदि सुक्खमणंतं णिज्जरणं तं मणसि कुज्जा ।।५९।।

ततो निर्जीर्णः सर्वकर्मनिर्मुक्तो जातिजरामरणबन्धनविमुक्तः प्राप्नोति सौख्यमतुलमनंतं, तन्निर्जरणं मनसि कृत्वा (कुर्यात्) विधायेति ।।५९।।

है तैसैं तपकरि जीव सर्वकर्म्मनिकरि रहित होय है ।

भावार्थ–जैसे दूरी अग्निकरि धमाई तप्त हुई संती सुर्वण होय है, तैसैं जीव तपकरि संतप्त हुवा सिद्ध होय है ।।५६।।

आगैं तप का माहात्म्य है, ताहि कहै है–

अर्थ–मति आदि ज्ञान सो ही भया प्रचंड पवन ताकरि सहित, शील कहिये व्रत की समस्तपनैं रक्षा, बरसमाधि कहिये एकाग्र चिंता का रोकना, पंच नमस्कार सहित, संयम कहिये प्राणीनिकी दया, बहुरि इंद्रियनि का निग्रह, इनिकरिकै प्रज्वलित जो तप सो संसार का कारण है, ताहि भस्म करै है । जैसै अग्नि–तृण, काष्ठादिक कूं भस्म करै ।।५७।।

अर्थ–चिरकाल कहिये संख्या रहित काल विषैं संचय कीया अैसा हू कर्म है, ताहि तपकरि कंपायमान करै है, अैसैं जाणिकरि दोय प्रकार बाह्य—अभ्यंतर तप विषैं आत्मा है–सो भायवे जोग्य है ।।५८।।

तां पीछैं तप विषैं आत्मा भाये संतै कहा होय है ? अैसैं पूछैं उत्तर कहै है—

अर्थ–ता पीछै सर्व कर्म्मकरि रहित, बहुरि जन्म-जरा-मरण ये ही भये बंधन, तिनिकरि रहित भया तिस निर्जरा कूं मन विषैं धारि अतुल सुख है, ताहि प्राप्त होय है ।।५९।।

---

१. यथाग्निरिति क० ।

निर्जरानुप्रेक्षां व्याख्याय धर्मानुप्रेक्षास्वरूपं विवेचयन्नाह—

सव्वजगस्स हिदकरो धम्मो तित्थंकरेहिं अक्खादो ।
धण्णा तं पडिवण्णा विसुद्धमणसा जगे मणुया ।।६०।।

सर्वस्य जगतो भव्यलोकस्य हितकरो धर्म उत्तमक्षमादिलक्षणस्तीर्थकरैराख्यात: प्रतिपादितस्तं धर्मं ये प्रतिपन्नास्तं धर्ममधिष्ठिता ये पुरुषा विशुद्धमनसा शुद्धभावेन ते धन्या: पुण्यवंत: कृतार्था जगतीति ।।६०।।

धर्मानुरागे कारणमाह—

जेणेह पाविदव्वं कल्लाणपरंपरं परमसोक्खं ।
सो जिणदेसिदधम्मं भावेणुववज्जदे पुरिसो ।।६१।।

येनेह—येन जीवेनास्मिंल्लोके कल्याणपरंपरा मांगल्यनैरन्तर्यं परमसौख्यं प्राप्तव्यं स जीवो जिनदेशितं तीर्थकराख्यातं धर्मं भावेनोपद्यते पुरुष: परमार्थतो धर्मं श्रद्दधाति सेवते—पापक्रियां मनागपि नाचरतीति ।।६१।।

[१]धर्मस्य विकल्पानाह—

खंतीमद्दवअज्जवलाघवतवसंजमो अकिंचणदा ।
तह होइ बंभचेरं सच्चं चाओ य दसधम्मा ।।६२।।

क्षान्त्यार्जवमार्दवलाघव[२]तप:संयमा आकिंचन्यं तथा ब्रह्मचर्यं सत्यं त्यागश्चैवं धर्मो दशविधो भवति ज्ञातव्य इति ।।६२।।

आगै निर्जरानुप्रेक्षा का व्याख्यानकरि, धर्मानुप्रेक्षा का स्वरूप है, ताहि प्रगट करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ–सर्व भव्यलोक का हितकारी उत्तम क्षमादिक हैं लक्षण जाका अैसा धर्म तीर्थंकर भगवानकरि उपदेश कीया, तिस धर्मकूं जे पुरुष विशुद्ध भावकरि आश्रय किया जे पुरुष जगत् विषैं धन्या कहिये पुण्यवंत है, कृतार्थ है ।।६०।।

आगै धर्मानुराग विषै कारण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–या जगत् विषै जा जीव नै कल्याणनिकी है परंपरा जा विषै अैसा परमसुख प्राप्त होना है सो जीव तीर्थंकर करि उपदेश्या धर्म है ताहि भावकरि श्रद्धान करै है, सेवै है । पापक्रिया है, ताहि किंचित् मात्र हू नांही आचरै है ।।६१।।

आगै मुनिधर्म का भेद है, ताहि कहै है—

अर्थ–उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, लाघव, तप:, संयम, आकिंचन, तैसैं ब्रह्मचर्य, सत्य, बहुरि त्याग–अैसें दशप्रकार धर्म जानना।।६२।।

---

१. लिङ्गधर्मस्य क० । २. लाघवं शौचाचार: (क० टि०) ।

धर्मभावनाफलमाह—

उवसम दया य खंती वड्ढइ वेरग्गदा य जह जह से ।
तह तह य मोक्खसोक्खं अक्खीणं भावियं होइ ।।६३।।

उपशम इन्द्रियनिग्रहे पुरुषव्यापारो, दयानुकंपा, क्षान्तिः क्रोधाद्यनुत्पत्तिरन्यकृतोपद्रवसहनं, एते विरागता च यथा यथा वर्धन्ते—वैराग्यकारणेन वृद्धिं गच्छन्ति यथा यथास्य जीवस्य तथा तथा तस्य जीवस्य मोक्षसौख्यमक्षरं भावितं भवतीति ।।६३।।

धर्मानुप्रेक्षामुपसंहर्तुकामः प्राह—

संसारविसमदुग्गे भवगहणे कह वि मे भमंतेण ।
दिट्ठो जिणवरदिट्ठो जेट्ठो धम्मोत्ति चिंतेज्जो ।।६४।।

संसारविषमदुर्गे भवगहने भवैर्व्याकुले कथमपि भ्रमता पर्यटता मया जिनवरोपदिष्टो ज्येष्ठः प्रधानो धर्मो दृष्टः चिन्तयेदिति ।।६४।।

बोधिदुर्लभतास्वरूपमाह—

संसारह्मि अणंते जीवाणं दुल्लहं मणुस्सत्तं ।
जुगसमिलासंजोगो लवणसमुद्दे जहा चेव ।।६५।।

संसारेऽनंतेऽत्यन्तदीर्घे जीवानां दुर्लभं मनुष्यत्वं मनुष्यजन्म, यथा लवणसमुद्रे युगसमिलासंयोगः । पूर्वसमुद्रभागे युगं निक्षिप्तं, पश्चिमसमुद्रभागे समिला निक्षिप्ता, तस्याः समिलायाः युगविवरे यथा प्रवेशो दुर्लभस्तथा जीवस्य चतुरशीतियोनिलक्षमध्ये मनुष्यत्वं दुर्लभमेवेति ।।६५।।

आगै धर्मभावना का फल है, ताहि कहै है—

अर्थ–उपशम कहिये इंद्रियनिके निग्रह विषैं पुरुष का व्यापार, दया कहिये अनुकंपा, क्षांति कहिये क्रोधादिक का नांही उपजनां, औरनि करि कीया उपसर्ग का सहनां । बहुरि वैराग्यभाव यह समस्त जैसैं जैसैं वैराग्य कारणकरि वृद्धि कूं प्राप्त होय जा जीवकैं, तैसैं तैसैं तिस जीवकैं अविनश्वर अैसा मोक्ष का सुख सो अनुभव गोचर होय है ।।६३।।

आगै धर्मानुप्रेक्षा कूं संकोचवे की है वांछा जाकैं, अैसा आचार्य कहै है—

अर्थ–पंचपरावर्तन रूप संसार ताकरि विषम है दुष्टमार्ग जाका अैसा भव-वन विषैं भ्रमण करता जो मैं सो बड़ा कष्टकरि जिनेश्वर-देवकरि उपदेश्या अैसा महान् धर्म पाया–अैसे चिंतवन करैं ।।६४।।

आगै बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–अनंत अैसा संसार विषैं जीवनि कैं मनुष्य जन्म दुर्लभ है–जैसैं लवण समुद्र विषैं युग (जुवां) समिला (सैल) का संजोग दुर्लभ है । पूर्वसमुद्र के भाग विषैं जूड्या डार्या, पश्चिम–समुद्र के भाग विषैं समिल (जुवें) डारी । जैसैं तिस समिला का जुड़े का छिद्र विषैं प्रवेश दुर्लभ है, तैसें जीव कै चौरासी लाख जोणि कै मध्य मनुष्य जनम दुर्लभ है निश्चयकरि ।।६५।।

मनुष्यत्वे लब्धेऽपि यद्दुर्लभं तदाह—

देसकुलजन्म रूवं आऊ आरोग्ग वीरियं विणओ ।
सवणं गहणं मदि धारणा य एदे वि दुल्लहा लोए ।।६६।।

मनुष्यत्वे लब्धेऽप्यतिदुर्लभ आर्यदेशः, मनुष्यत्वं यतो म्लेच्छखंडेषु भोगभूमावपि विद्यते । आर्यदेशे लब्धेऽपि दुर्लभं कुले जन्म, आर्यदेशे भिल्लवर्वरचांडालादिकुलानामपि संभवात् । विशुद्धकुले लब्धेऽप्यतीव दुर्लभं रूपमवयवसंपूर्णता, शुद्धकुलेऽपि यतो विकलांगदर्शनमिति । रूपे लब्ध्वाऽपि दुर्लभं सुष्ठु दीर्घायुश्चिरंजीवित्वं । चिरजीवनादप्यारोग्यं दुर्लभतमः । तस्मादपि श्रवणमार्यादिसंप्राप्तिः । तस्मादपि ग्रहणमवधारणं सुष्ठु न् सुलभं । तस्मादपि पूर्वापरविवेकरूपता मतिः स्मरणादिकमतीव दुर्लभा । ततोऽपि धारणा कालान्तरेऽप्यविस्मरणत्वं दुर्लभा । मनुष्यत्वे लब्धेप्येते सर्वेऽपि क्रमेण दुर्लभा लोके जगतीति ।।६६।।

एतेभ्योऽपि दुर्लभतममाह—

लद्धेसु वि[1] एदेसु य बोधी जिणसासणह्मि ण हु सुलहा ।
कुपहाणमाकुलत्ता जं बलिया रागदोसा य ।।६७।।

लब्धेष्वप्येतेषु मनुष्यादिषु बोधिः सम्यक्त्वं दर्शनविशुद्धिस्तत्कारणे च जिनशासने परमागमे नैव सुलभा न सुखेन लभ्यते । कुतः ? कुपथानामाकुलत्वात् यतः कुत्सितमार्गैर्दुष्टाभिप्रायैराकुलोऽयं भ्रान्तोऽयं लोकः, यस्माच्च रागद्वेषौ बलवन्तौ, अथवा कुपथानामाकुलत्वहेतोर्बलिनौ रागद्वेषौ

आगै मनुष्यजन्म प्राप्त भये हू जो दुर्लभ है, ताहि कहै है–

अर्थ–मनुष्यजन्म प्राप्त भया तौउ आर्यदेश पावनां अतिदुर्लभ है । जातैं मनुष्यपनां है सो म्लेच्छखंडनि विषैं, बहुरि भोगभूमि विषैं हू हैं । बहुरि आर्यदेशहू प्राप्त भया तोउ शुद्ध कुल विषैं जन्म दुर्लभ है । जातैं आर्य देश विषै भील, बर्वर, चांडालादिक कुलनि का संभव है । बहुरि विशुद्ध कुल प्राप्त भये हू रूप कहिये अंग–उपांग की संपूर्णता अत्यंत दुर्लभ है । जातैं शुद्धकुल विषैं हू विकल अंग कै धारक दीखै हैं । रूप हू प्राप्त भये बडा आयु दुर्लभ है । बहुरि घनें काल जीवनै तैहू रोगरहितपनां अति दुर्लभ है । बहुरि नीरोग तातैं वीर्य कहिये सामर्थ्य सो दुर्लभ है । बहुरि वीर्य हूंतै विनय है सो अति दुर्लभ है । तिस विनयतैं हू श्रवण कहिये आचार्यादिकनि की प्राप्ति दुर्लभ है। तिस आचार्यादिकनि की प्राप्ति तैं ग्रहणं कहिये उपदेश का अंगीकार करणां दुर्लभ है । तिस ग्रहण हूतैं मति कहियै पूर्वापर का विवेक सहित चिंतवन अत्यंत दुर्लभ है, तिस मतितैं धारणा कहिये कालांतर विषैं हू विस्मरण नांही होना, मनुष्य जनम प्राप्त हौतैं हू यह पूर्वोक्त सर्व ही जगत विषैं अनुक्रमकरि दुर्लभ है ।।६६।।

आगै इनहूतैं अतिदुर्लभ है, ताहि कहै है—

अर्थ–यह पूर्वोक्त मनुष्यजन्मकूं आदि दे प्राप्त होतैं जिनशासन जो परमागम ता विषैं बोधि कहिये सम्यग्दर्शन की विशुद्धि, बहुरि ताका कारण सुखकरि नांही पाईये है । काहैं तैं ? जातैं दुष्ट अभिप्रायकरि आकुल, भ्रम सहित यह लोक है जातैं रागद्वेष बलवान है । अथवा

१. ग प्रति में- य ।

यत इति ।।६७।।

एवं बोधिदुर्लभत्वं[1] विज्ञाय तदर्थपरिणामं[2] कर्तुकामः प्राह—

सेयं भवभयमहणी बोधी[3] गुणवित्थडा मए लद्धा ।
जदि पडिदा ण हु सुलहा तम्हा ण खमो[4] पमादो मे ।।६८।।

सेयं बोधिर्भवभयमथनी संसारभीतिविनाशिनी गुणविस्तरा गुणैर्विस्तीर्णा सर्वगुणाधरा मया लब्धा प्राप्ता, यदि कदाचित्संसारसमुद्रे पतिता प्रभ्रष्टा न खलु नैव स्फुटं पुनः सुलभाऽर्द्धपुद्गलपरावर्त्तनमन्तरेण तस्मात्रैव[5] क्षमो नैव योग्यः प्रमादो मम—बोधिविषये प्रमादकरणं मम नैव युक्तमिति ।।६८।।

बोधिविषये यः प्रमादं करोति तं कुत्सयन्नाह—

दुल्लहलाहं लद्धूण बोधिं[6] जो णरो पमादेज्जो ।
सो पुरिसो कापुरिसो सोयदि कुगदिं गदो संतो ।।६९।।

दुर्लभलाभां बोधिं संसारक्षयकरणसमर्थां यो लब्ध्वा प्राप्य प्रमादयेत् प्रमादं कुर्यात्सः पुरुषः कापुरुषः कुत्सितः पुरुषः शोचति दुःखी भवति कुगतिं नरकादिगतिं गतः सन्निति ।।६९।।

कुमार्गनिकैं आकुलताके हेतु रागद्वेष बलवान् हैं ।।६७।।

आगै बोधि का दुर्लभपनां जानिकरि तिसकै निमित्त परिणाम करिवे के वांछक आचार्य कहै है—

अर्थ–सो यह बोधि जो है सो भवभय मथनीकहिये संसार के भय की नाश करनेंवारी गुणनिकरि विस्तीर्ण सर्वगुणनिकी आधारभूत मैं पाईए जो कदाचित् संसार समुद्र कै विषैं पडी तौ प्रगटपनैं अर्द्धपुद्गलपरावर्तन बिनां, बहुरि सुलभ नांही है । तातैं मोकूं बोधि के विषैं प्रमाद करणां निश्चयकरि जोग्य नांही ।।६८।।

आगैं बोधविषैं जो प्रमाद करै हैं, ताहि निंदितै संतै आचार्य कहै है—

अर्थ–दुर्लभ है लाभ जाका संसार के क्षय करवे विषैं समर्थ अैसा बोधि है ताहि पायकरि जो मनुष्य प्रमाद करै है सो पुरुष कापुरुष है, निंद्य है, नरकादिक गति विषैं प्राप्त भया दुःखी होय है ।।६९।।

आगै बोधि का विकल्प बहुरि ताका फल है, ताहि उपदेश करते आचार्य कहै है–

अर्थ–१. क्षयोपशम, २. विशुद्धि, ३. देशनलब्धि, ४. प्रायोग्यलब्धि—तिनकूं प्राप्त होय, पीछै १. अधःप्रवृत्तिकरण, २. अपूर्वकरण, ३. अनिवृत्तिकरण हैं, तिनहिकरि जीव हैं सो १. उपशम, २. क्षयोपशम, ३. क्षायिक–सम्यक्त रूप बोधि हैं, ताहि प्राप्त होय हैं ।

(१) जिहिकाल विशुद्धिकरि पूर्व संचित कर्म्म के अनुभाग स्पर्द्धक हैं, ते समय–समयप्रति अनंत गुणहीण होय उदीर्णा कूं प्राप्त होय हैं । तिसकाल क्षयोपक्षमलब्धि होय है ।

१. बोधेर्दुल-क० । २. तदर्थाय परि-क० । ३. बोही क० । ४. अ० ब० खमं । ५. तस्मान्न क० । ६. जो बोधिं क० ।

बोधिविकल्पं तत्फलं च प्रतिपादयन्नाह—

उवसमखयमिस्सं वा बोधिं लद्धूण भवियपुंडरिओ ।
तवसंजमसंजुत्तो अक्खयसोक्खं तदो[1] लहदि ।।७०।।

क्षयोपशमविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यलब्धीर्लब्ध्वा पश्चादधःप्रवृत्यपूर्वानिवृत्तिकरणान् कृत्वोपशमक्षयोपशमक्षयरूपां[2] बोधिं लभते जीवः । पूर्वसंचितकर्मणोऽनुभागस्पर्द्धकानि यदा विशुद्ध्या प्रतिसमयमनंतगुणहीनानि भूत्वोदीर्यन्ते तदा क्षयोपशमलब्धिर्भवति । प्रतिसमयमनंतगुणहीनक्रमेणोदीरितानुभागस्पर्द्धकजनितजीवपरिणामः सातादिसुखकर्मबंधनिमित्तोऽसाताद्यसुखकर्मबंधविरुद्धो विशुद्धिलब्धिर्नाम । षडद्रव्यनवपदार्थोपदेशकर्त्राचार्याद्युपलब्धिर्वोपदिष्टार्थग्रहणधारणविचारणशक्तिर्वा देशनालब्धिर्नाम । सर्वकर्मणामुत्कृष्टस्थितिमुत्कृष्टानुभागं च हत्वाऽन्तःकोट्य-कोटीस्थितौ द्विस्थानानुभागस्थानं प्रायोग्यलब्धिर्नाम । तथोपरिस्थिपरिणामैरधःस्थितपरिणामाःसमाना अधःस्थितपरिणामैरुपरिस्थितपरिणामाः समाना भवन्ति यस्मिन्नवस्थाविशेषकालेऽधः-प्रवर्त्तनादधःप्रवृत्तिकरणः । अपूर्वापूर्वशुद्धतराः करणाः परिणामा यस्मिन् कालविशेषे स्युरसावपूर्वकरणः परिणामः । एकसमयप्रवर्त्तमानानां जीवानां परिणामैर्न विद्यते निवृत्तिर्भेदो यत्र सोऽनिवृत्तिकरण इति । एवं क्रियां कृत्वाऽनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभप्रकृतीनां सम्यक्त्वसम्यङ् मिथ्यात्वमिथ्यात्वप्रकृतीनां चोपशमादुपशमसम्यक्त्वबोधिर्भवति । तथा तासामेव सप्तप्रकृतीनां क्षयोपशमात् क्षायोपशमिकसम्यक्त्वबोधिर्भवति । तथा तासामेव सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकसम्यक्त्वं भवति । एवमतिदुर्लभतरां त्रिप्रकारां बोधिं लब्ध्वा भव्यपुण्डरीको भव्योत्तमस्तपसा संयमेन च युक्तोऽक्षयसौख्यं ततो लभते सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तः सिद्धिमधितिष्ठतीति यतो बोध्यां सर्वोऽपि जीवः सिद्धिं लभते ।।७०।।

---

(२) प्रतिसमय अनंतगुणहीन क्रमकरि उदीर्णाकूं प्राप्त भये जे अनुभाग स्पर्द्धक तिनकरि उपज्या जो जीव का परिणाम सातादिक सुख कर्म्मबंध का कारण, असातादिक असुख कर्म्मबंधतैं विरुद्ध अैसी जो विशुद्धि सो लब्धि नाम है ।

(३) षट्द्रव्य, नव पदार्थनिका उपदेश बहुरि उपदेश के कर्ता आचार्यादिक की उपलब्धि कहिये प्राप्ति बहुरि उपदेश्या अर्थ का ग्रहण–धारण विचारण की शक्ति सो देशलब्धि नाम है ।

(४) समस्त कर्म्मनिकी उत्कृष्ट स्थिति बहुरि उत्कृष्ट अनुभाग हैं, ताहि हणिकरि (घटाकर) अंतःकोटा–कोटी स्थिति होतैं द्विस्थान अनुभाग स्थान हैं, सो प्रायोग्य लब्धिनाम है ।

(५) तैसैं उपरि स्थित परिणामनिकरि अधःस्थित परिणाम समान, बहुरि अधःस्थित परिणामनिकरि उपरि स्थित परिणाम समान होय हैं । जिस अवस्था विशेष काल विषैं अधःप्रवर्तनतैं अधःप्रवृत्तिकरण है । अपूर्व कहिये पूर्वैं नांही भये अैसे शुद्धतरकरण कहिये परिणाम, जिस काल विशेष विषै होय सो अपूर्वकरण परिणाम है । एक समय कै विषैं प्रवर्तमान अैसे जे जीव तिनके जे परिणाम तिनिकरि नांही विद्यमान है निवृत्ति कहिये भेद जा विषैं सो अनिवृत्तिकरण हैं । इस प्रकार क्रियाकरि अनंतनुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ प्रकृतिनि के बहुरि सम्यक्त्व, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, मिथ्यात्व, प्रकृतिनि के उपशमतैं उपशम सम्यक्त्व बोधि होय है । तैसैं ही तिन सप्तप्रकृतिनि के क्षयोपशमतैं क्षयोपशम सम्यक्त्व बोधि होय हैं । तैंसे ही तिन सप्त प्रकृतिनि के क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व बोधि होय हैं । या प्रकार अतिदुर्लभतर तीन प्रकार बोधि हैं । ताहि प्राप्त होय भव्यनि विषैं उत्तम तपकरि बहुरि संयमकरि युक्त तातैं अक्षयसुखकूं प्राप्त होय हैं ।।७०।।

---

१. ग० तओ । २. क्षयसम्यक्त्वरूपां क०।

तम्हा अहमवि णिच्चं सद्धासंवेगविरियविणएहिं ।
अत्ताणं तह भावे जह सा बोही हवे सुइरं ।।७१।।

यस्मादेवंविशिष्टा बोधिस्तस्मादहमपि नित्यं सर्वकालं श्रद्धा मानसिक:[१] शासनानुराग:, संवेगो धर्मधर्मफलविषयादनुराग: वीर्यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितशक्ति:, विनयो मनोवाक्कायानामनुद्धतिर्नम्रता तैरात्मानं तथा भावयामि यथाऽसौ बोधिर्भवेत्सुचिरं सर्वकालमिति ।।७१।।

किमर्थं बोधिर्भाव्यत इत्याशंकायामाह—

बोधीय जीवदव्वादियाइं बुज्झइ[२] हु णव वि तच्चाइं ।
गुणसयसहस्सकलियं एवं बोहिं सया झाहि ।।७२।।

यतो बोधिमवाप्य जीवाजीवास्रवपुण्यपापबंधसंवरनिर्जरामोक्षा: पदार्था द्रव्याणि अस्तिकायाश्च तत्त्वानि च बुध्यंते बोध्या वा बुध्यंते ततो गुणशतसहस्र[३] कलितामेवंभूतां बोधिं सदा सर्वकालं ध्याय भावयेति ।।७२।। द्वादशानुप्रेक्षामुपसंहर्तुकाम: प्राह—

दस दो य भावणाओ एवं संखेवदो समुद्दिट्ठा ।
जिणवयणे दिट्ठाओ बुहजणवेरग्ग[४] जणणीओ ।।७३।।

एवं दश द्वे चानुप्रेक्षा भावना: संक्षेपत: समुपदिष्टा: प्रतिपादिता जिनवचने यतो दृष्टा नान्यत्रानेन प्रामाण्यं ख्यापितं तासां स्यात्, बुधजनानां वैराग्यस्य जनन्यो वैराग्यकारिण्योऽनेन रागाभावश्च ख्यापित: श्रुतस्य भवतीति ।।७३।।

भावार्थ–समस्त द्वन्दनिकरि रहित भया मोक्षकूं प्राप्त होय हैं । जातैं बोधिकरि सर्व हू भव्यजीव सिद्धि कूं पावै है ।

अर्थ–जातैं ऐसी बोधि है तातैं हमहू सर्वकाल श्रद्धा जो मनकरि शासन विषैं अनुराग, संवेग जो धर्म, अर धर्म के फल विषैं अनुराग, वीर्य जो वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमतैं उपजी शक्ति, विनय जो मन, वचन, काय की अनुद्धति गति कहिये नम्रता, तिनकरि आत्मा कूं तैसैं भावहुं जैसैं सर्वकाल यह बोधि होय ।।७१।।

आगै किस निमित्त बोधि भायिये है ? ऐसी आशंका होतैं आचार्य कहै है–

अर्थ–जातैं बोधिकूं प्राप्त होय अथवा बोधिकरिकैं १. जीव, २. अजीव, ३. आश्रव, ४. पुण्य, ५. पाप, ६. बंध, ७. संवर, ८. निर्जरा, ९. मोक्ष–यह नव पदार्थ, षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय, बहुरि सप्ततत्व जे हैं ते बुध्यंते कहिये जानिये हैं । तातैं गुणनि के शतसहस्रनिकरि कलितां कहिये युक्त, ऐसी बोधि है, ताहि सर्वकाल ध्याय ।।७२।।

आगैं बारह अनुप्रेक्षा के संकोच करने के अभिलाषी आचार्य कहै हैं–

अर्थ–मैं वट्टकेर नाम आचार्य संक्षेपतैं या प्रकार बारह भावना कही । कैसें हैं भावना ? जिनवचन विषैं दृष्ट कहिये देखी, अन्यत्र नांही देखी–इस विशेषणकरि तिन भावनाकै प्रमाणपणां कह्या । बहुरि कैसे हैं ? बुधजन जे पंडित तिनकै वैराग्य की उपजावां वाली है । इस विशेषणकरि आगम के राग का अभाव प्रतिपादन कीया ।।७३।।

---

१. मानस: क० । २. ग० बुज्झदि । ३. शतसहस्रै: कलितां युक्ता क० । ४. बुधजन-वैराग्य क० ।

अनुप्रेक्षा-भावने कारणमाह—

अणुवेक्खाहिं एवं जो अत्ताणं सदा विभावेदि ।
सो विगदसव्वकम्मो विमलो विमलालयं लहदि ।।७४।।

एवमनुप्रेक्षाभिरात्मानं यः सदा भावयेद्योजयेत्सः पुरुषो विगतसर्वकर्मा विमलो भूत्वा विमलालयं मोक्षस्थानं लभते प्राप्नोतीति ।।७४।।

द्वादशानुप्रेक्षावसाने कृतकृत्य आचार्यः परिणामशुद्धिमभिदधन्मंगलं फलं वा वाञ्छँश्चाह—

झाणेहिं[1] खवियकम्मा मोक्खग्गलमोडया विगयमोहा ।
ते मे तमरयमहणा तारंतु भवाहि लहुमेव ।।७५।।

य इमा अनुप्रेक्षा भावयित्वा सिद्धिं गतास्ते ध्यानैः क्षपितकर्माणो मोक्षार्गलच्छेदका विगतचारित्रमोहास्तमोरजोमथना मिथ्यात्वमोहनीयज्ञानावरणादिविनाशकास्तारयन्तु भवात्संसाराच्छीघ्रमेवास्मानिति ।।७५।।

आगैं अनुप्रेक्षा के भायवे विषैं कारण है, ताहि कहै हैं–

अर्थ–या प्रकार अनुप्रेक्षानिकरि जो पुरुष सदाकाल आत्मा है ताहि भावै है, सो पुरुष, समाप्त हो गये हैं समस्तकर्म्म जाके अैसा निर्मल भया संता विमलालय जो मोक्षस्थान, ताहि प्राप्त होय है ।।७४।।

आगैं द्वादशानुप्रेक्षा के अंत विषैं कृतकृत्य अैसै आचार्य हैं सो परिणामनि की शुद्धता है, ताहि वधावते मंगल बहुरि फलकूं वांछते संतै कहै है–

अर्थ—जे इन अनुप्रेक्षा कूं भाय मोक्षकूं प्राप्त भये ते ध्यानकरि क्षेप्या है कर्म्म जिननैं, मोक्षकी आर्गल (सांकल) के छेदक, गया है चारित्रमोह जिनिका, तम कहिये मिथ्यात्व मोहनीय, रज कहिये ज्ञानावरणादिक तिन के विनाशक अैसै सिद्ध हमैं संसारतैं शीघ्र ही तारउ ।।७५।।

---

१. अ प्रति में 'ज्जाणेहिं' , ब प्रति में 'जाणेहिं' ।

पुनरप्यनुप्रेक्षां याचमानः प्राह—

जह मज्झ तह्मि काले विमला अणुपेहणा भवेजण्हू ।
तह सव्वलोगणाहा विमलगदिगदा पसीदंतु ।।७६।।[१]

यथा येन प्रकारेण मम तस्मिन्नंतकाले विमला अनुप्रेक्षा द्वादशप्रकारा भवेयुस्तथा ते सर्वलोकनाथा विमलगतिं गताः प्रसीदन्तु प्रसन्ना भवन्तु द्वादशानुप्रेक्षाभावनां मम दिशन्त्विति ।।७६।।

इति श्रीमद्वट्टकेराचार्यवर्यविनिर्मितमूलचारे वसुनन्द्याचार्यप्रणीतटीकासहिते
द्वादशानुप्रेक्षकनामाऽष्टमः परिच्छेदः । समाप्तः ।

बहुरि अनुप्रेक्षा कूं जाचते आचार्य कहै हैं–

अर्थ–जिस प्रकारकरि तिस अंत समय विषै द्वादश हैं भेद जिनके अैसी अनुप्रेक्षा निर्मल होय तैंसी विमलगति कूं प्राप्त भये सर्वलोकनाथ प्रसन्न होहु, द्वादश अनुप्रेक्षा की भावना है ताहि हमै देहु ।

इहां पर्यंत गाथासूत्र समस्त सात सै छयासठि (७६६) भये–अैसै संख्या जाननी ।।

अैसे आचार्य वट्टकेर स्वामी विरचित मूलाचारनाम प्राकृतग्रंथ की वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ति विरचित आचारवृत्तिनाम संस्कृत टीका कै अनुसार, यह देश भाषामय वचनिका विषैं द्वादशानुप्रेक्षिक है नाम जाका अैसा आठवां अधिकार समाप्त मया ।

१. ग० प्रति के इस अध्याय में कुल ९० गाथायें हैं ।

नवम अनगारभावनाधिकारः

अनगारभावनाख्यं नवममधिकारं [1]व्याख्यातुकामस्तावदादौ शुभपरिणामनिमित्तं मंगलमाह—

वंदित्तु जिणवराणं तिहुयणजयमंगलोववेदाणं ।
कंचणपियंगुविद्दुम[2]घणकुंदमुणालवण्णाणं ।।१।।

जिनवरान् वंदित्वा, किंविशिष्टान् ? त्रिभुवने या जयश्रीर्यच्च मंगलं सर्वकर्मदहनसमर्थं पुण्यं ताभ्यामुपेतास्तत्र स्थितास्ताँस्त्रिभुवनजयमंगलोपेतान् प्रकृष्टश्रिया युक्तान् सर्वकल्याणभाजनाँश्च । पुनरपि किंविशिष्टान् ? कांचनं सर्वाधिकं सुवर्णं, प्रियंगुः शिरीषपुष्परूपद्रव्यकान्तिः विद्रुमः प्रवालद्रव्यं सुरमणीयरक्तभावद्रव्यं घनः सुष्ठुः रम्यनवजलधरः, कुन्दो रमणीयपुष्पविशेषः मृणालं सुरम्यपद्मकोमलनालं[3] एतेषां वर्णवद्वर्णं येषां ते कांचनप्रियंगुप्रवालघनकुन्दमृणालवर्णास्तान् कांचनप्रियंगुप्रवालघनकुन्दमृणालवर्णान् । अर्हतामुपादानाय वर्णविशेषणमुपात्तं, नामस्थापनाद्रव्यजिनपरिहाराय भावजिनोपादानाय चावशेषणम् । उत्तरसूत्रे वक्ष्यामीति क्रिया तिष्ठति तथा सह संबंधः क्रियासापेक्षं नमस्कारकरणं नित्यक्षणिकयोगचार्वाकमीमासकैकान्तनिराकरणार्थं चेति ।

आगैं अनगारभाव है नाम जाका ऐसा नवम अधिकार है ताहि व्याख्यान करवे के अभिलाषी प्रथम आदि विषैं शुभ परिणामनि कै निमित्त मंगलाचरण है, ताहि कहै है—

अर्थ–जिनवर हैं तिनहि वंदिकरि, कैसे हैं जिनवर ? तीनभुवन विषैं जो जय-लक्ष्मी, बहुरि जो मंगल कहिये सर्वकर्म के दहन विषैं समर्थ ऐसा पुण्य तिनकरि संयुक्त ।

भावार्थ–सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मीकरि युक्त, बहुरि यो सर्वकल्याण के भाजन, कांचन कहिये सर्वतैं अधिक ऐसा सुवर्ण, प्रियंगु कहिये सरस्यूं का पुष्प रूप द्रव्य कांति, विद्रुम कहिये मूंगा, भला रमणीक रक्त-स्वभाव द्रव्य, घन कहिये-भला रमणीक नवीन मेघ, कुंद कहिये-रमणीक पुष्प विशेष, मृणाल कहिये भला रमणीक कमल का कोमल नालि-इन सारिसा है वर्ण जिनका । इहां अर्हंतनिकै ग्रहण निमित्त वर्ण का विशेषण कीया है । १. नाम जिन, २. स्थापना जिन, ३. द्रव्य जिन—इनका परिहार कै अर्थि, बहुरि भावजिन के ग्रहण अर्थि अवशेष विशेषण हैं उत्तरसूत्र विषैं 'वक्ष्यामि' ऐसा क्रिया जो तिष्ठै है, तिसकरि सहित संबंध इस गाथा के पद का करणां । क्रिया की अपेक्षा सहित नमस्कार करणा है । बहुरि नित्य क्षणिक, योग, चार्वाक, मीमांसक इनका जो एकांत तिनका निराकरण कै अर्थि है ।।१।।

---

१. फलटन से प्रकाशित मूलाचार में अनगार भावना का क्रम आठवाँ और द्वादशानुप्रेक्षा अधिकार का क्रम नवम है ।
२. अ० ब० प्रति में 'लिद्दुम' । ३. कोमल-पद्नालं क०

अनगारभावनासूत्रार्थं प्रतिज्ञामाह—

अणयारमहरिसीणं णाइंदणरिंदइंदमहिदाणं ।
वोच्छामि विविहसारं भावणसुत्तं गुणमहंतं ।।२।।

न विद्यतेऽगारं गृहं स्त्र्यादिकं येषां तेऽनगारास्तेषामनगाराणां महान्तश्च ते ऋषयश्च महर्षयः सम्यगृद्धिप्राप्तास्तेषां महर्षीणां, नागेन्द्रनरेन्द्रेन्द्रमहितानां श्रीपार्श्वनाथसंजयंताद्युपसर्गनिवारणेन प्राधान्यान्नागेन्द्रस्य पूर्वनिपातोऽथवा बहूनां नियमो नास्ति, मोक्षार्हत्वात्तदनन्तरं नरेन्द्रस्य ग्रहणं, पश्चाद्-व्यन्तरादीनां ग्रहणमेतैर्ये पूजितास्तेषामनगाराणां भावनानिमित्तं विविधसारं सर्वशास्त्रसारभूतं सूत्रं गुणैर्महद्वक्ष्यामि, अर्हतः प्रणम्यानगारभावनासूत्र वक्ष्यामीति सम्बन्धः ।।२।।

स्वकृतप्रतिज्ञानिर्वहणाय दश संग्रहसूत्राण्याह—

लिंगं वदं च सुद्धी वसदिविहारं च भिक्ख णाणं च ।
उज्झणसुद्धी य पुणो वक्कं च तवं तधा झाणं ।।३।।

लिंगं निर्ग्रन्थरूपता शरीरस्य सर्वसंस्काराभावोऽचेलकत्वलोचप्रतिलेखनग्रहणदर्शनज्ञानचरित्रतपोभावश्च, व्रतान्यहिंसादीनि । शुद्धिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, लिंगस्य शुद्धिर्लिंगशुद्धिर्लिंगानुरूपाचरणं व्रतानां शुद्धिर्व्रतशुद्धिर्निरतीचारता । अत्र प्राकृतलक्षणेन षष्ठ्यर्थे प्रथमानिर्देशः कृतः । वसतिः स्त्रीपशुपाषंडकाभावोपलक्षित-प्रदेशः परमवैराग्यकारणस्थानं । विहारोऽनियतवासो दर्शनादिनिर्मलीकरणनिमित्तं सर्वदेशविहरणं । भिक्षा चतुर्विधाहारः ।

आगै अनगार भावना कै सूत्र के अर्थ की प्रतिज्ञा है, ताहि कहै है—

अर्थ–नहीं विद्यमान है आगार कहिये घर, स्त्री आदि जिनकै ते अनगार कहिये । महान् जे ऋषि ते महर्षि कहिये । भलै प्रकार ऋद्धि कूं प्राप्त भये, नागेन्द्र, नरेन्द्र, इंद्र इनकरि पूजित अैसे । इहां नागेंद्र शब्द का पूर्व ग्रहण है सो श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर अर संजयन्त आदि मुनि के उपसर्ग के निवारवे-करि प्रधानता है, तिस हेतुतैं है ।

अथवा बहुतनिको नियम नांही है । मोक्ष की योग्यतातैं ताकैं अनन्तर नरेन्द्र का ग्रहण है, पीछैं व्यंतरनिके इंद्रादिक हैं, तिनिका ग्रहण है । इनकरि पूजित अैसे अनगार हैं । तिनकी भावना-निमित्त विविधसारं कहिये सर्वशास्त्र विषैं सारभूत गुणनि करि महान् अैसा सूत्र है, ताहि कहूंगा । अर्हंतनि कूं नमस्कारकरि अनगार भावना सूत्र है, ताहि कहूंगा । इहां अैसा संबंध जांनना ।।२।।

आगैं अपनी करी प्रतिज्ञा के निर्वाह निमित्त दस संग्रहसूत्र हैं, तिनहि कहैं—

अर्थ–लिंग कहिये निर्ग्रंथ रूप शरीर कै मध्य सर्व संस्कार का अभाव, बहुरि अचेलकत्व कहिये वस्त्रादिक का त्याग, लोच, पीछी का राखणा, दर्शन, ज्ञान, चारित्र अर तप इन विषैं भाव, व्रतानि कहिये अहिंसादिक, शुद्धि शब्द का प्रत्येक संबंध करणां । लिंग की शुद्धि सो शुद्ध लिंग कै अनुकूल आचरण, व्रतनि की शुद्धि सो व्रत शुद्धिं-निरतिचारपनां । इहां प्राकृत के लक्षण-करि षष्ठी का अर्थ विषैं प्रथमा का निर्देश कीया है । वसति कहिये स्त्री, पशु, नपुंसक, इनके अभावयुक्त स्थान, परमवैराग्य का कारण-अैसा स्थान, विहार कहिये नियम स्वरूप वास नांहीं, सम्यक्दर्शनादिक के निर्मल करवे निमित्त सर्वदेश विषैं विहार । भिक्षा कहिये च्यार प्रकार आहार, बहुरि ज्ञान कहिये जैसैं

ज्ञानं यथावस्थितवस्त्ववगमो मत्यादिकं । उज्झनं परित्यागः शरीराद्यममत्वं । शुद्धिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । वसतिशुद्धिर्विहारशुद्धिर्भिक्षाशुद्धिर्ज्ञानशुद्धिरुज्झनशुद्धिः। अत्रापि प्राकृतलक्षणे षष्ठ्यर्थे प्रथमा । पुनरपि च वाक्यं स्त्रीकथादिविरहितवचनं । तपः पूर्वसंचितकर्ममलशोधनसमर्थानुष्ठानं । तथा ध्यानं शोभनविधानेनैकाग्रचतिन्तानिरोधनं । अत्रापि शुद्धिर्द्रष्टव्या चशब्दात्सर्वेऽपि स्वगतसर्वभेदसंग्रहणार्था द्रष्टव्या इति ।।३।।

एतेषां सूत्राणां पाठे प्रयोजनमाह—

एदमणयारसुत्त दसविध[1]पद विणयअत्थसंजुत्तं ।
जो पढइ भत्तिजुत्तो तस्स पणस्संति पावाइं ।।४।।

एतान्यनगारसूत्राणि दशाविधपदानि दशप्रकाराधिकारनिबद्धानि नवैकादशसंख्यानि न भवन्ति, विनयार्थसंयुक्तानि विनयप्रतिपादकानि सूक्ष्मार्थसंयुक्तानि च यः पठति भक्तियुक्तस्तस्य प्रणश्यन्ति पापानि दुरितानीति ।। ४ ।।

पुनरपि सूत्राणां स्तवनमाह[2]—

णिस्सेसदेसिदमिणं सुत्तं धीरजणबहुमदमुदारं ।
अणगार[3] भावणमिणं सुसमणपरिकित्तणं सुणह ।।५।।

निःशेषदर्शकानीमानि सूत्राणि सर्वशोभनाचारसिद्धांतार्थप्रतिपादकान्येतानि सूत्रपदानि, धीर[4] जनानां तीर्थंकरगणधरदेवानां बहुमतानि सुष्ठु मतानि बाहुल्येन वाभिमतानि, उदाराणि स्वर्गापवर्गफलदायकानि,अनगारभावनानीमानि शोभनश्रमणानां परिकीर्तनानि सुसंयतजनकीर्तनख्यापकानि शृणुत हे साधुजनाः! बुध्यध्वमिति ।। ५ ।।

अवस्थित वस्तु होय ताकूं तैसें ही जाननां, सो मति आदिक ज्ञान हैं । उज्झन कहिये त्याग, सो शरीरादिक विषैं निर्ममत्व । शुद्धि शब्द प्रत्येक संबंध करणां । वसति शुद्धि, भिक्षाशुद्धि, ज्ञानशुद्धि, उज्झन शुद्धि । बहुरि वाक्य कहियै स्त्रीकथादि रहित वचन, तप कहिये पूर्व संचित कर्ममल का सोधनें कूं समर्थ आचरण, तैसे ध्यान कहिये भले विधानकरि एकाग्र चित्त का थामणां । इहां हू शुद्धि, शब्द जाननां। ताकरि वाक्यशुद्धि तपःशुद्धि, ध्यानशुद्धि ''च'' शब्दतै सर्व ही स्वगत जे सर्व भेद तिनिके ग्रहण के अर्थ जानने ।।३।।

आगैं इन सूत्रनि का पाठ विषैं प्रयोजन है, ताहि कहै है—

अर्थ–यह अनगार सूत्र दश प्रकार अधिकारनिकरि संयुक्त, भावार्थ—नव (९) अर एकादश (११) है संख्या जिनकी अैसे नांहीं हैं, दश ही पद हैं । विनयकै प्रतिपादक बहुरि सूक्ष्मअर्थकरि संयुक्त, जो भक्ति सहित पढै हैं, ताकै पाप नष्ट होय है ।।४।।

वहुरि सूत्रनि का सूचन है, ताहि कहै है—

अर्थ–निःशेषदर्शकानि कहिये समस्त शोभन आचार-सिद्धान्त का अर्थ ताके प्रतिपादक यह सूत्रपद, धीरजन बहुमतानि कहिये तीर्थंकर गणधरदेवनि कै बहुत मान्य, सुष्ठु मान्य, वा वाहुल्य ताकरि मान्य, उदाराणि कहिये स्वर्ग, मोक्षफल के दायक, भले मुनीश्वरनिकी कीर्ति के करणहारें, अैसे यह अनगार भावना है, तिनहि भो साधुजन हो ! सुनहु ।।५।।

---

१. दशविह क० । २. सूचनमाह क० । ३. अणयार क० । ४. वीर द० क० ।

न केवलमेतानि वक्ष्ये महर्षीणां गुणांश्च वक्ष्यामीत्याह—

णिग्गंथमहरिसीणं अणयारचरित्तजुत्तिगुत्ताणं ।
णिच्छिदमहातवाणं वोच्छामि गुणे गुणधराणं ।।६।।

निर्ग्रन्थमहर्षीणां सर्वग्रन्थविमुक्तयतीनां, अनगारचरित्रयुक्तिगुप्तानां अनगाराणां योऽयं चारित्रयोगस्तेन गुप्तानां संवृतानां, निश्चिन्तमहातपसां द्वादशविधतपस्युद्युक्तानां गुणधराणां गुणान् वक्ष्यामीति ।।६।।

तावल्लिंगशुद्धिं विवेचयन्नाह—

चलचवलजीविदमिणं णाऊण माणुसत्तणमसारं ।
णिव्विण्णकामभोगा धम्मम्मि उवट्ठिदमदीया ।।७।।

चलमस्थिरं प्रतिसमयं विन्श्वरं, चपलं सोपघातं (विद्युत्स्फुरणमिवाविदितस्वरूपं, जीवितं प्राणधारणं चलचपलजीवितं)[१] आवीचीतद्भवस्वरूपेणायु:क्षयरूपमिदं ज्ञात्वा मनुष्यत्वं मनुष्यजन्मस्वरूपं, असारं परमार्थरहितं[२] निर्विण्णकामभोगा: स्वेष्टवस्तुसमीहा काम उपभोग: स्त्र्यादिक:, भोग: सकृत्सेवितस्य पुनरसेवनं[३] तांबूलकुंकुमादि तद्विषयो निर्वेदोऽनभिलाषो येषां ते निर्विण्णाकामभोगा:, धर्मे चारित्रे नैर्ग्रन्थ्यादिरूप उपस्थितमतिका गृहीताचेलस्वरूपा इत्यर्थ:, तात्पर्येण नैर्ग्रन्थ्यस्वरूपप्रतिपादनमेतदिति ।।७।।

आगै केवल यह अनगार भावना है, तिनहिं नांहि कहूंगा, महर्षीनि के गुण हैं तिननै हू कहूंगा—ऐसें प्रतिज्ञा करै हैं—

अर्थ–समस्त परिग्रह रहित ऐसे जती-अनगारनिका जो चारित्रयोग ताकरि गुप्त कहिये-वेष्टित, निश्चित है महान् तप जिनकै, बारह प्रकार तप विषैं उद्यमी गुण के धारक तिनके गुण हैं, तिनहि कहूंगा ।।६।।

प्रथम लिंग शुद्धि हैं ताहि विचारते आचार्य कहै है—

अर्थ–चल कहिये अथिर, समय-प्रति विनश्वर, चपल कहिये नाश सहित चंचल विजुरी की चमक ज्यौं अप्रगट है स्वरूप जाका ऐसा यह, जीवित कहिये प्राणधारण, जलतरंगवत् आयु क्षणभंगुर स्वरूप जाणि, बहुरि मनुष्यजन्म का स्वरूप असारं कहिये परमार्थ रहित जाणि, अपनो इष्ट वस्तु की वांछा ताकूं, काम कहिये सो स्त्री कूं आदि दे, उपभोग है एक वार सेया ताका वहुरि नांही सेवना । तांबुल, कुंकुमादिक तांबूल भोग है, तिन विषैं नांहि है अभिलाष जिनकै, वहुरि धर्म जो चारित्र निर्ग्रंथादि स्वरूप ता विषैं मति है जिनकी ।

भावार्थ–ग्रहण किया है वस्त्रादिक रहित नग्न स्वरूप जिननें । यहाँ तात्पर्यकरि निर्ग्रन्थ स्वरूप का प्रतिपादन है ।।७।।

१. कोष्ठकान्तर्गत: पाठ: द प्रतौ नास्ति विद्युत्स्फुरणवदेवविदित स्वरूपं क० ।
२. अपरमार्थरूपं द० ३. पुनरप्यसेवनं क० । ४. धीर क० । ५. रूप्यसुवर्णादिकं क० ।

पुनरपि तत्स्वरूपमाह—

णिम्मालियसुमिणाविय धणकणयसमिद्धबंधवजणं च ।
पयहंति वीर[4]पुरिसा विरत्तकामा गिहावासे ।।८।।

निर्माल्यसुमनस इवोपभोगितपुष्पनिचयमिव धनं गोऽश्वमहिष्यादिकं कनकं सुवर्णादिकं[5] ताभ्यां समृद्धमाढ्यं धनकनकसमृद्धं बांधवजनं स्वजनपरिजनादिकं परित्यजन्ति गृहवासविषये विरक्तचित्ता: सन्त: । यथा शरीरसंस्पृष्टं पुष्पादिकमकिंचित्करं त्यज्यते तथा धनादिसमृद्धमपि बंधुजनं धनादिकं चाथवा गृहवासं चेति संबंध: परित्यजन्तीति ।।८।।

एवं नैर्ग्रन्थ्यं गृहीत्वा तद्विषयां शुद्धिमाह—

जम्मणमरणुव्विग्गा भीदा संसारवासमसुभस्स ।
रोचंति जिणवरमदं पावयणं वड्ढमाणस्स ।।९।।

जन्ममरणेभ्य: सुष्ठूद्विग्ना निर्विण्णा भवत्रस्तहृदया: संसारवासे यदशुभं दु:खं तस्माच्च भीता: सन्त: पुनर्ये रोचंते समिच्छन्ति जिनवरमतं प्रवचनं, रोचंते वा मतं मुनिभ्यो वृषभादीनां जिनवराणां, मतं वर्द्धमानभट्टारकस्य प्रवचनं द्वादशांगचतुर्दशपूर्वस्वरूपं समिच्छंतीति ।। ९ ।।

तथा—

पवरवरधम्मतित्थं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स ।
तिविहेण सद्दहंति य णत्थि इदो उत्तरं अण्णं ।।१०।।

आगै वहुरि ताका स्वरूप कहै है—

अर्थ–निर्माल्य सुमनस इव कहिये भोग में आये अैसे जे पुष्प तिनका समूह की ज्यों, धन कहिये गाय, घोंड़ा, भैंसि इनकूं आदि दे, कनक कहिये रूपा, सोना इनकूं आदि दे, तिनकरि समृद्ध कहिये आढ्य अैसा, बांधवजन कहिये स्वजन परिजनादिक ताहि गृहवास विषैं विरक्त है चित्त जिनको अैसे हुये संते वीर पुरूष हैं ते त्यजै हैं । याका संक्षेप अैसे जाननां—जैसैं शरीर का स्पर्शित पुष्पादिक किंचित् कार्यकारी नांही (आकिंचित्कर) सो त्यजे है, तैसे धनादिक बहुरि बंधुजन त्यजये हैं अथवा गृहवास त्यजै हैं अैसा संबंध हू जाननां ।।८।।

आगै अैसें निर्ग्रंथ स्वरूप है, ताहि ग्रहणकरि तिस संबंधी शुद्धि है, ताहि कहै है—

अर्थ–जन्म-मरणतैं उद्विग्न कहिये कंपायमान है हृदय जिनका, संसार-वास विषैं जो अशुभ कहतां दु:ख तातैं भययुक्त होते संते मुनि हैं ते जिनवरकरि कह्या अैसा प्रवचन है, ताहि इच्छै है ।

अथवा मुनिनितैं वृषभादिक जिनवरनि कौ मत है ताहि, बहुरि वर्द्धमानभट्टारक को द्वादशांग, चतुर्दश पूर्व स्वरूप प्रवचन है, ताहि इच्छै है ।।९।।

तैसें और भी कहै है—

अर्थ–जिनवर अैसा जो वृषभदेव स्वामी बहुरि वर्द्धमान स्वामी आदि-अंत के ग्रहणकरि समस्त चतुर्विंशति तीर्थंकर जाननैं । इनका

प्रवराणां वरं प्रवरवरं श्रेष्ठादपि श्रेष्ठं धर्मतीर्थं जिरवरवृषभस्य वर्द्धमानस्य चतुर्विंशतितीर्थंकरस्य त्रिप्रकारेण मनोवचनकायशुद्ध्या श्रद्दधति भावयन्ति । इत ऊर्ध्वं नास्त्यन्यदिति कृत्वास्माद्वर्द्धमानतीर्थंकरतीर्थादन्यत्तीर्थं नास्ति यतोऽनया लिंगशुद्ध्या सम्यदर्शनशुद्धिर्ज्ञानशुद्धिश्च व्याख्यातेति ।।१०।।

तप:शुद्धिस्वरूपं निरूपयन्नाह—

उच्छाहणिच्छिदमदी ववसिदववसायबद्धकच्छा य ।
भावाणुरायरत्ता जिणपण्णत्तम्मि धम्मम्मि ।।११।।

उत्साह उद्योगो द्वादशविधे तपसि तन्निष्ठाता तस्मिन्नितान्तं निश्चितमतयस्तत्र कृतादरा:[1] व्यवसितव्यवसाया: कृतपुरुषकारा:, बद्धकक्षा: सुसंयमितात्मन: कर्मनिर्मूलनसंस्थापितचेतोवृत्तय:, भावानुरागरक्ता: परमार्थभूतो योऽयमहुरागोऽर्हद्भक्तिस्तेन रक्ता भाविता:, अथवा भावविषय: पदार्थविषयोऽनुरागो दर्शनं ज्ञानं च ताभ्यां रक्ता: सम्यगेकीभूता:, जिनप्रज्ञप्ते धर्मे भावानुरागरक्तास्तस्मिन् बद्धकक्षाश्चेति ।। ११ ।।

चारित्रशुद्धिस्वरूपमाह—

धम्ममणुत्तरमिमं कम्ममलपडलपाडयं जिणक्खादं ।
संवेगजायसड्ढा गिण्हंति महव्वदा पंच ।।१२।।

धर्ममुत्तमक्षमादिलक्षणमनुत्तरमद्वितीयमिमं कर्ममलपटलपाटनसमर्थं जिनाख्यातं गृह्णन्ति महाव्रतानि च संवेगजातहर्षा:, अथवा धर्मोयं कृत्वा गृह्णन्ति महाव्रतानि पंच । अनेन तात्पर्येण लिंगशुद्धिर्व्याख्याता वेदितव्या ।।१२।।

प्रवरवर कहिये श्रेष्ठ हूं तैं श्रेष्ठ, अैसा धर्मरूप तीर्थ है, ताहि त्रिप्रकारेण कहिये मन, वचन, काय की शुद्धताकरि श्रद्धा सहित जे भावै है, इस तीर्थतैं अधिक अन्य तीर्थ नांही है, इस लिंगशुद्ध करि सम्यग्दर्शन की शुद्धि, बहुरि ज्ञान की शुद्धि व्याख्यान करी ।।१०।।

आगै तप:शुद्धि का स्वरूप है, ताहि निरूपण करते संते आचार्य कहै है—

अर्थ–उत्साह जो बारह प्रकार के तप विषैं उद्यम कहिये तल्लीनता ताकै विषैं निरन्तर निश्चित है बुद्धि जिनकी ।

भावार्थ–तप विषैं धार्या है अवतार जिननैं व्यवसित व्यवसाय कहियै कीया है पुरुषार्थ जिननैं, बद्धकक्षा कहिये भलै प्रकार संयम सहित है आत्मा जिनिका, कर्म के निर्मूल करबै विषैं स्थायी है चित्तवृत्ति जिननैं, भावानुरागरक्ता कहिये परमार्थभूत जो, अनुराग कहिये अर्हंतादिक की भक्ति ताकरि, अनुरागी अथवा भाव जो पदार्थ ताके विषैं अनुराग जो दर्शन, ज्ञान तिनकरि भलै प्रकार एकीभूत । इहां संक्षेप-अैसा जिनकथित धर्म विषैं भावानुरागरक्ता बहुरि बद्धकक्ष अैसे मुनि हैं, तिनकै लिंगशुद्धि है ।।११।।

आगै चारित्र शुद्धि का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–अद्वितीय कर्म्ममल पटल के विनाश करवे विषै समर्थ जिनेश्वरकरि कथित अैसा यह क्षमादिक है लक्षण जाका—अैसा धर्म है ताहि, बहुरि पंच महाव्रत है तिनहि संवेग जो धर्म का फल ता विषैं उपज्या है हर्ष जिनकै अैसै पुरुष हैं ते ग्रहण करै है । अथवा दशलक्षणीक धर्मकरि पंचमहाव्रत है तिनहि ग्रहण करै है । इस तात्पर्यकरि लिंगशुद्धि का व्याख्यान जाणणां ।।१२।।

१. कृतावतारा द० ।

कानि तानि महाव्रतानीत्याशंकायां व्रतशुद्धिं च निरूपयंस्तावद्व्रतान्याह—

सच्चवयणं अहिंसा अदत्तपरिवज्जणं च रोचंति ।
तह बंभचेरगुत्ती परिग्गहादो विमुत्तिं च ।।१३।।

सत्यवचनं हिसाविरतिं अदत्तपरिवर्जनं रोचन्ते सम्यगभ्युपगच्छन्ति तथा ब्रह्मचर्यगुप्ति परिग्रहाद्विमुक्तिं च लिंगग्रहणोत्तरकालं प्रयच्छन्तीति ।।१३।।

यद्यपि व्यतिरेकमुखेनावगत: प्राणिवधादिपरिहारस्तथापि पर्यायार्थिकशिष्यप्रतिबोधनायान्वयमाह—

पाणिवह मुसावादं अदत्त मेहुण परिग्गहं चेव ।
तिविहेण पडिक्कंते जावज्जीवं दिढधिदीया ।।१४।।

प्रतिक्रामंति परित्यजंतीति पृथगभिसंबध्यते, प्राणिवधं परिक्रामन्ति परिहरन्तीत्यर्थ:, तथा मृषावादं, अदत्तग्रहणं, मैथुनप्रसंगं, परिग्रहं च त्यजन्ति मनोवचनकायैर्यावज्जीवं मरणान्तं दृढ़धृतयो मुनय:—स्थिरमतियुक्ता: साधव: प्राणिवधदिकं सर्वकालं परिहरन्तीति ।।१४।।

व्रतविषयां शुद्धिमाह—

ते सव्वगंथमुक्का अममा अपरिग्गहा जहाजादा ।
वोसट्टचत्तदेहा जिणवरधम्मं समं णेंति ।।१५।।

ते मुनय: सर्वग्रन्थमुक्ता मिथ्यात्ववेदकषायरागहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सा इत्येतैश्चतुर्दशाभ्यन्तरग्रंथैर्मुक्ता:, अममा: स्नेहपाशान्निर्गता:, अपरिग्रहा: क्षेत्रादिदशविधबाह्यपरिग्रहान्निर्गता:, यथाजाता नाग्न्यगुप्तिं गता:, व्युत्सृष्टत्यक्तदेहा मर्दनाभ्यंगोद्वर्तनस्नानादिदेहसंस्काररहिता एवंभूता जिनवरधर्मं चारित्रं युगपन्नयंति भवान्तरं प्रापयन्तीति ।।१५।।

आगै ते महाव्रत कौंन है ? अैसै आशंका होतैं बहुरि व्रतशुद्धि का निरूपण करता प्रथम व्रत है, तिनहि कहै है—

अर्थ–१. सत्यवचन, २. हिंसाविरति, ३. अदत्तपरिवर्जनं, तैसे ४. ब्रह्मचर्य का पालन, ५. बहुरि परिग्रहतैं विरत—अैसे पंच महाव्रत हैं, तिनहि लिंगग्रहण के उत्तरकाल भले प्रकार इछै है ।।१३।।

यद्यपि व्यतिरेक मुख प्राणिवधादिक का परिहार जाण्या ताहू पर्यायार्थिक शिष्य के प्रतिबोधवे अर्थि, अन्वय है, ताहि कहै है—

अर्थ–दृढ़ है बुद्धि जिनकी स्थिरबुद्धिकरि युक्त अैसें साधु हैं, तै प्राणिवध है ताहि, मृषावाद है ताहि, अदत्त ग्रहण है ताहि, बहुरि परिग्रह हैं ताहि, त्रिविध जो मन, वचन, काय ताकरि मरणपर्यंत त्यजै हैं । इहां प्रतिक्रमंति क्रिया है सो पंचपाप विषैं भिन्न-भिन्न संबंध करणा ।।१४।। आगै व्रत विषैं शुद्धि है, ताहि कहै है—

अर्थ–ते मुनि सर्वसंगमुक्ता कहिये मिथ्यात्व, वेदकषाय (चार) तथा राग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा या प्रकार चौदह आभ्यंतर परिग्रहकरि रहित, अममा कहिये स्नेहरूप फासतैं निकसे, अपरिग्रहा कहिये क्षेत्रादिक दश प्रकार बाह्य परिग्रहतैं रहित, यथाजाता: कहिये नग्नमुद्रा को प्राप्त भये, व्युत्सृष्ट-त्यक्तदेहा कहिये मर्दन, तेलमर्दन उवटणां, स्नानादिक देह संस्कार, तिनकरि रहित अैसे मुनिराज जिनवर-धर्म जो चारित्र, ताहि नयंति, समं कहिये परलोक प्रति साथि ले जाय हैं ।।१५।।

कथं ते सर्वग्रंथमुक्ता इत्याशंकायामाह—

सव्वारंभणियत्ता जुत्ता जिणदेसिदम्मि धम्मम्मि ।
ण य इच्छंति ममत्तिं परिग्गहे बालमित्तम्मि ।।१६।।

यतस्ते मुनयः सर्वारंभेभ्योऽसिमषिकृषिवाणिज्यादिव्यापारेभ्यो निवृत्ता जिनदेशिते धर्मे चोद्युक्त यतः श्रामण्यायोग्यबालमात्रपरिग्रहविषये ममत्वं नेच्छन्ति यतस्ते सर्वग्रन्थविमुक्ता इति ।।१६।।

कथं त्वममा इत्याशंकायामाह—

अपरिग्गहा अणिच्छा संतुट्ठा सुट्ठिदा चरित्तम्मि ।
अवि णीए वि सरीरे ण करेंति मुणी ममत्तिं ते ।।१७।।

यस्मादपरिग्रहा निराश्रया अनिच्छाः सर्वाशाविप्रमुक्ताः संतुष्टाः संतोषपरायणाश्चारित्रे सुस्थिताश्चारित्रानुष्ठानपराः, अपि च निजेऽपि शरीरे आत्मीयशरीरेऽपि ममत्वं न कुर्वन्ति मुनयः, अथवाऽविनीते शरीरे ममत्वं न कुर्वन्ति ततस्ते निर्ममा इति ।।१७।।

अथ कथं ते निष्परिग्रहाः कथं वा यथाजाता इत्याशंकायामाह—

ते णिम्ममा सरीरे जत्थत्थमिदा वसंति अणिएदा ।
सवणा अप्पडिबद्धा विज्जू जह दिट्ठणट्ठा वा ।।१८।।

यतस्ते शरीरेऽपि निर्ममा निर्मोहाः, यत्रास्तमितो रविर्यस्मिन् प्रदेशे रविरस्तं गतस्तस्मिन्नेव वसंति तिष्ठंति, अनिकेता न किंचिदपेक्षंते, श्रमणा यतयः, अप्रतिबद्धाः स्वतंत्राः, विद्युद्यथा दृष्टनष्टा ततोऽपरिग्रहा यथाजाताश्चेति ।।१८।।

भावार्थ—उक्त प्रकार चारित्र जे साधु पालै है तिनकै भवांतर विषैं चारित्र प्रगट होय है । आगैं तै साधु कैंसे समस्त परिग्रह रहित है ? ऐसी आशंका हौंते आचार्य कहै है—

अर्थ–जातैं तै मुनीश्वर सर्वारंभ जो असि, मषि, कृषि वाणिज्यादिक व्यापार तिनतैं निवृत भये, बहुरि जिनदेवकरि उपदेश्या धर्मविषैं उद्यमयुक्त जातैं मुनिपद कै अयोग्य बालमात्र परिग्रह विषैं ममत्व नांही इछै है, तातैं ते समस्त परिग्रह रहित हैं ।।१६।। बहुरि तै अममा कैंसैं है? ऐसी आशंका होतै कहै है—

अर्थ–जातैं अपरिग्रहा कहिये आश्रय रहित, अनिच्छा कहिये सर्वआशा रहित, संतुष्टा कहिये संतोष विषैं, परायणचरित्रे सुस्थिता कहिये चारित्र के अनुष्ठान विषैं तत्पर, अपने शरीर विषै हू ते मुनि ममत्व नांही करै है अथवा विनय-रहित असे शरीर विषैं ममत्व नांही करै है, तातैं ते निर्ममा-ऐसैं जाननैं ।।१७।।

बहुरि ते साधु निःपरिग्रह कैसैं अथवा यथाजात कैसैं ? ऐसी आशंका होतै कहै है—

अर्थ–जातैं ते शरीर विषैं हू निर्ममा कहिये निर्मोह है, जिस स्थान विषै सूर्य अस्त भया तहां ही बसै है, तिष्ठै है, अनिकेता कहिये किचिन्मात्र अपेक्षा नांही करै है, श्रमणा कहिये यतीश्वर, जे हैं ते अप्रतिबद्धा कहिये काहु सूं प्रतिबद्ध नांही, स्वतंत्र है । विजुरीवत् दृष्ट नष्ट हैं, तातैं अपरिग्रह है, बहुरि यथाजात रूप के धारी हैं ।।१८।।

वसतिशुद्धिं निरूपयन्नाह—

गामेयरादिवासी णयरे पंचाहवासिणो धीरा ।
सवणा फासुविहारी विवित्तएगंतवासी य ।।१९।।

वृत्त्यावृतो ग्रामस्तस्मिन्नेकरात्रं वसन्ति तत्रैकयैव रात्र्या सर्वसंवेदनात्, चतुर्गोपुरोपलक्षितं नगरं तत्र पंचदिवसं वसन्ति पंच दिनानि नयन्ति यतः पंचदिवसैः सर्वतीर्थादियात्रायाः सिद्धिरुत्तरत्र ममत्वदर्शनात्, धीरा धैर्योपेताः, श्रमणाः, प्रासुकविहारिणः सावद्यपरिहरणशीलाः, विविक्ते स्त्रीपशुपांडक[1]वर्जिते देश एकान्ते प्रच्छन्ने वसंतीत्येवं शीला विविक्तैकांतवासिनः, यतो विविक्तैकांतवासिनो यतश्च निरवद्याचरणशीला यतो ग्राम एकरात्रिवासिनो नगरे पंचाहर्वासिनश्चोत्तरत्रौद्देशिकादिदर्शनान्मोहादिदर्शनाच्च न वसंतीति ।।१९।।

एकान्तं मृगयतामेतेषां कथं सुखमित्याशंकायामाह—

एगंतं मग्गंता सुसमणा वरगंधहत्थिणो धीरा ।
सुक्कज्झाणरदीया मुत्तिसुहं उत्तमं पत्ता ।।२०।।

एकांतमेकत्वं विविक्तं मृगयमाणा अन्वेषयंतः सुश्रमणा सुतपसः वरगंधहस्तिन इव धीराः शुक्लध्यानरतय उत्तमं प्राप्ताः। यथा गंधहस्तिन एकांतमभ्युपगच्छंतः सुखं प्राप्नुवंति तथा श्रमणा एकातं मृगयमाणा अपि प्राप्ता यतः शुक्लध्यानरतय इति ।।२०।।

आगै वासतिशुद्धि है, ताहि निरूपण करतै आचार्य कहै है—

अर्थ–बाड़िकरि वेष्टित सो ग्राम कहिये । तिस ग्राम विषैं एक रात्रि बसै हैं । तहाँ एक ही रात्रिकरि सर्वका जाननां होय है । यातैं च्यारि दरवाजेनि करि युक्त सो नगर कहिये-तहां पांच दिवस वसै हैं, जातैं पंचदिवसनिकरि सर्व तीर्थादि यात्रा की सिद्धि है । अधिक रहवे विषैं ममत्व दीसैं हैं । यातैं धीरा कहिये धैर्यकरि युक्त अैसे श्रमण हैं, प्रासुक विहारिणः कहिये सावद्य के त्याग विषैं है स्वभाव जिनका, विविक्त कहिये स्त्री, पशु, नपुंसक करि रहित एकांते कहिये प्रच्छन्न देश विषैं वसैं अैसा है स्वभाव जिनका, जातैं विविक्तैकांतवासी हैं । बहुरि जातै निरवद्याचरणशील हैं यातैं ग्राम विषैं एक रात्रि वसै हैं, बहुरि नगर विषै पंच दिन वसै हैं, अधिक वसवै विषै उद्देशादिक दोष का दर्शन हैं, यातैं वहुरि मोहादिक को दर्शन है, यातैं नांही बसे है ।।१९।।

एकांत स्थानकूं अवलोकन करते जे साधु तिनकै कैसे सुख है ? अैसी आशंका हौंतैं कहै है—

अर्थ–एकांत जे विविक्त स्थान ताहि अवलोकन करते सुश्रमणा कहिये भले जती, श्रेष्ठ गंधहस्ती की ज्यौं धीर शुक्लध्यान विषै है, रति कहिये राग जिनकै उत्तम मोक्ष सुखकूं प्राप्त होय है । जैसे गंधहस्ती एकांत कूं प्राप्त होते हू सुख पावै है तैसे साधु एकांत कूं प्राप्त होते सुख हू पावै है । जातैं शुक्लध्यान विषैं लीन है ।।२०।।

---

१. पांडक शब्दो नपंसकार्थे ज्ञायते ।

कथं ते धीरा इत्याशंकायामाह—

एयाइणो अविहला वसंति गिरिकंदरेसु सप्पुरिसा ।
धीरा अदीणमणसा रममाणा वीरवयणम्मि ।।२१।।

एकाकिनोऽसहायाः, अविकला अविह्वला धृतिसंतोषसत्वोत्साहादिसंपन्ना वसंति संतिष्ठंते गिरिकंदरासु पर्वतजलदारितप्रदेशेषु, सत्पुरुषाः प्रधानपुरूषाः, धीराः अदीनमनसो, दैन्यवृत्तिरहिताः, रममाण क्रीडंतो रतिं कुर्वतो वीरवचने । यत एकाकिनोऽपि वैकल्यरहिता अदीनभावा वीरवचने भेदभावने रतिं कुर्वाणा गिरिकंदरासु[१] वसंति यतो धीराः सत्पुरुषाश्चेति ।।२१।।

अतश्च ते धीरा—

वसधिसु अप्पडिबद्धा ण ते ममत्तिं करेंति वसधीसु ।
सुण्णागारमसाणे वसंति ते वीरवसदीसु ।।२२।।

वसतिष्वप्रतिबद्धाः स मदीय आश्रयस्तत्र वयं वसाम इत्येवमभिप्रायरहिताः, ममत्वं न कुर्वंति वसतिषु निवासनिमित्तमोहमुक्तास्ते साधवः, शून्यगृहेषु श्मशानेषु प्रेतवनेषु वसन्ति ते वीरवसतिषु यतो वीराधिष्ठितेषु स्थानेषु महाभयंकरेषु संस्कृतवसतिविषये मुक्तसंगा अपसंगा वसन्त्यतस्तेभ्यः केऽन्ये शूरा इति ।।२२।।

बहुरि ते साधु कैसे धीर है ? अैसी आशंका होतै कहैं हैं—

अर्थ–एकाकी सहायकरि रहित आविह्ल कहिये विह्लता करि रहित धृति-संतोष, सत्व उत्साह इत्यादिकरि सहित, गिरिकंदरेषु कहिये पर्वत विषैं जलकरि विदारे प्रदेश दराडे तिन विषैं, सत्पुरुषा कहिये प्रधान-पुरुष, धीर-वीर, अदीनमनसा कहिये दैन्य वृत्ति रहित वीर, वचने कहिये वर्द्धमान स्वामी की वाणी विषैं, रममाणा कहिये क्रीड़ा करते, वसंति कहिये तिष्ठै हैं । याका संक्षेप अर्थ—अैसा एकाकी विकलता रहित दीनभावकरि रहित वीरवचन जो भेदाभ्यास ता विषैं रति करते गिरि-कंदरनि विषैं जातैं बसैं हैं, तातैं तै साधु धीर सत्पुरुष हैं ।।२१।।

बहुरि धीर हैं, तैसैं बहुरि कहैं हैं—

अर्थ–वसतिका कै विषै अप्रतिबद्धा कहिये सो मेरा आश्रय है, तहां हम वसै हैं—अैसे अभिप्रायकरि रहित ममत्व नांहि करै है । वसतिका विषैं निवास निमित्त मोहकरि रहित ते साधु शून्य घरनि विषैं, बहुरि मसाण विषैं, वसै हैं । जातैं ते मुनिराज वीर वसति जो वीराधिष्ठित स्थान महाभयंकर तिन विषैं संस्कार युक्तकरि वसतिका विषैं त्यज्या है प्रसंग जिननैं-अैसे परिग्रहरहित वसै हैं, तिनतैं अरि कौन सूरिवा (शूर) हैं ? ।।२२।।

---

१. गिरिकन्दरेषु क० ।

पुनरपि सत्वव्यावर्णनायाह—

पब्भारकंदरेसु अ कापुरिसभयंकरेसु सप्पुरिसा ।
वसधी अभिरोचंति य सावदबहुघोरगंभीरा ।।२३।।

प्राग्भारेषु पर्वतनितंबेषु कन्दरेषु जलहतिकृतप्रदेशेषु चैवंप्रकारेषु दुर्गमप्रदेशेषु, कापुरुषभयंकरेषु सत्व-हीनपुरुषभयजनकेषु[1] वसतयोऽभिरोचन्ते सत्पुरुषेभ्य: अवस्थानमभिवांछंति सत्पुरुषा: सत्वाधिका: श्वापदबहुघोरगंभीरा वसतय इत्यभिसंबंध: सिंहव्याघ्रसर्पनकुलादि[2] बाहुल्येन रौद्रगहनस्थानेष्वावासभिवांछंतीति ।।२३।।

तथा—

एयंतम्मि वसंता वयवग्घतरच्छ अच्छभल्लाणं ।
आगुंजियमारसियं सुणंति सद्दं गिरिगुहासु ।।२४।।

एकान्ते गिरिगुहासु वसंत: संतिष्ठमाना वृकव्याघ्रतरक्षुऋक्षभल्लादीनामागुंजितमारसितं शब्दं शृण्वंति तथाऽपि सत्वान्न विचलंतीति ।।२४।।

तथा—

रत्तिंचरसउणाणं णाणारुदरसिदभीदसद्दालं ।
उण्णावेंति वणंतं जत्थ वसंता[3] समणसीहा ।।२५।।

रात्रौ चरन्तीति रात्रिंचरा उलूकादयस्तेषां शकुनानां नानारुतानि नानाभीतिशब्दांश्च अलमत्यर्थं उण्णावेंति उन्नादियंति प्रतिशब्दयन्ति वनांतं वनमध्यं, उद्गतशब्दं सर्वमपि वनं गह्वराटवीं कुर्वन्ति यत्र वसन्ति श्रमणसिंहा इति ।।२५।।

आगै बहुरि हु सत्व के वर्णन अर्थि कहै है—

अर्थ–प्राग्भार जे पर्वतनिके निकुंज, बहुरि कंदर जे जलकरि विदारे पर्वतनिके दराडे इस प्रकार के जे दुखकरि गमन करये अैसे स्थान कापुरुष भयंकरेषु कहिये सत्वहीन पुरुषनिकूं भय के उपजावनहारे अैसे स्थान विषैं वसतिका सत्पुरुषनि कै अर्थि रुचै है । सत्वकरि अधिक ऐसे सत्पुरुष श्वापद बहुघोरगंभीरा कहिये सिंह, व्याघ्र, सर्पादिकनि करि बाहुल्यता करि रौद्र गहन-स्थान है, ताहि वांछै है ।।२३।।

तैसे बहुरि कहै है—

अर्थ–एकांत विषैं पर्वतनिकी गुफा विषैं, बसतै ल्याली (भेड़िया), वघेरे (व्याघ्र), चीता, रीछ इनकै आगुंजित अर आरसित—अैसा शब्द है, ताहि सुणै है, तो हु सत्वतैं नाही चलायमान होय है ।।२४।।

और भी—

अर्थ–रात्रि विषैं विचरैं अैसैं घूघू (उल्लू) आदि पक्षी जे हैं तिनकै नाना प्रकार रोदन सहित भयंकर शब्द हैं, तै अतिशयकरि वन कैं मध्य सर्ववन हैं, ताहि गर्जित करैं हैं । जहां श्रवणसिंहा[4] कहिये मुनिनि मैं प्रधान वसै हैं ।।२५।।

---

१. जननेषु क० । २. सर्पादिभिर्बाहुल्येन रौद्रं गहनं स्थानायावासमभिवाञ्छन्तीति क० । ३. अ० ब० वसंतो । ४. श्रमणसिंहा ।

तथा—

सीहा इव णरसीहा पव्वयतडकडयकंदरगुहासु ।
जिणवयणमणुमणंता अणुविग्गमणा परिवसंति ।।२६।।

सिंहा इव सिंहसदृशा नरसिंहा नरप्रधाना: पर्वततटकटके "पर्वतस्याधोभागस्य सामीप्यं तटं उर्ध्वभागस्य सामीप्यं कटकं" पर्वततटकटककन्दरागुहासु जिनवचनमनुगणयन्तो जिनागमं तत्त्वेन श्रद्धाना अनुद्विग्नमनस उत्कंठितमानसा:परि—समन्ताद्वसंतीति ।।२६।।

तथा—

सावदसयाणुचरिये परिभयभीमंधयारगंभीरे ।
धम्माणुरायरत्ता वसंति रत्तिं गिरिगुहासु ।।२७।।

श्वापदसदानुचरिते सिंहव्याघ्रादिभि: सर्वकालं परिसेविते परिभयभीमे समंताद्भयानकेऽन्धकारे आदित्यकिरणानामपि दुष्प्रवेशे गंभीरे सुष्ठु गहने वने इति संबंध: धर्मानुरागरक्ताश्चारित्रानुष्ठानतत्परा रात्रौ वसंति गिरिगुहास्विति ।।२७।।

तादृग्भूते वने रात्रौ केन विधानेन वसंतीत्याशंकायामाह—

सज्झायझाणजुत्ता रत्तिं ण सुवंति ते पयामं तु ।
सुत्तत्थं चिंतंता णिद्दाय वसं ण गच्छंति ।।२८।।

स्वाध्यायध्यानयुक्ता: श्रुतभावनायां युक्ता एकाग्रचिंतानिरोधे ध्याने च तत्परमानसा रात्रौ न स्वपंति ते मुनय:, प्रयामं प्रचुरं प्रथमयामं पश्चिमयामं च वर्जयन्तीत्यर्थ:, सूत्रार्थं च सूत्रमर्थं तदुभयं च चिंतयंतो भावयंतो निद्रावशं न गच्छंति—न निद्रा-राक्षस्या पीड्यंत इति ।।२८।।

अर्थ–सिंह समान नरसिंहा कहिये महुष्यनि में प्रधान अैसे मुनिराज, पर्वत-तट-कटके कहिये पर्वत के अधोभाग के समीप होय सो तट, अर अर्द्धभाग कै समीप होय सो कटक । पर्वत के दराडे अर गुफा इनकै मध्य, जिनागम है ताहि निश्चयकरि श्रद्धान करते उद्वेग-रहित है मन जिनका, अैसै वसै हैं ।।२६।।

अर्थ–सिंह व्याघ्रादि करि सदाकाल सेवित सर्वठोर भयानक जहां सूर्य के किरण का प्रवेश नांही-अैसा है अंधकार जहां अैसे गहन वन विषैं चारित्र के आचरण विषैं तत्पर अैंसै मुनिराज रात्रि विषैं पर्वतनिकी गुफानि विषैं वसैं हैं ।।२७।।

आगै वे साधु तैंसैं वन विषैं कौंन रात्रि कै विषैं ? कौंन विधानकरि वसै हैं ? अैसी आशंका करि कहै हैं—

अर्थ–स्वाध्याय जो श्रुतभावना, ध्यान जो एकाग्रचिंता का निरोध, तिन विषैं, युक्ता कहिये तत्पर है, मन जिनको अैसे ते मुनिराज रात्रि विषैं प्रचुर नांही सोबै हैं ।।२८।।

भावार्थ–प्रथम पहर अर पीछला पहर तिनहिं वर्जि सोवै है । सूत्र अर अर्थ बहुरि सूत्रार्थ इनकूं भावते संते निद्रा के अधीन नांही होय है । निद्रा रूप राक्षसी अैसे मुनिनि कूं पीडा नांही उपजावै हैं ।

तत्रासनविधानं च प्रतिपादयन्नाह—

पलियंकणिसिज्जगदा वीरासणएयपाससाईया ।
ठाणुक्कडेहिं मुणिणो खवंति रत्तिं गिरिगुहासु ।।२९।।

गतशब्द प्रत्येकमभिसंबंध्यते, पर्यकं गताः पर्यङ्केण स्थिताः, निषद्यां गताः सामान्येनोपविष्टाः, वीरासनं च गता वीराणामासनेन स्थितास्तथैकपार्श्वशायिनस्तथा स्थानेन कायोत्सर्गेण स्थिता उत्कुटिकेन स्थितास्तथा हस्तिशुंडमकरमुखाद्यासनेन च स्थिता मुनयः क्षपयंति नयंति गमयंति रात्रिं गिरिगुहासु नान्यथेति समाधानताऽनेन प्रकारेण प्रतिपादिता भवतीति ।।२९।। प्रतीकाररहितत्वं निष्काङ्क्षत्वं च प्रतिपादयन्नाह—

उवधिभरविप्पमुक्का वोसट्टंगा णिरंबरा धीरा ।
णिक्किंचण परिसुद्दा साधू सिद्धिं वि मग्गंति ।।३०।।

उपधिभरविप्रमुक्ताः श्रामण्यायोग्योपकरणभारेण सुष्ठु मुक्ताः, व्युत्सृष्टांगास्त्यक्तशरीराः, निरंबरा नाग्न्यमधिगताः, धीरा सुष्ठु शूराः, निष्किंचना निर्लोभाः, परिशुद्धाः कायवाङ्मनोभिः शुद्धाचरणाः साधवः. सिद्धिं कर्मक्षयं समिच्छंति मृगयंते, तेनेह लोकाकांक्षा परलोकाकांक्षा च परिषह प्रतीकारश्च न विद्यते तेषामिति ख्यापितं भवति । वसतिशुद्ध्या तपःसूत्रसत्वैकत्वधृतिभावनाश्च प्रतिपादिता इति ।।३०।। विहारशुद्धिं विवृण्वन्नाह—

मुत्ता णिरावयेक्खा सच्छंदविहारिणो जहा वादो ।
हिंडंति णिरुव्विग्गा णयरायरमंडियं वसुहं[१] ।।३१।।

आगै तहां आसनविधान है, ताहि प्रतिपादन करते आचार्य कहै है—

अर्थ–इहां 'गत' शब्द है सो प्रत्येक संबंध करिये है । पर्यंकगता कहिये पद्मासनकरि तिष्ठते, निषद्यांगता कहिये सामान्य आसनकरि बैठे, बहुरि वीरासनकरि स्थित, तैसें ही एक पसवाडे (करवट) करि सोवते तैंसैं स्थान जो कायोत्सर्ग अर उत्कट ऊकडू, तिष्ठतां, आसन तिनकरि तैंसैं हस्तीसुंड, मकरमुख इत्यादिक आसनकरि तिष्ठते जे मुनि पर्वतनिकी गुफानि विषैं रात्रिकूं व्यतीत करै है, और प्रकार नांही व्यतीत करै हैं। इस कथनकरि समाधानता जताई जाननी ।।२९।।

आगैं प्रतीकार रहितपनैं कूं बहुरि निर्वांछकपनैं कूं प्रतिपादन करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ–उपधि जो मुनिनि कै अयोग्य उपकरण ताकै भारकरि भलैं प्रकार रहित, त्यज्या है शरीरतैं ममत्व जिनिनैं, नग्नपनैं कूं प्राप्त भये, भलैं प्रकार सूरियां (अतिशय शूर), निर्लोभ, मन, वचन, कायकरि शुद्ध है आचरण जिनकै-अैसें साधु जैं हैं ते सिद्धि. जो कर्म का क्षय ताहि इछैं हैं । इस कथनकरि इसलोक की वांच्छा, बहुरि परलोक की वांछा, बहुरि परीसह का प्रतीकार तिनि मुनिनि कैं नांही है । अैसैं कह्या हुवा जाननां ।। वसतिका की शुद्धिकरि तप, सूत्र, सत्व, एकत्व, धैर्य-इनकी भावना प्रतिपादन करी जाननी ।।३०।।

आगै विहार-शुद्धि है, ताहि व्याख्यान करिते आचार्य कहै है—

अर्थ–मुक्ता कहिये समस्त परिग्रह रहित, निरपेक्षा कहिये किंचित् मात्रहू वांछा नांही करतैं, स्वछंद-विहारिण कहिये स्वाधीन, जैसे

---

१. अ० ब०-वसुधं० ।

मुक्ता: सर्वसंगरहिता:, निरपेक्षा: किंचिदप्यनीहमाना:, स्वच्छन्दविहारिण: स्वतंत्रा यथा वातो वात इव नगराकरमंडितायां वसुधायां पृथिव्यां हिण्डंते भ्रमंतीति ।।३१।।

ननु विहरतां कथं नेर्यापथकर्मबन्ध इत्याशंकायामाह—

वसुधम्मि वि विहरंता पडिं ण करेंति कस्सइ कयाई ।
जीवेसु दयावण्णा माया जह पुत्तभंडेसु ।।३२।।

वसुधायां विहरंतोऽपि पृथिव्यां पर्यटंतोऽपि पीडां व्यथां न कुर्वंति नोत्पादयंति कस्यचिज्जीवविशेषस्य कदाचिदपि जीवदयायं[१] प्रवत्ता:, यथा माता जननी पुत्रपुत्रीषु दयां विदधाति तथैव तेऽपि न कुर्वंति कस्यापि कदापि पीडामिति ।।३२।।

ननु नानादेशेषु विहरतां कथं सावद्यपरिहार इत्याशंकायामाह—

जीवाजीवविहत्तिं णाणुज्जोएण सुट्ठु णाऊण ।
तो परिहरंति धीरा सावज्जं जेत्तियं किंचि ।।३३।।

जीवविभक्तिं जीवविभेदान् सर्वपर्यायान, अजीवविभक्तिं पुद्गलधर्माधर्माकाशकालस्वरूपं सभेदं सपर्ययं ज्ञानोद्योतेन सुष्ठु ज्ञात्वाऽवबुध्य तत: परिहरंति परित्यजन्ति सावद्यं यत्किंचित्सर्वदोषजातं सर्वथा परिहरंतीति ।।३३।।

सावद्यकारणमपि परिहरंतीत्याह—

सावज्जकरणजोग्गं सव्वं तिविहेण तियरणविसुद्धं ।
वज्जंति वज्जभीरू जावज्जीवाय णिग्गंथा ।।३४।।

पवन विचरैं तैसे नगर अर आकर जो खानि तिनकरि मंडित जो पृथिवी ता विषैं उद्वेग रहित मुनीश्वर विचरै हैं ।।३१।।

आगै तर्क करै हैं—विहार करते मुनिनिकैं ईर्यापथतैं उपज्या कर्मबंध कैसैं नाहीं है ?

पृथिवी विषैं विहार करते हू समस्त जीवनि विषैं दया है, ताहि प्राप्तभयै यातैं काहू जीवकैं कदाचित् हू पीड़ा नांही उपजावै हैं जैसे माता पुत्र विषैं अत्यन्त हित विचारै हैं, तैसे वे साधु जीवदया विषैं प्रवर्तै हैं ।।३२।।

आगै तर्क करै हैं—नाना देश विषैं विहार करते मुनिनि कैं कैसैं सावद्य का परिहार होय ? ऐसी आशंका हौतें कहैं हैं—

अर्थ–पर्याय सहित जीवनि के भेद, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश-स्वरूप पर्याय सहित अजीव के भेद, ताहि ज्ञानोद्योतेन कहियै ज्ञान के प्रकाशकरि भलै प्रकार जाणता पीछै यत्किंचित् सर्वदोष का समूह है, ताहि सर्वथा त्यजै है ।।३३।।

आगैं सावद्यकरण है, ताहि हू त्यजैं हैं, ऐसे कहैं है—

अर्थ–सावद्यकरणयोग कहिये सदोष जे इंद्रिय बहुरि परिणाम वा क्रिया तिनकरि मिलाय है, ताहि समस्तहू, त्रिविधेन कहिये कृत,

१. 'जीवदयायामापन्ना: सर्वप्राणिदयापरा यत: यथा माता जननी पुत्रभांडेषु, जननी यथा पुत्रविषयेऽतीव हितमाचरति तथा तेऽपि साधव: सर्वजीवविषयदयायां प्रवृत्ता:, इति द० क० पुस्तके पाठ: ।

सावद्यानि सदोषानि यानि करणानीन्द्रियाणि परिणामाः क्रिया वा तैर्योगः संपर्कस्तं सावद्यकरणयोगं सर्वमपि त्रिविधेन त्रिप्रकारेण कृतकारितानुमतरूपेण त्रिकरणविशुद्धं यथा भवति मनोवचनकायक्रियाशुद्धं यथा भवति तथा वर्जयंति परिहरंत्यवद्यभीरवः पापभीरवो यावज्जीवं याविन्मरणांतं निर्ग्रंथाः परिहरंतीति ।।३४।।

किं तत्सावद्यं यन्न कुर्वन्तीत्याशंकायामाह—

तणरुक्खहरिदछेदणतयपत्तपवालकंदमूलाइं ।
फलपुप्फबीयघादं ण करेंति[1] मुणी ण कारेंति[2] ।।३५।।

तृणच्छेदं, वृक्षच्छेदं, हरितच्छेदनं छिन्नछेदनं च न कुर्वंति न कारयंति मुनयः, तथा त्वक्पत्रप्रवालकन्दमूलानि न छिंदंति न छेदयंति, तथा फलपुष्पबीजघातनं न कुर्वंति न कारयंति मुनयः ।।३५।।

तथा—

पुढवीय समारंभं जलपवणग्गीतसाणमारंभं ।
ण करेंति ण कारेंति य कारेंतं णाणुमोदंति ।।३६।।

पृथिव्याः समारंभं खननोत्कीर्णनचूर्णनादिकं न कुर्वंति न कारयंति कुर्वंति नानुमन्यन्ते धीरास्तथा जलपवनाग्नित्रसानामारंभे सेचनोत्कर्षणबीजनज्वालन-मर्दनत्रासनादिकं न कुर्वंति न कारयंति नानुमन्यंत इति ।।३६।।

कारित, अनुमोदना करि, त्रिकरणविशुद्ध कहिये मन, वचन, काय की क्रिया शुद्ध होय तैंसे पापनितैं डरतैं-अैसे निर्ग्रन्थ मरणपर्यंत परित्याग करैं हैं ।।३४।।

आगै सो सावद्य कौंन है, जाहि मुनि नांही कहै हैं ? अैसी आशंका हौतैं कहै—

अर्थ–तृणछेद, वृक्षछेद, हरितछेद, बहुरि छिदी (छिन्न-भिन्न हुई वनस्पति) का छेद-ताहि मुनि न करै है, न करावै है । तैंसे ही त्वचा, पत्र, कोंपल, कंदमूल-तिनहि छैदे है नांहि, छिदावै है नांही, फल, पुष्प, बीज-इनका घात नांही करै है, नांही करावै है ।।३५।।

तैसे बहुरि कहै है—

अर्थ–धीर अैसे मुनि जे हैं, ते पृथिव्यादिक का समारंभ जो खोदना, उकीरणां, चूर्ण करणां इत्यादिक न करै है, न करावै है, न और कर्ता की अनुमोदना करै है । तैसे ही जल, पवन, अग्नि, त्रस-इनका आरंभ जो सींचना, बहावणां, पवन लेणां, प्रज्वलित करणां, मर्दन करणां, भय उपजावना इत्यादिक नांही करै है, नांही करावै है, नांही करते की अनुमोदनां करै है ।।३६।।

---

१. अ० ब० करिंति । २. अ० ब० कारिंति ।

यत:—

णिक्खित्तसत्थदंडा समणा सम सव्वपाणभूदेसु ।
अप्पट्ठं चिंतंता हवंति अव्वावडा साहू ।।३७।।

निक्षिप्तशस्त्रदंडाः सर्वहिंसाकाणोपकरणमुक्ता यतः, श्रमणा यतश्च, सर्वप्राणभूतेषु समाः समानाः यतश्चात्मार्थं चिंतयतो भवंत्यव्यापृता व्यापार रहितास्ततस्ते न कस्यचित्कदाचित्पीडाँ कर्वंतीति ।।३७।।

विहरंतः कथंभूतं परिणामं कुर्वंतीत्याशंकायामाह—

उवसंतादीणमणा उवक्खसीला हवंति मज्झत्था ।
णिहुदा अलोलमसठा अबिह्मिया कामभोगेसु ।।३८।।

उपशांता अकषायोपयुक्ताः, अदीनमनसो दैन्यविरहिताः, पथश्रमक्षुत्पिपासाज्वरादिपरीषहैरग्लानचित्तवृत्तयः, उपेक्षाशीलाः सर्वोपसर्गसहनसमर्था भवन्ति, मध्यस्थाः समदर्शिनः, निभृताः संकुचितकरचरणाः कूर्मवत् अलोला निराकांक्षाः, अशठा मायाप्रपंचरहिताः, अविस्मिताः कामभोगेषु कामभोगविषये विस्मयरहिताः कृतानादरा इति ।।३८।।

तथा—

जिणवयणमणुगणेंता संसारमरब्भयं हि चिंतंता ।
गब्भवसदीसु भीदा भीदा पुण जम्ममरणेसु ।।३९।।

जिनवचनमनुगणयंतोऽर्हदागमरंजितमतयः, संसारान्महद्भयं चिन्तयंतः संत्रस्तमनसः, गर्भवसतिषु गर्भवासविषये भीताः सुष्ठु त्रस्ताः, पुनरपि जन्ममरणेषु भीता जातिजरामरणविषये च सम्यग्भीता इति ।।३९।।

यातैं अैसैं साधु हैं, सो आगै कहै है—

अर्थ–जातैं साधु जैहै ते सर्व हिंसा के कारण अैसैं उपकरणनि करि रहित समस्त प्राणी विषैं समान आत्मा का हित है, ताहि चितवते व्यापार रहित अैसे है, तातैं ते साधु काहू कै कदाचित् पीडा नांही उपजावै है ।।३७।।

आगै विहार करते साधु कैसा परिणाम करै है ? सो कहैं है—

अर्थ–उपशांता कहिये कषाय रहित, दीनताकरि रहित, मार्ग का श्रम, क्षुधा, तृषा, ज्वरादिक परीषह इनकरि नांही मलिन है चित्त की वृत्ति जिनकी, उपेक्षा-शीला कहिये सर्व उपसर्ग के सहवे विषैं समर्थ, मध्यस्थ कहिये समदर्शी, निभृता कहिये काछवे (कछुए) ज्यों संकुचित कीयैं कर-चरण जिननैं, अलोला कहिये निर्वांछक, अशठा कहिये माया-प्रपंच रहित, कामभोगनि विषैं अविस्मिता कहिये कीया है अनादर जिननै ।।३८।। आगैं तैसैं बहुरि कहै है—

अर्थ–जिनवचन जो अर्हंत का आगम ताकै विषैं रंजित है बुद्धि जिनकी, संसारतैं महाभयकूं चिंतवते, त्रास युक्त है मन जिनका, गर्भवास विषै भययुक्त बहुरि जन्म, जरा; मरण विषैं भलै प्रकार भयभीत अैसै साधु है ।।३९।।

कथं कृत्वा गर्भवसतिषु भीता इत्याशंकायामाह—

घोरे णिरयसरिच्छे कुंभीपाए सुपच्चमाणाणं ।
रुहिरचलाविलपउरे वसिदव्वं गब्भवसदीसु ।।४०।।

घोरे भयानके नरकसदृशे कुंभीपाके "व्यथां कृत्वा संदहनं कुंभीपाकः" तस्मिन् सुपच्यमानानां सुष्ठु संतप्यमानानां "कर्त्तरि षष्ठी" तेन सुपच्यमानैरित्यर्थः, रुधिरचलाविलप्रचुरे रुधिरेण चले आविले वीभत्सेऽथवा वीभत्सेन प्रचुरे वस्तव्यं स्थातव्यं, उदरे गर्भे या वसतयस्तासु वस्तव्यमस्माभिरहो इति ।।४०।।

गर्भवसतिभ्यो भीताः संतः किमिच्छंतीति—

दिट्ठपरमट्ठसारा विण्णाणवियक्खणाय बुद्धीए ।
णाणकयदीवियाए अगब्भवसदी विमग्गंति ।।४१।।

ते साधवो दृष्टपरमार्थसाराः संसारस्य शरीरस्य भोगानां च दृष्टं ज्ञातं सारं परमार्थरूपं यैस्ते तथाभूताः, विज्ञानेन विचक्षणया बुद्धया मतिज्ञानादिना सुष्ठु कुशलतया विज्ञानविचक्षणया बुद्धया ज्ञानकृतदीपिकया श्रुतज्ञानदीपेन चागर्भवसतिं विशेषेण मृगयंते समीहंत इति ।।४१।।

विहरंतः किं भावयंतीत्याह—

भावेंति भावणरदा वइरग्गं वीदरागाणं च ।
णाणेण दंसणेण य चरित्तजोएण विरिएण ।।४२।।

भावनायां रता वीतरागाणां ज्ञानदर्शनचारित्रायोगैर्वीर्येण च सह वैराग्यं भावयन्तीति ।।४२।।

कौन प्रकारकरि गर्भवास विषैं भययुक्त है ? ऐसी आशंका होतैं कहै है—

अर्थ–घोरे कहिये भयानक नरक समान, कुंभीपाके कहिये हांडी विषैं धरि दहन करणां, तिस कुंभीपाक विषैं, सुपच्यमानानां कहिये भलै प्रकार पच्यमान ऐसे जे हम (ईहां षष्ठी विभक्ति कर्ता विषैं हैं) तिननैं रुधिरचलाविलप्रचुरे कहिये रुधिरकरि चपल ग्लानि युक्त ऐसे गर्भ रूप वसतिका विषैं वसना है ।।४०।।

गर्भवासतैं भययुक्त होतैं मुनि कहा इच्छै है ? सो कहै हैं—

अर्थ–ते साधु देख्या है संसार का, शरीर का बहुरि भोगनि का परमार्थ रूप जिननैं, 'विज्ञानविचक्षणया' कहिये भेदज्ञानादि करि कुशल ऐसी बुद्धिकरि, बहुरि 'ज्ञानकृतदीपिकया' कहिये श्रुतज्ञान रूप दीपक कहि, गर्भ रहित वास हैं ताहि विमृगयंते कहिये भलैं प्रकार वांछै है ।।४१।।

विहार करते मुनि कहा भावै है ? सो कहै है—

अर्थ–भावनां विषैं रत ऐसे साधु वीतरागनिका ज्ञान, दर्शन, चारित्र, योग कहिये ध्यान बहुरि वीर्य इनकरि सहित वैराग्य है ताहि भावै है ।।४२।।

तथा—

देहे णिरावयक्खा अप्पाणं दमरुई दमेमाणा ।
धिदिपग्गहपग्गहिदा छिंदंति भवस्स मूलाइं ।।४३।।

देहे देहविषये निरपेक्षा ममत्वरहिता:, दमरुचय इंद्रियनिग्रहतत्परा:, आत्मानं दमयंत:, धृतिप्रग्रहप्रगृहीता धृतिवलसंयुक्ता: छिंदंति भवस्य मूलानीति ।।४३।।

विहाशुद्धिं व्याख्याय भिक्षाशुद्धिं प्रपंचयन्नाह—

छट्ठट्ठमभत्तेहिं पारेंति य परघरम्मि भिक्खाए ।
जमणट्ठं भुंजंति य ण वि य पयामं रसट्ठाए ।।४४।।

षष्ठाष्टमभक्तैस्तथा दशमद्वादशादिचतुर्थैश्च पारयंति भुंजते परगृहे भिक्षया कृतकारितानुमतिरहितलाभालाभसमानबुद्ध्या, यमनार्थं चारित्रसाधनार्थं च क्षुदुपशमनार्थं च यात्रासाधनमात्रं भुंजते, नैवं प्रकामं न च प्रचुरं रसार्थाय, अथवा नैव त्यागं कुर्वंति सद्रसार्थं यावन्मात्रेणाहारेण स्वाध्यायादिकं प्रवर्तते तावन्मात्रं गृह्णंति नाजीर्णाय बह्वाहारं गृह्णंतीति ।।४४।।

कया शुद्ध्या भुंजत इत्याशंकायामाह—

णवकोडीपरिसुद्धं दसदोसविवज्जियं मलविसुद्धं ।
भुंजंति पाणिपत्ते परेण दत्तं परघरम्मि ।।४५।।

नवकोटिपरिशुद्धं मनोवचनकायै: कृतकारितानुमतिरहितं शंकितादिदोषपरिवर्जितं नखरोमादिचतुर्दशमलविशुद्धं भुंजते पाणिपात्रेण परेण दत्तं

अर्थ–देह विषैं ममत्व रहित, इंद्रियनि के निग्रह विषैं तत्पर आत्मा कूं, उपशमभाव कूं प्राप्त करते धैर्यवलकरि सहित अैसे साधु, संसार का मूल है, तिनहि छैदे है ।।४३।।

विहार शुद्धि हैं, ताहि व्याख्यान करि भिक्षा-शुद्धि है, ताहि विस्तार ते कहै है—

अर्थ–वेला, तेला, च्यार, पांच उपवासनि कहि परघर विषैं भिक्षावृत्ति करिकै कृत, कारित, अनुमोदनाकरि रहित, लाभ-अलाभ विषैं समान बुद्धिकरि, चारित्र के साधिवे अर्थि, क्षुधा की शांति कै अर्थि, यात्रा का साधन मात्र साधु भोजन करै है । इस निमित्त वांछित बहुरि प्रचुर अैसा भोजन नांही करै है । अथवा त्यांग नांहि करै है । समीचीन रस कै निमित्त यावन्मात्र आहार-ग्रहण करै है अजीर्ण निमित्त बहुत आहार नांही ग्रहण करै है ।।४४।।

कौन शुद्धिकरि मुनिराज भोजन करैं हैं ? अैसै आशंका हौतैं कहै हैं—

अर्थ–नवकाटी-परिशुद्धं कहिये मन, वचन, कायकरि, कृत, कारित अनुमोदनाकरि रहित, शंकित आदि दश दोषनि-करि रहित, नख, रोम आदि चउदह मलकरि निर्दोष परकरि दीया, परघर विषैं पाणिपात्र-करि मुनिराज भोजन करै है । इस कथनकरि कहा उपदेश कीया स्वयं ग्रहणकरि नांही भोजन करै । बहुरि पात्र कहिये भाजन नांही ग्रहण करै । ममत्व सहित जो अपनां घर ताविषैं नांही भोजन करै है—

परगृहे, अनेन किमुक्तं भवति ? स्वयं गृहीत्वा न भोक्व्यं, पात्रं च न ग्राह्यं, स्वगृहे ममत्वमधिष्ठिते न भोक्तव्यमिति ।।४५।। तथा—

उद्देसिय कीदयडं अण्णादं संकिदं अभिहडं च ।
सुत्तप्पडिकूडाणि य पडिसिद्धं तं विवज्जंति।।४६।।

औद्देशिकं, क्रीतं, अज्ञातमपरिज्ञातं, शंकितं संदेहस्थानगतं प्रासुकाप्रासुकभ्रान्त्या, अभिघटमित्येवमादि सूत्रप्रतिकूलं सूत्रप्रतिषिद्धमशुद्धं[१] च यत्तत्सर्वं विवर्जयंतीति ।।४६।।

भिक्षाभ्रमणविधानमाह—

अण्णादमणुण्णादं भिक्खं णिच्चुच्चमज्झिमकुलेसु ।
घरपंतिहिं हिंडंति य मोणेण मुणी समादिंति ।।४७।।

अज्ञातं[२] यत्र गृहस्थै: साधव आगमिष्यंति भिक्षार्थं नानुमतं स्वेन च तत्र मया गंतव्यमिति[३] नाभिप्रेतं अनुज्ञातं[४] गृहस्थैर्यतय आगमिष्यंति भिक्षार्थं स्वेन चावग्रहादिरूपेण मया तत्र गंतव्यं नानुमतं, भिक्षां चतुर्विधाहारं, नीचोच्चमध्यमकुलेषु दरिद्रेश्वरसमानगृहिषु[५] गृहपंक्त्या हिंडंति पर्यटंति, मौनेन मुनय: समाददते भिक्षां गृहणंतीति ।।४७।।

तथा रसनेंद्रियजयमाह—

सीदलमसीदलं वा सुक्कं लुक्खं सिणिद्ध सुद्धं वा ।
लोणिदमलोणिदं वा भुंजंति मुणी अणासादं ।।४८।।

अैसें जाननां ।।४५।।

तैसे बहुरि कहै है—

अर्थ–उद्देशिक कहिये मुनिनि-निमित्त कीया भोजन, क्रीततरं कहिये मोल देय लीया-भोजन, अज्ञातं कहिये अपरिज्ञात, शंकित कहिये प्राशुक-अप्राशुक की भ्रांतिकरि संदेह का स्थान कूं प्राप्त भया, अभिघटं कहिये अन्य स्थानसूं आया इत्यादिक, सूत्रतैं प्रतिकूल, बहुरि-सूत्रनि विषैं निषेध कीयां जो आहार तिस समस्तकूं मुनिराज त्यजै हैं ।।४६।।

आगै भिक्षा-निमित्त गमन का विधान है, ताहि कहै है—

अर्थ–नीचोच्चोमध्यमकुलेषु कहिये दरिद्र, ईश्वर, समान घरनि विषैं, घरनि की पंक्ति करिकैं हिडंति कहियै भ्रमैं है, मौन सहित मुनीश्वर, भिक्षं कहिये चतुर्विध आहार है, ताहि ग्रहण करै है ।।४७।।

आगैं रसना इंद्रिय का जय है, ताहि कहै है—

अर्थ–शीतल कहिये पूर्वाह्न समय विषैं कीया त्यजा है उष्ण भाव जानै अैसा भोजन, अशीतलं कहिये तिसही क्षण उतर्‍या हुवा

---

१. द सूत्रप्रतिसिद्धं च यत् । २. द अज्ञाना । ३. टिप्पणी में 'मया गन्तव्यं' ऐसा पाठ है ।
४. ग अननुज्ञातं चानुमतं । 'अननुज्ञातं' पाठ टिप्पणी में है । ये दोनों पाठ संगत प्रतीत होने से ऐसा अर्थ किया है । ५. ख गृहेषु ।

शीतलं पूर्वाह्णवेलायां कृतं परित्यक्तोष्णभावं भोज्यं, अशीतलं तत्क्षणादेवावतीर्णमपरित्यक्तोष्णभावमोदनादिकं, रूक्षं घृततैलादिरहितं कोद्रवमकुष्टादिकं वा, शुष्कं दुग्धदधिव्यंजनादिरहितं, स्निग्धं घृतादिसहितं शाल्योदनादिकं, शुद्धं पिठरादवतीर्णरूपं न च मनागपि विकृतं, लवणयुक्तं अलवणं वा भुंजते मुनयोऽनास्वादं यथा भवति जिह्वास्वादरहितमिति ।।४८।।

यमनार्थपदस्यार्थं निरूपयन्नाह—

अक्खोमक्खणमेत्तं भुंजंति मुणी पाणधारणणिमित्तं ।
पाणं धम्मणिमित्तं धम्मं पि चरंति मोक्खट्ठं ।।४९।।

अक्षम्रक्षणमात्रं यथा शकटं धुरालेपनमंतरेण न वहत्येवं शरीमप्यशनमात्रेण विना न संवहतीति मुनयः प्राणधारणनिमित्तं किंचिन्मात्रं भुंजते, प्राणधारणं च धर्मनिमित्तं कुर्वंति, धर्ममपि चरंति मोक्षार्थं मुक्तिनिमित्तमिति ।।४९।।

लाभालाभविषये समत्वमाह—

लद्धे ण होंति तुट्ठा ण वि य अलद्धेण दुम्मणा होंति ।
दुक्खे सुहे य मुणिणो मज्झत्थमणाउला होंति ।।५०।।

भिक्षाया लाभे आहारादिसंप्राप्तौ न भवंति संतुष्टाः संतोषपरिगता[१] जिह्वेन्द्रियवशंगता अद्य[२] लब्धा भिक्षेति न हर्षं विदधति स्वचित्ते न चाप्यलब्धे भिक्षाया अलाभेऽसंप्राप्तौ सत्यां दुर्मनसो विमनस्का न भवंति 'अस्माभिराहारादिकमद्य न लब्धमिति दीनमनसो न भवंति' दुःखे संजाते सुखे च समुद्भूते मुनयोमध्यस्थाः समभावा अनाकुलाश्च भवंतीति ।।५०।।

नांही त्यज्या है उष्णभाव जानैं-ऐसा ओदनादिक, रूक्षं कहिये घृत-तैलादिक करि रहित कोदू, मकडा (मक्का) आदि धान्य, शुष्कं कहिये दूध, दही, व्यंजन इत्यादिक करि रहित, स्निग्ध कहिये घृतादिक करि सहित शाल्योदनादिक, शुद्धं कहिये चूलासैं उतर्या किंचिंत मात्र हू विकार रूप नांही भया, लवण सहित वा लवण रहित ऐंसे मुनि जीभ के स्वाद-रहित भोजन करै है ।।४८।।

आगै यमनार्थ पद का अर्थ है, ताहि निरूपण करतै संतै कहैं हैं—

अर्थ–अक्षमृक्षणमात्र कहिये जैसे गाडा धुर के वागे बिना (गाडी की धुरी में ओंगन का लेपन दिये बिना) चालै नांही, ऐसे शरीर हू आहार-मात्र बिना चालैं नांही या कारण मुनि प्राणधारण निमित्त किंचिन्मात्र भोजन करै है । बहुरि प्राणधारण है ताहि धर्मनिमित्त करै है। धर्म हू मोक्ष कै अर्थि आचरै है ।।४९।।

आगै लाभ-अलाभ विषैं समभाव है, ताहि कहै है—

अर्थ–मुनि हैं ते आहारादिक की प्राप्ति विषैं, संतुष्टा कहिए जिह्वा इंद्रिय कै वशि हुये संते संतोष कूं नांही प्राप्त होय है । बहुरि भिक्षा की अप्राप्ति होत संतै मलिन-चित्त नांही होय है । हम आजि आहारादिक नांही पाया—ऐसें दीनचित्त नांही होय है । दुःख होतैं, बहुरि सुख होतैं मुनि मध्यस्थ-समभावजुत बहुरि अनाकुल होय हैं ।।५०।।

---

१. क संतोषपराः । २. पुष्पिकान्तर्गतः पाठः 'द' 'क' प्रतौ नास्ति ।

चर्यायां मुनीनां स्थैर्यं निरूपयन्नाह—

ण वि ते अभित्थुणंति य पिंडत्थं ण वि य किंचि जायंति ।
मोणव्वदेण मुणिणो चरंति भिक्खं अभासंता ।।५१।।

नापि ते मुनयोऽभिष्टुवन्ति नैवोपश्लोकादिभिः स्तुतिं कुर्वंति पिंडार्थं ग्रासनिमित्तं, नैवापि च किंचित् याचंते न चापि प्रार्थयंते द्रव्यादिकमाहाराय, मौनव्रतेन तोषमादाय मुनयश्चरंति भिक्षार्थमाहारार्थं पर्यटंति,अभाषयंतः खात्कारघंटिकादिसंज्ञां वा न कुर्वंतीति न पौनरुक्त्यमिति ।।५१।।

तथा—

देहिति दीणकलुणं[1] भासं णेच्छंति एरिसं वोत्तु[2] ।
अवि णीदि अलाभेणं ण य मोणं भंजदे धीरा ।।५२।।

देहीति मम ग्रासमात्रं दद्ध्वं यूयमिति दीनां करुणां च भाषां नेच्छंति । ईदृशीं वक्तुं सुष्ठु अहं बुभुक्षितो मम पंच सप्त वा दिनानि वर्तंते भोजनमंतरेणेति वचनं दीनं यदि मह्यं भोजनं[3] न प्रयच्छत तदा मृतोऽहं शरीरस्य मम सुष्ठु कृशता रोगादिभिर्ग्रस्तोऽहं नास्माकं किंचिद्विद्यतो याचनादिपूर्वकं वचनं करुणोपेतमिति, अपि निवर्त्ततेऽलाभे वा लाभे संजाते निवर्त्तते भिक्षागृहेषु न पुनः प्रविशंति न च मौनं भंजंति न किंचिदपि प्रर्थयंते भोजनाय धीराः सत्वसंपन्ना इति ।।५२।।

आगै चर्या विषैं मुनिनि कै धैर्य है, ताहि निरूपण करते संते कहै है—

अर्थ–ते मुनिश्वर भोजन निमित्त श्लोकादिकानि करि स्तुति नांही करै है । बहुरि आहार निमित्त किंचिन्मात्र द्रव्यादिक नांही जाचै हैं । मौनव्रतकरि सहित जो संतोष है, ताहि ग्रहण करि मुनि भिक्षा निमित्त विचरै हैं । खंखारवो बहुरि घंटादिक की संज्ञा नांही करै है । इस कथन करि मौन अर असंभाषण का एकार्थ है, तातैं पुनरुक्त दोष आवै है । तिस पुनरुक्त दोष का निराकरण कीया ।।५१।।

तैसें बहुरि कहै है—

अर्थ–देहि कहिये तुम मोकौं ग्रास मात्र देहु या प्रकार दीन अर करुणा रूप असी भाषा है ताहि नांहि इच्छै हैं । बहुरि ईदृशीं वक्तुं कहिये हम अति बुभुक्षित हैं, मेरै पांच वा सात दिन भोजन-बिना व्यतीत भये—असा दीनवचन बहुरि जो हमारे अर्थि भोजन नांही देहुगे तो हम मूये (मर जायेंगे), मेरै शरीर कैं अत्यंत क्षीणता है, रोगादिक करि हम ग्रस्त हैं, हमारै पासि कछु विद्यमान नांही—अैसें याचनादिकपूर्वक वचन हैं, सो करुणायुक्त वचन हैं अैसा हू वचन त्यजै हैं । अलाभ बहुरि लाभ होत संतै भिक्षा-गृह विषैं बहुरि प्रवेश नांही करै है । धीरा कहिये साहसी मुनि भोजन कै अर्थि मौन नांही त्यजैं है, कछु प्रार्थना नांही करै है ।।५२।।

---

१. माणिकचंद ग्रन्थमाला एवं ज्ञानपीठ से प्रकाशित प्रतियों में ''कलुसं'' पाठ है ।
२. अ० ब० वत्तुं । ३. क० भोज्यमत्रं ।

यदि न याचंते किमात्मना किंचित् कुर्वंतीत्याशंकायामाह—

पयणं व पायणं वा ण करेंति अ णेव ते करावेंति ।
पयणारंभणियत्ता संतुट्ठा भिक्खमेत्तेण ।।५३।।

पचनं स्वेनौदनादिनिर्वर्त्तनं पाचनं स्वोपदेशेनान्येन निर्वर्तनं [1] कुर्वंति नापि कारयंति मुनयः, पचनारंभान्निवृत्ता दूरतः स्थिताः संतुष्टाः, भिक्षामात्रेण—कायसंदर्शनमात्रेण भिक्षार्थं पर्यटंतीति।।५३।।

लब्धमनपि संनिरीक्ष्य गृह्णंतीत्येवं निरूपयन्नाह—

असणं जदि वा पाणं खज्जं भोजं लिज्ज पेज्जं वा ।
पडिलेहिऊण सुद्धं भुंजंति पाणिपत्तेसु ।।५४।

अशनं भक्तादिकं, यदि वा पानं दुग्धजलादिकं, खाद्यं लड्डुकादिकं, भोज्य भक्ष्यं मंडकादिकं, लेह्यमास्वाद्यं, पेयं स्तोकभक्तसिक्थपानबहुलं, वा विकल्पवचनः, प्रतिलेख्य शुद्धं भुंजते पाणिपात्रेषु न भाजनादिष्विति ।।५४।।

अप्रासुकं परिहरन्नाह—

जं होज्ज [2]अविव्वण्णं पासुग[3] पसत्थं तु एसणासुद्धं ।
भुंजंति पाणिपत्ते लद्धूण य गोयरग्गम्मि ।।५५।।

आगै जो नांही जाचै हैं तो कहां आप कछु करैं है ? ऐसी आशंका हौंते कहै है—

अर्थ–आपकरि ओदनादिक का पकाणां सो पचना कहिये । आपके उपदेशकरि अन्यकरि पकाणां सो पाचन कहिये । ऐसा भोजनकूं ते मुनि नांही करै हैं, नांही करावै हैं । पकावणै के आरंभतै दूर तिष्ठते भिक्षामात्रेण कहियै शरीर के दिखावे मात्रकरि संताष कूं प्राप्त भये, भिक्षा निमित्त बिचरैं है ।।५३।।

आगै प्राप्त भया हू भोजन कूं भलै प्रकार देखि ग्रहण करै हैं ऐसे निरूपण करते संते कहै है—

अर्थ–अशनं कहिये भक्तादिक, बहुरि पानं कहिये दूध, जल कूं आदि दे, खाद्यं कहिये लाडूकूं आदि दे, भोज्यं कहिये भक्ष्य रोटी, मडक्या आदि दे, लेह्य कहिये स्वाद्य वस्तु, पेयं कहिये स्तोक भात प्रचुर चावल का मांड सहित । इहां ''वा'' अव्यय है, सो भेद का वाचक है । ऐसा आहार कूं शुद्ध देखि पाणिपात्र विषैं मुनि भोजन करै है-भाजनादिक विषैं नाहीं करै है ।।५४।।

आगै अप्रासुक भोजन कूं त्यज्यते आचार्य कहै है—

अर्थ–जो भोजन विवर्ण रूप नांही होय, प्राशुकं कहिये सम्मूर्छनादि रहित निर्जीव होय, प्रशस्तं कहिये मनोहर होय, बहुरि एषणा

---

१. क० निर्वर्तनमशनस्य । २. अ० ब० अवा । ३. क० द० पासुय ।

यद्भवत्यविवर्णरूपं प्रासुकं सम्मूर्छनादिरहितं निर्जीवं जंतुरहितं च, प्रशस्तं मनोहरं, एषणासमितिविशुद्धं, गोचराग्रे भिक्षावेलायां, लब्ध्वा पाणिपात्रेषु भुंजत इति ।।५५।। तथा—

जं होज्ज बेहिअं तेहिअं च वेवण्णजंतुसंसिट्ठं[1] ।
अप्पासुगं तु णच्चा तं भिक्खं मुणी विवज्जंति[2] ।।५६।।

यद्भवति द्व्यहजातं त्र्यहजातं द्विदिनभवं त्रिदिनभवं च, विवर्णरूपं स्वभावचलितं, जंतुसम्मिश्रमागंतुकैः सम्मूर्छनजैश्च जीवैः सहितमप्रासुकमिति ज्ञात्वा तां भिक्षां मुनयो विवर्जयन्तीति ।।५६।।

विवर्जनीयद्रव्यमाह—

जं पुप्फियं[3] किण्णइदं दट्ठूणं पूप-पप्पडादीणि ।
वज्जंति वज्जणिज्जं भिक्खू अप्पासुयं जं तु ।।५७।।

यत्पुष्पितं नीलकृष्णश्वेतपीतादिरूपजातं, क्लिन्नं कुथितं दृष्ट्वा अपूप-पर्पटादिकं वर्जनीयं, लब्धमपियत्सर्वं यत्किंचिदप्रासुकं तददीनमनसो वर्जयंति परिहरंतीति ।।५७।। एवम्भूतं तु गृह्णंतीत्याह—

जं सुद्धमसंसत्तं खज्जं भोज्जं च लेज्ज पेज्जं वा ।
गिह्णंति मुणी भिक्खं सुत्तेण अणिंदयं जं तु ।।५८।

यच्छुद्धं विवर्णादिरूपं न भवति, जंतुभिः संसृष्टं च न भवति । खाद्यं भोज्यं लेह्यं पेयं च, सूत्रेणानिन्दितं तद्भैक्ष्यं मुनयो गृह्णंतीति ।।५८।।

समितिकरि शुद्ध होय, तिस भोजन कूं भिक्षा समय विषैं पायकरि पाणिपात्र विषैं आहार करै है ।।५५।।

तैसें ही बहुरि कहैं है—

अर्थ–जो भोजन दोय दिवस का कीया होय, बहुरि तीन दिवस का कीया होय, विवर्ण रूप कहिये स्वभावसूं चलित होय, जंतु संश्लिष्टं कहिये आये जीवनिकरि बहुरि सम्मूर्छन जीवनिकरि सहित होय, ताहि अप्राशुक जांणि तिस भिक्षा कूं मुनि त्यजै है ।।५६।।

आगै त्याज्य द्रव्य है, ताहि कहै है—

अर्थ–जो पुष्पितं कहिये नील, कृष्ण, स्वेत, पीतादि, रूप भया याकूं देशभाषा विषैं ऊलणि वा नीलफूलि (फफूंद) कहै है । बहुरि क्लिन्नं कहिये कुथित-दुर्गंध रूप—अैसे पूवा, पापड़ इत्यादिक देखिकरि त्यजवै योग्य प्राप्तभया जो सर्व कछु अप्रासुक, ताहि नांही है दीनमन जिनकां-अैसे मुनि परिहरै है ।।५७।।

आगै अैसा आहार मुनि ग्रहण करै है सो कहै है—

अर्थ–यत् कहिये जो, शुद्धं कहिये विवर्णादि रूप नांही होय, बहुरि जंतुनिकरि युक्त नांही होय—अैसा खाद्य, भोज्य, लेह्य, पेय, सूत्रकरि अनिंदित सो भोजन मुनि ग्रहण करै है ।।५८।।

---

१. अ० ब० वावण्ण, ग० विवण्ण । २. अ० ब० जेंति । ३. अ० ब० पुप्फिद ।

आमपरिहारायाह—

फलकंदमूलबीयं अणग्गिपक्कं तु आमयं किंचि ।
णच्चा अणेसणीयं ण वि य पडिच्छंति ते धीरा ।।५९।।

फलानि कंदमूलानि बीजानि चाग्निपक्वानि न भवंति यानि अन्यदप्यामकं यत्किंचित्तदनशनीयं ज्ञात्वा नैव प्रतीच्छन्ति नाभ्युपगच्छन्ति ते धीरा इति ।।५९।। यदशनीयं तदाह—

जं हवदि अणिव्वीयं णिवट्टिमं फासुयं कयं चेव ।
णाऊण एसणीयं तं भिक्खं मुणी पडिच्छंति ।।६०।।

यद्भवत्यबीजं निर्बीजं, निर्वर्त्तिमं निर्गतमध्यसारं, प्रासुकं कृतं चैव ज्ञात्वाऽशनीयं तद्भैक्ष्यं मुनयः प्रतीच्छंतीति ।।६०।।

भुक्त्वा किं कुर्वंतीत्याशंकायामाह—

भोत्तूण गोयरग्गे तहेव मुणिणो पुणो वि पडिकंता ।
परिमिदएयाहारा खमणेण पुणो वि पारेंति ।।६१।।

गोचराग्रे भुक्त्वा भिक्षाचर्यामार्गे भक्त्वा तथापि मुनयः पुनरपि प्रतिक्रामंति दोषनिर्हरणाय क्रियाकलापं कुर्वन्ते, यद्यपि कृतकारितानुमतिरहिता भिक्षा लब्धा तथापि तदर्थं वा शुद्धिं कुर्वन्त्यतीव यतयः, परिमितैकाहाराः परिमित[1] एक एकवेलायामाहारो येषां ते परिमितैकाहाराः क्षमणेनोपवासेनैकस्थानेन वा पुनरपि पारयंति भुंजते इति ।।६१।।

आगै अपक्व का परिहार जो त्याग ताहि कहै है—

अर्थ–अग्निकरि नांही पके असे जे फल कंद, मूल, कंदमूल, बीज औरहू जो कछु, आमकं कहिये काचा तिसकूं अभक्ष्य जाणि, ते धीर मुनि नांही इछै है ।।५९।। आगै जो खावे योग्य है, ताहि कहै है—

अर्थ–जो निर्वीज होय, निकस्या है मध्य सार जाका, बहुरि प्राशुक कीया होय असे खायवे योग्य जांणि मुनि तिस भोजन कूं इछै है ।।६०।। आगै भोजनकरि मुनि है ते कहा करै है ? सो कहै है—

अर्थ–गोचराग्रे कहिये भिक्षाचर्या के मार्ग विषैं भुक्त्वा कहिये भोजन करतो हू मुनि, बहुरि हू दोष के निवारबे अर्थि प्रतिक्रमण करैं है ।।६१।।

भावार्थ–कृत, कारित, अनुमोदना रहित भिक्षा प्राप्त भई तोहू तिसके अर्थि मुनि अत्यंत शुद्धि करै है । कैसे हैं मुनि परिमित कहिये एक वेला विषैं, एकबार है भोजन जिनिकै ते क्षमणेन कहिये उपवास करिकै, बहुरि एक ठाणा (स्थान) पारयंति कहिये भोजन करै है ।।६१।।

---

१. द प्रतौ नास्ति

ज्ञानशुद्धिं निरूपयन्नाह—

ते लद्धणाणचक्खू णाणुज्जोएण दिट्ठपरमट्ठा ।
णिस्संकिदणिव्विदिगिंछादबलपरक्कमा साहू ।।६२।।

ते मुनयो लब्धज्ञानचक्षुषो ज्ञानोद्योतेन दृष्टपरमार्था मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं मन:पर्ययावधिज्ञानमुद्योतस्तेन ज्ञातसर्वलोकसारा:, शंकाया श्रुतज्ञानादिनिरूपितपदार्थविषय संदेहान्निर्गता नि:शंका, विचिकित्साया निर्गता निर्विचिकित्सा आत्मबलानुरूप: पराक्रमो येषां ते आत्मबल-पराक्रमा यथाशक्त्युत्साहसमन्विता: साधव इति ।।६२।।

पुनरपि किंविशिष्टा इत्याशंकायामाह—

अणुबद्धतवोकम्मा खवणवसगदा तवेण तणुअंगा ।
धीरा गुणगंभीरा अभग्गजोगा य दिढचरित्ता य ।।६३।।

अनुबद्धं संततं तप:कर्म तपोऽनुष्ठानं येषां तेऽनुबद्धतप:कर्माणो द्वादशविधे तपस्युद्यता:, क्षमणवशंगता:, तपसा तनुशरीरा: धीरा, गुणगंभीरा गुणसंपूर्णा:, अभग्नयोगा: दृढचरित्राश्च ।।६३।।

तथा—

आलीणगंडमंसा पायडभिउडीमुहा अधियदच्छा ।
सवणा तवं चरंता उक्किण्णा धम्मलच्छीए ।।६४।।

आलीनगंडमांसा: क्षीणकपोला: प्रकटभृकुटिमुखा अधिकाक्षास्तारकामात्रनयनाश्चर्मास्थिशेषा: श्रमणास्तपश्चरंत एवंभूता अपि संयुक्ता धर्मलक्ष्म्या

आगै ज्ञान शुद्धि है, ताहि निरूपण करते कहै है—

अर्थ–ते मुनि पाया है ज्ञाननेत्र जिननै, ज्ञानोद्योतेन कहिये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान-सो ही भया उद्योत तिसकरि जान्या है सर्वलोक का सार जानै, शंका जो श्रुतज्ञानादि करि निरूपण कीये पदार्थ तिन विषैं संदेहतैं रहित अैसै निश्शंक, बहुरि विचिकित्सा करि रहित अैसे निर्विचिकित्सा अपनैं बल कै समान है पराक्रम जिनके अैसे आत्मबल पराक्रमा: कहिये यथाशक्ति उत्साहकरि सहित अैसे साधु हैं ।।६२।।

आगै बहुरि हू कैसे हैं साधु? अैसी आशंका हौंते कहै है—

अर्थ–निरन्तर तप:कर्म का है अनुष्ठान जिनकै, ते अनुबद्धतप: कर्माण कहिये द्वादश प्रकार तप विषैं उद्यमी, अैसे उत्तमक्षमा के धारी तपकरि क्षीण भया है शरीर जिनका, धीर गुणकरि गंभीर कहिये संपूर्ण अभग्न है योग जिनका बहुरि दृढ़ है चारित्र जिनका ।।६३।।

तथा—

अर्थ–क्षीण भये है कपोल जिनकै, प्रगट हैं भ्रकुटी मुख है जिनका, अधिकाक्षा कहिये तारका मात्र है नेत्र जिनकै, चाम अर हाड है अवशेष जिनकै-अैसे मुनि तप कूं आचरण करते हैं तो हू धर्मरूप लक्ष्मीकरि संयुक्त हैं, ज्ञान अर तपोभावना करि युक्त है जातैं ज्ञानमात्रतैं

ज्ञानभावनयोपेता यतो[१] न ज्ञानमात्रत्सिद्धिरिति ।।६४।।

कथं ज्ञानभावनया संपन्ना इत्याशंकायामाह—

आगमकदविण्णाणा अट्ठंगविदू य बुद्धिसंपण्णा ।
अंगाणि दस य दोण्णि य चोद्दस य धरंति पुव्वाइं ।।६५।।

न केवलं भिक्षादिशुद्धौ रताः किं तु ज्ञानशुद्धावपि रता यतः आगमेन कृतं विज्ञानं यैस्ते आगमकृतविज्ञानाः श्रुतज्ञानदृष्टपरमार्थाः अष्टांगविदोऽगव्यंजनादिनिमित्तकुशलाश्चतुर्विधबुद्धिसंपन्नाश्च । कथमागमकृतविज्ञाना इति चेदंगानि दश द्वे चाचारसूत्रकृतस्थानसमवायव्याख्या-प्रज्ञप्तिज्ञातृकथोपासकाध्ययनांतःकृद्दशानुत्तरदशप्रश्नव्याकरणविपाकसूत्रदृष्टिवादसंज्ञकानि द्वादशांगानि धारयंति तथा दृष्टिवादोद्भूतचतुर्दश-पूर्वाण्युत्पादाग्रायणीवीर्यानुप्रवादास्तिनास्तिप्रवादज्ञानप्रवादसत्यप्रवादात्मप्रवादकर्मप्रवादप्रत्याख्यानप्रवादविद्यानुप्रवादकल्याण-प्राणवायक्रियाविशाललोकबिन्दुसारसंज्ञकानि धरंति जानंति यतोऽत आगमकृतविज्ञाना इति ।।६५।।

न केवलं तानि पठंति शृण्वंति, किं तु-[१]

धारणगहणसमत्था पदाणुसारीय बीयबुद्धीय ।
संभिण्णकोट्ठबुद्धी सुयसायरपारया धीरा ।।६६।।

सिद्धि नाहीं ।।६४।।

आगै कैसे ज्ञान-भावना करि संयुक्त हैं? अैसी आशंका हौंते कहै है—

अर्थ–केवल भिक्षादिक की शुद्धि विषैं रत नांही है, कहा (क्या) हैं? ज्ञानशुद्धि विषैं हू रत हैं । जातैं आगमकरि कीया है ज्ञान जिनकैं ते, आगमकृत-विज्ञाना कहिये श्रुतज्ञानकरि देख्या है परमार्थ जिननैं अष्टांग-विदश्च कहिये अंग, व्यंग, व्यंजनादिक निमित्त विषैं प्रवीण, चार प्रकार बुद्धिकरि सहित, कैसैं आगम कृत विज्ञान है ? अैसैं प्रश्न हौंतैं उत्तररूप विशेषण कहै है—

अंग बारह हैं–१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६. ज्ञातृधर्मकथा, ७. उपासकाध्ययन, ८. अंतःकृद्दशांग ९. अनुत्तरदशांग, १०. प्रश्नव्याकरणांग, ११. विपाकसूत्रांग १२. दृष्टिवादांग—ये है संज्ञा जिनकी अैसे द्वादशांग को धारैं है ।

तैंसे दृष्टिवादतैं उत्पन्न भयै अैसे **चौदहपूर्व –**उत्पादपूर्व, २. अग्रायणीपूर्व, ३. वीर्यानुवाद, ४. अस्तिनास्तिप्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्मप्रवाद, ८, कर्मप्रवाद, ९. प्रत्याख्यानप्रवाद, १०. विद्यानुवाद, ११. कल्याणवाद, १२. प्राणवाय, १३. क्रिया विशाल, १४. लोकविंदुसारपूर्व—यह है संज्ञा जिनकी तिनहि धारैं है, जानै है जातैं, यातैं आगमकृत विज्ञान है ।।६५।। विशेष—कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुसारिबुद्धि और संभिन्नश्रोतृ—इन चार ऋद्धियों को बुद्धि-ऋद्धि कहते हैं ।

केवल तिनहि पढै सुणै ही नांही, कहा करै ? सो विशेष कहिये हैं— तिनकी स्वभाव ही कहि बुद्धि अधिक है—

अर्थ–जिन अंगनि के बहुरि पूर्वनि के अर्थ के ग्रहण विषैं समर्थ, जैसैं उपाध्याय, अर्थ है ताहि प्रतिपादन करै तैसै ही परिपूर्ण ग्रहण

---

१. विशेष उच्यते स्वभावबुद्ध्यधिकास्तेषाम् इति क प्रतौ अधिक: पाठ: ।

तेषामंगानां पूर्वाणां चार्थग्रहणसमर्था यथैवोपाध्याय: प्रतिपादयत्यर्थं तथैवाविनष्टं गृहणंति प्रतिपद्यंते ग्रहणसमर्था:, गृहीतमर्थं कालांतरेण न विस्मरन्तीति धारणसमर्था: । चतुर्विधबुद्धिसंपन्ना इत्युक्ता: के ते इत्याशंकायामाह; पदानुसारिण; बीजबुद्धय:, संभिन्नबुद्धय: कोष्ठबुद्धयश्च । द्वादशांगचतुर्दशपूर्वमध्ये एकं पदं प्राप्य तदनुसारेण सर्वं श्रुतं बुध्यंते पादानुसारिण:। तथा सर्वश्रुतमध्ये एकं बीजं प्रधानाक्षरादिकं संप्राप्य सर्वमवबुध्यन्ते बीजबुद्धय:। तथा चक्रवर्तिस्कन्धावारमध्ये यद्वृत्तमार्याश्लोकमात्राद्विपददंडकादिकमनेकभेदभिन्नं सर्वै: पठितं गेयविशेषादिकं च स्वरादिकं च यच्छ्रु तं यस्मिन्-यस्मिन् येन येन पठितं[१] तत्सर्वं तस्मिन् तस्मिन्काले तस्य तस्याविनष्टं ये कथयंति ते संभिन्नबुद्धय:। तथा कोष्ठागारे संकरव्यतिकररहितानि नानाप्रकाराणि बीजानि बहुकालेनाऽपि न विनश्यंति न संकीर्यंते च यथा तथा येषां श्रुतानि पदवर्णवाक्यादीनि बहुकाले गते तेनैव प्रकारेणाविनष्टार्थान्यन्यूनाधिकानि संपूर्णानि संतिष्ठंते ते कोष्ठबुद्धय:। श्रुतसागपारगा: सर्वश्रुतबुद्धपरमार्था अवधिमन:पर्ययज्ञानिन: सप्तर्द्धिसम्पन्ना धीरा इति ।।६६।।

तथा–

सुदरयणपुण्णकण्णा हेउणयविसारदा विउलबुद्धी ।
णिउणत्थसत्थकुसला परमपयवियाणया समणा ।।६७।।

श्रुतमेव रत्नं पद्मरागादिकं तेन पूर्णौ समलंकृतौ कर्णौ येषां ते श्रुतरत्नपूर्णकर्णा:। हेतुर्द्विविधो बहिर्व्याप्तिलक्षणोऽन्तर्व्याप्तिलक्षणश्च, तत्र बहिर्व्याप्तिलक्षणस्त्रिविध: सापेक्ष सत्वं विपक्षे चासत्वं पक्षधर्मत्वमिति । अन्तर्व्याप्तिलक्षण एकविध:, साध्याविनाभाव एकं लक्षणं यस्य स

करैं, तातैं ग्रहण-समर्थ है ग्रहण कीया अैसा जो अर्थ ताहि कालांतरकरि नांही विस्मरण होय है, तातैं धारण समर्थ है । पूर्वैं चतुर्विध बुद्धि-सम्पन्न अैसे कहै थे, तैं कौन ? अैसी आशंका होतैं कहै हैं १. पदानुसारिण २. बीजबुद्धिय:, ३. सभिन्न बुद्धय:, ४. कोष्ठबुद्धय:।

१. द्वादशांग, चतुर्दशपूर्व कै मध्य एक पदकूं पायकरि ताके अनुसारकरि सर्वश्रुत कूं जाणै ते पदानुसारी ।

२. तैसैं ही सर्व श्रुत कै मध्य एक बीज, जो प्रधान अक्षरादिक, ताहि पायकरि सर्व जानै ते बीजबुद्धि कहिये ।

३. जैसैं चक्रवर्ती के कटक के मध्य विषैं, जो छंद आर्या-श्लोक मात्रा, द्विपद (या) दंडक कूं आदि दे करि अनेक भेदकरि भिन्न, सर्वकरि पठित, गेय विशेषादिक जो गावणे (गाये गये) के विशेष कूं आदि दै, बहुरि स्वरादिक जो सुण्या, जिस समय विषैं, जानैं जानैं पढ्या, तिस-तिस समय विषैं, ताकै-ताकै, तिस-तिस समस्त कूं जो कहै सो संभिन्नबुद्धि कहिये ।

४. तैसैं कोष्टांगार जो कोठागर ता विषैं संकर-व्यतिकरि रहित अैसे नाना प्रकार के बीज बहुत कालकरि हू नांही विनाशकूं प्राप्त होय है, नांही विस्वरै है जैसैं, तैसैं तिनि साधुनि कैं श्रुत कहिये सुणैं जै पद वर्ण-वाक्यादिक बहुत काल व्यतीत होतैं तिस ही प्रकारकरि नांही विनष्ट भया है अर्थ जिनका, न न्यून न अधिक-अैसे संपूर्ण तिष्ठै है, ते कोष्ठबुद्धि है ।

श्रुत-समुद्र के पारगामी समस्त श्रुतकरि जान्या है परमार्थ जिनिनैं अवधि-मन:पर्ययज्ञानकरि युक्त सप्तऋद्धिनिकरि युक्त, धीर अैसे साधु हैं ।।६६।। तथा—

अर्थ–श्रुतज्ञान सो ही भया रत्न कहिये पद्मरागादिक मणि तिसकरि पूर्ण कहिये आभूषित है कर्ण जिनके ते श्रुतरत्नपूर्ण कर्णा कहिये। हेतु-नय विशारद: कहिये हेतु अर नय तिन विषैं निपुण हैं ।

---

१. विशेष उच्यते स्वभावबुद्ध्यधिकास्तेषाम् इति क प्रतौ अधिक: पाठ: ।

साध्याविनाभावैकलक्षण: । यदंतरेण यन्नोपपद्यते तत्साध्यं, इतरत्साधनं । अन्यथानुपपत्तिवैकल्यविशेषादसिद्धविरूद्धानैकान्तिका हेत्वाभासा: । तत्र साध्येऽनुपपत्तिरज्ञातश्चासिद्ध:, तद्विशेषोऽकिंचित्कर:, अन्यथोपपन्नो विरुद्ध:, अन्यथाप्युपपन्नोऽनैकांतिक: । श्रुतनिरूपितैकदेशाध्यवसायो नय: सप्तप्रकारो नैगमादिभेदेन, तत्र सामान्यविशेषादिपरस्परापेक्षानेकात्मकवस्तुनिगमनकुशलो नैगम:, यदस्ति न तद्द्वयमतिलंघ्य वर्त्तत इति । स्व[1] जात्याविरोधेन नैकट्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदान् समस्तसंग्रहणात्संग्रह:, यथा सर्वमेकं सदविशेषादिति । संग्रहनयाक्षिप्तानां पदार्थानां विधिपूर्वकं व्यवहरणं व्यवहार:,

---

तहां 'हेतु' है सो दोय प्रकार हैं । एक-बहिर्व्याप्ति-लक्षण, बहुरि दूजा अंतर्व्याप्ति लक्षण । तहां बहिर्व्याप्तिलक्षण है सो तीन प्रकार है—१. सपक्षेसत्वं बहुरि, २. विपक्षे असत्वं, ३. पक्षधर्मत्वम् ।

याका विशेष ऐसें–तहां साध्यधर्म्म विशिष्टजो धर्मी पक्ष: । साध्य जो धर्म ताकरि विशिष्ट जो धर्मी सो पक्ष कहिये साध्य सजातीय धर्माधर्मी सपक्ष: । साध्य जो अग्न्यादिक तिसकरि सजातीय है धर्म जा विषैं ऐसा जो धर्मी सो 'पक्ष' कहिये । जैसैं रसोई कै विषैं साध्य सजातीय धर्म्म अग्नि है, तिसका हेतु धूम है सो सपक्ष विषैं विद्यमान है सो सपक्षेसत्व जानना ।

साध्यविरुद्धधर्माधर्मीविपक्ष: अर्थात् साध्यतैं विरुद्ध है धर्म जा विषैं ऐसा जो धर्मी सो विपक्ष है । जैसैं महान् द्रह (तालाब) विषैं साध्य धर्म जो अग्नि तातैं विरुद्ध धर्म है तहां धूम हेतु अविद्यमान है, विपक्षे असत्व जाननां ।

पक्षेव्याप्यवर्तमानत्वं हेतो: पक्षे धर्मत्वं—तिस पक्ष कै विषैं हेतु के व्याप्य वर्तमानपनां है सो पक्षधर्मत्व है । जैसैं पर्वत कै विषैं साध्य अग्नि है, तहां धूम बर्तै है सो पक्षधर्मत्व जानना ।

दूजा अंतर्व्याप्तिलक्षण हेतु है सो एक प्रकार है । "साध्यविनाभावैकलक्षण कहिये साध्यतैं अविनाभाव है एक लक्षण जाका-ऐसा जानना ।" जा बिना जो नांही उपजै सो साध्य है, अन्य साधन है ।

भावार्थ–जैसै साध्य तो अग्नि है, काहै तैं ? अग्नि बिना धूम की उत्पत्ति नांही बनती, यातैं । अर साधन धूम है । काहै तैं ? अग्नि नांही होय तो धूम हू नांही होय सो यह अन्य धूम साधन कहिये हेतु जाननां ।

अन्यथा-अनुपपत्ति के विकलपने के विशेषतें १. असिद्ध, २. विरूद्ध, ३. अनैकांतिक—ऐसे हेत्वाभास होय हैं । तिन विषैं साध्येऽनुपपत्ति: अज्ञानश्च-असिद्ध: । याका अर्थ—साध्य कै विषैं अनुपपत्ति जो अघटनां, बहुरि अज्ञात जो अनिश्चय सो असिद्ध है ।

भावार्थ–जो हेतु साध्य के साधन निमित्त कह्या सो तहां संभवै नांही । जैसैं 'परिणामी'-शब्दश्चाक्षुषत्वात् अर्थात् शब्द है सो परिणामी है । काहे तैं ? चाक्षुषपनैं तैं

शब्द तो श्रवणगोचर है अर चाक्षुष है सो चक्षु का विषय है । सो शब्द विषैं संभवै नांही । सो प्रथम असिद्ध हेत्वाभास है । आगै अज्ञात जो अनिश्चय दूसरा असिद्ध हेत्वाभास, ताका दृष्टांत—"अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्रधूमात्" अर्थात् जैसैं मुग्धबुद्धि जो भोला जीव तिस प्रति कहै—इहां अग्नि है, धूम है, यातैं सो तिस धूमनामा हेतु कैं वा फल आदि पणांकरि संदेहतैं अनिश्चय है, याही तैं हेतु असिद्ध है ।

---

१. क० स्वजात्यविरोधेनैकट्यमुपनीय-

यथा पृथिव्यादयोऽनेकधा व्यवस्थितास्तत्त्वं तत्र संव्यवहारदर्शनादिति । अतीतानागतकोटिविनिर्मुक्त वस्तु समयमात्रं ऋजु सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः, यथा विश्वं क्षणिकं सत्वादिति । यथार्थप्रयोगसंशब्दनाच्छब्दोर्थभेदकृत्–कालकारकलिंगानां भेदादिति । प्रत्यर्थमेकैकसंज्ञाभिरोहणादिन्द्रशक्रपुरन्दरपर्यायशब्दभेदनात्समभिरूढ इति। तत्क्रियापरिणामकाल एव तदित्थंभूतो यथा कुर्वत एव कारकत्वमिति । चत्वारोऽर्थनयास्त्रयः शब्दनयाः, पूर्वे त्रयो द्रव्यनयाः शेषाः पर्यायनया इत्येवंभूते हेतौ नये च विशारदा निपुणा हेतुनयविशारदाः । विपुलबुद्धयः महामतयः अथवा ऋजुमतयो विपुलमतयश्च मनःपर्ययज्ञानिन इत्यर्थः । निपुणार्थशास्त्रकुशला निरवशेषार्थकुशलाः सिद्धांतव्याकरणतर्कसाहित्यछन्दःशास्त्रादिकुशलाः, परमपदस्य विज्ञायका मुक्तिस्वरूपावबोधनपराःश्रमणा मुनय इति ।।६७।।

''परीक्षामुख'' आदि न्याय कैं प्रकरण विषैं हेत्वाभास च्यरि कहै हैं । इहां तीन कहै, चौथा अकिंचित्कर नाहीं कह्या । यातै ''तद्विशेषोऽकिंचित्करः''याका अर्थ— अकिंचित्कर है सो तिस ही प्रसिद्ध हेत्वाभास का विशेष है । यातैं इहां तीन भेद ही कहै, ''अन्यथा-उपपन्नोविरुद्धः'' याका अर्थ—अन्यथा-उपपन्न होय सो विरुद्ध हेत्वाभास है । याका दृष्टांत-''अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्'' याका अर्थ—अपरिणामा शब्द हैं, काहै तैं ? कृतकपनैंतैं । सौं कृतक होय सो अपरिणामी होय, नांही (याही) तैं हेतु विरुद्ध है । ''अन्यथाऽप्युपपन्नोऽनैकांतिकः'' याका अर्थ—अन्यथा हू उपपन्न होय सो अनैकांतिक हेत्वाभास है । इहां 'अपि' शब्दतैं अैसे जाननां-जो केवल सपक्ष विषैं ही याकी प्रवृत्ति नांही है, विपक्ष विषैं हू प्रवृत्ति है । इहां हेतु अर हेत्वाभास का किंचिंत् विशेष कथन है, सो ''न्याय-दीपिका'' अर ''परीक्षामुख'' के आश्रय लिख्या है । और हू विशेष तिनि न्याय के ग्रंथतैं जाननां ।

आगैं नयका लक्षण कहै है—''श्रुतनिरूपितैकदेशाध्यवसायो नयः'' याका अर्थ- श्रुतकरि निरूपित जो पदार्थ ताका एकदेश का निश्चय सो नय है । सो नैगमादि भेदकरि सात प्रकार हैं—

१. तहां सामान्य-विशेष आदि परस्पर है अपेक्षा जा विषैं, अैसा अनेक स्वरूप जो वस्तु ताका निगम कहिये ग्रहण, तामैं कुशल सो नैगम है ।२. जो है सो दोय का उल्लंघन करि नांही वर्ते है, स्वजाति के अविरोधकरि एक प्रकार स्वरूप कूं प्राप्त होय व्याप्त है भेद जिन विषैं, अैसे जे पर्याय तिनहि समस्त ग्रहणतैं संग्रह करै, सो संग्रहनय है । जैसैं सत् के अविशेषतैं समस्त एक है । ३. संग्रह नयकरि गृहीत जे पदार्थ तिनका विधि-पूर्वक अवहरण सो व्यवहारनय है । जैसैं अनेक प्रकार तिष्ठते पृथिवी आदिक तत्त्व हैं । तहां संव्यवहार का दर्शन है । ४. यातैं अतीत-अनागत कोटिकरि रहित समय मात्र जो वस्तु ताहि सरल ग्रहण करै सो ऋजुसूत्र नय है । जैसे समस्त क्षणिक है, सत्पनैंतैं । ५. यथार्थ प्रयोग कै भलै प्रकार कथनतैं काल, कारक, लिंगादिक भेदतैं अर्थभेद का कर्ता शब्दनय है । ६. अर्थ-अर्थ प्रति एक-एक संज्ञा के आरोपणतैं इन्द्र, शक्र, पुरंदर—जे पर्याय शब्द तिनके भेदतैं समभिरूढनय है । ७. तत्क्रिया परिणाम काल है सो ही एवंभूत नय है । जैसे कर्ता ही कै कारकपना है ।

इनमें च्यारि अर्थनय हैं । तीन शब्दनय हैं । पूर्वैले नैगमादिक तीन द्रव्यनय हैं । अवशेष पर्यायनय हैं । अैसे जे हेतु अर नय तिन विषैं निपुण है ''विपुलबुद्धयः'' कहिये महान् है बुद्धि जिनकी अथवा ऋजुमति अैसे, बहुरि विपुलमति अैसे मनःपर्ययज्ञान के धारी हैं- अैसा हू अर्थ जाननां । ''निपुणार्थशास्त्र कुशलाः'' कहिये समस्त जे अर्थ, शास्त्र, सिद्धान्त, व्याकरण, तर्क (साहित्य, छन्दशास्त्र)—इनकै विषैं प्रवीण, अैसे ''परमपदस्य विज्ञायका'' कहिये मुक्तिस्वरूप के जाणवे विषैं तत्पर ऐसे मुनि हैं ।।६७।।

ज्ञानमदनिराकरणायाह–

अवगदमाणत्थंभा अणुस्सिदा अगव्विदा अचंडा य ।
दंता मद्दवजुत्ता समयविदण्हू विणीदा य ।।६८।।

अपगतमानस्तंभा [1]"ज्ञानगर्वेण मुक्तास्तथाऽगर्विता जात्यादिमदरहिताः, अनुत्सृता अनुत्सुका वा कापोतलेश्यारहिताः, अचंडाश्च क्रोधरहिताः, दांता इंद्रियजयसमेताः, मार्दवयुक्ताः, स्वसमयपरसमयविदः, विनीताश्च पंचविधविनयसंयुक्ता इति ।।६८।।

तथा—

उवलद्धपुण्णपावा जिणसासणगहिद मुणिदपज्जाला ।
करचरणसंवुडंगा झाणुवजुत्ता मुणी होंति ।।६९।।

उपलब्धपुण्यपापाः पुण्यप्रकृतीनां पापप्रकृतीनां स्वरूपस्य वेदितारस्तथा पुण्यफलस्य पापफलस्य च ज्ञातारः, जिनशासनगृहीता जिनशासने[2] स्थिता इत्यर्थः, **मुणिदपज्जाला–**ज्ञाताशेषद्रव्यस्वरूपा अथवा विज्ञातरागस्वरूपाः, करणं त्रयोदशविधं चरणं चारित्रं त्रयोदशविधं ताभ्यां संवृतमंगं येषां ते करचरणसंवृतांगा अत्र प्राकृते णकारस्याभावः कृतः । अथवा करौ हस्तौ चरणौ पादौ तैः संवृतमंगं तेऽवयवप्रावरणा यत्र तत्र निक्षेपणमुक्ताश्च, ध्यानोद्यता भवंतीति ।।६९।।

आगै ज्ञानमद के निराकरण अर्थि कहैं हैं—

अर्थ–अपगत-मानस्तंभाः कहिये ज्ञान के गर्वकरि रहित हैं, तैसे ही अगर्विता कहिये जाति कूं आदि दे आठ मदनिकरि रहित है अनुत्सुता वा अनुत्सुका कहिए कापोतलेश्याकरि रहित हैं । बहुरि अचंडा कहिए क्रोधकरि रहित हैं । दांता कहिये पंचइंद्रियनि कै जयकरि युक्त हैं—मार्दवयुक्ताः कहिये कोमल परिणामनि करि सहित हैं, समयविदः कहिये-स्वमतपरमत के वेत्ता हैं । बहुरि विनीताः कहिए पंच प्रकार विनयकरि सहित हैं । ।।६८।। तथा

अर्थ–जाण्या है पुण्य-प्रकृति अर पाप-प्रकृति का स्वरूप जिनिनैं, वा पुण्यफल अर पापफल के वेत्ता हैं, जिनशासनं विषैं गृहीत कहिये स्थित, मुणिदपज्जाला कहिये जाण्या है समस्त द्रव्यन का स्वरूप जिननैं अथवा जाण्या है राग का स्वरुप जिननैं, करण जै तेरह प्रकार क्रिया, चरण जे तेरह प्रकार चारित्र, तिनकरिकै वेष्टित है शरीर जिनका ।

इहां गाथा में 'कर' शब्द है अर अर्थ 'करण' शब्द का किया, सो प्राकृत विषैं णकार कर अभाव कीया अथवा कर जे हस्त अर चरण जे पाद तिनकरिकै संवृत (संकुचित) हैं अंग जिनका, अपने अवयव ही हैं प्रावरण कहिये वस्त्र जिनकै जहां तहां निक्षेपण करि रहित हैं । बहुरि ध्यान विषैं उद्यमी अैसे मुनि होय हैं ।।६९।।

---

१. क० मानगर्वेण । २. क० जिनशासन

[1]उज्झनशुद्धिं निरूपयन्नाह–

ते छिण्णणेहबंधा णिण्णेहा अप्पणो सरीरम्मि ।
ण [2]करंति किंचि साहू परिसंठप्पं सरीरम्मि ।।७०।।

उज्झनशुद्धिर्नाम शरीरसंस्कारपरित्यागो बंध्वादिपरिहारो वा सर्वसंगविनिर्मुक्तिर्वा रागाभावो वा तत्र बंधुविषये च रागाभावं तावदाचष्टे इति ते मुनय: छिन्नस्नेहबंधा: पुत्रकलत्रादिविषये स्नेहहीना:, न केवलमन्यत्र किंत्वात्मीयशरीरेऽपि नि:स्नेहा यत: स्वशरीरे किंचिदपि संस्कारं स्नानादिकं न कुर्वंति साधव इति ।।७०।।

संस्कारस्वरूपभेदनिरूपणायाह—

मुहणयणदंतधोवणमुव्वट्टण पादधोयणं चेव ।
संवाहण परिमद्दण सरीरसंठावणं सव्वं ।।७१।।

मुखस्य नयनयोर्दंतानां च धावनं शोधनं प्रक्षालनं, उद्वर्तनं सुगंधद्रव्यादिभि: शरीरोद्धर्षणं, पादप्रक्षालनं कुंकुमादिरागेण पादयोर्निर्मलीकरणं, संवाहनमंगमर्दनं पुरुषेण शरीरोपरिस्थितेन मर्दनं परिमर्दनं करमुष्टिभिस्ताडनं काष्ठमययंत्रेण वा पीडनमित्येवं सर्वं शरीरसंस्थापनं शरीरसंस्कारं साधवो न

ज्ञानशुद्धि है, ताहि निरूपणकरि आगैं उज्झनशुद्धि है, ताहि निरूपण करते कहै हैं—

अर्थ–उज्झनशुद्धि नाम शरीर के त्याग का है वा बंध्वादिक जे कुटुंब के जो लोग, तिनका परिहार का है वा समस्त परिग्रह का अभाव का है, वा राग का अभाव का है, तहां बंधु विषैं बहुरि शरीर विषैं प्रथम राग का अभाव कहैं हैं ते मुनि छिन्नस्नेहबंधा कहिये पुत्र-भार्यादिक विषैं स्नेहकरि रहित हैं, केवल अन्य विषैं ही स्नेह-रहित नांही हैं । तो कहा हैं ? अपने शरीर हू विषैं स्नेह रहित हैं जा कारणतैं अपनै शरीर हू विषैं किंचित् मात्र हू संस्कार जो स्नानादिक ताहि साधु नाहीं करै हैं ।।७०।।

आगै संस्कार के स्वरूप-निरूपण कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ–मुख का, नेत्रनि का बहुरि दंतनि का धोवणां, सोधना, पखालना, उद्वर्तनं कहिये सुगंध द्रव्यादिक करिकै शरीर कै उबटनां करणा, पादधावनं कहिये पांवनिका पखालनां, कुंकुम, आदि के रंगकरि पांवनिका निर्मल करणां, संवाहनं कहिये अंगमर्दन, शरीर कै निकटवर्ती पुरुषनि करि मर्दन करावणां । परिमर्दनं कहिये हाथन की मुठीकरि शरीर का ताडन करावणां । बहुरि काष्ठमय यंत्रनि करि शरीर का पीडणां। या प्रकार सर्वही शरीर का संस्कार है, ताहि साधु नांही करै है ।।७१।। तथा—

अर्थ–शरीर के अंग-उपंगनिका, बहुरि उपकरणनि का धूपकरि संस्कार करणां । वमनं कहिये कंठ के सोधिवे अर्थि वा स्वरनिकै निमित्त भोजन का वमन करणां । विरेचन कहिये औषधादिक करि अधोद्वारकरि मल का काढनां । अंजनं कहिये-नेत्रनि विषैं कज्जल का आंजणां, अभ्यंगनं कहिये सुगंध तैलकरि शरीर का संस्कार करणां, लेपनं कहिये चंदन, कस्तूरिकादि करि शरीर कै लेप करणां, नासिकाकर्म, वस्तिकर्म कहिये सलाई, बत्ती आदि क्रिया का करावणां । शिरोवेधं कहिये नसानितैं लोही का कढावणां—इत्यादिक आपका समस्त शरीर

---

१. क० ज्ञानशुद्धिं निरूप्य । २. अ० ब० क० करिंति

कुर्वंतीति संबंधः ।।७१।। तथा–

धूवण वमण विरेयण अंजण अब्भंग लेवणं चेव ।
णत्थुय वत्थियकम्मं सिरवेज्झं अप्पणो सव्वं ।।७२।।

धूपनं शरीरावयवानामुपकरणानां च धूपेन संस्करणं, वमनं कंठशोधनाय स्वरनिमित्तं वा भुक्तस्य छर्दनं, विरेचनमौषधादिनाधोद्वारेण मलनिर्हरणं, अंजनं नयनयोः कज्जलप्रक्षेपणं, अभ्यंगनं सुगंधतैलेन शरीरसंस्करणं, लेपनं चंदनकस्तूरिकादिना शरीरस्य म्रक्षणं, नासिकाकर्म, वस्तिकर्म शलाकावर्त्तिकादिक्रिया, शिरावेधः शिराभ्यो रक्तापनयनं, इत्येवमाद्यत्मनः सर्वं शरीरसंस्कारं न कुर्वंतीति ।।७२।।

यद्येवं व्याध्युत्पत्तौ किं कुर्वन्तीत्याशंकायामाह–

उप्पण्णम्मि य वाही सिरवेयण कुक्खिवेयणं चेव ।
अधियासिंति सुधिदिया कायतिगिंछं ण इच्छंति ।।७३।।

उत्पन्नेऽपि व्याधौ ज्वररोगादावुपस्थितेऽपि तथा शिरोवेदनायां कुक्षिवेदनायां चोपस्थितायामन्यस्मिन् शरीरावयवे समुत्पन्ने वेदनायामप्रतीकाररूपायां अध्यासंते सहंते उपेक्षां कुर्वन्ति सुधृतयो दृढचारित्रपरिणामाः कायचिकित्सां नेच्छन्ति शरीरोत्पन्नव्याधिप्रतीकारं न समीहन्ते ज्ञानदर्शनभावनयोपेता इति ।।७३।।

नाप्यार्त्तध्यानं कुर्वन्तीत्यावेदयन्नाह–

ण य दुम्मणा ण विहला अणाउला होंति चेय सप्पुरिसा ।
णिप्पडियम्मसरीरा देंति उरं वाहिरोगाणं ।।७४।।

नाऽपि दुर्मनसो विमनस्का नैव भवंति, न विकला नापि हिताहितविवेकशून्याः, अनाकुलाः किंकर्तव्यतामोहरहिताः, सत्पुरूषाः प्रेक्षापूर्वकारिणः,

---

संस्कार नांही करै है ।।७२।।

जो अैसे है तो व्याधि की उत्पत्ति होतै कहा करै है ? अैसी आशंका हौतै कहै हैं—

अर्थ–व्याधि जो ज्वर-रोगादिक तिनिकूं उत्पन्न होतैं हू, तैंसे ही मस्तक विषैं वेदना, बहुरि उदर विषैं वेदना, आवतै संतै और हू शरीर के अवयव विषैं, नांही है प्रतीकार जाका अैसी वेदना ऊपजै, अध्यासंते कहिये सहै है, मध्यस्थभाव करै है । सुधृतयः कहिये दृढ़ है चारित्र विषैं परिणाम जिनका अैसे भये शरीर का जतन है, ताहि नांही इछै है

शरीर विषैं ऊपजी जो व्याधि ताका यतन नांही वांछै है । जातैं ज्ञानदर्शनादिक विषैं भावना युक्त है बुद्धि जिनकी, तातैं ते मुनि शरीर का जतन नांही इछै है ।।७३।।

बहुरि आर्तध्यान हू नांही करै है, अैसें उपदेश करते कहै है—

अर्थ–रोगादिक आवतै मन मैं खेदखिन्न नांही होय है, बहुरि न विकला कहिये हिताहित के विचारकरि रहित नांही होय है । अनाकुलाः कहिये कहा करणां ? अैसी आकुलता करि रहित है, सत्पुरुषाः कहिये परीक्षापूर्वक कार्य के करणहारे, निःप्रतीकार-शरीरा कहिये शरीर विषैं

निष्प्रतीकारशरीरा: शरीरविषये प्रतीकाररहिता:, ददते प्रयच्छंति उरो हृदयं, व्याधिरोगेभ्य: सर्वव्याधिरोगान् समुपस्थितान् धैर्योपेता: संत: सहन्ते ।।७४।।

किं सर्वौषधं विरेचनादिकं च नेच्छंति नैतत् कथमिदं इच्छंति यत आह–

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं ।
जरामरणवाहिवेयण खयकरणं सव्वदुक्खाणं ।।७५।।

जिनवचनमेवौषधमिदं, विषयसुखविरेचनमिन्द्रियद्वारागतस्य सुखस्य निर्हरणं, अमृतभूतं सर्वांगसंतर्पणकारणं, जरामरणव्याधिवेदनानां क्षयकरणसमर्थं, सर्वदु:खानां च क्षयकरणं, सर्वाणि ज्वरादीनि कारणानि दु:खादीनि च कार्याणि सर्वस्य कृत्स्नस्य कार्यकारणरूपस्य कर्मणो विनाशे समर्थमिति ।।७५।।

पुनरपि क्रियां कुर्वन्तीत्याह–

जिणवयणणिच्छिदमदीअ–विरमणं अब्भुवेंतिसप्पुरिसा ।
ण य इच्छंति अकिरियं जिणवयणवदिक्कमं कादुं ।।७६।।*

जिनवचने निश्चितमतय: सम्यक्त्वार्थरुचय:, विरमणं चारित्रं "अपि मरणमिति" पाठान्तरं, अभितिष्ठंति सम्यगभ्युपगच्छंति सत्पुरूषा: सत्वसंपन्ना:, न चैवेच्छंति नैव समीहंते जिनवचनव्यतिक्रमं कृत्वाऽक्रियां शरीरव्याध्यादिप्रतीकाराय जिनागमं व्यतिक्रम्याप्रासुकसेवनं मनागपि प्राणत्यागेऽपि नेच्छंतीति।।७६।।

प्रतिक्रिया रहित व्याधि रोगनिकै अर्थी, उर जो हृदय ताहि, ददते कहिये देहैं, सर्वव्याधि रोग है तिनहि निकट आये, धैर्यकरि युक्त भये सहै हैं ।।७४।।

आगैं कहा मुनि सर्वौषध विरेचनादिक नांही इछै हैं, यह नांही है, तो कैसै है ? जातैं यह औषध इछै है, अैसैं कहै है—

अर्थ–जिनवचन हैं सो ही यह औषध है-। कैसा है विषयसुख ? विरेचनं कहिये इंद्रियनि के द्वारनि करि आया सुख का काडन वारा हैं । अमृतभूतं कहिये सर्व शरीर विषैं भलै प्रकार तृप्ति का कारण है । जरा, मरण व्याधि की जो वेदना तिनकै क्षय करवै विषैं समर्थ, बहुरि सर्वदुःखानां क्षयकरणां कहिये सर्व ज्वरादिक कारण, बहुरि दु:खादिक कार्य समस्त कार्यकारण रूप कर्म का नाश करवे विषैं समर्थ है ।।७५।।

बहुरि हू क्रिया करैं है, सो कहै है—

अर्थ–जिनवचन विषैं निश्चित है बुद्धि जिनकी, भावार्थ—संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय रहित तत्त्वार्थ के रोचक, विरमण जो चारित्र ताहि अथवा 'अपिमरणं'—अैसा पाठ है ताका अर्थ मरण है, ताहि भलै प्रकार अंगीकार करै है । सत्पुरुषा कहिये सत्त्व के धारी अैसे मुनिराज जिनवचन का उल्लंघन करिकै शरीर संबंधी रोगादि के जतन अर्थि, अक्रिया-कहिये किंचित् मात्र हू अप्रासुक का सेवन प्राणत्याग होतैं हू नांही इछै है ।।७६।।और कहै हैं—

* अ० ब० प्रति में गाथा संख्या ७५ एवं ७६—इन दोनों गाथाओं की संख्या ७५, ७५ उल्लिखित है ।

अन्यच्चेत्थंभूते शरीरे कथमस्माभिः प्रतीकारः क्रियत इत्याशंकायामाह–

रोगाणं आयदणं वाधि[1]सदसमुच्छिदं सरीरघरं ।
धीरा खणमवि रागं ण करेंति मुणी सरीरम्मि ।।७७।।

इदं शरीरं रोगाणामायतनं निलयः, व्याधिशतैः सम्मूर्च्छितं निर्मितं, वातपित्तश्लेष्मादयो रोगास्तज्जनिता ज्वारादयो व्याधयोऽतो न पौनरुक्त्यं शरीरगृहं यत एवं भूतमिदं शरीरमतो धीरा मुनयः क्षणमपि रागं स्नेहानुबंधं न कुर्वंति शरीरविषय इति ।।७७।।

पुनरपि शरीरस्याशुचित्वं प्रतिपादयन्नाह–

एदं सरीरमसुई णिच्चं कलिकलुसभायणमचोक्खं ।
अंतोछाइद ढिड्ढिस–खिब्भिसभरिदं अमेज्झघरं ।।७८।।

शरीरमिदमशुचि यतो नित्यं कलिकलुषभाजनं रागद्वेषपात्रं, अचौक्षमशुभं शुभलेश्ययापि परिहीनं, छादितं चर्मणा संवृतमन्तरभ्यन्तरं यस्य तदन्तश्छादितं, अन्तःशब्दस्य पूर्वनिपातो ज्ञापकात्, अथवांत्रैर्मांसरज्जुभिश्छादितं परिवेष्टितं, ढिड्ढसं कर्पाससमानं रुधिररहितमभ्यन्तरस्थं मांसवसाविशेषरूपं, खिब्भिसं किल्विषं शुक्रशोणिताशुचिकालेज्जकादिकं तैर्भृतं पूर्णं, अमेध्यगृहं मूत्रपुरीषाद्यवस्थानमिति ।।७८।।

किल्विषस्वरूपमाह–

वसमज्जमंससोणियपुप्फसकालेज्ज सिंभसीहाणं ।
सिरजालअट्ठिसंकड चम्मेंं णद्धं सरीरघरं ।।७९।।

ऐसे शरीर विषैं हम कैसें प्रतीकार करै ? ऐसी आशंका होते कहै है—

अर्थ–यह शरीर है सो रोगनि का आयतनं कहिये स्थान है । व्याधिशतसंमूर्छितं कहिये-वात, पित्त, श्लेष्म आदि रोग हैं तिनकरि ऊपजे ज्वरादिक, ते व्याधि हैं । या अर्थतैं इहां पुनरुक्तपणां नांही जानना । जातै यह शरीर रूप घर रोगनिका स्थान व्याधिनि के सैकरानि (सैकड़ों) करि निर्माप्या याही तैं धीर मुनि हैं ते क्षणमात्र शरीर विषैं स्नेह का अनुबंध नांही करै है ।।७७।।

बहुरि हू शरीर का अशुचिपनां है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–यह शरीर सदा अपवित्र है, राग-द्वेष का पात्र है, अशुभ कहिये सुख का लेशपनां हू करि रहित है, अंतश्छादितं कहिये चामकरि वेष्टित है अभ्यंतर जाका, ऐसा इहां अंतशब्द का पूर्व निपात् है, तैं[2] अंत्रैः कहिये मांस के रज्जूनिकरि, छादितं कहिये वेष्टित है, ढिड्ढिसं कहिये कपास समान रुधिर रहितं अभ्यंतर विषैं तिष्ठता मांस अर वसा का विशेष रूप है, किल्विषभृतं कहिये वीर्य, रुधिर, अशुचि कलेजा, इत्यादिकनिकरि भर्या परिपूर्ण अमेध्यगृहं कहिये मल-मूत्रादिकनिका स्थान-ऐसा शरीर है ।।७८।।

आगै किल्विष का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–मांस के मध्य चिकणाई तैल रूप सो वसा है । हाड कै मध्य सार-अंश सो मज्जा है । रुधिर का कार्य सो मांस है । सोणित

---

१. वाहि । २. ब प्रति में “काहे तैं ? ‘अंतशुद्धितं’ इस पाठ विषैं आचार्य पूर्वनिपात कीया । या उदारणतैं अथवा”—इतना पाठ अधिक है ।

वसा मांसगतस्निग्धत्वं तैलरूपं, मज्जाऽस्थिगतसारः, मांसं रुधिरकार्यं, शोणितं रुधिरं रसकार्यं फुफ्फुसं फेनरूपं निःसारं कालेज्जकमतीवकृष्णमांसखंडरूपं, श्लेष्मसिंहानकं, शिराजालमस्थीन्येतैः संकीर्णं संपूर्णं, चर्मणा नद्धं त्वक्प्रच्छादितं शरीरगृहमशुचीति संबंधः ।।७९।। तथा—

बीभच्छं विच्छुइयं थूहाय[1] सुसाणवच्चमुत्ताणं ।
अंसूयपूयलसियं पगलियलालाउलमचोक्खं ।।८०।।

बीभत्सं द्रष्टुमशक्यं कुथितव्रणवत्, **विच्छुइयं**—अनित्यं शाश्वतरूपं न भवति अथवा विशौचं सर्वाशुचिद्रव्यैर्घटितत्वात्, **थूहाय**—कंठागतश्लेष्मा[2] अथवा नगरमध्यस्थकचवरोत्कूटसदृशं, **सुसाण**—नासिकागूथं अथवा श्मशानसदृशं, वर्चोऽशुचि, मूत्रं प्रस्रवणमेतैर्बीभत्सं, न केवलं बीभत्समनित्यं चेति। **अंसूय**—अश्रूणि नयनप्रच्युतोदकं, **पूय**—पूयं पक्वव्रणक्लेदरूपं, **लसियं**—नयनगूथं, प्रगलितलालाकुलं मुखोद्भवकुथितप्रतिस्रावाकुलमेतैः सर्वैराकुलं बीभत्समचोक्षमदर्शनीयं सर्वाशुचिसमूहवत् श्मशानवद्वेति ।।८०।।

पुनरपि शरीरस्याशुचित्वमाह—

कायमलमत्थुलिंगं दंतमल विचिक्कणं गलिदसेदं[3] ।
किमिजंतुदोसभरिदं सेंदणियाकद्दमसरिच्छं ।।८१।।

कायमलं मूत्रपुरीषादिकं, मस्तुलिंगं मस्तकस्थं शुक्लद्रव्यरूपं क्लेदान्तरं, दन्तमलं दन्तस्थं दुर्गन्धं मलं, विचिक्कणं विचिक्यं चक्षुषो मलं,

---

नाम रुधिर का है सो रस का कार्य है । झाग समान निस्सार सो पुष्पस (फुफ्फस) वहै, देशभाषा विषै याका नाम "पोपस" है । अत्यंत कृष्ण (काला) मांस का खंड रूप सो कालेज्ज (कलेजा) कहै, श्लेष्म कहिये कफ, सिंहानक कहिये नाशिका का मल भल, सिरा-जाल कहिये नसा-जाल, अस्थिनि कहिये हाड—इनकरि संकीर्ण कहिये परिपूर्ण, चर्मणा नद्धं कहिये चामकरि मढ्या अैसा शरीर रूप घर अशुचि है ।।७९।। तथा—

अर्थ—बहुरि कैसा है शरीर ? बहता गूमडा (फोड़ा) ज्यों वीभत्सं कहता देखवे कूं असक्य, विच्छुइयं कहिये अनित्य, शाश्वत रूप नांही अथवा सर्व अशुचि द्रव्यनि करि रच्या है यातैं, विशौचं कहिये अशुचि है, थूत्कार कहिये कंठतैं निकस्या कफ अथवा नगर के मध्य तिष्ठताक (पड़ा हुआ) जोडा (इकट्ठा) कूडा कू समान, सुसाण कहिये नासिका का गूगा अथवा मसाण समान, वर्च कहिये मल अर मूत्र-इनकरि ग्लानि युक्त, केवल ग्लानि रूप नांहि-अनित्य हू है । अश्रूणि कहिये—नेत्रतैं झरे आंसू पूयं कहिये पक्या गूमडा की राधि, लसियं कहिये नेत्रमल सोगीड (कीचड) जाननां । प्रगलित लालाकुलं कहिये मुखतैं झरती ग्लानि रूप लाल (लार)—इनकरि आकुल वीभत्स रूप सर्व अशुचि कै समूह ज्यों, बहुरि मसाण ज्यों ।।८०।।

बहुरि हू शरीर की अशुचिता है ताहि कहै हैं—

अर्थ—कायमल कहिये शरीरतैं उपज्या मलमूत्रादिक, मस्तुलिगं कहिये मस्तक विषैं तिष्ठता शुक्लद्रव्यरूप फरास (रूसी), दंतमल कहिये दंतानिविषैं तिष्ठता दंतमल, विचिक्यं कहिये नेत्रमल (कीचड़), गलितस्वेदं कहिये झरै है पसेव (पसीना) जा विषैं । बहुरि कृमिजंतु

---

१. ब प्रति में 'थूहाण' । २. क० कण्ठादागत श्लेष्मा । ३. अ० ब० सेयं ।

गलितस्वेदं प्रस्रवत्स्वेदं, कृमिजंतुभिर्दोषैश्च भृतं संपूर्णं, स्येंदणियाकद्दमसरिच्छं–स्यन्दनीकर्दमसदृशं रजकवस्त्रप्रक्षालननिमित्तगर्तकुथितकर्दमसमानं, अथवा कायमलमस्तुलिंगदन्तमलैर्विचिक्यमदर्शनीयं कृमिजंतु[1] दोषपूर्णं स्यंदनीकर्दमसदृशं शरीरमिति संबंध: ।।८१।।

पुनरपि वृत्तद्वयेन शरीराशुचित्वमाह–

अट्ठिं च चम्मं च तहेव मंसं, पित्तं च सिंभं[2] तह सोणिदं च ।
अमेज्झसंघायमिणं सरीरं, पस्संति णिव्वेदगुणाणुपेहि ।।८२।।

अस्थीनि च चर्माणि च तथैव तेनैव प्रकारेण मांसं पित्तं श्लेष्मा तथा शोणितमित्येवंप्रकारैरमेध्यसंघातभूतमिदं शरीरं पश्यन्ति निर्वेदगुणानुप्रेक्षिण:, ये मुनयो देहसंसारभोगनिर्वेदमापन्ना शरीरमेवंभूतं[3] पश्यन्तीति ।।८२।। तथा—

अट्ठिणिछण्णं णालिणिबद्धं, कलिमलभरिदं किमिउलपुण्णं ।
मंसविलित्तं तयपडिछण्णं, सरीरघरं तं सददमचोक्खं ।।८३।।

पूर्वग्रन्थेनोपकणं प्रतिपादितं यत्तच्छरीरे नियोजयन्नाह अस्थिभिर्निच्छादितं संवृतं, नालिकाभि: शिराभिर्निबद्धं संघटितं, कलिमलभृतं सर्वाशुचिद्रव्यपूर्णं, कृमिकुलनिचितं, मांसविलिप्तं मांसेनोपचितं, त्वक्प्रच्छादितं दर्शनीयपथं नीतं, शरीरगृहं तत्सततं सर्वकालमचौख्यमशुचि, नात्र पौनरुक्त्यदोष आशंकनीय: पर्यायार्थिकशिष्यानुग्रहादथवाऽमेध्यगृहं पूर्वं सामान्येन प्रतिपादितं तस्य वार्त्तिकरूपेणेदं तदाऽशुचित्वं सामान्येनोक्तं तस्य च प्रपंचनार्थं वैराग्यातिशयप्रदर्शनार्थं च यत इति ।।८३।।

दोष-भृतं कहिये लटनिकरि, बहुरि वात, पित्त, कफ-इनकरि भर्‍या परिपूर्ण, स्यंदनीकर्दम-सदृशं कहिये धोबी करि वस्त्र पखालने (धोने) निमित्त कीया जो गर्त (गड्ढा) ताका दुर्गंधित कादा (कीचड़) समान अथवा कायमलमस्तुलिंगदंतमल—इनकरि विचिक्यं कहिये देखवे जोग्य नांही, लटानिकरि परिपूर्ण स्यंदनी के (गड्ढे में सड़ी हुई) कर्दम (कीचड़) समान यह अशुचि शरीर है ।।८१।।

बहुरि हू दोय छंदनि करि शरीर की अशुचिता है, ताहि कहै है—

अर्थ–अस्थीनि कहिये हाड, बहुरि चर्माणि कहिये चाम तैसे ही मांस, बहुरि पित्त, श्लेषमा कहिये कफ तैसें शोणितं कहिये रुधिर[4] इन प्रकारकरि अशुचि का समूहभूत यह शरीर है, ताहि जे मुनि संसार-शरीर-भोगनितैं वैराग्य कूं प्राप्त भये, ते शरीर कूं ऐसे देखै हैं ।।८२।। तथा—

अर्थ–पहलै छंदकरि जो उपकरण कह्या ताहि शरीर विषैं जोडते संते कहै हैं । हाडनि करि मढ्या, नसानि करि बंध्या कलिमलभृतं कहिये सर्व अशुचि द्रव्यनि करि परिपूर्ण, कृमिकुलपूर्णं कहिये कृमि के समूहनि करि परिपूर्ण, मांसविलिप्तं कहिये मांसकरि लीप्या, चाम करि ढक्या, देखवे जोग्य मार्ग कूं प्राप्त भया ऐसा शरीर-रूप घर सदा-काल अचौख्यं कहिये अशुचि है ।

इहां पुनरुक्त दोष की आशंका नांही करणी । पर्यायार्थिक शिष्य के उपकार निमित्त बारंबार कह्या है । अथवा पहलैं सामान्यकरि शरीर अशुचिता का घर कह्या, ताका वार्तिक-रूपकरि यह कथन जाननां काहे तैं ? जातैं तहां कै अशुचिपनां समान्यकरि कह्या बहुरि ताहि विस्तार अर्थि, बहुरि वैराग्य के अतिशय दिखायवे अर्थि यह कथन है ।।८३।।

१. क० कृमिजन्तुपूर्णं । २. अ० ब० सेभं, । ३. क० मेवं पश्यन्तीति । ४. अ० प्रति में रुधिये रुधिर—ऐसा पाठ है ।

ईदृग्भूते शरीरे मुनयः किं कुर्वन्तीत्याशंकायामाह–

एदारिसे सरीरे दुग्गंधे कुणिमपूदियमचोक्खे ।
सडणपडणे असारे रागं ण करिंति सप्पुरिसा ।।८४।।

एतादृशे शरीरे ईदृग्भूते देहे दुर्गन्धे कुणपपूतिके कश्मलेन कुथिते शुचित्वेन विवर्जिते शुचिविवतर्जिते शतनपतनेऽसारे रागं स्नेहं न कुर्वते सत्पुरूषाः साधव इति ।।८४।।

उज्झनशुद्धिमुपसंहरन्नाह–

जं वंतं गिहवासे विसयसुहं इंदियत्थपरिभोए ।
तं खु ण कदाइभूदो भुंजंति पुणो वि सप्पुरिसा ।।८५।।

यत्किंचिद्वांतं त्यक्तं गृहवासे विषयसुखं गार्हस्थ्यं रूपरसगन्धस्पर्शद्वारोद्‌भूतं जीवसंतर्पणकारणमिन्द्रियार्थमिन्द्रियकारणेन जनितं परिभोगाश्च ये च स्त्र्यादिका वान्ताः परिभोगनिमित्तं वा तत्सुखं तानिन्द्रियार्थान् तांश्च परिभोगान् खलु स्फुटं कदाचिदपि भूदो–भूतं समुपस्थितं केनचित्कारणान्तरेण न भुंजते न परिभोगयन्ति सत्पुरूषाः साधवः, यद्वान्तं विषयसुखं तदेव केनचित्कारणान्तरेण समुपस्थितं यदि [1]भवेत्तदापि सत्पुरुषा न भुंजते न सेवन्त इति ।।८५।।

तथा–

पुव्वरदिकेलिदाइं जा इड्ढी भोगभोयणविहिं च ।
ण वि ते कहंति कस्स वि ण वि ते मणसा विचिंतंति ।।८६।।

ऐसे शरीर विषैं मुनीश्वर कहा करै हैं ? ऐसी आशंका होतैं कहै है—

अर्थ–ऐसा शरीर दुर्गंध कश्मल करि कुथित, शुचिपनां करि वर्जित, सुख रहित, खंडित पडता (गलन-पतनरूप) सार-रहित है, तिस विषैं साधु स्नेह नांही करै हैं ।।८४।।

उज्झन शुद्धि कूं संकोचते संतै कहै है—

अर्थ–जो कछु गृहवास विषैं विषय-सुख जो गृहस्थ संबंधी रूप-रस-गंध-स्पर्श द्वारनि करि उपज्या जीवनि कूं तृप्ति का कारण त्यज्या, बहुरि इंद्रियार्थ कहिये इंद्रियनि के कारणकरि ऊपज्या, बहुरि परिभोगः कहिये जे स्त्रीकूं आदि बारंबार भोगने में आवै हैं ते त्यजै सो सुखतैं इन्द्रियनि के विषयते परिभोग प्रगटपनैं कदाचित् हूं, भूतं कहिए निकटवर्ती किसही कारणांतर करि सत्पुरुष साधु नांही भोगै हैं ।।८५।।

भावार्थ–जो त्याग्या विषयसुख सो ही काहू कारणंतर करि जो प्राप्त होय ताहि, बहुरि सत्पुरुष नांही सेवै है । तथा—

अर्थ–पूर्वरत्या-क्रीडितानि कहिये पूर्वकाल विषैं जे स्त्री, वस्त्र, आभूषण, राज्य, हाथी, घोरे, रथ इत्यादिक बारम्बार भोगे । बहुरि ऋद्धि कहिये विभूति—द्रव्य, सुवर्ण, रूपादिक संपत्ति वा सौभाग्यादिक । बहुरि भोगाः कहिये पुष्प, गंध, चंदन, कुंकुमादिक, बहुरि भोजनविधि

१. भवेत्पुनरपि न

पूर्वरत्या क्रीडितानि पूर्वकाले यान्युपभोगितानि स्त्रीवस्त्राभरणराज्यहस्त्यश्वरथादिकानि यानि[1] ऋद्धिर्विभूतिर्द्रव्यसुवर्णरूप्यादिसंपत्तिः सौभाग्यादिकं च भेगाः पुष्पचन्दनकुंकुमादिकनि भोजनविधिश्च घृतपूराशोकवर्तिशाल्योदनानि चतुर्विधाहारप्रकारतदेतत्सर्वं न ते मुनयः कस्यचिदपि कथयंति नापि मनसा विचिन्तयन्ति, तत्सर्वमुपभुक्तं न वचनेनान्यस्य प्रतिपादयन्ति नाऽपि चित्ते कुर्वन्तीति ।।८६।।

उज्झनशुद्धिं व्याख्याय वाक्यशुद्धिं निरूपयन्नाह—

भासं विणयविहूणं धम्मविरोही विवज्जए वयणं ।
पुच्छिदमपुच्छिदं वा ण वि ते भासंति सप्पुरिसा ।।८७।।

भाषां वचनप्रवृत्तिमार्यां कर्णाटिकां गौडीं लाटीं विनयविहीनां खरपरुषादिसमन्वितां वर्जयन्ति, वचनं धर्मविरोधि रम्यमपि वचनं धर्मप्रतिकूलं वर्जयन्ति, अन्यदपि यद्विरुद्धं पृष्टाः संतोऽपृष्टाश्च परेण नियुक्ता अनियुक्ताश्च न ते सत्पुरुषा भाषंते न ब्रुवत इति ।।८७।।

कथं तर्हि तिष्ठन्तीत्याशंकायामाह—

अच्छीहिंय[2] पेच्छंता कण्णेहिं बहुविहाइं सुणमाणा ।
अत्थंति[3] मूयभूया ण ते करंति हु लोइयकहाओ ।।८८।।

अक्षिभिर्नयनैः पश्यन्तो निरूपयन्तः सद्रूपमसद्रूपं वा योग्यमयोग्यं च वस्तुजातं निरूपयन्तोऽपि दृष्टिरहिता इव तिष्ठंति, कर्णैः श्रोत्रेन्द्रियैर्बहुविधानि

कहिये घेवर, बरफी, फीणी, पक्वान्न, शाल्योदन जो भात इत्यादिक चतुर्विध आहार-भेद सो यह समस्त हैं, ताहि ते मुनि काहू कूं नाहीं कहै है, मनकरिहू नांही चिंतवन करै हैं ।।८६।।

भावार्थ–पूर्वकाल विषैं जो भोग्या तिस कूं अन्य कूं नांही कहै हैं । मन विषैं हू नांही चिन्तवे हैं, कर्मबंधक कारण जानि, तिनका स्मरण हू नांही करै हैं ।

उज्झनशुद्धि का व्याख्यानकरि वचनशुद्धिकूं निरूपण करते संते कहै है—

अर्थ–भाषा कहिये आर्या, कर्णाटिका, गौडी, लाटी की प्रवृत्ति (रूप भाषा को) विनयकरि रहित, खर, परुष (दुष्ट, कठोर वचन) आदि दोष सहित, ताहि वर्जै है । धर्मविरोधि कहिये धर्मतैं प्रतिकूल, रमणीक हू वचन है, ताहि वर्ज्जै हैं । अन्यहू जो विरुद्ध वचन है, ताहि परकरि पूछै, बहुरि नांही पूछै संतै, ते सत्पुरुष नांही कहैं हैं ।।८७।। (भावार्थ—किसी भी देश की भाषा में मुनि कठोर अथवा आगम विरुद्ध वचन नहीं बोलते) ।

तौ ते मुनि कैसे तिष्ठै हैं ? ऐसी आशंका होतैं कहै हैं—

अर्थ–नेत्रनिकरि समीचीन रूप, असमीचीन रूप, जोग्य-अजोग्य वस्तु समूहकूं देखते हू नेत्र रहित ज्यौं तिष्ठै है । कर्णै कहिये श्रोत इंद्रियनि करि बहुत प्रकार योग्य-अयोग्य शब्द हैं तिनहि, श्रृण्वंतोपि कहिये कान रूप साकली (शष्कुली) करि ग्रहण कराते हू, मूकभूता

१.क० या च । २. अ. ब. अट्ठीहिंअ । ३. अ. ब. अच्छंति ।

श्रव्याणि युक्तान्युक्तानि च शृण्वन्तो नानाप्रकारशब्दान् कर्णशष्कुल्या गृहणन्तोऽपि तिष्ठंति मूकभूता इव जिह्वानयनकर्णरहिता[1] इव, न ते मुनयो व्यक्तं कुर्वन्ति लौकिकी: कथा लोकव्यापारानिति ।।८८।।

कास्ता लौकिक्य: कथा इत्याशंकायामाह—

इत्थिकहा अत्थकहा भत्तकहा खेडकव्वडाणं च ।
रायकहा चोरकहा जणवदणयररायरकहाओ ।।८९।।

स्त्रीणां कथा: सुरूपास्ता: सौभाग्ययुक्ता मनोरमा उपचारप्रवणा कोमलालापा इत्येवमादिकथनं वनिताकथा: । अर्थस्य कथा अर्थार्जनोपायकथनप्रबंधा: सेवया वाणिज्येन लेखवृत्त्या कृषिकर्मणा समुद्रप्रवेशन धातुवादेन मंत्रतंत्रप्रयोगेण वा इत्येवमाद्यर्थार्जननिमित्तवचनान्यर्थकथा: । भक्तस्य कथा रसनेन्द्रियलुब्धस्य चतुर्विधाहारप्रतिबद्धवचनानि तत्र शोभनं भक्ष्यं खाद्यं लेह्यं पेयं सुरसं मिष्टमतीवरसोत्कटं जानाति सा संस्कर्तुं बहूनि व्यंजनानि तस्या हस्तगतमशोभनमपि शोभनं भवेत्तस्य च गृहे सर्वमनिष्टं दुर्गन्धं सर्वं स्वादुरहितं विरसमित्येवमादिकथनं भक्तकथा: । खेटं नद्यद्रिवेष्टितं[2] नदीपर्वतैरवरुद्ध: प्रदेश:, कर्वटं सर्वत्र पर्वतेन वेष्टितो देश: कथात्र सम्बध्यते कर्वटकथा: खेटकथास्तथा संवाहनद्रोणमुखादिकथाश्च, तानि शोभनानि निविष्टानि सुदुर्गाणि वीरपुरुषाधिष्ठितानि संयंत्रितानि परचक्राभेद्यानि बहुधनधान्यार्थनिचितानि सर्वथायोध्यानि न तत्र प्रवेष्टुं कश्चिदपि शक्नोतीत्येवमादिवाक्प्रलापा: खेटादिकथा: । राज्ञां कथा:

इव गूंगा-बहिरा ज्यौं तिष्ठै हैं । ते मुनीश्वर जीभ, नेत्र, कान इनकरि रहित पुरुष की ज्यौं, प्रकटपणैं लौकिक संबंधी कथा है, तिनहि व्यक्त नांही करै हैं।।८८।।

ते लौकिक कथा कौन हैं ? अैसी आशंका होते कहै है—

अर्थ–१. स्त्रीनिकी कथा—ते स्त्री सुरूप हैं, सौभाग्य युक्त हैं, मन कूं प्यारी हैं, विनय विषै प्रवीन हैं, कोमल है संभाषण जिनका—इत्यादिक कथन सो **स्त्रीकथा** है । २. द्रव्य की कथा—द्रव्योपार्जन का उपाय-कथन, सेवा (नौकरी) करि, वणिजकरि, लेखक-वृत्तिकरि, कृषि- कर्म-करि, समुद्र विषैं प्रवेशकरि, धातुवाद करि अथवा मंत्र-तंत्र के प्रयोगकरि इत्यादिक द्रव्योपार्जन के निमित्त वचन, ते **अर्थकथा** है । ३. भोजन की कथा—रसना-इंद्रिय विषैं लोलुपी पुरुषकूं चतुर्विध आहार रचवे के वचन, तहां अशन-पान, खाद्य, पेय, लेह्य, सुरस, मिष्ट, अत्यंत रसकरि भर्‌या-अैसे सो स्त्री बहुत व्यंजननिका संस्कारकरि जानै है, तिस हाथ आया अप्रशस्त हू प्रशस्त होय है । बहुरि ताकें घर विषैं समस्त अनिष्ट है, दुर्गंध है, सर्व स्वादु रहित है, विरस है, इत्यादि प्रशस्त-अप्रशस्त भोजन का कथन सो भक्त (भोजन) कथा है। ४. नदीकरि, पर्वतकरि वेष्टित स्थान सो खेट है । सर्वत्र पर्वत करि वेष्टित प्रदेश सो कर्वट है । इहां कथा का संबंध करणा--इनकी कथा सो खेटकथा, कर्वटकथा है । तैसे संवाहन, द्रोणमुख इत्यादिक की कथा सो सोभनीक है, सुगम हैं, दुर्ग्गम हैं, वीरपुरुषा निकरि आश्रित है, भलै यंत्रनिकरि युक्त हैं, परचक्रकरि अभेद्य हैं, बहुत धन-धान्य द्रव्यनि करि व्याप्त हैं, ते सर्वथा जुद्ध करवै जोग्य नांही, तहां कोउ हू प्रवेश करवे समर्थ नांही-इत्यादि के प्रलाप सों **खेटादि कथा** है । ५. राजनि की कथा—नाना प्रकार राजनि की चरचा—सो राजा प्रचंड है, सूरिवां है, चाणक्य-नीति शास्त्रविषैं निपुण है, समस्त समाचार मंगावे मैं निपण है, योग अर क्षेम विषैं उद्यमवान् है बुद्धि जाकी, चतुरंग है सेना जाके, जीते हैं समस्त बैरी के समूह जानैं, ताकैं आगै कोऊ नांही तिष्ठै हैं-इत्यादि वचन सौ **राजकथा** है । ६. चोरनि की कथा-

---

१. क० जिह्वाकर्णनयनरहिता । २. क० नद्या पर्वतेनावरुद्ध: ।

नानाप्रजापतिप्रति-बद्धवचनानि स राजा प्रचंड: शूरश्चाणक्यनिपुणश्चारकुशलो योगक्षेमोद्यतमतिश्चतुरंगबलो विजिताशेषवैरिनिवहो न तस्य पुरत: केनापि स्थीयते इत्येवमादिकं वचनं राजकथा: । चौराणां कथा:—स चौरो निपुण: खातकुशल: स च वर्त्मनि ग्रहणसमर्थ: पश्यतां गृहीत्वा गच्छति तेन सर्व आक्रांता इत्येवमादिकथनं चौरकथा: । जनपदो देश:, नगरं प्राकाराद्युपलक्षितं, आकरो वज्रपद्मरागसुवर्णकुंकुममुक्ताफललवणचन्दनादीनामुत्पत्तिस्थानं तेषां कथास्तत्प्रतिबद्ध[1] कथार्जनानयनयानादिवाक्प्रबंधास्तत्र रत्नं सुलभं शोभनमनर्घं मुक्ताफलं तत्र जात्यमुत्पद्यते तत्र कुंकुमादिकं समहर्घमत्रानीतं बहुमूल्यं फलदं तन्नगरं सुरक्षितं प्रासादादिविराजमानं दिव्यवनिताजनाधिष्ठितं, स देशो रम्य: सुलभान्नपानो मनोहरवेष: प्रचुरगन्धमाल्यादिक: सर्वभाषाविदग्धमतिरित्येवमादिवचनप्रबंधो जनपद-नगराकरकथा:, तासु कथासु न रज्यंति धीरा इत्युत्तरेण संबंध: ।।८९। तथा—

णडभडमल्लकहाओ मायाकरजल्लमुट्ठियाणं च ।
अज्जउललंघियाणं कहासु ण वि रज्जए धीरा ।।९०।।

नटा भरतपुत्रका रंगोपजीविन:, भटा युद्धसमर्था: सहस्रादीनां जेतार:, मल्ला अंगयुद्धसमर्था अनेककच्छपबंधादिकरणसमर्था:, मायां महेन्द्रजालादिकं प्रतारणं कुर्वन्तीति मायाकरा मायाकृतरंगोपजीविन:, जल्लामत्स्यबंधा: शाकुनिकाश्च षट्टिकाम्लेच्छादयश्च, मुष्टिका द्यूतकारा[2]

सो चौर निपुण हैं, अैंडा देवे (सेंध लगाने) में निपुण है, सो मार्ग विषैं-धन हरवै विषैं समर्थ है, देखतेनिके धन ले जाय है, तिस चौरनें सब पीडित कीये-इत्यादिक वचन सो **चोर कथा** है । ७. जनपदनाम देशका है । कोट, दरवाजे-इत्यादिकरि युक्त सो नगर हैं । आकर कहिये पद्मराग वज्र जे हीरा, सुवर्ण, कुंमकुम, मुक्ताफल, लवण, चंदनादिक का उत्पत्ति-स्थान कहिये खांनि तिनकी कथा, तिस संबंधी उपार्जन, ल्यावणां, जावणां-इत्यादिक वचननि के प्रबंध सो कैंसे ? यह कहै हैं—तहां रतन सुलभ हैं, शोभनीक हैं, बहुमूल्य हैं, तहां मुक्ताफल जातिवंत (उत्तम) उपजै हैं । तहां तै कुंकमादिक इहां ल्याये बहुमोल्य फलदाता हैं सो नगर भलैं प्रकार रक्षा युक्त हैं । प्रासाद जे महल इत्यादिकनि करि विराजमान हैं, सुंदर जे स्त्रीजन तिनकरि आश्रित हैं सो देश रमणीक हैं, सुलभ हैं । अन्नजल जहां मनोहर हैं वेश जहां, प्रचुर है गंधमाल्यादिक जहां, सर्वभाषा विषैं प्रवीणहै मति जहां, जिस देश विषैं बडे प्रवीण मनुष्य हैं—इत्यादिक वचन-प्रबंध सो **जनपद, नगर, आकर-इनकी कथा** जाननी । तिनि कथानि विषैं धीर नांही राग करैं हैं-अैसा उत्तरसूत्रकरि संबंध करनां ।।८९।। तथा—

अर्थ–नट कहिये भरतपुत्र—नृत्य की है जीविका जिनकैं, भटा कहिये जुद्ध विषैं समर्थ सहस्र पुरुषानिकूं आदि ते-तिनिकैं जैता, सहस्र भट, कोडीभट, मल्ला कहिये अंग के जुद्ध विषैं समर्थ, अनेक कच्छप बंधादिकरण विषैं समर्थ, माया कहिये महान् इंद्रजालादिक अथवा ठिगनां ताहि करै ते "माया" करि कहिये ।

भावार्थ–कपट के वेषकरि जीवे-वारे, जल्ला कहिये मांछलेनि के पकरवे वारे, शाकुनिका: कहिये पक्षीनिकै पकरवे वारे, खटीक बहुरि म्लेच्छादिक, मुष्टिका कहिये जुवारी-जूंवा का व्यसनी, आर्याकुला कहिये दुर्गा है आम्नाय जिनिका ते आर्याकुला कहिये शक्ति के उपासक, हस्त, पाद, शिर-ये जे शरीर के अवयव तिनके भेदवे विषैं समर्थ दुर्गा के पुत्र, जीवनि की हिंसा विषैं रत अथवा छेली (बकरी), भेड़ के रक्षक, बहुरि सर्व पशुनि के पालक, लंघिका कहिये वस्त्र (रस्सी) बांस-इनपरि नृत्य करवे विषैं निपुण-अैसे नट, कांजर इत्यादिकनिकी जे

---

१. क० प्रतिबद्धार्जन । २. क० द्यूतेन व्यसनिन: ।

द्यूतव्यसनिनः, अज्जउला—आर्या कुलमाम्नायो दुर्गा येषां ते आर्याकुला हस्तपादशिरःशरीरावयवभेदेन कुशला दुर्गपुत्रिका जीवहिंसनरता अथवा अजाविकारक्षकाः सर्वपशुपालाश्च लंघिका[1] वरत्रावेणूपरिनृत्तकुशला इत्येवमादीनां याः कथास्तद्व्यापारकरणं सरागचेतसा स शोभनतरोऽशोभनतरो वा कुशलोऽकुशलो वेत्येवमादयस्तासु कथासु पूर्वोक्तासु नैव रज्यंति नैवानुरागं कुर्वन्ति धीरा वैराग्यपरा इति ।।९०।।

न केवलं विकथा वचनेन वर्जयंति किंतु मनसाऽपि[2] न कुर्वन्तीत्याह—

विकहा विसोत्तियाणं खणमवि हिदएण ते ण चिंतंति ।
धम्मे लद्धमदीया विकहा तिवहेण वज्जंति ।।९१।।

इत्येवमादिविकथाः स्त्रीभक्तचौरराजकथाः विश्रुतिकथाश्च सम्यगदर्शनज्ञानचारित्रतपसां प्रतिकूलवचनानि तत्प्रतिबद्धपरिणामांश्च क्षणमपि नयनेन्मेषमत्रमपि हृदयेन चेतसा न ते मुनयश्चिन्तयंति न व्यवस्थापयंति धर्मे धर्मविषये लब्धमतयो यतो [3]विकथास्त्रिप्रकारेण मनोवाक्कायैर्वर्जयन्तीति ।।९१।।

तथा—

कुक्कुय कंदप्पाइय हासं उल्लावणं च खेडं च ।
मददप्पहत्थवणिं[4] ण करेंति मुणी ण कारेंति ।।९२।।

कुक्कुय—कौत्कुच्यं हृदयकंठाभ्यामव्यक्तशब्दकरणं, कंदप्पाइय कंदर्पायितं कामोत्पादकवचनान्यथवा रागोद्रेकात्प्रहाससंमिश्रांशिष्टवाक्यप्रयोगः कंदर्पः, हासं—हास्यमुपहास्यवचनानि, उल्लावणं—अनेकवैदग्ध्ययुक्तरम्यवचनं, खेडं चोपप्लववचनं अदुष्टहृदयेन परप्रतारणं, मददर्पेण स्वहस्तेनान्यहस्तताडनं च मुनयो न कुर्वन्ति न कारयंति नाऽप्यनुमन्यन्ते च ।।९३।।

कथा तिनका व्यापार करणां । सराग-चेत (चित्त) करि सो अति शोभनीक है वा अतिशोभनीक है, सो पुरुष प्रवीण वा अप्रवीण है-इत्यादिक तिन पूर्वोक्त कथानि विषैं धीर, वैराग्य विषै तत्पर मुनि रागभाव नांही करै हैं ।।९०।।

केवल विकथानिकूं वचनकरि नांही त्यजै है, तौ कहा ? हृदयकरि हूं विकथानि कूं नांही करै है, यह कहै हैं—

अर्थ–पूर्वोक्त विकथा जे स्त्रीकथा, भोजनकथा, चोरकथा, राजकथा-इनकूं आदि दे विकथा, बहुरि विश्रुति कथा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-इनके प्रतिकूल, बहुरि तिन संबंधी परिणाम तिनकूं क्षणमपि कहिये नेत्र के निमेष-मात्रहू हृदय जो चित्त ताकरिकै ते मुनि नांही चिंतवै हैं, नांही धारै हैं । लब्ध विषैं प्राप्त भई है बुद्धि जिनकी यातैं ते मुनि त्रिप्रकार जो मन, वचन, काय तिन करिकैं विकथानि कूं वर्जै हैं ।।९१।।

अर्थ–कौत्कुच्यं कहिये हृदय अर कंठ करिकैं अप्रगट शब्द का करणा, कंदर्पायितं कहिए काम के उपजावनहारे वचन अथवा राग के अधिकातैं, अत्यंत हास्यतैं मिल्या अनुचित वचन का प्रयोग, अन्य विषैं दुष्ट कायक्रियाकरि युक्त सो कौत्कुच्य हैं । राग की आधिक्यतातैं अत्यंत हास्यतैं मिल्या अनुचित वचन का प्रयोग सो कांदर्प्प हैं । हास, कहिये हास्य-उपहास्य के वचन । उल्लावणां कहिये अनेक चातुरी युक्त रमणीक वचन, बहुरि खेदं कहिये उपप्लव वचन जो अदृष्ट हृदयकरि परकरि ठिगना, अपने मद के गर्वकरि हस्तकरि अन्य हस्त का ताडना इनकूं मुनि न करै है, न करावै हैं, न अन्य करते कूं भला जानै है ।।९२।।

१. क० लंपाका । २. क० हृदयेनापि । ३. क० वर्जिताः । ४. अ० ब० हत्थवट्टिं, ग० हत्थवद्धिं ।

यत:—

ते होंति णिव्वियारा थिमिदमदी पदिट्ठिदा जहा उदधी ।
णियमेसु दढव्वदिणो पारत्तविमग्गया समणा ।।९३।।

यस्मात्ते साधवो भवंति निर्विकारा: कायिकवाचिकमानसिकविकारैर्वर्जिता: स्तिमितमतयोऽनुद्धतचेष्टासंकल्पा:, प्रतिष्ठिता यथोदधि: समुद्र इवागाधा अक्षोभाश्च[1], नियमेषु षडावश्यकादिक्रियासु दृढव्रतिनोऽभग्नगृहीतनानावग्रहविशेषा:, पारत्र्यविमार्गका: परलोकं प्रति सूद्यतसमस्तकार्या इहलोकं निरतिचारं परलोकं सम्यग्विधानेनात्मना परेषां च निरूपयंतीति ।।९३।।

कथंभूतस्तर्हि कथा: कुर्वन्तीत्याशंकायामाह—

जिणवयणभासिदत्थं पत्थं च हिदं च धम्मसंजुत्तं ।
समओवयारजुत्तं पारत्तहिदं कधं करेंति ।।९४।।

जिनवचनेन वीतरागागमेन भाषित: प्रतिपादितोऽर्थो विषयो यस्या: सा जिनवचनभाषितार्था रत्नत्रयप्रतिपादनसमर्था तां कथां कुर्वते । पुनरपि पथ्यां हितां च धर्मसंयुक्तां समयोपचारयुक्तामागमविनयसहितां परलोकं प्रति हितां कुर्वते । यद्यपि विषयसुखविवर्जनेन कापुरुषाणामनिष्टा तथापि विपाककाले पथ्यौषधवत् । तथा यद्यपि जीवप्रदेशसंतापकरणेन[2] न हिता तथापि सम्यगाचरणनिरता । तथा यद्यपि विनयतन्निष्ठा तथापि श्रुतज्ञानप्रतिकूला न भवति तर्कव्याकरणसिद्धान्तचरितपुराणादिप्रतिपादिका वा कथा तां कुर्वत इति ।।९४।।

अर्थ–याही तैं ते साधु निर्विकारा: कहिये-कायिक, वाचिक, मानसिक-विकारनिकरि वर्जित, भवंति कहिये होय हैं, स्तिमितमतय: कहिये उद्धत-चेष्टा-रहित हैं विचार जिनका, समुद्रवत् अगाध, क्षोभ रहित प्रतिष्छिता कहिये स्थिरीभूत हैं, नियमेषु कहिये षडावश्यकादिक क्रियानि विषैं, दृढ़व्रतिन: कहिये भंग रहित ग्रहण कीये हैं नाना अवग्रह के विशेष जिनिनै, पारत्र्यविमार्गका: कहिये परलोक प्रति उद्यमवंत है समस्त कार्य जिनका, अतीचार रहित इस लोक कूं, परलोक कूं भली विधिकरि आपकै, बहुरि परकै निरूपण करै हैं ।।९३।।

तौ मुनि कैसी कथा कूं करै हैं ? अैसी आशंका हौतें संतै कहै हैं—

अर्थ–जिनवचन जो वीतराग का आगम ताकरि भाषित कहिये प्रतिपादन कीया है, अर्थ कहिये विषय जाका रत्नत्रय के उपजावै विषैं समर्थ, तिस कथा कूं कहै हैं । बहुरि पथ्यां कहिये पथ्यकारी, हितां कहिये हितकारी, धर्म्म, संयुक्ता कहिये धर्मकरि सहित, समयोपचार संयक्ता कहिये आगम के विनयकरि सहित परित्र्यहितां कथां कहिये परलोक प्रति हितकारी अैसी कथा करै है ।

भावार्थ–जे पणि अैसी कथा विषयसुख के वर्णनकरि कापुरुषनि कै अनिष्ट है तो ऊपरि पाक समय विषैं औषधि ज्यौं पथ्या है तैसे ही यद्यपि जीव-प्रदेशनि विषैं संताप के कारण-करिकै कै हितकारी नांही तोउ सम्यक् आचरण विषैं लीन करणहारी है, तैसें ही यद्यपि विनय विषैं लीन है तोउ श्रुतज्ञानतैं प्रतिकूल नांही है । तर्क, व्याकरण, सिद्धांत, चरित, पुराण आदि की प्रतिपादक जो कथा है तिसकूं करै हैं ।।९४।।

---

१. क० अक्षोभ्याश्च ।२. क० कारणेन ।

ये कथामेवंविधां[1] कुर्वन्ति ते किम्भूता इत्याशंकायामाह—

सत्ताधिय सप्पुरिसा मग्गं मण्णंति वीदरागाणं ।
अणयारभावणाए भावेंति य णिच्चमप्पाणं ।।९५।।

सत्वाधिका: सर्वोपसर्गैरप्यकंप्यभावा:, सत्पुरुषा: [2]यथोक्तचरितचारित्रा मार्गं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मन्यंतेऽभ्युपगच्छन्ति । केषां मार्ग ? वीतरागाणां निर्दग्धमोहनीयरजसामनगारभावनया च कथित[3] स्वरूपया भावयंति चात्मानमिति ।।९५।।

वाक्यशुद्धिं निरूप्य तप:शुद्धिं च निरूपयन्नाह—

णिच्चं च अप्पमत्ता संजमसमिदीसु झाणजोगेसु ।
तवचरणकरणजुत्ता हवंति सवणा समिदपावा ।।९६।।

नित्यं च सर्वकालमपि अप्रमत्ता: पंचदशप्रमादरहिता: संयमे प्राणरक्षण इन्द्रियनिग्रहे समितिषु ध्याने धर्मध्याने शुक्लध्याने च योगेषु नाना-विधावग्रह-विशेषेषु द्वादशविधे चरणे करणे च त्रयोदशविधे शमितपापा: संत: श्रमणा उद्युक्ता भवंति । एवंविशिष्टे सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रतपोविषये तदुपकरणे च सर्वपाप-क्रियानिवृत्ता: सन्तोऽभीक्ष्णमायुक्ता भवंतीत ।।९६।।

बाह्यतपसां मध्ये दुश्चरं तावत्कायक्लेशं तप: प्रतिपादयन्नाह—

हेमंते धिदिमंता सहंति ते हिमरयं परमघोरं ।
अंगेसु णिवडमाणं णलिणीवणविणासयं[4] सीयं ।।९७।।

जे साधु ऐसी कथा कूं करै हैं ते कैसैं हैं ? ऐसी आशंका होते कहै है—

अर्थ–सत्त्वाधिका: कहिये समस्त जे उपसर्ग तिनिकरि हूं अकंप है परिणाम जिनका सत्पुरुषा: कहिये यथोक्त आचरण कीया है, चारित्र जिनिकैं वीतरागाणां कहिये भस्म कीया है, मोहनीय रूप रज जिननैं तिनका, मार्ग कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र है तिनहि, मन्यंते कहिये अंगीकार करैं हैं । बहुरि कही जो अनगार-भावना ताकरि नित्य ही आत्मा कूं भावै हैं ।।९५।।

वाक्य शुद्धिका निरूपणकरि तप शुद्धि कूं निरूपण करते संतैं कहै हैं—

अर्थ–मुनीश्वर हैं ते, नित्यं च कहिये सर्वकाल हूं संयम जो प्राण रक्षण बहुरि इंद्रियनि का निग्रह विषै, समितिषु कहिये पांच समिति विषैं, ध्याने कहिये धर्मध्यान अर शुक्लध्यान विषैं, योगेषु कहिये नाना प्रकार अवग्रह विशेषनि विषैं, बारह प्रकार तप विषैं, तेरह प्रकार चारित्र विषैं, बहुरि तेरह प्रकार करणनि विषैं, उद्यमी शांत भया है पाप जिनका ऐसे हैं ।।९६।।

भावार्थ–ऐसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप विषैं, बहुरि इनके उपकरण विषैं, सर्व पापक्रियातैं, निवृत्त भये निरन्तर उद्यमी हैं।

आगै बाह्य तपकै मध्य दुखकरि है आचरण जाका ऐसा कायक्लेश तपकूं प्रथम प्रतिपादन करते संतै कहै है—

अर्थ–हेमंते कहिये हिमवान् काल विषैं परमघोरे कहिये दग्ध भये हैं समस्त वनस्पती के विशेष जहां, प्रचंड-पवन के सभूहकरि

---

१. क० मेवंभूतां । २. क० यथोक्ताचरितं । ३. क० कथितरूपया । ४. क० विणासणां ।

हेमंते हिमवत्काले परमघोरे दग्धाशेषवनस्पतिविशेषे प्रचंडवातसमूहकंपिताशेषजंतुनिवहे धृतिमंतः परमधैर्यप्रावरणसंवृताः, सहन्ते ते मुनयो हिमरजः पतत्प्रालेयसमूहं परमघोरं सुष्ठु रौद्रमंगेषु निपतदाचरणान् मस्तकं यावत्पतद्धिमं । किंविशिष्टं तद्धिमरजः ? नलिनीवनविनाशकं पद्मिनीखंडदहनसमर्थं, उपलक्षणमात्रमेतत् तेन सर्वभूतविनाशकरण[1] समर्थं सहन्त इति ।।९७।।

अभ्रावकाशं व्याख्यायातापनस्वरूपमाह—

जल्लेण मइलिदंगा गिह्मे उण्णा[2]दवेण दड्ढंगा ।
चेट्ठंति[3] णिसिट्ठंगा सूरस्स य अहिमुहा सूरा ।।९८।।

जल्लं सर्वांगोद्भूतमलं तेन मलिनांगा वल्मीकसमाना निःप्रतीकारदेहाः, ग्रीष्मे प्रचंडमार्तंडगभस्तिहस्तशोषिताशेषार्द्रभावे दवदहनसमानतृष्णाक्रांतसमस्तजीवराशौ उष्णातपेन[4] दीप्यमानकिरणजालैर्दग्धांगा दग्धकाष्ठसमानशरीरास्तिष्ठंति । निसृष्टांगाः कायोत्सर्गेणाचलितशरीरावयवाः सूरस्य धगधगायमानादित्यस्याभिमुखं शूरा मनागपि न संक्लेशमुद्वहंति शीतह्रदे प्रविष्टा इव संतिष्ठंत[5] इति ।।९८।।

वृक्षमूलं निरूपयन्नाह—

धारंधयारगुविलं सहंति ते वादवाद्दलं चंडं ।
रत्तिंदियं गलंतं सप्पुरिसा रुक्खमूलेसु ।।९९।।

तथा प्रावृट्काले जलपूरिताशेषमार्गे गर्जत्पर्जन्यघोराशनिरववधिरितदिगंते वृक्षमूलेऽनेकसर्पाकीर्णे चंडं रौद्रं वातं वार्द्दलं च प्रवर्षणशीलं मेघजालं

कंपायमान भये हैं समस्त प्राणीनि का समूह जहां, तिस विषैं, धृतिमंतः कहिये परमधैर्य रूप वस्त्रकरि वैष्टित मुनीश्वर हैं, ते परमघोरं कहिये-अत्यंत भयंकर चरणतैं लेय मस्तक परजंत अंग विषैं पडता जो हिमरज कहिये प्रालेय का समूह है ताहि सहै है । कैसा है प्रालेय का समूह? नलिनीवनविनाशकं कहिये ये पद्मिनी-खंड कै दहन विषैं समर्थ यह विशेषण उपलक्षण मात्र है । ताकरि समस्त प्राणीनिका विनाश-करणहारा जाननां ।।९७।।

अभ्रावकाश तप का व्याख्यान करि आतापन तप का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–जल्ल जो समस्त शरीर विषैं उपज्या मल ताकरि मलिनांगा कहिये मलिन भया है अंग जिनका बंबी (बामी) समान प्रतीकार रहित है देह जिनका प्रचंड अैसा जो सूर्य ताके किरण रूप हस्तनि करि शोख्या है समस्त आर्द्रभाव जानैं, दावानल समान तृषाकरि पीडित कीया है समस्त जीव-राशि जानैं-अैसा जो ग्रीषम ऋतु ता विषैं उष्णा तपकरि तपते किरणनि के समूह ताकरि दग्ध भया है काष्ठ समान शरीर जिनका, निसृष्टांगा कहिये कायोत्सर्ग करिकै अचलित है शरीरे अवयव जिनका धगधगायमान सूर्य कै सन्मुख शूरवीर मुनि तिष्ठै हैं, किचिंन्मात्र हू क्लेश नांही करै हैं, शीतहृद के मध्य पैठ्या (प्रविष्ट) पुरुष ज्यौं तिष्ठै है ।।९८।।

आगै वृक्षमूलका निरूपण करते संतै कहै है—

अर्थ–जलकरि पूरित कीया है समस्त मार्ग जानैं गर्जना करता जो मेघ ता विषैं भयंकर वोरासनि (घोराशनि-घोरवज्र) के शब्दकरि

---

१. क० करणं । २. अ. ब. उण्हा । ३. अ. ब. चिट्ठंति ४. क० दीप्यमाना । ५. क० तिष्ठन्तीति ।

च सहंते सम्यंगध्यासते । किंविशिष्टं ? जलधारांधकारगहनं । पुनरपि किंविशिष्टं ? रात्रिंदिवं च क्षरन्मुशलप्रमाणपतद्धाराभिर्वर्षद्वृक्षमूले वसंति सहंते च सत्पुरुषा:, न मनागपि चित्तक्षोभं कुर्वन्तीति ।।९९।।

तत्र स्थिता: परीषहाँश्च जयंतीत्याह–

वादं सीदं उण्हं तण्हं च छुधं च दंसमसयं च ।
सव्वं सहंति धीरा कम्माण खयं करेमाणा[1] ।।१००।।

एवं त्रिकालयोगिन: संतो वातं विनाशिताशेषतरुसमूहं सहंते तथा शीतं सहंते तथोष्णं शोषिताशेषवनसरित्समुद्र[2] सहंते तथा तृष्णां संतापिताशेषांगावयवां सहंते तथा क्षुधां महाप्रलयकालसमुत्थिताग्निस्वरूपां सहंते तथा दंशमशककृतोपद्रवं सहंते तथा सर्पवृश्चिकपिपीलिकावराहादिकृतोपद्रवं च सहंते, किं बहुना सर्वमप्युपसर्गजातं[3] कर्मणां क्षयं कुर्वाणा: सहंते न तंत्रमंत्रनिमित्तं नेह[4] लौकिकसुखनिमित्तं नापि परलोकभोगाकांक्षयेति ।।१००।।

एवं कायभवं क्लेशसहनं निरूप्य वाग्भवं क्लेशसहनं निरूपयन्नाह–

दुज्जणवयण चडयणं[5] सहंति अच्छोड सत्थपहरं च[6] ।
ण य कुप्पंति महरिसी खमणगुणवियाणया साहू ।।१०१।।

बहरे कीये हैं दिशानि का अंत जानैं, अैसा जो वर्षाकाल तहां अनेक सर्पनि करि वेष्टित जो वृक्षमूल तिस विषैं चंडं कहिये रौद्र, वांत कहिये पवन है, ताहि बहुरि वार्द्दलं कहिये बद्दल है ताहि, बहुरि बरसणे का है स्वभाव जाका अैसा मेघसमूह है ताहि भलै प्रकार सहैं है । कैसा है ? जलधारा का अंधकार करि गहन, बहुरि कैसा है ? रात्रि-दिन मूसल-प्रमाण पडती धारानिकरि बरसता अैसा वर्षाकाल विषैं सत्पुरुष मुनि वृक्ष के मूल विषैं वसैं हैं । बहुरि परीषहनिकूं सहै है, किंचित् मात्र हूं क्षोभ नांही करै हैं ।।९९।।

तहां तिष्ठते परीषहनि कूं जीते हैं ऐसा कहैं हैं—

अर्थ–या प्रकार त्रिकालयोग (अभ्रावकाश, आतापन और वृक्षमूल) का धारक हुवे संते, विनाशे हैं समस्त वृक्ष समूह जाने-अैसा पवन है ताहि सहै हैं । तैसै ही शीत है, ताहि सहै है । तैसें ही सोखै हैं समस्त वन, नदी, समुद्र जानैं ऐसा उष्ण है, ताहि सहै हैं । तैसैं ही संतापयुक्त कीये हैं समस्त अंग, अवयव जानैं—अैसी तृषा है, ताहि सहैं हैं । तैसैं ही महाप्रलयकाल विषैं उत्पन्न भया जो अग्नि तिस स्वरूप क्षुधा हैं, ताहि सहै हैं । तैसैं ही दंस मसककरि कीये उपद्रव हैं तिनहि सहै हैं, तैसैं ही सर्प—वृश्चिक कीटिका वीछु इत्यादि करि कीया उपद्रव है, ताहि सहै हैं बहुत कहवे करि कहा ? समस्त हू उपसर्ग-समूह ताहि कर्म के क्षय करते मुनि सहै हैं । तंत्र-मंत्र के निमित्त नांही सहै हैं । इस लोक के सुखनिमित्त नांही सहै हैं । बहुरि परलोक विषैं भोग की वांछा करि नांही सहै हैं ।।१००।।

या प्रकार कायतैं उत्पन्न भया अैसा क्लेस का सहनां हैं ताहि, निरूपणकरि वचनतैं उत्पन्न भया क्लेश का सहनां है, ताहि निरूपण करते संते कहै हैं—

अर्थ–दुष्ट अैसा जन है सो दुर्जन है ताके वचन सो दुर्जन-वचन हैं । सर्वप्रकार अपवाद ग्रहण करवे का है स्वभाव जाका अैसा

---

१. अ. ब. कुरेमाणा । २. क० विसहन्ते । ३. क० कर्मक्षयं कुर्वाणां । ४. क० नेहलोकसुख । ५. अ० ब० चडयडं । ६. क० ब०-वा ।

दुष्टो जनो दुर्जनस्तस्य वचनं दुर्जनवचनं सर्वप्रकारेणापवादग्रहणशीलमिथ्यादृष्टिखरपरुषवचनं, चटचटत्तप्तलोहस्फुलिंगसमानं सर्वजीवप्रदेशतापकरं, सहंते न क्षोभं गच्छन्ति, अछोडं पैशुन्यवचनं असद्दोषोद्भावनप्रवणमथवा अछोडणं लोष्ठलगुडादिभिस्ताडनं, शस्त्रप्रहारं च खड्गादिभिर्घातं च सहंते, इति सर्वमेतत् सहंते न च तेभ्य उपद्रवकारिभ्यः कुप्यन्ति, महर्षयः क्षमागुणविज्ञानकाः श्रमणाः सर्वप्रकारैः सहनशीलाः क्रोधादिवशं न गच्छन्तीति ।।१०१।।

अन्यच्च–

जइ [1]पंचिंदियदमओ होज्ज जणो रूसिदव्वय णियत्तो ।
तो कदरेण कयंतो रूसिज्ज[2] जए मणूयाणं ।।१०२।।

यदि पंचेन्द्रियदमकः पंचेन्द्रियनिग्रहरतो भवेज्जनस्तदा स रोषादिभ्यो निवृत्तश्च जनो भवेत्ततः कतरेण कारणेन कृतांतो मृत्यू रुष्येत् कोपं कुर्याज्जगति मनुष्येभ्योऽथवा कृतांत आगमस्तत्साहचर्याद्यतिरपि कृतांत इत्युच्यते तत एवं संबंधः क्रियते यदि सामान्यजनोऽपि पंचेन्द्रियनिग्रहरतो भवेत्ततः रोषान्निवृत्तः क्रोधादिकं न करोति कृतांतो[3] यतिः पुनः कतरेण कारणेन सूपद्रवकारिभ्यो मनुष्येभ्यो रुष्येत्कोपं कुर्यात् ? तस्मात्क्षमागुणं जानता चारित्रं सम्यग्दर्शनं चाभ्युपगच्छता न रोषः कर्त्तव्यः ।।१०२।।

अन्यच्च–

जदि वि य करेंति पावं एदे जिणवयणबाहिरा पुरिसा ।
तं सव्वं सहिदव्वं कम्माण खयं करंतेण ।।१०३।।

जो मिथ्यादृष्टी ताके तीक्ष्ण कठोर वचन । कैसा है दुर्जन वचन ? चटचटत् कहिये तप्तायमान लोह के अग्नि कणा समान हैं सर्वजीव के प्रदेशनि कूं संतापकारी है ताहि सहै है । क्षोभ कूं नांही प्राप्त होय हैं । अच्छोडं कहिये पैशुन्य-वचन, अविद्यमान दोष के प्रगट करवे विषैं समर्थ अथवा अच्छोडनं कहिये लोष्ट, लाठी-इन आदिकरि ताडना, बहुरि शस्त्रप्रहरि कहिये (खड्गादिकनि) शस्त्रादिकनि करि घात है ताहि सहै है । यह समस्त सहै है । तिन उपद्राकारीनितैं तिन नांही कोप करै है । महाऋषि, क्षमागुण के ज्ञाता, सर्वप्रकार सहवे का है स्वभाव जिनिका, क्रोधादिक कै वश नांही प्राप्त होय है ।।१०१।। आगै और हू कहै है—

अर्थ–जो यह मनुष्य पंच इंद्रियनि के निग्रह विषैं रत होय तो सो मनुष्य क्रोधादिक कषायनि तैं निवृत्त होय तातैं कौन कारणकरि जगत विषैं मनुष्यनि तैं मृत्यु को पकरैं ।

भावार्थ–अैसे पुरुषनि कूं मृत्यु जीतवे समर्थ नांही, ते पुरुष मरणरहित होय अविनस्वर पद कूं पावैं है अथवा कृतांत नाम आगम का है । तिसकै संबंधतैं साधु हू कृतांत कहिये । तातैं अैसे संबंध करणां-जो सामान्य जन हू पंच-इंद्रियनि के निग्रह विषैं रत होय तो रोषतैं निवृत भया क्रोधादिक नैं करै हैं । बहुरि कृतांत जो जती सो कौंन कारणकरि उपद्रवकारी मनुष्यनि तैं कोप करै ? तौ क्षमा-गुण है, तानि जानता, बहुरि सम्यग्दर्शन पूर्वक चारित्र है, ताहि अंगीकार करता, तिस साधुनैं रोष नांही करणां जोग्य है ।।१०२।।

बहुरि कहै है—

अर्थ–जो पणि यह जिनवचनतैं बाह्य पुरुष मिथ्यात्व, असंयम, कषाय-इनविषैं लीन सर्वमदनि करि गर्वित पूर्वकर्म के उदय के

१. अ. ब. चें । २. अ. ब. रूसेज्ज । ३. कृतान्तागम सिद्धान्तग्रन्थाः शास्त्रमतः परं—धनंजय नाममाला ।

यद्यपि च पूर्वकर्मोदयवशात्कुर्वन्ति पापं वधबन्धनादिकं रौद्रं कर्मैते जिनवचनबाह्याः पुरुषा मिथ्यात्वासंयमकषायाभिरताः सर्वमदगर्विताः; तत्सर्वमुपसर्गजातं सहनीयं सम्यग्विधानेनाध्यासितव्यमध्यासयेत् । कर्मणां क्षयं पूर्वार्जितकर्मफलक्षयं कुर्वतऽऽत्मना सह कर्मणां विश्लेषं कुर्वता सम्यग्दर्शनादिभिरात्मानं भावयतेति ।।१०३।।

पुनरपि कषायविजयमाह—

लद्धूण इमं सुदणिहिं ववसायविरज्जियं[1] तह करेह ।
जह सुग्गइचोराणं ण उवेह वसं कसायाणं ।।१०४।।

लब्ध्वा सम्यगवाप्येमं श्रुतनिधिं द्वादशांगचतुर्दशपूर्वरत्ननिधानं व्यवसायेन चारित्रतपसोद्योगेन सह द्वितीयं तथा कुरुत तेन प्रकारेण यतध्वं, यथा सुगतिचौराणां मोक्ष[2] मार्गविनाशकानां कषायाणां वशं नोपेत तथा यतध्वं येषाञ्च रत्नत्रयविनाशकानां क्रोधादीनां वशं न गच्छन्तीति ।।१०४।।

तपःशुद्धिस्वामिनः प्रतिपादयन्नाह—

पंचमहव्वयधारी पंचसु समिदीसु संजदा धीरा ।
पंचिंदियत्थविरदा पंचमगइमग्गया समणा[3] ।।१०५।।

पंचमहाव्रतधारिणो जीवदयादिगुणकलिताः पंचसु समितिषु संयताः पंचसमितिसंयुक्तास्तासु वा व्यवस्थिता धीरा अकंपभावमुपगताः पंचेन्द्रियार्थेभ्यो विरता जितेन्द्रियाः पंचमगतिं सिद्धगतिं मृगयमाणा अनन्तचतुष्टयेनात्मानं योजयन्तः श्रवणा इत्थंभूतास्तपःशुद्धेः कर्त्तारो भवन्तीति ।।१०५।।

वशतैं पाप जो वध, बंधनादिक रौद्रकर्म, ताहि करै हैं सो समस्त उपसर्ग-समूह भले विधान करि सहनां । कैसा है साधु ? कर्म्मणांक्षयं कुर्वतां कहिये पूर्वोपार्जित कर्म का फल का क्षय जो आपतैं भेद, ताहि करता सम्यग्दर्शनादिकनि करि आत्मा कूं भावता ।।१०३।।

बहुरि हू कषायनिका विजय है, ताहि कहै है—

यह श्रुतनिधि जो द्वादशांग, चतुर्दश पूर्व रत्ननि का निधान ताहि पाय करिकै, व्यवसायेन कहिये चारित्र अर तप रूप जो उद्यम तिसकरि सहित दूसरा कैसैं करणां ? तिस प्रकारकरि जतन करणां । जैसैं सुगति चौर जे मोक्षमार्ग के विनाशक कषाय, तिनकै वशि नांही होहु, तैसैं जतन करणां ।

भावार्थ–श्रुतनिधि कूं पाय दूसरा जतन चारित्र तप का उद्यमकरि अैसैं करणां जातैं रत्नत्रय के विनाशक क्रोधादिक शत्रुनिकैं वशि नांही होय ।।१०४।।

आगैं तपशुद्धि के स्वामी का प्रतिपादन करता संता कहै है—

अर्थ–पंच महाव्रतधारी कहिये जीवदयादिक गुणानि करि युक्त पंच समितिनि विषैं युक्त अथवा तिन विषैं युक्त विशेषकरि, अवस्थित धीराः कहिये अकंप भावकूं प्राप्त भये पंचइंद्रियनि के विषयनितैं विरक्त जितेन्द्रिय पंचमी गति जो मोक्षगति ताहि मृगयमाणा कहिये अवलोकन करते अनंत चतुष्टयकरि आत्मा कूं युक्त करते अैसे मुनीश्वर तपःशुद्धि के कर्त्ता होय हैं ।।१०५।। तथा—

---

१. अ. बिदिज्जयं, ब. विहिज्जयं । २. क० सिद्धिमार्ग । ३. ज्ञानपीठ प्रति सवणा।

तथा—

[1]ते इंदिएसु पंचसु ण कयाइ रागं[2] पुणो वि बंधंति ।
उण्हेण व हारिद्दं णस्सदि राओ[3] सुविहिदाणं ।।१०६।।

ते पूर्वोक्ताः श्रमणा इन्द्रियेषु पंचसु रागं कदाचिदपि न पुनर्बध्नंति यतस्तेषां सुविहितानां शोभनानुष्ठानानां नश्यति रागो यथोष्णेन हारिद्रो रागः। किमुक्तं भवति ? यद्यपि कदाचिद्रागः स्यात्तथापि पुनरनुबन्धं न कुर्वन्ति पश्चात्तापेन तत्क्षणादेव विनाशमुपयाति हरिद्रारक्तवस्त्रस्य पीतप्रभारविकिरणस्पृष्टेवेति।।१०६।।

तपःशुद्धिं निरूप्य ध्यानशुद्धिं निरूपयंस्तावत्तदर्थमिन्द्रियजयमाह—

विसएसु पधावंता चवला चंडा तिदंडगुत्तेहिं ।
इंदियचोरा घोरा वसम्मि ठविदा ववसिदेहिं ।।१०७।।

विषयेषु रूपरसगन्धस्पर्शशब्देषु प्रधावंतः प्रसरन्तः, चपलाः स्थैर्यवर्जिताः, चंडाः कोपं गच्छन्तः, इन्द्रियचौरास्त्रिदंडगुप्तैर्मनोवाक्कायसंयुतैः व्यवसितैश्चारित्रयोगतन्निष्ठैर्वशे व्यवस्थापिताः स्ववशं नीताः सुष्ठु घोरा यद्यपि तथापि प्रलयं प्रापिता मुनिभिरिति ।।१०७।।

दृष्टान्तद्वारेण मनोनिग्रहस्वरूपमाह—

जह चंडो वणहत्थी उद्दामो [4]णयररायमग्गम्मि ।
तिक्खंकुसेण धरिदो[5] णरेण दिढसत्तिजुत्तेण ।।१०८।।

अर्थ–ते पूर्वोक्त मुनीश्वर पंचइंद्रियनि विषैं कदाचित् हू बहुरि राग नांही करै हैं । जातैं तिन सुविहितानां कहिये शोभित-आचरण के धारीनि कैं राग है सो नष्ट होय है । जैसे घामकरि हल्दी का रंग नाश कूं प्राप्त होय है । इस कथनकरि कहा (क्या) कह्या ? सो कहै हैं—जो पणि कदाचित् मुनिकै राग होय तोउ, बहुरि अनुबंधाण नांही करै हैं । पश्चातापकरि तिस ही क्षण राग विनाशकूं प्राप्त होय है । हलदी करि रंगा ज्यौं वस्त्र ताकी पीत-प्रभा है,सो जैसैं सूर्य के किरणनि करि स्पर्शी (पीतप्रभा) नाशकूं प्राप्त होय है । (वैसे ही मुनि पहले तो राग को छोड़ ही चुके होते हैं फिर भी यदि कदाचित् राग हो भी जावे तो वे उसे शीघ्र ही दूर कर देते हैं ।) ।।१०६।।

तपःशुद्धि कूं निरूपण करि ध्यानशुद्धि है, ताहि निरूपण करते प्रथम ही ध्यानशुद्धि कै अर्थि इंद्रियनि विषैं इंद्रियनि का जय है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–विषय जे रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, तिनि विषैं, प्रधावंतः कहिये दौड़ते, चपला कहिये स्थिरता करि रहित, चंडाः कहिये क्रोधकूं प्राप्त भये—अैसे इन्द्रिय रूप चोर ते, त्रिदंडगुप्तैः कहिये—मन, वचन, काय की गुप्तिकरि सहित, व्यवसितैः कहिये आपकै वसि कीये । यद्यपि इंद्रिय चौर अत्यंत भयंकर हैं तथापि मुनिनि नैं प्रलय कूं प्राप्त कीये ।।१०७।।

आगैं दृष्टांतद्वार करि मनोनिग्रह का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–जिस प्रकारकरि चंडः कहिए झरते जे त्रिगंड, तिनकरि उपज्या है कोप जाकै, अैसा जो वन-हस्ति, उद्दामः कहिए शृंखलादि

१. द इंदिएसु पंचसु कयाइ रागं पुणों ण बंधंति । २. अ. ब. रायं । ३. अ. ब. रागो । ४. ग० विसय । ५. अ० ब० ओ ।

यथा येन प्रकारेण चंडो गलत्त्रिगंडप्रजातकोपो वनहस्ती उद्दामा श्रृंखलादिबंधनरहितो नगरराजमार्गे दृढशक्तियुक्तेन नरेण तीक्ष्णांकुशेन करणभूतेन धृत आत्मवशे स्थापित इति ।।१०८।। एवम्;

तह चंडो मणहत्थी उद्दामो विसयरायमग्गम्मि ।
णाणंकुसेण धरिदो[1] रुद्धो जह मत्तहत्थिव्व ।।१०९।।

तथा तेनैव प्रकारेण चंडो नरकगत्यादिषु नराणां प्रक्षेपणपरो मनोहस्ती उद्दामा संयमादिशृंखलादिरहितो विषयराजमार्गे रूपादिविषयराजवर्त्मनि धावन् ज्ञानांकुशेन पूर्वापरविवेकविषयावबोधांकुशेन धृत आत्मवशं नीतः, यथा मत्तहस्ती रुद्धः सन्न किंचित्कर्तुं समर्थो यत्र नीयते हस्तिपकेन तत्रैव[2] याति एवमेव [3]यतिना मनोहस्ती रुद्धः सन् यत्र व्यवस्थाप्यते तत्रैव[4] तिष्ठति वशीभूतः सन्निति ।।१०९।।

तथा—

ण च एदि विणिस्सरिदुं मणहत्थी झाणवारिबंधणिदो[5] ।
बद्धो तह य पयंडो विरायरज्जूहि धीरेहिं ।।११०।।

यथा रुद्धः सन् मत्तहस्ती वारिबंधेन न शक्नोति विनिःसर्तुं निर्गन्तुं न समर्थस्तथा मनोहस्ती ध्यानवारिबंधनं नीतः प्रापितोऽतिशयेन प्रचंडो विरागरज्जुभिबद्धो वैराग्यादिवरत्राभिर्धीरैः संयमितो निर्गन्तुं न शक्नोतीति ।।११०।।

बंधनकरि रहित नगर के राजमार्ग विषैं दृढ़शक्ति करि युक्त अैसा पुरुष नै तीक्षण अंकुशकरि धृतः कहिए अपनें वशि विषैं स्थाप्या ।।१०८।।

तथा—

तिस ही प्रकार करि चंडः कहिये नरक गत्यादिक विषैं मनुष्यनि के पटकवे विषैं प्रवीण मनरूप हस्ती उद्दामः कहिये संयमादि रूप सांकल रहित विषयराजमार्गे कहिये रूपादिक पंचेन्द्रियनि के विषय, ते ही भये राजमार्ग, ता विषैं दौड़ता ज्ञानांकुशेन कहिये पूर्वापर विवेक सहित जो विषयावबोध सो ही भया अंकुश ताकरिकैं, धृतः कहिये अपनें वसि कीया । जैसैं माता (मत्त) हाथी बंध्या संता किंचित् मात्र करवे कूं समर्थ नांही, जहां महावत ले जाय तहां जाय । अैसैं असंजमी करि मनरूप हाथी वसि कीया संता, जहां स्थापिये तहां वसि भया संता तिष्ठै ।।१०९।।

तथा—

अर्थ–जैसे माता (मत्त) हाथी वारिवंध करि रोक्या, निकसवेकूं समर्थ नांही होय है । तैसे ही मनरूपी हाथी, ध्यानरूप वारि-बंधकूं प्राप्त भया, अति प्रचंड है । अैसे धीर मुनिनि करि वैराग्यादिक रूप बरहानि (मोटे रस्सों) करि संजमकूं प्राप्त भया नीसरबे कूं समर्थ नांही ।।११०।।

---

१. अ. ब. ओ. । २. क० तत्र । ३. क० संयतेन । ४. क० तत्र । ५. अ० ब० झाणवारिमदणीदो, ग० .....मदिणीदो ।

ध्यानार्थं नगरं प्राकरादिसमन्वितं रचयन्नाह—

धिदिधणिदणिच्छिदमदी चरित्त पायार गोउरं तुंगं ।
खंतीसुकहकवाडं तवणयरं संजमारक्खं ।।१११।।

धृतिः [1]संतोषादिस्तस्यामत्यर्थं [2]निश्चितं मतिज्ञानं धृत्यतिशयनिश्चितमतिर्धैर्योत्साहतत्त्वरुचिसमन्वितविवेकः चारित्रं त्रयोदशप्रकारपापक्रियानिवृत्तिः, प्राकारः पाषाणमय इष्टकामयो वा परिक्षेपः, गोपुरं तुंगं नगरस्य महद्द्वारमुत्तुङ्गकूटं यथासंख्येन संबंधः । धृत्यतिशयितनिश्चितमतिरेव प्राकारो यत्र नगरे तत्तथाभूतं तथा चारित्रमेव गोपुरमुत्तुंगं यत्र तच्चारित्रगोपुरोत्तुंगं; क्षान्तिरुपशमः सुकृतं धर्मः, क्षान्तिसुकृते कपाटे यस्य तत् क्षान्तिसुकृतकपाटमथवा क्षान्तिरेव सुयंत्रितकपाटं तत्र, तपोनगरं, संयमो द्विप्रकार आरक्षः कोट्टपालो यत्र तत्संयमारक्षं इन्द्रियसंयमप्राणसंयमाभ्यामारक्षकाभ्यां पाल्यमानमिति ।।१११।।

कथं तद्रक्ष्यत इत्याशंकायामाह—

रागो दोसो मोहो इंदियचोरा य उज्जदा णिच्चं ।
ण च यंति पहंसेदुं सप्पुरिससुरक्खियं णयरं ।।११२।।

यद्यपि तन्नगरं प्रध्वंसयितुं विनाशयितुमुद्यताः सर्वकालं रागद्वेषमोहेन्द्रियचौरास्तथापि तत्तपोनगरं पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं न शक्नुवंति प्रध्वंसयितुं सत्पुरुषसुरक्षितनगरवत्, यथा महायोधः सुरक्षितं सुदुर्गं सुयंत्रितं नगरं विनाशयितुं समर्थ न परचक्रमेवं तपोनगरं रागादयो न विनाशयितुं समर्था इति ।।११२।।

अर्थ–धृति कहिये संतोषादिक ता विषैं अत्यंत निश्चित ज्ञान सो धृत्यतिशय, निश्चितमति है सो धैर्य, उत्साह, तत्त्वरूचि सहित विवेक है, चारित्रं कहिये तेरह प्रकार पापक्रियातैं निवृत्ति है, प्राकार कहिये पाषाण-मय वा ईंटमय चोंउ त्रफ (चारों तरफ) कोट जाननां । गोपुरं कहिये नगर का बड़ा द्वार, कैसा है ? तुंग कहिये ऊँचा । इहां यथासंख्यकरि संबंध करनां । जिस तप रूप नगर विषैं, संतोषादिक विषै निश्चित मति सो ही प्रकार है, चारित्र है सो ही नगर का बड़ा द्वार है । क्षांति कहिये उपशमभाव, सुकृत कहिये धर्म सो है दोय कपाट जाकै अथवा क्षांति जो क्षमा सो ही है जडे किवाड जाविषैं सो तप रूप नगर, संयम दोय प्रकार ही है आरक्ष कहिये कोटवाल जा विषैं, सो संयमारक्षक कहैं—इंद्रियसंयम अर प्राणसंयम-ये ही भये कोटवाल तिनकरि रक्षा कीया अैसा है ।।१११।।

आगैं सो तपरूप नगर कैसैं रक्षा करियें है ? सो कहै है—

अर्थ–यद्यपि तिस पूर्वोक्त तपरूप नगर कूं विनासवे कूं राग, द्वेष, मोह, इंद्रिय रूप चोर उद्यमवान् हैं तथापि पूर्वोक्त विशेषणकरि विशिष्ट तिस तप रूप नगर कूं सत्पुरुषनि-करि रक्षा कीया नगर की ज्यों विनासवे कूं समर्थ नांही होय है । जैसे बड़े जोधानि (योद्धाओं) करि रक्षा कीया भला हि गढ़ जहां भलै प्रकार, यंत्रित कहिये तोप आदि शस्त्रनकरि युक्त अैसा नगर है, ताहि पर चक्र है सो विनासवे कूं नाहीं समर्थ अैसें तप रूप नगर है, ताहि रागादिक हैं ते विनासवे कूं नांही समर्थ होय हैं ।।११२।।

---

१. क० संतोषः । २. क० निश्चिता मतिज्ञानं ।

इदानीं ध्यानरथं प्रकटयन्नाह—

एदे इंदियतुरया पयडीदोसेण चोइया संता[१] ।
उम्मग्गं णिंति[२] रहं करेह मणपग्गहं वलियं ।।११३।।

एते इन्द्रियतुरगा इमानीन्द्रियाण्येवाश्वा: प्रकृत्या स्वभावेन दोषेण रागद्वेषाभ्यां च चोदिता: प्रेरिता: संत: उन्मार्गं विषयाकुलाटवीं नयन्ति प्रापयन्ति धर्मध्यानरथं, कुरुत मन:प्रग्रहं दृढम् । यथा रश्मिनाश्वा नियन्त्यन्ते वशीक्रियन्ते तथेन्द्रियाणि वशं स्थापयतैकाग्रमनोनिरोधप्रग्रहेण येन ध्यानं मार्गस्थं भवतीति।।११३।।

रागद्वेषादीनां प्रतिपक्षभावनामाह—

रागो दोसो मोहो विदीय धीरेहि णिज्जिदा सम्मं ।
पंचेंदिया य दंता वदोववासप्पहारेहिं ।।११४।।

धीरै: संयतै रागद्वेषमोहा: प्रीत्यप्रीतिमिथ्यात्वानि वृत्त्या दृढरत्नत्रयभावनया निर्जिता: प्रहता: सम्यग्विधानेन पंचेन्द्रियाणि दान्तानि स्ववशं नीतानि व्रतोपवासप्रहारैरिति ।।११४।। तत: किम्—

दंतेंदिया महरिसी रागं दोसं च ते खवेदूणं ।
झाणोवजोगजुत्ता खवेंति कम्मं खविदमोहा ।।११५।।

ततो दान्तेन्द्रिया: संतो महर्षय: शुद्धोपयोगयुक्ता: समीचीनध्यानोपगता रागं द्वेषं विकृतिं च क्षपयित्वा प्रलयं नीत्वा क्षपितमोहा: संत: कर्माणि क्षपयन्ति सर्वाणि यत: कषायमूलत्वात्सर्वेषामिति ।।११५।।

अब अध्ययनरूप रथ है, ताहि कल्पना करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ–यह इंद्रिय रूप तुरंग प्रकृति जो स्वभाव ताकरि दोष जो रागद्वेष तिनिकरि चोदिता: कहिये प्रेरे हुये उन्मार्ग जो विषयनि करि व्याप्त वनी (अटवी) ताके मध्य धर्मध्यान रूप रथ है ताहिं प्राप्त है, तातैं मनरूप प्रग्रह जोहै ताहि दृढ़ करहु । जैसे लगामकरि घोड़े वसि करिये हैं, तैसें एकाग्र मन का रोकना सो ही भया लगाम ताकरि इंद्रियनिकूं वसि करहु । जाकरि ध्यान मोक्षमार्ग विषैं स्थित होय ।।११३।।

आगै राग-द्वेषादिकनि की प्रतिपक्ष भावना है, ताहि कहै है—

अर्थ–धीर अैसे संजमी तिन राग द्वेष, मोह जे प्रीति, अप्रीति अर मिथ्यात्व, ते जो दृढ़ रत्नत्रय विषैं भावना ताकरि जीते अत्यंत हते, व्रत उपवास ते ही भये प्रहार, तिनकरि कै भलै प्रकार पंच इंद्रिय वसि कीये ।।११४।।

आगैं तिसतैं कहा होय है ? सो कहै हैं—

अर्थ–ता पीछैं वसि करी है इंद्रिय जिननैं अैसे होत संतै महाऋषि शुद्धोपयोग करि युक्त समीचीन ध्यान कूं प्राप्त भये, राग द्वेष रूप विकार हैं ताहि प्रलय कूं प्राप्तकरि क्षेप्या है मोह जिननैं अैसें भये संतै सर्व कर्म्मनिकूं क्षपावैं है ।।११५।।

---

१. ग० संतो । २. अ० ब० णेंति ।

तदेवमाचष्टेऽनया गाथया—

अट्ठविहकम्ममूलं खविदकसाया खमादिजुत्तेहिं ।
उब्भुदमूलो व दुमो ण जाइदव्वं पुणो अत्थि ।।११६।।

अष्टविधस्य कर्मणो मूलं कारणं । किं ते[1]? कषाया: क्रोधादयस्तेषु सत्सु सर्वकर्मप्रकृतीनामवस्थानं ते च कषाया: क्षमादियुक्तै: क्षमामार्दवार्जवसंतोषपरै: क्षपिता विनाशिता: पुनस्तेषामुत्पत्तिर्नास्ति यथोद्धूतमूलस्य द्रुमस्य निर्मूलितस्य वृक्षस्येव जनितव्यं नास्ति, यथोद्धूतमूलो वृक्षो न जायते कारणाभावात्त[2]था कर्मनिचयो न पुनरागच्छति कारणाभावादिति ।।११६।।

तस्मात्—

अवहट्टु अट्ट रुद्दं धम्मं सुक्कं च झाणमोगाढं ।
ण च एदि[3] पधंसेदुं अणियट्टी सुक्कलेस्साए ।।११७।।

तस्मात्कषायनिर्मूलनायार्तध्यानं रौद्रध्यान चापहृत्य परित्यज्य धर्मध्यानं शुक्लध्यानं च चिन्तयेति शेष: यत: समीचीनध्यानावगाढं शोभनध्याने निविष्टमानसं यतिं शुक्ललेश्यया सहितं शुद्धयोगवृत्या समन्वितं अनिवृत्तिगुणस्थानगतं कषाया न शक्नुवन्ति न किंचित्कुर्वन्ति प्रधर्षयितुं कदर्थयितुं । अथवा 'अणियट्टी' पदस्थाने 'परीसहा' इति पाठस्तेन परीषहा न शक्नुवन्ति प्रधर्षयितुं ध्यानप्रविष्टं मुनिमिति ।।११७।।

आगै जातैं समस्त कर्मनि का कषाय मूल है । इस हेतुतैं—सो ही आगैं उत्तरगाथानि करि कहै है—

अर्थ–अष्ट प्रकार कर्म का मूल जो कारण सो कहा ? ताका उत्तर—क्रोधादिक कषाय है तिनकूं होतैं सर्व कर्मनि की प्रकृति, स्थिति है । बहुरि ते कषाय, क्षमादियुक्तै: कहिये उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, संतोष विषैं तत्पर अैसे मुनि तिननैं, क्षपिता कहिये नाशकूं प्राप्त कीये, पुनै तिनकी उत्पत्ति नांही होय है । जैसे उद्धूतमूलस्य द्रुमस्य कहिये निर्मूल भया जो वृक्ष ताकी उत्पत्ति नांही होय है । जैसे पवनकरि उखड्या है मूल जाका अैसा वृक्ष कारण के अभावतैं बहुरि नांही उपजै, अैसे कर्मनिका समूह कारण के अभावतै बहुरि नांही आवै हैं ।।११६।।

तातैं यह कर्तव्य है-अैसे कहै है—

अर्थ–तातैं कषायनि निर्मूल करवे अर्थि आर्तध्यान बहुरि रौद्रध्यान है, ताहि तजकरि, धर्मध्यान बहुरि शुक्लध्यान है ताहि चिंतय कहिये चिंतवन करि, इहां चिंतय अैसी क्रिया है सो शेष है, जातैं समीचीन ध्यान का है गाढ जाके, शुभध्यान विषैं स्थित है मन जाका अैसा शुक्ल-लेश्याकरि सहित शुद्ध जोगनिकी वृत्तिकरि सहित अनिवृत्ति-गुणस्थान कूं प्राप्त भया अैसा मुनिकूं कषाय किंचित् मात्र पीडवे कूं नांही समर्थ होय है । अथवा 'अणियट्टि पदस्थाने परीषहा:' अैसा पाठ है, तहां अैसा अर्थ जाननां—अनिवृत्ति पदस्थान विषैं ध्यानस्थ मुनि कूं परीषह पीड़वे समर्थ नांही ।।११७।।

---

१. क० तत् । २. क० कारणाभावादेवं । ३. क० ग० यंति ।

पुनरपि ध्यानस्य[१] स्थैर्यमाह—

जह ण चलइ गिरिराजो अवरुत्तरपुव्वदक्खिणेवाए ।
एवमचलिदो जोगी अभिक्खणं झायदे[२] झाणं ।।११८।।

यथा न चलति न स्थानाच्च्युतो भवति गिरिराजो मेरु: पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरवातै:, एवमचलितो योगी सर्वोपसर्गादिभिरकंप्यभावोऽभीक्ष्णं निरन्तरं समयं समयं प्रत्यसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरां कुर्वन् ध्यायेत् ध्यानं समाधिमिति, यद्यप्यत्रैकवचनं जात्यपेक्षया तथापि बहुवचनं द्रष्टव्यं ध्यायन्ति ध्यानमिति।।११८।। तत एवं ध्यानं प्रध्याय—

णिट्ठविदकरणचरणा कम्मं णिद्धुद्धदं धुणित्ताय ।
जरमरणविप्पमुक्का उवेंति सिद्धिं धुदकिलेसा ।।११९।।

ततो ध्यानं संचिंत्य निष्ठापितकरणचरणा: परमोत्कर्षं प्रापिता: पंचमहाव्रतपंचसमितित्रिगुप्तिपंचनमस्कारषडावश्यकासिकानिषद्यका यैस्ते मुनय: कर्म निधत्तोद्धतं बद्धपुष्टं[३] बद्धनिकाचितं सुष्ठु स्निग्धं सुष्ठु दु:खदायकं निर्धूतं निर्मूलत:सम्यक् धृत्वा प्रक्षिप्य जातिजरामरणमुक्ता: सिद्धिमनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यरूपामवस्थामुपयान्ति धुतक्लेशा: सन्त इति ।।११९।।

अनगाराणां पर्यायनामान्याह—

समणोत्ति संजदोत्ति य रिसि मुणि साधुत्ति[४] वीदरागोत्ति ।
णामाणि सुविहिदाणं अणगार भदंत दंतोत्ति ।।१२०।।

आगैं बहुरि हू ध्यानस्थ मुनि का स्थिरता है, ताहि कहै है—

अर्थ–जैसे गिरिराज जो सुमेर सो पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर दिशानि की पवनकरि स्थानतैं नांही चलायमान होय या प्रकार अचलित जोगी कहिये सर्व उपसर्गादिकनि करि अकंपन है भाव जाकैं-ऐसा मुनि अभीक्ष्णं कहिये निरंतर समय-समयप्रति असंख्यात गुण-श्रेणी कर्मनिर्जरा है, ताहि करता ध्यान जो समाधि है, ताहि ध्यावै । यद्यपि इहां जाति अपेक्षाकरि एक वचन कीया है, तथापि बहुवचन जाननां । ते मुनि ऐसे ध्यान ध्यावैं हैं ऐसे बहुवचन का अर्थ जानना ।।११८।।

ता पीछैं ऐसे ध्यान ध्याय कहा करणां ? सो कहै हैं—

अर्थ–ता पीछै ध्यानकरि चिंतवनकरि निष्ठापित-करणचरणा कहिये परमोत्कर्षकूं प्राप्त कीये हैं पंचमहाव्रत, पंचसमिति, तीन गुप्ति, पंचनमस्कार, छह आवश्यक, आसिका-निषद्यका जिननैं, ऐसे मुनि निधत्तोद्धतं कहिये पुष्ट बांध्या निकाचित, अत्यंत सचिक्कण, अत्यंत दु:खदायी ऐसा जो कर्म ताहि निर्म्मूलतै भलैं प्रकार क्षिपायकरि जन्म जरा, मरणतैं रहित अर नष्ट कीया है क्लेश जिननैं ऐसे भये सिद्धि जो अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य रूप अवस्था, ताहि प्राप्त होय है ।।११९।।

आगैं अनगार जे मुनि तिनके परजाय नाम कहै हैं—

अर्थ–जो कहूं मुनि ऐसा कहूं, ऋषि ऐसा इत्यादि नाम कहे तिनके पर्याय नाम कैसें हैं ? या कारणतैं कहैं हैं—श्रमणा याकी

---

१. क० ध्यानस्थैर्यमाह । २. अ० ब० ज्झायदे, ग० झायदि । ३. द० बद्धपुष्टनिधत्तिनिकाचितं । ४. अ. ब. साधवोत्ति ।

[1]यत्किंचन्मुनय: क्वचिदृषय इत्येवमादिप्रतिपादितास्तेषां कथं पर्यायनामान्यत आह—श्रमण इति श्रमयंत्यात्मानं तपोभिरिति श्रमणा:, संयता इति संयमयन्तीन्द्रियाणि कषायाँश्च संयता:, ऋषय इति चार्षयन्ति गमयन्ति सर्वपापानि ते ऋषयोऽथवार्षयन्ति प्राप्नुवन्ति सप्तर्द्धीरिति ऋषय:, मन्यन्ते बुध्यन्ते स्वपरार्थसिद्धिमिति मुनयोऽथवा मतिश्रुतावधिमन:पर्ययकेवलज्ञानैर्युक्ता: मुनय:, साधव इति सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रिणि साधयन्तीति साधव:, वीतरागा इति वीतो विनष्टो रागो येषां ते वीतरागा:, नामान्येतानि संज्ञारूपाणि सुविहितानां सुचारित्राणं । अनगारा न विदेयतेऽगारादिकं येषां तेऽनगारा विमुक्तसर्वसंगा:, भदंता: सर्वकल्याणानि प्राप्तवन्त:, दान्ता: पंचेन्द्रियाणां निग्रहपरा:, त्रयोदशविधे चारित्रे यतन्त इति यतयोऽथवोपशमक्षपकश्रेण्यारोहणपरा यतय: । एवं प्रकाराणि यतीनां नामानीति ।।१२०।।

एवं दशसूत्राणि व्याख्यायेदानीमनगाराणां स्तवमाह—

अणयारा भयवंता अपरिमिदगुणा थुदा सुरिंदेहिं ।
तिविहेणुत्तिण्णपारे परमगदिगदे पणिवदामि ।।१२१।।

एवमनगारान् भगवतोऽनन्तचतुष्टयं प्राप्तवतश्चापरिमितगुणान् सर्वगुणाधारान् सुरेन्द्रै: स्तुतान् परमगतिगतान् परमशुद्धज्ञानदर्शनचारित्रपरिणतानुत्तीर्णपरान् संसारमहोदधिं समुल्लंघ्य स्थिताँस्त्रिप्रकारैर्मनोवचनकायैरहं प्रणिपतामि सम्यक् प्रणमामीति ।।१२१।।

निरुक्ति—तपकरि अपने आत्माकूं खेदयुक्त करैं ते श्रमणा: कहिये । संयता याकी निरुक्ति इंद्रियनि-कूं—बहुरि कषायनिकूं त्यजै वा वसि करै ते संयत कहिये । ऋषय: याकी निरुक्ति-समस्त पापनिकूं दूरि करै ते ऋषि कहिये अथवा साप्त ऋद्धिकूं प्राप्त होय ते ऋषि कहिये । मुनय: याकी निरुक्ति-अपने-पराये अर्थ की सिद्धि कूं जाणै तें मुनि कहिये । अथवा मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञानकरि युक्त होय ते मुनि कहिये । साधव: याकी निरुक्ति—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकूं साधै ते साधु कहिये । वीतरागा: याकी निरुक्ति वीत कहिये विनष्ट भयो है राग जिनकौ ते वीतरागा: कहिये । ये नाम संज्ञा रूप सुविहित जे भले चारित्रवंत मुनि तिनके हैं । अनगारा याकी निरुक्ति नहीं विद्यमानहैं आगारादिक जिनकैं ते अनगार कहिये त्यज्या है गृहादिक सर्व परिग्रह जिननैं । भदंता कहिये सर्वकल्याणनिकूं प्राप्त भये अैसे हैं । दांता: कहिये पांच इन्द्रियनि के निग्रह विषैं तत्पर अैसे हैं । तेरह प्रकार चारित्र विषैं जतन करैं ते यति कहिये । अथवा उपशम, क्षपक श्रेणी के चढवे विषैं, तत्पर ते यति कहिये । या प्रकार यतीनि के नाम हैं ।।१२०।।

या प्रकार दशसूत्रनि का व्याख्यानकरि अब अनगार जे मुनि तिनका स्तव जो स्तोत्र, ताहि कहै हैं—

अर्थ–या प्रकार भगवत: कहिये अनंत चतुष्टय कूं प्राप्त भये वा प्राप्त होते, अपरिमितगुणान् कहिये समस्त गुणानि के आधार देवनि के इंद्रनिकरि स्तुत परमगतिगतान् कहिये परम शुद्ध जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तिनरूप परिणये उत्तीर्णपरान् कहिये संसाररूप महासमुद्र का उल्लंघनकरि स्थित भये-अैसे अनगारान् कहिये घर रहित मुनिनिकूं त्रिप्रकार जे मन, वचन, काय तिनकरि, अहं कहिये मैं, प्रणिपतामि कहिए भलै प्रकार नमस्कार करूं हूं ।।१२१।।

---

१. द० ये क्वचिन्मुनय: ।

अनगारभावनाया:--[1] प्रयोजनमाह—

एवं चरियविहाणं जो काहदि संजदो ववसिदप्पा ।
णाणगुणसंपजुत्तो सो गाहदि उत्तमं ठाणं ।।१२२।।

एवमनेन प्रकरेण चर्याविधानं दशसूत्रै: कथितं य: करोति व्रतादिसंपन्नो व्यवसितात्मा तपस्युद्योगपरो ज्ञानेन मूलगुणैश्च संप्रयुक्त: संयतो गच्छत्युत्तमं स्थानमिति ।।१२२।।

य: शृणोतीममनगाराणां स्तवं तस्यापि फलमाह—

भत्तीए मए कहियं[2] अणयाराण त्थवं समासेण ।
जो सुणदि पयदमणसो सो गच्छदि उत्तमं ठाणं ।।१२३।।[3]

भक्त्या मया कथितमिममनगारस्तवं संक्षेपेण य: शृणोति प्रयतमना: संयतात्मा सन् स गच्छत्युत्तमं स्थानमिति ।।१२३।।

तथा च—

एवं संजमरासिं जो काहदि संजदो ववसिदप्पा ।
दंसणणाणसमग्गो सो गाहदि उत्तमं ठाणं ।।१२४।।[4]

य: पुनरेवं संयमराशिं करोति संयतो व्यवसितात्मा दर्शनज्ञानसमग्र: स गच्छत्युत्तमं स्थानमित्यत्र किमत्राद्भुतमस्तीति ।।१२४।।

आगैं अनगार भावना है ता विषैं प्रयोजन कहैं हैं—

अर्थ–या प्रकार दश सूत्रनि करि कह्या चर्याका विधान ताहि य: संयत: कहिये जो व्रतादिक युक्त, व्यवसितात्मा कहिये तप विषैं उद्यमी, ज्ञानकरि बहुरि मूलगुणनि करि सहित सो संजमी[5] उत्तम स्थान है, ताहि प्राप्त होय है ।।१२२।।

आगैं जो यह अनगारनिका स्तव है ताहि सुणै है, ताहू कै फल कहै है—

अर्थ–भक्ति सहित मोकरि संक्षेप कह्या जो अनगारनि का स्तवन ताहि जो प्रयतमना कहिये संयमरूप हैं आत्मा जाका अैसा भया सुणै है सो उत्तम-स्थान हैं, ताहि प्राप्त होय हैं ।।१२३।।

अर्थ–बहुरि जो संजमी उद्यम युक्त या प्रकार संजम राशि है ताहि ग्रहण करै है, सो दर्शन-ज्ञानकरि परिपूर्ण उत्तम-स्थान कूं प्राप्त होय है, यामैं आश्चर्य कहा ? योग्य ही हैं ।।१२४।।

---

१. द० क० अनगारभावनायां । २. अ० ब० कधिदं । ३. अन्तिम चरण बदला है यथा— "सो पावदि सव्वकल्लाणं" ।
४. यह गाथा फलटन से प्रकाशित मूलाचार में नहीं है । ५. ब प्रति संयम ।

अनगारभावनां संक्षेपयन्मंगलं च कुर्वन्नाह—

एवं मए अभिथुदा अणगारा गारवेहिं उम्मुक्का ।
धरणिधरेहिं य महिया देंतु समाधिं च बोधिं च ।।१२५।।[१]

एवमनेन प्रकारेण मयाभिष्टुता अनगारा गौरवैरुन्मुक्ता धरणीधरैः पृथिवीपतिभिश्च महिता:पूजिता ददतां प्रयच्छंतु समाधिं मरणकालेऽन्यस्मिंश्च काले संयमपूर्विकां भावपंचनमस्कारपरिणतिं बोधिं च दर्शनविशुद्धिं च नान्यत्किंचिदपि याचेऽहमिति ।।१२५।।[२]

इति श्री मदट्टकेराचार्यवर्यप्रणीते मूलाचारे वसुनन्द्याचार्य-प्रणीताचार-

वत्त्याख्यटीकासहिते नवमः परिच्छेदः ।।[३]

✸

आगैं अनगारभावना है, ताहि संकोचते, बहुरि मंगल है, ताहि करते आचार्य कहैं हैं—

अर्थ–या प्रकार मैं गौरवैः कहिये ऋद्धि, रस, सात-तीन प्रकार गुरु ताकरि उन्मुक्ताः कहिये रहित, बहुरि धरणीधर जे पृथिवीपति राजा तिनकरि पूज्य अैसे अनगारस्तव ते हमारै अर्थि समाधि कहिये मरणकाल विषै, बहुरि अन्यकाल विषै संजम पूर्वक भाव पंचनमस्कार परिणति है, ताहि बहुरि बोधि कहिये सम्यग्दर्शन की शुद्धि है, तहि देहु । हम अन्य कछु नांही जांचैं हैं ।।१२५।।

अैसे आचार्यश्री वट्टकेरस्वामी विरचित मूलाचार नाम प्राकृतग्रंथ की वसुनंदि सिद्धान्त-चक्रवर्ति विरचित आचारवृत्तिनाम संस्तृत-टीका कै अनुसार यह देशभाषामय वचनिका विषैं "अनगार भावना" है नाम जाका अैसा नवमां अधिकार समाप्त भया । इहां पर्यंत गाथासूत्र समस्त आठ सौं इक्याणवै भये ।

---

१. क० समाहिं च बोहिं च ।

२. इस गाथा के अनन्तर फलटन से प्रकाशित मूलाचार में तीन गाथाएं और हैं—

उवदो कालह्मि सदा तिगुत्तिगुत्ते पुणो पुरिससीहे । जो थुणदि य अणुरत्तो सो लहदि लाहं तिरयणस्स ।।

अर्थ-जो अनुरागी होकर नित्य ही त्रिगुप्ति से सहित पुरुषसिंह—महामुनियों की स्तुति करता है वह तीन रत्न प्राप्त कर लेता है ।

एवं संजमरासिं करेंति जे संजदा ववसिदप्प । ते णाणदंसणधरा देंतु समाहिं च मे बोहिं ।।

अर्थ–उत्तम तपश्चरण में तत्पर महाव्रत आदि संयम के भार से मुक्त और दर्शन ज्ञान के धारक मुनीश्वर मुझे समाधि और बोधि प्रदान करें ।

अणगार-भावनगुणा मए अभित्थुदा महाणुभावा । अणगार-वीदरागा देंतु समाहिं च मे बोहिं ।।

अर्थ–महाप्रभावशाली अनगार भावना के गुणों की मैंने स्तुति की है । वे वीतराग अनगार मुझे समाधि और बोधि प्रदान करें ।

३. द० क० इत्याचार्यश्रीवसुनन्दिविरचितायां आचारवृत्तौ नवमः परिच्छेद समाप्त इति ।

✸

दशम समयसाराधिकारः

सर्वस्यागमस्य[१] स्वसमयपरसमयानां च सारभूतं समयसाराख्यमधिकारं प्रतिपादयँस्तावदादाविष्टदेवतानमस्कारपूर्विकां प्रतिज्ञामाह—

वंदित्तु देवदेवं तिहुअणमहिदं च सव्वसिद्धाणं ।
वोच्छामि समयसारं सुण संखेवं जहावुत्तं ।।१।।

वंदित्तु—वंदित्वा मनोवाक्कायैः प्रणम्य, देवानां देवो देवदेवस्तं[२] सुराधीश्वरं सर्वलोकनाथं, त्रिभुवनमहितं त्रिभुवनैर्भवनवासिवानव्यंतरज्योतिष्क-कल्पवासिमर्त्यप्रधानैर्महितं तथा सर्वसिद्धाँश्च सर्वकर्मविमुक्तांश्च वंदित्वा प्रणम्य वक्ष्ये प्रवक्ष्यामि वक्तुं प्रारभे समयसारं द्वादशांगचतुर्दशपूर्वाणां सारं परमतत्त्वं मूलगुणोत्तरगुणानां च दर्शनज्ञानचारित्राणां शुद्धिविधानस्य च भिक्षाशुद्धेश्च सारभूतं स्तोकं वक्ष्येऽहमेकाग्रचित्तो भूत्वा शृण्ववधारय [३]संक्षिप्तमर्थेन महान्तं ग्रन्थतोऽल्पं यथावृत्तं येन क्रमेणागतमथवा यथोक्तं पूर्वशास्त्रेषु स्थितं यथा पूर्वाचार्यक्रमेणागतं तथा वक्ष्येऽहं न स्वेच्छया, अनेनात्मकर्तृत्वं निराकृत्यानात्मकर्तृत्वं[४] स्थापितं भवतीति ।।१।।

समस्त आगम का बहुरि स्वमतनिका सारभूत समयसार है नाम जाका अैसा दसवां अधिकार है, ताहि प्रतिपादन करते प्रथम ही आदि विषैं इष्ट देवता के नमस्कार पूर्वक प्रतिज्ञा है, ताहि कहै है—

अर्थ–देवनिका देव सो देवदेव, सुरासुरनिका स्वामी, सर्व लोकनि के नाथ, त्रिभुवन जे भवनवासि, वाण-व्यंतर, ज्योतिष्क-कल्प-वासी अर मनुष्य-इन विषैं जे प्रधान इनकरि महित कहिये पूज्य सो त्रिभुवनमहित । बहुरि सर्वसिद्ध जे सर्वकर्म्मनि-करि रहित तिनहि वंदित्वा कहिये मन, वचन, कायकरि नमस्कारकरि, समयसारं कहिये द्वादशांग. चतुर्दशपूर्वनिका सार कहिए परमतत्त्व, बहुरि मूलगुण-उत्तरगुणनि का, दर्शन, ज्ञान, चारित्रनिका व शुद्धि-विधान का वा भिक्षाशुद्धि का सारभूत संक्षेप रूप कहूंगा, तुम एकाग्रचित्त होय सुणो अवधारहु— यह अर्थकरि संक्षेप है, अर्थकरि महान् है । यथावृत्तं कहिये जिस क्रमकरि चल्या आया अथवा यथोक्तं कहिये पूर्वशास्त्र विषैं जैसै स्थित पूर्वाचार्यनिकै अनुक्रमकरि आया तैसैं कहूंगा, स्वेच्छाकरि नांही कहूंगा—इस कथनकरि अपनां कर्तापणां निराकरणकरि आप्तका[५] कर्तापनां स्थाप्या ।।१।।

---

१. क प्रतौ एतद्दशमपरिच्छेदारंभेऽधोलिखितं श्लोकद्वयमपि वर्त्तते, तच्च—
नरेन्द्रकीर्त्ते ! मलहारिदेव ! सदाननं पश्यति तावकं यः । श्रियो विहीनोऽपि सविष्णुभार्यः कृती भवेत्स श्रमणप्रधानः ।।१।।
जनयति मुदमन्तर्भव्यपाथोरुहाणां, हरति तिमिरराशिं या प्रभा भानवीव । कृतनिखिलपदार्थद्योतना भारतीद्धा, वितरतु धुतदोषा सार्हती भारती वः ।।२।।
एतच्छ्लोकद्वये द्वितीयः श्लोकस्तु सुभाषितरत्नसंदोहस्याद्यः श्लोकः ।
२. क० तं देवदेवं सुराधीश्वरं । ३. द० क० संक्षेपं । ४. द० क० निराकृत्याप्तकर्तृत्वं । ५. ब प्रति में ''आत्मा का'' ४।

समयो नाम सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपांसि तेषाञ्च सारश्चारित्रं कुतो यस्मात्—

दव्वं खेत्तं कालं भावं च पडुच्च संघडण[१] ।
जत्थ हि जददे समणो तत्थ हि सिद्धिं लहुं लहइ[२] ।।२।।

द्रव्यं शरीरमाहारादिकं कर्मागमापगमकारणं च क्षेत्रं निवासे वसतिकादि स्त्रीपशुपाण्डकविवर्जितवैराग्यवर्द्धनकारणस्थानं कालोऽवसर्पिण्युत्सर्पिणीरूपश्चैकोऽपि षड्विधः सुषमासुषमादिभेदेन तथा शीतोष्णवर्षाकालादिभेदेन त्रिविधः, भावः परिणामः, चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थस्तेनान्यदपि कारणं शुद्धचारित्रस्य ग्राह्यं, पडुच्च—आश्रित्य स्वभावमनुबुध्य, संघडणं—संहननं अस्थिबंधबलोद्भूतशक्तिं वीर्यान्तरायक्षयोपशमं वा । यत्र ग्रामेऽरण्ये द्वीपे समुद्रे पर्वते भोगभूमिकर्मभूमिक्षेत्रे वा ज्ञाने दर्शन तपसि वा यतते सम्यगाचरति सम्यक्चारित्रं प्रतिपालयति समणा—श्रमणः समतैकतावैराग्याद्याधारस्तत्रैव सिद्धिं मोक्षं 'लघु शीघ्रं लभते प्राप्नोति, शरीरशुद्धिं भिक्षाशुद्धिं चाश्रित्य कालशुद्धिं रात्र्यादिगमनपरिहारं चाश्रित्य भावशुद्धिं चासंयमादिपरिणामपरिहारं चाश्रित्य शरीरसंहननादिकं चाश्रित्य यश्चारित्रं यत्र वा स्थितो बहुश्रुतोऽल्पश्रुतो वा सम्यग्विधानेन प्रतिपालयति स सिद्धिं लभते शीघ्रं यस्मात्तस्मात्समयसारश्चारित्रं द्रव्याद्याश्रितो यत्नेनोच्यत इति द्रव्यबलं क्षेत्रबलं कालबलं भावबलं चाश्रित्य तपः कर्त्तव्यं, यथा वातपित्तश्लेष्मालिकं क्षोभं नोपयाति तथा यत्नः कर्त्तव्यः सारस्य कथनमेतदिति ।।२।।

आगै समय नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अर तप इनका है, तिनका सार चारित्र कैसे ? इस हेतुतैं कहैं हैं—

अर्थ–द्रव्यं कहिये शरीर आहारादिक कर्म्मागम के अभाव का कारण, क्षेत्रं कहिये निवास वसतिका आदि स्त्री, पशु, नपुसंक रहित वैराग्य वधवे का कारण-अैसा स्थान, काल अवसर्पिणी रूप उत्सर्पिणी रूप एक एक हू सुषमा-सुषमा आदि भेदकरि छह प्रकार तैसैं शीत, उष्ण, वर्षा कालादि भेदकरि तीन प्रकार, भाव कहिये परिणाम । इहां च शब्द है सो अनुक्त के समुच्चय के अर्थि है । तिसकरि ओरहु शुद्ध चारित्र का कारण ग्रहण करणां, संहनन जो अस्थि हाडनकैं बंध के बलतैं उपजी शक्ति वा वीर्यांतराय का क्षयोपशम जिस ग्राम विषैं बावन-द्वीप, समुद्र, पर्वत, कर्मभूमि, भोगभूमि क्षेत्र विषैं वा ज्ञान-दर्शन-तप विषैं यतते कहिये भलै प्रकार चारित्र है ताहि प्रतिपालै, श्रमण कहिये समता, एकता वैराग्यादिक का आधार-अैसा मुनि तहां ही सिद्धि जो मोक्ष ताहि शीघ्र लभते कहिये पावै हैं ।

भावार्थ–शरीरशुद्धि बहुरि भिक्षाशुद्धि ताहि आश्रय करि बहुरि कालशुद्धि जो रात्र्यादि गमन का परिहार ताहि आश्रयकरि भावशुद्धि जो असयमादि परिणाम का परिहार ताहि आश्रयकरि बहुरि शरीर संहनानादिक है ताहि आश्रयकरि जो मुनि बहुश्रुत वा अल्पश्रुत जहां-तहां स्थित भया चारित्र है ताहि भले विधान करि पालै हैं सो शीघ्र ही इस हेतुतैं सिद्धिकूं पावै है, तातै समयसार चारित्र है । द्रव्यादिक का आश्रयकरि मुनि है सो यतन करै-इस कहनैं तैं यह कह्या जाननां । द्रव्यबल, क्षेत्रबल, कालबल बहुरि भावबल ताका आश्रयकरि तप कर्तव्य है । जैसे वात, पित्त, श्लेष्मादिक क्षोभकूं नांही प्राप्त होय, तैंसे यतन करवे जोग्य है-'सार' पद का यह कथन है ।।२।।

१. अ० ब० तह य । २. संघदणं, लहदि

समयो नाम सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपांसि तेषाञ्च सारश्चारित्रं कुतो यस्मात्—

दव्वं खेत्तं कालं भावं च पडुच्च संघडण[1] ।
जत्थ हि जददे समणो तत्थ हि सिद्धिं लहुं लहइ[2] ।।२।।

द्रव्यं शरीरमाहारादिकं कर्मागमापगमकारणं च क्षेत्रं निवासे वसतिकादि स्त्रीपशुपाण्डकविवर्जितवैराग्यवर्द्धनकारणस्थानं कालोऽवसर्पिण्युत्सर्पिणीरूपश्चैकोऽपि षड्विधः सुषमासुषमादिभेदेन तथा शीतोष्णवर्षाकालादिभेदेन त्रिविधः, भावः परिणामः, चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थस्तेनान्यदपि कारणं शुद्धचारित्रस्य ग्राह्यं, पडुच्च—आश्रित्य स्वभावमनुबुध्य, संघडणं—संहननं अस्थिबंधबलोद्भूतशक्तिं वीर्यान्तरायक्षयोपशमं वा । यत्र ग्रामेऽरण्ये द्वीपे समुद्रे पर्वते भोगभूमिकर्मभूमिक्षेत्रे वा ज्ञाने दर्शन तपसि वा यतते सम्यगाचरति सम्यक्चारित्रं प्रतिपालयति समणा—श्रमणः समतैकतावैराग्याद्याधारस्तत्रैव सिद्धिं मोक्षं 'लघु शीघ्रं लभते प्राप्नोति, शरीरशुद्धिं भिक्षाशुद्धिं चाश्रित्य कालशुद्धिं रात्र्यादिगमनपरिहारं चाश्रित्य भावशुद्धिं चासंयमादिपरिणामपरिहारं चाश्रित्य शरीरसंहननादिकं चाश्रित्य यश्चारित्रं यत्र वा स्थितो बहुश्रुतोऽल्पश्रुतो वा सम्यग्विधानेन प्रतिपालयति स सिद्धिं लभते शीघ्रं यस्मात्तस्मात्समयसारश्चारित्रं द्रव्याद्याश्रितो यत्नेनोच्यत इति द्रव्यबलं क्षेत्रबलं कालबलं भावबलं चाश्रित्य तपः कर्त्तव्यं, यथा वातपित्तश्लेष्मालिकं क्षोभं नोपयाति तथा यत्नः कर्त्तव्यः सारस्य कथनमेतदिति ।।२।।

आगै समय नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अर तप इनका है, तिनका सार चारित्र कैसे ? इस हेतुतैं कहैं हैं—

अर्थ–द्रव्यं कहिये शरीर आहारादिक कर्म्मागम के अभाव का कारण, क्षेत्रं कहिये निवास वसतिका आदि स्त्री, पशु, नपुसंक रहित वैराग्य वधवे का कारण-अैसा स्थान, काल अवसर्पिणी रूप उत्सर्पिणी रूप एक एक हू सुषमा-सुषमा आदि भेदकरि छह प्रकार तैसैं शीत, उष्ण, वर्षा कालादि भेदकरि तीन प्रकार, भाव कहिये परिणाम । इहां च शब्द है सो अनुक्त के समुच्चय के अर्थि है । तिसकरि ओरहु शुद्ध चारित्र का कारण ग्रहण करणां, संहनन जो अस्थि हाडनकैं बंध के बलतैं उपजी शक्ति वा वीर्यांतराय का क्षयोपशम जिस ग्राम विषैं बावन-द्वीप, समुद्र, पर्वत, कर्मभूमि, भोगभूमि क्षेत्र विषैं वा ज्ञान-दर्शन-तप विषैं यतते कहिये भलै प्रकार चारित्र है ताहि प्रतिपालै, श्रमण कहिये समता, एकता वैराग्यादिक का आधार-अैसा मुनि तहां ही सिद्धि जो मोक्ष ताहि शीघ्र लभते कहिये पावै हैं ।

भावार्थ–शरीरशुद्धि बहुरि भिक्षाशुद्धि ताहि आश्रय करि बहुरि कालशुद्धि जो रात्र्यादि गमन का परिहार ताहि आश्रयकरि भावशुद्धि जो असयमादि परिणाम का परिहार ताहि आश्रयकरि बहुरि शरीर संहनानादिक है ताहि आश्रयकरि जो मुनि बहुश्रुत वा अल्पश्रुत जहां-तहां स्थित भया चारित्र है ताहि भले विधान करि पालै हैं सो शीघ्र ही इस हेतुतैं सिद्धिकूं पावै है, तातै समयसार चारित्र है । द्रव्यादिक का आश्रयकरि मुनि है सो यतन करै-इस कहनैं तैं यह कह्या जाननां । द्रव्यबल, क्षेत्रबल, कालबल बहुरि भावबल ताका आश्रयकरि तप कर्तव्य है । जैसे वात, पित्त, श्लेष्मादिक क्षोभकूं नांही प्राप्त होय, तैंसे यतन करवे जोग्य है-'सार' पद का यह कथन है ।।२।।

---

१. अ० ब० तह य । २. संघदणं, लहदि

तथा वैराग्यमपि समयस्य सारो यत:

धीरो वइरग्गपरो थोवं हि य सिक्खिदूण सिज्झदि हु ।
ण य सिज्झदि वेरग्गविहीणा[१] पढिदूण सव्वसत्थाइं ।।३।।

धीरो धैर्योपेत: सर्वोपसर्गसहनसमर्थ वैराग्यपरो रागादिभिर्विनिर्मुक्त: शरीरसंस्कारभोगनिर्वेदपरो विषयविरक्तभाव: स्तोकमपि सामायिकादिस्वरूपं हि स्फुटं शिक्षित्वा सम्यगवधार्य सिध्यति कर्मक्षयं करोति, न चैव हि सिध्यति वैराग्यहीन: पठित्वापि सर्वाण्यपि शास्त्राणि, हि यस्मात्तस्माद्वैराग्यपूर्वकं करोति चारित्राचरणं प्रधानमिति ।।३।।

तथा सम्यक्चारित्राचरणायोपदेशमाह—

भिक्खं चर वस रण्णे थोवं जेमेहि मा बहू[२] जंप ।
दुक्खं सह जिण णिद्दा मेत्तिं भावेहि सुट्ठु वेरग्गं ।।४।।

भिक्षां चर कृतकारितानुमतिरहितं पिण्डं गृहाण, वसारण्ये स्त्रीपशुपांडकादिवर्जितेषु[३] गिरिगुहाकंदरादिषु प्रदेशेषु वस,[४]स्तोकं प्रमाणयुक्तं स्वाहारचतुर्थभागहीनं भुंक्ष्वाभ्यवहर, मा च बहु प्रलापयुक्तं जल्प—असारं[५] वचनं कदाचिदपि मा ब्रूया:, दु:खं सहस्व केनचित्कारणान्तरेणोत्पन्नामप्रीतिं पीडारूपां सम्यगनुभव, निद्रां च जय—अकाले स्वापक्रियां वर्जय, मैत्रीं च भावय सर्वै: सत्त्वै: सह मैत्रीं भावय, परेषां दु:खानुत्पत्त्यभिलाषं कुरु, वैराग्यं च सुष्ठु भावय । यत: सर्वस्य प्रवचनस्य सारभूतमेतदिति ।।४।।

तैसें वैराग्य हू समय का सार है-इस हैतुतैं कहैं है—

अर्थ–धीर: कहिये धैर्ययुक्त सर्व उपसर्ग के सहनें विषैं समर्थ, वैराग्यपर: कहिये रागादिकनितैं रहित संसार, देह, भोगतैं वैराग्य विषैं तत्पर विषयनि तैं विरक्त है भाव जाका अैसा मुनि अल्प हू सामायिकादिक का स्वरूप नि:संदेह भलै प्रकार धारि-करि सिध्यति कहिये-कर्म का क्षय करै हैं । बहुरि वैराग्यहीन सर्वहू शास्त्र पढिकरि हूं जातैं कर्मक्षय नांही करै हैं, तातैं वैराग्यपूर्वक चारित्र का आचरण करै हैं सो प्रधान हैं ।।३।।

आगे सम्यक् चारित्राचरणकै अर्थि उपदेश है, ताहि कहै है— :

अर्थ– भिक्षा कहिये कृत, कारित अनुमोदनातैं रहित पिंड है ताहि, चर कहिये ग्रहणकरि, अरण्ये कहिये स्त्री-पशु-नपुंसक वर्जित जो गिरि, गुफा, कंदरादिक प्रदेशनि विषैं, वस कहिये तिष्ठि, स्तोकं कहिये अपनें हार का चतुर्थभाग हीन प्रमाण युक्त भोजन करहु, बहुरि बहुत प्रलाप सहित मति बोलहु । तुम असार वचन कदाचित् हूं मति बोलहु, दु:खं कहिये-काहू कारणकरि उत्पन्न भई अप्रीति रूप पीडा ताहि भलै प्रकार भोगहुं बहुरि निद्रा है ताहि जीति अकाल विषैं शयनक्रिया है, ताहि वर्जहु । समस्त प्राणीनिकरि (विषैं) मैत्री भाव, भावहु। अन्य के दु:खकी उत्पत्ति मति होउ । अैसा अभिलाष है, ताहि करहू । बहुरि वैराग्य है ताहि भलै प्रकार भावहु, जातैं सर्व प्रवचन जो द्वादशांग ताका सारभूत यह कथन है ।।४।।

---

१. अ० ब० प्रति में—ण हि बइरग्गविहीणो । २. बहुं द० क० । ३. वर्जित गिरि क० । ४. तिष्ठ द० ।
५. मा चासारं कदाचिदपि वचनं भवान् ब्रूयात् इति द० क० ।

तथैवंभूतश्च भवेत्—

अव्ववहारी एक्को झाणे एयग्गमणो भवे णिरारंभो ।
चत्तकसायपरिग्गह पयत्तचेट्ठो असंगो य ।।५।।

व्यवहरतीति व्यवहारी न व्यवहार्यव्यवहारी लोकव्यवहाररहितो भवेत्तथैकोऽसहायो भवेज्ज्ञानदर्शनादिकं मुक्त्वा ममान्यन्नास्तीत्येकत्वं भावयेत्तथा ध्याने धर्मध्याने शुक्लध्याने चैकाग्रमनास्तन्निष्ठचित्तो भवेत्तथा निरारम्भ आरंभान्निर्गतः स्यात्तथा त्यक्तकषायः क्रोधमानमायालोभादिरहितस्तथा त्यक्तपरिग्रहोऽथवा त्यक्तः कषायः परिग्रहो येनासौ त्यक्तकषायपरिग्रहो भवेत्तथा प्रयत्नचेष्टः सर्वथा प्रयत्नपरो भवेत्तथाऽसंगः संगं केनाऽपि मा कुर्यात्सर्वथा संगविवर्जितो भवेदिति ।।५।।

पुनरपि मुख्यरूपेण चारित्रस्य प्राधान्यं न श्रुतस्य यतः—

थोवह्मि सिक्खिदे जिणइ बहुसुदं जो चरित्तसंपुण्णो ।
जो पुण चरित्तहीणो किं तस्स सुदेण बहुएण ।।६।।

स्तोकेऽहि शिक्षिते पंचनमस्कारमात्रेऽपि परिज्ञाते तस्य स्मरणे सति जयति बहुश्रुतं दशपूर्वधरमपि करोत्यधः यश्चारित्रसंपन्नो यो यथोक्तचारित्रेण युक्तः, यः पुनश्चारित्रहीनः किं तस्य श्रुतेन बहुना । यतः स्तोकमात्रेण श्रुतेन संपन्नः सन् बहुश्रुतं जयति तपश्चारित्रं प्रधानमत्र ज्ञानस्य दर्शनस्य तपसोपि यतो हेयोपादेयविवेकमन्तरेण श्रद्धानमन्तरेण च सम्यक्चारित्रं न युज्यते ततः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इत्यनेन सह न विरोध इति ।।६।।

बहुरि तैसैं ही या प्रकार होय-अैसे कहै है—

अर्थ–व्यवहार करै सो व्यवहारी, नहीं जो व्यवहारी सो अव्यवहारी । याका अर्थ—लोक व्यवहारकरि रहित मुनि होय तैसें एकः कहिये सहाय रहित होय । **भावार्थ–**ज्ञान-दर्शनादिक कूं छोरि मेरा अन्य नांही अैसें एकभाव है, ताहि भावहु । तैसैं ध्याने कहिये धर्म्मध्यानं, बहुरि शुक्लध्यान विषैं एकाग्रमनाः कहिये तिस विषैं, दृढ़चित्त होउ । तैसैं निरारंभ कहिये आरंभतैं रहित होउ । तैसैं व्यक्तकषायः कहिए क्रोध, मान, माया, लोभनितैं रहित होहु, तैसैं परिग्रह रहित होहु अथवा त्यज्या है कषाय परिग्रह जानैं-अैसा होहु । प्रयत्नचेष्टः कहिये सर्वप्रकार जतन विषैं निपुण होहु । असंगः कहिये काहूकरि संग मति करहु, सर्वसंग रहित होहु ।।५।।

आगै बहुरि हू मुख्य रूपकरि चारित्र की प्रधानता है, श्रुत की जातैं नांही, सो कहै है—

अर्थ–स्तोके अपि शिक्षिते कहिये स्तोक हूं पंचनमस्कार मात्र जाणै संतै ताका स्मरण कीये संतै, बहुश्रुतं कहिये दशपूर्व का धारी हू कूं यश्चारित्रसंपन्नः कहिये यथोक्तचारित्रकरियुक्त मुनि है, सो जयति कहिये जीतै हैं, नीचै करै हैं (दशपूर्वधारी मुनि को भी नीचे कर देते हैं ।) बहुरि जो मुनि चारित्रकरि हीन हैं, तिसके बहुश्रुतपनां करि कहा ? जातैं स्तोक मात्र श्रुतज्ञानकरि युक्त भया संता बहुश्रुती कूं जीतै हैं, ता कारण चारित्र प्रधान है—इहां अैसा जाननां ।

ज्ञान कै, दर्शन कै, तप हू कैं हेय-उपादेय के विवेक बिनां बहुरि श्रद्धान बिना सम्यक्-चारित्र नांही होय है । तातैं 'सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'-यह सूत्र कह्या है । ताकरि साथि इस कथन का विरोध नांही जाननां ।।६।। तैसैं ही प्रतिपादन करते कहै हैं—

तथैव प्रतिपादयन्नाह—

णिज्जावगो य णाणं वादो झाणं चरित्त णावा हि ।
भवसागरं तु भविया तरंति हि तिसण्णिपायेण ।।७।।

नौचारित्रयो रूपकालंकारमाह संसारसमुद्रतरणे—ननु समुद्रतरणे पोतेन भवितव्यं निर्जीवकेन वातेन च तत्कथमत्रेत्याशंकायामाह—निर्जीवको यः पोते सर्वमुपसर्गजातं पश्यति स निर्जीवको ज्ञानं, वातो ध्यानं, चारित्रं नौः पोतः, भवः संसारः सागरः समुद्रो जलधिः, तु एवकारार्थः । भव्या रत्नत्रयोपेतमनुजास्तरन्ति समतिक्रामन्ति त्रिसंनिपातेन त्रयाणां संयोगेन । यथा निर्जीवकवातनौसंयोगेन वणिजः समुद्रं तरन्ति एवं ज्ञानध्यानचारित्रसंयोगेन संसारं तरंत्येव भव्या इति।।७।।

किमिति कृत्वा त्रयाणां संयोगे मोक्ष इत्याशंकायामाह—

णाणं पयासओ तओ सोधओ संजमो य गुत्तियरो ।
तिण्हं पि य संपजोगे होदि हु जिणसासणे मोक्खो ।।८।।

यतो ज्ञानं प्रकाशकं द्रव्यस्वरूपप्रदर्शकं हेयोपादेयविवेककारणं तपः शोधकं शोधयति कर्माणीति शोधकं सर्वकर्मणामपायकारणमात्रं, तपःशब्देन ध्यानं परिगृह्यते तस्य प्रस्तुतत्वादथावा सर्वस्य वा ग्रहणं तन्मध्यपतितत्वाद् ध्यानस्य, संयमश्च गुप्तिकरः इन्द्रियनिग्रहो जीवदया च कर्मागमप्रतिबन्धकारणमतो ज्ञानेन प्रकाशिते संयमः परिहारो युक्तः परिहारे च ध्यानं निर्विघ्नतया प्रवर्त्ततेऽतस्त्रयाणामपि संयोगे भवति स्फुटं जिनशासने मोक्षो न पूर्वेण विरोधो द्रव्यार्थिकनयाश्रयणादिति ।।८।।

अर्थ–इहां संसार रूप समुद्र के तरवे विषैं नाव अर चारित्र का रूपक अलंकार है, ताहि कहै है—समुद्र विषैं जिहाज निर्जीव वा पवन होय । तदि तरणा होय सो इहां कैसें ? सो कहै है—जो जिहाज विषैं सर्व-उपसर्ग के समूह कूं देखैं सो निर्जीव कहै । इहां संसार समुद्र के तरवे विषैं ज्ञान निर्जीव कहैं, पवन सो ध्यान, बहुरि चारित्र है सो नौका कहिये पोत जाननां । भव कहिये संसार सो सागर कहिये समुद्र जाननां । इहां 'तु' शब्द है सो एवकार अर्थ विषैं है । भव्याः कहिये रत्नत्रय करि संयुक्त मनुष्य तरंति कहिये समुद्र कूं तरि पार जाय है, जैसैं त्रिसन्निपातेन कहिये तीन जे निर्जीवक, पवन, जिहाज-इनके संजोगकरि व्यापारी समुद्र कूं तिरहैं या प्रकार ज्ञान-ध्यान-चारित्र के संयोगकरि संसार समुद्र कूं प्रगटपनै भव्य जीव तरै हैं ।।७।।

आगैं कैसें करि तीन के संयोग हौंतै मोक्ष होय ? ऐसी आशंका होतें कहै है—

अर्थ–जातैं ज्ञान है सो प्रकाशकं कहिये द्रव्य-स्वरूप का दिखावा वाला है । हेय-उपादेय का विवेक का कारण है । तप है सो सोधकं कहिये कर्मनिकूं सोधै, शोधक सर्वकर्म्मनिका नाश का कारण है । इहां तप शब्दकरि ध्यान-ग्रहण कीया है, ताका प्रकरण है, यातैं अथवा सर्व (बारह तपों) का ग्रहण है । ध्यान कै तन्मध्य पातीपंणा है (अर्थात् बारह-तपों में ध्यान तो अर्न्तनिहित है ही) यातैं बहुरि संयम है, रक्षक है । संयम कहा ? इंद्रियनिका निग्रह, बहुरि जीव-दया कर्म्मागम का निरोध का कारण, यातैं ज्ञानकरि प्रकाशित असंयमका परिहार युक्त है । बहुरि असंयम का परिहार हौतें ध्यान है सो निर्विघ्नपनां करि प्रवर्तै है । तातैं तीन हू का संयोग हौंतैं जिनमत विषैं प्रकटपनैं मोक्ष होय है ।।८।।

यदि पुनरेतै रहितानि ज्ञानलिंगतपांसि करोति तदा किं स्यात्—

णाणं करणविहीणं लिंगग्गहणं च संजमविहूणं ।
दंसणरहिदो य तवो जो कुणइ णिरत्थयं कुणइ ।।९।।

ज्ञानं करणविहीनं करणशब्देनात्र षडावश्यकादिक्रियाचारित्रं परिगृह्यते, लिंगं जिनरूपमचेलकत्वादियुक्तता, लिंगस्य ग्रहणमुपादानं तत्संयमविहीनं संयमेन विना, दर्शनं सम्यक्त्वं तेन रहितं च तपो यः करोति स पुरुषः निरर्थकं कर्मनिर्जरारहितं करोति । ज्ञानं चारित्रविमुक्तं लिंगोपादानं चेन्द्रियजयरहितं दयारहितं च यः करोति सोऽपि न किंचित्करोतीति तस्मात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि युक्तान्येवेति ।।९।।

सम्यग्ज्ञानादियुक्तस्य तपसो ध्यानस्य च माहात्म्यमाह—

तवेण धीरा विधुणंति पावं अज्झप्पजोगेण खवंति मोहं ।
संखीणमोहा धुदरागदोसा ते उत्तमा सिद्धिगदिं पयंति ।।१०।।

ततो ज्ञानादियुक्तेन तपसा धीराः सर्वसत्त्वसंपन्ना विधुन्वन्ति विनाशयन्ति पापं चारित्रमोहं कर्माण्यप्यशुभानि, अध्यात्मयोगेन परमध्यानेन क्षपयन्ति प्रलयं नयन्ति मोहं[1] मिथ्यात्वादिकं ततः क्षीणमोहा धृतराग-द्वेषा विनष्टज्ञानावरणदर्शनावरणान्तराया [2]निर्मूलिताशेषकर्माणश्च, ते संतस्ते साधव उत्तमाः सर्वप्रकृष्टगुणशीलोपेताः सिद्धिं गतिमनन्तचतुष्टयं प्रयान्ति प्राप्नुवन्ति लोकाग्रमिति ।।१०।।

इहां पूर्वकथन करि विरोध नांही, द्रव्यार्थिक नय के आश्रयतैं । बहुरि जो इनकरि रहित ज्ञानलिंगकरि तपनि कूं करैं तो कहा होय? अैसें प्रश्न हौंते कहै हैं—

अर्थ–ज्ञान है सो करणकरि हीन, करण शब्दकरि इहां षडावश्यकादि क्रिया रूप चारित्र-ग्रहण करिये हैं । लिंग कहिये-जिनरूप अचेलकत्वादि करि युक्त लिंग का ग्रहण, सो संयमविहीनं कहिये-संयम बिना दर्शन जो सम्यक्त्व तिसकरि रहित तप जो पुरुष करै है, सो निरर्थकं कहिये कर्म-निर्जरा रहित करै है । ज्ञान है सो चारित्र-रहित लिंग का ग्रहण, इंद्रिय-जय रहित बहुरि जो जीव दया रहित जो करै सो पुरुष किंचित्मात्र हू नांही करै है । तातैं सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही युक्त है । इन तीनों की एकता बिना मोक्ष नांही है ।।९।।

आगै सम्यग्ज्ञानादिकरि युक्त जो पुरुष ताकै तप का, बहुरि ध्यान का माहात्म्य कहै है—

अर्थ–तिस पीछैं ज्ञानादिक करि युक्त जो तप ताकरिकैं धीर जे सर्व सामर्थ्यकरि युक्त जो पाप, जो चारित्रमोह अर अशुभ कर्म्म है, ताहि विनाश करै है । अध्यात्मयोगेन कहिये परमध्यानकरि, मोहं कहिये दर्शन-मोह-मिथ्यात्वादिक, ताहि प्रलय कूं प्राप्त करै है । ता पीछै संक्षीणमोहा कहिये क्षीण भया है मोह जिनका, धुतरागद्वेषाः कहिये विनष्ट भया हैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय जिनका, निर्मूल कीये हैं समस्तकर्म जिननैं, अैसें होत संतै ते साधु उत्तमक्षमा कहिये सर्वोत्कृष्ट—अैसे गुण अर सील तिनिकरि युक्त सिद्धिगतिं कहिये अनंत चतुष्टय कूं पाय लोक का अग्रभाग, ताहि प्राप्त होय है ।।१०।।

---

१. क० दर्शनमोहं मिथ्यात्वादिकं । २. क० निर्मूलित-शेषकर्मणश्च ।

पुनरपि ध्यानस्य माहात्म्यमाह—

लेस्साझाणतवेण य चरियविसेसेण सुग्गई होई ।
तह्मा इदराभावे झाणं संभावए धीरो ।।११।।

विशेषशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । लेश्याविशेषेण तेजः पद्मशुक्ललेश्याभिः ध्यानविशेषेण धर्मध्यान-शुक्लध्यानाभ्यां, तपोविशेषेण चारित्रानुकूलकायक्लेशादिभिः, चारित्रविशेषेण च सामायिकशुद्धिपरिहारच्छेदोपस्थापनसूक्ष्मसाम्परायययथाख्यातचारित्रैः सुगतिर्भवति शोभना गतिः शुद्धदेवगतिः सिद्धिगतिर्मनुष्यगतिश्च दर्शनादियोग्या । यद्यपि विशेषशब्दश्चारित्रेण सह संगतस्तथापि सर्वैं सह संबध्यत इत्यर्थविशेषदर्शनादथवा[1] न चारित्रेण संबन्धः समासकरणाभावात्तस्मात्सर्वैः सह संबन्धः करणीयः,[2] मध्ये च विभक्तिश्रवणं यत्तत्प्राकृतबलेन कृतं न तत्तत्र । अथवा सुगतिर्मोक्षगतिरेवाभिसंबध्यते यत एवं तस्मादितरेषामभावेऽपि लेश्यातपश्चारित्राणामभावेऽपि ध्यानं संभावयेद्धीरः सम्यग्ध्यानं प्रयोजयेद्यतः सर्वाण्येतानि ध्यानेऽन्तर्भूतानि । सर्वैर्यद्यपि सुगतिर्भवति तथापि ध्यानं प्रधानं यतः सम्यग्दर्शनाविनाभावि ।।११।।

सम्यग्दर्शनस्य माहात्म्यमाह—

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी ।
उवलद्धपयत्थो पुण सेयासेयं वियाणादि ।।१२।।

सम्यक्त्वाज्जिनवचनरुचेर्ज्ञानं स्यात्सम्यक्त्वेन ज्ञानस्य शुद्धिर्यतः क्रियतेऽतः सम्यग्ज्ञानं सम्यक्त्वाद् भवति, सम्यग्ज्ञानाच्च सर्वभावोपलब्धिर्भवति

बहुरि हू ध्यान का माहात्म्य कहै है—

अर्थ–इहां विशेष शब्द है सो एक-एक प्रति संबंध करणां । लेश्या-विशेषण कहिये तेज, पद्म, शुक्ल लेश्यानिकरि ध्यान विशेषण कहिये धर्मध्यान, शुक्लध्यानकरि तपो विशेषण कहिये चारित्र कै अनुकूल कायक्लेशादिकनि करि बहुरि चारित्र विशेषण कहिये सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात-चारित्रनिकरि सुगति कहिये शोभन जो शुद्ध देवगति, सिद्धगति, बहुरि मनुष्यगति (जोकि) सम्यग्दर्शनादिक कै जोग्य होय है । यद्यपि विशेष शब्द है सो चारित्रकरि सहित मिल्या है, तोउ सर्वलेश्यादिकनिकरि संबंध कहिये है । विशेष अर्थ के देखवे तै अथवा चारित्रकरि साथि संबंध नांही, समास करणें का अभावतैं, तातैं सर्वनि करि साथि संबंध करणां । बहुरि मध्य विषै जो विभक्ति का श्रवण है सो प्राकृत के बलकरि कीया है सो तहां नांही है । अथवा सुगति इस करि मोक्ष गति ही का संबंध करणां। जातैं इस प्रकार है-तातैं इतर जे लेश्या, तप अर चारित्र इनका अभाव होत संतै हू ध्यान जो शुभध्यान ताहि धीर पुरुष है सो ध्यावै, जातै यह सर्व-ध्यान विषैं अंतर्भूत है । यद्यपि सर्वानिकरि सुगति है तोऊ ध्यान प्रधान है, जातैं ध्यान सम्यक्दर्शनतै अविनाभावी है ।।११।।

आगैं बहुरि सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–सम्यक्त्व जो जिनवचन विषै रुचि तातैं ज्ञान होय हैं, जातैं सम्यक्त्व करिकै ज्ञान की शुद्धि करिये है, तातैं सम्यक्त्वतैं सम्यक्ज्ञान होय है । बहुरि सम्यग्ज्ञानतैं सर्वभाव की उपलब्धि होय है । जातैं सर्वद्रव्य, पदार्थ, अस्तिकाय भेदनि करि सहित, पर्यायनि करि सहित इनका विवेक सम्यग्ज्ञानकरि करियै है । दर्शन का विषय ज्ञानतै जुदा नांही, सो दर्शनपूर्वक ज्ञान कैसें ? यह दोष नांही है । विपरीत अनध्यवसाय

---

१. क० इत्यर्थो । २. क० धर्मध्यानशुक्लध्यान-तपोविशेषेण ।

यत: सर्वेषा द्रव्याणां पदार्थानामस्तिकायानां सभेदानां सपर्यायाणां च सम्यग्ज्ञानेन परिच्छित्ति: क्रियते । दर्शनस्य विषयो विविक्तो[१] न भवति ज्ञानात् कथं तर्हि तत्पूर्वकं ज्ञानं, नैष दोषो विपरीतानध्यवसायाकिंचित्करत्वादीनि स्वरूपाणि ज्ञानस्य सम्यक्त्वेनापनीयन्त । उपलब्धपदार्थश्च पुन: श्रेय: पुण्यं कर्मापायकारणं चाश्रेय: पापं कर्मबन्धकारणं च विजानाति सम्यगवबुध्यत इति ।।१२।।

तथा—

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवं होदि ।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहदि णिव्वाणं ।।१३।।

तत: श्रेयसोऽश्रेयसश्च विद् वेत्ता श्रेयोऽयोवित्सन् उद्धूतदु:शील: सन् शीलवानष्टादशशीलसहस्रधार: स्यात्तत: शीलफलेनाभ्युदय: संपूर्णचारित्रं अथवोद्धूतदु:शीलो निवृत्तपापक्रिय: स्यात्ततश्चारित्रसमन्वित: स्यात्तच्च शीलं तस्माच्चाभ्युदय: स्वर्गादिसुखाद्यनुभवनं ततश्च लभते पुनर्निर्वाणं सर्वकर्मापायोत्पन्न-सुखानुभवनमिति तत: सर्वेण[२] पूर्वग्रन्थेन चारित्रस्य माहात्म्यं दत्तम् ।।१३।।

यतश्च सम्यक्चारित्रात्सुगतिस्तत:—

सव्वं पि हु सुदणाणं सुट्ठु सुगुणिदं पि सुट्ठु पढिदं पि ।
समणं भट्टचरित्तं ण हु सक्को सुग्गइं णेदुं ।।१४।।

चारित्रस्य प्राधान्यं यत: सर्वमपि श्रुतज्ञानं सुष्ठु कालादिशुद्ध्या शोभनविधानेन परिणामशुद्ध्या गुणितं परिवर्तितं सुष्ठु पठितं च शोभनविधानेन श्रुतं व्याख्यातमवधारितं च सत्, श्रमण यतिं भ्रष्टचारित्रं चारित्रहीनं नैव खलु स्फुटं शक्तं समर्थं सुगतिं नेतुं प्रापयितुमथवा न शक्नोति परमगतिं नेतुमित्यतश्चारित्रं

अकिंचत्करत्व आदि स्वरूपज्ञान के सम्यक्त्वकरि दूरि किये हैं । बहुरि पाया है पदार्थनिका स्वरूप जानैं सो श्रेय जो पुण्य सो कैसा है ? कर्मनि का नाश का कारण बहुरि अश्रेय: कहिये पाप, सो कैसा है ? कर्म्मबंधनि का करण, ताहि जानाति कहिये भलै प्रकार जानैं है ।।१२।।

तथा—

अर्थ–ता पीछैं पुण्यपाप को ज्ञाता होत संतो निवार्‌या है दु:शील जानै, शीलवान् कहिये अठारहसहस्र १८००० शीलनि को आधार भवति कहिये होय है । ता पीछै शील के फलकरि संपूर्ण अभ्युदय: कहिये चारित्र अथवा उद्धूतदु:शील: कहिये पापक्रियातैं निर्वृत अैसे होय है ता पीछैं चारित्रकरि संयुक्त होय तिस चारित्रतैं शील बहुरि तिस शीलतैं अभ्युदय: कहिये स्वर्गादिकनि विषैं सुखादिक का अनुभव बहुरि तिस पीछैं निर्वाण जो सर्वकर्मके नाशतैं उपज्या सुख का अनुभव ताहि पावै हैं । तातैं सर्व पूर्व ग्रंथकरि चारित्र का माहात्म्य दिखाया।।१३।।

आगैं जातैं सम्यक्चारित्रतैं सुगति है, तातैं आगै सूत्र कहै है—

अर्थ–चारित्र की प्रधानता कहै है । जातैं सर्वही श्रुतज्ञान सुष्ठु कहिये कालादिक की शुद्धिकरि भले विधानकरि परिणामनि की शुद्धिकरि गुणितं कहिये गुण्या, सुष्ठु कहिये भले विधानकरि, पठितं कहिये शास्त्र का व्याख्यान अवधारण कीया संता भ्रष्टचारित्रं कहिये चारित्रकरि हीन अैसा श्रमणं कहिये यती है ताहि भलीगति प्राप्त करवेकूं नांही समर्थ होय है अथवा परमगति कूं प्राप्त करवेकूं नांही समर्थ होय है ।

---

१. क० विविक्तो भवति । २. क० सर्वग्रन्थेन ।

प्रधानमिति ।।१४।।

इममेवार्थं दृष्टान्तेन पोषयन्नाह—

जदि पडदि दीवहत्थो अवडे किं कुणदि तस्स सो दीवो ।
जदि सिक्खिऊण अणयं करेदि किं तस्स सिक्खफलं ।।१५।।

ननु शिक्षाफलेन भवितव्यमित्याशंकायामाह—यदि प्रदीपहस्तोऽप्यवटे कूपे पतति ततः किं करोति तस्यासौ प्रदीपः । प्रदीपो हि गृह्यते चक्षुरिन्द्रिय-सहकारित्वेन हेयोपादेयनिरूपणाय च तद्यदि न कुर्यात्तर्हि तद्ग्रहणं न किंचित्प्रयोजनं एवं यदि[1] श्रुतज्ञानं शिक्षित्वा सम्यगवधार्यानयं चारित्रभंगं करोतिं किं तस्य शिक्षाफलं यावता हि न किंचित् । श्रुतावधारणस्यैतत्फलं चारित्रानुष्ठानं तद्यदि न भवेच्छ्रुतमप्यश्रुतकल्पमर्थक्रियाऽभावादिति ।।१५।।

एवं चारित्रस्य प्राधान्यमुपन्यस्य शुद्धिकारणमाह—

पिंडं सेज्जं उवधिं[2] उग्गमउप्पायणेसणादीहिं ।
चारित्तरक्खणट्ठं सोधणयं होदि सुचरित्तं ।।१६।।

पिंड भिक्षां, शय्यां वसत्यादिकं, उपधिं ज्ञानोपकरणं शौचोपकरणं चेति उद्गमोत्पादनैषणादिभ्यो दोषेभ्यः शोधयँश्चारित्ररक्षणार्थं सुचरित्रो भवति। अथवा चारित्ररक्षणार्थं पिंडमुपधिं शय्यां च शोधयतः सुचरित्रं भवति शुद्धिश्च तेषामुद्गमोत्पादनैषणादोषाणामभाव इति । अथवा पिंडादीनामुद्गमादिदोषेभ्यो शोधनं यच्चारित्ररक्षणार्थं तत्सुचरित्रं भवतीति ।।१६।।

या कारणतैं चारित्र प्रधान हैं ।।१४।।

आगै इसही अर्थकूं दृष्टांतकरि पोषते संतै कहै हैं—

अर्थ–इहां प्रश्न करै हैं—शिक्षा के फलकरि कार्यहोय है ? अैसी आशंका होतै कहैं है:—जो दीपक है हाथ विषैं जाके-अैसा हू पुरुष अवट जो कूप ता विषैं पडैं हैं तो ताका यह हाथ का दीपक कहा करै ? दीपक है सो चक्षुइंद्रिय कै सहाय करवेकरि हेय-उपादेय के निरूपण अर्थिग्रहण करिये हैं । जो हेय-उपादेय का पुरुष ग्रहण न करैं तो तिस दीपक के ग्रहण होतैं कछु प्रयोजन नांही-अैसैं जो श्रुतज्ञान सीखकरि भलै प्रकार धारिकरि अनय जो चारित्र का भंग, ताहि करै है, ताकै सीखने का फल कहां ? जो पढिकरि चारित्र का आचरण नांही होय तो सीखवे का यह कछु फल नांही । अर्थक्रिया के अभावतैं श्रुत है सो अश्रुत है ।।१५।।

या प्रकार चारित्र की प्रधानता स्थापि शुद्धि का कारण है, ताहि कहै है—

अर्थ–पिंड जो भिक्षा, शय्या अरु वसतिकादिक उपधि जो ज्ञानोपरण, संयमोपकरण बहुरि शौचोपकरण ताहि उद्‌गम, उत्पादन, एषणादिक दोषनितैं चारित्र के रक्षा निमित्त सोधता सुचारित्रवान् होय हैं । अथवा चारित्र की रक्षा निमित्त पिंड, उपधि बहुरि शय्या कूं सोधता मुनि कैं भला चारित्र होय है । बहुरि तिसकी शुद्धि है सो उद्‌गम, उत्पादन, एषणा दोषनि का अभाव जाननां । अथवा पिंडादिकनिका उद्गमादि दोषनितैं चारित्र की रक्षा निमित्त जो सोधनां है सो सुचरित्र है ।।१६।।

---

१. क० पुनर्ज्ञानं । २. ग० उवहिं ।

येन लिंगेन तच्चारित्रमनुष्ठीयते तस्य लिंगस्य भेदं स्वरूपं च निरूपयन्नाह—

अच्चेलक्कं लोचो वोसट्टसरीरदा य पडिलिहणं ।
एसो हु लिंगकप्पो चदुव्विधो होदि णायव्वो[1] ।।१७।।

अचेलकत्वं चेलशब्देन सर्वोऽपि वस्त्रादिपरिग्रह उच्यते, यथा तालशब्देन सर्वोऽपि वनस्पतिः, तालफलं न भक्ष्यं इत्युक्ते सर्वं वनस्पतिफलं न भक्षयिष्यामीति ज्ञायते, एवं चेलपरिहारेण सर्वस्य परिग्रहस्य परिहारः, न चेलकत्वमचेलकत्वं सर्वपरिग्रहपरिहरणोपायः, एतदप्यचेलकत्वमुपलक्षणपरं तेनाचेलकत्वावौद्देशिकादयः सर्वेऽपि गृह्यन्त इति । लोचः स्वहस्तपरहस्तैर्मस्तककूर्चगतकेशापनयनं । व्युत्सृष्टशरीरता च स्नानाभ्यंजनांजनपरिमर्दनादिसंस्काराभावः । प्रतिलेखनं मयूरपिच्छग्रहणम् । अचेलकत्वं नैःसंग्यचिह्नं, सद्भावनायाश्चिह्नं लोचः, व्युत्सृष्टदेहत्वमपरागतायाश्चिह्नं, दयाप्रतिपालनस्य लिंगं[2] मयूरपिच्छिकाग्रहणमिति, एष एवं लिंगकल्पो लिंगविकल्पश्चतुर्विधो भवति ज्ञातव्यश्चारित्रोपकारकत्वादिति ।।१७।।

अथ के तेऽचेलकत्वादय इत्याशंकायामाह—

अच्चेलक्कुद्देसियसेज्जाहररायपिंड किदियम्मं ।
वद जेट्ठ पडिक्कमणं मासं[3] पज्जो समणकप्पो[4] ।।१८।।

अचेलकत्वं वस्त्राद्यभावः, अत्र ये नञ् स उत्तरत्राभिसंबन्धनीयः, यथा चेलकस्याभावस्तथौद्देशिकस्याभावस्तथा शय्यागृहस्याभावस्तथा राजपिंडस्याभावः । उद्दिश्य न भुंक्ते, उद्देशे भवस्य दोषस्य परिहारोऽनौद्देशिको मदीयायां वसतिकायां यस्तिष्ठति तस्य दानादिकं ददामि नान्यस्येत्येवमभिप्रेतस्य

आगै जिस लिंगकरि सो चारित्र आचरण करिये है, तिस लिंग का भेद बहुरि स्वरूप हैं, ताहि निरूपण करते संतै कहैं है—

अर्थ–अचेलकत्वं कहिये चेल शब्दकरि सर्वहू वस्त्र आदि परिग्रह कहिये हैं । जैसैं ताल शब्द करि सर्व वनस्पती हैं । ''तालफलं न भक्ष्ये'' इत्युक्ते ''सर्ववनस्पति फलेन भक्षयिष्यामि इति ज्ञायते'' । याका अर्थ—मैं ताल फल नांही भक्षण् करूंगा-ऐसें कहतैं ''सर्व वनस्पति फल हैं, ताहि नांही भक्षण करुंगा'' ऐसे जानिये है । या प्रकार चेल का परिहारकरि सर्व परिग्रह का परिहार जाननां । न हि चेलकत्व सौ अचेलकत्व समस्त परिग्रह का परिहार का उपाय यह हू अचेलकत्व शब्द है सो उपलक्षण विषैं तत्पर है । तिसकरि अचेलकत्व, उद्देशिकादिक सर्व ही ग्रहण करिये है । लोच कहिये स्वहस्त-परहस्तनि करि मस्तक, डाढी, मूछनि विषैं प्राप्त केशनि का उपाडनां । बहुरि व्युत्सृष्ट शरीरता कहिये स्नान, तैल-मर्दन उवटना आदिकरि शरीर-संस्कार का अभाव । प्रतिलेखन कहिये मयूर पीछी का ग्रहण । अचेलकत्व है सो परिग्रह अभाव का चिन्ह है । लोच है सो समीचीन भावना का चिन्ह है। देह-संस्कार का त्याग है सो वीतरागता का चिन्ह है । पीछी का ग्रहण है सो दयापालन का चिन्ह है । ऐसे लिंगकल्प कहिये लिंग का भेद च्यार प्रकार जानना । काहेतैं ? चारित्र के उपकारपनैंतैं ।।१७।।

अथानंतर ते अचेलकत्वादिक कौन ? ऐसी आशंका हौतैं कहै हैं—

अर्थ–श्रमणकल्प दश प्रकार, सो कैसैं ? अचेलकत्वं कहिये वस्त्रादिक का अभाव । इहां जो नञ् समास है सो अभाव का वाची

---

१. अ० ब० ग० नायव्वो, भगवती आराधना गाथा ७९ उस्सगे (औत्सर्गिकसंज्ञिते लिंगे) ।
२. क० मयूरपिच्छग्रहणं । ३. अ० ब०, कमणे मासे । ४. ग० सवणकप्पो ।

दानस्य परिहार:, शय्यागृहपरिहारो [1]मठगृहमपि शय्यागृहमित्युच्यते तस्यापि परिहार:, राजपिंडस्य परित्यागो वृष्यान्नस्येन्द्रियप्रवर्धनकारिण आहारस्य परित्यागोऽथवा स्वार्थं दानशालाया ग्रहणं यत्तस्य परित्याग:[2] कृतिकर्म स्वेन वंदनादिकरणे उद्योग:, व्रतान्यहिंसादीनि तैरात्मभावनं तै: सह संयोग: संवासस्तद्व्रतं, ज्येष्ठो ज्येष्ठत्वं मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यासंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतानां ज्येष्ठ: पूज्यो[3] बहुकालप्रव्रजिताया अप्यार्यिकाया अद्य प्रव्रजितोऽपि महाँस्तथेन्द्रचक्रधरादीनामपि महान् यतोऽतो ज्येष्ठ इति प्रतिक्रमणं सप्तप्रतिक्रमणैरात्मभावनं दैवसिकादिप्रतिक्रमणानुष्ठाने[4] मासो योगग्रहणात्प्राङ्मास-मात्रमवस्थानं कृत्वा वर्षाकाले योगो ग्राह्यस्तथा योगं समाप्य[5] मासमात्रमवस्थानं कर्त्तव्यम् । लोकस्थितिज्ञापनार्थमहिंसादिव्रतपरिपालनार्थं च योगात्प्राङ् मासमात्रावस्थानस्य पश्चाच्च मासमात्रावस्थानं श्रावकलोकादिसंक्लेशपरिहरणायाथवा ऋतौ ऋतौ मासमासमात्रं स्थातव्यं मासमात्रंच विहरणं कर्त्तव्यमिति मास: श्रमणकल्पोऽथवा वर्षाकाले योगग्रहणं चतुर्षु नन्दीश्वरकरणं च मासश्रमणकल्प:[6] । **पज्जो**—पर्यापर्युपासनं निषद्यकाया: पंचकल्याणस्थानानां च सेवनं पर्येत्युच्यते, श्रमणस्य श्रामण्यस्य वा कल्पो विकल्प:[7] अनेन प्रकारेण दशप्रकार: श्रमणकल्पो वेदितव्य इति ।।१८।।

है । याका संबंध केवल चेल शब्दतैं हूं नांही करणां आगै भी संबंध करणां । जैसैं १. चेलका अभाव, तैसै २. उद्देशिक का अभाव, तैसै ३. शय्याग्रह का अभाव, तैसै ४. राजपिंड का अभाव । उद्देशकरि नांही भोजन करैं । अपनैं अर्थि कीया भोजन मुनि नांही करै । उद्देश विषैं भया जो दोष ताका परिहार सो अनौद्देशिक है । मेरी वसतिका विषैं जो तिष्ठै ताकूं दानादिक देहु औरकूं नांही । असैं अभिप्रायकरि रच्या दान का परिहार सो शय्यागृह परिहार है । मठ घर हैं सो हू शय्याघर कहियै है, ताका हू परिहार इंद्रियनिकूं वृद्धिका करता जो गरिष्ठ भोजन सो राजपिंड, ताका परित्यागतै सो राजपिंड परित्याग है । अथवा अपनैं निमित्त जो दानशाला का ग्रहण ताका परित्याग । ५. कृतिकर्म नाम आपकरि वंदनादिक करवे विषैं उद्यम, सो है । ६. व्रत हैं ते अहिंसा आदि हैं, तिनकरि आपकी भावना तिनकरि साथि संयोग अर संवास सो व्रत कहिये । ७. ज्येष्ठ कहिये पूज्यपनां। १. मिथ्यादृष्टी २. सासादन, ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ४. असंयत, ५. संयत-असंयत—इन सर्वनिकैं ज्येष्ठ कहिये पूज्य, जातैं चिरकालतैं दीक्षित अैसी हू अर्जिकातैं आज का दीक्षित मुनि महान् है तथा इंद्र, चक्रवर्त्यादिक कैहू महान् हैं, यातैं ज्येष्ठ है । ८. सप्त प्रतिक्रमणतैं दैवसिकादि प्रतिक्रमण तिनकरि, आत्मभावनं कहिये आचरण सो प्रतिक्रमण है ।

९. मासे कहिये योग ग्रहणतैं पूर्व मास मात्र स्थितिकरि वर्षाकाल विषैं योग-ग्रहण करनां तथा योग कूं पूर्णकरि मासमात्र स्थिति करणी। योग पूर्ण भयैं पीछैं मास एक (एकमास) रहनां-यह विशेष कथन विशेष प्रयोजन अर्थि है । कौन अर्थि ? लोकमर्यादा के जानवे अर्थि । बहुरि अहिंसादिक व्रतनि के पालवे अर्थि योगतैं पूर्व मासमात्र स्थिति का प्रयोजन जाननां । बहुरि पीछैं मासमात्र स्थिति है, सो श्रावक लोकादिकनिके संक्लेश निवारवे अर्थि है । अथवा ऋतु-ऋतु विषैं मासमात्र स्थिति करणी । बहुरि तीन मास विषैं विहार करतव्य है-यह मासश्रमण-कल्प है । अथवा वर्षाकाल विषैं योग का ग्रहण करनां । बहुरि च्यार-च्यार मास विषैं नंदीश्वर करणां सो मासश्रमणकल्प है ।

१०. पर्या कहिये पर्युपासन, निषद्यका का बहुरि पंचकल्याणनि के स्थाननिका सेवने सो पर्या कहिये है । मुनि अथवा मुनिधर्म-इनका कल्प कहिये भेद सो श्रमणकल्प है । इन भेदकरि श्रमणकल्प दशप्रकार जाननां ।।१८।।

---

१. एषा पंक्ति : 'क' प्रतौ नास्ति । २. ग० त्याग:, ३. ग० पूज्यं । ४. क० नुष्ठानं । ५. क० ग० समापयित्वा ।
६. ग० श्रवणकल्प:। ७. ग० श्रमणकल्प: ।

लोचो मूलगुणे व्याख्यातस्तथा व्युत्सृष्टशरीरत्वं चास्नानमूलगुणे व्याख्यातमतो न तयोरिह प्रपंचस्ततः प्रतिलेखनस्वरूपमाह—

रजसेदाणमगहणं मद्दव सुकुमालदा लहुत्तं च ।
जत्थेदे पंचगुणा तं पडिलिहणं पसंसंति ।।१९।।

रजःस्वेदयोर्यत्राग्रहणं रजसा पांस्वादिना प्रस्वेदेन च यन्मलिनं न भवति । रजसोऽग्रहणमेकः गुणः, स्वेदस्य चाग्रहणं द्वितीयो गुणः, मार्दवं मृदुत्वं चक्षुषि प्रक्षिप्तमपि न व्यथयति यतः स तृतीयो गुणः, सुकुमारता सौकुमार्यं दर्शनीयरूपं चतुर्थो गुणः, लघुत्वं च गुरुत्वस्याभावः प्रमाणस्थानमुत्क्षेपणादौ योग्यता पंचमो गुणः,यत्रैते पंचगुणा द्रव्ये सन्ति तत्प्रतिलेखनं मयूरपिच्छग्रहणं प्रशंसन्त्यभ्युपगच्छन्त्याचार्या गणधरदेवादय इति ।।१९।।

ननु चक्षुषैव प्रमार्जनं क्रियते किमर्थं प्रतिलेखनधारणं, नैष दोषो न हि चक्षुः सर्वत्र प्रवर्त्तते यतः—

सुहुमा हु संति पाणा दुप्पेक्खा[1] अक्खिणो अगेज्झा हु ।
तह्मा जीवदयाए पडिलिहणं धारए भिक्खू ।।२०।।

सूक्ष्माः सुष्ठु क्षुद्राः, हु—स्फुटं, सन्ति विद्यन्ते, प्राणा द्वीन्द्रियादय[2] एकेन्द्रियाश्च, दुःप्रेक्ष्या दुःखेन दृश्या मांसचक्षुषा चाग्राह्या मांसमयेक्षणेन ग्रहीतुं न शक्या यत एवं तस्मात्तेषां जीवानां दयानिमित्तं प्राणसंयमप्रतिपालनार्थं प्रतिलेखनं धारयेन्मयूरपिच्छिकां[3] गृह्णीयाद्भिक्षुः साधुरिति ।।२०।।

प्रतिलेखनमन्तरेण न साधुः—

उच्चारं पस्सवणं णिसि सुत्तो उट्ठिदो हु काऊण ।
अप्पडिलिहिय सुवंतो जीववहं कुणदि णियदं तु ।।२१।।

लोच है सो मूलगुणनि विषैं कह्या तथा व्युत्सृष्ट शरीरता है सो अस्नान नाम मूलगुण विषैं कह्या । तातैं तिनि दोउ का इहां विस्तार नांही कह्या । आगैं प्रतिलेखन का स्वरूप कहै हैं—

अर्थ–जहां रज (धूलि) अर स्वेत (स्वेद) कहिये पसेव (पसीना) इनका ग्रहण नांही । जो रज अर पसेव करि मलिन नांही होय। १. रज का अग्रहण सो एक गुण । २. स्वेद जो पसेव ताका अग्रहण सो दूसरा गुण । ३. मार्दव कहिये मृदुता । नेत्र विषैं क्षेप्या हू नांही पीडा उपजावै यातैं मार्दव है सो तीसरा गुण है । ४. सुकुमालता कहिये देखवे जोग्य है रूप जाका सो चौथा गुण है । बहुरि ५. लघुत्वं कहिये भारीपने का अभाव, हलकी प्रमाण रूप, उत्क्षेपण अर अवक्षेपण आदि विषैं जोग्यता—यह पांचवां गुण है । जिस द्रव्य विषैं यह पंच गुण हैं सो प्रतिलेखन है । सो याकै अर्थि मयूरपिच्छिका का ग्रहण है । ताहि आचार्य गणधरदेव सरावैं (प्रशंसा करैं) हैं ।।१९।।

इहां तर्क—नेत्र ही करि शोधन करणां फिर पिच्छिका का धारण कौन अर्थि ? यह दोष नांही, जातैं नेत्र सर्वत्र नांही प्रवर्तैं हैं । आगै अैसैं कहै हैं—

अर्थ–सूक्ष्माः कहिये अतिशयकरि लघु अवगाहना के धारक अैसे, प्राणाः कहिये द्वीन्द्रियादिक बहुरि एकेन्द्रिय प्रगट विद्यमान हैं। दुःप्रेक्ष्याः कहिए कष्टकरि देखिवे मैं आवै मांसमय (चर्म) नेत्रकरि ग्रहण करवे शक्य नांही, जातैं अैसें हैं, तातैं तिन जीवनि की दया निमित्त प्राणसंयम के पालवे अर्थि भिक्षु जो साधु सो प्रतिलेखन जो मयूरपीछी, ताहि धारण करै ।।२०।। आगैं पिच्छिका-बिना साधु नांही रहै, अैसे कहै हैं—

---

१. अ० ब० क० ग० मंस चक्खुणोऽगेज्झा । २. क० द्वीन्द्रिया । ३. क० मयूरपिच्छं ।

उच्चारं पुरीषोत्सर्गं प्रस्रवणं मूत्रश्लेष्मादिकं च कृत्वा निशि रात्रौ प्रसुप्तोनिद्राक्रान्त उत्थितश्चेतयमानोऽपि चक्षुषोऽप्रसरेऽप्रतिलेख्य प्रतिलेखनमंतरेण पुनः स्वपन् गच्छन्नुद्वर्तनपरावर्तनानि च कुर्वन् जीववधं जीवानां वधं जीवघातनं परितापनादिकं च नियतं निश्चितं निश्चयेन करोति । निशि सुप्तः पुनरुत्थित उच्चारं प्रस्रवणं च कृत्वा पुनः स्वपन् प्रलिखनमंतरेण निश्चयेन जीवविघातादिकं च कुर्यादिति ।।२१।।

ननु प्रतिलेखनेनाऽपि जीवानां पीडा भवतीति ततः किमुच्यते प्रतिलेखनधारणामित्याशंक्य प्रतिलेखनस्य कस्यापि सौकुमार्यमाह—

ण य होदि णयणपीडा अच्छिं पि भमाडिदे दु पडिलेहे ।
तो सुहुमादी लहुओ पडिलेहो होदि[1] कायव्वो ।।२२।।

न च भवति नयनपीडा चक्षुषो व्यथा अक्ष्णि नयनेऽपि भ्रामिते प्रवेशिते प्रतिलेखे मयूरपिच्छे, यतस्ततः सूक्ष्मत्वादियुक्तो लघुप्रमाणस्थः प्रतिलेखो भवति कर्त्तव्यो जीवदयानिमित्तमिति ।।२२।।

प्रतिलेखनास्थानान्याह—

ठाणे चंकमणादाणे णिक्खेवे सयणआसण पयत्ते ।
पडिलेहणेण पडिलेहिज्जइ लिंगं च होइ सपक्खे ।।२३।।

स्थाने कायोत्सर्गे चंक्रमणे गमने आदाने कुंडिकादिग्रहणे निक्षेपे पुस्तकादीनां निक्षेपे पुस्तकादीनां निक्षेपणे शयने आसने [2]उद्वर्त्तनपरावर्त्तनादौ संस्तरग्रहणे भुक्तोच्छिष्टप्रमार्जने च यत्नेन प्रतिलेखनेन प्रतिलिख्यते प्रमार्ज्यते जीवानां रक्षा क्रियते यतो लिंगं च चिह्नं च स्वपक्षे भवति यतोऽयं वाताधिको

अर्थ–उच्चारं कहिये मलका क्षेपनां । बहुरि प्रवणं कहिये मूत्र-श्लेषमादिक ताहिकरि, निशि कहिये रात्रि-विषैं निद्राकरि व्याप्त उठ्या सचेतहू नेत्र का अप्रचार होत संतै सोधन कीये बिना बहुरि सोवता, गमन करता, उद्वर्तन-परावर्तन करता, जीववधं कहिये जीवनि का वध जो घात, बहुरि परितापनादिक ताहि नियतं कहिये निश्चयकरि करै है । याका संक्षेप अर्थ ऐसा—रात्रि विषै सूता, बहुरि उठ्या, मलमूत्र क्षेपकरि बहुरि सोवता प्रतिलेखन बिन, निश्चयकरि साधु जीव घातादिक करै है ।।२१।।

इहां तर्क—पीछी हू करि जीवनि कूं पीडा होय है, तातैं पीछी का राखनां काहे कूं कहिये ? ऐसी आशंका करि पीछी की हू सुकुमारता वर्णन करै है—

अर्थ–जातैं मयूर पीछी नेत्रनि विषैं पीडा नांही होय है, तातैं सूक्ष्मत्वादि गुणनि करि युक्त लघु कहिये प्रमाणीक प्रतिलेखन जो पीछिका सो जीवदया निमित्त करवे जोग्य है ।।२२।।

आगैं प्रतिलेखन के स्थान हैं, तिनहि कहै हैं—

अर्थ–स्थाने कहिये कायोत्सर्ग विषैं, चक्रमणे कहिये गमन विषै, आदाने कहिये कमंडल आदि के ग्रहण विषैं, निक्षेप कहिये पुस्तकादिक के निरूपण विषैं, शयन विषैं, आसने कहिये उद्वर्तन परावर्तन विषैं, संस्तर के ग्रहण विषैं, भुक्तोच्छिष्ट के प्रमार्जन विषैं जतनकरि प्रतिलेखन जो पीछी ताकरि प्रतिलिख्यते कहिये जीवनिकी रक्षा करिये है । जातैं यह मुनि बावला (पागल) नांही, संजमी है । या प्रकार लिंग जो चिन्ह

---

१. अ० ब० ग० हवदि । २. क० उद्वर्तनपरावर्तने ।

न भवति संयतोऽयमिति लिंगं भवति ततः प्रतिलेखनधारणं साधूक्तं युक्त्यागमाविरोधि[1] चेति । न च प्रणिघातयोगात्तेषामुत्पत्तिः कार्तिकमासे स्वत एव पतनाद्, यथाहारस्य शुद्धिः क्रियते एवमुपकरणादिकस्यापि कार्येति ।।२३।।

अनेन लिंगेन युक्तस्याचरणफलमाह—

पोसह उवहोपक्खे तह साहू जो करेदि णावाए ।
णावाए कल्लाणं चादुम्मासेण णियमेण ।।२४।।[2]

अनेन लिंगेन युक्तः सन् साधुर्यः करोति प्रोषधमुपवासमुभयपक्षयोः कृष्णचतुर्दश्यां च, णावाए—नापाये तयोरविनाशे सति, णावाए—नयते प्राप्नोति, कल्याणं परमसुखं, चातुर्मासेन चातुर्मासिकप्रतिक्रमणेन, नियमेन सांवत्सरिकप्रतिक्रमणेन च सह, नियमेन निश्चयेन वा । चातुर्मासिकोपवासेन सांवत्सरिकोपवासेन च सह यः साधुः कृष्णचतुर्दश्यां शुक्लचतुर्दश्यां चोपवासं करोति निन्तरममुंचन् स प्राप्नोति कल्याणं निश्चयेन । अथवा कृष्णपक्षे चोपवासं यः करोति साधुरपायमंतरेण स साधुश्चातुर्मासिकेन नियमेन कल्याणं प्रायश्चित्तं तथापि प्राप्नोत्यथवा न प्राप्नोतीति संबन्ध इति ।।२४।।

सो निज पक्ष विषै होय हैं, तातैं युक्ति अर आगम के अविरोधतैं पीछी राखणां सत्यार्थ कह्या । बहुरि तिन पीछीनिकी उत्पत्ति प्राणिघात जोगतैं नांही है । कार्त्तिक मास विषैं स्वतैं ही मयूरके पूंछतैं पांख का पतन है । जैसैं आहार की शुद्धि करिये है, तैंसे उपकरणादिक हू की शुद्धि करवे जोग्य है ।।२३।।

आगै इस चिन्हकरि युक्त जो मुनि ताकै आचरण का फल कहै है—

अर्थ–इस लिंगकरि युक्त होता संता जो मुनि, उभयोः पक्षयोः कहिये कृष्णचतुर्दशी अर शुक्लचतुर्दशी विषैं तिनका भंग नांही होत संतै उपवास करै है, सो मुनि कल्याण जो परमसुख ताहि प्राप्त होय है । चातुर्मासेन कहिये चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करिकैं, बहुरि नियमेन कहिये सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करिकै सहित वा नियम जो निश्चय ताकरिकैं, चातुर्मासिक उपवास करिकै, बहुरि सांवत्सरिक उपवास करिकै सहित जो साधु कृष्ण चतुर्दशी विषैं बहुरि शुक्ल चतुर्दशी विषैं निरन्तर भंग-रहित उपवास करै है, सो निश्चयकरिकैं कल्याणकूं प्राप्त होय है । अथवा कृष्णपक्ष विषैं बहुरि शुक्ल पक्ष विषै जो साधु भंग-रहित उपवास करै हैं सो साधु चातुर्मासिक विषैं नियमकरि तोउ 'कल्याण' नामक जो प्रायश्चित्त ताहि प्राप्त होय है अथवा नांही प्राप्त होय है ।।२४।।

---

१. क० युक्त्यागमाविरोधाच्च ।

२. फलटन से प्रकाशित मूलाचार में इसके पहले निम्नलिखित एक गाथा और मिलती है—

ठाणणिसिज्जागमणे जीवाणं हंति अप्पणो देहं । दसकत्तरिठाणगदं णिपिच्छे णत्थि निव्वाणं ।।

अर्थात् जो मुनि अपने पास पिच्छिका नहीं रखता वह कायोत्सर्ग के समय, बैठने के समय, आने-जाने के समय अपनी देह की क्रिया से जीवों का घात करता है अतः उसे मुक्ति नहीं मिलती । (यहां 'दशकर्तरि' शब्द का अर्थ विचारणीय है । वैसे शास्त्र में मुनि के लिए बिना पिच्छिका के दश पग से अधिक गमन करने पर प्रायश्चित्त का विधान है ।)

एवं पिंडादिकं शोधयतः सुचरित्रं भवति, यः पुनर्न शोधयोत्तस्य फलमाह—

पिंडोवधिसेज्जाओ अविसोधिय जो य भुंजदे समणो ।
मूलट्ठाणं पत्तो भुवणेसु हवे समणपोल्लो ।।२५।।

पिंडमुपधिं शय्यां चाहारोपकरणावासादिकमविशोध्य च शुद्धिमकृत्वा यो भुंक्ते सेवते श्रमणः स मूलस्थानं प्राप्तो गृहस्थः संजातः भुवने लोकमध्ये चासौ श्रामण्यतुच्छो यतित्वहीनो भवेदिति ।।२५।।

तथा—

तस्स ण सुज्झइ चरियं तवसंजमणिच्चकालपरिहीणं ।
आवासयं ण सुज्झइ चिरपव्वइयो[1] वि जइ होइ ।।२६।।

पिंडादिशुद्धिमन्तरेण यस्तपः करोति तस्य न शुध्यति चारित्रं तपःसंयमाभ्यां नित्यकालं परिहीणो यत आवश्यकक्रिया न तस्य शुद्धा । यद्यपि चिरप्रवजितो भवति तथापि किं तस्य चारित्रादिकं भवति यदि पिंडादिशुद्धिं न कुर्यादिति ।।२६।।

पुनरपि चारित्रस्य प्राधान्यमाह—

मूलं छित्ता समणो जो गिण्हादी[2] य बाहिरं जोगं ।
बाहिरजोगा सव्वे मूलविहूणस्स किं करिस्संति ।।२७।।

मूलगुणानहिंसादिव्रतानि छित्वा विनाश्य श्रमणः साधुर्यो गृह्णाति च बाह्यं योगं वृक्षमूलादिकं तस्य साधोर्बाह्या योगाः सर्वे मूलविहीनस्य मूलगुणरहितस्य किं करिष्यन्ति यावता हि न किंचिदपि कुर्वन्ति नापि कर्मक्षयं करिष्यन्तीति ।।२७।।

या प्रकार पिंडादिक सोधता जो मुनि ताकैं भला चारित्र होय है, बहुरि जो नांही सोधे है ताकै फल कहै है—

अर्थ–जो मुनि पिंड जो आहारादिक, जो उपधि उपकरणादिक, शय्या जो आवासादिक ताहि नांही सोधिकरि भुंक्ते कहिये सेवै है, सो मुनि मूलस्थान (नामक प्रायश्चित्त) जो है, ताहि प्राप्त होय है । भावार्थ–गृहस्थ होय हैं बहुरि भुवन जो लोक ताकै मध्य श्रामण्यतुच्छः कहिये मुनिपणैं करि हीन होय है ।।२५।। तथा—

अर्थ–पिंडादिक की शुद्धि बिना जो तप करै हैं, ताकै चारित्र शुद्ध नांही होय है । जातैं तपःसंयमकरि नित्यकाल जो हीन है ताकै आवश्यक क्रिया शुद्धनांही । यद्यपि चिरकालतैं दीक्षित है, तोउ ताकैं कहा (क्या) चारित्रादिक होय है ? तिसकैं नांही होय है, जो पिंडादिक की शुद्धि नांही करै है ।।२६।।

आगैं बहुरि चारित्र की प्रधानता है, ताहि कहै है—

अर्थ–जो साधु मूलगुण जे अहिंसादिक व्रत, तिनहि छेदि, बाह्ययोग जो वृक्षमूलादिक ताहि ग्रहण करै है । मूलगुण रहित तिस साधुकैं सर्व बाह्य योग कहा करैंगे ? किंचित्मात्रहू कर्मक्षय नांही करै है ।।२७।।

---

१. अ० ब० ग०—'दो' । २. अ० ब० ग०—छेत्ता समणो जो गेण्हदि य ।

तावदहिंसादिव्रतं विनाश्य यः करोत्युत्तरगुणं तस्य दोषमाह—

हंतूण य बहुपाणं[1] अप्पाणं जो करेदि सप्पाणं ।
अप्पासुअसुहकंखी मोक्खकंखी ण सो समणो ।।२८।।

बहुप्राणान् हत्वा बहून् जीवान् त्रसस्थावरादीन् हत्वाऽधःकर्मादिभिरात्मानं यः करोति सप्राणं सावद्याहारं भुक्त्वाऽऽत्मनो बलोपचयं यः कुर्यात्सः साधुरप्रासुकसुखकांक्षी येन सुखेन नरकादीन् भ्रमति तदीहतेऽसौ मोक्षकांक्षी नासौ श्रमणः—सर्वकर्मक्षयविमुक्तिं नेच्छतीति ।।२८।।

दृष्टान्तेन दोषमाह—

एक्को वावि तयो वा सीहो वग्घो मयो व खादिज्जो ।
जदि खादेज्ज स णीचो जीवयरासिं णिहंतूण ।।२९।।

एक्को वावि—एकं वाऽपि मृगं शशकं वा, तयो वा—त्रीन् वा, द्वौ चतुरो वा मृगान् सिंहो मृगारिव्याघ्रः शार्दूलो वा समुच्चयार्थः तेनान्योऽपि गृह्यते शरभादिः । खादेज्ज—खादयेद् यदि भक्षयेत् स नीचोऽधमः पापिष्ठो जीवराशिं निहत्य । यदि एकं द्वौ त्रीन् वा जीवान् सिंहो व्याघ्रो वा खादयेत् स नीच इत्युच्यते । यः पुनरधःकर्मणो जीवराशिं निहत्य खादयेत् स कथं न नीचः किन्तु नीच एवेति भावार्थः ।।२९।।

येन प्राणिवधः कृतस्तेनात्मवधः कृत इति प्रतिपादयन्नाह—

आरंभे पाणिवहो पाणिवहे होदि अप्पणो हु वहो ।
अप्पा ण हु हंतव्वो पाणिवहो तेण मोत्तव्वो ।।३०।।

प्रथम ही जो अहिंसा व्रत है, ताहि विनासकरि उत्तरगुण हैं ताहि करै हैं, ताकै दोष कहै है—

अर्थ–जो साधु बहुत प्राण जे त्रस-स्थावरादिक जीव तिनहि हणिकरि अधःकर्मादिक करि आपकूं सप्राणं कहिये सावद्याहार भोगकरि बल का उत्कर्ष करै हैं, सो साधु अप्रासुक भोजन करि सुख का अभिलाषी जिस सुखकरि नरकादिक मैं भ्रमै है, तांही कूं वाछै है । यह साधु मोक्ष जो सर्वकर्म का अभाव, ताका वांछक नांही ।।२८।।

आगै दृष्टांतकरि दोष कहै है—

अर्थ–एकं वा अपि कहिये एक हू हरिण तीन वा दोय च्यार हरिण तिनकूं जो सिंह, वघेरा, सार्दूल, इहां वा शब्द समुच्चयार्थ है ताकरि अन्य हू शरभ आदि दुष्ट मांस भक्षी ग्रहण करिये हैं । खादयेत् कहिये भक्षण करै हैं, सो नीच कहियै अधम पापिष्ट हैं, जो जीव राशि को हणिकर (मारकर) खाय सौ नीच कैसैं नांही ? जो एक, दोय या तीन जीव हैं तिनही हणि सिंह, व्याघ्र खाय सो जीव नीच अैसे कहिये हैं । बहुरि जो साधु अधःकर्म करि जीवरासि कूं हणि खाय सो नीच कैसे नांही ? सो निश्चयकरि नीच है, अैसा भावार्थ है ।।२९।।

आगै जानै अन्य प्राणीनिका वध कीया तानै आत्मवध कीया-अैसे प्रतिपादन करतै संतै कहै है—

अर्थ–आरंभ जो पचनादिक कर्म सो होत संतै प्राणिवध जो जीवघात सो होय है । बहुरि प्राणिवध है सो प्रगटपनैं आत्मघात है।

---

१. अ. ब. ग. हंतूण बहुप्पाणं ।

आरंभे पचनादिकर्मणि सति प्राणिवधः स्यात्प्राणिवधश्च भवत्यात्मवधः स्फुटं नरकतिर्यग्गतिदुःखानुभवनं, आत्मा च न हंतव्यो यतोऽतः प्राणिवधस्तेन मोक्तव्यस्त्याज्य इति ।।३०।।

पुनरप्यधःकर्मणि दोषमाहोत्तरेण ग्रन्थप्रबन्धेन—

जो ठाणमोणवीरासणेहिं अत्थदि चउत्थछट्ठेहिं ।
भुंजदि आधाकम्मं सव्वे वि णिरत्थया जोगा ।।३१।।

यः पुनः स्थानमौनवीरासनैश्चतुर्थषष्ठादिभिश्चास्ते अधःकर्मपरिणतं च भुंक्ते तस्य सर्वेऽपि निरर्थका योगा उत्तरगुणा इति ।।३१।।

तथा—

किं काहदि वणवासो सुण्णागारो य रुक्खमूलो वा ।
भुंजदि आधाकम्मं सव्वे वि णिरत्थया जोगा ।।३२।।

किं करिष्यति तस्य वनवासः किं वा शून्यागारवसो वृक्षमूलवासो वा भुंक्ते चेदधःकर्म तत्र सर्वेऽपि निरर्थका योगा इति ।।३२।।

तथा—

किं तस्स ठाणमोणं किं काहदि अब्भोवगासमादावो ।
मेत्तिविहूणो समणो सिज्झदि ण हु सिद्धिकंखो वि ।।३३।।

किं तस्य स्थानं कायोत्सर्गः मौनं वा किं तस्य करिष्यति अभ्रावकाश आतापो वा यो मैत्रीभावरहितः श्रमणः सिद्धिकांक्षोऽपि नैव स्फुटं सिध्यतीति।।३३।। तथा—

जह वोसरित्तु कत्तिं विसं ण वोसरदि दारुणो सप्पो ।
तह को वि मंदसमणो पंच दु सूणा ण वोसरदि ।।३४।।

यातैं नरक, तिरजंच आदि गतिनि का दुखः भोगिये है जातैं । जातैं आत्मघात करवे जोग्य नांही, तातैं प्राणीनि का घात त्यजवे जोग्य है।।३०।।

आगै बहुरि हू अधःकर्म विषैं उत्तरगाथा करि दोष कहै है—

अर्थ–जो साधु स्थान (कायोत्सर्ग), मौन, अर वीरासन—इनकरि एक उपवास, बेला, तेला आदिकरि तिष्ठै है । बहुरि अधःकर्म सहित भोजन करै है, ताकै सर्वही योग जे उत्तरगुण ते निरर्थक हैं ।।३१।। तथा—

अर्थ–तिस मुनि कै वनवास कहा करैगा ? बहुरि सूना घर विषैं वास कहा करैगा ? अथवा वृक्ष-मूल विषैं वास कहा करैगा ? जो अधःकर्म सहित भोजन करै है, ताकै सर्व ही जोग निरर्थक हैं ।।३२।।

अर्थ–तिस साधु कै स्थान जो कायोत्त्सर्ग सो कहा करैगा ? वा मौन अभ्रावकाश-जोग, आतापन-जोग कहा करैगा ? जो साधु मैत्री-भाव रहित है सो मोक्ष का अभिलाषी हू, न सिद्धयति कहिये मोक्ष नांही पावै है ।।३३।। तथा—

अर्थ–जैसे रौद्र सर्प कृत्ति जो कांचली तहि तजि-करि विषकूं नांही तजै है । तैसैं कोऊ मंद-श्रमण जो चारित्र विषैं आलसी सो

यथा सर्पो रौद्रः कृत्तिं कंचुकं व्युत्सृज्य विषं न त्यजति तथा कश्चिन्मंदः श्रमणः चारित्रालसः पंचशूना न व्युत्सृजति भोजनादिलोभेनेति ।।३४।।

कास्ताः पंचशूना इत्याशंकायामाह—

कंडणी पीसणी चुल्ली उदकुंभं पमज्जणी ।
बीहेदव्वं णिच्चं ताहिं जीवरासी से मरदि ।।३५।।

यवादयः कंड्यंतेऽनया कंडनी उदूखलः, पिष्यंते यवादयोऽनया पेषणी यंत्रकं, चुल्ली अग्न्यधिकरणं, उदकुंभः वृहदलिंजरादिकं, प्रमार्ज्यतेऽनया प्रमार्जिनी अपस्करनिराकरिणी । एताभ्यो भेतव्यं नित्यं जीवराशिर्यतस्ताभ्यो म्रियते ।।३५।।

पुनरपि विशेषतोऽधःकर्मणि दोषमाह—

जो भुंजदि आधाकम्मं छज्जीवाणं घायणं किच्चा ।
अबुहो लोल सजिब्भो ण वि समणो सावओ होज्ज ।।३६।।

यो भुंक्तेऽधःकर्म षड्जीवानां घातनं कृत्वा अबुधोऽसौ लोलो लंपटः सजिह्वो जिह्वावशंगतः नापि श्रमणः किं तु श्रावकः स्यात् । अथवा न श्रमणो नापि श्रावकः स्यात् उभयधर्मरहितत्वादिति ।।३६।।

तथा—

पयणं व पायणं वा अणुमणचित्तो ण तत्थ बीहेदि ।
जेमंतो वि सघादी ण वि समणो दिट्ठिसंपण्णो ।।३७।।

पचने वा पाचने[1] वाऽनुमननचित्तः कंडन्याद्युपकरणेनाधःकर्मणि प्रवृत्तोऽनुमतिकुशलश्च न च तस्मात्पचनादिकाद्बिभेति भुंजानोऽपि स्वघाती नापि

भोजनादिक के लोभकरि पंचसूना कूं नांही तजै है ।।३४।।

आगै तैं पंचसूना कौन ? ऐसी आशंका होते कहै है—

अर्थ–यवादिक अन्न खोढिये (कूटिये) जाकरि सो कंडनी उदुखल है । यवादिक अन्न पीसिये जाकरि सो पेषणी घरट्टी (चक्की) है । जिस विषैं आगि प्रज्वलित करिये सो चुल्ली (चुल्हा), उदकुंभकहिये जल राखणें का स्थान । सोधिये जाकरि सो प्रमार्जनी, कूडाका निराकरणकरवे वारी भुवारी—इनतैं भयभीत होनां, जातैं तिनतैं नित्य ही जीवरासि मरैं है ।।३५।।

आगैं बहुरि हू विशेषपनैंतैं अधःकर्म विषैं दोष हैं, ताहि कहै है—

अर्थ–जो मूढ मुनि छह जीवनिकाय का घातकरि अधःकर्म सहित भोजन करै है । सो लोलुपी जिव्हा के वसि हुवा मुनि नांही है, कहा है ? श्रावक है, अथवा दोऊ धर्मनितैं रहितपनैं तैं मुनि हू नांही, श्रावक हू नांही ।।३६।।

अर्थ–पाक करवै विषैं अथवा पाक करावे विषैं अथवा पाक करो, अनुमनः चित्तः कहिये उदूखलादिक उपकरण करि अधःकर्म विषै प्रवृत्या, बहुरि अनुमोदने विषैं कुशल, तिस पचनादिकतैं नांही डरै है, सो मुनि भोजन करता हू आत्मघाती है विपरीत आचरणतैं सो मुनि

---

१. क० पचने पाचने वा ।

श्रमणो न च दृष्टिसंपन्नो विपरीताचरणादिति ।।३७।। तथा—

ण हु तस्स इमो लोओ ण वि परलोओ उत्तमट्ठभट्ठस्स ।
लिंगग्गहणं तस्स दु णिरत्थयं संजमेण हीणस्स ।।३८।।

नैव तस्येह लोको नाऽपि परलोक उत्तमार्थाच्चारित्राद् भ्रष्टस्य. लिंगग्रहणं तु तस्य निरर्थकं संयमेन हीनस्येति ।।३८।।

तथा—

पायच्छित्तं आलोयणं च काऊण गुरुसयासह्मि ।
तं चेव पुणो भुंजदि आधाकम्मं असुहकम्मं ।।३९।।

कश्चित्साधुः प्रायश्चित्तं दोषनिर्हरणं आलोचनं च दोषप्रकटनं च कृत्वा गुरुसकाशे गुरुसमीपे पुनरपि तदेव भुंक्तेऽधःकर्माशुभकर्म । यदर्थं प्रायश्चित्तादिकं कृतं तदेव भुंक्ते यस्तस्यापि नेह लोको नापि परलोक इति ।।३९।।

तथा—

जो जत्थ जहा लद्धं गेण्हदि आहारमुवधिमादीयं ।
समणगुणमुक्कजोगी संसारपवड्ढओ होइ ।।४०।।

यः साधुर्यत्र देशे शुद्धेऽशुद्धे वा यथालब्धं शुद्धमशुद्धं वा गृह्णाति आहारमुपधिकादिकं च यः श्रमणगुणमुक्तयोगी स तु संसारप्रवर्धको भवतीति ।।४०।। तथा—

पयणं पायणमणुमणणं सेवंतो ण वि संजदो होदि ।
जेमंतो वि य जह्मा ण वि समणो संजमो णत्थि ।।४१।।

हू नांही सम्यदृष्टि हू नांही ।।३७।।

भावार्थ–सदोष भोजन करता मुनि भोजन नांही करै है, अपना आत्मघात करै है । तथा—

अर्थ–उत्तमार्थ जो चारित्र तातैं भ्रष्ट जो मुनि ताकैं यह लोक हू नांही, परलोक हू नांही, संजमकरि रहित जो मुनि ताकै मुनिलिंग का ग्रहण है, सो निरर्थक है ।।३८।। तथा—

अर्थ–कोऊ साधु गुरुकै समीप प्रायश्चित जो दोष का निराकरण बहुरि आलोचन जो दोष का प्रकट करणां, ताहि करिकै निंद्यकर्म जो अधःकर्म युक्त भोजन, ताहि खाय है । जिस दोष निवारवे निमित्त प्रायश्चितादिक कीया अर जो तिसही सदोष भोजन कूं करै है, ताकैं यह लोक हूं नांही, परलोक हू नांही ।।३९।।

अर्थ–जो साधु साधु जिस शुद्ध देश विषैं अथवा अशुद्ध देश विषैं जैसैं प्राप्त भया शुद्ध अथवा अशुद्ध आहार उपकरणादिक ग्रहण करै है, सो श्रमण के गुणनि करि रहित योगी संसार का प्रवर्द्धक कहिये वधावे वारा (बढ़ाने वाला) है ।।४०।। तथा—

अर्थ–पचन-पाचन, अनुमोदना ताहि सेवता जती है, सो संयत नांही होय है । जातै अैसा भोजन करता श्रमण हू नांही । बहुरि

पचनं पाचनमनुमननं च सेवमानो न संयतो भवति, तस्माद्भुंजानोऽपि च पुनर्न श्रमणो नापि संयमस्तत्रेति ।।४१।।

बहुश्रुतमपि चारित्रहीनस्य निरर्थकमिति प्रतिपादयन्नाह—

बहुगं पि सुदमधीदं किं काहदि अजाणमाणस्स ।
दीवविसेसो अंधे णाणविसेसो वि तह तस्स ।।४२।।

बह्वपि श्रुतमधीतं किं करिष्यत्यजानतश्चारित्रमनाचरत उपयोगरहितस्य । यथा प्रदीपविशेषोंऽधे लोचनरहिते न किंचित्करोति तथा ज्ञानविशेषोऽपि चारित्ररहितस्य न किंचित्करोतीति ।।४२।।

परिणामवशेन[1] शुद्धिमाह—

आधाकम्मपरिणदो फासुगदव्वे दि बंधगो भणिदो ।
सुद्धं गवेसमाणो आधाकम्मे वि सो सुद्धो ।।४३।।

प्रासुकद्रव्ये[2] सत्यपि योऽधःकर्मपरिणतः स बंधको भणित आगमे । यदि पुनः शुद्धं मृगयमाणोऽधःकर्मण्यप्यसौ शुद्धः परिणामशुद्धेरिति ।।४३।।

तथा—

भावुग्गमो य दुविहो पसत्थपरिणाम अप्पसत्थोत्ति ।
सुद्धे असुद्धभावो होदि [3]उवट्ठावणं पायच्छित्तं ।।४४।।

भावोद्गमश्च भावदोषश्च द्विप्रकारः प्रशस्तपरिणाम अप्रशस्तपरिणमश्च, तत्र शुद्धे वस्तुनि यद्यशुद्धभावं करोति तत्रोपस्थापनप्रायश्चित्तं भवतीति।।४४।।

तिस विषैं संजम हू नांही ।।४१।।

आगै चारित्र रहित साधु कैं बहुत हू श्रुतज्ञान निरर्थक है, अैसें प्रतिपादन करतै संतै कहै है—

अर्थ–बहुत हू शास्त्र अध्ययन कीया, अजानतः कहिये चारित्र कूं नांही आचरता, उपयोग रहित मुनि कै कहा करैगा ? जैसें प्रदीप विशेष अंध जो नेत्र रहित पुरुष ता रिषैं नहीं किंचित् हू करै, तैसैं चारित्र रहित कैं ज्ञान विशेष हू किंचित् हित नांही करै है ।।४२।।

आगैं परिणाम वशकरि शुद्धि बहुरि अशुद्धि है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–प्राशुक द्रव्य होत संतै हू जो साधु अधःकर्म करि परिणया सो आगम विषै बंध का कर्ता कह्या । बहुरि जो शुद्ध भोजन देखता ग्रहण करै हैं, सो साधु अधःकर्म दोषतै हू परिणाम शुद्धितैं शुद्ध है ।।४३।। तथा—

अर्थ–भाव उद्गम जो भावदोष सो दोय प्रकार हैं—एक प्रशस्त परिणाम दूजा, अप्रशस्त परिणाम । तहां जो शुद्ध वस्तु विषैं अशुद्ध भाव करै हैं तहां उपस्थापन नाम प्रायश्चित होय हैं ।।४४।।

---

१. क० शुद्धिमशुद्धिं चाह क । २. क० प्रासुके द्रव्येऽपि क । ३. क० उपट्ठाण- ।

तस्मात्—

फासुगदाणं फासुगउवधिं तह दो वि अत्तसोधीए ।
जो देदि जो य गिण्हदि दोण्हं पि महप्फलं होई ।।४५।।

यत एवं विशुद्धभावेन कर्मक्षयस्ततः प्रासुकदानं निरवद्यभैक्ष्यं प्रासुकोपधिं हिंसादिदोषरहितोपकरणं च द्वयमपि तथात्मशुद्ध्या विशुद्धपरिणामेन यो ददाति यश्च गृह्णाति तयोर्द्वयोरपि महत्फलं भवति, यत्किंचिद्आहारादिकं शोभनं निरवद्यं वातपित्तश्लेष्मोपशमनकारणं सर्वरसोपेतं तन्मया प्रतिग्रहादिपूर्वकं श्रद्धादिगुणसमन्वितं दातव्यमिति तद्दातृत्वशुद्धिः, मया सर्वोऽप्याहारादिविधस्त्याज्यः किमनेन शोभनाहारेण गृहीतेन यत्किंचित्प्रासुकं गृहीत्वा कुक्षिपूरणं कर्त्तव्यमिति परिणामः पात्रस्यात्मशुद्धिरिति ।।४५।।

किमर्थं चर्याशुद्धिः प्रपंचेनाख्यायत इत्याशंकायामाह—

जोगेसु मूलजोगं भिक्खाचारियं च वण्णियं सुत्ते ।
अण्णे य पुणो जोगा विण्णाणविहीणएहिं कया ।।४६।।

सर्वेषु मूलगणेषूत्तरगुणेषु मध्ये मूलयोगः प्रधानव्रतं भिक्षाचर्या कृतकारितानुमतिरहितं प्रासुकं काले प्राप्तं भोजनं वर्णिता व्याख्याता सूत्रे प्रवचने, तस्मात्तां भिक्षाशुद्धिं परित्यज्यान्यान् योगानुपवासत्रिकालयोगादिकान् ये कुवन्ति तैस्तेऽन्ये योगा विज्ञानविरहितैस्तैश्चारित्रविहीनैः पुनः कृता न परमार्थं जानद्भिरिति चर्याशुद्ध्या स्तोकमपि क्रियते यत्तपस्तच्छोभनमिति ।।४६।।

आगैं तातैं प्राशुक दान देनां अर ग्रहण करणा जोग्य है—

अर्थ–जातैं या प्रकार विशुद्ध भावकरि कर्मक्षय होय है तातैं प्रासुक दान जो निर्दोष भोजन बहुरि तैसैं प्रासुक उपधि जो हिंसादिक दोष-रहित उपकरण तिस दोऊ कूं आत्मशुद्धि जो परिणाम ताकरि जो दे है, बहुरि जो ग्रहण करै है तिन दोउन कै बड़ा फल होय है । जो कछु आहारादिक शोभनीक निर्दोष बहुरि वात, पित्त, कफ का उपशमकूं कारण सर्वरसनिकरि युक्त सो आहार हमनैं पडिगाहवो, प्रतिग्रहादिक नवधा भक्तिपूर्वक श्रद्धादि सप्त गुण सहित देणा यह दातार की शुद्धि है । हमनैं सर्वही आहारादि विधि त्याज्य है, इस शोभन आहार के ग्रहणकरि कहा (क्या) ? जो कछु प्रासुकाहार ग्रहणकरि अपनां उदरं पूरण करतव्य है—या प्रकार परिणाम सो पात्र की आत्मशुद्धि है ।।४५।।

आगै किस निमित्त आहार शुद्धि विस्तारकरि कहिये हैं ? अैसे आशंका हौतै कहै है—

अर्थ–सूत्र जो आगम ता विषैं समस्त मूलगुण अर उत्तरगुणनि के मध्य विषैं भिक्षाचर्या जो कृत-कारित-अनुमोदना रहित यथाकाल प्राप्त भया प्राशुक भोजन, सो मूलयोग कहिये प्रधान व्रत सो कह्या । तातैं तिस भिक्षाशुद्धिकूं तजि अन्य योग जो उपवास, बहुरि त्रिकालयोगादिक तिनहि जे करै हैं । ते उपवासादिक अन्य जोग है ते विज्ञान विहीन जे चारित्रहीन साधु तिननैं कीये जाननैं । परमार्थ के वेत्ता साधुनैं नांहीं कीये जाननैं ।।४६।।

तथा—

कल्लं कल्लं पि वरं आहारो परिमिदो पसत्थो य ।
ण य खमण पारणाओ बहवो बहुसो बहुविधो य ।।४७।।

कल्लं कल्लं श्वस्तनदिने दिने वरं श्रेष्ठमाहारो भोजनं परिमितः प्रमाणस्थः वातपित्तश्लेषमविकाराहेतुकः प्रशस्तोऽधःकर्मादिदोषरहितः न च क्षमणादीनि उपवासाः पारणा भोजनदिनानि बह्व्यः षष्ठाष्टमदशमद्वादशमासार्द्धमासादिदिनानि बहुशो बहुवारान् बहुविधश्च बहुप्रकारश्च बहुसावद्ययोगयुक्तो महारंभनिष्पन्नो दातृजनसंक्लेशोत्पादको य आहारस्तेन यदि महत्तपः क्रियते न तत्तपो महद् भवति बह्वारंभादिति ।।४७।।

कस्तर्हि शुद्धयोग इत्याशंकायामाह—

मरणभयभीरुआणं अभयं जो देदि सव्वजीवाणं ।
तं दाणाण वि दाणं तं पुण जोगेसु मूलजोगं पि ।।४८।।

मरणाद्यद्भयं तस्माद्भीतेभ्योऽभयं यो ददाति सर्वसत्त्वेभ्यस्तद्दानानामपि दानं सर्वेषां दानानां मध्ये तद्दानं तत्पुनर्योगेषु अपि मूलयोगः प्रधानानुष्ठानं यदभयदानमिति ।।४८।।

गुणस्थानापेक्षया चारित्रस्य माहात्म्यमाह—

सम्मादिट्ठिस्य वि अविरदस्स ण तवो महागुणो होदि ।
होदि हु हत्थिण्हाणं चुंदच्छिदकम्म तं तस्स ।।४९।।

आगै चर्याशुद्धिकरि जो स्तोक हू तप करिये सो शोभनीक है, अैसे कहैं है—

अर्थ–अगिले अगिले दिन विषैं परिमित कहिये प्रमाणिक वात, पित्त, श्लेष्म संबंधी विकार का कारण नांही । प्रशस्त कहिये अधःकर्मादि दोषकरि रहित अैसा भोजन, वरं कहिये श्रेष्ठ है । बहुरि क्षमण जे उपवास, पारण जे भोजन दिन ते बह्व्यः कहिये दोय, तीन, च्यार, पांच पक्ष, मास आदि दिन दे, वहुशः कहिये बहुत वार, बहुरि बहुविध कहिये बहुत प्रकार के श्रेष्ठ नांही, बहुत सावद्य योगकरि युक्त, महारंभकरि उपज्या दातार कूं क्लेश का उपजावी वारा जो आहार, तिस आहार करि जो महान् तप करिये सो तप महान् नांही है, बहुत आरंभतै।।४७।।

आगैं तदि कौन शुद्धयोग है ? अैसी आशंका हौंते कहैं है—

अर्थ–मरणतैं जो भय तातैं भययुक्त अैसैं जे समस्त प्राणी तिनकै अर्थि जो अभयदान दे है सो सर्व दाननि कै मध्य श्रेष्ठदान है। बहुरि सो दान सर्व आचरणनि विषै प्रधान आचरण है ।।४८।।

आगै गुणस्थाननि की अपेक्षाकरि चारित्र-माहात्म्य कहै है—

अर्थ–प्रथम ही मिथ्यादृष्टी दूर तिष्ठो, संजम-रहित अविरत सम्यग्दृष्टी हूकै तप है सो महागुण नांही होय है । यह 'गुण' शब्द है सो अनेक अर्थ विषैं बर्त्तै है, सो ही कहिये है—

तिष्ठतु तावन्मिथ्यादृष्टि: सम्यग्दृष्टेरप्यविरतस्यासंयतस्य न तपो महागुण: । अयं गुणशब्दोऽनेकार्थेवर्त्तते तद्यथा—रूपादयो गुणा रूपरसगंधस्पर्शसंख्यापृथक्त्वपरिणामादीनि गुणशब्देनोच्यन्ते, तथा गुणभूता वयमत्रनगरे इत्यत्राप्रधानवाची गुणशब्दस्तथा यस्य गुणस्य भावादिति विशेषणे वर्त्तते तथा गुणोऽनेन कृत इत्यत्रोपकारे वर्त्तते इहोपकारे वर्त्तमानो गृह्यते । तेन तपो महोपकारं भवति । कर्मनिर्मूलनं कर्त्तुमसमर्थं तपोऽसंयतस्य सम्यग्दर्शनान्वितस्यापि कुतो यस्माद् भवति हस्तिस्नानम् । हु शब्द एवकारार्थ: स च हस्तिस्नानेनाभिसंबन्धनीयो हस्तिस्नानमेवेति । यथा हस्ती स्नातोऽपि न नैर्मल्यं वहति पुनरपि करेणार्जितपांशुपटलेनात्मानं मलिनयति तद्वत्तपसा निजीर्णेऽपि कर्मांशे बहुतरादानं कर्मणोऽसंयममुखेनेति । दृष्टान्तान्तरमप्याचष्टे—चुंदच्छिदकर्म चुंदं काष्ठं छिनत्तीति चुंदच्छिद्रज्जुस्तस्या: कर्म क्रिया, यथाचुंदच्छिद्रज्जोरुद्वेष्टनं वेष्टनं च भवति तद्वत्तस्यासंयतस्य तत्तप: अथवा चुंदच्छुदगं व—चुंदच्युतकमिव मंथनचर्मपालिकेव तत्संयमहीनंतप:। दृष्टान्तद्वयोपन्यास: किमर्थं इति चेन्नैष दोष:, अपगतात्मकर्मणो बहुतरोपादानमसंयमनिमित्तस्येति प्रदर्शनाय हस्तिस्नानोपन्यास:, आर्द्रतनुतया हि बहुतरमुपादत्ते रज:, बंधरहिता निर्जरा स्वास्थ्यं प्रापयति नेतरा बंधसह भाविनीति । किमिदं ? चुंदच्छिद: कर्मेव—एकत्र वेष्टयत्यन्त्रोद्वेष्टयति तपसा निर्जरयति कर्मासंयमभावेन बहुतरं गृहणाति कठिनं च करोतीति ।।४९।।

रूपादयो-गुणास्तथा अैसैं कहतै रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या पृथक्त्व परिणामादिक गुण शब्दकरि कहिये हैं । तैसैं 'गुणभूता वयमत्रनगरे'—अैसैं कहतैं या नगर विषैं हम गौणभूत हैं, प्रधान नांही । इहां गुण शब्द है सो अप्रधानवाची हैं । तैसैं 'यस्य गुणस्य भावादिति विशेषणे वर्तते' इहां गुण शब्द है सो विशेषण अर्थ विषैं वर्ते हैं । 'यथा गुणोऽनेन कृत:' इहां गुण शब्द है सो उपकार विषैं वर्तै है ।

इहां गाथा विषैं गुण शब्द है । सो उपकार विषैं वर्तता ग्रहण करिये है । ताकरि तप है, सो बडो उपकारकर्त्ता नांही होय है । कोउ पूछै है—सम्यग्दर्शनकरि युक्त अैसा हू असंजमी कै काहैतैं तप है ? सो कर्म्म के निर्मूल करवे कूं समर्थ नांही । ताका उत्तर-तातै असंजमी कैं तप हैं सो निश्चयकरि हाथी का स्नान है । सो तप हस्ति स्नानकरि संबंध करणां । ताकरि 'हस्तिस्नानमेव'-जैसैं हाथी न्हाया निर्मलपनैं कूं नांही धरैं, बहुरि हू सूंडिकरि ग्रहण कीया जो धूलिपटल ताकरि आत्मा कूं मलिन करै हैं । तैसे तपकरि कर्म्मनिका अंश निर्जरतैं हू असंजम के द्वारकरि कर्म का अतिशयकरि प्रचुर ग्रहण होय है ।

इहां अन्य हू दृष्टांत कहै हैं । चुंद (लकड़ी में छेद करने वाला वर्मा) जो काष्ठ ताहि छेदै सो चुंदच्छिद् कहिये ।चुंदच्छित् जो रज्जू ताका जो कर्म कहिए क्रिया सो चुंदच्छित् कर्म कहिये । जैसैं काष्ठ बींधनें का रज्जू ताका उद्वेष्टन अर वेष्टन होय है । उद्वेष्टन नाम खुलनैं का है । वेष्टन नाम लिपटने का है । तैसें तिस असंजमीकैं सो तप जाननां । अथवा 'चुंदच्युतकमिव मंथान के चामने (मंथन चर्मपालिका) ताकी ज्यौ सो संयम रहित तप जाननां । जैसे नेता (वर्मा) की सह एक खुले है, एक बंधै है तैसे असंजमी कै कर्म निर्जरै हैं अर बंधै हैं। इहां दोय दृष्टान्त का उपन्यास कौंन अर्थि कीया है ? अैसे कोउ पूछै तो यह दोष नांही ।

निर्जर्‍या जो कर्म तातैं अतिप्रचुर कर्म का ग्रहण असंजमी कै असंजम का निमित्त जो कैसा होय है ? अैसे दिखावे के अर्थि हस्तिस्नान का उपन्यास है । आर्द्र (गीले) शरीरपनैं करि बहुत रज ग्रहण करैं हैं । बँध-रहित निर्जरा है सो स्वास्थ ताकूं प्राप्त करै है, अन्यबंध सहित निर्जरा स्वास्थ ताकूं नांही प्राप्त करै है, कौन की ज्यों ? चुंदच्छिद: कर्म की ज्यौ । जैसैं मंथान का नेता एक बोर (ओर) लिपटे है, एक

सन्निपातेन शोभनक्रियाणां कर्मक्षयो भवतीति दृष्टान्तेन पोषयन्नाह—

वेज्जादुरभेसज्जापरिचारयसंपदा जहारोग्गं ।
गुरुसिस्सरयणसाहणसंपत्तीए तहा मोक्खो ।।५०।।

वैद्यो भिषक् आतुरो व्याधितः भैषज्यमौषधं परिचारका वैयावृत्यकरा एतेषां संपत्संयोगस्तया संपदा यथाऽरोग्यं व्याधितस्य रोगाभावः संजायते तथा गुरुराचार्यः शिष्यो वैराग्यपरो विनेयो रत्नानि सम्यग्दर्शनादिसाधनानि पुस्तककुंडिकापिच्छिकादीन्येतेषां संपत्तिः संप्राप्तिः संयोगस्तया तेनैव[१] प्रकारेण मोक्षो भवतीति ।।५०।।

दृष्टान्तं दार्ष्टान्तेन योजयन्नाह—

आइरिओ वि य वेज्जो सिस्सो रोगी दु भेसजं चरिया ।
खेत्त बल काल पुरिसं णाऊण सणिं दढं कुज्जा ।।५१।।

आचार्यो नाम वैद्यः शिष्यश्च रोगी भेषजं चर्या क्षेत्रं शीतमुष्णादिकं बलं शरीरसामर्थ्यादिकं कालः प्रावृडादिकः पुरुषो जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्न एतान् सर्वान् ज्ञात्वा शनैराकुलतामन्तरेण[२] शिष्यमाचार्यश्च यथारोग्ययुक्तं कुर्यादिति चर्यौषधं कथनीयमिति ।।५१।। तत्कथमित्याह—

भिक्खं सरीरजोग्गं सुभत्तिजुत्तेण फासुयं दिण्णं ।
दव्वपमाणं खेत्तं कालं भावं च णादूण ।।५२।।
णवकोडीपडिसुद्धं फासुय सत्थं च एसणासुद्धं ।
दसदोसविप्पमुक्कं चोद्दसमलवज्जियं भुंजे ।।५३।।

बोर खुलै है तैसैं असंजमी तपकरि कर्मकूं निर्जरावै है । बहुरि असंजम भावकरि बहुत कर्म ग्रहण करै है, बहुरि दृढ़ करै है ।।४९।।

आगैं शोभन क्रिया के संजोग करि कर्मक्षय होय है-ऐसैं दृष्टांतकरि पोषते संतै कहैं हैं—

अर्थ–वैद्य, आतुर जो रोगी भैषज्य ज्यों औषधि, परिचारका जे वैयावृत्य के कर्ता इनकी संयत जो संयोग ताकरि जैसैं रोगी कै रोग का अभाव होय है । तैंसै गुरु जो आचार्य वैराग्य विषैं तत्पर अैसा शिष्य, अंतरंग जे सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय तथा बाह्य-साधन जे पुस्तक, कमंडलु, पिच्छिका—इनकी जो संपत्ति कहिये प्राप्ति-संयोग, ताकरि मोक्ष होय है ।।५०।।

आगैं दृष्टांतकूं दृष्टांतकरि मिलावते (पोषते) संतै कहै हैं—

अर्थ–आचार्य हैं सो वैद्य हैं, शिष्य है सो रोगी है, चर्या है सो औषधि है, शीत, उष्ण आदि क्षेत्र हैं, शरीर विषैं सामर्थ्य आदि बल हैं, वर्षा आदि काल हैं, जघन्य, मध्य अर उत्कृष्ट भेदनिकरि युक्त पुरुष है । इन सर्वनि जाणि शनैः कहिये आकुलता रहित जैसैं आचार्य शिष्य कूं नीरोग करै ।।५१।।

आगै चर्या औषधि कहा सो कैसै ? अैसी आशंका हैंते कहै है—

---

१. क० येनैव । २. न कार्येति इति पाठान्तरम् ।

सुभक्तियुक्तेन शरीरयोग्यं भैक्ष्यं प्रासुकं प्रदत्तं नवकोटिपरिशुद्धं प्रासुकं निरवद्यं प्रशस्तं कुत्सादिदोषरहितमेषणासमितिशुद्धं दशदोषविप्रमुक्तं चतुर्दशमलवर्जितं च द्रव्यप्रमाणं क्षेत्रं कालं भावं च ज्ञात्वा परिणाममन्तरेण भुंजीतेति ।।५२-५३।। तथा—

आहारेदु तवस्सी विगदिंगालं विगदधूमं च ।
जत्तासाहणमेत्तं जवणाहारं विगदरागो ।।५४।।

आहारं, किं विशिष्टं ? विगतांगारं विगतधूमं यात्रासाधनमात्रं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपालननिमित्त यवनाहारं क्षुधोपशमनमात्रं विगतराग:सन्नाकांक्षा-रहितस्तपस्वीवैराग्यपर आहरेदभ्यवहरेदिति ।।५४।।

जुगुप्सापरिहारमाह—

ववहारसोहणाए परमट्ठाए तहा परिहरउ ।
दुविहा चावि दुगंछा लोइय लोगुत्तरा चेव ।।५५।।

जुगुप्सा गर्हा द्विविधा द्विप्रकारा लौकिकी लोकोत्तरा च । लोकव्यवहारशोधनार्थं सूतकादिनिवारणाय लौकिकी जुगुप्सा परिहरणीया तथा[१] परमार्थार्थं रत्नत्रयशुद्ध्यर्थं लोकोत्तरा च [२]कार्येति ।।५५।।

पुनरपि क्रियापदेन प्रकटयन्नाह—

परमट्ठियं विसोहिं सुट्ठु पयत्तेण कुणइ पव्वइओ ।
परमट्ठदुगंछा वि य सुट्ठु पयत्तेण परिहरउ ।।५६।।

अर्थ–भली भक्ति करि युक्त जो तानै शरीर के जोग्य प्रासुक, नवकोटिनि करि शुद्ध, प्रासुकं कहिये निरवद्य, प्रशस्तकं कहिये कुत्सादि दोष रहित एषणा समिति करि शुद्ध, दश दोषनि करि रहित, चौदह मलनि करि वर्जित, द्रव्यप्रमाण क्षेत्र, काल, बहुरि भाव हैं ताहि जाणि दिया जो आहार ताहि विपरिणाम बिना ग्रहण करै ।।५२-५३।।

तथा—

अर्थ–अंगारदोष रहित, धूमदोष रहित, यात्रा-साधनमात्रं कहिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की रक्षा-निमित्त, यवनाहार कहिये क्षुधा का उपशमन मात्र, विगतराग, वांछा रहित होत संता तपस्वी वैराग्य तत्पर आहरेत् कहिये आहार करै ।।५४।।

आगैं जुगुप्सा का परिहार है, ताहि कहै है—

अर्थ–जुगुप्सा जो गर्हा सो दोय प्रकार है—१. लौकिक, बहुरि २. लोकोत्तरा । लोक व्यवहार जो सूतकादिक ताका शोधन जो निवारण ताकै अर्थि लौकिकी जुगुप्सा परिहरवे जोग्य है । २. तैसे परमार्थ जो रत्नत्रय ताकी शुद्धि कै अर्थि बहुरि लोकोत्तरा जुगुसा करवे जोग्य है ।।५५।।

आगै बहुरि हू क्रियापद करि प्रगट करतै संतै कहै हैं—

---

१. क० परमार्थशोधनार्थं । २. न कार्येति इति पाठान्तरम् ।

परमार्थिकां विशुद्धिं कर्मक्षयनिमित्तां रत्नत्रयशुद्धिं सुष्ठु प्रयत्नेन करोतु प्रव्रजितः साधुः परमार्थजुगुप्सामपि शंकादिकां सुष्ठु प्रयत्नेन परिहरतु त्यजत्विति।।५६।। तथा—

संजममविराधंतो करेउ ववहारसोधणं भिक्खू ।
ववहारदुगंछावि य परिहरउ वदे अभंजंतो ।।५७।।

भिक्षुः संयमं चारित्रमविराधयन्नपीडयन् करोतु व्यवहारशोधनं लोकव्यवहारशोधनं प्रायश्चितं च व्यवहारजुगुप्सां च, येन कर्मणा लोके विशिष्टजनमध्ये कुत्सितो भवति तत्कर्म परिहरतु व्रतान्यहिंसादीनि च अभंजयन्नखंडयन् । किमुक्तं भवति—संयमं मा विराधयतु व्यवहारशुद्धिं च करोतु व्रतानि मा [1]भंजयतु व्यवहारजुगुप्सां च परिहरतु साधुरिति ।।५७।।

द्रव्यशुद्धिं विधाय क्षेत्रशुद्ध्यर्थमाह—

जत्थ कसायुप्पत्तिरभत्तिंदियदारइत्थिजणबहुलं ।
दुक्खमुवसग्गबहुलं भिक्खू खेत्तं विवज्जेज्ज ।।५८।।

यस्मिन् क्षेत्रे कषायाणामुत्पत्तिः प्रादुर्भावस्तथा यस्मिन् क्षेत्रेऽभक्तिरादराभावः शाठ्यबाहुल्यं, यत्र चेन्द्रियद्वारबाहुल्यमिन्द्रियद्वाराणां चक्षुरादीनां बाहुल्यं सुष्ठु रागकारणविषयप्राचुर्यं, स्त्रीजनबाहुल्यं च यत्र स्त्रीजनो बाहुल्येन शृंगाराकारविकार[2] विषयलीलाहावभावनृत्तगीतवादित्रहासापहासादिनिष्ठस्तथा दुःखं क्षेत्रं क्लेशप्रचुरं, उपसर्गबहुलं बाहुल्येनोसर्गोपेतं च तदेतत्सर्वं क्षेत्रं भिक्षुः साधुर्विवर्जयतु सम्यग्दर्शनादिशुद्धिकरणायेति ।।५८।।

अर्थ–प्रवर्जित कहतां साधु परमार्थ शुद्धि जो रत्नत्रय शुद्धि, ताहि भले जतन करि करहू । बहुरि परमार्थ जुगुप्सा जो शंकादिक ताहि भले जतन करि परिहरो-त्यजो ।।५६।। तथा—

अर्थ–भिक्षुः कहिये साधु संयम जो चारित्र ताहि नांही विराधता संता व्यवहार शोधनं कहिये लोक व्यवहार का शोधने वारा प्रायश्चित, ताहि करहु । बहुरि अहिंसादिक व्रत है तिनहि नहीं भंग करता व्यवहार जुगुप्सा जो जिस कर्मकरि लोक जो विशिष्टजन ताकै मध्य निंद्य होय तिस कर्मकूं परिहारहु । इस करि कहा कह्या ? साधु ! संजम मति विराधहु, बहुरि व्यवहार शुद्धि है ताहि करहु, व्रत है तिनहि भंग मति करहु, व्यवहार जुगुप्सा है ताहि परिहरहु ।।५७।।

आगै द्रव्यशुद्धि है, ताहि कहि क्षेत्र की शुद्धिकै अर्थि कहै हैं—

अर्थ–जिस क्षेत्र विषैं कषायनिकी उत्पत्ति होय,तैंसे जिस क्षेत्र विषैं अभक्ति कहिये आदर का अभाव होय, मूर्खता प्रचुर होय, जहाँ इंद्रियद्वार जो नेत्र आदि इंद्रिय तिनका बाहुल्य कहिये अत्यंत राग के कारण विषयनि की प्रचुरता होय, बहुरि स्त्रीजन वाहुल्य कहिये-जहां स्त्रीजन सो बाहुल्यकरि शृंगार, आकार, विकार, वेष, लीला, हाव-भाव, गीत, नृत्य, हास, उपहास-इन विषैं तल्लीन होय, दुख कहियें जहां क्लेश प्रचुर होय, उपसर्ग बहुल कहिये बाहुल्य करि उपसर्ग सहित होय सो सर्वक्षेत्र है, ताहि साधु सम्यक्-दर्शनादिक की शुद्धि के कारण

१. क० भनक्तु । २. वेष ।

इत्थंभूतं च क्षेत्रं सेवयत्विति कथयन्नाह—

गिरिकंदरं मसाणं सुण्णागारं च रुक्खमूलं वा ।
ठाणं विरागबहुलं धीरो भिक्खु णिसेवेऊ ।।५९।।

गिरिकंदरां श्मशानं शून्यागारं वृक्षमूलं च धीर भिक्षुर्निषेवयतु भावयतु यत एतत्स्थानं वैराग्यबहुलं चारित्रप्रवृत्तिहेतुकमिति ।।५९।।

तथैतच्च क्षेत्रं वर्जयत्विति कथनायाह—

णिवदिविहूणं खेत्तं णिवदी वा जत्थ दुट्ठओ होज्ज ।
पव्वज्जा च ण लब्भइ संजमघादो य तं वज्जे ।।६०।।

नृपतिविहीनं यत् क्षेत्रं यस्मिन् देशे नगरे ग्रामे गृहे वा प्रभुर्नास्ति स्वेच्छया प्रवर्त्तते सर्वे जनः, यत्र च क्षेत्रे नृपतिर्दुष्टः यस्मिंश्च देशे नगरे ग्रामे गृहे व स्वामी दुष्टः कदर्थनशीलो धर्मविराधनप्रवणः यत्र[१] च प्रव्रज्या न लभ्यते न प्राप्यते, यत्र यस्मिंश्च देशे शिष्याः श्रोतारोऽध्येतारो व्रतरक्षणतन्निष्ठा दीक्षाग्रहण-शीलाश्च न संभवंति, संयमाघातश्च यत्र बाहुल्येनातीचारबहुलं तदेतत्सर्वं क्षेत्रं च वर्जयेद् यत्नेन परिहरतु साधुरित्युपदेशः ।।६०।।

तथैतदपि वर्जयेत्—

णो कप्पदि विरदाणं विरदीणमुवासयह्मि चेट्ठेदुं ।
तत्थ णिसेज्जउवट्टणसज्झायाहारवोसरणे ।।६१।।[२]

त्यजहु ।।५८।।

आगै ऐसा क्षेत्र है, ताहि सेवहु-इस कथन कै अर्थि कहै हैं—

अर्थ–पर्वत की गुफा, मसाण, सूना-घर, बहुरि वृक्षकोटर, ताहि धीरमुनि सेवहू । जातैं ऐसा स्थान वैराग्यबहुलं कहिये चारित्र की प्रवृत्ति का कारण है । तैंसे ऐसा क्षेत्र है, ताहि त्यजहु ।।५९।।

इस कथन अर्थि कहै हैं—

अर्थ–जो क्षेत्र राजा रहित होय, जिस देश विषैं, नगर विषैं, ग्राम विषैं अथवा घर विषैं स्वामी नांही होय, स्वेच्छाकरि लोक प्रवर्तें। बहुरि जिस क्षेत्र विषैं राजा दुष्ट होय, बहुरि जिस देश विषैं, नगर विषैं, ग्राम विषैं अथवा घर विषैं स्वामी दुष्ट होय, पीडा देवा का जाका स्वभाव, धर्म के विरोधवे विषैं निपुण । भावार्थ—धर्म का द्रोही, बहुरि प्रव्रज्या नांही पायिये, जिस देश विषैं शिष्य, श्रोता, पढन वारे, व्रत रक्षा विषैं तल्लीन, बहुरि दीक्षा ग्रहण करवे का है स्वभाव जिनका ऐसे नांही होय । बहुरि संजम का घात होय, बाहुल्यकरि जहां अतीचार होय-तिस सर्वक्षेत्रकूं जतनकरि साधु परिहरहु-ऐसा उपदेश है ।।६०।।

तैसैं ऐसै हू क्षेत्रकूं त्यजो, ऐसै कहै हैं—

---

१. क० प्रव्रज्या च न लभ्यते यत्र । २. यही गाथा चतुर्थ अधिकार (गाथा सं. ५९) में भी आ चुकी है ।

विरतानां नो कल्प्यते न युज्यते विरतीनामार्यिकाणामुपाश्रये स्थातुं कालांतरं धर्मकार्यमन्तरेण, तत्र च शय्या निषद्या स्वाध्याय आहारः कायिकादिक्रिया प्रतिक्रमादिकं च न[1] कल्प्यते युक्ताचारस्य साधोरिति ।।६१।।

कुतो यतः—

होदिं दुगंछा दुविहा ववहारादो तथा य परमट्ठे ।
पयदेण य परमट्ठे ववहारेण य तहा पच्छा ।।६२।।

तत्रार्यिकोपाश्रये वसतः साधोर्द्विप्रकारापि जुगुप्सा, व्यवहाररूपा तथा परमार्था च, लोकापवादो व्यवहाररूपा, व्रतभंगश्च परमार्थतः यत्नेन परमार्थरूपा जायते जुगुप्सा, व्यवहारतश्च[2] ततोऽथवा व्यवहारतो भवति पश्चात्परमार्थतश्चेति ।।६२।।

तथा संसर्गजं दोषमाह—

वड्ढदि बोही संसग्गेण तह पुणो विणस्सेदि ।
संसग्गविसेसेण दु उप्पलगंधो जहा कुंभो ।।६३।।

संसर्गेण संपर्केण बोधिः सम्यग्दर्शनादिशुद्धिर्वर्द्धते तथा पुनरपि विनश्यति च । सदाचारप्रसंगेन वर्द्धते कुत्सिताचारसंपर्केण विनश्यति, यथा संसर्गविशेषेणोत्पलगंधः जलकुंभ उत्पलादिसंपर्केण सुगंधः शीतलश्चाग्न्यादिसंयोगेनोष्णो विरसश्चेति ।।६३।।

अर्थ–मुनिनि कूं आर्यिका के स्थान विषैं धर्म-कार्य-बिना रहना जोग्य नांही । बहुरि तहां निषद्या जो शय्या, स्वाध्याय, आहार, शरीरादिक की क्रिया, बहुरि प्रतिक्रमणादिक सो जोग्य है-आचरण जाकें, ऐसा मुनि कें जोग्य नांही ।।६१।।

काहेतै ?अैसै पूछें, इस हेतुतैं जोग्य नांहीं सो कहै है—

अर्थ–तहां आर्यिका के स्थान विषैं वसता मुनि कै दोय प्रकार जुगुप्सा होय है । १. व्यवहार रूप, तैसैं २. परमार्थ रूप । लोकापवाद सो व्यवहार रूप, बहुरि व्रतभंग सो परमार्थतैं प्रयत्नकरि परमार्थ रूप जुगुप्सा है । बहुरि व्यवहारतैं जुगुप्सा ता पीछै होय है । अथवा व्यवहार होय जुगुप्सा होय हैं । तापीछै परमार्थतैं होय है ।।६२।।

आगै तैसै ही संसर्गतैं उपज्या दोष है, ताहि कहै है—

अर्थ–संसर्ग जो संबंध ताकरिकैं बोधि कहिये सम्यग्दर्शनादिक की शुद्धि सो बढ़तु (बढ़ती) है । बहुरि तैंसे ही संबंधतैं विनसै है।

भावार्थ–सदाचार के प्रसंगकरि बोधि बधै (बढै) है, कुत्सित आचार के संबंधकरि विनसै है । जैसैं संबंध विशेषकरि उत्पलगंधः जहा कुंभः कहिये उत्पलादिक कमलादिक के संबंधकरि सुगंध बहुरि शीतल कुंभ होय है, बहुरि अग्न्यादिक के संयोगकरि उष्ण बहुरि विरस

१. क० कल्पते । २. क० ततः पश्चात्परमार्थत श्चेति ।

तथैतैश्च संसर्गं वर्जयेदिति प्रतिपादयन्नाह—

चंडो चवलो मंदो तह साहू पुट्ठिमंसपडिसेवी ।
गारवकसायबहुलो दुरासओ होदि सो समणो ।।६४।।

चंडो रौद्रो मारणात्मको विषतरुरिव, चपलोऽस्थिरप्रकृतिर्वाचिकादिक्रियायां स्थैर्यहीनः, मंदश्चारित्रालसस्तथा साधुः पृष्ठमांसप्रतिसेवी पश्चाद्दोषकथनशीलः पैशुन्यतत्परः, गौरवबहुलः कषायबहुलश्च पदं पदं प्रतिरोषणशीलः, दुराश्रय एवंभूतः श्रमणो दुःसेव्यो भवति केनाप्युपकारेणात्मीयः कर्तुं न शक्यते यत एवंभूतं श्रमणं न सेवयेदिति संबन्धः ।।६४।।

तथा—

वेज्जावच्चविहूणं[1] विणयविहूणं च दुस्सुदिकुसीलं ।
समणं विरागहीणं सुजमो साधू[2]ण सेविज्ज ।।६५।।

वैयावृत्यविहीनं ग्लानदुर्बलव्याधितादीनामुपकाररहितं, विनयविहीनं पंचप्रकारविनयरहितं, [3] दुःश्रुतिं दुष्टश्रुतिसमन्वितं, कुशीलं कुत्सिताचरणशीलं, श्रमणं नाग्न्याद्युपेतमपि, विरागहीनं रागोत्कटं, पूर्वोक्तः साधुः संयतो न सेवेत न कदाचिदप्याश्रयेद् दुष्टाश्रयत्वादिति ।।६५।।

होय है । बहुरि तैसें ही इनकरि संबंध है, ताहि भो साधु तुम त्यजो ।।६३।।

असै प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–चंड कहिये विष वृक्ष ज्यों मारण रूप, चपलः कहिये अथिर है प्रकृति जाकी, वाचनादिक क्रिया विषैं स्थिरताकरि हीन, मंदः कहिये चारित्र विषैं आलसी अैसा साधु, तैंसैं ही पृष्ठ मांस-प्रतिसेवी कहिये पीछैसे दोष कहने का स्वभाव जाका, पिशुनता विषैं तत्पर, गौरव-बहुलः कहिये गुरुता है बहुल जाकै, बहुरि कषायबहुलः कहिये रोष का है स्वभाव जाका अैसा श्रमण दुराश्रयः कहिये दुःसेव्य है, काहू हू उपकारकरि अपनां करवेकूं शक्य नांही । जातैं अैसे साधुकूं अन्य साधु नांही सेवैं ।।६४।।

तथा—

अर्थ–वैयावृत्यविहीनं कहिये ग्लान, दुर्बल, रोगी इत्यादिकनि के उपगार-रहित, बहुरि विनय-विहीनं कहिये पंचप्रकार विनयकरिरहित, दुःश्रुतिं कहिये दुष्ट श्रुतिकरि संयुक्त, कुशीलं कहिये कुत्सित आचरण का है स्वभाव जाका, श्रमणं कहिये नग्न आदि चिन्हकरि युक्त-अैसा हू, विरागहीनं कहिये वैराग्य-रहित, राग है प्रचुर जाके अैसे दोषयुक्त साधुकूं संजमी साधु नांही सेवै हैं । दुष्ट संबंधतैं कदाचित् ही ताका

---

१. अ० ब० ग० विहीणं ।
२. अ० ब० सुसंजमो साधू, क० सुसंजदो साहू, ग० सुसंजदो साधू ण सेवेज्ज ।
३. क० विनयविहीनं ।

६७

तथा—

दंभं परपरिवादं णिसुणत्तण पावसुत्तपडिसेवं ।
चिरपव्वइदं पि मुणी आरंभजुदं ण सेविज्ज ।।६६।।

दम्भं वंचनशीलं कुटिलभावं, परपरिवादिनं परोपतापिनं, पैशुन्योपपन्नं [1]दोषोद्‌भावनेन तत्परं, पापसूत्रप्रतिसेविनं मारणोच्चाटनवशीकरण-मंत्रयंत्रतंत्रठकशास्त्रराजपुत्रकोकवात्स्यायनपितृपिंडविधायकं सूत्रं मांसादिविधायकवैद्यसावद्यज्योतिषशास्त्रादिरतमित्थंभूतं मुनिं चिरप्रव्रजितमपि आरंभयुतं च न कदाचिदपि सेवेत न तेन सह संगं कुर्यादिति ।।६६।।

तथा—

चिरपव्वइदं पि मुणी अपुट्‌ठधम्मं असंपुडं णीचं ।
लोइय लोगुत्तरियं अयाणमाणं विवज्जेज्ज ।।६७।।

तथा चिरप्रव्रजितं बहुकालीनं श्रमणं, अपुष्टधर्मं मिथ्यात्वोपेतं असंवृतं स्वेच्छावचनवादिनं नीचं नीचकर्मकरं[2] लौकिकं व्यापारं लोकोत्तरं च व्यापारं अजानन्तं लोकविराधनपरं परलोकनाशनपरं च श्रमणं विवर्जयेत् परित्यजेन्न तेन सह संवासं कुर्यादिति ।।६७।।

तथा पापश्रमणस्य लक्षणमाह—

आयरियकुलं मुच्चा विहरदि समणो य जो दु एगागी ।
ण य गेण्हदि उवदेसं पावस्समणोत्ति वुच्चदि दु ।।६८।।

आचार्यकुलं श्रमणसंघं मुक्त्वा यः स्वेच्छया विहरति गच्छति जल्पति चिन्तयति श्रमण एकाकी संघाटकरहितः, उपदेशं च दीयमानं यो न गृह्णाति

आश्रय नांही करै हैं ।।६५।। तथा—

अर्थ–दंभ कहिये ठगवे का है स्वभाव जाका, कुटिल है भाव जाकै, परपरिवादिनं कहिये अन्य कै संतापकारी, पैशुन्य पपन्नं कहिये निर्दोष पुरुषनि के दोष प्रगट करवे विषै तत्पर, बहुरि पापसूत्रप्रतिसेविनं कहिये मारण, त्रासन, उच्चाटन, वशीकरण मंत्र, यंत्र, तत्रशास्त्र, राजपुत्र, कोक-वात्सायन, पितृपिंड के विधायक सूत्र, मांसादिक की विधि के कर्ता, वैद्य शास्त्र, सावद्य शास्त्र, अैसे ज्योतिष शास्त्र इत्यादिक विषैं रत अैसा मुनि, बहुरि चिरकालतैं दीक्षित अैसा आरंभी मुनि, ताहि कदाचितहू साधु नांही सैवे । तिसकरि सहित संगति नांही करै ।।६६।।

तथा—

अर्थ–बहुत काल तैं दीक्षित, अपुष्ट धर्म कहिये मिथ्यात्वकरि संयुक्त, असंवृत्तं कहिये-स्वेच्छा वचनवादी, नीचं कहिये नीचकर्मनि विषैं रत, लौकिक कहिये लौकिक-व्यापार, लोकोत्तरं कहिये लोकोत्तर व्यापार, ताहि नांही जानता, लोकके विराधिवे विषैं तत्पर, बहुरि परलोक के नाश करवे विषैं तत्पर-अैसा श्रमण है, ताहि साधु त्यजै । तिस सहित एकत्रवास नांही करैं ।।६७।।

आगैं तैसे ही पापश्रमण का लक्षण है, ताहि कहै हैं—

---

१. क० दोषाणां दोषाद्‌भावनेन तत्परं । ख० अदोषोद्‌भावेन । २. क० नीचकर्मरत्त ।

शिक्षां नादत्ते स पापश्रमण इत्युच्यते ।।६८।। तथा—

आयरियत्तण तुरिओ पुव्वं सिस्सत्तणं अकाऊणं ।
हिंडई ढुंढायरिओ[1] णिरंकुसो मत्तहत्थिव्व ।।६९।।*

आचार्यत्वं कर्तुं त्वरितः पूर्वं शिष्यत्वमकृत्वा यः स्वेच्छया हिंडत्याचरति भ्रमति च ढोढाचार्यः पूर्वापरविवेकशून्यो यथा निरकुंशो मत्तहस्ती । सोऽपि पापश्रमण इत्यतस्तमपि न सेवेतेति ।।६९।।

पुनरपि संसर्गजं दोषमाह दृष्टान्तेनेति—

अंबो णिंबत्तणं पत्तो दुरासएण जहा तहा ।
समणं मंदसंवेगं अपुट्ठधम्मं ण सेविज्ज ।।७०।।

यथाऽम्रवृक्षो दुराश्रयेण निंबत्वं प्राप्तस्तथा श्रमणं मन्दसंवेगं धर्मानुरागालसं अपुष्टधर्मं समाचारहीनं दुराश्रयेण संजातं न सेवेत नाश्रयेदात्मापि तदाश्रेयेण तथाभूत स्यादिति ।।७०।।

तथा पार्श्वस्थान्नित्यं भेतव्यमिति प्रदर्शयन्नाह—

बिहेदव्वं[2] णिच्चं दुज्जणवयणा पलोट्टजिब्भस्स ।
वरणयरणिग्गमं पिव वयणकयारं वहंतस्स ।।७१।।

अर्थ–आचार्यकुल जो श्रमणसंघ ताहि त्यजिकरि जो मुनि एकाकी कहिये संघ-रहित स्वेच्छाकरि विहार करै है, बोलै है, चिंतवै है, बहुरि जो दीया उपदेश है, ताहि नांही ग्रहण करै है सो "पापश्रमण"-ऐसा कहिये है ।।६८।।

अर्थ–पूर्वै शिष्यपनैं कूं नांही करि आचार्यपनां करवेकूं वेगवान् जो स्वेच्छाकरि भ्रमण करै है, सो पूर्वापर विवेक-रहित ढौंढाचार्य है । जैसैं निरंकुश मत्त-हाथी यातैं सो हू पापश्रमण है, तिसहू कूं साधु नांही सैवै ।।६९।।

आगै बहुरिहू संसर्गतैं ऊपज्या-दोष है, ताहि दृष्टांतकरि कहै है—

जैसै आम्रवृक्ष दुष्ट आश्रयकरि निंबभाव है, ताहि प्राप्त भया, तैंसैं मंदसंवेग कहिये धर्मानुराग विषैं आलसी अपुष्टधर्म कहिये समाचारकरि रहित दुष्ट है आश्रय जाकै-ऐसा भया जो मुनि, ताहिं नांही सेवै, नांही आश्रय करै । जो ऐसे कू सेवै तो तिस के आश्रयकरि आपहू तैसा होय ।।७०।।

आगैं तैसें ही पार्श्वस्थ साधुतैं नित्य ही भय करणां । ऐसैं दिखावतें संतै कहैं हैं—

---

१. अ० ब० ढोंढायरिओ । २. अ० ब० वीहेतव्वं ।

* फलटन से प्रकाशित मूल में यह गाथा किंचित् बदली हुई है ।

आयरियकुलं मुच्चा विहरदि एगागिणो दु जो समणो । अविगेण्हिय उवदेसं ण य सो समणो समणडोंबो ।।

अर्थ–जो आचार्य कुल को छोड़कर उपदेश को न ग्रहणकर एकाकी विहार करता है वह श्रमण डोंब है ।

दुर्जनवचनात्, किंविशिष्टात् । प्रलोटजिह्वात् पूर्वापरतामनपेक्ष्य वाचिनो वरनगरनिर्गमादिव वचनकचवरं वहतः नित्यं भेतव्यं न तत्समीपे स्थातव्यमिति।।७१।।

तथेत्थंभूतोऽपि यस्तस्मादपि भेतव्यमिति दर्शयन्नाह—

आयरियत्तणमुवणायइ जो मुणि आगमं ण याणंतो ।
अप्पाणं पि विणासिय अण्णे वि पुणो विणासेइ ।।७२।।

आचार्यत्वमात्मानमुपनयति य आगममजानन् आत्मानं विनाश्य परमपि विनाशयति । आगमेन विनाचरन्नात्मानं नरकादिषु गमयति तथा परान् कुत्सितोपदेशेन भावयन् तान्नरकादिषु प्रवेशयतीति ततस्तस्मादपि भेतव्यमिति ।।७२।।

अभ्यन्तरयोगैर्विना बाह्ययोगानामफलत्वं दर्शयन्नाह—

घोडयलद्दिसमाणस्स बाहिर बगणिहुदकरणचरणस्स ।
अब्भंतरम्हि कुहिदस्स तस्स दु किं बज्झजोगेहिं ।।७३।।

घोटकव्युत्सर्गसमानस्यांतःकुथितस्य बाह्येन बकस्येव निभृतकरचरणस्य तस्येत्थंभूतस्य मूलगुणरहितस्य किं बाह्यैर्वृक्षमूलादिभिर्योगैर्न किंचिदपीत्यर्थस्तस्माच्चारित्रे यत्नः कार्य इति ।।७३।। बहुकालश्रमणोऽहमिति च मा गर्वं कृथा यतः—

मा होह वासगणणा ण तत्थ वासाणि परिगणिज्जंति ।
बहवो तिरत्तवुत्था सिद्धा धीरा विरग्गपरा समणा ।।७४।।

अर्थ–प्रलोटजिव्हातः कहिये पूर्वापरभाव की अपेक्षा रहित कहने वारा जो दुर्जन का वचन, तातैं नित्य ही भय करणा जोग्य है । कैसा है दुर्जन वचन ? श्रेष्ठ नगर के जलके निकास ज्यों वचनरूप कचवर जो कूड़ा, ताहि बहता अैसा है । तातैं ताके समीप नांही तिष्ठना जोग्य है ।।७१।।

तैंसैं अैसा जो मुनि होय, तातैं हू नित्य भय करणां—अैसैं दरसावतैं संतै कहै है—

अर्थ–जो मुनि आगमकूं न जानता आत्माकूं आचार्यपनै कूं प्राप्त करै है, सो अपना विनासकरि अन्य हू कूं विनाशै है । आगमबिना आचरण करता आत्मा है, ताहि नरकादिक विषैं प्राप्त करै है । तैसैं ही अन्यकूं खोटे उपदेशकरि शिक्षा करता तिनकूं नरकादिक विषैं प्रवेश करावै है । तातैं तिसहू मुनितैं भय करणां ।।७२।।

आगैं आभ्यंतर योगनि बिना बाह्य योगनिकैं निष्फलपनां दिखावते संतै कहै है—

अर्थ–घोडा की लादि (लीद) समान अंतरंग विषैं कलुषित बाह्य वेषकरि वुगला (बगुला) ज्यों निश्चल है करचरण जाके—अैसा मूलगुण रहित जो साधु ताके बाह्य जे वृक्षमूलादिक योग तिनकरि कछु कार्य नांही-अैसा अर्थ है । तातैं चारित्र विषैं जतन करणां ।।७३।।

जातैं ''मैं बहुत काल का मुनि हूँ''—अैसा गर्व तुम मति करहु, अैसे कहैं हैं—

अर्थ–वर्षनि की गणना मति होहु । मोकूं दीक्षा सहित बहुत-बहुत वर्ष भये, यह अब का दीक्षित हमतैं लघु हैं—अैसा गर्व मति

मा भवतु वर्षगणना मम प्रव्रजितस्य बहूनि वर्षाणि यतोऽयं लघुरद्य प्रव्रजित इत्येवं गर्वं मा कृध्वं, यतो न तत्र मुक्तिकारणे वर्षाणि गण्यन्ते । बहुकालश्रामण्येन मुक्तिर्भवति नैवं परिज्ञायते यस्माद्बहवस्त्रिरात्रिमात्रोषितचरित्रा अन्तर्मुहूर्तवृत्तचरित्राश्च वैराग्यपरा धीराः सम्यग्दर्शनादौ निष्कम्पाः श्रमणाः सिद्धा निर्मूलितशेषकर्माण इति ।।७४।।

बन्धं बन्धकारणं च प्रतिपादयन्नाह—

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो ।
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागरोसमोहजुदो ।।७५।।

कर्मणो ग्रहणं योगनिमित्तं योगहेतुकं, योगः प्रकृतिबन्धं प्रदेशबन्धं च करोतीति । अथ को योग इत्याशंकायामाह—योगश्च मनोवचनकायेभ्यः सम्भूतो मनःप्रदेशपरिस्पन्दो वाक्प्रदेशपरिस्पन्दः कायप्रदेशपरिस्पन्दः 'मनोवाक्कायकर्म योग' इति वचनात् । भावनिमित्तो भावहेतुको बन्धः संश्लेषः स्थित्यनुभागरूपः 'स्थित्यनुभागौ' इति वचनात् । अथ को भाव इति प्रश्ने भावो रति रागद्वेषमोहयुक्तो मिथ्यात्वासंयमकषाया इत्यर्थ इति ।।७५।।

कर्मणः परिणामो न तु जीवस्येति प्रतिपादयन्नाह—

जीवपरिणामहेदू कम्मत्तण पोग्गला परिणमंति ।
ण दु णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि ।।७६।।

जीवस्य परिणामहेतवो बालवृद्धयुवत्त्वाभावेन नरकतिर्यङ्मनुष्यदेवत्वभावेन च कर्मत्वेन कर्मस्वरूपेण पुद्गला रूपरसगन्धस्पर्शवन्तः परमाणवः परिणमन्ति पर्यायं गृहणन्ति । जीवः पुनर्ज्ञानपरिणतो नैव कर्म समादत्ते नैव कर्मभावेन पुद्गलान् गृह्णातीति । यतोऽतश्चारित्रं ज्ञानदर्शनपूर्वकं भाव-

---

करहु । जातैं मुक्ति के कारण विषैं वर्ष नांही गणिये है । बहुत कालतैं मुनिपणां होतैं हू मुक्ति नांही होय है । जातैं बहुत मुनि त्रिरात्रतैं ग्रहण कीया है चारित्र जिननैं, बहुरि अंतर्मुहूर्तमात्र प्रवृत्या है चारित्र जिननैं वैराग्य विषैं तत्पर, धीराः कहिये सम्यग्दर्शनादिक विषैं अकंप—ऐसे मुनि, सिद्धा कहिये निर्मूल काये हैं समस्तकर्म्म जिननैं—ऐसे मुनि भये । तुमनैं ऐसे नांहीं जानियै है—ऐसा संबंध है ।।७४।।

आगै बंध बहुरि बंध का कारण है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै है—

अर्थ–कर्म का ग्रहण है सो योग के निमित्ततै है । जातैं योग है सो प्रकृतिबंध, बहुरि प्रदेश बंध है, ताहि करै है । अथानंतर योग कहा ? ऐसी आशंका हौतै कहैं हैं—बहुरि योग है सो मन, वचन, कायनितैं उपज्या है । मनःप्रदेश का परिस्पंद कहंता क्रिया, वचन-प्रदेश की क्रिया, काय-प्रदेशनि की क्रिया । "मनवाक्कायकर्मयोगः" ऐसा सूत्र (तत्त्वर्थसूमं) का वचन है । याका अर्थ—मन, वचन, काय का कर्म जो क्रिया सो जोग है । भाव है निमित्त जाकूं सो बंध है, सो स्थिति, अनुभागरूप है । "स्थित्यनुभागौकषायतः"—ऐसा सिद्धान्त का वचन है । आगै भाव कहा ? ऐसा प्रश्न होतै कहै हैं—रति-राग-द्वेष-मोह करि युक्त भाव हैं, सो मिथ्यात्व, असंजम, कषाय-ये भाव जानने । याका ऐसा तात्पर्यार्थ है ।।७५।।

आगै या प्रकार कर्म का परिणाम है, जीव का नांही—ऐसें प्रतिपादन करते संतै कहैं हैं—

अर्थ–जीव के परिणाम हैं कारण जिनिकूं ऐसे पुद्गला कहिये रूप, रस गंध, स्पर्शवान् परमाणु हैं, ते बाल, बृद्ध तरुण भावकरि,

नीयमिति ।।७६।।

यस्मात्—

णाणविण्णाणसंपण्णो झाणज्झणतवेजुदो ।
कसायगारवुम्मुक्को संसारं तरदे लहुं ।।७७।।

ज्ञानं यथावस्थितवस्तुपरिच्छेदकं विज्ञानं चारित्रं ताभ्यां ज्ञानविशेषेण वा सम्पन्नः परिणतः ध्यानेनैकाग्रचिन्तानिरोधेनाध्ययनेन वाचनापृच्छनादिक्रियया तपसा च द्वादशप्रकारेण युक्तः परिणतः कषायगौरवोन्मुक्तश्च लघु शीघ्रं संसारं भवसमुद्रं तरति समुल्लंघयतीति ततो रत्नत्रयं सारभूतमिति ।।७७।।

ननु स्वाध्यायभावनया कथं संसारस्तीर्यत इत्याशंकायामाह—

सज्झायं कुव्वंतो पंचिंदियसंपुडो तिगुत्तो य ।
हवदि य एयग्गमणो विणएण समाहिओ भिक्खू ।।७८।।

यतः स्वाध्यायं शोभनशास्त्राभ्यासवाचनादिकं कुर्वन् पंचेन्द्रियसंवृतस्त्रिगुप्तश्च भवति, एकाग्रमना ध्यानपरश्च भवति, विनयेन समाहितश्च दर्शनादिविनयोपेतश्च भिक्षुर्भवत्यतः प्रधानं चारित्रं स्वाध्यायस्ततश्च मुक्तिरिति ।।७८।।

पुनरपि स्वाध्यायस्य माहात्म्यं तपस्यन्तर्भावं च प्रतिपादयन्नाह—

बारसविधह्मि य तवे सब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे ।
ण वि अत्थि ण वि य होहदि सज्झायसमं तवोकम्मं ।।७९।।

बहुरि, नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवपनें के भावकरि कर्म्मस्वरूप करिकै परिणमंति कहिये परजायनि कूं ग्रहण करै है । बहुरि जीव है सो ज्ञान-भावकरि परिणया "नैवकर्म समादत्ते" कहिये नांही कर्मभावकरि पुद्‌गलनि कूं ग्रहण करैं है, जातैं अैसें है, तातैं चारित्र है सो ज्ञान-दर्शनपूर्वक, भावे योग्य है ।।७६।।

अर्थ–यथावस्थित वस्तु का परिच्छेदक सो ज्ञान-विज्ञान कहिये चारित्र तिनकरि सहित बहुरि ज्ञान-विशेषकरि सहित ध्यान-जो एकाग्रचिंता का निरोध, अध्ययन जो वाचनां, पृच्छना आदि क्रिया बहुरि बारह प्रकार तप इनकरिकैं सहित, बहुरि कषाय अर गौरव ताकरि रहित अैसा मुनि संसार जो भव समुद्र ताहि शीघ्र तरै है । तातैं रत्नत्रय सारभूत है ।।७७।।

इहां तर्क-स्वाध्याय भावनाकरि संसार कैसैं तरियै ? अैसी आशंका होतैं कहै हैं—

अर्थ–जातैं स्वाध्याय जो भला शास्त्राभ्यास, वाचनादिक ताहि करता साधु पांच इंद्रिय के संवरयुक्त, बहुरि तीन गुप्ति युक्त एकाग्रमना कहिये ध्यान विषैं तत्पर विनयेन समाहितः कहिये दर्शनादिक विनयकरि युक्त अैसा होय है । यातैं स्वाध्याय है सो प्रधान चारित्र है तातैं मुक्ति होय है ।।७८।।

आगै बहुरि हू स्वाध्यायकरि बहुरि तप विषै अंतर्भाव है, ताहि प्रतिपादन करते कहै है—

द्वादशविधे तपसि साभयन्तरबाह्ये कुशलदृष्टे तीर्थकरगणधरादिप्रदर्शिते कृते च नैवास्ति न चापि भविष्यति स्वाध्यायसमं स्वाध्याय-सदृशं अन्यत्तप:कर्मात: स्वाध्याय: परमं तप इति कृत्वा निरन्तरं भावनीय इति ।।७९।।

स्वाध्यायभावनया श्रुतभावना स्यात्तस्याश्च भावनाया: फलं प्रदर्शयन्नाह—

सूई जहा ससुत्ता ण णस्सदि दु पमाददोसेण ।
एवं ससुत्तपुरिसो ण णस्सदि तहा पमाददोसेण ।।८०।।

यथा सूची लोहमयी शलाका सूक्ष्मापि ससूत्रा सूत्रमयरज्जुसमन्विता न नश्यति न चक्षुर्गोचरतामतिक्रामति प्रमाददोषेणापि अपस्कारादिमध्ये विस्मृतापि। तथैवं पुरुषोऽपि साधुरिति ससूत्र: श्रुतज्ञानसमन्वितो न नश्यति नैव संसारगर्त्तं पतति प्रमाददोषेणापि यद्यपि परमं तप: कर्त्तुं न समर्थस्तथापि शाठ्यरहित: स्वाध्यायं यदि निरन्तरं करोति तथापि कर्मक्षयं करोतीति भाव: ।।८०।।

चारित्रस्य प्रधानमंगं ध्यानं तदुपकारभूतं निद्राजयमाह—

णिद्दं जिणेहि णिच्चं णिद्दा खलु [1]णरमचेदणं कुणदि ।
वट्टेज्ज हू पसुत्तो समणो सव्वेसु दोसेसु ।।८१।।

निद्रां दर्शनावरणकर्मोदयमोहभावं जय तस्या वशं मा गच्छ यत: सा निद्रा नरं खलु स्फुटमचेतनं पूर्वापरविवेकहीनं करोति यतश्च प्रसुप्त: श्रमणो वर्त्तेत सर्वेषु दोषेषु यस्मान्निद्रयाक्रान्तचित्त: सर्वैरपि प्रमादै: सहितो भवति संयतोऽप्यतो निद्राजयं कुर्विति ।।८१।।

अर्थ–तीर्थंकर गणधरादिकरि दिखाया वा कीया अभ्यंतर, बाह्य भेदकरि सहित अैसे बारह प्रकार तप विषैं, स्वाध्याय समान अन्य तप:कर्म नांही है बहुरि नांही होयगा । यातैं "स्वाध्याय: परमं तप:" यह सिद्धान्त का वचन है । याकरि निरन्तर भावे योग्य है ।।७९।।

आगैं स्वाध्याय भावनाकरि, श्रुतभावना है, तिस भावना का फल है, ताहि दिखावते संतै कहै है—

अर्थ–जैसै सूची कहिये लोहमयी शलाका सूक्ष्म हू कूडा मध्य विषैं प्रमाद दोषकरि विस्मरण भईहू सूत्र जो डोरा ताकरि सहित, न नश्यति कहिये चक्षुकै अगौचर नांही होय है । तैंसे ही साधु-पुरुष जो है, सो हू प्रमाददोष करि, ससूत्र: कहिये श्रुतज्ञान युक्त, न नश्यति कहिये संसाररूप गर्त विषैं नांही परै (गिरे) है । यद्यपि उत्कृष्ट तप करवेकूं समर्थ नाहीं तोऊ जो मूर्खता रहित निरन्तर स्वाध्याय करैं हैं, तोउ कर्मक्षय करै है—अैसा भाव है ।।८०।।

आगै चारित्र का प्रधान अंग ध्यान है, ताका उपकारी निद्राजय है, ताहि प्रथम कहै हैं—

अर्थ–निद्रा जो दर्शनावरण कर्म्म का उदय, मोह भाव ताहि भो साधु ! तुम सदा जीतहु । ताकैं वसि मति होहु । जातैं सो निद्रा मनुष्यकूं प्रगटपनैं अचेतन कहतैं पूर्वापर विवेक रहित करै है । जातै सूता मुनि सर्वदोषनि विषैं प्रवर्तै है । जातैं निद्राकरि व्याप्त भया है

---

१. अ० ब० णर ।

निद्रां जित्वैकाग्रचिन्तानिरोधं कुर्वीतेति प्रतिपादयन्नाह—

जह उसुगारो उसुमुज्जु करई संपिंडियेहिं णयणेहिं ।
तह साहू भावेज्जो चित्तं एयग्गभावेण ।।८२।।

यथेषुकार: काण्डकार इषुं काण्डं उज्जु करई—ऋजुं करोति प्रगुणं करोति सम्यक्पिंडिताभ्यां संमीलिताभ्यां नयनाभ्यां निरुद्धचक्षुरादिप्रसरेण तथा साधुः शुभध्यानार्थ स्वचित्तं मनव्यापारमेकाग्रभावेन मनोवाक्कायस्थैर्यवृत्त्या पंचेंद्रियनिरोधेन च भावयेदभिरमयेदिति ।।८२।।

ध्यानं प्रपंचयन्नाह—

कम्मस्स बंधमोक्खो जीवाजीवे य दव्वपज्जाए ।
संसारसरीराणि य भोगविरत्तो सया झाहि ।।८३।।

कर्मणो ज्ञानाविरणादेर्बन्धं जीवकर्मप्रदेशसंश्लेषं तथा मोक्षं सर्वथा कर्मापायं तथा जीवान् द्रव्यभावप्राणधारणसमर्थानजीवान् पुद्गलधर्माधर्माकाशकालान् द्रव्याणि सामान्यरूपाणि पर्यायान् विशेषरूपान् संसारं चतुर्गतिभ्रमणं शरीराणि चौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि च भोगविरक्त रागकारणेभ्यो विरक्तः सन् सदा सर्वकालं ध्याय सम्यग्भावयेति ।।८३।।

संसारविकल्पं भावन्नाह—

दव्वे खेत्ते काले भावे य भवे य होंति पंचेव ।
परिवट्टणाणि बहुसो अणादिकाले य चिंतेज्जो ।।८४।।

चित्त जाका अैसा संजमी हू सर्वही प्रमादनि करि सहित होय है, यातैं निद्रा जयकरि—अैसा कथन है ।।८१।।

आगै निद्रा कूं जीति एकाग्रचिंता का निरोध है, ताहि करहु, अैसे उपदेश करते संतै कहैं है—

अर्थ–जैसै इषुकार जो धनुष का कर्ता सो इषु जो बाण, ताहि सरल करै है । काहे करि ? संपिडिताभ्यां कहिये भलै प्रकार मिलाये जे दोउ नेत्र तिनकरि ।

भावार्थ–और विषयनि विषैं नेत्र-प्रचार रोकता बाण सरल करै, तैसैं साधु शुभध्यान के अर्थि स्वचित्त जो मन का व्यापार, ताहि एकाग्र भाव जो मन, वचन, काय की स्थिर-वृत्ति, बहुरि पंच इंद्रियनि का निरोध ताकरि भावै, अभ्यास करै ।।८२।।

आगैं ध्यान है, ताहि विस्तारते संते कहैं है—

अर्थ–कर्म जो ज्ञानावरणादिक ताका बंध जो जीव कर्म्म प्रदेशनि का बंधाण तैसैं मोक्ष जो सर्वथा कर्म्मनिका नाश, तैसैं जीव जे द्रव्यप्राण भावप्राणनिके धारवे विषैं समर्थ अजीव जे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य, जे सामान्य रूप पर्याय, जे विशेष रूप संसार, जो चतुर्गति रूप विषैं भ्रमण, शरीर जे औदारिक, वैक्रियिक आहारक, तैजस, कार्माण—इनकूं राग के कारण जे भोग तिनतै विरक्त होता संता सदाकाल भलै प्रकार ध्यायहु ।।८३।।

आगै संसार का भेद है, ताहि भावते संतैं कहै है—

द्रव्यपरिवर्तनानि कर्मनोकर्मतत्स्वरूपग्रहणपरित्यजनानि, क्षेत्रपरिवर्त्तनानि सर्वप्रदेशेषूत्पत्तिमरणानि, कालपरिवर्त्तनानि उत्सर्पिण्यवसर्पिणीसमयेषूत्पत्तिमरणानि, भावपरिवर्त्तनानि जघन्यमध्यमोत्कृष्टबन्धस्थितिबन्धरूपाणि, भवपरिवर्तनानि सर्वायुर्विकल्पेषूत्पत्तिमरणानि, एवं पंचपरिवर्तनानि अनादिकालेऽतीतकाले पविर्तितानि बहुशोऽनेकवारमनेन जीवेनेत्थं चिन्तयेद् ध्यायेदिति ।।८४।।

तथैतदपि ध्यायेदित्याह—

मोहग्गिणा महंतेण दज्झमाणे महाजगे धीरा ।
समणा विसयविरत्ता झायंति अणंतसंसारं ।।८५।।

मोहाग्निना महता दह्यमानं महाजगत् सर्वलोकं धीरा विषयविरक्ता ध्यायन्त्यनन्तसंसारं चतुर्गतिभ्रमणोपेतमिति ।।८५।।

ध्यानं नाम तपस्तदारम्भं न सहत इति प्रतिपादयन्नाह—

आरंभं च कसायं च ण सहदि तव तहा लोए ।
अच्छी लवणसमुद्दो य कयारं खलु जहा दिट्ठं ।।८६।।

यथाऽक्षि चक्षुर्लवणसमुद्रश्च[1] कचारं[2] तृणादिकमन्तस्थं पतितं न सहते स्फुटं करोतीति दृष्टं तथा तपश्चारित्रमारम्भं परिग्रहोपार्जनं कषायाँश्च न सहते न क्षमते बहिष्करोतीति ।।८६।।

अर्थ–१. द्रव्यपरिवर्तन—जे कर्म्म, नोकर्म तिस स्वरूप का ग्रहणकरि, परित्यजन (छोड़ना) द्रव्यपरिवर्तन है । २. क्षेत्र-परिवर्तन—जे सर्व प्रदेशनि विषैं उत्पत्ति-मरण, ३. काल परिवर्तन—जे उत्सर्प्पिणी, अवसर्प्पिणी के समय विषैं उत्पत्ति-मरण, ४. भाव परिवर्तन—जे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट कर्म्मनि की स्थितिबंध रूप । ५. भव परिवर्तन—जे सर्व आयुनि के भेदनि विषैं उत्पत्ति-मरण । या प्रकार पंच परावर्तन अनादिकाल जो अतीतकाल इस जीवनै बहुशः कहिये अनेक बार कीये । भो साधु ! तुम अैसे पंचपरावर्तन रूप संसार ध्यावहु ।।८४।।

आगैं तैंसैं याहि हू ध्यावै—अैसै कहै हैं—

अर्थ–महान् जो मोह रूप आग ताकरि कैं दग्ध होता सर्वलोक है, ताहि विषयनितैं विरक्त अैसै धीर मुनि हैं, ते अनंत-संसारं कहिये चतुर्गति भ्रमणकरि संयुक्त ध्यावै हैं ।।८५।।

आगैं ध्यान नाम तप का है सो आरंभ कूं नांही-सहै है । अैसैं प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–अैसैं अक्षि कहिये नेत्र, बहुरि लवण समुद्र कयार (कचरा) जो तृणादिक ताहि मध्य विषैं पर्‌या नांही सहै है, प्रगटपनै तटस्थ करै है—अैसा दृष्टांत है । तैसैं लोक विषैं तप जो चारित्र सो आरंभ जो परिग्रह का उपार्जन बहुरि कषाय तिनहि नांही सहै है, बाह्य करै

---

१. क० यथा चक्षुः । २. क० यथा कचारं ।

पंच परिवर्तनानि जीवेन किं तेनैवाहोस्विदन्येन तेनैव नान्येन कथमित्याशंकायामाह—

जह कोइ[1] सट्ठिवरिसो तीसदिवरिसे णराहिवो जाओ ।
उभयत्थ जम्मसद्दो वासविभागं विसेसेइ ।।८७।।

यथा कश्चित्पुरुषः षष्टिवर्षः षष्टिसंवत्सरप्रमाणयुस्त्रिंशद्भिर्वर्षगतैर्नराधिपः संजातो राजाऽभूदत उभयत्र पर्याये राज्यपर्याये तदभावे च जन्मशब्दो वर्षविभागं संवत्सरक्रमं विशेषयति राज्यपर्याये तदभावपर्याये च वर्तन्ते न तत्र सर्वथा भेदं करोति सामान्यविशेषात्मकत्वात्सर्वपदार्थानां यतः सर्वथा नित्यक्षणिके चार्थक्रियाया अभावादर्थक्रियायाश्चावे सर्वेषामभावः स्यादभावस्य च न ग्राहकः प्रमाणाभावादिति[2] ।।८७।।

दृष्टान्तं दार्ष्टान्तेन योजयन्नाह—

एवं तु जीवदव्वं अणाइणिहणं विसेसियं णियमा ।
रायसरिसो दु केवलपज्जाओ तस्स दु विसेसो ।।८८।।

यथा जन्मशब्दो राज्ययुक्तकाले राज्याभावकाले च, एवमेव जीवद्रव्यमनादिनिधनं सर्वकालमवस्थितं विशेष्यमनेकप्रकाराधारतया निर्दिष्टं केवलं तु तस्य पर्यायो नारकमनुष्यादिरूपो राज्यपर्यायः स दृष्टो विशेषो, विषेषणं न सर्वथा भेदं करोति सर्वास्ववस्थासु यत इति ।।८८।।

द्रव्यार्थिकनयापेक्षयैकत्वं प्रतिपाद्य पर्यायार्थिकनयाप्रेक्षया भेदं प्रतिपादयन्नाह—

जीवो अणाइणिहणो जीवोत्ति य णियमदो ण वत्तव्वो ।
जं पुरिसाउगजीवो देवाउगजीविद[3]विसिट्ठो ।।८९।।

है ।।८६।।

आगै पंचपरावर्तन कीये सो तिस ही जीवनै कीये अथवा अन्य जीवनै कीये ? अन्य नैं नांही कीये, तिस ही जीवनै कैसे कीये? औसी आशंका हौंते कहै हैं—

अर्थ–जैसें साठ वर्ष प्रमाण आयु का धारक कौऊ पुरुष तीस बरस व्यतीत भये राजा भया, उभयत्र कहिये राज्य पर्याय विषैं, बहुरि राज्य पर्याय का अभाव विषैं, जन्म शब्द है सो वर्ष विभाग जो संवत्सर का क्रम ताहि विशेष रूप करै है । राज्य पर्याय विषैं बहुरि ताका अभाव पर्याय विषैं वर्तै है, तहां सर्वथा भेद नांही करै है । जातैं सर्वपदार्थनिकै सामान्य-विशेषात्मकपनां है, सर्वथा नित्य क्षणिक होतैं अर्थक्रिया का अभाव है । यातैं अर्थक्रिया का अभाव हौतैं सर्व पदार्थनिका अभाव होय है । अभाव के ग्राहक प्रमाण का अभाव है—औसे जाननां ।।८७।।

आगै दृष्टांत है ताहि दार्ष्टांतकरि योजना करते संतै कहै हैं—

अर्थ–जैसें जन्म शब्द राजयुक्त काल विषैं बहुरि राज्याभाव काल विषैं कह्या । या प्रकार ही जीवद्रव्य है सो अनादिनिधनं कहिये सर्वकाल अवस्थित, विशेष्यं कहिये अनेक प्रकार आधारपनैं करि कह्या । बहुरि ताका पर्याय केवल नारक मनुष्यादिक रूप राज्य पर्याय सदृश विशेष है । विशेषण है सो सर्वथा भेद है, ताहि नांही करैं है । जातैं सर्व अवस्थानि विषैं सो ही हैं ।।८८।।

---

१. अ० ब० कोवि. । २. क० च ग्राहकप्रमाणाभावत् । ३. अ० ब० जीविय ।

जीवोऽनादिनिधन आदिवर्जितो निधनवर्जितश्च जीव इति च निश्चयेन सर्वथा गुणादिरूपेणापि नियमत न वक्तव्यो न वाच्यो यतः पुरुषायुष्को जीवो देवायुष्काद्विशिष्टो, न हि य एव देवः स एव मनुष्यः, यश्च मनुष्यो नासौ तिर्यग्, यश्च तिर्यक नासौ नारकः पर्यायभेदेन भेदादिति ।।८९।।

जीवपर्यायान् प्रतिपादयन्नाह—

संखेज्जमसंखेज्जमणंतकप्पं च केवलं णाणं ।
तह रायदोसमोहा अण्णे वि य जीवपज्जाया[1] ।।९०।।

संख्यातविषयत्वात्संख्यातं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं च तथाऽसंख्यातविषयत्वादसंख्यातमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं चानन्तविषयत्वादनन्तकल्पं केवलज्ञानमथवा संख्यातासंख्यातानन्तवस्तुपरिच्छेदकत्वात्संख्यातासंख्यातानन्तकल्पं केवलज्ञानमनन्तविकल्पं चैते सर्वे पर्यायास्तथा रागद्वेषमोहपर्यायास्तथाऽन्येपि जीवस्य पर्याया नारकत्वादयो बालयुवस्थविरत्वादयश्चेति ।।९०।।

तथैवाह—

अकसायं तु चरित्तं कसायवसिओ असंजदो होदि ।
उवसमदि जह्मि काले तक्काले संजदो होदि ।।९१।।*

चारित्रं नामाकषायत्वं यतः कषायवशगोऽसंयतः, मिथ्यात्वकषायादियुक्तो न संयतः स्याद् यस्मिन् काले उपशाम्यति व्रतस्थो भवति । यस्मात्स

आगैं द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा करि भेद हैं, ताहि उपदेश करते आचार्य कहै है—

अर्थ–जीव है सो अनादिनिधन कहिये आदिरहित बहुरि निधन जो अंत ताकरि रहित, निश्चयकरि है, सर्वथा गौण रूप जो पर्याय रूप तिसकरि नियमथकी नांही कहनां, जातैं मनुष्य आयु सहित जीव, देवायु सहित जीवतैं विशेषरूप है । जातैं जो ही देव सो ही मनुष्य नांही, बहुरि जो मनुष्य है सो यह तिरजंच नांही, बहुरि जो तिरजंच है सो यह नारक नांही । पर्यायभेदकरि भेद है ।।८९।।

यातैं आगैं जीवके पर्याय हैं, तिनहि प्रतिपादन करते संतै कहै है—

अर्थ–संख्यात् विषय हैं, यातैं मतिज्ञान, बहुरि श्रुतज्ञान संख्यात् हैं, तैसें असंख्यात विषय हैं । यातैं अवधिज्ञान बहुरि मनःपर्ययज्ञान असंख्यात हैं । अनंत विषय हैं, यातैं केवलज्ञान है सो अनंत भेद सहित हैं । अथवा संख्यात, असंख्यात, अनंत वस्तु के जाणवैंतै संख्यात असंख्यात अनंत है भेद जाकै ऐसा केवलज्ञान है । यह सर्व पर्याय हैं । तैसैं ही राग-द्वेष, मोह पर्याय हैं तैसे अन्य हू नारकादिक जीव के पर्याय हैं । बहुरि बालक, युवान, स्थविर जो वृद्ध इत्यादिक पर्याय हैं ।।९०।।

आगैं सो ही कहैं है—

अर्थ–चारित्र नाम अकषायपनैं का है । जातै कषाय के वशि कूं प्राप्त भया असंजमी होय है । संयत[2] है सो मिथ्यात्व कषायादि

---

१. अ० ब० जीवपरियाया । २. ब प्रति में 'संयमी' ।

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में यह गाथा अधिक है—

आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं । णेयं लोयालोयं तह्मा णाणं तु सव्वगदं ।। —प्रवचनसार

अर्थात् आत्मा ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है, ज्ञेय लोकालोक प्रमाण है इसलिए ज्ञान सर्वगत माना गया है ।

`slok3

एव पुरुषो मिथ्यात्वादियुक्तो मिथ्यादृष्टिरसंयत: सम्यक्त्वादियुक्त: सन् स एव पुन: सम्यग्दृष्टि: संयतश्च, पुरुषत्वसामान्येन पुनरभेदस्तस्मात्सर्वोऽपि भेदाभेदात्मक इति ।।९१।।

यत: कषायवशगोऽसंयतो भवतीति तत:—

वरं गणपवेसादो विवाहस्स पवेसणं ।
विवाहे रागउप्पत्ती गणो[1] दोसाणमागरो ।।९२।

यतेरन्तकाले गणप्रवेशाच्छिष्यादिमोहनिबन्धनकुलमोहकारणात्पंचपार्श्वस्थसम्पर्काद्वरं श्रेष्ठं विवाहे प्रवेशनं वरं गृहप्रवेशो यतो विवाहे दारादिग्रहणे रागोत्पत्तिर्गण: पुन: सर्वदोषाणामाकर: सर्वेऽपि मिथ्यात्वासंयमकषायरागद्वेषादयो भवन्तीति ।।९२।।

कारणाभावेन दोषाणामभाव इति प्रतिपादयन्नाह—

पच्चयभूदा दोसा पच्चयभावेण णत्थि उप्पत्ती ।
पच्चयभावे दोसा णस्संति णिरासया जहा बीयं ।।९३।।

प्रत्ययात्कर्मबन्धात् शिष्यादिमहनिबन्धनकुलमोहकारणाद्भूता: संजाता[2] दोषा रागद्वेषादय: कलुषजीवपरिणामा:, प्रत्ययाभावाच्च रागद्वेषादिकारणभूतकर्माभावाच्च नास्त्युत्पत्तिर्नैव प्रादुर्भावस्तेषां दोषाणां यतश्चोत्पत्तिर्नास्ति तत: प्रत्ययाभावात्कारणाभावाद्दोषा मिथ्यात्वासंयमकषाययोगनिर्वर्तित-जीवपरिणामा नश्यन्ति निर्मूलं क्षयमुपव्रजन्ति निराश्रया: सन्त: स्वकीयप्रादुर्भावकारणमन्तरेण, यथा प्रत्ययाभावाद्बीजमंकुरं जनयतिबीजस्यांकुरोत्पत्तिनिमित्तं

करि युक्त नांही होय है । जिस काल विषैं, उपशाम्यति कहिये व्रत विषैं, संयत: कहिये चारित्र विषैं तिष्ठता अैसा होय है । जातैं सो ही पुरुष मिथ्यात्वादि करि युक्त मिथ्यादृष्टि असंयमी है । बहुरि सम्यक्त्वादिकरि युक्त सो ही पुरुष सम्यग्दृष्टी है, बहुरि संयत है । बहुरि पुरुषत्व सामान्यकरि अभेद हैं, तातैं हू सर्व पदार्थ भेदाभेदात्मक हैं ।।९१।।

आगैं जातैं कषायकै वशि असंजमी होय है, तातैं आगैं शिक्षा करै हैं—

अर्थ–मुनि कै अंतसमय विषै गणप्रवेशात् कहिये शिक्षादि विषैं मोह का कारण अैसा जो कुल तिस विषैं मोह करतैं वा पंच पार्श्वस्थ के संबंधतैं विवाहे प्रवेशनं कहिए वरं घर विषैं प्रवेश श्रेष्ठ है । जातैं विवाह विषैं स्त्री आदि कौं ग्रहण होतैं राग की उत्पत्ति है । बहुरि गण है सो समस्त दोषनि की खानि है । सर्व ही मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, राग-द्वेषादिक होय है ।।९२।।

आगैं कारणनिका अभावकरि दोषनि का अभाव होय है, अैसैं प्रतिपादन करतै संतैं कहै हैं—

अर्थ–कारणतैं कर्म्म बंध है । शिष्यादिक विषैं मोह का कारण कुल, ता विषैं जो मोह, ता कारणतैं उत्पन्न भये दोषा: कहिये रागद्वेषादिक कलुषित जीव का परिणाम जानने । बहुरि कारणके अभावतैं राग द्वेषादिक कूं कारणभूत जो कर्म्म तिस के अभावतैं तिन दोषनि की उत्पत्ति नांही । तातै कारण के अभावतैं दोषा: कहिये मिथ्यात्व, असंजम, कषाय, जोग-इनकरि रचे जीव के परिणामतें निराश्रया: संत: कहिये अपनी उत्पत्ति के कारण बिना निराश्रय हौतैं, नश्यंति कहिये निर्मूल क्षयकूं प्राप्त होय हैं । जैसै कारण के अभावतैं बीज अंकुर कूं नांही उपजावै

१. अ० ब० गणो पुण । २. क सन्त: ।

`slok3

क्षितिजलपवनादित्यरश्मयस्तेषामभावे विपरीते पतितं बीजं यथा नश्यति । न येषां कारणानां सद्भावे ये दोषा उत्पद्यन्ते तेषां कारणानामभावे तत्फलभूतदोषाणामनुत्पत्तियर्था स्वप्रत्ययाभावात्स्वकारणाभावाद्बीजस्यानुत्पत्तिरंकुरत्वेन तत उत्पत्त्यभावान्निराश्रया रागद्वेषादयो दोषा नशयन्ति यथा बीजमुत्पत्तिमंतरेण पश्चान्नश्यतीति ।।९३।।

तथा—

हेदू पच्चयभूदा हेदुविणासे विणासमुवयंति ।
तह्मा हेदुविणासो कायव्वो सव्वसाहूहिं ।।९४।।

ततः[१] क्रोधमानमायालोभाः प्रत्ययभूताः, परिग्रहादयो लोभादिषु सत्सु जायन्ते ततस्तेषां लोभादीनां हेतूनां विनाशे प्रध्वंसे विनाशमुपयान्ति परिग्रहादयो यत एवं ततो हेतुविनाशः कर्तव्यः सर्वसाधुभिः प्रमत्तादिक्षीणकषायान्तैलर्लोभादीनामभावे परिग्रहेच्छा न जायते मूर्च्छादिपरिग्रहस्तदभावे प्रयत्नः कार्यः । पूर्वकारिकया कारणाभावे कार्यस्याभावः प्रतिपादितोऽनया पुनः कार्यस्याभावो[२] निगदितः । अथवा पूर्वगाथोपसंहारार्थेयं गाथा तत एवमभिसम्बन्धः कार्यः, हेतवः कारणानि प्रत्ययभूतानि कार्याणि हेतुविनाशे तेषां सर्वेषां विनाशो यतः कारणाभावे कार्यस्य चाभावस्ततो हेतुविनाशे यत्नः[३] कार्य इति ।।९४।।

दृष्टान्तं दार्ष्टान्तेन योजयन्नाह—

जं जं जे जे जीवा पज्जायं परिणमंति संसारे ।
रायस्स य दोसस्स य मोहस्स वसा मुणेयव्वा ।।९५।।

है । बीज की उत्पत्ति कूं कारण पृथिवी, जल, पवन, सूर्य के किरण हैं । तिनका अभाव जो विपरीत सो होतैं बोया बीज जैसैं नाशकूं प्राप्त होय, जिन कारणनि का सद्भाव हौतैं दोष उपजैं हैं, तिन कारणनिका अभाव होतैं तिसके फलभूत दोषनि की उत्पत्ति नांही अर्थात् उत्पत्ति के कारणों के न होने से आश्रय-रहित राग-द्वेष आदि दोष नष्ट हो जाते हैं ।।९३।।

तथा—

अर्थ–क्रोध, मान, माया, लोभ, परिग्रह के कारण हैं । लोभादिक होत संतै परिग्रहादिक उपजै है । हेतु का नाश होतैं परिग्रहादिक नाश कूं प्राप्त होय है । जातैं अैसे है, तातैं सर्व साधु जे प्रमत्त आदि क्षीणकषाय परजंत मुनि, तिननैं हैतु का नाश कर्तव्य है । लोभादिक का अभाव होतैं परिग्रह की इच्छा नांही उपजै है । ''मूर्छा परिग्रहः'' अैसा सूत्रकार का वाक्य है । तातैं तिसका अभाव विषैं जतन करणां जोग्य है . पूर्वकारिका करि कारण का अभाव विषैं कार्य का अभाव प्रतिपादन कीया । बहुरि इस कारिका करि कार्य का अभाव विषैं कारण का अभाव प्रतिपादन कीया । अथवा पूर्व गाथा का उपसंहार के अर्थि यह गाथा है, तातैं अैसे संबंध करणां—हेतु नाम कारण का है । ते प्रत्ययभूत कर्तव्य है, हेतु का नाश होतैं तिनि सर्वनिका नाश होय है ! जातैं कारण के अभाव विषैं कार्य का अभाव है, तातैं हेतु का नाश विषैं जतन करणैं जोग्य है ।।९४।।

आगै दृष्टांत कूं दृष्टांतकरि जोडते संतै कहैं है—

---

१. क हेतवः ।२. क कार्यस्याभावेऽभावो निगदितः । ३. क करणीयः ।

`slok3

यं यं पर्यायविशेषं नारकत्वादिस्वरूपं परिणमन्ति गृह्णन्ति जीवाः संसारे ते पर्यायास्ते च जीवा रागस्य द्वेषस्य मोहस्य च वशास्तदायत्ताः परिणमन्तीति ज्ञातव्याः कर्मायत्तत्वात्सर्वसांसारिकपर्यायाणामिति ।।९५।।

रागद्वेषफलं प्रतिपादयन्नाह—

अत्थस्स जीवियस्स य जिब्भोवत्थाण कारणं जीवो ।
मरदि य मारावेदि य अणंतसो सव्वकालं तु ।।९६।।

अर्थस्य कारणं गृहपशुवस्त्रादिनिमित्तं जीवितस्य च कारणं आत्मरक्षार्थं च जिह्वायाः कारणं आहारस्य हेतोरुपस्थस्य कारणं कामनिमित्तं जीवो म्रियते स्वयं प्राणत्यागं करोति मारयति चान्यॉंश्च हिनस्ति प्राणविघातं च कारयति अनन्तशोऽनन्तवारान् सर्वकालमेवेति ।।९६।।

तथा—

जिब्भोवत्थणिमित्तं जीवो दुक्खं अणादिसंसारे ।
पत्तो अणंतसो तो जिब्भोवत्थे जयह दाणिं ।।९७।।

रसनेन्द्रियनिमित्तं स्पर्शनेन्द्रियनिमित्तं चानादिसंसारे जीवो दुःखं प्राप्तऽनन्तशोऽनन्तवारान् यतोऽतो जिह्वामुपस्थं च जय सर्वथा त्यजेदानीं साम्प्रतमिति ।।९७।।

चदुरंगुला च जिब्भा असुहा चदुरंगुलो उवत्थो वि ।
अट्ठंगुलदोसेण दु जीवो दुक्खं खु पप्पोदि ।।९८।।

चतुरंगुलप्रमाणा जिह्वा अशुभा चतुरंगुलप्रमाणं चोपस्थं मैथुनक्रियानिमित्तं एतदष्टांगुलदोषेणैव जीवो दुःखं प्राप्नोति स्फुटं यतस्ततो जिह्वामुपस्थं च त्यज जयेति ।।९८।।

अर्थ–संसार विषैं जे-जे जीव जिस-जिस पर्याय कूं परिणमंति कहिये नारकादि स्वरूप ग्रहण करै हैं । ते पर्याय बहुरि ते जीव राग-द्वेष मोह के वसितैं परिणमै हैं, ऐसैं जानना । काहे तैं ? सर्व संसारीक परजायनिकै कर्माधीनपना है, यातैं ।।९५।।

आगैं राग-द्वेष का फल का प्रतिपादन करते संतै कहै है—

अर्थ–अर्थ जो घर पशु, वस्त्रादिक इनकैं निमित्त, बहुरि जीवित जो आत्मरक्षा ताके अर्थि जिह्वा जो भोजन ताके हेतु, उपस्थ जो कामभोग, ताकै करण जीव हैं सो आप प्राणत्याग करै हैं । बहुरि अन्य प्राणीनिका घात करै है, अनंतबार शास्वता ।।९६।।

अर्थ–जातैं जीव जिव्हा इंद्रिय के कारण, बहुरि स्पर्शन इंद्रिय के कारण अनादि संसार विषैं, अनंत बार दुःख कूं प्राप्त भया, तातैं जिव्हा इंद्रिय बहुरि स्पर्शन इंद्रिय है, ताहि अब सर्वप्रकार त्यजि जीतिये ।।९७।।

अर्थ–च्यार अंगुल प्रमाण अशुभ जिव्हा इंद्रिय, बहुरि च्यारि अंगुल प्रमाण अशुभ मैथुनक्रिया का कारण उपस्थ (लिङ्ग)—इन अष्ट अंगुल के दोषकरि ही जीव है, सो प्रगटपनैं दुःख है, ताहि प्राप्त होय है । जातैं अैसे है तातैं जिह्वा इंद्रिय, बहुरि स्पर्शन इंद्रिय का विषय

स्पर्शनजयकारणमाह—

बीहेदव्वं णिच्चं कट्ठत्थस्स वि तहित्थिरूवस्स ।
हवदि य चित्तक्खोभो पच्चयभावेण जीवस्स ।।९९।।

भेतव्यं नित्यं सर्वकालं त्रासः कर्त्तव्यः[1] काष्ठस्थादपि स्त्रीरूपात् काष्ठलेपचित्रादिकर्मणोऽपि स्त्रीरूपादुद्वेगः कर्त्तव्यो यतो भवति चित्तक्षोभः मनसश्चलनं प्रत्ययभावेन विश्वासात्कारणवशाज्जीवस्येति ।।९९।। तथा—

घिदभरिदघडसरित्थो पुरिसो इत्थी बलंतअग्गिसमा ।
तो महिलेयं ढुक्का णट्ठा पुरिसा सिवं गया इयरे ।।१००।।

पुरुषो घृतभृतकुंभसदृशः स्त्री पुनर्ज्वलदनलसदृशी यथा प्रज्वलदग्निसमीपे स्त्यानघृतपूर्णघटः शीघ्र प्रक्षरति तथा स्त्रीसमीपे मनुष्या यत एवं ततो महिलायाः समीपमुपस्थिता जल्पहासादिवशं गताः पुरुषा नष्टा, ये च न तत्र संगतास्ते शिवं गताः शिवगतिं प्राप्ता इति ।।१००।। तथा—

मायाए वहिणीए धूआए मूइ वुड्ढ इत्थीए ।
बीहेदव्वं णिच्चं इत्थीरूवं णिरावेक्खं ।।१०१।।

मातुः स्त्रीरूपाद्भगिन्याश्च स्त्रीरूपाद् दुहितुश्च स्त्रीरूपाद् मूकाया वृद्धायाश्च स्त्रीरूपाद् भेतव्यं नित्यं निरपेक्षं यतः स्त्री तु पावकरूपमिव सर्वत्र दहतीति ।।१०१।। तथा—

[2]हत्थपादपरिच्छिण्णं कण्णणासवियप्पियं ।
अविवस सदिं णारिं दूरिदो परिवज्जए ।।१०२।।

है, ताहि तजि ।।९८।।

आगै स्पर्शन इंद्रिय का जय का कारण है, ताहि कहै है—

अर्थ–काष्ठतैं उपज्या औसा हू स्त्रीरूप हैं, तातैं सदा भय करणां, काष्ठ, लेप, चित्रादिकरि उत्पन्न भया स्त्री का रूप तातैं भय करतव्य है, जातैं तिनके विश्वास के कारण वसतैं जीवकैं चित्त क्षोभ कहिये मन का चलनां होय है ।।९९।। तथा—

अर्थ–पुरुष है सो घृतकरि भर्‍या कुंभ समांन है, बहुरि स्त्री है सो प्रज्वलत् अग्नि समान है, जैसैं प्रज्वलत अग्निके समीप तिष्ठता घृतकरि पूर्ण घडा शीघ्र द्रवीभूत होय, तैंसें स्त्री कै समीप मनुष्य द्रवीभूत होय है । तातैं स्त्री के समीप तिष्ठते जल्प जो वचनालाप अर हास्यादिक ताकरि वशकूं प्राप्त भये औसे पुरुष है, ते नष्ट भये जे पुरुष तिन विषैं संगत नांही भये, ते मोक्षकूं प्राप्त भये ।।१००।।

तथा—

अर्थ–माता, वहण, पुत्री, मूका कहिये बोलने रहित, बहुरि वृद्धा औसी जो स्त्री तातैं सदा काल भय करवे जोग्य है । स्त्री रूप है सो देखवे जोग्य नांही । जातैं स्त्री का रूप अग्नि समान सर्वत्र दहै है ।।१०१।।

---

१. क काष्ठोत्थादपि । २. क हत्थपादविच्छिणं च ।

हस्तच्छिन्ना पादच्छिन्ना च कर्णहीना नासिकाविहीना च सुष्ठु विरूपा यद्यपि भवति अविवस्त्रां सतीं नग्नामित्यर्थः, नारीं दूरतः परिवर्जयेत् यतः काममलिनस्तां वाञ्छेदिति ।।१०२।।

ब्रह्मचर्यभेदं प्रतिपादयन्नाह—

मण बंभचेर वचि बंभचेर तह काय बंभचेरं च ।
अहवा हु बंभचेरं दव्वं भावं ति दुवियप्पं ।।१०३।।

मनसि ब्रह्मचर्यं वचसि ब्रह्मचर्यं काये ब्रह्मचर्यमिति त्रिप्रकारं ब्रह्मचर्यमथवा स्फुटं ब्रह्मचर्यं द्रव्यभावभेदेन द्विविधं तत्र भावब्रह्मचर्यं प्रधानमिति ।।१०३।।

यतः—

भावविरदो दु विरदो ण दव्वविरदस्स सुग्गई होइ ।
विसयवणरमणलोलो धरियव्वो तेण मणहत्थी ।।१०४।।

भावेन विरक्तोऽन्तरंगेण च यो विरक्त; स एव विरतः संयतो [1]द्रव्येणाब्रह्मवृत्त्या विरतस्य तस्य सुगतिः शोभना गतिर्भवति यतोऽतो विषया रूपादयस्त एव वनमारामस्तस्मिन् रमणलोलः क्रीडालम्पटो धारयितव्यो नियमितव्यो नियमितव्यस्तेन मनोहस्ती चित्तकुंजर इति ।।१०४।।

अब्रह्मकारणं द्रव्यमाह—

पढमं विउलाहारं विदियं कायसोहणं ।
तदियं गंधमल्लाइं चउत्थं गीयवाइयं ।।१०५।।

अर्थ–हस्तकरि छिन्न, पावनि करि छिन्न, बहुरि कानकरि हीन, नाशिका करि हीन यद्यपि अत्यंत विरूप होय, तोहू वस्त्र रहित नग्न होत संती जो स्त्री ताहि दूरतैं तजै, जातैं कामकरि मलिन पुरुष ताहि वांछै है ।।१०२।।

आगै ब्रह्मचर्य का भेद है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै है—

अर्थ–मन विषैं ब्रह्मचर्य, वचन विषैं ब्रह्मचर्य, तैसें ही काय विषैं ब्रह्मचर्य-अैसे ब्रह्मचर्य हैं सो तीन प्रकार हैं । अथवा प्रगटपनैं द्रव्य-भाव भेदकरि ब्रह्मचर्य है, सो दोय प्रकार है ।।१०३।।

तिनि विषैं भाव-ब्रह्मचर्य प्रधान है, अैसे कहै हैं—

अर्थ–जातैं अंतरंगकरि विरक्त है, सो ही विरक्त संयत हैं । द्रव्य जो बाह्यवृत्ति ताकरि विरक्त कै शोभन (उत्तम) गति नांही । यातैं विषय जे रूपरसादिक विषय सो ही भया वन (बगीचा) ताविषैं क्रीडा-लंपट अैसा मन रूप हस्ती रोकणां (वश में करना चाहिए) ।

भावार्थ–मनकूं विषयतैं पराङ्मुख करणां, भाव-बिन द्रव्यकैं कार्य की सिद्धि नांही ।।१०४।।

आगै अबह्म का कारण द्रव्य है, ताहि कहै है—

१. क द्रव्येण बाह्यवृत्त्या ।

तह सयणसोधणं पि य इत्थिसंसग्गं पि अत्थसंगहणं ।
पुव्वरदिसरणमिंदियविसयरदी पणिदरससेवा ।।१०६।।

प्रथममब्रह्मचर्यं[1] विपुलाहारः प्रचुरगृह्यात्रग्रहणं, द्वितीयमब्रह्म कायशोधनं स्नानाभ्यंगनोद्वर्त्तनादिभी रागकारणैः शरीरस्य संस्करणं, तृतीयमब्रह्म गन्धमाल्यानि यक्षकर्दमार्द्रमहिषीधूपादिना [2]सुगन्धग्रहणं, चतुर्थमब्रह्म गीतवादित्रादि सप्तस्वरपंचातोद्यवंशवीणातन्त्रीप्रभृतिकमिति ।।१०५।।

तथा शयनं तूलिकापर्यंकादिकं शोधनं क्रीडागृहं चित्रशालादिकं रहस्यस्थानं कामोद्रेककारणं पंचममब्रह्म । तथापि च स्त्रीसंसर्गः रागोत्कटवनिताभिः कटाक्षनिरीक्षणपराभिरुपप्लवशीलाभिः सम्पर्कः क्रीडनं षष्ठमब्रह्म । तथार्थस्य सुवर्णादिकस्याभरणवस्त्रादिकस्य च ग्रहणं सप्तममब्रह्म । तथा पूर्वरतिस्मरणं पूर्वस्मिन् काले यत् क्रीडितं तस्यानुस्मरणं चिन्तनमष्टममब्रह्म । तथेन्द्रियविषयेषु रूपरसगन्धशब्दस्पर्शेषु कामांगेषु रतिः समीहा नवममब्रह्म । तथा प्रणीतरससेवा इष्टरसानामुपसेवनं दशममब्रह्म । अब्रह्मकारणत्वाद् अब्रह्मेति ।।१०६।। तस्य दशप्रकारस्यापि परिहारमाह—

दसविहमब्बंभमिणं संसारमहादुहाणमावाहं ।
परिहरइ जो महप्पा णो दढबंभव्वदो होदि ।।१०७।।

एवं दशप्रकारमप्यब्रह्मेदं [3]संसारकारणानां महद्दुःखानामावाहमवस्थानं प्रधानहेतुभूतं परिहरति यो महात्मा संयतः स दृढब्रह्मव्रतो भवति । भावाब्रह्मकारणं द्रव्याब्रह्मकारणं च यः परित्यजति तस्योभयथापि ब्रह्मचर्यं सम्यक् तिष्ठतीति, स च चारित्रवानिति ।।१०७।।

अर्थ–१. प्रथम अब्रह्मचर्य—विपुलाहार कहिये प्रचुर आसक्तितैं आहार का ग्रहण करणां । २. द्वितीय अब्रह्मचर्य—कायशोधनं कहिये स्नान,तैलमर्दन, उबटणां आदि राग-कारण तिनिकरि शरीर का संस्कार करणां । ३. तृतीय अब्रह्मचर्य—गंधमाल्यानि कहिये यक्ष-कर्दम, आर्द्रमहिषी (केशर, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ तथा पुष्पमाला) आदि धूपादि नाना सुगंध-पुष्पनिका ग्रहण । ४. चौथा अब्रह्मचर्य—गीत, वादित्रं कहिये (धैवत आदि) सप्तस्वर रूप गान, बहुरि आतोद्य जो वंश (बांसुरी), वीणा, तंत्री आदि वादित्र का सुनना, तथा ५. शयनशोधनं कहिये तूलिका, पर्यंकादिक, क्रीडाघर, चित्रशालादिक एकांत स्थान काम-वधवे (कामोद्रेक) के कारण पांचवां अब्रह्मचर्य है । ६. बहुरि स्त्री-संसर्ग कहिये रागोत्कट अैसी स्त्री कटाक्ष-करि देखिवे विषैं तत्पर, नष्ट भया है शील जिनका तिनकरि सहित जो क्रीडा सो छठा अब्रह्मचर्य है । ७. अर्थसंग्रहणं कहिये सुवर्णादिक आभूषण बहुरि वस्त्रादिक ताका ग्रहण है सो सप्तम अब्रह्मचर्य है । ८. पूर्वरतिस्मरणं कहिये पूर्वकाल विषैं क्रीडाकरी, ताका स्मरण, चिंतवन सो आठवां अब्रह्मचर्य है । ९. इंद्रिय-विषय, रति कहिये रूप, रस, गंध, स्पर्श, काम के अंग तिन विषैं वांछा सो नवमां अब्रह्मचर्य है । १०. प्रणीतरससेवा कहिये इष्ट रसनि का सेवन सो दशमां अब्रह्मचर्य है । अब्रह्मचर्य के ये कारण हैं, यातैं ।।१०५-१०६।।

आगैं तिस दशप्रकार का हू अब्रह्मचर्य का परिहार हैं, ताहि कहै है—

अर्थ–अैसें दशप्रकार यह अब्रह्मचर्य संसार के महादुःखनिका आवाहं कहिये महान् कारणभूत अवस्थान है, ताहि जो महात्मा संजमी परिहरै है, सो दृढ़ ब्रह्मचर्य व्रत का धारी होय है ।

भाव अब्रह्मचर्य का कारण, बहुरि द्रव्य अब्रह्मचर्य का कारण है, ताहि ज्यौ त्यजै है, ताकै दोउ प्रकार हू ब्रह्मचर्य भलै प्रकार तिष्ठै

---

१. क प्रथममब्रह्म । २. क सुगन्धपुष्पग्रहणं । ३. क० संसारकारणं ।

परिग्रहपरित्यागे फलमाह—

कोहमदमायलोहेहिं परिग्गहे लयइ संसजइ जीवो ।
तेणुभयसंगचाओ कायव्वो सव्वसाहूहिं ।।१०८।।

यत: क्रोधमदमायालोभै: परिग्रहे लगति संसजति [1]परिग्रहत्वाद् गृह्णाति जीवस्तेन कारणेनोभयसंगत्याग: कर्त्तव्यो बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहपरिहार: कार्य:। उभयाब्रह्म च परिहरणीयं येन सह क्रोधमानमायालोभाश्च यत्नतस्त्याज्या: सर्वसाधुभिरिति ।।१०८।।

तत:—

णिस्संगो णिरारंभो भिक्खाचरियाए सुद्धभावो य ।
एगागी झाणरदो सव्वगुणड्ढो हवे समणो ।।१०९।।

उभयपरिग्रहाभावैर्नि:संगो मूर्च्छारहितस्तश्च निरारम्भ: पापक्रियादिभ्यो निवृत्तस्ततश्च भिक्षाचर्यायां शुद्धभावो भवति ततश्चैकाकी ध्यानरत: संजायते ततश्च सर्वगुणाढ्य: सर्वगुणसम्पन्न भवेत्[2] ।।१०९।।

पुनरपि श्रमणविकल्पमाह—

णामेण जहा समणो ठवणिए तह य दव्वभावेण ।
णिक्खेवो वीह तहा चदुव्विहो होइ णायव्वो ।।११०।।

है । बहुरि सो ही चारित्रवान है ।।१०७।।

आगै परिग्रह के त्याग विषैं, फल है, ताहि कहै है—

अर्थ–जातै क्रोध, मान, माया, लोभ करिकैं परिग्रह विषैं जीव हैं, सो लीन होय हैं वा ग्रहण करै हैं ताकारण सर्वसाधु जे हैं तिनिनैं उभय संग जो दोउ प्रकार बाह्य-अभ्यंतर परिग्रह तिनका त्याग करतव्य है । दोउ प्रकार अब्रह्मचर्य त्यजवे जोग्य है, जिसकरि सहित जे क्रोध, मान, माया, लोभ हैं, ते त्यजवे योग्य हैं ।।१०८।।

तातैं अैसे हैं—

अर्थ–दोऊ प्रकार परिग्रह के अभाव होत संतै नि:संग: कहिये मूर्छा-रहित होय, बहुरि तिसतैं निरारंभ: कहिये मूर्छा-रहित होय, बहुरि तिसतैं निरारंभ: कहिये पापक्रियातैं निवृत्य होय, । बहुरि तिसतैं भिक्षा चर्या विषैं शुद्ध भाव होय हैं । बहुरि तिसतैं एकाकी ध्यान विषैं, लीन होय हैं । बहुरि तिसतैं सर्वगुणनि परिपूर्ण साधु होय हैं ।।१०९।।

बहुरि हू श्रमण के भेद कहै हैं—

अर्थ–श्रमण जे मुनि तिन विषै भेद कहै है—नामकरि जैंसे श्रमण, तैसै ही स्थापना करि श्रमण, तैसैं ही द्रव्यकरि, बहुरि भावकरि श्रमण जाननां ।

---

१. क० परिग्रहान्वा । २. क० भवेत् श्रमण ।

श्रमणगोचरं निक्षेपमाह—नाम्ना यथा श्रमण: स्थापनया तथैव तत्र द्रव्येण भावेन च तथैव द्रष्टव्य: । नामश्रमणमात्रं नामश्रमण: तदाकृतिर्लेपादिषु स्थापनाश्रमणो गुणरहितलिंगग्रहणं द्रव्यश्रमणो मूलगुणोत्तरगुणानुष्ठानप्रवणभावो भावश्रमण: । एवमिह निक्षेपस्तथैवागमप्रतिपादितक्रमेण चतुर्विधो भवति ज्ञातव्य इति ।।११०।।

तेषां मध्ये भावश्रमणं प्रतिपादयन्नाह—

भावसमणा हु समणा ण सेससमणाण सुग्गईजम्हा ।
जहिऊण दुविहमुवहिं भावेण सुसंजदो होह ।।१११।।

भावश्रमणा एव श्रमणा यत: शेषश्रमणानां नामस्थापनाद्रव्याणां न सुगतिर्यस्मात्तस्माद्विविधमुपधिं द्रव्यभावजं परित्यज्य भावेन सुसंयतो भवेदिति[1] ।।१११।।

भिक्षाशुद्धिं च कुर्यादित्याह—

वदसीलगुणा जम्हा भिक्खाचरिया विसुद्धिए ठंति[2] ।
तम्हा भिक्खाचरियं सोहिय साहू सदा विहारिज्ज ।।११२।।

व्रतानि शीलानि गुणाश्च यस्माद्भिक्षाचर्याया विशुद्ध्यां सत्यां तिष्ठन्ति तस्माद्भिक्षाचर्यां संशोध्य साधु: सदा विहरेत् । भिक्षाचर्याशुद्धिश्च प्रधानं चारित्रं सर्वशास्त्रसारभूतमिति ।।११२।।

---

१. श्रमण का नाम-मात्र सो नाम-श्रमण है, **२.** लेपादिक विषैं तिनकी आकृति सो स्थापना श्रमण, **३.** गुण रहित मुनि लिंग का ग्रहण सौ द्रव्यश्रमण, **४.** मूलगुण अर उत्तरगुण का है आचरण जाकै अैसा उत्कृष्ट श्रमण सो भावश्रमण है । अैसे इहां निक्षेप आगम कथित क्रमकरि च्यार प्रकार है, अैसैं जाननां ।।११०।।

आगै भाव-श्रमण है ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै है—

भावश्रमण है, ते ही श्रमण हैं, जातैं शेष श्रमण जे नाम, स्थापना, द्रव्यश्रमण, तिनकै सुगति नांही । तातैं दोय प्रकार जो द्रव्य-भाव परिग्रह, ताहि तजि भावकरि सुष्ठु संयमी होहु ।।१११।।

आगै भिक्षाशुद्धि है, ताहि करि अैसे कहै हैं—

अर्थ–जातैं व्रत, शील, बहुरि गुण, भिक्षचर्या की विशुद्धता होतैं तिष्ठै हैं । तातैं साधु है सो भिक्षाचर्या हैं, ताहि सोधि सदाकालं

---

१. क० भवेत् । २. अ० ब० क० छंति ।

तथैतदपि विशोध्याचरेदित्याह—

भिक्कं वक्कं हिययं सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहू ।
एसो सुट्ठिद साहू भणिओ जिणसासणे भयवं ।।११३।।

भिक्षां गोचरीशुद्धिं वाकयं वचनशुद्धिं हृदयं मनःशुद्धिं विशोध्य यश्चरति चारित्रोद्योगं करोति साधुर्नित्यं स एष सुस्थितः सर्वगुणोपेतः साधुर्भणितो भगवान्, क्व ? जिनशासने सर्वज्ञागमे इति ।।११३।।

तथैतदपि सुष्ठु ज्ञात्वा चरत्वित्याह—

दव्वं खेत्तं कालं भावं सत्तिं च सुट्ठु णाऊण ।
झाणज्झयणं च तहा साहू चरणं समाचरऊ ।।११४।।

द्रव्यमाहारशरीरादिकं क्षेत्रं जांगलरूपादिकं कालं सुषमासुषमादिकं शीतोष्णादिकं भावं परिणामं च सुष्ठु ज्ञात्वा ध्यानमध्ययनं तथा ज्ञात्वा साधुश्चरणं समाचरतु । एवं कथितप्रकारेण चारित्रशुद्धिर्भवतीति ।।११४।।

तथोभयत्यागफलमाह—

चाओ य होइ दुविहो संगच्चाओ कलत्तचाओ य ।
उभयच्चायं किच्चा साहू सिद्धिं लहू लहदि ।।११५।।

त्यागश्च भवति द्विविधः संगत्यागः कलत्रत्यागश्च तत उभयत्यागं कृत्वा साधुर्लघु शीघ्रं सिद्धिं लभते न तत्र सन्देह इति ।।११५।।

प्रवर्तै । बहुरि भिक्षाचर्या की शुद्धि है, सो प्रधान-चारित्र है । सर्वशास्त्रनिका सारभूत है ।।११२।।

आगै तैसें ही ये भिक्षाचर्यादिक है, ताहि हू सोधि साधु प्रवर्तै, अैसे कहै हैं—

अर्थ–भिक्षा जो आहारशुद्धि, वाक्य जो वचन-शुद्धि, हृदय जो मनःशुद्धि, ताहि सोधि जाणि, जो साधु नित्य चरति कहिये चारित्र विषैं उद्यम करै हैं, सो यह सुस्थित साधु कहिये सर्वगुणनि करि सहित सर्वज्ञ के आगम विषैं भगवान् अैसा कह्या है ।।११३।।

आगै तैसै ही यह साधु भलै प्रकार जाणि आचरण करहु, अैसे कहै है—

अर्थ–द्रव्य जो आहार-शरीरादिक, क्षेत्र जो जांगल, अनूपादिक जो निर्जल भूमि-सजल भूमि, काल जो सुषमा-सुषमादिक, शीत, उष्ण आदि भाव जो परिणाम, बहुरि शक्ति, ताहि भलै प्रकार जाणि तैंसैं ही ध्यान-अध्ययन है, ताहि भलै प्रकार जाणि, साधु चारित्र आचरण करहु । अैसे कथित प्रकारकरि चारित्र की शुद्धि होय हैं ।।११४।।

आगैं तैसे ही उभयत्याग का फल है, ताहि कहै है—

अर्थ–त्याग है सो दोय प्रकार है—१. परिग्रहत्याग, २. बहुरि स्त्रीत्याग । बहुरि तातैं उभय त्यागकरि साधु शीघ्र मोक्ष पावै है,

चारित्रशुद्धिमसंयमप्रत्ययकषायप्रत्यययोगप्रत्ययस्वरूपशुद्धिं च प्रतिपाद्य दर्शनशुद्धिं मिथ्यात्वप्रत्ययशुद्धिं च प्रतिपादयन्नाह—

[1]पुढवीकायिगजीवा पुढवीए चावि अस्सिदा संति ।
तम्हा पुढवीए आरम्भे णिच्चं विराहणा तेसिं ।।११६।।

पृथिवीकायिकजीवास्तद्वर्णगन्धरसाः सूक्ष्माः स्थूलाश्च तदाश्रिताश्चान्यो जीवास्त्रसाः शेषकायाश्च सन्ति तस्मात्तस्याः पृथिव्या विराधनादिके खननदहनादिके आरम्भ आरम्भसमारम्भसंरम्भादिके च कृते निश्चयेन तेषां जीवानां तदाश्रितानां प्राणव्यपरोपणं स्यादिति । एवमप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिक-वनस्पतिकायिकत्रसकायिकानां तदाश्रितानां च समारम्भे ध्रुवं विराधनादिकं भवतीति निश्चेतव्यम् ।।११६।।

तम्हा पुढविसमारंभो दुविहो तिविहेण वि ।
[2]जिणमग्गाणुचारीणं जावज्जीवं ण कप्पई ।।११७।।*

यामैं संदेह नांही ।।११५।।

आगै चारित्रशुद्धि बहुरि असंयम प्रत्यय, कषाय-प्रत्यय, योग-प्रत्यय, इनकी स्वरूपशुद्धि है, ताहि प्रतिपादन करि, दर्शनशुद्धि, बहुरि मिथ्यात्वप्रत्ययशुद्धि है, ताहि प्रतिपादन करतै संतै कहै है—

अर्थ–पृथिवीकायिक जीव तिस समान हैं, वर्ण, रस गंध जिन विषैं सूक्ष्म बहुरि स्थूल, बहुरि तिसकैं आश्रित अन्यत्र सजीव, बहुरि अवशेष कायिक जीव हैं, तातैं तिसि पृथिवी का विराधनादिक जो खनन, दहनादिक आरंभ, बहुरि आरंभ, संरंभ, समारंभादिक कीये संतै निश्चयकरि तिन जीवनि का, बहुरि तदाश्रित जीवनि का प्राणघात होय है । या प्रकार अप्काय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय, बहुरि तदाश्रित जीवनि के समारंभ विषैं, निश्चयकरि विराधनादिक होय है—ऐसा निश्चय करणां ।।११६।।

---

१. फलटन से प्रकाशित संस्करण में इस गाथा में कुछ अन्तर है—
पुढवि कायिगा जीवा पुढविं जे समासिदा । दिट्ठा पुढविसमारंभे धुवा तेसिं विराधणा ।।

२. क० जिणमग्गाणुसारीणं ।

* फलटन से प्रकाशित प्रति में ये पाँच गाथाएँ और हैं—

आउकायिगा जीवा आऊं जे समस्सिदा । दिट्ठा आउसमारंभे धुवा तेसिं विराधणा ।।

अर्थ–जलकायिक जीव और उसके आश्रित रहने वाले अन्य जो त्रसजीव हैं, जल के गर्म करने, छानने, गिराने आदि आरम्भ से निश्चित ही उनकी विराधना होती है ।

तेउकायिगा जीवा तेउ ते समस्सिदा । दिट्ठा तेउसमारंभे धुवा तेसिं विराधणा ।।

अर्थ–अग्निकायिक जीव और अग्नि के आश्रित रहनेवाले जो जीव हैं उनकी अग्नि बुझाने आदि आरम्भ से निश्चित ही विराधना होती है ।

वाउकायिगा जीवा वाउ ते समस्सिदा । दिट्ठा वाउसमारंभे धुवा तेसिं विराधणा ।।

अर्थ–वायुकायिक जीव और उनके आश्रित रहनेवाले जो त्रसजीव हैं, उनकी वायु के प्रतिबन्ध करने या पंखा करना आदि आरम्भ से निश्चित ही विराधना होती है ।

यत: पृथिवीकायिकादीनां तदाश्रितानां च समारम्भे ध्रुवाहिंसा तस्मात्पृथिवीसमारम्भ: खननादिको द्विविधो द्विप्रकारो पृथिवीकायिकतदाश्रितोभय-रूपोऽपि त्रिविधेन मनोवाक्कायरूपेण जिनमार्गानुचारिणां[1] यावज्जीवं न कल्प्यते न युज्यत इति । एवमप्तेजोवायुवनस्पतित्रसानां द्विप्रकारेऽपि समारम्भेऽवगाहनसेचनज्वालनतापनवीजनमुखवातकरणच्छेदनतक्षणादिकं न कल्प्यते जिनमार्गानुचारिण[2] इति ।।११७।।

असंयमप्रत्ययं तद्विशुद्धिं च प्रतिपाद्य मिथ्यात्वप्रत्ययं तद्विशुद्धिं प्रतिपादयन्नाह—

जो पुढविकाइजीवे ण वि सद्दहदि जिणेहिं णिद्दिट्ठे ।
दूरत्थो जिणवयणे तस्स उवट्ठावणा णत्थि ।।११८।।*

अर्थ–जातैं पृथिवी-कायिकादिक, बहुरि तदाश्रित जीवनि के समारंभ कै विषैं निश्चित हिंसा है । तातैं पृथिवी का समारंभ-खननादिक द्विप्रकार—१. पृथिवीकायिक कर आरम्भ, तदाश्रित उभय घातरूप आरम्भ हू त्रिविध—मन, वचन, कायकरि । जिनमार्गानुचारी साधुनिकूं इह आरम्भ यावज्जीव करणां नांही योग्य है । अैसैं जिनमार्गकै अनुकूल चारित्र के धारक साधु कै अप्, तेज, वायु, वनस्पति, त्रस इनका दोय प्रकार हू समारंभ अर्थात् जल में अवगाहन, ज्वालन, सिंचन, तापन, बीजने (पंखा) करि, मुखकरि पवन करणां, छेदन, भेदनादिक नांही जोग्य है ।।११७।।

आगैं असंजम प्रत्यय, बहुरि ताकी विशुद्धि ताहि कहकरि मिथ्यात्व प्रत्यय बहुरि ताकी विशुद्धि है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै हैं—

वणप्फदिकाइगा जीवा वणप्फदिं जे समस्सिदा । दिट्ठा वणप्फदिसमारंभे धुवा तेसिं विराधणा ।।

अर्थ–वनस्पतिकायिक जीव और उनके आश्रित रहने वाले जो जीव हैं, वनस्पति फल-पुष्प के तोड़ने, मसलने आदि आरम्भ से उनकी नियम से विराधना होती है ।

जे तसकायिगा जीवा तसं जे समस्सिदा । दिट्ठा तससमारंभे धुवा तेसिं विराधणा ।।

अर्थ–जो त्रसकायिक जीव हैं और उनके आश्रित जो अन्य जीव हैं उन सब का घात, पीडन आदि करने से नियम से उन जीवों की विराधना होती है ।

१. क० म.ार्गानुसारिणां । २. क० मार्गानुसारिण: ।

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में निम्नलिखित पाँच गाथाएँ अधिक हैं—

तम्हा आउसमारंभो दुविहो वि । जिणमग्गाणुचारीणं जावज्जीवं ण कप्पदि ।।
तम्हा तेउसमारंभो दुविहो तिविहेण वि । जिणमग्गाणुचारीणं जावज्जीवं ण कप्पदि ।।
तम्हा वाउसमारंभो दुविहो तिविहेण वि । जिणमग्गाणुचारीणं जावज्जीवं ण कप्पदि ।।
तम्हा वणप्फदिसमारंभो दुविहो तिविहेण वि । जिणमग्गाणुचारीणं जावज्जीवं ण कप्पदि ।।
तम्हा तससमारंभो दुविहो तिविहेण वि । जिणमग्गाणुचारीणं जावज्जीवं ण कप्पदि ।।

अर्थ–अत: जिनमार्गानुचारी साधुओं को दोनों प्रकार का जल के अर्थात् जलकायिक जीवों का और उसके आश्रित जीवों का आरम्भ (घात) मन-

यः पृथिवीकायिकान् जीवान् न श्रद्धाति नाभ्युपगच्छति जिनैः प्रज्ञप्तान् प्रतिपादितान् स जिनवचनाद् दूरं स्थितो न तस्योपस्थापनाऽस्ति न तस्य सम्यग्दर्शनादिषु संस्थितिर्विद्यते मिथ्यादृष्टित्वादिति । एवमकायिकान् वनस्पतिकायिकान् त्रसकायिकाँश्च यो नाभ्युपगच्छति तस्याप्युपस्थापना नास्ति सोऽपि मिथ्यादृष्टिरेव न कदाचिदपि मुक्तिमार्गे तस्य स्थितिर्यतो दर्शनाभावेन[१] चारित्रस्य ज्ञानस्य चाभाव एव दर्शनाविनाभावित्वात्तयोरिति ।।११८।।

यः पुनः श्रद्धाति स सद्दृष्टिरिति प्रतिपादयन्नाह—

जो पुढविकायजीवे अइसद्दहदे जिणेहिं पण्णत्ते ।
उवलद्धपुण्णपावस्स तस्सुवट्ठावणा अत्थि ।।११९।।*

अर्थ–जिन भगवान् करि कहै अैसे पृथिवी कायिक जीव हैं, तिनहि जो श्रद्धान नांही करै हैं, सो जिनवचनतैं दूरवर्ती है, ताकै उपस्थापनां जो सम्यग्दर्शनादिक विषैं स्थिति सो भलै प्रकार विद्यमान नांही । काहेतैं ? मिथ्यादृष्टी-पणैतैं । या प्रकार अप्कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक बहुरि तिनकैं आश्रित जीव है, तिनहि नांही श्रद्धान करै हैं । ताकै उपस्थापना नांही है । सो हू मिथ्यादृष्टी निश्चयकरि हैं कदाचित् हूं मोक्षमार्ग-विषैं, ताकी स्थिति नांही । जातैं दर्शन का अभावकरिकैं चारित्र का, बहुरि ज्ञान का अभाव ही है । चारित्र, ज्ञानकै दर्शनतैं अविनाभावीपनां है, यातैं ।।११८।।

बहुरि जो श्रद्धान करै है, सो सम्यग्दृष्टी है अैसें प्रतिपादन करते संतै कहैं है—

वचन-काय से यावज्जीवन नहीं करना चाहिए ।

अतः जिनमार्गानुचारी साधुओं को दोनों प्रकार के वायु जीवों का आरम्भ मन-वचन-काय से जीवनपर्यंत करना उचित नहीं है ।

अतः जिनमार्ग के अनुरूप साधुओं को दोनों प्रकार के वनस्पति जीवों का आरम्भ मन-वचन-काय से जीवन भर करना उचित नहीं है ।

अतः जैन शासन के अनुकूल प्रवृत्ति करन वाले साधुओं को दो प्रकार के वनस्पति जीवों का आरम्भ मन-वचन-काय से जीवन भर करना उचित नहीं है । अतः जिनमार्ग के अनुकूल प्रवृत्ति करने वाले साधुओं को त्रसजीवों का दो प्रकार का यह आरम्भ अर्थात् घात मन-वचन-काय से यावज्जीवन नहीं करना चाहिए ।

१. दर्शनाभाव ।

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में निम्नलिखित पाँच गाथाएँ अधिक हैं—

जो आउकाइगे जीवे णवि सद्दहदि जिणेहिं पण्णत्ते । दूरत्थो जिनवयणे तस्सुववट्ठावणा णत्थि ।।
जो तेउकाइगे जीवे णवि सद्दहदि जिणेहिं पण्णत्ते । दूरत्थो जिणवयणे तस्सुववट्ठावणा णत्थि ।।
जो वाउकाइगे जीवे णवि सद्दहदि जिणेहिं पण्णत्ते । दूरत्थो जिणवयणे तस्सुवट्ठावणा णत्थि ।।
जो वणप्फदिकाइगे जीवे णवि सद्दहदि जिणेहिं पण्णत्ते । दूरत्थो जिणवयणे तस्सुववट्ठावणा णत्थि ।।
जो तसकाइगे जीवे णवि सद्दहदि जिणेहिं पण्णत्ते । दूरत्थो जिणवयणे तस्सुववट्ठावणा णत्थि ।।

अर्थ–जो जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित जलकायिक जीवों का श्रद्धान नहीं करता है वह जिनवचन से दूर ही स्थित है, उसके उपस्थापना नहीं होती। जो जिनदेव द्वारा कथित अग्निकायिक जीवों का श्रद्धान नहीं करता है वह जिनवचन से दूर स्थित है उसके उपस्थापना नहीं है । जो जिनदेव द्वारा

य: पृथिवीकायिकजीवाँस्तदाश्रिताँश्चातिशयेन श्रद्धाति मन्यते जिनै: प्रज्ञप्तान् तस्योपलब्धपुण्यपापस्योपस्थापना विद्यते मोक्षमार्गे तस्य संस्थितिरवश्यम्भाविनीति । एवमप्कायिकतेज:कायिकवायुकायिकवनस्पतिकायिकत्रसकायिककाँस्तदाश्रिताँश्च य: श्रद्धाति मन्यतेऽभ्युपगच्छति तस्योपलब्धपुण्यपापस्योपस्थापना विद्यत इति ।।११९।।

न पुन: श्रद्धाति तस्य फलमाह—

ण सद्दहदि जो एदे जीवे पुढविदं गदे ।
स गच्छे दिग्घमद्धाणं लिंगत्थो वि हु दुम्मदी ।।१२०।।*

न श्रद्दधाति नाभ्युपगच्छति य एतान् जीवान् पृथिवीत्वं गतान् पृथिवीकायिकान् तदाश्रिताँश्च स गच्छेद्दीर्घमध्वानं दीर्घसंसारं लिंगस्थोऽपि नग्न्यादिलिंगसहितोऽपि दुर्मतिर्यत इति । एवमप्कायिकतेज:कायिकवायुकायिकवनस्पतिकायिकत्रसकायिकान् तदाश्रिताँश्च यो न श्रद्धाति नाभ्युपगच्छति स लिंगस्थोऽपि दुर्मतिर्दीर्घसंसारं गच्छेदिति ।।१२०।।

अर्थ–जो जिनदेवकरि कहै पृथिवीकायिक जीव, बहुरि तदाश्रित जीव, तिनहि अतिशयकरि श्रद्धान करै हैं ।जाण्या है पुण्य-पाप जानैं अैसा तिसकैं मोक्षमार्ग विषैं स्थिती अवश्य भाविनी है । अैसै अप्कायिक, तेज:कायिक, वायुकायिक, वनस्पती कायिक जीव, त्रस जीव बहुरि तदाश्रित जीवनिकूं जो श्रद्धान करै हैं, अंगीकार करै है, जाण्या है पुण्य-पाप जानै अैसा, ताकै उपस्थापनां जो मोक्षमार्ग विषैं स्थिति सो विद्यमान है ।।११९।।

बहुरि जो श्रद्धान नांही करै हैं, ताका फल हैं, ताहि कहै हैं—

अर्थ–जो पृथिवीभावकूं प्रापत भये-अैसे यह पृथिवीकायिकजीव, बहुरि तदाश्रित जीव तिनहि श्रद्धान नांही करै हैं । सो लिंगस्थ:

कथित वायुकायिक जीवों का श्रद्धान नहीं करता है वह जिनवचन से दूर ही स्थित है, उसके उपस्थापना नहीं है जो जिनदेव कथित वनस्पति-कायिक जीवों का श्रद्धान नहीं करता है, वह जिनवचन से दूर स्थित है, उसके उपस्थापना नहीं है । जो जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित त्रसकायिक जीवों का श्रद्धान नहीं करता है वह जिनवचन से दूर है, उसके उपस्थापना नहीं है ।

फलटन से प्रकाशित मूलाचार में निम्नलिखित पाँच गाथाएँ अधिक हैं—

जो आउकाइगे जीवे अइसद्दहदि जिणेंहि पण्णत्ते । उवलद्धपुण्णपावस्स तस्सुववट्ठावणा अत्थि ।।
जो तेउकाइगे जीवे अइसद्दहदि जिणेहिं पण्णत्ते । उवलद्धपुण्ण पावास्स तस्सुववट्ठावणा अत्थि ।।
जो वाउकाइगे जीवे अइसद्दहदि जिणेहिं पण्णत्ते । उवलद्धपुण्णपावस्स तस्सुववट्ठावणा अत्थि ।।
जो वणप्फदिकाइगे जीवे अइसद्दहदि जिणेहिं पण्णत्ते । उवलद्धपुण्णपावस्स तस्सुववट्ठावणा अत्थि ।।
जो तसकाइगे जीवे अइसद्दहदि जिणेंहि पण्णत्ते । उवलद्धपुण्णपावस्स तस्सुववट्ठावणा अत्थि ।।

अर्थात् जो जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित जलकायिक जीव, अग्निकायिक जीव, वायुकायिक जीव, वनस्पतिकायिक जीव एवं त्रसकायिक जीवों का तथा इनके अश्रित अन्य जीवों का अतिशयरूप से श्रद्धान करता है, पुण्य-पाप के स्वरूप को जानकार उस व्यक्ति के रत्नत्रय में अवस्थिति होती है ।

एवंभूतान् जीवान् पातुकाम: श्रीगणधरदेवस्तीर्थंकरपरमदेवं पृष्टवानिति, तत्प्रश्नस्वरूपमाह—

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सये ।
कधं भुंजेज्ज भासिज्ज कधं पावं ण वज्झदि ।।१२१।।*

एवं प्रतिपादितक्रमेण जीवनिकायकुले[१] जगति साधु: कथं केन प्रकारेण चरेद्गच्छेदनुष्ठानं वा कुर्यात् कथं तिष्ठेत् कथमासीत कथं वा शयीत कथं भुंजीत कथं भाषेत कथं वदेत कथं पापं न बध्यते केन प्रकारेण पापागमो न स्यादिति ।।१२१।। प्रश्नमालाया उत्तरमाह—

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये ।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झइ ।।१२२।।

यत्नेनेर्यापथसमितिशुद्ध्या चरेद् यत्नेन तिष्ठेद् महाव्रतादिसंपन्नो यत्नेनासीत प्रतिलिख्य जीवानविराधयन् पर्यंकादिना यत्नेन शयीत

अपि कहिये नग्नत्व आदि लिंगकरि सहित असा हू जो दुर्बुद्धी सो दीर्घ संसार कूं प्राप्त होय है । या प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक बहुरि तदाश्रित-असे जीवनिकूं नांही श्रद्धान करैं हैं, सो मुनि लिंग विषैं तिष्ठता दुर्बुद्धि दीर्घसंसारकूं प्राप्त होय हैं ।।१२०।।

या प्रकार विद्यमान जीवनिकूं जाणवे की है वांछा जाकैं असा श्रीगणधरदेव, तीर्थंकर, परमदेव हैं, ताहि असे पूंछता भया तिस-प्रश्न का स्वरूप है, ताहि कहै है—

अर्थ–या प्रकार कथित क्रमकरि जीव निकायकरि व्याप्त जगत् विषैं साधु कौंन प्रकार गमन करैं ? बहुरि ताका आचरण करै, कैसैं तिष्ठै, कैसे बैठे, कैसे सोवै, कैसैं भोजन करै ? कैसें संभाषण करै ? कैसैं पाप नांही बंधै ? ।।१२१।।

आगै कौन प्रकारकरि पापाश्रव नांही होय ? असी प्रश्नमाला होतैं उत्तर हैं, ताहि कहै है—

अर्थ–यत्नेन चरेत् ईर्यापथ समिति की शुद्धिकरि गमन करैं, यत्नेन तिष्ठेत् कहिये महाव्रतादिककरि संयुक्त जतनकरि तिष्ठै, ठाडा रहैं, यत्नेन नासीत कहिये पीछीतैं सोधिकरि जीवनिकूं नांही विराधता, पर्यकादिक आसनकरि जतनकरि बैठे, यत्नेन शयीत कहिये सोधनकरि,

---

१. क० जीवनिकाया कुले ।

* फलटन से प्रकाशित कृति में वे गाथाएँ अधिक हैं—

ण सद्दहदि जो एवे जीवे आउतग्गदे । स गच्छे दिग्घमद्धाणं लिंगत्थो वि हुदुम्मदी ।।
ण सद्दहदि जो एदे जीवे तेउतग्गदे । स गच्छे दिग्घमद्धाणं लिंगत्थो वि हू दुम्मदी ।।
ण सद्दहदि जो एदे जीवे वाउतग्गदे । स गच्छे दिग्घमद्धाणं लिंगत्थो वि हु दुम्मदी ।।
ण सद्दहदि जो एदे जीवे वणप्फदितग्गदे । स गच्छे दिग्घमद्धाणं लिंगत्थो वि हुदुम्मदी ।।
ण सद्दहदि जो एदे जीवे तसतग्गदे । स गच्छे दिग्घमद्धाणं लिंगत्थो वि हुदुम्मदी ।।

अर्थ–जो जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनहस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीवों का तथा उनके आश्रित जीवों का श्रद्धान नहीं करता है वह दुर्मति मुनि वेषधारी होते हुए भी दीर्घ संसार को प्राप्त करता है ।

प्रतिलिख्योद्वर्त्तनपरावर्त्तनादिकमकुर्वन् संकुचितात्मा रात्रौ शयनं कुर्याद् यत्नेन भुंजीत षट्चत्वारिंशद्दोषवर्जितांभिक्षां गृह्णीयाद्यत्नेन भाषेत भाषासमितिक्रमेण सत्यव्रतोपपन्नः, एवमनेन प्रकारेण पापं न बध्यते कर्मास्रवो न भवतीति ।।१२२।।

यत्नेन चरतः फलमाह—

जदं तु चरमाणस्य [1]दयापेहुस्स भिक्खुणो ।
णवं ण बज्झदे कम्मं पोराणं च विधूयदि ।।१२३।।

यत्नेनाचरतो भिक्षोर्दयाप्रेक्षकस्य दयाप्रेक्षिणो नवं न बध्यते कर्म चिरन्तनं च विधूयते निराक्रियेत । एवं यत्नेन तिष्ठता यत्नेनासीनेन यत्नेन शयानेन भुंजानेन यत्नेन भाषमाणेन नवं कर्म न बध्यते चिरन्तनं च क्षीयते ततः सर्वथा यत्नाचारेण भवितव्यमिति ।।१२३।।

समयसारस्योपसंहारगाथेयं—

एवं विधाणचरियं जाणित्ता आचरिज्ज जो भिक्खू ।
णासेऊण दु कम्मं दुविहं पि य लहु लहइ सिद्धिं ।।१२४।।*

उद्वर्तनादिक नांही करता, संकोचयुक्त है आत्मा जाका-ऐसा होता रात्रि विषैं शयनकरै, यत्नेन भुंजीत कहिये छियालीस दोष रहित जतनकरि भिक्षाग्रहण करै । यत्नेन भाषेत कहिये भाषा समिति के क्रमकरि सत्यव्रत सहित बौले । या प्रकारकरि पाप नांही बंधै, कर्माश्रव नांही होय है ।।१२२।।

आगै जतनकरि प्रवर्तता मुनिकै फल है, ताहि कहै है—

अर्थ–जतनकरि आचरण करता, दया पालता-ऐसा साधुकैं नवीनकर्म नाहीं वंधै है । बहुरि पुरातन कर्म निर्जराकरण होय हैं। इहां तृतीया विभक्तिकरि भी अर्थ होय है । या प्रकार जतनकरि तिष्ठता, जतनकरि बोलता नवीनकर्म नांही बांधै है । बहुरि पुरातन क्षीण करै हैं । यातैं जतनाचार सहित सर्वथा प्रवर्ति ।।१२३।।

समयसाराधिकार की यह उपसंहार गाथा है—

---

१. द दयापेहिस्स ।

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में निम्नलिखित गाथाएँ अधिक हैं—

जदं तु चिट्ठमाणस्स दयापेक्खिस्स भिक्खुणो । णवं ण बज्झदे कम्मं पोराणं च विधूयदि ।।
जदं तु आसमाणस्स दयापेक्खिस्स भिक्खुणो । णवं ण बज्झदे कम्मं पोराणं च विधूयदि ।।
जदं तु सयमाणस्स दयापेक्खिस्स भिक्खुणो । णवं ण बज्झदे कम्मं पोराणं च विधूयदि ।।
जदं तु भुंजमाणस्स दयापेक्खिस्स भिक्खुणो । णवं ण बज्झदे कम्मं पोराणं च विधूयदि ।।
जदं तु भासमाणस्स दयापेक्खिस्स भिक्खुणो । णवं ण बज्झदे कम्मं पोराणं च विधूयदि ।।
दव्वं खेत्तं कालं भावं च पडुच्च तह य संघडणं । चरणमि जो पवट्टइ कमेण सो णिरवहो होइ ।।

अर्थात् यत्नपूर्वक खड़े होनेवाले और दया का पालन करनेवाले साधु के नवीन कर्म नहीं बँधते हैं तथा पुराने कर्म निर्जीर्ण हो जाते हैं । ऐसे

एवमनेन प्रकारेण विधानचरितं क्रियानुष्ठानं ज्ञात्वा आचरति यो भिक्षुः स साधुर्नाशयित्वा कर्म द्विप्रकारमपि शुभाशुभरूपमपि द्रव्यरूपं भावरूपं वा शीघ्रं लभते सिद्धिं[1] यत एवं चारित्रान्मोक्षो भवति सर्वस्य सारभूतं चारित्रं तत इति दशमस्य समयसारसंज्ञकस्याचारस्य ।।१२४।।

इतिश्रीमद्वट्टकेर्याचार्यवर्यप्रणीते मूलाचारे श्रीवसुनन्द्याचार्यप्रणीताचारवृत्त्याख्यटीकासहिते

दशमः समयसाराधिकारः ।[2]

अर्थ–या प्रकार क्रिया का अनुष्ठान जाणि जो मुनि आचरण करै सो द्विविधमपि कर्मनाशयित्वा दोय प्रकार-शुभाशुभ रूप अथवा द्रव्य-भाव रूप अैसा कर्म है, ताहि नासिकरि शीघ्र मोक्ष कूं प्राप्त होय है । जातैं इस चारित्रतैं मोक्ष होय है, तातैं सर्वका सारभूत चारित्र है ।।१२४।।[3]

अैसें आचार्यश्रीवट्टकेर स्वामि विरचित मूलाचार नाम प्राकृत ग्रंथ की वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ति विरचित आचारवृत्ति नाम संस्कृत टीका कै अनुसार यह देशभाषा वचनिका विषैं समयसार है नाम जाका अैसा दशमा अधिकार समाप्त भया ।

इहां पर्यंत गाथासूत्र समस्त ''एक सहस्र चौदह'' (१०१४) भये ।[4]

ही यत्नपूर्वक बैठने वाले, यत्नपूर्वक सोने वाले, यत्नपूर्वक आहार करने वाले और यत्नपूर्वक बोलनेवाले तथा दया से सर्व जीवों का निरीक्षण करनेवाले साधु के नूतन कर्मों का बन्ध नहीं होता है । तथा कर्म झड़ जाते हैं । इस तरह जो साधु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और अपने शरीर संहनन का अनुसरण करके चारित्र में प्रवृत्ति करता है वह क्रम से बधरहित अर्थात् अहिंसक हो जाता है ।

१. क० सिद्धिं मोक्षं ।

२. ख-ग-पुस्तकेऽस्य स्थानेऽयं पाठः —इति वसुनन्दिविरचितायामाचारवृत्तौ दशमः परिच्छेदः ।

३. फलटन से प्रकाशित प्रति में यह गाथा अधिक है ।

तित्थयर कहियमत्थं गणधर रचियं जदीहिं अणुचरिदं ।
णिव्वाणहेदुभूदं सुदमहमखिल पणिवदामि ।।

अर्थ–परम तीर्थंकरदेव ने जिसका अर्थरूप से कथन किया है, गणधरदेव ने जिसे सूत्ररूप में रचा है और यतियों ने जिसका अभ्यास किया है, निर्वाण के लिए कारणभूत ऐसे सम्पूर्ण द्वादशांगश्रुत को मैं प्रणाम करता हूँ ।

४. भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित मूलाचार में यहाँ पर्यन्त १०१७ गाथायें हुईं ।

एकादश शीलगुणाधिकारः[१]

सीलगुणालयभूदे कल्लाणविसेसपाडिहेरजुदे ।
वंदित्ता अरहंते सीलगुणे कित्तइस्सामि ।।१।।

सील–शीलव्रतपरिरक्षणं शुभयोगवृत्तिरशुभयोगवृत्तिपरिहार आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञाविरतिपञ्चेन्द्रियनिरोधः कायसंयमविषयोद्भवदोषाभावः क्षांत्यादियोगाश्च, **गुणा**–गुणाः संयमविकल्पाः पंचमहाव्रतादयः कषायाद्यभावोऽतिक्रमाद्यभावः षट्कायसविकल्पसंयमद्शप्रकाराब्रह्माभाव आकंपितादिदोषविमुक्तिरालोचनादिप्रायश्चित्तकरणं । शीलानि च गुणाश्च शीलगुणास्तेषामालयभूताः सम्यगवस्थानं संजाताः शीलगुणालयभूतास्तान् शीलगुणालयभूतान् व्रतानां व्रतपरिरक्षणानां चाधारान् । **कल्लाण**–कल्याणानि स्वर्गावतरणजन्मनिष्क्रमणकेवलज्ञानोत्पत्तिनिर्वाणगमनानि, **विसेस**–विशेषा अतिशयविशेषाश्चतुस्त्रिंशत्, स्वाभाविकादश निःस्वेदत्वादिकाः, घातिकर्मक्षयजा दश गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षत्वादिका, देवपनीताश्चतुर्दश सर्वार्द्धमागधिकभाषादयः, **पाडिहेर**–प्रातिहार्याण्यष्टौ सिंहासनादीनि, **जुदे**–युक्तान् सहितान् कल्याणानि चातिशयविशेषाश्च प्रातिहार्याणि च कल्याणविशेषप्रातिहार्याणि तैर्युक्तास्तान् सर्वान् सर्वज्ञत्वचिह्नोपेतान् त्रिषष्टिकर्मक्षयजगुणसंयुक्तान्, **वंदित्ता**–वंदित्वा प्रणम्य, **अरहंते**–अर्हतः सर्वज्ञनाथान्, **सीलगुणे**–शीलगुणाान् शीलानि गुणांश्च, **कित्तइस्सामि**–कीर्त्तयिष्यामि सम्यगनुवर्त्तयिष्यामि । अर्हतः शीलगुणालयभूतान् कल्याणविशेषप्रातिहार्ययुक्तान् वंदित्वा शीलगुणान् कीर्तयिष्यामीति सम्बन्धः।।१।।

औसैं समयसार अधिकार का व्याख्यानकरि आगै शीलगुणाधिकार है, ताहि कहै है—

अर्थ–शीलनाम व्रतकी रक्षा, शुभ योगवृत्ति, अशुभ योगवृत्तिपरिहार, आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा-विरति, पंचेन्द्रिय-निरोध, कायसंजम विषैं उपज्या दोषनि का परिहार, क्षांत्यादिक जोग, गुणनाम संयम के विकल्प पंचमहाव्रतादिक, कषायादिक का अभाव, अतिक्रमादिक का अभाव, षट्कायनि का भेद सहित संजम, दश प्रकार अब्रह्म का अभाव, आकंपितादिक दोषनि का त्याग् सहित आलोचनादि प्रायश्चित का करणा, शील और गुण ते शीलगुण कहिये इनके आलयभूताः कहिये भलै प्रकार स्थान भये । ते शीलगुणालय भूत कहिये व्रतनि के बहुरि व्रत रक्षानि के आधार कल्याण कहिये स्वर्गावतरण, जन्म, तप, केवलज्ञानोत्पत्ति, मोक्षगमन विषैं, विशेष कहिये अतिशय विशेष चौंतीस, स्वाभाविक दशगुण—निःस्वेदत्वादिक, घातिकर्म के क्षयतैं उपजे, दश, गव्यूतिशत चतुष्टय (चार सौ कोस तक) सुभिक्षत्वादिक, देवोपनीत चौदह, सर्वार्द्धमागधिक भाषादिक, प्रातिहार्य आठ—सिंहासनादिक इनकरि कै सहित अैसे सर्वज्ञसर्वज्ञत्व चिह्नकरि सहित, त्रेसठिकर्म प्रकृतिके क्षयजनित गुणनिकरि युक्त अैसे अर्हंत जे सर्वज्ञनाथ तिनहि नमस्कारकरि शील बहुरि गुण हैं, तिनहि भलै प्रकार व्याख्यान करूँगा—अैसा संबंध है ।।१।।

---

१. फलटन से प्रकाशित मूलाचार में शीलगुणाधिकार बारहवाँ है और पर्याप्ति अधिकार ग्यारहवाँ है ।

शीलानां तावदुत्पत्तिक्रममाह—

जोए करणे सण्णा इंदिय भम्मादि समणधम्मे[1] य ।
अण्णोण्णेहिं अभत्था अट्ठारहसीलसहस्साइं ।।२।।

जोए–योग आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः स निमित्तभेदात् त्रिधा भिद्यते काययोगो मनयोगो वाग्योग इति । तद्यथा वीर्यान्तरायक्षयोपशमसद्भावे सत्यौदारिकादिसप्तकायवर्गणान्यतमालंबनापेक्ष आत्मप्रदेशपरिस्पंदः काययोगः, शरीरनामकर्मोदयापादितवाग्वर्णनालम्बने सति वीर्यान्तरायमत्यक्षराद्यावरणक्षयोपशमादि-नाभयन्तरवाग्लब्धिसान्निध्ये वाक्परिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो वाग्योगः, अभ्यन्तरवीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमात्मकमनोलब्धिसन्निधाने बाह्यनिमित्तमनोवर्गणालम्बने सति मनःपरिणामाभिमुखस्यात्मनः प्रदेशपरिस्पन्दो मनोयोगः, कायवाङ् मनसां शुभक्रिया इत्यर्थः । **करणे–**करणानि कायवाङ् मनसामशुभक्रियाः सावद्यकर्मादाननिमित्ताः । **सण्णा–**संज्ञा आहारभयमैथुनपरिग्रहाभिलाषाः । इंदिय—इन्द्रियाणि । **भोम्मादि–**भूः पृथिवी आदिर्येषां ते भ्वादयः पृथिवीकायादयः **समणधंमे य–**श्रमणधर्माश्च संयताचरणविशेषाश्च । **अण्णोण्णेहिं–**अन्योन्यैरन्योन्यं परस्परं । **अब्भत्था–**अभ्यस्ताः समाहताः । त एते योगादयः श्रमणधर्मपर्यन्ताः परस्परं गुणिताः, **अट्ठारह–**अष्टादशशीलसहस्राणि । योगैः करणानि गुणितानि नव भवन्ति, पुनराहारादिसंज्ञाभिश्चतसृभिर्नव

आगैं प्रथमही शीलनिकी उत्पत्ति का क्रम है, ताहि कहै है—

अर्थ–आत्मप्रदेश का परिस्पंद कहिये हलन-चलन क्रिया सो योग है । सो निमित्त भेदतैं तीन प्रकार भेदरूप होय हैं—काययोग, मनोयोग, वचनयोग । सो ही कहिये हैं—वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम का सद्भाव होतैं औदारिकादिक सप्त कायवर्गणादि विषैं काहू का आलंबन की है—अपेक्षा जाकैं, ऐसा आत्मप्रदेश का परिस्पंद सो काययोग है ।

शरीर-नामकर्मोदयकरि आपादित (प्राप्त हुई) ऐसी जो वचनवर्गणा का आलंबन सो होत संतै वीर्यांतराय मति-अक्षरादि आवरण (ज्ञानावरण) के क्षयोपशमादिकरि अभ्यंतर वचनलब्धि का सान्निध्य होत संतै वाक् परिणाम के सन्मुख होय जो आत्मा ताकै प्रदेशनिका परिस्पंद वाग्योग है ।

आभ्यंतर वीर्यान्तराय नोइंद्रियावरण का क्षयोपशम स्वरूप मनोलब्धि का समीप होत संतैं बाह्य निमित्त मनोवर्गणा का आलंवन होत संतैं मनःपरिणाम कैं सन्मुख जो आत्मा ताकै प्रदेशनि का परिस्पंद सो मनोयोग है । काय, वाक्मन इनकी शुभक्रिया ऐसा अर्थ है ।

करणानि कहिये काय, मन, वाक् की अशुभ क्रिया, सावद्य कर्म के ग्रहणकूं निमित्त । संज्ञा कहिये आहार, भय, मैथुन, परिग्रह विषैं अभिलाष। इंद्रिय स्पर्शनादिक, भ्वादयः कहिये भूमि है आदि जिनिकै ऐसे पृथिवी कायिकादय, बहुरि श्रमणधर्मा कहिये संजमी कै आचरण विषैं विशैष, अन्योन्यैः कहिये परस्परकरि, अभ्यस्ताः कहिये गुणे (इन सबका परस्पर गुणा करने पर) यह योगादिक श्रमणधर्म पर्यंत अष्टादश शील सहस्र (अठारह हजार शील के भेद) होय हैं । योगनिकरि करण गुणे (तीन योग को तीन करण से गुणा करने पर) नव होय हैं । बहुरि आहारादि संज्ञा च्यारि तिनकरि नव गुणे (पुनः इन नव को चार संज्ञा से गुणा करने पर) छत्तीस शील होय हैं । बहुरि इन्द्रिय पाँच तिनकरि गुणित छत्तीस एक सौ अस्सी होय हैं । बहुरि पृथिव्यादिक दशकायिनिकरि गुणित (इन्हें पृथ्वी आदि दश से गुणा करने पर) एक

---

१. अ० ब० धम्मो ।

पुढवि–पृथिवी । **दग**–आपो जलं । **अगणि**–अग्निः । **मारुद**–मारुतः वातः । **पत्तेय**–प्रत्येकं एकं जीवं प्रति कारणं शरीरहेतुपुद्गलप्रचयः प्रत्येकमसाधारणम् । **अणंत**–अनन्तः साधारणम् । **काथिया चेव**–कायिकाश्चैव । पृथिवी कायो विद्यते येषां ते पृथिवीकायिकाः, आपः कायो विद्यते येषां ते अप्कायिकाः, तेजः कायो विद्यते येषां ते तेजःकायिकाः, मारुतः कायो विद्यते येषां ते मारुतकायिकाः, प्रत्येकः कायो विद्यते येषां ते प्रत्येककायिकाः पूगफलनालिकेरादयः, अनन्त कायो विद्यते येषां तेऽनन्तकायिका गुडूचीमूलकादयः, चशब्द उक्तसमुच्चयार्थः, एवकारोऽवधारणार्थः । पृथिवीकायिकादयः स्वभेदभिन्ना बादराः सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्चैवेति । **विगतिगचदुंपचेंदिय**–इन्द्रियशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते द्वीन्द्रियाः कृम्यादयः, त्रीन्द्रिया मत्कुणादयः, चतुरिन्द्रिया भ्रमरादयः, पञ्चेन्द्रिया मंडूकादयः । **भोम्मादि**–भूम्यादयः । **हवंति**–भवन्ति । **दस**–दश । **एदे**–एते पृथिवीकायिकादयः पञ्चेन्द्रियपर्यन्ता दशैव भवन्ति नान्य इति ।।४।।

श्रमणधर्मस्य भेदं स्वरूपं च प्रतिपादयन्नाह—

खंती मद्दव अज्जव[1] लाघव तव संजमो अंकिचणदा ।
तह होदि बंभचेर सच्चं चागो य दस धम्मा ।।५।।

खंती–उत्तमक्षमा शरीरस्थितिहेतुमार्गणर्थं परकुलान्युपयत्तीर्थयात्राद्यर्थं वा पर्यटतो यतेर्दुष्टजनाक्रोशोत्प्रहसनावज्ञाताडनभर्त्सनशरीरव्यापादनादीनां सन्निधाने[2] स्वान्ते कालुष्यानुत्पत्तिः क्षान्ति । **मद्दव**–मृदोर्भावो मार्दवं जात्यादिमदावेशादभिमानाभावः । **अज्जव**–ऋजोर्भाव आर्जवं मनोवाक्कायानामवक्रता

(प्रत्येक शरीर ही है जिनका वे प्रत्येक वनस्पतिकायिक हैं, जैसे सुपारीफल, नारियल आदि के वृक्ष) असाधारण है । अनंत सो साधारण है । निश्चय करिये है पृथिवी काय है विद्यमान जिनिकैं तैं पृथिवी कायिक । अपकाय है विद्यमान जिनिकैं ते अप्कायिक है । तेजकाय है विद्यमान जिनिकैं ते तेजःकायिक हैं । मारुत काय है विद्यमान जिनिकैं ते मारुतकायिक हैं । प्रत्येककाय है विद्यमान जिनिकैं ते प्रत्येककाय कहिये सुपारी, नारलेर आदि हैं । अनंतकाय है विद्यमान जिनकै ते अनंतकायिक गिलवै मूला (गुरच, मूली) आदि हैं । इहां 'च' शब्द है सो समुच्चयार्थ है । एवकार है सो अवधारणार्थ कहिये निश्चयार्थ है। पृथिवीकायिकादिक अपने भेदकरि भिन्न-भिन्न वादर, बहुरि सूक्ष्म, पर्याप्त, बहुरि अपर्याप्त अैंसे जाननैं । "वियतियचदुपंचेदिय-" यह गाथा का पद है तिनमैं इद्रिंय शब्द है । सो प्रत्येक संबंधकरणां । कृमि नै आदि दे द्वींद्रिय है, मत्कुण (खटमल) आदि त्रींद्रिय है, भ्रमरादिक चतुरिंद्रिय है,मंडूक जे मीडक (मेढ़क) तिनकूं आदि दे पंचैंद्रिय है। भूम्यादिक यह पृथिवी-कायिक आदि पंचैंद्रिय पर्यंत (अर्थात् पृथिवी-जल-अग्नि-वायुकायिक,प्रत्येकवनस्पति, साधारण वनस्पति, द्वीन्द्रिय, तीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय ये दश ही हैं, अन्य नांही ।।४।।

आगै श्रमणधर्म का भेद बहुरि स्वरूप है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै हैं—

अर्थ–उत्तम क्षमा शरीर की स्थिति कै निमित्त, भिक्षा निमित्त, परघर गमन करते वा तीर्थ यात्रादि निमित्त भ्रमण करते-अैसे जे मुनि ताकै दुष्ट जन कै कुवचन, हास्य, अवज्ञा, ताडन, निरादर, शरीर-परिषह आदि निकट होत्त संतै अपनैं अंतहकरण विषैं कलुषता का अभाव सो क्षांति कहिये ।[3] मृदु का जो भाव से मार्दव कोमलता, जात्यादि मद के कारणतैं अभियान का अभव सो मार्दव कहिये । मन, वचन

---

१. ग० प्रति में अज्जवमछव पाठ है, किन्तु टीका में 'मछव' पाठ है । २. ग० स्वान्तः ।
३. ब प्रति में इसके बाद यह पंक्ति अधिक है—"ऋजु का भाव आर्जव सरलता" ।

लाघव–लघोर्भावो लाघवं अनतिचारत्वं शौचं प्रकर्षप्राप्तौ लोभनिवृत्तिः । **तव**–तपःकर्मक्षयार्थं तप्यन्तेशरीरेन्द्रियाणि तपस्तद्द्वादशविधं पूर्वोक्तमवसेयम्। **संजमो**–संयमो धर्मोपबृंहणार्थं समितिषु वर्तनामस्य प्राणीन्द्रियदयाकषायनिग्रहलक्षणः । **अकिंचणदा**–नास्य किंचनास्त्यकिंचनोऽकिंचनस्य भाव आकिंचन्यमकिंचनता उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ममेदमित्यभिसंबन्धनिवृत्तिः । **तह होदि**–तथा भवति तथा तेनैव प्रकारेण दशब्रह्मपरिहारेण, **बंभचेरं**–ब्रह्मचर्यं अनुज्ञातांगनास्मरणकथाश्रवणस्त्रीसंसक्तशयनादिवर्जनं स्वतन्त्रवृत्तिनिवृत्यर्थो वा गुरुकुलवासो ब्रह्मचर्यम् । **सच्चं**–सत्यं परोपतापादिपरिवर्जितं कर्मादानकारणान्निवृत्तं साधुवचनं सत्यम् । **चागो**–त्यागः संयतस्य योग्यज्ञानादिदानं त्यागः । चशब्दः समुच्चयार्थः । **दस धम्मा**–दशैते धर्मा दशप्रकारोऽयं श्रमणधर्मो व्याख्यात इति ।।५।।

शीलानामुत्पत्तिनिमित्तमक्षसंक्रमेणोच्चारणक्रममाह—

मणगुत्ते मुणिवसहे मणकरणोम्मुक्कसुद्धभावजुदे ।
आहारसण्णविरदे फासिंदियसंपुडे[1] चेव ।।६।।
पुढवीसंजमजुत्ते खंतिगुणसंजुदे पढमसीलं ।
अचलं ठादि विसुद्धे तहेव सेसाणि णेयाणि ।।७।।

काय की वक्रता का अभाव से आर्जव कहिये । ऋजु का भाव सो आर्जव, सरलता । लघु का भाव सो लाघव । अतीचार का अभाव सो लाघव है । सो प्रचुर प्राप्ति होतैं लोभ का आभाव रूप शौच है । कर्मक्षय के निमित्त शरीर, इंद्रिय तपाईये सो तप बारह प्रकार पूर्वोक्त जाननां। धर्म की वृद्धिनिमित्त समिति विषैं प्रवर्तता जो मुनि ताकैं प्राणी की दया, इंद्रियनि का निग्रह है लक्षण जाका सो संयम है । नांही है कछु जाकै सो आकिंचन कहिये । आकिंचन का भाव सो आकिंचनता वा आकिंचन्य है सो कहां ग्रहीत हू, शरीराकि विषैं संस्कार के अभाव अर्थि "यह मेरा"—अैसे अभिप्राय का अभाव सो आकिंचन्यता है । तिस ही प्रकारकरि दश अबह्म के परिहारकरि ब्रह्मचर्य । सो कहा ? परिचित (अनुज्ञात) स्त्री का स्मरण, कथा श्रवण, स्त्री संबंधी शयनादिक-इनका वर्जन वा स्वतंत्रवृत्ति की निवृत्ति कै अर्थि गुरुकुल विषैं वास सो ब्रह्मचर्य है । पर-जीवनि के उपतापादि करि रहित कर्मग्रहण के कारणतैं निर्वृत्य (निवृत्त)—अैसा साधुवचन सो सत्य है। संजमी के जोग्य ज्ञानादिक का दान सो त्याग । 'च' शब्द है—सो समुच्चयार्थ है । यह श्रमणधर्म है सो दश प्रकार कह्या ।।५।।

आगै शीलनिकी उत्पत्ति-निमित्त अक्षसंक्रमकरि उच्चारण का क्रम है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–मनकरि गुप्त सो मनोगुप्त, मनोगुप्त कै वा मनोगुप्त विषैं मुनिनि विषैं प्रधान सो मुनिवृषभ (मुनिश्रेष्ठ), मुनिवृषभ कै वा मुनिवृषभ विषैं मनःकरकणकरि, उन्मुक्त कहिये रहित सो मनःकरणोन्मुक्त कहिये । सो शुद्धभावकरि सहित सो मनःकरणोन्मुक्त शुद्धभावयुक्त कहिये । मनःकरणोन्मुक्त शुद्धभावयुत कैं वा मनःकरणोन्मुक्त शुद्धभावयुत्त विषैं आहारसंज्ञातैं विरक्त सो आहार संज्ञा विरति कहियैं । जिस आहार-संज्ञाविरतकैं वा आहार-संज्ञा विषैं स्पर्शन इंद्रिय है, संवररूप जाकैं सो स्पर्शनैंद्रिय संवृत कहिये । तिस स्पर्शनैंद्रिय संवृतकैं वा स्पर्शनैंद्रिय संवृत विषैं, चैव कहिये निश्चयकरि पृथिवीसंयमकरि युक्त सो पृथिवी संयमयुक्त कहिये । तिस पृथिवी-संयम-युक्त कै वा पृथिवी-संयमयुक्त विषैं क्षांति गुणकरि संयुक्त सो क्षांतिगुण संयुक्त कहिये । क्षांतिगुण संयुक्तकैं वा क्षांतिगुण संयुक्त विषैं-अैसे मुनिवृषभ कैं वा मुनिवृषभ

१. अ० विरहेफासेंदियसंवुडे ।

मणगुत्ते–मनसा गुप्तो मनोगुप्तस्तस्य तस्मिन्वा मनोगुप्तस्य मनोगुप्ते । **मुणिवसहे**–मुनिवृषभस्य मुनिवृषभे वा, **मणकरणोम्मुक्कसुद्ध भावजुदे**–मनःकरणोन्मुक्तशुद्धभावयुतः, मनःकरणन्मुक्तश्चासौ शुद्धभावश्च तेन युतः मनःकरणोन्मुक्तशुद्धभावयुतस्तस्य मनःकरणोन्मुक्तशुद्धभावयुते वा । **आहारसण्णविरदे**–आहारसंज्ञाया विरत आहारसंज्ञाविरतस्तस्य आहारसंज्ञाविरतस्य आहारसंज्ञाविरते वा । **फासिंदियसंपुडे**–स्पर्शेनेन्द्रियं संवृतं यस्यासौ स्पर्शनेन्द्रियसंवृतस्तस्य स्पर्शनेन्द्रियसंवृतस्य स्पर्शनेन्द्रियसंवृते वा । **चेव**–निश्चयेन । **पुढवीसंजमजुत्ते**–पृथिवीसंयमेन युक्तः पृथिवीसंयमयुक्तस्तस्य पृथिवीसंयमयुक्तस्य पृथिवीसंयमयुक्ते वा । **खंतिगुणसंजुदे**–क्षांतिगुणेन संयुक्तः क्षान्तिगुणसंयुक्तस्तस्य क्षान्तिगुणसंयुक्तस्य क्षांतिगुणसंयुक्ते वा । **पढमसीलं**–प्रथमं शीलं तस्येत्थंभूतस्य मुनिवृषभस्येत्थं भूते वा मुनिवृषभे प्रथमं शीलमचलं स्थिररूपं तिष्ठति । शुद्धे चारित्राढ्ये मुनौ शुद्धस्य चारित्राढ्यस्य मुनेर्वेति सम्बन्धः । यतो गुप्तिभिर्गुप्तोऽशुभपरिणामैर्विमुक्तः संज्ञादिभिश्च रहितः संयमादिसहितोऽत एव शुद्धः । **तहेव**–तथैव तनैव प्रकारेण अनेन वा प्रकारेण । **सेसाणि**–शेषाण्यपि द्वितीयादीनि शीलानि । **णेयाणि**–ज्ञातव्यानि । अथवा विशुद्धेषु भंगेषु यावदचलं तिष्ठत्यक्षः, तथा वाग्गुप्ते मुनिवृषभे मनःकरणोन्मुक्तशुद्धभावयुक्ते आहारसंज्ञाविरते स्पर्शनेन्द्रियसंवृते पृथिवीसंयमयुक्ते क्षान्तिगुणसंयुक्ते च शुद्धे मुनौ द्वितीयं शीलं तिष्ठति । तथा कायगुप्ते मुनिवृषभे एवं शेषाण्युच्चारणविधानान्युच्चार्य तृतीयं शीलं व्रतपरिरक्षणमचलं तिष्ठति । विशुद्धे तत आदिं गते अक्षे एवमुच्चारणा कर्त्तव्या । मनोगुप्ते मुनिवृषभे वाक्करणोन्मुक्तशुद्धभावयुते आहारसंज्ञाविरते स्पर्शनेन्द्रिसंवृते पृविवीसंयमयुक्ते क्षान्तिगुणसंयुक्ते च मुनिवृषभे चतुर्थशीलम् । तथा वाग्गुप्ते मुनिवृषभे वाक्करणोन्मुक्तशुद्धभावयुक्ते आहारसंज्ञाविरते स्पर्शनेन्द्रियसंवृते पृथिवीसंयमयुक्ते क्षान्तिगुणसंयुक्ते च मुनिवृषभे पंचमं शीलम् । तथा कायगुप्ते

विषैं प्रथमं शीलं कहिये प्रथमशील है । (यह शील का प्रथम भंग) सो अचलं कहिये स्थिर रूप तिष्ठै है । शुद्धचारित्राढ्य मुनिकै वा शुद्धचारित्राढ्य मुनि विषैं-अैसा संबंधकरणां ।

जातैं गुप्तिनिकरि गुप्त अशुभ परिणामनिकरि रहित, बहुरि संज्ञादिकरि रहित, संयमादिकरि सहित याही तैं शुद्ध है, याही प्रकारकरि विशेष जे द्वितीयादिक शील तेहू जांणणे । अथवा जेतैं विशुद्धभंग होय तेतैं अक्ष अचल तिष्ठै है । द्वितीय भंग वा गुप्त मुनिवृषभ मनःकरणोन्मुक्त शुद्धभावयुत्त, आहारसंज्ञा विरत, स्पर्शनेंद्रिय संवृत, पृथिवीकायसंयमयुक्त, क्षांति गुण युक्त शुद्ध मुनि विषैं द्वितीय-शील तिष्ठै है ।

तैसे ही कायगुप्त मुनिवृषभ विषैं पूर्वोक्त प्रकार शेष हू उच्चारण-विधान कहिये तृतीयशील जो व्रतरक्षण सो अचल तिष्ठे है ।

विशुद्धे कहिये गुप्ति के भेद पूर्ण होतैं ता पीछैं अक्षआदिकूं प्राप्त होतै या प्रकार उच्चारण करणां-मनोगुप्त मुनि-वृषभ वाक्करणोन्मुक्त, शुद्धभाव युक्त, आहारसंज्ञा विरक्त स्पर्शनैंद्रिय संवृत, पृथिवीसंयम युक्त, क्षांतिगुण संयुक्त मुनिवृषभ विषैं चतुर्थ शील तिष्ठै है । ता पीछै वाग्–गुप्त, वाक्–करणोन्मुक्त, आहार-संज्ञा विरत, स्पर्शनैंद्रिय संवृत्त, पृथिवी-संयम युक्त, क्षांतिगुण संयुक्त मुनिवृषभ विषैं पंचम शील तिष्ठै है ।

तैसे ही कायगुप्त, वाक्करणोन्मुक्त शेष जे आहारादिक तिनकूं उच्चारण करि षष्टम शील है, (इसी प्रकार शील के अठारह हजार भंग होते हैं) ताहि कहै हैं—

तीनगुप्ति हैं, तिनहि पंक्ति के आकारकरि स्थापि ताकैं उर्ध्व तीन करणपंक्ति के आकारकरि स्थापणें, ताके ऊपर आहारादि संज्ञा स्थापणैं, ताकै ऊपरि पंचेंद्रिय स्थापणैं । ता उपरि पृथिवी आदि काय स्थापणैं, ता ऊपरि श्रमणधर्म स्थापणैं । या प्रकारि स्थापि पूर्वोक्त क्रमकरि शेष शील उच्चारण करणैं । जेतैं सर्व अक्ष अचल तिष्ठि विशुद्ध होय, तेतैं अष्टादश शील सहस्र आवैं हैं । (अर्थात् जब तक **सर्व अक्ष अचल रहकर विशुद्ध होते हैं तब तक अट्ठारह हजार शील के भेदों का आगमन होता है ।)**

वाक्करणोन्मुक्ते शेषाण्यप्युच्चार्य षष्ठं शीलं ब्रूयात् । तिस्रो गुप्ती: पंक्त्याकारेण व्यवस्थाप्य तत उर्ध्वं त्रीणि करणानि पंक्त्याकारेण स्थापनीयानि तत ऊर्ध्वं आहारादिसंज्ञा: संस्थाप्य तत: पंचेन्द्रियाणि तत: पृथिव्यादय: कायास्ततश्च श्रमणधर्मा: स्थाप्या: । एवं संस्थाप्य पूर्वोक्तक्रमेण शेषाणि शीलानि वक्तव्यानि यावत्सर्वेऽक्षा अचलं स्थित्वा विशुद्धा भवन्ति तावदष्टादशशीलसहस्राण्यागच्छन्तीति । अथवा मनोगुप्ते मुनिवृषभे इत्यादि तावदुच्चार्य यावद्दशप्रकारश्रमणधर्मान्तेऽक्षस्तिष्ठति तदाऽचलं स्थित्वा विशुद्धऽक्षे तत: शेषा अप्यक्षा अनेन क्रमेण तं प्राप्य स्थापयितव्या यावन्मनो गुप्यक्ष: कायगुप्तौ निश्चल: स्थितस्ततोऽष्टादशशीलसहस्राणि मुनिवृषभस्य पूर्णानि भवन्तीति । अथवा मनोगुप्तिं ध्रुवां व्यवस्थाप्य मन:करणादिना सह षट्सहस्राणि शीलान्युत्पाद्य तत: शेषेषु भंगेष्वचलं स्थित्वा विशुद्धेषु मनोगुप्तिर्विशुद्धा भवति तत: पुनर्वाग्गुप्तिं ध्रुवां कृत्वा षट्सहस्राणि शीलानामुत्पादनीयानि तत: सर्वे भंगा अचलं तिष्ठन्ति ततो वाग्गुप्तिर्विशुद्धा भवति तत: कायगुप्तिं ध्रुवां कृत्वा षट्सहस्राणि शीलानामुत्पादनीयानि तत: सर्वे भंगा अचलं तिष्ठन्ति कायगुप्तिश्च विशुद्धा भवति शीलानां चाष्टादशसहस्राणि संपूर्णानि भवन्ति । एवमेकैकं स्थिरं कृत्वा भंगानामुत्पादनक्रमो वेदितव्य इति ।।६-७।।

इदानीं गुणानामुत्पत्तिकारणक्रमं प्रतिपादयन्नाह—

इगिवीस[1] चतुर सदिया दस दस दसगा य आणुपुव्वीय ।
हिंसादिक्कमकायाविराहणालोयणासोही ।।८।।

इगिवीस–एकेनाधिका विंशतिरेकविंशति: । **चदुर**–चत्वार: । **सदिया**–शतं । दश दश दश त्रयोदशानां भेदा: । **आणुपुव्वीय**–आनुपूर्व्या। **हिंसा**–प्रमादत:[2] प्राणव्यपरोपणं हिंसा, अत्रादिशब्दो द्रष्टव्यस्तेन हिंसादय एकविंशतिसंख्या भवन्ति । **अदिक्कम**–अतिक्रमो विषयाणामुपरि समीहा, अत्रापि

अथवा मनोगुप्त मुनिवृषभ इत्यादिक तेतैं उच्चारण करणां, जेतैं दश प्रकार श्रमणधर्म के अंत विषैं अक्ष तिष्ठै । ता पीछैं अचल तिष्ठिकरि अक्ष विशुद्ध होतैं शेषहू अक्ष या क्रमकरिकैं अंतकूं प्राप्त होय स्थापणैं । जेतैं मनोगुप्ति का अक्ष कायगुप्ति विषैं निश्चल स्थित होय । तदि अष्टादश शीलसहस्र मुनिवृषभ कैं पूर्ण होय । अथवा मनोगुप्तिकूं ध्रुव स्थापि मन:करणादिकरि सहित षट्सहस्र शीलन कूं उपजाय शेष भंग अचल तिष्टि विशुद्ध होतैं मनोगुप्ति विशुद्ध होय है । ता पीछै वाग्गुप्तिकूं ध्रुव करि षट्सहस्रशील उपजावणें । तदि सर्व भंग अचल तिष्ठै है ।

बहुरि वाक् गुप्ति विशुद्ध होय है । ता पीछैं कायगुप्तिकूं ध्रुवकरि षट्सहस्र शील उपजावणैं । तब सर्व भंग अचल तिष्ठै हैं, अर कायगुप्ति विशुद्ध होय है । बहुरि शीलनि कै अष्टादश सहस्र (अठारह हजार भेद) संपूर्ण होय हैं । अैसे एक एक भंग स्थिरकरि भंगनिका उपजावणे का क्रम जांनना ।।६-७।।

अब गुणनि की उत्पत्ति का कारण क्रम है, ताहि प्रतिपादन करते संत कहै है—

अर्थ–एककरि अधिक विंशति सो एकविंशति (२१), । चत्वार: कहिये च्यार (४), शतं कहिये सो (१००), दश-दश-दश त्रय: कहिये (१०, १०, १०) दश के भेद अनुक्रम करि तीन प्रमाद थकी प्राण का अभाव करिणां सो हिंसा है । इहां आदि शब्द है सो जानना। उपलक्षणतैं अतिक्रमादिक ४ जाननैं । सर्व जीवसमासतैं काय है । अब्रह्म के कारणतैं विराधना है । आलोचनां इहा 'दोष' शब्द जोड़ना

---

१. अ० ब० इगवीस । २. क० प्रमादवत: ।

आदिशब्दो द्रष्टव्योऽतिक्रमादय उपलक्षणत्वादिति । **काया**–सर्वजीवसमासा: । **विराहणा**–विराधना अब्रह्मकारणानि । **आलोयणा**–आलोचना अत्र दोषशब्दो द्रष्टव्य आलोचनादोषा: साहचर्यात् । **सोही**–शुद्धय: प्रायश्चित्तानि । यथानुक्रमेण हिंसादय एकविंशतिरतिक्रमणादयश्चत्वार: काय: शतभेदा विराधना दश आलोचनादोषा दश शुद्धयो दशेति सम्बन्ध इति ।।८।। के ते हिंसादय इत्याशंकायामाह—

पाणिवह मुसावादं अदत्त मेहुण परिग्गहं चेव ।
कोहमदमायलोहा भय अरदि रदी दुगुंछा य ।।९।।
मणवयणकायमंगुल मिच्छादंसण पमादो य ।
पिसुणत्तणमण्णाणं अणिग्गहो इंदियाणं च ।।१०।।

पाणिवह–प्राणिवध: प्रमादवतो जीवहिंसनम् । **मुसावादं**–मृषावादोऽनालोच्य विरुद्धवचनम् । **अदत्त**–अदत्तं परकीयस्याननुमतस्य ग्रहणाभिलाष: । **मेहुण**–मैथुनं वनितासेवाभिगृद्धि: । **परिग्गहं**–परिग्रह: पापादानोपकरणकांक्षा । **चेव**–चैव तावन्त्येव महाव्रतानीति । **कोह**–क्रोधश्चंडता । **मद**–मदो जात्याद्यवलेप: । माय—माया कौटिल्यम् । **लोह**–लोभो वस्तुप्राप्तौ गृद्धि: । **भय**–भयं त्रस्तता । **अरदि**–अरतिरुद्वेग: अशुभपरिणाम: । **रदी**–रती राग: कुत्सिताभिलाष: । **दुगुंछा**–जुगुप्सा परगुणासहनम् । **मणवयणकायमंगुल**–मंगलं पापादानक्रिया तत्प्रत्येकमभिसम्बध्यते मनोमंगुलं वाङ्मंगुलं कायमगुलं मनोवाक्कायानां पापक्रिया । **मिच्छादंसण**–मिथ्यादर्शनं जिनेन्द्रमतस्याश्रद्धानम् । **पमादो**–प्रमादश्चायत्नाचरणं विकथादिस्वरूपं । **पिसुणत्तणं**–पैशुन्यं परस्यादोषस्य वा सदोषस्य वा दोषोद्भावत्वं पृष्ठमांसभक्षित्वं । **अण्णाणं**–अज्ञानं यथावस्थितस्य वस्तुन विपरीतावबोध: । **अणिग्गहो**–अनिग्रह: स्वेच्छया प्रवृत्ति:, **इंदियाणं**–इन्द्रियाणां चक्षुरादीनामनिग्रहश्चेत्येते एकविंशतिभेदा हिंसादयो द्रष्टव्या इति ।।९-१०।।

साहचर्यतैं आलोचनां दोष । शुद्धि नाम प्रायश्चित का है । यथाक्रमकरि हिंसादिक इकईस (२१), अतिक्रमणादिक च्यार (४), काय शत १०० भेद हैं । विराधना दश (१०), आलोचना दोष दश (१०), शुद्धि कहिये प्रायश्चित्त दश (१०), अैसे सबंध करणां । (इस प्रकार २१×४×१००×१०×१०×१० = ८४,०००००) चौरासी लाख गुण होते हैं ।।८।।

आगै हिंसादिक कितने हैं ? अैसी आशंका होतैं कहै हैं—

अर्थ–१-प्रमादी कै जीव हिंसा सो प्राणिवध । २-बिन विचारै विरुद्ध बचन सो मृषावाद । ३- बिन दीये परकीय वस्तु के ग्रहण विषै अभिलाष सो अदत्त । ४-स्त्री सेवा विषैं: गृद्धि सो मैथुन । ५-पापकारी उपकरण विषै वांछा सो परिग्रह । निश्चयकरि कहै तितनैं पंचमहाव्रत जानने ।

प्रचंडपनां सो क्रोध, जात्यादिक का अभिमान सो मद । कुटिलता सो माया । वस्तु की प्राप्ति विषैं अति वांछा सो लोभ । त्रास सो भय । उद्वेग जो अशुभ परिणाम सो अरति । कुत्सित अभिलाष सो रति । परगुण का नांही सहनां सो जुगुप्सा । पापदान क्रिया सो मंगुल । इहां मंगुल शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां । मनोमंगुल, काय, वाक् मंगुल सो मन-वचन-काय की पापक्रिया है । जिनेन्द्र मत का अश्रद्धान सो मिथ्यादर्शन । विकथादि स्वरूप अयत्नाचार सो प्रमाद । निर्दोष वा सदोष परजीव का दोष प्रगट करणां सो पैशून्य, पीछैतैं चुगली करणां । यथा अवस्थित वस्तु का विपरीत जाननां सो अज्ञान । नेत्रादिकनिकी स्वेच्छाकरि प्रवृत्ति सो इंद्रियनिका अनिग्रह । अैसैं यह हिंसादिक इकवीस भेद जाननें ।।९-१०।।

अतिक्रमणादीनां स्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

अदिकमणं वदिकमणं अदिचारो तहेव अणाचारो ।
एदेहिं चदूहि[1] पुण सावज्जो होइ गुणियव्वो ।।११।।

अदिकमणं–अतिक्रमणं संयतस्य संयतसमूहमध्यस्थस्य विषयाभिकांक्षा । **वदिकरणं–**व्यतिक्रमणं संयतस्य संयतसमूहं त्यक्त्वा विषयोपकरणार्जनम्। **अदिचारो–**अतिचारः व्रतशैथिल्यं ईषदसंयमसेवनं च । **तहेण–**तथैव । **अणाचारो–**अनाचारो व्रतभंगः सर्वथा स्वेच्छाप्रवर्तनम् । एदेहिं—एतैरतिक्रमणादिभिः । **चदूहिं–**चतुर्भिः । **पुणो–**पुनः । **सावज्जो–**सावद्यो हिंसाद्येकविंशति । **होई–**भवति । **गुणियव्वो–**गुणितव्यः संगुणनीयः ततश्चतुर्भिरेकविंशतिर्गुणिता चतुरशीतिर्भवतीति ।।११।।

कायभेदानां स्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

पुढविदगागणिमारुयपत्तेयअणंतकाइया चेव ।
वियतियचदुपंचिंदिय अण्णोण्णवधाय दस गुणिदा ।।१२।।

कायशब्द प्रत्येकभिसंबध्यते । पृथिवीकायिका अप्कायिका अग्निकायिका मारुतकायिकाः प्रत्येककायिका अनन्तकायिकाश्चैव । अत्रापि इन्द्रियशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियः पञ्चेन्द्रियाश्चेति । **अण्णोण्णवधाय–**अन्योन्यव्यथिता शैते पृथिवीकायिकादयः परस्परेणाहताः सन्तः पूर्वोक्तैश्चतुरशीतिविकल्पैर्गुणिताश्चतुरशीतिशतभेदा भवन्ति । चतुरशीतिः शतेन गुणिता यत एतावन्त एव विकल्पा भवन्तीति ।।१२।।

आगै अतिक्रमणादिकनि का स्वरूप है, ताहि प्रतिपादन करते संतैं कहै हैं—

अर्थ–संयत-समूह कै मध्य तिष्ठता जो मुनि ताकैं विषयाभिलाष सो अतिक्रमण है । संयत-समूहकूं तजि संयत जो मुनि ताकै विषयोपकरण का उपार्जन सो व्यतिक्रमण है । व्रत विषैं शिथिलता बहुरि किंचित् असंयम का सेवनां सो अतिचार है । व्रत का भंग सर्वथा स्वेच्छा प्रवर्तनां सो अनाचार है । इन अतिक्रमणादिक च्यारिनि करि बहुरि सावद्य कहिये हिंसादिक इकवीस गुणनां, तदि (अतिक्रमणादिक) च्यारिनि करि (हिंसादिक) इकवीस गुणे (२१×४-८४) चौरासी होय हैं ।।११।।

आगै कायभेदनि का स्वरूप है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै है—

अर्थ–काय शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां । यथा पृथिवीकायिक का, अप्कायिक का, अग्निकायिक का, पवनकायिक का, प्रत्येक-कायिक का, बहुरि अनंतकायिक का द्वि-त्रि, चतुः पंचैंद्रिया-इहां हूं इंद्रिय शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां । द्वीन्द्रिय, त्रीद्रिंय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय-अैसैं परस्पर गुणैं यह पृथिवीकायिकादिक दश । (अर्थात् इन दस को इन्हीं दस से गुणित कर देने से सौ हो जाते हैं । पुनः इन सौ जीवसमासों को पूर्वोक्त चौरासी से गुणित करने पर चौरासी सौ हो जाते हैं ।) सौ भये ते पूर्वोक्त चौरासी भेदनिकरि गुणैं सो चौरासी सौं (८४००) भेद होय हैं ।।१२।।

---

१. अ० ब० चदुहिं ।

अब्रह्मकारणविकल्पान् प्रतिपादयन्नाह—

इत्थीसंसग्गी पणिदरसभोयण गंधमल्लसंठप्पं ।
सयणासणभूसणयं छट्ठं पुण गीयवाइयं चेव ।।१३।।
अत्थस्स संपओगो कुसीलसंसग्गि रायसेवा य ।
रत्ती वि य संयरणं[1] सीलविराहणा भणिया ।।१४।।

इत्थीसंसग्गी–स्त्रीसंसर्गः वनिताभिः सहातीव प्रणयः रागाहतस्य । **पणिदरसभोयण–**प्रणीतरसभोजनं अतीव गृद्ध्या पञ्चेन्द्रियदर्पकराहारग्रहणम्। **गंधमल्लसंठप्पं–**गंध आर्द्रमहिषीयक्षकर्दमादिको माल्यं मालतीचंपकादिकुसुमादिकं ताभ्यां संस्पर्शो गन्धमाल्यंस्पर्शः सुगंधद्रव्यैः सुगंधपुष्पैश्च शरीरसंस्कणम्। **सयणासणं–**शयनं तूलिकादिपर्यंकस्पर्श आसनं मृदुलोहासनादिकं शयनं चासनं च शयनासने मृदुशय्यामृद्वासनगृद्धिः । **भूसणयं–**भूषणानि शरीरमंडनादीनि मुकुटकटकादीनि शरीरशोभा विषयाकांक्षा वा पञ्चैतानि । **छट्ठंपुण–**षष्ठं पुनः । **गीयवाइयं–**गीतं षड्जादिकं वादित्रं ततविततघनसुषिरादिकं करवादनं च, गीतं च वादित्रं च गीतवादित्रं [2]रागादिकांक्षया नृत्तगेयाभिलाषकरणम् । **अत्थस्स संपओगो–**अर्थस्य संप्रयोगः सुवर्णादिद्रव्यसंपर्कः । **कुसीलसंसग्गि–**कुत्सितं शीलं येषां ते कुशीलास्तैः संसर्गः संवासः कुशीलसंसर्गो रागाविष्टजनसंपर्कः । **रायसेवा य–**राजसेवा च विषयार्थिनी राज्ञामुपश्लोकादिकरणम् । **रत्ती वि य संयरणं–**रात्रावपि संचरणं कार्यान्तरेण निशायां पर्यटनम् । **दस–**दश । **सील–**विराहणा—शीलविराधनाः। **भणिदा–**भणिताः प्रतिपादिताः । एते स्त्री दश शीलविराधनाः परमागमे समुक्ताः एतैर्दशविकल्पैः पूर्वोक्तानि चतुरशीतिशतानि गुणितानि चतुरशीतिसहस्त्राणि भवन्तीति ।।१३-१४।।

आगैं अब्रह्म के कारण कैसे विकल्प हैं, तिनहि प्रतिपादन करते संतै कहैं हैं—

अर्थ–१-रागी पुरुष के स्त्रीनिकरि सहित अत्यंत स्नेह सो स्त्री संसर्ग । २-अत्यंत गृद्धिकरि पंच इंद्रियनिकूं मदकारी आहार का ग्रहण सो प्रणीतरस-भोजन । ३-आर्द्रमहिषी कहिये सुगंध विशेष द्रव्य, यक्षकर्दमादिक जो कंकोल, अगर, कस्तूरी, कपूर इन च्यारन का चरण सो यक्षकर्दम है, ताकूं आदि दे जो सुगंध सो सुगंध मालती, चंपक आदि के पुष्पादिक सो माल्य तिनकरि स्पर्श बहुरि सुगंध अर सुगंध पुष्पनिकरि शरीर का संस्कार सो गंधमाल्य संस्पर्श है । ४-तूलिका आदि पल्यंक का स्पर्श, सो शयन, मृदलोहासनादिक सो आसन, शयन बहुरि आसन सो शयनासन, कोमल सेज, कोमल आसन विषैं गृद्धि । ५-मुकुट, कटक आदि शरीर को मंडन वा शरीर शोभा का अभिलाष सो भूषण । इहां पर्यंत पंचभये । ६-बहुरि छठा गीतवादित्र सो कहा ? षड्जादिक गीत, तत, वितत, घन, सुषिरादिक वादित्र बहुरि हाथ का बाजा सो वादित्र । गीत और वादित्र सो गीत वादित्र हैं । रागादिक की वाछांकरि नृत्य-गीत विषैं अभिलाष का करणां । ६-सुवर्णादिक द्रव्य का संबंध सो अर्थ संप्रयोग है । ८-कुत्सित है शील जिनिकैं अैसे जे रागाविष्ट जन तिनिकरि संबंध सो कुशील संसर्ग है । ९-विषयाभिलाषी के राजनि का यश आदि करण्यं सो राजसेवा है । १०-बिना कारण रात्रि विषैं भ्रमण सो रात्रिसंचरण है । यह स्त्री संसर्ग आदिक दश शील विराधना परमागम विषैं कहै । इन दश विकल्पनिकरि पूर्वोक्त चौरासी सै गुणै चौरासी सहस्र (८४०००) होय हैं ।।१३-१४।।

---

१. अ० ब० संचरणं । २. क० रागाकांक्षया ।

आलोचनादोषान् प्रतिपादयन्नाह—

आकंपिय अणुमाणिय जं दिट्ठं वादरं च सुहुमं च ।
छण्णं सद्दाकुलियं बहुजणमव्वत्त तस्सेवी ।।१५।।

आकंपिय–आकम्पितदोष भक्तपानोपकरणादिनाऽऽचार्यमाकम्प्यात्मीयं कृत्वा यो दोषमालोचयति तस्याकंपितदोषो भवति । **अणुमाणिय**–अनुमानितं शरीराहारतुच्छबलदर्शनेन दीनवचनेनाचार्यमनुमान्यात्मनि करुणापरमाचार्यं कृत्वा यो दोषमात्मीयं निवेदयति तस्य द्वितीयोऽनुमानितदोषः । **जं दिट्ठं**–यद् दृष्टं अन्यैर्यदवलोकितं दोषजातं तदालोचयत्यदृष्टमवगूहयति यस्तस्य तृतीयो दृष्टनामाऽऽलोचनादोषः । **बादरं च**–स्थूलं च व्रतेष्वहिंसादिकेषु य उत्पद्यते दोषस्तमालोचयति सूक्ष्म नालोचयति यस्तस्य चतुर्थो बादरनामालोचनादोषः स्यात् । **सुहुमं च**–सूक्ष्मं च सार्द्रहस्तपरामर्शादिकं सूक्ष्मदोषं प्रतिपादयति महाव्रतादिभंगं स्थूलं तु नाचष्टे यस्तस्य पंचमं सूक्ष्मं नामालोचनदोषजातं भवेत् । **छण्णं**–प्रच्छन्नं व्याजेन दोषकथनं कृत्वा स्वतः प्रायश्चित्तं य करोति तस्य षष्ठं प्रच्छन्नं नामालोचनदोषजातं भवति । **सद्दाकुलियं**–शब्दाकुलितं पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकादिप्रतिक्रमणकाले बहुजनशब्दसमाकुले आत्मीयापराधं निवेदयति तस्य सप्तमं शब्दाकुलं नामालोचनादोषजातम् । **बहुजणं**–बहुजनं एकस्मै आचार्यायात्मदोषनिवेदनं कृत्वा प्रायश्चित्तं प्रगृह्य पुनरश्रद्धानोऽपरस्मै आचार्याय निवेदयति यस्तस्य बहुजनं नामाष्टममालोचनादोषजातं स्यात् । **अव्वत्त**–अव्यक्तः प्रायश्चित्ताद्यकुलो यस्तस्यामीयं दोषं कथयति यो लघुप्रायश्चित्तनिमित्तं तस्याव्यक्तनाम नवममालोच्नादोषजातं भवेत् । **तस्सेवी**–तत्सेवी य आत्मना दोषैः सम्पूर्णस्तस्य यो महाप्रायश्चित्तभयादात्मीयं दोषं प्रकटयति तस्य तत्सेवी नामा दशम आलोचनादोषो भवेत् । एवमेतैर्दशभिश्चतुरशीतिसहस्राणिगुणितान्यष्टलक्षाभ्यधिकानि चत्वारिंशत्सहस्राणि भवन्तीति।।१५।।

आगै आलोचना दोष हैं, तिनहि प्रतिपादन करते संतै कहै हैं—

अर्थ–१-भक्तपान उपकरणादिकरि आचार्यकूं आपका करि जो दोष है, ताहि कहै, ताकै आकंपित दोष होय है । २-शरीर, आहार का तुच्छ बल दिखावे करि वा दीनवचनकरि आचार्यकूं अपणैं अर्थिकरूणा विषैं तत्परकरि जो अपनैं दोष कूं छिपावै ताते द्वितीय अनुमानित नाम दोष होय है । ३-जो दोषसमूह अन्यकरि देख्या तिसहि कहैं, अदृष्ट दोष कूं छिपावें ताकै तृतीय अदृष्ट (दृष्ट) नाम दोष होय है । ४-बादर कहिये स्थूलव्रत जे अहिंसादिक तिन विषैं, जो दोष उपजै ताहि कहै, सूक्ष्मदोष कूं नांही कहै ताकै चतुर्थ वादरनाम आलोचना दोष उत्पन्न होय है । ५-बहुरि सूक्ष्म कहिये आर्द्रहस्त का परामर्श आदि सूक्ष्म दोष कूं कहै बहुरि स्थूल जो महाव्रतादिकनि का भंग, ताहि जो नांही कहै ताकै पांचमां सूक्ष्म नाम आलोचना दोष उत्पन्न होय है । ६-कपटकरि दोष कहि जो स्वतै प्रायश्चित करै ताकै छट्ठा प्रछन्न (छन्न) नाम आलोचना-दोष उपजै है । ७-बहुत मनुष्यनि के शब्दकरि व्याप्त अैसे पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिकादि प्रतिक्रमण-काल विषैं जो अपनैं अपराधकूं कहै ताकै सातवां शब्दाकुल नाम आलोचना दोष उत्पन्न होय है । ८-एक आचार्यकै अर्थि अपनां दोष निवेदनकरि प्रायश्चित ग्रहणकरि बहुरि श्रद्धान नांही करता अन्य आचार्य कै अर्थि जो निवेदन करै ताकै आठवां बहुजन नाम आलोचना दोष उपजै है । ९-जो प्रायश्चित्तादिक विषैं अकुशल कहिये अप्रवीण ताकूं लघुप्रायश्चित निमित्त जो अपना दोष कहै ताकै अव्यक्त नाम नवम दोष उपजै है । १०-जैसें आप दोषनिकरि पूर्ण हैं, तैसे जो अन्य दोषनि करि पूर्ण होय ताकूं महाप्रायश्चित्त के भयतैं अपनां दोष प्रकाशै ताकै तत्सेवी नाम दशमा आलोचना दोष होय है । या प्रकार नि दशनिकरि चौरासी सहस्र गुणैं अष्टलक्ष चालीस सहस्र (८४००००) होय हैं ।।१५।।

आलोचनादिप्रायश्चित्तानां स्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

आलोयण पडिकमणं उभय विवेगो तथा विउस्सग्गो ।
तव छेदो मूलं पि य परिहारो चेव सद्दहणा ।।१६।।

आलोयण–आलोचनं दशदोषविवर्जितं गुरवे प्रमादनिवेदनमालोचनं । **पडिकमणं–**प्रतिक्रमणं व्रतातीचारनिर्हरणं । **उभय–**उभयं आलोचनप्रतिक्रमणे संसर्गदोषे सति विशोधनात्तदुभयम् । **विवेगो–**विवेक: संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेक: । **तथा–**तथा । **विउस्सग्गो–**व्युत्सर्ग: कायोत्सर्गादिकरणं। **तव–**तप: अनशनावमौदर्यादिलक्षणम् । **छेदो–**छेद: दिवसमासादिना प्रवज्याहापनम् । **मूलं–**पुनर्दीक्षाप्रापणम् । **पि य–**अपि च । **परिहार चेव–**परिहारश्चैव पक्षमासादिविभागेन दूरत: परिविर्जनं परिहार: । **सद्दहणा–**श्रद्धानं सावद्यगतस्य मनस: मिथ्यादुष्कृताभिव्यक्तिर्निवर्त्तनं, एते दश विकल्पा विपरीतदोषा भवन्ति। एतै: पूर्वोक्तानि अष्टलक्षाभ्यधिकचत्वारिंशत्सहस्राणि गुणितानि चतुरशीतिलक्षसावद्यविकल्पा भवन्ति तद्विपरीतास्तावन्त एव गुणा भवन्तीति ।।१६।।

गुणोत्पादनक्रममाह—

पाणादिवादविरदे, अदिकमणदोसकरणउम्मुक्के ।
पुढवीए पुढवीपुण[1] रारंभसुसंजदे धीरे ।।१७।।
इत्थीसंसग्गविजुदे आकंपियदोसकरणउम्मुक्के ।
आलोयणसोधिजुदे आदिगुणो सेसया णेया ।।१८।।

पाणादिवादविरदे–पाणातिपातो हिंसा तस्मात्प्राणातिपाताद्विरत उपरतस्तस्य तस्मिन्वा प्राणातिपातविरतस्य प्राणातिपातविरते वा ।

आगै आलोचनादि प्रायश्चितनि का स्वरूप है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै है—

अर्थ–१-दस दोष रहित गुरुकैं अर्थि प्रमाद का निवेदन सो आलोचन है । २-व्रतनि के अतीचारनि का निराकरण सो प्रतिक्रमण। ३-संसर्ग दोष होत संतै जो आलोचन प्रतिक्रमण सो उभय है । ४-मिश्रित अन्नपान उपकरणादिक का जुदा करनां सो विवेक है । ५-तैसैं कायोत्सर्गदिक का करणां सो व्युत्सर्ग है । ६-अनशन अवमौदर्यादि है लक्षण जाका सो तप है । ७-दिवस, मासादिकरि दीक्षा का घटानां सो छेद है । ८-बहुरि (पुन:) दीक्षा का ग्रहण सो मूल है । ९-बहुरि पक्ष, मासादिक के विभागकरि दूर त्यजना से परिहार है । १०-सावद्यकूं प्राप्त भया जो मन ताका मिथ्या दृष्टान्त अैसे वचनकरि प्रगट भया जो निराकरण सो श्रद्धान है ।

यह दश भेद विपरीत भये दोष होय हैं । इन दश भेदनिकरि पूर्वोक्त अष्टलक्ष चालीस सहस्र गुणैं चौरासी लाख सावद्य के भेद होय हैं । तिन दोषनितैं विपरीत तितनैं ही गुण होय हैं ।।१६।।

आगैं गुण-उपजाने का क्रम है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–प्राणातिपात जो हिंसा तातैं विरत कहिये निवृत्त तिस प्राणातिपात विरतकैं वा तिस प्राणातिपात विरत विषैं अतिक्रमण सो ही भया दोष ताका करणां तिसकरि उन्मुक्त कहिये रहित, तिस अतिक्रमण दोष करणोन्मुक्त कै वा तिस अतिक्रमण दोष करणोन्मुक्त विषै

---

१. अ० ब० क० आरम्भ ।

अदिकमणदोसकरणउम्मुक्के–अतिक्रमणमेव दोषस्तस्य करणं अतिक्रमणदोषकरणं तेनोन्मुक्तः परित्यक्तस्तस्य तस्मिन्वाऽतिक्रमणदोषकरणोन्मुक्ते वा । **पुढवीए पढवी पुण आरंभसुसंजदे धीरे**–पृथिव्याः पृथिवीकायिकैः पृथिव्याः पृथिवीकायिकानां पुनरारम्भो विराधनं तस्मिन् सुसंयतो यत्नपरस्तस्य तस्मिन्वा पृथिव्या पृथिवीपुनरारंभसुसंयतस्य पृथिवीकायिकैः पृथिवीकायिकानां योऽयं पुनरारंभस्तस्मिन् सुसंयते वा धीरे धीरस्य वा साधोः । **इत्थीसंसग्गविजुदे**–स्त्रीसंसर्गवियुक्ते[1] स्त्रीजनसंसर्गविमुक्तस्य वा । **आकंपियदोसकरणउम्मुक्के**–आकम्पितदोषस्य यत्करणं तेनोन्मुक्तस्योन्मुक्ते वा । **आलोयणसोधिजुदे**–आलोचनशुद्धियुक्ते आलोचनशुद्धियुक्तस्य वा, **आदिगुणो**–आदिगुणः प्रथमोगुणः संजातः । एवं, **सेसया**—शेषाश्च गुणाः । **णेया**–ज्ञातव्या उत्पादनीया इति । हिंसाद्येकविंशतिं संस्थाप्य तत ऊर्ध्वं अतिक्रमणादयश्चत्वारः संस्थापनीयाः पुनस्तत ऊर्ध्वं पृथिव्यादिशतं स्थापनीयं तत ऊर्ध्वं दस विराधनाः स्त्रीसंसर्गादयो व्यवस्थाप्यास्तत उर्ध्वं आकंपितादयो दश दोषाः स्थापनीयाः पुनस्तत ऊर्ध्वं आलोचनादयो दश शुद्धयः स्थापनीयास्तत एवमुच्चारणं कर्त्तव्यं—धीरे मुनौ प्राणातिपातविरते पुनरप्यतिक्रमणदोषकरणोन्मुक्ते पुनरपि पृथिव्या पृथिवीपुनरारंभसुसंयते पुनरपि स्त्रीसंसर्गवियुक्ते पुनरप्याकंपितदोषकरणोन्मुक्ते पुनरप्यालोचनशुद्धियुक्ते आदिगुणो भवति । ततो मृषावादविरतेऽतिक्रमणदोषकरणोन्मुक्ते पुरप्यालोचनशुद्धियुक्ते आदिगुणो भवति । ततो मृषावादविरतेऽतिक्रमणदोषकरणन्मुक्ते एवं शेषाणामप्युच्चार्य वाच्यो द्वितीयगुणस्ततोऽदत्तादान विरचित्ते, (विरहिते) एवं शेषेष्वप्युच्चारितेषु तृतीयो गुणाः, एवं तावदुच्चार्य यावच्चतुरशीतिलक्षा गुणानां संपूर्णा उत्पन्ना भवन्तीति ।।१७-१८।।

पृथिव्या कहिये पृथिवी कायिकनि करि, पृथिव्याः कहिये पृथिवीकायिकनि को पुनः आरंभ जो विराधन-पीडा ता विषैं, सुसंयत कहिये जतनवान तिस पृथिव्या पृथिवी पुनःआरम्भ सुसंयत कै वा पृथिव्या पृथिवी पुनरारंभ सुसंयत विषैं धीर अैसे साधु कै वा धीर अैसे साधु कै विषैं स्त्री-संसर्गतैं वियुक्त कहिये रहित तिस स्त्रीसंसर्ग वियुक्त कै वा तिस स्त्रीसंसर्ग वियुक्त विषैं आकंपित दोष का करणां तिसकरि उन्मुक्त कहिये रहित तिस आकंपित दोष करणोन्मुक्त कै वा तिस आकंपित दोष करणोन्मुक्त विषैं आलोचन की जो शुद्धि तिसकरि युक्त तिस आलोचना शुद्धि युक्त कैं वा आलोचन शुद्धि युक्त विषैं आदिगुण जो प्रथमगुण सो उपजै है, अैसे ही शेषगुण हैं, ते ज्ञेया कहिये उपजावणे । हिंसादिक इकबीस स्थापिता ऊपरि अतिक्रमणादिक च्यारि स्थापणें । बहुरि तिस उपरि पृथिव्यादिक का शत स्थापिणो । या ऊपरि स्त्रा संसग्गादिक दश विराधना स्थापणै । या ऊपरि आकंपितादिक दश दोष स्थापणैं, बहुरि ता ऊपरि आलोचनादिक दश शुद्धि स्थापणीं । ता पीछैं अैसे उच्चारण करणां—धीर मुनि प्राणातिपात विरत, बहुरि हू अतिक्रमण दोष करणोन्मुक्त, बहुरि हू पृथिव्या पृथिवी पुनरारंभ सुसंयक्त, बहुरि हू स्त्री संसर्ग वियुक्त, बहुरि हू आकंपित दोष करणोन्मुक्त, बहुरि हू आलोचन शुद्धि युक्त तिस विषैं आदिगुण जो प्रथम गुण सो होय हैं ।

ता पीछैं मृषावाद विरत अतिक्रमण दोष करणोन्मुक्त अैसैं पृथिव्या पृथिवी पुनरारंभ सुसंयत इत्यादिक उच्चारण करि द्वितीय गुण कहणां । ता पीछैं अदत्तादान विरत अैसैं शेष जे अतिक्रमण आदिभंग ते उच्चारण कीये तृतीय गुण होय हैं । या प्रकार तेतैं उच्चारण करणा जेतै चौरासी लाख गुण संपूर्ण उपजै ।।१७-१८।।

---

१. क० स्त्रीजनसंपर्कविप्रमुक्तस्य ।

शीलानां गुणानां च पंच विकल्पान् प्रतिपादयन्नाह—

सीलगुणाणं संखा पत्थारो अक्खसंकमो चेव ।
णट्ठं तह उद्दिट्ठं पंच वि वत्थूणि णेयाणि ।।१९।।

सीलगुणाणं[1]**–**शीलगुणानां । **संखा–**संख्या प्रमाणम् । शीलानां गुणानां च, **पत्थारो–**प्रस्तार: । शीलानां गुणानां च, **अक्खसंकमो–**अक्षसंक्रमश्चैव । तथा शीलानां गुणानां च , **णट्ठं–**नष्टता । **उद्दिट्ठं–**उद्दिष्टता च, उच्चारणा दृष्टा अक्षा नष्टास्तेषामक्षाणामुच्चारणावशेनोत्पादनं नष्टमित्युच्यते, अक्षा दृष्टा उच्चारणा नष्टा अक्षवशेन तासामुद्दिष्टमित्युच्यते । **पंच वि वत्थूणि णेयाणि–**एवं पंचापि वस्तूनि ज्ञातव्यानि भवन्ति । एवं शीलानां गुणानां च पंच विकल्पा ज्ञातव्या भवन्तीति ।।१९।।

संख्यानयनाय तावदाह—

सव्वेपि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु ।
मेलंतेत्तिय[2] **कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा ।।२०।।**

शीलानां गुणानां च सर्वानपि पूर्वभंगान् पूर्वविकल्पानुपरिभंगेषु उपरिस्थितविकल्पेषु मेलयित्वा एकमेकं क्रमशो गुणयित्वा वा संख्या समुत्पादनीया। अथवा सर्वेषु पूर्वभंगेषु उपरिभंगेषु च पृथक् पृथक् मिलितेषु संख्योत्पद्यते, अथवा सर्वेषु पूर्वभंगेषु उपरिभंगेषु च परस्परं गुणितेषु संख्योत्पद्यते । एकविंशतिश्चतुर्भिर्गुणनीया पुन: शतेन पुनरपि दशभि: पुनरपि दशभि: पुनरपि दशभिर्गुणिते च चतुरशीतिलक्षा गुणा उत्पद्यंत इति । एवं शीलानामपि द्रष्टव्यमिति।।२०।।

आगै शीलनिके बहुरि गुणनि के पंचभेद हैं, तिनहि प्रतिपादन करते आचार्य कहै हैं—

अर्थ–शील बहुरि गुण इनकी संख्या कहिये प्रमाण, बहुरि शील अर गुणनिका प्रस्ताव बहुरि शील अर गुणनिका अक्ष संक्रम तैसै शील अर गुणनि का नष्ट कहिये नष्टता, उद्दिष्टं कहिये उद्दिष्टता उच्चारण दृष्ट होय, अक्ष नष्ट होय तिस अक्षनि का उच्चारण के वशकरि उपजावणां सो नष्ट—या प्रकार कहिये हैं । अक्ष दृष्ट होय, उच्चारण नष्ट होय, अक्ष वशकरि तिस उच्चारणा का उपजावणा सो उद्दिष्ट—या प्रकार कहिये है । अैसे पंचहु वस्तु जानने । अैसे शीलनि के, बहुरि गुणनि के पंच विकल्प जाननें ।।१९।।

आगै संख्या ल्यावे अर्थि प्रथम ही कहै हैं—

अर्थ–शीलनि के बहुरि गुणनि के सर्वहू पूर्वभंग हैं, तिनहि उपरिम भंग जे उपरि तिष्ठते भंग तिन विषैं मिलाय अनुक्रमतैं एक-एक गुणि संख्या उपजावणी अथवा पूर्वभंग उपरिम भंग भिन्न-भिन्न मिलाये संतै संख्या उपजै है । अथवा सर्व पूर्व भंग उपरिम भंग परस्पर क्रमतैं गुणै संतैं संख्या उपजै है । इकबीस च्यारिकरि गुणने, बहुरि शतकरि, बहुरि हू दशकरि, बहुरि हू दशकरि, बहुरि हू दशकरि गुणैं चौरासी लाख गुण उपजै हैं । अैसे ही शील का व्याख्यान जांणना ।।२०।।

१. क० शीलानां गुणानां च । २. अ० ब० मेलंतित्तिया ।

प्रस्तारस्योत्पादनार्थमाह—

पढमं सीलपमाणं कमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च ।
पिंडं पडि एक्केक्कं णिक्खित्ते होइ पत्थारो ।।२१।।

पढमं–प्रथमं मनोवाक्कायत्रिकं । **सीलपमाणं–**शीलप्रमाणं अष्टादशशीलसहस्रमात्रम् । **कमेण–**क्रमेण । **णिक्खिविय–**निक्षिप्य प्रस्तीर्य मनोवाक्काय मनोवाक्काय इत्येवं तावदेकैकं निक्षेपणीयं यावदष्टादशसहस्राणि पूर्णानि भवन्ति । **ततः उवरिमाणं च–**उपरिस्थितानां च करणादीनामष्टादशसहस्रमात्रो निक्षेपः कर्त्तव्यस्तद्यथा—अष्टादशसहस्रमात्राणां योगानां निक्षिप्तानामुपरि मनःकरणं मनःकरणं मनःकरणं वाक्करणं वाक्करणं वाक्करणं कायकरणं कायकरणं कायकरणं एवमेकैकं त्रीन् त्रीन् वारान् कृत्वा तावत्प्रस्तरणीयं यावदष्टादशसहस्राणिपूर्णानि । तत उपरि आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञाः पृथक् पृथक् एकैका संज्ञा नव नववारान् कृत्वा तावत्प्रस्तरणीयं यावदष्टादशसहस्राणि[1] पूर्णानि । तत उपरि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणि पञ्चैकैकं षट्त्रिंशद्वारान् षट्त्रिंशद्वारान् कृत्वा तावत्प्रस्तरणीयं यावदष्टादशसस्राणि सम्पूर्णानि भवन्ति । तत उपरि पृथिवीकायिकाप्कायिकवायुकायिकप्रत्येककायिकानन्तकायिकद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रिया दशैकैकमशीतिशतवरमशीतिशतवारं कृत्वा तावत्प्रस्तरणीयं यावदष्टादशसहस्राणि पूर्णानि भवन्ति । तत उपरि क्षान्तिमार्दवार्जवलाघवतपःसंयमाकिंचन्यब्रह्मचर्यसत्यत्यागा दशैकैकं अष्टादशशतान्यष्टादशशतानि कृत्वा तावत्प्रस्तरणीयं यावदष्टादशसहस्राणि पूर्णानि

आगै प्रस्तार के उपजावे निमित्त कहै है—

अर्थ–प्रथम जो मन, वचन, काय का त्रिक, ताहि शीलप्रमाणं कहिये अष्टादश शील सहस्र मात्र क्रमकरि, निक्षिप्य कहिये विस्तारिये। सो कैंसे ? मन, वचन, काय—या प्रकार प्रथम ही तेतैं एक-एक निक्षेपण करणैं, जेतैं अष्टादश सहस्र पूरे होय । ता पीछैं उपरि तिष्ठते जे करणादि तिनका अष्टादश-सहस्र मात्र निक्षेप करणां, सो ही कहै है । अष्टादश सहस्र मात्र निक्षेप कीये जे योग तिनकै उपरि मनःकरण, मनःकरण, मनःकरण, वाक्करण, वाक्करण, वाक्करण, कायकरण, कायकरण कायकरण—अैसें एक-एक कूं तीन बार तेतैं निक्षेप करणां जेतैं अष्टादश सहस्र संपूर्ण होय । ता ऊपरि आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा कूं भिन्न-भिन्न एक-एक कूं नव बार-नव बार करि तेतैं प्रस्तार करणैं जेतैं अष्टादश सहस्र संपूर्ण होय । ता ऊपरि स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत-पंचेन्द्रियनि कों एक-एक कों छत्तीस-छत्तीस बार करि तेतैं प्रस्तार करनां जेतैं अष्टादशसहस्र सम्पूर्ण होय । ता उपरि पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, प्रत्येक-कायिक, अनंतकायिक, द्वींद्रिय, तेन्द्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचैंद्रिय—यह दश एक-एक सौ अस्सी बार करि तेतैं प्रस्तार करणां जेतैं अष्टादश सहस्र पूर्ण होय । ता ऊपरि उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, लाघव, तप, संयम, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य, सत्य, त्याग—यह दश एक-एक अठारह सौ अठारह सौ करि तेतैं प्रस्तार करणां जेतैं अष्टादश सहस्रकरि पूर्ण होय । तदि अैसें पिंड प्रति एक-एक निक्षेपण कीये समप्रस्तार होय है ।

मन, वचन, काय-यह एक पिंड है । यह तीन करण अन्य पिंड होय है । ऐसै संज्ञा नव-नव होय अन्य पिंड होय है । तैसे इंद्रिय-छत्तीस-छत्तीस होय अन्य पिंड होय है । तैंसे पृथिव्यादिक दश—एक सौ अस्सी-एक सौ अस्सी बार होय अन्य पिंड होय है । तैंसैं उत्तम क्षमादिक दश अठारह सै-अठारह सै होय अन्य पिंड होय है । अैसे पिंड प्रतिपिंड प्रति एक-एक निक्षेप कीये सम प्रस्तार होय है। (इस प्रकार यह अठारह हजार भेद रूप शील का प्रस्तार हुआ । अब आगे गुणों का प्रस्तार कहते हैं—)

---

१. सम्पूर्णानि भवन्ति ।

भवन्ति । तत एवं पिडं प्रति एकैके निक्षिप्ते सम:प्रस्तारो भवति। मनोवाक्काय एक: पिण्ड: त्रीणि करणान्यपर: पिंडस्त्रिकभावेन तथा संज्ञा नव नव भूत्वा पर: पिण्ड: तथेन्द्रियाणि षट्त्रिंशद्भूत्वा पर: पिण्डस्तथा पृथिव्यादयो दश अशीतिशतानि कृत्वा पर: पिण्डस्तथा क्षान्त्यादयो दशाष्टादशशतान्यष्टादशशतानि भूत्वा पर: पिण्ड:, एवं पिण्डं प्रति पिण्डं प्रति एकैके निक्षिप्ते समप्रस्तारो भवति इति । तथा प्राणातिपाताद्येकविंशति: पुन: पुनस्तावत् स्थाप्या यावच्चतुरशीतिलक्षप्रमाणं पूर्णं भवति, तत उपर्यतिक्रमव्यतिक्रमातीचारानाचारा: प्रत्येकमेकविंशतिप्रमाणं कृत्वा तावत्प्रस्तरणीयं यावच्चतुरशीतिलक्षप्रमाणं सम्पूर्णं स्यात्, तत उपरि पृथिव्यादिविराधनाविकल्प: शतमात्र: प्रत्येकं चतुरशीतिप्रमाणं कृत्वा तावत् स्थाप्या यावच्चतुरशीतिलक्षमात्रं, तत उपरि स्त्रीसंसर्गादिविराधना दश प्रत्येकं चतुरशीतिशतानि चतुरशीतिशतानि कृत्वा तावत्प्रस्तरणीयं यावच्चतुरशीतिलक्षप्रमाणं सम्पूर्णं, चतुरशीतिसहस्राणि तत उपरि आकम्पितादयो दोषा दश प्रत्येकं चतुरशीतिस्राणि कृत्वा तावत्प्रस्तरणीयं यावच्चतुरशीतिलक्षमात्रं स्यात्तत उपरि आलोचनादिशुद्धयो दश प्रत्येकमष्टलक्षाधिकचत्वारिंशत्सहस्राणि अष्ट लक्षाधिकचत्वारिंशत्सहस्राणि कृत्वा तावत्प्रस्तरणीयं यावच्चतुरशीतिलक्षमात्रं सम्पूर्ण: स्यात्ततश्चतुरशीतिलक्षगुणगमननिमित्त: सम: प्रस्तार: स्यादिति ।।२१।।

एवं समप्रस्तारं निरूप्य विषमप्रस्तारस्य स्वरूपं निरूपयन्नाह—

णिक्खित्तु विदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि विदियमेक्केक्कं ।
पिंडं पडि णिक्खित्ते तहेव सेसावि कादव्वा ।।२२।।

णिक्खित्तु–निक्षिप्य प्रस्तीर्य, विदियमेत्तं—द्वितीयमात्रं, **पढमं–**प्रथमं मनोवाक्कायत्रिकं द्वितीयं त्रिकमात्रं त्रीन् वारान् संस्थाप्यततस्तस्योपरितस्मादूर्ध्वं, **विदियं–**द्वितीयं करणत्रिकं एकैकं प्रत्येकं द्वितीयप्रमाणं त्रीन् वारान् कृत्वा तावत् स्थाप्यं यावत्प्रथमप्रस्तारप्रमाणं भवति तत एतत्सर्वं प्रथमं भवति, संज्ञाचतुष्कं

तैसें प्राणातिपातादिक इकवीस पुन:पुन: तेतैं स्थापणैं जैतैं चौरासी लक्ष प्रमाण संपूर्ण होय । ता ऊपरि अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतीचार, अनाचार-यह एक-एक इकवीस-इकवीस प्रमाणकरि तेतैं प्रस्तार करणां जेतैं चौरासी लाख गुणनि को प्रमाण संपूर्ण होय । ता ऊपरि पृथिव्यादिक विराधना का भेद सौ (१००) मात्र एक-एक प्रति चौरासी प्रमाण-चौरासी प्रमाणकरि तेतैं स्थापणां जेतैं चौरासी लक्ष मात्र संपूर्ण होय । ता ऊपरि स्त्री संसर्गादिक विराधना दश एक-एक प्रति चौरासी सै-चौरासी सै करि तेतैं प्रस्तार करणां जेतैं चौरासी लक्ष (८४०००००) प्रमाण संपूर्ण होय । ता ऊपरि आकंपितादि दश दोष एक-एक प्रति चौरासी सहस्र-चौरासी सहस्र करि तेतैं प्रस्तार करणां जेतैं चौरासी लक्ष संपूर्ण होय । ता उपरि आलोचनादि शुद्धि दश प्रत्येक आठ लक्ष चारीस सहस्र आठ लक्ष चालीस सहस्र करि तेतैं प्रस्तार करणां जेतैं चौरासी लाख संपूर्ण होय । तदि चौरासी लाख गुणनि का ल्यावें कूं निमित्त अैसा समप्रस्तार होय है ।।२१।।

अैसे समप्रस्तार कहि विषमप्रस्तार का स्वरूप निरूपण करते कहै हैं—

अर्थ–प्रथम जो मन-वचन-काय का त्रिक्, ताहि द्वितीय मात्र तीन बार स्थापि ताकै उपरि दूसरा करणत्रिक् एक-एक द्वितीय प्रमाण तीन बार करि तेतैं स्थापणैं जेतैं प्रथम प्रस्तार का प्रमाण होय, तव यह समस्त प्रथम पिंड होय । (ऐसा करने से प्रथम प्रस्तार का प्रमाण होता है ।) संज्ञा चतुष्क है सो द्वितीय पिंड होय है । संज्ञा-मात्र प्रथमकूं स्थाप्य कहिये-नव प्रमाण मन-वचन-काय का प्रथम पिंड होय है। ताहि चार की संज्ञा मात्र स्थापि ता उपरि एक-एक संज्ञा नव बार स्थापि ता पीछैं यह समस्त प्रथम पिंड होय है । पंचेंद्रिय है ते द्वितीय पिंड होय है । अैसें प्रथम पिंड जो छत्तीस प्रमाण ताहि पंच वार स्थापि ताकैं ऊपरि एक-एक इंद्रिय छत्तीस-छत्तीस प्रमाण स्थापणैं । ता

द्वितीयं भवति । संज्ञामात्रं प्रथमं संस्थाप्य मनोवचनकायपिंडं नवप्रमाणं चतु:संख्यामात्रं संस्थाप्य तस्योपरि एकैका संज्ञा नवनववारान् संस्थाप्य तत एतत्सर्वं प्रथमपिण्डो भवति, पञ्चेन्द्रियाणि द्वितीयपिण्डो भवति, एवं प्रथमपिण्डं षट्त्रिंशत्प्रमाणं पंचवारान् संस्थाप्य तस्योपर्येकैकमिन्द्रियं षट्त्रिंशत्प्रमाणं स्थापनीयं तत एत्त्सर्वं प्रथम: पिण्ड: स्यात् । भूम्यादयो दश द्वितीय: पिण्ड: प्रथमपिण्डम् अशीतिशतप्रमाणं दशवारान् संस्थाप्य तस्योपरिपृथिव्यादिकमेकैकम् अशीतिशतवारम् अशीतिशतवारं संस्थापनीयं तत एतत्सर्वं प्रथम: पिण्ड:, क्षान्त्यादयो दश द्वितीय: पिण्ड:, एवं प्रथमपिण्डम् अष्टादशशतमात्रं दशसु स्थानेषु संस्थाप्य तस्योपरि क्षान्त्यादिकमेकैकम् अष्टादशशतवारम् अष्टादशशतवारं कृत्वा संस्थापनीयं ततो विषम: प्रस्तार: सम्पूर्ण: स्यात्पिण्डं प्रति निक्षिप्ते सत्येवं तथैव विशेषा अपि विकल्पा: कर्त्तव्या: । गुणप्रस्तारोऽपि विषमोऽनेनैव प्रकारेण साध्यत इति[१] ।।२२।।

अक्षसंक्रमस्वरूपेण शीलगुणान् प्रतिपादयन्नाह—

पढमक्खे अंतगदे आदिगदे संकमेदि विदियक्खो ।
दोण्णिवि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो ।।२३।।

गुप्तिकरणसंज्ञेन्द्रियकायधर्मानुपर्युपरि संस्थाप्य तत: पूर्वोच्चारणक्रमेणाक्षसंक्रम: कार्य: । प्रथमाक्षेऽन्तमवसानं गते प्राप्ते ततोऽन्तं प्राप्यादिगतेऽक्षे संक्रामति द्वितीयोऽक्ष: करणास्थस्ततो द्वावक्षावन्तं गत्वा आदिं प्राप्तयो: संक्रामति तृतीयोऽक्षस्तेषु त्रिष्वक्षेषु अन्तं प्राप्यादिं गतेषु संक्रामति तृतीयोऽक्षस्तेष्वन्तं प्राप्यादिंगतेषु संक्रामति चतुर्थोऽक्षस्ततस्तेषु चतुर्ष्वक्षेष्वन्तं प्राप्यादिंगतेषु संक्रामति पंचमोऽक्षस्ततस्तेषु पंचस्वक्षेवन्तं प्राप्यादिंगतेषु संक्रामति षष्ठोक्ष: एवं तावत्संक्रमणं कर्त्तव्यं यावत्सर्वेऽक्षा अन्ते व्यवस्थिता: स्युस्ततोऽष्टादशशीलसहस्राणि सम्पूर्णान्यागच्छन्तीत्येवं गुणागमननिमित्तमप्यक्षसंक्रम: कार्योऽव्याक्षिप्तचेतसेति।।२३।।

पीछैं यह समस्त प्रथमपिंड होय है । भूम्यादिक दश हैं ते द्वितीय पिंड हैं । प्रथम पिंड जो एक सौ अस्सी प्रमाण ताहि दश बार स्थापि, ता ऊपरि पृथिव्यादिक एक-एक सौ अस्सी वार, एक सौ अस्सी वार स्थापन करणें । ता पीछैं यह समस्त प्रथम पिंड होय है ।

क्षांत्यादिक (क्षमा आदि) दश द्वितीय पिंड हैं । अैसे प्रथम पिंड हैं, ताहि अठारह सैं प्रमाण दश स्थान विषैं स्थापि ता ऊपरि क्षांत्यादिक एक-एक अठारह सौ वार-अठारह सौ वार स्थापन करिए । ता पीछैं विषम-प्रस्तार पिंड प्रतिनिक्षेप कीये संतै संपूर्‌र्ण होय है । तैसे ही शेष हू विकल्प जे भेदतैं करणैं । विषमगुण प्रस्तार हू याही प्रकारकरि साधिये है ।।२२।।

आगै अक्षसंक्रम स्वरूपकरि शील अर गुणनि कूं साधते संतैं आचार्य कहै हैं—

अर्थ–गुप्ति, करण, संज्ञा, इंद्रिय, काय, धर्म- इनहि उपरि-उपरि स्थापि ता पीछैं पूर्वोच्चारण क्रमकरिकै अक्ष-संक्रम (परिवर्तन) करने जोग्य है । प्रथम अक्ष अंतकूं प्राप्त होय तापीछै आदि कूं प्राप्त होत संतै द्वितीय अक्ष करण विषैं तिष्टता पलटै हैं । ता पीछैं दोउ अक्ष अंतकूं प्राप्त होय आदि कूं प्राप्त होत संतै तृतीय अक्ष पलटे है ता पीछैं ते च्यार अक्ष अंतकूं प्राप्त होय आदि विषैं प्राप्त होत संतै पंचम अक्ष पलटै हैं । ता पीछैं ते पांच अक्ष अंत कूं प्राप्त होय आदि कूं प्राप्त होत संतै छट्ठा अक्ष पलटै हैं । या प्रकार तेतैं संक्रमण करणां जैतैं सर्व अक्ष अंत विषैं स्थित होय । ता पीछै अठारह सहस्र शील संपूर्ण आवै है ।

या प्रकार चौरासी लाख उत्तरगुण के ल्यावे निमित्त हू निराकुल चित्तकरि अक्ष संक्रम करणां जोग्य है ।।२३।।

---

१. गोम्मटसार जीवकाण्ड (गाथा ३८) में विषम-प्रस्तार निकालने की विशेष सरल विधि बतायी है ।

उच्चारणारूपाणि दृष्टानि अक्षा नष्टास्तत उच्चारणारूपद्वारेणाक्षान् साधयन्नाह—

सगमाणेहिं विहत्ते सेसं लक्खित्तु संखिवे रूवं ।
लक्खिंज्जंतं सुद्धे एवं सव्वत्थ कायव्वं ।।२४।।

सगमाणेहिं–स्वकीयप्रमाणैर्योगादिभिर्यत्राक्षो निरूप्यते तानि स्वकप्रमाणानितै **विहत्ते–**विभक्ते विभागे हृते सति, **सेसं–**शेषं, **लक्खित्तु–**लक्षयित्वा, **संखिवे–**संक्षिपेद्रूपं क्व भागे हृते यल्लब्धं तस्मिन्नन्यस्याश्रुतत्वाच्छेषमात्रे चाक्षः स्थितः शेषे पुनः शुद्धे शून्ये, **लक्खिज्जंतं–**लक्षक्षम् अक्षः, अन्तम् अन्ते व्यवस्थितमिति, तु शब्देन सर्वत्रेष्टसमुच्चयः, एवं सर्वत्र शीलेषु च कर्तव्यमिति, यान्युचारणरूपाणि लब्धानि तेषु स्वकप्रमाणैस्त्रिभिर्भागे हृते यल्लब्धं भ्रमित्वाऽक्षः यावन्ति शेषरूपाणि तावन्मात्रेऽक्षः स्थितः यदि पुनर्न किंचिच्छेषरूपं शून्यं तदान्तेऽक्षो द्रष्टव्य इति एवं करणैः संज्ञाभिरिन्द्रियैर्भूम्यादिभिश्च क्षान्त्यादिभिश्च लब्धे लब्धे भागो हार्य इति द्विसहस्रे अशीत्यधिके संस्थाप्य त्रिभिर्योगैर्भागे हृते त्रिनवत्यधिकानि षट्शतानि लब्धानि भवन्ति, एकं च शेषरूपं तत्र लब्धमात्रं भ्रमित्वाऽक्ष आदौ व्यवस्थितस्ततो लब्धे रूपं प्रक्षिप्य भागे हृते करणैर्द्वे शते एकत्रिंशत्यधिके संजाते रूपं च शेषभूतं तत्रैकत्रिंशदुत्तरे द्वे शते भ्रमित्वा अक्ष आदौ व्यवस्थितस्ततः संज्ञाभिश्चतसृभिः रूपाधिके लब्धे भागे हृते अष्टापञ्चाशल्लब्धा न किंचिच्छेषभूतं तत्राष्टापञ्चाशद्वारान् भ्रमित्वाऽक्षोऽन्ते

आगै उच्चारण रूप दृष्ट अक्ष नष्ट तातैं उच्चारणा रूप के द्वारकरि अक्ष कूं साधते संतै कहै हैं—

अर्थ–स्वकीय प्रमाण जे योगादिक तिनकरि जहां अक्ष (भंग) निरूपण कीजिये ते स्वकप्रमाण हैं । तिनि करिकै विभक्ते कहिये भाग दीये संतै शेषकूं जाणि रूप जो एक ताहि संक्षिपेत् कहिये मिलावै । कहां मिलावै ? भाग दीयैं जो लब्ध होय ता विषैं अन्य का अश्रुतपनां है, तातैं बहुरि शेषमात्र विषैं अक्ष स्थित है, सो अक्ष स्थान जाननां । बहुरि शेष शून्य होय ।

भावार्थ–भाग दीयें पीछैं अवशेष कछु नांही रह्या । तहां लक्षणं कहिये अक्ष अंत विषैं स्थित भया । इहां 'तु' शब्दकरि सर्वत्र इष्ट समुच्चय है । या प्रकार सर्वत्रशील विषैं, बहुरि गुण विषै करणां जोग्य है । जे उच्चार रूप लब्ध भये, तिन विषैं स्वकीय प्रमाण जे तीन तिनकरि भाग दीये जो पाया तावन्मात्र अक्ष भ्रमि करि जेतैं शेष रूप रहे तावन्मात्र विषैं अक्ष स्थित है । बहुरि जो शेष रूप कछु नांही रह्या, तदि अक्ष हैं सो अंत विषैं जाननां ।

अैसे करणनिकरि, संज्ञानि करि, इंद्रियनि करि, भूम्यादिकनि करि, क्षांत्यादिकनि करि, लब्ध विषैं भाग देनां जोग्य है । इहां कोउ पूछै—दोय सहस्र अर असी (२०८०) का भंग कैसा ? तहां दोय सहस्र अर अस्सी कूं स्थापि तीन योगनि करि भाग दीयै संतै छस्सै तिराणवै (६९३) लब्ध भये । बहुरि अवशेष एक रूप रह्या । तहां अक्ष मात्र भ्रमिकरि अक्ष आदि विषैं स्थित भया सो मनोगुप्त है । ता पीछैं लब्ध विषैं रूपं कहिये एक कूं मिलाय करि तीन करणानि करि भाग दीये संतै दोय सैं इकतीस आये । बहुरि एक शेष रह्या, तहां दोय सैं इकतीस वार भ्रमि अक्ष हैं सो आदि विषैं स्थित भया सो मनःकरणोन्मुक्त हैं ।ता पीछैं लब्ध हैं सो रूप अधिक होत संतैं चार संज्ञानि करि भाग दीये अठावन लब्ध भये । शेष कछु नांही रह्या । तहां अठावन वार अक्षभ्रमिकरि अंत विषैं स्थित भया, सो "परिग्रह-संज्ञा-विरत" है । तहां लब्ध विषैं, पांच इंद्रियनिकरि भाग दीये ग्यारह लब्ध भये । बहुरि दीन रूप शेष रहे । तहां ग्यारह वार भ्रमिकरि अक्ष है सो तृतीय रूप विषै स्थित रह्या सो घ्राणैंद्रिय संवृत है । ता पीछैं लब्ध है सो रूप अधिक होत संतै दश पृथिव्यादिकनि करि भाग दीये रूप लब्ध भया। बहुरि दोय शेष रहे, तहां अक्ष एक वार भ्रमि द्वितीय रूप विषैं स्थित भया सो अपूसयंम संयुक्त है । ता पीछैं रूप विषैं रूप कूं मिलाय .

व्यवस्थितस्ततो लब्ध पञ्चभिरिन्द्रयैर्भागे हृते एकादश रूपाणि लब्धानि शेषभूतानि च त्रीणि रूपाणि तत्रैकादशवारान् भ्रमित्वाऽक्षस्तृतीयरूपे व्यवस्थितस्ततो लब्धे रूपाधिके दशभिः पृथिव्यादिभिर्भागे हृते रूपं लब्धं द्वे रूपे च शेषभूते तत्रैकवारं भ्रमित्वाक्षो द्वितीयरूपे व्यवस्थितस्ततो रूपे रूपं प्रक्षिप्य क्षान्त्यादिभिर्भागे न हृते किंचिल्लब्धं द्वितीयरूपे चाक्षः स्थितः, एवं सर्वत्र नष्टोऽक्ष आनयितव्योऽव्यामोहेन । यथा शीलेष्वेवं गुणेष्वपि द्रष्टव्य इति ।।२४।।

पुनरक्षदद्वारेण रूपाणि नष्टान्यानयन्नाह—

संठाविऊण रूवं उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे ।
अवणिज्ज अणंकिदयं कुज्जा पढमंति याचेव ।।२५।।

संठाविऊण–संस्थाप्य सम्यक् स्थापयित्वा, **रूवं**–रूपं, **उवरीदो**–उपरित आरभ्य, **संगुणित्तु**–संगुणय्य, **सगमाणे**–स्वकप्रमाणैः, **अवणिज्ज**–अपनीय निराकरणीयं, **अणंकिदयं**–अनंकितं रूपं, **कुज्जा**–कुर्यात्, **पढमंति याचेव**–प्रथममारभ्यांतकं यावद् रूपं संस्थाप्य दशभी रूपैर्गुणनीयम् । अष्टरूपाण्यनंकितानि परिहरणीयानि ततो द्वे रूपे शेषभूते ततो दशभी रूपैर्गुणयितव्ये ततो दशभी रूपैर्गुणिते विंशतिरूपाणि भवन्ति ततोऽष्टरूपाणि निराकरणीयानि ततो द्वादशरूपाणि भवन्ति पंचभिर्गुणितानि षष्टिरूपाणि भवन्ति द्वे रूपेऽनंकिते ते निराकृत्याष्टापंचाशद्रूपाणि भवन्ति तानि चतुर्भी रूपैर्गुणितानि द्वात्रिंशदधिके द्वे शते भवतः, अनंकितं न किंचिद्विद्यते ततस्तानि लब्धरूपाणि त्रिभिर्गुणितानि षण्णवत्यधिकानि षट्शतानि भवन्ति अनंकिते द्वे रूपे ते निराकृत्य

क्षांत्यादिक करि भाग दीये कछु लब्ध नांही भया ।

बहुरि अक्ष है सो द्वितीय रूप विषैं स्थित भयो सो मार्दव गुण संयुक्त है । ऐसे होतै मनोगुप्त मनःकरणोन्मुक्त परिग्रह-संज्ञा विरत, घ्राणैंद्रिय संवृत्त, अप्संयम संयुक्त, मार्दव गुण संयुक्त—ऐसा दोय सहस्र अस्सी (२०८०) का भंग होय है । ऐसे सर्वत्र नष्ट अक्ष निर्मोहकरि ल्यावनां जैसैं शील विषैं कह्या तैसैं ही या प्रकार गुणनि विषैं जाननां ।।२४।।

बहुरि आगै अक्ष द्वारकरि नष्ट रुप है, तिनके ल्यावै निमित्त कहै है—

अर्थ–रूप कूं भले प्रकार स्थापि ऊपरितैं आरंभ करि स्वकीय प्रमाण करिकै भलै प्रकार गुणि करि अनंकित रूप निराकरण करै । प्रथमकूं आरंभकरि अंतपर्यत । इहां कोऊ पूछैं मनोगुप्त, मनःकरणोन्मुक्त, परिग्रहसंज्ञा-विरत, 'घ्राणैंद्रियसंवृत्त अप्काय संयम-संयुक्त, मार्दव गुण संयुक्त यह केथ्वा भंग हैं ?'

तहां संख्या ऐसे ल्यावनी—रूप-जो एक का अंक, ताहि स्थापि दश श्रमणधर्म हैं, तिनकरि गुणनां सो दश भया । इहां अनंकितानि कहिये जो भेट्ग्रहण होय, ताके परै स्थानकनिकी जो संख्या ताकूं अनंकित कहिये । इहां मार्दव गुण द्वितीय है अनंकित आठतै घटावने, ता पीछै दोय रूप शेष रहै, ते दश प्रकार संयम करि गुणनैं । तदि दशकरि गुणैं बीस रूप भये, तामै अनंकित आठ रूप घटावनैं । तव शेष बारह रूप भये, ते पंच प्रकार इंद्रिय-संयमकरि गुणे साठि रूप होय है । अनंकित दोय रूप घटाय अठावन रहे । ते च्यारि संज्ञा विरति करि गुणै दोय सै बत्तीस (२३२) भये । इहां अनंकित कछु नांही रह्या । ता पीछैं ते लब्धरूप दोय सै बत्तीस, तीन करणकरि गुणै छह सै छिनवै भये । अनंकित दोय रूप घटाये छह सै चौराणवै (६९४) रहे । ता पीछैं ते तीन गुप्तिकरि गुणैं दोय सहस्र वीयासी (२०८२)

---

१. आगे प्रस्तुत यंत्र (चार्ट) 'अ' (तिजरा) प्रति में बहुत सुन्दर रंगीन सजावट के साथ दिये गये हैं, किन्तु 'ब' (अजमेर) प्रति में यंत्र नहीं हैं ।

चतुर्णवत्यधिकानि षट्शतानि भवन्ति ततस्तानि त्रिभी रूपैर्गुणितानि द्वे सहस्रे द्वयशीत्यधिके भवतस्ततो द्वे रूपेऽनंकिते निराकृत्य शेषाण्युच्चारणारूपाणि भवन्त्येवं सर्वत्र शीलेषु गुणेषु च द्रष्टव्यमिति * ।।२५।।

* अष्टादशशीलसहस्राणां समप्रस्तारापेक्षया यंत्रमिदम्—

रहे । तामैं दोय अनंकित रूप घटाय शेष उच्चारण रूप दोय सहस्र अस्सी (२०८०) संख्या प्रमाण रहै । या प्रकार शीलनि विषैं, गुणनि विषैं उद्दिष्ट का ल्यावना जाननां ।।२५।।

अैसे नष्ट उद्दिष्ट का गाथा कै अनुकूल कथन करि आगैं श्री गोम्मटसार सिद्धांत कै विषैं जैसें प्रमादनिके कथन विषैं नष्ट उद्दिष्ट के यंत्र लिखै हैं, तिनही के अभिप्राय कूं लेयकरि अठारह सहस्र (१८०००) शीलनि का, अर चौरासी लाख (८४०००००) उत्तरगुणनि का नष्ट-उद्दिष्ट का यंत्र लिखिये है ।[१]

* अठारह हजार शीलनिका समप्रस्तार अपेक्षा यंत्र—

उत्तम क्षमा १	मार्दव २	आर्जव ३	शौच ४	सत्य ५	संयम ६	तप ७	त्याग ८	आकिंचन्य ९	ब्रह्मचर्य १०
पृथ्वी ०	अप् १०	तेज २०	वायु ३०	प्रत्येक ४०	साधारण ५०	द्वीन्द्रिय ६०	त्रीन्द्रिय ७०	चतु० ८०	पंचेन्द्रिय ९०
स्पर्शन इंद्रिय ०	रसना-० १००	घ्राण० २००	चक्षु० ३००	श्रोत्र० ४००					
आहारसंज्ञा ०	भय० ५००	मैथुन० १०००	परिग्रह० १५००						
मन:करण ०	वाक्करण २०००	कायकरण ४०००							
मनोयोग ०	वयनयोग ६०००	काययोग १२०००							

१. आगे प्रस्तुत यंत्र (चार्ट) "अ" तिजारा प्रति में सुन्दर रंगीन रूप में अच्छी तरह सजावट करके बनाये गये हैं, जबकि "ब" अजमेर प्रति में इन यंत्रों को चार्ट रूप में दिया ही नहीं गया ।

शीलगुणानामुपसंहारगाथामाह—

एवं सीलगुणाणं सुत्तत्थवियप्पदो विजाणित्ता[1] ।
जो पालेदि विसुद्धो विसुद्धो सो पावदि सव्वकल्लाणं ।।२६।।

एवमनेन प्रकारेण पूर्वोक्तेन **सीलगुणाणं**–शीलगुणाननेकभेदभिन्नान्, **सुत्तत्थवियप्पदो**–सूत्रार्थविकल्पतः सूत्रार्थेन च, **विजाणित्ता**–विज्ञाय

आगैं शीलगुणनि की उपसंहार रूप गाथा है, ताहि कहै है—

अर्थ–इस पूर्वोक्त प्रकारकरि अनेक भेद युक्त शील अर गुण है । तिनकूं सूत्रकरि, अर्थकरि बहुरि विशेष थकी जाणि जो पालै हैं, सो विशुद्धः कहिये सर्वकर्म्मनितैं रहित सर्वकल्याणं कहिये अनंतचतुष्टय बहुरि कल्याण, तिनकूं प्राप्त होय है ।

भावार्थ–सूत्रार्थ के भेदनि करि शीलगुणनि कूं जाणि जो पालै हैं सो विशुद्ध भया सर्व कल्याण कूं पावै हैं ।।२६।।

---

१. अ० ब० वियाणित्ता ।

विषमप्रस्तारापेक्षाया यन्त्रमिदम्—

मनोयोग १	वचन० २	काय० ३							
मनःकरण ०	वाक्करण ३	कायकरण ६							
आहार-संज्ञा ०	भय० ९	मैथुन० १८	परिग्रह० २७						
स्पर्शनइन्द्रिय ०	रसना० ३६	घ्राण० ७२	चक्षु० १०८	श्रोत्र० १४४					
पृथ्वी:ंयम ०	जल० १८०	अग्नि ३६०	वायु० ५४०	प्रत्येक वन० ७२०	अनंत वन० ९००	द्वीन्द्रिय० १०८०	त्रीन्द्रिय० १२६०	चतुरिन्द्रिय० १४४०	पंचेन्द्रिय० १६२०
उत्तमक्षमा ०	मार्दव १८००	आर्जव ३६००	शौच ५४००	सत्य ७२००	संयम ९०००	तप १०८००	त्याग १२६००	आकिंचन्य १४४००	ब्रह्मचर्य १६२००

विशेषतो ज्ञात्वा, **जो पालेदि**–यः पालयति, **विसुद्धो**–विशुद्धः सर्वकर्मविनिर्मुक्तः **सो पावदि**–स प्राप्नोति **सव्वकल्लाणं**–सर्वकल्याणं, अनन्तचतुष्टयं पंचकल्याणानि वा । सूत्रार्थविकल्पतो[1] विज्ञाय शीलगुणान् यः फलयति विशुद्धः सन् सर्वकल्याणानि प्राप्तनोतीति ।।२६।।*

इति श्रीमद्वट्टकेर्याचार्यवर्यप्रणीतमूलाचारे वसुनन्द्याचार्यप्रणीताचारवृत्त्याख्यटीकासहिते

शीलगुणव्यावर्णननामैकादशोऽधिकारः ।।

✸

अैसे आचार्य श्री वट्टकेर स्वामी विरचित मूलाचार नाम प्राकृत ग्रंथ की वसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्ती-विरचित आचारवृत्तिनाम संस्कृत टीका कै अनुसार यह देशभाषा मय वचनिका विषैं, शीलगुण है नाम जाका, अैसा ग्यारमा अधिकार समाप्त भया ।।११।। इहां पर्यंत गाथासूत्र समस्त एक संहस्र गुणतालीस १०३९ भये ।

✸

---

१. क० सूत्रार्थविकल्पैः

* अन्य पाण्डुलिपि में यह गाथा अधिक है—

सो मे तिहुवणमहिदो सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणलाहं चरित्तसुद्धिं समाधिं च ।।

अर्थ–त्रिभुवनपूज्य, सर्वकर्मांजन से रहित, नित्य, शुद्ध और बुद्ध सिद्ध परमेष्ठी मुझे ज्ञानलाभ, चारित्रशुद्धि और समाधि प्रदान करें ।

✸

७३

द्वादश पर्याप्त्यधिकारः

शीलगुणाधिकारं व्याख्याय सर्वसिद्धान्तकरणचरणसमुच्चयस्वरूपं द्वादशाधिकारं पर्याप्त्याख्यं प्रतिपादयन् मंगलपूर्विका प्रतिज्ञामाह—

काऊण णमोक्कारं सिद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं ।
पज्जत्तीसंगहणी वोच्छामि जहाणुपुव्वीयं ।।१।।

काऊण–कृत्वा । **णमोक्कारं–**नमस्कारं शुद्धमनोवाक्कायप्रणामम् । **सिद्धाणं–**सिद्धानां सर्वलेपविनिर्मुक्तानाम् अथवा सर्वसिद्धेभ्यः प्राप्ताशेषसुखेभ्यः । **कम्मचक्कमुक्काणं–**कर्मचक्रमुक्तानां चक्रमिव चक्रं कर्मनिमित्तं यच्चतुर्गतिपरिभ्रमणं तेन परिहीणानां कर्मचक्रविप्रमुक्तेभ्यो वा संसारान्निर्गतेभ्यः । **पज्जत्ती–**पर्याप्ती आहारादिकारणसंपूर्णताः । **संगहणी–**सर्वाणि सिद्धान्तार्थप्रतिपादकानि सूत्राणि संगृहणन्तीति संग्रहिण्यस्ताः संग्रहिणीर्गृहीताशेषतत्त्वार्थाः । अथवा पर्याप्तिसंग्रहं पर्याप्तिसंश्रेपं पर्याप्त्यधिकारं वा [1]सर्वनियोगमूलभूतम् । **वोच्छामि–**वक्ष्ये विवृणोमि । **जहाणुपुव्वीयं–**यथानुपूर्वं यथाक्रमेण सर्वज्ञोक्तागमानुसारेण, न स्वमनीषिकया कर्मचक्रविनिर्मुक्तेभ्यः[2] सिद्धेभ्यः सिद्धानां वा नमस्कारं कृत्वा यथानुपूर्वं पर्याप्तीः संग्रहिणीः वक्ष्य इति ।।१।।

आगैं शीलगुणाधिकार है, ताहि व्याख्यानकरि सर्वसिद्धान्त का करण-चरण-समुच्चयरूप पर्याप्ति है नाम जाका-अैसा बारवां अधिकार है, ताहि प्रतिपादन करते मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा है, ताहि आचार्य कहै हैं—

अर्थ–सिद्धानां कहिये सर्व लेपकरि रहित-तिनकूं, अथवा सर्वसिद्धेभ्यः कहिये प्राप्तभया है समस्त सुख जिनकूं तिनके अर्थि नमस्कारं कहिये मन, वचन, कायकरि प्रणाम है ताहि, कृत्वा कहिये करिकै, कैसे हैं सिद्ध ? कर्मचक्र मुक्तानां कहिये चक्रकी ज्यौं होई सो चक्र कहिये कर्म हैं । निमित्त जाकू अैसा जो चतुर्गति विषैं भ्रमण सो कर्मचक्र ताकरि रहित संसारतैं निकसे पर्याप्तीः कहिये आहारादि कारणनिकी संपूर्णता, संग्रहिणीः कहिये सर्वसिद्धान्त के अर्थ के प्रतिपादकसूत्र है, तिनहिं संग्रह करैं, ग्रहण कीया है समस्त सूत्रार्थ जिननैं अथवा पर्याप्ति का संग्रह, पर्याप्ति का संक्षेप वा पर्याप्ति अधिकार सर्व-अनियोग विषैं मूलभूत ताहि वर्णन करू हूं । यथानुपूर्व कहिये यथाक्रम सर्वज्ञ-भाषित आगम कै अनुसार अपनी बुद्धिकरि नांहि कहूं हूं—इहां अैसा समुदायार्थ जाननां । कर्मचक्र-करि मुक्त कहिये रहित अैसे जे सिद्ध हैं तिनिकूं वा तिनकै अर्थि नमस्कारकरि यथाक्रम पर्याप्ति संग्रह हैं, तिनही कहूंगा ।

आगै प्रतिज्ञा का अर्थ है, ताहि निर्वाह करते आचार्य पर्याप्तिकरि उपलक्षित जो अधिकार ताके संग्रहसूत्र के सूचक गाथाद्वय हैं, ताहि कहै हैं—

---

१. क० सर्वानुयोग । २. क० विमुक्तेभ्यः ।

प्रतिज्ञार्थं निर्वहन्नाचार्यः पर्याप्त्युपलक्षितस्याधिकारस्य [1]संग्रहस्तबकगाथाद्वयमाह—

पज्जत्ती देहो वि य संठाणं कायइंदियाणं च ।
जोणी आउ पमाणं जोगो वेदो य लेस पविचारो ।।२।।
उववादो उव्वट्टण[2] ठाणं च कुलं च अप्पबहुलो[3] य ।
पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधो य सुत्तपदा ।।३।।

पज्जत्ती–पर्याप्तय आहारादिकारणनिष्पत्तयः । **देहो वि य–**देहोऽपि चौदारिकवैक्रियिकाहारकवर्गणागतपुद्गलपिंडः करचरणशिरोग्रीवाद्यवयवैः परिणतो वा अपि चान्यदपि । **संठाणं–**संस्थानमवयसन्निवेशविशेषः । केषामिति चेत् कायेन्द्रियाणां च कायानां च पृथिवीकायादिकानां श्रोत्रादीन्द्रियाणां च कायानां संस्थानमिन्द्रियाणां च । **जोणी–**योनयो जीवोत्पत्तिस्थानानि । **आउ–**आयुर्नरकादिगतिस्थितिकारणपुद्गलप्रचयः । **पमाणं–**प्रमाणमुत्सेधायाम-विस्ताराणामियत्ता, चायुषोऽन्येषां च देहादीनां वेदितव्यम् । **जोगो–**योगः कायवाङ्मनस्कर्म । **वेदो य–**वेदश्च मोहनीयकर्मविशेषः स्त्रीपुरुषाद्यभिलाषहेतुः। **लेस–**लेश्या कषायानुरंजिता योगप्रवृत्तिः । **पविचारो–**प्रवीचारः स्पर्शनेन्द्रियाद्यनुरागसेवा, **उववादो–**उपपादः अन्यस्मादागत्योत्पत्तिः । **उव्वट्टण–**उद्वर्त्तनं अन्यस्मादन्यत्रोत्पत्तिः । **ठाणं–**स्थानं जीवस्थानगुणस्थानमार्गणास्थानानि । **कुलं च–**कुलानि जातिभेदाः । **अप्पबहुगो च–**अल्पबहुत्वं च । **पयडि–**प्रकृतिर्ज्ञानावरणादिस्वरूपेण पुद्गलपरिणामः । **ठिदि–**स्थितिः पुद्गलानां कर्मस्वरूपमजहतामवस्थितिकालः, **अणुभाग–**अनुभागः कर्मणां रस-विशेषः । **पदेस–**प्रदेशः कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धानां परमाणुपरिच्छेदेनावधारणं, **बंधो–**बन्धः परवशीकरणं जीव[4]पुद्गलप्रदेशानुप्रदेशेन संश्लेषशब्दः प्रत्येकभिसम्बध्यते । प्रकृतिबन्धः स्थितिबन्धोऽनुभागबन्धः प्रदेशबन्धश्चेति । च शब्दः समुच्चयार्थः । **सुत्तपदा–**सूत्रपदानि एतानि सूत्रपदानि, अथवैते

अर्थ–पर्याप्तयः कहिये आहारादि कारणकी निष्पत्ति; देहः कहिये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक वर्गणा गतः पुद्गलपिंड वा कर, चरण, शिर, ग्रीवा इत्यादिक अवयवकरिकैं परिणत, बहुरि अन्यसंस्थान कहिये अवयवविषैं रचनां विशेष, यह संस्थान कौंन के काय जे पृथिवीकादिक तिनका, बहुरि इंद्रिय जे श्रोत आदि इंद्रिय तिनका कायनि का संस्थान, बहुरि इंद्रियनिका । संस्थान, योनयः कहिये जीव के उपजवे के स्थान । आयु कहिये नरकादिगतिनि विषै स्थिति के कारण पुद्गल, प्रचय, प्रणाम कहिये—उत्सेध आयाम विस्तार, इनका इतनें प्रमाण है सो प्रमाण आयु का, बहुरि देहादिक का जाननां । योगः कहिये काय-वाक्-मना की क्रिया । बहुरि वेदः कहिये मोहनीयकर्म का विशेष स्त्री-पुरुषादिक कैं अभिलाषा का हेतु । लेश्या कहिये कषायनिकरि अनुरंजित योगनिकी प्रवृति, प्रतिचार कहिये स्पर्शन इंद्रियादिक का अनुरागकरि सेवन, उपपातः कहिये अन्य स्थानतैं आय उपजनां । उद्वर्तनं कहिये—अन्य स्थानतैं अन्य विषैं उपजनां । स्थानं कहिये जीवस्थान, गुणस्थान, मार्गणास्थान । कुलाहि कहिये जाति भेद । बहुरि अल्प बहुत्वप्रकृतिः कहिये ज्ञानवरणादिक स्वरूपकरि पुद्गल का परिणमन । स्थितिः कहिये कर्मस्वरूपकूं नांही त्यजते अैसे पुद्गलनि का स्थितिकाल । अनुभागः कहिये कर्मनि का रस विशेष । प्रदेशः कहिये-कर्मभाव परिणत पुद्गल स्कंधनि का परमाणु परिच्छेद करि अवधारण, बंधः कहिये पर का वशीकरण, जीवःपुद्गल-प्रदेशनिकै परस्पर प्रवेशानु-प्रवेशकरि, संश्लेष कहिये संबंध, सो बंध प्रत्येक, संबंध करणां । प्रकृतिसंबंध । स्थितिबंध, अनुभागबंध, प्रदेशबंध । इहां च शब्द

१. क० संग्रहसूत्रसूचकगाथाद्वयमाह । २. अ० ब० उववादोवट्टणमो, अ० उव्वट्टनमो । ३. अ० ब० अप्पबहुगे, क० अप्पबहुगा ।
४. क० जीवपुद्गलप्रदेशान्यान्यप्रदेशानुप्रदेशेन संश्लेषः । ५. क० सूत्रपाता ।

[1]सूत्रपदा एतानि विंशतिसूत्राणि षोडशसूत्राणि वा द्रष्टव्यानि भवन्तीति । यदि कायसंस्थानमिन्द्रियसंस्थानं च द्वे सूत्रे प्रकृत्यादिभेदेन च बन्धस्य चत्वारि सूत्राणि तदा विंशतिसूत्राणां (णि) अथ कायेन्द्रियसंस्थानमेकं सूत्रं चतुर्धा बन्धोप्येकं सूत्रं तदा षोडश सूत्राणीति ।।।२-३।।

प्रथमसूत्रसूचितपर्याप्तिसंख्यानामनिर्देशेनाह—

आहारे य सरीरे तह इंदिय आणपाण भासाए ।
होंति मणो वि य कमसो पज्जत्तीओ जिणक्खादा ।।४।।

आहारे य–आहारस्याहारविषये वा कर्म नोकर्मस्वरूपेण पुद्‌गलानामादानमाहारस्तृप्तिकारणपुद्‌गलप्रचयो वा, **सरीरे**–शरीरस्य[1] शरीरे वौदारिकादिस्वरूपेण पुद्‌गलपरिणामः शरीरम् । **तह**–तथा । **इंदिय**–इन्द्रियस्येन्द्रियविषये वा पुद्‌गलस्वरूपेण परिणामः (इन्द्रियविषये वा), **आणपाण**–आनप्राणयोरानप्राणविषये वोच्छ्‌वासविश्वासवायुस्वरूपेण पुद्‌गलप्रचय आनप्राणनामा । **भासाए**–भाषाया भाषाविषये वा शब्दरूपेण पुद्‌गलपरिणामो भाषा। **होंति**–भवन्ति । **मणो वि य**–मनसोऽपि च मनोविषये वा चित्तोत्पत्तिनिमित्तपरमाणुनिचयो मनः । **कमसो**–क्रमशः क्रमेण यथानुक्रमेणागमन्यायेन वा। **पज्जती**–पर्याप्तयः संपूर्णताहेतवः । **जिणक्खादा**–जिनख्याताः सर्वज्ञप्रतिपादिताः । एताः पर्याप्तयः प्रत्येकमभिसंबध्यन्ते । आहारपर्याप्तिः, शरीरपर्याप्तिः, इन्द्रियपर्याप्तिः, आनप्राणपर्याप्तिः, भाषापर्याप्तिः मनःपर्याप्तिरेताः षट् पर्याप्तयो जिनख्याता भवन्तीति । पर्याप्तीनां संख्या षडेव नाधिका इति नामनिर्देशेनैव

समुच्चययार्थ है। सूत्रपदानि कहिये सूत्रपद है अथवा एते सूत्र पाता कहिये यह बीससूत्र या सोलह सूत्र जानवे जोग्य हैं । जो काय संस्थान, अर इंद्रिय संस्थान-ये दोय सूत्र बहुरि जो प्रकृत्यादि भेद करि बंध के च्यार सूत्र, तदि सूत्र बीस होय हैं । अर कायेंद्रिय-संस्थान एकसूत्र, बहुरि च्यार प्रकार बंधहू एकसूत्र तदि सोलह सूत्र होय हैं ।।२-३।।

आगैं प्रथमसूत्र करि सूचित जो पर्याप्ति, ताकी संख्या अर नाम निर्देशकरि कहै हैं—

अर्थ–आहार कै वा आहार विषैं कर्म्म-नोकर्म्म स्वरूपकरि पुद्‌गलनिका ग्रहण वा तृप्ति का कारण पुद्‌गल प्रचय—सो आहार है। शरीर का वा शरीर विषैं औदारिकादि स्वरूपकरि पुद्‌गल का परिणमन सो शरीर है । इंद्रिय का वा इंद्रियविषैं पुद्‌गल का इंद्रिय स्वरूपकरि परिणमन सो इंद्रिय अनिप्राण का वा आनप्राण विषैं उच्छ्‌वास, निश्वास वायु स्वरूपकरि पुद्‌गल का प्रचय सो आनप्राण है । भाषा का वा भाषा विषैं शब्द स्वरूपकरि पुद्‌गल का परिणमन सो भाषा है । मन का बहुरि मन विषैं चित्त की उत्पत्ति कूं कारण परमाणु का समूह सो मन है । क्रमशः कहि अनुक्रमकरि वा आगम के न्यायकरि, पर्याप्तयः कहिये संपूर्ण ताके कारण, जिनाख्याताः कहिये सर्वज्ञदेव नै कहै, यह पर्याप्ति है तिनका प्रत्येक संबंध करणां ।

१. आहार पर्याप्ति, २. शरीर पर्याप्ति, ३. इंद्रिय पर्याप्ति, ४. आनप्राण पर्याप्ति , ५. भाषा पर्याप्ति, ६. मनः पर्याप्ति । यह छह पर्याप्ति जिनदेवकरि कहैं हैं । पर्याप्ति की संज्ञा छह ही हैं, अधिक नांही हैं । या प्रकार नाम निर्देश करि ही लक्षण कह्या जाननां ।

१. जातैं आहार पर्याप्ति इसकरि कहा कह्या ? जिस कारणकरि तीन शरीरकैं जोग्य भुक्त जो आहार, ताहि खल, रस भागकरि जीव समर्थ होय तिस कारण की निवृत्ति कहिये संपूर्णता सो २. आहार पर्याप्ति या प्रकार कहिये है ।

तैसे ही शरीर पर्याप्ति इस करि कह्या जिस कारण करि शरीर जोग्य पुद्‌गल द्रव्यकूं ग्रहणकरि औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर

---

१. शरीरविषयं ।

लक्षणं व्याख्यातं द्रष्टव्यं यतः, आहारपर्याप्तिरिति किमुक्तं भवति येन कारणेन च त्रिशरीरयोग्यं भुक्तामाहारं खलरसभागं कृत्वा समर्थो भवति जीवस्तस्य कारणस्य निर्वृतिः सम्पूर्णता आहारपर्याप्तिरित्युच्यते । तथा शरीरपर्याप्तिरिति किमुक्तं भवति येन कारणेन शरीरप्रायोग्यानि पुद्गलद्रव्याणि गृहीत्वौदारिक-वैक्रियिकाहारकशरीरस्वरूपेण परिणमय्य समर्थो भवति तस्य कारणस्य निर्वृतिः सम्पूर्णता शरीरपर्याप्तिरित्युच्यते । तथेन्द्रियपर्याप्तिरिति किमुक्तं भवति येन कारणेनैकेन्द्रियस्य द्वीन्द्रियस्य त्रयाणामिन्द्रियाणां चतुर्णां पञ्चेन्द्रियाणां प्रायोग्यानि पुद्गलद्रव्याणि गृहीत्वात्मात्मविषये ज्ञातुं समर्थो भवति तस्य कारणस्य निर्वृतिः परिपूर्णता इन्द्रियपर्याप्तिरित्युच्यते । तथाऽऽनप्राणपर्याप्तिरिति किमुक्तं भवति येन कारणेनानप्राणप्रायोग्यानि पुद्गलद्रव्याण्यवलंब्यानप्राणपर्याप्त्या निःसृत्य समर्थो भवति यस्यकारणस्य निर्वृतिः सम्पूर्णतानप्राणपर्याप्तिरित्युच्यते । तथा भाषापर्याप्तिरिति किमुक्तं भवति येन कारणेन सत्य-सत्य-मृषा असत्यमृषाया मृषा असत्यमृषाया भाषायाश्चतुर्विधायाः योग्यानि पुद्गलद्रव्याण्याश्रित्य चतुर्विधाया भाषायाः स्वरूपेण परिणमय्य समर्थो भवति तस्य कारणस्य निर्वृत्तिः सम्पूर्णता भाषापर्याप्तिरित्युच्यते । तथा मनःपर्याप्तिरिति किमुक्तं भवति येन कारणेन चतुर्विधमनःप्रायोग्यानि पुद्गलद्रव्याण्याश्रित्य चतुर्विधमनःपर्याप्त्या परिणमय्य समर्थो भवति तस्य कारणस्य निर्वृतिः सम्पूर्णता मनःपर्याप्तिरित्युच्यते । अतो न पृथग्लक्षणसूत्रं कृतमिति ।।४।।

पर्याप्तीनां स्वामित्वं प्रदिपादयन्नाह—

एइंदिएस चत्तारि होंति तह आदिदो य पंच भवे ।
वेइंदियादियाणं पज्वत्तीओ असण्णित्ति ।।५।।

एइंदिएसु–एकमिन्द्रियं येषां ते एकेन्द्रियाः पृथिवीकायिकादिवनस्पतिकायिकान्तास्तेष्वेकेन्द्रियेषु । **चत्तारि–**चतस्रोऽष्टार्द्धाः । **होंति–**भवन्ति।

स्वरूपकरि परिणमाय जीव समर्थ होय, तिस कारण की निवृत्ति कहिये संपूर्णता, सो शरीर पर्याप्ति या प्रकार कहिये है ।

३. तैसें इंद्रियपर्याप्ति इस करि कहा कह्या जिस कारणकरि एकइंद्रिय कैं, वेइंद्रिय कैं, तीन इंद्रिय कैं, च्यार इंद्रियकै, पांच इंद्रिय कैं योग्य पुद्गलद्रव्य कूं ग्रहणकरि अपने-अपनै विषय विषैं जानवे कूं जीव समर्थ होय तिस कारण की निवृत्तिः कहिये संपूर्णता सो इंद्रिय-पर्याप्ति या प्रकार कहिये है ।

४. तैसैं आनप्राण पर्याप्ति इस करि कहा कह्या ? जिस कारणकरि आनप्राण कै योग्य पुद्गलद्रव्यकूं आश्रयकरि आनप्राण पर्याप्ति इसकरि परिणमाय जीव समर्थ होय तिस कारण की संपूर्णता सो आनप्राण पर्याप्ति या प्रकार कहिये है ।

५. तैसे ही भाषा पर्याप्ति इसकरि कह्या—जिस कारणकरि १. सत्य, २. मृषा, ३. सत्यमृषा, यहीकूं उभय कहै हैं, ४. असत्यमृषा याही कूं अनुभय कहे हैं अैसे च्यार प्रकार भाषा कै जोग्य पुद्गलद्रव्य हैं, तिनकूं आश्रयकरि च्यार प्रकार भाषा स्वरूपकरि परिणमाय जीव समर्थ होय तिस कारण की निवृत्तिः कहिये संपूर्णता सो भाषापर्याप्ति—या प्रकार कहियै है ।

६. तैसैं ही मनःपर्याप्ति इस करि कहा कह्या ? जिस कारणकरि च्यार प्रकार मन के जोग्य पुद्गलद्रव्य है तिनकूं आश्रय करि च्यार प्रकार मनःपर्याप्तिकरि परिणमाय जीव समर्थ होय, तिस कारण की निवृत्तिः कहिये संपूर्णता सो मनःपर्याप्ति या प्रकार कहिये है । या प्रकार भिन्न लक्षण सूत्र नांही कीया ।।४।।

आगैं पर्याप्ति का स्वामीपनां है, ताहि प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–एक है इंद्रिय जिनकैं, ते एकैंद्रिय कहिये पृथिवीकायिक आदि वनस्पतिकायिक पर्यंत तिन एकेंद्रियनि विषैं च्यार पर्याप्ति

तह–तथा तेनैव न्यायेन व्यावर्णितक्रमेण । **आदिदो य**–आदितश्चादौ प्रभृति प्रथमाया आरभ्य, **पंच**–दशार्धसंख्यापरिमिता: । **भवे**–भवन्ति विद्यन्ते, **वेइंदियादियाणं**–द्वीन्द्रियादीनां द्वीन्द्रियादिर्येषां ते द्वीन्द्रियादयस्तेषां द्वीन्द्रियादीनां, **पज्जत्तीओ**–पर्याप्तय:, **असण्णित्ति**–असंज्ञीति असंज्ञिपर्यन्तानां द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणामाहारशरीरेन्द्रियानप्राणभाषापर्याप्तय: पंच भवन्ति । तथैकेन्द्रियेषु चाहारशरीरेन्द्रियानप्राणपर्याप्तयश्चतस्रो भवन्ति, द्वीन्द्रियाद्यसंज्ञिपर्यन्तानां पंच भवन्तीति ।।५।।

अथ षडपि पर्याप्तय: कस्य भवन्तीत्याशंकायामाह—

छप्पि य पज्जत्तीओ बोधव्वा होंति सण्णिकायाणं ।
एदाहि अणिव्वत्ता ते दु अपज्जत्तया होंति ।।६।।

छप्पि य–षडपि च द्वादशार्द्धा अपि समस्ता:, **पज्जत्तीओ**–पर्याप्तय आहारशरीरेन्द्रियानप्राणभाषामन:पर्याप्तय:, **बोधव्वा**–बोद्धव्या: सम्यगवगन्तव्या:, **होंति**–भवन्ति, **सण्णिकायाणं**–संज्ञिकायानां ये संज्ञिन: पंचेन्द्रियास्तेषां षडपि पर्याप्तयो भवन्ति इत्यवगन्तव्यम् । अथ केऽपर्याप्ता इत्याशंकायामाह—**एदाहिं**–एताभिश्चसृभि: पंचभि: षड्भि: पर्याप्तिभि:, **अणिव्वत्ता**–अनिर्वृत्ता असम्पूर्णा अनिष्पन्ना:, **ते दु**–ते तु त एव जीवा:, **अपज्जत्तया**–अपर्याप्तका: **होंति**–भवन्तीति ।।६।।

संख्या पर्याप्तीनां नामनिर्देशेनैव प्रतिपन्ना तदर्थं न पृथक सूत्रं कृतं, यावता कालेन च तासां निष्पत्तिर्भवति तस्य कालस्य परिमाणार्थमाह—

पज्जत्तीपज्जत्ता भिण्णमुहुत्तेण होंति णायव्वा ।
अणुसमयं पज्जत्ती सव्वेसिं चोववादीणं ।।७।।

पज्जत्तीपज्जता–पर्याप्तिभि: पर्याप्ता: सम्पूर्णा: पर्याप्तिपर्याप्ता: सम्पूर्णाहारादिहेतव:,[1] **भिण्णमुहुत्तेण**–भिन्नमुहूर्तेन समयादूनघटिकाद्वयेन,

---

हैं । तथा कहिए तिस ही न्यायकरि कथित क्रमकरि द्वीन्द्रिय कूं आदि दे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्जंत द्वीद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, असंज्ञि पंचैंद्रियनि कैं आहार, शरीर, इंद्रिय, आन-प्राण, भाषा—यह पंच पर्याप्ति है । बहुरि एकैंद्रिय कै १. आहार, २. शरीर, ३. इंद्रिय, ४. आन प्राण—यह च्यार पर्याप्ति हैं ।।५।। अथानंतर छह पर्याप्ति है । अथानंतर छह पर्याप्ति कौंन कैं होय है अैसी आशंका होतैं उत्तरसूत्र कहै हैं—

अर्थ–बहुरि छह हू पर्याप्ति बारह कै आधे समस्त आहार, शरीर, इंद्रिय, आनप्राण, भाषा मन:पर्याप्ति चे संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं, तिनकैं जानवे योग्य हैं ।

अथांनतर अपर्याप्त कौन ? अैंसी आशंका हौते कहैं हैं—ये जे चार, पांच, छह पर्याप्ति तिनकरिकै अनिवृत्ता: कहिये—असंपूर्ण, अनिष्पन्न है ते ही जीव अपर्याप्तका: कहिये असंपूर्ण हैं आहार, शरीर, इंद्रिय, आनप्राण, भाषा मन के कारण जिनकै—अैंसे होय हैं । पर्याप्ति की संख्या नाम निर्देशकरिकैं ही सिद्ध भई । तिस अर्थि भिन्न सूत्र नांही कीया । जितने कालकरि तिन पर्याप्तिनि की पूर्णता होय तिस काल कै प्रमाण अर्थि कहै हैं ।।।६।।

अर्थ–पर्याप्ति जे हैं तिन करिकैं पर्याप्त कहिये पूर्ण ते पर्याप्ति । पर्याप्ता कहिये संपूर्ण हैं आहारादिक का कारण जिनकैं । भिन्नमुहूर्तेन कहिये समयादिक ऊनघटिकाद्वय जो अंतमुहूर्त ताकरिकैं भवंति कहिये होय हैं यह तिरजंच, मनुष्य जाननै । जातैं अनुसमयं कहिये समयसमय

१. क० कारणा:

होंति–भवन्ति, **णायव्वा**–ज्ञातव्या एते तिर्यङ्मनुष्या ज्ञातव्या:, यत: **अणुसमयं**–अनुसमयं समयं समयं प्रतिसमयं वा लक्षणं कृत्वा, **पच्चत्ती**–पर्याप्तय:, **सव्वेसिं**–सर्वेषां, **उववादीणं**–उपपादो विद्यते येषां त उपपादिनस्तेषामुपपादिनां देवनारकाणाम् । अथ स्यान्मतं कोऽयं विशेषो देवनारकाणामनुसमयं पर्याप्ति: शेषाणां भिन्नमुहूर्तेनेति नैष दोष: देवनारकाणां पर्याप्तिसमानकाले एव सर्वावयवानां निष्पत्तिर्भवति न शेषाणां सर्वेषां यतो यस्मिन्नेव काले देवनारकाणामाहारादिकारणस्य निश्पत्तिस्तस्मिन्नेव काले शरीरादिकार्यस्यापि, तिर्यङ्मनुष्याणां पुनर्लघुकालेनाहारादिकारणस्य निष्पत्ति: शरीरादिकार्यस्य च महत्तात: सर्वेषामुपपादिनामनुसमयं पर्याप्तय: तिर्यङ्मनुष्याणां भिन्नमुहूर्तेनेत्युक्तमिति । पर्याप्तीनां स्थितिकालस्तिर्यङ्मनुष्याणां जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणं किंचिदून उच्छ्वासाष्टादशभाग उत्कृष्टेन त्रीणि पल्योपमानि, देवनारकाणां च जघन्येन दशवर्षसहस्राण्युत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जीवितसमा: पर्याप्तयो यतो न पृथक् स्थितिकाल उक्त इति ।।७।।

अथ कथमेतज्ज्ञायतेऽनुसमयं पर्याप्तिरुपपादिनामिति पृष्टे पूर्वागममाह—

जह्मि विमाणे जादो उववादसिला महारहे सयणे ।
अणुसमयं पज्जत्तो देवो दिव्वेण रूवेण ।।८।।

जम्हि–यस्मिन्, **विमाणे**–विमाने भवनादिसर्वार्थसिद्धिविमानपर्यन्ते, **जादो**–जात उत्पन्न:, **उववादसिला**–उपपादशिलायां शुक्तिपुटकारायां, **महारहे**–महार्हे महापूज्यार्हे, **सयणे**–शयने शयनीयेऽनेकमणिखचितपर्यंके सर्वालंकारविभूषिते, **अणुसमयं**–अनुसमयं समयं समयं प्रति, **पज्जत्तो**–पर्याप्त: सम्पूर्णयौवन: सर्वाभरणभूषित: **देवो**–देव:, **दिव्वेण**–दिव्येन सुष्ठु शोभनेन, **रूवेण**–रूपेण शरीराकारवि‍र्णादिना । यस्मिन् विमाने शिलायां महार्हे शयनीये देवो जातस्तस्मिन्नेवानुसमयं पर्याप्तो दिव्येन रूपेण भवतीति ।।८।।

प्रति वा समयकूं लक्षणकरि पर्याप्ति हैं ते सर्वही, उपपादिनां कहिये जिनकै उपपाद विद्यमान है, तिन देव, नारकनिकै जाननै—यह प्रमाण है । यामैं विशेष कहा—देव, नारकनिकैं पर्याप्ति प्रति-समय हैं । शेष जे मनुष्य, तिरजंच तिनकैं पर्याप्ति भिन्न मुहूर्तकरि हैं । यह दोष नांही । देवनारकनिकै पर्याप्ति जे सर्व अवयवनि की निष्पत्ति सो समान काल विषै ही होय है । शेष जे सर्व तिनकैं नांही होय हैं । जातैं दे नारकनि कै तिस ही काल विषैं आहारादिक की निष्पत्ति होय है तिसही काल विषैं शरीरादिक कार्य हू की निष्पत्ति होय है । बहुरि तिरजंच मनुष्यनि कै आहारादिक कारण की निष्पत्ति लघुकाल करि होय है । बहुरि शरीरादिक कार्य की निष्पत्ति महान्कालकरि होय है । यातै सर्व उपपादीनिकैं अनुसमय पर्याप्ति है तिरजंच-मनुष्यनि कै भिन्न (अन्तर) मुहूर्तकरि होय है अैसे कह्या है । आगै पर्याप्ति का स्थितीकाल तिरजंच, मनुष्यनिकैं जघन्यकरि क्षुद्रभव ग्रहण कहिये किंचित् ऊन उच्छ्वास का अठारवां भाग है, उतकृष्टकरि तीन पल्योपम है । बहुरि देव, नारकनि कैं जघन्यकरि दश वर्ष सहस्र (१०,०००) हैं, उत्कृष्टकरि तेतीससागरोपम है । जीवित समान पर्याप्ति हैं (यहाँ पर पर्याप्तियों और जीवित अवस्था का काल समान कहा गया है) यातैं भिन्न स्थितिकाल नांही कह्या ।।७।।

आगै उपपादीनिकैं पर्याप्ति अनुसमय कैसे जानियै ? अैसैं पूछैं पूर्वागम है, ताहि कहै है—

अर्थ–यस्मिन् विमाने कहिये भवनवासी भवन आदि सर्वार्थसिद्धि-विमान पर्यंत जिस विमाण विषैं सीप कै पुट कै आकार, उपपाद शिला विषैं महार्हेशयने कहिये महापूज्य अनेकमणिनिकरि जटित पल्यंक विषैं सर्व आभूषणनिकरि शोभित, अनुसमयं कहिये समय-समय प्रति, पर्याप्त कहिये संपूर्ण हैं जो वन (यौवन) जाकैं, समस्त आभूषणनिकरि शोभित अैसा देव:दिव्येन् रूपेण कहिये अतिशयकरि शोभनीक शरीर के आकार वर्णादिक-करि उपजै हैं । इहां समुदयार्थ अैसा जिस विमानशिला महापूज्य शयन विषैं देव उत्पन्न भया, तहां ही अनुसमय दिव्यरूपकरि पर्याप्त कहिये परिपूर्ण होय हैं ।।८।।

देहसूत्रं विवृण्वन् संबन्धनैव देवदेहं प्रतिपादयन्नाह—

देहस्स य णिव्वत्ती भिण्णमुहुत्तेण होइ देवाणं ।
सव्वंगभूसणगुणं जोव्वणमवि होदि देहम्मि ।।९।।

देहस्स य–देहस्य च शरीरस्य, **णिव्वत्ती–**निर्वृतिर्निष्पत्तिः. **भिण्णमुहुत्तेण–**भिन्नमुहूर्त्तेन किंचिदूनघटिकाद्वयेन, **होदि–**भवति, **देवाणं–**देवानां भवनवासिकादीनां न केवलं षट्पर्याप्तयो भिन्नमुहूर्त्तेन निश्पत्तिं गच्छन्ति किं तु देहस्यापि च निश्पत्तिः सर्वकार्यकरणक्षमा भिन्नमुहूर्त्तेनैव भवतीति । तथा न केवलं देहस्योत्पत्तिर्भिन्नमुहूर्त्तेन किं तु **सव्वंगभूसणगुणं–**सर्वाणि च तान्यंगानि सर्वांगानि करचरणशिरोग्रीवादीनि तानि भूषयति इति सर्वांगभूषणः सर्वांगभूषणो गुणविशेषो यस्य तत्सर्वांगभूषणगुणं निरवशेषशरीरावयवालंकारकरणं, **जोव्वणं–**यौवनं प्रथमवयः परमरमणीयावस्था सर्वालंकारसमन्विता अतिशयमतिशोभनं सर्वजननयनाह्लादकरं, **होदि**—भवति, **देहम्मि–**देहे शरीरे ।[1] देवानां यौवनमपि शोभनं सर्वांगभूषणगुणं तेनैव भिन्नमुहूर्त्तेन भवतीति।।९।।

पुनरपि देवव्यावर्णनद्वारेण देहमाह—

कणयमिव णिरुवलेवा णिम्मलगत्ता सुयंधणीसासा ।
अणादिवरचारुरूवा समचउरंसोरुसंठाणं ।।१०।।

अणादिपर–आदिर्बालत्वं परो वृद्धत्वम् आदिश्च परश्चादिपरौ न विद्येते आदिपरौ बालवृद्धपर्यायौ यस्य तस्य तदनादिपरं चारु शोभनं

आगैं देह विषै सूत्र हैं, ताहि व्याख्यान करते संबंधकरि देव का देह हैं, ताहि प्रतिपादन करते संते कहै है—

अर्थ–देह जो शरीर ताकी निवृत्ति कहियें निष्पत्ति भिन्न मुहुर्त जो किंचित् ऊनघटिका द्वय ताकरिकैं देवानां कहिये भवनवासी आदिकनिकै, भवति कहियै होय है, केवल पर्याप्ति ही भिन्न मुहूर्तकरि पूर्णताकूं नांही प्राप्त होय है । कहा होय है ? देह की हू निष्पत्ति सर्व कार्य करबे विषैं समर्थ भिन्न मुहूर्तकरि होय है । तैसे केवलदेह की निष्पत्ति भिन्न मुहूर्त करि नांही होय है । कहा होय है ? सर्वांगभूषणगुणं कहिये सर्व अैसे जे अंग कर, चरण, शिरो, ग्रीवादिक तिनहि भूषित करै-अैसा है गुण जाका । अशेष शरीर के अवयव कूं आभूषित करै—अैसा यौवन कहिये प्रथम वय विषैं परम रमणीय अवस्था, सर्व आभूषणकरि शोभित अतिशयकरि सर्बजन के नेत्रनिकूं आनंदकारी भवति कहिये होय है । कहां होय है ? देह जो शरीर ता विषैं होय है । याका समुदायार्थ अैसा—देवनि के शरीर विषैं सर्ब अंगकूं भूषित करै अैसे हैं गुण जा विषैं अैसा यौवन हूं तिसही अंतर्मुहूर्त्तकरि होय है ।।९।।

आगैं बहुरि हू देवनि कैं वर्णनद्वारकरि देव देह हैं, ताहि कहै है—

अर्थ–आदि जो बालपनां, पर जो वृद्धपनां, ताहि आदि-पर कहिये । नहीं विद्यमान हैं आदिपर कहिये बाल-वृद्ध पर्याय जाकै सो अनादि पर कहिये । चारु कहिये शोभन, सर्वजन के नेत्रकूं मनोहर, रूप कहिये शरीर के अवयवनि की रमणीयता अैसें अनादि पर है चारु रूप जिनका ते अनादि-पर चारु रूपा कहिये आयु परजंत शरीर विषैं स्थिर है यौवन जिनिकै—अैसा अर्थ जाननां । अथवा अतिशय युक्त

---

१. क० देहानाम् ।

सर्वजननयनकान्तं रूपं शरीरावयवरमणीयता अनादिपरं चारुरूपं येषां ते अनादिपरचारुरूपा यावदायु:शरीरस्थिरयौवना इत्यर्थः अतिशयितस्थिरचारुरूपा वा, **समचउरंसोरु–**समचतुरस्रं उरु महत् पूज्यगुणं, **संठाणं–**संस्थानं शरीराकारः समचतुरस्र उरु संस्थानं येषां ते समचतुरस्रोरुसंस्थाना यथाप्रदेशमन्यूनाधिकावयवसम्पूर्ण[1] प्रमाणाः, **कणयमिव–**कनकमिव, **णिरुवलेवा–**निरुपलेपा उपलेपान्मलान्निर्गता निरुपलेपाः, **णिम्मलगत्ता–**निर्मलं गात्रं येषां ते निर्मलगात्राः, **सुयंधणीसासा–**सुगन्धः सर्वघ्राणेन्द्रियाल्हादनकरो निःश्वास उछ्वासो येषां ते सुगन्धनिःश्वासाः । कनकमिव निर्लेपा निर्मलगात्राः सुगन्धनिःश्वासा अनादिपरचारुरूपाः समचतुरस्रोरुसंस्थाना देवा भवन्तीति संबन्धः ।।१०।।

किं देवसंस्थाने सप्त धातवो भवन्तीत्यारेकायां परिहारमाह—

केसणहमंसुलोमा चम्मवसारुहिरमुत्तपुरिसं वा ।
णेवट्ठी णेव सिरा देवाण सरीरसंठाणे ।।११।।

केस–केशा मस्तकभ्रूनयननासिकाकर्णकक्षगुह्यादिप्रदेशवालाः, **णह–**नखाः हस्तपादांगुल्यग्रोद्भवाः, **मंसु–**श्मश्रूणि कूर्चवालाः **लोम–**लोमानि सर्वशरीरोद्भवसूक्ष्मवालाः, **चम्म–**चर्म मांसादिप्रच्छादिका त्वक्, **वस–**वसा मांसास्थिगतस्निग्धरसः, **रुहिर–**रुधिरं रक्तं, **मुत्तं–**मूत्रं प्रस्रवणं, **पुरिसं–**पुरीषं वाशब्दोऽन्येषां समुच्चयार्थः शुक्रप्रस्वेदत्वगादीनां । **णेव–**नैव पूर्वोक्तानि सर्वाणि नैव भवन्ति, **अट्ठी**—अस्थीनि संहननकारणानि, **नैव सिरा–**सिराजालानि। **देवाण–**देवानां शरीरसंस्थाने, केशनखश्मश्रुलोमचर्मवसारुधिरमूत्रपुरीषशुक्रप्रस्वेदानि नैव भवन्ति, अस्थिसिराश्च नैव भवन्तीति।।११।।

है स्थिर सुंदर रूप जिनका । समचतुरस्र है पूज्य संस्थान कहिये शरीराकार जिनका ते, समचतुरस्रोरु संस्थाना कहिये यथास्थान न्यूनाधिक रहित अवयवनिकरि संपूर्ण अैसा है द्रव्यप्रमाण जिनका, कनकमिव कहिये सुवर्ण ज्यों निरुपलैपाः कहिये मलतैं रहित, निर्मलगात्राः कहिये निर्म्मल है शरीर जिनका, सुगंध कहिये सर्व घ्राण इंद्रियकूं आनंदकारी है । निश्वास कहिये उच्छ्वास जिनकै ते सुगंध निश्वास कहिये । इहां अैसा संबंध है—सुवर्ण ज्यों निर्लेप (जिनका शरीर मल-मूत्र पसीना आदि से रहित है), निर्मल गात्र, सुगंध-निश्वास, अनादि-पर चारु रूप, समचतुरस्रोरु-संस्थान देव होय हैं ।।१०।।

आगै देवनि के संस्थान विषैं सप्तधातु होय हैं कहा (क्या) ? अैसी आशंका होतै निराकरणरूप कथन कहै हैं—

अर्थ–केशा कहिये मस्तक, भ्रकुटी, नेत्र, नासिका, श्रोत्र, कांख गुह्यादि प्रदेश तिनके बाल । नखा कहिये हाथ, पांव, अंगुली के अग्रभाग विषैं उपजै श्मश्रूणि कहिये दाढी, मूँछनि के बाल, लोमनि कहिये सर्व शरीर विषैं ऊपजे सूक्ष्मबाल । चर्म कहिये मांस-हाड़ की आछादनहारी त्वचा । वसा कहिये मांस-अस्थि विषैं प्राप्त भया अैसा स्निग्ध रस । रुधिर, मल, मूत्र, इहां च शब्द है सो अन्य जो वीर्य पसेव, छायादिक तिनके समुच्चय के अर्थि हैं । नैव कहिये पूर्वोक्त समस्त नियमकरि नांही होय हैं । अस्थीनि कहिये संहनन के कारण, नांही सिरा कहिये नसा-जाल नांही ।

याका समुदाय रूप अर्थ अैसा—देवनि के शरीर के संस्थान विषैं केश, नख, अश्रु, रोम, चर्म, वसा, रुधिर मूत्र, पुरीष, शुक्र, प्रस्वेदादिक नांही होय है, बहुरि अस्थि सिरा नांही होय हैं ।।११।।

१. क० सम्पूर्णद्रव्य- ।

शरीरगतपुद्गलातिशयं प्रतिपादयन् देहमाह—

वरवण्णगंधरसफासादिव्वबहुपोग्गलेहिं णिम्माण ।
गेण्हदि देवो [1]देहं सुचरिदकम्माणुभावेण ।।१२।।

वरा: श्रेष्ठा वर्णरसगंधस्पर्शा येषां ते वरवर्णगन्धरसस्पर्शास्ते च ते दिव्यबहुपुद्गलाश्च तैर्वर्णगन्धरसस्पर्शदिव्यानन्तपुद्गलै: सर्वगुणविशिष्टवैक्रियिकशरीरवर्गणागतानन्तपरमाणुभि:, **णिम्मामं**–निर्मितं सर्वावयवरचितं, **गेण्हदि**–गृह्णाति स्वीकरोति, **देवो**–देव:, **देहं**[2]–शरीरं, **सुचरिदकम्माणुभावेण**–स्वेन चरितमर्जितं तच्च तत्कर्म च सुचरितकर्म तस्यानुभावो माहात्म्यं तेन स्वचरितकर्मानुभावेन पूर्वार्जितशुभकर्मप्रभावेन । देवो वरवर्णगन्धरसस्पर्शदिव्यबहुपुद्गलनिर्मितं शरीरं गृह्णाति ।।१२।।

अथ देवानां त्रयाणां शरीराणां मध्ये कतमद्भवतीत्यारेकायामाह—

वेउव्वियं सरीरं देवाणं माणुसाण संठाणं ।
सुहणाम पसत्थगदी सुस्सरवयणं सुरूवं च ।।१३।।

वेउव्वियं–अणिमादिलक्षणा विक्रिया तस्यां भवं सैव प्रयोजनं वा वैक्रियिकं सूक्ष्मादिभावेन नाना शरीरविकरणसमर्थं विविधगुणर्द्धियुक्तं वा शरीरं आत्मप्रवृत्त्युपचितपुद्गलपिण्ड:, **देवाणं**–देवानां, **माणुसाण**–मनुष्याणां मनुष्यजातिकर्मोदयवतां, **संठाणं**–संस्थानं सर्वावयवसम्पूर्णता, **सुहणाम**–शुभं शोभनं नाम संज्ञानुभावो वा यस्य तच्छुभनाम प्रशस्तनामकर्मोदयवत्, पसत्थगदी प्रशस्ता शोभना गतिर्गमनं यस्य स: प्रशस्तगति: मृदुमंथरविलासादिगुणसंयुक्तं,

---

आगैं शरीर विषैं प्राप्त पुद्गल का अतिशय हैं, ताहि प्रतिपादन करते देह का कथन करै हैं ।

अर्थ–श्रेष्ठ है वर्ण, गंध, रस, स्पर्श जिनकैं अैसे दिव्य प्रचुर पुद्गल सर्व गुण विशिष्ट वैक्रियिक शरीर वर्गणागत अनंत परमाणुनिकरि निर्मितं कहिये सर्व अवयवनिकरि रच्या-अैसा सरीर हैं, ताहि देव हैं, सो अपने उपार्जे कर्मके प्रभावकरि गृण्हाति कहिये अंगीकार करैं हैं। इहां समुदायार्थ अैसा—पूर्वोपार्जित शुभकर्म के प्रभावकरि देव हैं सो श्रेष्ठ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श दिव्य बहुल पुद्गल निकरि रच्या शरीर है, ताहि ग्रहण करै हैं ।।१२।।

आगैदेवनिकैं तीन शरीरनिकै मध्य कौंन सा शरीर है ? अैसी आशंका होतैं आचार्य कहै हैं—

अर्थ–अणिमादिक हैं लक्षण जाका सो विक्रिया है, तिस विषैं भया वा सो ही है प्रयोरज जाका सो वैक्रियिक है । सूक्ष्मादि भावकरि नाना शरीर की विक्रिया विषैं समर्थ वा नाना गुण अर ऋद्धिकरि युक्त शरीरं कहिये आपकी प्रवृत्ति अर्थि संचित पुद्गल पिंड सो अैसा शरीर देवनिकै होय है । देवों का यह शरीर मनुष्य जाति कर्म का उदय है विद्यमान जिनकै अैसे मनुष्यनिका संस्थानं कहिये सर्व अवयवनि की संपूर्णता है मनुष्यों के सदृश होता है शोभन सो शोभन स्वर, रूप, गतियुक्त सो देवन कै प्रथम संस्थान जो समचतुरस्र जाननां ।

नाम कहिये संज्ञा अनुभाव जाकैं ।

भावार्थ–प्रशस्त नामकर्म का उदय युक्त सो प्रशस्त नाम है । प्रशस्त कहिये शोभनीक है गति कहिये गमन जाकै सो प्रशस्त गति है । कोमल, मंथर भारी जे विलासादि गुण तिनकरि संयुक्त, शोभन है स्वर जाकै सो सुस्वर अैसा है वचन जाका, सोभन है रूप जाकै सो

१-२. क० वोदिं ।

सुस्सरवयणं–शोभन: स्वरो यस्य तत् सुस्वरवचनं, **सुरूवं**–सुरूपं शोभनं च रूपं यस्य तत् सुरूपं, चशब्देनान्यदपि गीतनृत्तादि गृह्यते यत एवं ततो यद्यपि केशनखादिरहितं तथापि न बीभत्सरूपं यतो देवानां वैक्रियिकं शरीरम् । संस्थानं पुन: किं विशिष्टम् ? शुभनाम प्रशस्तगति: सुस्वरवचनं सुरूपं मनुष्याणा-मिवास्य केशनखाद्याकार: सर्वोपि विद्यत एव सुवर्णशैलप्रतिमानमिवेति ।।१३।।

न केवलं देवानां वैक्रियिकं शरीरं किन्तु नारकाणामपि यद्येवं तदेव तावत्प्रतिपादनीयमित्याशंका प्रमाणपूर्वकं नारकदेहस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

पढमाए पुढवीए णेरइयाणं तु होइ उस्सेहो ।
सत्तधणु तिण्ण रयणी छच्चेव य अंगुला होंति ।।१४।।

पढमाए–प्रथमायां रत्नप्रभायां, **पुढवीए**–पृथिव्यां, **णेरइयाणं**–नारकाणां, तुशब्द: स्वविशेषग्राहक: तेनान्यदपि द्वादशप्रस्ताराणां शरीरप्रमाणं वेदितव्यं, **होद**–भवति, **उस्सेहो**–उत्सेध: शरीरप्रमाणं, **सत्तधणु**–सप्तधनूंषि, **तिण्णि रयणी**–त्रिरत्नयो हस्तत्रयं, **छच्चेव**–षडेव शब्द: समुच्चयार्थ:, **अंगुला**–अंगुलानि, **होंति**–भवन्ति अष्टयवनिष्पन्नमंगुलं चतुर्विंशत्यंगुलैर्हस्तश्चतुर्हस्तं धनु: । नारकाणां प्रथमपृथिव्यां त्रयोदशप्रस्तारे विक्रान्ताख्ये शरीरस्योत्सेध: सप्त धनूंषि हस्तत्रयं षडंगुलानि इति प्रथमे पुन: सीमन्तकाख्ये प्रस्तारे त्रयो हस्ता नारकशरीरस्योत्सेधो मुखं सप्त धनूंषि हस्तत्रयं षडंगुलानि भूमि:, भूमेर्मुखं विशोध्य शुद्धशेषस्य द्वादशभिर्भागैर्हृते इच्छया गुणिते लब्धे मुखसहिते प्रथमवर्जितद्वादशप्रस्ताराणां नारकशरीरप्रमाणमागच्छतीति । तथा

सुरूप है । 'च' शब्दकरि अन्य हू गीत, नृत्यादि ग्रहण करणां । जातैं अैसे हैं, तातैं यद्यपि केश, नखादिकरि रहित देवनिका शरीर है, तौहू वीभत्स रूप नांही है । जातैं देवनि कैं वैक्रियिक शरीर है संस्थान । बहुरि कैसा है ? शुभनाम, प्रशस्तगति, सुस्वर वचन, सुरूप-यह मनुष्यनि की ज्यौं है । यातैं केश-नखादिक का आकार सर्व ही नियमकरि विद्यमान है । जैसैं सुवर्ण-पाषाण की प्रतिमा कै केश, नखादिक का आकार हैं ।।१३।।

केवल देवनि कैं वैक्रियिक शरीर नांही कहा है, नारकनि कै हू हैं, जो अैसे हैं तो सो ही प्रथम ही प्रतिपादन करवे जोग्य हैं । अैसी आशंका होतैं प्रमाणपूर्वक नारकदेह का स्वरूप है ताहि प्रतिपादन करतैं आचार्य कहै हैं—

अर्थ–प्रथम अैसी जो रत्नप्रभा पृथिवी ता विषैं नारकनिका इहां 'तु' शब्द है, सो अपने विशेष का ग्राहक है । तिसकरि औरहू द्वादश प्रस्तरनिका मध्य विषैं शरीर का प्रमाणजानना उत्सेध: कहिये शरीर का प्रमाण (ऊँचाई) सप्त धनुष, त्रिरत्न कहिये तीन हाथ षडेव च इहां च शब्द समुच्चयार्थ है । ता करि छह ही अंगुल प्रमाण है । आठ जव (जौ) प्रमाण सो अंगुल है । चौबीस अंगुलनि करि हस्त होय है। च्यार हाथ सो धनुष है । नारकनि कै प्रथम पृथिवी विषैं विक्रांत नाम तेरहमां पाथडे (प्रस्तार) विषैं शरीर का उत्सेध सातु धनुष, तीन हाथ, छह अंगुल प्रमाण जाननां । बहुरि सीमंतक नाम प्रथम पाथडे (प्रस्तार) विषैं नारकनि कै शरीर की उच्चता तीन हाथ है सो मुख जाननां। सात धनुष तीन हाथ छह आंगुल भूमि जाननी । भूमि तैं मुख का प्रमाण जो तीन हाथ सो घटाय अवशेष प्रमाणकूं वारा (१२) का भाग दीये इछा (इच्छाराशि) करि गुणित अैसा लब्ध मुख सहित होत संतै प्रथम प्रस्तार करि वर्जित जे बारह प्रस्तरनि कैं नारक शरीर का प्रमाण आवै है ।

अैसें ही नर नाम द्वितीय प्रस्तर विषैं एक धनुष एक हाथ साढी आठ आंगुल नारकनिकैं शरीर का उत्सेध है । रोरुक नाम तीसरे पाथडे विषैं शरीर का । उत्सेध एक धनुष तीन हाथ सतरह अंगुल है । भ्रांत नाम चौथे पाथडे विषैं नारक शरीर का उत्सेध दोय धनुष दोय

नरनाम्नि द्वितीयप्रस्तारे एकं धनुरेको हस्तः सार्द्धान्यष्टांगुलानि च नारकाणां शरीरोत्सेधः तृतीयप्रस्तारे रोरुकनामधेये शरीरस्योत्सेध एकं धनुस्त्रयो हस्ताः सप्तदशैवांगुलानि । चतुर्थप्रस्तारे भ्रान्तसंज्ञके नारकतनोरुत्सेधो द्वे धनुषी द्वौ हस्तौ सार्द्धमंगुलम् । पंचमप्रस्तार उद्भ्रान्तनाम्नि दण्डत्रयं दशांगुलानि तनोरुत्सेधः। षष्ठप्रस्तारे संभ्रान्तसंज्ञके धनुषां त्रयं द्वौ हस्तावंगुलान्यष्टादश सार्द्धानि च । सप्तमप्रस्तारेऽसंभ्रांताख्ये कार्मुकचतुष्टयमेको हस्तस्त्रीण्यंगुलानि च शरीरोत्सेधः । अष्टप्रस्तारे विभ्रान्ताख्ये कोदण्डचतुष्टयं हस्तत्रयमेकादशांगुलानि सार्द्धानि तनोरुत्सेधः । नवमप्रस्तारे त्रस्तनामनि कार्मुकाणां पंचकमेको हस्तोऽङ्गुलानि च विंशतिः शरीरोत्सेधः । दशमप्रस्तारे त्रसितनामके षड्धनूंषि सार्द्धांगुलचतुष्कं च शरीरप्रमाणम् । एकादशप्रस्तारे वक्रान्ताख्ये धनुषां षट्कं हस्तद्वितयं त्रयोदशांगुलानि च । द्वादशप्रस्तारे चावक्रांताख्ये धनुषां सप्तकं सहितमेकविंशत्या सार्द्धांगुलेन च तनोः प्रमाणम् । त्रयोदशप्रस्तारे विक्रान्ते सप्त [1]चापा हस्तत्रयं षडंगुलानि च शरीरोत्सेधः । प्रथमे तु सीमन्तके प्रस्तारे हस्तत्रयमिति शरीरं प्रथमपृथिव्यां शरीरप्रमाणमेतदिति ।।१४।।

द्वितीयायां च पृथिव्यां नारकशरीरप्रमाणं प्रतिपादयन्नाह—

विदियाए पुढवीए णेरइयाणं तु होइ उस्सेहो ।
पण्णरस दोण्णि बारस धणु रदणी अंगुला चेव ।।१५।।

विदियाए–द्वितीयायां द्वयोः पूरणी द्वितीया तस्यां, **पुढवीए–**पृथिव्यां शर्कराख्यायां, **णेरइयाणं–**नारकाणां, तुशब्दः संगृहीताशेषोत्सेधविशेषः, **होदि–**भवति, **उस्सेहो–**उत्सेधः शरीरोत्सेधप्रमाणं, **पण्णरस–**पंचदश, **दोण्णि–**द्वौ, **बारस–**द्वादश, **धणु–**धनूंषि, **रदणी–**रत्नयः हस्ताः, **अंगुला चेव–**

हाथ ड्योढ आंगुल है । उद्भ्रान्त नाम पंचम पाथडे विषैं तीन धनुष दस अंगुल शरीर का उत्सेध है । संभ्रान्त नाम छठे पाथडे विषैं तीन धनुष दोय हाथ साढा अठारह अंगुल है । असंभ्रान्त नाम सातवें पाथडे विषैं च्यार धनुष एक हाथ तीन आंगुल शरीर का उत्सेध है । विभ्रान्त नाम आठवें पाथडे विषैं च्यार धनुष तीन हाथ साढा ग्यारह अंगुल शरीर का उत्सेध है । त्रस्त नाम नवम पाथडे विषैं पांच धनुष एक हाथ बीस आंगुल शरीर का उत्सेध है । त्रसित नाम दशमें पाथडे विषैं छह धनुष साढा च्यार आंगुल शरीर का प्रमाण है । विक्रान्त नाम ग्यारमे पाथडे विषै छह धनुष दोय हाथ तेरह आंगुल शरीर का उत्सेध है । बहुरि अवक्रांत नाम बारवें (१२वें) पाथडे विषैं सात धनुष साढा इकवीस अंगुल शरीर का प्रमाण है । विक्रांत नाम तेरवें पाथडे विषैं सात धनुष तीन हाथ छह आंगुल प्रमाण शरीर का उत्सेध है। प्रथम सीमंतक नाम पाथडे विषैं तीन हाथ का शरीर है । प्रथम नरक पृथिवी विषैं यह शरीर का प्रमाण जानना ।।१४।।

आगैं द्वितीय पृथिवी विषैं नारक शरीर का प्रमाण है, ताहि प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–द्वितीय शर्करा नाम पृथिवी विषैं नारकनि का सरीर का उत्सेध-प्रमाण पंचदश धनुष, दोय हाथ, बारह अंगुल ग्यारवें पाथडे विषैं है । इस गाथा विषैं 'तु' शब्द है सो ग्रहण कीया है समस्त उत्सेध का विशेष जानै ऐसा है । इहां हू मुख भूमि विषैं विशेष करि उत्सेध का भाग दीये इच्छाकरि गुणित बहुरि मुखकरि सहित सर्व प्रस्तारनिका प्रमाण जाननां । सो कहिये हैं—

इहां द्वितीय पृथिवी विषैं ग्यारह पाथडे हैं । तहां स्तरक (सूरसूरक) नाम पहले पाथडे विषैं नारकनि का शरीर का उत्सेध आठ धनुष, दोय हाथ, दोय आंगुल, एक आंगुल का ग्यारवां भाग ऐसै दोय भाग प्रमाण है । स्तनक नाम द्वितीय पाथडे विषैं नारकनि का उत्सेध नवधनुष, बाईस अंगुल, बहुरि च्यारि एकादश भाग है (अर्थात् एक अंगुल के ग्यारह भागों में से चार भाग प्रमाण है) । मनक नाम

---

१. क० चापानि ।

अंगुलानि चैव, यथासंख्येन संबन्धः । द्वितीयायां पृथिव्यामेकादशे प्रस्तारे नारकाणामुत्सेधः पंचदश धनूंषि द्वौ हस्तौ द्वादशांगुलानि । अत्रापि मुखभूमिविशेषं कृत्वोत्सेधे हृते इच्छागुणितं मुखसहितं च सर्वप्रस्ताराणां प्रमाणं वक्तव्यम् । तद्यथा । अत्रैकादशप्रस्ताराणि भवन्ति—तत्र प्रथमप्रस्तारे [1]सूरसूरकनाम्नि नारकाणामुत्सेधोऽष्टौ धनूंषि हस्तद्वयं द्वावेकादशभागावंगुलद्वयं च । द्वितीयप्रस्तारे स्तनकनाम्नि नारकोत्सेधो नव दण्डा द्वाविंशत्यंगुलानि चतुरेकादशभागाः। तृतीयप्रस्तारे मनकनामधेये नव धनूंषि त्रयो हस्ता अष्टादशांगुलानि षडेकादशभागानि चोत्सेधः । चतुर्थप्रस्तारे [2]नवकसंज्ञके नारकोत्सेधः दश दण्डा द्वौ हस्तौ चतुर्दशांगुलानि साष्टैकादशभागानि । पंचमप्रस्तारे घाटनामके एकादशदण्डा हस्तश्चैकादशांगुलानि दशैकादशभागाश्च शरीरोत्सेधः । षष्ठप्रस्तारे नारकशरीरोत्सेधो द्वादशः दण्डाः सप्तांगुलानि तथैकादशभागाश्च सप्तमप्रस्तारे जिह्वाख्ये द्वादश दण्डा हस्तत्रयं त्रीण्यंगुलानि त्रय एकादशभागाश्चोत्सेधः। अष्टमप्रस्तारे जिह्विकाख्ये नारकोत्सेधस्त्रयोदश दण्डा एको हस्तस्त्रयोविंशत्यंगुलानि पञ्चैकादश भागाश्च । नवमप्रस्तारे लोलाख्ये नारकोत्सेधश्चतुर्दश दण्डा एकोनविंशतिरंगुलानां सप्तैकादशभागाश्च । दशमप्रस्तारे लोलुपाख्ये नारकोत्सेधश्चतुर्दश धनूंषि त्रयो हस्ताः पंचदशांगुलानि नवैकादश भागाश्च । एकादशप्रस्तारे स्तनलोलुपनामधेये नारकशरीरोत्सेधः पंचदश दण्डा द्वौ हस्तौ द्वादशांगुलानि चेति ।।१५।।

तृतीयायां वालुकाप्रभायां [3]नारकोत्सेधं व्यावर्णयन्नाह—

तदियाए पुढवीए णेरइयाणं तु होइ उस्सेहो ।
एकत्तीसं च धणू एगा रदणी मुणेयव्वा ।।१६।।

तदियाए–तृतीयायां, **पुढवीए**–पृथिव्यां वालुकाख्यायां, **णेरइयाणं**– नारकाणां, **तु**–विशेषः, **होइ**–भवति, **उस्सेहो**–उत्सेधः, **एकत्तीसं च**–एकत्रिंशच्च एकेनाधिका त्रिंशत् , **धणु**–धनूंषि, **एगा**–एका, **रदणी**–रत्निर्हस्तः, **मुणेयव्वा**–ज्ञातव्या । तृतीयायां पृथिव्यां नवमप्रस्तारे नारकाणा-

---

तीसरे पाथडे विषैं नव धनुष तीन हाथ अठारह अंगुल छह एकादश भाग उत्सेध है । नवक नाम चौथे पाथडे विषैं नारकनि का उत्सेध दश-धनुष दोय हाथ चोदह अंगुल आठ एकादश भाग है । घाटक नाम पंचम प्रस्तर विषैं ग्यारह धनुष, एक हाथ, दश अंगुल, बहुरि दश एकादशं भाग सरीर का उत्सेध है । संघाटक नाम छठे पाथडे विषैं नारक शरीर का उत्सेध बारह धनुष सात अंगुल, एक अंगुल का ग्यारवां भाग है । (जिव्हा नाम सातवें पाथडे विषैं बारह धनुष, तीन हाथ, तीन अंगुल, बहुरि तीन एकादश भाग उत्सेध है । जिव्हक नाम आठवें पाथडे विषैं नारकनिका उत्सेध तेरह धनुष, एक हाथ, तेवीस अंगुल, बहुरि पंच एकादश भाग है । लोलनाम नोमे (नवम) पाथडे विषैं नारकनिका उत्सेध चौदह धनुष, उगणीस अंगुल, बहुरि सात एकादश भाग हैं । लोलुप नाम दसम पाथडे विषैं नारकनि का उत्सेध चौदह धनुष तीन हाथ पंदरह आंगुल, बहुरि नवएकादश भाग है । स्तन लोलुप नाम ग्यारवें पाथडे विषैं नारक शरीरनिका उत्सेध पंदरह धनुष दोय हाथ बारह अंगुल है । ।।१५।।

आगैं-वालुका प्रभा नाम तीसरी पृथिवी विषैं नारक शरीरनिका प्रमाण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–वालिका (बालुका) नाम तीसरी पृथिवी विषैं नोमे पाथडे विषैं नारकनिका उत्सेध इकतीस धनुष, एक हाथ-जानना अवशेष पाथडेनि विषैं नारकीनि के शरीर का प्रमाण पूर्वै कह्या तैसैं नारकनिका प्रमाण इहां हू मुखभूमि विशेषकरि नव उत्सेधी करि भाग दीया इछाकरि गुणित द्वितीय पृथिवी का उत्कृष्ट नारकोत्सेध है, मुख सहितकरि ल्यावना सो ही कहै है । तप्त नाम प्रथम पाथडे विषैं नारकनि का उत्सेध

---

१. क० स्तरक-नाम्नि । २. क० वनक । ३. क० नारकशरीरप्रमाणमाह ।

मुत्सेधो धनुषामेकत्रिंशदेका रत्निश्च ज्ञातव्या इति । शेषं सूचितं नारकप्रमाणमत्रापि मुखभूमिविशेषं कृत्वा नवोत्सेधभजितमिच्छया गुणितं द्वितीयपृथिव्युत्कृष्ट-नारकोत्सेधमुखसहितं च कृत्वा नेयं । तद्यथा—प्रथमप्रस्तारे तप्ताख्ये नारकोत्सेधः सप्तदश दण्डा एको हस्तो दशांगुलानि द्वौ त्रिभागौ च । द्वितीयप्रस्तारे तापनामनि नारकोत्सेधो दण्डानामेकोनविंशतिर्नवांगुलानि त्रिभागश्च । तृतीयप्रस्तारे तपननाम्नि नारकोत्सेधो विंशतिर्दण्डास्त्रयो हस्ता अंगुलानि चाष्टौ । चतुर्थप्रस्तारे तापनाख्ये शरीरोत्सेधो द्वाविंशतिर्धनुषां द्वौ हस्तौ षडंगुलानि द्वौ त्रिभागौ च । पंचमप्रस्तारे निदाघाख्ये चतुर्विंशतिचापाः[१] पंचांगुलानि एको हस्तस्त्रिभागश्चैकः । षष्ठप्रस्तारे प्रज्वलिताख्ये नारकोत्सेधः षड्विंशतिर्धनुषां चत्वारि चांगुलानि । सप्तमेन्द्रके ज्वलितसंज्ञके नारकोत्सेधः सप्तविंशतिचापास्त्रयो[२] हस्ता द्वे अंगुले त्रिभागौ च द्वौ । अष्टमप्रस्तारे संज्वलनेन्द्रके एकोनत्रिंशदुत्सेधो धनुषां हस्तद्वयमेकांगुलमेकस्त्रिभागश्च । नवमे च प्रस्तारे प्रज्वलितसंज्ञे एकत्रिंशत्को दण्डा हस्तश्चैको नारकोत्सेध इति ।।१६।।

चतुर्थ्यां च पृथिव्यां [३]नारकशरीरप्रमाणमाह—

चउथीए पुढवीए णेरइयाणं तु होइ उस्सेहो ।
बासट्ठी चेव धणू वे रदणी होंति णायव्वा ।।१७।।

चउथीए–चतुर्णां पूरणी चतुर्थी तस्यां चतुर्थ्यां, **पुढवीए**–पृथिव्यां पंकप्रभायां, नारकाणामुत्सेधो भवति द्वाभ्यामधिका षष्टिर्धनुषां द्वे चारत्नी द्वौ च हस्तौ ज्ञातव्यौ । चतुर्थपृथिव्यां सप्तमप्रस्तारेन्द्रके नारकोत्सेधप्रमाणमेतत् सेन्द्रको नारकोत्सेधस्तृतीयपृथिवीनारकाणामुत्कृष्टशरीरप्रमाणं मुखं कृत्वा

सतरह धनुष, एक हाथ, दश आंगुल बहुरि दोय-तीन भाग है । तपित (ताप) नाम दूसरे पाथडे विषैं नारकनिका उत्सेध । उगणीस धनुष, नव आंगुल, बहुरि आंगुल का तीसरा भाग है तपन नाम तीसरे पाथडे विषै नारकनि का उत्सेध वीस धनुष, तीन हाथ, आठ आंगुल है । तापन नाम चोथे पाथडे विषैं शरीर का उत्सेध वाईस धनुष दोय हाथ छह अंगुल बहुरि दोय तीन भाग है निदाघ नाम पांचवे पाथडे विषैं चोईस धनुष एक हाथ पांच अंगुल बहुरि एक त्रिभाग है ।

ज्वलित नाम सातवें इंद्रक विषैं नारकनि का उत्सेध सत्ताईस धनुष, तीन हाथ, दोय अंगुल, बहुरि दोयतीन भाग है । संज्वलन नाम आठवें पाथडे विषैं गुणतीस (२९) धनुष, दोय हाथ, एक अंगुल, बहुरि एक त्रिभाग है । बहुरि संज्वलित नाम नोमे पाथडे विषैं इकतीस धनुष, एक हाथ नारकनि का उत्सेध है ।।१६।।

आगै चौथी पृथिवी विषैं नारकनिका उत्सेध है, ताहि वर्णन करते संतै कहै हैं—

अर्थ–पंकप्रभा चौथी पृथिवी विषैं सातवें पाथडे विषैं बासठि धनुष, वहुरि दोय हाथ प्रमाण नारकनि का शरीर का उत्सेध जाननां। तृतीय पृथिवी के नारकनिका उत्कृष्ट शरीर प्रमाण है, ताहि मुखकरि बहुरि सप्तम पाथडे विषैं नारकनि का उत्सेध है, ताहि भूमि करि, भूमि विषैं मुखकूं घटाय तिन विषैं अवशेष रह्या, ताहि सप्त उत्सेधकरि भाजित इछाकरि गुणित मुख सहित करि कहणां, सोही कहिये हैं— प्रथम पाथडे विषै आरनाम इंद्रक विषैं पैंतीस धनुष, दोय हाथ, वीस आंगुल, चार सात भाग हैं ।

दूसरे पाथडे मैं तार नाम इंद्रक विषैं चालीस धनुष, सतरह आंगुल बहुरि एक सात भाग है । मारनाम तीसरे पाथडे विषैं चवालीस धनुष, दोय हाथ, तेरह आंगुल, बहुरि पांच सात भाग है । वर्चस्क नाम चौथे पाथडे विषैं नारकनिका उत्सेध गुणचास धनुष, दश आंगुल,

१. क० चापानि । २. क० चापानि । ३. क० नारकोत्सेधं व्यावर्णयन्नाह ।

सप्तमप्रस्तारनारकोत्सेधं भूमिं च कृत्वा तयोर्विशेषं चोत्सेधभाजितेच्छागुणितं मुखसहितं कृत्वा वाच्यस्तद्यथा—प्रथमप्रस्तारे आरसंज्ञकेन्द्रके पंचत्रिंशद्धनुषां द्वौ हस्तौ विंशतिरंगुलानां सप्तभागाश्चत्वार: । द्वितीयप्रस्तारे ताराख्येन्द्रके चत्वारिंशद्दण्डा: सप्तदशांगुलानि सप्तभागाश्च पंच । तृतीयप्रस्तारे मारसंज्ञके चतुश्चत्वारिंशद्दण्डा: द्वौ हस्तौ त्रयोदशांगुलानि सप्तभागाश्च पंच । चतुर्थप्रस्तारे वर्चस्काख्ये नारकोत्सेध एकोनपंचाशद्धनुषां दशांगुलानि द्वौ च सप्तभागौ। पंचमप्रस्तारे तमकनामधेये धनुषां त्रिपंचाशत् द्वौ च हस्तौ षडंगुलानि षट् सप्तभागा: । षष्ठप्रस्तारे षडनामधेये नारकोत्सेधो धनुषामष्टापंचाशत् त्रीण्यंगुलानि त्रयश्च सप्तभागा: । सप्तमप्रस्तारे षडषडाख्येन्द्रके नारकोत्सेधश्चोक्तो द्वाषष्टिर्धनुषां हस्तौ च द्वाविति ।।१७।।

पंचमपृथिव्यां नारकोत्सेधं प्रकटयन्नाह—

पंचमिए पुढवीए णेरइयाणं तु होइ उस्सेहो ।
सदमेगं पणवीसं धणुप्पमाणेण णादव्वं ।।१८।।

पंचमायां पृथिव्यां धूमप्रभानामधेयायां नारकाणामुत्सेधो भवति, **सदं**–शतशेकं, **पणवीसं च**–पंचविंशत्यधिकं, **धणुप्पमाणेण**–धनु:प्रमाणेन ज्ञात्व्यम् । पंचमायां पृथिव्यां पंचमेन्द्रके नारकाणामुत्सेधो धनुषां प्रमाणन शतमेकं पंचविंशत्युत्तरं ज्ञातव्यमिति । अत्राप्येतद्भूमिं पूर्वोक्तं मुखं च कृत्वा विशेषं च पंचकोत्सेधभाजितमिच्छया गुणितं मुखसहितं कृत्वा शेषेन्द्रकाणां नारकाणामुत्सेधो वाच्य: । तत्र प्रथमप्रस्तारे तमोनाम्नि नारकोत्सेध: पंचसप्ततिदण्डा: । द्वितीयप्रस्तारे भ्रमनामके नारकोत्सेधो धनुषां सप्ताशीतिदण्डा द्वौ हस्तौ च । तृतीय प्रस्तारे रूपसंज्ञके चेन्द्रके नारकोत्सेधो धनुषां शतमेकम्। चतुर्थप्रस्तारेऽन्वयसंज्ञके नारकोत्सेधो धनुषां द्वादशोत्तरं शतं हस्तद्वयं च । पंचमप्रस्तारे तमिस्रसंज्ञके धनुषां पंचविंशत्युत्तरशतमिति ।।१८।।

षष्ठ्यां पृथिव्यां नारकोत्सेधमाह—

छट्ठीए पुढवीए णेरइयाणं तु होइ उस्सेहो ।
दोण्णि सदा पण्णासा धणुप्पमाणेण विण्णेया ।।१९।।

बहुरि दोय सात भाग है । तमक नाम पंचम पाथडे विषैं त्रेपन धनुष दोय हाथ छह आंगुल छह सात भाग है । षडनाम छठे पाथडे विषैं नारकनिका उत्सेध अठावन धनुष तीन आंगुल बहुरि तीन-सात भाग है । षडषड् नाम सातवें पाथडे विषैं नारकनिका उत्सेध सूत्रोक्त बासठि धनुष दोय हाथ है ।।१७।।

आगै पंचम पृथिवी विषैं नारकनिका उत्सेध है, ताहि प्रगट करते संते कहै हैं—

अर्थ–धूमप्रभा नाम पंचम पृथिवी विषैं नारकनिका उत्सेध एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण जांणवे जोग्य है । इहां हू इस प्रमाणकूं भूमि करि बहुरि पूर्वोक्त चतुर्थ पृथिवी कूं मुखकरि भूमि मैं मुख घटाय अवशेष है, ताहि पांच उत्सेध करि भाजित, इछाकरि गुणित, मुख सहितकरि अवशेष इंद्रकनि के नारकनिका उत्सेध कहणां । तहां तमोनाम पहले पाथडे विषैं नारकनि का उत्सेध पिचहत्तरि धनुष है । भ्रम नाम दूसरे पाथडे में विषैं नारकनि का उत्सेध सत्यासी धनुष बहुरि दोय हाथ है । (रूप) नाम तृतीय पाथडे में विषैं रूप नाम इंद्रक विषैं नारकनि का उत्सेध सौ धनुष जाननां अंधक (अन्वय) नाम चौथे पाथडे विषैं नारकनि का उत्सेध एक सौ बारह धनुष, बहुरि दोय हाथ है। तमिस्र नाम पाँचवे पाथडे विषैं एक सौ पच्चीस धनुष है ।।१८।।

आगैं छठी पृथिवी विषैं नारकनि का उत्सेध है, ताहि कहै है—

अर्थ–तम:प्रभा नाम छट्ठी पृथिवी विषैं तीसरे पाथडे विषैं नारकनि का उत्सेध दोय सैं पच्चास धनुष प्रमाण करि जाननां । इहां

छट्ठीए–षण्णां पूरणी षष्ठी तस्यां, **पुढवीए**–पृथिव्यां, **णेरइयाणं तु**–नारकाणां तु, **होदि**–भवति, **उस्सेहो**–उत्सेधः, **दोण्णि सदा**–द्वे शते धनुषां शतद्वयं, **पण्णासा**–पंचाशदधिकं, **धणुप्पमाणेण**–धनुषां प्रमाणेन, **विण्णेया**–विज्ञेये । षष्ठ्यां पृथिव्यां तमःप्रभायां तृतीयप्रस्तारे नारकाणामुत्सेधो धनुषां प्रमाणेन द्वे शते पंचाशदधिके विज्ञेये । अत्रापि मुखभूमिविशेषादिक्रमं कृत्वा शेषेन्द्रकनारकाणामुत्सेध आनेयस्तद्यथा तमःप्रभायां प्रथमप्रस्तारे हिमनाम्नीन्द्रके नारकाणामुत्सेधः षट्षष्ट्याधिकं धनुषां शतं द्वौ हस्तो षोडशांगुलानि च । द्वितीये प्रस्तारे वर्दलनाम्नीन्द्रके धनुषां शतद्वयमष्टाधिकं हस्तश्चैकोऽष्टावंगुलान्यपि। तृतीयप्रस्तारे लल्लकनामेन्द्रके नारकोत्सेधः सूत्रोपात्तधनुषां शतद्वयं पंचाशदधिकं विज्ञेयमिति ।।१९।।

सप्तम्यां पृथिव्यां नारकोत्सेधप्रमाणमाह—

सत्तमिए पुढवीए णेरइयाणं तु होइ उस्सेहो ।
पंचेव धणुसयाइं पमाणदो चेव बोधव्वो ।।२०।।

सत्तमिए–सप्तमयां, **पुढवीए**–पृथिव्यां महातमःप्रभायां, **णेरइयाणं तु**–नारकाणां तु, **होइ उस्सेहो**–भवत्युत्सेधः, **पंचेव धणुसयाइं**–पंचैव धनुःशतानि, **पमाणदो चेव**–प्रमाणतश्चैव नान्यत्, **बोधव्वा**–बोद्धव्यानि । सप्तम्यां महातमप्रभायामवधिस्थानकेन्द्रकनाम्नि नारकाणामुत्सेधः प्रमाणतः पंचैव धनुःशतानि नाधिकानीति । एवं सर्वासु पृथिवीषु स्वकीयेन्द्रकप्रतिबद्धेषु श्रेणिविश्रेणिबद्धेषु पुष्पप्रकीर्णकेषु च नारकाणामुत्सेधः स्वकीयेन्द्रनारकोत्सेधसमानो वेदितव्यः । प्रथमायां पृथिव्यां प्रथम प्रस्तारे सीमन्तकेन्द्रकनाम्नि महादिक्षु श्रेणीबद्धनरकाण्येकोनपंचाशदेकोनपंचाशदिति । विदिक्षु चाष्टचत्वारिंशदष्टचत्वारिंशदिति । एवमष्टावष्टौ हानिं कृत्वा तावन्नेतव्यं यावदवधिस्थानस्य चत्वारि दिक्षु श्रेणिबद्धानीति । प्रथमायां पृथिव्यां त्रिंशल्लक्षाणि नारकाणां तान्येव

हूं मुख भूमि विशेषादि क्रमकरि अवशेष इंद्रनि के नारकनिक उत्सेध ल्यावणां, सो ही कहै है । तमःप्रभा विषैं प्रथम प्रस्तर मैं हिम नाम इंद्रक विषैं नारकनि का उत्सेध एक सौ छयाछट्ठि धनुष, दोय हाथ, बहुरि सोलह आंगुल है । दूसरे पाथडे मैं वद्दल नाम इंद्रक विषैं दोय सैं आठ धनुष, एक हाथ, बहुरि आठ आंगुल है । तीसरे पाथडे मैं लल्लक नाम इंद्रक विषैं नारकनिका उत्सेध दोय सै पंचास धनुष जाननां ।।१९।।

आगैं सातवीं पृथिवी विषैं नारकनिका प्रमाण है, ताहि कहै है—

अर्थ–महातमः-प्रभा नाम सातवीं पृथिवी विषैं अवधिस्थान इंद्रक विषैं नारकनिका उत्सेध पांच सैं धनुष प्रमाण निश्चयकरि जाननां, अधिक नांही । असैं समस्त पृथिवी विषैं अपनैं-अपनैं इंद्रककरि प्रतिबद्ध विषैं श्रेणी, विश्रेणी बद्धनि विषैं बहुरि पुष्पप्रकीर्णक विषैं नारकनिका उत्सेध अपनें इंद्रक नारकनिके उत्सेध समान जाननां ।

प्रथम पृथिवी विषैं पहले पाथडे मै सीमंतक नाम इंद्रक विषैं महादिसानि विषैं श्रेणीबद्ध नरक गुणचास-गुणचासा (४९-४९) है। बहुरि विदिससानि विषैं अड़तालीस-अड़तालीस हैं । असैं आठ-आठ घटायतते तै प्रमाण करणां । जेतैं अंत का च्यारू दिशानि के श्रेणीबद्धनिका प्रमाण होय । पहली पृथिवी विषैं तीस लाख नरक हैं । ते ही श्रेणीबद्ध इंद्रक करि रहित पुष्प प्रकीर्ण कहै दूसरी पृथिवी विषैं पचीस लाख नरक है । ते ही श्रेणीबद्ध इंद्रककरि रहित पुष्प प्रकीर्णक हैं । तीसरी पृथिवी विषैं पंदरह लाख नरक हैं । चौथी पृथिवी विषैं दश लाख नरक हैं । पांचवी पृथिवी तीन लाख नरक हैं । छट्ठीं पृथिवी विषैं पांच घाटि एक लाख नरक हैं । सातवीं पृथिवी विषैं पांच ही नरक है। सर्वत्र श्रेणीबद्ध इन्द्रक रहित पुष्प प्रकीर्णक जांनने । असैं प्रमाण वर्णन कीये संते । देह (शरीर) काहू वर्णन कीया जानना । तिनकै अभेद हैं यातें बहुरि गुणगुणी कै अभेद हैं यातै । तातैं दोष नांही । देह का स्वरूपनांही कहि प्रमाण का कहनां । नारकनिका शरीर ग्लानि रूप

श्रेणिबद्धेन्द्रकरहितानि पुष्पप्रकीर्णकानि । द्वितीयायां पंचविंशतिलक्षा नारकाणां तान्येव श्रेणिबद्धेन्द्रकरहितानि पुष्पप्रकीर्णकानि । तृतीयायां पंचदशलक्षा नारकाणाम् । चतुर्थ्यां दशलक्षा नारकाणाम् । पंचम्यां लक्षत्रयं नारकाणाम् । षष्ठ्यां पंचोनं लक्षं नारकाणाम्। सप्तम्यां पंचैव नारकाणि । सर्वत्र श्रेणिबद्धेन्द्रकरहितपुष्पप्रकीर्णकानीति प्रमाणं व्यावर्णितं देहोऽपि व्यावर्णितस्तदव्यतिरेकाद्गुणगुण्यभेदेन[1] ततो न दोषो देहस्वरूपमकथयित्वा प्रमाणस्य कथने। नारकाणां शरीरं बीभत्सं दुर्गन्धि वैक्रियिकं सर्वाशुभपुद्गलैर्निष्पन्नं सर्वदुःखकारणं हुण्डकसंस्थानमशुभनाम दुःस्वरवदनं कृमिकुलादिसंकीर्णमिति ।।२०।।

देवानां शरीरं व्यावर्णितं न तत्प्रमाणमतस्तदर्थमाह—

पणवीसं असुराणं सेसकुमाराण दस धणू चेव ।
वितरजोइसियाणं दस सत्त धणू मुणेयव्वा ।।२१।।

भवनवासिवानव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिभेदेन देवाश्चतुर्विधा भवन्ति । तत्र भवनवासिनां तावत्प्रमाणं व्यावर्णयति—**पणवीसं**–पंचभिरधिका विंशतिः पंचविंशतिः, **असुराणं**–असुरकुमाराणां, **सेसकुमाराण**–शेषकुमाराणां नागविंद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराणां, **दस धणू**–दश दण्डाः । चशब्दः समुच्चयार्थस्तेन सामानिकवायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकानामेतदेव प्रमाणं शरीरस्य वेदितव्यम् । व्यंतराः किंनरकिंपुरुषगरुड[2]गन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः, **जोइसियाणं**–ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च व्यन्तराश्च ज्योतिष्काश्च व्यन्तरज्योतिष्कास्तेषां व्यन्तरज्योतिष्काणाम्, **दस सत्त धणू**–दश सप्त धनूंषि यथासंख्येन व्यन्तराणां दश धनूंषि ज्योतिष्काणां च सप्त धनूंषि सामानिकत्रायस्त्रिंशलोकपालवर्जितशेषनिकायानां च शरीरस्योत्सेधो ज्ञातव्य इति । भवनवासिनो दशप्रकारा भवन्ति—तत्र प्रथमप्रकारस्यासुरकुमारसंज्ञकस्य सामानिकादिसहितस्य शरीरोत्सेधः पंचविंशतिर्धनुषामुत्कृष्टः, नागकुमाराणां विद्युत्कुमाराणां सुपर्णकुमाराणामग्निकुमाराणां वातकुमाराणां स्तनित-

---

है, दुर्गंध है, वैक्रियिक है, सर्व अशुभ पुद्गलनिकरि रच्या है । सर्व दुःखानि का कारण है । हुंडक संस्थान है । अशुभ है नाम जाका, दुष्ट है स्वर अर मुख जाका, कृमि कुलादिकरि संकीर्ण है ।।२०।।

आगैं देवनिका शरीर वर्णन कीया, तिसका प्रमाण नांही कह्या, यातैं तिसके प्रमाण के अर्थि कहै हैं—

अर्थ–भवनवासी वा व्यंतर ज्योतिष्क कल्पवासी भेदकरि देव च्यार प्रकार हैं । तहां प्रथम भवनवासीनिका प्रमाण है, ताहि वर्णन करै है । असुर कुमारनिका देह पांच अधिक बीस जो पचीस सो पचीस धनुष प्रमाण है । शेषकुमाराणां कहिये अवशेष कुमार जे नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमारादिक कुमारनिका देह दशधनुष प्रमाण जाननां । इहां 'च' शब्द है सो समुच्चयार्थ है, ताकरि सामानिक, त्रायत्रिंशत, पारिषत्, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, अभियोग्य, किल्विषक-इनिके शरीर का यह ही प्रमाण जाननां । व्यंतरा कहिये किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच बहुरि ज्योतिष्काः कहिये सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्र, प्रकीर्णक, तारक, व्यंतर और ज्योतिष्क—इनिका देहप्रमाण दश धनुष यथासंख्यकरि जानना । सामानिक, त्रायस्त्रिंशत, लोकपालवर्जित शेष निकाय का शरीर का उत्सेध या प्रकार जाननां—भवनवासी दश प्रकार हैं । तहां सामाजिक आदिकरि सहित असुर कुमार है संज्ञा जाकी अैसा प्रथम प्रकार भवनवासीनिका शरीर का उत्सेध उत्कृष्ट पचीस धनुष का है ।

नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, आदिककुमार

१. क० गुणगुण्यभेदाच्च । २. ग्रन्थान्तरों में गरुड के स्थान पर महोरग नाम प्रसिद्ध है ।

कुमाराणामुदधिकुमाराणां द्वीपकुमाराणां दिक्कुमाराणां सामानिकादिभेदभिन्नानां च दश दण्डाः शरीरस्योत्सेधः । व्यन्तराणामष्टप्रकाराणां स्वभेदभिन्नानां दश धनूंधि शरीरस्योत्सेधः । ज्योतिष्काणां च पंचप्रकाराणां स्वभेदभिन्नानां सप्त दण्डाः शरीरस्योत्सेधो ज्ञातव्य इति ।।२१।।

एते तिर्यग्लोके व्यवस्थितस्तद्द्वारेणैव तिरश्चां च वक्ष्यमाणत्वादुल्लंघ्य प्रमाणं मनुष्याणां तावदुत्कृष्टं प्रमाणमाह—

छद्धणुसहसुस्सेधं चदु दुगमिच्छंति भोगभूमीसु ।
पणवीसं पंचसदा बोधव्वा कम्मभूमीसु ।।२२।।

छद्धणुसहस्स–षड् धनुषां सहस्राणि, **उस्सेधं**–उत्सेधं शरीरप्रमाणं, **चदु**–चत्वारि सहस्राणि धनुषां, **दुगं**–द्वे सहस्रे धनुषां, **इच्छंति**–अभयुपगच्छन्ति, पूर्वाचार्या भोगभूमिषु दशप्रकारकल्पपादपोपलक्षितासु । **पणवीसं**–पंचविंशतिः, **पंचसदा**–पंचशतानि च धनुषां, **बोधव्वा**–बोद्धव्यानि ज्ञातव्यानि कर्मभूमिषु पंचसु भरतैरावतविदेहेषु । भोगभूमिषूत्कृष्टमध्यमजघन्यासु मनुष्याणामुत्सेधं यथासंख्येन षट् चत्वारि सहस्राणि द्वे च सहस्रे धनुषामिच्छन्ति, कर्मभूमिषु च मनुष्याणामुत्कृष्टमुत्सेधं शतपंचकं पंचविंशत्यधिकमिच्छन्तीति ।।२२।।

प्राधान्याद् देवानां कल्पवासिनां तावदुत्सेधमाह—

सोहम्मीसाणेसु य देवा खलु होंति सत्तरयणीओ ।
छच्चेव य रयणीओ सणक्कुमारे हि माहिंदे ।।२३।।

सोहम्मीसाणेसु य–सुधर्मा [1]नाम्नी सभा तस्यां भवः सौधर्म इन्द्रस्तेन सहचरितं विमानं कल्पो वा, सौधर्मश्चैशानश्च सौधर्मैशानौ तयोः

सामानिक आदि भेद युक्त तिनका शरीर का उत्सेध दश धनुष है । अपने भेद युक्त अष्ट प्रकार व्यतंरनिका शरीर का उत्सेध दश धनुष है। बहुरि अपनैं भेद युक्त पंचप्रकार ज्योतिषीनिका शरीर का उत्सेध सात धनुष जाननां ।।२१।।

ए भवनत्रिकदेव हैं, तो तिरजंच लोकविषैं स्थित हैं । तातैं तिस द्वारही करि तिरंजचनिका वक्ष्यमाणपणां है, यातैं प्रमाण का उल्लंघनकरि मनुष्यनिका उत्कृष्ट प्रमाण है, ताहि कहैं हैं—

अर्थ–पूर्वाचार्य जै हैं ते दश प्रकार कल्पवृक्षनिकरि चिह्नित, भोगभूमि जे हैं तिन विषैं उत्सेधं कहिये शरीर का प्रमाण है । ताहि छह सहस्र (६०००) धनुष, च्यारि सहस्र धनुष, दोय सहस्र धनुष कहै हैं ।

कर्म्मभूमि-जे पंचभरत, पंचऐरावतं, पंचविधेह हैं तिन विषैं शरीर का प्रमाण है । ताहि पाँच सै पचीस धनुष कहै हैं । उत्कृष्ट भोग-भूमि विषैं छह सहस्र धनुष शरीर का उत्सेध है । मध्यम भोगभूमि विषैं च्यार सहस्र धनुष शरीर का उत्सेध है । जघन्य भोगभूमि विषैं दोय सहस्र शरीर का उत्सेध है । बहुरि कर्मभूमि विषैं पांच सै पचीस धनुष मनुष्यनिका शरीर का उत्सेध है ।।२२।।

आगै देवनि मैं कल्पवासी देवनि की प्राधान्यता है, यातैं प्रथम तिनका उत्सेध है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–सुधर्मा जो देवसभा ता विषैं उपजैं सौ-सौ धर्म कहिये । ऐसा जो इंद्र ताकरि सहचरित विमाण वा स्वर्ग सो सौधर्म कहिये। सौ धर्म और ऐशानते सौ धर्मैशाने कहिये । श्रेणीबद्ध प्रकीर्णककरि सहित ऐसे सौ धर्म्म ऐशान हैं, तिनविषैं इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशत्,

---

१. क० नाम ।

सौधर्मैशानयो: श्रेणिबद्धप्रकीर्णकसहितयो:, **देवा**–देवा इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्मरक्षलोकपालनीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिका:, **खल**–स्फुटं, **सत्तरयणीओ**–सप्त हस्ता:, **छच्चेव**–षडेव च, **रयणीओ**–रत्नयो हस्ता:, **सणक्कुमारे**–सनत्कुमारे च, **माहिंदे**–माहेन्द्रे । सौधर्मैशानयो: कल्पयोर्देवा इन्द्रादय: शरीरप्रमाणेन सप्तहस्ता भवन्ति, सनतत्कुमारमाहेन्द्रयोश्च कल्पयोश्च देवा इन्द्रादय: षड्रत्नय: प्रमाणेन भवन्तीति ।।२३।।

शेषकल्पेषु देवोत्सेधं प्रतिपादयन्नाह—

बंभे य लंतवे वि य कप्पे खलु होंति पंच रयणीओ ।
चत्तारि य रयणीओ सुक्कसहस्सारकप्पेसु ।।२४।।

बंभे–ब्रह्मकल्पे, **लंतवे वि य**–लान्तवकल्पे, कल्पशब्द: प्रत्येकमभिसंबध्यते । **खलु**–स्फुटं व्यक्तं सर्वमेतत्, **होंति**–भवन्ति । **पंचरयणीओ**–पंचरत्नय: । देवा इत्यनुवर्तते । तेन सह संबन्ध: सर्वत्र द्रष्टव्य: । **चत्तारि य**–चतस्रश्च, **रयणीओ**–रत्नयो हस्ता:, **सुक्क**–शुक्रकल्पे, **सहस्सार**–सहस्रारकल्पे, अत्रापि कल्पशब्द: प्रत्येमभिसंबध्यते । उपलक्षणमात्रमेतत्तेनान्येषां ब्रह्मोत्तरकापिष्ठमहाशुक्रशतारसहस्रारकल्पानां ग्रहणं द्रष्टव्यम् । श्रेणिबद्धप्रकीर्णकानां च । ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु च चतुर्षु कल्पेषु देवा इन्द्रादय: पंचहस्ता: प्रमाणेन भवन्ति, तथा शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु च चतुर्षु कल्पेषु देवा इन्द्रसामानिकादयश्च चत्वारो हस्ता: शरीरप्रमाणेन भवन्तीति ।।२४।।

आनतादिदेवप्रमाणमाह—

आणदपाणदकप्पे अद्धुद्धाओ हवंति रयणीओ ।
तिण्णेव य रयणीओ बोधव्वा आरणच्चुदे चापि ।।२५।।

आणद–आनतकल्पे, **पाणद**–प्राणतकल्पे, कल्पशब्द: प्रत्येकमभिसंबध्यते, **अद्धुद्धाओ**–अर्द्धाधिकास्तिस्रो रत्नयस्त्रयो हस्ता हस्तार्द्धं च, **हवन्ति**–भवन्ति, **रयणीओ**–रत्नय: । **तिण्णेव**–तिस्रश्च, **रयणीओ**–रत्नय:, बोद्धव्या: ज्ञातव्या:, **आरणच्चुदे चावि**–आरणाच्युतयोरपि आरणकल्पेऽच्युतकल्पे

पारिषत्, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, अभियोग्य, किल्विषिक—अैसे देव हैं, ते प्रगटपनै सात हाथ प्रमाण हैं । सनत्कुमार बहुरि माहेंद्र स्वर्ग विषैं इन्द्रादिक देव हैं, ते छह हाथ प्रमाण हैं ।।२३।।

आगैं अवशेषकल्प हैं, तिन विषैं देवनि का उत्सेध है, ताहि प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–ब्रह्मकल्प विषैं, बहुरि लांतव कल्प विषैं । इहां 'कल्प' शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां । प्रगटपनै यह सर्वज्ञ का मत है। पंचरत्नय: कहिये पांच हाथ प्रमाण है शरीर का उत्सेध जिनका अैसे देव हैं । इहां देव की अनुवृत्ति करणी ताकरि सर्वत्र संबंध जाणनां । शुक्रकल्प विषैं सहस्रारकल्प विषैं इहां हूं, 'कल्प' शब्द है, सो प्रत्येक संबंध करणां । यह उपलक्षण मात्र है ताकरि अन्य हू ब्रह्मोत्तर, कापिष्ट, महाशुक्र, शतार सहस्रार कल्पनिका ग्रहण जानना । बहुरि श्रेणीबद्ध अर प्रकीर्णक का ग्रहण जाननां । इहां समुदायार्थ अैसा जाननां। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट—च्यारि स्वर्गनि विषैं इंद्रादिक देव पांच हाथ प्रमाण हैं । तथा शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार—च्यारि कल्पनि विषैं देवा कहिये इंद्र सामानिकादिक च्यारि हाथ प्रमाण हैं ।।२४।।

आगै आनत आदि स्वर्गनि विषैं देवनि का प्रमाण है ताहि कहै हैं—

अर्थ–आनतकल्पविषैं बहुरि प्राणतकल्प विषैं, इहां कल्प शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां, अर्द्ध अधिक तीन हाथ प्रमाण । देवनिका

च आनतप्राणतकल्पयोर्देवा इन्द्रादयस्त्रयो हस्ता अर्द्धाधिका: शरीरप्रमाणेन बोद्धव्या:, आरणाच्युतकल्पयोश्च देवा इन्द्रादयस्त्रयो हस्ता: शरीरप्रमाणेन बोद्धव्या इति ।।२५।।

नवग्रैवेयकदेवशरीरं प्रतिपादयन्नाह—

हेट्ठिमगेवज्जेसु य अड्ढाइज्जा हवंति रयणीओ ।
मज्झिमगेवज्जेसु य वे रयणी होंति उस्सेहो ।।२६।।

हेट्ठिमगेवज्जेसु य–अधोग्रैवेयकेषु अधो व्यवस्थिता वै ये त्रयो ग्रैवेयककल्पास्तेषु, **अड्ढाइज्जा–**अर्द्धाधिकं रत्निद्वयं तृतीयार्द्धसहिते रत्नी वा भवत:, **मज्झिमगेवज्जेसु–**मध्यमग्रैवेयकेषु च मध्यमप्रदेशस्थितेषु त्रिषु ग्रैवेयकेषु, **वे रदणी–**द्वे रत्नी द्वौ हस्तौ, **हवन्ति–**भवत:, **उस्सेहो–**उत्सेध: शरीरप्रमाणम् । नव ग्रैवेयककल्पा भवन्ति तत्राधोध: एक: कल्प: अधोमध्यमो द्वितीय: कल्प: अधउपरि तृतीय: कल्पस्तेषु कल्पेषु त्रिषु देवा अहमिन्द्रा अर्द्धाधिकौ द्वौ हस्तौ प्रमाणेन भवन्ति, तथाऽधोमध्यम: कल्प एक: मध्यमध्यमकल्पो द्वितीय: मध्यमोपरि कल्पस्तृतीय एतेषु त्रिषु कल्पेषु देवा अहमिन्द्रा द्विहस्तोत्सेधा भवन्तीति ।।२६।।

उपरिमग्रैवेयकदेवशरीरोत्सेधमनुत्तरदेवोत्सेधं चाह—

उवरिमगेवज्जेसु य दिवड्ढरयणी हवे य उस्सेहो ।
अणुदिसणुत्तरदेवा एया रयणी सरीराणि ।।२७।।

उवरिमगेवज्जेसु य–उपरिमग्रैवेयकेषूपरिप्रदेशव्यवस्थितेषु त्रिषु ग्रैवेयककल्पेषु, **दिवड्ढरयणी–**अर्द्धाधिकरत्नि: हस्तोपरं च हस्तार्द्धं, **हवे य–**भवेत्, **उस्सेहो–**उत्सेध: । उपर्यध एक: कल्प:, उपरिममध्यमो द्वितीय: कल्प:, उपर्युपरि तृतीय: कल्प:, एतेषु त्रिषु ग्रैवेयककल्पेषु देवानां शरीरोत्सेध एको हस्तो हस्तार्द्धं च ।यद्यपि सविकल्पा विद्यन्तेऽत आगमतस्ते ज्ञातव्या इति । **अणुदिस–**अनुदिशकल्पे नवसु विमानेषु, **अणुत्तर–**अनुत्तरकल्पे च पंचसु

शरीर है । आरणकल्प विषैं, अच्युत कल्पविषै इंद्रादिक देव शरीर प्रमाणकरि तीन हाथ प्रमाण जाननें ।।२५।।

आगै नवग्रैवेयकनि विषैं देवनिका शरीर प्रमाण ताहि कहै हैं—

अर्थ–अधोग्रैवेयकेषु कहिये नीचे तिष्ठते जे तीन ग्रैवेयक कल्प हैं । तिन विषैं अर्द्ध अधिक दोय हाथ हैं । बहुरि मध्यम ग्रैवेयकेषु कहिए मध्यम प्रदेशनि विषैं तिष्ठते अैसे तीन ग्रैवेयकनि विषैं दोय हाथ शरीर का उत्सेध है । नवग्रैवेयक कल्प है, तहां अधोध: एक कल्प, अधोमध्यम, द्वितीयकल्प, अध-उपरि तीसराकल्प—इनि तीन कल्पनि विषैं अहमिंद्र देव अर्द्ध अधिक दोय हाथ प्रमाण हैं । तैसें अधो मध्यम एक कल्प हैं, मध्यममध्यम द्वितीय कल्प, मध्यम-उपरिकल्प तृतीय है । इन तीन कल्पनि विषैं अहमिंद्र देव दोय हाथ का है उत्सेध जिनका अैसे हैं ।।२६।।

आगैं उपरिम ग्रैवेयकनि विषैं देव-शरीर का उत्सेध है, ताहि बहुरि अनुत्तर देवनिका उत्सेध है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–उपरिम प्रदेशनिविषैं तिष्ठते अैसे जे तीन ग्रैवेयककल्पतिन विषैं शरीर का उत्सेध अर्द्धाधिकरत्नि: कहिये एक हाथ अर आधा हाथ अैसा जो ड्योढ हाथ सो है । उपरि तीन ग्रैवेयककल्प विषैं एक उपरि-अध: कल्प, द्वितीय उपरिम मध्यमकल्प, उपरि-उपरितृतीय कल्प

विमानेषु अहमिन्द्रा, **एगा रयणी सरीराणि**–एकरत्निशरीरा एकहस्तदेहप्रमाणा:, अनुदिशानुत्तरकल्पयोश्चतुर्दशविमानेषु देवा एकहस्तशरीरोत्सेधा भवन्तीति।।२७।।

देवमनुष्यनारकाणां प्रमाणपूर्वकदेहस्वरूपं प्रतिपाद्य तिरश्चामेकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्तानां शरीरोत्सेधद्वारेण जघन्यदेहमाह—

भागमसंखेज्जदिमं जं देहं अंगुलस्स तं देहं ।
एइंदियादिपंचेंदियंतदेहं [१]पमाणेण ।।२८।।

भागं–भाग:, **असंखेज्जदिमं**–असंख्यात:, **जं देहं**–य उपचयो यावत्पिण्डो यत्परिमाणोऽङ्गुलस्य द्रव्यांगुलस्य, **तं देहं**–स उपचयस्तावान्पिण्डस्तत्परिमाण:। **एइंदियादि**–एकेन्द्रिय आदिर्येषां ते एकेन्द्रियादय:, **पंचेदियंत**–पंचेन्द्रियोन्ते येषां ते पंचेन्द्रियान्ता: । एकेन्द्रियादयश्च ते पंचेद्रियान्ताश्चैकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियान्तास्तेषां देह: शरीरमेकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियान्तदेह:, एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियाणां शरीरं, **जहण्णेण**–द्रव्यांगुलमसंख्यातखण्डं कृत्वा तत्रैकखण्डोपचयो यावान् देहो यन्मात्रस्तन्मात्रो देह: शरीरं जघन्येनैकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्तानामिति ।।२८।।

तेषामेवोत्कृष्टप्रमाणं प्रतिपादयन्नाह—

साहियसहस्समेयं तु जोयणाणं हवेज्ज उक्कस्सं ।
एयंदियस्स देहं तं पुण पउमत्ति णादव्वं ।।२९।।

साहिय–सहाधिकेन वर्त्तत इति साधिकं सक्रोशद्वयं, **सहस्समेयं तु**–सहस्त्रमेकं तु एकम् एकसहस्त्रं, **जोयणाणं**–योजनानां, **हवेज्ज**–भवेत्, **उक्कस्सं**–उत्कृष्ट, **एइंदियस्स**–एकेन्द्रियस्य, **देहं**–देह: शरीरं, **तं पुण**–स पुन:, **पउमत्ति णादव्वं**–पद्ममिति ज्ञातव्यम् । तेन पृथिवीकायादिवायुकायान्तानां

हैं । जो पणि ग्रैवेयकनि विषैं देव भेद सहित हैं, ते आगमतैं जाननैं । अनुदिश कल्प जे नवविमान विषैं, अनुत्तर कल्प पंचविमान तिन विषैं, अहमिंद्र देव एक हस्त प्रमाण हैं देह जिनका, अैसे हैं ।।२७।।

आगै देव मनुष्य, नारकनि का प्रमाणपूर्वक देह स्वरूप प्रतिपादन करि एकेंद्रिय आदि पंचेन्द्रिय परजंत तिरंजचनिका शरीर का उत्सेध द्वारकरि जघन्य देह का प्रमाण कहै हैं—

अर्थ–द्रव्यांगुल कैं असंख्यातवै भागप्रमाण जो देह सो देह एकेंद्रिय आदि पंचेन्द्रिय परजंत तिरजंचनिका जघन्यकरि जानना ।

भावार्थ–-एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेद्रिय, तिरजंचनिका देह जघन्यकरि द्रव्यांगुल का असंख्यात खंड करिये, तिस विषैं एक खंड प्रमाण शरीर जाननां ।।२८।।

आगै तिनही का उत्कृष्ट देह प्रमाण है, ताहि प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–एकैंद्रिय का उत्कृष्ट शरीर साधिकं कहिये दोय कोश अधिक योजनिका एक सहस्र है । सो बहुरि (वनस्पति कायिक में यह) कमल का जाननां । ताकरि पृथिवीकाय आदि वायुकाय परजंत, स्थावरनिका, बहुरि त्रसनिका इस प्रमाण मात्र देह का निराकरण जाननां । जो साधिक एक सहस्र जोजन-प्रमाण एकैंद्रिय का देह सो कमल नाम वनस्पतिकाय का जाननां । प्रमाण अर प्रमाणवान का अभेदकरि यह

---

१. क० जहण्णेण ।

त्रसानां चैतावन्मात्रस्य देहस्य निराकरणं द्रष्टव्यम् । योजनानां सहस्रमेकं साधिकं च तन्मात्र एकेन्द्रियस्य देहः स पुनर्देहो वनस्पतिसंज्ञकस्य पद्मस्य ज्ञातव्यः। प्रमाणप्रमाणवतोरभेदं कृत्वा निर्देश इति ।।२९।।

द्वीन्द्रियादीनामुत्कृष्टदेहप्रमाणमाह—

संखो पुण वारसजोयणाणि गोभी भवे तिकोसं तु ।
भमरो जोयणमेत्तं मच्छो पुण जोयणसहस्सं ।।३०।।

संखो पुण–शंखः पुनर्द्वीन्द्रियः, **वारसजोयणाणि–**द्वादशयोजनानि द्वादशयोजनो वा, **गोभी–**गोपालिका खर्जूरको वा, **भवे–**भवेत्, **तिकोसं तु–**त्रिकोशं तु त्रिकोशमात्रस्त्रीन्द्रियः, **ममरो–**भ्रमरो मधुकरश्चतुरिन्द्रियः, **जोयणमेत्तं–**योजनमात्रं गव्यूतिचतुष्टयमात्रः, **मच्छो–**मत्स्यः, **पुण–**पुनः, **जोयणसहस्सं–**योजनसहस्रः । द्वीन्द्रियाणां मध्ये उत्कृष्टदेहः शंखः स च द्वादशयोजनमात्रः, त्रीन्द्रियाणां मध्ये उत्कृष्टदेहो गोभी सा च क्रोशत्रयपरिमिता[1], चतुरिन्द्रियाणां मध्ये उत्कृष्टदेहो भ्रमरः स च योजनप्रमाणः, पंचेन्द्रियाणां मध्ये उत्कृष्टदेहो मत्स्यः स च योजनसहस्रायाम इति ।।३०।।

प्रमाणमपि प्रमाणसूत्रेण गृहीतं यतोऽतो जम्बूद्वीपस्यापि परिधिप्रमाणमाह—

जंबूदीवपरिहिओ तिण्णिव लक्खं च सोलहसहस्सं ।
बे चेव जोयणसया, सत्तावीसा य होंति बोधव्वा ।।३१।।
तिण्णेव गाउआइं अट्ठावीसं च धणुसयं भणियं ।
तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलमेव सविसेसं ।।३२।।

जम्बूद्वीपो योजनलक्षविष्कंम्भ एतावत्परिधिप्रमाणग्रहणस्यान्यथानुपपत्तेस्तस्य च ग्रहणं बहुप्रमाणविकल्पसंग्रहणं जम्बूद्वीपप्रमाणग्रहणं च स्वयंभूरमणद्वीपसमुद्रायामप्रमाणज्ञापनार्थं तयोश्च प्रमाणकथनमुत्कृष्टदेहप्रमाणैकेन्द्रियाद्यवस्थानज्ञापनार्थमित्यतो योजनलक्षं जम्बूद्वीपविष्कम्भवर्गं दशगुणं

कथन है ।।२९।।

आगै द्वींद्रियादिकनिका उत्कृष्ट शरीर-प्रमाण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–द्वींद्रियनि के मध्य-उत्कृष्ट देह शंख है । बहुरि सो संख द्वादश जोजन मात्र है । त्रींद्रियनि कै मध्य उत्कृष्ट देह गोभी कहिये गोपालिका वा खर्ज्जूरक (नामक कीड़ा) है, सो गोभी तीन कोश के विस्तार है । चतुरिंद्रियनिकैं मध्य, उत्कृष्ट देह भ्रमर है । सो भ्रमर एक जोजन प्रमाण है । पंचैंद्रियनि कै मध्य उत्कृष्ट देह मत्स्य (महामत्स्य) है, सो बहुरि एक सहस्र जोजन विस्तार जानना ।।३०।।

जातैं आयाम-प्रमाण हू प्रमाणसूत्रकरि गृहीत है, यातै आगै जंबूद्वीप की परिधि का प्रमाण है, ताहि कहै हैं—(युग्मम्)

अर्थ–लक्ष जोजन का है विस्तार जाका अैसा जंबूद्वीप है । इस गाथा सूत्र मैं कही सो तिस प्रमाण परिधि है । इस परिधिप्रमाण की अन्यथानुपत्ति है, यातैं ताका ग्रहण बहुत प्रमाण विकल्प के संग्रह कै अर्थि है । बहुरि जंबूद्वीप का प्रमाण ग्रहण है । सो स्वयंभूरमण द्वीप अर समुद्र का आयाम-प्रमाण जणावणे अर्थि है । बहुरि तिनि दोउनिका कथन प्रमाण है । सो उत्कृष्ट देहधारक जो एकैंद्रियादिक तिनके

---

१. क० त्रिकोशायामा ।

कृत्वा वर्गमूलं च गृहीत्वैव पठति;—**जम्बूदीवपरिहिओ**–जम्बूवृक्षोपलक्षितो द्वीपो जम्बूद्वीपोऽसंख्यातद्वीपसमुद्राणां मध्यनाभिरिव तदायत्तं सर्वेषां विष्कम्भायामपरिधिप्रमाणं, **परिहिओ**–परिधिः परिक्षेपो जम्बूद्वीपस्य परिधिर्जंबूद्वीपपरिधिः, **तिण्णेव लक्खं**–त्रीण्येव लक्षाणि, **सोलहसहस्सं**–षोडशसहस्राणि, **वे चेव जोयणसया**–द्वे चैव योजनानां शते, **सत्तावीसा य**–सप्तविंशतिश्च योजनानां सर्वत्र संबन्धः, **होति**–भवन्ति, **बोधव्वा**–बोद्धव्यानि। जम्बूद्वीपस्य परिधेः, प्रमाणं योजनानां त्रीणि लक्षाणि षोडशसहस्राणि, योजनानां द्वे च शते योजनानां सप्तविंशतिश्च । अथवा भेदेन निर्देशो जम्बूद्वीपपरिधिः योजनानां त्रीणि लक्षाणि षोडशसहस्राणि द्वे शते सप्तविंशतिश्चेति । **तथा तिण्णेव**–त्रीण्येव, **गाउआइं**–गव्यूतानि क्रोशाः, **अट्ठावीसं च**–अष्टाविंशतिश्च, **धणु**–धनुषां, **सदं**–शतं, **भणियं**–भणितं, **तेरस य**–त्रयोदशानि च, **अंगुलाइं**–अंगुलानि च, **अद्धंगुलमेव**–अर्धांगुलमेव च, **सविसेसं**–सविशेषो यवः सातिरेकः किंचिदेव तेन विशेषेण सह वर्त्तत इति सविशेषमर्द्धांगुलेन संबन्धः । त्रीणि गव्यूतानि धनुषां शतमष्टाविंशत्यधिकं त्रयोदशानि चांगुलानि सविशेषमर्द्धांगुलं चेति ।।३१-३२।।

जम्बूद्वीपमादिं कृत्वा कियतां द्वीपानां नामान्याह—

जंबूदीवो धादइसंडो पुक्खरवरो य तह दीवो ।
वारुणिवर खीरवरो य घिदवरो खोदवरदीवो ।।३३।।
णंदीसरो य अरुणो अरुणब्भासो य कुंडलवरो य ।
संखवर रुजग भुजगवर कुसवर कुंचवरदीवो ।।३४।।

जम्बूदीवो–जम्बूद्वीपः प्रथमो द्वीपः, **धादइसंडो**–धातकीखण्डो द्वितीयो द्वीपः, **पुक्खरवरो**–पुष्करवरस्तृतीयो द्वीपः, **तह**–तथा, **दीवो**–द्वीपः, **वारुणिवर**–वारुणीवरश्चतुर्थो द्वीपः, **खीरवरो**–क्षीरवरः पंचमो द्वीपः, **घिदवरो**–घृतवरः षष्ठो द्वीपः, **खोदवरो**–क्षौद्रवरः सप्तमो द्वीपः, **नंदीसरो य**–नंदीश्वरश्चाष्टमो द्वीपः, **अरुणो**–अरुणाख्यो नवमो द्वीपः, **अरुणभासो य**–अरुणभासश्च दशमो द्वीपः, **कुंडलवरो य**–कुण्डलवरश्चैकादशो द्वीपः, **संखवर**–शंखवरो द्वादशो द्वीपः, **रुजग**–रुचकस्त्रयोदशो द्वीपः, **भुजगवरो**–भुजगवरश्चतुर्दशो द्वीपः, **कुसवरो**–कुशवरः पंचदशो द्वीपः, **कुंचवरदीवो**–

आश्रय (अवस्थान) जणावणे अर्थि हैं । यातैं लक्षजोजन-प्रमाण जंबूद्वीप का विष्कंभ का वर्णन है । ताहि दश गुणितकरि, बहुरि वर्गमूलकूं ग्रहणकरि या प्रकार परिधि प्रमाणकह्या है । जंबूवृक्षकरि चिह्नित जो द्वीप सो जंबूद्वीप है, असंख्यात द्वीप समुद्रनिकै मध्य विषैं नाभि ज्यौं है । सर्वद्वीप-समुद्रनिका विष्कंभ आयाम-परिधि प्रमाण ताकैं आधीन है । परिधि परिक्षेप यह वलय के नाम हैं । जंबूद्वीप की परिधि सो जंबूद्वीप परिधि है । सो तीन लाख सोलह हजार दोय सै सत्ताइस, इहां जोजन का सर्वत्र संबंध जानना । तैसें तीन कोश एक सौ अठावीस धनुष, तेरह आंगुल बहुरि सविशेष अर्द्धअंगुल जो किंचित् अधिक एकयव सहित अर्द्धअंगुल जाननां ।

भावार्थ–जंबूद्वीप का परिधि का प्रमाण तीन लाख सोलह हजार दोय सैं सत्ताइस योजन, तीन कोस, एक सो अठाईस धनुष साढा तेरह आंगुलक्योंक अधिक एक यव (जौ) प्रमाण है ।।३१-३२।।

आगैं जंबूद्वीपकूं आदि करि केतेक द्वीपनि के नाम कहे हैं—

अर्थ–जंबूद्वीप प्रथम द्वीप है । धातकीखंड दूसरा द्वीप है । पुष्करवर तीसरा द्वीप है । तैंसें वारुणीवर चौथा द्वीप है । क्षीरवर पंचमद्वीप है । घृतवर छठा द्वीप है । क्षौद्रवर सातवां द्वीप है । बहुरि नंदीश्वर आठवां द्वीप है । अरुण नवमां द्वीप है । बहुरि अरुणभास दसवां द्वीप

क्रौंचवरद्वीपश्च षोडश इति ।।३३-३४।।

एवं नामानि गृहीत्वा विष्कम्भप्रमाणमाह—

एवं दीवसमुद्दा दुगुणदुगुणवित्थडा असंखेज्जा ।
एदे दु तिरियलोए सयंभुरमणोदहिं जाव ।।३५।।

एवम् अनेन प्रकारेण, **दीवसमुद्दा–**द्वीपसमुद्राः, **दुगुणदुगुणवित्थडा–**दुगुणो दुगुणो विस्तारो येषां ते द्विगुणद्विगुणविस्ताराः, कियंतः, **असंखेज्जा–**असंख्याताः संख्याप्रमितिक्रान्ताः[1]। जम्बूद्वीपविष्कम्भाल्लवणसमुद्रो द्विगुणविष्कम्भो लवणसमुद्राच्च धातकीखण्डद्वीपो द्विगुणविष्कम्भः । अनेन प्रकारेण द्वीपात्समुद्रो द्विगुणविस्तारः समुद्राच्च द्वीपः । अतः सर्वे द्वीपसमुद्रा द्विगुणद्विगुणविस्तार असंख्याता भवन्ति । ननु समुद्रग्रहणं कुतो लब्धम् ? द्वीपग्रहणात्, तदपि कुतः ? साहचर्यात्पर्वतनारदवत् । क्व व्यवस्थिता इत्याशंकायामाह—**एदे दु तिरियलोए–**एते तु द्वीपसमुद्रास्तिर्यग्लोके रज्जुमात्रायामे, कियद्दूरं ? **सयंभुरमणोदहिं जाव–**यावत्स्वयंभूरमणोदधिः । स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्ता असंख्याता द्वीपसमुद्रा द्विगुणद्विगुणविस्तारा द्रष्टव्या इति ।।३५।।

असंख्याता इति, तु न ज्ञायन्ते, कियन्त इत्यतस्तन्निर्णयमाह—

जावदिया उद्धारा अड्ढाइज्जाण सागरुवमाणं ।
तावदिया खलु रोमा हवंति दीवा समुद्दा य ।।३६।।

जावदिया–यावन्ति [2]यन्मात्राणि, **उद्धारा–**उद्धाराणि उद्धारपल्योपमानि तेषु यावन्ति रोमाणि, **अड्ढाइज्जाण–**अर्द्धतृतीययोर्द्वयोरर्धाधिकयोः,

---

है । कुंडलवर एकादशम द्वीप है । शंखवर बारवां द्वीप है । रुचक वर तेरवां द्वीप है । भुजगबर चौदहवांद्वीप है सो बहुरि कुशवर पंदरवां द्वीप है । बहुरि क्रौंचवर सोलहवां द्वीप है ।।३३-३४।।

अैसे नामनिकूं ग्रहणकरि विष्कभं प्रमाण है, ताहि कहै है—

अर्थ–या प्रकार द्वीप-समुद्र द्विगुण-द्विगुण है विस्तार जिनिका अैसे केते है ? असंख्याताः कहिये संख्या जो गणना का प्रमाण ताहि उल्लंघन करै, अैसे हैं । जंबूद्वीप के विष्कंभतैं लवण समुद्र द्विगुण विष्कंभ है । विष्कभं नाम विस्तार कौ है । बहुरि लवण समुद्रतैं धातकी खंड द्वीप द्विगुण विस्तार है । या प्रकारकरि द्वीपतैं समुद्र द्विगुण विस्तार है । बहुरि समुद्रतैं द्वीप द्विगुण विस्तार है । अैसे समस्त द्वीप समुद्र द्विगुण-द्विगुण है विस्तार जिनका अैसे असंख्यात हैं । कोउ पूछै है समुद्र का ग्रहण कैसें पाया ? द्वीप के ग्रहण तैं । सोहू कैसे पाया ? साहचर्यतैं । कौंन दृष्टांत ? पर्वत-नारद ज्यौं । ते द्वीप समुद्र कहाँ-कहाँ तिष्ठै हैं ? अैसी आशंका हौंते कहै है—ये द्वीप समुद्र एक राजू मात्र है विस्तार जाका अैसे तिरजंच लोक विषैं हैं । केती दूर ताईं है ? स्वयंभूरमण समुद्र परजंत हैं । द्वीप-समुद्र, द्विगुण-द्विगुण विस्तार युक्त जाननें ।।३५।।

असंख्यात केते होय है ? यह नाही जानिये है, यातैं ताके निर्णय के अर्थि कहै हैं—

अर्थ–अर्ध तृतीयोः कहिये अर्द्ध अधिक दोय जे अढाई अैसे सागरोपम जे हैं, तिन विषैं जेते रोम हैं तावन्मात्र प्रगटपनैं उद्धार पल्य

---

१. संख्यातप्रमाणमतिक्रान्ताः ग । २. यावन्मात्राणि क० ।

सागरूवमाण–सागरोपमयोः, **तावदिया**–तावन्तस्तन्मात्राः खलु—स्फुटं, **रोमा**–उद्धारेषु रोमाणि सुकुमारोरणरोमाग्राणि, **हवन्ति**–भवन्ति, **दीवा**–द्वीपाः **समुद्दा य**–समुद्राश्च । प्रमाणयोजनावगाहविष्कम्भायामं कूपं कृत्वा सप्तरात्रजातमात्रोरणरोमाग्रभागैः पूर्णं च कृत्वा तत्र यावन्मात्राणि रोमाग्राणि तावन्मात्राणि वर्षशतानि गृहीत्वा तत्र यावन्मात्राः समया व्यवहारपल्योपमं नाम । व्यवहारपल्योपमे चैकैकं रोम असंख्यातवर्षकोटीसमयमात्रान् भागान् कृत्वा वर्षशतसमयैश्चैकैकं खण्डं प्रगुण्य तत्र यावन्मात्राः समयाः तावन्मात्रमुद्धारपल्योपमं भवति । उद्धारपल्योपमानि च दशकोटीकोटीमात्राणि गृहीत्वैकं उद्धारसागरोपमं भवति । तावन्मात्रयोदर्वयोः सार्द्धयोः सागरोपमयोर्यावन्मात्राण्युद्धारपल्योपमानि तत्र च यावन्मात्राणि रोमाणि तावन्मात्राः स्फुटं द्वीपसमुद्रा भवन्तीति ।।३६।।

ननु द्वीपग्रहणेन च समुद्राणां ग्रहणं संजातं तत्र न ज्ञायन्ते किमभिधानास्त इत्याशंकायामाह—

जंबूदीवो लवणो धादइसंडे य कालउदधी य ।
सेसाणं दीवाणं दीवसरिसणामया उदधी ।।३७।।

जंबूद्दीवे–जम्बूद्वीपे, **लवणो**–लवणसमुद्रः, **धादइसंडे य**–धातकीखण्डे च, **कालउदधी य**–कालोदधिसमुद्रः, **सेसाणं**–शेषेषु जम्बूद्वीपधातकीखण्डवर्जितेषु, **दीवाणं**–द्वीपेषु द्विर्गता आपो येषां ते द्वीपा जलरहितमध्यप्रदेशास्तेषु द्वीपेषु, **दीवसरिसणामया**–द्वीपैः सदृशानि समानानि नामानि येषां ते द्वीपसदृशनामानः, **उदधी**–उदकानि धीयन्ते येषु त उदधयः समुद्राः । जम्बूद्वीपे लवणसमुद्रः, धातकीखण्डे च कालोदधिसमुद्रः, शेषेषु पुनर्द्वीपेषु ये समुद्रास्ते स्वकीयस्वकीयद्वीपनामसंज्ञका भवन्तीति ।।३७।।

विषैं रोमाणि कहिये सुकुमार उरणनि (मेढ़े के शिशु) के रोमाग्र हैं, ते ते द्वीप अर समुद्र हैं प्रमाण जोजन का है अवगाह विस्तार अर आयाम जाका अैसा कूपकरि बहुरि सप्तरात्र का उपज्या उरणां के रोमनि के अग्रभागिनि करि तिसकूं पूर्णकरि, तहां तावन्मात्र रोमाग्र हैं, तावन्मात्र वर्षनिके सैकरांनि कूं ग्रहणकरि तहां यावन्मात्र समय है, सो व्यवहार पल्योपम है । बहुरि व्यवहारपल्याकूं एक-एक रोम के असंख्यात वर्ष कोटि के समयमात्र खंडकरि, बहुरि सो वर्ष कै समयनि करि एक-एक खंडकूं गुणि तहा यावन्मात्र समय होय तावन्मात्र उद्धारपल्योपम हैं। बहुरि दश कोडाकोडी मात्र उद्धार-प्ल्योपमकूं ग्रहणकरि एक उद्धार सागरोपम होय हैं । बहुरि तावन्मात्र अढाई सागरोपमनि विषैं यावन्मात्र उद्धार पल्योपम है । बहुरि तहां यावन्मात्र रोम हैं तावन्मात्र प्रगटपनैं द्वीप समुद्र हैं ।।३६।।

आगैं प्रश्न—द्वीपनि के ग्रहणकरि समुद्रनिका ग्रहण भया तहां नांही जानियै हैं । समुद्रनिके नाम कौन से ? अैसी आशंका होतैं कहै हैं—

अर्थ–जंबूद्वीप विषैं लवण समुद्र है । बहुरि धातकी खंड विषैं कालोदधि समुद्र है । शेषेणु कहिये जंबूद्वीप धातकी खंडकरि रहित, द्वीपेषु कहिये गया है (समाप्त) है जल जिनका अैसे जलरहित मध्यप्रदेश द्वीप है तिनविषैं द्वीपनिकरि सदृश है नाम जिनके ते द्वीप, सदृशनामानः कहिये अैसे उदधयः कहिये रजल धारिये जिन विषैं अैसे समुद्र हैं ।

भावार्थ–जंबूद्वीप विषैं लवण समुद्र हैं । अर धातकीखंड विषैं कालोदधि समुद्र है । बहुरि शेष द्वीपनि विषैं जे समुद्र हैं, ते स्वकीय द्वीपनि के नामवंत है संज्ञा जिनकी, अैसे है ।।३७।।

७९

एते समुद्रा लवणोदादय: किं समानरसा[१] इत्याशंकायामाह—

पत्तेयरसा चत्तारि सायरा तिण्णि होंति उदयरसा ।
अवसेसा य समुद्दा खोद्दरसा होंति णायव्वा ।।३८।।

पत्तेयरसा–प्रत्येक: पृथक् पृथग् रस: स्वादो येषां ते प्रत्येकरसा भिन्नस्वादा:, **चत्तारि–**चत्वार:, **सायरा–**सागरा: समुद्रा:, **तिण्ण–**त्रय:, **होंति–**भवन्ति, **उदयरसा–**उदकरसा उदकं रसो येषां ते उदकरसा: पानीयरसपूर्णा: । **अवसेसा य–**अवशेषाश्चैतेभ्यो येऽन्ये, **समुद्दा–**समुद्रा:, **खोदरसा–**क्षौद्ररसा: इक्षो रस इव रसो येषां त इक्षुरसा मधुरसस्वादुपानीया:, **होंति–**भवन्ति, **णायव्वा–**ज्ञातव्या: । चत्वर: समुद्रा: प्रत्येकरसा: त्रय उदकरसा: समुद्रा:, शेषा: क्षौद्ररसा ज्ञातव्या भवन्तीति ।।३८।।

के प्रत्येकरसा: के चोदकरसा इत्याशंकायामाह—

वारुणिवर खीरवरो घदवर लवणो य होंति पत्तेया ।
कालो पुक्खर उदधी सयंभुरमणो य उदयरसा ।।३९।।

वारुणिवर–वारुणीवर: समुद्रो वारुणी मद्यविशेषस्तस्या रस इव रसो यस्य स वारुणीरसो वारुणीवर:, **खीरवरो–**क्षीरवर: क्षीरस्य रस इव रसो यस्य स क्षीररस: क्षीरवर:, **घदवर–**घृतवर: घृतस्य रस इव रसो यस्य स घृतरस:, **लवणो य–**लवणश्च लवणस्य रस इव रसो यस्य स लवणरस लवणसमुद्र:, **होंति–**भवन्ति, **पत्तेया–**प्रत्येकरसा:, एते चत्वारो वारुणीवरादय: समुद्रा भिन्नरसा भवन्तीति । **कालो–**काल:, **पुक्खर–**पुष्करवर:, **उदधी–**समुद्रौ, **सयंभुरमणो य–**स्वयंभूरमणश्च, **उदयरसा–**उदकरसा उदकं रसो येषां त उदकरसा:, कालोदधिपुष्करोदधी समुद्रौ स्वयंभूरमणश्चैते उदकरसा: । एतेभ्य पुनरन्ये क्षौद्ररसा: समुद्रा इति ।।३९।।

ए लवणोद आदि समुद्र कहा समान रस हैं, अक नांही ? अैसे पूछै ? कहै हैं—

अर्थ–प्रत्येकरसा: कहिये भिन्न-भिन्न है स्वाद जिनका अैसे च्यार समुद्र हैं । उदकरसा: कहिये उदक है रस जिनका पानीय रसकरि पूर्ण अैसे तीन समुद्र हैं । बहुरि अवशेषा: कहिये इनतैं अन्य समुद्र हैं ते क्षौद्ररसा: कहिये इक्षु के रसवत् है रस जिनका अैसैं मधुर रसवत् स्वादिष्ट हैं पानीय जिन विषैं अैसे जाणवे जोग्य है ।

भावार्थ–च्यार समुद्र प्रत्येक रस हैं । तीन समुद्र उदक सर हैं बहुरि शेष समुद्र क्षौद्ररस जानवै योग्य है । प्रत्येकरस कौंन ? बहुरि उदक रस कौंन ? अैसी आशंका होतै कहै हैं—

अर्थ–वारुणी जो मद्य विशेष, ताका रस की नांईं है रस जाका सो वारुणी रस कहिये । वारुणी वर समुद्र है सो वारुणी रस है। क्षीर जो दुग्ध ताका रस की नांईं है रस जाका सो क्षीर रस कहियै । क्षीरवर समुद्र है सो क्षीर रस है घृत का रस की नांईं है रस जाका, सो घृतरस कहिये । घृतबर समुद्र है सो घृतरस है । बहुरि लवण का रस की नांईं है रस जाका अैसा लवणोद समुद्र है, सो लवण रस है । ये वारुणी वर कूं आदि दे च्यारि समुद्र भिन्न रस हैं । काल: कहिये, कालोदधि, पुष्कर: कहिये पुष्करोदधि ये दोउ समुद्र । बहुरि स्वयंभूरमण, समुद्र—ये तीन उदकरस हैं। बहुरि इनतैं अन्य समुद्र हैं, तो क्षौद्ररसा कहिये ईक्षुरस हैं ।।३९।।

१. ख ग किं समानरसा नेत्याह ।

अथ केषु समुद्रेषु जलचराः सन्ति केषु च न सन्तीत्याशंकायामाह—

लवणे कालसमुद्दे सयंभुरमणे य होंति मच्छा दु ।
अवसेसेसु समुद्देसु णत्थि मच्छा य मयरा वा ।।४०।।

लवणे–लवणेसमुद्रे, **कालसमुद्दे–**कालसमुद्रे, **सयंभुरमणे य–**स्वयंभूरमणसमुद्रे च, **होंति मच्छा–**भवन्ति मत्स्याः, तुशब्दादन्ये जलचरा मत्स्यशब्दस्य चोपलक्षणत्वाद् उत्तरत्र मकरप्रतिषेधाच्च । **अवसेसेसु–**अवशेषेषु एतेभ्योऽन्येषु, **समुद्देसु–**समुद्रेषु, **णत्थि–**न सन्ति न विद्यन्ते, **मच्छा य–**मत्स्याश्च, **मयरा वा–**मकरा वा चशब्दादन्येऽपि जलचरा न सन्त्युपलक्षणमात्रात्वद्वा प्रतिषेधस्य । लवणसमुद्रे कालोदधौ स्वयंभूरमणसमुद्रे च मत्स्या मकरा अन्ये च जलचरा द्वीन्द्रियादयः पंचेन्द्रियपर्यन्ताः सन्ति, एतेभ्योऽन्येषु समुद्रेषु मत्स्या मकरा अन्ये च जलचरा द्वीन्द्रियादिपंचेन्द्रिय पर्यन्ताः जलचरा न सन्तीति ।।४०।।

अथ किंप्रमाणा जलचरा एतेष्वित्याशंकायामाह—

अट्ठारसजोयणिया लवणे णवजोयणा णदिमुहेसु ।
छत्तीसगा य कालोदहिम्मि अट्ठारस णदिमुहेसु ।।४१।।

अट्ठारसजोयणिया–अष्टादशयोजनानि प्रमाणं येषां तेऽष्टादशयोजनाः, **लवणे–**लवणेसमुद्रे, **णवजोयणा–**नवयोजनानि प्रमाणं येषां ते नवयोजनाः, **णदिमुहेसु–**नदीनां मुखानि नदीमुखानि तेषु नदीमुखेषु प्रदेशेषु गंगासिन्ध्वादीनां समुद्रेषु प्रवेशो नदीमुखम्[१] । **छत्तीसगा य–**षड्भिरधिकानि त्रिंशत् प्रमाणं येषां ते षट्त्रिंशत्काः षट्त्रिंशद्योजनप्रमाणाः, **कालोदहिम्मि–**कालोदधौ, **अट्ठारस–**अष्टादशयोजनप्रमाणा यद्यप्यत्र योजनशब्दो न श्रूयते

आगैं कौन सै समुद्रनि विषैं जलचर हैं अर कौन सै विषैं नांही है ? अैसी आशंका हों तैं कहैं है—

अर्थ–लवण-समुद्र विषैं, काल-समुद्र विषैं, बहुरि स्वयंभू रमण समुद्र विषैं मत्स्य है, तु शब्द तैं अन्य हू जलचर हैं । मत्स्य शब्द के उपलक्षणपणां है यातैं, बहुरि अगिले समुद्रनि विषैं मकर का प्रतिषेध है यातै, बहुरि अवशेषेषु कहिये इनतैं अन्य समुद्र जे हैं तिन विषैं मत्स्य वा मगर, च शब्दतैं अन्य हूं जलचर नांही हैं । प्रतिषेध के उपलक्षण मात्रपणां है यातैं ।

भावार्थ–लवण समुद्र विषैं, कालोदधि विषैं, बहुरि स्वयंभूरमण समुद्र विषैं मत्स्य, मगर बहुरि अन्य जलचर द्वींद्रियनिकूं आदि दे पंचैंद्रिय परजंत हैं । इनतैं अन्य समुद्रनि विषैं मत्स्य मगर, बहुरि अन्य द्वींद्रियनिकूं आदि दे पंचैंद्रिय परजंत जलचर नांही है ।।४०।।

आगै इन समुद्रिनि विषैं केती अवगाहना के जलचर हैं अैसी आशंका हौंते कहैं है—

अर्थ–लवण समुद्र विषैं अष्टादश योजनाः कहिये अठारह जोजन है प्रमाण जिनका, अैसे मत्स्य हैं । नदीमुखेषु कहिये नदी जे गंगा, सिंधु आदिक नदी तिनका समुद्रनि विषैं प्रवेशनि का प्रदेश तिनि विषैं, नव योजननाः कहिये नव योजन है प्रमाण जिनका, अैसे मत्स्य हैं । कालोदधि समुद्र विषैं षट्त्रिंशत्काः कहिये छत्तीस जोजन हैं प्रमाण जिनका अैसे मत्स्य हैं । बहुरि नदी के मुखनि, विषैं अठारह जोजन प्रमाण मत्स्य है । यद्यपि इहां पूर्वोक्त समास विषैं अंतर्भूत अैसे योजन शब्द नांही सुनिये है, तथापि अन्य के अश्रुतपनांतैं इहां हू जाननां।

१. नदीमुखं क० प्रतौ नास्ति ।

पूर्वोक्तसमासांतर्भूतस्तथापि द्रष्टव्योऽन्यस्याश्रुतत्वात् लुप्तनिर्दिष्टो वा, **णदिमुहेसु**–नदीमुखेषु । लवणसमुद्रेऽष्टादशयोजनप्रमाणा मत्स्यास्तत्र च नदीमुखेषु च नवयोजनप्रमाणा मत्स्याः कालौदधौ पुनर्मत्स्याः षट्त्रिंशद्योजनप्रमाणास्तत्र च नदीमुखेषु अष्टादशयोजनप्रमाणाः । मत्स्यानामुपलक्षणमेतद् अन्येषामपि प्रमाणं द्रष्टव्यमिति ।।४१।।

स्वयंभूरमणे मत्स्याना[1] मुत्कृष्टदेहप्रमाणं जघन्यदेहप्रमाणं च प्रतिपादयन्नुत्तरसूत्रमाह—

साहस्सिया दु मच्छा सयंभुरमणह्मि पंचसदिया दु ।
देहस्स सव्वहस्सं कुंथुपमाणं जलचरेसु ।।४२।।

साहस्सिया दु–साहस्रिकास्तु सहस्रं योजनानां प्रमाणं येषां ते साहस्रिकाः, अत्रापि योजनशब्दो द्रष्टव्यः, **मच्छा**–मत्स्याः, **सयंभुरमणह्मि**–स्वयंभूरमणसमुद्रे, **पंचसदिया**–पंचशतिकाः पंच शतानि प्रमाणं येषां[2] योजनानां पंचशतिका नदीमुखेष्विति द्रष्टव्यमधिकारात् । उत्कृष्टेन स्वयंभूरमणसमुद्रे मत्स्याः सहस्रयोजनप्रमाणा नदीमुखेषु पंचशतयोजनप्रमाणाः । **देहस्स**–देहस्य शरीरस्य, **सव्वहस्सं**–सर्वह्रस्वं सुष्ठु अल्पत्वं, **कुंथुपमाणं**–कुंथुप्रमाणं, **जलचरेसु**–जलचरेषु । सर्वजलचराणां मध्ये मत्स्यस्य देहप्रमाणं सर्वोत्कृष्टं योजनसहस्रं सर्वजघन्यश्च कुंथुप्रमाणः केषांचिज्जलचराणां देह इति ।।४२।।

पर्याप्तापर्याप्तत्वमाश्रित्य जलचरस्थलचरखचराणां देहप्रमाणमाह[3]—

जलथलखगसम्मुच्छिमतिरिय अपज्जत्तया विहत्थीदु ।
जलसम्मुच्छिमपज्जत्तयाण तह जोयणसहस्सं ।।४३।।

अथवा प्राकृत विषैं योजन शब्द का लुप्त का निर्देश है । इहां समुच्चयार्थ ऐसा—लवण समुद्र विषैं अठारह जोजन प्रमाण मत्स्य हैं बहुरि तहां नदी मुखनि विषैं नवयोजन प्रमाण मत्स्य हैं कालोदधि विषैं छत्तीस जोजन प्रमाण मत्स्य है । बहुरि तहां नदी मुखनि विषैं अठारह जोजन प्रमाण मत्स्य हैं । यह मत्स्यनिका उपलक्षण है ताहि करि अन्यहू का प्रमाण जाननां ।।४१।।

आगैं स्वयंभूरमण समुद्र विषैं मत्स्यदिकनि का सर्वोत्कृष्ट देह प्रमाण है ताहि, बहुरि जघन्य देह का प्रमाण है, ताहि, प्रतिपादन करते संतैं उत्तरसूत्र कहै हैं—

अर्थ–स्वयंभू रमण समुद्र विषैं जलचर, तिरजंच नि विषैं, साहस्रिका कहिये हजार जोजन प्रमाण ऐसें मत्स्य हैं । इहां हू जोजन शब्द जाननां । नदी मुखनि विषैं पंचशतिका कहिये पंचशत जोजन प्रमाण ऐसे मत्स्य हैं । इहां नदी मुखेषु यह पदसूत्रनि विषैं नांही कह्या है, तोउ अधिकारतैं जाननां ।

भावार्थ–उत्कृष्ट अवगाहना करि स्वयंभू रमण विषैं हजार जोजन प्रमाण मत्स्य हैं । नदी मुखनि विषैं पांचसै जोजन प्रमाण मत्स्य हैं । देह का सर्वतैं जघन्य प्रमाण केतेक जलचरनि का कुंथु प्रमाण है ।।४२।।

पर्याप्त, अपर्याप्तपने कूं आश्रयकरि जलचर, स्थलचर नभचरनिके देहप्रमाण कै अर्थि उत्तर सूत्र है ताहि कहै हैं—

अर्थ–जल, स्थल बहुरिखं कहिये आकाश, तिन विषैं गमन करै ते जल स्थल खगा कहिये जल, चर, स्थल चर, खचर ये, बहुरि

---

१. क० सर्वोत्कृष्टदेह । २. येषां क० प्रतौनास्ति । ३. क० देहप्रमाणायोत्तरसूत्रमाह ।

जलथलखग–जलं च स्थलं च खं च जलस्थलखानि तेषु गच्छन्तीति जलस्थलखगा जलचरस्थल च चरखचराः, **सम्मुच्छिम**–सम्मूर्च्छिमा गर्भोपपादजन्मनोऽन्ययोन्युत्पन्नाः, **तिरिय**–तिर्यंचो देवमनुष्यनारकाणामन्ये जीवाः, **अपज्जत्तया**–अपर्याप्तका असम्पूर्णाश्च षट्पर्याप्तयः, **विहत्थी दु**–वितस्तिका द्वादशांगुलप्रमाणाः, अथवा जलस्थलखगसम्मूर्च्छिमतिर्यगपर्याप्तानां देहप्रमाणं वितस्तिः । **जलसम्मुर्च्छिमपज्जत्तयाण**–जलसम्मूर्च्छिमास्ते च ते पर्याप्तकाश्च जलसम्मूर्च्छिमपर्याप्तकास्तेषां जलसम्मूर्च्छिमपर्याप्तकानां च अथवा जलग्रहणेन जलचरा गृह्यन्ते—प्रस्तूयन्ते, [१]प्रस्तुतत्वाम्, **जोयणसहस्सं**–योजनानां सहस्रं, जलचरसम्मूर्च्छिमपर्याप्तकानामुत्कृष्टं देहप्रमाणं योजनसहस्रमिति ।।४३।।

पुनरपि तदेवाश्रित्य गर्भजत्वं चाश्रित्योत्कृष्टदेहप्रमाणमाह—

जलथलगब्भअपज्जत्त खगथलसंमुच्छिमा य पज्जत्ता ।
खगगब्भजा य उभये उक्कस्सेण धणुपुहत्तं ।।४४।।

जलथलगब्भअपज्जत्त–जलमुदकं, स्थलं ग्रामनगराटवीपर्वतादि, गर्भः स्त्रिया उदरे वस्तिपटलाच्छादितप्रदेशः, जलचरजीवा जलाः स्थलस्था जीवाः स्थला गर्भे जाता जीवा गर्भजा इत्युच्यन्ते तात्स्थ्यात्साहचर्याद्वा यथा मंचाः क्रोशन्तीति धनुर्धावतीति, न पर्याप्ता अपर्याप्ता अनिष्पन्नाहारादिषट्पर्याप्तयो जलाश्च स्थलाश्च ते गर्भाश्च जलस्थलगर्भास्ते च तेऽपर्याप्ताश्च जलस्थलगर्भापर्याप्ता जलचराः स्थलचराः गर्भजाश्च येऽपर्याप्तास्त इत्यर्थः । **खगथलसम्मुच्छिमाय**–खेआकाशेगच्छन्तीति खगाः स्थलस्थाः स्थलाः खगाश्च स्थलाश्च खगस्थलाः पक्षिमृगादयस्ते च ते सम्मूर्च्छिमाश्च खगस्थलसम्मूर्च्छिमाः, **पज्जत्ता**–पर्याप्ताः । **खगगब्भजाय**–खगे जाता खगजा गर्भे जाता गर्भजाः खगजाश्च ते गर्भजाश्चेति खगगर्भजाः, **उभये**–पर्याप्ता

सन्मूर्छिमा कहिये गर्भ अर उपपाद जन्मतैं अन्यथा उत्पन्नभये, तिरयंच कहिये देव, मनुष्य, नारकनि तैं अन्य जीव, अपर्याप्तका कहिये नांही पूर्णभये हैं, छह परजापत जिनकैं ते वितस्ति का कहिये द्वादश अंगुल प्रमाण हैं । अथवा जलचर, स्थलचर, नभचर, सम्मूर्छिम तिरजंच अपर्याप्तनिका देह का प्रमाण वितस्तिमात्र है । जलचर सम्मूर्छिमपर्याप्तनि का उत्कृष्ट देह प्रमाण सहस्रजोजन है । इहां जल शब्द करि प्रकरण तैं जलचर जीव ग्रहण कीये है ।।४३।।

बहुरि हू तिसही का आश्रयकरि, बहुरि गर्भजंपनें का आश्रयकरि उत्कृष्ट देह का प्रमाण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–जलं कहिये पानीय, स्थल कहिये ग्राम, नगर, वनी, पर्वतादिक, गर्भ कहिये स्त्री का उदर विषैं मूत्राशय पुटकरि आच्छादित प्रदेश, जल विषैं तिष्ठते जीव जल स्थल विषैं तिष्ठते जीव स्थल, गर्भ विषैं तिष्ठतें जीव गर्भ ता विषै तिष्ठै हैं ता अपनैं तैं अथवा सहचर पनेतैं अैसैं कहिये हैं । जैसे मंचा क्रोशंति कहिये मांच (मंच) पुकारै है ? इहां अचेतन मांच कैसें पुकारे है ? तहां मांच विषैं तिष्ठते पुरुषनि का पुकारनां जाननां । वा धनुर्धावति कहिये धनुष दोरै (दौड़े) हैं । तहां धनुष दौरेता नांही, धनुष मैं तिष्ठता बाण दौड़े है । नहीं पर्याप्त ते अपर्याप्त कहिये नांही पूर्ण भई है आहारादि षट् पर्याप्ति जिनकैं ते अपर्याप्त कहियें । जलचर, स्थलचर अैसे गर्भज ते अपर्याप्त । "ख" जो आकाश ताविषैं गमन करैं ते 'खग' कहिये । स्थलविषैं तिष्ठै ते स्थल कहिये । ते पक्षी मृगादिक ते ही सम्मूर्छिम अैसे पर्याप्त खग विषैं ऊपजैं ते खगज कहिये । गर्भ विषैं ऊपजैं ते गर्भज कहिये । खग और गर्भज वे ये उभये कहिये पर्याप्त-अपर्याप्त यह समस्त उत्कृष्ट

---

१. क्रियापदमिदं क-पुस्तके नास्ति ।

अपर्याप्ताश्च, **उक्कस्सेण**–उत्कर्षेण उत्कृष्टशरीरप्रमाणेन, **धणुपुहत्तं**–धनु:पृथक्त्वं "त्रयाणामुपरि नवानामधो या संख्या सा पृथक्त्वमित्युच्युते" धनुषांपृथक्त्वं धनु:पृथक्त्वं त्रयाणां धनुषामुपरि नवानामधश्चतु:पंचषट्सप्ताष्टधनूंषि । जलचरस्थलचरा ये गर्भजा अपर्याप्ता खगस्थलचराश्च संमूर्च्छिमा: पर्याप्ता ये खगगर्भजाश्च ये पर्याप्तापर्याप्ता: सर्वे ते उत्कृष्टेन शरीरप्रमाणेन धनु:पृथक्त्वं भवन्ति । अथरा देहस्येत्यनुवर्त्तते तेनैतेषां देह उत्कर्षेण धनु:पृथक्त्वं भवतीति ।।४४।।

जलस्थलगर्भजपर्याप्तानामुत्कृष्टं देहप्रमाणमाह—

जलगब्भजपज्जत्ता उक्कस्सं पंचजोयणसयाणि ।
थलगब्भजपज्जत्ता तिगाउदोक्कस्समायामो ।।४५।।

जलगब्भजपज्जत्ता–जलगर्भजपर्याप्ता:, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टमुत्कर्षेण वा, **पंचजोयणसयाणिं**–पंचयोजनशतानि देहप्रमाणेनेत्यर्थ:, अथवा जलगर्भजपर्याप्तानामायाम: पंचयोजनशतानि उत्तरगाथार्धे आयामस्य ग्रहणं यत: । अथवा एतेषां देह उतकृष्ट: पंचयोजनशतानि । **थलगब्भजपज्जत्ता**–स्थलगर्भजपर्याप्तानां, **तिगाउद**–त्रिगव्यूतानि षट्दण्डसहस्राणि, **उक्कस्स**–उत्कृष्ट:, **आयामो**–आयाम: शरीरप्रमाणम् । स्थलगर्भजपर्याप्तानां भोगभूमितिरश्चां देहस्योत्कृष्ट आयामस्त्रीणि गव्यूतानि । अथवा स्थलगर्भजपर्याप्ता उत्कृष्टदेहस्यायामेन त्रिगव्यूतानि भवन्तीति ।।४५।।

पृथिवीकायिकाप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकानां मनुष्याणां चोत्कृष्टं देहप्रमाणं प्रतिपादयन्नाह—

अंगुलअसंखभागं बादरसुहुमा य सेसया काया ।
उक्कस्सेण दु णियमा मणुगा य तिगाउ उव्विद्धा ।।४६।।

शरीर प्रमाणकरि पृथक्त्व धनुष प्रमाण जाननें । पृथक्त्व कहा (क्या है) तीन कै ऊपरि नव कै नीचैं जो च्यारि, पांच, छह, सात, आठ की संख्या सो जानना ।

भावार्थ–जलचर, स्थलचर जे गर्भज, अपर्याप्त, बहुरि नभचर, स्थलचर, सम्मूर्छिम पर्याप्त बहुरि नभचर, गर्भज पर्याप्त-अपर्याप्त ते सर्व उत्कृष्ट शरीर प्रमाणकरि पृथक्त्व धनुष प्रमाण जाननें अथवा देह की अनुवृत्ति हैं, ताकरि तिनका देह उत्कर्ष करि पृथक्त्व धनुष जाननां ।।४४।।

आगै जलचर, स्थलचर, गर्भज पर्याप्तनिका उत्कृष्ट देह प्रमाण है, ताहि कहै—

अर्थ–जलचर, गर्भज पर्याप्तनिका देह का उत्कृष्ट आयाम पाँचसैं योजन है । अथवा गाथा के उत्तरार्द्ध विषैं आयाम शब्द का ग्रहण है । यातैं जलचर, गर्भज पर्याप्तनिका देह का उत्कृष्ट आयाम पाँचसैं जोजन है । अथवा इनका उत्कृष्ट देह पांचसैं जोजन हैं । भोगभूमिया ति.जंच स्थलचर गर्भज पर्याप्तनिका उत्कृष्ट शरीर का प्रमाण त्रिगव्यूतानि कहिये तीन कोश का है । अथवा स्थलचर, गर्भज पर्याप्त उत्कृष्ट देह के आयामकरि तीन कोश है ।।४५।।

आगैं पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिकनिका बहुरि मनुष्यनिका उत्कृष्ट देहप्रमाण है, ताहि प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–अष्टजवनिकरि उपज्या जो अंगुल ताकरि जे आकाशनि के प्रदेश आश्रित हैं । तिनकैं मध्य अनेक प्रदेशनि की पंक्ति का जेता

अंगुलं–द्रव्यांगुलमष्टयवनिष्पन्नांगुलेन येऽवष्टब्धा नभ:प्रदेशास्तेषां मध्येऽनेकस्या: प्रदेशपंक्तेर्यावदायामस्तावन्मात्रं द्रव्यांगुलं तस्यांगुलस्य, **असंखभागं**–असंख्यातभाग: अंगुलमसंख्यातखण्डं कृत्वा तत्रैकखण्डमंगुलासंख्यातभाग:, **बादरसुहुमा य**–बादरनामकर्मोदयाद्बादरा:सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्मा बादराश्च सूक्ष्माश्च बादरसूक्ष्मा: पृथिवीकायादय:, **सेसया**–शेषा उक्तानां परिशेषा: काया: पृथिवीकायास्कायतेज:कायवायुकाया:, **उक्कस्सेण**–उत्कृष्टेन सुष्ठु महत्त्वेन, तुविशेष; **णियमा**–नियमान्निश्चयात्, **मणुया**–मनुष्या भोगभूमिजा:, **तिगाउ**–त्रिगव्यूतानि, **उव्विद्धा**–उद्वृद्धा: परमोत्सेधा: । सर्वेऽपि बादरकाया: (सूक्ष्माश्च)[१] पृथिवीकायिकादिवायुकायिकान्ता द्रव्यांगुलासंख्यभागशरीरोत्सेधा मनुष्याश्च पर्याप्तास्त्रिगव्यूतशरीरोत्सेधा । उत्कृष्टप्रमाणेन नात्र पौनरुक्त्यं पर्याप्तिमनाश्रित्य सामान्येन कथनादिति ।।४६।।

पुनरपि सर्वजघन्यं सर्वोत्कृष्टं शरीरप्रमाणमाह—

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयह्मि ।
हवदि दु सव्वजहण्णं सव्वुक्कस्सं जलचराणं ।।४७।।

सुहुमणिगोद–सूक्ष्मनिगोदस्य, **अपज्जत्तयस्स**–अपर्याप्तकस्य, **जादस्स**–जातस्योत्पन्नस्य, **तदियसमयह्मि**–तृतीयसमये, प्रथमद्वितीयसमययो: प्रदेशविस्फूर्जनसद्भावात्पूर्वदेहसामीप्याद्वा महच्छरीरं भवति तृतीयसमये पुन: प्रदेशानां निचयानुसारेणावस्थानाच्च सर्वजघन्यं भवति शरीरं, **हवदि दु**–भवत्येव, **सव्वजहण्णं**–सर्वजघन्यं, **सव्वुक्कस्सं**–सर्वोत्कृष्टं, **जलचराणां**–मत्स्यानां, पद्मानां वा । सूक्ष्मनिगोदस्यापर्याप्तस्य तृतीयसमये जातमात्रस्य सर्वजघन्यशरीरोत्सेध:, जलचराणां च[२] पद्मानां सर्वोत्कृष्ट: शरीरायाम इति । अत्रापि लोकस्य सप्तैकं पंचैकं रज्जुप्रमाणं द्रष्टव्यं तथा

विस्तार तावत्प्रमाण द्रव्यांगुल हैं । तिस अंगुल का असंख्य भाग जो असंख्यात्खंड ताहिकरि तहां एक खंड लेनां सो अंगुल असंख्यात भाग हैं । वादर नामकर्म के उदयतैं वादर हैं । सूक्ष्म नामकर्म के उदयतैं सूक्ष्म हैं । वादर और सूक्ष्म ते वादरसूक्ष्म कहिये वादरसूक्ष्म अैसे शेषा: काया कहिये अवशेष पृथिवीकायिकादिक जे पृथिवीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय हैं तै उत्कृष्टकरि इहां 'तु' शब्द विशेष अर्थ विषै हैं । नियमात् कहिये निश्चयतैं जाननें । बहुरि भोगभूमि या मनुष्य उत्कृष्ट उत्सेधकरि तीन कोश हैं । सर्व ही बादर सूक्ष्म काय, पृथ्वीकाय कूं आदि दे वायुकाय परजंत द्रव्यांगुल कै असंख्यातवें भाग है शरीर का उत्सेध जिनका, अैसे जाननें । बहुरि परजापत (पर्याप्त) मनुष्य उत्कृष्ट प्रमाणकरि तीन कोश का है शरीर उत्सेध जिनका अैसे हैं । पूर्व कथनकरि पूर्ण पर्याप्ति का नांही आश्रयकरि सामान्यकरि कथन है। यातै इहां पुनरुक्त दोष नांही ।।४६।

आगै बहुरि हूं सर्वतैं जघन्य बहुरि सर्वतैं उत्कृष्ट शरीर का प्रमाण है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–सूक्ष्म निगोदिया लब्ध अपर्याप्तक जीव उत्पन्न भया ताकै तीसरे समय विषैं नियमकरि सर्वतैं जघन्य शरीर होय है । प्रथम, द्वितीय समय विषैं प्रदेश विस्तार (विस्फूर्जन-फैलाव) का सद्भाव है । यातैं बहुरि पूर्वदेहका समीपनां है, यातैं महान् शरीर होय है । बहुरि तीसरे समय विषैं प्रदेशनि का संचय के अनुसार करि अवस्थान है, यातैं सर्वतैं जघन्य शरीर होय है । जलचर जे मत्स्य वा कमल तिनकै सर्बतैं उत्कृष्ट शरीर होय है । इहां हू लोक का सात-एक, पांच-एक रज्जु का प्रमाण जाननां ।

१. कोष्ठकान्तर्गत: पाठ: क प्रतौ नास्ति । २. च पद्मानामिति पाठ: क पुस्तके नास्ति ।

मेरुकुलपर्वतविजयार्द्धेष्वाकारकांचनगिरिमनुष्योत्तरकुण्डलवरांजनदधिमुखरतिकरस्वयंभूनगवरेन्द्रदंष्ट्रागिरिभवनविमानतोरणजिनगृहपृथिव्यष्टकेन्द्रक-प्रकीर्णकश्रेणिबद्धनरक्षेत्रवेदिकाजम्बूशाल्मलीधातकीपुष्कर चैत्यवृक्षकूटहदनदीकुंडायतनवापीसिंहासनादीनामुत्सेधायामप्रमाणं द्रष्टव्यं लोकानुयोगत इति।।४७।।

देहसूत्रं व्याख्याय संस्थानसूत्रं[१] प्रपंचयन्नाह—

मसुरिय कुसग्गविंदू सूइकलावा पडाय संठाणा ।
कायाणं संठाणं हरिदतस णेगसंठाणा ।।४८।।

मसुरिय–मसूरिका वृन्ताकारा, **कुसग्गविंदू–**कुशस्याग्रं कुशाग्रं तस्मिन् बिन्दुरुदककणः कुशाग्रबिन्दुर्वर्तुलाकारमुदकं, **सूइकलावा–**सूचीकलापः सूचीसमुदायः, **पडाय–**पताका, **संठाणं–**संस्थानान्याकाराः, **कायाणं–**कायानां पृथिवीकायिकादिवायुकायान्तानां, **संठाणं–**संस्थानानि शरीराकाराः । मसूरिका इव संस्थानं यस्य तन्मसूरिकासंस्थानं, कुशाग्रबिन्दुरिव संस्थानं यस्य तत्कुशाग्रबिन्दुसंस्थानं, सूचीकलाप इव संस्थानं यस्य तत्सूचीकलापसंस्थानं, पताका इव संस्थानं यस्य तत्पताकासंस्थानं यथासंख्येन संबन्धः, पृथिवीकायस्य संस्थानं मसूरिकासंस्थानं, अप्कायस्य संस्थानं कुशाग्रबिन्दुसंस्थानं, तेजःकायस्य संस्थान सूचीकलापसंस्थानं, वायुकायस्य संस्थानं पताकासंस्थानम् । मसूरिकाद्याकार इव पृथिवीकायिकादयः । **हरिदतसा–**हरितत्रसाः प्रत्येकसाधारणबादरसूक्ष्म-वनस्पतिद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाः, **णेगसंठाणा–**अनेकसंस्थाना नैकमनेकमनेकं संस्थानं येषां तेऽनेकसंथाना अनेकहुंडसंस्थानविकल्पा अनेकशरीराकाराः। त्रसशब्देन द्वीन्द्रियादिचतुरिन्द्रियपर्यन्ता गृह्यन्ते पंचेन्द्रियाणां संस्थानस्योत्तरत्र प्रतिपादनादिति ।।४८।।

बहुरि तैसे ही मेरु, कुलाचल, विजयार्द्ध, इष्वाकार, कांचनगिरि, मानुषोत्तर, कुंडलवर, अंजनगिरि, दधिमुख, रतिकर, स्वयंभू नगवरेंद्र, दंष्ट्रागिरि, भवन, विमान, तोरण, ज़िनगृह, पृथिवीका-अष्टक, इंद्रक, प्रकीर्णक, श्रेणीबद्ध, नरक्षेत्र, वेदिका, जंबूवृक्ष, शाल्मली वृक्ष, धातकी वृक्ष, पुष्कर वृक्ष, चैत्यवृक्ष, कूट ह्रद, नदी, कुंड—इनका विस्तार, वन, वापी, सिंहासनादिक—इनका उत्सेध, आयाम (लम्बाई-चौड़ाई) का प्रमाण अन्य सिद्धान्त (लोकानुयोग) तैं जाननां ।।४७।।

देहसूत्र का व्याख्यान करि संस्थान-सूत्र का अर्थ है, ताहि विस्तारते संते कहै हैं—

अर्थ–कायानां कहिये पृथिवीकाय आदि वायुकाय परजंत धातु चतुष्क हैं तिनिका संस्थानानि कहिये शरीर अवयव के आकार यथासंख्यकरि हैं मसूरिका ज्यौ है संस्थान जाका, अैसा वर्त्तुलाकार (गोल) कुशाग्रबिंदु (कुश) जो डाभ का अग्रभाग विषैं जलबिंदु ज्यौं है। संस्थान जाका अैसा वर्त्तुलाकार । सूची कलाप जो सूची (सुई) समुदाय तद्‌वत् है संस्थान कहिये आकार जाका । पताका जो ध्वज तद्‌वत् है आकार जाका अैसे जाननां ।

भावार्थ–पृथ्वीकाय का संस्थान मसूरिका कै आकार । अपकाय का संस्थान कुशाग्रबिंदु के आकार । तैजस्‌काय का संस्थान सूची कलाप (सुई समूह) के आकार । वायुकाय का संस्थान ध्वजा कै आकार-अैसे जानने । हरितत्रसा कहिये प्रत्येक, साधारण, वादर, सूक्ष्म-च्यारि प्रकार वनस्पती, बहुरिद्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, त्रस—यह अनेक (आकार रूप) है संस्थान जिनका अर्थात् हुंडक संस्थान के भेद रूप अनेक शरीर के आकार जाननें । त्रस शब्दकरि द्वींद्रिय आदि चतुरिंद्रिय परजंत ग्रहण कीये हैं । पंचेंद्रियानि के संस्थान का उत्तरत्र (अगले सूत्र में) प्रतिपादन है या कारण तै ।।४८।।

१. क० संस्थानसूत्रार्थं ।

पंचेन्द्रियसंस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

समचउरसणग्गोहासादियखुज्जायवामणाहुंडा ।
पंचेंदियतिरियणरा देवा चउरस्स णारया हुंडा ।।४९।।

संस्थानमित्यनुवर्तते। **समचउरस**–समचतुरस्र संस्थानं यथा प्रदेशावयवं परमाणूनामन्यूनाधिकता। **णग्गोह**–न्यूग्रोध संस्थानं शरीरस्योर्ध्वभागेऽवयवपरमाणुबहुत्वम् । **सादि**–स्वातिसंस्थानं शरीरस्य नाभेरधः कटिजंघापादाद्यवयवपरमाणूनामधिकोपचयः । **खुज्जा**–कुब्जसंस्थानं शरीरस्य पृष्ठावयवपरमाण्वधिकोपचयः । **वामणा**–वामनसंस्थानं शरीरमध्यावयवपरमाणुबहुत्वं हस्तपादानां च ह्रस्वत्वम् । **हुंडा**–हुण्डसंस्थानं सर्वशरीरावयवानां बीभत्सता परमाणूनां न्यूनाधिकता । सर्वलक्षणासम्पूर्णता च । **पचेंन्द्रियतिरियणरा**–पंचेन्द्रियतिर्यङ्नराणां समचतुरस्रन्यग्रोधस्वातिकुब्जवामनहुण्डसंस्थानानि षडपि पंचेन्द्रियाणां मनुष्याणां तिरश्चां च भवन्ति, अथवा अभेदात्तल्लिगं ताच्छब्द्यं च पंचेन्द्रियतिर्यङ्नराः समचतुरस्रन्यग्रोध[1]स्वाति[2]कुब्जवामनहुण्डाश्च भवन्ति सामान्येन । **देवा चउरसा**–देवाश्चतुरस्राः, **णारया**–नारकाः, **हुंडा**–हुण्डाः । देवाः समचतुरस्रसंस्थाना एव, नारकाश्च हुण्डकसंस्थाना एव न तेषामन्यत्संस्थानान्तरं विद्यत इति ।।४९।।

इन्द्रियसंस्थानानि प्रतिपादयन्नाह—

जवणालिया मसूरी अत्तिमुत्तथ चंदए खुरप्पे च ।
इंदियसंठाणा खलु फासस्स अणेयसंठाणं ।।५०।।

आगैं पंचैंद्रिय संस्थान के प्रतिपादन अर्थि कहै हैं—

अर्थ–इहां संस्थान अैसी अनुवृत्ति है १- यथास्थान अंग-उपांग परमाणुनिकी न्यूनता-अधिकता रहित सो सम चतुरस्र संस्थान है। २- शरीर के उर्ध्व भाग विषैं अवयवनिकै मध्य परमाणुनिकी बाहुल्यता सो न्यग्रोध संस्थान है । ३- शरीर की नाभि के अधोभाग विषैं कटि, जंघा, पाद आदि अवयवनि विषैं परमाणूनिका अधिक संचय सो स्वाति, संस्थान है । ४- शरीर के पीछले (पृष्ठभाग में) अवयवनि विषैं परमाणूनि की अधिक उपचय सो कुब्जक संस्थान है । ५- शरीर के मध्य अवयव विषैं परमाणुनिकी बाहुल्यता बहुरि हाथ, पांव की लघुता सो वामन संस्थान है । ६- सर्व शरीर के अवयवनिकी विरूपता परमाणुनिकी न्यूनता-अधिकता बहुरि सर्व लक्षणानिकी अपूर्णता सो हुंडक संस्थान है । सो पंचैंद्रिय मनुष्यनिकैं बहुरि तिरजंचनिकै १- समचतुरस्र, २- न्यग्रोध, ३- स्वाति, ४- कुब्जक, ५- वामन, ६- हुंडक— यह छह संस्थान हैं । अथवा समचतुरस्र, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्ज वामन, हुंड—यह है संस्थान जिनकैं अैसे पंचेद्रिय, तिरजंच अर मनुष्य हैं । इहां अभेदतैं तल्लिंग अर तत् शब्दपनां जाननां । (अर्थात् उस लिंग और उस शब्द के सामान्य से, ये इन समचतुरस्र आदि संस्थानों वाले होते हैं—ऐसा जानना ।) सामान्यकरि देव समचतुरस्रसंस्थान है नियमकरि । बहुरि नारक हुंड संस्थान है नियमकरि । तिनकै अन्य संस्थान नांही है ।।४९।।

आगै इंद्रिय संस्थान है तिनहि प्रतिपादन करते संतै कहै हैं—

अर्थ–जव (जौ) की नाली वृत्ताकार, मसूर, अतिमुक्तक पुष्प विशेष, अर्द्धचन्द्र, बहुरि खुरपायेह, इंद्रियाणां कहिये—श्रोत्र, चक्षु,

---

१. क० न्यग्रोधाः । २. क० स्वास्ति कुब्जः । ३.

जवणालिया–यवस्य नालिका यवनालिका, **मसूरी**–मसूरिका, वृत्ताकारा, **अदिमुत्तयं**–अतिमुक्तकं पुष्पविशेषः, **चंदए**–अर्द्धचन्द्रः, **खुरप्पेय**–क्षुरप्रं च, **इंदिय**–इन्द्रियाणां इन्द्रियशब्देन श्रोत्रचक्षुर्घ्राणजिह्वेन्द्रियाणां ग्रहणं स्पर्शनेन्द्रियस्य पृथग्ग्रहणात्, **संठाणा**–संस्थानानि आकारा यथासंख्येन संबन्धः। श्रोत्रेन्द्रियं यवनालिकासंस्थानं, चक्षुरिन्द्रियं मसूरिकासंस्थानं, घ्राणेन्द्रियमतिमुक्तकपुष्पसंस्थानं जिह्वेन्द्रियमर्धचन्द्रसंस्थानं क्षुरप्रसंस्थानं च खलु स्फुटम् । **फारस्स**–स्पर्शस्य स्पर्शनेन्द्रियस्य, **अणेयसंठाणं**–अनेकसंस्थानं अनेकप्रकार आकारः । स्पर्शनेन्द्रियस्यानेकं संस्थानं समचतुरस्रादिभेदेन व्यक्तं सर्वत्र [1]क्षयोपशमभेदात् । अंगुलासंख्यातभागप्रमितं भावेन्द्रियं, द्रव्येन्द्रियं पुनरंगुल संख्यातभागप्रमितमपि भवति । इन्द्रियं द्विविधं द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं च द्रव्येन्द्रियं द्विविधं निर्वृत्त्युपकरणभेदेन, भावेन्द्रियमपि द्विविधं लब्ध्युपयोगभेदेन, तत्र द्रव्येन्द्रियस्य निर्वृत्तेर्भावेन्द्रियस्य च लब्धेः संस्थानमेतत्, उपयोगो भावेन्द्रियं च ज्ञानं तस्याकारो विषयपरिच्छित्तिरेव ।।५०।।

यद्येवं स एव विषयः कियानिति प्रतिपाद्यतामित्युक्तेऽत आह—

चत्तारि धणुसदाइं चउसट्ठी धणुसयं च फस्सरसे ।
गंधे य दुगुणदुगुणा असण्णिपंचिंदिया जाव ।।५१।।*

चत्तारि–चत्वारि, **धणुसदाइं**–धनुःशतानि, **चउसट्ठी**–चतुःषष्टिर्धनुषामिति संबन्धः धनुषां चतुर्भिरधिका षष्टिः, **धणुसयं च**–धनुःशतं च, **फस्सरसे**–स्पर्शरसयोः स्पर्शनेन्द्रियस्य रसनेन्द्रियस्य, **गंधे य**–गंधस्य च घ्राणेन्द्रियस्य च, **दुगुणदुगुणा**–द्विगुणद्विगुणाः, **असण्णिपंचिंदिया जाव**–असंज्ञिपंचेन्द्रियं यावत् । एकेन्द्रियमारभ्य यावदसंज्ञिपंचेन्द्रियस्य विषयः स्पर्शविषय उतरत्र कथ्यते तेन सह संबन्धः । एकेन्द्रियस्य स्पर्शनेन्द्रियविषयश्चत्वारि

घ्राण, जिव्हा—इन च्यारि इंद्रियनि का इंद्रिय शब्दकरि ग्रहण जाननां । स्पर्शन इंद्रिय का भिन्न ग्रहण कीया है । इस हेतुतैं संस्थान का संबंध यथासंख्य करि करणां । श्रोत्रइंद्रिय यव-नालिका संस्थान (जौ की नाली के समान) है । चक्षुः इंद्रिय मसूरिका संस्थान है । घ्राणइंद्रिय अतिमुक्तकपुष्प (तिल के फूल समान) संस्थान है । जिव्हा इंद्रिय अर्द्धचन्द्र संस्थान हैं । अथवा क्षुरप्रसंस्थान है । स्पर्शन इंद्रिय का प्रगटपनैं समचतुरस्र आदि भेदकरि व्यक्त अनेक संस्थान हैं । सर्वत्र क्षयोपशमका भेद है या हेतुतैं भावेंद्रिय अंगुलकै असंख्यातवें भाग प्रमाण है । बहुरि द्रव्यैंद्रिय अंगुल कै असंख्यातवैं भाग प्रमाण भी हैं । इंद्रिय दोय प्रकार है—१. द्रव्यैंद्रिय २. भावैंद्रिय ।

बहुरि द्रव्यैंद्रिय दोय प्रकार हैं—१. निवृत्ति २. उपकरण के भेदतैं । लब्धि और उपयोग के भेदकरि भावैंद्रिय हू दोय प्रकार हैं। तहां द्रव्यैंद्रिय की निवृत्ति बहुरि भावैंद्रिय की लब्धि यह संस्थान है । बहुरि उपयोग भावैंद्रिय ज्ञान हैं । ताका आकार विषय परिछित्ति कहियै विषयनिका जानना, सो ही है ।।५०।।

जो ऐसें हैं तो विषय केता है, यह कहिये ऐसे पूछतैं कहैं हैं—

अर्थ–स्पर्शनइंद्रिय का विषय च्यारिसै धनुष है, रसनाइंद्रिय का विषय चोसठि धनुष है, बहुरि घ्राण इंद्रिय का विषय सौ धनुष है। एकैंद्रियकूं आदिदे असंज्ञीपंचैंद्रिय परजंत (पर्यन्त) जीवनि कै स्पर्शन, आदि इंद्रियनिका विषय उत्तरोत्तर इणां-इणां कहिये है सो ही स्पष्ट करि कहिये है । १. पृथिवीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजःकायिक, ४. वायुकायिक, ५. वनस्पतिकायिक—ऐसे एकैंद्रिय उत्कृष्ट शक्तिकरि

---

१. क० क्षयोपशमप्रदेशाः ।

* १०९४ से ११०० तक की गाथाएँ फलटन से प्रकाशित मूलाचार में गाथा ११५४ के बाद में दी गयी हैं ।

धनु:शतानि, एतावताध्वना स्थितं स्पर्श गृह्णन्ति पृथिवीकायिकाप्कायिकतेज:कायिकवायुकायिकवनस्पतिकायिका उत्कृष्टशक्तियुक्तस्पर्शनेन्द्रियेण । तथा द्वीन्द्रियस्य रसनेन्द्रियविषयश्चतु:षष्टिर्धनुषां एतावताऽध्वना स्थितं रसं गृह्णाति रसनेन्द्रियेण द्वीन्द्रियस्तथा तस्यैव द्वीन्द्रियस्य स्पर्शनेन्द्रियविषयोष्टौ धनु: शतानि एतावताऽध्वना स्थितं स्पर्शं गृह्णाति द्वीन्द्रिय: स्पर्शनेन्द्रियेण, तथा त्रीन्द्रियस्य घ्राणेन्द्रियविषय: धनुषां शतं एतावताध्वना स्थितं गन्धं गृह्णाति त्रीन्द्रियो घ्राणेन्द्रियेण तथा तस्यैव स्पर्शनेन्द्रियविषय: षोडशधनु:शतानि एतावताध्वना व्यवस्थितं स्पर्शं गृह्णाति त्रीन्द्रिय: स्पर्शनेन्द्रियेण तथा तस्यैव त्रीन्द्रियस्य रसनेन्द्रियविषयोऽष्टाविंशत्यधिकं च शतं धनुषां एतावताध्वना स्थितं रसं गृह्णाति, त्रीन्द्रिय: रसनेन्द्रियेण तथा तस्यैव त्रीन्द्रियस्य घ्राणेन्द्रियविषय: शतं धनुषां एतावताध्वना स्थितं गन्धं गृह्णाति त्रीन्द्रियो घ्राणेन्द्रियेण, तथा चतुरिन्द्रियस्य स्पर्शनेन्द्रियविषयो द्विशताधिकानि त्रीणि सहस्राणि धनुषामेतावताध्वना स्थितं स्पर्शं गृह्णाति चतुरिन्द्रिय: स्पर्शनेन्द्रियेण, तथा तस्यैव चतुरिन्द्रियस्य रसनेन्द्रियविषयो धनुषां द्वे शते षट्पंचाशदधिके एतावताध्वना स्थितं रसं चतुरिन्द्रिय: रसनेन्द्रियेण गृह्णाति तथा तस्यैव चतुरिन्द्रियस्य घ्राणेन्द्रियविषयो द्वे शते धनुषामेतावताध्वना स्थितं गन्धं गृह्णाति चतुरिन्द्रियो घ्राणेन्द्रियेण, तथाऽसंज्ञिपंचेन्द्रियस्य स्पर्शनेन्द्रियविषय: चतु:शताधिकानि षट्सहस्राणि धनुषामेतावत्यध्वनि स्थितं स्पर्शमसंज्ञिपंचेन्द्रियो गृह्णाति, स्पर्शनेन्द्रियेण तथा तस्यैवासंज्ञिपंचेन्द्रियस्य रसनेन्द्रियविषय: द्वादशोत्तराणि पंचशतानि धनुषामेतावत्यध्वनि स्थितं रसं गृह्णाति असंज्ञिपंचेन्द्रियो रसनेन्द्रियेण तथा तस्यैवासंज्ञि-पंचेन्द्रियस्य घ्राणेन्द्रियविषयो धनुषां चत्वारि शतानि एतावताध्वना स्थितं गन्धं गृह्णाति असंज्ञिपंचेन्द्रियो घ्राणेन्द्रियेण । न चैतेषामिन्द्रियाणां प्राप्तग्राहित्वेनैतावताध्वना ग्रहणमयुक्तमप्राप्तग्राहित्वमपि, यतो युक्त्या आगमेन च न विरुध्यते, युक्तिस्तावदेकेन्द्रियो दूरस्थमपि वस्तु

युक्त जो स्पर्शन इंद्रिय ताकरि च्यारि सै धनुष प्रमाण मार्गकरि तिष्ठता स्पर्श है ताहि ग्रहण करै हैं । तैसे द्वींद्रिय जीवकै रसनाइंद्रिय का उत्कृष्ट विषय चोसठि धनुष है । द्वींद्रिय जीव एतावता मार्गकरि तिष्ठता रस है, ताहि रसना इंद्रियकरि ग्रहण करै है । तैसे ही द्वींद्रियजीव के स्पर्शन इंद्रिय का उत्कृष्ट विषय आठ सै धनुष है । द्वींद्रिय जीव एतावता मार्गकरि तिष्ठता स्पर्श है, ताहि स्पर्शन इंद्रियकरि ग्रहण करै हैं । तैसे त्रींद्रिय जीवकै घ्राणइंद्रिय का उत्कृष्ट विषय सौ धनुष है । त्रींद्रिय जीव एतावता मार्गकरि तिष्ठता गंध है । ताहि घ्राण इंद्रियकरि ग्रहण करै हैं । तथा तिस ही त्रींद्रिय कै स्पर्शन इंद्रिय का उत्कृष्ट विषय सौलहसौ १६०० धनुष है, त्रींद्रियजीव एतावता मार्गकरि तिष्ठता स्पर्श है ताहि स्पर्शन इंद्रियकरि ग्रहण करै है । तिस ही त्रींद्रियकै रसनाइंद्रिय का उत्कृष्ट विषय एक सो अठाइस धनुष हैं, सो त्रींद्रिय एतावता मार्गकरि तिष्ठता रस है, ताहि रसनाइंद्रियकरि ग्रहण करै है । तथा चतुरिंद्रिय कै स्पर्शन इंद्रिय का उत्कृष्ट बत्तीससौ ३२०० धनुष का है, चतुरिंद्रिय एतावता मार्गकरि तिष्ठता स्पर्श है ताहि स्पर्शनइंद्रियकरि ग्रहण करै हैं । तथा तिस ही चतुरिंद्रिय कै रसनाइंद्रिय का उत्कृष्ट विषय दोयसैछप्पन धनुष का है । चतुरिंद्रिय एतावता मार्गकरि तिष्ठता रस है ताहिं रसना इंद्रिय करि ग्रहण करै हैं । तथा तिस ही चतुरिंद्रिय कै घ्राण इंद्रिय का उत्कृष्ट विषय दोयसै धनुष का है। चतुरिंद्रिय एतावता मार्गकरि तिष्ठता गंध है, ताहि घ्राण-इंद्रिय-करि ग्रहण करै हैं तथा असंज्ञिपंचैंद्रिय कै स्पर्शन इंद्रिय का उत्कृष्ट विषय चोसठिसै ६४०० धनुष का है । असंज्ञी पंचेंद्रिय एतावता मार्गकरि तिष्ठता स्पर्शनइंद्रियकरि ग्रहण करै हैं । तथा तिस ही असंज्ञी पंचैन्द्रिय कै रसनाइंद्रिय का उत्कृष्ट विषय पांचसौ बारह (५१२) धनुष का है । असंज्ञी पंचैंन्द्रिय एतावता मार्ग विषैं तिष्ठता रस है, ताहि रसनाइंद्रियकरि ग्रहण करै हैं । तथा तिसही असंज्ञी पंचैन्द्रिय कै घ्राणइंद्रियकरि ग्रहण करै है ।

शंका–बहुरि इन इंद्रियनि कै प्राप्त ग्राहीपनाकरि एतावता मार्गकरि ग्रहण अयुक्त नांही है ।

समाधान–जातैं अप्राप्त ग्राहीपनाहू युक्तिकरि बहुरि आगमकरि नांही विरुद्ध है प्रथमयुक्ति कहै हैं—

जानाति पादप्रसारणाद् यस्यां दिशि वस्तु सुवर्णादिकं स्थितं, प्रारोहं प्रसारयत्येकेन्द्रियो वनस्पतिः । अवष्टंभप्रदेशे च नालानि व्युत्सृजतीति । तथागमेऽपि स्पर्शनेन्द्रियादीनामप्राप्तग्राहित्वं पठितं षड्त्रिंशत्त्रिशत इति विकल्पस्य कथनादिति ।।५१।।

चतुरिन्द्रियस्य चक्षुर्विषयं प्रतिपादयन्नाह—

इगुणतीसजोयणसदाइं चउवण्णाय होइ णायव्वा ।
चउरिंदियस्स णियमा चक्खुप्फासं वियाणाहि ।।५२।।

इगुणतीसजोयणसदाइं---[1]एकोनत्रिंशद्योजनशतानि योजनानामेकोनानि त्रिंशच्छतानि, **चउवण्णाय**–चतुःपंचाशच्चतुर्भिरधिका च पंचाशद्योजनानां, **होइ**–भवति, **णायव्वा**–ज्ञातव्यानि । **चउरिंदियस्स**–चतुरिन्द्रियस्य, **णियमा**–नियमात् निश्चयेन । **चक्खुप्फासं**–चक्षुःस्पर्शं चक्षुरिन्द्रियविषयं **वियाणाहि**–विजानीहि । इमं चतुरिन्द्रियस्य चक्षुरिन्द्रियस्य चक्षुरिन्द्रियविषयं योजनानामेको[2]नत्रिंशच्छतं चतुःपंचाशद्योजनाधिकं विजानीह्यसंदेहेनेति। न चक्षुषः प्राप्तग्राहित्वं चक्षुःस्थांजनादेरग्रहणात, न च गत्वा गृह्णाति चक्षुःप्रदेशशून्यत्वप्रसंगात् । नापि विज्ञानमयं चक्षुर्गच्छति जीवस्याज्ञत्वप्रसंगान् न च स्वतोऽर्धस्वरूपेण[3]गमनं युज्यतेऽन्तरे सर्ववस्तु ग्रहणप्रसंगात् इति ।।५२।।

असंज्ञिपंचेन्द्रियस्य चक्षुर्विषयं प्रतिपादयन्नाह—

उणसट्ठि जोयणसदा अट्ठेव य होंति तह य [4]णायव्वा ।
असण्णिपंचेंदीए चक्खुप्फासं वियाणाहि ।।५३।।

उणसट्ठि–एकोनषष्टिः, एकेनोना षष्टिः । **जोणयसदा**–योजनानां शतानि योजनशतानि, **अट्ठेव य**–अष्टावपि च योजनानि, **होंति**–भवन्ति ।

एकैंद्रिय दूरवस्तु है ताहि जाने है, काहै तैं पादके प्रसारणतैं जिस दिसा विषैं सुवर्णादिक वस्तुस्थित है, तिस दिशा विषैं एकैंन्द्रिय वनस्पति अपने अंकूर फैलावे है । आश्रित प्रदेश विषैं नाल ज़े जड़ कै तंतू है तिनहि फैलावे हैं । तैसे आगम विषैहू अप्राप्त ग्राहीपनां स्पर्शन आदि इंद्रिनि कै कह्या है, काहैं तैं तीन से छत्तीस (३३६) अैसे भेदनि का कथन है ।।५१।।

यातै आगै चतुरिंद्रिय कै चक्षु का विषय है ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–चतुरिंद्रिय के चक्षु का विषय नियमकरि है ताहि गुणतीसै चोबन (२९५४) जोजन निःसंदेहकरि तुम जानहु । चक्षुइंद्रिय कै प्राप्त ग्राहीपनां नांही, काहै तैं ? चक्षु विषैं तिष्ठता जो अंजनादिकता का अग्रहण है यातैं बहुरि आय जाय करि ग्रहण नाहीं करै है । काहैं तै चक्षुप्रदेश विषै शून्यपनैं का प्रसंग होय यातैं । बहुरि विज्ञानमय हू चक्षु नांही जाय है जीव कै अज्ञानी पनैं का प्रसंग होय यातैं । बहुरि संतान स्वरूप करि हू गमन नांही संभवै है । अंतराल विषैं तिष्ठते सर्ववस्तु का ग्रहण का प्रसंग होय ।।५२।।

आगै असंज्ञी पंचैंद्रिय कै चक्षु इंद्रिय का विषय है ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–असंज्ञिपंचैंद्रियस्य कहिये-शिक्षा, आलाप आदिकरि रहित अैसा जो पंचैंद्रिय, ताकैं चक्षु इंद्रिय का उत्कृष्ट विषय गुणसठिसै

---

१. क० एकान्न- । २. क० मेकात्र- । ३. ख, ग सन्तान स्वरूपेण । ४. क० णादव्वा ।

तह य णायव्वा–तथैव ज्ञातव्यानि, **असण्णिपंचेंदीए**–असंज्ञिपंचेन्द्रियस्य शिक्षालापादिरहितपंचेन्द्रियस्य, **चक्खुप्फासं**–चक्षु:स्पर्शं चक्षुर्विषयं चक्षुषा ग्रहणं, **वियाणाहि**–विजानीहि । योजनशतानामेकोनषष्ठिस्तथैवाष्टयोजनानि च भवन्ति ज्ञातव्यान्येतत्प्रमाणमसंज्ञिपंचेन्द्रियस्य चक्षुरिन्द्रियविषयं जानीहि [1]एतावत्यध्वनि स्थितं रूपमसंज्ञिपंचेन्द्रियो गृहणाति चक्षुरिन्द्रियेणेति ।।५३।।

असंज्ञिपंचेन्द्रियस्य श्रोत्रविषयं प्रतिपादयन्नाह—

अट्ठेव धणुसहस्सा सोदप्फासं असण्णिणो जाण ।
विसयावि य णायव्वा पोग्गलपरिणामजोगेण ।।५४।।

अट्ठेव धणुसहस्सा–अष्टावेव धनु:सहस्राणि, **सोदप्फासं**–श्रोत्रस्पर्शंश्रोत्रेन्द्रियविषयं, **असण्णिणो**–असंज्ञिनोऽसंज्ञिपंचेन्द्रियस्य, **जाण**–जानीहि। असंज्ञिपंचेन्द्रियश्रोत्रविषयं धनुषामष्टसहस्रं जानीह्येतावताध्वना स्थितं शब्दं गृहणाति श्रोत्रेणासंज्ञिपंचेन्द्रिय इति । **वियसावि य**–विषयाश्चापि, **णायव्वा**–ज्ञातव्या: । **पोगलपरिणामजोगेण**–पुद्‌गलस्य मूर्तद्रव्यस्य परिणामो विशिष्टसंस्थानमहत्त्वप्रकृष्टवाण्या[2]दि: पुद्‌गलपरिणामस्तेन योग: संपर्कस्तेन, पुद्‌गलपरिणाामयोगेन एतावतोक्तांतरेण विशिष्टा रूपादय: दिवाकरादिभूता विशिष्टैरिन्द्रियैर्गृह्यन्ते नान्यथेति ।।५४।।

संज्ञिपंचेन्द्रियस्य पंचेन्द्रियविषयं प्रतिपादयन्नाह—

फासे रसे य गंधे विसया णव जोयणा य [3]णायव्वा ।
सोदस्स दु वारसजोयणाणिदो चक्खुसो वोच्छं ।।५५।।

फासे–स्पर्शस्य स्पर्शनेन्द्रियस्य, **रसे**–रसस्य रसेनेन्द्रियस्य, **गंधे**–गन्धस्य घ्राणेन्द्रियस्य, **विसया**–विषया: [4]ग्रहणगोचराणि, **णवजोयणा**–नव

आठ जोजन (५९०८ योजन) जानवे योग्य है ।

भावार्थ–असंज्ञीपंचैंद्रिय चक्षुइंद्रियकरि गुणसठिसै आठ जोजन विषैं तिष्टता रूप है ताहि जानै है, भो भव्य ! तुम अैसें जानहू ।।५३।।

आगै असंज्ञीपंचैंद्रिय कै श्रोत्र इंद्रिय का विषय है, ताहि प्रतिपादन करतै कहै हैं—

अर्थ–असंज्ञीपंचैंन्द्रिय कै श्रोत्रइंद्रिय का विषय अष्टौधनु:-सहस्राणि कहिये आठहजार धनुष जो एक जोजन तिस प्रकार नियमकरि जानहू । असंज्ञीय पंचैंद्रिय तिरजंच एतावता मार्गकरि तिष्ठता शब्द हैं, ताहि श्रोत्रइंद्रियकरि ग्रहण कहै हैं । पुद्‌गलपरिणामयोगेन कहिये-पुद्‌गल जो मूर्तीक द्रव्य ताका परिणाम जो विशिष्ट संस्थान अर महान् उत्कृष्ट वर्णादि ताका योग जो मिलाप संबंध ताकरि विषया कहिये। एतावता कह्या जो अंतर ताकरि सूर्यादिकतैं ऊपजे विशिष्ट रूपादिक हैं, ते विशिष्ट इंद्रिय जे है तिनकरि ग्रहण करै हैं । अैसे ज्ञातव्या कहिये जानने । यामै अन्यथा नांही ।।५४।।

आगै संज्ञीय पंचैंद्रिय कै पांच इंद्रियनि का विषय है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–प्रकृष्ट है इंद्रिय जाकै अैसा चक्रवर्ती आदि संज्ञीय पंचैंद्रिय कै स्पर्शनइंद्रिय का विषय नवजोजन जाननां । बहुरि रसना, अर गंध इंद्रिय का विषय नव-नव जोजन जाननां । बहुरि श्रोत्रइंद्रिय का विषय बारह जोजन जाननां । संज्ञी पंचैंद्रिय उत्कृष्ट पुद्‌गल परिणाम

---

१. क० एतावति गोचरे ।२. क० वर्णादि । ३. द० बोहव्वा । ४. क विषयो ग्रहणगोचर: ।

योजनानि, **णायव्वा**–ज्ञातव्यानि, **सोदस्सदु**–श्रोत्रस्य तु श्रोत्रेन्द्रियस्य पुनः, **वारस जोयणाणि**–द्वादश योजनानि, **इदो**–इत ऊर्ध्वं, **चक्खुसो**–चक्षुषःसंज्ञिपंचेन्द्रियस्य चक्षुरिन्द्रियस्य च, **वोच्छं**–वक्ष्ये, संज्ञिपंचेन्द्रियस्य प्रकृष्टेन्द्रियस्य चक्रवर्त्यादेः स्पर्शनेन्द्रियस्य नवयोजनानि विषयः रसनेन्द्रियस्य नव योजनानि विषयः, घ्राणेन्द्रियस्य नव योजनानि विषयः श्रोत्रेन्द्रियस्य द्वादश योजनानि विषयः, संज्ञिपंचेन्द्रिय उत्कृष्टपुद्गलपरिणामात्रवभिर्नवभिर्योजनैः स्थितानि स्पर्शरसगन्धद्रव्याणि स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियैर्गृह्णाति शब्दं पुनर्द्वादशयौजनैः स्थितं श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्णाति ।।५५।।

सूचितचक्षुर्विषयमाह—

सत्तेतालसहस्सा वे चेव सदा हवंति तेसट्ठी ।
चक्खिदिअस्स विसओ उक्कस्सो होदि अदिरित्तो ।।५६।।

सत्तेताल–सप्तचत्वारिंशत्, **सहस्सा**–सहस्राणि, **वे चेव सदा**–द्वे चैव शते, **हवंति**–भवन्ति, **तेसट्ठी**–त्रिषष्ट्यधिके योजनानामिति सम्बन्धः, **चक्खिदियस्स**–चक्षुरिन्द्रियस्य, **विसओ**–विषयः, **उक्कसो**–उत्कृष्टः , **होदि**–भवति, **अदिरित्तो**–अतिरिक्तः, अतिरिक्तस्य प्रमाणं गव्यूतमेकं दण्डानां द्वादशशतानि पंचदशदण्डाधिकानि हस्तश्चैकः द्वे चांगुले साधिकयवचतुर्थभागाधिके ; संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तकचक्षुरिन्द्रियस्य विषयो योजनानां सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि त्रिषष्ट्यधिकद्विशताधिकानि पंचदशाधिकद्वादशशतदण्डाधिकैकगव्यूताधिकानि सविशेषयवचतुर्थभागाधिकद्व्यंगुलाधिकैकहस्ताधिकानि च । एतावताध्वना संज्ञिपंचेन्द्रियः पर्याप्तको रूपं पश्यतीति ।।५६।।

अस्यैव प्रमाणस्यानयने करणगाथामाह—

अस्सीदिसदं विगुणं दीवविसेसस्स वग्ग दहगुणियं ।
मूलं सट्ठिविहत्तं दिणद्धमाणाहतं चक्खू ।।५७।।*

तैं नव-नव जोजनकरि तिष्ठते स्पर्श, रस, गंध द्रव्य है तिनहि स्पर्शन, रसन, घ्राण इंद्रियकरि ग्रहण करै है । बहुरि द्वादश जोजनकरि स्थित जो शब्द ताहि श्रोत्रइंद्रियकरि ग्रहण करै हैं ।।५५।।

याकै आगै संज्ञीय पंचैन्द्रिय कै चक्षु इंद्रिय का विषय है ताहि कहूंगा । आगैं सूचित जो चक्षु का विषय ताहि कहै है—

अर्थ–चक्षुइंद्रिय का उत्कृष्ट विषय सैतालीस हजार दोयसै तरेसठि जोजन अतिरिक्त कहिये अधिक होय है, अतिरिक्त का प्रमाण कहै है, एक-कोश-बारहसै पंदरह धनुष एक हाथ जोव (जौ) का चौथा भागकरि अधिक दोय आंगुल एतावत मार्गकरि तिष्ठता रूप है, ताहि संज्ञी पंचैंद्रिय परजायति देखै है ।।५६।।

---

* इस ५७ वीं गाथा के स्थान पर गाथा बदली हुई है—

तिण्णिसयट्ठिविरहियलक्खं दसमूलताडिदे मूलं ।
गवगुणिदे सट्ठिहिदे चक्खुपफासस्स अद्धाणं ।।

अर्थ–तीन सौ साठ कम एक लाख योजन जम्बूद्वीप के विष्कम्भ का वर्ग करना, उसे दश गुणा करके वर्गमूल निकालना । इससे जो राशि उत्पन्न हो उसे नव का गुणा करके साठ का भाग देने से चक्षुरिन्द्रिय का विषय होता है । अर्थात् सूर्य का चार क्षेत्र पाँच सौ बारह योजन प्रमाण है । उसमें

असीदिसदं–अशीत्यधिकं शतं, **विगुणं**–द्विगुणं द्वाभ्यां गुणितं षष्ट्यधिकत्रिशतप्रमाणं भवति द्वीपशब्देन जम्बूद्वीपविष्कंभयोजनलक्षं परिगृह्यते सर्वाभ्यन्तरान्यवर्त्मपरिधिप्रमाणानयननिमित्तमुभयो: पार्श्वयोर्विशोधनमशीतिशतद्विगुणस्य लक्षयोजनप्रमाणात्तस्माद् द्वीपाद् तद्विसृष्टं रहितं क्रियते तस्मिन् कृते शेषो द्वीपविशेष इत्युच्यते तस्य द्वीपविशेषस्य वर्ग क्रियते स च वर्गोदशगुण: क्रियते तस्य मूलं षष्ट्या विभाजितं भक्तं दिनार्धमानाहतं नवभिर्गुणितं ''दिशार्धशब्देन नव मुहूर्त्ता: परिगृह्यन्ते'' । सर्वाभ्यन्तरपरिधिषष्टिमुहूर्तै भ्रमति मार्तण्डोऽत: षष्टिभिर्भागो मध्याह्ने भवति नवभिर्मुहूर्तैरयोध्यायां नवगुणकार:।

इस ही प्रमाण के ल्यावे विषै करण-सूत्र की गाथा है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–अस्सीकरि अधिक जो सौ सो अशीतिशत है दोय करि गुणित सो द्विगुण है । एकसोअस्सी दोयकरि गुणित तीनसै साठि होय है द्वीप शब्दकरि जंबूद्वीप का विष्कंभ लक्ष जोजन का ग्रहण करणां । सर्वाभ्यांतर आदित्य-वर्त्म की परिधि प्रमाण केल्पावे निमित्त दोऊ पार्श्वनि विषैं तीनसैसाठि का विशोधन करणां । लक्ष जोजन प्रमाण जंबूद्वीप का विष्कंभ तैं तीनसैसाठि घटावनै सो कीये संतै, अवशेष रहै सो द्वीप विशेष अैसे कहियै है । तिस द्वीप विशेष वर्ग करणां । वर्ग कहा रासितैं रासिका गुणना सो वर्ग है । सौ वर्ग दश गुणां करणां। तातैं मूल ग्रहण करणां, तिस मूलकै साठि का भाग देनां । दिनार्द्धमान जो नव ताकरि गुणनां । इहां दिनार्द्ध शब्दकरि नवमुहूर्त्त ग्रहण कीये है ।

तीन सौ बत्तीस योजन तो लवणसमुद्र में है और शेष एक-सौ अस्सी योजन जम्बूद्वीप में है । इसीलिए जम्बूद्वीप के दोनों भाग से तीन-सौ साठ योजन क्षेत्र को छोड़कर बाकी निन्यानवे हज़ार छह सौ चालीस योजन प्रमाण जम्बूद्वीप के विष्कम्भ की परिधि करणसूत्र के अनुसार तीन लाख, पन्द्रह हज़ार नवासी योजन होती है । इस अभ्यन्तर परिधि को एक सूर्य अपने भ्रमण द्वारा साठ मुहूर्त दो दिन में समाप्त करता है और निषध गिरि के एक भाग से दूसरे भाग तक की अभ्यन्तर वीथी को अठारह मुहूर्त में समाप्त करता है। इसके बिल्कुल बीच में अयोध्यानगरी पड़ती है । इस अयोध्यानगरी के बीच में बने हुए अपने महल के ऊपरी भाग से भरत आदि चक्रवर्ती निषधगिरि के ऊपर अभ्यन्तर में उदय होते हुए सूर्य के भीतर के जिनबिम्ब का दर्शन करते हैं । और निषधगिरि के उस उदयस्थान से अयोध्या पर्यन्त उक्त रीति से सूर्य के भ्रमण करने में नव मुहूर्त लगते हैं क्योंकि कर्क संक्रान्ति को यहाँ १२ मुहूर्त की रात्रि और १८ मुहूर्त का दिन हुआ करता है । अत: साठ मुहूर्त में इतने क्षेत्र पर भ्रमण करता है तो नव मुहूर्त में कितने क्षेत्र तक भ्रमण करेगा, ऐसा त्रैराशिक करने से फलराशि परिधि प्रमाण और इच्छा राशि नव गुणाकार होती है । उसमें प्रमाण राशि साठ का भाग देने से चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र सैंतालीस हजार दौ सौ त्रेसठ से कुछ अधिक निकलता है । तात्पर्य यह है कि चक्रवर्ती अधिक से अधिक इतनी दूर तक के पदार्थ को चक्षु द्वारा जान लेते हैं ।

एवं कृते च यल्लब्धं परिमाणं पूर्वोक्तं चक्षुषो विषयो भवति आषाढमासे सर्वाभ्यन्तरवर्त्मनि मिथुनावसाने स्थितस्यादित्याध्वनो ग्रहणमिति ।।५७।।

स्वामित्वपूर्वकं योनिस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

एइंदिय णेरइया संपुडजोणी हवंति देवा य ।
वियलिंदिया य वियडा संपुडवियडा य गब्भेसु ।।५८।।

एकेन्द्रिय आदि जीवों के पाई जाने वाली इन्द्रियों के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र आदि का दर्शक यन्त्र

इंद्रिय	एकेन्द्रिय धनुष से विषय क्षेत्र	द्वीन्द्रिय धनुष से विषय क्षेत्र	त्रीन्द्रिय धनुष से विषय क्षेत्र	चतुरिन्द्रिय विषय क्षेत्र धनुष	योजन	असंज्ञी पंचेन्द्रिय विषय क्षेत्र धनुष	योजन	संज्ञी पंचे० विषय क्षेत्र योजन से	विषय	योग्यता	आकृति
स्पर्शन	४००	८००	१६००	३२००	०	६४००	०	९	८ प्रकार का स्पर्श	अबद्ध-स्पृष्ट	अनेक अनियत
रसना	०	६४	१२८	२५६	०	५१२	०	९	५ विध रस	”	अर्धचन्द्र या खुरपा
घ्राण	०	०	१००	२००	०	४००	०	९	द्विविध गंध	”	तिलपुष्प
चक्षु	०	०	०	०	५९५४	०	२९०८	४७२६३ १ ७÷२०	पंचविध रूप	अस्पृष्ट	मसूर अन्न
श्रोत्र	०	०	०	०	०	८०००	०	१२	शब्द तथा ७ स्वर	स्पृष्ट	यवनाली

भावार्थ–सर्व अभ्यंतर परिधि विषै सूर्य साठि मुहूर्त्तकरि भ्रमण करै है । यातैं साठि का भाग है । मध्यान्ह विषै अयोध्या ऊपरि सूर्य आवै है । तातैं नवमुहूर्त्तकरि गुणकार है । ऐसें कीये पूर्वोक्त परिमाण पाया सो चक्षुइंद्रिय का विषै आषाढ़मास विषै, सर्बाभ्यांत्तर वर्त्म विषै, मिथुनरासि के अंत विषै, तिष्ठता जो सूर्य ताका मार्ग का ग्रहण है ।।५७।।

आगै स्वामित्व पूर्वोक्त योनि का स्वरूप है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–१. सचित्त, २. शीत, ३. संवृत्त, ४. अचित्त, ५. उष्ण, ६. विवृत्त, इन भेदनिकरि बहुरि ७. सचित्ताचित्त, ८. शीतोष्ण,

सचित्तशीतसंवृताचित्तोष्णविवृतभेदैः सचित्ताचित्तशीतोष्णसंवृतविवृतभेदैश्च नवप्रकारा योनि र्भवति । यूयते भवपरिणत आत्मा यस्यामिति योनिर्भवाधारः । आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामश्चित्तं सह चित्तेन वर्त्तते इति सचित्तं, शीत इति स्पर्शविशेषः 'शुक्लादिवदुभयवचनत्वाद्युक्तं द्रव्यमप्याह'। सम्यग्वृतः संवृतः दुरुपलक्ष्यप्रदेशो[1]ऽचित्तरहितपुद्गलप्रचयप्रदेशो वा, उष्णः सन्तापपुद्गलप्रचयप्रदेशो वा, विवृतो संवृतः प्रकटपुद्गलप्रचयप्रदेशो वा, उभयात्मको मिश्रः सचित्ताचित्तः शीतोष्णः संवृतविवृतश्च एतैर्भेदैश्च[2] नवयोनयः सम्मूर्च्छनगर्भोपपादानां जन्मनामाधारा भवन्ति एतेषु प्रदेषु जीवा सम्मूर्च्छनादिस्वरूपेणोत्पद्यत इति । तत्र **एइंदिय णेरइया–**एकेन्द्रिया नारकाश्च, **संपुडजोणी–**संवृतयोनयः, संवृता योनिर्येषां ते संवृतयोनयः दुरुपलक्ष्योत्पत्तिप्रदेशाः, **हवंति–**भवन्ति, **देवा य–**देवाश्च संवृतयोनयः, **वियलिंदिया–**विकलेन्द्रियाश्च द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाः, **वियडा–**विवृतयोनयश्च, तात्स्थ्यात्ताच्छब्द्यं, **संपुडवियडा य–**संवृतविवृता, संवृतविवृतयोनयः, **गब्भेसु–**गर्भेषु स्त्रिया उदरे "शुक्र-शोणितयोर्मिश्रणं गर्भः" । देवनारकैकेन्द्रियाः संवृतयोनयः, विकलेन्द्रिया ये ते विवृतयोनयः, गर्भेषु ये ते संवृतविवृतयोनयः भवन्तीति ।।५८।।

[3]पुनस्तेषां विशेषयोनित्वमाह—

अच्चित्ता खलु जोणी णेरइयाणं च होइ देवाणं ।
मिस्सा य गब्भजम्मा तिविहा जोणी दु सेसाणं ।।५९।।

अच्चित्ता–निश्चेतना, **खलु–**स्फुटं, **जोणी–**योनिः, **णेरइयाणं च–**नारकाणां च **होइ–**भवति, **देवाणं–**देवानां चशब्दोऽत्र संबन्धनीयः । **मिस्सा**

---

१. संवृत्तविवृत्त भेदनिकरि नवप्रकार योनि हैं । भवपरिणत आत्मा उपजै जा विषै सो योनि है । भवका आधार अैसा आत्मा का चैतन्य विशेष परिणाम सो चित्त है, चित्तकरि सहित बरतै सो सचित्त है । शीत यह स्पर्श विशेष है । शुक्लादिवत उभय वचनपनां है यातैं शीतकरि युक्त द्रव्य है ताहिहू कहै है । भलै प्रकार वृत कहिये ढक्या सो संवृत्त है । दरुपलक्षप्रदेश दृष्टि कै गोचर नांही । चित्तकरि रहित पुद्‌गल का प्रचय वा प्रदेश सो अचित्त है । संताप रूप पुद्‌गल प्रचय वा प्रदेश सो उष्ण है । संवृत्त नाही अैसा प्रगट पुद्‌गल का प्रचय वा प्रदेश सो विवृत्त है । उभय स्वरूप सो मिश्र-संचित्त शीतोष्ण, बहुरि संवृत्त विवृत्त,—यह नव योनि हैं । संमूर्छन, गर्भ, उपपाद अैसे जन्म के आधार है। इन प्रदेशानि विषै जीव संमूर्छनादि स्वरूपकरि उपजै है । तहां एकैंद्रिय बहुरि नारक संवृत्तयोनयः कहिये दुरूपलक्ष है उत्पत्तिप्रदेश जिनकै अैसे है । बहुरि देव जे है ते संवृत्त योनि है । विकलेंद्रियाः कहिये द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय विवृत्तयोनि है । तिसविषै तिष्ठवैपनांते तत् शब्दपनां है । यातैं विवृत्त शब्दकरि इहां विवृत्त जो निज नाई है । शुक्र-शोणित का मिश्रभाव सो गर्भ कहिये । अैसे स्त्री के गर्भ विषैं संवृत्त विवृत्तयोनि है ।

भावार्थ–नारक, एकैंद्रिय अर देव संवृत्त योनि है । विकलैंद्रिय विवृत्त योनि है । जो गर्भ विषै उपजै है ते संवृत्त विवृत्त योनि है।।५८।। बहुरि हू विशेषयोनि का स्वामित्व ताहि कहै हैं—

अर्थ–नारकनि कै बहुरि देवनि कै प्रगट पनैं अचित्तयोनि है । गर्भ ते है जन्म जिनका अैसे गर्भज जे है तिनके मिश्रा कहिये सचित्ता चित्त योनि है । बहुरि शेषाणां कहिये—संमूर्छन है जन्म जिनकै अैसे एकैंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय बहुरि देव, नारक, गर्भज वर्जित पंचैन्द्रियनिनकैं त्रिविध योनि हैं ।

---

१. क० प्रदेशः अचितः चित्तरहित- । २. गोम्मटसार इन्द्रिय मार्गणा के आ० से । ३. क० पुनरपि विशेषयोनिस्वामित्वमाह ।

य–मिश्रा सचित्ताचित्ता च, **गब्भजम्मा**–गर्भजन्मनां गर्भजानाम् । **तिविहा**–त्रिविधा त्रिपकारा, **जोणी दु**–योनिस्तु, **सेसाणं**–शेषाणां, सम्मूर्च्छनजन्मनामेकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियाणां देवनारकाणां गर्भजवर्जितपंचेन्द्रियाणां च देवनारकाणाम् अचित्तयोनयः, गर्भजाः सचित्ताचित्तयोनयः, शेषाः पुनरेकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्ताः केचन सचित्तयोनयः केचन अचित्तयोनयः केचन सचित्ताचित्तयोनयश्च भवन्तीति ।।५९।।

पुनरपि तेषामेव विशेषयोनिस्वामित्वमाह—

सीदुण्हा खलु जोणी णेरइयाणं तहेव देवाणं ।
तेऊण उसिणजोणी तिविहा जोणी दु सेसाणं ।।६०।।

सीदुण्हा–शीतोष्णा, **खलु**–स्फुटं, **जोणी**–योनिः, **णेरइयाणं**–नारकाणां, **तहेव देवाणं**–तथैव देवानां, **तेऊण**–तेजःकायानां, **उसिणजोणी**–उष्णयोनिः । **तिविहा**–त्रिविधा, शीता-उष्णा-शीतोष्णा, **जोणी दु**–योनिस्तु, **सेसाणं**–शेषाणां पृथिवीकायाप्कायवायुकायवनस्पतिकायद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणां देवनारकवर्जितपञ्चेन्द्रियाणाम् । देवनारकाणां शीतोष्णा च योनिः तेषां हि कानिचिच्छीतानि[1] कानिचिदुष्णानि तेजःकायिकानां पुनरुष्ण एव योनिः शेषाणां तु त्रिविधो योनिस्ते च केचिच्छीतयोनयः केचिदुष्णयोनयः केचिच्छीतोष्णयोनयः अप्कायिकाः शीतयोनय एवेति ।।६०।।

पुनरप्येताषां योनीनां विशेषयोनिस्वरूपमाह—

संखावत्तयजोणी कुम्मुण्णद वंसपत्तजोणी य ।
तत्थ य संखावत्ते णियमादु विवज्जए गब्भो ।।६१।।

भावार्थ–देव, नारक अचित्त योनि हैं । गर्भज सचित्ताचित्त योनि है । बहुरि शेष एकैंद्रिय आदि पंचैंद्रिय परजंत केतेक सचित्त योनि हैं, केतेक अचित्त योनि हैं बहुरि केनेक सचित्त योनि हैं ।।५९।।

बहुरि हू तिनही का विशेष योनि का स्वामित्व है ताहि कहै हैं—

अर्थ–नारकनि कैं तैंसे ही देवनि कै प्रगटपनै शीत-उष्ण योनि है । तेजकायनि के उष्ण योनि है । बहुरि शेषाणां कहिये पृथिवीकाय, अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रियनि कै देव, नारक, वर्जित पंचैन्द्रियनि कै त्रिविधा कहिये—१. शीत, २. उष्ण अर ३. शीतोउष्ण योनि हैं ।

भावार्थ–देवनारकनि के शीत बहुरि उष्ण योनि है तिनकै केतेक उपजवे के स्थान शीत है, केतेक उष्ण है । बहुरि तेज कायिक नियम करि उष्णयोनि है । अवशेष जीवनिकै तीन प्रकार हू योनि है । केतेक शीत योनि है केतेक उष्णयोनि है । अपकायिक शीत योनि ही है ।।६०।।

बहुरि हू इनकै योनिनी कै मध्य सविशेष योनि स्वरूप है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–शंख की ज्यों है आवर्त जाका सो शंखा वर्तका कहिये । कूर्म जो काछिवा (कछुए) ताकी ज्यों उन्नत सो कूर्मोन्नत है । वंशपत्र की ज्यों होय सो वंशपत्र है । तीन प्रकार योनि हैं—१. शंखावर्तक २. कूर्मोन्नत ३. वंशपत्र । तीन योनिनि कै मध्य शंखावर्तक योनि विषै

---

१. क० कानिचिदुपपादस्थानानि ।

संखावत्तय–शंख इव [1]आवर्तो यस्य शंखावर्तका **जोणी**–योनिः, **कुम्मुण्णद**–कूर्म इवोन्नता कूर्मोन्नता, **वंशपत्तजोणी य**–वंशपत्रमिव योनिर्वंशपत्रयोनिः । तत्र च तेषु च मध्ये शंखावर्ते नियमात्, **विवज्जए**–विपद्यते विनश्यति गर्भो 'गर्भः शुक्रशोणितगरणम्' । शंखावर्त्तकूर्मोन्नतवंशपत्रभेदेन त्रिविधा योनिस्तत्र च शंखावर्त्तयोनौ नियमाद्विपद्यते गर्भः अतः[2] तद्वती वंध्या[3] भवतीति[4] ।।६१।।

तेषु य उत्पद्यन्ते तानाह—

कुम्मुण्णदजोणीए तित्थयरा दुविहचक्कवट्टी य ।
रामावि य जायंते सेसा सेसेसु जोणीसु ।।६२।।

कूर्मोन्नतयोनौ विशिष्टसर्वशुचिप्रदेशे शुद्धपुद्गलप्रचये वा **तित्थयरा**–तीर्थंकराः, **दुविहचक्कवट्टी य**–द्विविधचक्रवर्तिनः चक्रवर्त्तिवासुदेवप्रतिवासुदेवाः **रामाविय**–रामाश्चापि बलदेवा अपि, **जायन्ते**–समुत्पद्यन्ते । **सेसा**–शेषा अन्ये तीर्थंकरचक्रवर्तिबलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवविवर्जिता भोगभूमिजादयः, **सेसेसु**–शेषयोः, **जोणीसु**–योन्योर्वंशपत्रशंखावर्त्तयोरुत्पद्यन्ते । किन्तु शंखावर्त्ते विपद्यते गर्भः स भोगभूमिजानां न[5] भवति ते ह्यनपवर्त्यायुष इति ।।६२।।

संवृतादियोनिविशेषाँश्चतुरशीतिशतसहस्रभेदान् प्रतिपादयन्नाह—

णिच्चिदरधादु सत्तय तरु दस विगलिंदियेसु छच्चेव ।
सुरणरतिरिए चउरो चोद्दस मणुएसु सदसहस्सा ।।६३।।

नित्यनिगोदेतरनिगोदपृथिवीकायिकाप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिकानां सप्तलक्षाणि योनीनाम् । तरूणां प्रत्येकवनस्पतीनां दशलक्षाणि योनीनाम्।

नियम तै गर्भ विनसै है । शुक्र शोणित का मिलना सो गर्भ है ।

भावार्थ–१. शंखावर्त्त २. कूर्मोन्नत ३. वंशपत्र भेदकरि योनि तीन प्रकार हैं तिनमें शंखावर्त योनि विषै नियम से गर्भ विनसे है। याही तैं स्त्री बंध्या होय है ।।६१।।

तिन विषै जे उपजै है तिनही कहै है—

अर्थ–कूर्मोन्नत योनि कहिये विशिष्ट सर्वशुचि प्रदेश विषै वा शुद्ध पुद्गल प्रचय विषैं तीर्थंकर बहुरि द्विविध चक्रवर्ती जे चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रति वासुदेव हैं ते बहुरि रामा अपि कहिये बलदेव हैं । ते हू जायंते कहिये उपजत हैं । शेषा कहिये—अन्य तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रति वासुदेवकरि रहित भोगभूमिया आदि दे शेषयोः योन्योः कहिये वंश-पत्र शंखावर्त्त योनि विषै उपजै है सो भोगभूमि, जों के नांही संभवै है । जातैं ते अनपवर्त्यायु (अकालमृत्यु रहित) हैं ।।६२।।

संवृत्त आदि योनि विशेष तैं चौरासी लाख भेद हैं, तिनहि प्रदिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–नित्यनिगोद, इतरनिगोद, धातु जे पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक, इनकै सात-सात लाख योनि हैं। प्रत्येक वनस्पतिनिकै दशलाख योनि हैं । विकलैंद्रिय जे द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, तिनके छहलाख योनि हैं । देवनिकी चार लाख योनि

---

१. क० आवर्ता यस्यां सा । २. क० अतएव वंध्या । ३. गोम्मटसार में छाया में 'विवज्यते' पाठ है जिसका अर्थ यह हुआ कि गर्भ नहीं रहता है।
४. देवीनां चक्रवर्तिस्त्रीरत्नादिनां कासांचित् तथाविध (शंखावर्त) योनिसम्भवात् (गोम्मटसार गाथा ८२) की टिप्पणी ।
५. क० संभवति ।

विकलेन्द्रियाणां द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणां षट्शतसहस्राणि । सुराणां चत्वारि लक्षाणि । नारकाणां चत्वारि लक्षाणि । तिरश्चां सुरनारकमनुष्यवर्जितपंचेन्द्रियाणां चत्वारि लक्षाणि । मनुष्याणां चतुर्दशशतसहस्राणि योनीनामिति सम्बन्धः । एवं सर्वमुदायेन चतुरशीतिशतसहस्राणि योनीनामिति । नात्र पौनरुक्त्यं पूर्वेण सहाधिकारभेदात् पर्यायार्थिकशिष्यानुग्रहणाच्च ।।६३।।

आयुषः स्वरूपं प्रमाणेन स्वामित्वपूर्वकं प्रतिपादयन्नाह—

वारसवाससहस्सा आऊ सुद्धेसु जाण उक्कस्सं ।
खरपुढविकायगेसु य वाससहस्साणि बावीसा ।।६४।।

नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवभवधारणहेतुः कर्मपुद्गलपिंड आयुः । औदारिक-औदारिकमिश्रवैक्रियिकवक्रियिकमिश्रशरीरसाधारणधारणलक्षणं वायुः । तत्र **वारसवाससहस्सा–**द्वादशवर्षसहस्राणि, उच्छ्वासानां त्रीणि सहस्राणि त्रिसप्तत्यधिकसप्तशतानि च गृहीत्वैको मुहूर्तः आगमोक्तं लक्षणमेतत् । लौकिकैः पुनः सप्तशतैरुच्छ्वासैर्मुहूर्तो भवति । आगमिक उच्छ्वास उदरप्रदेशनिर्गमाद्गृहीतो लौकिकः पुनः नासिकाया निर्गमाद् गृहीत इति न दोषः । त्रिंशन्मुहूर्त्तै-र्दिवसस्त्रिंशद्भिर्दिवसैर्मासो द्वादशभिर्मासैर्वर्षः । **आऊ–**आयुः भवस्थितिः **सुद्धेसु–**शुद्धेषु शुद्धानां पृथिवीकायिकेष्विति सम्बन्धः **जाण–**जानीहि, **उक्कस्सं–**उत्कृष्टं, **खरपुढविकायिगेसु य–**खरपृथिवीकायिकेषु च मृत्तिकादयः शुद्धपृथिवीकायिकाः पाषाणादयः खरपृथिवीकायिकाः, **वाससहस्साणि–**वर्षसहस्राणि, **वावीस–**द्वाविंशतिः । शुद्धपृथिवीकायिकानामुत्कृष्टमायुर्दादशवर्षसहस्राणि, खरपृथिवीकायिकानां चोत्कृष्टमायुर्द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि भवन्तीति ।।६४।।

हैं नारकनि के च्यारलाख योनि हैं । तिरश्चां कहिये—देव, नारक, मनुष्यनि तैं रहित पंचैंन्द्रियनि कै च्यारि लाख योनि हैं । मनुष्यनि के चौदह लाख योनि हैं । सूत्र विषैं योनि शब्द नांही परंतु प्रकरणतैं योनिनि का संबंध है । या प्रकार सर्वके समुदायकरि योनिनि के भेद चौरासी लाख हैं । इहां पुनरुक्तपनां नांही पूर्वकथनकरि साथि अधिकार भेद है, यातैं बहुरि पर्यायार्थिक शिष्य के अनुग्रहतै ।।६३।।

आगैं आयु का स्वरूप प्रमाणकरि स्वामित्वपूर्वक प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–नारक, तिरजंच, मनुष्य, देव जे भव तिनके धारबे का कारण अैसा कर्मपुद्गल का पिंड सो आयु है । अथवा औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र अैसे शरीर साधारण के धारण का है लक्षण जाका सो आयु है । तहां बारह हजारवर्ष उत्कृष्ट आयु शुद्ध पृथिवी कायिकनि विषै जानहू । तीन हजार सात सौ तिहत्तरि उच्छ्वासनिका ग्रहणकरि एक मुहूर्त्त होय है । यह लक्षण आगमोक्त है। बहुरि लौकिक मुहूर्त्त सातसै उच्छासनिकरि लौकिक मुहूर्त्त होय है । आगमिक उच्छ्वास उदरप्रदेश के निर्गम तैं ग्रहण कीया । बहुरि लौकिक उच्छ्वास नासिका तैं निर्गमतै ग्रहण कीया अैसे दोष नांही । तीस मुहुर्त्तनिकरि दिवस होय है । तीस दिवसनिकरि मास होय है । द्वादश मासनिकरि एक वर्ष होय है । भव की स्थिति सो आयु है । बहुरि खर पृथिवीकायिकनि विषैं उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष का है । मृतिका आदि शुद्ध पृथिवीकायिक है । पाषाण आदि खरपृथिवीकायिक है ।

भावार्थ–शुद्ध पृथिवीकायिकनि का उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्षका है । बहुरि खर पृथिवी कायिकनिका उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष का है ।।६४।।

अप्कायिकतेज:कायिकानामायु:प्रमाणमाह—

सत्त दु वाससहस्सा आऊ आउस्स होइ उक्कस्सं ।
रत्तिंदियाणि तिण्णि दु तेऊणं होइ उक्कस्सं ।।६५।।

सत्त दु–सप्तैव, **वाससहस्सा**–वर्षसहस्राणि, **आऊ**–आयु:, **आउस्स**–अपं अप्कायिकानां **होइ**–भवति, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टं , अप्कायिकानां परमायु: सप्तैव वर्षसहस्राणि । **रत्तिंदियाणि**–रात्रिन्दिनानि अहोरात्रं, **तिण्णि दु**–त्रय एव, **तेउणं**–तेजसां तेज:कायिकानां, **होइ उक्कस्सं**–भवत्युत्कृष्टम्। अप्कायिकानां परमायु: सप्तैव वर्षसहस्राणि, त्रिणि[१] रात्रिंदिनानि तेज:कायिकानां परमायुरिति ।।६५।।

वायुकायिकानां वनस्पतिकायिकानां च परमायु:प्रमाणमाह—

तिण्णि दु वाससहस्सा आऊ वाउस्स होइ उक्कस्सं ।
दस वाससहस्साणि दु वणप्फदीयणं तु उक्कस्सं ।।६६।।

तिण्णि दु–त्रीणि तु त्रीण्येव नाधिकानि, **वाससहस्सा**–वर्षसहस्राणि, **आऊ**–आयु:, **वाउस्स**–वायूनां वायुकायिकानां, **होदि उक्कस्सं**–भवत्युत्कृष्टम् । **दस वाससहस्साणि**–दशवर्षसहस्राणि, तुशब्दोऽवधारणार्थ: **वणप्फदीणं तु**–वनस्पतीनां च वनस्पतिकायानां तु **उक्कस्सं**–उत्कृष्टमेव। वायुकायिकानामुत्कृष्टमायुस्त्रीण्येव वर्षसहस्राणि, वनस्पतिकायिकानां तूत्कृष्टमायुर्दशैव वर्षसहस्राणीति ।।६६।।

विकलेन्द्रियाणामायु:प्रमाणमाह—

वारस वासा वेइंदियाणमुक्कस्सं भवे आऊ ।
राइंदियाणि तेइंदियाणमुगुवण्ण उक्कस्सं ।।६७।।

आगै अप्कायिक, तेजसकायिकनिका आयुका प्रमाण है, ताहि कहै है—

अर्थ–अप्कायिकनिका उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्षका नियमकरि है । बहुरि तेज:कायिकनिका उत्कृष्ट आयु तीन अहोरात्रका नियमकरि है ।।६५।।

आगै वायुकायिक बहुरि वनस्पतीकायिक इनका उत्कृष्ट आयुका प्रमाण है, ताहि कहै है—

अर्थ–वायुकायिकनिका उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्षका है अधिक नांही । बहुरि वनस्पतीकायकनि का उत्कृष्ट आयु दशहजार वर्ष का है ।।६६।। इहां तु अव्यय है सो अवधारणार्थ कहिये निश्चय—अर्थका वाची है ।

आगै विकलेंद्रियनिका उत्कृष्ट आयु है, ताहि कहै है—

अर्थ–शंखकूं आदि दे द्वींद्रियनिका उत्कृष्ट आयु बारह वर्षका है । बहुरि गोभी (खजूर कीड़ा) आदि त्रींद्रियनियनिका उत्कृष्ट आयु

---

१. क० रात्रिदिवसास्त्रय: ।

वारस वासा–द्वादशवर्षाणि, **वेइंदियाणं**–द्वीन्द्रियाणां शंखप्रभृतीनां, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टमेव, **हवे**–भवेत्, **आऊ**–आयुः । **रत्तिंदिणाणि**–रात्रिंदिनानि अहोरात्ररूपाणि, **तेइंदियाण**–त्रीन्द्रियाणां गोभ्यादीनां, **उगुवण्ण**–एकोनपंचाशत्, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टम् । द्वीन्द्रियाणां प्रकृष्टमायुः द्वादशसंवत्सरा एव, त्रीन्द्रियाणां पुनरुत्कृष्टमायुः एकोनपंचाशद्रात्रिदिवसानामिति ।।६७।।

चतुरिंद्रियपंचेन्द्रियाणामाह—

चउरिंदियणमाऊ उक्कस्सं खलु हवेज्ज छम्मासं ।
पंचेंदियाणमाऊ एत्तो उड्ढं पवक्खामि ।।६८।।

चउरिंदियाणं–चतुरिन्द्रियाणां भ्रमरानीनां, **आऊ**–आयुः, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टं खलु स्फुटं **हवेज्ज**–भवेत्, **छम्मासं**–षण्मासाः । **पंचेंदियाणं**–पंचेन्द्रियाणां, **आऊ**–आयुः, **एत्तो उड्ढं**–इत ऊर्ध्वं विकलेन्द्रियकथनोर्ध्वं, **पवक्खामि**–प्रवक्ष्यामि प्रतिपादयिष्यामि । चतुरिन्द्रियाणामुत्कृष्टमायुः [1]षण्मासमितं भवेद्, इत ऊर्ध्वं पंचेन्द्रियाणामायुर्वक्ष्यामीति ।।६८।।

तदेव प्रतिपादयति—

मच्छाण पुव्वकोडी परिसप्पाणं तु णवय पुव्वंगा ।
बादालीस सहस्सा उरगाणं होइ उक्कस्सं ।।६९।।

गुणचास (४९) अहोरात्र का है ।।६७।।

आगै चतुरिंद्रय, पंचैंद्रियनिका उत्कृष्ट आयु है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–भ्रमर आदि चतुरिंद्रियनिका उत्कृष्ट आयु निश्चयकरि छह मासका है । इत ऊर्द्ध कहिये विकलेंद्रियनि के कथन कै आगै पंचैंन्द्रियनिका उत्कृष्ट आयु है ।।६८।।

ताहि प्रतिपादन करता हूँ—

अर्थ–वर्ष, जो एक वर्ष जो दशकरि गुणित दश वर्ष होय हैं । दशवर्ष दशकरि गुणित वर्षशत होय हैं, वर्षशत दशकरि गुणित वर्षसहस्र होय हैं, वर्ष सहस्र दशकरि गुणित वर्ष दशसहस्र होय हैं, दशवर्ष सहस्र दशकरि गुणित वर्षशतसहस्र होय (लाख) हैं, वर्षशतसहस्र दशकरि गुणित दशवर्ष शतसहस्र (दस लाख) होय है, दश वर्ष शतसहस्र, दशकरि गुणित कोटी (करोड़) होय हैं, कोटीदशकरि गुणित

---

१. क० णण्मासा । २-३. क० दशकोट्य; ।

वर्ष दशगुणितं दशवर्षाणि, दशवर्षाणि दशगुणितानि वशर्षतं, वर्षशतं दशगुणितं वर्षसहस्त्रं, वर्षसहस्त्रं दशगुणितं दशवर्षसहस्त्राणि, दशवर्षसहस्त्राणि दशगुणितानि वर्षशतसहस्त्रं, वर्षशतसहस्त्रं दशगुणितं दशवर्षशतसहस्त्राणि, दशवर्षशतसहस्त्राणि दशगुणितानि कोटी, दशगुणिता कोटी दशकोटी[2], दशकोटी[3] दशगुणिता कोटीशतं, कोटीशतं दशगुणितं कोटीसहस्त्रं, कोटीसहस्त्रं दशगुणितं दशकोटीसहस्त्राणि, दसकोटीसहस्त्राणि दस-गुणितानि लक्षकोटीत्येवमादि कालप्रमाणं नेतव्यमिति । वर्षलक्षं चतुरशीतिरूपगुणितं पूर्वांगं भवति, पूर्वांगं चतुरशीतिलक्षगुणितं पूर्वं भवति, पूर्वस्य तु प्रमाणं सप्ततिकोटीशतसहस्त्राणि कोटीनां तु षट्पंचाशत्सहस्त्राणि चेति । **प्रस्तुतं वक्ष्ये मच्छाणं**–मत्स्यानां, **पुव्वकोडी**–पूर्वकोटी पूर्वाणां कोटी पूर्वकोटी "सप्ततिकोटीशतसहस्त्राणि कोटीनां षट्पंचाशत्सहस्त्राणि च कोटीगुणितानि पूर्वकोटी भवति" । **परिसप्पाणं**–परिसर्पन्तीति परिसर्पाः गोधेरगोधादचस्येषां परिसर्पाणां, **तु णवय पुव्वंगा**–नवैव पूर्वांगानि चतुरशीतिलक्षाणि नवगुणितानि, **बादालीसं**–द्वाचत्वारिंशत्, **सहस्सा**–सहस्त्राणि, उत्तरगाथार्द्धे वर्षशब्दस्तिष्ठति तेन सह संबन्धः न पूर्वपूर्वांगाभ्यामिति, ताभ्यां सह वर्षाणां सम्बन्धे पूर्वागमविरोधः स्यात्तस्माद्द्वाचत्वारिंत्सहस्त्राणीति संभवन्ति, **उरगाणं**–उरसा गच्छन्ति इति उरगाः सर्पास्तेषामुरगाणां, **होदि**–भवति, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टम् । मत्स्यानां पूर्वकोटी परमायुः परिसर्पाणां तु नवैव पूर्वांगानि सर्पाणां पुनः परमायुर्वर्षाणां द्वाचत्वारिंशत्सहस्त्राणीति ।।६९।।

दशकोटी होय हैं, दशकोटि दशकरि गुणित कोटीशत होय हैं, कोटीशत दशकरि गुणित कोटी सहस्त्र होय है, दशकोटि सहस्त्र दशकरि गुणित कोटीशतसहस्त्र होय हैं, कोटीशत सहस्त्र दशकरिगुणित दशकोटि शतसहस्त्र होय हैं, दशकोटीशतसहस्त्र दशकरि गुणित कोटा-कोटी होय है । इत्यादिक काल का प्रमाण जाननां ।

एक लाख वर्ष चौरासीकरि गुणित पूर्वांग होय है । पूर्वांगहै, सो चौरासी लाख करि गुणित पूर्व होय है । सत्तरिलाखकोडि बहुरि छप्पनहजार कोडी पूर्व का प्रमाण जाननां । प्रकारणागत कथन है ताहि कहूं हूं—

मत्सनिका उत्कृष्ट आयु कोडिपूर्व है । पूर्व कोडि कहां पूर्वनिकी कोडि सो पूर्ब कोटि है । सतरि लाखकोडि छप्पनहजार कोडि या हि कोडिकरि गुणिये सो पूर्वकोटि वर्ष है । बहुरि परिसर्प जे गोधे (गोह) गोधादि तिनका आयु नवपूर्वांग है । नवपूर्वांग कहा ? चोरासी लाख, नवकरि गुणित नव पूर्वांग होय है । बहुरि उरगाणां कहिये हृदयकरि गमन करै ते उरग कहिये सर्प, तिनका उत्त्कृष्ट आयु वीयालीस हजार का है । उत्तरगाथा के अर्द्धभाग विषै 'वर्ष' शब्द तिष्ठै है तिस करि संबंध करणां । पूर्व पूर्वांग तै संबंध नांही करणां । पूर्व पूर्वांग तैं संबंध होतैं पूर्वागम का विरोध होय है । तातैं इहां बीयालीस हजार वर्ष जानने ।

भावार्थ–मत्सनिका उत्त्कृष्ट आयु पूर्वकोटि का है । परिसर्पनिका नव पूर्वांग है । सर्पनिका उत्त्कृष्ट आयु वीयालीस हजार वर्षनिका है ।।६९।।

पक्षिणामसंज्ञिनां च परमायु:प्रमाणमाह—

पक्खीणं उक्कस्सं वाससहस्सा बिसत्तरी होंति ।
एगा य पुव्वकोडी असण्णीणं तह य कम्मभूमीणं ।।७०।।

पक्खीणं–पक्षिणां भैरुंडादीनां, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टमायुरिति संबन्धः, **वाससहस्सा**–वर्षसहस्राणि, **बिसत्तरी**–द्वासप्तति:, **होंति**–भवन्ति । **एगा य**–एका च, **पुव्वकोडी**–पूर्वकोटी, **असण्णीणं**–असंज्ञिनां मनोविरहितपंचेन्द्रियाणां, **तह**–तथा, **कम्मभूमिणं**–कर्मभौमानां "कर्मभौमशब्दोऽनन्तराणां सर्वेषां विशेषणम्" तथाशब्देन सप्ततिशतार्यखण्डप्रभवा मनुष्याः परिगृह्यन्ते । कर्सभूमिजानां पक्षिणामुत्कृष्टमायुर्द्वासप्ततिवर्षसहस्राणि भवन्ति, असंज्ञिनां, कर्मभूमिजमनुष्याणामन्येषां कर्मभूमिप्रतिभागजानां चैका पूर्वकोटी वर्षाणां परमायुर्भवतीति ।।७०।।

अथ भोगभूमिजानां किंप्रमाणं परमायुरित्यत आह—

हेमवदवंसयाणं तहेव हेरण्णवंसवासीणं ।
मणुसेस य मेच्छाणं हवदि तु पलिदोपमं एक्कं ।।७१।।

हेमवदवंसयाणं–हैमवतवंशजानां, **तहैव**–तथैव हैरण्यवतवंशवासिनां, **मणुसेसु य**–मानुषेषु च मध्ये, **मेच्छाणं**–म्लेच्छानां सर्वम्लेच्छखण्डेषु जातानां भोगभूमिप्रतिभागजानां अन्तर्द्वीपजानां वा समुच्चयश्चशब्देन, **हवदि तु**–भवति तु, **पलिदोपमं**–पल्योपममेकम् । पंचसु जघन्यभोगभूमिषु

आगै पक्षीनिका बहुरि असंज्ञीनिका उत्त्कृष्ट आयु का प्रमाण है, ताहि कहै है—

अर्थ–भैरुण्ड आदि पक्षीनिका उत्त्कृष्ट आयु वहत्तरि हजार वर्ष का है । इहां आयु का संबंध जाननां । बहुरि असंज्ञी जे मन रहित पंचैंद्रिय तिनका उत्कृष्ट आयु एक कोडि पूर्व का है । तथा च कर्मभौमानां—इहां कर्मभौम शब्द है सो सर्ब का विशेषण है । 'तथा' शब्दकरि एक सौ सत्तरि आर्यखंड विषै ऊपजे अैसे मनुष्य ग्रहण करिये हैं ।

भावार्थ–कर्मभूमि विषै ऊपजै पक्षीनिका उत्कृष्ट आयु बहत्तरि हजार वर्ष का है । बहुरि असंज्ञी, तिरजंच अर कर्मभूमिया मनुष्यनि का बह्ररि अन्य जे कर्मभूमि प्रतिभाग विषै उपजै तिनका उत्कृष्ट आयु एक कोडि पूर्व वर्षनिका है ।।७०।।

आगै भोगभूमिजनिका उत्कृष्ट आयु का प्रमाण कहा अैसे प्रश्न का उत्तर कहै है—

अर्थ–हैमवतवंश विषै उत्पन्न भये तैंसे ही हिरण्यवतवंश विषै निवासी, बहुरि मनुष्यनि कै मध्य म्लेच्छ जे सर्ब म्लेच्छ खंड विषै उत्पन्न भये मनुष्य तिनका भोगभूमि प्रतिभाग मैं उत्पन्न भये बहुरि अंतरद्वीप मैं उत्पन्न भये तिनका समुच्चय 'च' शब्दकरि जानने । सो इन का उत्कृष्ट आयु पल्योपम एक प्रमाणका है ।

भावार्थ–हैमवत है संज्ञा जिनकी अैसी पांच जघन्य भोगभूमि तथा अन्य जे हैरण्यवत संज्ञा जिनकी अैसी पांच जघन्य भोगभूमि, तिन विषै उत्पन्न भये तिरजंच अर मनुष्य तिनका उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम है । नियमकरि इहां 'च' शब्द है सो समुच्चयार्थ है । तथा

हैमवतसंज्ञकासु[1] तथा परासु पंचसु जघन्यभोगभूमिषु हैरण्यवतसंज्ञकासु च मध्ये सर्वम्लेच्छखण्डेषु जातानां भोगभूमिप्रतिभागजानामन्तद्वीपजानां च पल्योपममेकं परमायुरिति ।।७१।।

मध्यमभोगभूमिजानां परमायुःप्रमाणमाह—

हरिरम्मयवंसेसु य हवंति पलिदोवमाणि खलु दोण्णि ।
तिरिएसु य सण्णीणं तिण्णि य तह कुरुवगाणं च ।।७२।।

मनुष्या इत्यनुवर्त्तते, **हरिरम्मयवंसेसु य–**हरिरम्यवंशेषु च, वंशशब्दोऽत्रप्रत्येकमभिसंबध्यते, पंचसु हरिवंशेषु मध्यमभोगभूमिषु पंचसु रम्यकवंशेषु च **हवंति–**भवतः, **पलिदोवमाणि–**पल्योपमानि, द्वे खलु स्फुटं, **दोण्णि–**द्वे । **तिरिएसु य–**तिर्यक्षु च तिरश्चां वा तिर्यक्शब्दः [2]प्रत्येकभोगभूमिषु संबध्यते, **सण्णीणं–**संज्ञिनां समनस्कानां "अत्र संज्ञिशब्दो भोगभूमिषु असंज्ञिनामभावप्रतिपादकः । भोगभूमिजास्तियचः संज्ञिन एवेति"। **तिण्णि य–**त्रीणि च, **तह य–**तथा, **कुरवगाणं–**कौरवकाणां चात्र कुरुशब्द उत्तरकुरुदेवकुरुषु वर्त्तमानो गृह्यते सामान्यनिर्देशात् । पंचसु च हरिवंशेषु मध्यमभोगभूमिषु पंचसु च रम्यकवर्षे मध्यमभोगभूमिषु च मनुष्याणां तिरश्चां च संज्ञिनां द्विपल्योपमं परमायुः, पंचसूत्तरकुरुषु पंचसु देवकुरुषु चोत्कृष्टभोगभूमिषु मनुष्याणां तिरश्चां च त्रीणि पल्योपमानि परमायुरिति ।।७२।।

मनुष्यनि कै मध्य सर्वम्लेच्छ खण्डनि विषै उत्पन्न भये । बहुरि भोगभूमि के प्रति भाग विषै उत्पन्न भये । बहुरि अंतरद्वीपनि विषै उत्पन्न भये तिनका उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम है ।।७१।।

आगै मध्यभोग भूमि विषै उत्पन्न भये तिनका उत्कृष्ट आयु का प्रमाण है ताहि कहै है—

अर्थ–इहां मनुष्य अैसी अनुवृत्ति है । वंश शब्द प्रत्येक संबंध करणां । मध्यम भोगभूमि पांच हरिवंश बहुरि पांच रम्यकवंश तिनि विषै निश्चयकरि दोय पल्योपम उत्कृष्ट आयु है । आगैं तिरजंच शब्द है सो सर्व भोगभूमि विषै संबंध करणां । तिरजंचनिका, संज्ञिना कहिये समनस्क अैसे इहां संज्ञी शब्द है सो भोगभूमि विषै असंज्ञी का अभाव का प्रतिपादक है । भोगभूमि वा तिरजंच नियमकरि संज्ञी है । तैसे ही कौरवकनि का उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम है । इहां सामान्य निर्देश तै कुरु देवकुरु विषै उत्तरकुरु विषै वर्तमान शब्द (दोनों का) ग्रहण करिये है ।

भावार्थ–पांच हरिवंश मध्यम भोगभूमि, पांच रम्यक मध्यम भोगभूमि तिन विषै मनुष्यनि का बहुरि संज्ञी, तिरजंचनिका उत्कृष्ट आयु दोय पल्योपम है । पांच उत्तरकुरु बहुरि पांच देवकुरु उत्कृष्ट भोगभूमि विषै मनुष्यनि का बहुरि तिरजंचनिका उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम है ।।७२।।

---

१. जातानां तिर्यङ्मनुष्याणां परमायुः पल्यमेकमेव भवति तथा मनुष्येषु च मध्ये सर्वम्लेच्छखण्डेषु जातानां भोगभूमिप्रतिभागजानामन्तर्द्वीपजानां च पल्योपममेकं परमायुरिति इति क प्रतौ ।

२. सर्वभोग- ।

७८

नारकाणां देवानां च परमायुषः स्थितिं प्रतिपादयन्नाह—

देवेसु णारयेसु य तेत्तीसं होंति उदधिमाणाणि ।
उक्कस्सयं तु आऊ वाससहस्सा दश जहण्णा ।।७३।।

देवेसु–देवानामणिमाद्यष्टर्द्धिप्राप्तानां, **णारयेसु य**–नारकाणां च सर्वाशुभकराणाम् अथवा देवेषु नारकेषु च विषये, **तेत्तीसं**–त्रयस्त्रिंशत् त्रिभिरधिकं दशानां त्रयं, **होंति**–भवन्ति, उदधिमाणाणि सागरोपमाणि, **उक्कस्सयं तु**–उत्कृष्टं, तु शब्दोऽधारणार्थम्[1] । **आऊ**–आयुः, **वाससहस्सा**–वर्षाणां सहस्राणि, **दस**–दश, **जहण्णं**–जघन्यं निकृष्ट, सामान्यकथनमेतद् द्रव्यार्थिकशिष्यानुग्रहनिमित्तं विस्तरतः [2]सूत्रेणोत्तरत्र [3]कथनं पर्यायार्थिकशिष्यानुग्रहार्थं "सर्वानुग्रहकारी च सतां प्रयासो" यस्ततः सामान्यविशेषात्मकं प्रतिपादनं युक्तमेव सामान्यविशेषात्मकत्वाच्च सर्ववस्तूनां सामान्येन प्रतिपन्ने सति विशेषस्य सुखेनावगतिर्नित्यक्षणिकैकान्तवादिमतं च निराकृतं भवति । सामान्येन देवानां नारकाणां चोत्कृष्टमायुः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जघन्यं च देवनारकाणामायुर्दशवर्षसहस्राणीति ।।७३।।

अल्पप्रपंचत्वात्प्रथमतरं तावन्नारकाणां सामान्यसूत्रसूचितं प्रकृष्टमायुःप्रमाणं सर्वपृथिवीनां प्रतिपादयन्नाह—

एकं च तिण्णि सत्तय दस सत्तरसेव होंति बावीसा ।
तेसीसमुदधिमाणा पुढवीण ठिदीणमुक्कस्सं ।।७४।।

एकं च एकं च सर्वत्रोदधिमानानीत्यनेन संबन्धः **तिण्णि**–त्रीणि, **सत्तय**–सप्त च, **दस**–दश, **सत्तरस**–सप्तदश एवकारोऽवधारणार्थः, **होंति**–

आगै नारकनि का बहुरि देवनिका उत्कृष्ट आयु है, ताकी स्थिति प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–अणिमा आदि आठ ऋद्धिकूं प्राप्त भये ऐसे देवनिका, बहुरि सर्वअशुभ के कर्ता ऐसे नारक तिनका, बहुरि तिन विषै उत्कृष्ट आयु तेत्तीस सागरोपम है । गाथा में 'तु' शब्द है सो निश्चयार्थ है । बहुरि जघन्य आयु दश हजार वर्ष का है संग्रह सूत्रकरि यह सामान्य कथन द्रव्यार्थिक शिष्य के अनुग्रह निमित्त है । बहुरि विस्तार सूत्रकरि उत्तरकथन है सो पर्यायार्थिक शिष्य के अनुग्रह अर्थि है । जातै सत्पुरुषनिका प्रयास सर्वका अनुग्रहकारी है । तिसतैं सामान्य-विशेष स्वरूप कथन योग्य ही है । बहुरि सर्व वस्तुनिकै सामान्य विशेषात्मकपनां है, यातैं सामान्य स्वरूप जानैं विशेष स्वरूप का जाननां सुखकरि होय है । बहुरि नित्य क्षणिक जे एकांतवादी तिनका मत निराकृत होय है ।

भावार्थ–देवनि का बहुरि नारकनिका उत्कृष्ट आयु सामान्यकरि तेतीस सागरोपम है । बहुरि देव नारकनिका जघन्य आयु दशहजार वर्ष का है । अल्पविस्तारपनैंतैं नारकनि का उत्कृष्ट आयु का प्रथम सामान्य सूत्रकरि कह्या ।।७३।।

आगै सर्व पृथवीनिका उत्कृष्ट आयु प्रमाण है, ताहि प्रतिपादन करते कहै है—

अर्थ–इहां सर्वत्र उदधि नाम जो सागर ताकरि संबंध जाननां । १. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा, ३. बालुकप्रभा, ४. पंकप्रभा, ५. धूमप्रभा, ६. तमःप्रभा, ७. महातमःप्रभा—इन सप्त पृथिवीनि मैं यथा संख्यकरि एकसागरोपम, तीनसागरोपम, सात सागरोपम, दश सागरोपम, सतरह सागरोपम, बाईस सागरोपम, तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट आयु स्थिति है । इहां आयु की अनुवृत्ति है, ताकरि आयु की स्थिति

१. क० अवधारणपरः । २. क० संग्रहसूत्रेण । ३. ख उत्तरत्र कथनं च विस्तरसूत्रेण ।

भवन्ति, **बावीसं**–द्वाविंशतिः, **तेत्तीसं**–त्रयस्त्रिंशत्, **उदधिमाणा**–उदधिमानानि, **पुढवीणं**–पृथिवीनां रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभाणां सप्तानां यथासंख्येन संबन्धः, **ठिदीणं**–स्थितीनामायुरित्यनुवर्तते तेनायुःस्थितीनां नान्यकर्मस्थितीनां ग्रहणं भवति नापि नरकभूमिस्थितीनामिति, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टम्। रत्नप्रभायां त्रयोदशप्रस्तरे नारकाणा[१] मायुःस्थितेः प्रमाणमेकसागरोपमं, शर्कराप्रभायामेकादशप्रस्तरेऽधोनारकाणां परमायुः स्थितेः प्रमाणं त्रीणि सागरोपमाणि। वालुकाप्रभायां नवमप्रस्तरेऽधोनारकाणां परमायुःस्थितेः प्रमाणं दशसागरोपमाणि,* धूमप्रभायां पंचमप्रस्तरे परमायुःस्थितेः प्रमाणं सप्तदशसागरोपमाणि, तमःप्रभायां तृतीयप्रस्तरे नारकाणां परमायुःस्थितेः प्रमाणं द्वाविंशतिः सागराणाम् । महातमःप्रभायाम् अवधिस्थाननरके नारकाणां परमायुःस्थितेः प्रमाणं त्रयस्त्रिंशदुदधिमानानि इति । प्रथमायां तावत्तत एवमभिसंबन्धः क्रियते रत्नप्रभायां नारकाणामेकसागरोपममुत्कृष्टायुःस्थितिरित्येवं सर्वदात्र सर्वेऽपि मध्यमविकल्पा आयुःस्थितेर्वक्तव्या देशामर्शकसूत्रेण (?) सूचितत्वात् । प्रथमायांपृथिव्यां प्रथमप्रस्तरे सीमन्तकेन्द्रके नारकाणां परमायुषः स्थितेः प्रमाणं नवतिसहस्रवर्षप्रमाणं भवति, द्वितीयेन्द्रके नारकाभिरन्ये वर्षाणां नवतिलक्षाणि, तृतीयकेन्द्रके रौरुकनाम्नि पूर्वकोट्यस्त्वसंख्येयाः, चतुर्थेन्द्रके भ्रान्तसंज्ञके सागरोपमस्य दशमभागः, पंचमेन्द्रक उद्भ्रान्ताभिधाने द्वौ दशभागौ, षष्ठेन्द्रके संभ्रान्तके दशभागास्त्रयः, सप्तमेन्द्रकेऽसंभ्रान्तनाम्नि दशभागाश्चत्वारः, अष्टमेन्द्रके विभ्रान्ते दशभागाः पंच, नवमेन्द्रके त्रस्तसंज्ञके दशभागाः षट्, दशमेन्द्रके त्रासिते दशभागाः सप्त, एकादशेन्द्रके वक्रान्ते दशाभागा अष्टौ, द्वादशेन्द्रकेऽवक्रान्ते दशभागा नव, त्रयोदशेन्द्रके विक्रान्ते दशभागा दश, दशसागरोपमस्येति सर्वत्र संबन्धः ।

द्वितीयायां पृथिव्यां नारकाणां प्रथमेन्द्रके तत्रकसंज्ञके परमायुषः स्थितेः प्रमाणं द्विसागरोपमस्यैकादशभागाभ्यामधिकं सागरोपमं, द्वितीयेन्द्रके स्तनके सागरोपममेकादशचतुर्भागैरधिकं, तृतीयेन्द्रके मनके सागरोपमं षड्भिरेकादशभागैरधिकं, चतुर्थेन्द्रके वनके सागरोपममेकादशभागैरष्टभिरधिकं, पंचमेन्द्रके घाटसंज्ञके सागरोपममेकादशभागैर्दशभिरधिकं, षष्ठेन्द्रके संघाटकसंज्ञके द्वे सागरोपम एकादशभागेनाधिके, सप्तमेन्द्रके जिह्वाख्ये द्वे सागरोपमे

का ग्रहण है । अन्य कर्मनिकी स्थिति का ग्रहण नांही । बहुरि नरकभूमि की स्थितिनि का ग्रहण नांही । 'एवकार' शब्द है सो अवधारणार्थ है ।

भावार्थ–रत्नप्रभा पृथिवी के तेरहवे पाथडे विषैं अधोनारकनिका उत्कृष्ट आयु का प्रमाण एक सागरोपम है । शर्करा प्रमाण तीन सागरोपम है । बालुकाप्रभा के नवम पाथडे विषैं अधोनारकनिका उत्कृष्ट आयुस्थिति का प्रमाण सात सागरोपम है । पंकप्रभा के सातमें पाथडे विषैं अधो नारकनिका उत्कृष्ट आयु स्थिति का प्रमाण दशसागरोपम है । धूमप्रभा के पंचपाथडे विषैं नारकनिका उत्कृष्ट आयु स्थिति का प्रमाण सतरह सागरोपम है । तमःप्रभा के तीसरे पाथडे विषैं नारकनिका उत्कृष्ट आयुस्थिति का प्रमाण बाईस सागर है । महातमःप्रभा के अवधि स्थान नरक विषैं नारकनिका उत्कृष्ट आयु स्थिति का प्रमाण तैतीस सागर है ।

इहां स्थिति शब्द का अर्थ प्रथमा विभक्ति विषैं करणां । प्रथम ऐसे संबंध करणां-रत्नप्रभा विषैं नारकनिकै एक सागरोपम उत्कृष्ट आयु स्थिति है । इहां सर्वत्र की स्थिति के मध्यम विकल्प कहने जोग्य है । देशामर्शक सूत्रकरि सूचितपनां है ।

यातैं प्रथम पृथिवी विषैं, प्रथम प्रस्तर विषैं, सीमंतक इंद्रक विषैं नारकनि का परमायु स्थिति का प्रमाणनि नव्बै हजार वर्ष है । नारक नाम दूसरे इंद्रक विषै निव्वै (९०) लाख वर्ष का आयु है । रौद्र नाम तीसरैं इंद्रक विषैं असंख्यात पूर्वकोटि है । भ्रातं है संज्ञा जाकी ऐसे

---

१. क० नारकाणां परमायुःस्थितेः ।

* (पंकप्रभायां सप्तमप्रस्तरेऽधोनारकाणां परमायुःस्थितेः प्रमाणं सप्तसागरोपमाणि)

त्रिभिरेकादशभागैरधिके, अष्टमेन्द्रके जिह्वि[1]कनाम्नि द्वे सागरोपमे पंचभिरेकादशभागैरधिके, नवमेन्द्रके लोलनामके द्वे सागरोपमे सप्तभिरेकादशभागैरधिके, दशमेन्द्रके लोलुपाख्ये द्वे सागरोपमे नवभिरेकादशभागैरधिके, एकादशेन्द्रके स्तनलोलुपनाम्नि उक्तान्येव त्रीणि सागरोपमाणीति ।

तृतीयायां पृथिव्यां प्रथमेन्द्रके तप्तनाम्नि नारकाणां परमायुषः प्रमाणं त्रीणि सागरोपमाणि सागरोपमस्य नवभागैश्चतुर्भागैरभ्यधिकानि, द्वितीयेन्द्रके [2]त्रस्तनामके सागरास्त्रियो नवाष्टभागैरभ्यधिकाः, तृतीयके तपनसंज्ञके चत्वारः सागरा नवभागैस्त्रिभिरभ्यधिकाः, चतुर्थप्रस्तरे तापनाख्ये चत्वारः सागराः सप्तभिर्नवभागैरभ्यधिकाः, पंचमेन्द्रके निदाघाख्ये पंचसागरा नवभागा द्वाभ्यामधिकाः, षष्ठेन्द्रके प्रज्वलिते पंच सागराः नवभागैः षड्भिरभ्यधिकाः सप्तमेन्द्रके ज्वलिते षट् सागरा नवभागेनैकेनाभ्यधिकाः, अष्टमेन्द्रके संज्वलिते षट् पयोधयो नावभागैः पंचभिरभ्यधिकाः, नवमेन्द्रके संज्वलिते उक्तान्येव सप्तसागरोपमाणि ।

चतुर्थ्यां पृथिव्यां नारकाणां परमायुषः प्रमाणं—प्रथमेन्द्रक आरनाम्नि सप्त पयोधयः त्रिभिः सप्तभागैरभ्यधिकाः, द्वितीयेन्द्रके तारसंज्ञके सप्त समुद्राः सप्तभागैः षड्भिरभ्यधिकाः, तृतीयेन्द्रके मारनाम्नि पयोधयोऽष्टौ सप्तभागाभ्यां द्वाभ्यामधिकाः, चतुर्थेन्द्रके वर्चस्कनाम्नि नव सागरा अष्टौ पंचभिः

चौथे इंद्रक विषैं सागरोपम का दशवां भाग है । उद्भ्रान्त नाम पंचम इंद्रक विषैं दोय दशमा भाग (दस भाग में से दो भाग) हैं । संभ्रान्त नाम छठे इंद्रक विषैं तीन दश भाग है । असभ्रान्त नामक सातवें इंद्रक विषैं च्यारदश भाग है । विभ्रान्त नाम अष्टम इंद्रक विषैं पंचदश भाग है । त्रस्त नाम नवमा इंद्रक विषैं छह दश भाग है । त्रसित नाम दशम इंद्रक विषैं सप्त दश भाग है । वक्रान्त नाम ग्यारमैं इंद्रक विषैं आठ दश भाग है । अवक्रान्त नामक बारहमें इन्द्रक विषैं नव दश भाग है । विक्रान्त नामक तेरमे इंद्रक विषैं दश दश भाग (एक सागर प्रमाण) है । सागरोपम का सर्वत्र संबंध जाननां। दश का जिनकै भाग दीजिये । भावार्थ—दशवां भाग का नाम दशमाभाग (एक सागर प्रमाण) जाननां ।

द्वितीय पृथिवी विषैं तत्रक नाम प्रथम इंद्रक विषैं नारकनि का उकृष्ट आयु स्थिति का प्रमाण सागरोपम के ग्यारा भाग करिये, अैसे दोय भागनि करि अधिक सागरोपम है । स्तनक नाम द्वितीय इंद्रक विषै च्यार ग्यारे भागनिकरि अधिक सागरोपम हैं । मनकनाम तीसरे इंद्रक विषै छह एकादश भागनिकरि अधिक सागरोपम आयु है, मनक नाम चौथे इंद्रक विषैं आठ एकादश भागनिकरि अधिक सागरोपम आयु है। घाट नाम पंचम इंद्रक विषैं दशएकादश भागनिकरि अधिक एक सागरोपम आयु है । संघाटक नाम छठे इंद्रक विषै ग्यारवां भागकरि अधिक दोय सागरोपम आयु है । जिह्वनाम सातवें इंद्रक विषैं तीन एकादश भाग अधिक दोयसागरोपम है । जिह्विक नाम आठवें इंद्रक विषैं पांच एकादश भाग अधिक दोय सागरोपम है । लोल नाम नोमे इंद्रक विषैं सात एकादश भागकरि अधिक दोय सागरोपम है । लोलुप नाम दशवे इंद्रक विषैं नव एकादश भागकरि अधिक दोय सागरोपम है । स्तनलोलुप नाम ग्यारवें इंद्रक विषै कथित तीन सागरोपम आयु है ।

तीसरी पृथिवी विषैं तप्त नाम प्रथम इंद्रक नाम विषैं नारकनिका उत्कृष्ट आयु का प्रमाण सागरोपम के नवभाग करिये अैसे (एक सागर के नवभागों में से) चतुर्भागकरि अधिक तीन सागरोपम है । तपित (त्रस्त) नाम दूसरे इंद्रक विषैं नव अष्टभाग करि अधिक तीन सागरोपम हैं । तपन नाम तीसरे इंद्रक विषैं नवतीन भागकरि अधिक च्यार सागरोपम हैं । तापन नाम चौथे इंद्रक विषैं सात नवभागकरि अधिक च्यारि सागर है । निदाघं नाम पंचम इंद्रक विषैं दोय नवभागकरि अधिक पांच सागर हैं । प्रज्वलित नाम छठे इंद्रक विषैं छह नवभाग करि अधिक

---

१. क० जिह्विकाख्ये । २. क० तपितनाम्नि ।

सप्तभागैरभ्यधिकाः, पंचमेन्द्रके तमके नव सागराः सप्तभागेनाधिकाः, षष्ठेन्द्रके खरनाम्नि नव सागराश्चतुर्भिः सप्तभागैरभ्याधिकाः, सप्तमेन्द्रके खडखडे उक्तान्येव दश सागरोपमाणि ।

पंचम्यां पृथिव्यां नारकाणां परमायुः प्रमाणं—प्रथमेन्द्रके तमोनाम्नि एकादशार्णवा द्विसागरस्य पंचभागाभ्यामधिकाः, द्वितीयेन्द्रके भ्रमरसंज्ञके द्वादशसागराश्चतुर्भिः पंचभागैरभ्यधिकाः तृतीयेन्द्रके ऋषभनाम्नि चतुर्दश पयोधयः पंचभागेनाऽभ्यधिकाः चतुर्थेन्द्रकेऽन्धसंज्ञके पंचदशोदधयस्त्रिभिः पंचभागैरभ्यधिकाः, पंचमेन्द्रके तमिस्राभिधाने कथितान्येव सप्तदशसागरोपमाणि ।

षष्ठ्यां पृथिव्यां नारकाणां परमायुः—प्रथमेन्द्रके हिमनाम्नि सागरोपमस्य द्वित्रिभागाभ्यामांधका अष्टादशपयोधयः द्वितीयेन्द्रके वर्दलसंज्ञके विंशतिपयोधयस्त्रिभागेनाभ्यधिकाः, तृतीयेन्द्रके लल्लकनाम्नि उक्तान्येव द्वाविंशतिसागरोमाणि, सप्तम्यां तु पृथिव्यामवधिस्थानसंज्ञकेन्द्रके नारकाणां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्येव परमायुषः । श्रेणीबद्धेषु प्रकीर्णकेषु च नारकाणां स्वकीयेन्द्रकप्रतिबद्धमुत्कृष्टमायुर्वेदितव्यम् । यदल्पं तन्मुखं बृहद्भूमिः मुखं भूमेर्विशोध्य विशुद्धं च शेषमुच्छ्रयभाजितमिच्छया गुणितं मुखसहितं च कृत्वा सर्वत्र वाच्यमिति ।।७४।।

पांचसागर हैं । उज्वलित नाम सातवें इन्द्रक विषैं एक नवभागकरि अधिक छहसागर हैं । संज्वलित नाम आठवें इन्द्रक विषैं पांच नवभागकरि अधिक छह सागर हैं । संप्रज्वलित नाम नोमे इंद्रक विषैं पूर्व कथित ही सप्तसागरोपम आयु हैं ।

चौथी पृथिवी विषैं नारकनिका उत्कृष्ट आयु का प्रमाण कहै हैं—आर नाम प्रथमं इंद्रकं विषैं तीन सात भागकरि अधिक सातसागर हैं । तार नाम द्वितीय इंद्रक विषै छह सात भागकरि अधिक सात सागर हैं । मार नाम तीसरे इंद्रक विषैं दोय सात भाग-करि अधिक आठ सागर है । वर्चस्क नाम चौथे इंद्रक विषैं पांच सात भागकरि अधिक आठ सागर हैं । तमक नाम पंचम इंद्रक विषैं एक सात भागकरि अधिक नव सागर हैं । खर नाम छठे इंद्रक विषैं च्यारिसात भागकरि अधिक नव सागर हैं । खडखड नाम सातवें इंद्रक विषैं पूर्वकथित ही दश सागरोपम आयु हैं ।

पंचम पृथिवी विषैं नारकनिका उत्कृष्ट आयु का प्रमाण कहै है—तम नाम प्रथम इंद्रक विषैं सागर के दोय पांच भागकरि अधिक ग्यारह सागर है । भ्रमर नाम दूसरे इंद्रक विषैं च्यार पांच भागकरि अधिक बारह सागर है । ऋषभनाम तीसरे इंद्रक विषैं एक पांच भागकरि अधिक चौदह सागर है । अंधक नाम चौथे इंद्रक विषैं तीन पांच भागकरि अधिक पंदरह सागर है । तमिस्र नाम पांचवे इंद्रक विषैं पूर्व कथित ही सतारह सागरोपम है ।

छठी पृथिवी विषैं नारकनिका उत्कृष्ट आयु कहै है हिम नाम प्रथम इंद्रक विषैं सागर के दोय तीन भागकरि अधिक अठारह सागर है । वर्दल नाम दूसरे इंद्रक विषैं एक त्रिभागकरि अधिक बीससागर है । लल्लक नामक तीसरे इन्द्रक विषैं पूर्वकथित उत्कृष्ट आयु बाईस सागरोपम ही हैं । साववी पृथिवी विषैं अवधि स्थान नाम इन्द्रक विषैं नारकनिका उत्कृष्ट आयु तैतीस सागरोपम है ।

या प्रकार श्रेणीबद्ध, विश्रेणीबद्ध, बहुरि प्रकीर्णकनि विषैं नारकनिका उत्कृष्ट आयु अपनैं इंद्रक प्रमाण जाननां । नरक पृथिवी के पाथडेनि विषैं आयु का प्रमाण ल्यावने का विधान कहै है । यो जघन्य प्रमाण सो मुख (जो अल्पसंख्या है उसको मुख मानकर) उत्कृष्ट प्रमाण सो भूमि, भूमितैं मुख का प्रमाण घटाय अवशेष प्रमाण है, ताहि पदकरि भाजित, बहुरि इच्छाराशिकरि गुणित, बहुरि मुखकरि सहितकरि सर्वत्र कहनां जोग्य है ।।७४।।

सर्वपृथिवीषु नारकाणां जघन्यस्थितिमायुषः प्रतिपादयन्नाह—

पढमादियमुक्कस्सं बिदियादिसु साधियं जहण्णत्तं ।
धम्मायभवणविंतर वाससहस्सा दस [1]जहण्णं ।।७५।।

पढमादिय–प्रथमादिर्यस्य तत्प्रथमादिकं आयुरिति संबध्यते, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टं, **बिदियादिसु**–द्वितीयाआदिर्यासां ता द्वितीयादयस्तासु द्वितीयादिषु पृथिवीषु, **साधियं**–साधिकं समयाधिकं, **जहण्णत्तं**–जघन्यं तत् । प्रथमायां यदुत्कृष्टं द्विचीयायां समयाधिकं जघन्यं तदायुस्तथा द्वितीयायां यदुत्कृष्टमायुर्नारकाणां[2], तृतीयायां नारकाणां समयाधिकं जघन्यं तत् । तृतीयायामुत्कृष्टं यदायुश्चतुर्थ्यां समयाधिकं जघन्यं तत् । चतुर्थ्यां यदुत्कृष्टमायुः पंचम्यां समयाधिकं जघन्यं तत् । पंचम्यामुत्कृष्टं यदायुः षष्ठ्यां समयाधिकं जघन्यं तत् । षष्ठ्यामुत्कृष्टं यदायुः सप्तयां समयाधिकं जघन्यं तत् । एवं सर्वासु पृथिवीषु सर्वप्रस्तरेषु सर्वेन्द्रकेषु योज्यं, प्रथमेन्द्रके यदुत्कृष्टमायुर्नारकाणां द्वितीयेन्द्रके समयाधिकं जघन्यं तत् । द्वितीयेन्द्रके यदुत्कृष्ट-मायुस्तृतीयेन्द्रके समयाधिकं जघन्यं तत् । एवमेकोनपंचाशदिन्द्रकेषु नेतव्यमिति । अथ केषां नारकाणां देवानां च जघन्यमायुर्दशवर्षसहस्राणीत्यत आह—**धम्माय**–धर्मायां सीमंतके नारके नारकाणां **भवण**–भवनवासिनां, **विंतर**–व्यंतराणां, **वाससहस्सा**–वर्षसहस्राणि, **दस**–दश, **जहण्णा**–जघन्यायुषः स्थितिः । सीमंतकनरके नारकाणां भवनवासिनां देवानां व्यंतराणां च जघन्यमायुर्दशवर्षसहस्राणीति ।।७५।।

सर्ब पृथिवीनि विषैं नारकनिकैं (साथ ही कुछ देवों की) आयु जघन्यस्थिति है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–प्रथमा है आदि जाकै सो प्रथमादिक कहिये । इहां आयु-अैसा संबंध करणां । ताकरि प्रथमादिक उत्कृष्ट आयु । सो द्वितीया है आादि जिनकै ते द्वितीयादय कहिये, तिन पृथिवीनि विषैं साधिकं कहिये समयाधिक जघन्य आयु है, तहां द्वितीय पृथिवी विषैं जो उत्कृष्ट आयु है । सो तृतीय पृथिवी विषैं जो उत्कृष्ट आयु है, सो तृतीय पृथिवी विषैं नारकनि का समयाधिक जघन्य आयु है । तीसरी पृथिवी विषैं जो उत्कृष्ट आयु है सो चौथी पृथिवी विषैं समयाधिक जघन्य आयु है । चौथी पृथिवी विषैं जो उत्कृष्ट आयु है सो पंचमी पृथिवी विषैं समयाधिक जघन्य आयु है । पंचमी पृथिवी विषै जो उत्कृष्ट आयु है सो छठी पृथिवी विषैं समयाधिक जघन्य आयु है । छठी पृथिवी विषैं जो उत्कृष्ट आयु है, सो सातवीं पृथिवी विषैं समयाधिक जघन्य आयु है ।

या प्रकार समस्त पृथिवीनि विषैं सर्ब पाथडेनि विषैं सर्ब इंद्रकनि विषैं आयु जोडनां । प्रथम इंद्रक विषैं नारकनिका का जो उत्कृष्ट आयु है सो द्वितीय इंद्रक विषैं समयाधिक जघन्य आयु है । द्वितीय इंद्रक विषैं जो उत्कृष्ट आयु है सो तीसरे इंद्रक विषैं समयाधिक जघन्य है—अैसे गुणचास (४९) इंद्रकनि विषैं आयु जाननां ।

आगै कौंन नारकनिकैं बहुरि देवनिकैं दशहजार वर्ष जघन्य आयु है ? अैसे पूछै कहै है—धर्मा पृथिवी विषैं सीमंतक नरक विषैं नारकनिका बहुरि भवनवासी, व्यंतर देवनिका जघन्य आयु दश हजार वर्ष है ।।७५।।

---

१. क० जहण्णा । २. क० नारकान्तं ।

भवनवासिनां व्यंतराणां चोत्कृष्टमायुःप्रमाणं प्रतिपादयन्नाह—

असुरेसु सागरोवम तिपल्ल पल्लं च णागभोमाणं ।
अद्धाद्दिज्ज सुवण्णा दु दीव सेसा दिवड्ढं तु ।।७६।।

असुरेसु–असुराणां भवनवासिनां प्रथमप्रकाराणां अंबावरीषादीनां, **सागरोवम**–सागरोपमं, **तिपल्ल**–त्रीणि पल्यानि त्रिपल्योपमानि, **पल्लं च**–पल्यं च पल्योपमं **णागभोमाणं**–नागेन्द्राणां—धरणेन्द्रादीनां, **भोमाणं**–भौमानां व्यंतराणां किंनरेन्द्राणां यथासंख्येन संबन्धः नागेन्द्राणामुत्कृष्टमायुस्त्रीणि पल्योपमानि व्यंतराणां किंनरादीनामुत्कृष्टमायुरेकं पल्योपमं घातायुरपेक्ष्य सार्धपल्यम् । **अद्धादिज्ज**–अर्धतृतीये द्विपल्योपमे पल्योपमार्धाधिके द्वे पल्योपमे, **सुवण्णा**–सूपर्णकुमाराणां, **तु**–तु द्वे पल्योपमे **दीव**–द्वीपानां द्वीपकुमाराणां, **सेसा**–शेषाणां विद्युदग्निस्तनितोदधिदिग्वायुकुमाराणां, **दिवड्ढं तु**–अर्धाधिकं पल्योपमं पल्योपमार्द्धेनाधिकमेकं पल्योपमम् । सुपर्णकुमाराणां प्रकृष्टमायुर्द्वे पल्योपमे पल्योपमार्द्धाधिके, द्वीपकुमाराणां च द्वे पल्योपमे प्रकृष्टमायुः शेषाणां तु कुमाराणां षण्णां पल्योपमं पल्योपमार्द्धाधिकमुत्कृष्टमायुरिति ।।७६।।

ज्योतिषां जघन्योत्कृष्टमायुः शुक्रदीनां च जघन्यं प्रतिपादयन्नाह—

पल्लट्ठभाग पल्लं च साधियं जोदिसाण जहण्णिदरं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सठिदी सक्कादीणं जहण्णा सा ।।७७।।

पल्लट्ठभाग–पल्याष्टभागः पल्योपमस्याष्टभागः, **पल्लं च**–पल्योपमं च **साधियं**–साधिकं वर्षलक्षेणाधिकं, **जोदिसाण**–ज्योतिषां चन्द्रादीनां, **जहण्णिदरं**–जघन्यमितरच्च । ज्योतिषां जघन्यमायुः[1] पल्योपमस्याष्टभाग उत्कृष्टं च पल्योपमं वर्षलक्षाधिकं घातयुरपेक्ष्य पल्योपमं सार्द्धमुत्कृष्टम्।

आगैं भवनवासीनिका बहुरि व्यंतरनिका उत्कृष्ट आयु का प्रमाण है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–भवनवासीनि मैं प्रथम प्रकार के अंबावरीषादिक असुर हैं, तिनका उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम है । नाग जे नागैन्द्र धरणैन्द्र आदिक, बहुरि भौम जे व्यंतर किन्नरादिक, तिनका उत्कृष्ट आयु (क्रमशः) तीन पल्य अर एक पल्य है । इहां यथासंख्यकरि संबंध है ।

भावार्थ–नागैंद्रनिका उत्कृष्ट आयु तीन पल्य व्यंतर जे किन्नरादिक तिनका उत्कृष्ट आयु एक पल्य जननां । घातायु की अपेक्षाकरि व्यतंरिका उत्कृष्ट आयु सार्द्धपल्य (डेढ पल्य) है । सुवर्णकुमारनिका उत्कृष्ट आयु अढाई पल्य का है । द्वीपकुमारनिका उत्कृष्ट आयु दोय पल्य का है । शेषाणां कहिये विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमारादिक, दिक्कुमार, वातकुमारनिका उत्कृष्ट आयु ड्योढ (डेढ़) पल्य का है ।।७६।।

आगै ज्योतिषीनिका जघन्य व उत्कृष्ट आयु है, ताहि बहुरि शक्रादिकनिका जघन्य आयु है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–चन्द्रमा आदि ज्योतिषीनिका जघन्य आयु पल्याष्टभागः कहिये पल्योपमकै आठवें भाग है । बहुरि इतरत् कहिये उत्कृष्ट आयु, साधिकं कहिये लाखवर्ष अधिक एक पल्यका है । घातायु की अपेक्षाकरि ड्योढपल्य उत्कृष्ट आयु है । अधःस्थित ज्योतिष्क आदिकनिकी जो उत्कृष्ट आयु स्थिति है, सो शक्रादिनां कहिये सौधर्म आदि देवनि की समयाधिक जघन्य आयु स्थिति है ।

---

१. क-मायुः प्रमाणं ।

हेट्ठिल्लुक्कस्सठिदी–अध उत्कृष्टायुः स्थितिः, अधःस्थितानां ज्योतिष्कादीनां, **सक्कादीणं–**शक्रादीनां सौधर्मादिदेवानां, **जहण्णा सा–**जघन्या सा । ज्योतिषां योत्कृष्टायुषः स्थितिः सौधर्मैशानयोः समयाधिका जघन्या सा सौधर्मैशानयोरुत्कृष्टायुषः स्थितिः सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवानां समयाधिका जघन्या सा, सानत्कुमार-माहेन्द्रयोंत्कृष्टा ब्रह्म ब्रह्मोत्तरयोः समयाधिका जघन्या सा एवं योज्यं यावत् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणीति ।।७७।।

अथ कोत्कृष्टाऽऽयुषः स्थितिः शक्रदीनां या जघन्या स्यादित्यत आह—

वे सत्त दसय चोद्दस सोलस अट्ठार वीस बावीसा ।
एयाधिया य एत्तो सक्कादिसु सागरुवमाणं ।।७८।।

वे–द्वे, **सत्त–**सप्त, **दस य–**दश च, **चोद्दस–**चतुर्दश, **सोलस–**षोडश, **अट्ठार–**अष्टादश, **वीस–**विंशतिः, **बावीस–**द्वाविंशतिः, **एयाधिया–**एकाधिका एकैकोत्तरा, **एत्तो–**इतो द्वाविंशतेरुर्ध्वं, **सक्कादिसु–**शक्रादिषु सौधर्मैदशानादिषु, **सागरुवमाणं–**सागरोपमानम् । सौधर्मैशानयोर्देवानां द्वे सागरोपमे परमायुषः स्थितिरघातायुषोऽपेक्ष्यैतदुक्तं सूत्रे, घातायुषोऽपेक्ष्य पुनर्द्वे सागरोपमे सागरोपमार्धेनाधिके भवतः, एवं सौधर्मैशानमारभ्य तावदर्द्धसागरोपमेनाधिकं कर्त्तव्यं सूत्रनिर्दिष्टपरमायुर्यावत्सहस्रारकल्पः उपरि घातायुषः समुत्पत्तेरभावात् । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त-सागरोपमाणि परमायुषः स्थितिः सर्वत्र देवानामिति सम्बन्धनीयं, ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्दश सागरोपमाणि, किन्तु लौकांतिकदेवानां सारस्वतादीनामष्टौ सागराः, लान्तवकापिष्ठयोश्चतुर्दश सागराः, शुक्रमहाशुक्रयोः षोडशाब्धयः, शतारसहस्रारयोरष्टादश पयोधयः, आनतप्राणतयोर्विंशतिः सागरोपमानाम्, आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिः सागरोपमानां, सुदर्शनेत्रयोविंशतिरब्धीनाम्,

---

भावार्थ–ज्योतिषीनिकी जो उत्कृष्ट आयु स्थिति है, सो सौधर्म, ऐशान स्वर्गनिके देवनिकी समयाधिक जघन्य आयु स्थिति है । सौधर्म, ऐशान स्वर्गविषैं जो उत्कृष्ट आयु स्थिति है, सनत्कुमार, माहेंद्रिनि विषैं देवनिकी समयाधिक सो जघन्य स्थिति है । सनत्कुमार माहेन्द्रिनि विषैं जो उत्कृष्ट है ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर विषैं समयाधिक सो जघन्य है । अैसें तेतीस सागर परजंत आयु जोडनां ।।७७।।

आगै शक्रादिक की उत्कृष्ट आयु स्थिति कहा ? जो ऊपर लो शुक्रादिकनिकी जघन्य होय—इस प्रश्न तैं उत्तर कहै है—

अर्थ–सौधर्म, ऐशान स्वर्ग विषैं दैवनिकी उत्कृष्टआयु की स्थिति दोयसागर है । अघातायु की अपेक्षाकरि यह कथन है । बहुरि सूत्रविषैं घातायु की अपेक्षाकरि अर्द्धसागर अधिक दोय सागर (ढाईसागर) है । या प्रकार सौधर्म, ऐशान स्वर्गकूं आदिदे सहस्रार स्वर्गपर्यंत सूत्रकथित उत्कृष्ट आयु अर्द्धसागरकरि अधिक करणां । सहस्रार स्वर्गकै ऊपरि घातायु उपजवे का अभाव है, यातैं । सनत्कुमार, माहेंन्द्र स्वर्गविषैं उत्कृष्ट आयु की स्थिति सातसागर की है । देवानां इनका संबंध सर्वत्र जाननां । ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर स्वर्ग विषैं दश सागरोपम आयु है । इहां विशेष है । सारस्वत आदि लौकांतिक देवनिकी उत्कृष्ट आयु स्थिति आठ सागरोपम है । लांतव-कापिष्ठ स्वर्ग विषै चौदह सागर है । शुक्र-महाशुक्र स्वर्गनि विषैं सोलह सागर है । शतार सहस्रार स्वर्ग विषैं अठारह सागर है । आनत-प्राणत स्वर्ग विषैं बीस सागर है । आरण-अच्युत स्वर्ग विषैं वावीस (२२) सागर है । नवग्रैवेयकनि विषैं सुदर्शन नाम प्रथम ग्रैवेयक विषैं तेवीस (२३) सागर है अमोघ विषैं चौबीस सागर है, सुप्रबुद्ध विषैं पचीस सागर है, यशोधर विषैं छवीस सागर है, सुभद्रविषैं सत्ताइस सागर है, सुविशाल विषैं अठाईस सागर है,सुमनस विषैं गुणतीस सागर है, सौमनस्य विषैं तीस सागर है, प्रीतिंकर विषैं इगतीस सागर है, नव अनुदिश विषैं बत्तीस सागर है, सर्वार्थसिद्धि विषैं आयु तेतीस सागर है । या प्रकार त्रेसठि पटलनि विषैं सित्याणवे हजार तेईसकरि अधिक चौरासी लाख विमाननि विषैं श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमाननि विषैं देवनि कै स्वकीय-स्वकीय इंद्रक देवायु का प्रमाण जाननां ।

अमोघे चतुर्विंशतिः पयोधीनां, सुप्रबुद्धे पंचविंशतिरुदधीनां, यशोधरे षड्विंशतिर्नदीपतीनां, सुभद्रे सप्तविंशतिरुधीनां, सुविशालेऽष्टाविंशतिरब्धीनां, सुमनस्येकान्नत्रिंशदुदधीनां, सौमनसे त्रिंशदर्णवानां, प्रीतिंकर एकत्रिंशदुदधीनाम्, अनुदिशि द्वात्रिंशदुदधीनां,सर्वार्थसिद्धौ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानामेवं त्रिषष्टिपटलेषु चतुरशीतिलक्षविमानेषु त्रयोविंशत्यधिकसप्तनवतिसहस्राधिकेषु श्रेणिबद्धप्रकीर्णकसंज्ञाविमानेषु देवानां स्वकीयस्वकीयेन्द्रकवद्देवायुषः प्रमाणं वेदितव्यं । ऋतुविमलचन्द्रवल्गुवीरारुणनन्दननलिनकांचनरोहितचंचन्मारुतर्द्धीशानवैडूर्यरुचकरुचिरांकस्फटिकतपनीयमेघाभ्रहारिद्रपद्मलोहिताख्यवज्रनंद्यावर्त्त-प्रभंकरपृष्ठंकरांजनमित्रप्रभाख्यान्येकत्रिंशदिन्द्रकाणि सौधर्मैशानयोः । अंजनवनमालानागगरुडलांगलबलभद्रचक्राणि सप्तकेन्द्रकाणि सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः । अरिष्टदेवसंमितब्रह्मब्रह्मोत्तराणि चत्वारीन्द्रकाणि ब्रह्मलोके । ब्रह्महृदयलांतवे चन्द्रके लान्तवकल्पे, महाशुक्रकल्पे शुक्रमेकमिन्द्रकं, शतारमेकमिन्द्रकं सहस्रारकल्पे, प्राणकल्पे आनतप्राणतपुष्पकाणि त्रीणीन्द्रकाणि, अच्युतकल्पे सानत्कुमारारणाच्युतानीन्द्रकाणि त्रीणि, अधोग्रैवेयके सुदर्शनामोघसुप्रबुद्धानि त्रीणीन्द्रकाणि, मध्यमग्रैवेयके यशोधरसुभद्रसुविशालानि त्रीणीन्द्रकाणि, उर्ध्वग्रैवेयके सुमनःसौमनसप्रीतिंकराणि त्रीणीन्द्रकाणि, अनुदिश आदित्यमेकमिन्द्रकम्, अनुत्तरे सर्वार्थसिद्धिसंज्ञकमेकमिन्द्रकम्, इत्येतेषु स्वायुषः प्रमाणं वेदितव्यम् । अत्र सौधर्मे प्रथमप्रस्त्वरे ऋतुसंज्ञके उत्कृष्टमायुरर्द्धसागरोपमं तन्मुखं तत्रैवावसानेन्द्रके उत्कृष्टमायुर्द्वे सागरोपमे सागरोपमार्द्धाधिके तद्भूमिरुच्छ्रयस्त्रिंशदिन्द्रकाणि भूमेर्मुखमपनीयोच्छ्रायेण भागे हृते सागरोपमस्य पंचदशभागो वृद्धिरागच्छति इमामिष्टप्रतरसंख्यया गुणयित्वा मुखे प्रक्षिप्ते विमलादीनां त्रिंशतः प्रस्तराणामुत्कृष्टान्यायूंषि भवन्ति । तेषां संदृष्टयः, न्यास इत्थम्—

१७	१९	७	२३	५	२७	२९	३१	११	७	३७	१३	४१	४३	३
३०	३०	१०	३०	६	३०	३०	३०	१०	६	३०	१०	३०	३०	२

(सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में इकतीस इन्द्रक है, वे इस प्रकार हैं—) ऋतु, विमल, चंद्र, वल्गु, वीर, अरुण, नंदन, नलिन, कांचन, रोहित, चंचत्, मारुतर्क, टिका, ऋद्धि, ईशान, वैदूर्य, रुचक, रुचिर, अंकस्फटिक, तपनीय, मेघ, अभ्र, हारिद्र, पद्म, लोहित, वज्र, नंद्यावर्त, प्रभंकर, पृष्ठंकर, अंजन, मैत्र, प्रभा—यह हैं नाम जिनके औसे इकतीस इंद्रक सौधर्म ऐशान विषैं हैं । १. अंजन, २. वनमाला, ३. नाग, ४. गरुड, ५. लांगल, ६. बलभद्र, ७. चक्र—यह सात इंद्रक सानत्कुमार माहेंद्र विषैं हैं । १. अरिष्ट, २. देवसंमित, ३. ब्रह्म, ४. ब्रह्मोत्तर-च्यारि इन्द्रक ब्रह्मकल्प विषैं हैं । १. ब्रह्महृदय, २. लांतव—ये दोय इंद्रक लांतव कल्प विषैं हैं । महाशुक्र कल्प विषैं एक शुक्र इंद्रक है । सहस्रारकल्प विषैं शतारनाम एक इंद्रक है । प्राणत कल्प विषैं—१. आनत, २. प्राणत, ३. पुष्पक—तीन इंद्रक हैं। अच्युत कल्प विषैं—१. सानत्कुमार, २. आरण, ३. अच्युत—तीन इंद्रक हैं ।

अधो ग्रैवेयक विषैं—१. सुदर्शन, २. अमोघ, ३. सुप्रबुद्ध—यह तीन इंद्रक हैं । मध्यम ग्रैवेयक विषैं—१. यशोधर २. सुभद्र, ३. सुविशाल—यह तीन इंद्रक हैं । ऊर्ध्व ग्रैवेयक विषैं—१. सुमनस, २. सौमनस, ३. प्रीतिंकर—यह तीन इंद्रक हैं । अनुदिश विषैं एक आदित्य नाम इंद्रक है । अनुत्तर विषैं सर्वाथसिद्धि नाम एक इंद्रक है । इनके विषैं स्वकीय आयु का प्रमाण या प्रकार है, सो कहैं है—इहां सौधर्म स्वर्ग विषैं प्रथम प्रस्तर ऋतु संज्ञक विषैं उत्कृष्ट आयु अर्द्धसागर है । सो मुख है, तिस ही स्वर्ग विषैं अंत के इंद्रक विषैं उत्कृष्ट आयु अर्द्धसागर अधिक दोय सागर है । सो भूमि है ऊंचे (उच्छ्य) तीस इंद्रक हैं । भूमितैं मुख घटाय उच्छयकरि भाग दीये संतै सागरोपम का पंदरवाभाग वृद्धिकूं प्राप्त होय है । इस वृद्धि कूं इष्ट जो प्रस्तरनिकी संख्या ताकरि गुणि मुख का प्रकारणा मिलाय

४७	४९	१७	५३	११	१९	५९	६१	२१	१३	६७	२३	७१	७३	२
३०	३०	१०	१०	६	१०	३०	३०	१०	६	३०	१०	३०	३०	२¹/₂

सानत्कुमारमाहेन्द्रयो: सप्तेन्द्रकाणि । तत्र द्वे सागरोपमे सागरोपमार्द्धाधिके मुखं, सार्द्धसप्तसागरोपमाणि भूमि:, सप्तेन्द्रकाणि उच्छ्रय:, भूमेर्मुखं विशोध्योच्छ्रयेण भागे हते वृद्धिरागच्छति तामिष्टप्रस्तरसंख्यया गुणयित्वा मुखसहिता कृतैवं भवति—

३	३	४	५	६भा०	६	७
३	१३	९	५	१	११	१
१४भा०	१४भा०	१४भा०	१४भा०	१४भा०	१४भा०	२

ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोश्चत्वार: प्रस्तारा, अत्र सप्त सार्द्धानि सागरोपमाणि सुखं दशसार्धानि भूमिश्चत्वार उच्छ्रयस्तस्य संदृष्टिर्यथा

८	९	९	१०
१भा०	०ग	३भा०	१भू०
४भा०	०र	४भा०	२मि १०

लान्तवकापिष्ठयो: द्वौ प्रस्तरौ तत्र मुखं सार्द्धानि दश, सार्धानि चतुर्दश भूमिर्द्वावुच्छ्रयौ

विमलादि तीस प्रस्तरनिकी उत्कृष्ट आयु होय है, तिनकी संदृष्टि या भांति है—(संदृष्टियों की तालिका संस्कृत टीका में दी गई)

सानत्कुमार, माहेंद्र स्वर्ग विषैं सात इंद्रक है । तहां अर्द्ध सागर अधिक दोय सागर का मुख है । अर्द्ध सागर सहित सात सागर भूमि है । सात इंद्रक उच्छय हैं । भूमितैं मुख घटाय उच्छयकरि भाग दीयैं वृद्धि आवै हैं । तिस वृद्धि कूं इष्ट प्रस्तर की संख्या करि गुणि मुख सहित कीये उत्कृष्ट आयु होय है । ताकी या संदृष्टि (संस्कृत टीका में दी गई) है ।

ब्रह्म ब्रह्मोत्तर विषैं च्यारि प्रस्तार हैं । इहां अर्द्धसहित सात सागरोपम मुख हैं । अर्द्ध सहित दश सागरोपम भूमि हैं । च्यारि उच्छ्य हैं, ताकी संदृष्टि (संस्कृत टीका में दी गई) हैं ।

लांवत, कापिष्ट विषैं दोय प्रस्तार हैं । तहां अर्द्ध सहित दश सागर मुख हैं, अर्द्ध सहित चौदह सागर भूमि हैं, दोय उच्छय हैं—

१२	१४
१	१
२	२

महाशुक्र विषैं एक एक प्रस्तार है । तहां आयु का प्रमाण १६ १/२ अर्द्ध अधिक सोला है । अर्द्ध सहित चौदह सागर भूमि हैं । दोय उच्छ्य हैं ।

१२   १४ महाशुक्रे एकः प्रस्तरः, तत्रायुः प्रमाणं १६   तथा सहस्रारे एकः प्रस्तरः, तत्रायुःप्रमाणं १८   आनतप्राणतकल्पयोस्त्रयः
१   १   १   १
२   २   २   २

प्रस्तारास्त्र अष्टादश सार्धानि मुखं विंशतिर्भूमिः तत्र संदृष्टिः   १९   १९   २०   आरणाच्युतयोः कल्पयोः त्रय प्रस्तारास्तत्र
०   १   ०
२

विंशतिर्मुख द्वाविंशतिर्भूमिः तस्य संदृष्टिः   २०   २१   २२
२   १   ०
३   ३   ०

शेषाणां संदृष्टिः २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ । वेदितव्येति ।।७८।।

---

१४ शुक्र, महाशुक्र विषैं एक प्रस्तार है । तैसें शतार, सहस्रार विषैं एक प्रस्तार है । तहां आयु का प्रमाण अर्द्ध अधिक अठारह सागर है ।

आनत, प्राणतकल्प विषैं तीन प्रस्तार हैं । तहां अर्द्ध सहित अठारह मुख हैं । बीस भूमि हैं । तहां संदृष्टि अैसी है—
१९   १९   २०
१
२

आरण, अच्युत कल्प विषैं तीन प्रस्तार हैं । तहां वीस मुख हैं । बाईस भूमि हैं ताकी संदष्टि अैसी—२०   २१   २२
२   १   ०
३   ३   ०

शेष की संदृष्टि २३-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-३२-३३ या प्रकार जाननां ।।७९।।

सौधर्मादिदेवीनां परमायुषः प्रमाणं प्रतिपादयन्नाह—

पंचादी वहिं जुदा सत्तावीसा य पल्ल देवीणं ।
तत्तो सत्तुत्तरिया जावदु अरणप्पयं[1] कप्पं ।।७९।।

पंचादी–पंच आदि पंच आदि पंचपल्योपमानि मूलं, **वेंहि जुदा–**द्वाभ्या युक्तानि द्वाभ्यां द्वाभ्यामधिकानि, वीप्सार्थो द्रष्टव्यः उत्तरोत्तरग्रहणात् । **सत्तावीसा य–**सप्तविंशतिः "चशब्दो यावच्छन्दं समुच्चिनोति" । **पल्ल–**पल्यानि पल्योपमानि यावत्सप्तविंशतिः पल्योपमानि, **देवीणं–**देवीनां देवपत्नीनां, **तत्तो–**ततः पल्यानां सप्तविंशतेरूर्ध्वं, **सत्त–**सप्तसप्त, **उत्तरिया–**उत्तराणि सप्तसप्ताधिकानि पल्योपमानि, **जावदु–**यावत्, **अरणप्पयं कप्पं–**अच्युतकल्पः तावत् । सौधर्मकल्पे देवीनां परमायुः पंचपल्योपमानि, ईशाने सप्त पल्योपमानि, सानत्कुमारे नव पल्योपमानि, माहेन्द्रे एकादश पल्योपमानि, ब्रह्मकल्पे त्रयोदश पल्योपमानि, ब्रह्मोत्तरे पंचदश पल्योपमानि, लान्तवे सप्तदश पल्योपमानि, कापिष्ठे एकोनविंशतिः पल्योपमानि, शुक्रे एकविंशतिः पल्योपमानि, महाशुक्रे त्रयोविंशतिः पल्योपमानि, शतारे पंचविंशतिः पल्योपमानि, सहस्रारे सप्तविंशतिः पल्योपमानि, आनते चतुस्त्रिंशत्पल्योपमानि, प्राणते एकाधिकचत्वारिंशत् पल्योपमानि, आरणे अष्टचत्वारिंशत्पल्योपमानि, अच्युते पंचपंचाशत्पल्योपमानि सर्वत्र देवीनां परमायुषः-प्रमाणमिति संबन्धः । पंचपल्योपमानि द्वाभ्यां द्वाभ्यां तावदधिकानि कर्त्तव्यानि यावत्सप्तविंशतिः पल्योपमानि भवन्ति, ततः सप्तविंशतिः सप्तभिः सप्तभिरधिका कर्त्तव्या यावदच्युतकल्पे पंचाशत्पल्योपमानि संजातानीति ।।७९।।

आगै सौधर्म आदि देवीनि का उत्कृष्ट आयु का प्रमाण है, ताहि प्रतिपादह करते संतै कहै है—

अर्थ–देवीनिका आयु पंच कहिये पांच पल्योपम, आदि कहिये मूल है । द्वाभ्यां अधिकानि कहिये दोयकरि अधिक, सो इहां वीप्सा अर्थ जाननां—उत्तरोत्तर के ग्रहणतैं सत्ताईस पल्योपम पर्यंत । इहां 'च' शब्द है, सो यावत् शब्द है—ताहि सूचै है । ततः कहिये सत्ताईस पल्यकै उर्ध्व सात-सात पल्योपम अधिक अच्युत स्वर्ग पर्यंत करणां । सौधर्मस्वर्ग विषैं देवीनिका उत्कृष्ट आयु पंच पल्योपम है, ईशान स्वर्ग विषैं सप्त पल्योपम है । सनत्कुमार स्वर्ग विषैं नव पल्योपम है । माहेंद्र स्वर्ग विषैं एकादश पल्योपम है । ब्रह्म स्वर्ग विषैं त्रयोदश पल्योपम है । ब्रह्मोत्तर स्वर्ग विषैं पंचदश पल्योपम है । लांतव स्वर्ग विषैं सप्त दश पल्योपम है । कापिष्ठ स्वर्ग विषैं एकोनविंशति (१९) पल्योपम है । शुक्र स्वर्ग विषैं एकविंशति (२१) पल्योपम है । महाशुक्र स्वर्ग विषैं त्रयोविंशति (२३) पल्योपम है । शतार स्वर्ग विषैं पचीस पल्योपम है । सहस्रार स्वर्ग विषैं सत्ताईस पल्योपम है । आनत स्वर्ग विषैं चौंतीस पल्योपम है । प्राणत स्वर्ग विषैं एक अधिक चालीस पल्योपम है, आरण स्वर्ग विषैं आठ अधिक चालीस पल्योपम है । अच्युत स्वर्ग विषैं पांच अधिक पचास पल्योपम देवीनिका उत्कृष्ट आयु का प्रमाण है । या प्रकार सर्वत्र संबंध करणां ।

भावार्थ–पंच पल्योपम दोय-दोयकरि अधिक तेतैं करणैं जेतैं सत्ताइस पल्योपम होय । सत्ताइस पल्योपम है । ता पीछैं सत्ताईस सात-सात करि अधिक करणें । जहाँ तांई अच्युत स्वर्ग विषैं पंच पंचाशत (५५) पल्योपम होय ।।७९।।

---

१. ब० तावद अरसप्पयं ।

देवीनामायुषः प्रमाणस्य द्वितीयमुपदेशं प्रतिपादयन्नाह—

पणयं दस सत्तधियं पणवीसं तीसमेव पंचधियं ।
चत्तालं पणदालं पण्णाओ[१] पण्णपण्णाओ ।।८०।।*

पणयं–पंच सौधर्मैशानयोर्देवीनां पंचपल्योपमानि परमायुः । **दस सत्तधियं–**दश सप्ताधिकानि सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवीनां परमायुः सप्तदशपल्योपमानि, **पणवीसं–**पंचविंशतिः ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्देवीनां पंचविंशतिः पल्योपमानि परमायुः, **तीसमेव पंचधियं–**त्रिंशदेव पंचाधिका लान्तवकापिष्ठयोर्देवीना त्रिंशदेव पल्योपमानां परमायुः **चत्तालं–**चत्वारिंशच्छुक्रमहाशुक्रयोर्देवीनां चत्वारिंशत्पल्यानां परमायुः, **पणदालं–**पंचचत्वारिंशत् शतारसहस्रारयोर्देवीनां पंचचत्वारिंशत्पल्योपमानां परमायुः, **पण्णासं–**पंचाशद् आनतप्राणतयोर्देवीनां परमायुः पंचाशत्पल्योपमानि, **पण्णपण्णाओ–**पंचपंचाशदारणाच्युतयोर्देवीनां परमायुषः प्रमाणं पंचपंचाशत्पल्योपमानि । **आऊ–**आयुः सर्वत्रानेन संबन्धः । देवायुषः प्रतिपादनन्यायेनायमेवोपदेशो न्याय्योऽत्रैवकारकरणादथवा द्वावप्युपदेशौ ग्राह्यौ सूत्रद्वयोपदेशाद् द्वयोर्मध्य एकेन सत्येन भवितव्यं, नात्र सन्देहमिथ्यात्वं, यदर्हत्प्रणीतं तत्सत्यमिति सन्देहाभावात् । छद्मस्थैस्तु विवेकः कर्तुं न शक्यतेऽतो मिथ्यात्वभयादेव द्वयोर्ग्रहणमिति ।।८०।।

आगै देवीनिका आयु का प्रमाण का द्वितीय उपदेश है, ताहि प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–सौधर्म ऐशन स्वर्ग विषैं द्वीनिका उत्कृष्ट आयु पंच पल्योपम है । सनत्कुमार माहेंन्द्र स्वर्ग विषैं देवीनिका उत्कृष्ट आयु सतरह पल्योपम है । ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग विषैं देवीनिका उत्कृष्ट आयु पचीस पल्योपम है । लांतव, कापिष्ट स्वर्ग विषैं देवीनिका उत्कृष्ट आयु पैंतीस पल्योपम है, शुक्र-महाशुक्र स्वर्ग विषैं देवीनिका उत्कृष्ट आयु चालीस पल्योपम है । शतार-सहस्रार स्वर्ग विषैं देवीनिका उत्कृष्ट आयु पैंतालीस पल्योपम है । आनत-प्राणत स्वर्ग विषैं देवीनिका उत्कृष्ट आयु पचास पल्योपम है । आरण—अच्युत स्वर्ग विषैं देवीनिका उत्कृष्ट आयु पचावन (५५) पल्योपम है । आयुकरि सर्वत्र संबंध जाननां ।

देवायु के प्रतिपादन न्यायकरि यह ही उपदेश प्राप्य है, क्योंकि इहां 'एवकार' के करवेतैं अथवा दोउ ही उपदेश गहण करवे जोग्य हैं (क्योंकि) सूत्रद्वय के उपदेशतैं दोउ कैं मध्य एक सत्य है (फिर भी दोनों के ग्रहण से) इहां संशय मिथ्यात्व नांहा है । काहैतैं? जो अर्हंत प्रणीत है सो सत्य है—अैसे संदेह का अभाव है । यातैं छद्मस्थ पुरुषनिकरि विवेक करवेकूं समर्थ नांही हूजिये हैं । तातैं मिथ्यात्वके भयतैं दोउ ही उपदेश का ग्रहण है ।।८०।।

---

१. क० पंचासं पंचपण्णाओ ।

* यह गाथा फलटन से प्रकाशित मूलाचार में नहीं है ।

ज्योतिषां यद्यपि सामान्येन प्रतिपादितं जघन्यं चोत्कृष्टमायुस्तथापि स्वामित्वपूर्वको विशेषो नावगतस्तत्र तत्प्रतिपादन्नाह—

चंदस्स सदसहस्सं सहस्स रविणो सदं च सुक्कस्स ।
वासाधिए हि पल्लं लेहिट्ठं वरिसणामस्स ।।८१।।*

परमायुरित्यनुवर्त्तते—**चंदस्स**–चन्द्रस्य, **सदसहस्सं**–शतसहस्रं, शतसहस्रेण, अत्र तृतीयार्थेद्वितीया, **सहस्स**–सहस्रेण, **रविणो**–रवेरादित्यस्य, **सदं च**–शतेन च, **सुक्कस्स**–शुक्रस्य, **वास**–वर्षाणां, **अधियं**–अधिकं, **हि**–स्फुटं निश्चयेन, **पल्लं**–पल्यं, पल्योपमं, **लेहिट्ठं**–न्यूनं हीनं अनन्तरेण शतेनाभिसंबन्धः, **वरिसणामस्स**–वर्षनाम्नः बृहस्पतेः । चन्द्रस्य परमायुरेकं पल्योपमं वर्षाणां शतसहस्रेणाधिकं, रवेरेकं पल्योपमं परमायुर्वर्षाणां सहस्रेणाधिकं, शुक्रस्य परमायुरेकं पल्योपमं वर्षाणां शतेनाधिकं, बृहस्पतेरेकं पल्योपमं वर्षाणां शतेन न्यूनं स्फुटमिति ।।८१।।

अथ कथ शेषाणामित्यत आह—

सेसाणं तु गहाणं पल्लद्धं आउग मुणेयव्वं ।
ताराणं च जहण्णं पादद्धं पादमुक्कस्सं ।।८२।।

सेसाणं–शेषाणां, तुशब्दः समुच्चयार्थः स नक्षत्राणि समुच्चिनोति । **गहाणं**–ग्रहाणां, **पल्लद्धं**–पल्यस्यार्धं, **आउगं**–आयुः, **मुणेयव्वं**–ज्ञातव्यम्। **ताराणं**–ताराणां ध्रुवकीलकादीनां, चशब्दात्केषांचित्रक्षत्राणां च **जहण्णं**–जघन्यं निकृष्टं, **पादद्धं**–पादार्द्धं पल्योपमपादस्यार्द्धं पल्योपमस्याष्टमो भागः, **पादं**–पादः पल्योपमस्य चतुर्थो भागः, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टं, शेषाणां ग्रहाणां मंगलबुधशनैश्चरराहुकेत्वादीनां केषांचित्रक्षत्राणां चोत्कृष्टमायुः पल्योपमार्द्धं ताराणां

ज्यो पणि जोतिषीनिका जघन्य बहुरि उत्कृष्ट आयु सामान्यकरि कह्या, तो पणि स्वामित्वपूर्वक विशेष नांही जान्या, तातैं तिसकूं प्रतिपादन करते संतै कहैं हैं—

अर्थ–इहां परमायु कहिये उत्कृष्ट आयु या प्रकार अनुवृत्ति है चन्द्रमा का उत्कृष्ट आयु लाख वर्ष अधिक पल्योपम है । इहां तृतीया के अर्थ विषैं द्वितीया है । बहुरि रवेः कहिये सूर्य का उत्कृष्ट आयु हजार वर्ष अधिक पल्योपम है । शुक्र का उत्कृष्ट आयु सौ वर्ष अधिक पल्योपम है । निश्चयकरि वर्षनाम्नः कहिये वृहस्पति का उत्कृष्ट आयु शतवर्षकरि ऊन पल्योपम है । अनंतर शत शब्द है, ताकरि न्यून आयुकरि संबंध है ।।८१।।

आगै शष ज्योतिषीनिका आयु कैसे है ? इस प्रश्नतैं उत्तर कहै हैं—

अर्थ–शेषाणां कहिये अवशेष ग्रहनि का उत्कृष्ट आयु अर्द्धपल्य जाननां । इहां 'तु' शब्द है सो समुच्चयार्थ है । सो नक्षत्रनिका संग्रह करै है । ध्रुव कीलकादिक तारानि का 'च' शब्दतैं केतेक नक्षत्रनि का जघन्य आयु पादार्द्ध कहिये पल्योपम का चौथा भाग, जो पाद ताका अर्द्धपल्य का आठमा भाग सो जाननां । उत्कृष्ट आयु पाद कहिये पल्योपम का चौथा भाग है ।

भावार्थ–शेष ग्रह जे मंगल, बुध, शनैश्चर, राहु, केतु इत्यादिकनि का बहुरि केतेक नक्षत्रनिका उत्कृष्ट आयु अर्द्ध पल्योपम है। तारानि का बहुरि केतेक नक्षत्रनिका उत्कृष्ट आयु पल्योपम का चौथा भाग है । तिनही का जघन्य आयु पल्योपम का आठवां भाग है । या

---

* फलटन से प्रकाशित, मूलाचार में ये दो गाथाएँ ११२० गाथा के अनंतर ही थीं ।

केषांचित्रक्षत्राणां चोत्कृष्टमायुः पल्योपमस्य चतुर्थो भागस्तेषामेव च जघन्यमायुः पल्योपमस्याष्टमभागः । एवं प्रतरासंख्यातभागप्रमितानां ज्योतिषां परमायुर्निकृष्टायुश्च वेदितव्यमिति ।।८२।।

तिर्यङ्मनुष्याणां निकृष्टमायुः प्रतिपादयन्नाह—

सव्वेसिं अमणाणं भिण्णमुहुत्तं हवे जहण्णेण ।
सोवक्कमाउगाणं सण्णीणं चावि एमेव ।।८३।।

सव्वेसिं–सर्वेषां, **अमणाणं**–अमनस्कानां सर्वग्रहणादेकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणां च ग्रहणं वेदितव्यं, **भिण्णमुहुत्तं**–भिन्नमुहुर्त्तं क्षुद्रभवग्रहणमुच्छ्वासस्य किंचिन्न्यूनाष्टादशभागः, **हव**–भवेत्, **जहण्णेव**–जघन्येन जघन्यं वा, **सोवक्कमाउगाणं**–उपक्रम्यत इति उपक्रमः विषवेदनारक्तक्षयभयसंक्लेशशस्त्रघातोच्छ्वासनिश्वासनिरोधैरायुषो घातः, सह उपक्रमेण वर्तत इति सोपक्रममायुर्येषां ते सोपक्रमायुषः सघातायस्तेषां सोपक्रमायुषां, **सण्णीणं**–संज्ञिनां समनस्कानां च, चशब्दो मनुष्याणां समुच्चयार्थस्तेनात्र त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरमदेहवर्जितमनुष्याणां ग्रहणं भवति । सोपक्रमविशेषणेन च देवनारकभोगभूमिप्रतिभागजानां प्रतिषेधो भवति, **अवि एमेव**–अप्येवमेव भिन्नमुहूर्त्तमेव किंतु पूर्वोक्तादभिन्नमुहूर्त्तादयं भिन्नमुहूर्त्तो महान्, एकेन्द्रियेषु क्षुद्रभवग्रहणं यतोऽतोऽप्येवमेव ग्रहणेन सूचितमेतदर्थजातं, अपर एवकारो निश्चयार्थः । सर्वेषाममनस्कानां जघन्यमायुर्भिन्नमूहूर्त्तं भवेत् सोपक्रमायुषां कर्मभूमिप्रतिभागजानां च संज्ञिनां तिरश्चां त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरमदेहादिवर्जितमनुष्याणां चाप्येव जघन्यमायुरन्तर्मुहूर्तमेवेति ।।८३।।

प्रकार लोकप्रतरकैं असंख्यातवैं भाग प्रमाण जे ज्योतिषी तिनका उत्कृष्ट आयु बहुरि जघन्य आयु जाननां ।।८२।।

आगैं तिरजंय, मनुष्यनि का जघन्य आयु है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै हैं—

अर्थ–सर्ब अैसे अमनस्क जे असंज्ञी सर्वके ग्रहणतै एकैंद्रिय, द्वीद्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रियनिका ग्रहण जाननां । तिनका आयु जघन्यकरि भिन्न मुहूर्त्त जो क्षुद्रभव ग्रहण किंचित् न्यून स्वाश का अठारवां भाग है । सोपक्रमायुषः कहिये 'उपक्रम' जो विष, वेदना, रक्तक्षय, भय, संक्लेश, शस्त्र-घात, उच्छ्वास-निश्वास का निरोध-इन करिकैं आयु का घात सो (उपक्रम) जाननां । उपक्रमकरि सहित वरतैं सो सोपक्रम। सोपक्रम है आयु जिनका अैसे जे संघातायुष्क संज्ञी तिनका 'च' शब्द मनुष्यनि कै समुच्चयार्थ हैं । ताकरि त्रिषष्ठि (६३) शलाका पुरुष चरमदेह करि वर्जित मनुष्यनि का ग्रहण है । बहुरि सोपक्रम विशेषकरि देव, नारक, भोगभूमिया अर प्रतिभागजनिका निषेध है । तिनका हू आयु भिन्नमुहूर्त ही है, यामैं कछु विशेष है । पूर्वोक्त भिन्नमुहूर्ततै यह भिन्न मुहूर्त बडा है । जातैं एकैंद्रियनि विषैं क्षुद्रभव ग्रहण है, याहीतैं 'अप्येवमेव' इस पदके ग्रहणकरि यह अर्थ सूचे हैं । अन्य 'एवकार' शब्द है, सो निश्चयार्थ है ।

भावार्थ–सर्ब असंज्ञीनिका जघन्य आयु भिन्न मुहूर्त्त है । बहुरि सोपक्रम जे कर्मभूमि के प्रतिभाग विषैं उपजे जे संज्ञी-तिरजंच, बहुरि त्रिषष्ठिशलाका पुरुष, चरम देहादि वर्जित मनुष्यनिका हू जघन्य आयु अंतर्मुहूर्त ही है ।।८३।।

यद्यपि प्रमाणं पूर्वसूत्रैः व्याख्यातं तथापि विशेषेण प्रमाणं द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदेन चतुर्विधं, तत्र द्रव्यप्रमाणं द्विविधं संख्यातप्रमाणमुपमानप्रमाणं चेति तत्र संख्यातप्रमाणं तावन्निरूपयन्नाह—

संखेज्जमसंखेज्जं विदियं तदियमणंतयं वियाणाहि ।
तत्थ[1] य पढमं तिविहं णवहा णवहा हवे दोण्णि ।।८४।।

संखेज्जं–संख्यातं रूपद्वयमादिंकृत्वा यावद्रूपोनजघन्यपरीतसंख्यातं श्रुतज्ञानविषयभूतं, **असंखेज्जं**–असंख्यातंसंख्यामतिक्रान्तमवधिज्ञानविषयभूतं, **विदियं**–द्वितीयं, **तदियं**–तृतीयं, **अणंतयं**–अनन्तम् असंख्यातमतिक्रान्तं केवलज्ञानगोचरं, **वियाणाहि**–विजानीहि, **तत्थ य**–तत्र च तेषु संख्यातासंख्यातानन्तेषु मध्ये **पढमं**–प्रथमं यत्संख्यातं **तिविहं**–त्रिविधं त्रिप्रकारं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन; **णवहा**–नवधा नवप्रकारं, **दोण्णि**–द्वे, के ते ? द्वितीयतृतीये । प्रथमं यत्संख्यातं तत्त्रिविधं, द्वितीयं यदसंख्यातं तन्नवप्रकारं, तृतीय यदनन्तं तदपि नवप्रकारम् । तत्र जघन्यसंख्यातं द्वे रूपे, रूपत्रयमादिं कृत्वा यावद्रूपोनोत्कृष्टं संख्यातं तत्सर्वमजघन्योत्कृष्टसंख्यातं, जघन्यपरीतासंख्यातं रूपोनमुत्कृष्टं संख्यातम्; अस्यानयनविधानमुच्यते—प्रमाणयोजनलक्षायामविस्तारावगाधाश्चत्वारः कुशूलाः शलाकाप्रतिशलाकामहाशलाकानवस्थितसंज्ञकास्तत्रैकमनवस्थितसंज्ञकं कुशूलं सर्षपपूर्णं कृत्वा देवो दानवो वा तत्रैकैकं सर्षपं द्वीपे समुद्रे तावत्क्षिपेत्

यद्यपि प्रमाण पूर्वसूत्र विषैं कह्या है, तथापि विशेषकरिकैं प्रमाण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भेदकरि च्यारि प्रकार है । तहां द्रव्य प्रमाण दोय प्रकार है—१. संख्या प्रमाण, बहुरि २. उपमा प्रमाण, तहां प्रथम ही संख्या प्रमाण है ताहि निरूपण करते संतै कहै हैं—

अर्थ–रूपद्वयकूं आदिकरि रूपोनजघन्यपरीत संख्यात परजंत श्रुतज्ञानी का विषयभूत संख्यात है । संख्या कूं उल्लघन करै अवधि ज्ञानी का विषय सो असंख्यात, द्वितीय असंख्यात कूं उल्लंघन करैं केवलज्ञान गोचर अैसा अनंत है, ताहि तीसरा जानहु । तिन संख्यात, असंख्यात अनंतनि के मध्य विषै जो प्रथम संख्यात सो तीन प्रकार है जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदकरि । बहुरि दूसरा सो नव-नव प्रकार है ।

भावार्थ–असंख्यात नव प्रकार है अर अनंतहू नव प्रकार है ।

तहां जघन्य संख्यात दोय रूप है । रूपत्रय है ताहि (तीन अंकों को) आदिकरि जेतैं रूपोन (एक अंक कम) उत्कृष्ट संख्यात होय सो सर्व अजघन्योत्कृष्ट संख्या कहिये मध्यम संख्यात है । रूपोन (एक रूप कम) जघन्य परितासंख्यात है, सो उत्कृष्ट संख्यात है । याका ल्यावे विषैं विधान है, ताहि कहै हैं—लक्ष प्रमाण जोजन है आयाम (लम्बे), विस्तार, अवगाध जिनका अैसे १. शलाका, २. प्रतिशलाका ३. महाशलाका, ४. अनवस्थित है संज्ञा जिनकी अैसे च्यारि कुंड कलपने ।

गोम्मटसार सिद्धान्त विषैं लक्षयोजन को विस्तार, अर हजार योजन को उत्सेध—अैसैं च्यारु कुंड वर्णन किये हैं । तिनके शिखाफल की विविक्षा करी है । इहां सामान्य कथन है । आचार्यनि की परिपाटी के अनुसार उत्तरोत्तर आचार्य कथन करते आये हैं, यामैं संदेह नहीं करणां । जहां जैसी विविक्षा तहां तैसा श्रद्धान करणां । तिन विषैं अनवस्थित है संज्ञा जाकी अैसा एक कुंड ताहि सरस्यूंकरि (सरसों से) पूर्णकरि देव वा दानव तिनमैं सूं एक-एक सरस्यौं (सरसों) द्वीप विषैं, समुद्र विषैं तेतैं रीता होय, ता पीछैं प्रथम शलाका कुंड विषैं एक

---

१. अ० ब० तच्छ ।

यावद्रिक्तः संजातः, ततः शलाकाकुण्डे एकं सर्षपं क्षिपेत् अनवस्थितं कुण्डं तावन्मात्रं पुनः प्रकृत्य सर्षपैश्च संपूर्णं कृत्वा द्वीपे समुद्रे च क्षिपेत् । यत्र निष्ठितस्तत्र शलाकाकुण्डे द्वितीयमेवं सर्षपं क्षिपेत् अनवस्थितं च कुण्डं तावन्मात्रं प्रकृत्य सर्षपैश्च पूर्णं कृत्वा द्वीपे समुद्रे च क्षिपेत् । यत्र निष्ठितस्तत्र शलाकाकुण्डे तृतीयं सर्षपं क्षिपेत् । अनवस्थितकुण्डं च तावन्मात्रं प्रकृत्य सर्षपैश्च सम्पूर्णं कृत्वा द्वीपे समुद्रे च सर्षपक्षेपं, चतुर्थप्रदेशे शलाकाकुण्डे सर्षपक्षेपं चैवं तावत्कर्त्तव्यं यावच्छलाकाप्रतिशलाकामहाशलाकानवस्थितानि कुण्डानि सर्वाणि पूर्णानि । तदोत्कृष्टसंख्यातमतिलंघ्य जघन्यपरीतासंख्यातप्रमाणं जातं तस्मादेके सर्षपेऽपनीते जातमुत्कृष्टसंख्यातम् असंख्यातं च परीतासंख्यातं युक्तासंख्यातमसंख्यातमिति त्रिविधं, परीतासंख्यातमपि जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिविधं युक्तासंख्यातमसंख्यातासंख्यातं च जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिविधं, तथानन्तमपि परीतानन्तयुक्तानन्तानन्तानन्तभेदेन त्रिविधमेकैकं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन त्रिविधम् । जघन्यपरीतासंख्यातानि जघन्यपरीतासंख्यातमात्राणि परस्परगुणितानि कृत्वा तत्र यावन्मात्राणि रूपाणि तावन्मात्रं जघन्ययुक्तासंख्यातप्रमाणं[1] तस्मादेके रूपेऽपनीते उत्कृष्टं परीतासंख्यातप्रमाणं जातं जघन्यपरीतासंख्यातोत्कृष्टपरीतासंख्यातयोर्मध्ये विकल्पोऽजघन्योत्कृटपरीतासंख्यातं, युक्तासंख्यातं अपरेण युक्तासंख्यातेन प्रगुण्य यावन्मात्राणि रूपाणि तावन्मात्रं जघन्यासंख्यातासंख्यातं तस्मादेके रूपेऽपनीते जातमुत्कृष्टं युक्तासंख्यातं, जघन्योत्कृष्टयोर्मध्येऽजघन्योत्कृष्टं युक्तासंख्यातम् । जघन्यासंख्यातासंख्यातं त्रीन् वारान् वर्गितं संवर्गितं च कृत्वा धर्माधर्मलोकाकाशप्रत्येकशरीरैकजीवप्रदेशबादरप्रतिष्ठितैश्च संयुक्तं कृत्वा पुनरपि त्रीन वारान् वर्गितं संवर्गितं च कृत्वा स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानानुभागभबन्धाध्यवसानस्थानयोग[2]विभागपरिच्छेदोत्सर्पिण्यवर्पिणी-समयैश्च युक्ते कृते जातं जघन्यपरीतानन्तं तस्मादेके रूपेऽपनीते जातमुत्कृष्टमसंख्यातासंख्यातं

सरस्यूं खेपै । बहुरि अनवस्थित कुंड तेत्ता प्रमाणकरि सरस्यूंनि-सरस्यूंनिकरि पूर्णकरि, बहुरि द्वीपनि विषैं, समुद्र विषैं क्षेपै । जहां पूर्ण होय तहां सरस्यों प्रथम शलाका कुंड विषैं क्षेपैं, बहुरि अनवस्थित कुंड तावन्मात्रकरि, बहुरि ताहि सरस्यूंनिकरि पूर्णकरि एक-एक सरस्यौं द्वीप विषैं, समुद्र विषैं क्षेपै । जहां सरस्यौं पूर्ण होय, तहां तीसरी सरस्यो प्रथम शलाका कुंड विषैं क्षेपैं, बहुरि अनवस्थित कुंड तावन्मात्र करिकैं अर सरस्यौंनिकरि पूर्णकरि द्वीप विषैं, समुद्र विषैं सरस्यौं क्षेपि । चौथी सरस्यौं प्रथम शलाका कुंड विषैं क्षेपैं या प्रकार जेतैं करणां तेतैं शलाका, प्रतिशलाका, महाशलाका अर अनवस्थित कुंड समस्त पूर्ण होय । तदि उत्कृष्ट संख्यातकूं उल्लंघनकरि जघन्य परितासंख्यात का प्रमाण उपजै है । तातैं एक सरस्यौं घटाये उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण उत्पन्न भया ।

आगै परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात, असंख्यातासंख्यात—अैसे असंख्यात तीन प्रकार हैं । तिन विषैं परीतासंख्यात हू जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदकरि तीन प्रकार है । युक्तासंख्यात हू जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदकरि तीन प्रकार है । बहुरि असंख्यातासंख्यात—जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदकरि तीन प्रकार है । तथा अनंत हू परीतानंत, युक्तानंत, बहुरि अनंतानंत एक-एक (प्रत्येक) जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदकरि नव प्रकार है ।

तिन विषैं जघन्य परीतासंख्यातकूं जघन्य परीतासंख्यात मात्र परस्पर गुणितकरि, तहां यावन्मात्र रूप (शेष) है, तावन्मात्र रूप है। तावन्मात्र जघन्ययुक्तासंख्यात का प्रमाण है । तातैं एक रूप घटायैं उत्कृष्टपरीतासंख्यात का प्रमाण उत्पन्न भया । जघन्यपरीता संख्यात अर उत्कृष्टपरीतासंख्यात कै मध्य विषैं जो भेद हैं सो अजघन्योत्कृष्टपरीतासंख्यात हैं । जघन्य-युक्तासंख्यात अन्य जघन्य युक्तासंख्यातकरि गुणिकरि ताके यावन्मात्र रूप है, तावन्मात्र जघन्यअसंख्यातासंख्यात है । तातैं एक रूप घटायैं उत्कृष्टयुक्तासंख्यात उत्पन्न भया । जघन्य युक्तासंख्यात

---

१. इस जघन्य युक्तासंख्यात में जितनी सरसों हैं उतने समयों की एक आवली होती है । २. योगाविभाग—इति प्रतिभाति ।

तयोर्मध्ये मध्यमो विकल्पः । जघन्यपरीतानन्तानि जघन्यपरीतानन्तमात्राणि परस्परं प्रगुण्य यत्प्रमाणं भवति तज्जघन्यं युक्तानन्तं तस्मादेके रूपेऽपनीते जातमुत्कृष्टं परीतानन्तं जघन्योत्कृष्टयोर्मध्ये मध्यमो विकल्पः। जघन्ययुक्तानतमपरेण जघन्ययुक्तानन्तेन गुणितं जातं जघन्यान्तानन्तं तस्मादेके रूपेऽपनीते जातमुत्कृष्टं युक्तानन्तप्रमाणं जघन्योत्कृष्टयोर्मध्ये मध्यमो विकल्पः। जघन्यानन्तानन्तं त्रीन् वारान् च वर्गितं संवर्गितं च कृत्वा सिद्धनिगोदजीववनस्पतिकाय[1] पुद्गलसर्वालोकाकाशानि प्रक्षिप्य पुनरपि त्रीन् वारान् वर्गितं संवर्गितं च कृत्वा धर्माधर्मास्तिकायागुरुलघुगुणान् प्रक्षिप्य पुनरपि त्रीन् वारान् वर्णितं सवर्गितं प्रकृत्य केवलज्ञानकेवलदर्शनप्रमाणे प्रक्षिप्ते जातमुत्कृष्टमनन्तानन्तप्रमाणं जघन्योत्कृष्टयोर्मध्येऽजघन्योत्कृष्टो विकल्पः । यत्र यत्रानन्तप्रमाणं परिगृह्यते तत्र तत्राजघन्योत्कृष्टानन्तानन्तप्रमाणं ग्राह्यं, यत्र यत्राभव्याः परिगृह्यन्ते तत्र तत्र जघन्ययुक्तानन्तप्रमाणं वेदितव्यं, यत्र यत्र चावलिका पठ्यते तत्र तत्र जघन्ययुक्तासंख्यातं भवतीत्यर्थः ।।८४।।

अर उत्कृष्ट युक्तासंख्यात कै मध्य विषैं अजघन्योत्कृष्ट-युक्तासंख्यात हैं । जघन्य असंख्याता-असंख्यातकूं वर्ग्गित बहुरि संवर्ग्गितकरि धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, लोकाकाश प्रदेश, प्रत्येक शरीर, एक जीव प्रदेश, बहुरि बादर प्रतिष्ठित—इनकरि संयुक्तकरि, बहुरि हू तीन बार वर्ग्गित, संवर्ग्गितकरि स्थितिबंधाध्यवसानस्थान, अनुभागबंधाध्यवसान स्थान, मन, वचन, कायरूप योगनिका अविभाग परिच्छेद, बहुरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समयनिकरि युक्त कीयै जघन्य परीतानंत उत्पन्न भया । तातैं एकरूप घटायैं उत्कृष्ट-असंख्यातसंख्यात उत्पन्न भया । जघन्य उत्कृष्ट कै मध्य विषैं मध्यम भेद है ।

जघन्य परीतानंत, जघन्य परीतानंत मात्र परस्पर गुणिकरि जो प्रमाण होय सो जघन्य युक्तानंत है । तातैं एक रूप घटायैं उत्कृष्ट-परीतानंत उत्पन्न भया । जघन्य उत्कृष्ट के मध्य विषैं मध्यम भेद है । जघन्य युक्तानंत अन्य जघन्यानंतकरि गुणित जघन्य अनंतानंत उत्पन्न भया । तातैं एक रूप घटायें उत्कृष्ट युक्तानंत का प्रमाण उत्पन्न भया । जघन्य उत्कृष्ट के मध्य विषैं मध्यम विकल्प है ।

जघन्य अनंतानंतकूं तीन बार वर्गित, संवर्गित करि १. सिद्धराशि, २. निगोद जीवराशि ३. वनस्पति ४. काल के समय, ५. पुद्गल सर्व ६. अलोकाकाश के प्रदेश—इन छह राशि का प्रक्षेपकरि, बहुरिहू वर्गित बहुरि, संवर्गितकरि—१. धर्मास्तिकाय के, २. अधर्मास्तिकाय के, ३. अगुरुलघु गुण के अविभाग परिच्छेद क्षेपकरि बहुरि हू तीन बार वर्गित अर संवर्गिकरि केवलज्ञान, केवलदर्शन का प्रमाण मिलायैं उत्कृष्ट अनंतानंत का प्रमाण उत्पन्न भया । जघन्य, उत्कृष्ट के मध्य विषैं अजघन्योत्कृष्ट कहिये मध्य अैसा विकल्प कहिये भेद है ।

जहां-जहां अनंत का प्रमाण ग्रहण करिये तहां-तहां मध्यम अनंतानंत का प्रमाण ग्रहण करणां । जहां-जहां अभव्य ग्रहण करिये, तहां-तहां जघन्ययुक्तानंत का प्रमाण जानना । जहां-जहां आवली कहिये है, तहां-तहां जघन्ययुक्तानंत का प्रमाण जाननां । जहां-जहां आवली कहिये, तहां-तहां जघन्ययुक्तासंख्यात होय है ।।८४।।

---

१. क० काल ।

उपमाप्रमाणार्थमाह[1]—

पल्लो सायर सूई पदरो य घणंगुलो य जगसेढी ।
लोगपदरो य लोगो अट्ठ दु माणा मुणेयव्वा ।।८५।।*

पल्लो–पल्यं पल्योपमं, **सायर**–सागर: सगरोपमं, **सूई**–सूची सूच्यंगुलं, **पदरो य**–प्रतरश्च प्रतरांगुलं, **घणंगुलो य**–घनांगुलं च, **जगसेढी**–जगच्छ्रेणी, **लोगपदरो य**–लोकप्रतरं च, **लोगो**–लोक: **अट्ठ दु**–अष्टौ तु, **माणा**–मानानि प्रमाणानि, **मुणेयव्वा**–ज्ञातव्यानि । उद्धारपल्योपममुत्पादितं तत्र यानि रोमाग्राणि तान्येकैकं वर्षशतसमयमात्राणि खण्डानि कर्त्तव्यानि, एवं कृते यत्प्रमाणमेतेषां रोमाणां तदद्धापल्योपमं प्रमाणं अनेन पल्योपमेन सर्व: कर्मस्थित्यादिर्द्रष्टव्य: । एतेषामद्धापल्योपमानां दशकोटिकोटिप्रमाणाानामेकमद्धा सागरोपमं भवति, अनेन सागरोपमप्रमाणेन देवनारकमनुष्यतिरश्चां कर्मस्थितिभवस्थित्यायु:स्थितयो ज्ञातव्या: । सूच्यंगुलमुच्यते—अद्धापल्योपममर्द्धेनार्द्धेन तावत्कर्त्तव्यं यावदेकरोम, तत्र यावन्त्यदर्द्धच्छेदनानि अद्धापल्योपमस्य तावन्मात्राण्यद्धापल्योपमानि परस्पराभ्यस्तानि कृत्वा यत्प्रमाणं भवति तावन्मात्रा आकाशप्रदेशा उर्ध्वमावल्याकारेण रचितास्तेषां यत्प्रमाणं तत्

आगै उपमा-प्रमाण के अर्थि कहै हैं—

अर्थ–पल्यं कहिये पल्योपम, सागर कहिये सागरोपम, सूची कहिये सूच्यांगुल, बहुरि प्रतर कहिये प्रतरांगुल, बहुरि घनांगुल, जगत श्रेणी, लोकप्रतर, बहुरि लोक—ये आठ मानानि कहिये प्रमाण जाननें । उत्पादित कहिये उपजाया जो उद्धार पल्योपम तिस विषैं जे रोमाग्र, तिनहि एक-एकनिकूं सौ (१००) वर्ष के समयमात्र खंड करणे । अैंसे कीये इन रोमनि का जो प्रमाण सो अद्धापल्योपम प्रमाण है । इस पल्योपमकरि समस्तकर्म्मनि का स्थिति आदि जाननां । दशकोडाकोडी प्रमाण के जे यह अद्धा पल्योपम तिनका एक अद्धासागरोपम है । इस सागरोपम के प्रमाणकरि देव, नारक, मनुष्य, अर तिरजंचनि का कर्मस्थिति, भवस्थिति, आयुस्थिति जाननां ।

अब सूच्यंगुल कहिये हैं—अद्धापल्योपम अर्द्धअर्द्धकरि तेतैं करणां जेतैं एक रोम इहै । तहां अद्धापल्योपम के जेते अर्द्ध छेद होय तावन्मात्र अद्धापल्योपम परस्पर गुणकरि जो प्रमाण होय तावन्मात्र आकाश प्रदेश उर्ध्व आवली के आकारकरि रचित, तिनका जो प्रमाण सो सूच्यंगुल होय है । सो अन्य सूच्यंगुलकरि गुणित प्रतरांगुल होय है । सो प्रतरांगुल, अन्य सूच्यंगुलकरि गुणित घनांगुल होय है ।

आगै जगत्-श्रेणी कहिये है—पच्चीस कोडाकोडी उद्धार पल्यों के जेतें रूप बहुरि लक्ष योजन के अर्द्धछेदरूपकरि अधिक एक-एक द्विगुणीकृत परस्पर गुणित जो प्रमाण सो राजू है । सातकरि गुणित जो राजू सो श्रेणी है । श्रेणी अन्य श्रेणीकरि गुणित जगत्प्रतर है। बहुरि जगत्प्रतर श्रेणीकरि गुणित लोकप्रमाण है ।

सूच्यंगुल की संदृष्टि २, प्रतरांगुल की संदृष्टि, ४. घनांगुल की संदृष्टि, ८. रज्जू की संदृष्टि १/७, श्रेणी की संदृष्टि, जगत्प्रतरक संदृष्टि १/१, लोक की संदृष्टि १८/१८ संख्यात की संदृष्टि ९, असंख्यात की संदृष्टि ५. अनंत की संदृष्टि[2] ६. क्षेत्र का प्रमाण लीख (लिक्षा) जव (जौ), अंगुल, वितस्ति, रत्नि, किष्कु, धनुष, योजन आदिक स्वरूपकरि जाननां ।

---

१. ख उपमाप्रमाणमाह । २. अ० ब० में अनंत की संदृष्टि १६ दी है ।
* यह गाथा कुन्दकुन्दकृत मूलाचार में नहीं है ।

सूच्यंगुलम्[१]। तत्सूच्यंगुलं तदपरेण सूच्यंगुलेन गुणितं प्रतरांगुलम् । तत्प्रतरांगुलमपरेण सूच्यंगुलेन गुणितं घनांगुलम् । जगच्छ्रेणिरुच्यते—पंचविंशतिकोटिकोटीनामुद्धारपल्यानां यावन्ति रूपाणि लक्षयोजनार्द्धच्छेदनानि च रूपाधिकान्येकैकं द्विगुणीकृतान्यन्योन्याभ्यस्तानि यत्प्रमाणं सा रज्जुरिति रज्जुः सप्तभिर्गुणिताश्रेणिः, सा परया-गुणिता श्रेण्या जगत्प्रतरं, जगत्प्रतरं च जगच्छ्रेण्यागुणितं लोक प्रमाणम् । सूच्यंगुलस्य संदृष्टिः २ । प्रतरांगुलस्य संदृष्टिः ४ । घनांगुलस्य संदृष्टि ८ । रज्जोः संदृष्टिः १/७ । श्रेणीसंदृष्टि (?) जगत्प्रतरस्य संदृष्टिः १/१ लोकस्य संदृष्टिः १८/१८ संख्यातस्य संदृष्टिः ९ । असंख्यातस्य संदृष्टिः ५ । अनंतस्य संदृष्टिः ६ । क्षेत्रप्रमाणं लिक्षायवांगुलवितस्तिरत्निकिष्कुधनुर्योजनादिस्वरूपेण ज्ञातव्यम् । कालप्रमाणं परमसूक्ष्मः समयः अणोरण्वंतरव्यतिक्रमः कालः समयः, जघन्ययुक्तासंख्यातमात्रा समया आवलीनाम् प्रमाणम् [२]असंख्यातावलयः कोटिकोटीनामुपरि यत्प्रमाणं स उच्छवासः, सप्तभिरुच्छ्वासैः स्तवः, सप्तभिः स्तवैर्लवाः अष्टत्रिंशल्लवानामर्द्धलवा च नाडी, द्वे नाड्यौ मुहूर्त्तः, त्रिंशन्मुहूर्त्तै दिवसरात्रिः, इत्येवमादिकालप्रमाणम् । भावप्रमाणं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानि परोक्षप्रत्यक्षाणि । एवं प्रमाणसूत्रं व्याख्यातमिति ।।८५।।

स्वामित्वेन योगस्य स्वरूपमाह—

[३]वेइंदियादि भासा भासा य मणो य सण्णिकायाणं ।
एइंदिया य जीवा अमणाय अभासया होंति ।।८६।।

कायवाङ्मनसां निमित्तं परिस्पंदो जीव प्रदेशानां योगस्त्रिविधः कायवाङ्मनोभेदेन । **वेइंदियादि**–द्वीन्द्रियादीनां द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणाम् असंज्ञिपंचेन्द्रियाणां च **भासा**–भाषा वचनव्यापारः । **भासा य**–भाषा च, **मणो य**–मनश्च, **सण्णिकायाणं**–संज्ञिकायानां पंचेन्द्रियाणां संज्ञिनां भाषामनोयोगौ भवतः कायश्च । **एइंदिया य**–एकेन्द्रियाश्च पृथिवीकायिकाप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिकवनस्पतिकायिका जीवाः, **अमणा य**–अमनस्काः, **अभासया–**

प्रमाण काल का परमसूक्ष्म समय सो अणुतैं अन्य अणू विषैं गमन का काल सो 'समय' है । जघन्य युक्तासंख्यात समय मात्र समय सो आवली नाम प्रमाण है । संख्यात आवली कोडा-कोडा उपरि जो प्रमाण सो उच्छ्वास है । सात उच्छ्वासनिकरि 'स्तव' होय है। सात स्तवनिकरि 'लव' होय है । साढा अड़तालीस लवनिकी नांडीं (नाली या घटिका) होय है । दोय नाडी सो मुहूर्त है । तीस मुहूर्तनिकरि 'अहोरात्रि' होय है—इत्यादिक काल का प्रमाण जाननां । भावप्रमाण—१. मति, २. श्रुत, ३. अवधि ४. मनःपर्यय, ५. केवलज्ञान—यह प्रत्यक्ष—परोक्ष रूप सो भावप्रमाण है । ऐसें प्रमाणसूत्र व्याख्यान कीया ।।८५।।

आगै स्वामीपनांकरि योग का स्वरूप कहै हैं—

अर्थ–काय, वचन, मन का है निमित्त जाकै ऐसा जीव प्रदेशनि का परिस्पंद सो योग है । सो काय, वचन, मन के भेदकरि तीन प्रकार है । द्वींद्रियादीनां कहिये—द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय बहुरि असंज्ञी पंचैन्द्रियनि कै भाषा कहियै वचन व्यापार है । अर काय है बहुरि संज्ञीकाय जे संज्ञी पंचैंद्रिय तिनकैं वचन अर मनोयोग है, बहुरि काययोग है । बहुरि एकैंद्रियाः जीवाः कहिये पृथिवीकायिक, अप्कायिक तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतीकायिक—ऐसे स्थावर जीव, अम्नान्स्काः कहिये मनरहित, अभाषकाः कहिये वचन रहित, ऐसे हैं ते पंचस्थावर काययोगी हैं—ऐसा अर्थ जाननां ।

१. एक प्रमाणांगुल लम्बे और एक प्रदेश चौड़े ऊँचे आकाश में जितने प्रदेश हों उन्हें सूच्यंगुल कहते हैं ।
२. क० संख्यातावल्यः । ३. क० वेइंदिया य ।

अभाषका:, **होंति**–भवन्ति ते काययोगा इत्यर्थ: । संज्ञिनो जीवा कायवाङ्मनोयोगा भवन्ति, द्वीन्द्रियाद्यसंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यन्ता कायवचनयोगा भवन्ति, पृथिवीकायिकादिवनस्पतिकायान्ता: काययोगा भवति, [1]सिद्धास्तु त्रिभियोंगै रहिता भवन्ति । चशब्दादयमर्थो लब्धश्चतुर्विधस्य मनोयोगस्य चतुर्विधस्य वाग्योगस्य सप्तविधस्य काययोगस्य च तेष्वभावादिति ।।८६।।

स्वामित्वेन वेदस्य स्वरूपमाह—

एइंदिय वियलिंदिय णारय सम्मुच्छिमा य खलु सव्वे ।
वेदे णपुंसगा ते णादव्वा होंति णियमादु ।। ८७।।

एइंदिय–एकेन्द्रिया: पृथिवीकायिकादिवनस्पत्यन्ता:, **वियलिंदिय**–विकलेन्द्रिया, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया:, **णारय**–नारका:, **सम्मुच्छिमा य**–सम्मूर्च्छनाश्च, **खलु**–स्फुटं, **सव्वे**–सर्वे तेन[2] पंचेन्द्रिया: संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्च गृह्यन्ते सम्मूर्च्छिमविशेषणान्यथानुपत्तेः । एकेन्द्रियविकलेन्द्रियास्तु सम्मूर्च्छिमा एव तेषां विशेषणमनुपपपन्नमेव । **वेदे**–वेदेन वेदस्त्रिविध: स्त्रीवेद: पुंवेदो नपुंसकवेदश्च स्त्रीलिंगं पुंलिंगं नपुंसकलिंगमिति यावत्, स्त्यायत्यस्यां गर्भ इति स्त्री, सूते पुरुगुणानिति पुमान्, न स्त्री न पुमानिति नपुंसकं, स्त्रीबुद्धिशब्दयो: प्रवृत्तिनिमित्तं स्त्रीलिंगं, पुंबुद्धिशब्दयो: प्रवृत्तिनिमित्तं पुंल्लिंगं, नपुंसकबुद्धिशब्दयो: प्रवृत्तिनिमित्तं नपुंसकलिंगं तेन लिंगेन नपुंसकवेदेन नपुंसका नपुंसकलिंगा:, **णायव्वा**–ज्ञातव्या:, **होंति**–भवन्ति, **णियमादु**–नियमान् निश्चयात् । सर्वे एकेन्द्रिया:, सर्वे च विकलेन्द्रिया:, नारका: सर्वे सम्मूर्च्छनजा: पंचेन्द्रिया: संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्च वेदेन नपुंसका भवन्तीति ज्ञातव्या नात्र सन्देह: सर्वज्ञवचनं यत इति ।।८७।।

भावार्थ–संज्ञी जीवनि कैं काय, वचन, अर मन तीन्यौं योग है । द्वींद्रिय आदि असंज्ञी पंचैंद्रियनि कैं १. काय, २. वचन दोय जोग हैं । पृथिवीकायिक आदि वनस्पतिकायिक पर्यंत पंचस्थावरनिकै काययोग है । बहुरि सिद्ध तीन योगनिकरि रहित हैं । गाथा मैं 'च' शब्द है, तातैं यह अर्थ आया—च्यारि प्रकार मनयोग, च्यारि प्रकार वचनयोग, सातप्रकार काययोग का तिन विषैं अंतर्भाव है, यातैं सिद्धं पंदरह योगनितैं रहित जाननै ।।८६।।

आगैं स्वामीपनैंकरि वेद का स्वरूप है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–एकैंद्रिय जे पृथिवीकाय आदि वनस्पती परजंत, पंच स्थावर, विकलैंद्रिय जे द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, नारक, बहुरि सम्मूर्छिम-इहां सर्व सम्मूर्छिमकरि संज्ञी असंज्ञी पंचैंद्रिय ग्रहण करणें । सम्मूर्छन विशेषण की अन्यथा अनुपपत्ति है । यातैं प्रगटपनैं समस्त बहुरि एकैंद्रिय, विकलैंद्रिय सम्मूर्छिम ही है । तिनका विशेषण अनुपपन्न ही है । यह समस्त प्रकटिपनैं वेदकरि नपुंसक हैं । वेद तीन प्रकार हैं—१. स्त्रीवेद, २. पुंवेद, बहुरि ३. नपुंसकवेद । स्त्रीलिंग, पुल्लिग, नपुंसकलिंग—या प्रकार हू वेदनि का नाम है । उपजै हैं (वृद्धिंगत होता है) । गर्भ जा विषैं सो स्त्री, पुरु गुण जे प्रधान गुण तिनहि उपजावै सो पुरुष । जो नांही स्त्री है नांही पुरुष सो नपुंसक । स्त्री की बुद्धि अर स्त्री शब्द—इनकी प्रवृत्ति कूं कारण सो स्त्रीलिंग । पुरुष की बुद्धि अर पुरुष शब्द विषैं प्रवृत्ति कौं कारण सो पुल्लिग । नपुंसक की बुद्धि अर शब्द विषैं प्रवृत्ति कूं कारण सो नपुंसक लिंग । तिस नपुंसक लिंग, नपुंसक वेदकरि पूर्वोक्त नपुंसकलिंग नियमकरि जानने ।

भावार्थ–समस्त एकेंन्द्रिय, बहुरि समस्त विकलैंद्रिय, समस्त नारक, समस्त संज्ञी, असंज्ञी—अैसे समस्त सन्मूर्छन पंचैन्द्रिय वेदकरि नपुंसक जाननैं—या विषैं संदेह नांही, यह सर्वज्ञ का वचन है या हेतुतैं ।।८७।।

---

१. क० सिद्धा: पुनस्त्रियोग रहिता भवन्ति । २. क० नाम ।

स्वामित्वेन स्त्रीलिंगपुंल्लिंगयोः स्वरूपमाह—

देवा य भोगभूमा असंखवासाउगा मणुयतिरिया ।
ते होंति दोसुभेदेसु णत्थि तेसिं तदियवेदो ।।८८।।

देवा य–देवा भवनवासिवानव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिनः, च शब्दः समुच्चयार्थः **भोगभूमा**[१]–भोगभौमास्त्रिंशद्भोगभूमिजातास्तिर्यङ्मनुष्याः, **असंखवासाउगा**–असंख्यवर्षायुषो भोगभूमिप्रतिभागजाः, सर्वे म्लेच्छखण्डोत्पन्नाश्च [२]मनुष्याः, **तिरिया**–तिर्यंचः, **ते होंति**–ते भवन्ति, **दोसु वेदेसु**–द्वयोर्वेदयोर्द्वाभ्यां, वेदाभ्यां **णत्थि**–नास्ति न विद्यते, **तेसिं**–तेषां पूर्वोक्तानां **तदियवेदो**–तृतीयवेदो नपुंसकलिंगम् । देवा भोगभौमा असंख्यातवर्षायुषस्तिर्यंचः भोगभूमिप्रतिभागजाः च शब्दान्म्लेच्छाश्च सर्वे एते स्त्रीलिंगपुंल्लिगाभ्यां भवन्ति, नास्ति तृतीयं नपुंसकलिंगमिति ।।८८।।

विशेषणं त्रिलिंगत्वं प्रतिपादयन्नाह—

पंचेंदिया दु सेसा सण्णि असण्णीय तिरिय मणुसा य ।
ते होंति इत्थिपुरिसा णपुंसगा चावि वेदेहिं ।।८९।।

पंचेंदिया दु–पंचेन्द्रियास्तु, **सेसा**–शेषाः देवनारकभोभूमिजभोगभूमिप्रतिभागजतिर्यङ्म्लेच्छवज्वर्या अन्ये, **सण्णि**–संज्ञिनः, **असण्णीय**–असंज्ञिनश्च, **तिरिय**–तिर्यंचः, **मणुसा य**–मनुष्याश्च, **ते होंति**–ते सर्वे भवन्ति, **इत्थिपुरिसा**–स्त्रीपुरुषाः **णपुंसगा**–नपुंसकाश्चापि, **वेदेहिं**–वेदैर्वेदेषु वा। पूर्वोक्तानां शेषाः पंचेन्द्रियाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्च ये तिर्यंचो मनुष्यास्ते सर्वेऽपि स्त्रीपुंनपुंसकास्त्रिभिर्वेदैर्भवन्ति, पुनर्वेदग्रहणं द्रव्यवेदप्रतिपादनार्थं भाववेदस्य स्त्रीपुंनपुंसकग्रहणेनैव ग्रहणादिति ।।८९।।

आगैं स्वामीपनैंकरि पुल्लिग, स्त्रीलिंग का स्वरूप है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–देवा कहिये भवनवासी, वानव्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी इहां 'च' शब्द तैं समुच्चयार्थ है । बहुरि तीस भोगभूमि विषैं ऊपजे भोगभूमिया मनुष्य, तिरजंच असंख्यात वर्षायुषः कहिये भोगभूमि के प्रतिभाग विषैं उपजे । बहुरि सर्व म्लेच्छ, खंडनि विषैं उपजे अैसे मनुष्य, तिरजंच ते दोय वेदानि विषैं वा दोय वेदनिकरि उपजै हैं, तिनकै तृतीय वेद जो नपुंसक वेद सो नाहीं ।

भावार्थ–देव भोगभूमि या असंख्यात वर्ष आयु के धारक भोगभूमि कै प्रतिभाग विषैं ऊपजे तिरजंच 'च' शब्द म्लेच्छ यह सर्ब स्त्रीलिंग, पुल्लिगकरि उपजै हैं । तिनकै नपुंसकलिंग नांही ।।८८।।

आगै इनतैं अवशेष तिनकैं त्रिलिंगपनां है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै हैं—

अर्थ–पंचैंद्रिय अैसे शेषा कहिये देव, नारक, भोगभूमिया भोगभूमि के प्रतिभाग विषैं ऊपजे तिरजंच अर म्लेच्छ—इनतैं वर्जित अन्य संज्ञी, असंज्ञी, तिरजंच, मनुष्यतैं समस्त स्त्री, पुरुष, बहुरि नपुंसक वेदनि विषैं वा वेदनकरि जाननें ।

भावार्थ–पूर्वोक्तनिसौ अवशेष पंचैंद्रिय संज्ञी, असंज्ञी, तिरजंच, मनुष्य ते समस्तहू स्त्रीलिंग, पुल्लिग, नपुंसकलिंग के धारक हैं, त्रिवेदकरि युक्त हैं । गाथा विषैं दूसरा वेद का ग्रहण है, सो द्रव्यवेद के जणायवे अर्थि है । भाववेद का स्त्री, पुरुष, नपुंसक के ग्रहणकरि हूं ग्रहण है ।।८९।।

१. क० भोगभौमा । २. क० मणुया य ।

ननु यथा[1] तिर्यङ्मनुष्येषु सर्वत्र स्त्रीलिंगमुपलभ्यते किमेवं देवेष्वपि नेत्याह—

आ ईसाणा कप्पा उववादो होइ देवदेवीणं ।
तत्तो परं तु णियमा उववादो होइ देवाणं ।।९०।।

नात्रापपादकथनमन्याय्यं विषयभेदात्, देवेषु स्त्रीलिंगस्य भावाभावविषयककथनमेतत् नोपपादकथनं, **आ–**आङ्यमभिविधौ गृह्यते **ईशाणा–**ईशानात्, **कप्पो–**कल्पात् **उववादो–**उपपादो, **होइ–**भवति, **देवदेवीणं–**देवदेवीनां देवानां देवीनां च, **तत्तो–**ततस्तस्मादीशानात्परं तूर्ध्वं सनत्कुमारादिषु **उववादो–**उपपाद उत्पत्तेः संभवः, **होइ–**भवति, **देवाणं–**देवानाम् आईशानात्कल्पादिति । किमुक्तं भवति—भवनव्यन्तरज्योतिष्केषु सौधर्मैशानयोश्च कल्पयोर्देवानां देवीनां चोपपादः स्त्रीलिंगपुंल्लिगयोरुत्पत्तेः संभवः परेषु कल्पेषु सनत्कुमारादिषु देवानामेवोत्पत्तेः संभवो न चात्र स्त्रीलिंगस्योत्पत्तेः संभव इति।।९०।।

अथ स्त्रीलिंगस्या ईशानादुत्पन्नस्य कियद्दूरगमनमित्याशंकायामाह—

जावदु आरणअच्चुद गमणागमणं च होइ देवीणं ।
तत्तो परं तु णियमा देवीणं णत्थि से गमणं ।।९१।।

जावदु–यावत्, **आरणअच्चुद–**आरणाच्युतौ, **गमणं–**गमनं, **आगमणं च–**आगमनं च, चशब्दः समुच्चये, **होदि–**भवति, **देवीणं–**देवीनां, **तत्तो–**ततस्तभ्यामूर्ध्वं **परंतु–**परतः, **णियमा–**नियमात् निश्चयात्, **देवीणं–**देवीनां, **णत्थि–**नासित न विद्यते, **से–**तासां, **गमणं–**गमनं । [2]यावदारणाच्युतकल्पौ तावदागमनं च भवति देवीनां ततः परेषु नवग्रैवेयकनवानुत्तर (नवानुदिश)—पंचानुत्तरेषु नास्ति तासां देवीनां गमनं कुत एतत्

यातैं इहां प्रश्न—जैसे पंचेंद्रिय तिरजंच, मनुष्यनि विषैं सर्वत्र स्त्रीलिंग पाईयै है, अैंसे देवनि विषैं हू कहा पाईये है, कहा नांही पाइये है ? याका उत्तर कहै हैं—

अर्थ–इहां उपपाद कथन अन्याय्य नाहीं, न्याययुक्त ही है विषय भेदतैं । देवनि विषैं स्त्रीलिंग का यह भाव-अभाव विषय कथन है, उपपाद कथन नांही । आङ्य यह उपसर्ग है सो अभिविधि अर्थ विषैं ग्रहण करिये है । आ ईशानात् कल्पात् कहिये ईशान स्वर्गतैं उपरि सनत्कुमार आदि स्वर्गनि विषैं नियमतैं देव, देवीनिका उपपाद कहिये उत्पत्ति भवति कहिये होय है । ततः परतः कहिये ईशान स्वर्गतैं उपपाद होय है । आईशानात्कल्पात् इस पदकरि कहा कह्या ? भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषीनि विषैं बहुरि, सौधर्म, ईशान स्वर्ग विषैं देवनि का उपपाद है। स्त्रीलिंग, पुल्लिंग की उत्पत्ति का संभव है । सनत्कुमार आदि अन्य स्वर्गनि विषैं देवनि (देवों) की उत्पत्ति का संभव है । तहां स्त्रीलिंग की उत्पत्ति का संभव नांही ।।९०।।

आगै ईशान स्वर्ग परंजत उत्पन्न भया स्त्रीलिंग का केते दूर उर्ध्वगमन है, अैसी आशंका होतै कहैं हैं—

अर्थ–आरण, अच्युतस्वर्ग परजंत देवीनिका गमन बहुरि आगमन, बहुरि आगमन है । 'च' है सो समुच्चय अर्थ विषै हैं । आरण, अच्युत स्वर्गतैं परै तिनि देवीनिका निश्चयतैं गमन नांही ।

भावार्थ–देवीनिका गमन अच्युत स्वर्ग परजंत है, तातैं परैं जे नवग्रैवेयक, नव अनुदिश, पंच अनुत्तर हैं, तिन विषैं तिन देवीनिका

---

१. क० पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्येषु । २. क० आरणाच्युतकल्पौ यावद् गमनागमनं च ।

पूर्वागमात्।।९१।।

तमेवागमं प्रदर्शयतीति—

कंदप्पमाभिजोगा[1] देवीओ चावि आरणचुदोत्ति ।
लंतवगादो उवरिं ण संति संमोहखिब्भिसया[2] ।।९२।।

कदप्प–कन्दर्पस्य भावः कान्दर्पं कान्दर्पयोगाद्देवाः प्रहासोपप्लवशीलाः, **आभिजोगा**–आभियोग्या वाहनसुराः **देवीओ**–देव्यः, **चावि**–चापि समुच्चयसम्भावनार्थः, **आरणचुदोत्ति**–आरणाच्युतौ, चशब्देन यावचछब्दः समुच्चीयते । तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते । कान्दर्पा आभियोग्या देव्योऽपि यावदारणाच्युतौ, अस्मादागमाज्ज्ञायते नास्ति देवीनामूर्ध्वं गमनम् । **लंतवगादो**–लांतवकात् , **उवरिं**–उपरि ऊर्ध्वं न सन्ति न विद्यन्ते, **संमोह**–सम्मोहा भण्डदेवा नित्यमैथुनसेविनः श्ववत् । **खिब्भिसया**–किल्विषिकाः पाटहिकमौरजिकादयः वादित्रवादनपराः । लान्तवादुपरि किल्विषिकाः सम्मोहाश्च न सन्तीति ।।९२।।

लेश्यानां स्वामित्वेन स्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

काऊ काऊ तह काउणील णीला य णीलकिण्हा य ।
किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा रदणादि पुढवीसु ।।९३।।

लेश्यायाः सर्वत्र सम्बन्धः, **काऊ[3] काऊ**–कापोती कापोती जघन्यकापोतलेश्या, **तह**–तथा, **काऊ**–कापोती मध्यमकापोतलेश्या, **णील**–नीला

गमन नाहीं, यह कैसे ? (पूर्वागम में ऐसा कहा हुआ है ?) यह पूछै ।।९१।।

तिस ही आगम कू दिखावै हैं—

अर्थ–कंदर्प्प का भाव सो कांदर्प्प है । कांदर्प्प के संयोगतैं देव कांदर्प्प कहिये—अतिहास्य, अर पीड़ा करणे का है स्वभाव जिनका, अभियोग का भाव सो आभियोग्य है । अभियोग्य योग तैं देवहू आभियोग्य कहिये वाहन जाति के देव बहुरि देवी । इहां 'च' शब्द समुच्चयार्थ है, 'अपि' शब्द संभावना अर्थ है । आरणाच्युतौ इति-इहां 'इति' शब्द है । ताकरि यावच्छब्द-समुच्चय करिये है, ताकरि या प्रकार संबंध करणां—कांदर्प्प देव, आभियोग्य देव, बहुरि देवी हू आरण-अच्युत स्वर्ग परजंत हैं । या इस आगमतैं जानियै है—देवीनिका उर्ध्वगमन नांही। लांतव स्वर्गतैं ऊपरि सम्मोहा कहिये श्वान ज्यौं नित्य मैथुनकूं सेवते भंडदेव, बहुरि किल्विषिका कहिये पाटहिक मौरजिवि, ढोल बजावनहारे, मृदंग बजावनहारे आदि वादित्र वजावे विषैं तत्पर अैसे देव नांही हैं ।

भावार्थ–लांतव स्वर्ग परै—१. सम्मोहन २. किल्विषिका निकृष्ट देव नांही ।।९२।।

आगै लेश्यानि कौ स्वरूप स्वामीपनें करि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–लेश्याकरि सर्वत्र संबंध है । कापोती कापोती कहिये जघन्य कापोत लेश्यातैं तैसें कापोती कहिये—मध्यम कापोत

---

१. अ० ब० ओगा । २. अ० ब० ...सिया ।
३. 'काऊ—कापोती जघन्य कापोतलेश्या काउ, कापोती मध्यमकापोतलेश्या, तह—तथा, काऊणीले—कपोतीनीले उत्कृष्टकापोतलेश्या, जघन्यनीललेश्या च, इति चैके ।'

जघन्यनीललेश्या उत्कृष्टकापोतलेश्या, **नीलाय**–नीला च मध्यमनीला, **नीलकिण्हाय**–नीलकृष्णा चोत्कृष्टनीला जघन्यकृष्णा च, **किण्हाय**–कृष्णा च मध्यमकृष्णलेश्या, **परमकिण्हा**–परमकृष्णा सर्वोत्कृष्टकृष्णलेश्या, **लेस्सा**–लेश्या कषायानुरंजिता योगप्रवृत्तिः, **रदणादि**–रत्नादिषु **पुढवीसु**–धरित्रीषु रत्नप्रभादिसप्तसु नरकेषु यथासंख्येन संबन्धः । रत्नप्रभायां नारकाणां जघन्यकापोतलेश्या, द्वितीयायां शर्कराप्रभायां मध्यमकापोतलेश्या, तृतीयायां वालुकाप्रभायामुपरिष्टादुत्कृष्टकापोतीलेश्या अधो जघन्यनीला च, चतुर्थ्यां पंकप्रभायां मध्यमनीललेश्या, पंचम्यां धूमप्रभायाम परि उत्कृष्टनीला अधो जघन्यकृष्णा च, षष्ठ्यां तमःप्रभायां मध्यमकृष्णलेश्या, सप्तम्यां [1]महातमःप्रभायामुत्कृष्टलेश्या सर्वत्र नारकाणामिति संबन्धः । स्वायुःप्रमाणावधृता द्रव्यलेश्याः । भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः । न केवलमशुभलेस्याः नारकाणां किन्तु अशुभपरिणामा अशुभस्पर्शरसगन्धवर्णाः क्षेत्रविशेषनिमित्तवशाददतिदुःखहेतवो देहाश्च तेषामशुभनामोदयादत्यन्ताशुभतराः विकृताकृतयो हुण्डसंस्थाना इति ।।९३।।

देवानां लेश्याभेदमाह—

तेऊ तेऊ तह तेऊ पम्म पम्मा य पम्मसुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का लेस्साभेदो मुणेयव्वो ।।९४।।

तेऊ तेऊ–तेजस्तेजः जघन्यतेजोलेश्या, **तह**–तथा, **तेऊ**–तेजः मध्यमतेजोलेश्या, **पम्म**–पद्मा जघन्यपद्मलेश्या उत्कृष्टतेजोलेश्या, च, **पम्मा**–पद्मा च मध्यमपद्मलेश्या, **पम्मसुक्का य**–पद्मशुक्ला च उत्कृष्टपद्मलेश्या जघन्यशुक्ललेश्या च, **सुक्का य**–शुक्ला च मध्यमशुक्ला, **परमसुक्का**–परमशुक्ला सर्वोत्कृष्टशुक्ललेश्या, **लेस्साभेदो**–लेश्याभेदः, **मुणेयव्वो**–ज्ञातव्य इति ।।९४।।

लेश्या । बहुरि नील-नीला कहिये जघन्य नील लेश्या । उत्कृष्ट कापोत लेश्या, बहुरि नीला कहिये मध्यम नील लेश्या । बहुरि नील कृष्णा कहिये उत्कृष्ट नील लेश्या, जघन्य कृष्ण लेश्या बहुरि कृष्णा कहिये मध्यम कृष्ण, लेश्या । परमकृष्णा कहिये सर्वोत्त्कृष्ट कृष्ण लेश्या । लेश्या नाम कषायनिकरि अनुरंजित योगनि प्रवृत्ति का है । रत्नादिषु पृथिवीषु कहिये रत्नप्रभा आदि सात नरकनि विषैं यथा संख्यकरि संबंध है । रत्नप्रभा विषैं नारकनिकैं जघन्य कापोत लेश्या है । दूसरी शर्करा-प्रभा विषैं मध्यम कापोत लेश्या है । तीसरी बालुका प्रभा विषैं उपरि-उपरि उत्कृष्ट कापोत लेश्या है । नीचै जघन्य नील लेश्या है । चौथी पंकप्रभा मध्यम नील लेश्या है । पंचमी धूमप्रभा विषैं उपरि उत्कृष्ट नील लेश्या है । बहुरि नीचै जघन्यकृष्णलेश्या है । छठी तमःप्रभा विषैं मध्यमकृष्णलेश्या है । सातमी तमस्तमःप्रभा विषैं उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या है । सर्वत्र नारकाणामिति संबंधया का अर्थ सर्वत्र नारकनिका या प्रकार संबंध है । नारकनिकैं द्रव्य लेश्या अपनें आयु प्रमाणकरि निश्चित है । बहुरि भावलेश्या अंतर्मुहूर्त वर्तिनी अैसी है । नारकनिकैं केवल अशुभलेश्या ही नांही कही है । अशुभ परिणाम, अशुभ स्पर्श, रस, गंध, अर, वर्ण हैं । क्षेत्र विशेष के निमित्त वशतैं अत्यंत दुःख के कारण अैसे देह है । तिनकै अशुभ नामकर्म के उदयतैं अत्यंत अशुभतर भयानक है आकृति जिनके अैसे हुंडक संस्थान है ।।९३।।

आगै देवनिकै लेश्यनि का भेद हैं, ताहि कहै हैं—

अर्थ–तेजः-तेजः कहिये जघन्य तेजो लेश्या, तैसें तेजः कहिये मध्यम तेजो लेश्या । पद्म-पद्मा कहिये उत्कृष्ट पद्म लेश्या, जघन्य पद्म लेश्या, उत्कृष्ट तेजो लेश्या बहुरि पद्मा कहिये मध्यम पद्म लेश्या । बहुरि पद्मशुक्ला कहिये उत्कृष्ट पद्म लेश्या, जघन्य शुक्ल लेश्या। बहुरि शुक्ला कहिये मध्यम शुक्ल लेश्या । परम शुक्ला कहिये सर्वोत्कृष्ट शुक्ल लेश्या अैसा लेश्यानिका भेद जाननां ।।९४।।

---

१. क० तमस्तमःप्रभायां

८२

एते सप्त लेश्याभेदाः केषामित्याशंकायामाह—

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च ।
एतो य चोदसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ।।९५।।

तिण्हं–त्रयाणां त्रिषु वा, **दोण्हं**–द्वयोः, पुनरपि **दोण्हं**–द्वयोः, **छण्हं**–षण्णां, **दोण्हं च**–द्वयोश्च, **तेरसण्हं च**–त्रयोदशानां त्रयोदशसु वा, **एत्तो य**–इतश्चोपरि, **चोदसण्हं**–चतुर्दशानां चतुर्दशसु वा **लेस्सा**–लेश्याः पूर्वोक्ताः सप्त लेश्याभेदाः, **भवणादिदेवाणं**–भवनादिदेवानाम् । भवनवानव्यन्तर-ज्योतिष्केषु त्रिषु देवानां जघन्यतेजोलेश्या, सौधर्मैशानयोर्देवानां मध्यमतेजोलेश्या, सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवानामुत्कृष्टतेजोलेश्या जघन्यपद्मलेश्या च, ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रेषु षट्सु देवानां मध्यमपद्मलेश्या, शतारसहस्रारयोरुत्कृष्टलेश्या जघन्यशुक्ललेश्या च, आनतप्राणतारणाच्युतसहितेषु नवसु ग्रैवेयकेषु त्रयोदशसंख्यकेषु मध्यमशुक्ललेश्या, नवानुत्तरेषु पंचानुत्तरेषु चतुर्दशसंख्येषु परमशुक्ललेश्या, [1]सर्वत्र देवानामिति यथासंख्येन संबन्ध इति ।।९५।।

तिर्यङ्मनुष्याणां लेश्याभेदमाह—

एइंदियवियलिंदियअसण्णिणो तिण्णि होंति असुहाओ ।
संखादीदाऊणं तिण्णि सुहा छप्पि सेसाणं ।।९६।।

एइंदिय–एकेन्द्रियाणां पृथिवीकायिकादिवनस्पतिकायिकान्तानां, **वियलिन्दिय**–विकलेन्द्रियाणां द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणाम्, **असण्णिणो**–

यह सात लेश्यानि के भेद कौन कैं होय हैं ? ऐसी आशंका होते कहैं हैं—

अर्थ–भवनवासी आदि देवनि कै मध्य तीन कै, वा तीन विषैं, दोय कै वा दोय विषैं, बहुरि हू दोय कै, दोय विषैं, छहनि के वा छह विषैं, बहुरि दोय कै वा दोय विषैं, बहुरि तेरहनि कैं वा तेरहनि विषैं यातै परै चौदहनि कैं वा चौदहनि विषैं लेश्या कहिये-लेश्या के भेद जानने ।

भावार्थ–भवनवासी वान व्यंतर, ज्योतिष्क—इन त्रिक विषैं देवनि कैं जघन्य तेजो लेश्या है । सौधर्म, ईशान विषैं देवनिकैं मध्यम तेजो लेश्या है । सनत्कुमार माहेंद्र विषैं देवनिकै उत्कृष्ट तेजो लेश्या है । बहुरि जघन्य पद्म लेश्या है । ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र-इन छहनि विषैं देवनिकैं मध्यम पद्म लेश्या है । शतार-सहस्रार विषैं उत्कृष्ट पद्मलेश्या है, बहुरि जघन्य शुक्ललेश्या है । आनत—प्राणत, आरण, अच्युत—इन सहित नवग्रैवेयक—इन तेरहनि विषैं मध्यम शुक्ल लेश्या है । नव अनुदिश पंच अनुत्तर—इन चौदहनि विषैं परमशुक्ललेश्या है । सर्वत्र देवनिकैं यह यथासंख्यकरि संबंध है ।।९५।।

आगै तिरजंच मनुष्यनि कै लेश्यानिका भेद है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–पृथिवीकायिक आदि वनस्पतीकायिक परजंत एकैंद्रियनिकै, द्वीद्रिंय, चतुरिंद्रय, जे विकलेद्रिंय, तिनकैं शिक्षा, आलाप आदि के ग्रहण करवे कूं अयोग्य अैसे असंज्ञीय पंचेन्द्रियनिकैं कापोत, नील, कृष्ण—यह तीन अशुभ लेश्या है । संख्यातीतायुष्कानां कहिये भोगभूमिया, बहुरि भोगभूमि के प्रतिभाग विषैं उपजे कूं भोगभूमिया तिनके तेज, पद्म, शुक्ल—यह तीन शुभ लेश्या है । शेषाणां कहिये—कर्मभूमिया

१. क० सर्व ।

असंज्ञिनां शिक्षाऽऽलापादिग्रहणायोग्यानां पंचेन्द्रियाणां **तिण्णि**–तिस्रः, **होंति**–भवन्ति, **असुहाओ**–अशुभाः कापोतनीलकृष्णलेश्याः । **संखादीदाऊणं**–संख्यातीतायुष्काणां भोगभूमिजानां प्रतिभागजानां च, **तिण्णि**–तिस्रः शुभाः तेजःशुक्लपद्मलेश्याः, **छप्पि**–षडपि कापोतनीलकृष्णतेजःपद्मशुक्ललेश्याः, **सेसाणं**–शेषाणां कर्मभूमिजानां कर्मभूमिप्रतिभागजानां पंचेन्द्रियाणां संज्ञिनाम् । एकेन्द्रियविकलेन्द्रियसंज्ञिनां तिस्रोऽशुभलेश्या भवन्ति, भोगभूमिजानां भोगभूमिप्रतिभागजानां च तिर्यङ्मनुष्याणां तिस्रः शुभा लेश्या भवन्ति, शेषाणां पुनः कर्मभूमिजानां कर्मभूमिप्रतिभागजानां च तिर्यङ्मनुष्याणां षडपि लेश्या भवन्ति । अत्रापि केषांचिद्द्रव्यलेश्याः स्वायुःप्रमाणावधृता। भावलेश्याः पुनः सर्वेषामन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः कषायाणां हानिवृद्धिभ्यां तासां हानिवृद्धी वेदितव्ये इति ।।९६।।

प्रवीचारकारणेन्द्रियविषयभेदं प्रतिपादयन्नाह—

कामा दुवे तिओ भोग इंदियत्था विदूहिं पण्णत्ता ।
कामो रसो य फासो सेसा भोगेति आहीया ।।९७।।

कामा–कामः स्त्रीपुंनपुंसकवेदोदयकृततद्विषयाभिलाषस्तस्य कारणत्वात्कामः कारणे कार्योपचारात्, **दुवे**–द्वौ, **तिओ**–त्रयः, **भोग**–भोगाः, **इंदियत्था**–इन्द्रियार्था इन्द्रियविषयाः स्पर्शरसगन्धरूपशब्दाः । अथवेन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि तद्विषयाश्च, **विदूहि**–विद्वद्भिः प्रत्यक्षदर्शिभिः, **पण्णत्ता**–प्रज्ञप्ताः कथिताः दृष्टा वा । **कामो**–कामः, **रसो य**–रसश्च, **फासो**–स्पर्शश्च, **सेसा**–शेषाः गन्धरूपशब्दाः, **भोगेत्ति**–भोगा इति, **आहिया**–आहिताः प्रतिपादिताः ज्ञाता वा । स्पर्शनेन्द्रियप्रवृत्तिकारणत्वाद् रूपशब्दौ भोगौ, रसनेन्द्रियस्य प्रवृत्तिहेतोः स्पर्शनेन्द्रियस्य च घ्राणं भोगोऽतः यत एवं कामौ रसस्पर्शौ, गन्धरूपशब्दा भोगाः कथिताः, अत इन्द्रियार्थाः सर्वेपि कामा भोगाश्च विद्वद्भिः प्रज्ञप्ता इति ।।९७।।

बहुरि कर्मभूमि के प्रतिभाग विषैं उपजैं असे संज्ञी पंचैन्द्रियनि कै षड्अपि कहिये कापोत, कृष्ण, नील, तेज, पद्म, शुक्ल—यह छहहू लेश्या हैं ।

भावार्थ–भोगभूमिया बहुरि कुभोगभूमिया तिरजंच मनुष्यनि कैं तीन शुभ लेश्या हैं । बहुरि शेष जे कर्मभूमिया अर कर्मभूमि के प्रतिभाग विषैं ऊपजे असे तिरजंच मनुष्यनि कैं छह हू लेश्या हैं । इनि विषैं हू के ईनिकैं द्रव्यलेश्या अपने आयु-प्रमाण निश्चित हैं। बहुरि भाव लेश्या सर्वनिकैं अंतर्मुहूर्त-प्रमाणवर्तती असी हैं । कषायनिकी हानि-वृद्धितैं भाव लेश्यानि की हानि-वृद्धि जाननी ।।९६।।

आगैं प्रतीचार (प्रवीचार) के कारण जे इंद्रियनि के विषय तिन का भेद है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै हैं—

अर्थ–१. स्त्रीवेद, २. पुरुषवेद, ३. नपुंसकवेद—इनके उदयकरि कीया तिनके विषयनि विषैं अभिलाष है सो काम है । ताकै कारणपणां है, यातैं कारण विषैं कार्य का उपचार है यातैं दोय इंद्रियनि (स्पर्श और रसना) के विषय 'काम' है । तीन इंद्रिय के विषय 'भोग' है । १. स्पर्श, २. रस, ३. रूप, ४. गंध, ५. शब्द । यह इन्द्रियनि के विषय अथवा स्पर्श, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र-यह पांच इंद्रिय, बहुरि तिनके विषय विद्वान जे प्रत्यक्षदर्शी तिननैं या प्रकार कहै—देखे । रस, बहुरि स्पर्श—ये दोय विषय काम कह्या । शेषा कहिये गंध, रूप, शब्द—यह तीन भोग या प्रकार कहे वा जाणें । स्पर्शन इंद्रिय की प्रवृत्ति के कारणपणां तैं, रूप अर शब्द 'भोग' कहै । रसना इंद्रिय के प्रवृत्ति के कारणतैं, बहुरि स्पर्शन इंद्रिय के प्रवृत्ति के हेतुतैं घ्राण 'भोग' है । जातैं असैं हैं तातैं रस और स्पर्श 'काम' हैं । गंध, रूप, शब्द—ये भोग हैं । बहुरि प्रत्यक्षदर्शी समस्त ही इंद्रियनि के विषय काम कहै बहुरि भोग कहै—असै जाननां ।।९७।।

इन्द्रियैर्वेदनाप्रतिकारसुखं देवानामाह—

आईसाणा कप्पा देवा खलु होंति कायपडिचारा ।
फासप्पडिचारा पुण सणक्कुमारे य माहिंदे ।।९८।।

आङ्यमभिविधौ द्रष्टव्य: असंहिततया निर्देशोऽसंदेहार्थ: तिर्यङ्मनुष्यभवनवासिव्यन्तरज्योति:सौधर्माणां ग्रहणं लब्धं भवति, **ईसाणा–**ईशानात्, **कप्पा–**कल्पा:, **देवा–**देवा:, खलु—स्फुटं, **होंति–**भवन्ति, **कायपडिचारा–**कायप्रतीचारा: "प्रतीचारो मैथुनोपसेवनं वेदोदयकृतपीडाप्रतीकार:" काये कायेन वा प्रतीचारो येषां ते कायप्रतीचारास्तिर्यङ्मनुष्या भवनवासिवानव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मैशाना देवा देव्यश्च स्फुटं भवन्ति कायप्रतीचारा: सक्लिष्टकर्मकलंकत्वान्मनुष्यवत्स्त्रीसुखमनुभवन्तीति । अवधिग्रहणादितरेषां सुखविभागे प्रतिज्ञाते तत्प्रतिज्ञानायाह—**फासपडिचारा–**स्पर्शप्रतीचारा: स्पर्शे स्पर्शेनेन वा प्रतिचारो विषयसुखानुभवनं येषां ते स्पर्शप्रतीचारा:, पुण—पुनरन्येन प्रकारेण, **सणक्कुमारे य**—सनत्कुमारे च कल्पे, **माहिंदे**—माहेन्द्र कल्पे देवा इत्यनुवर्त्तते । सानत्कुमारे कल्पे माहेन्द्रकल्पे च ये देवास्ते स्पर्शप्रतीचारा:—देवांगना-स्पर्शमात्रकामकृतप्रीतिसुखमुपलभन्ते तथा देव्योऽपीति ।।९८।।

तथा शेषाणां सुखप्रतिपादनार्थमाह—

बंभे कप्पे बंभुत्तरे य तह लंतवे य कापिट्ठे ।
एदेसु य जे देवा बोधव्वा रूवपडिचारा ।।९९।।

बंभे कप्पे–ब्रह्मकल्पे, **बंभुत्तरे य–**ब्रह्मोत्तरे च कल्पे, **तह–**तथा, **लंतवेय–**लान्तवकल्पे, **कापिट्ठे–**कापिष्ठकल्पे, **एदेसु य–**एतेषु च कल्पेषु चान्येषु तत्प्रतिबद्धेषु, **जे देवा–**ये देवा:, **बोधव्वा–**बोद्धव्या: ज्ञातव्या:, **रूवपडिचारा–**रूपे रूपेण वा प्रतीचारो येषां ते रूपप्रतीचारा: ।

आगै देवनिकैं इंद्रियनिकरि वेदना का प्रतीकार रूप सुख है, ताहि कहै हैं —

अर्थ–'आङ्' यह उपसर्ग है, सो अभिविधि विषैं जाननां । असंहिताकरि निर्देश है सो असंदेह के अर्थि है । इसकरि तिरजंच, मनुष्य, भवनवासी, वानव्यंतर, ज्योतिष्क, सौधर्म, स्वर्ग परजंत देव प्रगटपनैं कायप्रवीचारा हैं । प्रतीचार नाम मैंथुन सेवन का है। अथवा वेद का उदयकरि जो पीड़ा ताका प्रतीकार सो प्रतीचार है। काय विषैं वा कायकरि है प्रतीचार जिनकै अैसे है ।

भावार्थ–तिरजंच, मनुष्य, भवनवासी, वान-व्यंतर, ज्यौतिष्क, सौधर्म, ईशान के देव बहुरि देवी प्रगटपनैं काय प्रतीचार हैं । संक्लेश युक्त जो कर्म, तिस कर्म जो कलंकपनैंतैं मनुष्य ज्यौं स्त्री का सुख है, ताहि अनुभवै है । अवधि जो ईशान, स्वर्ग परयंत मर्यादा ताकै, ग्रहणतैं अन्य वेदनिकैं सुख का विभाग नांही जाणैं संतै तिनके जाणवे अर्थि कहै हैं । स्पर्श प्रतीचारा: कहिये स्पर्श विषैं वा स्पर्शकरि है विषय सुख को अनुभव जिनकैं अैसे देव अन्य प्रकारकरि सनत्कुमार बहुरि माहैंद्र स्वर्ग विषैं हैं । देव अैसी अनुवृत्ति है ।

भावार्थ–सनत्कुमार, माहैंद्र स्वर्ग विषैं जे देव हैं, ते स्पर्श प्रतीचार हैं । देवांगना के स्पर्शमात्र हीतैं कामकृत प्रीति रूप सुख है, ताहि अनुभवै है । तैसैं देवी हू अनुभवै है ।।९८।।

तैसैं ही अवशेष देवनि के सुख जणायवे अर्थि कहै हैं—

अर्थ–ब्रह्म स्वर्ग विषैं, बहुरि ब्रह्मोत्तर स्वर्ग विषैं, तैसैं लांतव स्वर्ग विषैं, बहुरि कापिष्ट स्वर्ग विषैं, इन स्वर्गनि विषैं बहुरि तत्प्रतिबद्ध जे देव हैं, ते रूपप्रतीचारा: कहिये रूप विषैं वा रूपकरि है प्रतीचार जिनकैं, अैसे हैं ।

ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु कल्पेषु य देवास्ते रूपप्रतीचारा: दिव्यांगनानां शृंगारचतुरमनोज्ञवेषरूपालोकनमात्रादेव परं सुखं प्राप्नुवन्ति देव्योऽपि चेति ।।९९।।

शब्दप्रतीचारान् प्रतिपादयन्नाह—

सुक्कमहासुक्केसु य सदारकप्पे तहा सहस्सारे ।
कप्पे एदेसु सुरा बोधव्वा सद्दपडिचारा ।।१००।।

सुक्कमहासुक्केसु य–शुक्रमहाशुक्रयोश्च, **सदारकप्पे**–शतारकल्पे, **तहा**–तथा, **सहस्सारे**–सहस्रारे च, **कप्पे**–कल्पे, **एतेसु**–एतेषु, **सुरा**–सुरा: देवा:, **बोधव्वा**–बोद्धव्या:, **सद्दपडिचारा**–शब्दप्रतीचारा:, शब्दे शब्देन वा प्रतीचारो येषां ते शब्दप्रतीचारा: । एतेषु शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारकल्पेषु ये देवा देव्योऽपि च ते शब्दप्रतीचारा:, देववनितानां मधुरसंगीतमृदुललितकथितभूषणारवश्रवणमात्रादेव परां प्रीतिमास्कन्दन्तीति ।।१००।।

मन:प्रतीचारान् प्रतिपादयन्नाह—

आणदपाणकप्पे आरणकप्पे य अच्चुदे य तहा ।
मणपडिचारा णियमा एदेसु य होंति जे देवा ।।१०१।।

आणदपाणकप्पे–आनतप्राणतकल्पयो:, **आरणकप्पे**–आरकल्पे, **अच्चुदे य तहा**–अच्युते च तथैव देव्योऽपि, **मणपडिचारा**–मन:प्रतीचारा:, **णियमा**–नियमान्निश्चयेन, **एदेसु य**–एतेषु च, **होंति**–भवन्ति, **जे देवा**–ये देवा: । एतयो आनतप्राणतकल्पयोरारणाच्युतकल्पयोर्देवा मन:प्रतीचारा मानसिककामाभिलाषसुखा: स्वांगनामन:संकल्पमात्रादेव परमसुखमवाप्नुवन्तीति ।।१०१।।

भावार्थ–ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट—इनि स्वर्गनि विषैं जे देव हैं, ते रूप प्रतीचार हैं । देवांगना के शृंगार, क्रीडा, विलास, चतुराई मनोज्ञ वेष, रूप के देखने मात्र ही तैं उत्कृष्ट सुखकूं प्राप्त होय हैं । बहुरि देवांगनां हू अैसैं ही सुखकूं प्राप्त होय हैं ।।९९।।

आगै शब्द विषैं है प्रतीचार जिनकैं—अैसे देवनिकूं प्रतिपादन करते कहैं हैं—

अर्थ–शुक्र, महाशुक्र स्वर्ग विषैं, बहुरि शतार स्वर्ग विषैं, तैंसैं सहस्रार स्वर्ग विषैं—इन स्वर्गनि विषैं जे देव हैं, ते बहुरि देवी हैं ते शब्द-प्रतीचारा:-कहिये शब्द विषैं वा शब्दकरि है प्रतीचार जिनकैं, अैसे हैं ।

भावार्थ–शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार—इन विषैं जे देव हैं ते देवांगना के मधुर-गान, कोमल ललित कथन, भूषण शब्द (आभूषणों की ध्वनि) श्रवण मात्र हीतैं अत्त्यंत प्रीतिकूं प्राप्त होय हैं ।।१००।।

आगैं मनकरि है प्रतीचार जिनिकैं—अैसे देवनिकूं प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–आनतप्राणत स्वर्ग विषैं, बहुरि आरण स्वर्ग विषैं तैंसें ही अच्युत स्वर्ग विषैं—इन विषैं हू निश्चयकरि मन: प्रतीचार है ।

भावार्थ–आनत-प्राणत स्वर्ग विषैं बहुरि आरण-अच्युत स्वर्ग विषैं मन:प्रतीचार: है । मन विषैं, कामाभिलाषतै पाया है सुख जिननैं, अैसे भये अपनी देवांगना के मन विषैं संकल्पमात्र ही तैं परम सुखकूं प्राप्त होय है ।।१०१।।

अथोत्तरेषा किंप्रकार सुखमित्युक्ते तन्निश्चयार्थमाह—

तत्तो परं तु णियमा देवा खलु होंति णिप्पडीचारा ।
सप्पडिचारेहिं वि ते अणंतगुणसोक्खसंजुत्ता ।।१०२।।

तत्तो–ततस्तेभ्यो भवनाद्यच्युतान्तेभ्य:, **परंतु**–परत ऊर्ध्वं, **णियमा**–नियमान्निश्चयादसंदेहात्, **देवा**–अहमिन्द्रादय:, खलु स्फुटं व्यक्तमेतत्प्रत्यक्षज्ञानिदृष्टमेतत्, **होंति**–भवन्ति, **णिप्पडीचारा**–निष्प्रतीचारा प्रतीचारान्निर्गता निष्प्रतीचारा: कामाग्निदाहविनिर्मुक्ता: । वनिताविषयपंचेन्द्रियसुखरहिता: । यद्येवं किं तेषां सुखमित्याशंकायामाह—**सप्पडिचारेहिं वि**–सप्रतीचारेभ्योऽपि कायस्पर्शरूपशब्दमन:प्रवीचारेभ्योऽपि ते नवग्रैवेयकादिकेऽहमिन्द्रा:, **अणंतगुणसोक्खसंजुत्ता**–अनन्तगुणसौख्ययुक्ता, अनन्तो गुणो गुणकारो यस्य तदनन्तगुणं अनन्तगुणं च तत्सौख्यं चानन्तगुणसौख्यं स्वायत्तसर्वप्रदेशानन्दप्रीणनं तेन संयुक्ता: सहिस्तास्तेभ्यो भवनाद्यच्युतान्तेभ्य: परेषु नवग्रैवेयकनवानुदिशपञ्चानुत्तरेषु ये देवास्ते निश्चयेनाप्रतीचारा: सप्रतीचारेभ्योऽनन्तगुणसंयुक्ता:, व्यक्तमेतत् प्रतिचारो हि वेदनाप्रतीकारस्तदभावे तेषां परमसुखमनवरतमिति ।।१०२।।

कुतो यत:—

जं च कामसुहं लोए जं च दिव्वमहासुहं ।
वीदरागसुहस्सेदे णंतभागंपि णग्घंदि ।।१०३।।

जं च–यच्च, **कामसुहं**–कामसुखं विषयोत्थजीवप्रदेशाह्लादकारणं मनुष्यादिभवं, **लोए**–लोके तिर्यगूर्ध्वाधोभागेषु, **जं च दिव्वमहासुहं**–दिवि भवं दिव्यं दिव्यं च तन्महासुखं च दिव्यमहासुखं भवनाद्यच्युतान्तदेवोत्थं, **वीदरागसुहस्स**–वीतरागसुखस्य निर्मूलितमोहनीयादिकर्मकलंकस्य, **एदे**–एतानि

अथानंतर कल्पोत्तर देवनिकैं कौन प्रकार सुख हैं ? ऐसें पूछैं तिनकैं निश्चय अर्थि कहै हैं—

अर्थ–भवनवासी आदि अच्युत पर्यंत जे देव, तिनतैं आगै अहमिंद्रादिक देव हैं, ते नियमात् कहिये निश्चयकरि संदेह रहित, प्रत्यक्ष ज्ञानीनिकरि दृष्टनि:प्रतीचार हैं प्रतीचारतैं रहित तै नि:प्रतीचार कहिये कामरूप अग्नि के दाहतैं रहित हैं, खलु कहिये प्रगटपनैं ।

भावार्थ–स्त्रीसंबंधी पंचैंद्रियनि के सुख, तिनतैं रहित हैं जो ऐसै हैं, तिनकै कौन सुख है ? ऐसी आशंका होतैं कहै है—काय, स्पर्श, रूप, शब्द, मन—इनतैं जे प्रतीचार तिनकरि सहित ऐसे सप्रतीचार देव हैं । तिनहूतैं नवग्रैवयकादिक विषैं अहमिंद्र हैं, ते अनंत हैं गुणकारि जाकै—ऐसा जो सुख ताकरि सहित हैं । स्वाधीन सर्व प्रदेशनि विषैं आनंदकारि तृप्ति, ताकरि संयुक्त हैं ।

भावार्थ–भवनवासी आदि अच्युतपर्यंत स्वर्गनितैं परैं नवग्रैवेयक, नव अनुदिश, पंच अनुत्तर विषैं जे देव हैं, ते निश्चयकरि अप्रतीचार हैं । सप्रतीचार देवनितैं अनंतगुणे सुखकरि संयुक्त हैं—यह प्रगट है, जातैं प्रतीचार है सो वेदना का प्रतीकार है । वेदना का अभावतैं होतै तिनकैं निरंतर परमसुख है ।।१०२।।

ऐसा क्यों ? क्योंकि—)

अर्थ–लोक जो समस्त तिर्यक्लोक, उर्ध्वलोक, अधोलोक तिन विषैं जो कामसुख कहिये विषयनितैं उपज्या जीव के प्रदेशनिकूं आनंद का कारण तिरजंच, मनुष्यनितैं उपज्या ऐसा, बहुरि जो दिव्य महासुख कहिये स्वर्ग विषैं उपज्या ऐसा महासुख भवनवासी आदि अच्युत स्वर्ग परजंत जे देव तिनकैं उपज्या महासुख है । सो निर्मूल कीये हैं, मोहनीय आदि कर्मकलंक जानैं ऐसा वीतराग सुख, ताकैं

तिर्यङ्मनुष्यदेवजनितानि सुखानि, **णंतभागंपि**–अनन्तभागस्यापि वीतरागसुखस्यानन्तराशिना भागे कृते यल्लब्धं तस्यानन्तभागस्यापि, **णग्घंति**–नार्धन्ति नार्हन्ति सदृशानि न तानि तस्य मूल्यं वा नार्हन्ति । यत: सर्वाणि देवमनुष्यभोगभूमिजादिसर्वसुखानि वीतरागसुखस्यानन्तभागमपि नार्हन्ति, अतो निष्प्रतीचारेषु देवेषु महत्सुखं .. न् सप्रतीचारानपेक्ष्येति ।।१०३।।

स्पर्शरसौ कामाविति व्याख्यातौ तत्र स्पर्श: कामो देवानामवगतो रस: कामो नाद्यपीत्युक्ते तदर्थमाह—

जदि सागरोवमाओ[1] तदि वाससहस्सियादु आहारो ।
पक्खेहिं दु उस्सासो सागरसमयेहिं चेव भवे ।।१०४।।

जदि–यावत्यन्मात्रं, **सागरोवमाऊ**–सागरोपमायु: यावन्मात्रै: सागरोपमायु:, **तदि**–तावन्मात्रै:, **वाससहस्सियादु**–वर्षसहस्रैरतिक्रान्तैराहारो भोजनेच्छा आहाराभिलाष: यावन्मात्राणि सागरोपमाण्यायुस्तावन्मात्रैर्वर्षसहस्रै रतिक्रान्तैराहारो देवानां भवति । अथ गन्धस्य कथमित्युक्तेऽत आह, **पक्खेहिं दु**–पक्षैस्तु पंचदशाहोरात्रै:, **उस्सासो**–उच्छ्वासो नि:श्वासश्च गन्धद्रव्याघ्राणं, **सायरसमयेहिं**– [2]सागरसमयसमानै: सागरोपमप्रमाणै:, **चेव**–चैव, **भवे**–भवेत् । यावन्मात्राणि सागरोपमाणि जीवन्ति देवास्तावन्मात्रै: पक्षैर्गतैरुच्छ्वासनि:श्वासौ भवत: । सौधर्मेशानयोर्देवानामाहारसंज्ञा भवति द्वयोर्वर्षसहस्रयो: साधिकयोर्गतयोस्तथा मासे साधिके गते उच्छ्वासो भवेत, सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवानां सप्तभिर्वर्षसहस्रै: साधिकैर्गतैराहारेच्छा जायते तावद्भि: पक्षैश्चोच्छ्वास: साधिकै: । चशब्दाद्देवीनामन्तर्मुहूर्तपृथक्त्वेनैवमुत्तरत्रापि सर्वत्र योज्यमिति ।।१०४।।

यह तिरजंच, मनुष्य, देवजनित सुख है । ते अनंतभागस्य अपि कहिये वीतराग सुख कै अनंतानंत राशिकरि भाग दीयैं जो प्राप्त होय, तिस अनंत भाग कै सदृश ते नांहीं होय हैं । अथवा ताकैं ते मूल्यकूं जोग्य नाहीं ।

भावार्थ–जातैं सर्वदेव, मनुष्य, भोगभूमिया आदि सर्वसुख वीतराग सुखकै अनंतवै भाग हू नांही हैं । जातैं सप्रतीचारनिकी अपेक्ष्याकरि नि:प्रतीचार (प्रविचार-कामसेवन रहित) देवनि विषैं महासुख है ।।१०३।।

स्पर्श, रस यह काम है—ऐसा व्याख्यान कीया । तहां स्पर्शनाम काम का देवनिका जान्या (बोध हो गया है) रसनाम काम अब तांई नांही जान्या—ऐसैं पूछैं तिनकैं अर्थि कहैं हैं—

अर्थ–यावन्मात्र सागरोपम आयु है, तावन्मात्र वर्ष सहस्र व्यतीत भये देवनि कैं आहार है । अथानंतर गंध का प्रमाण कैसे ? ऐसे पूछैं कहैं है—सागरोपम प्रमाण पखवाडेनिकरि उच्छ्वास, बहुरि नि:श्वास हैं, सुगंध द्रव्य का ग्रहण है ।

भावार्थ–जेते सागर आयु देव जीवै हैं तेते पखवाडे व्यतीत भये उच्छ्वास-नि:श्वास हैं । सौधर्म, ईशान स्वर्ग विषैं देवनिकैं आहार साधिक (कुछ अधिक) दोय सहस्र वर्ष व्यतीत भये हैं, तैसे साधिकमास व्यतीत भये उच्छ्वास होय हैं । सनत्कुमार, माहेंद्र विषैं देवनि कै साधिक सात हजारवर्ष व्यतीत भये आहार की इच्छा उपजै है । बहुरि साधिक ते ते पखवाडेनिकरि उच्छ्वास होय है । 'च' शब्दतैं देवीनि कैं पृथक्त्व मुहूर्तकरि हैं—ऐसें आगैं-आगैं हू सर्वत्र जोड़नी ।।१०४।।

---

१. अ० ब० माऊ । २. क० सागरोपसमानै: ।

अथ येषां पल्योपमायुस्तेषा[1]मित्याशंकायामाह—

उक्कस्सेणाहारो वाससहस्साहिएण भवणाणं ।
जोदिसियाणं पुण भिण्णमुहुत्तेणेदि सेस उक्कस्सं ।।१०५।।

उक्कस्सेण–उत्कृष्टेनाहारो भोजनाभिप्रायः, **वाससहस्स**–वर्षसहस्रेण, **अहिएण**–अधिकेन पंचदशवर्षशतैरित्यर्थः, **भवणाणं**–भवनानां भवनवास्यसुराणां, **जोदिसियाणं**–ज्योतिष्काणां चन्द्रादित्यादीनां, **पुण**–[2]पुनः, **भिण्णमुहुत्तेण**–भिण्णमूहूर्तेन, **इदि**–इति एवं, **सेस**–शेषाणां नवानां भवनवासिकुमाराणां सर्वदेवीनां च, किन्तु केषांचिन्मुहूर्तपृथक्त्वेन, **उक्कस्सं**–उत्कृष्टम् । असुराणां वर्षसहस्रेण साधिकेनाहारग्रहणं भवति, ज्योतिषां शेषकुमाराणां व्यंतराणां सर्वदेवीनां चान्तर्मुहूर्तेन, केषांचिदन्तर्मुहूर्तपृथक्त्वेनेति[3] ।।१०५।।

अथोच्छ्वासः कथं तेषामित्याशंकायामाह—

उक्कस्सेणुस्सासो पक्खेणहिएण होइ भवणाणं ।
मुहुत्तपुधत्तेण तहा जोइसणागाण भोमाणं ।।१०६।।

उक्कस्सेण–उत्कृष्टेन, **उस्सासो**–उच्छ्वासः, **पक्खेण**–पक्षेण, पंचदशाहोरात्रेण, **अहिएण**–अधिकेन, **होइ**–भवति, **भवणाणं**–भवनानामसुराणां, **मुहुत्तपुधत्तेण**–मुहूर्तपृथक्त्वेन, यद्यप्यत्र मुहूर्तपृथक्त्वमुक्तं तथाप्यत्रान्तर्मुहूर्तपृथक्त्वं ग्राह्यां तथोपदेशात् त्रैराशिकन्यायाद्भिन्नमुहूर्तानुवर्त्तनाच्च, **तहा**—तथा तेनैव प्रकारेण, **जोइसणागाण भोमाणं**—ज्योतिष्कनागभौमानां । तथाशब्देन शेषकुमाराणां चासुराणां पक्षेण साधिकेनोच्छ्वासो नागानां कल्पवासिदेवीनां

अथानंतर जिनकैं पल्योपम आयु है, तिनकै कैसे हैं ? ऐसी आशंका होतैं कहै हैं—

अर्थ–भावनानां कहिये भवनवासी असुरनिकैं उत्कृष्टकरि भोजन का अभिप्राय वर्षसहस्रेंण अधिकेन कहिये पंदरहसै (१५००) वर्षनिकरि है । बहुरि ज्योतिष्कानां कहिये चन्द्रमा, सूर्य आदि ज्योतिषीनि कैं सागरोपम के अंशनि के अभिप्रायकरि भिन्न मुहूर्तकरि है । या प्रकार शेषाणां कहिये नव प्रकार भवनवासी कुमारनिकै व्यंतरनिकैं बहुरि सर्व देवीनिकैं जाननां । इहां विशेष है—केतेनकैं उत्कृष्ट आहार मुहूर्तकरि पृथक्त्वकरि है । असुरनिकै साधिक वर्ष सहस्रकरि आहार ग्रहण है । ज्योतिषीनिकैं, शेष कुमारनिकैं, व्यतंरनिकैं, बहुरि सर्वदेवीनिकैं अंतर्मुहूर्तकरि है केतेनिकैं अंतमुहूर्तकरि है, केतेनिकै अंतमुहूर्त पृथक्त्वकरि है ।।१०५।।

अथानंतर तिन देवनि कै उच्छ्वास कैसे ? ऐसे पूछै कहै है—

अर्थ–भवनवासी असुरनिकै उत्कृष्टकरि उच्छ्वास साधिक पखवाडेकरि है । तिसही प्रकारकरि ज्योतिषी, नागकुमार, भवनवासीनिकैं, व्यतंरनिकै मुहूर्त-पृथक्त्वेन कहिये मुहूर्त पृथक्त्वकरि उच्छ्वास है । यद्यपि इहां 'मुहूर्त पृथक्त्व' कह्या है, तोउ 'अंतर्मुहूर्त पृथक्त्व' ग्रहण करणां । काहै तै ? तथा ऐसे उपदेशतैं, त्रैराशिक, न्यायतैं, बहुरि भिन्नमुहूर्त के अनुवर्तनतै । तथा शब्दकरि शेष कुमार असुरनिकैं, साधिक पक्षकरि उच्छ्वास है । बहुरि नागकुमारनिकैं, कल्पवासीनिकी देवीनि कै अंतमुहूर्त पृथक्त्वकरि उच्छ्वास है, ज्योतिषी, व्यतंरनिकैं, शेषकुमारनिकैं तिसकी देवीनिकै भिन्न मुहूर्तकरि है, इंद्रिय विषय द्वारकरि उच्छ्वास है । ज्योतिषी, व्यतंरनि कै, शेष कुमारनिकै, तिस की

१. क० तेषां कथमित्या- । २. क० सागरोपमं साभिप्रायेण । ३. क० दिनपृथक्त्वेनेति ।

च, अन्तर्मुहूर्त्तपृथक्त्वेन ज्योतिष्कभौमानां शेषकुमाराणां तद्देवीनां भिन्नमुहूर्त्तेनीति ।।१०६।।

इन्द्रियविषयद्वारेणैव देवनारकाणामवधिविषयं प्रदिपादयन्नाह—

सक्कीसाणा पढमं विदियं तु सणक्कुरमाहिंदा ।
बंभालंतव तदियं सुक्कसहस्सारया चउत्थी दु ।।१०७।।
पंचमि आणदपाणद छट्ठी आरणच्चुदा य पस्संति ।
णवगेवज्जा सत्तमि अणुदिस अणुत्तरा य लोगंतं ।।१०८।।

पश्यन्तीति क्रियापदमुत्तरगाथायां तिष्ठति तेन सह संबन्धो द्रष्टव्यः । **सक्कीसाणा–**शक्रैशानाः सौधर्मैशानयोर्वा ये देवाः, **पढमं–**प्रथमं प्रथमपृथिवीपर्यन्तं यावत् **विदियं तु–**द्वितीयं तु द्वितीयपृथिवीपर्यन्तं, **सणक्कुमारमाहिंदा–**सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्ये देवाः, **बंभालंतव–**ब्रह्मलान्तवा ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु ये ये देवास्ते, **तदियं–**तृतीयां तृतीयपृथिवीपर्यन्तं, **सुक्कसहस्सारया–**शुक्रसहस्रारकाः शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु कल्पेषु ये देवास्ते **चउत्थी दु–**चतुर्थपृथिवीपर्यन्तमेव । सौधर्मैशानयोर्देवाः [1]स्वावासमादिं कृत्वा प्रथमपृथिवीपर्यन्तं यावदवधिज्ञानेन पश्यन्ति, तथा सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवाः स्वावासमारभ्य यावद्द्वितीयावसानं तावत्पश्यन्ति, ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु देवाः स्वविमानमादिं कृत्वा तावत्पश्यन्ति यावत्तृतीयपृथिवीपर्यन्तं, शुक्रमहाशुक्रतारसहस्रारेषु सुराः [2]स्वदेशमारभ्य तावत्पश्यन्ति यावच्चतुर्थीसमाप्तिरिति ।।१०७।।

देवीनिकै भिन्न मुहूर्तकरि है ।।१०६।।

इंद्रिय विषयद्वारकरि ही आगै देव, नारकनि कै अवधि (ज्ञान) का विषय है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–पश्यंति अैसा क्रियापद उत्तरगाथा विषैं तिष्ठैं है, ताकरि सहित संबंध इहां करणां । शक्रैशानाः कहिये सौधर्म ईशान, विषैं जे देव हैं, ते प्रथमं कहिये प्रथम नरक परजंत अवधिज्ञान से देखै हैं । सनत्कुमारमाहैन्द्रः कहिये सनत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग्ग विषैं जे देवहैं ते द्वितीयं कहिये-दूसरे नरक पर्यंत देखै हैं । ब्रह्मलांतवः कहिये ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट विषैं जे देव हैं ते तृतीयक कहिये तीसरे नरक पर्यंत देखै हैं । शुक्रसहस्रकाः कहिये-शुक्र, महाशुक्र, शतार सहस्रार विषैं जे देव है ते चतुर्थी कहिये चतुर्थ नरकपर्यंत देखे हैं ।

भावार्थ–सौधर्म, ईशान विषैं देव है ते स्वस्थानकूं आदिकरि प्रथम नरकपर्यंत अवधिज्ञानकरि देखै हैं । तैसे सनत्कुमार माहैंद्र विषैं देव हैं ते स्वस्थाकूं लेयकरि दूसरेनरक पर्यंत देखैं हैं । ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लांतव हैं ते स्वकीय प्रदेशकूं आरंभकरि चतुर्थ नरकपर्यंत देखैं हैं ।।१०७।।

तथा—

अर्थ–आनत-प्राणत कहिये आनत-प्राणत स्वर्ग विषैं देव हैं, ते पंचमी कहिये-पांच में नरक पर्यंत देखै हैं । बहुरि आरणाच्युता कहिये आरण-अच्युत स्वर्ग विषैं जे देव हैं ते छठे नरक पर्यंत अवधिज्ञानकरिभलैं प्रकार देखैं हैं । नवग्रैवेयका कहिये नवग्रैवेयक विमानिनि विषै देव हैं ते सप्तम नरक पर्यंत देखैं हैं । बहुरि अनुदिशा-अनुत्तरा कहिये नव अनुदिश, पंच अनुत्तर विषैं देव हैं ते लोकांत कहिये अधोवात लोक के अन्त पर्यंत देखै हैं ।

---

१. क० स्वस्थानमादि । २. क० स्वप्रदेशमारभ्य

८३

पंचमि–पंचमीं पृथिवीं, **आणदपाणद**–आनतप्राणतान्ता: आनतप्राणतकल्पयोर्देवा: **छट्ठी**–षष्ठीं पृथिवीम्, **आरणाच्चुदा य**–आरणाच्युताश्चारणाच्युतो: कल्पयोर्ये देवास्ते **पस्संति**–पश्यन्ति अवधिज्ञानेन सम्यगवलोकयन्ति, **णवगवेज्जा**–नव ग्रैवेयका नवग्रैवेयकविमानेषु देवा: **सत्तमि**–सप्तमीं पृथिवीं, **अणुदिस**–अनुदिशेषु नवानुत्तरेषु देवा: **अनुत्तरा य**–अनुत्तराश्च पंचानुत्तरेषु देवा **लोगंतं**–लोकान्तं अधोवातपर्यन्तम् । आनतप्राणतकल्पयोर्देवा: स्वविष्टरमारभ्य यावत्पंचमपृथिवीपर्यन्तं तावत्पश्यन्ति, आरणाच्युतकल्पयो: पुनर्देवा: स्वावस्थानमारभ्य यावत्षष्ठपृथिवीपर्यन्तं तावत्पश्यन्ति नवग्रैवेयकेषु देवा: स्वविमानमारभ्य यावत्सप्तमी तावत्पश्यन्ति । नवानुदिशेषु पंचानुत्तरेषु च देवा: स्वदेवगृहमारभ्य यावल्लोकान्तं पश्यन्ति, ऊर्ध्वं पुन: सर्वे स्वविमानध्वजाग्रं यावत्पश्यन्त्यसंख्यातयोजनानि तिर्यक् पुनरसंख्यातानि योजनानि पश्यन्तीत्यर्थ: ।।१०८।।

व्यन्तरादीनामवधिविषयमाह—

पणवीस जोयणाणं ओही विंतरकुमारवग्गाणं ।
संखेज्जजोयणोही जोदिसियाणं जहण्णं तु ।।१०९।।*

पणवीस–पंचविंशति:, **जोयणाणं**–योजनानां, **ओही**–अवधिज्ञानं भवप्रत्ययजं, **विंतर**–व्यन्तराणां किंनराद्यष्टप्रकाराणां, **कुमारवग्गाणं**–कुमारवर्गाणां नागकुमारादिनवानां **संखेज्जजोयण**–संख्यातयोजनानि सप्ताष्टादीनि **ओही**–अवधि:, **जोदिसियाणं**–ज्योतिषां चतु:प्रकाराणां, **जहण्णं हु**–जघन्यं एव । व्यंतराणां नागादिनवकुमाराणां च पंचविंशतियोजनान्यवधिर्जघन्यो भवति, ज्योतिष्काणां पुनर्जघन्यतोऽवधि: संख्यातयोजनानि, [१]एतावन्मात्रं वस्तु परिच्छिनत्तीति ।।१०९।।

भावार्थ–आनत-प्राणत स्वर्ग विषैं देव हैं ते अपने सिंहासन लेयकरि पंचम नरक पर्यंत देखैं हैं । बहुरि आरण-अच्युत स्वर्ग विषैं देव हैं ते अपने स्थानकूं लेयकरि छठे नरक पर्यंत देखैं हैं । नवग्रैवेयकनि विषैं देव हैं ते अपनै विमान लेय सातवें नरक पर्यंत देखै हैं । नव अनुदिश विषैं बहुरि पंच अनुत्तर विषैं देव है ते अपने स्थान कूं आरंभकरि लोक पर्यंत देखे हैं । बहुरि सर्व देव ऊँचेतैं स्वकीय विमान की ध्वजा का अग्रभाग पर्यंत देखै हैं । बहुरि तिर्यक् असंख्यात योजन पर्यंत देखैं हैं—ऐसे संबंध जाननां ।।१०८।।

आगैं व्यतंरादिकनिकैं अवधिज्ञान का विषय है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–व्यंतराणां कहिये किन्नर आदि अष्टप्रकार व्यंतरनिकैं, कुमारवर्गाणां कहियैं नागकुमार आदि नवप्रकार असुरनिकैं अवधि कहिये भवप्रत्ययतैं उपज्या अवधिज्ञान जघन्य पचीस जोजन है । ज्योतिष्कानां कहिये च्यारिप्रकार ज्योतिषीनिकै जघन्य अवधि संख्यात योजनानि कहिये-सात-आठ आदि जोजन है । व्यंतरनिकैं, नाग आदि नवकुमारनि कैं पचीस जोजन जघन्य अवधि है । बहुरि ज्योतिषीनि कैं संख्यात योजन जघन्य अवधि है । एतावन्मात्र विषैं स्थित जो वस्तु ताहि जानै हैं ।।१०९।।

---

* यह गाथा फलटन से प्रकाशित मूलाचार में दो गाथाओं के पहले है ।

१. क० एतावन्मात्रे व्यवस्थितं वस्तु-

असुरचन्द्रादित्यादीनां जघन्यं सर्वेषामुत्कृष्टं चावधिं प्रतिपादयन्नाह—

असुराणमसंखेज्जा कोडी जोइसिय सेसाणं ।
संखादीदा य खलु उक्कस्सोहीयविसओ दु ।।११०।।

असुराणं–असुराणां प्रथमभवनवासिनां, **असंखेज्जा**–असंख्याता:, **कोडी**–कोट्यो योजनानामिति संबन्ध:, जघन्योवधिरसुराणां चन्द्रादीनां चासंख्यांता योजनकोटय:, इत उत्कृष्टं ज्योतिष्कादीनामाह, **जोइसिय**–ज्योतिष्काणां चन्द्रादीनां, **सेसाणं**–शेषाणां भवनवासिवानव्यन्तराणां निकृष्टकल्पवासिनां च, **संखादीदा य**–संख्यातीताश्च संख्यामतिक्रान्ता: असंख्याता योजनकोटिकोटय: खलु स्फुटं, **उक्कस्सोही**–उत्कृष्टावधि: **विसओ**–विषय: । भवनवासिवानव्यंतर-ज्योतिष्काणामुत्कृष्टावधिविषयोऽसंख्याता योजनानां कोटिकोटय: निकृष्टकल्पवासिनां च मिथ्यादृष्टीनां पुनर्विभंगज्ञानं संख्यातयोजनविषयमसंख्यातयोजनविषयं चेति ।।११०।।

नारकाणामवधिविषयं निरूपयन्नाह—

रयणप्पहाय जोयणमेयं ओहीविसओ मुणेयव्वो ।
पुढवीदो पुढवीदो गाऊ अद्धद्ध परिहाणी ।।१११।।

रयणप्पहाय–रत्नप्रभायां प्रथमपृथिव्यां, **जोयणमेयं**–योजनमेकं चत्वारि गव्यूतानि, **ओहीविसयो**–अवधिविषय अवधिज्ञानस्य गोचरो, **मुणेयव्वो**–ज्ञातव्य: । प्रथमपृथिव्यां नारकाणामवधिविषयो योजनप्रमाणं स्वस्थानमादिं कृत्वा योवद्योजनमात्रं पश्यन्ति, मिथ्यादृष्टीनां विभंगज्ञानं स्तोकमात्रं ततोऽध:, **पुढवीदो पुढवीदो**–पृथिवीत: पृथिवीत: पृथिवीं प्रति पृथिवीं प्रति, **गाऊ**–गव्यूतस्य, **अद्धद्ध**–अर्द्धस्यार्द्धस्य **परिहाणी**–परिहानि: गव्यूतार्द्धस्य

आगैं असुरनिकै चंद्र, सूर्य आदिक ज्योतिषीनि कैं जघन्य अवधि है, ताहि बहुरि समस्तनि कैं उत्कृष्ट अवधि है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहैं है—

अर्थ–असुराणां कहिये प्रथमप्रकार भवनवासीनिकैं असंख्या कोडि जोजन जघन्य अवधि है । इहां जोजन का संबंध जानना ।

भावार्थ–चन्द्र आदि असुरनिकैं असंख्यात कोडि जोजन जघन्य अवधि है । आगैं ज्योतिषी आदि देवनिकैं उत्कृष्ट अवधि कहैं हैं। ज्योतिष्काणां कहिये चन्द्रमा आदिकनिकैं, शेषाणां कहिये भवनवासी, वान व्यतंरनिकैं, बहुरि निकृष्ट कल्पवासीनि कैं संख्यातीता कहिये असंख्यात कोडा-कोडी योजन प्रगटपनैं उत्कृष्ट अवधि का विषय है ।

भावार्थ–भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषीनिकैं उत्कृष्ट अवधि का विषय असंख्यात कोडा-कोडी जोजन का है । बहुरि निकृष्ट कल्पवासी मिथ्यादृष्टिनिकैं विभंगज्ञान संख्यात योजन का है विषय जाके, बहुरि असंख्यात योजन का है विषय जाकै ऐसा है ।।११०।।

आगै नारकहिनकैं अवधि का विषय है, ताहि निरूपण करते कहै हैं—

अर्थ–रत्नप्रभा जो प्रथम पृथिवी ता विषैं अवधि का विषय एक योजन कहिये च्यारि कोश जाननां । भावार्थ—प्रथम पृथिवी विषैं नारक अपने स्थानकूं आदिकरि योजन-प्रमाण देखैं हैं । मिथ्यादृष्टीनिकैं विभंगज्ञान स्तोक मात्र है । तातैं नीचे पृथिवीत: पृथिवीत: कहिये पृथिवी-पृथिवी प्रति आध-आध कोस की हानि जाननी । द्वितीय पृथिवी विषैं तीन कोश, बहुरि आधकोष ऐसें साढ़े तीन कोश है । इहां सर्वत्र नारकनिकैं अवधि का विषय संबंध करणां । तीसरी पृथिवी विषैं नारकनिकैं तीन कोश अवधि का विषय है । चौथी पृथिवी विषैं अढाई

परिक्षयः । द्वितीयायां पृथिव्यां त्रीणि गव्यूतानि गव्यूतार्द्धं च, सर्वत्र नारकाणामवधेर्विषयः संबन्धनीयः, तृतीयायां पृथिव्यां त्रीणि गव्यूतानि, चतुर्थ्यां द्वे गव्यूते सार्द्धे, पंचम्यां द्वे गव्यूते षष्ठ्यां गव्यूतमेकं सार्द्धं, सप्तम्यामेकं गव्यूतं सम्यग्दृष्टीनामेतन् मिथ्यादृष्टीनां पुनर्विभंगज्ञानमस्मान्न्यूनमिति ।।१११।।

नारकाणां तावदुपपादं प्रतिपादयन्नाह—

पढमं पुढविमसण्णी पढमं विदियं च सरिसवा जंति ।
पक्खी जावदु तदियं जाव चउत्थी दु उरसप्पा ।।११२।।
आ पंचमित्ति सीहा इत्थीओ जंति छट्ठिपुढवित्ति ।
गच्छंति माधवीत्ति य मच्छा मणुया य ये पावा ।।११३।।*

यान्तीति क्रियापदं तेन सह संबन्धः, प्रथमां पृथिवीमसंज्ञिनोऽमनस्का यान्ति, प्रथमां द्वितीयां च पृथिवीं सरीसृपा गोधोकृकलासादयो यान्ति, पक्षिणो भेरुण्डादयः प्रथमामारभ्य यावत्तृतीयां पृथिवीं यान्ति, प्रथमामारभ्य यावच्चतुर्थी पृथिवीमुरःसर्पा अजगरादयो यान्ति । अत्र पापं कृत्वा तत्र च गत्वा दुःखमनुभवन्तीति ।।११२।।

आङभिविधौ द्रष्टव्यः आ पंचम्या इति । प्रथमामारभ्य यावत्पंचमीं पृथिवीं सिंहव्याघ्रादयो गच्छन्ति, स्त्रियः पुनर्महापापपरिणताः प्रथमामारभ्य षष्ठी[1] पृथिव्यन्तं यान्ति, मत्स्याः मनुष्याश्च ये पापा महाहिंसादिपरिणताः माघवीं सप्तमीं पृथिवीं प्रथमामारभ्य गच्छन्ति । अयं पापशब्दः सर्वेषामभिसंबध्यते।

कोश अवधि का विषय है । पंचमी पृथिवी विषैं पूरे देय कोश अवधि का विषय हैं । छठी पृथिवी विषैं ड्योढ कोश अवधि का विषय हैं । सातमी पृथिवी विषैं एक कोश अवधि का विषय है । यह विषय सम्यग्दृष्टिनिकै हैं । बहुरि मिथ्या दृष्टीनिकैं विभंगज्ञान यातैं न्यून है ।।१११।।

आगैं नारकनिकैं प्रथम ही उत्पाद है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–इहां यान्ति ऐसा क्रियापद है, ताकरि सहित संबंध करणां । मनकरि रहित ऐसे असंज्ञी प्रथम पृथिवी पर्यंत जाय हैं । बहुरि सरीसृप जे गोधा, कृकलास (गोह, करकेंटा) आदितैं, प्रथम वा द्वितीय पृथिवी पर्यंत जाय हैं । बहुरि भेरुंड आदि पक्षी हैं ते प्रथम पृथिवी लेय तीसरी पृथिवी पर्यंत जाय हैं । उरःसर्पाः कहिये अजगर आदि हैं ते प्रथम पृथिवी लेय चौथी पृथिवी पर्यंत जाय हैं ।

भावार्थ–इहां पापकरि तहां जाय दुःख कूं भोगवै हैं ।।११२।।

तथा—

अर्थ–आङ् यह उपसर्ग अभिविधि अर्थ विषैं जाननां । सिंहा कहिये सिंह, व्याघ्रादिक कहैं ते प्रथम पृथिवी लगाय पंचम पृथिवी परजंत जाय हैं । बहुरि महापाप की करणहारी स्त्री हैं तै प्रथम पृथिवी लेय छठी पृथिवी परजंत जाय है । बहुरि पापा कहिये महाहिंसा आदि पाप विषैं परिणमते ऐसै जे मत्स बहुरि मनुष्य ते प्रथम पृथिवी लेय माघवी जो सातवी पृथिवी तिस परजंत जाय हैं । यह पाप शब्द सर्वनिकैं संबंध करणा ।

---

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में यहाँ पर इन्द्रियों के विषयों की छह गाथाएँ हैं जो कि इसी अधिकार में पहले गाथा ५१ से ५६ तक आ चुकी हैं।

१. क० षष्ठीपृथिवीं यावद् ।

यदि रौद्रध्यानेन हिंसादिक्रियायां परिणताः स्युस्तदा ते पापानुरूपं नरकं गत्वा दुःखमनुभवन्तीति ।।११३।।

नारकाणामुपपादं प्रतिपाद्य तेषामुद्वर्त्तनं प्रतिपादयन्नाह—

उव्वट्टिदाय संता णेरइया तमतमादु पुढवीदो ।
ण लहंति माणुसत्तं तिरिक्खजोणीमुवणयंति ।।११४।।

तमस्तमः पृथिव्या नारका उद्वर्त्तिताः संतः सप्तमनरकादागताः सतो मानुषत्वं मनुष्यभवं न लभन्ते न प्राप्नुवन्ति सुष्ठु संक्लेशकारणं यतस्ततस्तिर्यग्योनिमुपनयन्ति सिंहव्याघ्रादिकं पुनः पापकारणं प्राप्नुवन्ति ।।११४।।

अथकेषु तिर्यक्षूत्पद्यन्ते उत्पन्नाश्च क्व गच्छन्तीत्याशंकायामाह—

वालेसु[१] य दाढीसु य पक्खीसु य जलचरेसु उववण्णा ।
संखेज्जआउठिदिया पुणोवि णिरयावहा होंति ।।११५।।

वालेसु–व्यालेषु श्वापदभुजगेषु चशब्दादन्येष्वपि तत्समानेषु, **दाढीसु य–**दंष्ट्रिषु च सिंहव्याघ्रवराहादिषु, **पक्खीसु य–**पक्षिषु च गृध्रभेरुण्डादिषु च, **जलचरेसु–**जलचरेषु तिमितिमिंगलादिमत्स्यमकरादिषु **उववण्णा–**उत्पन्नाः, **संखेज्जआउठिदिया–**संख्यातायुःस्थितिर्येषां ते संख्यातायुःस्थितिकाः कर्मभूमिकर्मभूमिप्रतिभागजाः सन्तः, **पुणोवि–**पुनरपि पापवशात् **णिरयारहा–**नरकावहानारका, **होंति–**भवन्ति, नारककर्मसमार्जका भवन्ति । सप्तमपृथिव्या आगत्य व्यालदंष्ट्रिपक्षिजलचरसूत्पद्य पुनरपि नरकं गच्छन्तीति ।।११५।।

भावार्थ–जदि रौद्रध्यानकरि हिंसादि क्रिया विषैं परिणमैं हैं तदि ते पाप सदृश नरक जाय दुःख भोगवै हैं ।।११३।।

आगै नारकनिका उपपाद कहि तिनकाआगमन प्रतिपादन करते कहै हैं ।

अर्थ–तमस्तम पृथिवी जो सप्तम नरक तातैं नारकनीकसते संतै मनुष्यभव है, ताहि नांही पावै हैं । जातैं तहां अत्यंत क्लेश के कारण हैं, तातैं बहुरि पाप का कारण सिंह, व्याघ्रादिक तिर्यक योनि हैं ताहि प्राप्त होय हैं ।।११४।।

आगैं कौनसे तिरजंचनि विषैं उपजै हैं बहुरि उपजे कहां जाय है ऐसी आशंका होतैं कहै हैं—

अर्थ–व्यालेषु कहिये श्वापद भुजंगनि विषैं 'च' शब्दनैं तिस सदृश अन्य हू विषैं, बहुरि दंष्ट्रिसु कहिये सिंह, व्याघ्र, सूकर आदिनि विषैं, बहुरि पक्षीषु कहिये गीध, भैरुंड आदि पक्षीनि विषैं, जलचरेषु कहिये तिमितिमिंगल आदि मत्स्य, मकरादिकनि विषैं संख्यात वर्ष की है आयु जिनकी, ऐसे कर्मभूमि (और) कर्मभूमिके प्रतिभागनि विषैं उत्पन्न भये संते, बहुरि हू पापके वशतैं नरकावहा कहिये नारक ऐसे भवंति होय हैं । नरककर्म के उपार्जन करणहारे होय हैं ।

भावार्थ–सप्तम पृथिवीतैं निकलि व्याल, दंष्टि पक्षी, जलचरनि विषैं, उपजि बहुरि हू नरक जाय हैं ।।११५।।

१.. अ० ब० वालीसु ।

अथ षष्ठ्या आगताः क्वोत्पद्यन्ते किं लभन्ते किं च न लभन्ते इत्याशंकायामाह—

छट्ठीदो पुढवीदो उव्वट्टिदा[1] अणंतरभवम्हि ।
भज्जा माणुसलंभे संजमलंभेण दु विहीणा ।।११६।।

षष्ठ्याः पृथिव्या षष्ठनरकादुद्वर्त्तिता आगताः संतोऽनन्तरभवे तस्मिन् भवे भाज्या विकल्पयुक्ताः मनुष्यलाभेन सम्यक्त्वलाभेन च, संयमलाभेन तु विहीनाः । षष्ठनरकादागतानां तस्मिन् भवे कदाचिन्मनुष्यलाभः सम्यक्त्वलाभश्च भवति नापि भवति, संयमलाभस्तु निश्चयेन न भवतीति ।।११६।।

पंचमपृथिव्या आगता यल्लभन्ते यच्च न लभन्ते तदाह—

होज्जदु संजमलाभो[2] पंचमखिदिणिग्गदस्स जीवस्स ।
णत्थि पुण अंतकिरिया णियमा भवसंकिलेसेण ।।११७।।

पंचमपृथिव्या निर्गतस्य जीवस्य भवत्येव संयमलाभः, अन्तक्रिया मोक्षगमनं पुनर्नियमान्नास्ति भवसंक्लेशदोषेणेति ।यद्यपि पंचमनरकादागतस्य संयमलाभो भवति तथापि मोक्षगमनं नास्ति भवसंक्लेशदोषेणेति ।।११७।।

चतुर्थ्या आगतस्य यद्भवति तदाह—

होज्जदु णिव्वुदिगमणं चउत्थिखिदिणिग्गदस्स जीवस्स ।
णियमा तित्थयरत्तं णत्थिति जिणेहिं पण्णत्तं ।।११८।।

चतुर्थीक्षितेरागतस्य जीवस्स भवत्येव निर्वृतिगमनं, तीर्थंकरत्वं पुनर्निश्चयेन नास्ति जिनैः प्रज्ञप्तमेतत् । चतुर्थनरकादागतस्य यद्यपि निर्वृतिगमनं

आगै छट्ठे नरकतैं आये कहां उपजै हैं ? कहा पावै है ? बहुरि कहां नांही पावै है ? ऐसी आशंका होतै कहैं हैं—

अर्थ–छठे नरकतैं आये संते अनंतर जो सो ही भव तिस विषैं मनुष्यजन्म के लाभकरि बहुरि सम्यक्त्व के लाभकरि भेद करणे जोग्य है । मनुष्यजन्म अर सम्यक्त्व का लाय होय अथवा नांही पावैं । बहुरि संयम लाभकरि हीन होय है । **भावार्थ–**छठे नरकतैं आये नारकनिकैं तिस भव विषैं कदाचित मनुष्य जन्म अर सम्यत्त्व का लाभ होय वा न होय, संयम का लाभ निश्चयकरि नांही ।।११६।।

पांचवी पृथिवीतैं, आये जो पावै, बहुरि जो नांही पावे सो कहै हैं—

अर्थ–पंचमपृथिवीतैं निकसे कोऊ जीवकैं संयम का लाभ निश्चयकरि होय है । बहुरि अंतक्रिया जो मोक्षगमन सो नियम तै जन्म के संक्लेश का दोषकरि नांही होय है । भावार्थ—जो पाणि पंचम नरकतैं आये कोऊ नारककै संयमलाभ होय है, तोऊ भव संक्लेशके दोषकरि मोक्षगमन नांही ।।११७।।

चौथी पृथिवीतैं आये कैं जो होय है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–चौथी पृथिवीतैं आये जीवकैं मोक्षगमन निश्चयकरि होय है । बहुरि तीर्थंकरपनां निश्चयकरि नांही होय हैं । ऐसे जिन भगवान कह्या है । **भावार्थ–**चतुर्थ नरकतैं का आये कै जो पणि मोक्षगमन है, तो हू तीर्थंकरपनां नांही होय है—ऐसे भगवानकरि कथित है, यातैं

---

१. क० उध्वटित्ता । २.क० लम्भो ।

भवति जीवस्य तथापि तीर्थकरत्वं नास्ति, नात्र सन्देहो जिनैः प्रतिपादितत्वादिति ।।११८।।

तत उर्ध्वमाह—

तेण परं पुढवीसु य भजणिज्जा उवरिमा हु णेरइया ।
णियमा अणंतरभवे तित्थयरत्तस्स उप्पत्ती ।।११९।।

तेन परं तस्याश्च पृथिव्या ऊर्ध्वं **पुढवीसु य**–पृथिवीषु च प्रथमद्वितीयतृतीयप्रभासु **भजणिज्जा**–भाज्या विभाज्या, **उवरिमा**–उपरितमा, **णेरइया**–नारकाः, नियमादनन्तरभवेन तीर्थकरत्वस्योत्पत्तिः । तृतीयद्वितीयप्रथमेभ्यो नरकेभ्य आगतानां नारकाणां तेनैव भवेन संयमलाभो मोक्षगतिस्तीर्थकरत्वं च सम्भवति नात्र प्रतिषेध इति ।।११९।।

सप्तभ्यः पृथिवीभ्य आगतास्तेनैव भवेन यत्र लभन्ते तदाह—

णिरयेहिं णिग्गदाणं अणंतरभवम्हि णत्थि णियमादो ।
बलदेववासुदेवत्तणं च तह चक्कवट्टित्तं ।।१२०।।

नरकेभ्यो निर्गतानामनन्तरभवे नास्ति नियमाद् बलदेवत्वं वासुदेवत्वं तथा सकलचक्रवर्तित्वं च । नारकादागतस्य जीवस्य तेनैव भवेन बलदेववासुदेवचक्रवर्तिभावा न सम्भवन्ति, संयमपूर्वका यतः इमे, नरके च संयमेन गमनं नास्तीति ।।१२०।।

नारकाणां गत्यागतिस्वरूपमुपसंहरन् शेषाणां च सूचयन्नाह—

उववादोवट्टणमा णेरइयाणं समासदो भणिओ ।
एत्तो सेसाणं पिय आगदिगदिमो पवक्खामी ।।१२१।।

संदेह नांही ।।११८।।

आगै तिस नरकनि के आगले नरक हैं, तिन विषैं कहा है ? सो कहै हैं—

अर्थ–तिस चतुर्थ पृथिवीतैं परै तृतीय, द्वितीय, प्रथम पृथिवी विषैं उपरले नारक नियमतैं भेद करणें जोग्य है । अनंतर भवकरि तीर्थंकरपनैं की उत्पत्ति है ।

भावार्थ–तृतीय, द्वितीय, प्रथम नरकतैं निकले नारकनि कैं तिसही भवकरि संयम लाभ, मोक्ष गमन, बहुरि तीर्थंकरपनां संभवै हैं—यामैं संदेह नांही ।।११९।।

सात अैसी पृथिवीतैं निकले नारक हैं तै तिसही भव करि जो नांही पावै है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–नरकनितैं निकस्ये अैसे जीवनि कैं तिस ही भव विषैं नियमतैं बलदेव पद, वासुदेव पद बहुरि तैसैं ही चक्रवर्ती पद नांही हैं । काहैं तैं ? जातैं यह पद है ते संयमपूर्वक है । बहुरि नरक विषैं संजमकरि सहित जीव का गमन नांही ।।१२०।।

आगै नारकनि कैं गति, आगति का स्वरूप है, ताहि संकोचते, बहुरि अवशेष जीवनिकैं सूचते कहै हैं—

अर्थ–नारकनिकै गति-अगति संक्षेपतैं प्रतिपादन करैं, यातैं आगै अवशेष जो तिरजंच, मनुष्य देव, तिनकै संभवति गति-आगति

उपपादोद्वर्त्तने गत्यागती नारकाणां समासतो भणिते प्रतिपादिते, इत ऊर्ध्वं शेषाणां तिर्यङ्मनुष्यदेवानां च ये संभवन्त्यौ गत्यागती ते प्रवक्ष्याम्यागमबलाद् भणिष्यामीति ।।१२१।।

सव्वमपज्जत्ताणं सुहुमकायाण सव्वतेऊणं ।
वाऊणमसण्णीणं आगमणं तिरियमणुसेहिं ।।१२२।।

सव्वं–सर्वेषां, **अपज्जत्ताणं**–अपर्याप्तानां, **सुहुमकायाणं**–सूक्ष्मकायानां, **सव्वतेऊणं**–सर्वतेजस्कायानां, **वाऊणं**–वायुकायानां, **असण्णीणं**–असंज्ञिनाम् अत्रापि सर्वशब्द: संबन्धनीय: सर्ववायुकायानां सर्वासंज्ञिनां चागमनमागति: **तिरियमणुसेहिं**–[1] तिर्यङ्मनुष्यै: । पृथिवीकायिकाप्कायिकतेजस्कायिक-वायुकायिकवनस्पतिकायिका द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियाणां ये लब्ध्यपर्याप्तास्तेषु मध्येषु तिर्यंचो मनुष्याश्चोत्पद्यन्ते तथापृथिवीकायिकादिवनस्पति-पर्यन्तेषु सर्वसूक्ष्मेषु पर्याप्तापर्याप्तेषु तथा तेज:कायिकवायुकायिकेषु बादरेषु पर्याप्तापर्याप्तेषु असंज्ञिषु च तिर्यङ्मनुष्या एवोत्पद्यन्ते न देवा नापि नारका न चैव भोगभूमिजा भोगभूमिप्रतिभागजाश्चेति ।।१२२।।

अत: पृथिवीकायिकादयो गत्वा क्वोत्पद्यन्त इत्याशंकायामाह—

तिण्हं खलु कायाणं तहेव विगलिंदियाण सव्वेसिं ।
अविरुद्धं संकमणं माणुसतिरिएसु य भवेसु ।।१२३।।

तिण्हं–त्रयाणां, खलु स्फुटं, **कायाणं**–कायानां पृथिवीकायाप्कायवनस्पतिकायानां **तहेव**–तथैव **विगलिंदियाणं**–सर्वेषां विकलेन्द्रियाणां पर्याप्तापर्याप्तानां अविरुद्धं अप्रतिषिद्धं संक्रमणंगमनं **माणुस**–मनुष्यभवे **तिरिय**–तिर्यग्भवे च । पृथिवीकायिकाप्कायिकवनस्पतिकायिका: सर्वे विकलेन्द्रियाश्चागत्य तिर्यक्षु मनुष्येषु चोत्पद्यन्ते नात्र विरोध इति ।।१२३।।

आगम के बलतैं हम कहैंगे ।।१२१।।

अर्थ–सर्व अपर्याप्तिनिका, सूक्ष्मकायनिका, सर्व तेज:कायनिका, वायुकायनिका, असंज्ञीनिका इहांहू सर्व संबंध करणां । तातैं सर्व वायुकायनिका, सर्व असंज्ञीनिका आगमन, तिर्यग्मनुष्येभ्य: कहिये पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतीकायिक, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचैंद्रियनि मैं जे लब्धि-अपर्याप्तक है तिनकैं मध्य विषैं तिरजंच बहुरि मनुष्य उपजै हैं तथा पृथिवीकाय आदि वनस्पतिकाय परजंच सर्व सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्तनि विषैं तथा तेज:कायिक, वायुकायिक, सूक्ष्म, वादर पर्याप्त-अपर्याप्त । बहुरि असंज्ञीनि विषैं तिरजंच मनुष्य ही उपजै हैं ? देव नांही उपजै हैं । बहुरि नारक नांही उपजै हैं, भोगभूमिया बहुरि भोगभूमि के प्रतिभागज नांही उपजै हैं ।।१२२।।

आगै पृथिवीकायिक आदि जीव जायकरि कहां उपजै है ? ऐसी आशंका हौंतै कहैं हैं—

अर्थ–त्रयाणां कहिये तीन जे पृथिवीकाय, अप्काय, वनस्पतीकाय तिनका तैसें ही सर्व विकलैंद्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त इनका गमन प्रगटपनैं मनुष्यभव, बहुरि तिरजंच भवनि विषैं अविरुद्धं कहिये प्रतिषेध रहित है ।

भावार्थ–पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतीकायिक, बहुरि सर्व विकलैंद्रिय आयकरि तिरजंच, मनुष्यनि विषैं उपजै हैं । इहां विरोध नांही ।।१२३।।

---

१. क० तिर्यङ्मनुष्येभ्य: ।

तेजोवायूनां संक्रमणमाह—

सव्वेवि तेउकाया सव्वे तह वाउकाइया जीवा ।
ण लहंति माणुसत्तं णियमादु अणंतरभवेहिं ।।१२४।।

सर्वेऽपि बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ता तेजस्कायिकास्तथैव सर्वे बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ताः वायुकायिका जीवा न लभन्ते न प्राप्नुवन्ति मनुष्यत्वं नियमात्तु अनन्तरभवे, न तेनैव भवेनेति ।।१२४।।

प्रत्येकवनस्पतिपृथिवीकायाप्कायबादरपर्याप्तानामागमनमाह—

पत्तेयदेह वणप्फइ वादरपज्जत्त पुढवि आऊय ।
माणुसत्तिरिक्खदेवेहिं चेव आइंति खलु एदे ।।१२५।।

प्रत्येकदेहाः नालिकेरादिवनस्पतयः बादराः पर्याप्ता पृथिवीकायिका अप्कायिकाश्चैतेऽपि बादराः पर्याप्ताश्च मनुष्यतिर्यग्देवेभ्य एवायान्ति स्फूटमेतन् नान्येभ्य इति । मनुष्यतिर्यग्देवाः संक्लिष्टा आर्तध्यानपरा मिथ्यादृष्टय आगत्य प्रत्येकवनस्पतिपृथिवीकायिकाप्कायिकेषूत्पद्यन्त इति ।।१२५।।

असंज्ञिपर्याप्तानां संक्रमणमाह—

अविरुद्धं संकमणं असण्णिपज्जत्तयाण तिरियाणं ।
माणुसतिरिक्खसुरणारएसु ण दु सव्वभावेसु ।।१२६।।

असंज्ञिपर्याप्तकानां तिरश्चां संक्रमणं गमनमविरुद्धं न विरोधमुपयाति क्व मनुष्यतिर्यक्सुरनारकेषु चतसृषु गतिष्वपि व्रजन्ति न तु सर्वभावेषु नैव सर्वेषु नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवपर्यायेषु यतः प्रथमायामेव पृथिव्यामुत्पद्यन्तेऽसंज्ञिनस्तथा देवेषु भवनवासिव्यंतरज्योतिष्केषूत्पद्यन्ते नान्यत्र तथा भोगभूमिजेषु

आगै तेजकायिक, वायुकायिकनि का गमन है, ताहि कहै है—

अर्थ–सर्व ही वादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, तेजकायिक तैसैं ही सर्व वादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त वायुकायिक जीव ते तिस ही भवकरि नियमकरि मनुष्य भवकूं नांही प्राप्त होय हैं ।।१२४।।

आगै प्रत्येक वनस्पती, पृथिवीकाय, अप्काय, वादरपर्याप्तनि का आगमन हैं, ताहि कहैं हैं—

अर्थ–प्रत्येक देह जे नालिकेर आदि अैसे वनस्पति हैं ते वादर पर्याप्त बहुरि पृथिवीकायिक, अप्कायिक यह हू वादर-पर्याप्त मनुष्य, तिरजंच, देवनितैं ही नियमकरि आवै हैं—यह प्रसिद्ध है, अन्यतैं नांही आवै हैं ।

भावार्थ–मनुष्य, तिरजंच, अर देव—यह संक्लेशयुक्त आर्त्त-ध्यान विषैं तत्पर मिथ्यादृष्टी आय, प्रत्येक वनस्पती, पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वादर-पर्याप्तनि विषैं उपजै हैं ।।१२५।।

आगै असंज्ञीपर्याप्तनिका गमन है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–असंज्ञी पर्याप्त जे तिरजंच तिनका गमन मनुष्य, तिरजंच, देव, नारक—इन च्यारि गतिनि विषैं अविरुद्ध है, विरोधकूं नांही प्राप्त होय है । बहुरि सर्वभाव जे सर्व नारक, तिरजंच, मनुष्य, देव पर्य्यायानि विषैं नांही जाय हैं । जातैं असंज्ञी प्रथमपृथिवी षिषैं ही उपजैं

तत्प्रतिभागजेष्वन्येष्वपि पुण्यवत्सु तिर्यङ्मनुष्येषु[1]नोत्पद्यन्ते ।।१२६।।

अथासंख्यातायुषः केभ्य आगच्छन्तीत्याह—

संखादीदाओ खलु माणुसतिरिया दु मणुयतिरियेहिं ।
संखिज्जआउगेहिं दु णियमा सण्णीय आयंति ।।१२७।।*

संख्यातीतायुषः भोगभूमिजा भोगभूमिप्रतिभागजाश्च मनुष्यस्तिर्यंचः संख्यातायुष्केभ्यो मनुष्यतिर्यग्भ्यः संज्ञिभ्योऽपि नियमेनायान्ति व्यक्तमेतन् नान्यत्र दानानुमोदोऽदत्तदानफलं च यत इति ।।१२७।।

अथ संख्यातीतायुषो मृत्वा कां गतिं गच्छन्तीत्याशंकायामाह—

संखादीदाऊणं संकमणं णियमदो दु देवेसु ।
पयडीए तणुकसाया सव्वेसिं तेण बोधव्वा ।।१२८।।

संख्यातीतायुषां भोगभूमिजानां भोगभूमिप्रतिभागजानां च संक्रमणं मृत्वोत्पादः नियमतस्तु देवेषु, कुत एतद् यतः प्रकृत्या स्वभावेन तेषां तनवोऽल्पाः कषायाः क्रोधमानमायालोभास्तेन ते देवेषूत्पद्यन्ते इति ज्ञातव्यं नात्र शंका कर्त्तव्येति ।।१२८।।

हैं तथा भवनवासी, वानव्यंतर, ज्योतिषी देवनि विषैं उपजै हैं, और ठोर नांही उपजै हैं । तथा भोग-भूमियानि विषैं, तत्प्रतिभागजनि विषैं अन्यहू पुण्यवंत मनुष्य, तिरजंचनि विषैं नांही उपजै है ।।१२६।।

आगै असंख्यात वर्ष का है आयु जिनका, अैसे जीव कहांतैं आवै हैं ? अैसे पूछै कहै हैं—

अर्थ–संख्यातीत जो असंख्यात सो है आयु जिनका अैसे भोग-भूमिया बहुरि भोग-भूमि के प्रतिभाग विषैं भये अैसे मनुष्य बहुरि तिरजंच, संख्यात हैं आयु जिनका अैसे संज्ञी मनुष्य तिरजंचनि हीतैं नियमकरि आवै हैं—यह प्रसिद्ध है, अन्यत्र नांही आवै हैं । काहैं ते? जातैं दान की अनुमोदना अर उत्कृष्ट दान, तिनका फल है ।।१२७।।

आगै संख्यातीत है, आयु जिनका अैसे जीव मरिकरि कौंन गति जा जाय है ? अैसी आशंका हौंते कहै हैं—

अर्थ–संख्यातीत है आयु जिनका अैसे भोगभूमिया बहुरि भोगभूमि-प्रतिभागज तिनका संक्रमणं कहिये मरिकरि उपजनां नियमथकी देवनि विषैं है । यह कैसे ? जातै तिन समस्तनि कैं प्रकृति जो स्वभाव-ताकरि कषाय जे क्रोध, मान, माया, लोभतें अल्प हैं, ताकरि ते देवनि विषैं उपजै हैं—अैसे जाननां । यामैं शंका नांही करणीं ।।१२८।।

---

१. क० मनुष्यतिर्यक्षु ।

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में यह गाथा अधिक है—

णिरयेसु पढमणिरये तिरिए मणुएसु कम्मभूमीसु ।
हीणेसु य उप्पत्ती अमराणं भवणावेंतरेसु तथा ।।

अथ केभ्य आगत्य शलाकापुरुषा भवन्ति केभ्यश्च न भवन्तीत्याशंकायामाह—

माणुस तिरियाय तहा सलागपुरिसा ण होंति खलु णियमा ।
तेसिं अणंतरभवे भजणिज्जं णिव्वुदीगमणं ।।१२९।।

मनुष्यास्तथा तिर्यंचश्च शलाकापुरुषास्तीर्थंकरचक्रवर्त्तिबलदेववासुदेवा न भवन्ति नियमात्, निर्वृतिगमनं तु भाज्यं तेषां कदाचिदन्तरभवेन तेनैव भवेन वा भवति मनुष्याणां, न तु तिरश्चां युक्तमेतत् निर्वृतिगमनकारणं तु भवत्येव तिरश्चामपि सम्यकत्वादिकं तेन न दोष इति ।।१२९।।

अथ मिथ्योपपादः एवम् इत्याशंकायामाह—

सण्णि असण्णीण तहा वाणेसु य तह य भवणवासीसु ।
उववादो वोधव्वो मिच्छादिट्ठीण णियमादु ।।१३०।।

संज्ञिनामसंज्ञिनां च मिथ्यादृष्टीनां उपपादो मृत्वोत्पत्तिः कदाचिद्वानव्यंतरेषु कदाचिद्‌भवनवासिषु च बोद्धव्यो नियमेन, नात्र विरोध एतेषूत्पद्यन्तेऽन्यत्र च परिणामवशादिति ।।१३०।।

अथ ज्योतिष्केषु क उत्पद्यन्त इत्याशंकायामाह—

संखादीदाऊणं मणुयतिरिक्खाण मिच्छभावेण ।
उववादो जोदिसिए उक्कस्सं तावसाणं दु ।।१३१।।

संख्यातीतायुषामसंख्यातवर्षप्रमाणायुषां मनुष्याणां तिरश्चां च मिथ्यात्वभावेनोपपागदः भवनवास्यादिषु ज्योतिष्कदेवेषु कन्दफलाद्याहाराणां

आगै शलाका पुरुष कहातैं आय उपजै हैं ? कहां तैं आय नांही उपजै हैं ? ऐसी आशंका हौतैं कहैं हैं—

अर्थ–मनुष्य बहुरि तैसै तिरजंच हैं ते (मरकर) शलाकापुरुषः कहिये तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव नियमतैं नांही होय हैं । बहुरि तिनकैं अनंतरभव जो सो ही भव ताकरि मोक्ष-गमन भाग करणे जोग्य है । मनुष्यनि कै मोक्षगमन कदाचित् होय, तिरजंचनिकैं नांही होय—यह कथन प्रगट है ।

मनुष्यनि कैं मोक्षगमन बहुरि मोक्षगमन का कारण नियमकरि है । तिरजंचनि हू कैं मोक्षगमन का कारण सम्यक्त्वादिक है, तिसकरि दोष नांही ।।१२९।।

आगैं मिथ्यादृष्टीनिका उपपाद (जन्म) कहां होय ? ऐसी आशंका हौंते कहै हैं—

अर्थ–संज्ञी बहुरि असंज्ञी ऐसे मिथ्यादृष्टीनि का उपपाद कहिये मरिकरि उपजनां, कदाचित् वानव्यंतरनि विषैं बहुरि तैंसैं कदाचित् भवनवासीनि विषैं नियमकरि जाननां, यामै विरोध नांही । इन विषैं उपजै हैं, बहुरि परिणामवसतैं अन्यत्र उपजै हैं ।।१३०।।

आगै ज्योतिषिनी विषैं कौन उपजै हैं ? ऐसी आशंका होतै कहै है—

अर्थ–संख्यातीतायुषां कहिये असंख्यात वर्षप्रमाण है आयु जिनका ऐसे मनुष्यनिका, बहुरि तिरजंचनि का मिथ्यात्वभावकरि उपजनां, भवनवासी आदिनि विषैं, ज्योतिषीनि विषैं होय है । बहुरि कंदमूलादिक का है आहार जिनकैं ऐसे तापसीनिका , उत्कृष्ट उपपाद तिनही

तापसानां चोत्कृष्ट उपपादस्तेष्वेव ज्योतिष्केषु शुभपरिणामेन नान्येनेति ।।१३१।।

अथाजीवकपरिव्राजकानां शुभपरिणामेन कियद्दूरगमनमित्याशंकायामाह—

परिवाय[1]गाण णियमा उक्कस्सं होदि वंभलोगम्हि ।
उक्कस्सं सहस्सार त्ति होदि य आजीवगाण तहा ।।१३२।।

परिव्राजकानां संन्यासिनां शुभपरिणामेन नियमाद् उत्कृष्ट उपपादो भवनवास्यादिब्रह्मलोके भवन्ति, आजीवकानां तथोपपादो भवनवास्यादि सहरस्रारं यावद्भवति, सर्वोत्कृष्टाचरणेन मिथ्यात्वभावेन शुभपरिणामेनेति वक्तव्यं नान्यथेति । अन्येषां च लिंगिनां भवनादिष च द्रष्टव्यं शुभपरिणामेनेति ।।१३२।।

अथोर्ध्वं क उत्पद्यन्त इत्याह—

तत्तो परं तु णियमा उववादो णत्थि अण्णलिंगीणं ।
णिग्गंथसावगाणं उववादो अच्चुदं जाव ।।१३३।।

ततः सहस्रारादूर्ध्वं परेषु कल्पेषु नियमादुपपादो नास्त्यन्यलिंगिनां परमोत्कृष्टाचरणेनापि, निर्ग्रन्थाणां श्रावकाणां श्राविकाणाम् आर्यिकाणां च शुभपरिणामेनोत्कृष्टाचरणेनोपपादः सौधर्ममादिं कृत्वा यावदच्युतकल्पः निश्चितमेतदि ।।१३३।।

अथाभव्या जिनलिंगेन कियद्दूरं गच्छन्तीत्याशंकायामाह—

जा उवरिमगेवेज्जं उववादो अभवियाण उक्कस्सो ।
उक्कट्ठेण तवेण दु णियमा णिग्गंथलिंगेण ।।१३४।।

विषैं ज्योतिषीनि विषैं, शुभ परिणामकरि होय है, अन्य परिणामकरि नांही ।।१३१।।

आगै आजीवक, परिव्राजकनि का शुभ परिणामकरि केते दूर गमन है ? ऐसी आशंका हौंतैं कहै हैं—

अर्थ–परिव्राजक ऐसे ज्ञानीनिका शुभ परिणामकरि नियमतैं उत्कृष्ट उपपाद भवनवासी आदि ब्रह्मलोक परजंत विषैं है । तथा आजीवकनिका उत्कृष्ट उपपाद भवनवासी आदि सहस्रार पर्यंत है । सर्वोत्कृष्ट जो आचरण तिसकरि मिथ्यात्व भावकरि, शुभपरिणामकरि यह कहने जोग्य है, अन्यथा नांही । बहुरि अन्य लिंगीनिका शुभपरिणामकरि भवनादि विषैं उपपाद जाननां ।।१३२।।

अर्थ–ततः कहिये सहस्रार स्वर्गतैं आगैं, परेषु कहिये अन्य स्वर्गनि विषैं नियमतैं अन्य लिंगीनि का परम उत्कृष्ट आचरणकरि हू उपपाद नांही । निर्ग्रंथ मतकैं श्रावकनि का, श्राविकानिका, बहुरि आर्यिकानिका शुभ परिणामकरि, बहुरि उत्कृष्ट आचरणकरि सौधर्म स्वर्गकूं आदिकरि अच्युत स्वर्ग परजंत उपपाद है, यह निश्चित है ।।१३३।।

आगैं अभव्य हैं, ते जिनलिंगकरि केते दूर जाय ? ऐसी आशंका हौंतै कहै हैं—

अर्थ–अभव्यनिका निर्ग्रंथलिंगकरि बहुरि उत्कृष्ट तपकरि निश्चयकरि उत्कृष्ट उपपाद भवनवासी कूं आदिकरि उपरिनाम

---

१. क० परिवाजगाण ।

अभव्यानां निर्ग्रन्थलिंगेनोत्कृष्टतपसा निश्चयेनोत्पाद उत्कृष्टः भवनवासिनमादिं कृत्वोपरिमग्रैवेयकं यावन्मिथ्यात्वभावेन शुभपरिणामेन रागद्वेषाद्यभावेनेति वक्तव्यम् ।।१३४।।

अथोपरि के न गच्छन्तीत्याशंकायामाह—

तत्तो परं तु णियमा तवदंसणणाणचरणजुत्ताणं ।
णिग्गंथाणुववादो जावदु सव्वट्ठसिद्धित्ति ।।१३५।।

ततः सर्वोत्कृष्टग्रैवेयकादूर्ध्वं परेषु नवानुत्तरादिषु सौधर्मादिषु च निर्ग्रन्थानां सवसंगपरित्यागिनां तपोदर्शनज्ञानचरणयुक्तानामचरमदेहिनां शुपरिणामिनां निश्चयेनोपपादः सर्वार्थसिद्धिं यावत् । सर्वार्थसिद्धिमन्तं कृत्वा सर्वेषु सौधर्मादिषूत्पद्यन्त इति यावत् ।।१३५।।

अथ देवा आगत्य क्वोत्पद्यन्त इत्याशंकायामाह—

आईसाणा देवा चएत्तु एइंदिएत्तणे भज्जा ।
तिरियत्तमाणुसत्ते भयणिज्जा जाव सहसारा ।। १३६।।

भवनवासिनमादिं कृत्वा आ ईशानाद् ईशानकल्पं यावद् देवाश्च्युत्वा एकेन्द्रियत्वेन भाज्याः कदाचिदार्त्तध्यानेनागत्य पृथिवीकायिकाप्कायिक-प्रत्येकवनस्पतिकायिकेषु बादरेषु पर्याप्तेषूत्पद्यन्ते परिणामवशेनान्येषु पंचेन्द्रियपर्याप्ततिर्यङ्मनुष्येषु भोगभूमिजादिवर्जितेषु च तत ऊर्ध्वं सहस्रारं यावद् देवाश्च्युत्वा तिर्यक्त्वेन मनुष्यत्वेन च भाज्याः नैते एकेन्द्रियेषूत्पद्यन्ते पुनस्तिर्यग्ग्रहणान्नारकदेवविकलेन्द्रियासंज्ञिसूक्ष्मसर्वपर्याप्त तेजोवायुभोगभूमिजादिषु सर्वे देवा नोत्पद्यन्त इति च द्रष्टव्यम् ।।१३६।।

ग्रैवेयक पर्यंत । मिथ्यात्व भावकरि शुभपरिणामकरि रागद्वेषादि का अभावकरि कहनैं जोग्य है ।।१३४।।

आगै उपरि कौन जाय है ? ऐसी आशंका होतैं कहै हैं—

अर्थ–ततः कहिये सर्वोत्कृष्ट ग्रैवेयकतैं उपरिपरेषु कहिये अनुत्तरादिक विषैं, बहुरि सौधर्मादिक विषैं निर्ग्रंथ जे समस्त परिग्रह के त्यागी, तप, दर्शन, ज्ञान, चारित्रकरि युक्त, अचरम है देह जिनका, शुभ है परिणाम जिनका, तिनका निश्चयकरि उपपाद सर्वार्थसिद्धि पर्यंत है। ते सर्वार्थसिद्धि है ताहि अंतकरि जे समस्त सौधर्मादिक तिन विषैं उपजै हैं ।।१३५।।

आगैं देव आय कहां उपजै है ? ऐसी आशंका हौंते कहै हैं—

अर्थ–भवनवासीकूं आदिकरि ईशानस्वर्ग परजंत देव हैं, ते चयकरि एकैंद्रियपनैं करि भाग करणें जोग्य हैं । कदाचित् आर्तध्यानकरि आयकरि पृथिवीकायिक, अप्कायिक, प्रत्येक वनस्पतीकायिक, बादर पर्याप्तनि विषैं उपजै हैं । परिणामके वशकरि अन्य भोगभूमिया आदि वर्जित पंचैद्रिय पर्याप्त तिरचंच—मनुष्यनि विषैं उपजै हैं । तिसतै उपरांति सहस्रार पर्यंत देव चयकरि, तिरजंचपनांकरि, मनुष्यपनांकरि, विभाग करनें योग्य हैं । तिरजंच के ग्रहणकरि यह एकैंद्रियनि विषैं नांही उपजै हैं । नारक, देव, विकलैंद्रिय, असंज्ञी सूक्ष्म सर्व अपर्याप्त, सर्व तेजकाय, वायुकाय, भोगभूमिया आदि हैं, तिन विषैं देव नांही उपजै हैं ।।१३६।।

उपरितनानामागतिमाह—

तत्तो परं तु णियमा देवावि अणंतरे भवे सव्वे ।
उववज्जंति मणुस्से ण तेसिं तिरिएसु उववादो ।।१३७।।

ततः सहस्रारादुपरि नियमाद्देवाः सर्वेऽपि अनन्तरभवेन मनुष्येषूत्पद्यन्ते न तेषां तिर्यक्षूपपादः च्यवनकाले महतः संक्लेशस्याभावो यत इति ।।१३७।।

शलाकापुरुषा आगत्य ये देवा न भवन्ति तान् प्रतिपादयन्नाह—

आजोदिसं[1] ति देवा सलागपुरिसा ण होंति ते णियमा ।
तेसिं अणंतरभवे [2]भजणिज्जं णिव्वुदीगमणं ।।१३८।।

आ ज्योतिषो देवा भवनवासिनआदौ कृत्वा ज्योतिष्का यावद्देवाः शलाकापुरुषा न भवन्ति तीर्थकरचक्रवर्तिबलदेववासुदेवा न भवन्तीति निश्चयेन निर्वृतिगमनं पुनस्तेषामनन्तरभवे भाज्यं कदाचिद्भवति कदाचिन्नेति तस्य सर्वथा प्रतिषेधी नास्तीति ।।१३८।।

अथ के शलाकापुरुषा भवन्तीत्याशंकायामाह—

तत्तो परं तु गेवेज्जं भजणिज्जा सलागपुरिसा दु ।
तेसिं अणंतरभवे भजणिज्जा णिव्वुदीगमणं ।।१३९।।

ततः परं सौधर्ममारभ्य नवग्रैवेयकं यावत्तेभ्यो देवा आगत्य शलाकापुरुषा भवन्ति न भवन्तीति भाज्यास्तेषामनन्तरभवेन च निर्वृतिगमनं च भाज्यं कदाचिद्भवति कदाचिन्नेति ।।१३९।।

आगैं उपरले देवनि का आगमन है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–ततःपरं कहिये सहस्रार स्वर्गतैं उपरि नियमतैं सर्व ही देव अनंतर भवन कहिये तिसही भवकरि मनुष्यनि विषैं उपजैं है । तिनका तिररजंचनि विषैं जन्म नांही हैं । काहैतैं ? च्यवनकाल जो मरणकाल ताविषैं महान् संक्लेश का अभाव है, यातैं ।।१३७।।

आगैं जे देव आयकरि शलाका पुरुष नांही होय हैं, तिनहि प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–आज्योतिषः कहिये भवनवासीकूं आदिकरि ज्योतिषी परजंत देव हैं, ते शलाका पुरुष नांही होय हैं—तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, बासुदेव, निश्चयकरि नांही होय हैं । बहुरि तिनकैं अनंतर भव विषैं निवृत्ति गमन जो मोक्षगमन सो विभाग करवे जोग्य है । कदाचित् होय, कदाचित् नांही होय, तिसका सर्वथा प्रतिषेध नांही ।।१३८।।

आगैं शलाकापुरुष कौन होय हैं ? असै आशंका हौंते कहै हैं—

अर्थ–ततः परं कहियै-सौधर्म स्वर्गकूं लेयकरि नवग्रैवेयकनितैं आयकरि देव हैं, ते शलाकापुरुष विभाग करने योग्य हैं, कदाचित् होय वा नांही होय । बहुरि तिसकै अनंतर भव मोक्ष-गमन विभाग करनें जोग्य हैं । कदाचित् मोक्षगमन होय, कदाचित् नांही होय ।।१३९।।

१. अ० ब०.... दिसि । २. अ० ब० भयणिज्जं ।

तत उर्ध्वं वासुदेवा आगत्य न भवन्तीति प्रतिपादयन्नाह—

णिव्वुदिगमणे रामत्तणे य तित्थयरचक्कवट्टित्ते ।
अणुदिसणुत्तरवासी तदो चुदा होंति भयणिज्जा ।।१४०।।

निर्वृतिगमनेन रामत्वेन तीर्थकरत्वेन चक्रवर्तित्वेन च भाज्या: अनुदिशानुत्तरवासिनो देवास्तेभ्यो विमानेभ्यश्च्युता: सन्त: कदाचितीर्थकररामचक्रवर्तिनो मुक्ताश्च भवन्ति न भवन्ति च, वासुदेवा: पुनर्न भवन्ति एवेति ।।१४०।।

ये पुनर्निश्चयेन निर्वृतिं गच्छन्ति तान् प्रतिपादयन्नाह—

सव्वट्ठादो य चुदा भज्जा तित्थयरचक्कवट्टित्ते ।
रामत्तणेण भज्जा णियमा पुण णिव्वुदिं जंति ।।१४१।।

सर्वार्थात्सर्वार्थसिद्धेश्च्युता देवास्तीर्थकरत्वेन चक्रवर्तित्वेन रामत्वेन च भाज्या:, निर्वृतिं पुनर्निश्चयेन यान्त्येव न तत्र विकल्प: सर्वे त आगत्य चरमदेहा भवन्ति तीर्थकरचक्रवर्तिरामविभूतिं भुक्त्वा मण्डलिकादिविभूतिं च संयममादाय नियमान्मुक्तिं गच्छन्ति ।।१४१।।

पुनरपि निश्चयेन ये ये सिद्धिं गच्छन्ति तान् प्रतिपादयन्नाह—

सक्को सहग्गमहिसी सलोगपाला य दक्खिणिंदा य ।
लोगंतिगा य णियमा चुदा दु खलु णिव्वुदिं जंति ।।१४२।।

शक्र: सौधर्मेन्द्र: सहाग्रमहिषी अग्रमहिषी शची तया सह वर्तत इति साग्रमहिषीका:, सलोकपाला: लोकान् पालयन्तीति लोकपाला: चरारक्षिकसमानास्तै: सह वर्त्तन्ते इति सलोकपाला: दक्षिणेन्द्राश्च दक्षिणशब्द: सूत्रनिर्देश प्रथमोच्चारणे वर्त्तते तेन सानत्कुमारब्रह्मलान्तवशुक्रशतारानतारणेन्द्राणां

तातैं उपरिदेव आय वासुदेव नांही होय, अैसें प्रतिपादन करते कहैं हैं—

अर्थ–अनुदिश, अनुत्तरवासी देव हैं ते निवृत्तिगमन जो मोक्षगमन ताकरि बलदेव, तीर्थंकर, चक्रवर्तीपनेंकरि विभाग करवे जोग्य हैं । तिन विमानतैं चये संते कदाचित् तीर्थंकर राम, चक्रवर्ती बहुरि मुक्त होय हैं अथवा नांही ही होय हैं । बहुरि वासुदेव निश्चयकरि नांही होय हैं ।।१४०।।

आगैं जे आये संते निश्चयकरि मोक्ष जाय हैं, तिनहि प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–सर्वार्थ जो सर्वार्थसिद्धि तातैं चये देव तीर्थंकरपनैंकरि, चक्रवर्त्तीपनैं करि, बलभद्रपनैं करि विभाग करिवे जोग्य हैं । बहुरि मोक्ष है, ताहि निश्चयकरि प्राप्त होय हैं, तहां भेद नांही । ते सर्व देव आयकरि चरमशरीरी होय हैं । तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र—इनकी विभूति हैं ताहि, बहुरि मंडलीक, महामंडलीक आदि राजानि की विभूति हैं, ताहि भोगि संजम ग्रहणकरि नियमतैं मुक्ति जाय हैं ।।१४१।।

आगैं बहुरिहू जे निश्चयकरि मोक्ष जाय है, तिनहि प्रतिपादन करते कहैं हैं-

अर्थ–शक्र: कहिये सौधर्म स्वर्ग का इंद्र, अग्रमहिषी जो शची ताकरि सहित लोक है, ताहि पालै तै लोकपाल कहिये, अर्थचर, आरक्षक, समान, तिनकरि सहित । बहुरि दक्षिण दिशा के इंद्र, इहां दक्षिण शब्द है सो सूत्र निर्देश विषैं प्रथमोच्चारण वषैं विर्तै है, ताकरि

ग्रहणं च शब्देनान्येषां च, लौकान्तिकाश्च सारस्वतादित्यवह्न्यरुणागर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्चाष्टप्रकारा ब्रह्मलोकवासिनो देवर्षयो नियमाच् च्युता मनुष्यक्षेत्रमागता निर्वृतिं यान्ति । सौधर्मो मनुष्यत्वं प्राप्त मोक्षं याति तथा तस्याग्रमहिषी लोकपालाश्च मनुष्यत्वं प्राप्त नियमतो निर्वृतिं यान्ति तथा दक्षिणेन्द्रा लौकान्तिकाश्च चरमदेहतां प्राप्त निश्चयेन मुक्तिं गच्छन्ति स्फुटमेतन्नात्र सन्देह इति ।।१४२।।

गत्यागत्यधिकारं समुच्चयन्नाह—

एवं तु 'सारसमए' भणिदा दु गदागदी मया किंचि ।
णियमादु मणुसगदिए णिव्वुदिगमणं अणुण्णादं ।।१४३।।

एवं तु–अनेन प्रकारेण, **सारसमए**–व्याख्याप्रज्ञप्त्यां सिद्धान्ते तस्माद्वा भणिते गत्यागतीगतिश्च भणिता आगतिश्च भणिता मया किंचित् स्तोकरूपेण । सारसमयादुद्धृत्य गत्यागतिस्वरूपं स्तोकं मया प्रतिपादितमित्यर्थः । निर्वृतिगमनं पुनर्मनुष्यगत्यामेव निश्चयेनानुज्ञातं जिनवरैर्नान्यासु गतिषु तत्र संयमाभावादिति ।।१४३।।

अथ कैः किम्भूताः कैः कृत्वा निर्वृतिं यान्तीत्याशंकायामाह—

सम्मद्दंसणणाणेहिं भाविदा सयलसंजमगुणेहिं ।
णिट्ठवियसव्वकम्मा णिग्गंथा णिव्वुदिं जंति ।।१४४।।

सम्यग्दर्शनज्ञानाभ्यां भाविताः सकलसंयमगुणैश्च भाविता यथाख्यातसंयमविशुद्धिवर्द्धिता निष्ठापितसर्वकर्माणः विनाशितसर्वकर्मबन्धाः सन्तो निर्ग्रन्था अनन्तचतुष्टयसहाया निर्वृतिं यान्ति नात्र सन्देह इति ।।१४४।।

सनत्कुमार, ब्रह्म, लांतव, शुक्र, शतार, आनत, आरण—इन इंद्रनिका ग्रहण है । 'च' शब्दतैं अन्य का ग्रहण है । बहुरि लोकांतिक देव जे—१. सारस्वत, २. आदित्य, ३. वह्नि, ४. अरुण, ५. गर्दतोय, ६. तुषित, ७. अव्याबाध, ८. अरिष्ट—अष्टप्रकार के ब्रह्मलोक के वासी देव, ऋषि, नियमतैं च मनुष्यक्षेत्र प्रति आये मोक्ष जाय हैं ।

भावार्थ–सौधर्म स्वर्ग का इंद्र मनुष्य भव पाय मोक्ष जाय है तथा ताकी पट्टदेवी, बहुरि लोकपाल मनुष्यभव पाय नियमकरि मोक्ष जाय है । तथा दक्षिणैंद्र बहुरि लौकांतिक चरमशरीरकूं पाय निश्चयकरि मोक्ष जाय है । यह कथन प्रगट है, यामैं संदेह नांही ।।१४२।।

गति-आगति कै अधिकारकूं संकोच करते कहै हैं—

अर्थ–या प्रकारकरि सारसमय जो व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम सिद्धान्त ता विषैं वा तिसतैं हमनैं गति बहुरि आगति किंचित्क स्तोक रूप कही । भावार्थ—सारसिद्धान्ततैं उद्धारिकरि मैं गति-आगति किंचिन्मात्र प्रतिपादन कीया । बहुरि मोक्षगमन जिनवरदेवनैं मनुष्यगति विषैं ही निश्चयकरि आज्ञा कीया, अन्य गति विषैं गमन नांही । तहां संजम का अभाव है ।।१४३।।

यातैं आगै कौंन कारणकरि कैसे भये मोक्ष जाय हैं ? ऐसी आशंका होतै कहैं हैं—

अर्थ–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानकरि युक्त, बहुरि सकलसंयम के गुणनिकरि युक्त यथाख्यात संयम की विशुद्धिकरि वृद्धिकूं प्राप्त भये, नष्ट कीये हैं समस्त कर्म के बंध जिननैं-ऐसे भये, निर्ग्रंथ कहिये अनंत चतुष्टय है सहाय जिनकैं, ते मोक्ष जाय हैं, यामैं संदेह नांही ।।१४४।।

अथ ते तत्र गत्वा कीदृग्भूतं सुखमनुभवन्ति कियन्तं कालमधितिष्ठन्तीत्याशंकायामाह—

ते अजरमरुजममरमसरीरमक्खयमणुवमं सोक्खं ।
अव्वाबाधमणंतं अणागदं कालमत्थंति ।।१४५।।

ते मुक्तिं प्राप्ता अजरं न विद्यते जरावस्था[1] वृद्धत्वं यत्र तदजरं, न विद्यते रुजा रोगो यत्र तदरुजं, न म्रियते यत्र तदमरम्, अशरीरम् औदारिकादिपंचशरीररहितं, अक्षयं क्षयरहितं शाश्वतं सुखं अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यरूपं, अव्याबाधम् अन्योपघातविनिर्मुक्तं, अनन्तमनागतं कालमधितिष्ठन्ति भविष्यत्कालपर्यन्तं परमसुखे निमग्नास्तिष्ठन्तीति ।।१४५।।

गत्यागतिस्वरूपं निरूप्य स्थानाधिकारं प्रतिपादयन्नाह—

एइंदियादि पाणा चोद्दस दु हवंति जीवठाणाणि ।
गुणठाणाणि य चोद्दस मग्गणठाणाणिवि तहेव ।।१४६।।

जीवस्थानान्याधारभूतानेकेन्द्रियादीन् तावत् प्रतिपादयति एकेन्द्रियादय एकं सूत्र, प्राणो द्वितीयं सूत्रं चतुर्दश जीवस्थानानि भवन्ति तृतीयं सूत्रं, गुणस्थानानि चतुर्दश चतुर्थं सूत्रं, मार्गणास्थानानि चतुर्दश भवन्ति पंचमं सूत्रं, पंचत्रि:संग्रहस्थानसूत्रं व्याख्यायते—जीवास्तिष्ठन्ति येषु तानि जीवस्थानानि, गुणा मिथ्यात्वादयो निरूप्यन्ते येषु तानि गुणस्थानानि, जीवा मृग्यन्ते येषु , यैर्वा तानि मार्गणास्थानानि इति ।।१४६।।

आगैतैं निर्ग्रंथ मोक्ष विषैं जाय कैसे सुख कूं भोगवै हैं ? केते काल तिष्ठै हैं, ऐसी आशंका होतैं कहै हैं—

अर्थ–ते निर्ग्रंथ मोक्षकूं प्राप्त भये अजरं कहिये नांही विद्यमान है जरा कहिये बृद्धपनां जाकैं ऐसा । इहां सुखकरि संबंध करणां अरुजं कहिये नांही विद्यमान है रुजा कहिये जहां सो अरुजं कहिये । नांही कहिये जहां सो अमर । अशरीर कहिये औदारिक आदिक पंचशरीर रहित हैं । अक्षयं कहिये क्षयकरि रहित, शास्वता सुख-अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यरूप, अव्याघातं कहिये अन्यतैं कीया जो उपघात तिसकरि रहित, अनंत अनागत काल आश्रय करै है । भावार्थ—भविष्यतकाल पर्यंत परमसुख विषैं निमग्न तिष्ठै हैं ।।१४५।।

गति-आगति का स्वरूप निरूपणकरि स्थानाधिकार है, ताहि प्रतिपादन करतै कहै हैं—

अर्थ–प्रथम ही जीवस्थानादिक के आधारभूत एकैंद्रियादि कहै, तिनहि प्रतिपादन करै हैं—ते १. एकैंद्रियादिक हैं ते एक सूत्र है, २. प्राण है ते द्वितीय सूत्र है, ३. चतुर्दश जीवस्थान हैं ते तृतीय सूत्र, ४. चौदह गुणस्थान चतुर्थ सूत्र है बहुरि तैसे ही ५. चतुर्दश मार्गणा स्थान है, ते पंचम सूत्र है । इन पंचसंग्रहस्थान सूत्र हैं सो व्याख्यान करिये हैं—जीव जिन विषैं तिष्ठै ते जीवस्थान है । गुण जे मिथ्यात्वादिक जिन विषैं निरूपण करिये है, ते गुणस्थान है । जीव जिन विषैं वा जिनकरि अवलोकन करिये ते मार्गणास्थान है ।।१४६।।

---

१. क० जरा ।

अथ का मार्गणाऽऽदौ[१] जीवगुणमार्गणा का इत्याशंकायामाह—

गदिआदिमग्गणाओ परूविदाओ य चोद्दसा चेव ।
एदेसिं खलु भेदा किंचि समासेण वोच्छामि ।।१४७।।*

[२]गत्यादिमार्गणाश्चतुर्दश एवागमे [३]निरूपता:, चशब्दाद्बादरकेन्द्रियादीनि जीवस्थानानि चतुर्दश मिथ्यादृष्ट्यादीनि गुणस्थानानि चतुर्दशेत्येषां भेदान्कियत: समासेन संक्षेपेण प्रवक्ष्यामीति ।।१४७।।

एवं सर्वमाक्षिप्यैकेद्रियादिभेदाँस्तावत्प्रतिपादयन्नाह—

एइंदियादि जीवा [४]पंचविधा भयवदा दु पण्णत्ता ।
पुढवीकायादीदा विगला पंचेंदिया चेव ।।१४८।।**

ये एकेन्द्रियादयो जीवा: संग्रहसूत्रेण सूचितास्ते पंचविधा: पंचप्रकारा एव भगवता प्रज्ञप्ता: । के ते पंचप्रकारा इत्याशंकामाह—पृथिवीकायिकादय एक: प्रकार:, विकलेन्द्रिया द्वीन्द्रिया द्वितीय: प्रकार:, त्रीन्द्रियास्तृतीय: प्रकार:, चतुरिन्द्रिया: चतुर्थ: प्रकार:, तथा च पंचेन्द्रिया: पंचम: प्रकार: । पंच प्रकारा

आगैं कौन मार्गणा कूं आदिकरि जीव-गुण-मार्गणा हैं ? ऐसी आशंका हौंते कहैं—

अर्थ–गत्यादिक मार्गणा चौदह ही आगम विषैं निरूपण करी हैं । 'च' शब्दतैं बादर, एकैंद्रिय आदि जीवस्थान चौदह कहै । मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान चौदह कहै । बहुरि इनके केतेक भेद हैं ? तिनहि संक्षेपकरि कहैंगे ।।१४७।।

या प्रकार समस्त आक्षेपकरि प्रथम एकेंद्रियादिक के भेद हैं, तिनहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–जो एकेंद्रियादि जीव संग्रहसूत्रकरि सूचित ते भगवान् नैं पंच प्रकार कहै, ते पंचप्रकार कौंन ? ऐसी आशंका हौंते कहै हैं—पृथिवीकायिक एक प्रकार, विकलैंद्रिय कहिये द्वीद्रिंय द्वितीयप्रकार, त्रीद्रिंय तृतीय प्रकार चतुरिंद्रिय चतुर्थप्रकार, बहुरि तैंसैं पंचेंद्रिय—पंच प्रकार ही हैं, न छहप्रकार बहुरि न च्यारि प्रकार ।।१४८।।

---

१. क० मार्गणादिं कृत्वा । २. क०-गत्यादयो मार्गणा: । ३. क० प्ररूपिता: । ४. क० पंचविहा ।

* यह गाथा फलटन से प्रकाशित मूलाचार में नहीं है ।

** फलटन से प्रकाशित मूलाचार की इस गाथा में अन्तर है ।

एइंदियादिजीवा पंचविधा भयवदा दु पण्णत्ता । पुढवीकायादीया पंचविधे इंदिया चेव ।।

अर्थ–भगवान् जिनेन्द्र ने एकेन्द्रिय आदि जीव पाँच प्रकार के कहे हैं । वे हैं पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय।

एव न षट्प्रकारा नापि चत्वार इति ।।१४८।।

पृथिवीकायादिभेदा उत्तरत्र प्रबन्धेन प्रतिपाद्यन्त इति कृत्वा [1]द्वीन्द्रियादीन् प्रतिपादयन्नाह—

संखो गोभी भमरादिया दु विगलिंदिया मुणेदव्वा ।
पंचेंदिया [2]दु जलथलखचरा सुरणारयणरा य ।।१४९।।

आदिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, शंखादयः भ्रमरादयः गोभ्यादयः विकलेन्द्रियाद्वीन्द्रियाः त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रया यथासंख्येनाभिसंबध्यन्ते । एते शंखकृम्यक्षवराटकक्षुल्लगंडूपदादयः द्वीन्द्रिया ज्ञातव्याः, गोभीकुंथुपिपीलिकामत्कुणवृश्चिकयूकेन्द्रगोपादयस्त्रीन्द्रिया ज्ञातव्याः, भ्रमरमधुकरीदंशकपतंग-मक्षिकादयश्चतुरिन्द्रिया ज्ञातव्याः, पंचेन्द्रियास्तु जलचराः स्थलचराः खचराः सुरा नारका नराश्च ज्ञातव्या इति ।।१४९।।

प्राणान् प्रतिपादयन्नाह—

पंचय इंदियपाणा मणवचकाया दु तिण्ण बलपाणा ।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दस पाणा ।।१५०।।

पंचेन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि पंच प्राणाः मनोवचःकायास्तु बलरूपास्त्रयः प्राणाः, आनप्राणावुच्छ्वासनिःश्वासलक्षण एके प्राणा, आयुर्भवधारणलक्षण-पुद्गलप्रचय एके प्राणा एवमेते दश प्राणा भवन्तीति ।।१५०।।

पृथिवीकायिक आदि-भेद आगले प्रबंधकरि प्रतिपादन करियेगे । याकरि संक्षेपकरि द्वींद्रियादिक भेद हैं, तिनहि प्रतिपादन करते कहैं हैं—

अर्थ–आदि शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां । शंखादिक, भ्रमरादयः, गोभ्यादयः कहिये गोपालिका आदि भ्रमरादिक यथासंख्यकरि (क्रमशः) द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय अैसैं विकलैंद्रिय जाननैं । यह शंख, कृमि, अक्ष (कौडी), वराटक क्षुल्लगंडूपद आदि द्रींद्रिय जाननैं। गोभी, कुंथ वा पिपीलिका, मत्कुण, वृश्चिक, यूका, इंद्रगोपिका आदि त्रींद्रिय जाननैं । भ्रमर-भ्रमरी दंश-मसक, पतंग, मक्षिका आदि चतुरिंद्रिय जाननैं । जलचर, स्थलचर, नभचर, देवनारक, बहुरि मनुष्य यह पंचैंद्रिय जानैं ।।१४९।।

आगैं प्राण हैं, तिनहिं प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–पंचइंद्रिय जे स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र—ते पंच प्राण हैं, बहुरि मन, वचन, काय, बलरूप तीन प्राण हैं । आनप्राण जो उच्छ्वास-निश्वास है लक्षण जाका अैसा पवन एक प्राण है । भवधारण है लक्षण जाका, अैसा पुद्गल प्रचय जो आयु सो एक प्राण हैं ।।१५०।।

---

१. क० संक्षेपेण द्वीन्द्रियादिभेदान् । २. अ० ब० पंचिंदिया ।

एकेन्द्रियादीनां प्राणानां च स्वस्वामिसंबन्धं प्रतिपादयन्नाह—

इंदिय बल उस्सासा आऊ चदु छक्क सत्त अट्ठेव ।
एगिंदिय विगलिंदिय असण्णि सण्णीण णव दस पाणा ।।१५१।।

इन्द्रियं स्पर्शनेन्द्रियमेकः प्राणः, बलं कायबलं द्वितीयः प्राणः, उच्छ्वासस्तृतीयः प्राणः, आयुश्चतुर्थः प्राणः, एते चत्वारः, प्राणा एकेन्द्रियस्य पर्याप्तस्य भवन्ति पर्याप्तिरहितस्य पुनरुच्छ्वासरहिता भवन्ति । द्वीन्द्रियस्य पर्याप्तस्य स्पर्शनरसनकायबलवाग्बलोच्छ्वासायूंषि षट् प्राणा भवन्ति, अपर्याप्तस्य त एव वागुच्छवासरहिताश्चत्वारः । त्रीन्द्रियस्य पर्याप्तस्य स्पर्शनरसनघ्राणकायबलवाग्बलोच्छ्वासायूंष्यष्टौ प्राणाश्चतुरिन्द्रियस्य पर्याप्तस्य भवन्ति, वागुच्छ्वासरहितास्त एव षडपर्याप्तस्य भवन्ति । पंचेन्द्रियस्य कायबलवाग्बलोच्छ्वासायूंषि चासंज्ञिनः पर्याप्तस्य नव प्राणा भवन्ति, त एव वागुच्छ्वासरहिताः सप्त भवन्त्यपर्याप्तस्य । संज्ञिनः पर्याप्तस्य पुनः सर्वेऽपि दशप्राणा भवन्ति, अपर्याप्तस्य मनोवागुच्छ्वासरहितास्त एव सप्त भवन्तीति ।।१५१।।

जीवसमासन्निरूपयन्नाह—

सुहुमा वादरकाया ते खलु पज्जत्तया अपज्जत्ता ।
एइंदिया दु जीवा जिणेहिं कहिया चदुवियप्पा ।।१५२।।

ते पुनरेकेन्द्रिया बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ता जिनैश्चतुर्विकल्पाः कथिता इति कृत्वा चत्वारो जीवसमासा भवन्तीति ।।१५२।।

एकैंद्रियादि प्राणनिका स्व-स्वामि संबंध है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–इंद्रिय कहिये स्पर्शन इंद्रिय एक प्राण है । बलं कहिये कायबल, द्वितीय प्राण है । उच्छ्वास है सो तीसरा प्राण है । आयु है सो चौथा प्राण है—च्यारि प्राण एकैंद्रिय पर्याप्त कहै हैं । बहुरि अपर्याप्त कै उच्छ्वास रहित तीन प्राण हैं द्वींद्रिय पर्याप्तक कै स्पर्शन, रसन, कायबल, वचनबल, उच्छ्वास आयु-छह प्राण है । अपर्याप्त कैं वचन, उच्छ्वास रहित च्यारि प्राण हैं । त्रींद्रिय पर्याप्तक कैं स्पर्शन, रसन, घ्राण, कायबल, वचनबल, आयु, उच्छ्वास—सात प्राण हैं । अपर्याप्तककैं वचन, उच्छ्वास रहित ते ही पंच प्राण हैं चतुरिंद्रिय पर्याप्त कैं स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु कायबल, वचनबल, उच्छ्वास, आयु—आठ प्राण हैं । अर्प्याप्तक कै वचन, उच्छ्वास रहित ते ही छह प्राण हैं । असंज्ञी पर्याप्तक कै पंच इंद्रिय, कायबल, वचनबल, उच्छ्वास, आयु—यह नव प्राण हैं । बहुरि अपर्याप्तक कैं वचन, उच्छ्वासरहित ते ही सात प्राण हैं । बहुरि संज्ञी पर्याप्तक कै समस्त दश प्राण हैं । अपर्याप्तक कै मन, वचन, उच्छ्वास रहित ते ही सात प्राण है ।।१५१।।

जीवसमास हैं, तिनहि निरूपण करते संतै कहै हैं—

अर्थ–जिन भगवाननैं एकैंद्रिय जीव सूक्ष्म, वादर, पर्याप्त, अपर्याप्त अैंसे च्यारि प्रकार कहे । याकरि च्यारि जीवसमास होय हैं ।।१५२।।

शेषजीवसमासान प्रतिपादयन्नाह—

पज्जत्तापज्जत्ता वि होंति विगलिंदिया दु छब्भेया ।
पज्जत्तापज्जत्ता सण्णि असण्णीय सा दु ।।१५३।

विकलेन्द्रिया द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाः पर्याप्तापर्याप्तभेदेन षड्भेदा भवन्ति तथा पंचेन्द्रियाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनः पर्याप्तापर्याप्तभेदेन चतुर्विकल्पा भवन्ति । एवमेते दश जीवसमासाः पूर्वोक्ताश्चवारः सर्व एते चतुर्दश जीवसमासा भवन्तीति ।।१५३।।

गुणस्थानानि प्रतिपादयन्ननन्तरं सूत्रद्वयमाह—

मिच्छादिट्ठी सासादणो य मिस्सो असंजदो चेव ।
देसविरदो पमत्तो अपमत्तो तह य णायव्वो ।।१५४।।
एत्तो अपुव्वकरणो अणियट्टी सुहुमसंपराओ य ।
उवसंतखीणमोहो सजोगिकेवलिजिणो अजोगी य ।।१५५।।

मिथ्या वितथाऽसत्या दृष्टिर्दर्शनं विपरीतैकान्तविनयसंशयाज्ञानरूपमिथ्यात्वकर्मोदयजनिता येषां ते मिथ्यादृष्टयोऽथवा मिथ्या वितथं तत्र दृष्टी रुचिः श्रद्धा प्रत्ययो येषां ते मिथ्यादृष्टयोऽनेकान्ततत्त्वपराङ्मुखाः । आसादनं सम्यक्त्वविराधनं सहासादनेन वर्त्तत इति सासादनो विनाशितसम्यग्दर्शनः,

---

आगै अवशेष जीवसमास हैं, तिनहि प्रतिपादन करते सतैं कहै हैं—

अर्थ–विकलैंद्रिया कहिये द्वींद्रिय, त्रींदिय, चतुरिंद्रिय, हैं, ते पर्याप्त, अपर्याप्त भेदकरि छह प्रकार है । बहुरि शेषा कहिये पंचैंद्रिय पर्याप्त, अपर्याप्त, संज्ञी, असंज्ञी—इन भेदकरि च्यारि प्रकार हैं । या प्रकार यह दश जीवसमास, पूर्वोक्त च्यारि—अैसे चौदह जीवसमास हैं ।।१५३।।

गुणस्थान हैं, तिनहि प्रतिपादन करतै उत्तरसूत्रद्वय हैं, ताहिं कहैं हैं—

अर्थ–१. मिथ्यादृष्टि–मिथ्या कहिये वितथ-असत्य है दृष्टि कहिये दर्शन, जो विपरीत, एकांत विनय, संशय अज्ञान रूप मिथ्यात्व कर्मके उदयजनित परिणाम जिनकै ते मिथ्यादृष्टि कहिये । अथवा मिथ्या जो वितथ, ता विषैं है दृष्टि कहिये रूचि, श्रद्धा, प्रतीति जिनकै तै मिथ्यादृष्टि कहिये । अनेकांत तत्त्वतैं पराङ्मुख अैसे जीव मिथ्यादृष्टि हैं ।

२. सासादन–आसादन नाम सम्यक्त्व विराधन का है । आसादनकरि सहित वर्तै सो सासादन । विनास कीया है सम्यकदर्शनजानैं, (और) नांही प्राप्त भया है मिथ्यात्वकर्म के उदय जनित परिणाम जाकैं किन्तु मिथ्यात्व कै सन्मुख अैसा सासादन गुणस्थानवर्ति है ।

३. सम्यग्-मिथ्यात्व–दृष्टि, श्रद्धा, रुचि—यह एकार्थ है । समीचिन बहुरि मिथ्या है दृष्टि (श्रद्धा) जाकै सो सम्यग्मिथ्यादृष्टि है सम्यग्मिथ्यात्व कर्म के उदय जनित है परिणाम जाकै अैसा जीव सम्यग्मिथ्यात्व के उदय प्राप्त स्पर्द्धकनिके क्षयतैं सत्ता मैं तिष्ठै तिनके उदयाभाव

अप्राप्तमिथ्यात्वकर्मोदयजनितपरिणामः, मिथ्यात्वाभिमुखः । दृष्टिः श्रद्धा रुचिः एकार्थः समीचीना च मिथ्या च दृष्टिर्यस्यासौ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः सम्यङ्मिथ्यात्वोदयजनितपरिणामः, सम्यक्त्वमिथ्यात्वयोरुदयप्राप्तस्पर्द्धकानां क्षयात् सतामुदयाभावलक्षणोपशमाच्च सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः । समीचीना दृष्टिः श्रद्धा यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः । असंयतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चासंयतसम्यग्दृष्टिः क्षायिकक्षापोयशमिकौपशमिकदृष्टिभेदेन त्रिविधः सप्तप्रकृतीनां क्षयेण क्षयोपशमेनोपशमेन च स्यात् । संयतश्चासंयतश्च संयतासंयतः, न चात्र विरोधः संयमासंयमयोरेकद्रव्यवर्तिनोः त्रसस्थावरनिबन्धनत्वात् अप्रत्याख्यानावरणस्य सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्सतां चोपशमात्प्रत्याख्यानावरणीयोदयाच्च संयमासंयमो गुणः । प्रकर्षेण प्रमादवंतः प्रमत्ताः सम्यग्यताः संयताः प्रमत्ताश्च ते संयताश्च प्रमत्तसंयताः, नात्र विरोधो यतः संयमो नाम हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्गुप्तिसमित्यनुरक्षितोऽसौ प्रमादेन विनाश्यत इति, प्रमत्तवचनम् अन्तदीपकत्वात् शेषातीतसर्वगुणेषु प्रमत्ताश्रितत्वं सूचयति, प्रमत्तसंयतः संयमोऽपि क्षायोपशमिकः संयमनिबन्धनः सम्यक्त्वापेक्षया क्षायोपशमिकगुणनिबन्धनः प्रमत्तसंयतः । पूर्वोक्तलक्षणेन प्रमत्तसंयता, अप्रमत्तसंयताः पंचदशप्रमादरहिताः, एषोऽपि क्षायोपशमिकगुणः प्रत्याख्यानावरणस्य कर्मणः सर्वघातिस्पर्द्धकानाम् उदयक्षयात् तेषामेव सतां पूर्ववदुपशमात्संज्वलनोदयाच्च । प्रत्याख्यानोत्पत्तेः आदिदीपकत्वाच्छेषाणां सर्वेषामप्रमत्तत्वम् । करणाः परिणामा, न पूर्वा अपूर्वा, अपूर्वाः करणा यस्यासौ अपूर्वकरणः, स द्विविधः उपशमकः, क्षपकः, कर्मणामुपशमनक्षपणनिबन्धनत्वात्, क्षपकस्य क्षायिको गुणः, उपशमकस्य क्षायिक

लक्षण उपशमतैं सम्यग्मिथ्यादृष्टि है ।

४. असंयत–समीचीन है दृष्टि कहिए श्रद्धा जाकै सो सम्यग्दृष्टि है, तथा जो संयत नांही सो असंयत, असा जो सम्यग्दृष्टि सो असंयत-सम्यग्दृष्टि है । सो क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक दृष्टि भेदकरि तीन प्रकार है । सप्त प्रकृति के क्षयोपशमकरि बहुरि उपशमकरि होय हैं ।

५. देशविरत–संयत-असंयत सो संयतासंयत (देशविरत) है । या विषैं विरोध नांही । एक द्रव्यवर्ती असे संयम-असंयम तिनकै विषैं त्रस-स्थावर का निबंधन (निमित्तक) कहिये कारणपणां है । यातैं अप्रत्याख्यानावरण के सर्वघाती स्पर्द्धकनिके उदय क्षयतैं, बहुरि सत् उपशमतै, बहुरि प्रत्याख्यानवरणीय के उदयतैं संयमासंयम गुण है ।

६. प्रमत्तसंयत–प्रकर्षकरि प्रमादवान् ते प्रमत्त कहिये । सम्यक् वा यतनवान् ते संयत कहिये । प्रमत्त कहिये असे जे संयत तै प्रमत्तसंयत कहिये, यामें विरोध नांही । संयतनाम संयम का है । सो कहा ? हिंसा, अनृत, स्तेय अब्रह्म, परिग्रहतैं विरति सो संयत गुप्ति बहुरि समितिनि-करि रक्षा कीया यह प्रमादकरि नांही विनाशिये है ।

प्रमत्त वचन है, सो अंतर्दीपकपनेतैं अवशेष, अतीत (पूर्वके) जे सर्व गुणस्थान तिन विषैं प्रमत्त का आश्रय है, ताहि सूचै है । प्रमत्त-संयत संयमहू क्षयोपशमिक संयम के निबंधन जो सम्यक्त्व ताकी अपेक्षाकरि क्षयोपशमिक, औपशमिक गुण निबंधन हैं ।

७. अप्रमत्तसंयत–पूर्वोक्त है लक्षण जिनका ते प्रमत्तसंयत हैं । नांही प्रमत्तसंयत हैं ते अप्रमत्तसंयत है । पंचदश (१५) प्रमादकरि रहित जानने । यह हू बहुरि क्षायोपशमिक गुण, प्रत्याख्यानावरण कर्म के सर्वघाती स्पर्द्धकनिके उदयतैं क्षयतैं सत्ता मैं विद्यमान तिनही के पूर्ववत् उपशमतै, बहुरि संज्वलन के उदयतैं प्रत्याख्यान की उत्पत्तितै है । आदि-दीपकपनैंतै शेष जे सर्वगुणस्थान तिनकैं अप्रमत्तपनां है।

८. अपूर्वकरण–करण कहिये परिणाम, पूर्व नांही ते अपूर्व कहिये । अपूर्व है करण जाकैं सो अपूर्वकरण कहिये । सो दोय प्रकार

औपशमिकश्च दर्शनमोहनीयक्षयमविधाय क्षपकश्रेण्यारोहणानुपपत्तेर्दर्शनमोहनीयक्षयोपशमाभ्यां विनोपशमश्रेण्यारोहणानुपलंभाच्च ।

समानसमयस्थितजीवपरिणामानां निर्भेदेन वृत्तिरथवा निवृत्तिर्व्यावृत्तिर्न विद्यते निवृत्तिर्येषां तेऽनिवृत्तयस्तैः सह चरितो गुणोऽनिवृत्तिर्गुणः बादरसाम्परायः, सोऽपि द्विविधः उपशमकः क्षपकः काश्चित्प्रकृतीरुपशमयति काश्चिदुपरिष्टादुपशमयिष्यतीति औपशमिकोऽयं गुणः, काश्चित्प्रकृतीः क्षपयति काश्चित् क्षपयिष्यतीति क्षायिकोऽयं गुणः, औपशमिकश्च क्षायिकः क्षायोपशामिकश्च । सूक्ष्मः साम्परायः कषायो येषां ते सूक्ष्मसाम्परायास्तैः सहचरितो गुणोऽपि सूक्ष्मसाम्परायः, स द्विविधः उपशमकः क्षपकः; सम्यक्त्वापेक्षया क्षपकः क्षपकस्य क्षायिको गुणः, औपशमिकस्य क्षायिको गुण, उपशमकस्य क्षायिक औपशमिकश्च काश्चिच्च प्रकृतीः क्षपयति क्षपयिष्यति क्षपिताश्चैव क्षायिकः, काश्चिदुपशमयति उपशमयिष्यति उपशमिताश्चेति औपशमिकः । मोहशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, उपशांतो मोहो येषां ते उपशांतमोहाः तैः सहचरितो गुण उपशान्तमोह उपशमिताशेषकषायत्वादौपशमिकः। क्षीणो विनष्टो मोहो येषां ते क्षीणमोहास्तैः सहचरितो गुणः क्षीणमोहः द्रव्यभावद्वैविध्यादुभयात्मकस्य मोहनीयस्य निरन्वयविनाशात्क्षायिकगुणा एते सर्वेऽपि

हैं—१. उपशमक, २. क्षपक । काहैतै ? कर्म के उपशमन, क्षपण कारणतैं क्षपक कै क्षायक गुण है । उपशमक कै क्षायिक बहुरि औपशमिक गुण है ।

दर्शन मोहनीय का क्षय है ताहि नांहीकरि क्षपकश्रेणी विषैं आरोहण की अनुपपत्ति है, यातै दर्शन मोहनीय के क्षय उपशम विनां उपशम क्षेणी विषैं आरोहण का अनुपलंभ है यातै । (अर्थात् दर्शनमोहनीय के क्षय या उपशम के बिना उपशमश्रेणी में आरोहण नहीं हो सकता ।)

९. **अनिवृत्तिकरण**–समान है समय स्थिति जिनकी अैसे जे जीव परिणाम तिनकी अभेदकरि वृत्ति अथवा निवृत्ति कहिये व्यावृत्ति। नांही विद्यमान है निवृत्ति जिनकैं ते अनिवृत्ति कहिये । तिनकरि सहचरित गुण सो अनिवृत्ति या नाम गुण कहिये । यह वादर-सांपराय है सो हू दोय प्रकार है—१. उपशमक, २. क्षपक । केतीक प्रकृतिनिकूं उपशमावै है, केतीक कूं आगै उपशमावैगा । अैसे यह औपशमिक गुण है । केतीक प्रकृतिनिकूं क्षपावै है, कैतेक प्रकृतिनिकूं क्षपावैगा-अैसे क्षायिक है । क्षपक कै क्षायिक ही है । उपशमक कै क्षायिक बहुरि क्षायोपशमिक गुण है ।

१०. **सूक्ष्मसाम्पराय**–सूक्ष्म है साम्पराय कहिये कषाय जिनकैं ते सूक्ष्मसांपराय हैं । तिन करि सहचरित गुण हू सूक्ष्मसांपराय कहिये। सो दोय प्रकार हैं—१. उपशमक, २. क्षपक । सम्यक्त्व की अपेक्षाकरि क्षपक कै क्षायिक गुण है । उपशमक कै क्षायिक गुण है । बहुरि औपशमिक गुण है । केतेक प्रकृतिनि कूं क्षपावै है ? कैतेक प्रकृतिनिकूं क्षपावैगा ? केतेक प्रकृतिनिकूं उपशमावै है ? केतीक प्रकृति कूं उपशमवैगा ? कैतीक प्रकृति उपशमायी ? सो औपशमिक कहिए है ।

११. **उपशान्तमोह**–मोह शब्द है, सो प्रत्येक संबंध करणां । उपशांत है मोह जिनके ते उपशांत मोह है । तिनकरिकै सहचरित गुण है सोहू उपशांतमोह है । उपशमाये जे अशेष कषाय तिनके भावतैं उपशमिक है ।

१२. **क्षीणमोह**–क्षीण कहिये विनष्ट भया है मोह जिनका ते क्षीणमोह हैं । तिनकरि सहचरितगुण हैं सो क्षीणमोह हैं । द्रव्य,

छद्मस्थाः । केवलं केवलज्ञानं तद्विद्यते येषां ते केवलिनः, सह योगेन वर्तन्त इति सयोगाः सयोगाश्च ते केवलिनश्च सयोगकेवलिनस्तैः सह चरितो गुणः सयोगकेवली, क्षपिताशेषघातिकर्मकत्वान् निःशक्तीकृतवेदनीयकर्मकत्वान नष्टाष्टकर्मावयवकत्वात् क्षायिकगुणः केवलिजिनशब्द उत्तरत्राप्यभिसंबध्यते काकाक्षितारकवत् । न विद्यते योगो मनोवचः कायपरिस्पंदो द्रव्यभावरूपो येषां तेऽयोगिनस्ते च ते केवलिजिनाश्चायोगिकेवलिजिनास्तैः सहचरितो गुणोऽयोगकेवलिनः क्षीणाशेषघातिकर्मकत्वान् निरस्यमानाघातिकर्मकत्वाच्च क्षायिको गुणः । च शब्दात् सिद्धा निष्ठिता निष्पन्ना निराकृताशेषकर्माणोः बाह्यार्थ-निरपेक्षानन्तानुपमसहजाप्रतिपक्षसुखा निःशेषगुणनिधानाश्चरमदेहात् किंचिन्न्यूनस्वदेहाः कोशविनिर्गतसायकोपमा लोकशिखरवासिनः ।।१५४-१५५।।

चतुर्दश गुणस्थानानि प्रतिपाद्य मार्गणास्थानानि निरूपयन्नाह—

गइ इंदिये च काये जोगे वेदे कसाय णाणे य ।
संजम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ।।१५६।।

गम्यत इति गतिः गतिकर्मोदयापादितचेष्टा, भवाद्भवांतरसक्रांतिर्वा गतिः; सा चतुर्विधा नरकगतितिर्यग्गतिमनुष्यगतिदेवगतिभेदेन । स्वार्थनिरतानीन्द्रियाणि, अथवा इन्द्र आत्मा तस्य लिंगमिन्द्रियम् इन्द्रेण [1]दृष्टमिति चेन्द्रियं; तद्विविधं द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं चेति, निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियं,

---

भाव के द्विविधपनें तैं उभयरूप मोहनीय के निर्मूल विनाशतैं क्षायकगुण है, सो सर्व ही छद्मस्थ है ।

१३. संयोगकेवली–केवल कहिये केवलज्ञान, सो है विद्यमान जिनकैं ते केवली हैं । योगकरि सहित वरतैं ते सयोग है । सयोग अैसे केवली बहुरि जिन ते सयोग केवलि जिन हैं । तिनकरि सहचरितगुण है सो सयोगिकेवलि जिन है । क्षपाये जे समस्त घातियाकर्म तिसके भावतैं शक्तिकरि रहित कीया (हुवा) जो वेदनीय, ताकै—अवयव तिनपनैंतैं क्षायिकगुण है । केवलीशब्द अर 'जिन' शब्द का आगैं हू काकाक्षितारक न्याय काकनेत्र ते तारक ज्यौं संबंध करणां ।

१४. अयोगकेवली–नांही विद्यमान हैं योग कहिये मन, वचन, काय का परिस्पंद, द्रव्य-भाव रूप जिनकैं ते आयोगी हैं । अयोग अैसे जे केवलिजिन ते अयोगकेवलिजिन हैं । तिनकरिकै सहचरित गुण, सोहू अयोगिकेवलिजिन हैं । क्षीणभये जे समस्त घातियाकर्म तिसपनैं तैं, बहुरि नष्ट होते दे समस्त अघातियाकर्म, तिसपनैंतै क्षायिक गुण हैं ।

'च' शब्दतैं सिद्ध हू निष्पन्ना कहिये सिद्ध भये । कैसे हैं सिद्ध ? निराकरण कीये हैं समस्त कर्म जिनि, बाह्य पदार्थतैं निरपेक्ष, अनंत, अनुपम, सहज, अप्रतिपक्ष है सुख जिनकैं, समस्त गुण तिनके निधान, चरम-देहतैं किंचित् न्यून है स्वदेह जिनका, कोशतैं निकस्या जो बाण तिस समांन लोक शिखर विषैं निवास करते अैसे हैं ।।।१५५।।

चौदह गुणस्थान हैं, तिनहि प्रतिपादनकरि मार्गणास्थान है, तिनहि निरूपण करते कहै हैं—

अर्थ–१. गति–गमन करिये सो गति, गतिकर्म के उदयकरि उपजाई अैसी चेष्टा सो गति है । अथवा भवतैं भवांतर विषैं गमन सो गति, सो गति १. नरकगति, २. तिरजंच गति, ३. मनुष्य गति, ४. देवगति—इन भेदनकरि च्यारि प्रकार हैं ।

२. इन्द्रिय–स्वकीय विषय विषैं अनुरक्त इंद्रिय अथवा इंद्रिय जो आत्मा ताका लिंग कहिये चिन्ह सो इंद्रिय अथवा इंद्र जो आत्मा ताकरि युक्त । सो इंद्रिय दोय प्रकार है—१. द्रव्यैंद्रिय बहुरि २. भावेंद्रिय । निवृत्ति अर उपकरण यह द्रव्येंद्रिय है । लब्धि अर उपयोग

---

१. क० जुष्ट ।

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियं, कर्मणा या निर्वर्त्यते सा निवृत्तिः, सापि द्विविधा बाह्याभ्यन्तरभेदेन, तत्र लोकप्रमितविशुद्धात्मप्रदेशानां प्रतिनियत-चक्षुरादीन्द्रियस्थानेनावस्थितानामुत्सेधांगुलस्यासंख्येयभागप्रमितानां वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्तिरात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशभाक्षु यः प्रतिनियतचक्षुरादिसंस्थानो नाम कर्मोदयापादितावस्थाविशेषः पुद्‌गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृत्तिः, उपक्रियतेऽनेनेत्युपकरणं, येन निर्वृत्तेरुपकारः क्रियते तदुपकरणं, तदपि द्विविधं, बाह्याभ्यन्तरभेदात् तत्र अभ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलादिकं, बाह्यं अक्षिपक्ष्मपत्रद्वयादिः ; इन्द्रियनिर्वृत्तिहेतुः क्षयोपशमविशेषो लब्धिर्यत्संनिधानादात्मा द्रव्येन्द्रियं प्रति व्याप्रियते, तन्निमित्तं प्रतीत्योत्पद्यमान आत्मनः परिणाम उपयोगः कार्ये कारणोपचारात्; तदिन्द्रियं पंचविधं [1]स्पर्शनादिभेदेन तानि विद्यन्ते येषां ते एकेन्द्रियादयः । आत्मवृत्त्युपचितपुद्‌गलपिंडः कायः, पृथिवीकायादिनामकर्मजनितपरिणामो वा सः, पृथिवीकायादिभेदेन षड्विधः । आत्मप्रवृत्तिसंकोचविकोचो

यह भावेंद्रिय है । कर्मकरि जो रचिये सो निवृत्ति । सोहूं बाह्य, आभ्यंतर भेदकरि दोयप्रकार है—तहां लोकप्रमाण विशुद्ध जे आत्मप्रदेश प्रतिनियत चक्षु आदि इंद्रिय स्थानकरि अवस्थित उत्सेधांगुल के असंख्यातवैं भागप्रमाण, तिनकी वृत्ति कहिये प्रवृत्ति सो अभ्यंतर निवृत्ति है। आत्मप्रदेशनि विषैं इंद्रिय संज्ञा का भजवे वारा जो प्रतिनियत चक्षु आदि संस्थान विषैं नामकर्म के उदयतैं उपजाया है अवस्था विशेष जानैं—ऐसा जो पुद्‌गलप्रचय सो बाह्य निवृत्ति है । उपकार करिये जाकरि सो उपकरण, जाकरि निवृत्ति का उपकार करिये सो उपकरण । सो हू बाह्य, आभ्यंतर भेदतैं दोय प्रकार है । तहां कृष्ण, शुक्ल, मंडलादिक आभ्यंतर जाननां । अक्ष का पलक-जुगल वा फणीकाक्ष्येपलकूं[2] आदि दे बाह्य हैं ।

इंद्रिय निवृत्ति कूं कारण क्षयोपशम विशेष सो लब्धि जाके सामीप्यतैं आत्मा द्रव्येंद्रिय प्रतिव्यापार करै, तिस निमित्त कूं प्रतीतिकरि उपज्या जो आत्मा का परिणाम सो उपयोग कहिये । कार्य विषैं कारण का उपचार है यातैं, सो इंद्रिय चक्षु आदि भेदकरि पांच प्रकार हैं, ते इंद्रिय हैं विद्यमान जिनकै ते एकेंद्रियादि कहिये ।

३. काय–आत्मा की प्रवृत्ति करि उपचित पुद्‌गलपिंड सो काय वा पृथिवीकाय आदि नामकर्मकरि उपजाय परिणाम । सो काय पृथिवीकाय आदि भेदकरि सो छह प्रकार हैं ।

४. योग–आत्मा की प्रवृत्ति का संकोच वा विस्तार सो योग वा (अथवा) मन, वचन, काय के आधार केबलकरि जीव प्रदेशनिका परिस्पंद सो जोग मन, वचन काय योग के क्रमशः च्यारि, च्यारि, सात भेदकरि, सो जोग (४+४+७=) पंदरह प्रकार हैं ।

भावार्थ–मन के च्यारि, वचन के च्यारि, काय के सात—ऐसैं जोग पंदरह (१५) या प्रकार जानने ।

५. वेद–आत्मा की प्रवृत्ति विषैं मैथुन रूप संमोह का उत्पाद जो उत्पत्ति सो वेद स्त्री, पुं, नपुंसक भेदकरि सो तीन प्रकार हैं ।

६. कषाय–सुख-दुःख रूप हैं बहुत धान्य जा विषैं, ऐसा जो कर्मरूप क्षेत्र ताहि प्रकर्षण करै, ते कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ भेदकरि च्यारि प्रकार हैं ।

७. ज्ञान–भूतार्थ जो यथार्थ ताका प्रकाशक सो ज्ञान वा आत्मा पदार्थ का ग्राहक सो ज्ञान । सो मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययः, केवल—भेद करि पंच प्रकार हैं । अययार्थ का ग्राहक सो अज्ञान सो १. मति-अज्ञान, २. श्रुत-अज्ञान, ३. विभंगज्ञान के भेदकरि तीन प्रकार हैं ।

---

१. क० चक्षुरादिभेदेन । २. ब० वा फणीकामलकूं ।

८६

योग:, मनोवाक्कायावष्टंभबलेन जीवप्रदेशपरिस्पन्दो वा योग:, स: पंचदशभेदो मनोवचनकायश्चतुश्चतुसप्तभेदेन । आत्मप्रवृत्तिमैथुनसंमोहोत्पादो वेद: स्त्रीपुंनपुंसकभेदेन[1] त्रिविध: । [2]क्रोधादिपरिणामवशेन कषंतीति कषाया:, क्रोधमानमायालोभभेदेन चतु:प्रकारा: । भूतार्थप्रकाशकं ज्ञानम् आत्मार्थोपलंभकं वा तत्पंचविधं मतिश्रुतावधिमन:पर्ययकेवलभेदेनायथार्थोपलंभकर्मजातं तत् त्रिविधं मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं विभंगज्ञानभेदेन । व्रतसमितिकषायदण्डेन्द्रियाणां रक्षणपालननिग्रहत्यागजय: संयम:, स: सप्तविध: सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातभेदेन असंयम: संयमासंयमश्च । प्रकाशवृत्तिर्दर्शनं, तच्चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनभेदेन चतुर्विधम् । आत्मप्रवृत्तिसंश्लेषकरी लेश्या, कषायानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्वा, सा च षड्विधा कृष्णनीलकापोततेज:पद्मशुक्ललेश्याभेदेन । निर्वाणपुरस्कृतो भव्य: सम्यग्दर्शनादिग्रहणयोग्यस्तद्विपरीतोऽभव्योऽनाद्यनिधनकर्मबन्ध: । तत्त्वरुचि: सम्यक्त्वं प्रशमसंवेगानुकंपास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं वा तत्क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकभेदेन त्रिविधं, मिथ्यात्वसासादनसम्यङ्मिथ्यात्वभेदेन च तद्विपरीतं त्रिविधं। शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राहिक: संज्ञी तद्विपरीतोऽसंज्ञी । शरीरप्रायोग्यपुद्गलपिंडग्रहणमाहार: स विद्यते यस्य स आहारी तद्विपरीतोऽनाहारी । अत्र सर्वोपि विभक्तिनिर्देश: प्रथमाविभक्त्यर्थे द्रष्टव्योऽथवा प्राकृतबलादेकारादयश्चशब्द: सर्वविशेषसंग्रहार्थ: समुच्चयार्थो वा ।।१५६।।

---

८. संयम–१. व्रत, २. समिति, ३. कषाय, ४. दंड, ५. इंद्रिय—इनका अनुक्रमकरि (क्रमश:) रक्षण, पालन, निग्रह, त्याग, जय है ते संयम है अथवा भलै प्रकार त्याग सो संयम कहिये । सो १. सामायिक, २. छेदोपस्थापन, ३. परिहारविशुद्धि, ४. सूक्ष्मसांपराय, ५. यथाख्यात भेदकरि तथा ६. असंयम, बहुरि ७. संयमासंयम—ऐसे सप्त प्रकार हैं ।

९. दर्शन–प्रकाश की प्रवृत्ति (प्रकाशवृत्ति) सो दर्शन है । सो १. चक्षु, २. अचक्षु, ३. अवधि, ४. केवल—इन दर्शनि के भेदकरि च्यारि प्रकार है ।

१०. लेश्या–आत्मप्रवृत्ति विषैं संबंधकारिणी सो लेश्या है । अथवा कषायनि करि अनुरंजित योगनि की प्रवृत्ति सो लेश्या है। सो कृष्ण, नील, कपोत, तेज: पद्म, शुक्ल—इन लेश्यानि के भेदकरि छह प्रकार हैं ।

११. भव्य–निर्वाण है आगामी होणहार जाकैं, बहुरि सम्यग्दर्शनादिक के ग्रहण जोग्य सो भव्य, तातैं विपरीत सो अभव्य,अनादि अनंत है कर्मबंध जाकैं ।

१२. सम्यक्त्व–तत्त्वनिविषैं रुचि सो सम्यक्त्व अथवा प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य—इनकी प्रगटता है लक्षण जाका सो सम्यक्त्व । सो सम्यक्त्व—क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशामिक भेदकरि तीन प्रकार हैं । बहुरि मिथ्यात्व, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्व—इन भेदनिकरि तिनतैं विपरीत तीन प्रकार हैं ।

१३. संज्ञी–शिक्षा, क्रिया, उपदेश, आलाप—इनका ग्राहक सो संज्ञी है, तातैं विपरीत असंज्ञी है ।

१४. आहार–शरीर के जोग्य पुद्गलपिंड का ग्रहण सो आहार है । सो है विद्यमान जाकै सो आहारी । जातै विपरीत सो अनाहारी।इहां सर्वहू विभक्ति का निर्देश प्रथमा विभक्ति का अर्थ विषैं जाननां । अथवा विभक्ति रहित है । प्राकृत के बलतैं एकारादिक होय है । च शब्द है सो सर्व विशेष के ग्रहण अर्थि है अथवा समुच्चयार्थ है ।।१५६।।

---

१. क० नपुंसकत्वेन भेदेन ।

२. क० सुखदु:खसबहुलस्य कर्मक्षेत्रं कृषतीति कषाय: क्रोधमानमाया लोभभेदेन चतु:प्रकार ।

एवं चतुर्दश मार्गणास्थानानि प्रतिपाद्य तत्र जीवगुणस्थानानि निरूपयन्नाह—

जीवाणं खलु ठाणाणि जाणि गुणसण्णिदाणि ठाणाणि ।
एदे मग्गणठाणेसु चेव परिमग्गदव्वाणि ।।१५७।।

जीवानां यानि स्थानानि गुणसंज्ञकानि च यानि स्थानानि तान्येतानि मार्गणास्थानेषु नान्येषु स्फुटं मार्गे कथयितव्यानि यथासम्भवं द्रष्टव्यानीत्यर्थः ।।१५७।।

तदेव दर्शयन्नाह—

तिरियगदीए चोद्दस हवंति सेसाणु जाण दो दो दु ।
मग्गणठाणस्सेदं णेयाणि समासठाणाणि ।।१५८।।

या प्रकार चौदह मार्गणा स्थान हैं, तिनहि प्रतिपादनकरि, तहां जीवस्थान गुणस्थान है, तिनहि निरूपण करते कहैं हैं—

अर्थ–जे जीवनि के स्थान हैं, बहुरि जे गुणसंज्ञक स्थान हैं, ते ये दोउ मार्गणास्थान विषैं ही लगावणे, कथन करणे, यथासंभव देखने, तिसही कूं दिखावते संते कहै हैं—

अर्थ–तिर्यंचनिकी जो गति, ता विषैं जीवसमास स्थान चौदह ही हैं । काहै तैं ? सर्व एकेंद्रियनि कैं बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रींद्रिय, चतुरींद्रियनिकैं पर्याप्त-अपर्याप्त, पंचेंद्रिय संज्ञी-असंज्ञी पर्याप्त—इनका संभव है यातैं । बहुरि शेषासु कहिये नरक, मनुष्य,

---

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में इस गाथा के उत्तरार्ध में अन्तर है, तथा सभी मार्गणाओं में जीवसमासों को बताने के लिए पृथक् ११ गाथाएँ और हैं—

तिरियगदीए चोदस हवंति सेसाणु जाण दो दो दु ।
एइंदिएसु चउरो दो दो विगलिंदिएसु हवे ।।

अर्थ–तिर्यंच गति में चौदह जीवसमास होते हैं, शेष—तीनों गतियों में दो-दो होते हैं ऐसा जानो । एकेन्द्रियों में चार जीवसमास होत हैं एवं विकलेन्द्रियों में भी प्रत्येक के दो-दो जीवसमास होते हैं ।

पंचिदिंएसु चत्तारि होंति काये तहा पुढवि आदीसु ।
दस तसकाये भणिया मणजोगे जाण एक्केक्कं ।।

अर्थ–पंचेन्द्रिय में चार जीवसमास हैं । तथा कायमार्गणा में पृथिवी आदि, पाँच स्थावर काय में चार जीवसमास हैं एवं त्रसकाय में दस जीवसमास होते हैं । योगमार्गणा में मनोयोग में प्रत्येक में एक-एक जीवसमास है ।

तिण्हं वचिजोगाणं एक्केक्कं सच्चमोस वाज्जित्ता ।
तस्स य पंचम भणिया पज्जत्ता जिणवरिंदेहिं ।।

अर्थ–असत्य—मृषा को छोड़कर तीन वचन योग में प्रत्येक में एक-एक जीवसमास है तथा असत्यमृषा नाम अनुभव वचनयोग में पाँच पर्याप्तक जीवसमास होते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

तिरश्चां गतिस्तिर्यग्गतिस्तस्यां तिर्यग्गतौ जीवसमासस्थानानि चतुर्दशैवापि भवन्ति सर्वेषामेकेन्द्रियबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तपंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तानां संभवात् । शेषासु पुनरकमनुष्यदेवगतिषु द्वौ द्वौ संज्ञिपर्याप्तापर्यापतौ जीवसमासौ भवतः न तासु तृतीयं सम्भवति, एवं सर्वेषु मार्गणास्थानेषु इन्द्रियादिषु एतानि जीवसमासस्थानानि परमागमानुसारेणानेतव्यान्यन्वेषितव्यानीति । तद्यथा—एकेन्द्रियेषु बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ताश्चत्वारो जीवसमासाः, द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियेषु पर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ स्वकीयौ जीवसमासौ, पंचेन्द्रियेषु संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताश्चत्वारो जीवसमासाः, पृथिवीकायिकाप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिकवनस्पतिकायिकेषु एकैकशो बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ताश्चत्वारस्त्रसकायिकेषु द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिनः प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्ता दस जीवासमासाश्चतुर्षु मनोयोगेषु सत्यमनोयोगमृषामनोयोगसत्यमृषामनोयोगेषु, अनुभयमनोयोगेषु संज्ञिपर्याप्तक एको जीवसमासः,

देव गतिनि विषैं संज्ञी पर्याप्त अर अपर्याप्त—अैसे दोय दोय जीव समास हैं । तिन विषैं तीसरा जीवसमास नांही संभवै हैं । अैसैं सर्व मार्गणास्थान विषैं इंद्रियादिकनि विषैं ये जीवसमास-स्थान परमागम के अनुसारकरि यथासंभव लगावणे जाननें । सो ही कहै है ।

एकैंद्रियनि विषैं बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त-च्यारि जीवसमास हैं । द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रियनि विषैं दोय अपने पर्याप्त, अपर्याप्त जीवसमास हैं । पंचैंद्रियनि विषैं संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त, अपर्याप्त-च्यारि जीवसमास हैं ।

ओरालियस्स सत्त या पज्जत्ता इयर अट्ठ मिस्सस्स ।
वेउव्विय मिस्सस्स य पत्तेयं जाण एक्केक्कं ।।

अर्थ–औदारिक काय योग में सात पर्याप्तक जीवसमास हैं, औदारिक मिश्र में सातों अपर्याप्त और एक संज्ञी पर्याप्त ये आठ हैं, वैक्रियिक में और वैक्रियिकमिश्र में एक-एक जीवसमास हैं ।

आहारदुगस्सेगं कम्मइए अट्ठ अपरिपुण्णा दु ।
थीपुरिसेसु य चउरो णवुंसगे चोदसा भणिया ।।

अर्थ–आहारक और आहारकमिश्र में एक जीवसमास है, कार्मण काययोग में सात अपर्याप्त और एक पर्याप्त ये आठ जीवसमास हैं । स्त्रीवेद और पुरुषवेद में चार-चार तथा नपुंसक वेद में चौदह ही जीवसमास हैं ।

चोद्दस कसायमग्गे मदिसुदअवधिम्हि जाण दो दो दु ।
मणपज्जयम्हि एक्कं एक्कदुगे केवले णाणे ।।

अर्थ–कषायमार्गणा में चौदह जीवसमास होते है जबकि मति, श्रुत, अवधि में दो-दो, मनःपर्ययज्ञान में एक और केवलज्ञान में एक संज्ञी पर्याप्त है तथा समुद्घात में एक संज्ञी अपर्याप्त हैं ।

मदिअण्णाणे चोद्दस सुदम्हि तह एक्क वोहिविवरीदो ।
सामायियादि एक्कं असंजमे चोदसा होंति ।।

अर्थ–मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान में चौदह जीवसमास, कुअवधि में एक, सामायिक आदि पाँचों संयमों में एक, संयमासंयम में एक और असंयम में चौदह जीवसमास हैं ।

चक्खुम्हि दंसणम्हि य तिस छा वा चोद्दसा अचक्खुम्हि ।
ओधिम्हि दोण्णि भणिया एक्कं वा दोण्णि केवलगे ।।

अर्थ–चक्षुर्दर्शन में तीन अथवा छह जीवसमास हैं अर्थात् अपर्याप्त की अपेक्षा से भी तीन होने से छह हैं, यद्यपि अपर्याप्त अवस्था में चक्षुदर्शन

त्रिषु वाग्योगेषु सत्यमृषोभयवाग्योगेषु संज्ञिपर्याप्त एक, अनुभयवाग्योगे द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिनः पर्याप्ताः पञ्च, औदारिककाययोगे बादरसूक्ष्मविकलेन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिनः पर्याप्ताः सप्त, औदारिकमिश्रकाययोगे त एव किन्त्वपर्याप्ताः संज्ञिपर्याप्ताश्चष्टौ । वैक्रियिककाययोगे संज्ञी पर्याप्त एकः, वैक्रियिकमिश्रकाययोगे निर्वृत्यपर्याप्तापेक्षया संज्ञ्यपर्याप्ता लब्ध्यपर्याप्तापेक्षया लब्ध्यपर्याप्ताः । आहाराहारमिश्रयोरेक एव संज्ञी पर्याप्तः । कार्मणकाययोगे सप्तापर्याप्तः अष्टमः संज्ञी पर्याप्तलोकपूरणस्थः ।

स्त्रीवेदे पुंवेदे च संज्ञ्यसज्ञ्यपर्याप्तपर्याप्ताश्चत्वारः । नपुंसकवेदे च चतुर्दशापि । क्रोधमानमायालोभेषु चतुर्दशापि मत्यज्ञानश्रुताज्ञानयोश्चतुर्दशापि, मतिश्रुतावधिज्ञानेषु द्वौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ निर्वृत्यपर्याप्तापेक्षया, केवलमनःपर्ययविभंगज्ञानेषु संज्ञी पर्याप्त एकः ।

पृथिवीकायिक, अप्‌कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिकनि विषैं एक-एक के विषैं बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त—अैसै चार-चार जीवसमास हैं । त्रसकायिकनि विषैं द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय, संज्ञी-असंज्ञीनिकै प्रत्येक पर्याप्त-अपर्याप्त (ये दो-दो जीवसमास होने से) अैसैं दस जीवसमास हैं ।

च्यारि मनोयोग, जे—१. सत्यमनोयोग, २. मृषामनोयोग, ३. सत्यमृषा-मनोयोग, ४. असत्यमृषा-मनोयोग—तिन विषैं संज्ञी पर्याप्तक एक जीवसमास है । तीन वाक्‌योग जे—१. सत्यवाक्‌योग, २. मृषावाक्‌योग, ३. उभयवाग्योग-तिन विषैं एक संज्ञी पर्याप्तक जीवसमास है । असत्यमृषा (अनुभय) वाग्योग विषैं द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, संज्ञी, असंज्ञी पर्याप्त—पांच जीवसमास हैं ।

लब्धिरूप है, उपयोगरूप नही है । अचक्षुर्दर्शन में चौदह हैं, अवधिदर्शन में एक है और केवलदर्शन में एक अथवा दो हैं ।

किण्हादीणं चोद्दस तेउस्स या दोण्णि होंति विण्णेया ।
पउमसुक्केसु दो दो चोद्दस भव्वे अभव्वे या ।।

अर्थ–कृष्ण, नील, कापोत में चौदह-चौदह, पीत में दो पद्म और शुक्ल में दो-दो तथा भव्य-अभव्य में चौदह जीवसमास हैं ।

उवसमवेदयखइये सम्मत्ते जाण होंति दो दो दु ।
सम्मामिच्छत्तम्मि य सण्णी खलु होइ पज्जत्तो ।।

अर्थ–उपशम, वेदक, क्षायिक सम्यक्त्व मे दो-दो तथा सम्यग्मिथ्यात्व में एक संज्ञी पर्याप्त जीवसमास है ।

पज्जत्तापज्जत्ता सासणसम्मम्हि सत्त णायव्वा ।
मिच्छत्ते चोद्दसया दो बारस सण्णि इदरम्हि ।।

अर्थ–सासादन में सूक्ष्म अपर्याप्त को छोड़कर छह अपर्याप्त और एक सैनी पर्याप्त, ऐसे सात जीव समास हैं । मिथ्यात्व मे चौदह, संज्ञी में दो और असंज्ञी में बारह जीवसमास होते हैं ।

सुहुसदुगं वज्जित्ता से से पज्जत्तगा य छच्चेव ।
सण्णीदो पज्जत्तं पि एव सत्तेव सासणे णेया ।।

अर्थ–सासादन गुणस्थान में सूक्ष्मद्विक—पर्याप्त-अपर्याप्त को छोड़कर शेष छह अपर्याप्त, और संज्ञी पर्याप्तक—ये सात जानना ।

आहारम्हि य चोद्दस इदरम्हि या अट्ठ अपरिपुण्णा दु ।
जीवसमासा एदे गइयादीमग्गणे भणिया ।।

अर्थ–आहारमार्गणा में चौदह, अनाहारक में आठ अर्थात् सात अपर्याप्त और ओक संज्ञी पर्याप्त ऐसे आठ जीवसमास होते हैं ।

सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातसंयमेषु संयमासंयमे च संज्ञी पर्याप्त एक एव, असंयमे च चतुर्दशापि । चक्षुर्दर्शने चतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्ता पर्याप्ताः षड्, अपर्याप्तकालेऽपि चक्षुर्दर्शनं क्षयोपशमस्य सद्भावादुपयोगः पुनर्नास्त्येव अचक्षुर्दर्शने चतुर्दशाप्यवधिदर्शने द्वौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ, केवलदर्शने च संज्ञिपर्याप्त एक एव, कृष्णनीलकापोतलेश्यासु चतुर्दशापि, तेजःपद्मशुक्ललेश्यासु द्वौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ, अभव्यभव्यसिद्धेषु चतुर्दशापि, क्षायोपशमिकक्षायिकसासादनसम्यक्त्वकेषु उपशमश्रेण्यपेक्षया औपशमिकसम्यक्त्वे च द्वौ संज्ञिपर्याप्तपर्याप्ता सम्यङ्मिथ्यात्वे प्रथमसम्यक्त्वे च पर्याप्तः संज्ञी एक एव, मिथ्यात्वे चतुर्दशापि, संज्ञिषु संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ[1], आहारिषु चतुर्दशापि अनाहारिषु सप्तापर्याप्ताः अष्टमः संज्ञीपर्याप्तः केवली । सर्वत्र जीवसमासा इति संबन्धः ।।१५८।।

औदारिक काययोग विषैं बादर, सूक्ष्म, एकेंद्रिय, विकलैंद्रिय जो द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय संज्ञी, असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त कैं सात हैं । औदारिकमिश्र-काययोग विषैं ते ही सात हैं । इहां विशेष है—संज्ञी पर्याप्त बहुरि अपर्याप्त—अैसे आठ है । वैक्रियिकमिश्र-काययोग विषैं संज्ञी पर्याप्त ही है । वैक्रियिक-मिश्र-काययोग विषैं निर्वृत्य पर्याप्तक की अपेक्षाकरि संज्ञी अपर्याप्त (एक जीवसमास) है, लब्ध्य-पर्याप्त की अपेक्षाकरि अपर्याप्त नांही । आहार, आहारमिश्र विषैं एक ही संज्ञी-पर्याप्त है । कार्मण-काययोग विषैं सात अपर्याप्त हैं । लोकपूरण विषैं तिष्ठता आठवां संज्ञी पर्याप्त है ।

स्त्रीवेद विषैं, बहुरि पुंवेद विषैं संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त, अपर्याप्त—च्यारि जीवसमास हैं । नपुंसक वेद विषैं चौदह ही जीवसमास हैं । क्रोध, मान, माया, लोभ—च्यारि कषायनि विषैं चौदह ही जीवसमास हैं । मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान विषैं चौदह ही जीवसमास हैं। मति, श्रुत, अवधिज्ञान विषैं दोय संज्ञी पर्याप्त-अपर्याप्त हैं । निवृत्य पर्याप्त की अपेक्षाकरि केवलज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, विभंगज्ञान, विषैं संज्ञी-पर्याप्तक एक जीवसमास है ।

१. सामायिक, २. छेदोपस्थापन, ३. परिहारविशुद्धि, ४. सूक्ष्मसापंराय, ५. यथाख्यातसंयमनिविषैं बहुरि संयमासंयम विषैं संज्ञीपर्याप्तक एक ही जीवसमास है । असंयम विषैं चौदह ही हैं । चक्षुदर्शन विषैं चतुरिंद्रियसंज्ञीअसंज्ञी, पंचैंद्रिययह पर्याप्त-अपर्याप्त—अैसें छह जीवसमास हैं । अपर्याप्त काल विषैं हू चक्षुदर्शन के क्षयोपशम का सद्भाव है । यातैं (उस अवस्था में) बहुरि उपयोग निश्चयकरि नांही है । अचक्षुदर्शन विषैं चौदह ही जीवसमास हैं । अवधिदर्शन विषैं दोय-संज्ञी पर्याप्त, अपर्याप्त हैं । केवलदर्शन विषैं संज्ञी-पर्याप्त एक ही जीवसमास है । संज्ञी पर्याप्त १. कृष्ण, २. नील, ३. कापोत—तीन लेश्यानि विषैं चौदह ही जीवसमास हैं । तेज, पद्म, शुक्ल लेश्यानि विषैं दोय संज्ञी-पर्याप्त, अपर्याप्त हैं । भव्य सिद्धि विषैं अभव्य सिद्धि विषैं चौदह ही जीवसमास हैं । १. क्षायोपशमिक, २. क्षायिक, ३. सासादन—इन सम्यक्त्वनि विषैं उपशम श्रेणी की अपेक्षाकरि औपशमिक कैं सम्यक्त्व विषैं दोय संज्ञी-पर्याप्त, अपर्याप्त जीवसमास हैं । सम्यक्मिथ्यात्व विषैं, उपशम (प्रथमोपशम) सम्यक्त्व विषैं संज्ञी-पर्याप्त एक ही जीवसमास है । मिथ्यात्व विषैं चौदह ही जीवसमास एकैंद्रिय विकलैंद्रियनिकी अपेक्षाकरि हैं । संज्ञीनि विषैं संज्ञी पर्याप्त, अपर्याप्त दोय जीवसमास हैं । असंज्ञीनि विषैं असंज्ञी पर्याप्त, अपर्याप्त दोय जीवसमास हैं अथवा बारह हैं ।

आहारीनि विषैं चौदह ही हैं । अनाहारीनि विषैं सात अपर्याप्त हैं तथा आठवां संज्ञी-पर्याप्त केवली है । (अर्थात् यहाँ यह संज्ञी पर्याप्त जीवसमास केवली के कार्मण काययोग की अपेक्षा से हैं ।) सर्वत्र जीवसमास अैसा संबंध है ।।१५८।।

---

१. असंज्ञिषु शेषा द्वादशजीवसमासाः ।

इति मार्गणास्थानेषु जीवसमासान् प्रतिपाद्य गुणस्थानानि प्रतिपादयन्नाह—

सुरणारयेसु चत्तारि होंति तिरियेसु जाण पंचेव ।
मणुसगदीएवि तहा चोद्दसगुणणामधेयाणि ।।१५९।।

सुरेषु नारकेषु च मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतपर्यन्तानि चत्वारि भवन्ति, तिर्यक्षु तान्येव कथितानि[1] संयतासंयतश्च पंच भवन्ति, मनुष्यगतौ पुनः चतुर्दशापि मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगपर्यन्तानि गुणस्थानानि गुणस्थानानि भवन्ति, इत्येवं सर्वासु मार्गणासु योज्यम् । तद्यथा—एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया-संज्ञिपंचेन्द्रियेषु सर्वेषु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमेकमेव, संज्ञिषु चतुर्दशापि गुणस्थानानीति सर्वत्र संबन्धः ।

पृथिवीकायाप्कायतेजःकायवायुकायवनस्पतिकायेषु मिथ्यादृष्टसंज्ञकमेकं, द्वीन्द्रियाद्यसंज्ञिपर्यन्तत्रसेष्वेकमेव मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं, संज्ञिषु त्रसेषु चतुर्दशापि, सत्यमनोयोगासत्यमृषामनोयोगसत्यवाग्योगासत्यमृषावाग्योगेषु मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगपर्यन्तानि, मृषामनोयोगसत्यमृषामनोयोगमृषावाग्योगसत्यमृषावाग्योगेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि, औदारिककाययोगे मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तानि, औदारिकमिश्रकार्मणकाययोगे मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसम्यग्दृष्टिसयोग-केवलिसंज्ञकानि चत्वारि, वैक्रियिककाययोगे मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतांतानि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगे तान्येव सम्यङ्मिथ्यादृष्टिरहितानि, आहाराहारमिश्रयोगयोरेकं प्रमत्तगुणस्थानम् ।

मार्गणास्थानविषैं जीवसमासनिकूं प्रतिपादनकरि गुणस्थान हैं, तिनहि प्रतिपादन करते संते कहै हैं—

अर्थ–देवनि विषैं, नारकनि विषैं मिथ्यादृष्टीनिकूं आदि दे असंयत पर्यंत-च्यारि गुणस्थान हैं । तिरजंचनि, विषैं ते ही संयतासंयतकरि अधिक भये पांच गुणस्थान हैं । बहुरि मनुष्यगति विषैं चौदह ही मिथ्यादृष्टी आदि अयोगी परजंत गुणनामधेयानिनि कहिये गुणस्थान हैं। या प्रकार समस्त मार्गणानि विषैं लगावणां । सो ही कहै हैं—

एकैंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, असंज्ञी-पंचैंद्रिय—इन सर्व विषैं एक मिथ्यादृष्टी गुणस्थान ही है । संज्ञीनि विषैं चौदह ही हैं । गुणस्थान ऐसे सर्वत्र संबंध है ।

पृथिवीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतीकायनि विषैं मिथ्यादृष्टि नाम एक गुणस्थान हैं । द्वींद्रिय आदि असंज्ञी पर्यंत त्रसनि विषैं एक ही मिथ्यादृष्टी गुणस्थान है । अवशेष संज्ञीनि विषैं चौदह ही हैं । सत्यमनोयोग, अनुभयमनोयोग, सत्यवचनयोग, अनुभयवचनयोगनि विषैं मिथ्यादृष्टी आदि संयोगी परजंत गुणस्थान हैं । असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, असत्य-वचनयोग, उभय-वचनयोगनि विषैं मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय परजंत बारह हैं । औदारिक काययोग विषै मिथ्यादृष्टि आदि सयोग परजंत है । औदारिकमिश्र, कार्माणकाययोग विषैं मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत-सम्यग्दृष्टी, सयोगकेवली हैं नाम जिनिकै, ऐसे च्यारि हैं ।

वैक्रियिक काययोग विषैं मिथ्यादृष्टी आदि असंयत परजंत (चार गुण-स्थान) हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोग विषैं ते ही सम्यग्मिथ्यादृष्टी रहित-तीन गुणस्थान है । आहार, आहारमिश्रकाययोग विषैं एक प्रमत्तगुणस्थान है ।

पुंवेद विषैं, बहुरि भाव की अपेक्षाकरि स्त्रीवेद विषैं, बहुरि नपुंसक वेद विषैं मिथ्यादृष्टी आदिं अनिवृत्ति पर्यंत नवगुणस्थान हैं । स्त्री, नपुंसकनि विषैं द्रव्य की अपेक्षाकरि मिथ्यादृष्टी आदि संयतासंयत परजंत पांच हैं । पुल्लिंग विषैं द्रव्य की अपेक्षाकरि सर्वगुणस्थान

---

१. क० संयतासंयताधिकानि ।

पुंवेदे भावापेक्षया स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिपर्यन्तानि स्त्रीनपुंसकयोर्द्रव्यापेक्षया मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतान्तानि, पुँल्लिगे सर्वाणि, क्रोधमानमायासु तान्येव लोभकषायेषु सूक्ष्मसाम्परायाधिकानि, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभंगज्ञानेषु मिथ्यादृष्टिसासादनसंज्ञके द्वे, मतिश्रुतावधिज्ञानेषु असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानि, मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तादिक्षीणकषायान्तानि, केवलज्ञाने सयोग्ययोगिसंज्ञके द्वे अतीतगुणस्थानं च, सामायिकच्छेदोपस्थापानसंयमयोः प्रमत्ताद्यनिवृत्त्यन्तानि चत्वारि, परिहारविशुद्धिसंयमे प्रमत्ताप्रमत्तसंज्ञके द्वे सूक्ष्मसाम्परायसंज्ञके संयमे सूक्ष्मसाम्परायिकमेकं, यथाख्यातसंयमे उपशान्ताद्ययोगान्तानि, संयमासंयमे संयतासंयतमेकं[1], असंयमे मिथ्यात्वाद्यसंयतान्तानि, चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानि, अवधिदर्शनेऽसंयतादिक्षीणकषायान्तानि, केवलदर्शने सयोगायोगसंज्ञके द्वे अतीतगुणस्थानं च ।

कृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्याद्च्यसंयतान्तानि, तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानि, शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तानि, कषायसहचरितयोगप्रवृत्त्युपचारेण भव्यसिद्धेषु चतुर्दशापि, अभव्यासिद्धेष्वेकं मिथ्यादृष्टिसंज्ञकं, औपशमिकसम्यक्त्वेऽसंयताद्युपशान्तकषायान्तानि, वेदकसम्यक्त्वे

हैं । बहुरि भाव की अपेक्षाकरि भी हैं । क्रोध, मान, माया विषैं ते ही नव गुणस्थान हैं । लोभ कषाय विषैं ते ही सूक्ष्मसांपरायकरि अधिक दश गुणस्थान हैं । मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभंगज्ञान विषैं मिथ्यादृष्टि, सासादन नाम दोय गुणस्थान हैं । मति, श्रुत, अवधिज्ञान विषैं असंयतसम्यग्दृष्टि चतुर्थ आदि क्षीणकषाय परजंत (नौ गुणस्थान) जाननां । मनःपर्ययज्ञान विषैं प्रमत्त आदि क्षीणकषाय परजंत हैं । केवलज्ञान विषैं सयोगी, अयोगी नाम दोय गुणस्थान हैं । बहुरि अतीत गुणस्थान जाननां (अर्थात् गुणस्थानों से अतीत सिद्ध अवस्था भी होती है)।

सामायिक, छेदोपस्थापना संयम विषैं प्रमत्त आदि अनिवृत्तिकरण परजंत च्यारि गुणस्थान हैं, परिहारविशुद्धि संयम विषैं प्रमत्त, अप्रमत्त नाम दोय गुणस्थान हैं । सूक्ष्मसांपराय संयम विषैं सूक्ष्मसांपरायिक एक गुणस्थान है । यथाख्यातसंयम विषैं उपशांत आदि ले अयोगी परजंत गुणस्थान (चार) हैं । संयमासंयम विषैं संयमासंयम नाम (पाँचवाँ) एक गुणस्थान है । असंयम विषैं मिथ्यादृष्टि आदि असंयत परजंत च्यारि गुणस्थान हैं । चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन विषैं मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय परजंत हैं । अवधिदर्शन विषैं असंयत आदि ले क्षीणकषाय पर्यंत (नौ) हैं । केवलदर्शन विषैं सयोग, अयोग नाम दोय गुणस्थान हैं । बहुरि अतीतगुणस्थान (सिद्ध) भी हैं ।

कृष्ण, नील, कापोत-लेश्यानि विषैं मिथ्यादृष्टी आदि असंयत पर्यंत (चार) हैं । तेज, पद्मलेश्यानि विषैं मिथ्यादृष्टि आदि अप्रमत्त पर्यंत (सात) हैं । शुक्ल-लेश्या विषैं मिथ्यादृष्टि आदि सयोग पर्यंत (तेरह) गुणस्थान हैं । कषायनि तैं सहचरित योगनिकी प्रवृत्ति के उपचारकरि जाननां । (यहाँ जो योगप्रवृत्ति पहले कषाय सहित थी वह अब कषाय न होने पर भी है—इससे उपचार से शुक्ललेश्या मानी गयी है।)

भावार्थ–सकषायनि विषै कषाय सहित योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या जाननी । बहुरि अकषायनि विषैं कषाय रहित केवलि योगनि की प्रवृत्ति सो उपचारकरि लेश्या जाननी । भव्य सिद्धिनि विषैं चौदह ही हैं । अभव्य-सिद्धिनि विषैं एक मिथ्यादृष्टि संज्ञक है । औपशमिक सम्यक्त्व विषैं असंयत आदि ले ग्यारहवें उपशांत पर्यंत (आठ) हैं । वेदक-सम्यक्त्व विषैं असंयत आदिले अप्रमत्त पर्यन्त (चार) हैं । क्षायिक सम्यक्त्व विषैं असंयत आदिले अयोग पर्यन्त (ग्यारह) हैं । सासादन नाम सम्यक्त्व विषैं सासादन नाम एक गुणस्थान हैं । सम्यग्मिथ्यात्व

---

१. क० मेकमेव ।

असंयताद्यप्रमत्तान्तानि, क्षायिकसम्यक्त्वेऽसंयताद्ययोगान्तानि, सासादनसंज्ञके सासादननामेवमैकं, सम्यङ्मिथ्यात्वे सम्यङ्मिथ्यादृष्टिसंज्ञकं, संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानि, असंज्ञिषु मिथ्यादृष्टिसंज्ञमेकम्, आहारेषु मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तानि । नोकर्मापेक्षयैतत्र कवलाहारापेक्षया तस्याऽभावात् । अनाहारिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसंयतसम्यग्दृष्टिसयोग्ययोगिसंज्ञकानि विग्रहप्रतरलोकपूरणापेक्षयति ।।१५९।।

जीवगुणमार्गणास्थानानि प्रतिपाद्य तत्सूचितं क्षेत्रप्रमाणं द्रव्यप्रमाणं च प्रतिपादयन्नाह—

एइंदिया य पंचेंदिया य उड्ढमहोतिरियलोएसु ।
सयलविगलिंदिया पुण जीवा तिरियंमि लोयंमि ।।१६०।।*

एकेन्द्रियाः पंचेन्द्रियाश्च जीवा उर्ध्वलोके अधोलोक तिर्यग्लोके च भवन्ति विकलेन्द्रियाः पुनः सकलाः समस्ताः द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिय

विषैं सम्यग्मिथ्यादृष्टि नाम (तीसरा) एक गुणस्थान है । मिथ्यात्व विषैं मिथ्यादृष्टि नाम गुणस्थान है । संज्ञीनि विषैं मिथ्यादृष्टि आदिले क्षीणकषाय परजंत (बारह) हैं । असंज्ञीनि विषैं मिथ्यादृष्टि नाम एक गुणस्थान हैं । आहारीनि विषैं मिथ्यादृष्टी आदि सयोग पर्यंत (तेरह) गुणस्थान हैं। नोकर्म की अपेक्षाकरि यह कथन है, कवलाहार की अपेक्षाकरि नांही है, केवलि विषैं कवलाहार का अभाव है, यातैं । अनाहारीनि विषैं मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत-सम्यग्दृष्टि, सयोगी, अयोगी संज्ञक (पांच) गुणस्थान हैं । यह विग्रह प्रतर, लोकपूरण की अपेक्षा करि जाननां। (अर्थात् आदि के तीन गुणस्थान तो विग्रहगति की अपेक्षा से हैं और संयोगजिन में प्रतर और लोकपूरण समुद्घात की अपेक्षा से कथन है) ।।१५९।।

जीवस्थान गुणस्थान मार्गणास्थान है । तिनहिं प्रतिपादन करि तिनकरि सूचित जो क्षेत्रप्रमाण वा द्रव्यप्रमाण ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–एकेंद्रिय बहुरि पंचेन्द्रिय जीव उर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक विषैं हैं । बहुरि समस्त विकलेंद्रिय जे द्वीन्द्रिय, त्रींद्रिय,

---

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में निम्नलिखित १५ गाथाएँ अधिक हैं । इनके द्वारा इन्द्रिय आदि सभी मार्गणाओं में गुणस्थानों को घटित किया गया है—

एगविगलिंदियाणं मिच्छादिट्ठिस्स होइ गुणठाणं ।
आसादणस्य केहि वि भणियं चोद्दस सयलिंदियाणं तु ।।

अर्थ–एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है । कोई आचार्य एकेन्द्रियों में तेज और वायु को छोड़कर शेष तीन में सासादन भी कहते हैं । पंचेन्द्रियों में चौदह गुणस्थान हैं ।

पुढवीकायादीणं पंचसु जाणाहि मिच्छगुणठाणं ।
तसकायिएसु चोद्दस भणिया गुणणामधेयाणि ।।

अर्थ–पृथिवीकाय आदि पाँच में मिथ्यात्व गुणस्थान है । त्रसकाय में चौदह गुणस्थान हैं ।

सच्चे मणवचिजोगे असच्चमोसे य तह य दोण्हं पि ।
मिच्छादिट्ठिप्पहुदी जोगंता तेरसा होंति ।।

८८

असंक्षिपंचेन्द्रियाश्च तिर्यग्लोक एव नान्यत्र यतस्तेषां नरकदेवलोके सिद्धिक्षेत्रे चाभावः, यद्यपि पंचेन्द्रिया ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकेषूक्ताः सामान्येन तथापि त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे तिष्ठन्तीति, कैवल्यापेक्षया पुनर्लोकस्य संख्यातभागेऽसंख्यातभागे, सर्वलोके चासंज्ञिपंचेन्द्रियेष्वपि[१] तथैवेति ।।१६०।।

चतुरिंद्रिय, असंज्ञी पंचेंन्द्रिय हैं ते तिर्यग्लोक विषैं ही हैं, अन्यत्र नांही हैं । जातैं तिनका नरकलोक विषैं, देवलोकविषैं वा सिद्धक्षेत्र विषैं अभाव है । जो पणि पंचेन्द्रिय ऊर्ध्व, अधः, तिर्यग्लोक विषैं सामान्यकरि कहे, तौहू तीनों लोकनि के असंख्यातवें भाग विषैं तिष्ठै हैं ।

अर्थ–सत्य-मन-वचनयोग में और असत्यमृषा-मन-वचनयोग में मिथ्यादृष्टि से लेकर संयोगीपर्यन्त तेरह गुणस्थान होते हैं शेष दो मनोयोग और दो वचनयोग में पहले से क्षीणकषाय तक होते हैं ।

वेउव्वकायजोगे चत्तारि हवंति तिण्णि मिस्सम्हि ।
आहारदुगस्सेगं पमत्तठाणं विजाणाहि ।।

अर्थ–वैक्रियिक काययोग में आदि के चार एवं वैक्रियिकमिश्र में तृतीय को छोड़कर ये ही तीन गुणस्थान होते हैं । आहार-द्वय में एक प्रमत्त-गुणस्थान ही होता है ।

कम्मइयस्स य चउरो तिण्हं वेदाण होंति णव चेव ।
वेदे व कसायाणं लोभस्स वियाण दस ठाणं ।।

अर्थ–कार्मणकाययोग में मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और सयोगकेवली ये चार गुणस्थान होते हैं । तीनों वेदों में भाववेद की अपेक्षा नौ गुणस्थान होते हैं । वेद के समान ही तीनों कषायों में नौ गुणस्थान एवं लोभकषाय में दस गुणस्थान होते हैं ।

तिण्णं अण्णाणाणं मिच्छादिट्ठी य सासणो होदि ।
मदिसुदओहीणाणे चउत्थादो जाव खीणंता ।।

अर्थ–तीन कुज्ञान में मिथ्यत्व और सासादन ये दो होते हैं । मति, श्रुत और अवधिज्ञान में चौथे से लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त होते हैं ।

मणपज्जवम्हि णियमा सत्तेव य संजदा समुद्दिट्ठा ।
केवलिणाणे णियमा जोगि अजोगी य दोण्णि मदे ।।

अर्थ–मनःपर्ययज्ञान में प्रमत्त से लेकर क्षीणकषायपर्यन्त सात ही संयत गुणस्थान हैं । केवलज्ञान में नियम से संयोगी और अयोगी ये दो ही माने हैं।

सामायियछेदणदो जाव णियत्तेति परिहारमप्पमत्तोत्ति ।
सुहुमं सुहुमसरागे उपसंतादी जहाखादं ।।

अर्थ–सामायिक-छेदोपस्थापना में छठे से अनिवृत्तिकरणपर्यन्त हैं । परिहारसंयम में प्रमत्त और अप्रमत्त तक दो ही होते हैं । सूक्ष्मसरागसंयम में सूक्ष्मसाम्पराय ही है और उपशान्त से लेकर अयोगीपर्यन्त चार गुणस्थान यथाख्यातसंयम में होते हैं ।

विरदाविरदं एक्कं संजममिस्सस्स होदि गुणठाणं ।
हेट्ठिमगा चउरो खलु असंजमे होंति णादव्वा ।।

अर्थ–संयमासंयम में विरताविरतनामक एक गुणस्थान है, और असंयम में आदि के चार गुणस्थान होते हैं ।

१. तथा विकलेन्द्रिया लोकस्यासंख्यातभागे तिर्यग् लोकस्य य संख्यातभागे वा संज्ञिपञ्चेन्द्रियश्च तथैवेति ।

पुनरप्येकेन्द्रियाणां विशेषमाह—

एइंदियाय जीवा पंचविधा बादरा य सुहुमा य ।
देसेहिं बादरा खलु सुहुमेहिं णिरंतरो लोओ ।।१६१।।

एकेन्द्रिया जीवा: पंचप्रकारा: पृथिवीकायादिवनस्पतिपर्यन्तास्ते च प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेदेन द्विप्रकारा एकैकशो बादरा: सूक्ष्माश्च, लोकस्यैकदेशे बादरा यतो वातवलये पृथिव्यष्टकं विमानपटलानि वाश्रित्य तिष्ठन्तीति, सूक्ष्मै: पुनर्निरन्तरो लोक:, सूक्ष्मा: सर्वस्मिन् लोके तै रहित: कश्चिदपि प्रदेशो नेति ।।१६१।।

बहुरि केंवलीनिकी अपेक्षाकरि लोकके संख्यातवैं भाग, असंख्यातवैं भाग वा सर्वलोक विषैं हैं तैसैं विकलेंद्रिय लोक के असंख्यातवैं भाग विषैं (बहुरि तिर्यग्लोक कै असंख्यातवैं भाग विषै हैं) तैसें ही संज्ञी पंचेन्द्रिय हू जाननें ।।१६०।।

बहुरि एकेंन्द्रियनिका विशेष है, ताहि कहै है—

अर्थ–एकेंद्रिय जीव पृथ्वीकाय आदि वनस्पति पर्यंत पाँच प्रकार हैं । बहुरि ते प्रत्येक बादर, सूक्ष्म—इन भेदकरि दोय प्रकार हैं। एकैक बादर-सूक्ष्म हैं । बादर जीव लोक के एकप्रदेश विषैं है, जातैं वातवलय पृथिवीनिका अष्टक बहुरि विमानपटल, तिनहि आश्रयकरि तिष्ठै है । बहुरि सूक्ष्म-जीवनिकरि निरंतर लोक भर्‍या है । जातैं सूक्ष्म जीव सर्वलोक विषैं हैं । तिनकरि रहित कोऊ हू प्रदेश नाहीं ।।१६१।।

मिच्छादिट्ठिप्पहुदी चक्खु अचक्खुस्स होंति खीणंता ।
ओधिस्स अविरदपहुदि केवल तह दंसणे दोण्णि ।।

अर्थ–चक्षु और अचक्षु-दर्शन में मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषायपर्यन्त, अवधिदर्शन में अविरत से लेकर क्षीणकषाय तक एवं केवलदर्शन में दो गुणस्थान हैं ।

मिच्छादिट्ठिप्पहुदी चउरो सत्तेव तेरसंतंतं ।
तियदुग एक्कस्सेवं किण्हादीहीणलेस्साणं ।।

अर्थ–कृष्ण आदि तीन लेश्याओं में मिथ्यादृष्टि से लेकर चार गुणस्थान पर्यन्त, आगे की दो लेश्याओं में पहले से सातपर्यन्त एवं शुक्ल लेश्या में पहले से लेकर तेरहवें पर्यन्त गुणस्थान हैं ।

भावसिद्धिगस्स चोद्दस एक्कं इयरस्स मिच्छगुणठाणं ।
उवसमसम्मत्तेसु य अविरदपहुदिं च अट्ठेव ।।

अर्थ–भव्यसिद्धिक जीवों में चौदह गुणस्थान हैं । अभव्यसिद्धिक में एक गुणस्थान है । उपशम सम्यक्त्व में अविरत से लेकर उपशान्तकषाय तक आठ गुणस्थान होते हैं ।

तह वेदयस्य भणिया चउरो खलु होंति अप्पमत्ताणं ।
खाइयसम्मत्तम्हि य एयारस जिणवरुद्दिठा ।।

अर्थ–वेदकसम्यक्त्व में चौथे से लेकर अप्रमत्तपर्यन्त चार होते हैं एवं क्षायिकसम्यक्त्व में चौथे से लेकर अयोगि तक ग्यारह गुणस्थान है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

यस्मात्—

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो ।
भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं अमुंचंता[1] ।।१६२।।

सन्ति विद्यन्तेऽनन्ता जीवास्ते यैः कदाचिदपि न प्राप्तस्त्रसपरिणामः द्वीन्द्रियादिस्वरूपं, भावकलंकप्रचुरा मिथ्यात्वादिकलुषिताः निगोदवासमत्यजन्तः सर्वकालम् । सूक्ष्मवनस्पतिस्वरूपेण व्यवस्थिता ये जीवास्तदृग्भूता अनन्ताः सन्तीति ।।१६२।।

सर्वलोके तावत्तिष्ठन्ति किन्तु—

एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।
सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ।।१६३।।

एकनिगोदशरीरे गुडूच्यादिवनस्पतिसाधारणकाये जीवा अनन्तकायिकाद्रव्यप्रमाणतः संख्यया दृष्टाः जिनैः प्रतिपादिताः सिद्धैरनन्तगुणाः सर्वेणाप्यतीतकालेन । एकनिगोदशरीरे ये तिष्ठन्ति ते सिद्धैरनन्तगुणा इत्यवगाह्यावगाहनमाहात्म्यादसंख्यातप्रदेशे लोके कथमनन्तास्तिष्ठन्तीति

अर्थ–ते अनंत जीव हैं, जिननैं कदाचित् हू त्रस जे द्वीन्द्रियादिक तिनका परिणाम कहिये पर्याय नहीं पाया । भावकलंक है प्रचुर जिनकैं मिथ्यात्व आदिकरि कलुषित भये, निगोद है वास । ताहि नाहीं त्यजैं हैं ।

भावार्थ–सदाकाल सूक्ष्म वनस्पती स्वरूपकरि तिष्ठते जे जीव ते तैसे ही अनंत हैं, सकल लोक विषैं तिष्ठै हैं ।।१६२।।

वे सर्वलोक में रहते हैं किन्तु इसमें कछु विशेष है, सो कहिये है—

अर्थ–एक निगोद शरीर जो गिलवै (गुरच) आदि वनस्पति साधारणकाय ता विषैं अनंतकायिक जीव द्रव्यप्रमाणतैं अपनी संख्याकरि देखै अैसे जिन जो भगवान् अर्हत् परमेष्ठी तानें सिद्धनितैं अनंतगुण प्रतिपादन कीये ।

भावार्थ–सर्वहू अतीतकालकरि जे सिद्ध भये तिनहि देखिकरि एक निगोद शरीर विषैं जे निगोदिया जीव तिष्ठै हैं, ते तिनि सिद्धनितैं अनन्तगुणै कहै । अवगाह्य अवगाहक के माहात्म्यतैं असंख्यात प्रदेशप्रमाण लोक विषैं कैसै अनंतै तिष्ठै हैं ? अैसी आशंका नाहीं करणीं। अैसे समस्त मार्गणानि विषैं अस्तित्वपूर्वक क्षेत्र का प्रमाण जाननां । स्पर्शन हूं इहां हूं जाननां, जातैं अतीत है विषय जाका अैसा स्पर्शन

मिस्से सासणसम्मे मिच्छादिट्ठिम्हि होइ एक्केक्कं ।
सण्णिस्स वारस खलु हवदि असण्णीसु मिच्छत्तं ।।

अर्थ–मिश्र, सासादन और मिथ्यादृष्टि में अपने-अपने एक-एक गुणस्थान हैं । संज्ञी के बारह गुणस्थान हैं एवं असंज्ञी में मिथ्यात्व नाम का एक गुणथान है ।

आहाररस्स य तेरस पंचेव हवंति जाण इयरस्स ।
मिच्छासासण अविरद सजोगी अजोगी य बोद्धव्वा ।।

अर्थ–आहारमार्गणा में तेरह गुणस्थान हैं । अनाहार में मिथ्यात्व, सासादन, अविरति, सयोगी और अयोगी ये पाँच गुणस्थान होते हैं ।

१. गोम्मटसार में 'ण मुंचंति' ऐसा पाठ है ।

नाशंकनीयमिति, एवं सर्वासु मार्गणास्वस्तित्वपूर्वकं क्षेत्रप्रमाणं द्रष्टव्यं स्पर्शनमप्यत्रापि द्रष्टव्यं यतोऽतीतविषयं स्पर्शनं वर्तमानविषयं क्षेत्रमिति ।।१६३।।

द्रव्यप्रमाणं निरूपयन्नाह—

एइंदिया अणंता वणप्फदीकायिगा णिगोदेसु ।
पुढवी आऊ तेऊ वाऊ लोया असंखिज्जा ।।१६४।।

निगोदेषु ये वनस्पतिकायिककैकेन्द्रिया जीवास्तेनंतास्तथा पृथिवीकायिका अप्कायिकास्तेजस्कायिका वायुकायिकाः सर्व एते सूक्ष्माः प्रत्येकमसंख्यातलोकप्रमाणा असंख्याता लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्मात्रा बादराः पुनः प्रतरासंख्यातभागमात्राः, विशेषः परमागमतो दृष्टव्य इति ।।१६४।।

त्रसकायिकानां संख्यामाह—

तसकाइया असंखा सेढीओ पदरछेदणिप्पण्णा ।
सेसासु मग्गणासु वि णेदव्वा जीवसमासेज्ज ।।१६५।।

त्रसकायिका द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाः प्रत्येकमसंख्याताः श्रेणयः प्रतरच्छेदनिष्पन्नाः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः त्रसकायिकाः प्रतरासंख्येयभागमात्राः, स च प्रतरासंख्यातभागः असंख्याताः श्रेणयः प्रतरांगुलस्यासंख्यातभागेन जगच्छ्रेणेः भागे हृते यल्लब्धं तावन्मात्राः । श्रेणय इति एवं शेषास्वपि मार्गणासु जीवानाश्रित्य प्रमाणं नेतव्यं ज्ञातव्यमिति आगमानुसारेण । तद्यथा नरकगतौ नारकाः प्रथमपृथिव्यां मिथ्यादृष्टयोऽसंख्याताः श्रेणयः घनांगुलकिंचिन्नयूनद्वितीयवर्गमूलमात्राः द्वितीयादिषु सप्तम्यन्तासु श्रेण्यसंख्येयभागमात्राः । द्वितीयादिषु सर्वासु पुनः सासादनसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयताः पल्योपमासंख्यातभागमात्राः । तिर्यग्तौ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ताः सासादनादिसंयतासंयतान्ताः पल्योपमासंख्येययभागप्रमिताः ।

है, वर्तमान है विषय जाका—ऐसा क्षेत्र है ।।१६३।।

आगैं द्रव्यप्रमाण का निरूपण करते संतै कहै है—

अर्थ–निगोदनि विषैं जे वनस्पतिकायिक एकेंद्रिय जीव हैं ते अनंतानंत हैं । तैसें पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, यह सर्व सूक्ष्म प्रत्येक कहिये भिन्न-भिन्न असंख्यात लोकप्रमाण है । असंख्यात लोकनि के जेते प्रदेश हैं तावन्मात्र हैं । बहुरि बादर लोकप्रतर के असंख्यातवै भाग मात्र है । विशेष है सो परमागमतै जाननां ।।१६४।।

त्रसकायकनि की संख्या है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–त्रसकायिक जे द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचैंद्रिय ते प्रत्येक असंख्याता श्रेणी है । कैसी है ? श्रेणीप्रतर छेदनिष्पन्ना कहिये लोकप्रतरकैं असंख्यातवैं भाग मात्र है । सो लोकप्रतर का असंख्यातवां भाग असंख्याता श्रेणी है । कैसे ? प्रतरांगुल का असंख्यातवां भागकरि, जगतश्रेणी कैं भागकरि जगतश्रेणी कै भाग दीयें जो पावै तावन्मात्र श्रेणी है । या प्रकार अवशेष हू मार्गणानि विषैं जीवनिकूं आश्रयकरि आगमकैं अनुसारकरि प्रमाण जाननां । सो ही कहै है ।

नरकगति विषैं, प्रथम पृथ्वी विषैं मिथ्यादृष्टि नारक असंख्यात श्रेणी है । घनांगुल के क्यूंक न्यून (कुछ कम) द्वितीय वर्ग मूलमात्र है । द्वितीय आदि सप्तम पर्यंत नरक पृथ्वी विषैं श्रेणी कैं असंख्यातवैं भाग प्रमाण है । बहुरि सर्वपृथ्वीनि विषैं सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयत है ते पल्योपम के असंख्यातवैं भाग प्रमाण हैं ।

मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टयो मनुष्याः श्रेष्ठसंख्येयभागप्रमिताः स चासंख्येयभागः असंख्याताः योजनकोटीकोट्यः । सासादनसम्यग्दृष्टयो द्विपंचाशत्कोटीमात्राः सम्यङ्मिथ्यादृष्टयश्चतुरुत्तरैककोटीशतमात्राः, असंयतसम्यग्दृष्टयः सप्तकोटीशतमात्राः । संयतासंयतास्त्रयोदशकोटीमात्राः । प्रमत्ताः पंचकोटयस्त्रिनवतिलक्षाधिका अष्टानवतिसहस्राधिकाः षडुत्तरद्विशताधिकाश्च । अप्रमत्ता द्वे कोट्यौ षण्णवतिलक्षाधिके नवनवतिसहस्राधिके शतत्र्यधिके च । चत्वार उपशमकाः प्रत्येकं प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वोत्कर्षेण चतुःपंचाशत्स्वकालेन समुदिता द्वे शते नवनवत्यधिके । चत्वारः क्षपका अयोगिकेवलिनश्च प्रत्येकं एको वा द्वौ त्रयो वोत्कृष्टेनाष्टोरोत्तरशतं, स्वकालेन समुदिताः पंचशतान्यष्टानवत्यधिकानि, सयोगिकेवलिन अष्टशतसहस्राण्यष्टानवति-सहस्राधिकानिद्वयृधिकपंचशताधिकानि च । अष्टसिद्धसमया भवन्ति, तत्रोपशमश्रेण्यां प्रवेशेन जघन्ययेनैकेनादिं कृत्वोत्कृष्टेनैकैकसमये षोडश चतुर्विंशतिस्त्रिंशत् षट्त्रिंशद्द्विचत्वारिंशदष्टचत्वारिंशच्चतुः पंचाशदिति । एवं क्षपकश्रेण्यामेतदेव द्विगुणं द्वात्रिंशदृष्टचत्वारिंशच्छष्टिः द्वासप्ततिश्चतुरशीतिः षण्णवतिरष्टोत्तरशतं च वेदितव्यं प्रत्येकं सिद्धसमयं प्रति ।[१]

देवगतौ देवा मिथ्यादृष्टयो ज्योतिष्कव्यन्तरा असंख्याताः श्रेणयः, प्रतरासंख्येयभागप्रतिमाः श्रेणेः संख्येयप्रमितांगुलैर्भागे हृते यल्लब्धं तावन्मात्राः श्रेणयः । भवनवासिन असंख्याताः श्रेणयः घनांगुलप्रथमवर्गमूलमात्राः । सौधर्मा देवा मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयाः श्रेणयः, घनांगुलतृतीयवर्गमूलमात्राः । सन्तकुमारादिषु देवा मिथ्यादृष्टयः श्रेण्याः संख्येयभागप्रमिता, असंख्यातयोजनकोटीकोटीप्रदेशमात्राः । सर्वेष्वेतेषु सासादनसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयताः प्रत्येकं पलयोपमासंख्येय भागप्रमिताः ।

तिर्यंचगति विषैं मिथ्यादृष्टि अनंतानंत हैं । सासादन आदि संयतासंयत पर्यंत पल्योपम के असंख्यातवैं भाग प्रमाण है ।

मनुष्यगति विषैं मिथ्यादृष्टि मनुष्य हैं, ते श्रेणी कैं असंख्यतवैं भाग मात्र है । सो असंख्यातवां भाग असंख्यातयोजन कोडाकोडि है। सासादन सम्यग्दृष्टि हैं ते वावन कोडिमात्र हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं, ते एक सौ च्यार कोडिमात्र हैं । असंयत सम्यग्दृष्टि हैं, ते सातसौ कोडिमात्र हैं । संयतासंयत है ते तेरह कोडिमात्र है । प्रमत्त हैं, ते पाँच कोडि तिराणवें लाख अंट्याणवै सहस्र दोय सैं छह हैं । अप्रमत्त हैं ते दोय कोडि छिनवै लाख निन्याणवै सहस्र एकसौ तीन हैं । च्यारि उपशमक हैं ते प्रत्येक प्रवेशकरि एक अथवा दोय अथवा तीन उत्कृष्टकरि चौवन स्वसमयकरि एकठे (समुदाय रूप) कीये दोयसै निन्याणवै हैं । च्यारि क्षपक श्रेणी वालै बहुरि अयोगि केवली प्रत्येक प्रवेशकरि एक वा दोय वा तीन उत्कृष्टकरि एक सौ आठ स्वसमयकरि एक कीये पाँचसै अंठाणवे है । सयोगकेवली हैं ते आठ लाख अठाणवे सहस्र, पाँचसै दोय है । आठ सिद्ध समय हैं । तहाँ उपशम श्रेणी विषैं प्रवेशकरि जघन्यकरि एक आदिकरि, (एक से लेकर) उत्कृष्टकरि एकसमय विषैं सोलह, चौबीस, तीस, छत्तीस, वियालीस, अड़तालीस, चौवन बहुरि चौवन अैसे जाननें । या प्रकार क्षपक श्रेणी विषैं ये ही संख्या द्विगुण बत्तीस, अड़तालीस, साठि, बहत्तर, चौरासी, छिनावै, एक सौ आठ, बहुरि एक सौ आठ जानने । ये संख्यायें प्रत्येक सिद्धसमय के प्रति जानने।

देवगति विषैं मिथ्यादृष्टि देव, ज्योतिषी, व्यंतर असंख्याता श्रेणी प्रमाण हैं । अर्थात् प्रतर कैं असंख्यातवै भागप्रमाण हैं । श्रेणी कैं संख्यात प्रतरांगुलनिकरि भाग दीएं जो लब्ध है, तावन्मात्र श्रेणी हैं । भवनवासी असंख्याता श्रेणी है । घनांगुल कै प्रथमवर्ग मूलमात्र सौधर्मस्वर्ग विषैं मिथ्यादृष्टी देव असंख्याता श्रेणी हैं । घनांगुल कैं तृतीय वर्गा मूलमात्र हैं । सनत्कुमारादिक विषैं मिथ्यादृष्टी देव श्रेणी कैं असंख्यातवैं भागमात्र असंख्यात योजन कोडाकोडी के प्रदेश मात्र हैं । इस समस्तनि विषैं सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टी, असंयत देव—ये प्रत्येक

१. क० असंख्यातयोजनकोटीकोटीप्रदेशमात्रा ।

शेषासु मार्गणासु नपुंसकमत्यज्ञानश्रुताज्ञानकाययोग्यचक्षुर्दर्शनकृष्णनीलकापोतलेश्याऽसंयमक्रोधमानमायालोभमिथ्यादृष्टिभव्याहार्यनाहारिण: प्रत्येकमनन्तानन्ता: । केवलज्ञानिकेवलदर्शनिनोनन्ता:[1] चक्षुर्दर्शनिन: स्त्रीपुंवेदिनी मनोवाग्योगिसंज्ञिविभंगज्ञानितेजोलेश्यापद्मलेश्या: प्रतरोसंख्येयभागप्रतिमा:। शेषा: क्षायिकक्षायोपशमिकौपशमिकसम्यग्दृष्टिसासादनसम्यङ्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतशुक्ललेश्या: पल्योपमासंख्येयभागप्रमिता: । आहाराहारमिश्रसामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायथाख्यातसंयता: संख्याता भवन्तीति ।।१६५।।

कुलानि प्रतिपादयन्नाह—

वावीस सत्त तिण्णि य सत्त य कुलकोडि सदसहस्साइं ।
णेया पुढविदगागणिवाऊकायाण परिसंखा ।।१६६।।
कोडिसदसहस्साइं सत्तट्ठ य णव य अट्ठवीसं च ।
वेइंदियतेइंदियचउरिंदियहरिदकायाणं ।।१६७।।
अद्धत्तेरस वारस दसयं कुलकोडिसदसहस्साइं ।
जलचर पक्खिचउप्पयउरपरिसप्पेसु णव होंति ।।१६८।।
छव्वीसं पणवीसं चउदस कुलकोडिसदसहस्साइं ।
सुरणेरइयणराणं जहाकमं होइ णायव्वं ।।१६९।।

एतानि गाथासूत्राणि पंचाचारे व्याख्यातानि, अतोनेहपुनर्व्याख्यान्ते पुनरुक्तत्वादिति ।।१६६-१६९।।

पल्योपम के असंख्यातवैं भाग मात्र हैं।

अब शेष मार्ग्गणानिविषैं नपुंसकवेद, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, काययोग, अचक्षुदर्शन, कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, असंयम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यादृष्टि, भव्य, अभव्य, आहारी, अनाहारी—ये प्रत्येक अनंतानंत हैं । केवलज्ञानी, केवलदर्शनी अनंत हैं, सिद्धन की अपेक्षातैं जाननें ।

चक्षुदर्शनी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मन, वचनयोगी, संज्ञी, विभंगज्ञानी, तेजो लेश्या, पद्मलेश्या (वाले जीव) प्रत्येक प्रतर के असंख्यातवैं भाग प्रमाण हैं । अवशेष जे क्षायिक, क्षायोपशमिक, उपशमिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत, शुक्ललेश्या वाले पल्योपम कैं असंख्यातवैं भाग प्रमाण हैं । आहार, आहारमिश्र, सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्ध, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात—अैसे संयत जे हैं ते संख्याता हैं ।।१६५।।

कुल हैं, तिनहि प्रतिपादन करते संतै कहै हैं—

अर्थ–यह गाथासूत्र कुल कोडि के कथन के पंचम पंचाचार अधिकार विषैं व्याख्यान कीये, इहां पुनरुक्त दोषतैं बहुरि नांही व्याख्यान करिये हैं ।।१६६-१६९।।

१. केवलज्ञानी और केवलदर्शनी संख्यात हैं ऐसा अन्यत्र पाठ है । वह संसारी जीवों की अपेक्षा से है किन्तु यहाँ यह पाठ सिद्धों की अपेक्षा से है।

अल्पबहुत्वं प्रतिपादयन्नाह—

मणुसगदीए थोवा तेहिं असंखिज्जसंगुणा णिरये ।
तेहिं असंखिज्जगुणा देवगदीए हवे जीवा ।।१७०।।*

मनुष्यगतौ सर्वस्तोका मनुष्या श्रेण्यसंख्येयभागमात्राः, १/३ । तेभ्यो मनष्येभ्योऽसंख्यातगुणाः श्रेण्यः,-२ । नरकगतौ नारकाः तेभ्यश्च नारकेभ्यो देवगतौ देवा असंख्यातगुणाः प्रतरासंख्येयभागमात्राः, ४/६५ । इति ।।१७०।।

तथा—

तेहिंतो णंतगुणा सिद्धिगदीए भवंति भवरहिया ।
तेहिंतो णंतगुणा तिरयगदीए किलेसंता ।।१७१।।

तेभ्यो देवेभ्यः सकाशात्सिद्धिगतौ भवरहिताः सिद्धा अनन्तगुणास्तेभ्यः [1]सिद्धेभ्यस्तिर्यग्गतौ तिर्यंचः क्लिश्यन्तोऽनन्तगुणाः ।।१७१।।

सामान्येनाल्पबहुत्वं प्रतिपाद्य विशेषेण प्रतिपादयन्नाह—

थोवा दु तमतमाए अणंतराणंतरे दु चरमासु ।
होंति असंखिज्जगुणा णारइया छासु पुढवीसु ।।१७२।।

आगैं अल्पबहुत्व है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहैं हैं—

अर्थ–मनुष्यगति विषैं मनुष्य सर्वतैं स्तोक श्रेणी कै असंख्यातवैं भाग मात्र है १/३ । तिन मनुष्यनितैं नरकगति विषैं नारक असंख्यात गुणै हैं । केते असंख्यात श्रेणी जिसकी संदृष्टि २ है । तिन नारकनितैं देवगति विषैं देव असंख्यात गुणैं हैं । केते लोक प्रतरकैं असंख्यातवैं भाग मात्र ४/६५ तथा—

अर्थ–तिन देवनितैं सिद्धगति विषैं भवरहित सिद्ध अनंत गुणै हैं । तिन सिद्धनितैं अपेक्षाकरि तिरजंच गति विषैं तिरंजच क्लिश्यमान अनंतगुणे हैं ।।१७१।।

अैसे सामान्यपणैं अल्पबहुत्व प्रतिपादनकरि विशेषकरि, अल्पबहुत्व है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहैं हैं—

अर्थ–स्वस्थान विषैं प्राप्तभया अल्पबहुत्व कहिये हैं । तमस्तमः प्रभा जो सप्तम नरक ता विषैं नारक सर्वनितै स्तोक हैं । श्रेणी

---

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में यह गाथा अधिक हैं—

एया य कोडिकीडी सत्ताणउदी य सदसहस्साइं ।
पण्णं कोडिसहस्सा सव्वंगीणं कुलाणं तु ।।

अर्थ–सम्पूर्ण जीवों के कुलों की संख्या एक कोड़ाकोड़ी, सत्तानवे लाख, पचास हजार करोड़ है । अर्थात् सम्पूर्ण कुलों की संख्या एक करोड़, सत्तानवे लाख, पचास हजार को एक करोड़ से गुणा करने पर जितनी आए उतनी (१९७५०००००००००००) है । भिन्न-भिन्न शरीर की उत्पत्ति के लिए कारणभूत नोकर्मवर्गणाओं के भेदों को कुल कहा जाता है ।

१. क० सिद्धेभ्य अपेक्ष्य ।

स्वस्थानगतमल्पबहुत्वमुच्यते—सप्तमपृथिव्यां नारका: सर्वस्तोका: श्रेण्यसंख्येयभागप्रमिता:, श्रेणिद्वितीयवर्गमूलेन खंडिता श्रेणिमात्रा:[१/२] । तेभ्यश्च सप्तमपृथिवीनारकेभ्य: षष्ठीपृथिवीनारका असंख्यातगुणा: श्रेणितृतीयवर्गमूलेनाहतश्रेणिमात्रा:[१/३] । तेभ्यश्च षष्ठपृथिवीनारकेभ्य: पंचमपृथिवीनारका असंख्यातगुणा: श्रेणिषड्वर्ग[१] मूलापहतश्रेणिलब्धमात्रा:[१/६] । तेभ्यश्च पंचमपृथिवीनारकेभ्यश्चतुर्थपृथिवीनारका असंख्यातगुणा: श्रेण्यष्टवर्ग[२] मूलापहतश्रेणि-परिमिता:[१/८] । तेभ्यश्चतुर्थपृथिवीनारकेभ्यस्तृतीयपृथिवीनारका असंख्यातगुणा: श्रेणिदशवर्गमूलापहतश्रेणिलब्धमात्रा:[१/१०] । तेभ्यस्तृतीयपृथिवीनारकेभ्यो द्वितीयपृथिवीनारका असंख्येयगुणा: श्रेणिद्वादशवर्गमूलखण्डितश्रेण्येकभागमात्रा:[१/१२] । तेभ्यश्च द्वितीयपृथिवीनारकेभ्य: प्रथमपृथिवीनारका असंख्यातगुणा घनांगुलद्वितीयवर्गमूलमात्रा: श्रेणय:[१/२] । इति ।।१७२।।

तिर्यग्गतावल्पबहुत्वमाह—

थोवा तिरिया पंचेंदिया दु चउरिंदिया विसेसहिया ।
वेइंदिया दु जीवा तत्तो अहिया विसेसेण ।।१७३।।
तत्तो विसेसअहिया जीवा तेइंदिया दु णायव्वा ।
तेहिंतोणंतगुणा भवंति एइंदिया जीवा ।।१७४।।

तिर्यंच: पंचेन्द्रिया: स्तोका: प्रतरासंख्यातभागमात्रा: १/२ । तेभ्यश्च पंचेन्द्रियेभ्यश्चतुरिन्द्रिया विशेषाधिका: स्वराश्यसंख्यातभागमात्रेण १/२/४/१/९ । तेभ्यश्चतुरिन्द्रियेभ्यो द्वीन्द्रिया विशेषाधिका: ४/७ । विशेषा: पुन: स्वराश्यसंख्यातभागमात्रा: १/१/४/९ । तेभ्यश्च द्वीन्द्रियेभ्यस्त्रीन्द्रिया

कैं असंख्यातवैं भागप्रमाण ते केते श्रेणी के द्वितीय वर्गमूल करि भाजित ऐसी श्रेणी प्रमाण [१/२ -/२] श्रेणी की संदृष्टि इस शास्त्र मैं एक का अंक की है । बहुरि गुण का अंक ऊपरीली राशि तैं नीचै लिखवा की प्रथा है । बहुरि गोमट्टसार सिद्धान्त मैं श्रेणी की संदृष्टि आडी लीक की है । बहुरि गुण का अंक पूर्वली राशि आगै लिखावाकी प्रथा है । सो दोउ महासिद्धांत हैं । मंदबुद्धीनि कैं शंका उपजवै के भयतैं दोउ प्रकार लिख्या है । प्रथम इस शास्त्र कै अनुसार, पीछैं गोमट्टसार के अनुसार । तिन सप्तम पृथिवी के नारकनितैं छवि पृथ्वी के नारक असंख्यात गुणै हैं । श्रेणी के तृतीय वर्गमूलकरि भाजित ऐसी श्रेणी मात्र है [१/३ -/३] । बहुरि तिन छठी पृथ्वी के नरकनितैं पंचम पृथ्वी के नारक असंख्यात गुणै हैं । श्रेणी के छठें वर्गमूलकरि भाजित जो श्रेणी ताके लब्ध मात्र है ६ । बहुरि तिन पंचम पृथ्वी के नारकनितैं चतुर्थ पृथ्वी के नारक असंख्यात गुणै हैं । श्रेणी के आठवें वर्ग मूलकरि आपहृत्य ऐसी जो श्रेणई ताके लब्धमात्र [१/८ -/८] । तिन चतुर्थ पृथ्वी के नारकनितैं तीसरी पृथ्वी के नारकनितैं तीसरी पृथिवी के नारक असंख्यात गुणै हैं । श्रेणी के दशमवर्गमूलकरि भाजित श्रेणई मात्र [१/८ -/८] बहुरि तिन तृतीय पृथिवी के नारकनितैं द्वितीय पृथिवी के नारक, द्वितीय पृथिवी के नारक असंख्यात गुणै हैं । श्रेणी के बाहरवें वर्गमूल करि भाजित श्रेणी का एक भाग मात्र [१/१२ -/१२] , बहुरि तिन द्वितीय पृथ्वी के नारकनितैं प्रथम पृथिवी के नारक असंख्यात गुणै हैं । घनांगुल के द्वितीय वर्गमूल मात्र श्रेणी है [२/२ -/२] ।।१७२।।

आगैं तिरजंचगति विषैं अल्पबहुत्व है ताहि कहै हैं—

अर्थ–पंचेंद्रिय तिरजंच थोरे हैं । प्रतर कै असंख्यातवै भाग मात्र हैं [१/४९] । तिन पंचेद्रियनितैं चतुरिंद्रिय विशेष अधिक हैं । स्वराशि

---

१. क० षष्ठर्ग । २. क० श्रेण्यष्टमवर्ग ।

विशेषाधिकाः । विशेषः पुनः स्वराश्यसंख्यातभागमात्रः १/१/४/९ । तेभ्यश्च त्रीन्द्रियेभ्योऽनन्त गुणाः भवन्त्येकेन्द्रिया जीवा ज्ञातव्याः ३/१/४/३ इति ।।१७३-१७४।।

मनुष्यगतावल्पबहुत्वमाह—

अंतरदीवे मणुया थोवा मणुयेसु होंति णायव्वा ।
कुरुवेसु दससु मणुया संखेज्जदुणा तहा होंति ।।१७५।।
तत्तो संखेज्जगुणा मणुया हरिरम्मएसु वस्सेसु ।
तत्तो संखिज्जगुणा हेमवदहरिण्णवस्साय ।।१७६।।
भरहेरावदमणुया संखेज्जगुणा[1] हवंति खलु तत्तो ।
तत्तो संखिज्जगुणा णियमादु विदेहगा मणुया ।।१७७।।
सम्मुच्छिमा य मणुया होंति असंखिज्जगुणा य तत्तो दु ।
ते चेव अपज्जत्ता सेसा पज्जत्तया सव्वे ।।१७८।।

मनुष्यगतौ सर्वस्तोकाः संख्याताः सर्वान्तर्द्वीपेषु मनुष्याः, ऊ । तेभ्यश्च दशसु कुरुषूपभोगभूमिषु मनुष्याः संख्यातगुणा भवन्ति ज्ञातव्याः, ऊऊ। तेभ्यश्च दशसु भोगभूमिषु हरिरम्यकवर्षेषु मनुष्याः संख्यातगुणाः, ऊऊऊ । तेभ्यश्च दशसु जघन्यभोगभूमिषु हैमवतहैरण्यवतसंज्ञकासु मनुष्याः संख्यातगुणाः, ऊऊऊऊ । तेभ्यश्च पंचसु भरतेषु पंचस्वैरावतेषु च मनुष्याः संख्यातगुणाः ऊऊऊऊऊ । तेभ्यश्च निश्चयेन मनुष्या विदेहेषु संख्यातगुणा भवन्ति, ऊऊऊऊऊ । ज्ञातव्याः स्फुटं । तेभ्यश्च सम्मूर्च्छनजा मनुष्या असंख्यातगुणा श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राः, स च श्रेण्यसंख्यातभागाः असंख्यातयोजनकोटीकोटीप्रदेशमात्रः सूच्यंगुलप्रथमवर्गमूलेन सूच्यंगुलतृतीयवर्गमूलगुणितेन श्रेणेर्भागे हते यल्लब्धं तावन्मात्रा १/१३ । त एते अपर्याप्ता लब्ध्यपर्याप्ता एव । शेषाः पुनः संख्याता

के असंख्यातवैं मात्र भाग १/१/४/७ । तिन चतुरिंद्रियनितै द्वींद्रिय विशेष अधिक हैं । ४/७ तिन द्वींद्रियनितैं त्रींद्रिय विशेष अधिक हैं। बहुरि विशेष स्वर राशि तैं असंख्यातवैं भाग मात्र है १/१/४/९ बहुरि तिनि त्रिद्रिंय जीवां अनन्त गुणे जानने १/१/४/३ ।।१७३-१७४।।

आगै मनुष्यगति विषैं अल्पबहुत्व हैं, ताहि कहैं हैं—

अर्थ–मनुष्यगति विषैं सर्वतैं स्तोक संख्यातें सर्व अंतर्द्वीप विषैं मनुष्य हैं १/३ । बहुरि तिनतैं दश जे देवकुरु उत्तम भोगभूमि तिन विषैं मनुष्य संख्यात गुणे जानने १ १ । बहुरि तिनतै हरिरम्यक वंश दश मध्यम भोगभूमि विषैं मनुष्य संख्यात गुणै है ४११ १। बहुरि तिनतैं है हैमवत हैरण्यवत संज्ञक दशजघन्य भोगभूमि विषै मनुष्य संख्यात गुणै हैं १ १ १ १ । बहुरि तिनतैं पाँच भरत पाँच ऐरावतनि विषैं मनुष्य संख्यात गुणै हैं ११ १ १ १ । बहुरि तिनतैं निश्चयकरि मनुष्य विदेह विषैं प्रगटपनैं संख्यातगुणै है। अैसे जाननां १ १ ११ ११ । बहुरि तिनतैं सन्मूर्छन मनुष्य असंख्यात गुणै हैं[2]। ते केते श्रेणी के असंख्यातवैं भाग मात्र है ? सो श्रेणी का असंख्यातवां भाग असंख्यात योजन कोडा-कोडी के प्रदेश मात्र हैं । सूच्यंगुल के तृतीयवर्ग मूलकरि गुणित जो सूच्यंगुल का

---

१. क० गुणा य होंति तत्तो । २. ऊ १ ।

ये मनुयास्ते सर्वे पर्याप्ता, नास्ति तेषां लब्ध्यपर्याप्तत्वम् । एवं देवनारकाणामापि सर्वेषां लब्ध्यपर्याप्तत्वं नास्ति निर्वृत्त्यपर्याप्तत्वं पुनर्विद्यत एवेति ।।१७५-१७८।।

देवगतावल्पबहुत्वमाह—

थोवा विमाणवासी देवा देवी य होंति सव्वेवि ।
तेहिं असंखेज्जगुणा भवणेसु य दसविहा देवा ।।१७९।।
तेहिं असंखेज्जगुणा देवा खलु होंति वाणवेंतरिया ।
तेहिं असंखेज्जगुणा देवा सव्वेवि जोदिसिया ।।१८०।।

देवगतौ देवा देव्यश्च सर्वस्तोका: सौधर्मादिविमानवासिन: असंख्यातश्रेणिमात्रा घनांगुलतृतीयवर्गमूलमात्रा: साधिका: श्रेणय: १/३ । तेभ्यश्चासंख्यातगुणा भवनेषु दशविधा भवनवासिन: असंख्याता: श्रेणय: घनांगुलप्रथमवर्गमूलमात्रा: श्रेणय: १/१ । तेभ्यश्चासंख्यातगुणा: स्फुटमष्टप्रकारा व्यन्तरा: प्रतरासंख्यातभागमात्रा: संख्यातप्रतरांगुलै: श्रेणेर्भागे हृते यल्लब्धं तावन्मात्रा: श्रेणय: १/१/४ । तेभ्यश्च पंचप्रकारा ज्योतिष्का असंख्यातगुणा: प्रतरासंख्यातभागमात्रा:[2] पूर्वोक्तसंख्यागुणितैरसंख्येयप्रतरांगुलै: श्रेणेर्भागे हृते यल्लब्धं तावन्मात्रा: श्रेणय: १/१/४/९ ।

अथ वा सर्वत: स्तोका: सर्वार्थसिद्धिदेवा: संख्याता: । ततो विजयवैजयन्तजयन्तापराजितनवानुत्तरस्था असंख्यातगुणा: पल्योपमासंख्यात-

प्रथमवर्ग मूल ताकरि श्रेणी के भाग दीयें जो लब्ध तावन्मात्र हैं । १/३ । ते यह अपर्याप्ता कहिये लब्ध पर्याप्तक ही हैं । बहुरि अवशेष संख्याता जे मनुष्य हैं ते सर्व पर्याप्तक हैं । तिनकै लब्धि पर्याप्तपनां नांही है । अैसे सर्वदेव, नारकनि कैं हू लब्ध्य पर्याप्तपनां नांही है। बहुरि निर्वृत्ति अपर्याप्तपनां निश्चयकरि हैं ।।१७५-१७८।।

आगैं देवगति विषैं अल्पबहुत्व है, ताहि कहै हैं—

अर्थ–देवगति विषैं सर्वतै स्तोक सौधर्मादि विमानवासीदेव बहुरि देवी हैं । ते केते असंख्यात श्रेणी मात्र घनांगुल कैं तृतीय वर्गमूल मात्र साधिक श्रेणी 3/2, बहुरि तिनतैं असंख्यात गुणै दशंप्रकार भवनवासी भवन विषै हैं । असंख्यातश्रेणी घनागुंल के प्रथमवर्ग मूलमात्र श्रेणी है 2/1 बहुरि तिनतैं असंख्यात गुणप्रगट पनैं अष्टप्रकार व्यंतर हैं । लोक प्रतर कै असंख्यातवैं भागमात्र संख्यात प्रतरांगुलनिकरि श्रेणी के भाग दीयै जो लब्ध तावन्मात्र श्रेणी हैं १/१/४ बहुरि तिनितैं पंचप्रकार ज्योतिषी असंख्यात गुणैं हैं । लोकप्रतरकै असंख्यातवैं भागमात्र पूर्वोक्त संख्यातगुण हीन संख्यात प्रतरांगुलनिकरि श्रेणी कैं भाग दीए जो लब्ध तावन्मात्र श्रेणी हैं । १/१/४/९

अथवा सर्वतै स्तोक सर्वार्थसिद्धि के देव हैं संख्याता, तिनतै विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित बहुरि, नवानुत्तर देव असंख्यात गुणैं हैं । पल्योपम के असंख्यातवैं भाग प्रमाण तिनतैं आगै नवग्रेवेयक, आनत, प्राणत, आरण, अच्युतदेव असंख्यात गुणैं हैं । पल्योपम के असंख्यातवै भाग प्रमाण है ७७। तिनतैं शतार, सहस्रारदेव असंख्यात गुणै हैं । श्रेणी कैं चतुर्थ वर्गमूलकरि भाजित श्रेणी के एक भागमात्र हू १/४ । तातैं शुक्र महाशुक विषैं देव हैं ते असंख्यात गुणै हैं । श्रेणी के पंचम वर्गमूलकरि भाजित श्रेणी कै एकभाग मात्र है १/५ । तातैं लांतव, कापिष्ट विषैं देव असंख्यात गुणै हैं । श्रेणी के सप्तमवर्ग मूलकरि भाजित श्रेणी के एकभाग मात्र है १/७ । तातै ब्रह्म, ब्रह्मोत्तरदेव

१. क० १/३ । २. क० पूर्वोक्तसंख्यातगुणहीन ।

भागप्रमितास्तो नव ग्रैवेयका आनतप्राणतारणाच्युताश्चासंख्यातगुणाः पल्योपमासंख्यातभागप्रमिताः,९ । ततः शतारसहस्रारदेवा असंख्यातगुणाः श्रेणिचतुर्थवर्गमूलखण्डितश्रेण्येकभागमात्राः १/४ । ततः शुक्रमहाशुक्रदेवा असंयातगुणाः श्रेणिपंचमवर्गमूलखण्डितश्रेण्येकभागमात्राः, १/५ । ततो लांतवकापिष्ठदेवा असंख्यातगुणाः श्रेणिसप्तमवर्गमूलखंडितश्रेण्येकभागमात्राः, १/७ । ततो ब्रह्मब्रह्मोत्तरदेवा असंख्यातगुणाः श्रेणिनवमवर्गमूलगुणाः श्रेणि-चतुर्थवर्गमूलखण्डितश्रेण्येकभागमात्राः, १/८ । नवमवर्गमूलखण्डितश्रेण्येकभागमात्राः, १/९ । ततः सानत्कुमारमाहेन्द्रदेवा असंख्यातगुणाः श्रेण्येका-दशवर्गमूलखण्डितश्रेण्येकभागमात्राः, १/११ . ततः सौधर्मैशानदेवा असंख्यातगुणाः, १/१३ । शेषं पूर्ववत् द्रष्टव्यमिति ।

अथ वा सर्वस्तोका अयोगिनश्चत्वार उपशमकाः संख्यातसंगुणाः । ततः सयोगिनः संख्यातगुणास्ततोऽप्रमत्ताः संख्यातगुणास्ततःसंयतासंयतास्तिर्यङ्मनुष्या असंख्यागुणाः पल्योपमासंख्यातभागमात्राः, ५९९९९ । ततश्चसृषु गतिषु सासादनसम्यदृष्टयोऽसंख्यातगुणाः ५० । ततश्चतसृषु गतिषु सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः पल्यं, ९० । ततश्चतसृषु गतिषु असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यातगुणाः । एतैः सिद्धा अनंतगुणास्ततः सर्वे मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्तगुणाः स्युरिति ।।१७९-१८०।। पुनरपि देवान् गुणेन निरूपयन्नाह—

अणुदिसणुत्तरदेवा सम्मादिट्ठीय होंति बोधव्वा ।
तत्तो खलु हेट्ठिमया सम्मामिस्सा य तह सेसा ।।१८१।।

पंचानुत्तरनवानुदिशदेवाः सम्यग्दृष्टयो निश्चयेन ज्ञातव्या भवन्ति तेभ्यः [1]पुनरधो मिथ्यादृष्टयः सासादनाः सम्यङ्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति । तथा शेषाश्च नारकतिर्यङ्मनुष्या मिश्रा भवन्तीति ।।१८१।। अल्पबहुत्वं प्रतिपाद्य बन्धकारणं प्रतिपादयन्नाह—

मिच्छादंसणअविरदिकसायजोगा हवंति बंधस्स ।
आऊसज्झवसाणं हेदव्वो ते दु णायव्वा ।।१८२।।

असंख्यात गुणै हैं । श्रेणी के नवमवर्ग मूलभाजित श्रेणी के एकभाग मात्र है १/९ ।

तातैं सनत्कुमार, माहेन्द्र विषैं देव असंख्यात गुणे हैं । श्रेणी के एकादश वर्गमूल भाजित श्रेणी के एकभाग मात्र १/११ । तातैं सौधर्म, ऐशान विषैं देव असंख्यात गुणे हैं । श्रेणी के त्रयोदश वर्गमूल भाजित के एकभाग मात्र १/१३ अवशेष पूर्ववत् जाननां ।

अथवा सर्वतै स्तोक अयोगी हैं । च्यारि उपशमक संख्यात गुणै हैं । तिनतैं च्यारि क्षपक संख्यातगुणे हैं । तातै सयोगी संख्यात गुणे हैं । तिनतैं अप्रमत्त संख्यात गुणे हैं । तिनतैं प्रमत्त संख्यातगुणे हैं । तिनतैं संयतासंयत, तिर्यग्मनुष्यतैं असंख्यात गुणैं हैं । पल्योपम कै असंख्यातवैं भाग मात्र ५/७७४७ । तिनतैं च्यारिगति विषैं असंयत सम्यग्दृष्टी असंख्यातगुणै हैं ५/७७४ । तिनतैं च्यारिगति विषैं सम्यग्मिथ्यादृष्टी संख्यातगुणै हैं ५/७७ । तिनतैं च्यारिगति विषैं असंयत सम्यग्दृष्टी असंख्यातगुणै हैं ५/७ । तातै सिद्ध अनंतगुणै है। तिनतै सर्व मिथ्यादृष्टी अनंतानंत गुणै हैं ।।१७९-१८०।।

अर्थ–पंच अनुत्तर, नव अनुदिश विषैं देव हैं ते सम्यगदृष्टी हैं, निश्चयकरि जानने । बहुरि तिनतैं अन्य निचले देव, सम्यग्मिश्रा कहिये मिथ्यादृष्टी-सासादन, सम्यग्मिथ्या दृष्टी, असंयत सम्यगदृष्टी हैं । बहुरि तथा अवशेष नारक, तिर्यग् मनुष्य हैं ते मिश्र हैं ।।१८१।।

अल्पबहुत्व है, ताहि प्रतिपादनकरि आगैबंध का कारण हैं, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहैं हैं—

अर्थ–जे मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग हैं, ते ही बंध के कारण हैं । बहुरि आयु का अध्यवसान जो परिणाम सो बंध का

---

१. क० पुरनन्येऽधो ।

मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगास्त एव हेतवो बंधस्यायुषो भवन्ति पुनरध्यवसाय: परिणाम: हेतुर्भवतीति ज्ञातव्या: । पंच मिथ्यात्वानि पंचेन्द्रियाणि मन:षट्कायविराधनानि त्रयोदश योगा: षोडश कषाया नव नोकषायश्च सर्वे एते पंचपंचाशत्प्रत्यया: कर्मबन्धस्य हेतवो बोद्धव्या भवन्ति, अन्ये भेदा अत्रैवान्तर्भवन्तीति ।।१८२।।

बन्धस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—

जीवो कसायजुत्तो जोगादो कम्मणो दु जे जोग्गा ।
गेण्हइ पोग्गलदव्वे बंधो सो होदि णायव्वो ।।१८३।।

जीव: कषाययुक्त: क्रोधादिपरिणत: योगान्मनोवाक्कायक्रियाभ्य: कर्मणो योग्यानि यानि पुद्‌गलद्रव्याणि गृह्णाति स बन्ध: कषाययुक्त इति पुनर्हेतुनिर्देशस्तीव्रमन्दमध्यमकषायानुरूपस्थित्यनुभवविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—स्वत आत्मा कषति कर्मादत्त इति चेत् नैष दोषो जीवत्वात् जीवो [1]नामप्राणधारणादायु:सम्बन्धात्, न पुनरायुर्विरहाज्जीवो येन आत्मना पुरत: पुद्‌गलानादत्ते कर्मयोग्यानिति लघुनिर्देशात्सिद्धे कर्मणो योग्यानिति पृथग्विभक्त्युच्चारणं वाक्यान्तरज्ञापनार्थं, किं पुनस्तद्वाक्यान्तरमत आह—कर्मणो जीव: सकषायो भवतीत्येकम् । वाक्यम्, एतदुक्तं भवति कर्मण इति

कारण है—ऐसे जाननां । पाँच मिथ्यात्व, पाँच इंद्रिय, मन, छह काय की विराधना, तेरह योग[2], सोलह कषाय बहुरि नव नोकषाय—यह सर्व पच्चावन (५५) आश्रव कर्मबंध के कारण कहे—ऐसे जाननां । अन्य भेद याही विषैं अंतर्भाव हैं ।।१८२।।

आगैं बंध का स्वरूप हैं, ताहि प्रदिपादन करते कहैं हैं—

अर्थ–जीव है सो कषाय युक्त कहिये क्रोधादिककरि परिणया योग जो मन, वचन, काय की क्रिया, तिनतैं कर्म्म कै जे जोग्य पुद्गल द्रव्य तिनहिं ग्रहण करैं, सो बंध है—ऐसा जाननां । बहुरि कषाययुक्त यह पद है सो हेतु निर्देश हैं । सो तीव्र, मंद, मध्य जे कषाय तिनकै अनुकूल जो स्थिति अनुभव ताकी विशेष प्रतिपत्ति, ताका अर्थ है, ताहि कहै है—

सो आत्मा कैसै कर्म कूं ग्रहण करै हैं ? ऐसा प्रश्न करै तो या विषैं दोष नांही । काहै तै ? जीवत्वतैं, जीवनतैं, प्राणधारणतैं, आयु संबंधतैं कर्मकूं ग्रहण करै है । बहुरि आयुके विरहतैं जीव कर्मकूं नांही ग्रहण करै है । जातैं आयु सहित आत्मा है । सो कर्म्म योग्य रस पुद्गलनिकूं ग्रहण करैं है—ऐसा लघु निर्देशतैं सिद्ध भया । 'कर्मण: योग्यानि' ऐसे भिन्न विभक्ति का उच्चारण हैं । सो वाक्यांतर के जणायवे अर्थि हैं । बहुरि सो वाक्यांतर कहां ? या कारणतैं कहैं है—कर्म्मतै जीव सकषाय होय है—ऐसा वाक्य है, तातैं यह कह्या है। 'कर्म्मण' ऐसा शब्द है, सो हेतु निर्देश है । कर्म के हेतुतैं जीव है सो कषायनि विषैं परिणत होय है । कर्म्म रहित जीव कै कषायनि का लेप नांही । तातैं जीव-कर्मकै अनादि संबंध है—ऐसा कह्या । तातैं अमूर्तीक-जीव मूर्तीक-कर्मकरि कैसै बंधै है—यह तर्क सो निराकरण भया । अन्यथा बंध कै आदिमान होतैं आत्यंतिकी शुद्धि है । ताहि धारता जो सिद्ध ताका जो बंध का अभाव प्रसंग कूं प्राप्त होय । दूसरा वाक्य 'योग्यान् पुद्‌गलान्गृह्णाति'—ऐसा है । सो अर्थ के वशतैं विभक्ति का परिणाम है । सो पूर्व जो हेतु का संबंध हैं, ताहि त्यजिकरि षष्ठी विभक्ति का संबंध हैं, ताहि प्राप्त होय है ।

---

१. क० जीवनात् प्राणधारणादायु:संबंधात् ।
२. योग पन्द्रह होते हैं, परन्तु यहाँ आहारक और आहारकमिश्र नहीं लिये गये हैं अत: तेरह ही लिये गये हैं ।

हेतुनिर्देशः, कर्मणो हेतोर्जीवः कषायपरिणितो भवति नाकर्मकस्य कषायलेपोऽस्ति ततो जीवः कर्मणो योग्यानिति, तयारेनादिसम्बन्ध इत्युक्तं भवति ततोऽमूर्तः जीवः मूर्तेन कर्मणा कथं बध्यत इति [1]बोध्यमपाकृतं भवति, इतरथा हि बन्धस्यादिमत्त्वे आत्यन्तिकीं शुद्धिं दधतः सिद्धस्यैव बन्धाभावः प्रसज्येत इति द्वितीयवाक्यं योग्यान् पुद्गलान् गृहणातीति । अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति पूर्वं हेतुसम्बन्धं त्यक्त्वा षष्ठीसंबन्धमुपैति कर्मणो योग्यानिति । पुद्गलवचनं कर्मणस्तादात्म्यख्यापनार्थं तेनात्मगुणोऽदृष्टो निराकृतो भवति । संसारहेतुर्न भवति यतो गृहणातीति हेतुहेतुमद्भावख्यापनार्थः । अतो मिथ्यादर्शनाद्यावेशादार्द्रीकृतस्यात्मनः [2]सर्वयोगविशेषसूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहिनामनन्तप्रदेशानां पुद्गलानां कर्मभावयोग्यानामविभागेनोपश्लेषो बन्ध इत्याख्यायते । यथा भाजनविशेषक्षिप्तानां विविधरसपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणामस्तथा पुद्गलानामप्यात्मनि स्थितानां योगकषायवशात्कर्मभावेन परिणामो वेदितव्यः, स वचनमन्यनिर्वृत्त्यर्थं । स एष बन्धो नान्योऽस्ति तेन गुणगुणिबन्धो निर्वर्तितो भवति । तुशब्दोऽवधारणार्थः । कर्मादिसाधनो बन्धशब्दो व्याख्यात इति ।।१८३।।

आह, किमयं बन्ध एकरूप एवाहोस्वित्प्रकारा अप्यस्य सन्तीत्युच्यते—

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधो य चदुविहो होइ ।
दुविहो य पयडिबंधो मूलो तह उत्तरो चेव ।।१८४।।

बन्धशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । प्रकृतिबन्धः, स्थितिबन्धः, अनुभागबन्धः, प्रदेशबन्ध इति चतुर्विधो बन्धो भवति । प्रकृतिबन्धस्तु द्विविधः मूलस्तथोत्तरो, मूलप्रकृतिबन्ध उत्तरप्रकृतिबन्धश्चेति । प्रकृतिः स्वभावः निम्बस्य का प्रकृतिस्तिक्तता, गुडस्य का प्रकृतिर्मधुरता तथा ज्ञानावरणस्य का प्रकृतिरर्थानवगमः, दर्शनावरणयस्यार्थानालोकनं, वेद्यस्य सदसल्लक्षणस्य सुखदुःखसंवेदनं, दर्शनमोहस्य तत्त्वार्थाश्रद्धानं, चारित्रमोहस्यासंयमः, आयुषो

''कर्मणो योग्यान्'' या प्रकार पुद्गल वचन हैं सो कर्म के तादात्म्य प्रगट करणे अर्थि हैं । ताकरि अदृष्ट आत्मा का गुण सो निराकरण कीया । संसार का हेतु नाहीं हैं जातैं 'गृहणाति' यह हैं । सो हेतुमतभाव के जणायवे अर्थि हैं ।

यातैं मिथ्यादर्शनादिक के आवेशतैं आर्द्रीकृत जो आत्मा ताकै सर्वयोग विशेषतैं तिन सूक्ष्म एकक्षेत्र-अवगाही अनंतप्रदेशी कर्मभाव के योग्य जे पुद्गल तिनके एकत्वकरि संबंध सो बंध है—अैसे कहिये हैं । जैसे भाजन विशेष विषैं क्षेपे नाना प्रकार के रस, पुष्प, फल तिनका मदिरा भावकरि परिणाम है, तैसें आत्मा विषैं स्थित अैसे पुद्गलनि का हू जोग कषाय के वशतैं कर्म का भावकरि परिणाम है सो जाननां । सो अैसा वचन है सो अन्य की निवृत्ति कै अर्थि है । सो यह बंध है, अन्य नाहीं है । ताकरि गुण-गुणी का बंध निवृत्त भया। 'तु' शब्द है सो अवधारण कै अर्थि है । कर्मादिक है साधन कहिये कारण जाकै अैसा 'बंध' शब्द है, सो व्याख्यान कीया संता अैसे कहै है ।।१८३।।

आगैं कहा यह बंध एक प्रकार हैं अक याके अन्य हू प्रकार हैं ? यातैं यह कहिये है—

अर्थ–'बंध' शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां । १. प्रकृतिबंध, २. स्थितिबंध, ३. अनुभागबंध, ४. प्रदेशबंध—अैसे बंध च्यारि प्रकार हैं । प्रकृतिबंध है सो दोय प्रकार है—मूल कहिये मूलप्रकृतिबंध, तैसे उत्तर कहिये उत्तरप्रकृतिबंध । प्रकृति नाम स्वभाव का है । निंब (नीम) की कहा प्रकृति ? तिक्तता, गुड की कहा प्रकृति ? मधुरता । तैसें ज्ञानावरण की कहा प्रकृति ? अर्थ का नांहीं जाननां । दर्शनावरण का अर्थ—का नाहीं देखनां । साता-असाता है लक्षण जाका अैसा वेदनीय का अर्थ सुख-दुःख का संवेदन । दर्शनमोह की कहा प्रकृति?

---

१. क० चोद्यं । २. क० सर्वयोगविशेषात् ।

भवधारणं, नाम्नो नरकादिनामकरणं, गोत्रस्योच्चैर्नीचैः स्थानसंशब्दनम्, अन्तरायस्य दानादिविघ्नकरणम् । तदेव लक्षणं कार्यं प्रक्रियते प्रभवत्यस्या इति प्रकृतिः । तत्स्वभावाप्रच्युतिः स्थितिः, यथाऽजागोमहिष्यादिक्षीराणां माधुर्यस्वभावादप्रच्युतिः स्थितिः । तद्रसविशेषोऽनुभवः यथाऽजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमन्दादिभावेन रसविशेषस्तथा कर्मपुद्गलानां स्वगतसामर्थ्यविशेषोऽनुभवः । इयत्तावधारणं प्रदेशः कर्मभावपरिणतपुद्गलस्कन्धानां परमाणुपरिच्छेदेनावधारणं प्रदेश इति । एवं चतुर्विधः एव बन्ध इति ।।१८४।।

तत्राद्यस्य मूलप्रकृतिबन्धस्य भेददर्शनार्थमाह—

णाणस्स दंसणस्य य आवरणं वेदणीय मोहणियं ।
आउगणामा गोदं तहंतरायं च मूलाओ ।।१८५।।

आवृणोत्याव्रियतेऽनेनेति वाऽऽवरणं तत्प्रत्येकमभिसंबध्यते, ज्ञानस्यावरणं दर्शनस्यावरणम् । वेदयति वेद्यतेऽनेनेति वा वेदनीयम् । मोहयति मुह्यतेऽनेनेति वा मोहनीयम् । एत्यनेन नरकादिभवमित्यायुः । नमयत्यात्मानं नम्यतेऽनेनेति वा नाम । उच्चैर्नीचैश्च गूयते शब्द्यते गोत्रम् । दातृदेयादीनामन्तरम् मध्यमे[1] यातीत्यन्तरायः । तथा तेन प्रकारेण मूला उत्तरप्रकृत्याधारभूता अष्टौ प्रकृतयो भवन्तीति । स एषः मूलः प्रकृतिबन्ध इति ।।१८५।।

तत्त्वार्थ का अश्रद्धान । चारित्रमोह का स्वभाव असंयम । आयु का स्वभाव भवधारण । नामकर्म का स्वभाव नारकादि नाम का करणां । गोत्रकर्म का स्वभाव उच्च-नीच स्थान का करनां । अंतराय का स्वभाव दानादि विषैं विघ्न का करणां ।

सो उत लक्षण कार्य करै वा कार्य होय सो **प्रकृति**, तिस स्वभावतै अच्यवन सो **स्थिति** । जैसे छेली (बकरी), गाय, भैंसि आदि के दुग्ध का मधुर स्वभावतैं अच्युतिः सो स्थिति है । ता इस विशेष सो अनुभव हैं । जैसे छेली, गाय, भैंसि आदि के दुग्ध का तीव्र-मंदादि भावकरि स्वाद विशेष तैसें कर्म पुद्गलनि का आप विषैं प्राप्त भया, सामर्थ्य का विशेष सो **अनुभव** हैं । 'इयत्ता' का अवधारण सो प्रदेश, कर्मभावकरि परिणये जे पुद्गलनि के स्कंध तिनका परमाणु परिच्छेदकरि अवधारण सो **प्रदेश**—ऐसे बंध च्यार प्रकार ही हैं ।।१८४।।

तिन विषैं आदि का जो मूलप्रकृति बंध ताकैं भेद दरसावे अर्थि कहै हैं—

अर्थ–आवरै वा आवरिये (ढकना, ढका जाना) जाकरि सो आचरण सो प्रत्येक संबंध करणा । ज्ञान का आचरण, दर्शन का आचरण, वेदन करावे वा वेदिये जाकरि सो वेदनीय, मोहित करै वा मोही जाकरि होय सो मोहनीय, प्राप्ति होय, नारकादिक भवकूं सो आयु आत्मा कूं नमावै वा नमिये जाकरि सो नाम । उच्च बहुरि नीच जाकरि कहिये सो गोत्र । दाता अर दानादिक का अंतर जो मध्य ताहि प्राप्त होय सो अंतराय ।

भावार्थ–दानादिक मैं विघ्न का करणां तथा कहिये तिस प्रकार मूला कहिये, उत्तरप्रकृति के आधारभूत आठ प्रकृति हैं । सो यह मूल प्रकृतिबंध है ।।१८५।।

---

१. क० मध्यमेत्यन्तरायः ।

इदानीमुत्तरप्रकृतिबन्धमाह—

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चदुरो तहेव वादालं ।
दोण्णि य पंच य भणिया पयडीओ उत्तरा चेव ।।१८६।।

ज्ञानावरणस्य पंच प्रकृतयः, दर्शनावरणस्य नव प्रकृतयः, वेदनीयस्य द्वे प्रकृती, मोहनीयस्याष्टाविंशतिः प्रकृतयः, आयुषश्चतस्रः प्रकृतयः, नाम्नो द्विचत्वारिंशत्प्रकृतयः, गोत्रस्य द्वे प्रकृती, अन्तरायस्य पंच प्रकृतयः । अथवा पंचप्रकृतयो ज्ञानावरणमित्येवमादि । इत्येवं नामत्रिनवत्यपेक्षयाऽष्ट-चत्वारिंशच्छतमुत्तरप्रकृतयो भवन्तीति वेदितव्यम् ।।१८६।।

के ते ज्ञानावरणस्य पंच भेदा इत्याशंकायामाह—

आभिणिबोहियसुदओहीमणपज्जयकेवलाणं च ।
आवरणं णाणाणं णादव्वं सव्वभेदाणं ।।१८७।।

अभिमुखो नियतो बोध अभिनिबोधः, स्थूलवर्तमानानन्तरिता अर्था अभिमुखाश्चक्षुरिंद्रिये रूपं नियमितं श्रोत्रेन्द्रिये शब्दः घ्राणेन्द्रिये गन्धः रसनेन्द्रिये रसः स्पर्शनेन्द्रिये स्पर्शः नोइन्द्रिये दृष्टश्रुतानुभूता नियमिताः, अभिमुखेषु नियमितेष्वर्थेषु यो बोधः स अभिनिबोधः । अभिनिबोध एवाभिनिबोधकं ज्ञानमत्र विशेषस्य[1] सामान्यरूपत्वात् । आभिनिबोधिकं विशेषेणान्येभ्योऽवच्छेदकमतो न पुनरुक्तदोषः । श्रुतं मतिपूर्वमिन्द्रियगृहीतार्थात्पृथग्भूतमर्थग्रहणं यथा घटशब्दाद् घटार्थप्रतिपत्तिर्धूमाच्चाग्न्युपलम्भ इति । [2]अवधानादवधिः पुद्गलमर्यादावबोधः । परकीयमनोगतार्थं मन इत्युच्यत तत्परि समन्तादयत इति

अवै उत्तर प्रकृतिबंध है, ताहि कहै है—

अर्थ—ज्ञानावरण की पंचप्रकृति हैं, दर्शनावरण की नव प्रकृति हैं । वेदनीय की दोय प्रकृति हैं । मोहनीय की अठाईस प्रकृति हैं। आयु की च्यारि प्रकृति हैं । नाम की वीयालीस प्रकृति हैं । गोत्र की दोय प्रकृति हैं । अंतराय की पंच प्रकृति हैं । अथवा पंच प्रकृति ज्ञानावरण हैं—इत्यादिक प्रथमांत हू होय है । नामकर्म के तिराणव प्रकृति की अपेक्षाकरि 'एक सौ अड़तालीस' उत्तरप्रकृति हैं—ऐसै जाननां ।।१८६।।

ज्ञानावरण के पाँच भेद कोंन से ? ऐसी आशंका होतैं कहैं हैं—

अर्थ—अभिमुख कहिये नियमित जो बोध सो अभिनिबोध कहिये। स्थूल, वर्तमान, अनन्तर जे अर्थ ते अभिमुख, चक्षु इन्द्रिय विषैं रूप नियमित है । श्रोत्रइंद्रिय विषैं शब्द नियमित है । घ्राणइंद्रिय विषैं गंध नियमित है । रसना इंद्रिय विषैं रस नियमित है । स्पर्शन इंद्रिय विषैं स्पर्श नियमित है । नोइंद्रिय जो मन ताविषैं देख्या, सुन्या अनुभव कीया जे अर्थ ते नियमित हैं । अभिमुख कहिये नियमित है जे अर्थ तिन विषैं जो बोध सो अभिनिबोध, अभिनिबोध सो ही अभिनिबोधक । इहां ज्ञान विशेष है. ताकै सामान्य रूपपनैंतै अभिनिबोधक है सो विशेषण हैं । जातैं अन्यतैं अवच्छेदक हैं यातैं पुनरुक्त दोष नाहीं । श्रुत है सो मतिपूर्वक है । इंद्रियनिकरि ग्रहण कीया जो अर्थ तातैं भिन्न अर्थ का ग्रहण है । जैसे 'घट' शब्दतैं घट अर्थ की प्रतीति होय । बहुरि धूमतैं अग्नि का ज्ञान इत्यादिक नीचले पदार्थ के ज्ञानतैं, अवधि कहिये पुद्गलनि का मर्यादा करि जाननां । पराये मन विषैं प्राप्त भया जो अर्थ सो मन ऐसा कहिये ताहि समस्तपनैं जानैं सो मनः पर्यय । त्रिकालवर्ती अनंत पर्यायनिकी सर्वथा शुद्ध अवबोध सो केवल कहिये । 'ज्ञान' शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां । आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञानावरण । इस सर्व भेदनि का आवरण जाननां ।

---

१. क० विशेष्यं तस्य । २. क० अवाग्धानादवधिः ।

मन:पर्यय: । त्रिकालगोचरानन्तपर्यायाणाम् अवबोध: केवलं सर्वथा शुद्ध: । ज्ञानशब्द: प्रत्येकमभिसंबध्यते । आभिनिबोधिकज्ञानं, श्रुतज्ञानं, अवधिज्ञानं, मन:पर्ययज्ञानं चेति । आवरणशब्दोऽपि प्रत्येकमभिसंबध्यते; आभिनिबोधिज्ञानावरणं, श्रुतज्ञानावरणं, अवधिज्ञानावरणं, मन:पर्ययज्ञानावरणं, केवलज्ञानावरणं चेति । एतेषां सर्वभेदानामावरणं ज्ञातव्यम् । आभिनिबोधिकं ज्ञानमवग्रहेहावायधारणाभेदेन चतुर्विधम्, विषयविषयिसन्निपातानन्तरम[1]वग्रहणमवग्रह:। सोऽप्यर्थव्यंजनावग्रहभेदेन द्विविध: । अप्राप्तार्थग्रहणमर्थावग्रहो यथा चक्षुरिन्द्रियेण रूपग्रहणं, प्राप्तार्थग्रहणं । व्यंजनावग्रहो यथा स्पर्शनेन्द्रियेण स्पर्शग्रहणम्। अवगृहीतस्यार्थस्य विशेषाकांक्षणमीहा, योऽवग्रहेण गृहीतोऽर्थस्तस्य विशेषाकांक्षणं भवितव्यता [2]प्रत्ययं । यथा कंचिद् दृष्ट्वा किमेषो भव्य, उत अभव्य:, भव्येन भवितव्यमिति विशेषाकांक्षणमीहा । ईहितस्यार्थस्य भवितव्यतारूपस्य संदेहापोहनमवाय: । भव्यएवायं नाभव्य: भव्यत्वाविनाभाविसम्यग्-दर्शनज्ञानचरणानामुपलम्भात् । निर्णीतस्यार्थस्य कालान्तरेष्वविस्मृतिर्धारणा, यस्माज्ज्ञानात्कालान्तरेऽप्यविस्मरणहेतुभूतो जीवे संस्कार उत्पद्यते तज्ज्ञानं धारणा । न चैतेषामवग्रहादीनां चतुर्णां सर्वत्र क्रमेणैवोत्पत्तिस्तथानुपलंभात् तत: क्वचिदवग्रह एव, क्वचिदवग्रहो धारणा च, क्वचिदवग्रह ईहा च, क्वचिदवग्रहेहावायधारणा इति । तत्र बहुबहुविधक्षिप्रानि:सृतानुक्तध्रुववसेतरभेदेनैकैको द्वादशविध: . तत्र बहूनामेकवारेण ग्रहणं बह्ववग्रह: युगपत्पंचांगुलिग्रहणवत्।

आभिनिबोधिक है सो अवग्रह, ईहा अवाय और धारणा के भेदकरि च्यारि प्रकार है । विषय अर विषयी का सन्निपातकै अनंतर जो आद्यग्रहण सो अवग्रह है । विषय रूपादिक अर्थ विषयी इंद्रिय, तिनका सन्निपात ज्ञान उपजिवे योग्य अवस्था सो दर्शन, ताकैं अनंतर उपज्या जो ज्ञान सो अवग्रहै हैं । सोहू अर्थावग्रह, व्यंजनावग्रह के भेदकरि दोय प्रकार है । अप्राप्त अर्थ का ग्रहण सो अर्थावग्रह हैं । जैसे चक्षुइंद्रियकरि रूप का ग्रहण प्राप्त अर्थ का ग्रहण सो व्यंजनावग्रह है । जैसे स्पर्शनइंद्रिय करि स्पर्शग्रहण, अवग्रहीत जो अर्थ ताके विशेष विषैं आकांक्षा सो ईहा, अवग्रहकरि ग्रहीत अर्थ ताके विशेष का आकांक्षण कहिये भवितव्यता की प्रतीति, जैसैं क्यौं देखि ? यह कहा भव्य है अथवा अभव्य है ? भव्य जो है तानै होना—या प्रकार विशेष आकांक्षण सो ईहा है । भवितव्यता रूप ईहित अर्थ का संदेह का निवारण सो अवाय है । यह भव्य ही है, अभव्य नाहीं । काहैं ते ? भव्यपनैं तैं । अविनाभावी जो सम्यक्ज्ञान दर्शन-चारित्र—इनके उपलंभ तैं निर्णीत अर्थ का कालान्तर विषैं हू अविस्मरण सो धारणा है । जिस ज्ञानतैं कालान्तर विषैं हू अविस्मरण का हेतुभूत जीव विषैं संस्कार उपजै सो ज्ञान धारणा है ।

बहुरि इन अवग्रहादिक च्यारिनिकी सर्वत्र क्रम ही करि उत्पत्ति नाहीं हैं । तथा अनुपलंभ है यातैं तातैं कहौ अवग्रह ही हैं, कहौ अवग्रह बहुरि धारणा है, कहौं अवग्रह बहुरि ईहां है, कहौ अवग्रह ईहां अवाय हैं । कहौ अवग्रह अवाय धारणा हैं । कहौ अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा हैं । तहाँ १. बहु, २. बहुविध, ३. क्षिप्र, ४. अनि:सृत, ५. अनुक्त और ६. ध्रुव । इतर जे प्रतिपक्षी भेदनि करि एक-एक, बारह प्रकार काल हैं, तहाँ बहुतनि का एकबारकरि ग्रहण सो बहुअवग्रह है । एक काल पंच अंगुली के ग्रहणवत् । एक ही का ग्रहण सो एकावग्रह, एक आंगुली के ग्रहणवत् । बहुत प्रकार जे हाथी, घोटक (घोड़ा), गाय, भैसि आदिकनिका नाना जातिनि का ग्रहण सो बहुविध अवग्रह है । एक जाति का ग्रहण सो एकविधावग्रह है । शीघ्र ग्रहण सो क्षिप्रावग्रह है, शनै: ग्रहण सो अक्षिप्रावग्रह है । अभिमुख अर्थ का ग्रहण सो नि:सृत-अवग्रह है, जैसैं—कमल-आननि मुख अर्थ का ग्रहण सो अनिसृतावग्रह है । अथवा उपमान-उपमेय भावकरि ग्रहण सो नि:सृतावग्रह है । तातैं विपरीत सो अनि:सृतावग्रह है । जैसै कमलदलनेत्रा कहिये कमल पत्र समान हैं नेत्र जाके, अैसी स्त्री है। या प्रकार ग्रहण अथवा तिसतैं विपरीत ग्रहणा । नियमित गुणकरि विशिष्ट जो अर्थ ताका जो ग्रहण सो उक्त अवग्रह है । जैसे चक्षुइंद्रियकरि

---

१. क० माद्यग्रहण- । २. क प्रत्यय: ।

एकस्यैवोपलम्भ (एकावग्रहः) एकाङ्गुलिग्रहणवत् । बहुप्रकारणां हस्त्यश्वगोमहिष्यादीनां नानाजातीनां ग्रहणं बहुविधावग्रहः । एकजातिग्रहणमेकविधावग्रहः। आशु ग्रहणं क्षिप्रावग्रहः । चिरकालग्रहणमक्षिप्रावग्रहः । अभिमुखार्थग्रहणं निःसृतावग्रहः । अनभिमुखार्थग्रहणमनिःसृतावग्रहः । अथवोपमानोपमेयभावेन ग्रहणं निःसृतावग्रहस्तद्विपरीतोऽन्यथा, यथा कमलदलनेत्रात्तद्विपरीतो वा । नियमितगुणविशिष्टार्थग्रहणमुक्तावग्रहो, यथा चक्षुरिन्द्रियेण धवलग्रहणं अनियमितगुणविशिष्टद्रव्यग्रहणमनुक्तावग्रहः यथा चक्षुरिन्द्रियेण द्रव्यान्तरस्य । निर्णयेन ग्रहणं ध्रुवावग्रहस्तद्विपरीतऽध्रुवावग्रहः । एवमीहादीनामपि द्वादशभेदा ज्ञातव्याः । (यथा चक्षुरिन्द्रियस्याष्टचत्वारिंशद्भेदास्तथा पंचनामिन्द्रियाणां षष्ठस्य मनसश्चैवमष्टाशीत्युत्तरद्विशतभेदा भवन्ति तेषु व्यंजनावग्रहस्याष्टचत्वारिंशद्-भेदानां मिश्रणे कृते सति षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदा आभिनिबोधिकस्य ज्ञानस्य भवन्ति) ज्ञानभेदादावरणस्यापि भेदो द्रष्टव्य इति । श्रुतज्ञानमपि पर्यायादिभेदेन विंशतिभेदम् । पर्यायः, पर्यायसमासः, अक्षरम्, अक्षरसमासः, पदं, पदसमासः, संघातः, संघातसमासः, प्रतिपत्तिः, प्रतिपत्तिसमासः, अनियोगः, अनियोगसमासः, प्राभृतकः, प्राभृतकसमासः प्राभृतकप्राभृतकः, प्राभृतकप्राभृतकसमासः, वस्तु, वस्तुसमासः, पूर्वं, पूर्वसमासः । तत्राक्षराणां भावादक्षरं केवलज्ञानं तस्यान्तभागः, पर्यायलब्ध्यक्षरसंज्ञकं केवलज्ञानमिव निरावरणं सूक्ष्मनिगोदस्य तदपि भवति तत्स्वकीयानन्तभागेनाधिकं पर्यायसंज्ञकं भवति ज्ञानं तस्मादुत्पन्नं श्रुतमपि पर्यायसंज्ञकं कार्ये कारणोपचारात् । ततस्तदेवानन्तभागेन स्वकीयेनाधिकं पर्यायसमासः । एवमनन्तभागासंख्यातगुणानन्तगुणवृद्धया चैकाक्षरं भवति वृद्धीरीदृशीः असंख्यातलोकमात्राः षड्वृद्धीरतिक्रम्य पर्यायाक्षरसमासस्य सर्वपश्चिमो विकल्पो भवति तदनन्तभागाधिकमक्षरं नाम श्रुतज्ञानं भवति । कथं ? द्रव्यश्रुतप्रतिबद्धैकाक्षरोत्पन्नस्योपचारेणाक्षरव्यपदेशात् । तस्योपर्येकाक्षरे वृद्धिं गतेऽक्षरसमासः अक्षरस्यानन्तभागे वा वृद्धिं गतेऽक्षरसमासो

श्वेत का ग्रहण । अनियमित गुणकरि विशिष्ट जो द्रव्य ताका ग्रहण सो अनुक्तावग्रह है । जैसै—चक्षुइंद्रिय करि गुडादिक के रस का ग्रहण सो प्राणइंद्रियकरि दधि आदि के रस का ग्रहण निर्णयकरि ग्रहण सो ध्रुवावग्रह है । तातैं विपरीत सो अध्रुवावग्रह है । अैसै ईहादिकनिके हू द्वादश भेद जाननें ।

चक्षुरिंद्रिय के अड़तालिस भेद हैं । तैसें ईषत् इंद्रिय जो मन ताका अड़तालीस भेद हैं । अवशेष च्यारि इंद्रियनि के आठ भेद जाननें । च्यारिभेद अर्थावग्रह के, च्यारि भेद व्यंजनावग्रह के—या प्रकार अभिनिबोधिक (मतिज्ञान) ज्ञान का आवरण हैं (इस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञान के कुल तीन सौ छत्तीस भेद हो जाते हैं) । ज्ञान के भेदतैं आवरणहू के (उतने ही) भेद जाननां ।

श्रुतज्ञान है सो हू पर्याय आदि भेदकरि बीस प्रकार हैं—१. पर्याय, २. पर्यायसमास. ३. अक्षर, ४. अक्षर समास, ५. पद, ६. पदसमास, ७. संघात, ८. संघात समास, ९. प्रतिपत्ति, १०. प्रतिपत्ति समास, ११. अनियोग, १२. अनियोग समास, १३, प्राभृतक, १४. प्राभृतक समास १५. प्राभृतक-प्राभृतक, १६. प्राभृतक-प्राभृतक समास १७. वस्तु, १८. वस्तुसमास, १९. पूर्व, २०. पूर्वसमास।

तहां क्षरण जो विनाश ताकैं अभावतैं अक्षर-अैसा केवलज्ञान है । ताका अनंतवां भाग सो पर्याय लब्धि-अक्षर है संज्ञा जाकी । सो केवलज्ञान ज्यौं (के समान) निरावरण है, सो ज्ञान सूक्ष्म निगोदिया के (जीव) होता है । सो स्वकीय अनन्तभागकरि अधिक पर्याप्तसंज्ञक—या प्रकार ज्ञान तातैं उपज्या श्रुतहूं पर्यायसंज्ञक है । (चूँकि यहाँ) कार्य विषैं कारण का उपचार हैं यातैं, तातैं सो स्वकीय अनंतभागकरि अधिक पर्यायसमास है ।

या प्रकार अनंतभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि, अनंतगुणवृद्धि, त्नकरि अवनीत कहिये गृहीत एक षट्वृद्धि है, अैसी असंख्यात लोक मात्र षट्स्थानवृद्धि है । तिनही उलंघिकरि पर्यायाक्षर समास का सर्वतैं पीछला भेद होय हैं । सो अनंतरूप भागकरि अधिक अक्षरनाम श्रुतज्ञान है ।

भवति एवं यावत्पदं न प्राप्तं तावदक्षरसमासः । तस्योपर्येकाक्षरे वृद्धिं गते पदं षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटीभिस्त्र्यशीतिलक्षाधिकाभिरष्टसप्ततिशताधिकाभिरष्टाशीत्यक्षराधिकाभिश्चाक्षराणां गृहीताभिरेकं द्रव्यं श्रुतपदं तस्मादुत्पन्नज्ञानमप्युपचारेण पदसंज्ञकं श्रुतम् । तस्योपर्येकाक्षरे वृद्धिं गते पदसमासः । एवमेकैकाक्षारवृद्धिक्रमेण नेतव्यं यावत्संघातं न प्राप्नोति एक विकल्पोनं तत्सर्वं पदसमासः । तत एकाक्षरे वृद्धिं गते संघातः । संख्यातपदैर्भवति यावद्भिः पदैर्नरकगतिः प्ररूप्यते तावद्भिर्भवति तस्मादुत्पन्नं ज्ञानमपि संघातसंज्ञकं, एतस्योपर्येकाक्षरे वृद्धिं गते संघातसमासः । एकाक्षरे प्रविष्टे प्रतिपत्तिः स्यात् यावद्भिः पदैरेकगतीन्द्रियकाययोगादयः प्ररूप्यन्ते तावद्भिः पदैर्गृहीतैः प्रतिपत्तिश्रुतं भवति, तस्योपर्येकाक्षरे वृद्धिं गते प्रतिपत्तिसमासः यावदनुयोगो न भवति । एकाक्षरे वृद्धिं गतेऽनियोगो भवति चतुर्दशमार्गणाप्ररूपकस्तत एकाक्षरे वृद्धेऽनियोगसमासः । एकाक्षरेण प्राभृतकं भवति संख्यातानियोगद्वारैस्तत एकैकाक्षरवृद्धिक्रमेण यावत्प्राभृतकं न परिपूर्णं तत्सर्वं प्राभृतकप्राभृतकसमासस्तत एकाक्षरेण प्राभृतप्राभृतकं भवति, तत एकाक्षरेण वृद्धिर्यावद्वस्तु एकाक्षरेणोनं तत्सर्वं प्राभृतकप्राभृतकसमासः एकाक्षरेणवस्तुविंशतिप्राभृतकैस्तत एकाक्षरवृद्धया नेतव्यं यावत्पूर्वमेकाक्षरेणोनं तत्सर्वं वस्तुसमासः । तत एकाक्षरेण पूर्वं भवति संख्यातवस्तुभिस्तत एकैकाक्षरवृद्धया तावन्नेतव्यं यावल्लोकविन्दुसारश्रुतं एकाक्षरेणोनं, तेनाधिकं पूर्वम् पूर्वसमासः । एतस्य श्रुतास्यावरणं श्रुतावरणं श्रुतज्ञानभेदावरणस्यापि भेद इति । अवधिज्ञानं देशावधिपरमावधिसर्वावधिभेदेन त्रिविधमेकैकमपि जघन्योत्कृष्टभेदेन द्विविधम् । तत्र जघन्यदेशावधिर्द्रव्यत एकजीवौदारिकशरीरस्य लोकेन भागे हृत एकभागम् जानाति, क्षेत्रतः घनांगुलस्यासंख्यातभागं जानाति, कालत आवल्या असंख्यातभागं जानाति । भावतो

कैसे ? द्रव्यश्रुतकरि प्रतिबद्ध जो एक अक्षर ताकरि उपज्या जो ज्ञान, ताकै उपचारकरि अक्षर का व्ययदेश है, यातैं याकैं उपरि एक अक्षरवृद्धि कूं प्राप्त होतैं अक्षरसमास हैं । अथवा अक्षर का अनंतवां भाग वृद्धि को प्राप्त होतैं अक्षरसमास होय है ।

या प्रकार जेतैं पद नांही प्राप्त होय, तेतैं अक्षरसमास हैं । ताकै उपरि एक अक्षर वृद्धि को प्राप्त होय हैं । तियासी लाखकरि अधिक, सात हजार आठसैं करि अधिक, अठासी करि अधिक ग्रहन कीये जे अक्षरनिके सौला सैं चौतीस कोडि अक्षर तिनकरि एक द्रव्यश्रुत पद होय है ।

भावार्थ–एक द्रव्यश्रुत के अक्षर सोला सौ चौंतीस करोड तियासी लाख सात हजार आठ से अठासी (१६३४८३०७८८८) अैसैं हैं । तातैं उपज्याज्ञान हू उपचारकरि पद जाननां । ताकैं उपरि एक अक्षर वृद्धि कूं प्राप्त होतैं पदसमास होय हैं । अैसे एक-एक अक्षर की वृद्धि के क्रमकरि ग्रहण करणां । जैतैं एक विकल्पकरि संघातकूं नांही प्राप्त होय सो समस्त पदसमास है । तापीछै एक अक्षर वृद्धि कूं प्राप्त होतैं संख्यात पदनिकरि संघात होय हैं । जेते पदनि करि संघात होय है । जेते पदनिकरि नरकगति प्ररूपणा करिये तेते पदनिकरि होय हैं। तातैं उपज्याज्ञान हू संघात संज्ञक है । याके उपरि एक अक्षर वृद्धि कूं प्राप्त होतैं संघातसमास होय है । अैसे एक-एक अक्षर के वृद्धि क्रमकरि ग्रहण करणां । जैतै एक अक्षरकरि ऊन प्रतिपत्ति होय तैंतैं संघातसमास है । एक अक्षर वधतैं प्रतिपत्ति होय है । जेते पदनिकरि एक गति, इंद्रिय, काय योगादिक प्ररूपण करिये तेते पद ग्रहण कीयैं प्रतिपत्ति श्रुत होय है । तातैं उपरि एक-एक अक्षर वृद्धिकूं प्राप्त होतैं प्रतिपत्ति समास होय है । जेतैं अनियोग नांही होय एक अक्षरकरि वधतैं चौदह प्ररूपणा अर मार्गणा का प्ररूपक अैसा अनियोग होय है तापीछैं एक-एक अक्षर के वृद्धि कूं प्राप्त होतैं अनियोग समास होय हैं । एक अक्षरकरि संख्यात अनियोग द्वारकरि प्राभृतक-प्राभृतक होय है । ता पीछैं एक-एक अक्षर के वृद्धि क्रमकरि जेतैं प्राभृतक संपूर्ण नांही होय सो सर्व प्राभृतक-प्राभृतकसमास होय है । एक अक्षरकरि संख्यात प्राभृतक हैं, ताहि जानै है कालकरि । आवली के असंख्यात भाग है ताहि जानैं हैं, भावकरि जघन्य द्रव्य पर्याय विषैं आवली का असंख्यात भाग प्राभृतक है, ता पीछै एक अक्षरकरि वृद्धि करणीं । जेतैं वस्तु एक-एक अक्षरकरि ऊन होय तैतैं सो सर्वप्राभृतक समास है । एक अक्षर

जघन्यद्रव्यपर्यायेषु आवल्यसंख्यातभागेषु कृतेषु तत्रैकखण्डं जानाति । उत्कृष्टदेशावधिर्द्रव्यत: कार्मणवर्गणाया मनोवर्गणानन्तभागेन भागे हृते तत्रैकखण्डं जानाति, क्षेत्रत: संख्यातलोकं जानाति, कालत: पल्योपमं जानाति, भावतोऽसंख्यातलोकपर्यायान् जानाति । तत्र परमावधिर्जघन्यद्रव्यतो देशाद्युत्कृष्टद्रव्यस्य मनोवर्गणानन्तभागस्यानन्तभागन.....? भागे हृते तत्रैकभागं जानाति, क्षेत्रतोऽसंख्यातलोकं[1] जानाति, कालत पल्योपमं जानाति, भावतोऽसंख्यातलोकपर्यायान् जानाति । उत्कृष्टो द्रव्यतो मनोवर्गणाया अनन्तभागं जानाति, क्षेत्रतोऽसंख्याताँल्लोकान् जानाति, कालतोऽसंख्याततलोकसमयान् जानाति, भावतोऽसंख्यातलोकपर्यायान् जानाति । सर्वावधिर्द्रव्यत एकं परमाणुं जानाति, क्षेत्रतोऽसंख्याताँल्लोकान् जानाति, कालतोऽसंख्यातलोकसमयान् जानाति, भावतोऽसंख्यातलोकपर्यायान् जानाति । सर्वत्रासंख्यातगुणो गुणकारो द्रष्टव्य: पूर्वपूर्वापेक्षया अनुगाम्यननुगामिवर्द्धमानहीयमानावस्थितभेदात् षड्विधो वावधि:, एतस्यावधिज्ञानस्यावरणमवधिज्ञानावरणम् । मन:पर्ययज्ञानमृजुविपुलमतिभेदेन द्विविधमृजुमतिमन:पर्ययज्ञानं विपुलमतिमन:पर्ययज्ञानम् चेति । ऋज्वी प्रगुणा निर्वर्तिता मति: ऋजुमति: वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानं निर्वर्तिता, अनिवर्तिता कुटिला·विपुला च मतिर्विपुलमति, अनिर्वर्तिता वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानात्, अथवा ऋज्वी मर्तियस्य ज्ञानविशेषस्यासौ ऋजुमतिर्विपुला मर्तियस्यासौ विपुलमति: । ऋजुमतिर्विपुलमतिश्च मन:पर्यय । तत्र ऋजुमतिद्रव्यतो जघन्येनैकसामयिकीं औदारिकशरीरनिर्जरां जानात्युत्कृष्टत एकसामयिकीं चक्षुरिन्द्रियनिर्जरां जानाति, क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्वम्, उत्कृष्टतो योजनपृथक्त्वं जानाति । कालतो जघन्येन द्वौ वा त्रीन्वा भवान्, उत्कृष्टत: सप्ताष्टौ भवान् जानाति । भावतो

करि बीस प्राभृत-कनिकरि वस्तु होय है । ता पीछैं एकाक्षर वृद्धि करि ग्रहण करणां जैतैं पूर्व एकाक्षर करि ऊन होय है, सो सर्ववस्तु समास है । ता पीछै एकाक्षरकरि संख्यात वस्तुनिकरि पूर्व होय है । ता पीछै एकाक्षरकरि वृद्धिकरि ते ग्रहण करणां । जैतैं एक अक्षरकरि ऊन लोकबिंदुसार श्रुत होय तिसकरि अधिक पूर्व सो सर्वपूर्व समास हैं । यह कथित जो श्रुतताका जो आवरण सो श्रुतज्ञानावरण है । श्रुतज्ञान के भेदतैं आवरण का हू भेद है ।

अवधिज्ञान है सो १. देशावधि, २. परमावधि, ३. सर्वावधि भेदकरि तीन प्रकार हैं । एक-एक हू जघन्य, उत्कृष्ट भेदकरि दोय प्रकार हैं । तहां जघन्य देशावधि सो द्रव्यतैं एक जीवके औदारिक शरीरकै लोककरि भाग दीये एक भाग है, ताहि जाने है । क्षेत्रतैं घनांगुल का संख्यात भाग कीये तहां एक खंड हैं, ताहि जानैं है । कालतैं आवली का असंख्यात भाग है, ताहि जाने हैं । भावतै जघन्य द्रव्यपर्याय विषैं आवली का असंख्यातभाग कीये तहाँ एक खण्ड है, ताहि जानैं हैं । उत्कृष्ट देशावधि है सो द्रव्यतैं कार्मण वर्गणा कै मनोवर्गणा का अनंतभाग करि भाग दीयैं तहां एक खंड है, ताहि जानै है । क्षेत्रतैं संख्यातलोक हैं । इहाँ अैसा विशेष समझनां जो गोम्मट्टसार सिद्धान्त मैं लोकप्रमाण क्षेत्र का प्रमाण लिख्या है । इहाँ संख्यात लोक लिख्या है, सो दोउ सिद्धान्त प्रमाण हैं ।

अर जो केवली देख्या सो सत्य है, ताहि जानैं है । कालतैं समयकरि ऊनपल्योपम जानै है । भाव थकी असंख्यात लोकप्रमाण पर्याय है, तिनहि जानै है । तहां जघन्य परमावधि है सो द्रव्य थकी, देश थकी, देशावधि का उत्कृष्ट द्रव्यकूं मनोवर्गणा के अनंतभाग करि भाग दीये तहां एक भाग है, ताहि जानैं हैं । क्षेत्र थकी असंख्यात लोक है तिनहि जानै है । काल थकी पल्योपम जानै है । भाव थकी असंख्यात लोकप्रमाण पर्याय है, तिनहि जानै है । उत्कृष्ट परमावधि है सो द्रव्यथकी मनोवर्गणा के अनंतवां भाग है, ताहि जानै हैं । क्षेत्र थकी असंख्यात

---

१. क० असंख्यातान् लोकान् ।

जघन्येनोत्कृष्टेन चासंख्यातभावान् जानाति किं तु जघन्यादुत्कृष्टानां साधिकत्वम् इति । विपुलमतिर्द्रव्यतो जघन्येनैकसामयिकीं चक्षुरिन्द्रियनिर्जरां जानाति उत्कृष्टेनैकसमयप्रबद्धकर्मद्रव्यस्य मनोवर्गणाया अनन्तभागेन भागे हृत एकखण्डं जानाति । क्षेत्रतो जघन्येन योजनपृथक्त्वं साधिकं जानाति । उत्कृष्टतो मनुष्यक्षेत्रं जानाति । कालतो जघन्येन सप्ताष्टभवान् जानात्युकृष्टतोऽसंख्यातान् एतस्य भवान् जानाति । भावतो जघन्येनासंख्यातपर्यायान् जानाति, उत्कृष्टतस्ततोऽधिकान् पर्यायान् जानाति । मन:पर्ययस्यावरणं मन:पर्ययावरणम् । केवलज्ञानमसहायमन्यनिरपेक्षं,तस्यावरणं केवलज्ञानावरणम् । एवं पंचप्रकारमावरणं; ज्ञानावारक: पुद्गलस्कन्धनिचय: प्रवाहस्वरूपेणानादिबद्ध: ज्ञानावरणमिति ।।१८७।।

लोक है, तिनहि जानै है । काल थकी असंख्यात लोक के समय हैं, तिनहि जानै है । भाव थकी असंख्यातलोक प्रमाण पर्याय है, तिनहि जाने है । सर्वावधि है सो द्रव्य थकी एक प्रमाण है, ताहि जानै । क्षेत्र थकी असंख्यात लोक है, तिनहि जानै है । सर्वत्र असंख्यात गुणागुण करि जाननां ।

पूर्व-पूर्व की अपेक्षा विषैं १. अनुगामी, २. अननुगामी, ३. वर्द्धमान, ४. हीयमान, ५. अवस्थित, ६. अनवस्थित—भैदतैं छह प्रकार अवधिज्ञान है । इस अवधिज्ञान का आवरण सो अवधिज्ञानावरण है ।

मन:पर्ययज्ञान है सो ऋजु विपुलमति भेदकरि दोय प्रकार है—ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान बहुरि विपुलमति मन:पर्ययज्ञान । ऋजु कहिये सरल अैसी जो मति सो ऋजुमति कहिये । ऋज्वी, प्रगुणा, निर्वर्तिता—ये एकार्थ हैं । अन्य के मन विषैं प्राप्त भया अैसा सरल जो वाक्, काय, मनकरि कीया अर्थ ताके विज्ञानतैं अनिवर्तिता, कुटिला, बहुरि विपुला यह एकार्थ हैं । विपुला कहिये कुटिल अैसी जो मति सो विपुलमति कहिये । काहैं तैं ? अन्य के मन विषैं प्राप्त भया अैसा जो अनिवर्तित वाक्-मनकरि कीया अर्थ, ताके विज्ञानतैं अथवा ऋज्वी कहिये सरल है मति जिस ज्ञान विशेषकी सो ऋजुमति विपुल है मति जिस ज्ञान विशेष की सो विपुलमति । ऋजुमति बहुरि विपुलमति—अैसा मन:पर्ययज्ञान है ।

तहां ऋजुमति है सो द्रव्य थकी जघन्यकरि एक समय विषैं भई औदारिक शरीर की निर्जरा है, ताहि जाने है । उत्कृष्ट थकी एक समय विषैं भई चक्षु इन्द्रिय की निर्जरा है, ताहि जाने है । क्षेत्र थकी जघन्यकरि पृथक्त्व कोश प्रमाण जानैं है । उत्कृष्ट थकी पृथक्त्व योजन प्रमाण है जाने है । काल थकी जघन्य करि दोय अथवा तीनभव जानै है । उत्कृष्ट थकी सात-आठ भव जानै है । भाव थकी जघन्यकरि अथवा उत्कृष्टकरि संख्यात भव जानै है । यहाँ ऐसा विशेष है जघन्य थकी संख्यात भव जानै है । तिसतैं उत्कृष्ट थकी साधिक संख्यातभव जानै हैं । विपुलमति है सो द्रव्यथकी जघन्यकरि एक समय विषैं चक्षु इंद्रिय की निर्जरा है, ताहि जानै है, उत्कृष्टकरि एक समयप्रबद्ध कर्म द्रव्य कै मनोवर्गणा कै अनंत का भाग दीये एक खंड है, ताहि जानै हैं । क्षेत्र थकी जघन्यकरि साधिकरि साधिक पृथक्त्व योजन जानैं है। उत्कृष्ट थकी मनुष्य क्षेत्र है, ताहि जानै है । काल थकी जघन्य करि सात-आठ भव जाने है । उत्कृष्ट थकी असंख्यातभव जानै है । भाव थकी जघन्य करि असंख्यात पर्याय, उत्कृष्ट थकी तातैं अधिक असंख्यात पर्याय है, तिनहि जानै है । इस मन:पर्यय का आवरण सो मन:पर्ययावरण है । केवलज्ञान है सो असहाय, अन्य की अपेक्षातैं रहित अैसा है । ताका आवरण सो केवल ज्ञानावरण है ।

अैसे पंच प्रकार आवरण हैं । ज्ञान का निवारक पुद्गल स्कंध का निचय प्रवाह स्वरूपकरि अनादि बंधकरि बंध्या सो ज्ञानावरण है ।।१८७।।

दर्शनावरणप्रकृतिभेदानाह—

णिद्दाणिद्दा पयलापयला तह थीणगिद्धि णिद्दा य ।
पयला चक्खु अचक्खू ओहीणं केवलस्सेदं ।।१८८।।

आवरणमित्यनुवर्तते तेन सह संबन्धः । निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धिः, निद्रा, प्रचला, अत्र दर्शनावरणं सामानाधिकरण्येन दृश्यते[1], निद्रानिद्रा चासौ दर्शनावरणं च, एवं प्रचलाप्रचला दर्शनावरणं, स्त्यानगृद्धिर्दर्शनावरणं, निद्रा दर्शनावरणं, प्रचला दर्शनावरणं, उत्तरत्र वैयधिकरण्येन चक्षुर्दर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणमवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणं चेति नवविधं दर्शनावरणमेतदिति । तत्र मदखेदक्लमविनोदार्थं स्वापोनिद्रा, तस्या उपर्युपरि वृत्तिर्निद्रानिद्रा । स्वापक्रिययात्मानं प्रचलयति सा प्रचला । शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविकृतिसूचिकासौ च पुनः पुनर्वर्त्तमाना प्रचलाप्रचला । स्वप्ने वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः स्त्यायतेरनेकार्थत्वात् स्वापार्थ इह गृह्यते, गृधेरपि[2] दृप्तिः स्त्याने गृध्यते दृप्यते[3] यदुदयादात्मा

आगै दर्शनावरण प्रकृति का भेद है, ताहि कहै है—

अर्थ–आवरण अैसी अनुवृत्ति है, ताकरि सहित संबंध जानना, १. निद्रा-निद्रा, २. प्रचला-प्रचला, ३. स्त्यानगृद्धि, ४. निद्रा, ५. प्रचला—इहां दर्शनावरण हैं, सो समानाधिकरण करि संबंध करणां । निद्रा-निद्रा अैसा जो दर्शनावरण सो निद्रानिद्रा दर्शनावरण कहिये। अैसें २. प्रचला-प्रचला दर्शनावरण, ३. स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण, ४. निद्रा दर्शनावरण, ५. प्रचलादर्शनावरण—उत्तरत्रादर्शनावरण हैं, सो व्यधिकरण करि संबंध करणां । ६. चक्षुदर्शनावरण, ७. अचक्षुदर्शनावरण, ८. अवधिदर्शनावरण, ९. केवलदर्शनावरण—अैसें यह दर्शनावरण नव प्रकार हैं ।

तहा मद, खेद, क्लम, विनोद—इनकैं अर्थि शयन है सो निद्रा है । तिस निद्रा की ऊपरा ऊपरि प्रवृत्ति सो निद्रा-निद्रा है । जो शयनक्रिया आत्माकूं चलायमान करै सो प्रचला है । बैठ्या हू कै शोक, श्रम, मदादिकतैं उपजी नेत्र, गात्र विषैं क्रिया की जणावे वारी सो ही पुनः-पुनः आवती प्रचला-प्रचला है । शयन विषैं हू जाकरि वीर्य विशेष का प्रगट होना सो स्त्यानगृद्धि । स्त्यायति का अनेक अर्थ है। यातैं इहाँ शयन अर्थ विषैं ग्रहण करणां । गृद्धि हू का दीप्ति अर्थ लेणां । जाकै उदयतैं आत्मास्त्यान जो शयन ताविषैं (गृद्धवते कहिये दीप्तिमान होय) रौद्र अैसा बहुत कर्म हैं, ताहि करै सो स्त्यानगृद्धि है । तहाँ १. निद्रा-निद्रा दर्शनावरण के उदय हौंतैं वृक्ष के अग्रविषैं, असमान भूमि विषैं, अथवा जिस-तिस देश विषैं, घोरता अत्यंत सोवै है । २. प्रचलाप्रचला के उदयकरि बैठ्या, वा ठाड़ा, पडती जे लाल (गिरतीहुई लार) तिन सहित मुख बहुरि शरीरकूं अर शिरकूं कंपावता अत्यंत सोवै है । ३. स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण के उदयकरि उठाया हू बहुरि सोवै, सूता हू अन्य काम करैं, दंतनि हू कट-कट करता सौवै । ४. 'निद्रा' के तीव्र उदयकरि अल्पकाल सोवै, उठाया शीघ्र उठै, अल्पशब्दकरि सचेत रहे ५. 'प्रचला' का तीव्र उदयकरि बालूका भरे ज्यौं नेत्र होय, अतिभारकरि युक्त ताकी नांई मस्तक होय, पुनः-पुनः नेत्रनिकूं उघारै अर ढकै, अपने पडते शरीरकूं धारैं । ६. चक्षुज्ञान के उत्पादक जो प्रयत्नताकरि युक्त गुणीभूत विशेष सामान्य जो आलोचन

---

१. क० संबध्यते । २. क० दीप्तिः । ३. क० दीप्यते ।

रौद्रं बहुकर्म करोति स्त्यानगृद्धिः । तत्र, निद्रानिद्रादर्शनावरणोदयेन वृक्षाग्रे समभूमौ यत्र तत्र देशे घोरं रवं घोरयन्निर्भरम् स्वपिति । प्रचलाप्रचला तीव्रोदयेन आसीन उत्थितो वा गलल्लालामुखं पुनः पुनः शरीरं शिरश्च कम्पयन् निर्भरं स्वपिति । स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणोदयेन उत्थितोऽपि पुनः स्वपिति, सुप्तोऽपि कर्म करोति, दन्तान् कटकटायमानः शेते इति । निद्रायास्तीव्रोदयेनाल्पकालं स्वपिति, उत्थाप्यमानः सोऽपि शीघ्रमुत्तिष्ठति, अल्पशब्देन चेतयते। प्रचलायास्तीव्रोदयेन वालुकाभृते इव लोचने भवतः, गुरुभारावष्टब्धमिव शिरो भवति, पुनः पुनर्लोचने उन्मीलयति स्वपन्तमात्मानं वारयति । चक्षुर्ज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धगुणीभूतविशेषसामान्यालोचनं चक्षुर्दर्शनरूपं दर्शनक्षमं, तस्यावरणं चक्षुर्दर्शनावरणम् । शेषेन्द्रियज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धगुणीभूतविशेषसामान्यालोचनमचक्षुर्दर्शनं, तस्यावरणमचक्षुर्दर्शनावरणम् । अवधिज्ञानोत्पादकप्रयत्नानुविद्धसन्निपातगुणीभूतविशेषरूपिवस्तुसामान्यालोचनमवधिदर्शनं, तस्यावरणमवधिदर्शनावरणम् । युगपत्सर्वद्रव्यपर्यायसामान्यविशेषप्रकाशकं केवलज्ञानाविनाभाविकेवलदर्शनं तस्यावरणं केवलदर्शनावरणम् । मिथ्यात्वासंयमकषाययोगैकरूपेण परिणतो जीवसमवेतदर्शनगुणप्रतिबन्धकस्तद्दर्शनावरणमिति ।।१८८।।

वेदनीयमोहनीययोरुत्तरप्रकृतीः प्रतिपादयन्नाह—

सादमसादं दुविहं वेदणियं तहेव मोहणीयं च ।
दंसणचरित्तमोहं कसाय तह णोकसायं च ।।१८९।।

सातमसातं द्विविधं वेदनीयं, तथैव मोहनीयमपि द्विविधं दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं च, द्विविधमुत्तरत्र भणति तेन सह संबन्धः । चरित्रमोहनीयमपि द्विविधं कषायमोहनीयनोकषायमोहनीयभेदेन । सातं सुखं सांसारिकं, तद्भोजयति वेदयति जीवं सातवेदनीयम् । असातं दुःखं, तद्भोजयति वेदयति

रूप का देखवे वारा सो चक्षुदर्शन है । ताका आवरण सो चक्षुदर्शनावरण है । ७. अवशेष इंद्रियज्ञान ताका उत्पादक जो प्रयत्न, ताकरि युक्त गुणीभूत विशेष-सामान्य का अवलोचन सो अचक्षुदर्शन है । ताका आवरण अचक्षुदर्शनावरण है । ८. अवधि ज्ञान का उत्पादक जो प्रयत्न, ताकरि युक्त सन्निपात गुणीभूत विशेष रूपी वस्तु का सामान्य आलोचन सो अवधिदर्शन है । ताका आवरण सो अवधिदर्शनावरण है । ९. युगपत् सर्व द्रव्यपर्याय का सामान्यविशेष का प्रकाशक केवलज्ञानकरि अविनाभावी सो केवलदर्शन है । ताका आवरण सो केवलदर्शनावरण है ।

अैसै नवप्रकार करि दर्शनावरण का पुद्गल स्कंध का निचय है । सो मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, योगनिकरि, एक रूपकरि परिणया जीवसूं मिल्या दर्शनगुण का अवरोधक सो दर्शनावरण है ।।१८८।।

आगै वेदनीय मौहनीय की उत्तरप्रकृति है तिनहि प्रतिपादन करते कहैं हैं—

अर्थ–१. साता, २. असाता—अैसै वेदनीय दोयप्रकार हैं । तैसै मोहनीय हू दोयप्रकार है—दर्शनमोह वा चारित्रमोह । चारित्रमोह हू दोय प्रकार है—कषायमोहनीय, नोकषाय मोहनीय भेदकरि । साता नाम संसारीक सुख का है, ताहि भोगावै, वेदन करावै जीव कों सो साता वेदनीय है । असाता जो दुःख ताहि भौगावै, जीवकूं वेदन करावै सो असातावेदनीय है । जाके उदयतैं देवादिक गति विषैं शरीर, मानस सुख की प्राप्ति सो साता-वेदनीय है । जाकैं उदयतैं नरकादि गतिनि विषैं शरीर-मानस दुःख का अनुभव सो असातावेदनीय है । अैसै वेदनीय कर्म की दोय प्रकृति हैं ।

जीवंसातवेदनीयम् । असातं दुखः, तद्भोजयति वेदयति जीवमसातवेदनीयम् । यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरिकमानसिकसुखप्राप्तिस्तत्सातवेदनीयं, यदुदयान्नरकादिगतिषु शारीरमानसदुःखानुभवनं तदसातवेदनीयम् । एवं वेदनीयकर्मणो द्वे प्रकृती सुखदुःखानुभवननिबन्धनः पुद्गलस्कन्धचयो मिथ्यात्वादिप्रत्ययवशेन कर्मपर्यायपरिणतो जीवसमवेतो वेदनीयमिति । आप्तसमयपदार्थेषु रुचिः श्रद्धा दर्शनं, तन्मोहयति परतन्त्रं करोति दर्शनमोहनीयम्। पापक्रियानिवृत्तिश्चारित्रम् । तत्र, घातिकर्माणि पापं, तेषां क्रिया मिथ्यात्वासंयमकषायास्तेषामभावश्चारित्रम् । दुःखसस्यं कर्मक्षेत्रं कृषन्ति फलवत्कुर्वन्तीतिकषायाः। ईषत्कषाया नोकषायाः, स्थित्यनुभागोदये कषायेभ्य एतेषां स्तोकत्वं यत ईषत्कषायत्वं युक्तमिति ।।१८९।।

दर्शनमोहनीयस्य कषायनोकषायाणां च भेदानाह—

तिण्णिय दुवेय सोलस णवभेदा जहाकमेण णायव्वा ।
मिच्छत्तं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तमिदि तिण्णि ।।१९०।।

त्रयो, द्वौ, षोडश, नव भेदा यथाक्रमेण ज्ञातव्याः । दर्शनमोहनीयस्य त्रयो भेदाः । चारित्रमोहनीयस्य द्वौ भेदौ । चारित्रकषायमोहनीयस्य षोडश भेदाः । चारित्रनोकषायमोहनीयस्य नव भेदाः । अथ दर्शनमोहनीयस्य के ते त्रयो भेदा इत्याशंकायामाह—मिथ्यात्वं, सम्यक्त्वं, सम्यङ्मिथ्यात्वमिति त्रयो भेदाः दर्शनमोहनीयस्य, यस्योदयेनाप्तागमपदार्थेषु श्रद्धा न भवति तन्मिथ्यात्वं, कोद्रवतुषरूपम् । यस्योदयेनाप्तागमपदार्थेषु श्रद्धायाः शैथिल्यं तत्सम्यक्त्वं, कोद्रवतन्दुलसदृशम् । यस्योदयेनाप्तानाप्तागमपदार्थेषु अक्रमेण श्रद्धे उत्पद्येते तत्सम्यङ्मिथ्यात्वं, दर्शनमोहनीयस्य अपूर्वा पूर्वादिकरणैर्दलितस्य कोद्रवस्येव त्रिधा गतिर्भवति । तच्च बन्धं प्रत्येकं सत्ताकर्म प्रति त्रिविधं तत्सम्यङ्मिथ्यात्वस्यैककारणत्वादिति ।।१९०।।

सुख-दुःख का अनुभव कूं कारण पुद्गल स्कंध का प्रचय है, सो मिथ्यात्व आदि आश्रयकै वसकरि, कर्म्मपर्यायकूं परिणया जीवकरि सहित सो वेदनीय है । आप्त-आगम पदार्थ विषैं रुचि जो दर्शन, ताहि मोहयति कहिये विपरीत करै सो दर्शनमोहनीय है । पापक्रिया की निवृत्ति जो त्याग, सो चारित्र, तिनके घातक कर्म्मते पाप, तिनकी क्रिया मिथ्यात्व, असंयम, कषाय तिनका अभाव सो चारित्र, ताहि मोहित करै सो चारित्रमोहनीय है । दुःख ही है—शस्य कहिये धान्य जा विषैं ऐसा जो कर्मरूप क्षेत्र ताहि कृषयन्ति कहिये फलवान् करै, ते कषाय। ईषत् कषाय ते नोकषाय जानैं । स्थिति, अनुभाग के उदयकरि कषायनितैं इनका स्तोकपना है, यातै ईषत्कषायपना युक्त हैं ।।१८९।।

आगै दर्शनमोहनीय के बहुरि कषाय, नोकषायनि के भेद हैं, तिनहि कहै हैं—

अर्थ–तीन, दोय, सोलह, नव भेद यथा क्रमकरि जाननें । दर्शनमोहनीय के तीन भेद, चारित्रमोहनीय के दोय भेद, चारित्र कषाय मोहनीय के सोलह भेद, चारित्र नोकषाय मोहनीय के नव भेद । अथानंतर दर्शनमोहनीय के ते कौन तीन भेद ? ऐसा प्रश्न होतैं कहैं हैं—
१. सम्यक्त्व, २. मिथ्यात्व, ३. सम्यक्त्व मिथ्यात्व—ऐसे दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं ।

जाके उदयकरि अनाप्त, अनागम अपदार्थनि विषैं श्रद्धा होय सो मिथ्यात्व है । यह कोद्रव (कोदों) के तुष रूप ऐसा है । जाके उदयकरि आप्त, आगम पदार्थनि विषैं श्रद्धा की शिथिलता सो सम्यक्त्व है । यह कोदव के तंदुल (चावल) सदृश हैं । जाके उदयकरि आप्त, आगम पदार्थनि विषैं बहुरि अनाप्त, अनागम पदार्थनि विषैं अक्रमकरि श्रद्धान उपजै सो सम्यक्त्व मिथ्यात्व है । अर्द्धशुद्ध तंदुल समान ऐसा अपूर्वादिकरणकरि दलित जो दर्शनमोहनीय ताकी कोद्रव की ज्यौं तीन प्रकार गति है, सो बंध प्रति एक होतां संता कार्य प्रति तीन प्रकार हैं । सम्यक्त्व अर सम्यक्त्व मिथ्यात्व है सो नाहीं बंधै हैं । मिथ्यात्व ही कै बंध का कारणपना हैं यातैं ।।१९०।।

षोडशकषायभेदं प्रतिपादयन्नाह—

कोहो माणो माया लोहोणंताणुबंधिसण्णा य ।
अप्पच्चक्खाण तहा पच्चक्खाणो य संजलणो ।।१९१।।

क्रोधो रोषसंरम्भः, मानो गर्वः स्तब्धत्वं, माया निकृतिर्वंचना, अनृजुत्वं लोभो [1]गृहमूर्च्छा । अनन्ता[2]नुभवान्मिथ्यात्वासंयमादौ अनुबन्धः शीलं येषां तेऽनन्तानुबन्धिनस्ते च ते क्रोधमानमायालोभा अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभाः । अथ वाऽन्तेषु भवेष्वनुबन्धो विद्यते येषां तेऽनन्तानुबन्धिनः संसारापेक्षयानन्तकालत्वम् एते सम्यक्त्वचारित्रविरोधिनः [3]शक्तिद्वयापनोदायेति, अथ वाऽनन्तानुबन्धिन इति संज्ञा भवन्ति एत इति । प्रत्याख्यानं संयमः। ईषत्प्रत्याख्यानं अप्रत्याख्यानम् संयमासंयम इत्यर्थः, अत्रावरणशब्दो द्रष्टव्यः । अप्रत्याख्यानमावृण्वन्तीत्यप्रत्याख्यानावरणाः । प्रत्याख्यानं संयममावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणाः । अथवा येषु सत्सु [4]प्रत्याख्यानसंयमादिसंयमासंयमादिरहितं सम्यक्त्वं भवतीति अप्रत्याख्यानसंज्ञाः क्रोधमानमायालोभास्तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यमिति। तथा येषु सत्सु प्रत्याख्यानं सम्यक्त्वसहितः संयमासंयमो भवति क्रोधमानमायालोभाः प्रत्याख्यानसंज्ञा भवन्त्यत्रापि तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यमिति । तथा संयमेन सहैकीभूय संज्वलन्ति संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्विति वा संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभा इति । आद्याः सम्यक्त्वसंयमघातिनः, द्वितीया देशसंयमघातिनः, तृतीया संयमघातिनः, चतुर्थाः यथाख्यातसंयमघातिन इति ।।१९१।।

आगैं सोलहकषायनि के जे भेद, तिनका स्वरूप है, ताहि प्रतिपादन करतैं कहैं है—

अर्थ—क्रोध कहिये रोस वा (का) संरंभं । मान कहिये गर्व वा स्तब्धपनां, माया कहिये निकृति वा वंचनां वक्रता । लोभ कहिये गृद्धिवान मूर्छा । अनंत जे भव वा मिथ्यात्व, असंयम तिनहि बांधै—अैसा है शील-स्वभाव जिनका ते अनंतानुबंधी कहिये । अैसे जे क्रोध, मान, माया, लोभ ते अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ है, अथवा अनंत जे भव तिन विषैं अनुबंध हैं विद्यमान जिनका ते अनंतानुबंधी संसार की अपेक्षाकरि अनंतकालपना है । यह सम्यक्त्व वा चारित्र के विरोधी हैं । शक्तिद्वयकरि युक्त हैं यातैं । अथवा अनंतानुबंधी अैसी संज्ञा है ।

प्रत्याख्यान नाम संयम का है, ईषत्-प्रत्याख्यान सो अप्रत्याख्यान सो संयमासंयम अैसा अर्थ है । इहां आवरण शब्द जाननां । अप्रत्याख्यान है, ताहि आवरै ते अप्रत्याख्यानावरण । प्रत्याख्यान जो संयम ताहि आवरैं ते प्रत्याख्यानावरण है । अथवा जिनकूं होतैं अप्रत्याख्यान कहिये संयमासंयमकरि रहित सम्यक्त्व होय, ते अप्रत्याख्यान संज्ञक क्रोध, मान, माया लोभ हैं । तदर्थपनांतैं तत् शब्दपनां है । तथा जिनकूं होतैं प्रत्याख्यान कहिए सम्यकत्व सहित संयमासंयम होय ते क्रोध, मान, माया, लोभ अप्रत्याख्यान संज्ञक हैं । इहां हूं तदर्थपने तैं तच्छब्धपना है । तथा संयमकरि सहित एकीभूत संज्वलति कहिए प्रकाशमान सो संज्वलनि कहिये वा जिनकूं होतै संयम प्रकाशमान होय तैं संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ हैं । आदि कै कषाय सम्यक्त्व के अर संयम के घाती हैं । द्वितीय कषाय देश संयम के घाती हैं । तृतीय कषाय संयम के घाती हैं । चतुर्थकषाय यथाख्यात संयम के घाती हैं ।।१९१।।

---

१. क० गृद्धिमूंर्च्छा । २. क० अनन्तान्भवान् । ३. शक्तिद्वेयोपेता यतः । ४. क० प्रत्याख्यानसंयमासंयमविरहितं !

नोकषायभेदान्प्रतिपादयन्नाह—

इत्थीपुरिसणउंसयवेदा हास रदि अरदि सोगो य ।
भयमेतो य दुगंछा णवविह तह णोकसायभेयं तु ।।१९२।।

स्तृणाति छादयति दोषैरात्मानं परं च स्त्री । पुरौ प्रकृष्टे कर्मणि शेते प्रमादयति तानि करोतीति वा पुरुषः । न पुमान् न स्त्री नपुंसकम् । येषां पुद्‌गलस्कन्धानामुदयेन पुरुष आकांक्षोत्पद्यते तेषां स्त्रीवेद इति संज्ञा । येषामुदयेन पुद्‌गलस्कन्धानां वनितायामाकांक्षा जायते तेषां पुंवेद इति संज्ञा । येषां च पुद्‌गलस्कन्धानामुदयेनेष्टकाग्निसदृशेन द्वयोराकांक्षा जायते तेषां नपुंसकवेद इति संज्ञा । हसनं हासो, यस्य कर्मस्कन्धस्योदयेन हास्यनिमित्तो जीवस्य राग उत्पद्यते तस्य हास इति संज्ञा, कारणे कार्योपचारात् । रमयतेऽनयेति रमणं वा रति; कुत्सिते रमते येषां कर्मस्कन्धानामुदयेन द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु रतिरुत्पद्यते तेषां रतिरिति संज्ञा । न रमते न रम्यते वा यया साऽरतिर्यस्य पुद्‌गलस्कन्धस्योदयेन द्रव्यादिष्वरतिर्जायते तस्यारतिरिति संज्ञा । शोचनं शोचयतीति वा शोकः, यस्य कर्मस्कन्धस्योदयेन शोकः समुत्पद्यते जीवस्य तस्य शोक इति संज्ञा । भीतिर्यस्माद्‌बिभेति वा भयं, यैः कर्मस्कन्धैरुदयमागतैर्जीवस्य भयमुत्पद्यते तेषां भयमिति संज्ञा । जुगुप्सनं जुगुप्सा येषां कर्मस्कन्धानामुदयेन द्रव्यादिषु जुगुप्सा उत्पद्यते तेषां जुगुप्सेति संज्ञा । एवं नवविधमेव

आगै नोकषाय के भेद है, तिनहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–स्तृणाति कहिये दोषनि करि आपकूं अथवा अन्यकूं आछादै सो स्त्री, पुरुष जो प्रकृष्ट कर्म ता विषैं शेते कहिये प्रमाद युक्त होय वा तिनहि करैं सो पुरुष । न पुरुष, न स्त्री सो नपुंसक । जिनि पुद्गल-स्कंधनि के उदयकरि पुरुष विषैं आकांक्षा उपजै तिनकी स्त्रीवेद अैसी संज्ञा हैं । जिन पुद्गल स्कंधनि के उदयकरि स्त्री विषैं आकांक्षा उपजे तिनकी पुरुषवेद अैसी संज्ञा है । जिन पुद्गल स्कंधनि के कजावा (ईंट) अग्नि के समान उदयकरि दोय जे स्त्री-पुरुष तिन विषैं आकांक्षा उपजै तिनकी नपुंसक वेद अैसी संज्ञा है ।

हसणा सो हास । जिस कर्मस्कंध के उदयकरि हास्य निमित्त जीवकै राग उपजै ताकी हास अैसी संज्ञा है । कारण विषैं कार्य का उपचार है । यातैं रमणा सो रति रमिये जाकरि वा कुत्सित अर्थ विषैं रमें जाकरि रति । जिन कर्म्म स्कंधनि के उदयकरि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, विषैं रति उपजै तिनकी रति अैसी संज्ञा है ।

नहीं रमै, वा जाकरि नांही रमिये सो अरति । जिस पुद्‌गल स्कंधनि के उदयकरि द्रव्यादिक विषैं अरति उपजै तिसकी अरति अैसी संज्ञा है ।

सोचना वा सोच करावै सो शोक । जिस कर्मस्कंध के उदयकरि जीवकै शोक उपजै ताकी शोक अैसी संज्ञा हैं । डरना वा जातैं डरै सो भय, उदयागत जिस कर्म स्कंधनिकरि जीव भय उपजे तिसकी भय अैसी संज्ञा है । ग्लानि सो जुगुप्सा, जिस कर्म स्कंध तिनके उदयकरि द्रव्यादिक विषैं जुगुप्सा उपजे तिनकी जुगुप्सा अैसी संज्ञा है । अैसे नव प्रकार ही नोकषाय वेदनीय जाननां ।

भावार्थ–कषाय वेदनीय है नाम जाका तिस भेदतैं आगै इस आगमतैं नवप्रकार नोकषाय वेदनीय जामें जाननां ।।१९२।।

आयु के बहुरि नाम के प्रकृति भेद हैं, तिनहि प्रतिपादन करते कहैं हैं—

अर्थ–नारकादिकनि विषैं नव संबंधपनेकरि आयु के भेद का कथन करिये हैं । नारकानि विषैं भया सो नारकायु , तिरजंचनि विषैं भया सो तैरश्चायु, मनुष्यनि विषैं भया मानुषायु, देवनिविषैं भया सो देवायु—अैसैं आयु च्यार प्रकार है । जिन कर्मस्कंधनि के उदयकरि

नोकषायवेदनीयं ज्ञातव्यमिति । कषायवेदनीयाख्यभेदा-स्तूर्ध्वमेतस्माच्चागमाज्ज्ञातव्या इति ।।१९२।।

आयुषो नाम्नश्च प्रकृतेर्भेदान् प्रतिपादयन्नाह—

णिरियाऊ तिरियाऊ माणुसदेवाण होंति आऊणी ।
गदिजादिसरीराणि य बंधणसंघादसंठाणा ।।१९३।।

नारकादिषु संबन्धत्वेनायुषो भेदव्यपदेशः क्रियते । नारकेषु भवं नारकायुः, तिर्यक्षु भवं तैरश्चायुः, मनुष्येषु भवं मानुष्यायुः, देवेषु भवं दैवायुः, एवमायूंषि चत्वारि । येषां कर्मस्कन्धानामुदयेन जीवस्याधोगतिस्वभावेषु नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु दीर्घजीवनेनावस्थानं भवति तेषां नारकायुरिति संज्ञा येषां। पुद्गलस्कन्धानामुदयेन तिर्यङ्मनुष्यदेवभवानामवस्थानं भवति तेषां तैरश्चमानुषदैवायूंषि इति संज्ञेति । गतिर्भवः संसारः, यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिर्यदि गतिनाम कर्म न स्यात्तदाऽगतिर्जीवः स्यात् । यस्मिन् जीवभावे सत्यायुःकर्मणो यथावस्थानं शरीरादीनि कर्माणि उदयं गच्छन्ति स भावो यस्य

उर्ध्वगति है स्वभाव जाका अैसा जो जीवताकैं तीव्र शीत, उष्ण कर हैं वेदन जा विषैं अैसा जो नरक तिस विषैं दीर्घ जीवनें करि स्थिति होय तिनिकी नारकायु अैसी संज्ञा है । तथा जिन पुद्गल स्कंधनि के उदयकरि तिर्यग्मनुष्य, देवनि के भवनि का अवस्थान होय तिनकी तैरश्चायु, मानुषायु, देवायु—ऐसी संज्ञा है ।

नामकर्मकी बयालीस प्रकृतियाँ–

१. गति–गति कहिये भव वा संसार जाके उदयतैं आत्मा भवांतरकूं प्राप्त होय सो गति, गति जो गति नाम नामकर्म नांही होय तौ जीव गति रहित होय । जिस जीव भाव कूं होतैं आयुकर्म का लब्धावस्थान होतैं शरीरादिक कर्म उदयकूं प्राप्त होय सो भाव जिस पुद्गल स्कंध के मिथ्यात्वादिक कारण करि पाया है कर्म भाव जानैं ताकै उदयतैं हौय ताकी गति अैसी संज्ञा है, सो च्यारि प्रकार है—१. नरकगति २. तिर्यग्गति, ३. मनुष्यगति, ४. देवगति । जिन कर्मस्कंधनि के उदयतैं आत्मा कैं नारकादिक भाव तिनकी नरकगत्यादिक च्यारि संज्ञा होय ।

२. जाति–नरकादिक गतिनि विषैं अव्यभिचारी सदृश भावकरि एकीकृतार्थ स्वरूप सो जाति । अर्थात् जीवनिका सदृश परिणाम सो जाति, जो जाति नाम नामकर्म नांही होय । तो मत्कुण (खटमल), मत्कुणानिकरि वृश्चिक (बिच्छू), वृश्चिनिकरि, ब्रीहि (तन्दुल) ब्रीहिनिकरि समान नांही उपजै अर सदृशपनां देखिये है । तातैं जिस कर्मस्कंधनितैं सदृशपनें कूं प्राप्त होय ताकी जाति अैसी संज्ञा है । सो एकैंद्रिय, द्वीद्रिंय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचैंद्रिय जाति भेद करि पाँच प्रकार हैं । जाकै उदयतैं आत्मा एकैंद्रिय अैसा कहिये सो एकैंद्रिय जाति नाम है। अैसे शेष जे द्वींद्रियादिक तिन विषैं जाननां ।

३. शरीर–जाकै उदयतैं आत्मा शरीर की रचना सो शरीर नाम है । जिस कर्मस्कंध के उदयकरि आहार, तैजस, कार्मण वर्गणा रूप पुद्गलस्कंध शरीरयोग्य परिणामनिकरि परिणये जीवकरि संबंध कूं प्राप्त होय ताकी शरीर अैसी संज्ञा है । जो शरीरनाम नामकर्म नांही होय तो आत्मा मुक्त होय । सो औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्म्मण जे शरीर तिनके भेदकरि पाँच प्रकार हैं । १. जाकैं उदयतैं आहारवर्गणागत पुद्गल स्कंध हैं, ते जीवकरि गृहीत रस, रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा, शुक्र स्वभाव औदारिक शरीर होय सो औदारिक शरीरनाम हैं । अैसे सर्वत्र जाननां । २. जाते उदयतैं आहार वर्गणागत पुद्गलस्कंध हैं, ते सर्व शुभ हैं अवयव जाके, अैसा जो आहार

पुद्गलस्कन्धस्य मिथ्यात्वादिकारणैः प्राप्तकर्मण उदयाद्भवति तस्या गतिरिति संज्ञा । सा चतुर्विधा—नरकगतिः, तिर्यग्गतिः, मनुष्यगतिः, देवगतिश्चेति। येषां कर्मस्कन्धानामुदयादात्मना नारकादिभावस्तेषां नरकगत्यादयः संज्ञाश्चतस्रो भवन्ति । नरकादिगतिषु तदव्यभिचारिणा सादृश्येनैकीकृतात्मा जातिर्जीवानां सदृशः परिणामः । यदि जातिनामकर्म न स्यात्तदा मत्कुणा मत्कुणैर्वृश्चिका वृश्चिकैर्व्रीहयो व्रीहिभिः समाना न जायेरन्, दृश्यते च सादृश्यं तस्माद्यत; कर्मस्कन्धा जातिसादृश्यं तस्य जातिरिति संज्ञा । सा च पंचविधा, एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियजातिभेदेन । यदुदयादात्मा एकेन्द्रियः स्यात्तदेकेन्द्रियजातिनामकर्म । एवं शेषेष्वपि योज्यम् । यदुदयादात्मनः शरीरनिर्वृतिस्तच्छरीरनाम, यस्य कर्मस्कन्धस्योदयेनाहारतेजःकार्माणवर्गणापुद्गलस्कन्धाः शरीरयोग्यपरिणामैः परिणता जीवेन संबध्यन्ते तस्य शरीरमिति संज्ञा । यदि शरीरनामकर्म न स्यादात्मा विमुक्तः स्यात् । तच्छरीरं पंचविधं, औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरभेदेन । यदुदयादाहारवर्गणागतपुद्गलस्कन्धा जीवगृहीता रसरुधिरमांसास्थिमज्जाशुक्रस्वभावौदारिकशरीरं भवन्ति तदौदारिकशरीरनाम । एवं सर्वत्र । यदुदयादाहारवर्गणापुद्गलस्कन्धाः सर्वशुभावयवाहारशरीरस्वरूपेण परिणमन्ति तदाहारकशरीरं नामकर्म । तथा यदुदयात्तैजसवर्गणापुद्गलस्कन्धा निःसरणानिःसरणप्रकामप्राप्तसमस्तप्रत्येकशरीरस्वरूपेण भवन्ति तत्तैजसशरीरं नाम । तथा यदुदयाहारवर्गणागतपुद्गलस्कन्धा अणिमादिगुणोपलक्षितास्तद्वैक्रियिकं शरीरम् । यदुदयात्कूष्मांडफलवृन्तवत्सर्वकर्माश्रयभूतं तत्कार्मणशरीरम् । शरीरार्थागतपुद्गलस्कन्धानां जीवसंबन्धानां यैः पुद्गलस्कन्धैः प्राप्तोदयैरन्योन्यसंश्लेषणसंबन्धो भवति तच्छरीरबन्धनं नामकर्म । यदि शरीरबन्धननामकर्म न स्याद्वालुकाकृतपुरुषशरीरमिव शरीरं स्यात्। तदौदारिकशरीरबन्धनादिभेदेन पंचविधम् । यदुदयादौदारिकादिशरीराणां विवरविरहितान्योन्यप्रवेशानुप्रवेशेनैकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम । यदि संघातनामकर्म न स्यात्तिलमोदक इव जीवशरीरं स्यात् । तच्चौदारिकशरीरसंघातादिभेदेन पंचविधम् ।

शरीर तिस स्वरूपकरि परिणमै सो आहारशरीर नाम है । तथा ३. जातै उदयतैं तैजसवर्गणागत पुद्गलस्कंध हैं, ते निःशरण, अनिशरण, प्रशस्त, अप्रशस्त प्रत्येकशरीर स्वरूपकरि होय सौ तैजस शरीरनाम है । तथा ४. जाके उदयतैं आहार वर्ग्गणागत पुद्गलस्कंध हैं, तै अणिमादि गुणनिकरि उपलक्षित वैक्रियिक शरीर होय, सो वैक्रियिक शरीर नाम है । ५. जाके उदयतैं कूष्मांड (बैगन) फल के वृत जो सर्वकर्मनिका आश्रयभूत सो कार्मण नाम हैं ।

४. बंधन–जीव का है संबंध जिनकै, असे शरीर निमित्त आये जो पुद्गलस्कंध, तिनका पाया है उदय जिननैं असे जिन पुद्गलस्कंधनिकरि परस्पर संश्लेष संबंध होय सो शरीर बंधननाम हैं । जो शरीर बंधन नामकर्म नांही होय तो बालुकाकरि कीया पुरुष का शरीर ज्यों शरीर होय । सो औदारिकशरीरबंधन, वैक्रियिकशरीरबंधन आदि भेदकरि पाँच प्रकार हैं ।

५. संघात–जाकैं उदयतैं औदारिक आदि शरीरनिका छिद्ररहित परस्पर प्रवेशकरि एकता का उपादन कहिये ग्रहण होय सो संघात नाम है । जो संघात नाम कर्म नै (नहीं) होय तो तिल का लाडू ज्यौं शरीर होय । सो औदारिकशरीरसंघात आदिभेदकरि पाँच प्रकार हैं ।

६. संस्थान–जिन कर्मस्कंधनि के उदयकरि जातिकर्म के उदय की परवशताकरि शरीर का संस्थान करिये सो शरीर संस्थान है। जो शरीर संस्थान नै (नहीं) होय तो जीवकै शरीर है सो संस्थान रहित होय । सो छह प्रकार भेद करियै हैं—१. समचतुरस्रसंस्थान, २. न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, ३. स्वातिशरीर संस्थान, ४. वामन संस्थान, ५. कुब्ज संस्थान और ६. हुण्डक संस्थान नाम ।

१. समान चतुरस्र सो समचतुरस्र समविभाग युक्त अैसा अर्थ जाननां । २. न्यग्रोध नाम वटवृक्ष का है, ताका परिमंडल ज्यों जाका परिमंडल कहिये विस्तार होय सो नग्रोध परिमंडल हैं । नाभि कै ऊपरि सर्व अवयवनि विषैं परमाणूनिका बहुतपणां न्यग्रोधपरिमंडल ज्यों शरीर का संस्थान होय सो न्यग्रोध परिमंडल संस्थान है । सो आयत-वृत्त है—अैसा जाननां । ३. स्वाति—स्वाति कहिये वंबी (बांबी) वा

यदुदयादौदारिकादिशरीराकृतेर्निर्वृतिर्भवति तत्संस्थाननाम, येषां कर्मस्कन्धानामुदयेन जातिकर्मोदयपरतन्त्रेण शरीरस्य संस्थानं क्रियते तच्छरीरसंस्थानम्। यदि तत्र स्याज्जीवशरीरमसंस्थानं स्यात्। तच्च षोढा विभज्यते--समचतुरस्रसंस्थाननाम, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम, स्वातिशरीरसंस्थाननाम, वामनसंस्थाननाम, कुब्जसंस्थाननाम, हुंडकसंस्थाननाम। समचतुरस्रं समचतुरस्रमविभक्तमित्यर्थः। न्यग्रोधो वृक्षस्तस्य परिमण्डलमिव यस्य तन्न्यग्रोधपरिमण्डलं नाभेरूर्ध्वं सर्वावयवपरमाणुबहुत्वं न्यग्रोधपरिमण्डलमिव न्यग्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थानमायतवृत्तमित्यर्थः। स्वाति वाल्मीकं शाल्मलिर्वा तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तत्स्वाति..रीरसंस्थानं नाभेरधोवयवानां विशालत्वमूर्ध्वं सौक्ष्म्यम्। कुब्जस्य शरीरं कुब्जशरीरं तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तत्कुब्जशरीरसंस्थानं[1], यस्योदयेन शाखानां दीर्घत्वं मध्यस्य ह्रस्वत्वं भवति तत्कुब्जशरीरसंस्थाननाम। वामनस्य शरीरं वामनशरीरं तस्य संस्थानं वामनशरीरसंस्थाननाम, यस्योदयात् शाखानां ह्रस्वत्वं कायस्य च दीर्घत्वं भवति। विषमपाषाणभृताद्रिरिव विषमं हुण्डं यस्य शरीरं तस्य संस्थानमिव संस्थानं यस्य तद्धुण्डकशरीरसंस्थानं, यस्योदयेन पूर्वोक्तपंचसंस्थानेभ्योऽन्यद्बीभत्सं संस्थानं भवति। अथ बन्धनसंघातसंस्थानेषु को भेद इति चेन्नैष दोषो यस्य

शाल्मली नाम वृक्ष ताका संस्थान ज्यौं है, संस्थान जाका, सो स्वाति शरीरसंस्थान है। नाभिकैं अधै (नीचे) अवयवकरि विस्तीर्ण, ऊर्ध्वतैं सूक्ष्म अैसा जाननां। ४. कुब्ज का शरीर सो कुब्ज शरीर हैं। ताका संस्थान ज्यौं है संस्थान जाका सो कुब्ज शरीर संस्थान है। जाके उदयकरि शाखा का दीर्घपनां, मध्यका ह्रस्वपनां होय सो कुब्जशरीर संस्थान नाम है। ५. वामन का शरीर सो वामन शरीर, ताका संस्थान ज्यौं है संस्थान जाका सो वामन शरीर संस्थान नाम है। जाके उदयतैं शाखा का ह्रस्वपनां बहुरि कायका दीर्घपनां होय सो अैसा जाननां। ६. विषम पाषाणकरि भरी भाथ (पर्वत) की ज्यौं विषम हैं जो हुंड का शरीर ताका संस्थान ज्यौं है संस्थान जाका सो हुंड शरीर संस्थान नाम है। जाके (इसके) उदयकरि पूर्वोक्त पंचसंस्थाननितैं भिन्न बीभत्स संस्थान होय, अैसा जाननां।

आगै बन्धन, संघात, संस्थाननि कै कौन भेद (इन तीनों में क्या अंतर) है ?—अैसे प्रश्न हौतैं, यह दोष नांही। (क्योंकि) जिसकर्म के उदयकरि औदारिक शरीर के परमाणु हैं, ते परस्पर बंधकूं प्राप्त होय सो औदारिक शरीर बंधनाम है। जिस कर्म के उदयकरि शरीरभाव कूं प्राप्त भये जे औदारिक शरीर स्कंध बंधन नामकर्म के उदयकरि एक बंधन रूप बंधे तिनका उदारपनां होय सो औदारिकशरीरसंघात नामकर्म है। बहुरि जिस कर्म के उदयकरि शरीर स्कंधनि का आकार होय सो संस्थान है। अैसे इन विषैं महान् भेद है, यातैं दोष नांही। अैसे सर्वत्र जाननां ।।१९३।।

तथा—

अर्थ–जाके उदयतैं अस्थि संधि का बंध विशेष होय सो संहनन नाम है। याका अभाव होतैं शरीर संहनन रहित होय। सो छह प्रकार है—१. वज्रऋषभ-नाराच संहनन, २. वज्रनाराचसंहनन, ३. नाराचसंहनन, ४. अर्द्धनाराच संहनन, ५. कीलिकासंहनन, ६. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन।

संहनन नाम अस्थि जो हाड ताका संचय का है। ऋषभ नाम वेष्टन का है। अभेद्यपनैतैं वज्रवत् ऋषभ, वज्रवत् नाराच कहिये कीला सो वज्रनाराच, ते दोउ हैं जिस शरीर संहनन विषैं सो वज्रऋषभनाराच शरीरसंहनन है। जिस कर्म के उदयकरि वज्रसमान अस्थि वज्र वेष्टनकरि वेष्टित बहुरि वज्रनाराच करि कीलित होय है जिस कर्म के उदयकरि, यह ही अस्थिबंध वज्रऋषभकरि रहित होय सो द्वितीय संहनन है। जिस कर्म के उदयकरि वज्रविशेषकरि वज्रविशेषण रहित अस्थि-संधि का बंधन नाराचकरि कीलित होय सो तृतीय संहनन है। जिसकर्म

१. कुब्जशरीर संस्थान वाले मनुष्यों के पृष्ठ के भाग में बहुत-सा मांस पिण्डरूप रहता है। वे लोक में कुबड़े कहलाते हैं।

कर्मण उदयेनौदारिकशरीरपरमाणवोऽन्योन्यं बन्धमागच्छन्ति तदौदारिकशरीरबन्धनं नाम । यस्य कर्मण उदयेनौदारिकशरीरस्कन्धानां शरीरभावमुपगतानां बन्धनामकर्मोदयेनैकबन्धनबद्धानामौदार्यं भवति तदौदारिकशरीरसंघातनाम । यस्य च कर्मण उदयेन शरीरस्कन्धानामाकृतिर्भवति तत्संस्थानमिति महान्भेदो यतः । एवं सर्वत्र द्रष्टव्यमिति ।।१९३।।

तथा—

संघडणंगोवंगं वण्णरसगंधफासमणुपुव्वी ।
अगुरुलहुगुवघादं परघादमुस्सास णामं च ।।१९४।।

यस्योदयादस्थिसंधिबन्धविशेषो भवति तत्संहननं नाम, एतस्याभावे शरीरसंहननं न भवेत् । तत् षड्विधं; वज्रर्षभनाराचसंहननं, वज्रनाराचसंहननं, नाराचसंहननं, अर्द्धनाराचसंहननं, कीलकसंहननं, असंप्राप्तासृपाटिकासंहननं चेति । संहननम् अस्थिसंचयं ऋषभो वेष्टनं वज्रवदभेद्यत्वादृषभो वज्रनाराचश्च वज्रवद् वज्रनाराचौ तौ द्वावपि यस्मिन् शरीरसंहनने तद्वज्रर्षभनाराचसंहननं, यस्य कर्मण उदयेन [1]वज्रास्थीनि वज्रवेष्टनेन वेष्टितानि वज्रनाराचेन च कीलितानि भवन्ति । एष एवास्थिबन्धो ऋषभरहितो यस्योदयेन भवति तद् द्वितीयम् । यस्य कर्मण उदयेन वज्रविशेषणरहितोऽस्थिबन्धो नाराचकीलितो भवति तत्तृतीयम्।

के उदयकरि अस्थि संचय नाराचकरि अर्द्धकीलित होय सो चतुर्थ संहनन है । जिस कर्म के उदयकरि वज्र के अस्थि वज्र वेष्टनकरि वेष्टित, बहुरि वज्रनाराचकरि कीलित अैसै नांही होय, सो पंचम संहनन है । जिस कर्म के उदयकरि, परस्पर असंप्राप्त कहिये ज्यूं हेतु विशेष सृप के हाड की ज्यौं, असृपाटिका कहिये नसकरि (नसों से) वंध्या हुवा अस्थर हाड होय सो छठा संहनन है ।

८. अंगोपांग–जाकैं उदयतैं अंग-उपांग की भिन्न रचना होय सौं अंगोपांग नाम है । जिसकर्म के उदयकरि १. नलक कहिये चरण, २. बाहु, ३. उरु, ४. उदर, ५. नितंब, ६. उर (छाती), ७. पृष्टि, ८. शिर—ये आठ अंग । बहुरि उपांग जे मूद्र्धकरोटि (मस्तक की हड्डी), मस्तक, ललाट, शंख-भ्रू, कर्ण, नासिका, नयन, अक्षिकूप, हनु (ठुड्डी), कपोल, उत्तराधर, ओष्टसृक् (ओंठ के किनारे), तालु, जिव्हा, ग्रीवा, स्तन, चंचुक, आंगुली आदि होय हैं । सो अंगोपांग तीन प्रकार हैं—१. औदारिक शरीरागोपांग, २. वैक्रियिक शरीरांगोपांग, ३. आहारकशरीरांगोपांग ।

जिसकर्म के उदयकरि औदारिक अंगोपांग होय सो औदारिक अंगोपांग नाम है । अैसे अन्यत्र हू जानन्नां ।

९. वर्ण–जाकैं उदयतैं शरीर विषैं वर्णविभाग की उत्पत्ति होय सो वर्णनाम है । ताके अभाव होतै शरीर वर्णरहित होय । सो पांच प्रकार है—१. कृष्णवर्ण नाम, २. नीलवर्ण नाम, ३. रक्त वर्णनाम, ४. पीत वर्णनाम, ५. शुक्ल वर्णनाम । जिसकर्म के उदयकरि शरीर पुद्‌गलनि की कृष्ण वर्णता होय सो कृष्ण वर्णनाम है । अैसे अवशेष जे वर्ण तिनका जाननां ।

१०. रस–जिस कर्म स्कंध के उदयतैं जीव के शरीर विषैं जाति प्रतिनियम रूप तिक्तादि रस होय सो रस संज्ञक नामकर्म है। या कर्म के अभाव होतैं जाति प्रति नियत रस न होय सो अैसें नांही है । काहै तैं ? निंब आदिकनि कैं प्रतिनियत रस का ग्रहण है । यातैं सो पांच प्रकार हैं—१. तिक्तनाम, २. कटुकनाम, ३. कषायनाम, ४. अम्लनाम, ५. मधुरनाम । जिस कर्म के उदयकरि शरीर पुद्‌गल तिक्त रसस्वरूपकरि परिणवै सो तिक्त नाम है । अैसे अवशेष हू का अर्थ कहना ।

---

१. क० उदयेन यान्यस्थीनि ।

यस्य कर्मण उदयेनास्थिसंचयो नाराचेनार्द्धकीलितो तच्चतुर्थम् । यस्य कर्मण उदयेन वज्रास्थीनि वज्रवेष्टनेन वेष्टितानि वज्रनाराचेनैव कीलितानि न भवन्ति तत्पंचमम् । यस्य कर्मण उदयेनान्योन्यासंप्राप्तानि सृपाटिका: शिराबद्धानि भवति तत् षष्ठमिति । यदुदयादंगोपांगविवेकनिष्पत्ति तदंगोपांगनाम, यस्य कर्मण उदयेननलकबाहूरूदरनितम्बोर:पृष्ठशिरांस्यष्टावंगानि उपांगानि च मूर्द्धकरोटिमस्तकललाटसंधिभ्रूकर्णनासिकानयनाक्षिकूपहनुकपोलाधरोष्ठसृक् तालुजिह्वाग्रीवास्त-चूचुकांगुल्यादीनि भवन्ति । तदंगोपांग त्रिविधमौदारिकशरीरांगोपांगं, वैक्रियिकशरीरांगोपांगम्, आहारकशरीरांगोपांगं चेति । यस्य कर्मण उदयेनौदारिकांगोपांगानि भवन्ति तदौदारिकांगोपांगंनामैवमन्यत्रापि योज्यम् ।

यदुदयाच्छरीरे वर्णविभागनिष्पत्तिस्तद्वर्णनाम स्यात्तदभावे शरीरमवर्णं स्यात् । तत्पंचविधं कृष्णवर्णनाम, नीलवर्णनाम, रक्तवर्णनाम, हरितवर्णनाम, शुक्लवर्णनाम चेति । यस्य कर्मण उदयेन शरीरपुद्गलानां कृष्णवर्णता भवति तत्कृष्णवर्णनामैवंशेषाणामपि द्रष्टव्यम् । यस्य कर्मस्कन्धस्योदयाज्जीवशरीरे जातिप्रतिनियततिक्तादिरसो भवति तद्रस इति संज्ञा, एतस्य कर्मणोऽभावे जातिप्रतिनियतरसो न भवेत् न चैवं निम्बादीनां प्रतिनियतरसोपलंभात् । तत्पंचविधं तिक्तनाम, कटुकनाम, कषायनाम, अम्लनाम, मधुरनाम चेति । यस्य कर्मण उदयेन शरीरपुद्गलास्तिक्तरसस्वरूपेण परिणमन्ति तत्तिक्तनामैवं, शेषाणामप्यर्थो वाच्य इति । यस्य कर्मस्कन्धस्योदयेन जीवशरीरे जातिप्रतिनियतोगन्ध उत्पद्यते तस्य गन्ध इति । संज्ञा, न च तस्याभावो हस्त्यजादिषु प्रतिनियत-गन्धोपलम्भात् । तद् द्विविधं सुरभिगन्धनामासुरभिगन्धनाम चेति । यस्य कर्मस्कन्ध-स्योदयेन शरीरपुद्गला: सुरभिगन्धयुक्ता भवन्ति तत्सुरभिगन्धनाम, यस्य कर्मस्कन्धस्योदयेन शरीरपुद्गला दुर्गन्धा भवन्ति तद्दुर्गन्धनामेति । यस्य कर्मस्कंधस्योदयेन जीवशरीरे जातिप्रतिनियत: स्पर्श उत्पद्यते तत्स्पर्शनाम, न चैतस्याभाव: सर्वोत्पलकमलादिषु प्रतिनियतस्पर्शदर्शनात्, तदष्टविधं कर्कशनाम, मृदुनाम, गुरुनाम, लघुनाम, स्निग्धनाम, रूक्षनाम, शीतनाम, उष्णनाम

---

११. गन्ध–जिस कर्मस्कंध के उदयकरि जीव शरीर विषैं जाति प्रतिनियत गंध उपजै ताकी गंध का उपलंभ है । यातैं सो गंध दोय प्रकार है—१. सुरभिगंध नाम, २. असुरभि गंधनाम भेदकरि जाननां । जिस कर्मस्कंध के उदयकरि शरीर पुद्गल सुगंधित होय सो सुरभिगंधनाम है । जिस कर्म स्कंध के उदयकरि शरीर पुद्गल दुर्गंध होय सो दुर्गंधनाम है ।

१२. स्पर्श–जिस कर्म स्कंध के उदयकरि जीव शरीर विषैं जाति प्रतिनियत स्पर्श उपजै सो स्पर्शनाम है । याका अभाव नांही है । सूर्योत्पल कमलादिकनि विषैं प्रतिनियत स्पर्श का दर्शन है । यातैं सो आठ प्रकार हैं—१. कर्कशनाम, २. मृदुनाम, ३. गुरुनाम, ४. लघुनाम, ५. स्निग्ध नाम, ६. रूक्षनाम, ७. शीतनाम, ८. उष्णनाम अैसे जाननां । जिस कर्मस्कंध के उदयकरि शरीर पुद्गलनिका कर्कश भाव होय सो कर्कश नाम है । अैसे अवशेष स्पर्शनिका अर्थ इहां नांही तौहू कहनां ।

१३. आनुपूर्वी–आनुपूर्व्य कहिये पूर्वोत्तर शरीर के अंतराल विषैं एक, दोय, तीन समयनि विषैं वर्तमान जीव कै जिस कर्मस्कंध के उदयकरि जीव प्रदेशनि का विशिष्ट संस्थान विशेष होय सो आनुपूर्व्य नाम है । ताका अभाव नांही है । विग्रहगति विषैं जाति प्रतिनियत संस्थान का उपलंभ है, यातैं उत्तर शरीर ग्रहण प्रतिगमन का उपलंभ है । यातैं सो च्याति प्रकार है—१. नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य, २. तिर्य्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्व्य, ३. मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्य, ४. देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्य । जिसकर्मस्कंध के उदयकरि नरकगति कूं प्राप्त होता जीव विग्रहगति विषैं वर्तमान ताकैं नरकगति प्रायोग्य संस्थान होय सो नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम है । अैसे अवशेष हूँ का अर्थ कहनां ।

१४. अगुरुलघु–जिस कर्मस्कंध के उदयसैं जीव है, सो अनंतानंत पुद्गलनिकरि पूर्ण लौहपिंड ज्यौं गुरुपनैं तैंहू नीचा नांही पड़ै है । बहुरि आंक (रुई) के तूल ज्यौं लघुपनैं तैं हूँ ऊँचा नांही जाय सो अगुरुलघु नाम हैं ।

चेति । यस्य कर्मस्कन्धस्योदयेन शरीरपुद्गलानां कर्कशभावो भवति तत्कर्कशनामैवं शेषस्पर्शानामप्यर्थो वाच्यः । पूर्वोत्तशरीरयोरन्तराले एकद्वित्रिसमयेषु वर्तमानस्य यस्य कर्मस्कन्धस्योदयेन जीवप्रदेशानां विशिष्टः संस्थानविशेषो भवति तदानुपूर्व्यं नाम, न च तस्याभावो विग्रहगतौ जातिप्रतिनियतसंस्थानोपलम्भाद् उत्तरशरीरग्रहणं प्रति गमनोपलम्भात् । तच्चतुर्विधं नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं चेति । यस्य कर्मस्कन्धस्योदयेन नरकगतिं गतस्य जीवस्य विग्रहगतौ वर्तमानस्य नरकगतिप्रायोग्यसंस्थानं भवति तन्नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं नामैवं शेषाणामप्यर्थो वाच्य इति । यस्य कर्मस्कन्धस्योदयाज्जीवोऽनन्तानन्तपुद्गलपूर्णोऽयःपिण्डवद्गुरुत्वान्नाधः पतति न चार्कतूलवल्लघुत्वादूर्ध्वं गच्छति तदगुरुलघुनाम । उपेत्य घात उपघातः यस्योदयात् स्वयंकृतोद्बन्धनमरुत्पतनादिनिमित्त उपघातो भवति तदुपघातनाम, अथ वा यत्कर्म जीवस्य स्वपीडाहेतूनवयवान्महाशृंगलाध्वस्तानुदरादीन् करोति तदुपघातम्। परेषां घातः परघातः, यस्य कर्मण उदयात्परघातहेतवः शरीरपुद्गलाः सर्पदंष्ट्रावृश्चिकपुच्छादिभवाः परशस्त्राद्याघाता वा भवन्ति तत्परघातनाम। उच्छ्वसनमुच्छ्वासः, यस्य कर्मण उदयेन जीव उच्छ्वासनिःश्वासकार्योत्पादनसमर्थः स्यात्तदुच्छ्वासनिःश्वासनाम। अयं नामशब्दः सर्वत्राभिसंबध्यत इति ।।१९५।।

तथा—

आदावुज्जोदविहायगइजुयलतस सुहुमणामं च ।
पज्जत्तसाहरणजुग थिरसुह सुहगं च आदेज्जं ।।१९५।।
अथिरअसुहदुब्भगयाणादेज्जं दुस्सरं अजसकित्ती ।
सुस्सरजसकित्ती विय णिमिणं तित्थयर णामबादालं ।।१९६।।

आतपनमातपः, यस्य कर्मस्कन्धस्योदयेन जीवशरीर आतपो भवति तदौतापनाम, न च तस्याभावः सूर्यमण्डलादिषु पृथिवीकायिकादिषु

---

१५. **उपघात**–प्राप्त होय जो घात (पास आकर घात होना) सो उपघात नाम है । जिसके उदयतैं स्वयंकृत है (गलपाश आदि) सो बंधन, निमित्त पतन कहिये आप ही कीया अैसा (पर्वत से) पतन आदि के निमित्ततैं उपघात होय सो उपघात नाम है । अथवा जो कर्म सो जीव के अपनी पीडा के कारण महाशृंखल (बड़े-बड़े सींग) बंध ज्यौं स्तन उदरादिक अवयव हैं, तिनहि करै सौ उपघात है ।

१६. **परघात**–परका घात सो परघात । जिस कर्मके उदयतैं परघात के कारण शरीर पुद्गल होय—सर्प की दाढ, बीछू की पूंछ इत्यादिकनि तैं उपजैं अैसै अथवा परशस्त्रादिकनितैं घात होय सो परघात नाम हैं ।

१७. **उच्छ्वास**–उच्छास (श्वास) लैंना सो उच्छास । जिस कर्म उदयकरि जीव उच्छास निश्वास कार्य के उपजावे विषैं समर्थ होय सो उच्छ्वास नाम है । यह 'नाम' शब्द सर्वत्र संबंध करणां ।।१९५।।

तथा—

अर्थ–१८. आतप–आतपन सो आतप । जिस कर्मस्कंध के उदयकरि जीवशरीर विषैं आतप होय सो आतप नाम है । ताका अभाव नांही है, सूर्यः मंगलादिकनि विषैं पृथिवीकायकै आताप का उपलंभ है, यातैं ।

१९. **उद्योत**–उद्योतन सो उद्योत । जिस कर्मस्कंध के उदयतैं जीव शरीर विषैं उद्योत उपजै सो उद्योत नाम है । याका अभाव नाहीं है । चन्द्रमा, नक्षत्र आदिकन के मंडल विषैं बहुरि खद्योत कहिये आगिया (जुगनू) आदि तथा पक्षीनि विषैं पृथिवीकायिक शरीरनिको उद्योत दर्शन है, यातै ।

चातापोपलम्भात् । उद्योतनमुद्योतः यस्य कर्मस्कन्धस्योदयाज्जीवशरीर उद्योत उत्पद्यते तदुद्योतनाम, न चास्याभावः चन्द्रनक्षत्रादिमण्डलेषु खद्योतादिषु च पृथिवीकायिकशरीराणामुद्योतदर्शनात् । विहाय आकाशं विहायसि गतिर्विहायोगतिर्येषां कर्मस्कन्धानामुदयेन जीवस्याकाशे गमनं तद्विहायोगतिनाम, न चास्याभावो विस्तिमात्रपादजीवप्रदेशैर्भूमिमवगाह्य सकलजीवप्रदेशानामाकाशे गमनोपलम्भात् । तत् द्विविधं प्रशस्तविहायोगतिनामाप्रशस्तविहायोगति । यस्य कर्मण उदयेन सिंह कुंजरहंसवृषभादीनामिव प्रशस्ता गतिर्भवति तत्प्रशस्ता गतिर्भवति तत्प्रशस्तविहायोगतिनाम् । यस्य कर्मण उदयेनोष्ट्रशृगालमृगश्वादीनामिवाप्रशस्ता गतिर्भवति तत्प्रशस्तविहायोगतिनाम ।* यस्य कर्मण उदयेन जीवः स्थावरेषूत्पद्यते तत्स्थावरनामान्यथा स्थावराणामभावः स्यात् । यस्य कर्मण उदयादन्यबाधाकरशरीरेषूत्पद्यते जीवस्तद्बादरनामान्यथाऽप्रतिहतशरीर जीवाः स्युः । यस्य कर्मण उदयेन सूक्ष्मेषूत्पद्यते जीवस्तत् सूक्ष्मशरीरनिवर्तकम् । यदुदयादाहारादिषट्पर्याप्तिनिवृत्तिस्तत्पर्याप्तिनाम । तत् षड्विधं, तद्यथा—शरीरनामकर्मोदयात्पुद्गलविपाकिन आहारवर्गणागतपुद्गलस्कन्धाः समवेतानन्तपरमाणुनिष्पादिता आत्मावष्टब्धक्षेत्रस्थाः कर्मस्कन्धसंबन्धतो मूर्ती भूतमात्मानं समवेतत्वेन समाश्रयन्ति तेषामागतानां पुद्गलस्कन्धानां

---

२०. विहायस–विहाय नाम आकाश का है । विहाय विषैं गति सो विहायोगति जिन कर्मस्कंधनि के उदयकरि जीव के आकास विषैं गमन होय के सो विहायो गति नाम है । याका अभाव नांही है । वितस्ति मात्र पाद विषैं जे जीव प्रदेश हैं, तिनकरि भूमिकूं अवगाहि समस्त जीव प्रदेशनि का आकाश विषैं गमन के उपलंभतैं । सो दोय प्रकार है—१.प्रशस्त विहायोगतिनाम, २. अप्रशस्तविहायो गतिनाम। १—जिस कर्म के उदयकरि सिंह, हस्ती, हंस, वलीवर्द (बैल) आदिकनि ज्यौं प्रशस्तगति होय सो प्रशस्तिविहायोगत्ति नाम है । २—जिसकर्म के उदयकरि गर्दन, ऊँट, स्याल, हिरण, श्वान आदिकनि के ज्यौं अप्रशस्त गति होय सो अप्रशस्त विहायोगति नाम है । यह विहायोगति पुद्गल है । यह पुद्गल शब्द है । सो तहां तिष्ठता जो च शब्द ताकरि आगैं हू संबंध करना ।

२१. त्रास–जिस कर्म के उदयकरि जीवनिकैं त्रसपनां होय सो त्रसनाम है । अन्यथा कहिये अैसें न होय तो द्वींद्रियादिक का अभाव होय ।

२२. स्थावर–जिस कर्म के उदयकरि जीव हैं सो स्थावरनि विषैं उपजै सो स्थावर नाम है । अन्यथा स्थावरनिका अभाव होय।

२३. बादर–जिस कर्म के उदयतैं अन्यकूं बाधाकारी वा अन्यतैं जिस विषैं बाधा होय—अैसा है शरीर जिनका, अैसे वादरनि विषैं जीव उपजै सो बादर नाम है । अैसे न होय तो अप्रतिहत है शरीर जिनका अैसे जीव होय ।

२४. सूक्ष्म–जिस कर्म के उदयकरि सूक्ष्मनि विषैं जीव उपजै सो सूक्ष्म नाम है, वा सूक्ष्म शरीर का रचवे वारा सो सूक्ष्म नाम है।

२५. पर्याप्ति-जिसके उदयतैं आहारादिक छह पर्याप्तिनिकी रचना होय सो पर्याप्ति नाम है । सो छह प्रकार हैं, सो ही कहै हैं। शरीरनाम पुद्गल विपाकी कर्म के उदयतैं आहारवर्गणागत पुद्गलस्कंध मिलित अनंत परमाणुनिकरि निष्पादित आत्माश्रित क्षेत्र विषैं तिष्ठते कर्मस्कंधनि के संबंधतैं मूर्तिभूतं कहिये मूर्तीक भया—अैसा आत्मा है, ताहि एकपनैंकरि आश्रय करैं । तिन आगत पुद्गलस्कंध हैं तिनकी खल, (और) रस पर्यायनिकरि परिणमन शक्ति हैं, सो आहार पर्याप्ति हैं । सो अंतर्मुहूर्त बिना एक समयकरि नाहीं उपजै हैं । शरीर की उत्पत्तितैं प्रथम समयतैं लगाय अंतर्मुहूर्तकरि आहार पर्याप्ति उपजै है । तिल के खल समान खल भाग हाड आदि स्थिर अवयवनिकरि तिल के तैल समान रसभाग रस, रुधिर, वसा, चर्बी, वीर्य आदि द्रवीभूत अवयवनिकरि परिणमन शक्ति की निष्पत्ति सो शरीर पर्याप्ति है सो

* (यस्य कर्मणः उदयेन जीवः त्रसेषूत्पद्यते तत्त्रसनामान्यथा द्वीन्द्रियादिजीवानामभावः स्यात्)

~९

खलरसपर्यायैः परिणमनशक्तिराहारपर्याप्तिः । सा च नान्तर्मुहूर्तमन्तरेण समयेनैकेन जायते शरीरोपादानात्प्रथमसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तेनाहारपर्याप्तिर्निष्पाद्यते। खलभागं तिलखलोपमास्थ्यादिस्थिरावयवैस्तिलतैलसमानं रसभागं रसरुधिरवसाशुक्रादिद्रवावयवपरिणमनशक्तिनिष्पत्तिः शरीरपर्याप्तिः, साहारपर्याप्तेः, पश्चादन्तर्मुहूर्तेन निष्पाद्यते । योग्यदेशस्थितरूपादिविशिष्टार्थग्रहणशक्तेर्निष्पत्तिरिन्द्रियपर्याप्तिः, सापि ततः पश्चादन्तर्मुहूर्त्तादुपजायते, न चेन्द्रियनिष्पत्तौ सत्यामपि तस्मिन् क्षणे बाह्यार्थविषयज्ञानमुत्पद्यते तदा तदुपकरणाभावात् । उच्छ्वासनिः सारणशक्तेर्निष्पत्तिरानपानर्याप्तिरेषापि तदन्तर्मुहूर्त्तकाले समतीते भवति। भाषावर्गणायाश्चतुर्विधभाषाकारपरिणमनशक्तेः परिसमाप्तिर्भाषापर्याप्तिरेषापि पश्चादन्तर्मुहूर्त्तादुपजायते। मनोवर्गणाभिर्निष्पन्नद्रव्यमनोवष्टम्भभेदानुभूतार्थस्मरण-शक्तेरुत्पत्तिर्मनःपर्याप्तिः । एतासां प्रारम्भोऽक्रमेण जन्मसमयादारभ्यतासां सत्त्वाभ्युपगमान्निष्पत्तिस्तुपुनः क्रमेणैतासामनिष्पत्तिरपर्याप्तिः । न च पर्याप्तिप्राणयोरभेदो यत आहारादिशक्तीनां निष्पत्तिः पर्याप्तिः प्राणित्येभिरात्मेति प्राणः । षड्विधपर्याप्तिहेतुर्यत्कर्म तत्पर्याप्तिनाम। शरीरनामकर्मोदयान्निर्वर्त्यमानं

आहार पर्याप्ति कै पीछै अंतर्मुहूर्तकरि निपजै है । योग्य देश विषैं स्थित जे रूपादि विशिष्ट अर्थ तिनके ग्रहणशक्ति की निष्पति सो इंद्रिय पर्याप्ति है । सो हू शरीर पर्याप्तितैं अंतर्मुहूर्ततै पीछै उपजै है । इन्द्रिय निष्पति होतैं हू तिस क्षण विषैं बाह्य पदार्थ हैं विषय जाका ऐसा ज्ञान नांही उपजै है, तिसकाल विषैं तद्रूप (उपकरणों) का अभाव है । उच्छ्वास का निःशरण ताकी शक्ति की निष्पत्ति सो आनपान पर्याप्ति है । यह हू तिसतैं अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत होतैं होय है । भाषा वर्ग्गणा के स्कंधतैं च्यारि प्रकार भाषा के आकारकरि परिणमन शक्ति की जो पूर्णता सो भाषा पर्याप्ति है । यह हू ताकें पीछैं अंतर्मुहूर्ततैं उपजै है । मनोवर्गाणानिकरि निष्पन्न जो द्रव्यमन ताके आश्रयतैं अनुभूत अर्थ के स्मरण की शक्ति की जो उत्पत्ति सो मनःपर्याप्ति है । इनका प्रारंभ है सो अनुक्रमकरि है, (क्योंकि) जन्म समयतैं लगा तिनके सत्त्व का अभ्युपगम है, यातैं । बहुरि इनकी निष्पत्ति है । सो क्रमकरि होय है ।

२६. **अपर्याप्ति**–इनकी अपूर्णता सो अपर्याप्ति है । पर्याप्ति अर प्राणकै अभेद नांही है । जातैं आहार आदि शक्तिनकी निष्पति सो पर्याप्ति । जिनकरि आत्मा जीवैं ते प्राण है ।

छह प्रकार अपर्याप्तिकूं कारण जो कर्म सो अपर्याप्ति नाम है ।

२७. **प्रत्येकशरीर**–शरीर नामकर्म के उदयतैं रच्या जो शरीर एक आत्मा कैं उपभोग का कारण जातैं होय सो प्रत्येक शरीरनाम हैं ।

२८. **साधारणशरीर**–बहुरि बहुत जीवनिकै उपभोग के कारणपणांकरि साधारण शरीर जातैं होय सो साधारणशरीर नामकर्म हैं।

२९. **स्थिर**–जिस कर्म के उदयतैं रस, रुधिर, भेद मज्जा, अस्थि, मांस, शुक्र-सप्त धातुनि कै स्थिरपणां होय सो स्थिरनाम है।

३०. **अस्थिर**–जिसके उदयतैं इनि धातूनि का अस्थिरपनां उत्तरोत्तर परिणाम होय सो अस्थिरनाम है ।

३१. **शुभ**–जिनके उदयतैं अंगोपांग कर्मकरि जनित जे अंग, बहुरि उपांग तिनका रमणीकपना होय सो शुभनाम है ।

३२. **अशुभ**–तिसतैं विपरीत सो अशुभनाम है ।

३३. **सुभग**–जिसके उदयतैं स्त्री-पुरुषकैं परस्पर प्रीति तै उत्पन्न भया सौभाग्य होय सो सुभग नामकर्म है ।

३४. **दुर्भग**–जिसकै उदयतैं रूपादि गुणकरि युक्त हूं अप्रीति का कर्ता शरीर होय सो दुर्भग नाम है । च शब्द है सो नाम शब्द के समुच्चय अर्थि हैं ।

शरीरमेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम । बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणशरीरं यतो भवति तत्साधारणशरीरनाम । यस्य कर्मण उदयाद् रसरुधिरमेदमज्जास्थिमांसशुक्राणां सप्तधातूनां स्थिरत्वं भवति तत्स्थिरनाम । यदुदयादेतेषामस्थिरत्वमुत्तरपरिणामो भवति तदस्थिरनाम । यदुदयादंगोपांगनामकर्मजनितानामंगानामुपांगानां च रमणीयत्व तच्छुभनाम, तद्विपरीतमशुभनाम । यदुदयात्स्त्रीपुंसयोरन्योन्यप्रीतिप्रभवं सौभाग्यं भवति तत्सुभगनाम । यदुदयाद्रूपादिगुणोपेतोऽप्यप्रीतिकरस्तद्दुर्भगनाम । चशब्दो नामशब्दस्य समुच्चयार्थः । यस्य कर्मण उदयेनादेयत्वं प्रभोपेतशरीरं भवति तदादेयनाम् । यदुदयादनादेयत्वं निष्प्रभशरीरं तदनादेयनाम, अथवा यदुदयादादेयवाच्यं तदादेयं विपरीतमनादेयमिति । शोभनः स्वरः मधुरस्वरः यस्योदयात्सुस्वरत्वं मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं भवति तत्सुस्वरनाम । यदुदयात् दुःस्वरताऽमनोज्ञस्वरनिर्वर्त्तनं तद् दुःस्वरनाम । पुण्यगुणाख्यापनकारणं यशःकीर्तिनाम, अथवा यस्य कर्मण उदयात्सद्भूतानामसद्भूतानां च ख्यापनं भवति तद्यशःकीर्तनं नामं । तत्प्रत्यनीकमपरमयशःकीर्तिनाम, यदुदयात् सद्भूतानामसद्भूतानां चाप्यगुणानां ख्यापनं तदयशस्कीर्तिनाम । नियतं मानं निमानं, तद् द्विविधं प्रमाणनिमानं स्थाननिमानं चेति, यस्य कर्मण उदयेन द्वे अपि निमाने भवतस्तन्निमाननाम, अन्यथा कर्णनयननासिकादीनां स्वजातिप्रतिरूपणमात्मनः स्थानेन प्रमाणेन च नियमो न स्यात् । यस्य कर्मण उदयेन परममार्हन्त्यं त्रैलोक्यपूजाहेतुर्भवति तत्परमोत्कृष्टं तीर्थकरनाम । एवं पिण्डप्रकृतीनां द्वाचत्वरिंशन्नाम्न एकैकापेक्षया त्रिनवतिर्वा भेदा भवन्तीति ।।१९५-१९६।।

---

३५. **आदेय**–जिस कर्मके उदयकरि आदेयतैं कहिये प्रभा सहित शरीर होय सो आदेयनाम है ।

३६. **अनादेय**–जिसके उदयतैं अनादेयत्वं कहिये प्रभा रहित शरीर होय सोअनादेयनाम है । अथवा जाके उदयतैं आदेय वाच्य (मान्य वचन वाला) होय सो आदेय, अनादेय वाच्य होय सो अनादेय है ।

३७. **सुस्वर**–शोभन जो स्वर सो सुस्वर कहिये । मधुर स्वर जाके उदयतैं सुस्वरत्वं कहिये मनोज्ञस्वर की रचना होय सो सुस्वर नाम है ।

३८. **दुःस्वर**–जाके उदयतैं दुःस्वरता कहिये अमनोज्ञ स्वर की रचना होय सो दुःस्वर नाम है ।

३९. **यशःकीर्ति**–पवित्र गुण प्रगट होने का कारण सो यशःकीर्ति नाम हैं । अथवा जिस कर्मके उदयतैं सद्भूत बहुरि असद्भूत गुणनिका रच्यापन होय सो यशस्कीर्ति नाम है ।

४०. **अयशःकीर्ति**–तातैं विरुद्ध सो अयशःकीर्ति नाम है । जाके उदयतैं सद्भूत-असद्भूत दोषनि का प्रगट होनां सो अयशस्कीर्ति नाम है ।

४१. **निमान (निर्माण)**–नियत जो मान सो निमान (निर्माण) कहिये । सो दोय प्रकार है—१.प्रमाणनिमान, बहुरि २. स्थापननिमान। जिस कर्म के उदयकरि दोऊ ही निमान होय सो निमान नाम है । औसे न होय तौ कर्ण, नेत्र, नाशिका आदिकनिकैं स्वजाति-स्वरूपकरि अपने-अपने स्थानकरि बहुरि प्रमाणकरि नियम नांही होय है ।

४२. **तीर्थंकर**–जिस कर्म के उदयकरि परम अर्हंतपणा त्रैलोक्यकरि पूजा का कारण होय सो परमोत्कृष्ट तीर्थंकर नाम है । या प्रकार नाम की पिंड प्रकृतिनिके वीयालीस भेंद हैं । अथवा एक-एक की अपेक्षाकरि तिराणवैं भेद होय हैं ।।१९६।।

आगै गोत्रकर्म की प्रकृति का भेद बहुरि अंतराय कर्म की प्रकृति का भेद हैं, ताहि कहै हैं—

गोत्रप्रकृतिभेदमन्तरायप्रकृतिभेदं चाह—

उच्चाणिच्चागोदं दाणं लाभंतराय भोगो य ।
परिभोगो विरियं चेव अंतरायं च पंचविहं ।।१९७।।*

गोत्रशब्दः प्रत्येकभिसंबध्यते, उच्चैर्गोचं, नीचैर्गोत्रं, द्विविधम् । यदुदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम्, यदुदयाद्गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् । अन्तरायशब्दः प्रत्येकभिसंबध्यते काकाक्षिवच्चोभयत्रानुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् । तस्यान्तरायो दातृदेयादीनामन्तरायो दानान्तरायः, लाभः समीप्सितवस्तु तस्यान्तरायो लाभान्तरायः, सकृद् भुज्यते भोगस्तस्यान्तरायो भोगान्तरायः, पुनर्भुज्यते परिभोगस्तस्यान्तरायः परिभोगान्तरायः, वीर्यशक्तिरुत्साहस्तस्यान्तरायो वीर्यान्तरायः । दानादिपरिणामव्याघातहेतुत्वात् तद्व्यपदेशः । यदुदयाद्दातुकामोऽपि न ददाति, लब्धुकामोऽपि न लभते, भोक्तुमिच्छन्नपि न भुंक्ते, उपभोक्तुमभिवांछन्नपि न परिभुंक्ते, उत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते, इत्येवमन्तरायः पंचविधो भवति उत्तरप्रकृतिभेदेन ।।१९७।।

एवमुत्तरप्रकृतिभेदोष्टचत्वारिंशच्छतं भवति ।

अर्थ–गोत्र शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां । १. उच्चगोत्र, २. नीचगोत्र—अैसे गोत्र दोय प्रकार हैं । जाके उदयतैं लोक पूजित कुलनि विषैं जन्म सो उच्चगोत्र । जाके उदयतैं निंदित कुलनि विषैं जन्म सो नीच गोत्र ।

अन्तराय शब्द है सो प्रत्येक संबंध करणां । काक नेत्र ज्यों 'च' शब्द उभयत्र अनुग्रह के अर्थि है । स्व जो निजवस्तु ताका अतिसर्ग कहिए त्याग सो दान है । ताका अंतराय कहिये दाता देय आदिकनिकैं विघ्न करणां सो दानांतराय है । लाभ जो वांछित वस्तु ताका अंतराय सो लाभांतराय । एक बार भोगिये सो परिभोग ताका अंतराय सो भोगांतराय । पुनः-पुनः भोगिये सो परिभोग ताका अंतराय सो परिभोगांतराय। वीर्य कहिये शक्ति जो उत्साह ताका अंतराय सो वीरांतराय । दानादिक परिणाम विषैं व्याघातक के हेतुपनैं तैं अंतराय अैसा नाम है । जाके उदयतैं देवेकूं अभिलाषी, तोहू नाहीं देय, लेवेकूं अभिलाषी, तोहू नांही पावै, भोगवे कूं इछै, तोउ नाहीं भोगवे, उपभोगवेकूं वांछता, तोहू उपभोग नाहीं भोगै, उत्साह जो उद्यम ताहि करवेकूं अभिलाषी, तोउ नांही उत्साह करै । अैसे अंतराय हैं सो पंच प्रकार हैं । उत्तरप्रकृतिनि के भेदकरि अैसे उत्तरप्रकृतिनि का भेद एक सो अड़तालीस (१४८) है ।१९७।।

---

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में उसके पूर्व की गाथा का पूर्वार्ध मात्र है । अगली गाथा बदली हई है ।

एदे पिंडापिंडपयडी णिच्चुच्चयगोदं च ।''

अर्थ–ऊपर कथित ये नामकर्म की पिण्डप्रकृतियाँ हैं । इनमें भेद करने से अपिण्डप्रकृतियाँ ९३ हो जाती हैं । गोत्र के नीचगोत्र और उच्चगोत्र ये दो भेद हैं ।

दाणंतरायलाहो भोगुवभोगं च वीरियं चेव ।
एवं खु पयडिबद्धं बीसहियसयं वियाणाहि ।।

अर्थ–दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय—ये पाँच अन्तराय के भेद हैं । इस प्रकार से प्रकृतिबन्ध के एक सौ भेदों को जानो । अर्थात् सर्व अपिण्डप्रकृतियाँ १४८ हैं । उनमें से बन्ध के योग्य १२० हैं, ऐसा जानो ।

प्रकृतिस्वामित्वं प्रतिपादयन्नाह—

सयअडयालपईणं बंधं गच्छंति वीसअहियसयं ।
सव्वे मिच्छादिट्ठी बंधदि णाहारतित्थयरा ।।१९८।।*

अष्टचत्वारिंशच्छतप्रकृतीनां मध्ये शतं विंशत्युत्तर बन्धप्रकृतयो भवन्ति, अष्टाविंशतिरबन्धप्रकृतयः । पंच शरीरबन्धनानि पंच शरीरसंघातानि चत्वारो वर्णाः चत्वारो रसाः एको गन्धः सप्त स्पर्शा सम्यक्त्वसम्यङ्मिथ्यात्व द्वे इत्येवमष्टाविंशतिः । एताभ्यः शेषाणां प्रकृतीनामाहारद्वयतीर्थकररहितानां सप्तदशाधिकं शतं मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति । एतासां मिथ्यादृष्टिः स्वामीति । तीर्थकरत्वं सम्यक्त्वेन आहारद्वयं च संयमेनातो न मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति, आहारकाहारकांगोपांगतीर्थकरनामानीति ।।१९८।।

सासादनादीनां बन्धप्रकृतीः प्रतिपादयन्नाह—

आगैं प्रकृतिबंध का स्वामीपनां है, ताहि प्रतिपादन करते संतै कहै हैं—

अर्थ–एक सौ अड़तालीस प्रकृतिनिकैं मध्य एक सौ बीस बंध प्रकृति हैं । अठाईस अबंध प्रकृति हैं । ते कौन ? पंचशरीर बंधन, पंच शरीर संघात, च्यारिवर्ण, च्यारि रस, एक गंध, सात स्पर्श, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व—ए दोय, ऐसे अठावीस (२८) अबंध प्रकृति इनितैं अवशेष आहारद्वय तीर्थंकरकरि रहित प्रकृतिनि का सतरह अधिक एक शत (११७) है, ताहि सम्यक्त्व कहि बहुरि आहारद्वय है, ताहि संयमकरि बाधैं है, यातैं समस्त मिथ्यादृष्टी हैं । सो आहार, आहार अंगोपांग है, ताहि तीर्थंकर नाम है, ताहि नाहीं बाधैं है ।।१९८।।

---

* यह गाथा बदली हुई है—

सव्वे मिच्छाइट्ठी बंधई णाहारदुगं तित्थयरं ।
उणवीसं छादालं सासण सम्मो य मिस्सो य ।।

अर्थ–सभी मिथ्यादृष्टि जीव आहारद्विक और तीर्थंकर इन तीन प्रकृतियों का बन्ध नहीं करते हैं । सासादन सम्यक्त्वी उन्नीस का एवं मिश्रगुणस्थानवर्ती छयालीस प्रकृतियों का बन्ध नहीं करते हैं । अर्थात् मिथ्यात्वी १२० में से तीन को न बाँधकर ११७ को बाँधते हैं । सासादनवर्ती मिथ्यात्व गुणस्थान की सोलह व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ और तीन ये ऐसी १०९ छोड़कर शेष ११ का बन्ध करते हैं । मिश्रवाले सासादन की व्युच्छिन्न हुई २५ और इन १९ ऐसी ४४ और मनुष्य-आयु ऐसी—कुल ४६ प्रकृतियों को नहीं बाँधते हैं ।

सासादनादीनां बन्धप्रकृतीः प्रतिपादयन्नाह—

वज्जिय तेदालीसं तेवण्णं चेव पंचवण्णं च ।
बंधइ सम्मादिट्ठी दु सावओ संजदो तहा चेव ।।१९९।।

चशब्देन सूचिताः सासादनसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्बन्धप्रकृतीस्तावन्निरूपयामः—मिथ्यात्वनपुंसकवेदनरकायुर्नरकगत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिहुंडसंप्राप्तासृपाटिकासंहनननरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणशरीरसंज्ञकाः षोडश प्रकृतीस्त्यक्त्वा शेषा मिथ्यादृष्टिबन्धप्रकृतीरेकोत्तरशतं सासादनसम्यग्दृष्टिर्बध्नातीति । सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिबन्धप्रकृतीस्तीर्थंकरदेवमनुष्यायुरहिताश्चतुःसप्ततिसंख्याका बध्नातीति । निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्ध्यनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभस्त्रीवेदतिर्यगायुस्तिर्यग्गतिमध्यमचतुःसंस्थान—मध्यमचतुःसंहनन—तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्योद्योताप्रशस्तविहायोगतिदुर्भगदुःस्वरानादेयनीचैर्गोत्रसंज्ञकाः पंचविंशतिप्रकृतीः परिहृत्य तीर्थंकरसहिताः सासादनबन्धप्रकृतीर्वा सप्तसप्ततिप्रकृतीरसंयतसम्यग्दृष्टिर्बध्नाति । अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभमनुष्यगत्यौदारिकशरीरांगोपांगमनुष्यायुर्वज्रर्षभनाराचसंहननमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम्नी दशप्रकृतीः परिहृत्य शेषा असंयतसम्यग्दृष्टिबन्धप्रकृतीस्त्रिपंचाशद्रहिततीर्थंकराहारद्वयसहितमिथ्यादृष्टिप्रकृतीर्वा सप्तषष्टिसंज्ञकाः संयतासंयतो बध्नाति । प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभसंज्ञकाश्चतस्रः प्रकृतीः परिहृत्य शेषाः संयतासंयतबन्धप्रकृतीः पंचपंचाशद्रहितमिथ्यादृष्टिबन्धप्रकृतीर्वा तीर्थंकराहारद्वयबन्धसहिताः पंचषष्टिप्रकृतीः प्रमत्तसंयतो बध्नाति । तथा तेनैव प्रकारेणाप्रमत्तादीनां बन्धप्रकृतयो द्रष्टव्यास्तद्यथा असद्वेद्यरतिशोकास्थिराशुभायशस्कीर्तिसंज्ञकाः षट् प्रकृतीः परिहृत्य शेषा

आगै सासादन सम्यग्दृष्टी आदिकनि कै बंध प्रकृति है तिनहि प्रतिपादन करते संतै कहैं हैं—

अर्थ–'च' शब्दकरि सूचित सासादन सम्यग्दृष्टि अर सम्यक् मिथ्यादृष्टि—इन दोऊ की बंधप्रकृति है तिनहि प्रथण निरूपण करै हैं—

१. मिथ्यात्व, २. नपुंसकवेद, ३. नरकायु, ४. नरकगति, ५. एकेंद्रिय जाति, ६. द्वींद्रिय जाति, ७. त्रींद्रिय जाति, ८. चतुरिंद्रिय जाति, ९. हुंडसंस्थान, १०. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, ११. नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्य, १२. आतप, १३. स्थावर, १४. सूक्ष्म, १५. अपर्याप्तक, १६. साधारण शरीर—ये हैं संज्ञा जिनकी अैसी सोलह प्रकृति हैं । तिनहि त्यजकरि अवशेष रही मिथ्यादृष्टी की बंध प्रकृति एक सौ एक (१०१), ताहि सासादन सम्यगदृष्टि जानै है । सम्यग्मिथ्यादृष्टी है, सो सम्यग्दृष्टी की बंध प्रकृति (७७) १. तीर्थंकर नाम, २. देव आयु, ३. मनुष्य आयु रहित चौहत्तरि हैं संज्ञा जिनकी, अैसी बांधै हैं ।

१. निद्रा निद्रा, २. प्रचलाप्रचला, ३. स्त्यानगृद्धि, ४. अनन्तानुबन्धी क्रोध, ५. मान, ६. माया, ७. लोभ, ८. स्त्रीवेद, ९. तिर्यगायु, १०. तिर्य्यग्गति, ११-१४. मध्यमच्यारि संस्थान, १५-१८. मध्यमच्यारि संहनन, १९. तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्य, २०. उद्योत, २१. अप्रशस्त विहायोगति, २२. दुर्भग, २३. दुःस्वर, २४. अनादेय, २५. नीचैर्गोत्र—ये है संज्ञा जिनकी अैसी पच्चीस प्रकृति हैं । तिनहि त्यजिकरि तीर्थंकर सहित अैसी सासादन बंध प्रकृति तिनहि अथवा तीयालीस प्रकृति रहित अर तीर्थंकर आहारकद्वय सहित मिथ्यादृष्टी की बंध प्रकृति जे सतहतरि (७७) तिनहि असंयत सम्यग्दृष्टी बांधै है ।

---

१. अथवा मिथ्या, गुणस्थान में बँधनेवाली ११७ में ३ अबन्धप्रकृति जोड़ देने पर सामान्यबन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ हैं । इनमें से प्रथम गुणस्थान में व्युच्छित्र १६, द्वितीय गुणस्थान में व्युच्छित्र २५, चौथे गुणस्थान में व्युच्छित्र प्रकृति १० तीनों मिलाकर ५१ हुए, तथा आहारकद्विक का यहाँ बन्ध नहीं है । अतः इन २ को मिलाकर ५३ प्रकृति को छोड़कर ६७ प्रकृतियाँ पंचम गुणस्थान में बँधी हैं ।

अप्रमत्तो बध्नातीति । अप्रमत्तप्रकृतीस्त्यक्तदेवायु:प्रकृतीरष्टापंचाशत्संज्ञका अपूर्वकरणो बध्नातीति । आद्यभागेन ता एव निद्राप्रचलारहिता: षट्पंचाशत्प्रकृती: स एवापूर्वकरणसंख्यातभागेषु बध्नाति । तत ऊर्ध्वं संख्येयभागेपंचेन्द्रियजातिवैक्रियिकाहारतैजसकार्मणशरीरसमचतुरस्रसंस्थानवैक्रियिकाहारकशरीरांगोपांग-वर्णगन्धरसस्पर्शदेवगति-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासविहायोगति-त्रसबादरपर्याप्तकप्रत्येकशरीरस्थिरसुभगसुस्वरादेयनिर्माणतीर्थकराख्या: प्रकृती: परिहृत्य शेषा: षड्विंशतिप्रकृती: स एवापूर्वकरणो बध्नाति, ततोऽनिवृत्तिप्रथमभागे ता एव प्रकृतीर्हास्यरतिभयजुगुप्सारहिता द्वाविंशतिसंख्याका बध्नाति अनिवृत्तिबादर: । तत ऊर्ध्वं पुंवेदरहिता एकविंशतिप्रकृतीरनिवृत्तिद्वितीयभागे बध्नाति । तत: संज्वलनक्रोधरहिता विंशतिप्रकृतीस्तृतीयभागे बध्नाति। तत: संज्वलनमानरहिता एकोनविंशतिप्रकृतीश्चतुर्थभागे बध्नाति । तत ऊर्ध्वं मायारहिता अष्टादशप्रकृती: पंचभागे बध्नाति । तत ऊर्ध्वं ता एव लोभरहिता:

अप्रत्याख्याना १. वरण क्रोध, २. मान, ३. माया, ४. लोभ, ५. मनुष्य-आयु, ६. मनुष्यगति, ७. औदारिक शरीर, ८. औदारिक शरीरांगोपांग, ९. वज्रऋषभनाराचसंहनन, १०. मनुष्यगत्यानुपूर्व्य—ये हैं नाम जिनके अैसी दश प्रकृति हैं तिनहि त्यजिकरि अवशेष असंयत सम्यग्दृष्टी की बंध प्रकृति हैं, तिनहि अथवा तिरेपन प्रकृति रहित तीर्थंकर आहारद्वय सहित मिथ्यादृष्टी की बंध प्रकृति हैं तिनहि सडसठि (६७) है संख्या जिनकी ते संयतासंयत बांधैं है ।

१. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, २. मान, ३. माया, ४. लोभ है संज्ञा जिनकी अैसी च्यारि प्रकृति हैं तिनहि त्यजिकरि अवशेष संयतासंयत की बंध प्रकृति हैं । तिनहै आहारकद्विक सहित अथवा ये पचावन प्रकृति रहित मिथ्यादृष्टी की बंध प्रकृति, तीर्थंकर आहारद्वय सहित पैंसठि प्रकृति हैं तिनहि प्रमत्तसंयत बांधै है । इहाँ इतनी विशेष जाननां—जो गोम्मटसारसिद्धांत मैं आहारकद्विक विनां तिरेसठि प्रकृति का बंध लिख्या है । अर इहां आहारकद्विक सहित पैसठि लिख्या है, सो दोउनि के वचन प्रमाण हैं ।

केवली-केवली के ज्ञान मैं प्रतिभास्या सो सत्य है । तिस ही प्रकारकरि अप्रमत्तादिकनिकैं बंध प्रकृति जाननी । सो कहै है[१] ? १. असातावेदनीय, २. अरति, ३. शोक, ४. अस्थिर, ५. अशुभ, ६. अयश:कीर्ति है संज्ञा जिनकी अैसे छह प्रकृति हैं । जिनहि त्यजिकरि अवशेष अप्रमत्तबंध प्रकृति अठावन है संख्या जिनकी तिनहि अपूर्वकरण बांधे है । आद्यभाग विषैं ता पीछै तेही निद्रा, प्रचला रहित छप्पन्न प्रकृति हैं तिनहि, सो ही अपूर्वकरण संख्यातभागनि विषैं बांधै हैं, ताकै आगै संख्यातभाग विषैं १. पंचेन्द्रियजाति, २. वैक्रियिक, ३. आहारक, ४. तैजस, ५. कार्मण शरीर, ६. समचतुरस्रसंस्थान, ७. वैक्रियिक, ८. आहारक शरीरांगोपांग, ९. वर्ण, १०. गंध, ११. रस, १२, स्पर्श, १३. देवगति, १४. देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व, १५. अगुरुलघु, १६. उपघात, १७. परघात, १८. उच्छ्वास, १९. प्रशस्तविहायोगति, २०. त्रस, २१. वादर, २२. पर्याप्तक, २३. प्रत्येकशरीर, २४. स्थिर, २५. शुभ, २६. सुभग, २७. सुस्वर, २८. आदेय, २९. निर्माण, ३०. तीर्थंकर—ये हैं संज्ञा जिनकी, अैसी तीस प्रकृति हैं, तिनहि त्यजि अवशेष छब्बीस प्रकृति हैं, तिनहि सोही अपूर्वकरण बांधै है ।

तापीछैं अनिवृत्ति के प्रथमभाग विषैं ते ही प्रकृति १. हास्य, २. रति, ३. भय, ४. जुगुप्सा रहित बाईस है संख्या जिनकी, तिनहि बांधै है । अनिवृत्त वादर है, सौ ताकैं आगै पुरुषवेद रहित इकवीस (२१) प्रकृति हैं, तिनहि अनिवृत्ति के द्वितीय भाग विषैं बाधैं है । तापीछैं संज्वलन क्रोध रहित बीस प्रकृति हैं, तिनहि तृतीय भाग विषैं बांधै हैं, ताकै आगै संज्वलनमान रहित उनबीस (१९) प्रकृतीनि चतुर्थ भाग विषैं बांधै है । ताकै आगैं माया रहित अठारह प्रकृति है तिनहि पंचम भाग विषैं बाधैं है । ताकै आगै ते ही लोभ रहित सप्तदश (१७)

---

१. कर्मकाण्ड में छठें में आहारक द्वय का बन्ध न मानकर ६३ का बन्ध माना है ।

सप्तदशप्रकृती: सूक्ष्मसांपरायो बध्नाति । ज्ञानान्तरायदशकदर्शनचतुष्कोच्चैर्गोत्रयश:कीर्तिषोडशप्रकृतीर्मुक्त्वैकं सद्वेद्यं द्वितीयभागे सूक्ष्मसांपरायो बध्नाति । तत ऊर्ध्वं सातवेदनीयाख्यामेकाम् प्रकृतिमुपशान्तकषायक्षीणकषाययोगिकेवलिनो बध्नन्ति । अयोगकेवली अबन्धको न किंचित्कर्म बध्नातीति ।।१९९।।

व्याख्यात: प्रकृतिबन्धविकल्प:, इदानीं स्थितिबन्धविकल्पो वक्तव्य:, सा च स्थितिर्द्विविधोत्कृष्टा जघन्या च; तत्र यासां कर्मप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थिति: समाना तासां निर्देशार्थमुच्यते—

तिण्हं खलु पढमाणं उक्कस्सं अंतरायस्सेव ।[१]
तीसं कोडाकोडी सायरणामाणमेव ठिदी ।।२००।।*

त्रयाणां प्रथमानां ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयानां सामीप्यात्साहचार्याद्वा सर्वेषां प्रथमत्वमन्तरायस्य च उत्कृष्टा स्थिति: सागरनाम्नां त्रिंशत्कोटी-कोट्यो नाधिका । पंचानां ज्ञानावरणीयानां नवानां दर्शनावरणीयानां सातवेदनीयस्यासातवेदनीयस्य पंचान्तरायाणां चोत्कृष्ट: स्थितिबन्ध: स्फुटं त्रिंशत्साग-रोपमकोटीकोट्य: । एते कर्मरूपपुद्गला एतावता कालेन कर्मस्वरूपाभावे क्षयमुपव्रजंतीति ।।२००।।

प्रकृति हैं तिनहि सूक्ष्मसांपराय बांधै है । ताकें आगै ज्ञानांतराय का दशक अर्थात् पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय अैसे दशक (१०), दर्शन का चतुष्टय, उच्चगोत्र, यश:कीर्ति—अैसैं सोलह प्रकृति हैं, तिनहि त्यजिकरि अवशेष साता वेदनीय है नाम जाका अैसी एक प्रकृति है । ताहि उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, संयोगकेवली है, तो बाँधे है । अयोगकेवली है सो बंधरहित है किंचित् कर्म कूं नांही बांधै है ।।१९९।।

अैसें प्रकृति बंध के भेद कह्या । अवस्थिति बंध का भेद है सो कहने जोग्य है, सो स्थिति दोय प्रकार है—१. उत्कृष्ट, बहुरि २. जघन्य, तहाँ तिन विषैं जिनकर्मप्रकृतिनि की उत्कृष्टस्थिति समान है, तिनके कथन के अर्थि कहै है—

अर्थ–प्रथम जे तीन—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय इनकैं सामीप्यतैं वा साहचर्यतैं सर्बके प्रथमपनां है । बहुरि अंतराय की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडा-कोडी सागर है, अधिक नांही ।

भावार्थ–पंच ज्ञानावरणीय का, नव दर्शनावरणीयका, असातावेदनीयका, बहुरि पंच अंतराय का उत्कृष्ट स्थितिबंध प्रकटपनैं तीस कोडा-कोडी सागर है । ये कर्मरूप पुद्गल येते कालकरि (कर्म अवस्था में रहते हैं, इसके बाद) कर्मस्वरूप का अभाव हौतैं नासकूं प्राप्त होय हैं ।।२००।।

---

१. ब० प्रति में अंतराइयं चेव ।

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में अप्रमत्त से लेकर अयोगी तक बन्ध की प्रकृतियाँ आगे दो गाथाओं में कही हैं जबकि इस संस्करण में यह विषय टीका में ले लिया गया है ।

एगट्ठी बासट्ठी अठणउदी तिण्णिसहिय सयरहियं ।
बंधंति अप्पमत्ता पुव्व णियट्ठी य सुहुमो य ।।

अर्थ–अप्रमत्तसंयत इकसठ रहित शेष उनसठ प्रकृतियों का बन्ध करते हैं । अपूर्वकरणसंयत बासठ प्रकृति रहित शेष अट्ठावन प्रकृतियों का बन्ध करते हैं । अनिवृत्तिकरण संयत अट्ठानवे प्रकृतियों को छोड़कर शेष बाईस प्रकृतियों का बन्ध करते हैं और सूक्ष्मसाम्पराय संयत एक-सौ-तीन प्रकृतियों को छोड़कर शेष सत्रह प्रकृतियाँ बाँधते हैं ।

यथा—

मोहस्स सत्तरिं खलु बीसं णामस्स चेव गोदस्स ।
तेतीसमाउगाणं उवमाओ सायराणं तु ।।२०१।।

मोहस्य मिथ्यात्वस्य सागरोपमानां कोटीकोटीनां सप्ततिरुत्कृष्टा स्थिति:, नामगोत्रयो: कर्मणोरुकृष्टस्थिति: सागराणां कोटीकोटीनां विंशति: पूर्वोक्तेन सागरनाम्नां कोटीकोटी इत्यनेन सम्बन्ध: । आयुष: पुन: कोटीकोटीशब्देन नास्ति सम्बन्ध: । तथानभिधानादागमे इत्यत: सागरशब्देनैव सम्बन्ध:। कुत: पुन: ? सागरोपमग्रहणादायुष उत्कृष्टस्थिति: उपमा सागराणां त्रयस्त्रिंशत्स्थिते: सागरैस्त्रयस्त्रिंशद्भिरुपमा । तुशब्द: सर्वविशेषणसंग्रहार्थ: । तद्यथा, सातवेदनीय-स्त्रीवेद-मनुष्यगति-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम्नामुत्कृष्टा स्थिति: पञ्चदशसागरोपमकोटीकोट्य: । षोडशकषायाणामुत्कृष्ट: स्थितिबन्धश्चत्वरिंशत्कोटीकोट्य: सागराणाम् । पुंवेद-हास्य-रति-देवगतिसमचतुरस्रसंस्थान-वज्रर्षभनाराचसंहनन-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यप्रशस्तविहायोगति-स्थिरसुभगशुभ-सुस्वरादेययश:कीर्तिरुच्चैर्गोत्राणामुत्कृष्ट: स्थितिबन्ध: दशसागरोपमकोटीकोट्य: ।

नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सानरकगति-तिर्यगत्येकेन्द्रियपंचेन्द्रियजात्यौदारिकवैक्रियिकतैजसकार्मणशरीर-हुण्डसंस्थानौदारिकवैक्रियिकागोपांगा-संप्राप्तसृपाटिकासंहनन-वर्णरसगन्धस्पर्श-नरकगति-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघात-परघातोच्छ्वासातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतित्रसस्थावरबादरपर्याप्त-

---

अर्थ–मोह जो मिथ्यात्त्व ताकी सत्तर कोडाकोडी सागर की उत्कृष्ट स्थिति हैं । नामकर्म अर गौत्रकर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागर का हैं । पूर्वोक्त सागर शब्दनिकै कोडाकोडी इसकरि संबंध हैं । बहुरि आयु कै कोडाकोडी शब्द करि नाहीं संबंध । आगम विषै तैसैं कह्य नांही । यातैं सागर शब्द ही करि संबंध है । काहैं तै ? बहुरि सागरोपम के ग्रहणतैं आयु की उत्कृष्टस्थिति तेतीस सागरोपम की है । उपमा शब्द हैं सो तेतीस सागरनिकरि हैं । 'तु' शब्द है सो सर्व विशेषनि के संग्रह अर्थि है । सो ही कहिये हैं—१. सातावेदनीय, २. स्त्रीवेद, ३. मनुष्यगति, ४. प्रायोग्यानुपूर्व—ये हैं नाम जिनके, तिनकी उत्कृष्ट स्थिति पंदरह (१५) कोडाकोडी सागर की है । सोलह कषायनि की उत्कृष्टस्थिति चालीस कोडाकोडी सागर की है । १. पुरुषवेद, २. हास्य, ३. रति, ४. देवगति, ५. समचतुरस्रसंस्थान, ६. वज्रवृषभनाराचरस्र संहनन, ७. देवगति, ८. देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व, ९. प्रशस्तविहायोगति, १०. स्थिर, ११. शुभ, १२. शुभग, १३. सुस्वर, १४. आदेय, १५. यशकीर्ति, १६. उच्चगोत्र—इन सोलह प्रकृतिनका उत्कृष्टस्थितिबंध दशकोडाकोडी सागरोपम है ।

१. नपुंसकवेद, २. अरति, ३. शोक, ४. भय, ५. जुगुप्सा, ६. नरकगति, ७. तिर्य्यगति, ८. एकेंद्रियजाति, ९. पंचेन्द्रियजाति, १०. उदारिक, ११. वैक्रियिक, १२. तैजस कार्मण, १३. शरीर, १४. हुंड संस्थान, १५. औदारिक अंगोपांग, १६. वैक्रियिक अंगोपांग, १७. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, १८. वर्ण, १९. रस, २०. गंध, २१. स्पर्श, २२. नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य, २३. तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्व, २४. अगुरुलघु, २५. उपघात, २६. परघात, २७. उच्छ्वास, २८. आतप, २९. उद्योत, ३०. अप्रशस्त विहायोगति, ३१. त्रस,

---

उवसंतखीणजोगी उणवीससयेहिं रहियपयडीणं ।
वीसलयं पयडिविणा जोगविहीणा हू बंधंति ।।

अर्थ–उपशान्तकषाय संयत, क्षीणकषाय संयत और सयोगेकेवलिजिन ये तीनों ही एक सौ उन्नीस प्रकृतियों से रहित शेष एक साताप्रकृति का ही बन्ध करते हैं । अयोगकेवलिजिन एक सौ बीस प्रकृतियों से भी रहित अबन्धक होते हैं ।

~52

प्रत्येकशरीरास्थिराशुभदुर्भगदु:स्वरानादेयायशस्कीर्तिनाम्नां नीचैर्गोत्राणामुत्कृष्ट: स्थितिबन्धोविंशतिसागरोपमकोटीकोट्य: ।

नरकदेवायुषोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थिति: । तिर्यङ् मनुष्यायुषो उत्कृष्टा स्थितिस्त्रीणि पल्योपमानि । द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजाति-वामनसंस्थानकीलकसंहननसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणनाम्नामुकृष्टस्थिति: अष्टादशसागरोपमकोटीकोट्य: । आहारशरीरांगोपांगतीर्थंकरनाम्नामुत्कृष्टस्थिति: अन्त:कोटी-कोट्य: । न्यग्रोधसंस्थानवज्रनाराचसंहननयोरुत्कृष्टस्थितिर्द्वादशसागरोमपकोटीकोट्य: । स्वातिसंस्थाननाराचसंहननयोरुत्कृष्टा स्थिति: चतुर्दशसागरोपम-कोटीकोट्य: । कुब्जकसंस्थानार्द्धनाराचसंहननयोरुत्कृष्टा स्थिति: षोडश सागरोपमकोटीकोट्य: ।

सर्वत्र यावंत्य: सागरोपमकोटीकोट्यस्तावंति वर्षशतान्याबाधा । आबाधा हीनकर्मस्थिति: कर्मनिषेधक: । येषां तु अन्त:कोटीकोट्य: स्थितिस्तेषामन्तर्मुहूर्त्त आबाधा । आयुष: पूर्वकोटीत्रिभाग उत्कृष्टाबाधा, आबाधोना कर्मस्थिति:, कर्मस्थितिकर्मनिषेधक इति ।

इयं संज्ञिपंचेन्द्रियस्योत्कृष्टा स्थितिरेकेन्द्रियस्य ।

पुनर्मिथ्यात्वस्योत्कृष्ट: स्थितिबन्ध एकं सागरोपमम् । कषायाणां सप्त चत्वारो भागा, ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायसातवेदनीयानामुत्कृष्ट: स्थितिबन्ध: सागरोपमस्य त्रय: सप्तमभागा:, नामगोत्रनोकषायाणां सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागौ । एवं शेषाणां त्रैराशिकक्रमेणैकेन्द्रियस्योत्कृष्टा स्थिति: साध्या, तस्या: संदृष्टिरेवं १, ४/७ ३/७ २/७ एवं द्वीन्द्रियाद्यसंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यन्तानामुत्कृष्टा स्थिति: साध्या ।

---

३२. स्थावर, ३३. बादर, ३४. पर्याप्त, ३५. प्रत्येकशरीर, ३६. अस्थिर, ३७. अशुभ, ३८. दुर्भग, ३९. दु:स्वर, ४०. अनादेय, ४१. अयशस्कीर्ति, ४२. निर्माण, ४३. नीचगोत्र—इन तियालीस (४३)[१] प्रकृतिनका उत्कृष्टि स्थिति बंध बीस कोडाकोडी सागरोपम है।

नरकआयु अर देवायु की तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है तिर्यग् अर मनुष्य आयु की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम है । द्वींद्रियजाति, त्रींद्रियजाति, चतुरिंद्रियजाति, वामन संस्थान, कीलिका संहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण है नाम जिनके ऐसे आठ नामकर्म की उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोडाकोडी सागरोपम है । आहार, शरीर, आहार अंगोपांग, तीर्थंकर नामकर्म की उत्कृष्ट स्थिति अंत:कोडाकोडी सागर है। न्यग्रोध संस्थान, वज्रनाराचसंहनन की उत्कृष्ट स्थिति द्वादश (१२) कोडाकोडी सागरोपम है । साति (स्वाति) संस्थान, नाराचसंहनन की उत्कृष्ट स्थिति चौदह कोडाकोडी सागरोपम है । कुब्जसंस्थान, अर्द्धनाराचसंहनन की उत्कृष्ट स्थिति सोलह कोडाकोडी सागरोपम है ।

सर्वत्र जेते सागरोपम कोडाकोडी है तेते वर्षनिके सै (सौ) कर्म निषेक (उस कर्म की उतने सौ वर्ष प्रमाण आबाधास्थिति है।) आबाधा कहिये अनुदयकाल ताकरि ऊन (आबाधाहीन) जो कर्मस्थिति तितना प्रमाण कर्मनि के निषेक रचना होय हैं, तिनकी अंत:कोडाकोडी सागरोपम स्थिति है, तिनकी अंतर्मुहूर्त मात्र आबाधा है । आयुकर्म की कोडि पूर्वका त्रिभाग उत्कृष्ट आबाधा है । आबाधाकरि उन कर्मस्थिति कहिये जो है सो कर्मनिका निषेक जाननां । यह संज्ञी पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति है ।

बहुरि एकेन्द्रिय कै मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम है । कषायनि की उत्कृष्ट स्थिति सागरोपम के सप्तभाग मै च्यारिभाग है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, सातावेदनीय[२] का उत्कृष्ट स्थितिबंध सागरोप के तीन सागरोप कै सातभाग करिये तिन विषैं तीन

---

१. आचारवृत्ति (संस्कृत टीका) में बयालीस प्रकृतियों के नाम हैं, ४२ वीं निर्माण प्रकृति का उल्लेख नहीं है ।

२. अ० ब० प्रति में असातावेदनीय ।

द्वीन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्योत्कृष्टा स्थितिः पंचविंशतिः सागरोपमाणां, त्रीन्द्रियस्य पंचाशत्, चतुरिन्द्रियस्य शतम् । असंज्ञिपंचेन्द्रियस्य सहस्रम् ।

तद्विभागेनैव शेषकर्मणामप्युत्कृष्टा स्थितिः साध्या त्रैराशिकक्रमेण । तेषां संदृष्टयः द्वीन्द्रियस्य मिथ्यात्वादीनां २५, १००/७, ७५/७, ५०/७; त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वादीनां ५०, २००/७, १५०/७, १००/७; चतुरिन्द्रियस्य मिथ्यात्वादीनां १००, ४००/७, ३००/७, २००/७; असंज्ञिनां पंचेन्द्रियस्य मिथ्यात्वादीनां १०००, ४०००/७, ३०००/७, २०००/७ मिथ्यात्वादीनामुत्कृष्टः स्थितिबन्धः । सर्वत्र चावल्या संख्यातभाग एव आबाधा इति ।।२०१।।

उत्कृष्टस्थितिबन्ध प्रतिपाद्य जघन्यस्थितिबन्धं प्रतिपादयन्नाह—

बारस य वेदणी ए णामगोदाणमट्ठय मुहुत्ता ।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेस पंचण्हं ।।२०२।।

वेदनीयस्य कर्मणो जघन्या स्थितिः द्वादश मुहूर्त्ताः । नामगोत्रयोः कर्मणोरष्टौ मुहूर्त्ताः जघन्या स्थितिः । शेषाणां पुनः पंचानां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयायुरन्तरायाणां जघन्या स्थितिरन्तमुहूर्त्तमात्रमिति च । जघन्यस्थितेर्विशेषं प्रतिपादयन्नाह ।

भाग जाननें । अैसें ही आगै जाननें । नाम, गोत्र नोकषायनि कै सागरोपम के दोय सात भाग हैं । अैसे अवशेष विशेष कर्मनि की त्रैराशिक क्रमकरि एकैंद्रिय कै उत्कृष्ट स्थिति साधवे जोग्य हैं । ताकि संदृष्टी यह

१	४	३	२
	७	७	७

अैसें द्वींद्रिय आदे असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्यंत की उत्कृष्ट स्थिति साधणी । द्वींद्रिय कै मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति पचीस सागरोपम है । त्रींद्रिय कै पचास सागरोपम है । चतुरिंद्रिय कै सौ सागरोपम है । असंज्ञी पंचेन्द्रिय कै सहस्र सागरोपम है । तिसहिविभागकरि अवशेष कर्मनिहू की उत्कृष्ट स्थिति त्रैराशिक क्रमकरि साधणी। तिनकी संदृष्टी

मि०	कषाय	ज्ञानावरणादि	नाम-गोत्र
२५	१००	७५	५०
	७	७	७

यह द्वींद्रिय जी कै मिथ्यात्वादिकनिकी है ।

५०	२००	१५०	१००
	७	७	७

यह त्रींद्रिय कै मिथ्यात्वादिकनि की उत्कृष्ट स्थिति है ।

१००	४००	३००	२००
	७	७	७

यह चतुरिन्द्रिय कै मिथ्यात्वादिकनि की है ।

१००	४०००	३०००	२०००
	७	७	७

यह असंज्ञीपंचेन्द्रिय कै मिथ्यात्वादिक का उत्कृष्टस्थिति बंध है । सर्वत्र पल्यका असंख्यातवा भाग आबाध है । अैसे उत्कृष्टस्थितिबंध है ।।२०१।।

ताही प्रतिपादन करि जघन्यस्थिति बंध है । ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–वेदनीयकर्म की जघन्यस्थिति बारहमुहूर्त्त है । नाम गोत्रकर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त्त है । बहुरि अवशेष पंचजे ज्ञानावरण,

पंचज्ञानावरणचतुर्दर्शनावरणलोभसंज्वलनपंचान्तरायाणां जघन्या स्थितिरन्तर्मुहूर्त्ता । सातवेद्यस्य द्वादशमुहूर्त्ता । यश:कीर्त्युच्चगोत्रयोरष्टौ मुहूर्त्ता:। क्रोधसंज्वलनस्य द्वौ मासौ । मानसंज्वलनस्यैकमास: । मायासंज्वलनस्यार्धमास: पुरुषवेदस्याष्टौ संवत्सरा: । निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिनिद्राप्रचलाऽ-सातवेदनीयानां सागरोपमस्य त्रय: सप्तभागा: पल्योपमासंख्यातभागहीना: । मिथ्यात्वस्य सागरोपमस्य सप्तदशभागा: पल्योपमासंख्यातभागहीना: । अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानानां सागरोपमस्य चत्वार:सप्तभागा: पल्योपमासंख्यातभागहीना अष्टानां नोकषायाणां सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागौ पल्योपमासंख्यातभागहीनौ ।

नरकदेवायुषो दशवर्षसहस्राणि । तिर्यङ्मनुष्यायुषोरन्तर्मुहूर्त्त: । नरकगतिदेवगतिवैक्रियिकशरीरांगोपांगनरकगतिप्रयोग्यानुपूर्व्यदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्याणां सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागौ पल्योपमासंख्यातभागहीनौ आहाराहारांगोपांगतीर्थंकराणां सागरोपमाणां कोटीकोट्योऽन्त:कोटीकोटी । शेषाणां सारोपमस्य द्वौ सप्तभागौ पल्योपमासंख्यातभागहीनौ । सर्वत्र जघन्या स्थितिरिति संबन्धनीया ।

सर्वत्र चान्तर्मुहूर्त्तमाबाधा । आबाधोना कर्मस्थिति:, कर्मनिषेधक: ।

सर्वोऽयं जघन्यस्थितिबन्ध: सामान्यापेक्षया संज्ञिपंचेन्द्रियस्यैकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपंचेन्द्रियाणां सर्वकर्मणां जघन्यस्थितिबन्ध: य एवोत्कृष्ट उक्त: स एव पल्योपमासंख्यातभागहीनो द्रष्टव्य इति ।।२०२।।

दर्शनावरण, मोहनीय, आयु, अंतराय—तनकी जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त्त मात्र है । जघन्यस्थिति का विशेष है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं— पंचज्ञानावरण, च्यारि दर्शनावरण, लोभ-संज्वलन, पाँच अंतरायनिकी जघन्य स्थिति अंतमुर्हूर्त है । सातावेदनीय की बारहमुहूर्त है । यशकीर्ति अर उच्चगोत्र की आठ मुहूर्त्त है । क्रोध-संज्वलन की दोय मास है । मान-संज्वलन की एक मास है । माया-संज्वलन की अर्द्धमास है। पुरुषवेद की आठ वर्ष है । निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय का सागरोपम के तीन सात भाग, पल्योपम के असंख्यातवाँ भागकरि हीन अैसे है । मिथ्यात्व की सागरोपम के सात दश भागवें पल्योपम के असंख्यातवांभाग करि हीन अैसे हैं । अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान की सागरोपम के च्यारि सात भाग (सात भाग में से चार भाग और) पल्योपम के असंख्यात भागकरि हीन अैसे हैं । आठ नोकषायनि की सागरोपम के दोय सात भाग (सात भाग में से दो भाग और) पल्योपम के असंख्यातवां भागकरि हीन अैसे है। नरक, देव आयु की दश सहस्र (१०,०००) वर्ष, तिर्यग्य, मनुष्य आयु की अन्तर्मुहूर्त । नरकगति, देवगति, वैक्रियिक, शरीर,आंगोपांग, नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्व्य, देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनिकी सागरोपम के दोय सात भाग पल्योपम के असंख्यातवां भागकरि हीन अैसे हैं । आहार अंगोपांग, तीर्थंकर की अंत:कोडाकोडी सागरोपम जघन्य स्थिति है । अवशेषनि की सागरोपम के दोय सात, भाग पल्योपम के अंख्यातवां भागकरि हीन जानने ।

इहां सर्वत्र जघन्यस्थिति का संबंध करणां । सर्वत्र अंतर्मुहूर्त आबाधा है । आबाधाकरि ऊन कर्मस्थिति है, सो कर्मस्थिति विषैं निषेक है । सर्व यह जघन्यस्तिति-बंध है, अैसा सामान्य अपेक्षाकरि संज्ञीपंचेन्द्रिय कै हैं । बहुरि एकैंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय असंज्ञी पंचेन्द्रिय का है, सो सर्वकर्मनि का जघन्यस्थिति-बंध है, सो जो उत्कृष्ट कह्या सो ही पल्योपम के असंख्यातवां भागकरि हीन जाननां ।।२०२।।

अनुभागबन्धं निरूपयन्नाह—

कम्माणं जो दु रसो अज्झवसाणजणिद सुह असुहो वा ।
बंधो सो अणुभागो पदेसबंधो इमो होइ ।।२०३।।

कर्मणां ज्ञानावरणादीनां यस्तु रस: सोऽनुभवोऽध्यवसानै: परिणामैर्जनित:, अध्यवसानजनित: । क्रोधमानमायालोभतीव्रतादिपरिणामभावत: शुभ: सुखद: अशुभ: असुखद: वा विकल्पार्थ सोऽनुभागबन्ध: । यथा अजागोमहिष्यादीनां क्षीराणां तीव्रमन्दादिभावेन रसविशेषस्तथा कर्मपुद्गलानां तीव्रादिभावेन स्वगतसामर्थ्यविशेष: शुभोऽशुभो वा य: सोऽनुभागबन्ध: । शुभपरिणामाना प्रकर्षभावच्छुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभवोऽशुभप्रकृतीनां निकृष्ट:, अशुभपरिणामानां प्रकृष्टभावादशुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभव: शुभप्रकृतीनां निकृष्ट: । स एवं [1]प्रकृतिवशादुत्पन्नो रसविशेष: द्विधा प्रवर्त्तते स्वमुखेन परसुखेन चैवं सर्वासां मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनैवानुभव: तुल्यजातीनां परमुखे नापि आयुर्दर्शनचारित्रमोहवर्ज्यानां, न हि नरकायुर्मुखेन तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्वा विपच्यते नापि दर्शन-मोहश्चारित्रमोहमुखेन चारित्रमोहो वा दर्शनमोहमुखेनेति । तथा देशघातिसर्वघातिभेदेनानुभागो द्विविध:, देशं घातयतीति देशघाती, सर्व घातयतीति सर्वघाती। केवलज्ञानावरण-केवलदर्शनावरण-निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिप्रचलानिद्रा: चतु:संज्वलनवर्ज्या द्वादश कषाया मिथ्यात्वादीनां विंशतिप्रकृतीनामनुभाग: सर्वघाती ज्ञानादिगुणं सर्वं घातयतीति वनदाह इव । मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानमन:पर्ययज्ञानावरणपंचान्तरायसंज्वलनक्रोधमानमायालोभनवनोकषायाणा-

---

आगै अनुभागबंध है, सो ताहि निरूपण करते संतै कहै हैं—

अर्थ–कर्म्म जे ज्ञानावरणादिक, तिनका जो रस सो अनुभव है । अध्यवसान जे परिणाम तिनकरि जनित कहिये उपज्या सो अध्यवसान जनित कहिये ।

भावार्थ–क्रोध, मान, माया, लोभनि के तीव्रादि परिणाम भावित (उत्पन्न) अैसे जाननें । सुखदाई सो शुभ, दु:खदाई सो अशुभ, वा शब्द है सो विकल्पार्थ है सो अनुभागबंध है । जैसे छेली, गाय, भैसि इत्यादिकनिके दुग्धनिकैं तीव्र मंदादिभावकरि रस विशेष हैं, तैसैं कर्मपुद्गलनिकैं तीव्रादिभावकरि शुभ अथवा अशुभ जो आप विषैं प्राप्त भया सामर्थ्य विशेष है, सो अनुभागबंध है ।

शुभ परिणामनिके प्रकर्षभावतैं शुभ प्रकृतिनिका प्रकृष्ट अनुभव है । अशुभ प्रकृतिनिका निकृष्ट अनुभव है । अशुभ परिणामनिके प्रकर्षभावतैं अशुभ प्रकृतिनिका प्रकृष्ट अनुभव है । शुभ प्रकृतिनि का निकृष्ट अनुभव है, सो या प्रकार कारणवश तैं उत्पन्न भया रस विशेष हैं सो दोय प्रकार हैं—स्वमुखकरि, परमुखकरि । निश्चयतैं सर्व मूलप्रकृतिनिका स्वमुखकरि ही अनुभव है । आयु, दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहकरि वर्जित समान है जाति जिनकी अैसी उत्तरप्रकृतिनिका परमुख करि हू अनुभव है । जातैं नारक आयु के मुखकरि तिर्यक् आयुवा मनुष्यायु नांही भोगिये है । बहुरि चारित्रमोह उदयकरि दर्शनमोह नांही भोगिये है अथवा दर्शनमोह के मुखकरि चारित्रमोह नांही भोगियो हैं । तथा देशघाती, सर्वघाती भेदकरि अनुभाग है, सो दोय प्रकार हैं । देशकूं घातै सो देशघाती, सर्वकूं घातैं सो सर्वघाती । केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, चार संज्वलन रहित बारह कषाय, मिथ्यात्व आदि बीस प्रकृतिनि का अनुभाग है, सो सर्वघाती है । अर्थात् सर्व वह ज्ञानादिक गुण घातै है वनदाह ज्यौं (वन की दावानल के समान) । ज्यौं मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि-ज्ञानावरण, मन:पर्यय-ज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनवरण, अवधिदर्शनावरण, पंच अंतराय, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, नव नोकषाय—इनका उत्कृष्ट अनुभाग बंध सर्वघाती वा देशघाती है जघन्य (अनुभाग) देशघाती है ।

१. क० प्रत्यय ।

मुत्कृष्टानुभागबन्धः सर्वघाती वा जघन्यो देशघाती । सातासातचतुरायुःसर्वनामप्रकृत्युच्चैर्नीचैर्गोत्राणामुत्कृष्टाद्यनुभागबन्धः घातिनां प्रतिभागो देशघाती, घातिविनाशे स्वकार्यकरणसामर्थ्याभावात् । एता अघातिप्रकृतयः पुण्यपापसंज्ञाः । शेषाः पुनः पूर्वोक्ता घातिसंज्ञाः पापा भवन्तीति । अशुभप्रकृतीनां चत्वारि स्थानानि निंबकांजीरविषकालकूटानीति, शुभप्रकृतीनां च चत्वारि स्थानानि गुडखण्डशर्क रामृतानीति । मोहनीयान्तरायवर्जितानां षण्णां कर्मणामुत्कृष्टानुभागबन्धःचतुःस्थानिको, जघन्यानुभागबन्धो द्विस्थानिकः, शेषः द्वित्रिचतुःस्थानिकः । मोहनीयान्तराययोरुत्कृष्टानुभागबन्धश्चतुःस्थानिको जघन्यानुभागबन्ध एकस्थानिकः, शेषा एकद्वित्रिचतुःस्थानिकाः । चतुर्ज्ञानावरणत्रिदर्शनावरणपुंवेदचतुःसंज्वलनपंचांतरायाणां सप्तदशप्रकृतीनामुत्कृष्टानुभागबन्धश्चतुःस्थानिको जघन्यानुभागबन्ध एकस्थानिकः । शेषाः सर्वेऽपि केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणसातासातमिथ्यात्वद्वादशकषायाष्टनोकषायचतुरायुःसर्वनामप्रकृत्युच्चैर्नीचैर्गोत्राणामुत्कृष्टानुभागबन्धश्चतुःस्थानिको जघन्यो द्विस्थानिकः, शेषो द्वित्रिचतुःस्थानिकः । घातिनामेकस्थानं नास्ति । पुंवेदरहितानां नोकषायाणामेकस्थानं नास्ति, निम्बवदेकस्थानं, कांजीरवद् द्विस्थानं, विषवत् त्रिस्थानं, कालकूटवच् चतुःस्थानम् अशुभप्रकृतीनामेतत् । गुडवदेकस्थानं, खण्डवद् द्विस्थानं, शर्करावत् त्रिस्थानम्, अमृतवद् चतुःस्थानं शुभप्रकृतीनामेतदिति ।

पंचशरीरषट्संस्थानत्र्यंगोपांषट्संहननपंचवर्णद्विगन्धपंचरसाष्टस्पर्शा गुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतनिमानप्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभा एता

साता, असाता, वेदनीय, च्यारि आयु, सर्वनामप्रकृति, (नामकर्म की समस्त ९३ प्रकृतियाँ) उच्च-नीच गौत्रनिका उत्कृष्ट आदि अनुभाग बंध है, सो घातिनिका प्रतिभागतैं सो देशघाती है, (क्योंकि) घातिनिका नाश हौंते अपने कार्य करने की शक्ति का अभाव है, यातैं । ये अघाति प्रकृतियों के पुण्य-पाप हैं संज्ञा—जिनकी, अैसी हैं । बहुरि अवशेष घाति पूर्वोक्त संज्ञक प्रकृति हैं, ते पाप संज्ञा हैं ।

अशुभ प्रकृतिनके निंब (नीम), कांजीर, विष, कालकूट ज्यौं च्यारि स्थान हैं । शुभ प्रकृतिनिका गुड़, खांड, शर्करा अमृत ज्यौं च्यारि स्थान हैं ।

मोहनीय अन्तराय वर्जित छह कर्मनिकाउत्कृष्ट अनुभाग बंध सो चतुस्थानिक है । जघन्य अनुभागबंध द्विस्थानिक है । शेष हैं सो द्वि, त्रि, चतु स्थानिक हैं । मोह, अन्तराय का उत्कृष्ट अनुभागबंध है, सो चतुःस्थानिक है । जघन्य अनुभागबंध है सो एकस्थानिक है, अवशेष हैं सो एक, द्वि, त्रि, चतु स्थानिक हैं ।

च्यारि ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, पुरुषवेद, च्यारि संज्वलन, पंच अंतराय इन सतरह प्रकृतिनि का उत्कृष्ट अनुभाग बंध चतुःस्थानिक है । जघन्य अनुभागबंध एक स्थानिक है, शेष सर्व ही हैं । केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, (संज्वलन छोड़कर) बारह कषाय, पुंवेद के अतिरिक्त आठ नोकषाय, च्यारि आयु, सर्व नामप्रकृति, उच्च-नीचगोत्र-इनका उत्कृष्ट अनुभाग बंध चतुःस्थानिक है । जघन्य है सो द्विस्थानिक है । अवशेष है सो द्वि, त्रि, चतुःस्थानिक है । अवशेष है सो दोय प्रकार है । जघन्य है सो द्विस्थानक है । चतुस्थानिक हैं तिनिके एक स्थान नांही पुंवेद रहित नोकषायनिके एक स्थानक नांही ।

निंव (नीम) ज्यौं एक स्थान, कांजीर ज्यौं द्विस्थान, विष ज्यौं तृतीय स्थान, कालकूट ज्यौं चतुर्थ स्थान । अशुभ प्रकृतिनिका अैसे ही स्थान है । गुड़ ज्यौं एक स्थान, खांड ज्यौं द्वितीय स्थान, शर्करा ज्यौं तृतीय स्थान, अर्मत ज्यौं चतुर्थ स्थान—शुभ प्रकृतिनिका अैसे ही है ।

पंचशरीर, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पंचवर्ण, दोय, गंध, पंचरस, अष्ट स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, निमान (निर्माण) प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ—ये बासठ प्रकृति पुद्गल विपाकी है । जातैं पुद्गल

प्रकृतय: पुद्गलविपाका:, पुद्गलपरिणामिन्यो यत इति । चत्वार्यायूंषि भवविपाकानि भवधारणत्वाच्चत्वार्यानुपूर्व्याणि क्षेत्रविपाकानि क्षेत्रमाश्रित्य फलदानात्। शषास्तु प्रकृतयो जीवविपाका जीवपरिणामनिमित्तत्वादिति ।।२०३।।

अनुभागबन्धं व्याख्याय प्रदेशबन्धं प्रतिपादयन्नाह—

सुहुमे जोगविसेसेण एगखेत्तावगाढठिदियाणं ।
एक्केक्के दु पदेसे कम्मपदेसा अणंता दु ।।२०४।।

सुहुमे–सूक्ष्मा: न स्थूला, **जोगविसेसेण–**योगविशेषेण मनोवचनकायविशिष्टव्यापाराद् **एगखेत्तावगाढ–**एकक्षेत्रावगाहिनो न क्षेत्रान्तरावगाहिन: यस्मिन्नेवात्मा कर्मादानरतस्तत: परस्मिन् क्षेत्रे ये पुद्गलास्ते इति **ठिदियाणं–**स्थिता: न गच्छन्त: **एक्केक्के दु पदेसे–**सर्वात्मप्रदेशेषु **कम्मपदेसा–**कर्मप्रदेशा: ज्ञानावरणादिनिमित्तपरमाणव: **अणन्ता दु–**अनन्तास्तु । सूक्ष्मग्रहणं ग्रहणयोग्यपुद्गलस्वभावानुवर्णनार्थं वर्णग्रहणयोग्या: पुद्गला: सूक्ष्मा:, न स्थूला: । एकक्षेत्रावगाहवचनं क्षेत्रान्तरनिवृत्त्यर्थम् एकक्षेत्रे कर्मादानशक्तियुक्त जीवसहचरितप्रदेशे अवगाहो येषां एकक्षेत्रावगाह:, स्थिता इति क्रियान्तरनिवृत्त्यर्थम्, स्थिता न गच्छन्त:, एकैकप्रदेशे इत्यत्र वीप्सानिर्देशन सर्वात्मप्रदेशसंग्रह: कृतस्तेनाधारनिर्देश: कृतस्तेनैकप्रदेशादिषु न कर्मप्रदेशा प्रवर्तन्ते ।

परिणामिन्य: कहिये पुद्गल विषैं हैं परिणाम कहिये उदय जिनका ऐसी है । च्यारि आयु भवविपाकी हैं । काहैतैं ? भवधारणतैं । च्यारि आनुपूर्व्यनाम है ते क्षेत्रविपाकी हैं, क्षेत्रकूं आश्रयकरि फल देवै हैं । बहुरि अवशेष अठहत्तरि प्रकृति हैं, तैं जीविपाकी हैं, जीवपरिणाम के कारणतैं ।।२०३।।

अनुभागबंध है, ताहि व्याख्यानकरि प्रदेशबंध है, ताहि प्रतिपादन करते कहै हैं—

अर्थ–सूक्ष्मा कहिये सूक्ष्म, स्थूल नांही, ऐसे योग विशेषशात् कहिये मन, वचन, काय विशिष्ट व्यापारतैं, एक क्षेत्रावगाहिन: कहिये क्षेत्रांतरावगाही नांही । जिस ही क्षेत्र विषैं आत्मा कर्मग्रहण विषैं तत्पर, तिस ही क्षेत्र विषैं जे पुद्गल ते, स्थिता: कहिये एकक्षेत्रावगाही हैं, नांही गमन करते, तिष्ठै हैं । एकैकस्मिन् प्रदेशे कहिये सर्व आत्मा के प्रदेशनि विषैं कर्म्म प्रदेशा कहिये ज्ञानावरणादिक कूं कारण ऐसे परमाणु हैं, तें अनंता कहिये अनंत हैं । सूक्ष्मग्रहण है सो ग्रहण योग्यपुद्गलनि के स्वभाव कथन अर्थि है । ग्रहण योग्य पुद्गल सूक्ष्म है, स्थूल नांही, एक क्षेत्रावगाह वचन है सो क्षेत्रांतरकी निवृत्ति के अर्थि है । एकक्षेत्र जो कर्मादान-शक्तिकरि युक्त जीव सहचरित प्रदेश ता विषैं है अवगाह जिनका, ते एक क्षेत्रावगाही कहिये । स्थित ऐसा शब्द है सो अन्य क्रिया की निवृत्ति कै अर्थि है । स्थित है गमन नांही करै है । एकैकप्रदेश ऐसा 'वीप्सा' निर्देशकरि सर्व आत्मप्रदेशनिका संग्रहकीया, ताकरि आधार निर्देश कीया । ताकरि एक प्रदेशादिकनि विषैं नांही, कर्मप्रदेश प्रवर्तैं हैं ।

तो कहां है उर्ध्व, अध, तिर्यक् सर्व आत्मप्रदेशनि विषैं व्यापिकरिस्थित है । 'कर्म्म' का ग्रहण है सो सर्व कर्मप्रकृतिनि के संग्रह अर्थि है । याकरि उपादन कारण का संग्रह कीया । प्रदेशा: याकरि पुद्गल का ग्रहण है । ताकरि आकाशादिक के प्रदेशनिकी निवृत्ति भयी। अनंतानंत यह शब्द है सो प्रमाणांता (परिमाणाना) का अभाव का अर्थि है । 'तु' शब्द है सो अनुक्त सर्वविशेषनि के संग्रह अर्थि है । ते पुद्गल, नांही संख्याते है, नांही असंख्याते है, नांही अनंते है । तो कहा है ? अभव्यनितैं अनंतगुणै हैं, सिद्धनितै अनंतवे भाग प्रमाण है । घनांगुल कै संख्यातवैं भाग अवगाहनायुक्त है । एक, दोय, तीन, च्यारि अर संख्यात समय प्रमाण है स्थिति जिनकी । पंचवर्ण-पंचरस,

क्व तर्हि ऊर्ध्वमधः [1]स्थितास्तिर्यक् च सर्वेष्वात्मप्रदेशेषु व्याप्य स्थिता इति । कर्मग्रहणं सर्वकर्मप्रकृतिसंग्रहार्थम् । अनेनोपादानहेतुसंग्रहः कृतः। प्रदेशा इति पुद्गलग्रहणं तेनाकाशादिप्रदेशनिवृत्तिः । अनन्तानन्त इति परिमाणान्तरव्यपोहार्थम् । तुशब्दः अनुक्तसर्वविशेषसंग्रहार्थः । न संख्येया, न चासंख्येयाः, नाप्यनन्तास्ते पुद्गलस्कन्धाः, किन्तु अभव्यानन्तगुणाः[2] सिद्धानन्तभागप्रमिताः[3] घनांगुलस्यासंख्येयभागावगाहिनः । एकद्वित्रिचतुः समयस्थितिकाः । पंचवर्णरसद्विगंधचतुःस्पर्शभवाः । सूक्ष्माः । अष्टविधकर्मप्रकृतियोग्या एकक्षेत्रावगाहिनः स्थिता सर्वात्मप्रदेशेषु योगवशादात्मना प्रदेशाः कर्मरूपेणात्मसात्क्रियन्ते । अयं प्रदेशबन्धः । अथवाऽऽत्मनो योगवशादष्टविधकर्महेतवोऽनन्तानन्तप्रदेशो एकैकप्रदेशे ये स्थितास्ते प्रदेशबन्ध इति । अष्टविधकर्मयोग्यपुद्गलानाम् एकैकसमयेन बन्धनमागतानां मध्ये आयुर्भाग एकः । नामगोत्रयोरन्योन्यसमोऽधिक एकतरो भागआयुर्भागाज् ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणां भागोऽन्योन्यसदृश एकतरः, नामगोत्रयोरेकतरभागाधिकः मोहस्य भाग आवरणान्तरायैकतरभागादधिकः मोहभागाद्वेदनीयभागोऽधिकः। सर्वत्र आवल्या असंख्यातभागेन भागे हृते यल्लब्धं तेनाधिक इति । एवं सप्तविधबन्धकानां षड्विधबन्धकानां य ज्ञातव्यम् । ज्ञानावरणादीनामात्मप्रदेशभाग आत्मात्मेतरप्रकृतयो यावंत्यस्तावद्भागैरभिगच्छन्ति ।।२०४।।

एवं बन्धपदार्थो व्याख्यातः संक्षेपतः, इत ऊर्ध्वमुपशमनविधिं क्षपणविधिं च प्रपंचयन्नाह—

मोहस्सावरणाणं खयेण अह अंतरायस्स य एव ।
उव्वज्जइ केवलयं पयासयं सव्वभावाणं ।।२०५।।

मोहस्यावरणयोरन्तरायस्य य क्षयेण विनाशेनैवोत्पद्यते केवलं केवलज्ञानं प्रकाशकं सर्वभावानां सर्वद्रव्यपर्यायपरिच्छेदकम् । अथशब्देन सूत्रेणैवमुपशमनविधिं तावत्प्रतिपादयामि—अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभसक्यक्त्वमिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वानीत्येताः सप्त प्रकृतीः असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तादीनां मध्ये कोऽप्येक उपशमयति । तत्राधःप्रवृत्यपूर्वनिवृत्तिकरणानि कृत्वा अनिवृत्तिकरणकालस्य संख्येयेषु भागेषु

दोयगंध, च्यारि स्पर्शननितैं है उत्पत्ति जिनकी । सूक्ष्म (ये सूक्ष्म हैं), अष्टप्रकार कर्मप्रकृति के योग्य एक क्षेत्रावगाही सर्वआत्म प्रदेशनि विषैं तिष्ठतै अैसे प्रदेशनिकूं आत्मा । योगवशतैं कर्म्मरूपकरि आपकैं वशि करै हैं । यह प्रदेशबंध है ।

अथवा आत्मा के योगवशतैं अष्टप्रकार कर्मकूं कारण अनंतानंत प्रदेश, एक-एक प्रदेश विषैं जो स्थित हैं ते प्रदेशबंध अैसे कहिये। एक-एक समयकरि बंधकूं प्राप्त भये अष्टप्रकार कर्म्मयोग जे पुद्गल तिनके मध्य आयुका भाग स्तोक है । नाम-गोत्र का परस्पर समान है। आयु के भागतैं एकतर भाग अधिक है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतरायनिका भाग है सो परस्पर सदृश हैं । एकतर जे नाम-गोत्र तिससूं एकतर भाग अधिक है । मोहकर्म का भाग आवरण (और) अंतराय के एक भागतैं अधिक है । मोहभागतैं वेदनीय का भाग अधिक हैं ।सर्वत्र आवली कै असंख्यात भागकरि, भाग दीयै जे लब्ध, ताकरि अधिक जाननां । या प्रकार सप्तविध वंधकनिका, बहुरि छह प्रकार बंधकनिका जाननां । ज्ञानावरणादिकनिकै आत्मप्रदेशनि का भाग जेति आत्मातैं इतर प्रकृति है, तितने भागनिकरि होय है ।।२०४।।

अैसे बंध पदार्थ संक्षेपतैं कह्या, याकै आगै उपशमनविधि, बहुरि क्षपणविधि है, ताहि विस्तारतैं कहैं है—

अर्थ—मोहके क्षयकरि आवरण जे ज्ञानावरण, जे दर्शनावरण तिनके बहुरि अंतराय के क्षय जो विनाश ताकरि केवलं कहिये केवलज्ञान है सो सर्वभाव जे समस्त द्रव्य-पर्याय तिनकां प्रकाशक कहिये जानने वाला उपजै है । अथवा शब्द रूप सूत्रकरि अैसे उपशमन विधि है ताहि हू प्रतिपादन करूं हूँ ।

---

१. क० ऊर्ध्वमधस्थिर्यक् सर्वेष्वात्मं । २. क० अभव्यानामनन्तगुणाः । क० सिद्धानामनन्तगुणाः ।

गतेषु विशेषघातेन हन्यमानमनन्तानुबन्धिचतुष्कं स्थितिसत्कर्मोपशमं याति, स्वस्वरूपं परित्यज्यान्यस्य प्रकृतिस्वरूपेण स्थानमनन्तानुबन्धिनामुपशमः पुनरधःप्रवृत्त्यपूर्वानिवृत्तिकरणानि कृत्वा अनिवृत्तिकरणकालस्य संख्येयेषु भागेषु गतेषु दर्शनमोहत्रिकस्योदयाभाव उपशमस्तेषामुपशान्तानामप्युत्कर्षापकर्षपरप्रकृतिसंक्रमणानामस्तित्वं यत इति । अपूर्वकरणे नैकमपि कर्मोपशाम्यति । किन्त्वपूर्वकरणः प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्ध्या वर्धमानः अन्तर्मुहूर्त्तेनैकैकस्थितिखण्डकं पातयन् संख्यातशतसहस्राणि स्थितिखण्डकानि पातयति, तावन्मात्राणि च स्थितिबन्धापसरणानि करोति । एकैकस्थितिखण्डाभ्यन्तरे संख्यातसहस्राण्यनुभागखण्डकानि पातयति प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेण्या प्रदेशनिर्जरां करोति । अप्रशस्तकर्मांशात्र बध्नाति । तेषां प्रदेशाग्रमसंख्यातगुणश्रेण्या अन्यासु प्रकृतिषु बध्यमानस्ततस्तदुपरि (?) संक्रामयति । पुनरपूर्वकरणमतिक्रम्यानिवृत्तिकरणं प्रविश्यान्तर्मुहूर्त्तमात्रमनेन विधानेन स्थित्वा द्वादशानां कषायाणां नवानां नोकषायाणामन्तरमन्तर्मुहूर्तेन करोति । अन्तरे कृते प्रथससमयादुपरि अन्तर्मुहूर्त्तं गत्वा असंख्येयगुणश्रेण्या नपुसंकवेदमुपशमयति । ततोऽन्तर्मुहर्तन तेनैव विधिना षण्णां कषायाणं पुरुषवेदं चिरन्तनसत्कर्मणा सह युगपदुपशमयति । तत ऊर्ध्वं समयोने द्वे आवल्यौ गत्वा पुंवेदनवकबन्धमुपशमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्त्तं गत्वा अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्ञकौ क्रोधौ क्रोधसंज्वलनं चिरन्तनसत्कर्मणा सह युगपदुपशमयति । ततः समयोने द्वे आवल्यौ गत्वा क्रोधसंज्वलननवक-बन्धमुपशमयति । ततोऽन्तर्मुहूर्त्तं गत्वा अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमानौ असंख्यातगुणश्रेण्या मानसंज्वलनं चिरन्तनसंत्कर्मणा सह युगपदुपशमयति । ततः समयोने द्वे आवल्यौ गत्वा मानसंज्वलननवक-बन्धमुपशमयति । ततः प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेण्या उपशमयन्नन्तर्मुहूर्त्तं गत्वा द्विप्रकारां मायां मायासंज्वलनं चिरन्तनसत्कर्मणा सह युगपदुपशमयति । ततो द्वे आवल्यौ समयोने गत्वा मायासंज्वलननवकबन्धमुपशयति । ततोऽन्तर्मुहूर्त्तं गत्वा द्विप्रकारं लोभं लोभसंज्वलनेन चिरन्तनसत्कर्मणा सह लोभवेदकाद्वा द्वितीयत्रिभागे सूक्ष्मां किट्टिकां मुक्त्वा शेषं बादरलोभं स्पर्द्धकगतं सर्वनवक-

---

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ —ये च्यारि, ५. सम्यक्त्व, ६. मिथ्यात्व, ७. सम्यक्त्वमिथ्यात्व— ये सात प्रकृति हैं, तिनहि असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्त, अप्रमत्तादिकनि के मध्य विषैं कोउ एक उपशमावै है । तहाँ अधःप्रवृत्ति, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण हैं,तिनहिकरि अनिवृत्तिकरण काल के असंख्यातें भाग गये विशेष घातकरि हन्यमान अनंतानुबंधी चतुष्करि स्थिति सत्ता कर्म उपशमकूं प्राप्त होय है । अपने स्वरूपकूं तजि अन्य के प्रति स्वरूपकरि जो अवस्थान सो अनंतानुबंधी का उपशम है बहुरि अधःप्रवृत्ति कूं अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण हैं, तिनहिकरि अनिवृत्तिकरण काल के संख्याते भाग गये दर्शनमोह का जो त्रय ताका उदयाभाव है सो उपशमता है । उपशमकूं प्राप्त भये अैसे हू तिनका उत्कर्ष, अपकर्ष, परप्रकृति सक्रमण का अस्तित्त्व है । यातैं अपूर्वकरण करि एकहू कर्म उपशम कूं प्राप्त होय है । इहां विशेष है—अपूर्वकरण हैं सो प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धताकरि वर्द्धमान अंतर्मुहूर्तकरि एक-एक स्थिति खंड है । ताहि पटकता (घात करता) संख्यात सहस्रस्थिति खंड है तिनहि पटकै है । बहुरि तावन्मात्रहूं स्थिति बंधापसरण है, तिनहि करै है । एक-एक स्थितिखंड के मध्य विषै संख्यात सहस्र अनुभागखंड है, तिनहि कहै हैं । भावार्थ—एक स्थितिखंड के घात विषैं संख्यात सहस्र अनुभाग खण्डनि का घात करै हैं । प्रति समय असंख्यात गुणश्रेणीकरि प्रदेशनि की निर्जरा है, ताहि करै हैं । प्रशस्तकर्म सातावेदनीय आदि ताहि बाधै हैं । तिनके प्रदेशाग्र असंख्यात गुणश्रेणी कर बद्धमान अन्य प्रकृतिनि विषैं संक्रमण करै हैं ।

बहुरि अपूर्वकरण है, ताहि उलंघि अनिवृत्तिकरण विषैं प्रवेशकरि अंतर्मुहूर्त मात्र इस विधानकरि तिष्ठि बारहकषायनिका नव नौकषायों का अन्तर है, ताहि करै हैं । अंतरकीये प्रथम समयतैं ऊपरि अंतर्मुहूर्त जाय असंख्यात गुणश्रेणीकरि नपुंसकवेद हैं, ताहि उपशमावै हैं। ता पीछैं अंतर्मुहूर्त जाय नपुंसकवेद का उपशम-विधि-करि स्त्रीवेद है, ताहि उपशमावै है । तापीछै अंतर्मुहूर्तकरि तिसहि विधिकरि छह

---

१. क० स्यानुंनीतेः ।

~८३

बन्धोच्छिष्टावलिकवर्ज्यम् अनिवृत्तिचरमसमयैर्निवृत्तिरुपशमयति, नपुंसकवेदमादिं कृत्वा यावल्लोभसंज्वलनम् एतेषामनिवृत्तेरुपशमकं भवति । ततोऽनन्तरसमये सूक्ष्मकिट्टिकास्वरूपं वेदलोभं वेदयन् नष्टाऽनिवृत्तिसंज्ञो सूक्ष्मसाम्परायो भवति । ततश्चात्मनश्चरमसमये लोभसंज्वलनं सूक्ष्मकिट्टिकास्वरूपं निःशेषमुपशमयति । तत उपशान्तकषायः वीतरागछद्मस्थो भवति । उदयोदीरणात्कर्षणोपकर्षणपरप्रकृतिसंक्रमणस्थित्यनुभागखण्डकघातैर्विना स्थानमपि समत्राम्नैष मोहनीयोपशमनविधिः । इति ।

अथ क्षपणाविधिं वक्ष्ये । क्षपणं नाम अष्टकर्मणां मूलोत्तरभेद इति न प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां जीवा ज्योतिः शेषे विन्यास इति (?) । अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वसम्यक्त्वाख्याः सप्तप्रकृतीरेता असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तो वा क्षपयति, किमक्रमेण नेत्याह—पूर्वमनन्तानुबन्धिचतुष्कं त्रीन् करणान् कृत्वाऽनिवृत्तिकरणचरणमसमयेऽक्रमेण क्षयपति । पश्चात्पुनरपि त्रीन् करणान् कृवा अधःप्रवृत्तिकरणापूर्वकरणौ द्वावतिक्रम्यानिवृत्तिकरणकालसंख्येयभागं गत्वा मिथ्यात्वं क्षपयति ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा सम्यङ्मिथ्यात्वं क्षपयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा सम्यक्त्वं क्षपयति । ततोऽधःप्रवृत्तिकरणं कृत्वाऽन्तर्मुहूर्तेनापूर्वकरणो भवति स एकमपि कर्म (न) क्षपयति, किन्तु समयं प्रति असंख्येयगुणस्वरूपेण प्रदेशनिर्जरां करोति, अन्तर्मुहूर्तेनैकैकस्थितिखण्डकं पातयन्नात्मनः कालाभ्यन्तरे असंख्यातसहस्राणि स्थितिखण्डकानि पातयति, तावन्मात्रामणि च

नौकषायनिका पुरुषवेद चिरंतन सत्ताकर्मकरि साथि एकै काल उपशम करैं हैं । तातैं ऊपरि समय ऊन (कम) दोय आवलीजाय पुरुषवेद का नवीनबंध है, ताहि उपशमावै है । तातै अन्तर्मुहूर्त जाय अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान है संज्ञा जिनकी अैसे क्रोध है तिनहि क्रोध संज्वलन चिरंतन सत्ताकर्मकरि सहित युगपत उपशमावै है । ताके पीछै समय ऊन दोय आवली जाय क्रोध संज्वलन का नवीनबंध है, ताहि उपशमावे है । तापीछै अंतर्मुहूर्त जाय अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान मानै हैं । तिनहि असंख्यात गुणश्रेणीकरि मान संज्वलन चिरंतन सत्कर्मकरि सहित युगपत् उपशमावै है । तापीछै समय ऊन दोय आवली जाय मान संज्वलन का नवीनबंध है, ताहि उपशमावै है । तापीछै प्रति समय असंख्यात गुणश्रेणीकरि उपशमावता अंतर्मुहूर्त मात्र प्राप्त होय ऊन दोय प्रकार माया है, ताहि माया संज्वलन चिरंतन सत्कर्मकरि साथि युगपत् उपशमावै है । तापीछै समय ऊन दोय आवली जाय, माया संज्वलन का नवीन बंध है, ताहि उपशमावै है तापीछै अन्तर्मुहूर्त जाय दोय प्रकार लोभ है, ताहि लोभ संज्वलन चिरंतन सत्कर्मकरि साथि अथवा लोभवेदकतै द्वितीय त्रिभाग विषैं सूक्ष्मकृष्टिरूप है, ताहि तजि स्पर्द्धगत सर्व वादर लोभ है, ताहि नवीन बंध उच्छिष्ट आवली वर्जित अनिवृत्ति । चरम समय विषैं निवृत्तिरूप उपसमावै है । नपुंसकवेदकूं आदिकरि लोभ संज्वलनपर्यंत इनकी अनुवृत्तितैं उपशमक होय है ।

तातैं अनन्तर समयविषैं सूक्ष्मकृष्टि स्वरूप लोभ है, ताहि वेदता, नष्ट भई है, अनिवृत्ति संज्ञा जाकै अैसा सूक्ष्मसाम्पराय हौय है। तापीछै आपके चरम समय विषैं सूक्ष्मकृष्टिरूप लोभ संज्वलन है, ताहि समस्तपनै उपशमावे है । तापीछै उपशांत भये है कषाय जाकै अैसा वीतराग छद्मस्थ होय है । उदय, उदीरणा, उत्कर्ष, अपकर्ष, परप्रकृति-संक्रमण, स्थितिअनुभागखंड घात-बिना स्थान हू सम नाम है । यह मोहनीय का उपशमनविधि है ।

क्षपणविधि है, ताहि कहूं हूँ—क्षपणनाम अष्टकर्मनिका मूल-उत्तरभेद—अैसे हैं, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग प्रदेशनिका नांही । अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त्व—ये हैं नाम जिनकै अैसी ये सात प्रकृति हैं । तिनहि असंयत सम्यग्दृष्टी संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, वा अप्रमत्तसंयत, क्षिपायै है ।

स्थितिबन्धापसरणानि करोति, तेभ्यश्च संख्यातसहस्रगुणानुभागखण्डकघातान् करोति, यत एकानुभागखण्डकोत्कीर्णकालादेकस्य स्थितिखण्डकोत्कीर्णकालः सख्यातगुण इति । एवंविधं कृत्वाऽनिवृत्तिगुणस्थानम् प्रविश्यानिवृत्तिसंख्यातभागोऽपूर्वकरणविधानेन गमयित्वाऽनिवृत्तिकालसंख्यातिभागे शेषे स्त्यानगृद्धित्रय-नरकगति-तिर्यग्गत्येकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिनरकगतितिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यातपोद्योतस्थावरसूक्ष्मसाधारणसंज्ञकाः षोडशप्रकृतीः क्षपयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभान् क्रमेण क्षपयति । स एष कर्मप्राभृतस्योपदेशः, कषायप्राभृतोपदेशः । पुनः अष्टसु कषायेषु क्षीणेषु पश्चादन्तर्मुहूर्तं गत्वा षोडशकर्माणि द्वादश वा क्षपयत्यत उपदेशौ ग्राह्यौ द्वावप्यवद्यभीरुभिरिति । ततोऽन्तर्मुहूर्त्त गत्वा चतुर्णां संज्वलनानां नवानां नोकषायाणाम् अन्तरं करोति, सोदयानामन्तर्मुहूर्तमात्रं प्रथमस्थितिं स्थापयति अनुदयानां समयोनावलिकामात्रां प्रथमस्थितिं स्थापयति । ततोऽन्तरं कृत्वाऽन्तर्मुहूर्त्तेन नपुंसकवेदं क्षपयति । ततोऽन्तर्मुहूर्त्तं गत्वा स्त्रीवेदं क्षपयति । ततोऽन्तर्मुहूर्त्तं गत्वा षण्णोकषायणां वेदं चिरन्तनसत्कर्मण सह वेदविद्द्विचरमसमये युगपत् क्षपयति । तत आवलीमात्रकालं गत्वा पुंवेदं क्षपयति, ततोऽन्तर्मुहुर्तेन क्रोधसंज्वलनं क्षपयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तेन मानसंज्वलनं क्षपयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तेन

कहा (क्या) अक्रमकरि क्षपावै है अक नांही ? अैसा प्रश्न होतै, कहै है—

प्रथम अनंतानुबंधी का चतुष्क है, ताहि तीन करणकरि अनिवृत्तिकरण के चरम समय विषैं अक्रमकरि क्षपावै है । पीछै बहुरि तीन कारण हैं, तिनहिकरि अध:प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण दोउ कौं उल्लंघि अनिवृत्तिकरण कालके संख्यात भाग जाय मिथ्यात्व है, ताहि क्षिपावै है । तापीछे अन्तर्मुहूर्त्त जाय सम्यक्त्व मिथ्यात्व है, ताहि क्षपावै है । तापीछे अन्तर्मुहूर्त्त जाय सम्यक्त्व है, ताहि क्षपावै है । तापीछै अध:प्रवृत्तिकरणकरि अन्तर्मुहूर्तकरि अपूर्वकरण होय है, सो एक हू कर्म नांही क्षपावै है । यहा विशेष है—समय समय प्रति असंख्यात गुणस्वरूपकरि प्रदेश निर्जरा है, ताहि करै है । अंतर्मुहूर्त्त करि एक-एक स्थितिखंड है, ताहि पटकता अपने कालकैं मध्य संख्यात सहस्र स्थिति खंड है, तिनहि पटकता है । बहुरि तावन्मात्र स्थिति बंधापसरण है, तिनहि करै हैं । तिनतैं असंख्यात सहस्रगुणां अनुभागखंडक घात है, तिनहि करै है । जातै एक अनुभाग खंडकोत्कीर्ण कालतैं एक का स्थिति खंडकोत्कीर्ण काल संख्यातगुण है ।

याविधिकरि अनिवृत्ति (नामक नवम) गुणस्थान है । ताहि प्रवेशकरि अनिवृत्ति संख्यात भाग है । तिनहि अपूर्वकरण विधानकरि व्यतीतकरि शेष अनिवृत्तिकाल संख्यात भागविषैं स्त्यानगृद्धित्रय (निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला) नरकगति, तिरचंजगति, एकैंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रियजाति, नरकगति, प्रायोग्यानुपूर्व, तिर्य्यगति, प्रायोग्यानुपूर्व, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण—ये हैं नाम जिनके, अैसे यह सोलह प्रकृति हैं, तिनहि क्षपावै है । तापीछै अन्तर्मुहूर्त जाय अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ है, तिनहि अनुक्रमकरि क्षपावै है । सो यह "कर्मप्राभृत" का उपदेश है । बहुरि कषाय प्राभृतका उपदेश अष्टकषाय क्षीणं हौतै पीछै अन्तर्मुहूर्त जाय सोलहकर्म वा बारह कर्म क्षपावै है । पापतैं भय युक्त अैसे पुरुषनिनै ये दोउ ही उपदेश ग्रहण करने जोग्य है ।

तापीछैं अंतर्मुहूर्त्त जाय च्यारि, संज्वलननिका नव नोकषायनिका अंतर है, ताहि करै हैं । उदयसंयुक्तनिकी अन्तर्मुहूर्त्त मात्र प्रथम स्थिति स्थापै है । उदय रहितनिकी समय ऊन आवलिका नाम मात्र प्रथमस्थिति स्थापै है । तापीछै अंतकरणकरि अंतर्मुहूर्त्तकरि नपुंसकवेद है, ताहि क्षपावै है । तापीछै अंतर्मुहूर्त्त जाय स्त्रीवेद है, ताहि क्षपावै है तापीछै अन्तर्मुहूर्त्त जाय छह नोकषाय, पुरुषवेद चिरंतन सत्कर्मकरि सहित है, ताहि द्विचरम समय विषै युगपत् क्षपावै है । तापीछैं आवलीमात्र काल जाय पुरुषवेद है, ताहि क्षपावे है । तापीछैं अंतर्मुहूर्त्तकरि क्रोध संज्वलन है, ताहि क्षपावै है । तापीछै अंतर्मुहूर्त्तकरि मानसंज्वलन है, ताहि क्षपावै है । तापीछै अंतर्मुहूर्त्त जाय सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान

मायासंज्वलनं क्षपयति । ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानं प्रतिपद्यते । एतेषु सोऽपि सूक्ष्मसाम्परायमात्मनश्चरमसमये किट्टिकागतं सर्वं लोभसंज्वलनं क्षपयति । ततोऽनन्तरं क्षीणकषायो भवति । सोऽप्यन्तर्मुहूर्तं गमयित्वा आत्मनो द्विचरमसमये निद्राप्रचलासंज्ञके द्वे प्रकृती क्षपयति । ततोऽनन्तरं चरमसमये पंचज्ञानावरणचतुर्दर्शनावरणपंचान्तरायाख्याश्चतुर्दश प्रकृतीः क्षपयति । एतेषु त्रिषष्टिकर्मसु क्षीणेसु सयोगिजिनो भवति ।।२०५।।

सयोगिकेवली भट्टारको न किंचिदपि कर्म क्षपयति ततः । क्रमेण विहृत्य योगनिरोधं कृत्वा अयोगिकेवली भवति स यत्कर्म क्षपयति तन्निरूपयन्नाह—

तत्तोरालियदेहो णामा गोदं च केवली युगवं ।
आऊण वेदणीयं चदुहिं खिविइत्तु णीरओ होइ ।।२०६।।

तत ऊर्ध्वं अयोगिकेवली औदारिशरीरं सनिःश्वास एवायं नामगोत्रे कर्मणी आयुर्वेदनीयं च युगपत् क्षपयित्वा नीरजाः सिद्धो भवति । विशेषमाह— अयोगिकेवली आत्मकालद्विचरमसमयेऽनुदयवेदनीय- देवगतिपंचशरीरपंचसंघातपंचशरीरबन्धनषट्संस्थानत्र्यंगोपांगषट्संहननपंचवर्णद्विगन्धपंचरसाष्टस्पर्शदेवगति- प्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासद्विविहायोगत्यपर्याप्तस्थिरास्थिरशुभाशुभ- सुभगदुर्भगसुस्वरदुःस्वरानादेयायशःकीर्ति- निमान- नीचैर्गोत्राणि एता द्वासप्ततिप्रकृतीः क्षपयति । ततोनन्तरं सोदयवेदयनीयमनुष्यायुर्मनुष्यगतिपंचेन्द्रियजातिमनुष्यगतिप्रायोग्यामुनुपूर्व्यत्रसबादरपर्याप्तोच्चैर्गोत्रप्रत्येकतीर्थंकरनामादेययशः कीर्तिसंज्ञकास्त्रयोदश प्रकृतीश्चरमसमये क्षपयति । ततो द्रव्यरूपमौदारिकशरीरं त्यक्त्वा नीरजा निर्मलः सिद्धोनिर्लेपः सर्वद्वन्द्वरहितोऽनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्य-

---

है, ताहि प्राप्त होय है । सोऊ सूक्ष्म सांपराय अपने चरम समय विषैं किट्टिकागत सर्व लोभ संज्वलन है, ताहि क्षपावै है । ताकै अनंतर क्षीणकषाय होय है, सो हू अन्तर्मुहूर्त व्यतीतकरि अपनैं द्विचरम समय विषैं निद्रा, प्रचला नाम दोय प्रकृति हैं, तिनहि क्षपायै है । ताकै अनंतर चरमसमय विषैं पंच ज्ञानावरण, च्यारि दर्शनावरण, पंचअंतराय— ये हैं नाम जिनके ऐसे चौदह प्रकृति है । तिनहि छपावै है । ये त्रेसठि कर्म क्षीण होतै सयोगीजिन होय हैं ।।२०५।।

सयोगकेवली भट्टारक कछू हू कर्म नांही क्षपावै है । तापीछै क्रमकरि विहारकरि योगनिरोध है, ताहि करि अयोगिकेवली होय है। सो जिसकर्म कूं क्षिपावै है, ताहि निरूपण करते कहै हैं—

अर्थ-ताकै आगै अयोगिकेवली है सो औदारिक शरीर निश्वास का उपचय सहित नाम, गोत्रकर्म, आयु, बहुरि वेदनीय—इन च्यारि अघातिया कर्मनिकूं क्षपाय नीरजाःभवति कहिये सिद्ध होय है ।

याका विशेष है, ताहि कहै है—अयोगिकेवली है, सो अपने काल के द्विचरम समय विषैं उदयरहित वेदनीय, देवगति, पंचशरीर, पंच शरीर संघात, पंच शरीर बंधन, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पंच वर्ण, दोय गंध, पांच रस, अष्ट स्पर्श, देवगति प्रायोग्यानुपूर्व, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दोय विहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अपयशःकीर्ति, निमान (निर्माण), नीचगोत्र—ये बहत्तर प्रकृति हैं, तिनहि क्षपावै है । ताके अनन्तर सोदय वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्य, त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग, तीर्थंकरनाम, उच्चैगौत्र, आदेय, यशःकीर्ति—है, संज्ञा जिनकी, अैसे तेरह प्रकृति तिनहि चरम समय विषैं क्षेपै है, तापीछै द्रव्यरूप औदारिक शरीर है, ताहि त्यजकरि कर्मरजरहित निर्मल, सिद्ध,

समन्वितोऽक्षयो युगपत्सर्वद्रव्यपर्यायावभासकोऽनन्तगुणाधारः परमात्मा भवतीति ।।२०६।।*

इतिश्रीमदाचार्यवर्यवट्टकेरिप्रणीतमूलाचारे श्रीवसुनन्दिप्रणीतटीकासहिते द्वादशोऽधिकारः ।।१२।।

स्रग्धरावृत्तम्

वृत्तिः सर्वार्थसिद्धिः सकलगुणनिधिः सूक्ष्मभावानुवृत्ति-राचारस्यात्तनीतेः[1] परमजिनपते ख्यातनिर्देशवृत्तेः[2] ।
शुद्धैर्वाक्यैः सुसिद्धा कलिमलमथनी कार्यसिद्धिर्मुनीनां, स्थेयाज्जैनेन्द्रमार्गे चिरतरमवनौ वासुनन्दी शुभा वः ।।

इति[3] मूलाचारविवृतौ द्वादशोऽध्यायः । इति कुन्दकुन्दाचार्यप्रणीतमूलाचाराख्यविवृतिः ।
कृतिरियं वसुनन्दिनः श्रीश्रमणस्य ।

निर्लेप, सर्व द्वन्दरहित, अनंतज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य सहित अक्षय, युगपत् सर्वद्रव्य पर्याय का प्रकाशक, अनंत गुणनिका आधार ऐसा परमात्मा होय है ।।२०६।।

अर्थ–वसुनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीकरि रची टीका है, सो चिरकाल पर्यंत पृथिवी विषै तिष्ठहु । कैसी है टीका ? सर्व अर्थनिकी है सिद्धि जातैं, बहुरि कैसी है समस्त गुणनिकी निधि, बहुरि ग्रहणकरी है नीति जानै, ऐसा जो आचार कहिये मुनिनिका आचरण ताके सूक्ष्मभावनिकी है अनुवृत्ति कहिये प्रवृत्ति जानैं, बहुरि विख्यात है अठारह दोष रहित प्रवृत्ति जाकी, ऐसा जो 'जिनपति' कहिये जिनेश्वर देवता के निर्दोष वचनकरि प्रसिद्ध, बहुरि पापरूप मल की दूर करणहारी बहुरि सुंदर है ।

ऐसे आचार्य श्री वट्टकेर स्वामि विरचित मूलाचार नामा प्राकृतग्रंथ ताकी वसुनंदि सिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित आचारवृत्ति नाम संस्कृत टीका ताकै अनुसार यह देशभाषामयवचनिका, ताकै विषैं पर्याप्ति का है वर्णन जामै ऐसा "बारहवां अधिकार समाप्तभया" ।

---

* फलटन से प्रकाशित मूलाचार में अन्त में दो गाथाएँ और हैं—

एसो मे उवदेसो संखेवेण जिणक्खादो ।
सम्मं भावेदव्वो दायव्वो सव्वजीवाणं ।।

अर्थ–जिनेद्रदेव द्वारा कथित यह उपदेश मैने संक्षेप में कहा है । हे शिष्यगण ! तुम लोग मन-वचन-काय की एकाग्रतापूर्वक इस उपदेश की भावना करो और इसे सभी जीवों को प्रदान करो ।

दइदूण सव्वजीवे दमिदूण या इंदियाणि तह पंच ।
अट्ठविहकम्मरहिया णिव्वाणमणुत्तरं जाथ ।।

अर्थ–हे मुनिगण ! तुम सभी जीवों पर दया करके तथा स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियों का दमन करके, आठ प्रकार के कर्मों से रहित होकर सर्वोत्कृष्ट निर्वाण पद प्राप्त करो ।

इति श्री कुन्दकुन्दाचार्यविरचिते मूलाचारे एकादशः पर्याप्त्यधिकारः ।

१. अ० ब० क०स्यानुनीते । २. ब० निर्दोषवृत्तेः । ३. द० इति मूलाचारवृत्तौ वसुनन्दिविरचितायां द्वादश परिच्छेदः समाप्तः ।

अैसे मूलाचार नाम प्राकृतग्रंथ की आचारवृत्ति नाम संस्कृत टीका कै अनुसार देशभाषामय वचनिका यह संक्षेप अर्थ मात्र लिखी है । संस्कृत टीका में न्याय-व्याकरणादि करि पुष्ट शब्द हैं, तिनका अर्थ गंभीर है । गुरु संप्रदायकरि स्पष्ट जानै जाय है । कालदोषतैं इन ग्रंथनि का गुरु-संप्रदाय का विच्छेद होय गया । तातै जेता वण्या (बना) जेता अर्थ अपनी बुद्धि कै अनुसार वा वर्तमान बहुश्रुतीसू निरधार करि लिख्या है । तथापि आयु, बुद्धि, बल, स्थिति ताकी हीनताकरि अल्प सा प्रयोजन मात्र जाननां । ताकूं वाचिकरि भव्यजीव यथार्थ समझियो। कछु अर्थ विषैं हीनाधिक होय तहां बुद्धिवान, विवेकी संस्कृत टीका कूं देखि-समझि अर शुद्ध करियौ, जिनमत स्याद्वादरूप है, सो जे जिनमत की आज्ञा मानै हैं, तिनके विपरीत श्रद्धान न होय है । काहू अर्थ का अन्यथा समझना भी होय, तो विशेष बुद्धिमान का निमित्त मिले, यथार्थ होय है । जिनमत के श्रद्धानी हठग्राही नहीं होय हैं—अैसा जाननां ।

अब अंतमंगल कैं अर्थि अर्हंतादिक कूं नमस्कार करियै है—

छप्पय– **मंगल श्रीअरहंत दुरिततम-दलन भानुवर । मंगल सिद्धस्वरूप दुःखतप-हरन-शीतकर।।**
मंगल सूरिप्रधान शुद्ध आचरन विराजै । मंगल श्री उवझाय देखि मिथ्यामति लाजै ।।
मंगल साधु अगाधगुन मंगल जिनभाषित धरम । सुमरन-स्तुति-वंदन करत, देहु देहु मम पद परम ।।१।।

दोहा– **जा कारन इस ग्रंथ की, देश वचनिका रूप । भाषा की रचना भई, जामै अर्थ अनूप ।।२।।**
बिनकारणकारि जन ही सो कहिये अब मित्त । साधरमी जिनवांचियो जिनका हृदय पवित्त ।।३।।

चौपाई– **देश ढुढाहार जैपुर नाम, नगरबसै अतिसुखको धाम । धीर-वीर-गंभीर-उदार, नृप जयसिंह सुगुण आधार ।।४।।**
राजकरै सबकौं सुखदाय, प्रजा रही अतिसुख मैं छाय । तिनकैं अमरचंद दीवाण[1] जिनधरमी मरमी गुणवान ।।५।।
ते[2] श्रुतिरुचि हिरदै बहुधरै, पढत-पढावत उद्यम करैं । बडी सहैली मैं अभिराम, जाति छावडा जयचंद नाम ।।६।।
तिनकी मति निरपक्ष विशाल, जिनमत ग्रंथ लखैं गुणमात्र । विषयभोगसूं रहै उदास, जिन आगम को करै अभ्यास ।।७।।

दोहा– **न्याय-छंद-व्याकरण अरु अलंकार साहित्य । मतकूं नीकैं जानिकै कहैं वैन जै सत्य ।।८।।**
न्याय अध्यातम ग्रंथ की कथनी करी रसाल । टीका भाषा हू करी जामैं समुझै वाल ।।९।।
भक्ति ज्ञानवैराग्य श्रुत अरु बहुगुन जे सार । तिनके[3] कौलौं बरणिये ग्रंथ होय विस्तार ।।१०।।
तिनसम तिनकै सुत-भये, बहुग्यानी नंदलाल । गाय-वत्स जिम प्रेमधरि, बहुत पढाए बाल ।।११।।
तिनसौं निजपर[4] हेत लखि कही दीवान प्रवीण । कालदोषतैं नरनि की होत बुद्धि निति खीण ।।१२।।
तीनूं ही अनुजोग की भाषा है सुखकार । तातैं सबही अलपमति समुझै अरथ अपार ।।१३।।
श्रावक के आचार के भाषाग्रंथ सुसार । बुद्धिवंत जिनके[5] रचे ते बरतै निरधार ।।१४।।
साधुतणैं आचारकौ भाषाग्रंथ न कोय । तातैं मूलाचार की भाषा जो अव होय ।।१५।।
तो सबही वाचै पढै समुझैं मुनि आचार । परम दिगंबर रूप कौं जानैं सकल विचार ।।१६।।

१. अ० प्रति 'द्धीमांन' । २. अ० प्रति-जे । ३. अ० प्रति-जिनकै । ४. अ० प्रति-तिनसैं निजपद । ५. अ० जनके ।

तव उद्यम भाषातणैं करण लगे नंदलाल । मन्नालाल अर उदयचंद माणिकचंदरु जु वाल ।।१७।।
नंदलाल तिनसौं कही भाषा लिखो वनाय । कहौं अरथ टीका सहित भिन्न-भिन्न समुझाय।।१८।।
चौपाई–पूरन षट् अधिकार कराय, पंदरह गाथा अरथ लिखाय । सोलह अधिक पांच सै सही, सब गाथा यह संख्या लही ।।१९।।
दोहा– आयुष पूरन करि गये ते परलोक सुजान । विरह वचनिका मैं भयो यह कलिकाल महान ।।२०।।
सब साधरमी लोक कै भयो दु:ख भरपूर । अथिर लख्यौ संसार जब भयो शोक तब दूर ।।२१।।
भाषा मूलाचार की पूरन किहिं विधि[1] होय । शल्य बसै सबकै हृदय कारण वण्यो न कोय।।२२।।
हंसराज भूपाल के वासी कारन पाय । आये जयपुर नगरमें तिनकूं धरम सुहाय ।।२३।।
जाति निगोत्या जास की, ऋषभदास तसुनाम । शोभाचंद सुत देव गुरु श्रुत रुचि कों शुभधाम ।।२४।।
जयचंद अर नंदलाल की संगति करी विशेष । तिनसूं श्रुत धारण करे तजि मिथ्यामत वेष ।।२५।।
चौपाई– संघही अमरचंद दीवान, ऋषभदास पुनि दूजो जानि । तिनसों हंसराज निति कहैं, ग्रंथ वचनिका पूरन चहैं ।।२६।।
तिनकै लागि रही अधिकाय रिषभदास तव कियो उपाय । श्री दीवानसूं अैसैं कही मुनि ढिग माणिकचंद है सही ।।२७।।
अर्थ लिखन कों जो मन धरैं, ग्रंथ यहै हम पूरन करैं । सोधन करै सु मन्नालाल तिनकी मति श्रुत माहि विसाल।।२८।।
तब दीवानजी मन हरषाय तिन दोऊ सूं कही बुलाय । ऋषभदास कैसा मिल होय पूरन ग्रंथ करो तुम जोय ।।२९।।
दोहा– मंदमती हम पंगु ज्यौं, ग्रंथ सुमेर समान । सो पूरन कैसैं करैं उपज्यौं सोच अमान ।।३०।।
जिनवानी महिमा सुनी, जानी अगम अपार । समरण ताको दिढ धर्‍यौ करि चित कों अविकार ।।३१।।
जा प्रसादतैं मूकजन बोलै वचन रसाल । वधिर सुनैं आंधे लखैं है प्रवीण अतिबाल।।३२।।
वानी समरण पोत चढि श्रुत समुद्र के पार । हम उतरे बिन कष्ट ही वानी जग मैं सार ।।३३।।
वाणीमाता देवता, वाणी सुख की खांनि । वानी दानी हैं बड़ी, बानी तैं भव हानि ।।३४।।
प्राकृत, संस्कृत ही पढै, जे पंडित मतिमान । मंदमती कै हेत यह, भाषाग्रंथ निदान ।।३५।।
सज्जन पंडित जे बडे, तिनसौं विनती एह । जहां अर्थ नीकैं नहीं, तहां शुद्ध करि लेह ।।३६।।
बालक हमकूं जानियो, जे श्रुत बडे सुजान । हास्य त्यागिकरि सोधियो, धरम प्रीति मन आन ।।३७।।
देश वचनिका रूप यह, भाषा जो हम कीन । मान वानि कौं त्यागि कैं, धरम काज चित दीन ।।३८।।
लिखत-लिखावत श्रुत विषैं, लागै दिढ उपयोग । अशुभ करम तासों झरै, शुभ मन-वच-तन योग ।।३९।।
पढत-पढावत वांचतै, सुमरत अघतम नास । भविजन शुभ संचय लहै, पावैं बुद्धिप्रकास ।।४०।।
पढै-पढ़ावै जे सुणै, वाचैं मन हरषाय । देव-धरम गुरु भारती, तिनकी करहु सहाय ।।४१।

१. अ० प्रति-किह विध ।

सवैया– मूलाचार मूलग्रंथ प्राकृत सुभाषा मय रच्यौ, वट्टकेर स्वामी साधु सुखकार है,
ताकी वृत्ति वसुनंदि सिद्धान्तचक्रवरती रची देवभाषामय अर्थ बहुसार है ।
संवत् अठारहसै अठ्यासी मास कातिग मैं, स्वेत पक्ष सप्तमी सु तिथि शुक्रवार है,
टीका देशभाषामय प्रारंभी सु नंदलाल पूरनकरी ऋषभदास निरधार है ।।४२।।

इतिश्री वट्टकेराचार्य विरचित मूलाचार प्राकृतग्रंथ, वसुनंदि सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत आचारवृत्ति नाम संस्कृत टीका कैं अनुसार यह संक्षेप भावार्थमात्र देशभाषामय वचनिका समाप्ता ।[१]

१. 'अ' (तिजारा) प्रति में यह विवरण अतिरिक्त है—१. मूलगुणाधिकार, २. प्रत्याख्यानसंस्तरस्तव अधिकार, ३. संक्षेप प्रत्याख्यान अ०, ४. समाचार अ०, ५. पंचाचार अ०, ६. पिंडशुद्धि अ०, ७. षडावश्यकनाम अ०, ८. द्वादशानुपेक्षा अ०, ९. अनगारभावना नाम अ०, १०. समयसार अ०, ११. शीलगुणस्तार अ०, १२. पर्याप्तिनाम अ० । (इन सबमें) सब गाथा जोड़ १२४३।।
लिखतम् रामवकस पंडित सेशशाई के । लिखायतम् महाराम के पुत्र रामवकस वलिराम, मंदिर जी मैं बिराजमान करवे कूं मित्त आसोद वदी ६ सं० १९२१। यह विवरग़ ब० (अजमेर) प्रति में नहीं है ।

परिशिष्ट १

[मूलाचार संस्कृत आचारवृत्ति सहित की दि० जैन सरस्वती भण्डार, धर्मपुरा, दिल्ली की मुद्रित प्रति के अन्त में ७० श्लोकों की एक प्रशस्ति भी मुद्रित है जो श्रुतपंचमी व्रत के उद्यापन के समय मेधावी पण्डित द्वारा रची गयी थी । काव्य-रचना सुन्दर है । यह प्रशस्ति वि० संवत् १५१६ में निर्मित हुई थी ।][1]

अथ प्रशस्ति-पाठः

प्रणमामि महावीरं सिद्धं शुद्धं जिनेश्वरम् । यस्य ज्ञानाम्बुधौ भाति जगद्विन्दूपमं स्थितम् ।।१।।
कृतात्मनो जना यत्र कर्म प्रक्षिप्य हेलया । रमन्ते मुक्तिलक्ष्मी तज्जैनं जयति शासनम् ।।२।।
जयन्तु गौतमस्वामिप्रमुखा गणनायकाः । सूरयो जिनचन्द्रान्ताः श्रीमन्तः क्रमदेशकाः ।।३।।
वर्षे षडेकपंचैक (१५१६) पूरणे विक्रमाद्गतेः । शुक्ले भाद्रपदे मासे नवम्यां गुरुवासरे ।।४।।
श्रीमद्वट्टेरकाचार्यकृतसूत्रस्य सद्विधेः । मूलाचारस्य सद्वृत्तेर्दातुर्नामावलीं ब्रुवे ।।५।।

अथ-

श्रीजम्बूपपदे द्वीपे क्षेत्रे भरतसंज्ञके । कुरुजांगलदेशोऽस्ति यो देशः सुखसम्पदाम् ।।६।।
तत्रास्ति हस्तिना नाम्ना नगरी मागरीयसी । शान्तिकुंथ्वरतीर्थेशा यत्रासन्निन्द्रवंदिताः ।।७।।

जिनके ज्ञान सागर में स्थित जगत् बिन्दु के समान सुशोभित होता है उन सिद्ध, **शुद्ध महावीर** जिनेन्द्र को मैं प्रमाण करता हूँ।।१।। जिसमें कुशल मनुष्य—आत्मज्ञान से युक्त जन—अनायास ही कर्मक्षय कर मुक्तिलक्ष्मी के साथ क्रीडा करते हैं वह **जैन शासन** जयवन्त प्रवर्तता है—सर्वोत्कृष्ट है ।।२।। **गौतम** स्वामी आदि गणधर और कालक्रम से देशना करनेवाले **जिनचन्द्र** पर्यन्त के श्रीमान् आचार्य जयवन्त प्रवर्तें ।।३।। विक्रम से १५१६ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भाद्र मास शुक्ल पक्ष नवमी तिथि गुरुवार के दिन, मुनियों के आचार का सम्यक् प्रकार से निरूपण करनेवाले, तथा समीचीन आचार्यवृत्ति—वसुनन्दि आचार्य विरचित संस्कृत टीका से सहित, श्रीमान् वट्टेरक (वट्टकेर) आचार्य रचित गाथा-सूत्रों से सहित मूलाचार की प्रति का दान करनेवाले—दाता की नामावली कहता हूँ ।।४-५।।

अथानन्तर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सुखदायक सम्पदाओं का निवासभूत जो कुरुजांगल नाम का देश है उसमें लक्ष्मी से श्रेष्ठ **हस्तिनापुर** नाम की वह नगरी है जिसमें इन्द्रों के द्वारा वन्दित **शान्ति, कुन्थु और अरनाथ** तीर्थंकर हुए थे ।।६-७।। उस हस्तिनापुर के

---

१. मूलाचार (उत्तरार्ध) परिशिष्ट-१ टीकानुवाद : आर्यिकारत्न ज्ञानमती माताजीसे उद्धृत, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, नईदिल्ली, प्रकाशन वर्ष १९८६।

विद्यते तत्समीपस्था श्रीमती योगिनीपुरी । यां पाति पातिसाहिश्रीर्बहलोलाभिधो नृपः ।।८।।
तस्याः प्रत्यग्दिशि ख्यातं श्रीहिसारपिरोजकम् । नगरं नगरंभादिवल्लीराजिविराजितम् ।।९।।
तत्र राज्यं करोत्येष श्रीमान् कुतबखानकः । तथा हैवतिखानश्च दाता भोक्ता प्रतापवान् ।।१०।।
अथ श्रीमूलसंघेऽस्मिन्नन्दिसंघेऽनघेऽजनि । बलात्कारगणस्तत्र गच्छः सारस्वतस्त्वभूत् ।।११।।
तत्राजनि प्रभाचन्द्रः सूरिचन्द्रो जितांगजः । दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यसमन्वितः ।।१२।।
श्रीमान् बभूव मार्तण्डस्तत्पट्टोदयभूधरे । पद्मनन्दी बुधानन्दी तमश्छेदी मुनिप्रभुः ।।१३।।
तत्पट्टाम्बुधिसच्चन्द्रः शुभचन्द्रः सतां वरः । पंचाक्षवनदावाग्निः कषायक्ष्माधराशनिः ।।१४।।
तदीयपट्टाम्बरभानुमाली क्षमादिनानागुणरत्नशाली । भट्टारकश्रीजिनचन्द्रनामा सैद्धान्तिकानां भुवि योऽस्ति सीमा ।।१५।।
स्याद्वादामृतपानतृप्तमनसो यस्यातनोत् सर्वतः कीर्तिर्भूमितले शशांकधवला सज्ज्ञानदानात् सतः ।
चार्वाकादिमतप्रवादितिमिरोष्णांशोर्मुनीन्द्रप्रभोः सूरिश्रीजिनचन्द्रकस्य जयतात् संघो हि तस्यानघः ।।१६।।
तच्छिष्या बहुशास्त्रज्ञा हेयादेयविचारकाः । शमसंयमसम्पूर्णा मूलोत्तरगुणान्विताः ।।१७।।
जयकीर्तिश्चारुकीर्तिर्जयनन्दी मुनीश्वरः । भीमसेनादयोऽन्ये च दशधर्मधरा वराः ।।१८।। युग्मं ।।

समीप शोभा सम्पन्न योगिनीपुरी नाम की वह नगरी है जिसकी रक्षा **बहलोल** नाम का बादशाह करता है ।।८।। उस **योगिनीपुरी** की पश्चिम दिशा में **हिसार पिरोजक** नाम का प्रसिद्ध नगर है जो केले आदि के वृक्षों तथा लताओं के समूह से सुशोभित है ।।९।। वहाँ श्रीमान् **कुतबखान** तथा दानी, योगी एवं प्रतापी **हैवतिखान** राज्य करता है ।।१०।।

तदनन्तर इस मूलसंघ और निष्कलंक नन्दिसंघ में बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ हुआ ।।११।। उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य से सहित कामविजयी **प्रभाचन्द्र** नाम के आचार्य हुए ।।१२।। उनके पट्टरूपी उदयाचल पर विद्वज्जनों को हर्षित करनेवाले तथा अज्ञानान्धकार को नष्ट करनेवाले श्रीमान् **पद्मनन्दी** नामक मुनिराज हुए ।।१३।। उनके पट्टरूपी समुद्र को उल्लसित करने के लिए चन्द्रमा स्वरूप वह **शुभचन्द्र** हुए जो सज्जनों में श्रेष्ठ, पंचेन्द्रिय रूपी वन को भस्म करने के लिए दावानल और कषाय रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए वज्रस्वरूप थे ।।१४।। उनके पट्टरूपी आकाश पर सूर्य स्वरूप, तथा क्षमा आदि अनेक गुण-रूपी रत्नों से शोभायमान **श्री जिनचन्द्र** नामक भट्टारक हुए, जो पृथ्वी में सिद्धान्तज्ञ मनुष्यों की मानो सीमा ही थे अर्थात् सिद्धान्त के श्रेष्ठतम ज्ञाता थे ।।१५।। स्याद्वाद रूपी अमृत के पान से जिनका मन सन्तुष्ट था, जो चार्वाक आदि मतों के प्रवादों मनुष्य रूप अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य थे तथा मुनिराजों के प्रभु थे, ऐसे सत्पुरुष, जिन, **जिनचन्द्र भट्टारक** की सम्यग्ज्ञान के दान से उत्पन्न चन्द्रोज्जवल कीर्ति पृथ्वीतल पर फैल रही थी, उन **आचार्य जिनचन्द्र भट्टारक का** निष्कलंक संघ जतवन्त प्रवर्ते ।।१६।। उनके **जयकीर्ति, चारुकीर्ति,** मुनिराज **जयनन्दी** तथा **भीमसेन** आदि अन्य अनेक शिष्य थे, जो अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे, हेय-उपादेय का विचार करने वाले थे, शान्ति तथा संयम से परिपूर्ण थे, मूल एवं उत्तरगुणों से सहित थे और दशधर्मों के उत्कृष्ट धारक थे ।।१७-१८।। उनके शिष्यों में कुछ देशव्रत के धारक भी थे, जैसे

अस्ति देशव्रताधारी ब्रह्मचारी गणाग्रणीः । नरसिंहोऽभिधानेन नानाग्रन्थार्थपारगः ।।१९।।
तथा भूरिगुणोपेतो भूरानामा महत्तमः । श्रीमानश्वपतिश्चान्यः सुमतिर्गुरुभक्तिकृत् ।।२०।।
अन्यो नेमाभिधानोऽस्ति नेमिर्द्धर्मरथस्य यः । परस्तीकमसंज्ञश्च ज्ञातयज्ञोऽस्तमन्मथः ।।२१।।
भवांगभोगनिर्विण्णस्तिहुणाख्योऽपरो मतः । सम्यक्त्वादिगुणोपेतः कषायदववारिदः ।।२२।।
ढाकाख्यो ब्रह्मचार्यस्ति संयमादिगुणालयः । सर्वे ते जिनचन्द्रस्य सूरेः शिष्या जयन्त्विह ।।२३।।
श्रीमान् पंडितदेवोऽस्ति दाक्षिणात्यो द्विजोत्तमः । यो योग्यः सूरिमंत्राय वैयाकरणतार्किकः ।।२४।।
अग्रोतवंशजः साधुर्लवदेवाभिधानकः । तत्सुतो धरणः संज्ञा तद्भार्या भीषुही मता ।।२५।।
तत्पुत्रो जिनचन्द्रस्य पादपंकजषट्पदः । मीहाख्यः पण्डितस्त्वस्ति श्रावकव्रतभावकः ।।२६।।
तदन्वयेऽथ खंडेलवंशे श्रेष्ठीयगोत्रके । पद्मावत्याः समाम्नाये यक्ष्याः पार्श्वजिनेशिनः ।।२७।।
साधुः श्रीमोहणंख्योऽभूत् संघभारधुरंधरः । तत्पुत्रो रावणो नाम पंचाणुव्रतपालकः ।।२८।।
तस्य पुत्रौ समुत्पन्नौ पार्श्वचोषाभिधानकौ । कल्पवृक्षसमौ दाने जिनपादाब्जषट्पदौ ।।२९।।
साधोः पार्श्वस्य भार्याऽभूदाद्या पद्मिनिसंज्ञिका । पद्मनाभस्य पद्मेव सती पद्मानना मता ।।३०।।
सूहोनाम्नी द्वितीयाभूद्या सौभाग्येन पार्वती । रतिं रूपेण शीलेन सीतां जितवती सती ।।३१।।

अपने गण में प्रमुख तथा नाना ग्रन्थों के अर्थ के पारगामी **नरसिंह**, बहुत भारी गुणों से सहित, श्रेष्ठतम **भूरा**, श्रीमान् **अश्वपति** गुरुभक्त **सुमति**, धर्मरूपी रथ के नेमि स्वरूप **नेम**, यज्ञ के ज्ञाता मदनविजयी **तीकम** (टीकम), संसार, शरीर और भोगों से विरक्त **तिहुण**, सम्यक्त्व आदि गुणों से सहित एवं कषाय रूप दावानल को शान्त करने के लिए मेघ, तथा संयमादि गुणों के घर ब्रह्मचारी **ढाका** । **जिनचन्द्र** आचार्य के ये सब शिष्य यहाँ जयवन्त रहें ।।१९-२३।। श्रीमान् **पण्डित देव** दाक्षिणात्य उत्तम ब्राह्मण थे, जो सूरिमन्त्र के लिए योग्य थे । तथा व्याकरण और तर्कशास्त्र के ज्ञाता थे ।।२४।। अग्रोतवंश में उत्पन्न **लवदेव** नाम के एक सज्जन थे । उनके **धरण** नाम का पुत्र था तथा धरण की स्त्री का नाम **भीषुही** था ।।२५।। उनके **मीह** नाम का पण्डित तथा श्रावक के व्रतों को धारण करने वाला पुत्र हुआ । यह **मीह**, **जिनचन्द्र** आचार्य के चरण कमलों का भ्रमर था ।।२६।। उसके खण्डेलवाल वंश, श्रेष्ठी गोत्र तथा पार्श्वनाथ भगवान् की यक्षी पद्मावती की आम्नाय में संघ का भारधारण करनेवाला **साहु मोहन** नाम का पुत्र हुआ । उसके पाँच अणुव्रतों का पालन करनेवाला एक **रावण** नाम का पुत्र हुआ ।।२७-२८।। रावण के **पार्श्व** और **चोषा** नामक दो पुत्र हुए, जो दान देने में कल्पवृक्ष के समान थे और जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलों के भ्रमर थे अर्थात् जिनभक्त थे ।।२९।। **साहु पार्श्व** की प्रथम पत्नी का नाम **पद्मिनी** था । यह कमलमुखी पद्मिनी, विष्णु की पत्नी—लक्ष्मी के समान सती थी ।।३०।। **साहु पार्श्व** की द्वितीय पत्नी **सूहो** नाम की थी । वह सौभाग्य से पार्वती थी । रूप

सा, धन्याः सन्ति पद्मिन्यास्त्रयः पुत्रा हितान्वहाः । रूपवन्तः कलावन्तो दयावन्तः प्रियंवदाः ।।३२।।
तत्राद्यः साधुभीमाख्यो निजवंशविभूषणः । उपार्जयति वित्तं यः पात्रदानाय केवलम् ।।३३।।
रुक्मिणी नामनी तस्य गेहिनी शीलशालिनी । स्ववाचा कोकिला जिग्ये कान्त्या भा सवितुर्यया ।।३४।।
चत्वारः सन्ति तत्पुत्रास्तोल्हातेजाभिधानकौ । भोजाषिउराजनामानौ प्रफुल्लकमलाननाः ।।३५।।
तोल्हाख्यस्य मता भार्या तोल्हश्रीः श्रीनिवासिनी । साढाभिधोऽस्ति तत्पुत्रो दीर्घायुः स भवेदिह ।।३६।।
पत्नी तेजाभिधानस्य तेजश्रीर्लज्जयान्विता । भोजाख्यस्य तथा भार्या भोजश्रीर्भक्तिकारिणी ।।३७।।
पार्श्वसाधोर्द्वितीयोऽस्ति खेतानामा तनूद्भवः । श्रीमान्विनयसम्पन्नः सज्जनानन्ददायकः ।।३८।।
गेहिनी तस्य नीकाख्या रतिर्वा मन्मथस्य वै । या जिगाय स्वनेत्राभ्यां स्फुरदभ्यां चकितां मृगीम् ।।३९।।
तस्याः पुत्रोऽस्ति वीझाख्यो विद्याधारः प्रियंवदः । ज्ञातीनानन्दयामास विनयादिगुणेन यः ।।४०।।
पार्श्वपुत्रस्तृतीयोऽस्ति नेमाख्यो नियमालयः । देवपूजादिषट्कर्मपद्मिनीखण्डभास्करः ।।४१।।
साभूनाम्नी तु तज्जाया रूपलज्जावती सती । वस्तासुरजनौ तस्याः सुतौ जनमनोहरौ ।।४२।।
पार्श्वभार्या द्वितीया या सूहोनाम्नीति तत्सुतः । ईश्वराह्वो कलावासः कलुषापेतमानसः ।।४३।।
साधुचोषाभिधानस्य स्ववंशाम्बरभास्करः (स्वतः) । माऊनाम्यास्ति सद्भार्या शीलानेककलालया ।।४४।।

से रति को और शील से सीता को जीतनेवाली थी ।।३।। पद्मिनी के हितकारक, रूपवन्त, कलावन्त, दयावन्त और मधुरभाषी भाग्यशाली तीन पुत्र हुए ।।३२।। उनमें पहला पुत्र **साहु भीम** था, जो अपने वंश का आभूषण था तथा पात्रदान के लिए धन का उपार्जन करता था।।३३।। उसकी **रुक्मिणी** नाम की शीलवती स्त्री थी । **रुक्मिणी** ने अपनी वाणी से कोयल को तथा कान्ति से सूर्य की प्रभा को जीत लिया था ।।३४।। उसके चार पुत्र हुए— **१. तोल्हा २. तेजा ३. भोज और ४. शिवराज** । ये चारों पुत्र खिले हुए कमल के समान मुखवाले थे ।।३५।। **तोल्हा** की स्त्री का नाम **तोल्हश्री** था । **तोल्हश्री** लक्ष्मी का निवास थी—अत्यन्त सुन्दर थी । उसके **साढा** नाम का दीर्घायुष्क पुत्र हुआ ।।३६।। **तेजा** की **तेजश्री** नाम की लजीली स्त्री थी तथा **भोजा** की **भोजश्री** नाम की भक्त स्त्री थी ।।३७।। **पार्श्व साहु** के एक **खेता** नाम का द्वितीय पुत्र था, जो श्रीमान् था, विनय से सम्पन्न था तथा सज्जनों को आनन्द देनेवाला था ।।३८।। **खेता** की स्त्री का नाम **नीका** था, जो कामदेव की स्त्री रति के समान जान पड़ती और जिसने अपने चंचल नेत्रों से भयभीत मृगी को जीत लिया था ।।३९।। उस नीका के **वीझा** नाम का पुत्र हुआ जो विद्याओं का आधार था, प्रियभाषी था और विनयादि गुणों से कुटुम्ब के लोगों को आनन्दित करता था ।।४०।। **पार्श्व साहु** का तीसरा पुत्र **नेमा** था, जो नियमों व्रतों का आलय था, और देवपूजा आदि षट्कर्म रूपी कमलिनियों के समूह को विकसित करने के लिए सूर्य स्वरूप था ।।४१।। उसकी स्त्री का नाम **साभू** था । **साभू** रूपवती, लज्जावती तथा शीलवती थी । उसके **वस्ता** और **सुरजन** नाम के दो पुत्र हुए जो मनुष्यों के मन को हरण करने वाले थे ।।४२।। **पार्श्व साहु** की **सूहो** नाम की

तस्या अंगरुहौ ख्यातौ सत्यभषाविभूषितौ । लक्ष्मीवन्तौ महान्तौ तौ पात्रदानरतौ हितौ ।।४५।।
तयोराद्योऽस्ति संघेशो नृसिंहः पद्मसिंहकः । चकार नेमिनाथस्य यात्रां यो दुःखहारिणीम् ।।४६।।
तत्कलत्रं लसद्गात्रं पद्मश्रीर्नाम कामदम् । गृहे पात्रे समायाते यदानन्दयते चिरम् ।।४७।।
तस्य पुत्रास्त्रयः सन्ति दीर्घायुषो भवन्तु ते । हेमराजो गजमल्लोऽपरः श्रवणसंज्ञक ।।४८।।
चोषोपुत्रो द्वितीयोऽस्ति रूल्हानामा गुणाकरः । रूल्हश्रीर्महिता तस्य देवराजाख्य अंगजः ।।४९।।
एतः श्रीसाधुपार्श्वस्य चोषाख्यस्य च कायजैः । वसद्भिर्झूझणुस्थाने रम्ये चैत्यालयैर्वरैः ।।५०।।
चाहमानकुलोत्पन्ने राज्यं कुर्वति भूपतौ । श्रीमत्समसखानाख्ये (?) न्यायान्यायविचारके ।।५१।।
सूरिश्रीजिनचन्द्रस्य पादपंकजषट्पदैः । साधुभीमादिभिः सर्वैः साधुपद्मादिभिस्तथा ।।५२।।
कारितं श्रुतपंचम्यां महदुद्यापनं च तैः । श्री महेशव्रताधारिनरसिंहोपदेशतः ।।५३।। चतुष्कलं ।
तदा तैर्जिनबिम्बानामभिषेकपुरस्सरा । कारितार्चा महाभक्त्या यथायुक्ति च सोत्सवा ।।५४।।
भृंगारकलशादीनि जिनावासेषु पंचसु । क्षिप्तानि पंच पंचैव चैत्योपकरणानि च ।।५५।।
एतच्छास्त्रादिभक्त्या तैर्ज्ञानदानमदायि च । ब्रह्मश्रीनरसिंहाख्यतिहुणादियतीशिने ।।५६।।

द्वितीय स्त्री थी, उसके **ईश्वर** नाम का पुत्र हुआ, जो कलाओं का निवास था और जिसका मन पाप से रहित था ।।४३।। अपने वंश रूपी आकाश के सूर्य स्वरूप **साहु चोषा** की **माऊ** नाम की भार्या थी जो शील-पातिव्रत्य तथा अनेक कलाओं की घर थी ।।४४।। उसके दो प्रसिद्ध पुत्र थे, जो सत्य रूपी आभूषण से विभूषित, लक्ष्मीवन्त, महन्त, पात्रदान में रत तथा हितकारी थे ।।४५।। उन दोनों में पहला **पद्मसिंह** था जो संघ का स्वामी एवं मनुष्यों में श्रेष्ठ था तथा जिसने **नेमिनाथ भगवान्** की दुःखहारिणी यात्रा की थी अर्थात् संघ सहित गिरिनार की यात्रा की थी ।।४६।। उसकी स्त्री का नाम **पद्मश्री** था । **पद्मश्री** का शरीर अत्यन्त सुन्दर और काम को देने वाला था । घर पर पात्र के आने पर जो चिरकाल तक उसे आनन्दित करती थी तथा स्वयं आनन्द का अनुभव करती थी ।।४७।। उसके दीर्घायुवाले तीन पुत्र थे— **१. हेमराज, २. गजमल्ल,** और **३. श्रवण** ।।४८।। **चोषा** के **रूल्हा** नाम का द्वितीय पुत्र था जो गुणों की खान था, **रूल्हश्री** नाम की उसकी स्त्री थी और **देवराज** नाम का पुत्र था ।।४९।। **श्री साहु पार्श्व** और **चोषा** के ये पुत्र उत्तम जिनमन्दिरों से मनोहर **झुंझनू** नामक नगर में रहते थे । **जब चाहमान** कुल में उत्पन्न, न्याय-अन्याय का विचार करनेवाला **समसखान** नाम का श्रीमान् राजा राज्य कर रहा था तब आचार्य **श्री जिनचन्द्र** के चरणकमलों के भ्रमर इन **साहु भीमा** आदि तथा **साहु पद्मा आदि** ने देशव्रत के धारक **श्रीमान् नरसिंह** के उपदेश से श्रुतपंचमी के अवसर पर बड़ा भारी उद्यापन कराया ।।५०-५३।। उस समय उन्होंने बड़ी भक्ति से युक्ति सहित तथा उत्सवों के साथ जिन-प्रतिमाओं की अभिषेकपूर्वक पूजा कराई ।।५४।। पाँच जिन-मन्दिरों में पाँच-पाँच भृंगार-कलश आदि तथा छत्र-चमर आदि प्रतिमाओं के पाँच-पाँच उपकरण स्थापित किये । ब्रह्मश्री (ब्रह्मचारी) **नरसिंह** तथा **तिहुण** आदि मुनियों के लिए उन्होंने भक्तिपूर्वक इन **मूलाचार**

चतुर्विधाय संघाय सदाहारश्चतुर्विधः । प्रादाय्यौषधदानं च वस्त्रोपकरणादि च ।।५७।।

मित्रयाचकहीनेभ्यः प्रीतितुष्टिकृपादि च । दानं प्रदत्तमित्यादि धन्यव्ययो व्यधायि तैः ।।५८।।

इत्थं सप्तक्षेत्र्यां वपते यो दानमात्मनो भक्त्या । लभते तदनन्तगुणं परत्र सोऽत्रापि पूज्यः स्यात् ।।५९।।

एतच्छास्त्रं लेखयित्वा हिसारादानाय्य स्वोपार्जितेन स्वराया । संघेशश्रीपद्मसिंहेन भक्त्या सिंहान्ताय श्रीनराय प्रदत्तम् ।।६०।।

यो दत्ते ज्ञानदानं भवति हि स नरो निर्झराणां प्रपूज्यो, भुक्त्वा देवांगनाभिर्विषयसुखमनुप्राप्य मानुष्यजन्म ।

भुक्त्वा राज्यस्य सौख्यं भवतनुज (?) सुखान्निस्पृहीकृत्य चित्तं, लात्वा दीक्षां च बुध्वा श्रुतमपि सकलं ज्ञानमन्त्यं लभेत ।।६१।।

ज्ञानदानाद्भवेज्ज्ञानी सुखी स्याद्भोजनादिह । निर्भयोऽभयतो जीवो नीरुमौषधदानतः ।।६२।।

धर्मतः सकलमंगलावली धर्मतो भवति मुंडकेवली । धर्मतो जिनसुचक्रभृद्बली नाथतद्रिपुमुखो नरो बली ।।६३।।

ज्ञात्वेति कुर्वन्तु जनाः सुधर्मं सदैहिकामुष्मिकसौख्यकामाः । देवार्चनादानतपोव्रताद्यैर्धान्यं न लभ्यं कृषिमन्तरेण ।।६४।।

खण्डेलान्वयमण्डनेन्दुवदन त्वं पद्मसिंहाख्य भो, हेमाद्यैस्त्रिभिरंगजैर्गतिमितैर्भीमादिभिर्बन्धुभिः ।

भव्यांभोरुहखण्डवासरमणेश्चारित्रचूडामणेः सूरिश्रीजिनचन्द्रकस्य वचनान्नन्द्याश्चिरं भूतले ।।६५।।

आदि शास्त्रों का ज्ञान दान दिया । चतुर्विध संघ के लिए चार प्रकार का उत्तम आहार, औषधदान तथा वस्त्र एवं उपकरणादि दिये ।।५५-५७।। उन्होंने मित्रों के लिए प्रीतिदान, याचकों को संतुष्टिदान और हीन मनुष्यों को दयादि दान दिये । इस तरह उत्तम व्यय किया ।।५८।।

इस प्रकार जो आत्मभक्ति से सात क्षेत्रों में दान देता है वह परभव में प्रदत्त वस्तुओं से अनन्त गुणी वस्तुओं को प्राप्त होता है और इस भव में पूज्य होता है ।।५९।। संघपति **श्री पद्मसिंह** ने स्वोपार्जित धन से इस **मूलाचार शास्त्र** को लिखाकर तथा **हिसार** से बुलाकर भक्तिपूर्वक **श्री नरसिंह** के लिए प्रदान किया ।।६०।। जो मनुष्य ज्ञान दान देता है वह देवों का पूज्य है, देवांगनाओं के साथ विषय सुख भोगकर क्रम से मनुष्य जन्म प्राप्त करता है, वहाँ राज्य सुख भोगकर तथा संसार और शरीर सम्बन्धी सुखों से चित्त को निरुत्सक कर दीक्षा ग्रहण करता है और समस्त श्रुत को जानकर अन्तिम ज्ञान केवलज्ञान को प्राप्त होता है ।।६१।। ज्ञानदान से जीव ज्ञानी होता है, आहारदान से सुखी होता है, अभयदान से निर्भय होता है और औषधदान से निरोग होता है ।।६२।। धर्म से समस्त मंगलों का समूह प्राप्त होता है, धर्म से मनुष्य प्रसिद्ध केवली होता है, धर्म से तीर्थंकर और चक्रवर्ती होता है, धर्म से ही बलशाली नारायण-प्रतिनारायण तथा बलभद्र आदि होता है ।।६३।।

ऐसा जानकर ऐहलौकिक और पारलौकिक सुख के इच्छुक मनुष्य देवपूजा, दान, तप और व्रतादि के द्वारा उत्तम धर्म करें—पुण्योपार्जन करें, क्योंकि खेती के बिना धान्य—अनाज की प्राप्ति नहीं होती ।।६४।। हे खण्डेलवंश के अलंकार ! चन्द्रवदन ! **श्री पद्मसिंह** ! तुम **हेमा** आदि तीनों पुत्रों तथा **भीमा आदि चारों भाइयों के साथ**, भव्य रूपी कमल-वन को विकसित करने के लिए सूर्य, चारित्रचूडामणि **श्री आचार्य जिनचन्द्र** के शुभाशीर्वचन से चिरकाल तक पृथ्वीतल पर आनन्द का अनुभव करो ।।६५।।

शास्त्रं शस्त्रं पापवैरिक्षयेऽदः शास्त्रं नेत्रं त्वन्तरार्थप्रदृष्टौ । शास्त्र पात्रं सर्वचंचद्गुणानां शास्त्रं तस्माद्यत्नतो रक्षणीयम् ।।६६।।

श्रुत्वा शास्त्रं पापशत्रुं हिनस्ति श्रुत्वा शास्त्रं पुण्यमित्रं धिनोति । श्रुत्वा शास्त्रं सद्विवेकं दधाति तस्माद्भव्यो यत्नतस्तद्धि पाति ।।६७।।

यावत्तिष्ठति भूतले सुरनदी रत्नाकरो भूधरः, कैलासः किल चक्रिकारितजद्वन्द्यज्ञचैत्यालयः ।

यावद्व्योम्नि शशांकवासरमणी प्रस्फेटयन्तौ तम-स्तावत्तिष्ठतु शास्त्रमेतदमलं सम्पद्यमानं बुधैः ।।६८।।

सूरिश्रीजिनचन्द्रांह्रिस्मरणाधीनचेतसा । प्रशस्तिर्विहिता चासौ मीहाख्येन सुधीमता ।।६९।।

यद्यत्र क्वाप्यवद्यं स्यादर्थे पाठे मयादृतम् । तदा शोध्यः बुधैर्वाच्यमनन्तः शब्दवारिधिः ।।७०।।

इति श्रीभव्यकुमुदचन्द्रस्य सूरेः श्रीजिनचन्द्रस्य पादांभोरुहषट्पदेन पंडितश्रीमेधाविसंज्ञेन काव्यबन्धेन विरचिता

प्रशस्ताप्रशस्तिः समाप्ता ।

(इति पर्यन्तः **ख-ग-**पुस्तकीयः पाठः सदृशः ।)

ख-पुस्तकीयपाठः–संवत् १८८७ का पोषमासे कृष्णपक्षतिथौ ६ रविवासरे लिषाइतं पंडितसरूपचन्द तत्शिष्यसदासुषलिप्यकृतं म्हात्मा संभुराम सवाईजैपुरमध्ये । सं० १८८७ ऋषिवसुसिद्धीन्दयुते पोषमासे कृष्णपक्षे दशमीगुरुवासरे अनेकशोभाशोभिते श्रीसपादजयपुराह्वये नगरे श्रीमन्महाराजाधिराजराजेन्द्र-श्रीसवाईजयसिंहजिद्राज्यप्रवर्तमाने नानाविधिवादित्रशोभिते विचित्रवेदिकान्विते मं ....

ग-पुस्तकीयपाठ :–लिषितं भारतीपुरवास्तव्यपंडितपुरुषोत्तमपुत्र धाराधरसंज्ञेन ।।छ।। शुभं भूयात् लेखकपाठकयोः ।।छ।। ।।छ।। श्रीः ।। छ।। शुभं भवतु ।।छ।।

यह शास्त्र पापरूपी शत्रुओं का क्षय करने में शस्त्र है, यह शास्त्र अन्तस्तत्त्व को देखने के लिए नेत्र है, तथा यह शास्त्र समस्त उत्तम गुणों का पात्र है, अतः यह शास्त्र यत्नपूर्वक रक्षा करने के योग्य है ।।६६।। चूँकि भव्य जीव शास्त्र को सुनकर पापरूप शत्रु को नष्ट करता है, शास्त्र सुनकर पुण्यरूपी मित्र को संतुष्ट करता है, और शास्त्र सुनकर उत्तम विवेक को धारण करता है इसलिए भव्य जीव यत्न से शास्त्र की रक्षा करता है ।।६७।।

जब तक पृथ्वी तल पर गंगा नदी विद्यमान है, जब तक समुद्र विद्यमान है, जब तक चक्रवर्ती भरत के द्वारा निर्मापित जगत्पूज्य जिनचैत्यालयों से युक्त कैलास पर्वत विद्यमान है, और जब तक अन्धकार को नष्ट करने वाले चन्द्र-सूर्य आकाश में विद्यमान हैं तब तक विद्वज्जनों द्वारा पठन-पाठन में आनेवाला यह निर्दोष शास्त्र विद्यमान रहे ।।६८।।

जिसका चित्त **आचार्य जिनचन्द्र** के चरणों के स्मरणाधीन है उस **मीहा नामक** विद्वान् ने यह प्रशस्ति बनाई ।।६९।।

यदि मैंने इस प्रशस्ति के किसी पाठ या अर्थ में दोष का आदर किया है—कहीं त्रुटि की है तो ज्ञानी जनों को उसे शुद्ध कर वांचना चाहिए क्योंकि शब्द रूपी सागर अनन्त है—शब्दोंका पार नहीं है ।

इस प्रकार भव्य जीव रूपी कुमुदों को विकसित करने के लिए चन्द्रस्वरूप
आचार्य जिनचन्द्र के चरणकमलों के भ्रमर मेधावी पण्डित के द्वारा
काव्य रूप से विरचित यह प्रशस्त प्रशस्ति समाप्त हुई ।

गाथानुक्रमणिका

नोट : इस अनुक्रमणिका में प्रथम अंक अधिकार का द्वितीय अंक गाथा संख्या का तथा तृतीय अंक पृष्ठ का है । टिप्पणगत गाथाओं के लिए द्वितीय अंक के स्थान पर (टि०) लिखा गया है ।

अ

अगिहत्थमिस्सणिलये ४-७०-१३६
अच्चित्तदेव माणुस ५-९५-२०३
अज्जागमणे काले ४-५६-१२८
अज्जीवा वि य दुविहा ५-३३-१६६
अंगुलिणहावलेहाणि १-३३-४१
अंजलिपुडेण ठिच्चा १-३४-४१
अज्झयणे परियट्टे ४-६८-१३५
अट्टं च रुद्दसहियं ५-१९७-२५५
अट्टं रूद्दं च दुवे ६-१७६-४००
अट्ठसदं देवसियं ७-१५६-३९०
अणगूहियबलविरियो ५-२१६-४१२
अणसण अवमोदरियं ५-१४९-२३१
अणागदमदिक्कंतं ७-१३६-३८२
अणाठिदं च भट्टं च ७-१०२-३६५
अणाभोगकिदं कम्मं ७-११९-३७४
अण्णं अपेक्ख सिद्धं ५-११४-२१३
अणिसट्ठं पुण दुविहं ६-२५-२८३
अणुभासदि गुरुवयणं ७-१४०-३८४
अण्णोण्णाणुकूलाओ ४-८७-१३४
अतिबाला अतिबुड्ढा ६-५०-२९८
अणुगूहियबलवीरिओ ५-२१६-२६५
अट्टं रुद्दं च दुवे ७-१७४-३९९
अद्धत्तेरस वारस ५-२६-१६०
अद्धमसणस्स ६-७२-३१०
अद्धाणगदं णवमं ७-१३७-३८३
अद्धाणतेसाबदराय ५-१९५-२५४
अद्धुवमसरणमेगत्त ५-२०६-२६०
अप्पडिलेहं दुप्पडि ५-२२०-२६७
अपयत्ता जा चरिया ५-टि०-२६८
अपरिग्गहस्स मुणिणो ५-१४४-२३०
अप्पसुएण मिस्सं ६-९-२७५
अब्भुट्ठाणं किदिअम्मं ५-१७६-२४५
अब्भंतरसोहणओ ५-२१५-२६५
अभिजुंजइ बहुभावे २-६५-६४
अमणुण्ण जोगइट्ठ ५-१९८-२५५
अयदाचारो समणो ५-टि०-२६९
अरहंत णमोक्कारं ७-५-३१६
अरहंतसिद्धपडिमा १-२५-३३
अरिहंति णमोक्कारो ७-४-३१६
अरिहंतिवंदणणमंस ७-६१-३४६
अरहंतेसु य राओ ७-६९-३४९
अवणयदि तवेण तमं ७-८७-३५६
अच्चेलक्कम १-३-११
अवसाणं वसियरणं ६-४२-२९४
अवहट्टु अट्टरुद्दे ५-२००-२५७
अविरमणं हिंसादी ५-४१-१७१
अविकार वत्थवेसा ४-६९-१३६
असणादु चदु वियप्पे १-२०-२९
असत्तमुल्लावेंतो २-२८-६४
असणं खुहप्पसमणं ७-१४३-३८५
असण पाणं तह ७-१४५-३८६
असणं च पाणयं वा ६-४४-२९५
असि असणि परुस वण ५-टि०-२६९
अस्संजम मण्णाणं २-१५-५५
अह ओपचारिओ खलु ५-१८४-२४८
अह वोवचारिओ खलु ५-टि०-२४९
अकसायं तु चरित्तं १०-९१-५३९
अक्खोमक्खणमेत्तं ९-४३-४६२
असणं जदि वा पाणं ९-५४-४६६
अंगुल असंखभागं १२-४६-६०६
अच्चित्ता खलु जोणी १२-५९-६१७
अच्चेलक्कं लोचो १०-१७-५१०
अच्चलक्कुद्देसिय १०-१८-५१०
अच्छीहिं पेच्छंता ९-८८-४८२
अट्ठिं च चम्मं च तहेव मंसं९-८२-४८०
अट्ठि णिछण्णं णालिणिबद्धं९-८३-४८०
अट्ठविह कम्ममूलं ९-११६-४९६
अट्ठारस जोयणिया १२-४१-६०३

अट्ठेव धणु सहस्सा १२-५४-६१३
अणयारा भयवंता ९-१२१-४९८
अणयार महरिसीणं ९-२-४४६
अण्णो अण्णं सोयदि ८-११-४१०
अण्णं इमं सरीरादिगं ८-१२-४११
अण्णाद मणुण्णादं ९-४७-४६३
अणुदिसणुत्तरदेवा १२-१८१-७००
अणुबद्ध-तवोकम्मा ९-६३-४६१
अणुवेक्खाहिं एवं ८-७४-४४३
अणिहुदमणसा एदे ८-४२-४३१
अंतरदीवे मणुया १२-१७५-६९८
अत्थस्स संपओगो ११-१४-५६५
अत्थस्स जीवियस्स य १०-९६-५४२
अत्थं कामसरीरादियं ८-३५-४२८
अस्सीदिसदंविगुण १२-५७-३१४
अचित्ता खलु जोणी १२-५९-६१७
अद्धत्तेरस वारस दसयं १२-१६८-६९५
अत्थि अणंता जीवा १२-१६२-६९२
अथिर असुह दुब्भगया १२-१९६-७२०
आदिकमणं वदिकमणं ११-११-५६४
अद्धुवमसरणमेगत्त ८-२-४०७
अद्धत्तेरस बारस १२-१६८-६९५
अवगदमाणत्थंभा ९-६८-४७४
अपरिग्गहा अणिच्छा ९-१७-४५२
अवहट्ट अट्टरुद्दं ९-११७-४९६
अव्ववहारी एक्को १०-५-५०४
अविरूद्धं संकमणं १२-१२६-६६५
अस्सीदिसदं विगुणं १२-५७-३१४
असुइ विलिविले गब्भे ८-३३-४२८
असुराणमसंखेज्जा १२-११०-६५९
असुरेसु सागरोवम १२-७६-६३१
अंवो णिंवत्तणं पत्तो १०-७०-५३१

आ

आइरिय उवज्झायाणं ७-९०-३५७
आइरिय णमोक्कारं ७-टि०-३१८
आइरियादिसु पंचसु ५-१९२-२५२
आएसस्स तिरत्तं ४-४१-१२०
आएसं एज्जंतं ४-३९-११९
आगंतुक णामकुलं ४-४५-१२२
आगंतुयवत्थव्वा ४-४२-१२०
आचक्खिदुं विभाजिदुं ७-३३-३३२
आज्ञाणिद्देस पमाण ७-१८१-४०२
आणा अणवत्थवि य ४-३३-११५
आणा अणवत्थावि य ६-७५-३११
आणाय जाणणा वि य ७-१३३-३८१
आणा णिकंखिणा ५-१५७-२३६
आदंके उवसग्गे ७-१४१-३८५
आदंके उवसग्गे ६-६१-३०३
आदाणे णिक्खेवे ५-१२२-२२०
आदावणादिगहणे ४-१४-१०४
आदा हु मज्झणाणे २-१०-५२
आदीए दुक्खिसोधण ७-३४-३३४
आधाकम्म परिणदो ६-६८-३०८
आधा कम्मुदेसिय ६-३-२७१
आमंतणि आणवणी ५-११८-२१६
आयरियकुलं मुच्चा ७-टि०-३६०
आयंविल णिव्वियडी ५-८५-१९८
आयरियेसु य राओ ७-७०-३४९
आयार जीदकप्पगुण ५-१९०-२५२
आयासं सपदेसं ७-४५-३३९
आराहण उवजुत्तो २-६१-८०
आराहण णिज्जुत्ती ५-८२-१९६
आरोग वोहिलाहं ७-६५-३४७
आलोयण पडिकमणं ५-१६५-२३९
आलोगणं दिसाणं ७-१६१-३९७
आलोचणमालुंचण ७-१२०-३७५
आलोचण णिंदण ७-१२२-३७६
आलोचणं दिवसियं ७-११८-३७४
आलोयणाय करणे ७-९८-३६१
आवासय ठाणादिसु ४-४३-१२१
आवासय णिज्जुत्ती वोच्छामि ७-२-३१५
आवासय णिज्जुत्ती एवं ७-१८९-४०५
आवासयं तु आवसए तु ७-१८४-४०३
आवेसणी सरीरे ७-७-३१७
आसवदि जं तु कम्मं ५-४३-१७२
आसणे आसणत्थं च ७-९७-३६१
आसाए विप्पमुक्कस्स ७-१८७-४०४
आसाढे दुपदा छाया ५-७५-१९०
आसाढे सत्तपदे ५-टि०-१९२
आहारदायगाणं ६-४०-२९३
आहारणिमित्तं किर २-४६-७२
आइरिओ वि य वेज्जो १०-५१-५२४
आईसाणा कप्पा देवा १२-९८-६५२
आ ईसाणा कप्पा उववादो १२-९०-६४७

आ ईसाणा कप्पा १२-१५-५६६
आकंपिय अणुमाणिय ११-१५-५६६
आगमकद विण्णाणा ९-६५-४७०
आणद पाणद कप्पे १२-१०१-६५३
आणद पाणद कप्पे अद्ध १२-२५-५९५
आ जोदिसं ति देवा १२-१३८-६७०
आदावुज्जोदविहायगइ १२-१९५-७२०
आईसाणा देवा १२-१३६-६६९
आलोचिय अवराहं ७-टि०-३७४
आधा कम्म परिणदो १०-४३-५२०
आ पंचमित्ति सीहा १२-११३-६६०
आभिणिवोहिय सुद १२-१८७-७०४
आयरियकुलं मुच्चा १०-६८-५६०
आयरित्तण तुरिओ १०-६१-५३१
आयरित्तणमुवणायइ १०-७२-५३२
आयासदुक्खवेरभय ८-३९-४२७
आरंभे पाणिवहो १०-३०-५०६
आधा कम्म परिणदो १०-४३-५२०
आ पंचमित्ति सीह १२-११३-६६०
आभिणिवोहिय सुद १२-१८७-७०४
आयरिहयकुलं मुच्चा १०-६८-५३०
आयरित्तण तुरिओ १०-६९-५३१
आयरित्तणमुवणायइ १०-७२-५३२
आयासदुक्खवेरभय ८-३१-४२७
आरंभे पाणिवहो १०-३०-५१६
आरंभं च कसायं १०८६-५३७
आलीण गंड मंसा ९-६४-४६९
आलोयण पडिकमणं ११-१६-५६७
आहारे य सरीरे १२-४-५८०
आहारे दु तवस्सी १०-५४-५२५

इ

इंगाल जाल अच्छी ५-१४-१५२
इच्चेवमादिओ जो ५-१७९-२४६
इच्छा मिच्छाकरो ४-४-९९
इट्ठे इच्छाकारो ४-५-९९
इत्तिरियं जावजीवं ५-१५०-२३२
इत्थी पुंसा व गच्छंति ५-१०९-२११
इंदिय कसायपणिहाणंपि ५-१७१-२४३
इय एसो पच्चक्खो ५-१८३-२४८
इरियावहपडिवण्णे ५-१०६-२०९
इरियाभासा एसण १-१०-२०
इरियागोयरसुमिणा ७-१२७-३७८
इहपरलोयत्ताणं २-१७-५६
ईसर बंभा विण्हू ५-६३-१८३
इगिबीस चतुरसदिया ११-८-५६२
इगुणतीस जोयण सदाइं १२-५२-६१२
इत्थिकहा अत्थकहा ९-८९-४८३
इत्थी संसग्गविजुदे ११-१८-५६७
इत्थी संसग्गी पणिदरस ११-१३-५६५
इत्थी पुरिस णउंसय १२-१९२-७१४
इंदिय कसाय दोसा ८-५०-४३३
इंदियबलउस्सासा १२-१५१-६७६

उ

उग्गम उप्पादण ६-२-२७०
उग्गम उप्पादणएसणेहिं ५-१२१-२१८
उच्चारं पस्सवणं ५-५६-१७८
उच्चारं पस्सवणं खेलं ५-१२५-२२२
उच्चारं पस्सवणं ६-७९-३१३
उज्जुतिहिं सत्तहिं ६-२०-२८१
उज्जोवो खलु दुविहो ७-५५१-३४२
उत्तरगुण उज्जोवो ५-१७३-२४४
उदयत्थमणे काले १-३५-४३
उदरक्किमिणिग्गमण ६-८०-३१३
उद्दिट्ठं जदि विचरदि ५-२१८-२६६
उद्देस समुद्देसे ५-८३-१९६
उद्देसे णिद्देसे ७-१६०-३९२
उड्ढमधो तिरियम्हि २-३९-६९
उड्ढमहतिरियलोए ५-२०५-२६०
उट्ढिदउट्ढिद उट्ढिद ७-१७२-३९८
उवसंतवयण मणिहत्थ ५-१८१-२४७
उप्पण्णो उप्पण्णा ७-१२१-३७५
उब्भामगादिगमणे ४-५२-१२६
उम्मग्गदेसओ मग्गणासय २-३१-६५
उवसंतो दु पुहुत्तं ५-२०७-२६१
उवज्भायणमोक्कारं ७-टि०-३१९
उवगहणादिआ पुव्वुत्ता ५-१६८-२४१
उवसंपया य सुत्ते ४-२३-१०९
उवसंपया य णेया ४-१८-१०६
उवगूहणादिआ ५-१६८-२४१
उग्गमसूरप्पहुदी ४-९-१०१
उव्वेयमरणं जादीमरणं २-४०-७०
उसहादि जिणवराणं १-२४-३२
उक्कस्सेणाहारो १२-१०५-६५६
उक्कस्सेणुस्सासो १२-१०६-६५६

उच्चाणिच्चागोदं १२-१९७-७२४
उच्छाहणिच्छिद मदी ९-११-४५०
उणसट्ठिजोयणसदा १२-५३-६१२
उद्देसिय कीदयडं ९-४६-४६३
उप्पणम्मि य वाही ९-७३-४७६
उव्वट्टिदा य संता १२-११४-६६१
उवधिभरविप्पमुक्का ९-३०-४५७
उवसमखय मिस्सं वा ८-७०-४४१
उवसमदया य खंती ८-६३-४३८
उवरिमगेवज्जेसु य १२-२७-५९६
उवलद्धपुण्णपावा ९-६९-४७४
उववादो उववट्टण १२-३-५७९
उववादो वट्टणया १२-१२१-६६३
उवसंतादीणमणा ९-३८-४६०

ए

एआणेयभव गयं ५-२०४-२५९
एइंदियादिपाणा ५-९२-२०१
एओ व मरदि जीवो २-११-५३
एक्कम्हि विदियम्हि २-५७-७७
एक्कं पंडियमरणं २-४१-७०
एकम्हि दोण्णि तिण्णि य ६-टि०-३१०
एगपदमस्सिदस्स वि ७-१५२-३८१
एगम्हि य भवगहणे ३-११-९२
एगो मे सस्सओ अप्पा २-१२-५३
एगंते अच्चित्ते १-१५-२४
एदम्हादो एक्कं हि २-५८-७८
एदाहिं सया जुत्तो ५-१२९-२२५
एदाहि भावणाहि दु ५-१४६-२३१
एदं पच्चक्खाणं २-६९-८४
एदम्हि देसयाले ३-५-८९
एदे अण्णे बहुगा ६-८१-३१४
एमेव कामतंत्ते ७-८२-३५४
एवं गुणो महत्थो ७-१६९-४००
एवं गुणजुत्ताणं ७-१२-३२०
एवं विहाणजुत्ते १-३६-४६
एवं दिवसियराइय ७-टि०-३९३
एवं जीवविभागा ५-३२-१६५
एवं गुणवदिरित्तो ४-६४-१३३
एवं विधिणुववण्णो ४-४८-१२३
एवं आपुच्छिता ४-२६-१११
एवं पच्चक्खाणं २-६९-८४
एवं समाचारो ४-७६-१३९
एवं विधाणचरियं ४-७५-१३९
एवं पंडियमरणं ३-१०-९२
एयग्गेण मणं णिरंभिऊण ५-२०१-२५७
एया य कोडिकोडी ५-२८-१६१
एस करेमि पणामं ३-१-८७
एताओ अट्ठपवयणमादाओ ५-१३२-२२७
एसण णिक्खेवादा ५-१४०-२२८
एसो दु बाहिर तवो ५-१६१-२३८
एसो पंच णमोयारो ७-१३-३२०
एसो पच्चक्खाओ ७-१३४-३८१
एसो चरणाचारो ५-१४७-२३१
एसो अज्जणंपि अ ४-६६-१३४
एइंदिय णेरइया १२-५८-६१६
एइंदियस्स चत्तारि १२-५-५८१
एइंदिय वियलिंदियणारय १२-८७-६४५
एइंदिय वियलिंदिय १२-९६-६५०
एइंदियादि जीवा १२-१६१-६९१
एइंदिय य पंचिंदिया य १२-१६०-६८९
एइंदिय अणंता १२-१६४-६९३
एइंदिय य जीवा १२-१४८-६७४
एइंदियादि पाणा १२-१४६-६७३
एक्कं च तिण्णि सत्त य १२-७४-६२६
एक्को वामि तयो वा १०-२९-५१६
एक्को करेइ कम्मं ८-९-४१०
एगविहो खलु लोओ ८-२१-४२३
एगणिगोदसरीरे १२-१६३-६९२
एगंतं मग्गंता ९-२०-४५३
एत्तो अपुव्वकरणो १२-१५५-६७७
एदमणयारसुत्तं ९-४-४४७
एदं सरीरमसुई ९-७८-४७८
एदारिसे सरीरे ९-८४-४८१
एदे इंदियतुरया ९-११३-४९५
एयंतम्मि वसंता ९-२४-२५५
एयाइणो अविहला ९-२१-४५४
एवं चरियविहाणं ९-१२२-४९९
एवं तु जीव दव्वं १०-८८-५३८
एवं तु सारसमये १२-१४३-६७२
एवं दीवसमुद्दा १२-३५-६००
एवं बहुप्पयारं संसार ८-२०-४२३
एवं बहुप्पयारं कम्मं ८-४७-४३२
एवं मए अभिथुदा ९-१२५-५००
एवं विधाण चरियं १०-१२४-५५४

एवं सीलगुणाणं ११-२६-५७६
एवं संजमरासिं ९-१२४-४९९

ओ

ओघिय समाचारो ४-८-१०१
ओसाय हिमग महिगा ५-१३-१५१

क

कदि ओणदि कदि सिरं ७-७६-३५२
कणयलदा नागलदा २-५०-७४
कण्णं विधवं अंतेउरियं ४-६१-१३१
कलहादिधूमकेदू ५-७८-१९३
कल्लाणपावगाओ ५-२०३-२५८
कंदरपुलिणगुहादिप ४-१३-१०४
कंटय खण्णुय पडिणिय ४-३१-११४
कंदा मूली छल्ली ५-१७-१५४
कंदप्पमाभिजोग्गं २-२७-६२
कंखिद कलुसिदभूदो २-४५-७२
काइय वाइयमाणसि ५-१७५-२४५
काउस्सग्गं मोक्खपहदेसयं ७-१५१-३८९
काउस्सग्गणिजुत्ती ७-१८२-४०२
काउस्सग्गो काउस्सग्गी ७-१४८-३८७
काऊण णमोक्कार ७-१-३१५
काऊण य किदियम्मं ७-११७-३७३
काओस्सग्गं इरिया ७-१६१-३९३
काओस्सग्गम्हि ठिदो ७-१६१-३९३
काओस्सग्गम्हि कदे ७-१६५-३९४
कागा मेज्झा छद्दी ६-७६-३११
का देव दुग्गई ओ २-२६-६२
काय किरियाणियत्ती ५-१३६-२२६
कायेंदियगुणमग्गण १-५-१५
कालेण उवाएण य ५-१७०-२४२
काले विणए उवहाणे ५-७२-१८८
काले विणए उवहाणे ५-४९-१७५
कित्ती मित्ती माणस्स ५-१९१-२५२
किदियम्मं उवचरिय ७-१३९-३८४
किदियम्मं चिदियम्मं ७-७५-३५१
किदियम्मं पि करतो ७-१०७-३६८
किह ते ण कित्तणिज्जा ७-६२-३४६
किं बहुणि भणिदेण दु ४-६५-१३३
कीदयणं पुण दुविहं ६-१६-२७९
कुलजोणि मग्गणादि य ५-२३-१५९
कुलवयसीलविहूणे ५-८७-१९८
कोई सव्व समत्थो ४-२४-१०९
कोधेण य माणेण य ६-३४-२९०
कोधो माणो माया ७-४७-३४१
कोधो य हत्थिकप्पे ६-३५-२९१
कोमारतणु तिगिंछा ६-३३-२९०
कोडिल्लमासुरक्खा ५-६०-१८२
कोडिसदसहस्साइं ५-२५-१६०
कोहभयलोहहास ५-१४१-२२८
कोहादिकलुसिदप्पा ७-टि०-३५९
कोहो माणो माया ५-टि०-२६३
कधं चरे कधं चिट्ठे १०-१२१-५५३
कणयमिव णिरुवलेवा १२-१०-५८४
कम्मस्स बंधमोक्खो १०-८८-५३६
कम्माणं जो दु रसो १२-२०३-७३३
कंदप्पमाभिजोगा १२-९२-६४८
कंड़णी पेसणी चुल्ली १०-३५-५१८
कल्लं कल्लं पि वरं १०-४७-५२२
काऊण णमोक्कारं १२-१-५७८
कायमलमत्थुलिंगं ९-८१-४७९
कामा दुवे तिओ भोग १२-९७-६५१
किं काहदि वणवासो १०-३२-५१७
किं केण कस्स कत्थ व ८-१५-४२१
किं तस्स ठाणमोणं १०-३३-५१७
कुक्कुय कंदप्पाइ य ९-९२-४८५
कुम्मुण्णद जोणीए १२-६२-६१९
केसणह मंसुलोमा १२-११-५८५
कोडिसद सहस्साइं सत्तट्ठ १२-१६७-६९५
कोधो माणो माया ८-४५-४३२
कोह-मद-माय-लोहेहि १०-१०८-५४६
कोहो माणो माया १२-१९१-७१३

ख

खमांमि सव्वजीवाणं २-७-५१
खंधं सयलसमत्थं ५-३४-१६६
खंधा देसपदेसा ५-टि०-१६७
खार दहिसप्पितेल ५-१५५-२३५
खुद्दी कोही माणी २-३२-६५
खेत्तं वत्थु धणधण्णगदं ५-२११-२६३
खेत्तस्सवई णयरस्स ५-१३७-२२७
खंती मद्दव अज्जव ८-६१-४३७
खंती मद्दव अज्जव ११-५-५५९

ग

गच्छे वेज्जावच्चं ४-५३-१२६
गंभीरो दुद्धरियो ४-६३-१३२

गंभीरो दुद्धरियो ४-३८-११८
गदिठाणोग्गाहणकारणाणि ५-३६-१६८
गहिदुवकरणे विणए ४-१६-१०५
गामादिसु पडिदाइं १-७-१८
गामं णयरं रण्णं ५-१६-२०३
गामे णयरे रण्णे ५-९४-२०२
गारविओ गिद्धीओ ४-३२-११४
गिहिदत्थे य विहारो ४-२७-१११
गुणाधिए उवज्झाए ५-१९३-२५३
गुरुपरिवादो सुदवुच्छेदो ४-३०-११३
गुरुसाहम्मिय दव्वं ४-१७-१०६
गूढसिरसंधिपव्वं ५-१९-१५६
गेरुयचंदण वव्वग ५-१२-१५०
गेरुय हरिदालेण व ६-५५-३००
गोमज्झगेय रुचगे ५-११-१४९
गोयर पमाण दायग ५-१५८-२३६
गइ इंदिये च काये १२-१५६-६८०
गदि आदि मग्गणाओ १२-१४७-६७४
गामेयरादि वासी ९-१९-४५३
गिरिकंदरं मसाणं १०-५९-५२७

घ

घोडय़ सदा य खंभे ७-१६७-३९५
घिदभरिदघडसरित्थो १०-१००-५४३
घोडय लद्दि समाणस्स १०-७३-५३२
घोरे णिरय सरिच्छे ९-४०-४६१

च

चउरंगुलंतरपादो ७-७२-३५०
चउवीसय णिज्जुत्ती ७-७३-३५०
चक्खु सोदं घाणं १-१६-२५
चत्तारि पडिक्कमणे ७-९९-३६२
चत्तारि महावियडी ५-१५६-२३५
चादुम्मासे चउरो ७-१५७-३९१
चादुव्वण्णे संघे ५-६६-१८५
चिर उसिदबंभयारी २-६६-८२
चउरिंदियाणमाऊ १२-६८-६२२
चउथीए पुढवीए १२-१७-५९०
चडो चवलो मंदो १०-६४-५२९
चत्तारि धणुसदाइं १२-५१-६१०
चंदस्स सदसहस्सं १२-८१-६३८
चदुरंगुला व जिब्भा १०-९८-५४२
चलचवलजीविदमिदं ९-७-४४८
चाओ य होइ दुविहो १०-११५-५४८
चिर पव्वइदं पि मुणी १०-६७-५३०
चिरकालमज्जिदं पि य ८-५८-४३६

छ

छज्जीव णिकायाणं ६-५-२७२
छट्ठट्ठम दसमदुवादसेहिं ५-१५१-२३२
छव्वीसं पणवीसं ५-२९-१६१
छंदणगहिदे दव्वे ४-७-१००
छहिं कारणेहिं असणं ६-६०-३०२
छादालदोससुद्धं १-१३-२२
छुहतण्हासीदुण्हा ५-५७-१७९
छट्ठट्ठमभत्तेहिं ९-४४-४६२
छट्ठीए पुढवीए १२-१९-५९१
छट्ठीदो पुढवीदो १२-११६-६६२
छद्धणु सह सुस्सेधं १२-२२-५९४
छप्पि य पज्जत्तीओ १२-६-५८२
छब्बीसं पणबीसं १२-१६९-६९५

ज

जइ उप्पज्जइ दुक्खं २-४२-७०
जक्खय णागादीणं ६-१२-२७७
जत्थेव चरदि वालो ५-१३२-२२५
जदि इदरो सोडजोग्गो ४-४७-१२३
जदि तं हवे असुद्धं ५-१२७-२२३
जदि चरणचरणसुद्धो ४-४६-१२२
जणवद सम्मद ठवणा ५-१११-२१२
जणवद सच्चं जध ५-११२-२१२
जलकंजियाण मज्झे ५-टि०-१५५
जह्मा विणेदि कम्म ७-७७-३५२
जह्मा पंच विहाचारं ७-९-३१८
जम्मा लीणा जीवा ३-८-९१
जलतंदुल पक्खेवो ६-८-२७४
जल थल आयासगदं ६-२९-२८७
जस्स रागो य दोसो य ७-२६-३२९
जस्स सण्णा य लेस्सा य ७-२६-३२९
जस्स सण्णिहिदो अप्पा ७-२४-३२८
जह वालो जप्पतो २-२०-५९
जह णिज्जावय रहिया २-५२-७५
जह मच्छयाण पयदे ६-६७-३०७
जह धाऊ धम्मंतो ५-४६-१७३
जं किंचि मे दुच्चरियं २-३-४९
जं खलु जिणोवदिट्ठ ५-६८-१८६
जं किंचि महाकज्जं ४-१५-१०५
जं च समो अप्पाणं ७-२०-३२५

जंतेणंतर लद्धं	४-३१-११७	जेणेह पिंड सुद्धी	६-८२-३१४	जह धादू धम्मंतो	८-५६-४३५
जं तेहि दु दादव्वं	७-६७-३४८	जेण रागा विरज्जेज्ज	५-७१-१८८	जह्मि विमाणे जादो	१२-८-५८३
जं दिट्ठं संठाणं	७-४६-३४०	जे कोई उवसग्गा	७-१५४-३९०	जलथलगब्भ अप्पज्जत्त	१२-४४-६०५
जं दुक्कडं तु मिच्छा	४-११-१०३	जो कोई मज्झ उवही	३-७-९०	जलगब्भजपज्जत्ता	१२-४५-६०६
जा गदी अरहंताणं	२-७१-८५	जोगा पयडि पदेसा	५-४७-१७३	जलथलखगसम्मुच्छिम	१२-४३-६०४
जा गदी अरहंताणं	३-९-९१	जो जाणइ समवायं	७-२१-३२५	जल्लेण मइलिदंगा	९-९८-४८८
जादी कुलं च सिप्पं	६-३१-२८९	जो दु अट्टं च रुद्दं च	७-२८-३३०	जवणालिया मसूरी	१२-५०-६०९
जायण समणुण्णमणा	५-१४२-२२९	जो दु धम्मं च सुक्कं च	७-२८-३३०	जं च कामसुहं लोए	१२-१०३-६५४
जा रायादिणियत्ती	५-१३५-२२६	जो दुरसे य फासे य	७-२७-३२९-३०	जं जं जे जे जीवा	१०-९५-५४१
जावदियं उद्देसो	६-७-२७३	जो पुण तीसदि वरिसो	७-१७१-३९८	जंबूदीव परिहिओ	१२-३१-५९८
जावे दु अप्पणो वा	७-१२६-३७७	जो रूवगंधसद्दे	७-२७-३३०	जंबूदीवो लवणो	१२-३७-६०१
जिणवयणमयाणंता	७-टि०-३५९	जो समो सव्वभूदेसु	७-२५-३२८	जंबूदीवो धादइसंडो	१२-३३-५९९
जिणवयणमोसहिमिणं	२-५९-७९	जो होदि णिसीदप्पा	७-१८६-४०४	जं पुप्फिय किण्णइदं	९-५७-४६७
जिणवयणे अणुरत्ता	२-३६-६७	जत्थं कसायुप्पत्ति	१०-५८-५२६	जं वंतं गिहवासे	९-८५-४८१
जिदउवसग्ग परीसह	७-१९-३२५	जदं तु चरमाणस्स	१०-१२३-५५४	जं सुद्धमसंसत्तं	९-५८-४६७
जिदकोहमाणमाया	७-६०-३४६	जदं चरे जदं चिट्ठे	१०-१२२-५५३	जं होज्ज अविव्वण्णं	९-५५-४६६
जियदु व मरदु व जीवो	५-टि०-२६८	जदि सागरोवमाओ	१२-१०४-६५५	जं हवदि अणिव्वीयं	९-६०-४६८
जीवणिबद्धाऽबद्धा	१-९-१९	जदि पडदि दीवहत्थो	१०-१५-५०९	जा उवरिमगेवेज्जं	१२-१३४-६६८
जीवाजीवसमुत्थे	१-२१-२९	जदि वि करेंति पावं	९-१०३-४९०	जायंतो य मरंतो	८-१७-४२२
जीवाजीवं रूवारूवं	७-४३-३३८	जम्मणमरणुव्विग्गा	९-९-४४९	जाव दु आरणअच्चुद	१२-९१-६४७
जीविदमरणे लाभालाभे	१-२३-३१	जम्मजरामरणसमा हि	८-६-४०९	जावदिया उद्धाण	१२-३६-६००
जीवो दु पडिक्कमओ	७-११४-३७१	जह कोइ सट्ठिवरिसो	१०-८७-५३८	जिणवयणणिच्छिदमदीअ	९-७६-४७७
जे अत्थपज्जया खलु	५-१६९-२४२	जह उसुगादो उसुमुज्जु	१०-८२-५३६	जिणवयणभासिदत्थं	९-९४-४८६
जेण कोधो य माणो य	७-२६-३२९	जह वोसरित्तु कत्तिं	१०-३४-५१७	जिणवयणमणुगणेंता	९-३९-४६०
जेण तच्चं विबुज्झेज्ज	५-७०-१८६	जह ण चलइ गिरिराजो	९-११८-४९७	जिणवयणमोसहमिणं	९-७५-४७७
जे दव्वपज्जया खलु	७-८४-३५५	जह चंडो वणहत्थी	९-१०८-४९२	जिणवयणसद्दहाणो	८-४१-४३०
जे पुण गुरु पडिणीया	२-३५-६७	जइपंचिंदियदमओ	९-१०२-४९०	जिब्भोपत्थणिमित्तं	१०-९७-५४२
जे पुणपणट्ठगदिया	२-२४-६१	जह मज्झ तह्मिकाले	८-७६-४४४	जीव परिणामहेदू	१०-७६-५३३

जीवाजीवविहत्तिं ९-३३-४५८
जीवाणं खलु ठाणाणि १२-१५७-६८३
जीवो अणाइणिहणो १०-८९-५३८
जीवो कसायजुत्तो १२-१८३-७०१
जेणेहपाविदव्वं ८-६१-४३७
जे भोगा खलु केई ८-१८-४२२
जोए करणे सण्णा ११-२-५५७
जोगणिमित्तं गहणं १०-७५-५३३
जोगेसु मूलजोग्गं १०-४६-५२१
जो ठाणमोणवीरासणेहिं १०-३१-५१७
जो जत्थ जहा लद्धं १०-४०-५१९
जो पुढविकाइजीवे १०-११९-५५१
जो पुढविकायजीवे १०-११८-५५०
जो भुंजदि आधाकम्मं १०-३६-५१८
जं होज्ज वेहिअं ९-५६-४६७
जे पुण गुरुपडिणीया २-३५-६७

झ

झाणेहिं खविय कम्मा ८-७५-४४३

ठ

ठवणा ठविदं जह ५-१०३-२१३
ठविदं ठाविदं चावि ७-४२-३३७
ठाण सयणा सणेहिं य ५-१५९-२३७
ठाणाणि आसणाणि य ८-३-४०७
ठाणे चंकमणा दाणे १०-२३-५१३

ड

डहरिय रिणं तु भणियं ६-१७-२७९

ण

ण करेदि भावणा भाविदो ५-१४५-२३०
णत्थि भयं मरणसमं ३-१२-९३
णमोत्थु धुद पावाणं २-२-४८
ण य परगेहमकज्जे ४-७१-१३७
णव य पदत्था एदे ५-५१-१७५
णव सत्त पंच गाहा ५-७६-१९२
णव कोडी परिसुद्धं ६-६३-३०५
ण बलाउ साउ अट्ठं ६-६२-३०४
ण वशो अवशो ७-१४-३२०
णह रोम जंतुअट्ठी ६-६५-३०६
ण हि तम्हि देसयाले २-५६-७७
णाणं पंचविधं पिअ ५-३१-१६४
णाणं सरणं मे २-६०-७९
णाणं सिक्खदि णाणं ५-१७१-२४२
णाणम्हि दंसणम्हि य २-२१-५९
णाणी गच्छदि णाणी ७-८५-३५५
णाणाचारो एसो ५-९०-२००
णाणुवहिसंजमुवहिं १-१४-२३
णाभि अधोणिग्गमणं ६-७७-३१२
णामट्ठवणं दव्वं ७-४०-३३६
णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते ७-१७-३२२
णामट्ठवणादव्वे कालेय ७-३७-३३४
णामट्ठवणादव्वे ७-१३१-३७९
णामट्ठवणा दव्वे ७-१११-३७०
णामट्ठवणा दव्वे ७-१४७-३८७
णामट्ठवणआदव्वे खेत्ते ७-१७-३२२
णामट्ठवणा दव्वं ७-४०-३३६
णामाणि जाणि काणि ७-४१-३३७
णामादीणं छण्हं १-२७-३४
णिक्कसायस्स दंतस्स २-१०-६८-८३
णिक्कूडं सविसेसं ७-१७०-३९७
णिक्खेवणं च गहणं ५-१०४-२०८
णिच्चिदरधादु सत्त य ५-२९-१६१
णिज्जत्ती णिज्जुत्ती ७-१८८-४०५
णिंदामि णिंदणिज्जं २-१९-५८
णिम्ममो णिरहंकारो २-६७-८३
णिव्वाणसाधए जोगे ७-११-३१९
णिस्संकिद णिक्खंकिद ५-४-१४३
णिस्सेणीकट्ठादिहि ६-२३-२८२
णीचं ठाणं णीचं ५-१७७-२४६
णेरइय देवमाणुस ७-४८-३४१
णेत्तस्संजणचुण्णं ६-४१-२९३
णेहो उप्पिदगत्तस्स ५-३९-१७०
णो कप्पदि विरदाणं ४-५९-१२९
णो इंदिय पणिधाणं ५-१०३-२०८
णो वंदिज्ज अविरदं ७-९१-३५७
ण्हाणादिवज्जणेण य १-३१-३९
ण च एदि विणिस्सरिदुं ९-११०-४९३
णंदीसरो य अरुणो १२-३४-५९९
णडभडमल्लकहाओ ९-९०-४८४
ण य दुम्मण य विहला ९-७४-४७६
ण य होदि णयणपीडा १०-२२-५१३
णवकोडीपरिसुद्धं ९-४५-४६२
ण वि ते अभित्थुवंति ९-५१-४६५
ण सद्दहदि जा एदे १०-१२०-५५२
ण हु तस्स इमो लोओ १०-३८-५१९
णाऊण लोगसारं ८-२९-४२६

णाण विण्णाणसंपण्णो	१०-७७-५३४	तम्हा चंदयवेज्झस्स	२-४९-७४	तेणिक्क मोससारक्खणेसु	५-१९९-२५६
णाणस्स दंसणस्स य	१२-१८५-७०३	तम्हा तिविहेण तुमं	५-१३८-२२७	ते पुणु धम्माधम्मा	५-३५-१६७
णाणं करणविहीणं	१०-९-५०६	तम्हा सव्वपयत्तेण	७-८८-३५६	ते रिक्खिय माणुस्सि य	५-१६०-२३८
णाणं पयासओ तओ	१०-८-५०५	तरुणो तरुणीए सह	४-५८-१२९	ते लोक्क पूयणीए	४-१-९६
णाणवर मारुदजुदो	८-५७-४३६	तव्विवरीदं मोक्षं	५-११७-२१६	तेसिं अहिमुहदाए	७-७१-३५०
णामेण जहा समणो	१०-११०-५४६	तवसुत्तसत्तएगत्त	४-२८-११२	तेसिं तेव वदाणं	५-९८-२०४
णिक्कित्त सत्थ दंडा	९-३७-४६०	तस थावरा य दुविहा	५-१३८-१६२	तेसिं पंचण्हं वि य	५-९९-२०५
णिक्खित्तु विदियमेत्तं	११-२२-५७१	तह दिवसियरादिय	७-१६४-३९४	तण रुक्खहरिदछेदण	९-३५-४५९
णिग्गंथमहरिसीणं	९-६-४४८	तं होदि सयंगालं	६-५८-३०१	तत्तीरालिय देहो	१२-२०६-७४०
णिच्चं च अप्पमत्ता	९-९६-४८७	तं पढिदु मसज्झाये	५-८१-१९५	तत्तो परं तु गेवेज्जं	१२-१३९-६७०
णिच्चिदरधादु सत्त य	१२-६३-६१९	तासिं पुण पुच्छाओ	४-५७-१२८	तत्तो परं तु णियमा देवा	१२-१०२-६५४
णिज्जरियसव्व कम्मो	८-५९-४३६	तित्थय कहियं अत्थं	५-टि०	तत्तो परं तु णियमा उव०	१२-१३-६६८
णिज्जावगो य णाणं	१०-७-५०५	तित्थयराणं पडिणीओ	२-३०-६४	तत्तो परं तु णियमा तव०	१२-१३५-६६९
णिद्दं जिणेहि णिच्चं	१०-८१-५३५	तिण कट्ठेण य अग्गी	२-४४-७१	तत्तो परं तु णियमा	१२-१३७-६७०
णिद्दाणिद्दा पयला	१२-१८८-७१०	तिण्णि व पंच व सत्त व	४-७३-१३८	तत्तो विसेस अहिया	१२-१७४-६९७
णिट्ठविदकरणचरणा	९-१११-४९७	तियरण सव्व विसुद्धो	७-१८५-४०४	तत्तो संखेज्ज गुण्णा	१२-१७६-६९८
णिम्मालिय सुमिणाविय	९-८-४४९	तिरदणपुरुगुणसहिदे	६-१-२७०	तत्थ जरामरणभय	८-१६-४२१
णिरियाऊ तिरियाऊ	१२-१७३-७१५	तिलचाउण उसणोदय	५-टि०-२९९	तत्थणु हवंति जीवा	८-२५-४२५
णिरयेहि णिगगदाणं	१२-१२०-६६३	तिल तंडुल उसिणोदयं	६-५४-२९९	तदियाए पुढवीए	१२-१६-५८९
णिरियेसु असुहमेयंत	८-३०-४२६	तिव्वो रागो य दोसो य	७-४९-३४१	तम्हा कम्मासवकारणाणि	८-४८-४३२
णिवदि विहूणं खेत्त	१०-६०-५२७	तिविहं तिरयण सुद्धं	६-१०१-३६४	तम्हा अहमवि णिच्चं	८-७१-४४२
णिव्वदिगमणे रामत्तणे	१२-१४०-६७१	तिविहं भणंति मरणं	२-२३-६०	तम्हा पुढवि समारंभो	१०-११७-५४९
णिस्संगो णिरारंभो	१०-१०९-५४७	तिविहा य होदि कंखा	५-५२-१७६	तवेण धीरा विधुणंति पावं	१०-१०-५०६
णिस्सेसदेसिदमिदं	९-५-४४७	तिविहो य होदि धम्मो	७-५६-३४४	तस काइआ असंखा	१२-१६५-६९३
णो कप्पदि विरदाणं	१०-६१-५२७	तिहुयण मन्दरमहिदे	५-१-१४१	तस्स ण सुज्झइ चरणं	१०-२६-५१५
त		तुज्झं पादपसाएणं	४-२५-११०	तह सयण सोधणं पि य	१०-१०६-५४५
तत्थण कप्पइ वासो	४-३४-११६	तेण च पडिच्छिदव्वं	७-१०९-३६९	तह चंडो मणहत्थी	९-१०९-४९३
तम्हा चेट्ठिदुकामो	५-१३३-२२५	तेणिदं पडिणिदं चावि	७-१०४-३६६	तिण्हं खलु कायाणं	१२-१२३-६६४

तिण्हं दोण्हं दोण्हं १२-९५-६५०
तिण्हं सुह सजोगो ११-३-५५८
तिण्हं खलु पढमाणं १२-२००-७२८
तिण्णि दु वास सहस्सा १२-६६-६२१
तिण्णि य दुवेय सोलस १२-१२०-७१२
तिण्णेव गाउ आइं १२-३२-५९८
तिरिय गदीए चोद्दस १२-१५८-६८३
ते इंदियेसु पंचसु ९-१०६-४९२
ते अजरमरुजममर १२-१४५-६७३
ते छिण्णणेहबंधा ९-७०-४७५
तेऊ तेऊ तह तेऊ १२-९४-६४९
तेण परं पुढवीसु य १२-११९-६६३
ते णिम्ममा सरीरे ९-१८-४५२
ते लद्धाणाण चक्खू ९-६२-४६९
ते सव्वगंथ मुक्का ९-१५-४५१
तेहिं असंखेज्जगुणा १२-१८०-६९९
तेहिंतो णंतगुणा १२-१७१-६९६
ते होंति णिव्वियारा ९-९३-४८६

थ

थेरं चिर पव्वइयं ४-६०-१३०
थोवह्मि सिक्खिदे जिणइ १०-६-५०४
थोवा विमाणवासी १२-१७९-६९९
थोवा तिरिया पंचेंदिया १२-१७३-६९७
थोवा दु तमतमाए १२-१७२-६९६

द

दव्वगुणखेत्तपज्जय ७-५०-३४२
दव्वं खेत्तं कालं ६-७१-३०९
दव्वादिवदिक्कमणं ४-५०-१२४
दव्वुज्जोवो जोवो ७-५४-३४३
दव्वे खेत्ते काले १-२६-३४
दंसणणाणचरित्ते तवविणय ७-९५-३६०
दंसणणाणचरित्ते ५-२-१४२
दंसणणाणचरित्ते उवओगे ७-१७७-४००
दंसणणाणचरित्ते णिज्जुत्ता ७-५९-३४५
दंसणणाणचरित्ते ५-२२२-२६९
दंसणणाणचरित्ते तवविणय ७-९३-३५९
दंसणणाणचरित्ते तवविणओ ७-८३-३५५
दंसणचरणविसुद्धी ५-३-१४३
दुसण चरणो एसो ५-६९-१८४
दंसणचरणुवभट्टे ५-६५-१८४
दंसणचरणविवण्णे ५-६४-१४८
दंसणणाणे विणओ ५-१६७-२४१
दायगपुरदो कित्ती ६-३६-२९१
दाहोपसमणतण्हा ७-५८-३४५
दिट्ठमदिट्ठं चावि य ७-१०५-३६७
दिवसियरादियपक्खिय ४-५४-१२७
दिवसे पक्खे मासे ६-१४-२७७
दिसदाह उक्कपडणं ५-७७-१९३
दीहकालमयं जंतू ७-६-३१७
दुविहं च होइ तित्थं ७-५७-३४५
दुविहा च होंति जीवा ५-७-१४७
दुविहा य तवाचारो ५-१४८-२३१
दुविहा य वि उस्सग्गो ५-२०९-२६२
दुविहो सामाचारो ४-३-९८
दुविधा तसा य उत्ता ५-२१-१५७
देवद पासंदुट्ठं ६-६-२७३
देवस्सियणियमादिसु १-२८-३६
देसत्ति य सव्वत्ति य ६-१९-२८०
दोणदं तु जधाजादं ७-१००-३६३
दंतेंदिया महरिसी ९-११५-४९५
दंभं परपरिवादं १०-६६-५३०
दव्वं खेत्तं कालं भावं १०-११४-५४८
दव्वं खेत्तं कालं भावं च १०-२-५०२
दव्वे खेत्ते काले १०-८४-५३६
दव्वे खेत्ते काले भावे य १०-१४-४११
दसविहमव्वंभमिणं १०-१०७-५४५
दस दो य भावणाओ ८-७३-४४२
दिट्ठ परमट्ठसारा ९-४१-४६१
दुक्खभयमीणपउरे ८-३७-४२९
दुग्गम दुल्लहलाभा ८-३२-४२७
दुज्जणवयण चडयणं ९-१०१-४८९
दुल्लहलाहं लद्धूण ८-६९-४४०
देवा य भोगभूमा १२-८८-६४६
देवेसु णारयेसु य १२-७३-६२६
देसकुलजम्म रूवं ८-६६-४३९
देहस्स य णिव्वत्ती १२-९-५८४
देहि त्ति दीणकलुणं ९-५२-४६५
देहे णिरावयक्खा ९-४३-४६२

ध

धम्म कहा कहणेण य ५-६७-१८५
धम्मं सुक्कं च दवे झायदि ७-१७५-४००
धम्मं सुक्कं च दुवे ७-१७३-३९९
धम्मा वासय जोगे ५-१५४-२३४
धादीदूदणिमित्ते ६-२६-२८४

धीरेण वि मरिदव्वं २-६४-८१
धम्ममणुत्तरमिमं ९-१२-४५०
धम्माधम्मागासा ८-२३-४२४
धारणगहणसमत्था ९-६६-४७०
धारंधयार गुविलं ९-९९-४८८
धिग्भवदु लोगधम्मं ८-२८-४२६
धित्तेसि मिंदयाणं ८-४३-४३१
धिद्धी मोहस्स सदा ८-४०-४३०
धिदिधणिदणिच्छिदमदी ९-१११-४९४
धीरो वइरग्गपरो १०-३-५०३
धूवणवमणविरेयण ९-७२-४७६

प

पउमिणि पत्तं व जहा ५-१३०-२२४
पगदा असओ जम्हा ६-६६-३०७
पच्चक्खाओ पच्चक्खाणं ७-१३२-३८०
पच्चखाण उत्तरगुणेसु ७-१३५-३८२
पच्चक्खाणणिजुत्ती ७-१४६-३८६
पच्चुग्गमणं किच्चा ७-४०-११९
पच्छा संथुदि दोसो ६-२७-२९२
पंचवि इंदिय मुंडा ३-१४-९४
पंच छ सत्त हत्थे ४-७४-१३९
पंचरसपंचवण्णा ५-२२१-२६८
पंच य महव्वयाइं १-२-११
पंच विहो खलु भणिओ ७-५३-३४३
पंचत्थिकाय छज्जीवणिकाये ५-२०२-२५८
पंच महव्वय गुत्तो ७-८९-३५७
पंचेव अत्थिकाया २-१८-५७
पजिलिहिय अंजलिकरो ७-३५-३३३
पडिसेवा पडिसुणणं ५-२१७-२६६
पडिलेहिऊण सम्मं ४-४९-१२४
पडिरूवो काइंगवाचिग ५-टि०-२४९
पडिकमओ पडिकमणं ७-११३-३७१
पजिकमिदव्वं दव्वं ७-११५-३७२
पडिरूवकाय संफास ५-१७८-२४६
पडिकमणं देवसियं ७-११२-३७०
पडिकमणणिजुत्ती ७-१३०-६७९
पणिधाणंपि व दुविहं ५-१०१-२०६
पणिधाण जोगजुत्तो ५-१००-२०५
पढमं सव्व विचारं ३-१३-९३
पदिठवणा समिदी वि ५-१२८-२२३
पयडीवासणगंधे १-१९-२८
परिणामजीवमुत्तं ७-४४-३३८
परियट्टणदो द्विदि ७-टि०-३३८
परियट्टणाय वायण ५-१९६-२५४
परिवार इड्ढि सक्कार ७-१८०-४०१
पलियंकणिसेज्जगदी ५-८४-१९७
पविसंते य णिसीही ४-६-९९
पादुक्कारो दुविहो ६-१५-२७८
पागादु भायणाओ ६-११-२७६
पादोसिय वेरत्तिय ५-७३-१८९
पाणिवह मुसावाए ७-१५८-३९१
पाणिवहमुसावाद ५-९१-२०१
पाणीए जंतु वहो ६-७८-३१२
पापविसो त्ति अपरिणाम ५-१८२-२४८
पामिच्छे परियट्टे ६-४-२७१
पायच्छित्तं विणयो ५-१६३-२३९
पायच्छित्तं वि तवो ५-१६४-२३९
पासंडेहि य सद्धं ६-१०-२७६
पाहुणविण उवचारो ४-१९-१०७
पाहुणवत्थव्वाणं ४-२१-१०८
पाहुडियं पुण दुविहं ६-१३-२७७
पियधम्मो दढधम्मो ४-६२-१३१
पिहिदंलंछिदयंवा ६-२२-२८२
पुढविदगतेऊवाऊ ५-२१९-२६७
पुढवी आऊ य तहा ६-५३-२९९
पुढवी जलं च छाया ५-टि०-१६७
पुढवी य वालुगा ५-९-१४८
पुढवी आऊ तेऊ ५-८-१४८
पुण्णस्सासवभूदा ५-३८-१६९
पुरिम चरिमा दु जम्हा ७-१२९-३७९
पुव्वकद कम्म सडणं ५-४८-१७४
पुव्वं कद परियम्मो २-४७-७३
पुव्वं चेव य विणओ ७-७८-३५३
पुव्वी पच्छा संथुदि ६-२७-२८५
पूयावयणं हिदभासणं ५-१८०-२४७
पेसुण्णहास कक्कस १-१२-२२
पोराणय कम्मरयं ७-८६-३५५
पोराण कम्मखवणं ५-१६६-२४१
पक्खीण उक्कसं १२-७०-६२४
पच्चयभूदा दोसा १०-९३-५४०
पढमक्खे अंतगदे ११-२३-५७२
पढम पुढवि मसण्णी १२-११२-६६०
पढम विउलाहारं १०-१०५-५४४
पढम सील पमाणं ११-२१-५७०

पढमाए पुढवीए १२-१४-५८७
पढमादिय मुक्कस्सं १२-७५-६३०
पणयं दस सत्तधियं १२-८०-६३७
पणवीस जोयणाणं १२-१०९-६५८
पणवीस असुराणं १२-२१-५९३
पत्तेय देह वणप्फइ १२-१२५-६६५
पत्तेय रसा चत्तारि १२-७०-६२४
पब्भारकंदरेसु य ९-२३-४५५
पयणं पायणमणुमणाणं १०-४१-५१९
पयणं व पायणं वा १०-३७-५१८
पयणं व पायणं वा ९-५३-४६६
पयडिट्ठिदि अणुभाग १२-१८४-७०२
परिवायगाण णियमा १२-१३२-६६८
पलियंकणि सिज्जगदा ९-२९-४५७
परमट्ठियं विसोहि १०-५६-५२५
पल्लट्ठभागपल्लं च १२-७७-६३१
पल्लो सायर सूई १२-८५-६४३
पवरवरधम्मतित्थं ९-१०-४४९
पंच महव्वयधारी ९-१०५-४९१
पंच णव दोण्णि
अट्ठावीसं १२-१८६-७०४
पंचय इंदियपाणा १२-१५०-६७५
पंचमि आणद पाणद १२-१०८-६५७
पंचेंदिया दु सेसा १२-८९-६४६
पंचादी वेहिं जुदा १२-७९-६३६
पंचमिए पढवीए १२-१८-५९१
पज्जत्तापज्जत्ता वि १२-१५३-६७७
पज्जत्तीपज्जत्ता १२-७-५८२
पज्जत्ती देहो वि य १२-२-५७९
पाणादिवादविरदे ११-१७-५६७
पाणिवह मुसावादं ११-९-५६३
पाणिवह मुसावादं ९-१४-४५१
पायच्छित्तं आलोयणं च १०-३९-५१९
पिंडं सेज्जं उवधिं १०-१६-५०९
पिंडोवधि सेज्जोओ १०-२५-५१५
पुढविदगागणिमारुद ११-४-५५८
पुढविदगागणिमारुय ११-१२-५६४
पुढवी कायिय जीवा १०-११६-५४९
पुढवीसंजमजुत्ते ११-७-५६०
पुढवीय समारंभं ९-३६-४५९
पुव्वरदिकेलिदाइं ९-८६-४८१
पोसह उवहो पक्खे १०-२४-५१४

फ

फासुयभूमि पएसे १-३२-४०
फासुयमग्गेण दिवा १-११-२१
फूयणपज्जलणं ६-५१-२९८
फलकदमूलवायं ९-५९-४६८
फासुगदाणं फासुग १०-४५-५२१
फासे रसे य गंधे १२-५५-६१३

ब

बज्झब्भंतर मुवहिं २-४-४९
बलवीरिय मासेज्ज ७-१६६-३९४
बलवीरिय सत्तिपरक्कम ५-टि०-२६५
बलदेव चक्कवट्टी ५-५३-१७७
बत्तीसा किर कबला ५-१५३-२३४
बहुपरि साडणमुज्झि अ ६-५६-३००
बाल मरणाणि बहुसो २-३७-६८
बाबीस सत्ततिण्णि य ५-२४-१६०
बाबीसं तित्थयरा ७-३२-३३२
बाहिर जोग विरहिओ २-५३-७५
बीजे जोणीभूदे ५-टि०-१५६
बीहीकूरादीहिं य ६-१८-२८०
बारसंगे ७-१०-३१९
वध जायणं अल्लाहो ५-५८-१७९
बारस विधह्मिवि तवे ५-२१२-२६३
बहुगं पि सुदमधीदं १०-४२-५२०
बंभे य लंतवे वि य १२-२४-५९५
बंभे कप्पे बंभुत्तरे १२-९९-६५२
बाबीस सत्त तिण्णि य १२-१६६-६९५
बोधीय जीवदव्वादियाइं ८-७२-४४२
वीभच्छं विच्छुइयं ९-८०-४७९
बिहेदव्वं णिच्चं १०-७१-५३१

भ

भत्त पइण्णाइंगिणि ५-१५२-२३३
भत्तीए जिणवराणं ७-६८-३४९
भत्ते पाणे गामंतरे य ७-१६२-३९३
भत्ते पाणे गामंतरे य ७-१५९-३९२
भत्ती तवोधियम्हि ५-१७४-२४४
भावुज्जोवो णाणं ७-५२-३४३
भावेण संपजुत्तो ७-१२४-३७७
भासा असच्चमोसा ७-६६-३४८
भासाणुवत्तिछंदाणु ७-८१-३५४
भिक्खाचारियाए पुण ६-७४-३१०
भूयत्थेणाभिगदा ५-६-१४६

भत्तीए मए कहियं ९-१२३-४९९
भरहेरावद मणुया १२-१७७-६९८
भागमसंखेज्जदिमं १२-२८-५९७
भावेण अणुवजुत्तो १७-१२३-३७६
भावविरदो दु विरदो १०-१०४-५४४
भाव समणा हु समणा १०-१११-५४७
भावुग्गमो य दुविहो १०-४४-५२०
भावेंति भावण रदा ९-४२-४६१
भासं विणयविहूणं ९-८७-४८२
भिक्कं वक्कं हियय़ं १०-११३-५४८
भिक्खं सरीरजोग्गं १०-५२-५२४
भिक्कं चर वस रण्णे १०-४-५०३
भोत्तूण गोयरग्गे ९-६१-४६८

म

मग्गुज्जोवुवओगा ५-१०५-२०९
मग्गो मग्गफलं ति य ५-५-१४५
मच्छुवत्तं मणोदुट्ठं ७-१०३-६३५
मज्जण मंडण वादी ६-२८-२८६
मज्झिगया दिढबुद्धी ७-१२८-३७८
मणवचकाय पउत्ती ५-१३४-२२६
मणवयणकायजोगेणुप्पण्ण ४-५५-१२७
ममत्तिं परिवज्जामि २-९-५२
महिलालोयण पुव्वरदि ५-१४३-२२९
मरणे विराहिए देव दुग्गई २-२५-६१
मादु सुदाभगिणीव य १-८-१८
मिच्छत्त पडिक्कमणं ७-११६-३७३
मिच्छत्तवेदरागा ५-२१०-२६२
मिच्छत्ताविरदीहि य ५-४४-१७२
मिच्छत्तासवदारं ५-४२-१७१
मिच्छत्तं अविरमणं ५-४०-१७१
मिच्छत्तवेदणीयं ७-६४-३४७
मिच्छादंसणरत्ता २-३३-६७
मुक्कट्ठी जिदणिद्दो ७-१५०-३८८
मूगं च दद्दुरं चावि ७-१०६-३६७
मूलगुणेसु विसुद्धे १-१-९
मूलग्ग पोरबीजा ५-१६-१५३
मूलगुणे उत्तरगुणे २-१४-५४
मणवयणकायमंगुल ११-१०-५६३
मणवयणकायगुत्तिंदियस्स ८-५१-४३४
मणगुत्ते मुणिवसहे ११-६-५६०
मण बंभचेर वचिबंभचेर १०-१०३-५४४
मणुसगदीए थोवा १२-१७०-६९६
मच्छाण पुव्वकोडी १२-६९-६२२
मरणभयभीरुआणं १०-९८-५२२
मरणभयम्मि उवगदे ८-७-४०९
मसुरिय कुसग्गबिंदु १२-४८-६०८
मंसट्ठिसिंभवसरुहिर ८-३४-४२८
माणुस तिरियाय तहा १२-१२९-६६७
मादा य होदि धूदा ८-२६-४२५
मादु पिदु सयण संबंधिणो ८-९-४१०
मायाए बहिणीए १०-१०१-५४३
मा होह वासगणणा १०-७४-५३२
मिच्छत्ता विरदीहिं य ८-५२-४३४
मिच्छत्तेणा छण्णो ८-१३-४११
मिच्छादंसणअविरदि १२-१८२-७००
मिच्छादिट्ठी सासादणो १२-१५४-६७७
मुत्ता णिरावक्खा ९-३१-४५७
मुहणयणदंतधोवण ९-७१-४७५
मूलं छित्ता समणो १०-२७-५१५
मोत्तूण जिणक्खादं ८-३६-४२९
मोहग्गिणा महंतेण १०-८५-५३७
मोहस्स सत्तरिं खलु १२-२०१-७२९
मोहस्सावरणाणं १२-२०५-७३६

र

रत्तवडचरग तावसपरिहत्ता ५-६२-१८३
रत्तरडचरगतावसपरिहत्ता-दीणमण्ण ५-५४-१७७
रागदोसे णिरोहित्ता ७-२२-३२७
रागद्दोस कसाए ७-३-३१६
रागादिहिं असच्चं १-६-१७
रागी बंधइ कम्मं ५-५०-१७५
रागेण व दोसेण व ७-१४२-३८५
रागेण व दोसेण व २-२२-६०
रादिणिए उणरादि ५-१८७-२५०
रादो दु पमज्जित्ता ५-२६-२२२
रायबंधं पदोसं च २-८-५१
रायाचोरादीहिं ६-२४-२८२
रिग्वेद सामवेदा ५-६१-१८२
रुहिरादिपूयमंसं ५-७९-१९४
रोदण ण्हावणभोयण ४-७२-१३७
रजसेदाणमगहणं १०-१९-५१२
रंजेदि असुहकुणपे ८-३९-४३०
रत्तिंचर सउणाणं ९-२५-४५५
रयणप्पहाण जोयण १२-१११-६५९

रागो दोसो मोहो ८-३८-४२९
रागो दोसो मोहो ९-११२-४९४
रागो दोसो मोहो ९-११४-४९५
रुद्धासमवस्स एवं ८-५४-४३५
रुद्धेसु कसायेसु अ ८-४९-४३३
रोगाणं आयदणं ९-७७-४७८

ल

लद्धं अलद्ध पुव्वं २-६३-८१
लेवण मज्जण कम्मं ६-५२-२९९
लोइय वेदिय सामाइएसु ५-५९-१७९
लोगस्सुज्जोवयरा ७-५५-३४४
लोगाणु वित्ति विणओ ७-७९-५५३
लोगुज्जोए धम्मतित्थयरे ७-३८-३३५
लोयदि आलोयदि ७-३९-३३६
लोयालोयपयासं ७-टि०-३४३
लद्धूण इमं सुदणिहिं ९-१०४-४९१
लद्धेसु वि एदेसु य ८-६७-४३९
लवणे कालसमुद्दे १२-४०-६०३
लिंगं वदं सुद्धी ९-३-४४६
लोओ अकिट्टिमो खलु ८-२२-४२३
लोस्साझाणतवेण य १०-११-५०७
लद्धे ण होंति ९-५०-४६४

व

वंजण मंगं च सरं ६-३०-२८८
वत्थाजिणवक्केण य १-३०-३८
वंदणणिज्जुत्ती पुण ७-११०-३६९
वधजायणं अलाहो ५-५८-१७९
वणदाह किसिमसिकदे ५-१२४-२२१
वसहीसु य पडिबद्धो ७-टि०-३५९
वादर वादर वादर ५-टि०-१६७
वादुब्भामो उक्कलि ५-१५-१५२
वायणपडिछण्णाए ४-१२-१०३
वारस विधम्हि वि तवे ५-२१२-२६३
वारसंगे जिणक्खादं ७-१०-३१९
वाखित्त पराहुत्तं तु ७-९६-३६१
विगदिंगाल विधूमं ६-६४-३०५
विज्जा साधितसिद्धा ६-३८-२९२
विज्जाचरणमहव्वद ७-१७८-४०१
विजणसुद्धं सुत्तं ५-८८-१९९
विणएण तहणुभासा ७-१३८-३८३
विणएण सुदमधीदं जदिवि ५-८९-२००
विसएण सुदमधीदं ५-टि०-१९७
विणएण विप्पहीणस्स ५-१८८-२५१
विणओ मोक्खद्दारं ५-१८९-२५१
विदिगिंछा वि य दुविहा ५-५५-१७८
वियतिय चउक्कमासे १-२९-३७
विरदो सव्व सावज्जं ७-२३-३२८
विस्समिदो तद्दिवसं ४-४४-१२१
वीरो जरमरणरिऊ २-७०-८४
वीरेण वि मरिव्वं २-टि०-८१
वेज्जेण य मंतेण य ७-टि०-३५९
वेयण वेज्जावच्चे ६-६०-३०२
वोसरिद बाहु जुगलो ७-१४९-३३८
वज्जिय तेदालीसं १२-१९९-७२६
वड्ढदि वोही संसग्गेण १०-६३-५२८
वेदसीलगुणा जम्हा १०-११२-५४७
वंदित्तु देवदेवं १०-१-५०१
वंदित्तु जिनवराणं ९-१-४४५
ववहार सोहणाए १०-५५-५२५
वस-मज्ज-मस सोणिय ९-७९-४७८
वसधिसु अप्पडिबद्धा ९-२२-४५४
वसुधम्मि रि विहरंता ९-३२-४५८
वरवण्णगंधरसफासा १२-१२-५८६
वरं गण-पवेसादो १०-९२-५४०
वादं सीदं उण्हं ९-१००-४८९
वारसयावेदणीए १२-२०२-७३१
वारस वासा वेइंदियाण १२-६७-६२१
वारस वास सहरसा १२-६४-६२०
वारसविधम्हि य तवे १०-७९-५३४
वारुणीवर खीरवरो १२-३९-६०२
वालेसु य दाढीसु य १२-११५-६६१
विकहा विसोत्तियाणं ६-९१-४८५
विदियाए पुढवीए १२-१५-५८८
विसयेसु पधावंता ९-१०७-४९२
विहेदव्वं णिच्चं १०-७१-५२१
वे इंदियादिभासा १२-८६-६४४
वेज्जावच्च विहूणं १०-६५-५२९
वेज्जा दुरभेसज्जा १०-५०-५२४
वे सत्त दस य चोद्दस १२-७८-६३२
वेउव्वियं शरीर देवाणं १२-१३-५८६

स

सगबोध दीवणिज्जिद ६-टि०-३१४
सच्छंद गदागदीसय ४-२९-११२
सच्चं असच्चमोसं ५-११०-२११

सच्चित्ताचित्ताणं	१-१७-२६
सच्चित्त पुढविआउ	६-४६-२९६
सच्चित्तेण व पिहिदं	४-४७-२९७
संजमतवगुणसीला	४-२०-१०७
सज्झाये पट्ठवणे	५-७४-१९०
सज्झायं कुव्वंतो	५-२१३-२६४
सड्जादि जीवसदे	१-१८-२७
सत्तभए अट्ठभए	२-१६-५५
सद्दरसरूबगंधे	५-१०२-२०६
सदा आयार विद्दण्हू	७-८-३१८
सपडिक्कमणो धम्मो	७-१२५-३७७
सम्मं मे सव्वभूदेसु	३-३-८८
सम्मं मे सव्वभूदेसु	२-६-५०
सम्ममत्तणाणसंजम	७-१८-३२४
समणो मेत्ति य पढमं	२-६२-८०
समदा थवो य वंदण	१-२२-३०
समदा सामाचारो	४-२-९७
सममत्तेण सुदेण य	५-३७-१६९
समणं वंदिज्ज मेधावी	७-९४-३६०
सम्मद्दंसणरत्ता	२-३४-६६
सयडं जाण जुग्गं वा	५-१०७-२१०
सर वासेहिं पडंते	२-१३१-२२५
सव्वं पाणारंभं पच्चक्खामि	२-५-५०
सव्वं पाणारंभं	३-२-८८
सव्वं दुक्खप्पहीणाणं	२-१-४७
सव्वं आहारविहिं सण्णाओ	३-४-८९
सव्वं आहारविहिं पच्च	३-६-९०
सव्वं केवलि कप्पं	६-६३-३४७
सव्वमिदं उवदेसं	२-५५-७६
सव्वाभिहडं चदुधा	६-२१-२८१
सव्वावास णिजुत्ती	७-६८३-४०३
सव्वो वि य आहारो	७-६४४-३०६
सव्वोवि पिंडदोसो	६-६९-३०८
सव्वेसणं च विद्देसणं च	६-७०-३०९
ससिणिद्धेण य देयं	६-४५-२९६
सहसाणा भोइय दुप्प	५-१२३-२१९
साणकिविणतिथि मांहण	६-३२-२८९
सामाइये कदे सावयेण	७-३१-३३२
सामाइयम्हि दु कदे	७-१३०-३३१
सामाइयणिज्जुत्ती वोच्छमि	७-१६-३२२
सामाइय णिज्जुत्ती एसा	७-३६-३३४
सामाइय चउबीसत्थव	७-१५-३२१
सायरगो वल्लहगो	२-८७-७४
सावज्जजोग परि वज्जणट्ठं	७-२९-३३१
सावज्जजोग्ग वयणं	५-१२०-२१८
संकिद मक्खिदणिक्खिद	६-४३-२९४
संखो गोभी भमरा	५-२२-१५८
संगहणुग्गहकुसलो	४-३७-११७
संहमणाणुवकरणे	४-१०-१०२
संजोयमूलं जीवेण	२-१३-५४
संजोयणाय दोसो	६-५७-३०१
सत्थग्गहणं विसभक्खणं च	२-३८-६८
संभावणाय सच्चं	५-११५-२१४
संजमजोगे जुत्तो	५-४५-१७२
संवहरणं किच्चा	६-४८-२९७
संवेगो वेरग्गो	५
साहंतिजं महत्थं	५-९७-२०४
संवच्छर मुक्कस्सं	७-१५५-३९०
संसय वयणी य तहा	५-११९-२१७
संसार चक्कवालम्मि	२-४३-७१
संथारवासयाणं	४-५१-१२४
साहूण णमोक्कारं	७-टि०-३२०
सिद्धाण णमोक्कारं	७-टि०-३१८
संजमतवगुणतवशीला	४-२०-१०७
सिद्धिप्पासादवदं	५-२१४-२६४
सिद्धे पढिदे मंते	६-३९-२९३
सिस्साणुग्गह कुसलो	४-३५-११६
सीलेणवि मरिदव्वं	२-६५-८२
सीस पकंपिय मुइयं	७-१६८-३९६
सुत्तं गणहरकहिदं	५-८०-१९५
सुत्तत्थं जप्पंतो	५-टि०-१९७
सुत्तत्थं जप्पंतो	५-८६-१९८
सुहदुक्खे उबयारो	४-२२-१०८
सुहुम किरियं सजोगी	५-२०८-२६२
सूरुदयत्थ मणादो	६-७३-३१०
सेज्जोग्गासणिसेज्जो	५-१९४-२५३
सेराल पणग केण्णग	५-१८-१५५
सूदी सुंडी रोगी	६-४९-२९७
सो णाम बाहिर तवो	५-१६१-२३८
सक्कीसाणा पढमं	१२-१०७-६५७
सक्को सहग्गमहिसी	१२-१४२-६७१
सगमाणेहिं विभत्ते	११-२४-५७३
सच्चवयणं अहिंसा	९-१३-४५१
सज्झायं कुव्वंतो	१०-७८-५३४
सज्झायझाणजुत्ता	९-२८-४५६
सण्णाहिं गारवेहिं	८-४४-४३१
सण्णि असण्णीय तहा	१२-३०-६६७

सत्त दु वास सहस्सा १२-६५-६२१
सत्तमिए पुढवीए १२-२०-५९२
सत्ताधिय सप्पुरिसा ९-९५-४८७
सत्तेताल सहस्सा १२-५६-६१४
समचउरसणग्गोहा १२-४९-६०९
समणोत्ति संजदो त्ति य ९-१२०-४९७
सम्मत्तादो णाणं १०-१२-५०७
सम्मद्दंसणणाणेहिं १२-१४४-६७२
सम्मदिट्ठिस्स वि १०-४९-५२२
सम्मुच्छिमा य मणुया १२-१७८-६९८
सय अडयाल पईणं १२-१९८-७२५
सयणस्स परियणस्स ८-८-४०९
सव्वजगस्स हिदकरो ८-६०-४३७
सव्वमपजत्ताणं १०-१२२-६६४
सव्वट्ठादो य चुदा १२-१४१-६७१
सव्वं पि हु सुदणाणं १०-१४-५०८
सव्वारंभणियत्ता ९-१६-४५२
सव्वे वि तेउकाया १२-१२४-६६५
सव्वेसिं अमणाणं १२-८३-६३९
सव्वेपि पुव्वभंगा ११-२०-५६९
संखादीदाऊणं संकमणं १२-११८-६६६
संखादीदाऊणं १२-१३१-६६७
सखादिदाओ खलु १२-१२७-६६६
संखावत्तयजोणी १२-६१-६१८
संखेज्जमसंखेज्जं १२-८४-६४०
संखेज्जमसंखेज्जम १०-९०-५३९
संखो-गोभी-भमरादिया १२-१४९-६७५
संखो पुण वारसजोयणाणि १२-३०-५९८
संगडणं गोवंगं १२-१९४-७१८
संजोग विप्पजोगा ८-१९-४२२
संजममविराधंतो १०-५७-५२६
संठाविउण रूवं ११-२५-५७४
संवरफलं तु णिव्वाणं ८-५३-४३४
संसारविसमदुग्गे ८-६४-४३८
संसारम्मि अणंते ८-६५-४३८
संसारे संसरंतस्स ८-५५-४३५
सादमसादं दुविहं १२-१८१-७११
सामग्गिदियरूवं ८-४-४०८
सावज्जकरणजोग्गं ९-३४-४५८
सारदसयाणुचरिये ९-२७-४५६
साहस्सिया दु मच्छा १२-४२-६०४
साहियसहस्समेयं १२-२९-५९७
सिद्धे णमंसिदूण य ८-१-४०६
सीदलमसीदलं वा ९-४८-४६३
सीदुण्हा खलु जोणी १२-६०-६१८
सीलगुणाणं संखा ११-१९-५६९
सीलगुणालयभूदे ११-१-५५६
सीहा इव णरसीहा ९-२६-४५६
सुक्कमहासुक्केसु य १२-१००-६५३
सुदरयणपुण्णकण्णा ९-६७-४७१
सुरणारयेसु चत्तारि १२-१५९-६८७
सुहुमा वादरकाया १२-१५२-६७६
सुहुमा हु संति पाणा १०-२०-५१२
सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स १२-४७-६०७
सुहुमे जोगविसेसेण १२-२०४-७३५
सूई जहा ससुत्ता १२-८०-५३५
सेयंभवभयमहणी ८-६८-४४०
संजोगविप्पयोगा ८-१९-४२२
सोहम्मी साणेसु य १२-२३-५९४
सेसाणं तु गहाणं १२-८२-६३८
सेयासेयविदण्हू १०-१३-५०८

ह

हत्थी अस्सो खरोढो वा ५-१०८-२१०
हत्थंतरेण बाधे ७-१०८-३६८
हंतूण रागदोसे २-५४-७६
हंदि चिरभाविदावि य २-४८-७४
हरिदाले हिंगुलये ५-१०-१४९
हस्सभयकोहलोहा ५-९३-२०२
हिदमिदमद्दवअणुवीचि ५-टि०-२५०
हिदमिदपरिमिदभासा ५-१८६-२५०
हिंसादिदोसविजुदं ५-११६-२१५
हिंसाविरदी सच्चं १-४-१३
होदि वणप्फदि वल्ली ५-२०-१५७
हयगयरहणरबववाहणाणि ८-५-४०८
हेट्ठामज्झेउवरिं ८-२४-४२४
होऊण तेयसत्ताधिओ ८-२७-४२५
हिंसादिएहिं पंचहि ८-४६-४३२
हेमंते धिदिमंता ९-९७-४८७
होदिम दुगंछा दुविहा १०-६२-५२८
हेदू पच्चयभूदा १०-९४-५४१
हेट्ठिमगेवज्जेसु य १२-२६-५९६
हेमवदवंसयाणं तहेव १२-७१-६२४
हरिरम्मयवंसेसु १२-७२-६२५
होज्जदुसंजमलाभो १२-११७-६६२
होज्जदुणिव्वुदिगणा १२-११८-६६२

●

आचार्य वट्टकेर प्रशस्ति

लेखक–डॉ० फूलचन्द जैन प्रेमी

आयारस्स सारभूदो मूलायारो हि वाचगो । जयदु सिरि-वट्टकेरो बिबुहेहिं य पूजिदो ।। १ ।।

अर्थ—प्रथम अंग आगम आचार/आचारांग का सारभूत मूलाचार है, उसके वाचक, विद्वानों द्वारा प्रशंसित/पूजित आचार्य श्री वट्टकेर स्वामी सदा जयवन्त रहें ।

कण्णाडगम्हि य पदेसय-दक्खिणम्हि, वीयम्हि ईससदी जणएदि अस्सिं ।
ताधे गदे सुरवरे णर-णारि-बंधू, गामो वि सो जणवदो वि विसेस-पुज्जो ।। २ ।।

अर्थ—कर्नाटक प्रदेश के दक्षिण भाग में ईसा की द्वितीय शती इन आचार्य वट्टकेर के जन्म से प्रशंसित होती है, उस प्रान्त के नर-नारी, बंधु सभी आनन्दित होते हैं और ग्राम-जनपदवासी खुशियाँ मनाते हैं ।

सो धारवाड-सुद-सुद-धारएदि, णं अप्प अप्पजण-सोहण-सोहएदि ।
बालो गदो वि सुदधार-धरंतमाणो, सो दक्खिणस्स गरिमस्स महिमस्स सोहा ।। ३ ।।

अर्थ—वह धारवाड का सुत/पुत्र श्रुत की ओर प्रवृत्त होता है । मानो अपने लोगों/आत्मीय जनों/आत्मभाव की सिद्धि के लिए ही प्रयत्नशील होता है । वह बालक होते हुए भी श्रुतधारा अर्थात् परम्परा को प्रवाहित करता है, उससे दक्षिण प्रदेश की गरिमा, महिमा और शोभा परिलक्षित होती है ।

दिक्खं दिअंबर-गुणाण सुमूल-मूलं, धारेदि सो महरिसी णियभाव-भावे ।
आयारपूदरिसी-आइरियो सुभूसो, संयोजिदो चरणदंसण-णाण-मग्गे ।। ४ ।।

अर्थ—दिगम्बर दीक्षा को धारण करके वे मूलगुणों में प्रवृत्त हुए । वे मूलसंघ के भी नायक बने । वे महाऋषि थे, इसीलिए उन्होंने भाव को ही भावित किया, उसमें लीन हुए तथा आचार के पवित्र गुणों से आचार्यपद धारण किया और दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र (रत्नत्रय) के मार्ग पर चलते हैं ।

दुक्कर-तव-चरणपरो परिसह-जय-दोस वज्जियाहारे ।
चित्तमसंगं सददं, विरदं विसद णाणपसारे रत्तो ।। ५ ।।

अर्थ—दुष्कर तप और आचार के पालन में तत्पर, दोषवर्जित आहार ग्रहण करने वाले, सतत् समस्त परिग्रह रहित, विषयों से विरक्त चित्त वाले आचार्य वट्टकेर ज्ञान के प्रसार में निरन्तर अच्छी तरह संलग्न रहते थे ।

कम्मजोगे जुवा णिच्चं सारल्ले य सदा सिसू ।
णाणजोगे सदा बुड्ढो वट्टकेरो विराजदि ।। ६ ।।

अर्थ—आचार्य वट्टकेर कर्मयोग में युवा सदृश, सरलता (ऋजुता) में सदा शिशु (बालक) के सदृश तथा ज्ञानयोग में वृद्ध के समान—इस तरह लौकिक तीनों योगों में सुशोभित हो रहे थे ।

गामाणुगाम-विहरन सुचरिदं अखण्ड संजम रयणत्तयस्स ।
पाढेज्जएदि तं आयारसत्थं संरक्खणत्थं णिव्वाणमग्गं ।। ७ ।।

अर्थ—अखण्ड संयम तथा रत्नत्रय का सम्यक् परिपालन करने वाले आचार्य वट्टकेर ने एक ग्राम से दूसरे ग्राम के अनुक्रम से विहार करते हुए निर्वाण-मार्ग के संरक्षण हेतु आचारशास्त्र का अध्ययन सभी को कराया ।

सच्चं तवं च रयणत्तय धम्मजुत्तं, आयारसार सुदधार अगाध बोधं ।
खण्डेदि सो हि सिहिलचार-विणट्ठपावं, तं वट्टकेरमुणिणाध-पहुं णमामि ।। ८ ।।

अर्थ—तप तथा सत्य से युक्त रत्नत्रय धर्म रूप आचार के सार का पालन करने वाले अगाध श्रुतज्ञान की तेजधार से युक्त, पापों का विनाश करके शिथिलाचार को खण्डित करने वाले ऐसे आचार्य वट्टकेर को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ।

सामण्णजुत्त जिणसासण अप्पझाणी, सिस्साण णाणचरिदे अणुरत्त सामी ।
मण्णंति जे सयल जीव-सहावभावे, तं वट्टकेर मुणिणाध-पहुं णमामि ।। ९ ।।

अर्थ—जिनशासन में श्रामण्य गुण से युक्त आत्मध्यानी, शिष्यों को ज्ञानदान में अनुरक्त, समस्त जीवों को समभाव रूप मानने वाले उन आचार्य वट्टकेर को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ।